

संस्कृत-सुक्तिसागरः



891.208
P.85

नारायण स्वामी

TO THE READER

K I N D L Y use this book very carefully. If the book is disfigured or marked or written on while in your possession the book will have to be replaced by a new copy or paid for. In case the book be a volume of set of which single volumes are not available the price of the whole set will be realized.

C. L. 29.

COLLEGE LIBRARY



Class No. 891.248

Book No. 2185

Acc. No. 18816

प्रकाशक

अखिल भारतीय विक्रम परिषद्,
काशी।

18816

[सर्वाधिकार सम्पादकके पास सुरक्षित]

मूल्य २१)

प्रथम संस्करण

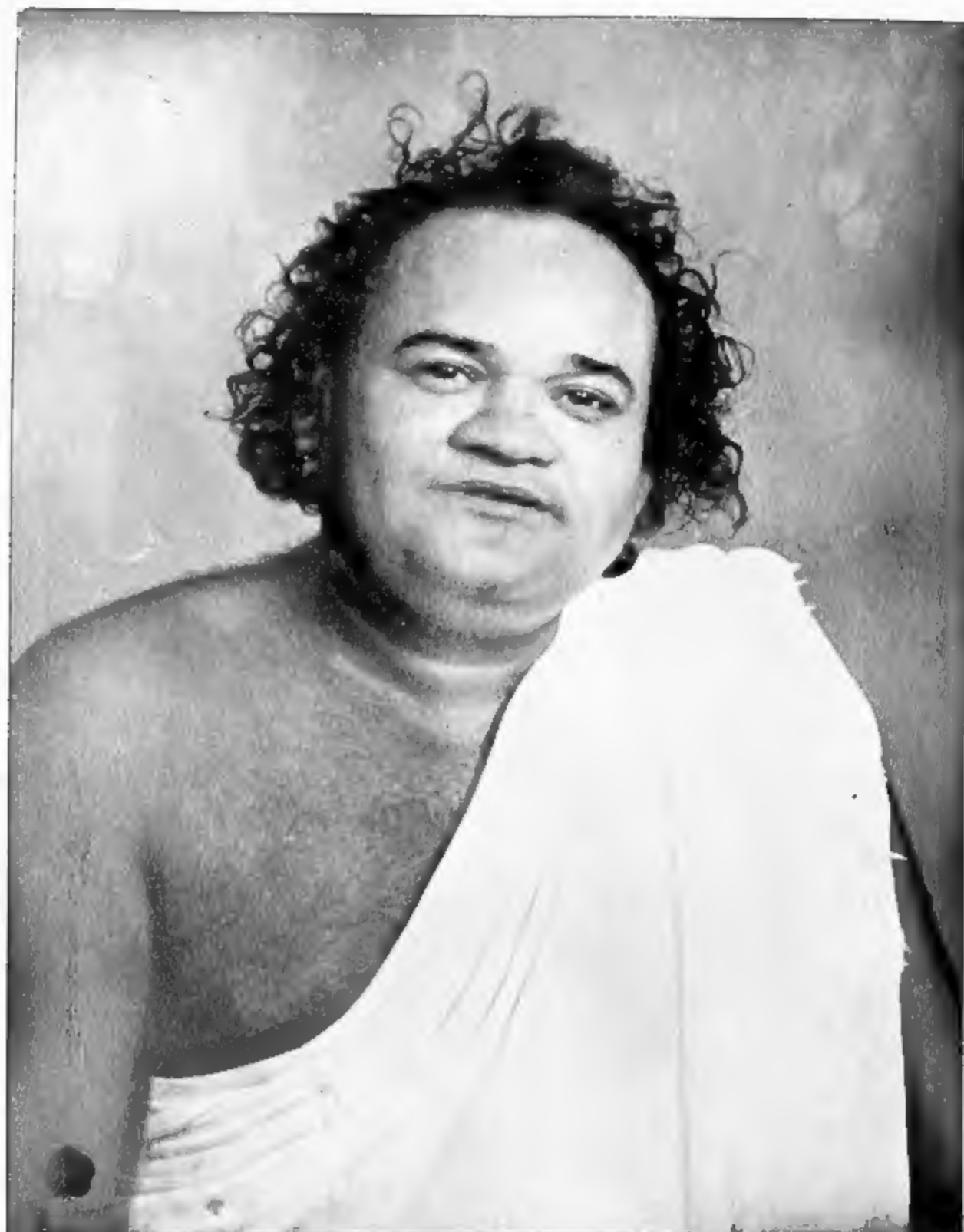
प्राप्ति-स्थान

१. अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, काशी
२. राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लि०,
दिल्ली, बम्बई, इलाहाबाद, पटना।
३. श्रीनारायणप्रसाद नवलगढ़िया
७७, बाँगड़ बिल्डिंग
१६१/१ हरीसन रोड,
कलकत्ता

मुद्रक

दुर्गा प्रेस

आदिविश्वेश्वर, काशी।



श्री १०८ नारायण स्वामी

श्रीचिरंजीलाल बाजोरिया

के

उर्दू-प्रेमको संस्कृत-प्रेममें

परिचर्चित करनेके निमित्त

साक्षीवाद समर्पित

प्रस्तावना

श्रीनारायण स्वामी वैदिक तथा संस्कृत साहित्य, दर्शन, ज्योतिष, तन्त्र तथा उर्दू, अंगरेजी आदि अनेक भाषा-साहित्योंके मर्मज्ञ विद्वान् तथा अत्यन्त मनीषी अवधूत हैं। अपने अध्ययन-प्रवाहमें कृतूहलवश आपने अनेक भाषाओंकी रमणीय और सरल सृक्तियाँ मस्तीमें आकर समय-समयपर संगृहीत कीं। उनमेंसे हिन्दी और उर्दू के सृक्ति-संग्रहके अतिरिक्त संस्कृतकी सृक्तियोंका अनुवाद भी कर लिया। जब यह संग्रह अगाध, अथाह और विस्तृत सागरका रूप धारण करने लगा तब उनकी इच्छा हुई कि अब इसे लोकरंजनकी दृष्टिसे और संस्कृत साहित्यका प्रचार करनेके लिये प्रकाशित भी कर दिया जाय।

उस विचारसे जब इसके प्रकाशनके सम्बन्धमें विचार-विमर्श किया गया और आदिसे अन्त-तक उसका पारायण कर लिया गया तब यह प्रतीत हुआ कि इस संग्रहमें संस्कृत साहित्यका कोई ऐसा क्षेत्र तथा कोई लोकप्रसिद्ध ग्रंथ नहीं रह गया जो इस संग्रहकी सीमासे बाहर छूट गया हो। किन्तु अनुवादकी भाषा निश्चय ही साधुओंवाली ऐसी नभ थी कि बहुतसे पाठक निश्चय ही उसकी विवेचना-वृत्ति तथा उसके ग्राम्यत्वपर नाक-भौं सिकोड़ सकते थे।

इस संग्रहको लोक-मुलभ बनानेकी दृष्टिसे और पाठकोंके लिये अधिकसे अधिक सुविधाजनक करनेकी दृष्टिसे इसके प्रत्येक प्रसंगके सब श्लोकोंको अकारादि कमसे रख दिया गया है जिससे उसके श्लोकोंका अलग अकारादि कम न देखना पड़े जैसा अन्य सुभाषित-ग्रन्थोंमें प्राप्त है। इसके अतिरिक्त इसके अनुवादकी भाषा भी इतनी सरल तथा साधु कर दी गई जो साधारण जन-समाज तथा विद्वन्मंडल दोनोंको समान रूपसे प्राप्त हो और सब लोग इसका आनंद लेते हुए उसे भली प्रकार हृदयंगम करते और समझते चलें।

यद्यपि संस्कृतमें अनेक सृक्ति-संग्रह और सुभाषित-संग्रह अनेक नामों और आकारोंके साथ प्रकाशित हुए और होते भी जा रहे हैं किन्तु सरल और सरस अनुवाद साथ न होनेके कारण वे केवल गिने-चुने संस्कृतके विद्वानोंके ही काम आ पाए। सबसाधारणका उनसे कोई विशेष लाभ नहीं हो सका। आजकल देश अपना होनेसे और हिन्दी भाषाका व्यापक प्रचार होनेके कारण संस्कृतकी ओर स्वभावतः सबकी प्रवृत्ति बढ़ चली है और सब लोग संस्कृतका अध्ययन करनेकी ओर अग्रसर हो रहे हैं। विभिन्न राज्य-सरकारोंका आरसे। हिन्दीक पाठ्यक्रमक साथ संस्कृतका अध्ययन भी अनिवार्य कर दिया गया है। यों भी भारतक प्रत्येक विद्वान्, नता, उपदेष्टा, सभीकी यह इच्छा होती है कि हम अपने लेखों, भाषणों और प्रवचनोंमें अपने प्राचीन संस्कृत साहित्यके रत्नोंका आभास यदा-कदा देते चलें। उनकी आरसे भी। नरतर यह माँग होती रही कि संस्कृत साहित्यके अमूल्य सुभाषित-रत्नोंका ऐसा संग्रह प्रकाशित हो। जिसमें उसका सरल अनुवाद भी दिया गया हो और जिनमेंसे सुभाषित चुनकर लोग अपने लेखों और प्रवचनोंमें निर्द्वन्द्व होकर प्रयोग भी कर सकें। यह संग्रह इसी दृष्टिसे अत्यन्त सरल और

सुबोध नागरी भाषाके अनुवादके साथ इतना उपयुक्त और उपादेय बना दिया गया है कि प्रत्येक रसिक उसका आनन्द ले सकता है और जन-साधारण भी उसका अध्ययन करके संस्कृत-के प्रतिभाशाली व्युत्पन्न कवियोंकी अलौकिक कल्पना तथा सरस वाणीका आनन्द ले सकते हैं ।

यह संग्रह इतना विशाल है कि एक ही जिल्दमें सम्पूर्ण ग्रन्थको समाविष्ट करना सम्भव नहीं हो सका । इसलिये इस प्रथम खण्डमें केवल देव-सूक्तियाँ और रस-सूक्तियाँ ही दी जा रही हैं । यह नहीं समझना चाहिए कि संस्कृतके कवियोंने केवल देवताओंकी स्तुतियाँ ही की हैं । उन्होंने देवताओंके स्वरूप और उनकी रीति-नीतिपर ऐसे विचित्र, सरस, आकर्षक और चुटीले व्यंग्य किए हैं कि बिना उन्हें पढ़े उनका रस नहीं प्राप्त हो सकता । रस सूक्तियोंमें भी रसरत्न शृङ्गारका विस्तारके साथ तथा अन्य आठ रसोंका संक्षिप्त विवरणके साथ सूक्ति-संग्रह किया गया है । रस और उसके अङ्गों तथा विभिन्न रसोंके उपादानोंका सूक्ष्म अध्ययन करने और उसका रस लेनेवालोंको इसमें पर्याप्त उदाहरण तो मिलेंगे ही साथ ही संस्कृतके कवियोंकी अनुपम कल्पनाका भी उन्हें आनन्द मिलता रहेगा ।

अनेक प्रकारकी कठिनाइयों और व्याघातोंके कारण यह ग्रन्थ लगभग तीन वर्षतक यंत्रकी यंत्रणा सहता रहा । आज भगवान्की कृपासे इसने आलोक के दर्शन किए और इसका प्रथम खण्ड आज प्रकाशित हो रहा है ।

सूक्तिसागरके इस खंडमें केवल दो उर्मियोंका ही साक्षात्कार कराया जा सका है । इसके द्वितीय खण्डमें चित्र-सूक्तियाँ, नीति-सूक्तियाँ तथा अन्य अनेक विषयोंपर कवियों-द्वारा कही हुई पूर्ण श्लोकों अथवा संक्षेपितियोंमें सूक्तियोंका विशाल संग्रह होगा ।

यद्यपि आकार-प्रकारमें यह दूसरा खंड इस खंडकी अपेक्षा कहीं अधिक विशाल और विस्तृत होगा किन्तु परिपक्व विचार है कि उसका मूल्य भी इसीके समान रक्खा जाय । इस ग्रन्थकी रचना और प्रकाशनमें कितना परिश्रम हुआ होगा यह इसी बातसे स्पष्ट है कि अनेक विद्वानोंका सहयोग होनेपर भी केवल ग्रन्थ प्रस्तुत करनेमें ही लगभग तीन वर्ष लग गए । किन्तु ग्रन्थ पूर्ण हो गया है । अतः, दूसरा खंड छपनेमें एक वर्षसे अधिक विलंबकी आशंका नहीं है । हम अपने उन कृपालु प्राहकोंको हृदयसे धन्यवाद देते हैं जिन्होंने पूर्व-प्राहक होकर अत्यन्त सन्तोष और धैर्यके साथ इतने दिनोंतक प्रतीक्षा की । हमें विश्वास है कि इस खंडके प्रकाशित हो जानेसे उन्हें सन्तोष होगा । हम परिपक्व आँखोंसे श्रीनारायण स्वामीको भी हृदयसे धन्यवाद देते हैं कि उन्होंने परिपक्व इस ग्रन्थके प्रकाशनका भार देकर अनुग्रहीत किया ।

तुलसी-जयन्ती,
सं० २०१४

}

प्रधान मंत्री,
अखिल भारतीय विक्रम परिषद्,
काशी

विषय-विन्यास

१. देवसूक्तयः

परब्रह्म	१
त्रिमूर्तयः	४
ब्रह्मा	५
सरस्वती	५
हरिहरौ	७
विष्णुः	८
लक्ष्मीः	१४
शंखः	१७
चक्रम्	१७
शेषः	१७
समुद्रः	१७
दशावतारः	१८
मत्स्यः	१९
कूर्मः	२०
वराहः	२१
नृसिंहः	२३
वामनः	२६
परशुरामः	२७
रामः	२८
सीता	३०
हनुमान्	३०
रामकृष्णौ	३१
बलभद्रः	३१
कृष्णः	३१
देवकी	४५
राधा	४५
कनिमयी	४५
वेणुः	४५
नन्दकः	४६
मुद्गः	४६
कल्किः	४७
पार्वती	६४
चंडिका	७१
अर्चनारीश्वरः	७१
गंगा	७२
चटान्हः	७४

शशिलेखा	७५
लोचनम्	७५
कंठः	७६
मुंडमाला	७६
पद्मगः	७७
तांडवम्	७७
गणेशः	७९
घणमुखः	८३
गणेशकुमारी	८४
गणाः	८४
नन्दी	८४
कटाहः	८४
मन्मथः	८५
रतिः	८५
सूर्यः	८५
चन्द्रः	८७
पृथ्वी	८८
वारणः	८८

२. रससूक्तयः

भृङ्गारप्रकरणे काम-प्रशंसा	८९
नायकभेदाः	९३
चत्वारो नायकाः	९३
भृङ्गारनायकाः	९३
सात्त्विकनायकगुणाः	९६
सरुणीवर्णनम्	९७
वयःमन्धिवर्णनम्	१०२
युवतीवर्णनम्	११०
नक्षत्रिशिवर्णनम्	११२
ललाटः	११४
भ्रुवौ	११४
नेत्रे	११५
नासा	११८
कर्णी	११८
कपोली	११८
अधरः	११९
दन्ताः	१२०

चित्रकः	
मुखम्	
कंठः	
बाहू	
करी	
हस्तरेखा	
अंगुल्यः	
स्तनौ	
नाभिः	
मध्यदेशः	
रोमावली	
वलिप्रथम्	
पृष्ठभागः	
नितम्बः	
वदनम्	
काममन्दिरम्	
वदनोरु	
ऊरु	
जघे	
गुल्फौ	
बरणौ	
पादांगुल्यः	
नलाः	
समप्रकीर्णस्वरूपवर्णनम्	
नायिका-प्रशंसा	
नायिकाभेदाः	
अष्टनायिकाः	
अभिसारिकाः	
कृष्णाभिसारिका	
शुक्लाभिसारिका	
स्वाधीनभर्तृका	
वासकसज्जा	
उत्का	
खंडिता	
कलहान्तरिता	
विप्रलम्भा	
मोहितभर्तृका	

स्त्रीचेष्टाः	१७६	वर्षापरिधिकाभिनी	१८२	सखी प्रति नायिकावाक्यम्	३७७
कटाक्षः	१७६	स्तयोतः	२८४	सखायं प्रति नायकोक्तिः	३७८
अभूषि	१७७	हंसः	२८४	नायिकां प्रति सखीवाक्यम्	३७८
निद्रा	१७८	शरद्वर्णनम्	२८४	मदनं प्रत्युक्तयः	३७८
स्मितम्	१७८	अलिकेलिः	२८३	चन्द्रं प्रत्युक्तयः	३८०
हसितम्	१७९	शरदनिलाः	२८४	रोहिणीं प्रत्युक्तिः	३८१
वाणी	१७९	शरद्वान्धः	२८४	पवनं प्रत्युक्तयः	३८२
जुम्भा	१८०	कनकमलं डेनी	२८५	मेघं प्रत्युक्तयः	३८२
गमनम्	१८०	हेमन्तवर्णनम्	२८५	अशोकं प्रत्युक्तयः	३८२
वहीपनविभावा	१८०	वन्दुककीडा	३००	तमालं प्रत्युक्तिः	३८२
प्रभातवर्णनम्	१८०	हेमन्तवायवः	३०१	मृणालहारं प्रत्युक्तिः	३८२
सूर्यादिवर्णनम्	१८४	हेमन्तपरिधिकाः	३०२	मधुरं प्रत्युक्तयः	३८३
सूर्यास्त-वर्णनम्	१८६	शिशिरवर्णनम्	३०३	चकोरं प्रत्युक्तिः	३८३
रजनिवर्णनम्	२०५	दृक्मौलनकीडा	३०६	कृष्णसारं प्रत्युक्तिः	३८३
मध्यरात्रिकोडिवर्णनम्	२०६	शिशिरवायवः	३०६	सारंगं प्रत्युक्तिः	३८४
तमोवर्णनम्	२०६	शिशिरवान्धः	३०७	मयूरविषयकोक्तिः	३८४
नक्षत्रोदयवर्णनम्	२११	संयोगभृंगारः	३०७	मुक्ताकलापं प्रत्युक्तिः	३८४
चन्द्रोदयवर्णनम्	२११	नायकदर्शनम्	३०७	अभिसारिकासंस्कारकथनम्	३८४
सकलचन्द्रवर्णनम्	२१५	नायिकादर्शनम्	३०८	संयोग-वर्णनम्	
चन्द्रकलाधर्णनम्	२१७	देशान्तरापगतो नायकः	३१४	नायकागमनावस्थावर्णनम्	३८६
उपोत्सनावर्णनम्	२१७	द्वियोगभृंगारः		नायकागमने नायिकां प्रति	
चन्द्रास्तवर्णनम्	२२६	विहङ्गः	३१४	सखीवचनम्	३८७
कोकदशावर्णनम्	२३०	वियोगिन्यवस्थावर्णनम्	३१४	नायिकातिथ्यवर्णनम्	३८७
षड्विंशवर्णनम्	२३०	वियोगिनीविप्रलापाः	३२६	नायिकां प्रति नायकस्य प्रश्नाः	३८८
वसन्तवर्णनम्	२३२	दूतांगुष्ठाः	३२६	प्रणयकलहे नायिकानुनयः	३८८
मदनपूजा	२४५	स्वयंदूती	३२६	सख्यनुनयः	३८९
कुसुमावयवः	२४५	दूती प्रति स्वावस्थाकथनम्	३२६	कलहान्तरिताप्रलापावधानम्	३८९
वसन्त वायवः	२४६	नायिकां प्रति सखीवचनम्	३३०	नायिकानुनयः	४००
वसन्तपरिधिकाः	२४८	नायकं प्रति दूतीप्रेषणम्	३३५	नायिकयोद्धतिप्रत्युक्तयः	४०२
कोकिलागायः	२५०	नायकं प्रति नायिका-सन्देशः	३३६	नायकशिक्षा	४०४
सहकारः	२५०	नायकस्याग्रे दृष्ट्युक्तयः	३३७	नायिकाप्रसादः	४०५
ग्रीष्मवर्णनम्	२५०	दूती प्रति नायिकाप्रश्नाः	३५०	परस्परप्रसादः	४०६
मध्याह्नवर्णनम्	२५६	दृष्ट्युपहासप्रश्नाः	३५१	प्रियचाटुकतय	४०६
जलकीडा	२६०	वियोगिन्यवस्थावर्णनम्	३५३	नववधूसंगमः	४१७
प्रण-पालिका	२६५	वियोगिनो-विप्रलापाः	३५४	नववधूसंगमे संभोगप्रसंगाः	४२०
ग्रीष्मवायवः	२६६	नायिकां प्रति सन्देशप्रेषणम्	३६६	आर्तिगनम्	४२४
ग्रीष्मपरिधिकाः	२६७	नायिकां प्रति नायकसन्देशः	३७०	चुरवनम्	४२५
वर्षावर्णनम्	२६७	नायिकां प्रति		विहारः	४२५
दोलाकेलिः	२७६	नायकावस्थाकथनम्	३७५	सुरतकेलिकथनम्	४२६
वर्षावायवः	२८०	नायकं प्रति नायिकोस्तयः	३७६	विपरीतरतक्रिया	४३२
वर्षापरिधिकाः	२८०	नायकं प्रति सखीवाक्यम्	३७७	सुरतवर्णनम्	४३५

सुरतनिवृत्तिः	४३६	ललितम्	४५८	शौर्यगर्वः	४६२
प्रियप्रस्थानावस्थाकथनम्	४४०	विद्वत्तम्	४५८	आलस्यम्	४६२
नायिका निर्गमनम्	४४३	सम्भोगनर्म	४५८	अमर्षः	४६२
पानगोष्ठो-वर्णनम्	४४३	मयनर्म	४५८	ओत्सुक्यम्	४६२
द्युतक्रीडा-वर्णनम्	४४६	संलापकः	४५८	अवहिष्टा	४६३
सज्जाविधानम्	४५०	उत्थापकः	४५८	उन्मादः	४६३
सीमन्तरचनम्	४५०	परिवर्तकः	४५८	शंका (स्वदुर्नयात्)	४६३
सीमन्तचिन्दूरम्	४५१	वस्तुस्थापनम्	४५८	शंका (परकीर्यात्)	४६३
तिलकः	४५१	अवपातः	४५६	स्मृतिः	४६३
कर्णभूषणम्	४५२	मोक्ष्यम्	४५६	मतिः	४६३
कंचुकी	४५३	विच्छेपः	४५६	आसूया	४६३
कंकणम्	४५४	कुत्तलम्	४५६	दौर्जन्यादसूया	४६३
मुद्रिका	४५५	अन्तेनानिष्टप्राप्तिकृतसम्भ्रमः	४५६	हर्षः	४६४
कान्तिः	४५५	इष्टप्राप्तिकृतः	४५६	विषादः	४६४
सहजार्तकाराः	४५५	वह्निषः	४५६	धृतिः	४६४
भावः	४५५	करिजः	४५६	धृतिः (शान्तात्)	४६४
हावः	४५५	आवेगः	४६०	चापलम्	४६४
हेला	४५६	सात्त्विकभावाः	४६०	चिन्ता	४६४
शोभा	४५६	तत्त्वज्ञानान्निर्वेदः	४६०	वितर्कः	४६४
कान्तिः	४५६	आपदः निर्वेदः	४६०	स्त्रीप्रशंसा	४६५
माधुर्यम्	४५६	ईर्ष्यातः	४६०	सतीवर्णनम्	४७१
दीप्तिः	४५६	वीरशृङ्गारयोर्भ्यभिचारि-	४६०	स्त्रीस्वभाव-निन्दा	४७५
प्रगल्भता	४५६	निर्वेदः	४६०	असती-चरित्रम्	४८१
श्रीदार्यम्	४५६	स्वतन्त्रो निर्वेदः	४६०	शान्धसंकेतः	४८८
धैर्यम्	४५६	केलिः	४६१	वेद्या-निन्दा	४९०
हावः	४५७	दिङ्मात्रम्	४६१	रसाः	
लीला	४५७	दैन्यम्	४६१	वीररसः	४९१
विलासः	४५७	भ्रमः	४६१	करुणरसः	४९८
विचित्रिः	४५७	मदः	४६१	हास्यरसः	५०३
विभ्रमः	४५७	मरुतम्	४६१	अद्भुतरसः	५११
विज्योक्तः	४५७	सङ्गता इष्टदर्शनान्	४६१	रौद्ररसः	५१३
किलकिंचितम्	४५७	अनिष्टभवणान्	४६१	भयानकरसः	५१५
मोहायितम्	४५७	अपस्मारः	४६२	बीभत्सरसः	५१७
कुट्टमितम्	४५७	मर्कः	४६२	शांतरसः	५१८

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

संस्कृत-सूक्तिसागरः

या दुग्धाऽपि न दुग्धेव कविदोऽभिरन्वहम् । हृदि नः सन्निधत्तां ता सूक्तिधेनुः सरस्वती ॥ १ ॥
किं कवेस्तस्य काव्येन किं काण्डेन धनुष्मतः । परस्य हृदये लग्नं न धूर्णयति यच्छिरः ॥ २ ॥
शुद्धार्थमात्रमपि ये न विदन्ति तेऽपि यां मूर्च्छनामिव मृगाः श्रवणैः पिबन्तः ।
संरुद्ध-सर्व-करण-प्रसरा भवन्ति विप्रस्थिता इव कषीन्द्रगिरं नुमस्ताम् ॥ ३ ॥

[निम्न प्रति कविरूपी दूहनेवालोसे दूही जानेपर भी जो सूक्तिरूपी गौ बनी हुई सरस्वती कभी दूधरहित नहीं होती, वे हमारे हृदयमें आकर विराजमान हो जायें ॥ १ ॥ उस कविके काव्यसे और उस धनुषधारीके बाण चलानेसे क्या लाभ, जो दूसरेके हृदयपर चोट करके उसे भूमनेके लिये बाध्य न कर दे ॥ २ ॥ जैसे सक्तीलकी मूर्च्छना सुनकर मृग अपनी सब इन्द्रियोंके व्यापार रोककर बिज्रालखे-से हो जाते हैं, वैसे ही शब्द और अर्थतक न जाननेवाले लोग भी महाकविकी जिस बाणीका केवल कानोंसे सुनकर अपनी सुध-बुध छोकर तन्मय हो जाते हैं, उस कवि-बाणीको हम प्रशाम करते हैं ॥ ३ ॥]

देवसूक्तयः

परब्रह्म

अथ स्वस्वपाय देवाय नित्याय हृतपाप्मने । न्यक्तकर्म-
विभ्राणाय चैतन्यजपोतिथे नमः ॥ १ ॥ अथ्यस्तान्ध्याम-
पूर्वमर्थधिपक्षेर्ग्राह्यं पुमर्थारूपदं लक्ष्यं लक्षणभेदनः श्रुति-

गतं निर्धूतसाध्यार्थकम् । आस्त्रायान्नविभातविश्वविभ्रवं
सर्वाविद्वदं परं सत्यं ज्ञानमनर्थसार्धविधुरं ब्रह्म प्रपद्ये
सद्गोम् ॥ २ ॥ अनन्तनामधेयाय सर्वाकारविधायिने ।

देवताओंपर सूक्तियाँ

परब्रह्म

जो ब्रह्म सदा एक-सा रहता है, जिसमें कभी किसी प्रकारका भी हेर-फेर या विगड़-सुधर नहीं होता, जो पापोंका नाश करनेवाला है, जो किसी भी इष्टके नियम या बन्धनमें बँधा हुआ नहीं है, उस सदा चमकते रहनेवाले चैतन प्रकाशको नमस्कार है ॥ १ ॥ जगत्से सम्बन्ध न होनेपर भी जिसमें जगत्का होना माना जाता है, जिससे पहले कोई वस्तु नहीं रही, जिसे केवल योगी लोग ही समझ पाते हैं, जो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष नामक चारों पुरुषार्थोंका भण्डार है, जिसे अनेक प्रकारके लक्षणोंसे

ही समझा जा सकता है, वेदोंने जिसका वर्णन किया है, सब कुछ कर चुकनेके कारण जिसे कुछ करना शेष नहीं है, जिसके प्रभावका वर्णन वेदान्तमें भली प्रकार किया गया है, जिसका किसीसे कोई विरोध नहीं है, जो सब तत्त्वोंसे परे है, जो सत्य-स्वरूप और ज्ञान-स्वरूप है, जो अर्थ-रहित और अर्थ-सहित दोनोंके अन्तर्लोकसे दूर है, ऐसे सत् तथा ओम् नामवाले ब्रह्मकी मैं शरण लेता हूँ ॥ २ ॥ जिस ब्रह्मके अनगिनत नाम हैं, जो सब इष्टके रूपोंमें अपनेको ढाल सकता है, संसारके सब मन्त्र

समस्तमन्त्रवाच्याय विश्वैकपतये नमः ॥३॥ कलिकादि-
ष्विव स्वर्णमण्यवादिष्विवोदकम् । भेदिष्वभेदि यसस्मै
परस्मै महत्ते नमः ॥ ४ ॥ गगनमिव विकारैर्होनिमासञ्च
धिष्वकप्रतिधिष्यमनन्यस्कृत्तिमन्त्रान्मरुपम् । ध्रुवि-
शिगसि महीयः सन्प्रमोदैकहेतुं सकलवृजिनभङ्गं
ज्योतिरेकं सदाद्यम् ॥ ५ ॥ चराचरजगन्मफारस्फुरत्ता-
मात्रधर्मिणे । त्रुविनेयगृहस्याय युक्तैरप्यात्मने नमः ॥ ६ ॥
त्रिभुवनविकाशनिदानं निरुपममनन्तररूपम् । परिहृत-
विकारमनन्तं सदानुभवमाश्रमुपासे ॥ ७ ॥ दिक्कालाद्य-
नवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्त्यै । स्थानुभूत्येकमानाय नमः
शान्ताय तेजसे ॥ ८ ॥ नमोवाञ्छनसार्त्तमहिम्ने परमे-
ष्ठिने । त्रिगुणाष्टगुणानन्तगुणनिर्गुणमूर्त्यै ॥ ९ ॥ नमः
स्थानन्त्रचिच्छक्तिमुद्रिनस्यविभूतये । अव्यक्तव्यक्तरूपाय

कस्मैचिन्मन्त्रमूर्त्यै ॥ १० ॥ न यस्य जन्मादिविकार-
लिङ्गं नद्यस्य सत्तावशनः सदाभम् । मायाविहीनं
तदुदागमोदं स्थान्मस्वरूपं ननु तच्चकास्तु ॥ ११ ॥ न स्त्री
न ना न च नपुंसकमायतं न नात्पं महन्न न च पीनम-
पीनतो नम् । नासन्न सन्न विकलं सकलं च यन्न तत्केवलं
स्फुरति भास्वरूपमेकम् ॥ १२ ॥ निर्व्यं निरावृत्ति
निजानुभवैकमानं आनन्दधाम जगद्गुरवीजमेकम् ।
दिग्देशकालकलनादिसमस्तहस्तमर्वासहं दिशतु शर्म
महन्महो वः ॥ १३ ॥ निषेधे कृते नेतिनेत्यादिशाक्यैः
समाधिस्थितानां यदाभाति पूर्णम् । अवस्थाप्रयातीनमेकं
तुरीयं तदेकं स्वमात्रप्रकाशं प्रपद्ये ॥ १४ ॥ परिमितिशून्यं
प्रकृतिविशुद्धम् । त्रिभुवनदृश्यं निरवयवं तत् ॥ १५ ॥ प्रज्ञा
दृष्टः कुयेरो यमवरुणमरुद्बृहस्पतिर्द्रुमः शैला नद्यः

जिम अकेले प्रज्ञाका ही वर्णन करते हैं और जो अकेला इम
संसारका म्यामी है उस प्रज्ञाको नमस्कार है ॥ ३ ॥ कानमें पढ़ने
जानेवाले कण्ठज आदि गर्भोंमें जो सेना बनकर रमा हुआ
है, समुद्र आदिमें जो जन बनकर रमा हुआ है, संसारकी सब
नाश होनेवाली वस्तुओंमें जो घमर बनकर चुला हुआ है, उस
सपने वदे प्रकाशमान नेत्रको नमस्कार है ॥ ४ ॥ जो आकारके
समान शुद्ध होकर संसार-भरमें फैली हुई है, जो संसारकी सब
वस्तुओंमें स्फुटि और चेतना भरनेवाले परमात्माका तेज है, वेद
भी जिसे बहुत वदे मध्ये आनन्दका कारण मानते हैं, जो सब
पापोंका नाश करनेवाली है उस परम शुद्ध ज्योतिको नमस्कार है
॥ ५ ॥ इम समूचे अल और अकल संसारको यद्वाना और
गढ़ना जिसका काम है और जिसका भेद योगी भी नहीं
जान पा सकते, उस परमात्माको नमस्कार है ॥ ६ ॥ जो तीनों
लोकोंको चमकाने और फैलानेवाला है, जिसके समान कोई नहीं
है, जिसके अनगिनत रूप हैं, जिसमें कभी कोई बनाव-बिगाड़ या
हेर-फेर नहीं होता, जिसका अन्न नहीं है और जो अनुभवसे ही
समझा जा सकता है उसकी मैं उपासना करता हूँ ॥ ७ ॥ जो
दिशा और कालके बन्धनोंमें बंधा नहीं है, जिसका कोई पार
नहीं पा सकता, जो मात्रान् ज्ञान-रूप है और जो अनुभवसे ही
समझा या जाना जा सकता है, उस शान्त और तेजस्वी रूपवाले
देवताको नमस्कार है ॥ ८ ॥ जिसके पासनक वाणी और मन
दोनोंकी पहुँच नहीं हो पाती, उस महा शक्तिवाले और तीन
गुण (सत्त्व, रज और तम), आठ गुण (द्रवा, जमा, अनमूया,
शीघ्र, अनायास, मज्जल, अरूपणना और अस्पृहा), सांख्यमें

बनाए हुए चौबीस गुण और अनन्त गुण होनेपर भी जो
गुणरहित बना रहता है उस प्रज्ञाको नमस्कार है ॥ ९ ॥ अपनी
ज्ञान-शक्तिये अपने ऐश्वर्यको अपनेमें छिपाए रखनेवाली उस
मन्त्र-रूपी किसी शक्तिको नमस्कार है, जो दिव्य भी देवी है
और नहीं भी दिव्य है देवी ॥ १० ॥ जिसका न कभी जन्म
हुआ, न आरम्भ हुआ, जिसमें कभी कोई बनाव-बिगाड़
नहीं होता, जो अपनी शक्तिये सदा चमकता रहता है,
माया जिसे बंध नहीं पाती, वह फैले हुए आनन्दवाला अपना
स्वरूप चमकता रहे ॥ ११ ॥ जो न स्त्री है, न पुरुष है, न
नपुंसक है, न फैला है, न छाँटा है, न बड़ा है, न मोटा है, न
पतला है, न है, न नहीं है, न अधूरा है, न पूरा है, वह केवल
प्रकाशमय रूपवाला (प्रज्ञा) ही चमक रहा है ॥ १२ ॥ जो सदा
रहता है, जो न कभी जन्म लेता है न मरता है, जो अपने
अनुभवसे ही जाना जा सकता है, जो आनन्दका धाम है, जो
संसार-रूपी शैकुणको उगातेवाला अकेला बीज है, जो दिशा,
देश, काल और गिनतीके बन्धनसे बहुत दूर है, वह वदेसे
भी बड़ा परमात्मा मुंहारा सदा महत्त करे ॥ १३ ॥ वेदोंमें
जिसका यह कहकर पूरा वर्णन नहीं हो पाया है कि 'इतना
ही नहीं है', समाधि लगानेवाले योगी जिसे पूर्ण रूपमें
देखते हैं और जो न उत्पन्न होता है, न रहता है, न नष्ट होता
है, उस अपने आप चमकनेवाले परमात्मकी शरणमें जाता
है ॥ १४ ॥ जो किसी भी बन्धनमें बंधा हुआ नहीं है, जो
स्वभावसे ही शुद्ध है, जो निराकार होते हुए भी तीनों लोकोंके
रूपमें दिव्य है पड़ता है, वही प्रज्ञा है ॥ १५ ॥ वह विवरूप या

समुद्रा ग्रहणमनुजा दैत्यगन्धर्वाणाः । द्वीपाः नलज-
ताराचिवसुमुनया व्योम भूगन्धर्वा च संलीना यस्य सर्वं
वपुषि स भगवान् पातु यो विश्वरूपः ॥ १६ ॥ मध्या-
ह्नार्कमरीचिकास्त्रिव पयःपुरो यदज्ञानतः स्वं वायु-
ज्वलनो जलं क्षिप्रिनि वैलोक्यमुन्मीलति । यत्तत्त्वं
विदुषां निर्मीलति पुनः अग्निभोगोपमं सान्द्रातन्व-
मुपास्महे तदमलं स्वान्मावयोधं महः ॥ १७ ॥ यथा
तथापि यः पूज्यो यत्र यत्रापि योऽर्चितः । योऽपि वा
सोऽपि वा योऽस्तीं देवस्त्वस्मै नमोऽस्तु ते ॥ १८ ॥ यथा
स्थाणीं प्रेतां जलमिष मरी व्योम्नि पृथ्व्युज्जो वा
रज्जाविष भुवनमेतन्त्सदुपमम् । अमाद्यभाभानं तद्वि-
कलमेकं निरुपमं सदा सर्वत्रातं किमपि कमतीयं स्फुरति
तत् ॥ १९ ॥ यदनयगमनोऽसदपि सदिष तत् । प्रकृति-
विलसितं सद्मलमुदितम् ॥ २० ॥ यस्माद्विषमुदति
यत्र रमते यस्मिन्पुनर्लायते भासा यस्य जगद्भाति

सहजानन्दोऽज्वलं यन्महः । शान्तं शाश्वतमाश्रितं यम-
पुनर्भावाय भूतेश्वरं जैनध्वान्तमपाम्य यान्ति कृतिनः
प्रस्तामि तं पूरुषम् ॥ २१ ॥ यः सृष्टिस्थितिसंहर्ताधि-
तनुने ग्रहादिमृत्तित्रिकैर्यस्याश्रितनया स्थितानि सद्-
सत्कमांशपि प्राणिनाम् । त्रिवेन्द्राकृतिवृद्धिमानथ
परो जीवात्पगन्मा म्यं सोऽयं यो विद्वानु पूर्णमधि-
राखेनोगतं यद्वेत् ॥ २२ ॥ लोकत्रयस्थितिलयोदय-
कलिकारः कार्येण यो हरिहरद्विहितव्यमनि । देवः न
विश्वजनयाश्रितस्तानिचूनशक्तिः शिवं दिशतु शश्वद-
नश्वरं यः ॥ २३ ॥ विश्वस्मिन्नगति समन्ततः प्रका-
शस्याधानं कुशलमनन्तरं प्रभूतम् । उहीतं विद्वति-
विहानमेकमायं किञ्चित् प्रकृतिपरश्चकान्ति यस्तु ॥ २४ ॥
विश्वेशो वः स पायाभिर्भुगुणसचिवतां यावत्सम्यानुयारं
विश्वद्रीचीनसृष्टिस्थितिवलयमजः स्यच्छ्रया निर्मिमीते ।
यस्येयत्तामनोन्व प्रभवति महिमा कोऽपि लाफव्यनीतः

संसारके रूपमें दिखाई देनेवाला भगवान् गुह्यकारी रक्षा करे
जिसके शरीरमें ब्रह्मा, दण, कुबेर, यम, वरुण, वायु, अग्नि,
चन्द्र, इन्द्र, रुद्र, पर्वत, नदी, समुद्र, सम्पूर्ण प्रर, मनुष्य, ईश्वर,
गन्धर्व, नाग, द्वाप, तारे, सूर्य, वसु, मुनि, आकाश, पृथ्वी और
इतना अभिर्भाकुमार आदि सब समाए हुए हैं ॥ १६ ॥ जैसे
शेषहरकी सूर्यकी किरणोंका चमकने दिखाई देनेवाला किल-
मिलीका लोग पारंगका कुण्ड समझ बैठने हैं, ऐसे ही जिस
ब्रह्मको अधानपनमें लोग आकाश, वायु, जल, अग्नि और पृथ्वीके
रूपमें देखने हैं और जिस आत्म-ज्ञान रूपा शुद्ध मदानावके
कारण विद्वान् या ज्ञानी भी मालाका सर्प समझ बैठने हैं, उस
अत्यन्त आनन्दकी मैं उपासना करता हूँ ॥ १७ ॥ जो देव सब
प्रकारसे, सब स्थानोंमें और सब रूपोंमें पूज्य है उसे मेरा प्रणाम
है ॥ १८ ॥ जैसे सृष्टे पदके कुंडमें प्रेतका, मरुस्थलमें बलका,
आकाशमें नगरका और रस्सोंमें सोंपका भ्रम होता है उसी प्रकार
जिसमें भ्रमसे जगत्का भान होता है और जः पूर्ण, एक, अद्वितीय
तथा सर्वत्र व्यापक कोई एक सौन्दर्य भासित होता है वही
ब्रह्म है ॥ १९ ॥ जिस ब्रह्मकी ठाँक-ठाँक न जाननेके कारण असत्य
पदार्थ भी सत्यसे प्रतीत होते हैं, जो स्वयं ऐसा प्रकाश है कि
उसे प्रकाशित करनेके लिये दूसरे किसी प्रकाशकी आवश्यकता
नहीं है और वेदोंमें जिसे सत्य तथा शुद्धरूप बताया है, वही ब्रह्म
है ॥ २० ॥ जिस पुरुष (ब्रह्म) से यह संसार उत्पन्न होता
है, जिसमें वास करता है और जिसमें खय हो जाता है, जिसके

प्रकाशसे यह जगत् चमक रहा है, जो स्वभावनः आनन्दस्वरूप,
शान्त, अनन्तर और क्रियाशून्य है और ज्ञानी लोग अपनी
ज्ञान-उपाधिसे भेदका अन्धकार दूर करके सब प्राणियोंके तिस
स्वामांमें मिल जाते हैं उसकी मैं स्तुति करता हूँ ॥ २१ ॥
जो परमात्मा अपने ब्रह्मा, विष्णु और महेश-रूपोंमें संसारका
सर्जन, पालन और संहार करता है, जिसके अधीन सब
प्राणियोंके अच्छे-बुरे कर्म हैं, जिसकी रक्षा, प्रशमन और ज्ञानका
कभी नाश नहीं होना और जो जीवामाये कभी यदकर है वह
शीघ्र आप लोगोंके मनकी अभिलाषाएँ पूर्ण करे ॥ २२ ॥ जो
तीनों लोकोंकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयका खेल खेलता रहता
है और जो काम पदनेपर ब्रह्मा, विष्णु या शिव बन जाता है,
जिसके पासतक किसीके मन और वचनका पहुँच नहीं हो पाता
(जिसकी न मनमें कल्पना की जा सकता है, न वाणीसे वर्णन
किया जा सकता है), ऐसी वह विचित्र शक्ति (ब्रह्म) सदा
आप लोगोंका अलखड मङ्गल करे ॥ २३ ॥ जिसके प्रत्येक
अंशमें उसी प्रकार प्रकाश व्याप्त है जैसे जड़में मिट्टी, वह
पूर्ण, ब्रह्माण्डमें श्रेष्ठ, महलमय, अवकाशरहित, प्रकाशरूप,
अपरिवर्तनीय, एक, अनादि, सत्त्व, रज और तम गुणवाली प्रकृतिसे
परे जो कुछ भासमान है वही ब्रह्म है ॥ २४ ॥ वह संसारका
स्वामी आप लोगोंका रक्षा करे जो स्वयं उन्मत्त होनेवाला न
होकर भी सत्त्व, रज और तम गुणोंकी सहायतासे निरन्तर
चर-अचरकी रचना, पालन और संहार करता रहता है, जिसकी

त्यक्तो यश्चतुर्गद्यैरपि निपुणतमैर्वीक्षणैश्चिह्नासु ॥२५॥
विष्णुर्वा त्रिपुरान्तको भवतु वा ब्रह्मा सुरेन्द्रोऽथवा
भानुर्वा शशलक्ष्णोऽथ भगवान्युद्धोऽथ सिद्धोऽथवा ।
रागद्वेषविषासिमोहगहिनः सत्त्वानुकम्पोद्यतो यः सर्वैः
सह संस्कृतो गुणगणैस्तस्मै नमः सर्वदा ॥ २६ ॥ शक्यं
यत्र विशेषतां निगदितुं प्रेमैव यच्चिन्तितं मृदुह्री-
वदनेन्दुमगडलामिव स्वान्ते विधत्ते मुदम् । यन्मुग्धानव-
नान्तचेष्टितमिवाध्यक्षेऽपि नो लक्षितं तत्तेजो विनया-
दमन्ददृढयानन्द्राय चन्द्रामहे ॥ २७ ॥ शान्तं शुद्धं पुराणं
धिभुवनभवनं भाषि भूतं भयश्च नित्यं बुद्धं प्रभूतं
सफलमनवरं भव्यमेकं प्रसिद्धम् । पूर्णं विष्णुकप्रकाशं
शरणमनुपमं निष्क्रियं निधिकारं रुद्रं सन्तुष्टमद्वा करण-
विषयताशून्यमुद्भूतं शश्वत् ॥२८॥ शिवमनुपममद्वासं
सकलमद्यमानन्दम् । अमृतमुद्रितमान्मैकानुभवाविषय-

रूपं सत् ॥२९॥ सर्वः किलायमवशः पुरुषाणुकर्म-काया-
विकारणगणो यदनुग्रहेण । विश्वप्रपञ्चरचनाचतुरत्यमेति
स त्रायतां त्रिभुवनैकमहेश्वरो वः ॥ ३० ॥

त्रिमूर्तयः

नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं प्राक्सृष्टेः केवलात्मने । गुणत्रय-
विभागाय पञ्चाङ्गेदमुपेयुषे ॥ १ ॥ नमोविश्वसृजे पूर्वं
विश्वं तदनु विभ्रते । अथ विश्वस्य संहर्त्रे तुभ्यं त्रेधा
स्थितात्मने ॥ २ ॥ रजोजुषे जन्मनि सत्त्ववृत्तये स्थिता
प्रज्ञानां प्रलये तमःसृष्टे । अजाय सर्गस्थितिनाशहेतवे
त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने नमः ॥ ३ ॥ श्यामश्वेतारुणाक्ता
जलधरणिधरोऽम्बुलपङ्केदहस्था भोमा-सावित्र्युपेता
रथचरणपिनाकोऽग्रदुङ्कारशस्त्राः । देवा हिष्यद्वेना जग-
द्यनसमुद्भेदनोऽपतिशक्ताः प्रीता वः पान्तु नित्यं हरि-
हरविधयस्तादर्थ्यगोहंसपन्नाः ॥ ४ ॥ श्यामश्वेतासि-

महिमाकी कोई सीमा नहीं है, जो सब लोकोंमें परे है तथा
देखने, सुनने, छूने, सूँघने और चम्कनेमें समर्थ इन्द्रियों भी जिसके
पासनक नहीं पहुँच पाती ॥२५॥ जो राग और द्वेष रूपा विष
तथा दुःख और संकल्प शून्य है, जो सदा सावधान होकर
प्राणियोंपर कृपा करना रहता है और जो सब गुणोंमें अलक्ष्य
है, उसे हमारा सदा नमस्कार है, चाहे वह विष्णु हो, रुद्र हो,
ब्रह्मा हो, सूर्य हो, चन्द्र हो, बुद्ध हो या सिद्ध हो क्यों न हो ॥२६॥
जिसका डीक-डीक वर्णन नहीं किया जा सकता, जो प्रेमसे स्मरण
करने-मात्रसे कौमलाई नायिकाके मुखचन्द्रके समान हृदयको
आनन्दित करता है, जो किर्मा भोला नायिकाके कटाक्षपानके
समान सम्मुख होनेपर भी दम्बा नहीं जा सकता (सहा नहीं
जा सकता), उस तेज (ब्रह्म) को मैं इमलिये विनयपूर्वक प्रणाम
करता हूँ कि मुझे अपने हृदयमें सबसे बड़ा आनन्द मिले ॥२७॥
जो पूर्णतः शान्त, शुद्ध, सबसे पुरातन, सारे संसारका आश्रय,
भूत, भविष्य तथा वर्तमान-स्वरूप, सदा रहनेवाला, ज्ञानरूप,
सर्वैश्वर्ययुक्त, सर्वमय, सर्वश्रेष्ठ, भव्य, एक, प्रसिद्ध, पूर्ण,
सब औरसे प्रकाशवान्, सबका आधार, अनुपम, किवाहीन,
विकार-रहित, रुद्ररूप, सदा सन्तुष्ट, अगोचर, शून्य तथा सदा
प्रकाशवान् है, वही ब्रह्म है ॥२८॥ जो स्वयं कल्याण-स्वरूप है, जो
सब उपाधियोंसे परे है, जो सूर्य आदि सबसे अधिक प्रकाशवान्
है, जो पूर्णतः निष्पाप है, जो आनन्द-स्वरूप है, जिसे लोग
अमृत कहते हैं, जो केवल आत्मज्ञानसे ही समझा जा सकता
है और जो सदा है, वही ब्रह्म है ॥ २९ ॥ तीनों लोकोंका वह

सबसे बड़ा स्वामी आप लोगोंकी रक्षा करे, जिसकी इच्छासे
सभी पुरुष, परमाणु, कर्म, शरीरादि सब कारण स्वयं पराधीन
होते हुए भी इस विलुप्त संसारका निर्माण करनेमें समर्थ हो
जाते हैं ॥ ३० ॥

तीनों भूर्तिर्या

सृष्टिके पहले केवल एकले ही एक रूपवाले और फिर
तीनों गुणोंकी बल-बल-बल करनेके लिये तीन असलग-बल-
रूपोंवाले आपको प्रणाम है ॥ १ ॥ पहले ब्रह्मा-रूपसे इस
संसारको रचनेवाले, फिर विष्णु-रूपसे इसे पालनेवाले और फिर
रुद्र-रूपसे इस संसारको नष्ट कर देनेवाले तीन रूपोंमें रहने-
वाले आपको प्रणाम है ॥ २ ॥ जो रजोगुणसे युक्त होकर
संसारकी रचना करने हैं, सत्त्वगुणसे युक्त होकर संसारका पालन
करते हैं और तमोगुणसे युक्त होकर संसारका नाश करते हैं, ऐसे
रज, सत्त्व और तमोगुणवाले तथा इस संसारकी रचना, पालन
और नाश करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु और शिव रूपवाले
अब्रह्मा (ब्रह्म) को प्रणाम है ॥ ३ ॥ कमलः सौवले, उजले
और लाल रूपवाले, समुद्र, पर्वत और खिले हुए कमलमें रहने-
वाले, चक्र, पिनाक (धनुष) और भयङ्कर हुङ्कार रूपी राजावाले,
दो तीन और आठ आँखोंवाले तथा गहड़, नन्दी और हंसपर
बैठकर चलनेवाले, संसारका पालन, नाश और रचना करनेवाले
लक्ष्मी, पार्वती और सरस्वतीसे संयुक्त रहनेवाले तीनों देव
(विष्णु, शिव और ब्रह्मा) प्रसन्न होकर आपकी रक्षा करें ॥४॥
कमलः सौवले, उजले और लाल रङ्गोंके धनी, भक्तोंके कठ

तत्त्वाद्या प्रणतार्तिनिवारिणी । संसारोत्तारणे दत्ता मुदे
देवप्रयी भवेत् ॥ ५ ॥

ब्रह्मा

अविरताम्बुजसङ्गनिसङ्कलद्बलकेसरसंवलितेव वः ।
ललितवस्तुविधानसुखोल्लसत्तनुकृता तनुरात्मभुवोऽय-
तान् ॥ १ ॥ आगस्कारिणि कैटभप्रथमेने तत्ताड-
नार्थं हया नाभीपङ्कजमल्लतां नमयितुं जाते प्रयत्ने
श्रियः । स्वादासोन्मधनोपपादितभयभ्रान्तात्मनस्तत्क्ष-
णाद्ग्रहणयपराः पुरातनमुनेर्वाग्बृत्तयः पान्ति वः ॥ २ ॥
कुलशैलदलं पूर्णसुखार्णविरिकर्णिकम् । नमोऽधितिष्ठतेऽ-
नन्तनालं कमलविष्टरम् ॥ ३ ॥ कृतकान्तकेतिकुतुकधी-
शीतधासलेकनिद्राणः । घोरितथितनालिकृतो नाभि-
सरोजे विधिर्जयति ॥ ४ ॥ जानस्तेऽधरखण्डनात्परि-
भवः कापालिकादम्ब यत्तद्गङ्गादिषु कथ्यतामिति

दूर करनेवाले और प्राणियोंको संसारसे पार करनेमें चतुर तीनों
देव आपका कल्याण करें ॥ ५ ॥

ब्रह्मा

ब्रह्माका यह अपने आप ही उत्पन्न शरीर आपकी रक्षा करे
जो माना प्रकारकी सुन्दर-सुन्दर वस्तुओंकी बना चुकनेकी
सफलताके मुखसे रंभाञ्जित हाँकर ऐसा जान पड़ता है मानो घने
कमलोंके घाँघमें रहनेसे उनसे गिरे हुए परागके ढेरसे रँग गया
हो ॥ १ ॥ अपराधी कैटभासुरसे युद्ध करते समय काँध हाँसेपर
जब उसे मारनेका कुछ न मिला तब बिष्णुकी नाभिमें उगे हुए
कमलकी ही आसके रूपमें लेनेकी जैसे ही लक्ष्मीजी उठीं धीसे ही
अपना धर उठाई जानेके डरसे घबराकर 'रक्षा करो, रक्षा करो'
बिल्ला उठनेवाले प्राचीन मुनि ब्रह्माकी ये पुकारें आपकी रक्षा
करें ॥ २ ॥ कुलाचल पर्वत ही जिसकी पैलुड़ी है, समूचा सुमेरु
पर्वत ही जिसका धुत्ता है और जिसके नालका कहीं अन्त ही
नहीं है, ऐसे कमलपर बैठे हुए ब्रह्माजीका प्रणाम है ॥ ३ ॥ अपने
प्रियसे विलास करनेके पश्चात् लक्ष्मीजीने जो ठक्की सीसों की
उनकी तरावटसे बिष्णुकी नाभिके कमलपर बैठकर ऊँचते हुए उन
ब्रह्माजीकी जय हो जिनके आसपास भीरे बलपूर्वक गुञ्जार करते
हुए मँडरा रहे हैं ॥ ४ ॥ 'हे माँ ! उस अघोरिने आपका नीचेका
घोट फाट लिया, इससे जो आपकी हार हुई यह समाचार ब्रह्मा
आदि देवताओंसे भी कहिए ।' यह बात जब बचपनके कारण
स्वामी कार्तिकेयने कही और उनके लः मुख केवल अपने दो
हाथोंसे पार्वतीजी न रूँद पाई तब उसी बातको चतुरतासे अपने

बचो बाल्यादिच्छुश्रीं जल्पति । गौरीं पाणिगुणेन पगमुख-
वचो रोद्धुं निरीत्यात्मनां वैलज्याच्चतुराननस्य वदना-
वृत्तिश्चिन्तं पातु वः ॥ ५ ॥ तं चन्द्रे पद्मसन्धानमुपगीत-
च्छुटाच्छुलान् । गङ्गा स्नानश्रयेणैव यं सदैव निपे-
यते ॥ ६ ॥ मूर्तिः स्मर्तुमोहरा सत्तन्त्री वाचां परा
देवता व्याहाराः श्रुतयः कुटुम्बकमिदं विध्वञ्च्यथाय-
रम् । यस्यैतच्छुनिमूलमूलकतया सन्दर्शितप्रक्रियं
स्वारम्भभगवन्तमन्नरहितम्रघ्नाणमौडामहं ॥ ७ ॥
सृजति कमलसंस्थो दृश्यमात्रं सदा यो निखिलनिगम-
तत्त्वज्ञानिनाञ्च प्रधानम् । अपरिहतसमाधि सन्यसङ्क-
ल्पमेतं परिधिमलचरित्रं तं नृप हंसवाहम् ॥ ८ ॥

सरस्वती—आशासु राशीभयदङ्कवर्त्तीभासैव वासीकृत-
पुर्णार्धसिन्धुम् । मन्दस्मितेर्निन्दितशार्देन्दुं घन्द्रेऽर्चिन्वा-
सनसुन्दरि स्वाम् ॥ १ ॥ करवदरसदृशमालिनं भुवनतलं

चारों मुखोंसे दुहरानेवाले ब्रह्माजी आपकी रक्षा करें ॥ ५ ॥ कमलके
भवनमें रहनेवाले उन ब्रह्माजीकी प्रणाम करता हूँ जिनके शरीरमें
अपनी तीनों धाराओंसे जनेऊका तीन लड़कोंकी शोभा बनानी हुई
गङ्गाजी सदा उनकी सेवा करता रहती हैं ॥ ६ ॥ जिनका स्वरूप
ध्यान करनेवालोंका तर्मागुणरूपी घोंघरा दूर करता है, वचनोंकी
एक मात्र स्वामिनी देवी सरस्वती जिनकी गृहिणी हैं, जिनके मुँहसे
निकले हुए बाल ही चारों वेद हैं, सारा चर और अचर विश्व
ही जिनका परिवार है, अपने सब कार्य वेदोंसे प्रमाणित करके
जिन्होंने वेदोंकी प्रमाशिक्षता दिखाई, जो एक-मात्र अपनी शक्तसे
ही चाहें जो रचना कर डालने हैं और जिनका अन्त ही नहीं है
ऐसे ब्रह्माजीकी हय स्तुति करते हैं ॥ ७ ॥ कमलमें घड़े हुए ही
जो इस दिखाई देनेवाले सारे विश्वका रच डालते हैं, वेदोंके
रहस्यका जाननेवालोंमें जो सबसे प्रधान हैं, जिनकी समाधि कभी
खिड़कत नहीं होती, जिनके मनके सङ्कल्प सदा सत्य होते हैं, ऐसे
पवित्र और विचित्र चरित्रवाले पृथ्वी हंसपर सवारी करनेवाले
ब्रह्माजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ८ ॥

सरस्वती : दसों दिशाओंमें जिसकी अङ्गरूपी लताएँ फैली
हैं, जिसने अपनी देहके उजलेपनसे दूधके समुद्रको भी नीचा
दिखा दिया है और जिसकी मन्द मुसकान देखकर शरदका
अन्धमा भी लजा जाता है, ऐसी हे कमलपर बैठी हुई अत्यन्त
सुन्दरी सरस्वती देवी ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ १ ॥ उस
सरस्वती देवीकी जय हो, जिसकी कृपासे पैनी समझवाले कवि
जो सारे संसारको ऐसी सरलतासे देख लेते हैं मानो वह

यन्प्रसादतः कवयः । पश्यन्ति सूत्रमतयः सा जयति सरस्वतीं देवी ॥ २ ॥ जलदुग्धनिर्णयविधां यस्यावा-
होऽपि विधुतो दत्तः । सा सदसस्त्रिविधकवागीशा-
स्तान्ममाद्य गतिः ॥ ३ ॥ ज्योतिस्तमोहरमलोचनगोचरं
तज्जिह्वादुगसदसं मधुनः प्रवाहम् । दूरे त्वचः पुलक-
यन्धि परं प्रपद्ये सारस्वतं किमपि कामदुघं रहस्यम् ॥ ४ ॥
तद्विषयमध्ययं धाम सारस्वतमुपास्महे । यः प्रसादात्प्र-
तीयन्ते मोहान्धतमसच्छुटाः ॥ ५ ॥ तमोगणविनाशिनी
सकलकालमुद्योतिनी धरातलविहारिणी जडसमाज-
विह्वेषिणी । कलानिधिसहायिनी लसदलोलसंवाहिनी
मदन्तरवलम्बिनी भवतु कार्पि कादम्बिनी ॥ ६ ॥ तव
करकमलस्थां स्फाटिकीमलमालां नखाकरलविभिन्नां
दाडिमीवीजयुद्धया । मतिकलमनुकर्ण्येन कीरो
निषिद्धः स भवतु मम भूयं वाणि ते मन्दहासः ॥ ७ ॥
धातुभ्रतुर्मुखीकरकटकाटकविहारिणीम् । निन्यं प्रग-

ल्भवाचालामुपतिष्ठे सरस्वतीम् ॥ ८ ॥ पातु वो निकप-
प्रावा मतिहेनः सरस्वती । प्राज्ञेतरपरिच्छेदं वचसैव
करोति या ॥ ९ ॥ यस्याः प्रसादविरहे मूकत्वं सर्वदा
स्फुटम् । तामेकां वागधिप्राज्ञां महादेवीमुपास्महे ॥ १० ॥
या कुन्देन्दुतुगारहारधवला या शुध्वक्तामृता या
वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना । या ब्रह्मा-
च्युतशङ्करभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता सा मां पातु सर-
स्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा ॥ ११ ॥ वचांसि वाच-
स्पतिमत्सरेण साराणि लब्धुं प्रहमण्डलीय । मुक्ताक्षसू-
त्रत्वमुपैति यस्याः सा सप्रसादास्तु सरस्वती वः ॥ १२ ॥
वीणावादनदम्भेन शास्त्रतत्त्वविकासिका । हंतासनमु-
पासीना वाग्देवी श्रेयसेऽस्तु नः ॥ १३ ॥ शरणं करवाणि
शर्मदं ते चरणं वाणि चराचरोऽर्जोऽयम् । कठणामखुरैः
कटाक्षपातैः कुक ममस्य कृतार्थसार्थवाहम् ॥ १४ ॥
शारदा शारदाम्भोजवदना वदनाम्बुजे । सर्वदा सर्वदा-

उनके हाथपर रक्सा हुआ धरें ॥ १ ॥ बाणीकी स्वामिनी वे
सरस्वती देवी आप मुझे शरण दें मां आपके धीर बुरेका भेद
करनेकी शक्ति देती हैं धीर जिनका वाहन इस भी जल धीर
दूधके घाँतकों अलग-अलग कर सकनेकी चतुराईके लिये संसारमें
प्रसिद्ध है ॥ २ ॥ सय इन्द्राओंकी पृथक् करनेवाली सरस्वतीजीकी
उस रहस्य-भरी शक्तिकी मैं शरण लेता हूँ जो अंधेरा मिटानेवाली
अकाशोप भरी अमकसे युक्त होनेपर भी नेत्रोंसे दिखाई नहीं
पड़ती, अमृतकी मीठी धारा होनेपर भी जीभ जिसका स्वाद नहीं
पा सकती और जो दूर रहने हुए भी शरीरमें रसास्वा उपभोग कर
देती है ॥ ३ ॥ सरस्वतीजीके उस देवी और कभी भी न बटनेवाले
नेत्रोंकी मैं उपासना करता हूँ जिसकी कृपासे मोह रूपी अने
अंधेरेकी कालिमाका नाश हो जाता है ॥ ४ ॥ अने अंधेरेकी
मिट्टा डालनेवाली, सदा उजाला करनी रहनेवाली, पृथ्वीपर घूमती
रहनेवाली, जहाँ (भूखी और प्राणहीन पत्थर आदि) से दूर
रहनेवाली, कलाकी सान, चन्द्रमा और विद्वानोंकी सहायता देने-
वाली और सदा चमकती रहनेवाली विजली (अमक) से सजी
कोई उजली अमकाली बदली (सरस्वतीजी) मेरे हृदयमें
आकर फैल जाय ॥ ५ ॥ हे सरस्वती देवी ! आपके कमल जैसे
सुन्दर हाथकी उँगलियोंके मन्त्रोंकी लाल छाया पड़नेसे जाल हो
उठनेवाली चिकनी स्फटिककी मालाकी अनारके दाने समझकर
उपर चंच मारनेके लिये उनावले तालोंकी आपने जिस मुस्कराहटसे
रंका, वह मन्द मुस्कान मेरी कल्याण करे ॥ ७ ॥ उन सरस्वती

देवीकी नमस्कार करना हूँ जो बोलनेमें सदा बहुत निडर और
चतुर हैं तथा जो ब्रह्माके बीराहेके समान चारों कण्ठोंमें सदा
घूमती रहती हैं ॥ ८ ॥ वे सरस्वती देवी आप लोगोंकी रक्षा
करें जो बुद्धि-रूपी संज्ञेके लिये कसीटी हैं और जो बचनेसे ही
विद्वानों और मूर्खोंकी सदा भेद पतती रहती हैं ॥ ९ ॥ मैं उन
सबसे बड़ी सरस्वती देवीकी उपासना करता हूँ जो बाणीकी
अकेली ही स्वामिनी हैं और जिनकी कृपा न मिलनेसे किसीकी
बोली ही नहीं सुल पा सकती ॥ १० ॥ कुन्दके फूल, चन्द्रमा, हिम
और मोतियोंकी मालाके समान उजली, उजले वस्त्र पहननेवाली,
सुन्दर लगनेवाली, उजले कमलपर बैठी हुई, सारी भूर्भुवःकी नभ
करनेवाली तथा ब्रह्मा, विष्णु और शङ्कर आदि देवताओंसे पूजी
जानेवाली सरस्वती देवी मेरी रक्षा करें ॥ ११ ॥ जिनके गलेमें
मोतियोंकी माला ऐसी शोभा दे रही है मानों बृहस्पतिसे ईर्ष्या
करके उनके समान बाणीका तत्त्व प्राप्त करनेके लिये सारी
ग्रह-मण्डली कण्ठसे आ चिपटी हों, वे सरस्वतीजी आप लोगोंपर
प्रसन्न हों ॥ १२ ॥ वे सरस्वती देवी हम लोगोंका कल्याण करें
जो इसके ऊपर बैठी हुई वीणा बजा-बजाकर उसके स्वरोंसे ही सब
शास्त्रोंके गुप्त भेद समझाती रहती हैं ॥ १३ ॥ हे सरस्वती देवी !
मैं आपके उन कल्याण करनेवाले चरणोंकी शरण लेता हूँ जिनके
सहारे सारा जड़ और चेतन संसार जीता है । हे माता ! आप मुझे
अपनी दया-मयी तिरछी चितवनसे देखकर ऐसा बना दें कि मेरे
मुँहसे निकली हुई बाणी सदा सफल होती रहे ॥ १४ ॥ अकोंकी

स्मार्क सन्निधि सन्निधि क्रियान् ॥ १५ ॥ सूत्रमाय शुचये
तस्मै नमो वाक्त्यनन्वते । विचित्रो यस्य विन्यासो
विद्यति जगत्पटम् ॥ १६ ॥ हंसासीना हसन्ती मृदुम-
धुरकला वादयन्ती स्वधीणां तत्त्वग्रामं समस्तं प्रकटमवि-
कलं सन्तयन्ती विकासम् । मुक्तामालां दद्याता गुणगण-
महिता स्तूयमाना सुन्द्रेयांतीशा सुप्रसन्ना निवसतु
वदनाम्भोरुहान्तः सदा मे ॥ १७ ॥

हरिहरी

अवलाक्यविग्रहधोरमर्चनतिरक्तमालयोपेतः । पञ्च-
क्रमोदितमुखः पायात्परमेष्ठरो मुहुरनादिः ॥ १ ॥ गयी-

तय कुछ देनेवाली और शरीरके कमलके समान सुन्दर मुखवाली।
सरस्वती देवी हम लोगोंके मुख्य-कृपा कमलमें रहकर सदा हमें
ज्ञानका भण्डार देना रहें ॥ १५ ॥ उन सरस्वती देवीकी प्रणाम ॥
जो सुन्दर बालिका रूप धारण करके ऐसे पवित्र और पनले नुरेके
समान सारे संसारमें फैली हैं जिनके विचित्र नाने-बानेसे ही
यह संसार-रूपी बन्ध बना हुआ है ॥ १६ ॥ हमपर बंदकर
हैंसती हुई, अपनी कामल और सरम रंगवाली वीणा बजाकर ही
सारे शास्त्रोंके तत्त्वको भली-भाँति प्रकट करती तथा उसे
और भी निवारती हुई, मोताकी माला धारण की हुई, उत्तम
गुणोंकी सहनासे बड़ी हुई महिमावाली तथा इन्द्र आदि देवताओंसे
स्तुति की जाती हुई, शर्वाकोंकी स्वामिनी (सरस्वतीजी) अति
प्रसन्न होकर सदा मेरे मुख-कमलमें निवास करें ॥ १७ ॥

विष्णु और शिव

गितनीमें पाँच भूँहवाले (पञ्चक्रमोदितमुखः), अचमाला
धारण किए हुए (अचमालयोपेतः), देवताओंसे प्रणाम किए
जाते हुए (अमर्त्यनतिः) तथा आधे भागमें विराजमान स्त्री-
रूपसे सुशोभित देहवाले (अवलाक्यविग्रहध्रीः) अजन्मा
भगवान् अर्चनाशील सदा ही रक्षा करें तथा इन विशेषणोंमेंसे
पहला अक्षर निकाल देनेपर शक्तिकी अधिकतासे सुन्दर देहवाले
(वलाक्यविग्रहध्रीः), मनुष्योंसे प्रणाम किए जानेवाले
(अमर्त्यनतिः), चमाके भण्डारसे युक्त (चमालयोपेतः) भगवान्
विष्णु सदा ही रक्षा करें जिनका सुँह चक्र धारण करते ही
प्रसन्न हो उठता है (पञ्चमोदितमुखः) ॥ १ ॥ गौधोंके
स्वामी नन्दीकी सवारीवाले (गवीरुपग्रः), हिमालयकी पुत्री
पार्वतीके कट दूर करनेवाले (नगजान्तिहारी), कालिकेयके
पिता (कुमारनातः), चन्द्रमाकी कला सिरपर धारण
करनेवाले (शशिखण्डमौलिः), लङ्काके अधिपति रावण-द्वारा

शपथी नगजान्तिहारी कुमारनातः शशिखण्डमौलिः ।
लङ्केशसम्पूजितपादपद्मः पायादनादिः परमेष्ठरो यः ॥ २ ॥
गाह्यामुनयोगेन तुल्यं हारिहरं वपुः । पातु नाभिगतं
पद्मं यस्य तन्मध्यगं यथा ॥ ३ ॥ जाद्वी सृष्टिं पादे वा
कालः कण्ठे वपुष्यधः । कामारि कामनां वा कर्त्तुं देव्यं
भजामहे ॥ ४ ॥ पद्मधारिण्यग्रे गह्वरमालजिनोः क-
दोऽग्रभुजः । शशिखण्डशेखर उमापरिग्रहो मुहुरनादि-
वतु त्वाम् ॥ ५ ॥ पायात्कुमारजनकाख्य उमाचिलासः
शङ्खप्रभश्च निधनं शर्माशयानः गङ्गाञ्च पद्मधारश्च
पिनाकसक्त आद्याक्षेण सहितो रहितोऽथवा

पूजित चरण-कमलोंवाले (लङ्केशसम्पूजितपादपद्मः), अजन्मा
भगवान् (शिव) आपकी रक्षा करें तथा इन विशेषणोंमेंसे प्रथम
अक्षर निकाल देनेपर पतिव्रतोंके स्वामी गणेशकी सवारीवाले
(वि+ईशपद्मः), गङ्गाका पाँदा दूर करनेवाले (नगजान्तिहारी),
कामदेव (प्रभु) के पिता (मारनातः), सिरपर मांसपट्ट
धारण करनेवाले (शशिखण्डमौलिः) तथा गङ्गा और शिवसे
पूजित शरणाकमलोंवाले (क+ईशमपूजितपादपद्मः), भगवान्
(विष्णु) आपकी रक्षा करें ॥ २ ॥ गङ्गा और यमुनाके सहस्रके
समान जान पड़नेवाले विष्णु और शिवके श्याम और धेनु
रङ्गवाले मिले हुए शरीरकी नाभिसे निकला हुआ वह कमल रक्षा
करे जो ऐसा जान पड़ता है मानो गङ्गा और यमुनाके सहस्रमें
उत्पन्न हुआ हो ॥ ३ ॥ गङ्गा जिनके मन्त्र या चरणसे
निकली है, काल जिनके गले या शरीरमें है, ऐसे किसी देव—
कामके शत्रु (शिव) या पिता (विष्णु) की हम स्तुति करने हैं ॥ ४ ॥
हाथके आंगके भागमें नाग लपेटे हुए, गङ्गा और पार्वतीसे
संयुक्त, यौहमें सर्पका भुजबन्ध पहने हुए, देवी चन्द्रमा सिरपर
धारण किए हुए तथा आधे शरीरमें पार्वतीजीके रूपवाले अजन्मा
भगवान् शिव सदा नुहारी रक्षा करें तथा इन विशेषणोंमेंसे
पहला अक्षर निकाल देनेपर गौवर्धन पर्वतकी हाथकी
उँगलीमें उठाए हुए, गौ तथा लक्ष्मीसे संयुक्त, श्रेष्ठ हाथमें
गदा धारण किए हुए, मांसमुकुट पहने हुए तथा लक्ष्मी जैसी
पत्नीवाले (भगवान् विष्णु) आपकी सदा रक्षा करें ॥ ५ ॥
स्वामी कालिकेयके पिता, पार्वतीके साथ विलास करनेवाले, शङ्खके
समान शुभ्र, काल और बैलपर सवारी करनेवाले, गङ्गा तथा साँप
धारण करनेवाले और पिनाक धनुषमें रुचि रखनेवाले भगवान्
शिव आपकी रक्षा करें तथा इन विशेषणोंमेंसे प्रथम अक्षर निकाल
देनेपर कामके पिता, लक्ष्मीके साथ विलास करनेवाले, आकाशके

त्वाम् ॥ ६ ॥ यस्मादासीत्कुमारः कुचलयदलवज्जीलयो-
वाह गङ्गां वामा यस्याङ्गलङ्गा पिहितजनचयो यो-गर्वीश-
ध्वजोऽपि । लङ्केशाद्येकनाथो हिमकररुचिभृद्भृद्विशेषाश-
योऽसौ वर्णस्याद्यस्य लोपादपहरतु हरिः पातकं वः स्म-
रारिः ॥ ७ ॥ यो तं शङ्खकपालभूषितकरं मालास्थिमा-
लाधरं देयं द्वारवतीशमशाननिलयं नामारिगोवाहनं ।
द्विष्यतां यत्तिदत्तयज्ञमधनं श्रीशैलजावल्लभां पापं
घो हरतां सदा हरिदरं श्रीयन्सगङ्गाधरं ॥ ८ ॥
लोलं ब्रूहि कपालकामिनि पिना कस्ते पनिः पाधसां कः
प्रत्येति जलादपन्यजननं प्रत्येति यः प्रस्तराम् । इत्थं
पर्वतसिन्धुराजसुनयोराकार्यं वाक्चानुरां संस्मेरस्य
हरेर्हरस्य च मुदो निघ्नन्तु विघ्नं तु वः ॥ ९ ॥ श्यामिष्ठा
भवलिष्ठा च यमुनाजगद्धीप्रभाम् । तीर्थराजचन्द्रव्यां

दधती कापि देवता ॥ १० ॥ सम्प्राप्तं मकरध्वजेन मयनं
त्वसो मदर्थं पुरा तद्युक्तं बहुमार्गगां मम पुरो निर्लज्ज
बोदुस्तव । तामेवानुनयस्व-भावकुटिलां हे कृष्ण कण्ठ-
ग्रहं मुञ्चेत्याह रुग्ण यमद्वितनया लक्ष्मीश्च पाथान्स
वः ॥ ११ ॥ स्फटिकमरकनश्रीहारिणोः प्रीतियोगासद-
वन्त वपुर्देवं कामकंसद्विषोर्धः । भवन्ति गिरिसुतायाः
सार्धमभोधिपुत्र्या सदृशमहसि कण्ठे यत्र सीमावि-
वादः ॥ १२ ॥

विष्णुः

अनिकरुणं निजशरणां प्रार्थयमानं निरस्तहृन्मानम् ।
स्मावन्ति बाहोपेलायानो यः श्रेयसे स हरिः ॥ १ ॥
अनिविपुलं कुचयुगलं रहासि करैरामृशम्मुकुलदध्याः ।
तदपहन्ति निजहृदयं जयन्ति हरिर्मुगयमाण इव ॥ २ ॥

समान आभावाले, ऐश्वर्यके स्वामी, गरुड़की सवारीवाले, पृथ्वी
एवं गोवर्धन पर्वत धारण करनेवाले तथा वैकुण्ठ-निवासी भगवान्
विष्णु आपकी रक्षा करें ॥ ६ ॥ स्वामी कामिकेयके पिता, गङ्गाको
कमलकी पैलुईकी भौति महत्ता में धारण किए हुए, शरीरके
बाएँ भागमें हाँ पर्वतोंको रखनेवाले, प्रलय-कालमें जन-समुद्रका
नारा कर देनेवाले, नन्दीके चिह्नकी पनाकावाले, रामचन्द्रके
एकमात्र स्वामी, चन्द्रमाकी काम्निवाले तथा पृथ्वीके एक विशेष
भाग (किताब) में रहनेवाले वे कामके शत्रु शिवजी आपके बाएँका
हरण करें तथा इन विशेषताओंमें प्रथम अक्षर निकाल देनेपर
कामदेवके पिता, पृथ्वीको कमलकी पैलुईकी भौति मरुतनामे ले
जानेवाले, सदा लक्ष्मीको साथ रखनेवाले, सब प्राणिनोंका
उपकार करनेवाले, गरुड़के चिह्न पनाकावाले, प्रजा और
शिवके एकमात्र स्वामी, मकरकुंडलमे युगंभिन तथा गरुड़की
सवारी एवं शेफनागकी शैयावाले विष्णु भगवान् आपके पाप
नष्ट करें ॥ ७ ॥ क्रमशः शङ्ख और त्र्यम्बके शोभित हाथोंवाले,
फूलों और मुण्डोंकी माला धारण करनेवाले, द्वारकापुरी और
रमशानमें रहनेवाले, गरुड़ और नन्दीको सवारीवाले, हाँ और
नील भेषवाले, यन्त्र और द्रवके यज्ञकी नष्ट-श्रेष्ठ करनेवाले,
लक्ष्मी और पार्वतीको प्रिय लगनेवाले तथा श्रावस्म (चरण-
चिह्न) और गङ्गाको धारण करनेवाले दोनों देव आपके पाप
हरें ॥ ८ ॥ पार्वतीजीने लक्ष्मीजीको सम्बोधित करके कहा—
चञ्चल ! कुछ बनाओ ना ! लक्ष्मीजी बोली—कहाँ श्रीवृद्धी
पत्नी ! पार्वतीजी बोली—तुम्हारे पिता कौन हैं ? लक्ष्मीजी
बोली—मेरे पिता समुद्र हैं । पार्वतीजी बोली—भला समुद्रसे

सन्मान उत्पन्न होनेकी बातपर कौन विश्वास करेगा ? लक्ष्मीजी
बोली—वहाँ जो पत्थरमे सम्मान उत्पन्न होनेपर विश्वास कर
सकता है । इस प्रकार पर्वतराज हिमालय और सिन्धुराज
और समुद्रकी कन्याओंकी वचन-चानुरी सुनकर मुस्कराते हुए शिव
और विष्णुको प्रसन्नता आपके विपत्ति दूर करे ॥ ९ ॥ कोई देवता
अपने नीलेपन और उज्जलेपनमे तीर्थराज प्रयागकी भौति गङ्गा
और यमुनाके मध्यकी शोभा धारण कर रहा है ॥ १० ॥
मुझे ही पानेके लिये तुमने कामदेवको नष्ट किया या समुद्रको
तथा और अब उम कुमारी या अनेक मांगोंसे चलनेवाली कुप्ता
या गङ्गाकी मिरपर प्रदाने मुझे लगता नहीं आती ! अतः अब
हे कृष्ण या नीलकण्ठ ! उमा दुः स्वभाववाली या स्वभावसे
हाँ देवी चलनेवाली कुप्ता या गङ्गाको हाँ जाकर मनाओ, मेरा
गला छाँटा, इस प्रकार क्रोधपूर्वक लक्ष्मी या पार्वतीने जिनसे
वे जानें कहीं वे आपके रक्षा करें ॥ ११ ॥ स्फटिक और
नीलमणिकी-सी काम्निवाले तथा कंस और कामदेवके शत्रु विष्णु
और शिवका अत्यन्त प्रेमके कारण वह मिला हुआ एक ही शरीर
आपकी रक्षा करे जिसके एक-सी काम्निवाले गलेकी सीमाके
विषयमें पार्वतीके साथ लक्ष्मीका यह विवाद होने लगा कि
यहाँमे शिवका गला है या यहाँमे विष्णुका ॥ १२ ॥

विष्णु

जिन विष्णु भगवान्ने शीघ्रताके कारण सवारीकी भी
निरस्कार करके अपनी शरणा में आकर प्रार्थना करते हुए अत्यन्त
दयनीय तथा अभिमानरहित गजेन्द्रकी मङ्गे पैर दौड़कर रक्षा
की थी, उनको जय हो ॥ १ ॥ उन विष्णु भगवान्की जय हो जो

अनाहतचर्मपतिप्रहितहस्तमस्वीकृतप्रणीतमणिपादुकं
किमिति विस्मितान्तःपुरम् । अवाहनपरिष्कृतं पतन-
राजमारोहतः करिप्रवरवृंहिते भगवतस्त्वरार्ये नमः ॥३॥
आकर्ण्य मुरजिन्मुखेन्दुमधुरोन्मीलन्मरुन्माधुरीधीरोदा-
समतोहरः सुखयतु त्वां पाञ्चजन्यध्वनिः । लीलालङ्घि-
तमेघनादविभयो यः कुम्भकर्णव्यधादायी दानयदन्तिनां
दशमुखं दिक्चक्रमाक्रामति ॥४॥ आदिमध्यान्तरहितं
दशाक्षीनं पुरातनम् । अद्वितीयमहं चन्द्रे महत्त्वसदृशं
हरिम् ॥५॥ आश्रित्य नूतनमृतचूतयः पदं ते देहचयो-
पनतद्विषयपदाभिमुख्याः । लावण्यपुण्यनिचयं सुहृदि
त्वदाख्ये विन्यस्य यान्ति मिहिरं प्रतिमासभिन्नाः ॥६॥
उद्धाट्य योगकलया हृदयाञ्जकोशं धन्यैश्चिरादपि
यथाकृच्छि गृह्यमाणः । यः प्रस्फुरन्त्यधिरतं परिपूर्णरूपः
ध्रुवः स मे दिशतु शाश्वतिकं मुकुन्दः ॥७॥ एकस्थं जीवि-

तेशे त्वयि सकलजगन्सारमालोकयामः श्यामे चक्षुस्त-
वास्मिन्वपुषि निविशते नालपपुख्यस्य दुःसः । कस्यान्य-
त्रामृतेऽस्मिन्नतिगतिविपुला दृष्टिरेवामृतं ते दैन्यैरित्यु-
च्यमानो मुनिभिर्गपि हरिः खैणुरूपोऽचताद्वः ॥ ८ ॥
कचकुचचिबुकाग्रं पालिपु व्यापृतेषु प्रथमजलाधिपञ्ची-
सङ्गमेऽनङ्गधाम्नि । अधितनिविडनीवीथन्धनिमोचनार्थं
चतुरधिककणशः पातु यश्चक्रपालिः ॥ ९ ॥ कमलाकु-
षकनकाचलजलधग्माभीरुमुन्दरीमदनम् । अधित-
तशेषफणावलि-कमलवनभृङ्गमच्युतं चन्द्रे ॥ १० ॥
किञ्चिन्निर्मुच्यमाने गगन इय मुने शाल्यनिद्रापयो-
दैर्न्यकुर्वाणं स्वभासा कलिपनिशिरसां रत्नदीपांशुजा-
लम् । पायास्तां यो मुरारिः शाशितपनमये लोचने
यद्विभासा लक्ष्म्या हस्तस्थमर्धं धिक्कसति कमलस्यार्ध-
मभ्येति निद्राम् ॥ ११ ॥ कलिचलाङ्गुलिर्लम्भतलक्ष्मी-

लक्ष्मीजीके बिराल स्तनपर धार-धार अपने हाथ फेरते हुए ऐसे
जान पड़ते थे मानो अपना लोथः हुआ हृदय रूँद रहे हों ॥९॥
सङ्कटमें पड़े हुए राजेन्द्रके लिये गरुड़की गर्जना पीठपर बैठते हुए
भगवान् विष्णुकी उस रीघ्रताकी जय हो जिसमें उन्होंने सहारेके
लिये बड़ाए हुए सेनापतिके हाथका अनादर कर दिया तथा
पैरोंमें पहनाई जानी हुई मणियोंकी पादुकाओंको भी दुकरा दिया
जिससे अन्तःपुरकी स्त्रियों 'क्या हों गया ! क्या हो गया !' कह-
कर आश्चर्य करने लगीं ॥१॥ मुर राक्षसको मारनेवाले भगवान्
विष्णुके सुग-चन्द्रकी हल्की-सी कूँकसे यजे हुए उनके पाञ्चजन्य
शाङ्खी वह घोर, गम्भीर ध्वनि आपको प्रलयकालतक सुख
पहुँचाती रहे जिसके आगे अनायास ही बादलोंकी गड़गड़ाहट
मन्द पड़ गई तथा जो राक्षसोंके हाथियोंके कान फोड़ती
हुई दसों दिशाओंके छोरोंतक जा फैली ॥ ४ ॥ मैं उन विष्णु
भगवान्को प्रणाम करता हूँ जो मेरे अत्यन्त पुराने वस्त्रके समान
म जाने कबसे हैं और कबतक रहेंगे, जो सदा एकमे रहते हैं
तथा जो अपने वस्त्रके एक अकेले ही हैं ॥ ५ ॥ भगवद्भक्त जब
शरीरका अन्त करने लगते हैं तो वे अपने सब सुकृत अपने
मित्रोंको बँटकर ही सूर्य-मण्डलको जाते हैं । इस भुनि-प्रसिद्ध
विषयको लेकर यह भूक्ति भी है—हे भगवन् ! प्रत्येक मासके
सब भित्त-भिन्न चन्द्रमा, मोक्ष पानेकी अभिलाषाले मृत्युके समय
अपनी देह चीँट करके आपके चरण (आकाश) का सहारा लेकर
जाते समय अपना सौन्दर्यरूपी सुकृत अपने मित्र आपके मुखको
सम्पत्ति करके अभावस्थाको सूर्य-मण्डलमें धके जाते हैं ॥ ६ ॥

वड़े भक्तवान् योगी लोग योगसाधनसे अपने हृदयका कमल
विराल स्तन भगवान्को अपनी-अपनी रुचिके अनुसार उसमें
बैठाते हैं और जो सदा उनके हृदयमें अपने पूर्ण रूपसे बिराज-
मान रहते हैं वे मुकुन्द भगवान् मुझे ऐसा पेश्य दें जो कभी
नष्ट न हो ॥७॥ सोहिनी रूप धारण किए हुए वे विष्णु भगवान्
आपकी रक्षा करें जिनसे ईश्वर तथा मुनि भी मोहमें पड़कर ऐसा
कहने लगें कि 'हे जीवतकी स्वामिनी ! सारे संसारका सार हम
आपमें ही एकत्र दुआ देवते हैं, हे श्याम रंगवाली ! इस कम
पुण्यवाले पुरुषकी ओर आपकी दृष्टि नहीं पड़ती किन्तु अब कहीं
दूसरे स्थानपर अमृत आदिमें किसीकी रुचि नहीं रह गई है क्योंकि
आपकी दृष्टि ही तो अमृत है ॥८॥ समुद्रकी कन्या लक्ष्मीजीके
प्रथम संयोगके समय कामकी अधिकता होनेपर लक्ष्मीजीके केश,
दोनों स्तनोंके अग्रभाग और ठोड़ोंमें अब विष्णुजीके चारों हाथ
उलझ गए उस समय अत्यन्त कसकर बाँधी हुई साड़ीकी गाँठ
खोलनेके लिये जिनके मनमें दो और हाथ प्राप्त करनेकी लालसा
हुई वे विष्णु भगवान् आपकी रक्षा करें ॥ ९ ॥ उन विष्णु
भगवान्को प्रणाम करता हूँ जो लक्ष्मीजीके स्तन-रूपी सुमेह
पर्वतके लिये मेघ हैं, गोपिकाओंके लिये कामदेव हैं तथा शर्या
बने हुए शेषजीके फणरूपी कमलवनके लिये भीरे हैं ॥ १० ॥
धृष्टिके प्रारम्भमें शेषशर्यापर सोए हुए भगवान् विष्णुके
आकाशरूपी मुँहसे जब बादलरूपी योगनिद्राकी जड़ता कुछ दूर
हुई उस समयके उनके सूर्य और चन्द्रमारूपी वे दोनों नेत्र
आपकी रक्षा करें जिनके प्रकाशसे शेषके फणोंमें स्थित

नाभिर्मुखद्विषधरः । स जयति येन कृता श्रीरनुरूपा
पद्मनाभस्य ॥१२॥ चक्र ब्रूहि विभो गदे जय हरे कम्बो
समाश्रय भो भो नन्दक जीव पन्नगरिपो किं नाथ
भिन्नो मया । को दैत्यः कनमो हिरण्यकशिपुः सत्यं
भवद्भयः शपे केनास्त्रेण नखैरिति प्रवदतो विष्णोर्मुखं
पातु वः ॥ १३ ॥ चत्वारः प्रथयन्तु विद्रुमस्तारक्तः कु-
लिश्रेणयः श्रेयः शोणसरोजकोरकरचस्ते शार्ङ्गिणः
पाणयः । भालेष्वज्जम्बुवो लिखन्ति युगपते पुण्यवर्णा-
वलीः कस्तूरीमकरीः पयोधरयुगे गण्डद्वये च श्रियः
॥ १४ ॥ जयति स नाभिर्जगतां स्वनाभिरन्ध्रोद्भव-
जगद्बीजः । दामोदरो निजोदरगङ्गनिर्घिणजग-
दण्डः ॥ १५ ॥ जयति स भगवान् कृष्णः शेते यः शेष-
भोगशय्यायाम् । मध्ये पयः पयोधेरपर इवाम्भोनिधिः

कृष्णः ॥१६॥ जयन्त्युपेन्द्रः स चकार दूरतो विभित्तया
यः क्षणलब्धसद्वयः । दशैव कोपाकृत्या रिपोरः
स्वयं भयाद्भिन्नमिवास्त्रपाटलम् ॥१७॥ जीयादम्बुधित-
नयाधररसमास्वादयन्मुरारिरयम् । अम्बुधिमथनक्रेशं
कलयन्विकलञ्च सफलञ्च ॥ १८ ॥ तापत्रयापधरस्य
तव स्मितस्य निःश्वासमन्दमरुता निवृत्तीकृतस्य । एते
कडङ्करचया इव विप्रकीर्णा जैवात्कस्य किरणा जगति
भ्रमन्ति ॥ १९ ॥ त्वद्वक्त्रसाम्यमयम्बुजकोशमुद्राभ-
ङ्गासतत्सुपममित्रकरोपकृप्या । लब्ध्वापि पर्वशि
विधुः कमहीयमानः शंसत्यनीत्युपधितां श्रियमाशुना-
शाम् ॥ २० ॥ दृक्पातः कमलासनेऽस्तु भवतो हानं
मनाश्रुते श्रीकण्ठोऽयमितः सुरानिति नतांस्ताव्येषु
विज्ञापितः । प्रेयस्याः क्व तदासनं क्व च दत्तं

मणियोंकी कान्ति भी मलिन हो गई थीर लक्ष्मीजीके हाथका
कमल आधा खिलने और आधा लुप्त हो गया ॥ ११ ॥ खेल-
खेलमें अपने पैरकी चञ्चल उँगलियोंसे लक्ष्मीजीकी नाभि
गुदगुदाते हुए विष्णु भगवान्के उस चरणकी जय हो जिसके
कारण भोई देरके लिये लक्ष्मीजी भी नाभिमें कमल उगाए
हुए विष्णुके समान जान पड़ने लगी ॥ १२ ॥ हिरण्यकशिपुको
मारनेके पश्चात् आवेशमें भरे हुए विष्णु भगवान् अपने पार्षदाँके
पास पहुँचे और एकएक उन्होंने चक्रसे आवेशमें कहा—भरे चक्र,
बोल ! चक्र—(ध्वराकर) प्रभो ! विष्णु—भरे गदा ! गदा—
(ध्वराकर) हरिकी जय हो ! विष्णु—भरे कन्धु (शङ्ख) !
कन्धु—(मल्लनापूर्वक) आशा दीजिए ! विष्णु—भरे, भरे
मन्दक ! मन्दक—(डरकर) महाराज ! विष्णु—भरे गरुड !
गरुड—(उत्सुकतासे) क्या नाथ ! विष्णु—मैंने फाड़ डाला ।
गरुड—(आचरजसे) किसे ? विष्णु—दैत्यको ! गरुड—
(कुतूहलसे) किस दैत्यको ? विष्णु—हिरण्यकशिपुको । गरुड—
(प्रसन्नतासे) क्या सच ? विष्णु—तुम लोगोंकी सौगन्ध !
गरुड—कैसे ? विष्णु—(भयङ्कर नख दिमाने हुए) भरे इन
नखोंसे । इस प्रकार आवेशमें भरकर यानचीन करने हुए विष्णु
भगवान्का तप्तमाता हुआ मुख आपकी रक्षा करे ॥ १३ ॥
विष्णु भगवान्के वे चारों भूँगकी लताके समान लाल-लाल
उँगलियोंवाले और लाल कमलकी कलियोंके समान कान्तिवाले
हाथ (ऐश्वर्य) दें जो एक साथ ही वक्त्रके माथेपर पवित्र अक्षर
लिखते हैं तथा लक्ष्मीजीके दोनों स्तनों और दोनों कपोलोंपर
कस्तूरीसे चित्रकारी भी करते हैं ॥ १४ ॥ सारे संसारके नाभिरूप

उन विष्णु भगवान्की जय हो जिन्होंने सारे संसारके बीज
(रचनेवाले) वक्त्रको अपने नाभिसे निकले हुए कमलसे उत्पन्न
किया और जो उस सारे संसारके आधार-दण्डके समान
कमलकी नाभको अपने पैरमें घिपाए हुए हैं ॥ १५ ॥ नीले रङ्गवाले
उन भगवान् विष्णुकी जय हो जो दूधके समुद्रमें शेषकी
शय्यापर सोए हुए ऐसे जान पड़ते हैं मानो दूधके समुद्रपर नीले
रङ्गका कोई दूसरा पानीका समुद्र हो ॥ १६ ॥ उन नृसिंह-वेध-
धारी भगवान् विष्णुकी जय हो जिन्होंने फाड़ डालनेकी इच्छासे
जब क्रोधपूर्वक अपने लाल-लाल नेत्रोंसे दूरसे देख-भर दिया
कि शत्रु (हिरण्यकशिपु) का हृदय उनके भारे अपने आप
फटकर रक्तसे लाल हो गया ॥ १७ ॥ उन भगवान् मुरारिकी जय
हो जो समुद्रकी पुत्री लक्ष्मीजीके अक्षर-रसका स्वाद लेते हुए ऐसे
जान पड़ते हैं मानो समुद्र मथनेकी दफावट या तो दूर कर
रहे हों या सफल कर रहे हों ॥ १८ ॥ हे विष्णु ! चन्द्रमाकी ये
फीली हुई किरणों ऐसी जान पड़ती हैं मानो तीनों प्रकारके
दुःखोंका नाश करनेवाली आपकी मुस्कान आपकी ही सौंसके
हल्के पवनसे फैलकर कडङ्कर सुरासी फैली हो ॥ १९ ॥ हे
विष्णु ! यद्यपि कमलके मुकुलित (बन्द) कोश (भवदार)
खोलकर उनकी सुन्दरता हर ले जानेवाली सूर्य-किरणों पाकर
यह चन्द्रमा इनका अधिक सुन्दर हो गया कि पूर्णिमाको आपके
झुँझकी ही समता करने लगा तथापि पूर्णिमाके पश्चात् खीण
होता हुआ वह मानो यह बतलाता है कि अन्यायसे कमाई हुई
सम्पत्ति बहुत दिन टिकती नहीं ॥ २० ॥ योगनिद्रासे जब
भगवान् जागे तब आसपास खड़े हुए देवताओंका परिचय

कण्ठः क सेन्युत्तसङ्गस्यावासितमानसो विजयते
सुप्तप्रबुद्धो हरिः ॥ २१ ॥ नक्तग्रस्तपदं समुद्धृत-
करं ब्रह्मादयो भो सुरा रत्नन्तामिति दीनथाक्यकरिणं
देवेन्द्रशक्तेषु यः । मा भैषीरिति तस्य नक्तहनने चक्रा-
युधः श्रोधरो विश्वत्राणपरायणो विजयते नाथः स
नारायणः ॥ २२ ॥ नमस्त्रिभुवनोत्पत्तिस्थितिसंहारदे-
तवे । विश्वेष्वेऽपारसंसारपारोत्तरणसेतवे ॥ २३ ॥ नाथ
ऋद्धिघ्नखधावनतोयलग्नास्तत्कान्तिलेशकणिका ज-
लधिं प्रविष्टाः । ता एव तस्य मधनेन घनीभवन्त्यो
नूनं समुद्रनवनीतपदं प्रपन्ताः ॥ २४ ॥ नाभीपद्मवसन्-
तुमुञ्जमुखाद्गीतस्तवाकर्णनप्रोन्मीलत्कमनीयलाञ्छनकला-
खल्लमुखन्दुघातिः सकोपं मधुकंटभा सकदणस्नहं सुता-

मम्बुधेः सौत्रासप्रणयं सरोजयसनि पश्यन्हरिः पानु
वः ॥ २५ ॥ नामैव मे वरद चाञ्छितदातृभावं व्याख्या-
स्यतो न वहने वरदानमुद्राम् । विश्वप्रसिद्धतरविप्रकुल-
प्रस्तुतेयज्ञोपवीतवहनं हि न खल्वपेक्ष्यम् ॥ २६ ॥ निमग्नेन
मयाभसि स्मरभरादालिः समालिङ्गिता केनालीकमिदं
तवाय कथितं राधे मुधा ताम्यासि । इत्युत्स्यप्रपरभ-
रासु शयने श्रुत्वा वचः शार्ङ्गिणः सव्याजं शिथिलीकृतः
कमलया कण्ठग्रहः पानु यः ॥ २७ ॥ निष्पन्न्यूहमुपास्महे
भगवतः कामादकोलचमणः कामप्रतिचकोरपारणपटु
ज्योतिष्मतां लोचनं । याभ्यामर्धविबाधमुग्धमधुरश्रीर-
र्धनिद्रायितो नाभीपल्लवपुण्डरीकमुकुलः कम्पाः सप-
त्नीकृता ॥ २८ ॥ पद्मापयाधरतटीपरिरम्भलम्पकाश्री-

देव हुए गरुडजाने उनसे कहा—‘ये कमलपर बैठे महाराजों हैं,
हमपर आपका कृपादर्श है, ये पवनदेव हैं, इन्हें आप पहाड़ों,
ये आशिर्वाजों हैं तथा ये प्रणाम करते हुए सब देवता खड़े हुए
हैं।’ पर अपनी प्रियतमा आलक्ष्मीजाका न देखकर जो यह कहत
हुए चिन्ता प्रकट कर रहे हैं ‘आलक्ष्मीजा कहाँ बैठे हैं, उनका
बालों भाँ गहा सुनहरे पड़ती, न उनका कण्ठ है दिशाई पड़ता’
उन परम सुन्दर आलक्ष्मीजामें हैं जिनका चित्त बसा है उन
विष्णु भगवान्का जप है ॥ २१ ॥ मगरसे पैर पकड़ लिए जानेपर
अपना धैर्य ऊपर उठाकर कातर बायाँसे ‘हे महारा आदि
देवताओं ! बचाइये, बचाइये !’ पुकारनेवाले गजराजका जब
काई भाँ देवता न बचा सका तब ‘मत डरो, मत डरो,’ कहते
हुए उस मगरका मारनेके लिये हाथमें चक्र लेकर दौड़नेवाले
तथा इसा प्रकार लक्ष्मीसे युक्त हाँकर सारे संसारकी रक्षा
करनेवाले नारायण भगवान्का जप है ॥ २२ ॥ तानों लोकोंको
उत्पन्न करने तथा उनका पावन और आश करनेवाले उन
भगवान् विष्णुका प्रणाम है जो इस संसाररूपी अपार समुद्रसे
पार जानेके लिये माना पुल है ॥ २३ ॥ हे स्वामी ! आपके
पैर पाते समय आपके नखोंमें लगी जलकी धुँइयोंके साथ पुलकर
जा उन नखोंका कान्ति (सुन्दरता) का नन्हा-सा कण समुद्रमें
पला गया था वही मत्ते जानेपर सिमटकर मन्थनके रूपमें (लक्ष्मी
बनकर) निकल आया है ॥ २४ ॥ नाभिले निकले हुए कमलपर
बैठे महाराजोंके चारों ओरोंसे गाई हुई स्तुति सुनकर सुन्दर
शेखरी कोर कुछ खुलनेसे लिले हुए उजले चन्द्रमाके समान
सुन्दर सुँहवाले वे विष्णु भगवान् आपकी रक्षा करें’ जिन्होंने
मधु और कैटभ राजाओंको क्रोधसे, समुद्रकी कम्पा आलक्ष्मीजीको

अन्यस्त देवा और सेहसे और कमलपर बैठे महाराजोंको म्वाँय-
भर प्रेमसे देखा ॥ २५ ॥ हे वरदान देनेवाले ! तुम्हारा नाम है
वह यत्नाता ॥ कि तुम बाँहा हुई वस्तु देनेवाले हो इसलिये
तुम दूसरे देवताओंके समान अपनेको वरदान देनेवाला सिद्ध
करनेके लिये कोई विशेष चिह्न नहीं रखते क्योंकि जो संसारमें
प्रसिद्ध माह्यण-कुलमें उत्पन्न हुआ है उसे अपनेको माह्यण
बसानेके लिये यज्ञपथात पहननेका आवश्यकता नहीं है। तो
॥ २६ ॥ ‘हे राधे ! पानोंमें दुधकी लगाकर मैंने कामस्तक हाँकर
तुम्हारा सलोकालिङ्गन किया है, यह कूड़ा बात तुमसे किसने
कही ! तुम क्यों म्वाँय हो काँधित हो रही हो ?’ यह बात
अपने पास सोए हुए विष्णुजाका नईदमें जो लक्ष्मीजाने सुना तो
उन्होंने रुठकर विष्णुजाके गलेमें कसकर लिपटे हुए अपने
हाथ शिथिल कर दिए । उनका वह रुठकर हाथ शिथिल
कर देना आपका कल्याण करे ॥ २७ ॥ कामोदकी नामकी
गदा धारण करनेवाले विष्णुके नृत्य और चन्द्रमय उन दोनों
नेत्रोंकी हम उपासना करते हैं जिनमेंसे एक सूर्यवाला नेत्र
खुलनेपर तो अकाल-चक्रोंमें प्रेम उत्पन्न होता है, चन्द्र-
वाला नेत्र खुल जानेपर चक्रों आनन्दसे भोजन करनेको दौड़ता
है और दोनोंके खुले रहनेपर उनके नाभिरूपी सरोवरमें उगा
हुआ कमल आधा खिलनेसे अत्यन्त सुन्दर और आधा सुँदा
होनेसे उनके कान्तु नामके शङ्खकी धरावरी करता-सा जान पड़ता
है ॥ २८ ॥ मधुसूदन भगवान्का वह बड़ा स्थल आपकी हृदयों
पूरा करे जो आलक्ष्मीजीके स्तनोंका आलिङ्गन करनेसे उनमें
लगे हुए कस्त्रोंके छेपसे रेंग गया है और जो रतिके परिश्रमके
कारण पसीनेकी धुँइ निकल आनेसे ऐसा जान पड़ता है

रमुद्रितमुरो मधुसूदनस्य । व्यक्तानुरागमिय खेलदन-
 ङ्गखेदसंवेदाभ्युपमनुपूरयतु प्रियं वः ॥ २६ ॥ पर्यङ्गीकृ-
 तनागनायकफणाश्रणीमणीनां गणे संक्रान्तप्रतिविम्ब-
 संयलनया विश्रद्धपुर्विक्रियाम् । पादाम्भोरुद्धधारिचा-
 रिधिसुतामङ्गणां दिदृक्षुः शतैः कायव्यूहमिवाच-
 रन्तुपांचनाकृतो हरिः पातु वः ॥ ३० ॥ पाथोधेः
 परिमथ्यमानसलिलादद्वास्थितायाः श्रियः सानन्वो-
 ज्जसितभ्रूया कुटिलया दृष्टयैव पीताननः । अज्ञा-
 तस्वफरद्वयीविगलितव्यालोलमन्थोरगशून्ये थादुग-
 तामतानि रचयन्नारायणः पातु वः ॥ ३१ ॥ प्रतिविम्ब-
 ताप्रयातनु सकांस्तुभं जयति मधुभिदो वक्षः । पुरुषा-
 पितमभ्यस्यति लक्ष्मीर्यद्वीक्ष्य मुकुरमिव ॥ ३२ ॥ प्रत्यश्रो-
 त्मेपजिह्वा क्षणमनाभमुखी रत्नदीपप्रभाणामाभ्युपा-
 रगुर्वा जानितजललवाज्जम्भतेः साङ्गभङ्गः । नगार्द्धं भो-
 क्तुमच्छाः शयनमुदफणाचक्रवालोपधानं निद्राच्छेदा-

मानों लक्ष्मी-नारायणका पारस्परिक प्रेम प्रकट कर रहा हो ॥ २६ ॥ वे विष्णु भगवान् आपकी रक्षा करें जो पलंगके समान पनाए हुए शपजोंके कणोंके माथियोंमें अपने शरीरका अनभिज्ञत परछाईं पड़नेसे ऐसे जान पड़ते हैं मानों अपने चरख दायता हुई समुद्र-पुत्री लक्ष्मीजोंके सिकड़ों नेत्रोंसे देखनेको इच्छासे ही अपने सिकड़ों रूप बनाए हुए हैं ॥ ३० ॥ मथे जाते हुए समुद्रके जलसे जैसे ही लक्ष्मीजों आधा बाहर निकलीं जैसे ही अत्यन्त प्रसन्नतासे भाँहें मचाकर तिरछी चितवनसे ही मानों लक्ष्मीजोंके मुक्तकां पिपु जाते हुए वे भगवान् नारायण आपकी रक्षा करें जिनके दोनों हाथोंसे अनजाने मधनी वने हुए चञ्चल नागराज घूट गए और जो आकारामें ही अपने दोनों हाथोंका पूसा चबाने लगे माना समुद्र मथ रहे हैं ॥ ३१ ॥ भगवान् विष्णुके उस वक्षःस्थलका जय जिसमें कौस्तुभ मणि पड़ा हुआ है और जो लक्ष्मीजोंका परछाईं पड़नेसे ऐसा जान पड़ता है मानों दर्पणके समान उस वक्षःस्थलमें अपना परछाईं देखती हुई लक्ष्मीजी विपरीत रनिका अभ्यास कर रही हैं ॥ ३२ ॥ शेषनागके बड़े-बड़े कणोंसे घिरी तथा उनका देखसे विद्यी हुई शंयारूपा उनकी गोदमें फिर लेटना चाहते हुए विष्णु भगवान्का वे श्रोत्रें सदा आपकी रक्षा करें जो एकान्त खुल जानसे टेढ़ी-स्तों हैं, शेषनागके मणियोंकी चमकके कारण जो स्थिर नहीं हो पातीं, धौगड़ाई और जैभाई आनेसे जिनमें तनिक-सा पाना भी भर आया है और जो नींदके दूट

भिताप्रा विरमवतु हरेर्दृष्टिराकेकरा वः ॥ ३३ ॥ भक्तिप्र-
 ङ्गविलोकनप्रणयिनी नीलोत्पलस्पर्धिनी ध्यानालम्बनतां
 समाधिनिर्तनैर्नाते हितप्राप्तये । लाचयैकमहानिधी
 रसिकतां लक्ष्मीदशोस्तन्यती युष्माकं कुरुतां भवार्ति-
 शमनं नेत्रे तनुर्वा हरेः ॥ ३४ ॥ भानुर्मिशालु भवद्व-
 ञ्चिमयूखशोभालोभान्प्रताप्य किरणोत्करमाप्रभातम् ।
 तत्रोद्भूते हुतवहान्क्षणलुत्तरागे तापम्भजत्यनुदिनं स
 हि मन्दतापः ॥ ३५ ॥ भ्राम्यन्मन्दरकन्दरोद्गदरीव्या-
 वर्त्तिभिर्वारिधेः कलोलैरलमाकुलं कलयतो लक्ष्म्या
 मुक्ताम्भोरुद्धम् । औत्सुक्यात्तरलाः स्मराद्विकसिता
 भीत्या समाकुञ्चिताः क्रोधेन ज्वलिता मुदा मुकुलिताः
 शारदशः पान्तु वः ॥ ३६ ॥ मन्थरमाधरधूणिताणै-
 वपयः पुरान्तरालोलसलक्ष्मीकन्दलकोमलाङ्गवलनमा-
 दुर्भवन्तम्भ्रमाः । हर्षोत्कण्ठकितत्वखो मधुरिपोदंवाह-
 राकर्षणव्यापारोपरमाय पान्तु जगतीमाधरवीप्सा

जानेसे जाल-जाल होकर पूरी खुल नहीं पाती ॥ ३३ ॥ अपना कल्याण करने एवं मनोरथ सकल होनेके लिये समाधिमें स्थित लोगोंसे ध्यान किए जाते हुए तथा भक्तिके कारण आपस्त मग्न भावोंके बड़े स्नेहमें देखनेवाले, अपने सौवर्लोपनसे भीले कमलोंकी समता करनेवाले, लक्ष्मीजोंके भ्रंशोंको आनन्दित करनेवाले तथा सुन्दरताके महासागर वे विष्णुजीके दोनों नेत्र या शरीर आपकी सांसारिक बाधाएँ मट करें ॥ ३४ ॥ हे भगवान् ! सूर्य रात्रिमें आपके चरणोंका किरणोंकी सुन्दरताके झालचसे आपके पास ही विश्राम करके प्रतापयुक्त होकर धर्मसे कुछ ताप ले लिए जानेपर कुछ समयके लिये मन्द होकर पुनः उसी तापसे दिनभर तपता रहता है, वस्तुतः उसमें ताप देनेका सामर्थ्य नहीं है ॥ ३५ ॥ विष्णु भगवान्की यह इच्छा आपकी रक्षा करें जो समुद्रमें घूमते हुए मन्दराचलकी गुफाओं और खाइयोंसे टकराती हुई बड़ी-बड़ी लहरोंके भंवरोंसे न्याकुल लक्ष्मीजोंके कमलके समान मुक्तकां देखकर चाबसे चञ्चल हो उठी, कामके कारण गिल उठी, दूसरेकी कन्या बिना दिए कैसे पाई जा सकती है' यह सोचकर डरसे सिकुड़ गई, क्रोधसे चमक उठी और फिर आनन्दके सारे भँप गई ॥ ३६ ॥ देवता और असुरोंकी खींचतानी शान्त करनेके लिये कड़ी गई, प्रसन्नतासे रोमाञ्चित देहवाले विष्णुजीका वे बाणियाँ संसारकी रक्षा करें जो मधनी वने हुए मन्दराचलसे मथे जाते हुए समुद्रके भरे हुए जलके भीतरसे निकली आती हुई लक्ष्मीके

गिरः ॥३७॥ मुग्धे मुञ्च विषादमत्र बलभित्कम्पो गुरु-
स्वयज्यतां सद्भावम्भज पराङ्गीकनयने मान्यानिमान्मा-
नय। इत्थं शिलयतः स्वयंवरविधौ धन्वन्तरिर्वाक्कुलाद-
न्यत्र प्रतिपेधमान्मनि विधिं शृण्वन्हरिः पातु यः ॥३८॥
मोहजगत्त्रयभुवामपनेतुमेतदाशय रूपमखिलेश्वरदेह-
भाजाम्। निस्सीमकान्तिरसनीरधिनाः मुनेव मोहं प्रव-
र्धयसि मुग्धविलासिनीनाम् ॥३९॥ यस्योद्यद्वाणवाहु-
द्रुमगहनघनच्छेदगोप्राकुटाः प्रकम्पितकान्ततीमानलय-
हलकणाकीर्णधारं विचिन्त्य। जानप्रासायसायो दिवस-
कृति लसन्मांसलांशुप्रवाहे मुख्यायापि राहुः स दहतु
दुरितान्याशु दैत्यान्तकौ यः ॥४०॥ येनोत्थाप्य समूल-
मन्दरगिरिश्चप्रीकृतो गोकुले राहुयेन महाबलः सुर-
रिपुः कार्यावशेयीकृतः। कन्या वीणि पशानि येन वनुधा
यक्षो बलिलोलया सोऽयं पातु युगे युगे युगपतिलेला-

क्यनाथो हरिः ॥ ४१ ॥ यं शैवाः समुपासन्ते शिव इति
ब्रह्मेति वेदान्तिनां ब्रह्मा वृद्ध इति प्रमाणपटवः कर्त्तन्ति
नैयायिकाः। अर्हन्तिन्यथ त्रैलोक्यनरनाः कर्मेति
मीमांसकाः। सोऽयं वो विद्धानु वाञ्छितफलं त्रैलोक्य-
नाथो हरिः ॥ ४२ ॥ रामायन्ती मुग्धः श्रौचन्मनिव-
शिनाग्रभागा यः। उन्नालनाभिर्नलिनच्छ्रायेवांताप-
मपहरतु ॥ ४३ ॥ लक्ष्मीकपोलसंक्रान्तकान्तपञ्चलनां-
जयलाः। दोर्दुमाः पान्तु यः शोर्धनच्छ्राया महा-
फलाः ॥ ४४ ॥ लक्ष्मीपाणिद्वयविर्गचितं मूलमूर्धश्रू-
सीनां श्यक्तं घन्दं चरणकमलद्वन्द्वमाश्रय पुंसः। यत्रै-
कस्य व्यधिनर्तनापाशयतायेधितार्त्तगार्द्रस्यैव प्रणति-
तरलः क्षलनं पद्मयोनिः ॥ ४५ ॥ लक्ष्मीलालितपादप-
द्मयुगं भागीन्द्रभोगासनं ध्यान्नागार्गवाश्चन्द्रभिः परि-
वृतं काश्यपकल्पैः सदा। नाभुञ्जन्कुशशयान्तरलि-

मांसल भीर कामल कल्लोंके मर्वनकी कल्पनासे लटपटाने
लगी थीं और जो लक्ष्मीको प्राप्त करनेका इच्छासे ही
कही जा रही थी ॥ ३७ ॥ 'हे सुन्दरी! शीघ्र न करो,
वह दलका भाग करता है, इतना अधिक न कौषा, हे
कमलके समान नेत्रवाली! अपनेमें सुन्दर भाव ले आया और
इन आदरणीय व्यक्तियोंका आदर करो, दूसरे पक्षमें—हे सुन्दरी!
लक्ष्मीकी छाँदा, इन्द्र, प्रकृति और बृहस्पतिकी भी छाँदा और
कमलके समान नेत्रवाले विष्णु भगवान्में सुन्दर भाव रखो
तथा इन आदरणीय व्यक्तियोंका स्वागत करो।' इस प्रकार
स्वयंवरमें धन्वन्तरिने लक्ष्मीको छलभरी वार्त्तासे अपने वरदा
करने और दूसरोंकी छाँड़नेकी भेदभरी शिक्षा दी उसे सुनते
हुए विष्णु भगवान् आपकी रक्षा करें ॥ ३८ ॥ हे सारे संसारके
स्वामी विष्णु! तीनों लोकोंके प्राणियोंका माँह दूर करनेके
लिये जो आपने सुन्दरता और सुलका यह अपार रूपका समुद्र
धारण किया है उससे आप सुन्दरी स्त्रियोंका माँह और भाँ बड़ा
वेते हैं ॥ ३९ ॥ दैत्योंका नाश करनेवाले वे विष्णु भगवान्
आपके पापोंको शीघ्र नष्ट कर दें जिनके उस स्रक्का
स्मरण करके दिमकी रचना करनेवाले और मांसल किरणोंसे
भरे सूर्यको मुँहमें दबाकर भी राहु हिलक जाता है जो शत्रुओंकी
बाण छोड़नेवाली भुजारूपी वृक्षोंके वनको काटनेके लिये
कुल्हाड़ीके समान है तथा अपनी धारसे भदूर आगकी
धेरसी चिनगारियाँ उड़ाता है ॥ ४० ॥ तीनों लोकोंके तथा
पारों दुर्गोंके स्वामी वे विष्णु भगवान् प्रत्येक युगमें सबकी रक्षा

करें तिरुहाने मन्दर पर्वतको जड़में उखाड़कर उसे गोकुलपर
क्षुब्धकी तरह तान दिया, जिन्होंने देवताओंके पदों दलवान् शत्रु
राहुको कुप भी करने-वाँवय न रखने दिया और जिन्होंने वृक्षोंको
तीन पलोंमें नापकर पलिकों सत्रज में ही बाँध लिया ॥ ४१ ॥
तीनों लोकोंके स्वामी वे विष्णु भगवान् आपके भरोहरथ सकल
करें जिन्हें शिवको माननेवाले शिव-रूपमें, वेदान्ता ब्रह्म-रूपमें,
बुद्धके माननेवाले बुद्धरूपमें, प्रमाण देनेमें चणुर न्याय ग्राह्यवाले
कलाके रूपमें, तीन लोग चर्चनके रूपमें और मीमांसक लोग कर्मके
रूपमें मानते हैं ॥ ४२ ॥ भगवान् विष्णुकी यह रामायन्ती आपके
ताप दूर करे जिसके आगे श्रीवत्स चिह्न है और जो नाभिसे
निकलकर ऊपर पड़े हुए कमलकी छायाके समान जान पड़ती है
॥ ४३ ॥ श्रीलक्ष्मीज्जके कपोलोंपर लिखा सुन्दर कन्दूरीके चिह्नरूपी
लतासे संयुक्त विष्णु भगवान्के वे भुजा-रूपी वृक्ष आपकी रक्षा
करें जो अत्यन्त घनी छाया (आश्रय) वाले तथा अत्यधिक फल
देनेवाले हैं ॥ ४४ ॥ आदिपुरुष विष्णु भगवान्के उन दोनों
चरणोंको प्रणाम करता हूँ जिन्हें लक्ष्मीजी सदा अपने दोनों
हाथोंसे सहलता रहती है, जो दोनों वेदोंके आदि और अन्तके
समान हैं और जिनमेंसे एकको जैसे हो बलिने धोया वैसे ही
उन्हें प्रणाम करते हुए ब्रह्माजीने भी उस गीले ही पैरको धो
लिया ॥ ४५ ॥ सारे संसारकी रचना करनेवाले ब्रह्माको अपनी
नाभिसे निकले कमलमेंसे उत्पन्न करके धिना कारण ही सारे
संसारको आनन्दित करनेवाले उन अनादि, निष्पाप, परमेश्वर
मुकुन्दको प्रणाम करता हूँ जिनके दोनों चरणोंकी सेवा लक्ष्मीजी

लक्ष्मणारमुद्गाव्य निल्याजं नन्दितविश्वमाद्यमनघं वन्दे
मुकुन्दं प्रभुम् ॥ ४६ ॥ वत्तस्थली रक्षतु सा जगन्ति
जगन्प्रसूतेर्गर्हदध्यजस्य । श्रियोऽङ्गरागेण विभाव्यते
या सौभाग्यहेत्रः कपपट्टिकेव ॥ ४७ ॥ धिरमति महा-
कल्पे नाभीपथैकनिकेतनलिभुवनपुरःशिल्पी यस्य
प्रतिक्षणमात्मभूः । किमधिकरणं कीटकस्य व्यवस्थि-
निरित्यसात्रुदरमविशलेष्टुं तस्मै जगन्निधये नमः ॥ ४८ ॥
वृन्दारका यस्य भवन्ति भृङ्गा मन्दाकिनी यन्मकरन्द-
यिन्दुः । तवारविन्दाक्ष पदारविन्दं यन्दे चतुर्वर्गचतु-
ष्पदं तत् ॥ ४९ ॥ शरणं भवभीतानां भक्तप्रव्यार्थभा-
युकः । भाष्यमानः सुरैरन्तर्विष्णुर्भवतु भूतये ॥ ५० ॥
श्यामं श्रीकुचकुङ्कुमपिञ्जितमुगे सुराद्विपो जयति ।
दिनमुखमभ इव कास्तुभविभाकरो यद्विभूषयति ॥ ५१ ॥
श्रीकरपिहितञ्जुः सुखयतु वः पुण्डरीकनयनस्य ।
जघनमिर्वाक्षतुमागतमञ्जनिभं नाभिसुरिपरिण ॥ ५२ ॥

करती रहती है, जो शंखमागके शरीरकी शय्यापर संत है और जो
दूधके समुद्रकी धौंसे जिये ऐसे जान पड़ते हैं मानां चारों ओरसे
दया हो उमड़ रही हो ॥ ४६ ॥ सारे संसारका उत्पन्न करनेवाले
गरुडभोजन भगवान्का वह वक्षःस्थल सारे संसारका रक्षा करे जो
लक्ष्मीके शरीरमें लगे लपके रंगकर सौभाग्यरूपी सानेकी
कसीसी-सा जान पड़ता है ॥ ४७ ॥ सारे संसारके श्रेष्ठ
सम्पत्ति-रूपी उन भगवान् विष्णुका प्रशाम करता है जिनकी
नाभिमें नाबों कांकांकी लयसे पहले रचना करनेवाले चतुर
कारिगर ब्रह्मा सदा महाप्रलयके समय रहते हैं, मानां वह
जाननेके लिये ही ब्रह्माजी उनके पेटमें घुस जाते हैं कि इतने
बड़े भगवान् कितने सहाय तथा कैसे रहते हैं ॥ ४८ ॥ हे
कमलके समान नेत्रवाले भगवान् ! मैं आपके उन चरक-
कमलोंका प्रशाम करता हूँ जिनमें सब देवता-रूपी भारे गुञ्जार
करते हैं, गङ्गा ही जिनमें रसरूपसे स्थित है तथा जो धर्म,
अर्थ, काम और मोक्ष देनेवाले चतुष्पद हैं ॥ ४९ ॥ वे विष्णु
भगवान् सयका कल्याण करें जो संसारसे दूर हुए जीवोंका
शरण देनेवाले हैं, जो भक्तका श्रेष्ठ भावनासे ही प्रसन्न रहते
हैं तथा देवता अपने मनमें जिनका ध्यान करने रहते हैं ॥ ५० ॥
सुर राजसका भारनेवाले विष्णु भगवान्के उस श्याम रङ्गके
वक्षःस्थलकी जय हो जो लक्ष्मीजीके स्तनोंपर लगे कुङ्कुमके लेपसे
रंग गया है और जो कीटनुभ मणिकी किरणें ऐसे चमकाती हैं
जैसे नीले आकाशकी सूर्य चमका देता है ॥ ५१ ॥ कमलके समान

श्रीधासि दुग्धोदधिपुण्डरीके यश्वजरीकद्युतिमात-
नोति । नीलोत्पलश्यामलदेहकान्तिः स वोऽस्तु भूतये
भगवान्मुकुन्दः ॥ ५२ ॥ श्रीराजीवाक्षतःस्थलनिलय-
रमाद्वस्तवास्तव्यलोलहीलाञ्जलिस्सरन्ती मधुरमधु-
भरी नाभिपथे मुरारेः । अस्तोकं लोकमात्रा द्वियुगमु-
क्ताशिशोराननेष्वर्प्यमाणं शङ्खप्रान्तेन दिव्यं पय इति
विवुधैः शङ्खयमाना पुनातु ॥ ५३ ॥ श्रेयः सदा दिशतु
सालसपद्मपाते निद्रायिते अपि दर्शो भृशमुन्नम्य ।
संवाह्यमानचरणाम्बुजजातहृषो लक्ष्मीमुखेक्षणपरः पर-
मेश्वरो वः ॥ ५४ ॥ सकलभुवनबन्धोर्वैरमिन्दोः
सरोजैरनुचितमिति मत्वा यः स्वपादारविन्दम् । घट-
यितुमिव मायी योजयत्याननेर्म्वा घटवलपुटशायी
मङ्गलं वः कुरीए ॥ ५५ ॥

लक्ष्मी—अशेषभुवनमोदमादधानां शुचिस्मि-
ताम् । ककुषामधुराकारं लक्ष्मीदेवीमुपास्महे ॥ १ ॥

नेत्रवाले विष्णु भगवान्के लक्ष्मीजीके हाथोंसे सूँवे गए उस नेत्रकी
जय हो जो मानां जघनका देखनेके लिये नाभिके क्षेत्रसे कमलके
रूपमें प्रकट हुआ है ॥ ५२ ॥ दूधके समुद्रमें मिले लक्ष्मीरूपी
कमलसे जो भीरोंके समान प्रेम आचरण करते हैं तथा नीले
कमलका भीति जो नीले रङ्गवाले हैं वे भगवान् मुकुन्द आपका
कल्याण करें ॥ ५३ ॥ कमलके समान नेत्रवाले विष्णु भगवान्के
वक्षःस्थलपर रखे हुए लक्ष्मीजीके हाथके खेलके कमलके हिलनेसे
नाभिके कमलपर झड़कर गिरती हुई वह रसकी धारा सबको
पवित्र कर जिसे देखकर देवताओंका यह शङ्का हो गई कि
जगज्जननी लक्ष्मीजी कितनी आठ मुँहवाले बच्चेको, शङ्कमें भरकर
स्वर्गाय दूध पिला रहा है ॥ ५४ ॥ लक्ष्मीजीके चरण दायनेसे
जिन्हें बड़ा आनन्द मिल रहा है ऐसे वे विष्णु भगवान् सदा
आपका ऐश्वर्य दें जो नादके आकसे द्ये हुए उनाने नेत्रोंका भी
बलपूर्वक खोलकर लक्ष्मीजीका मुँह देखते रहते हैं ॥ ५५ ॥ सारे
संसारका प्रिय लगनेवाले चन्द्रमाका कमलोंसे घेर होना अनुचित
जानकर उस वरका मेख-मिलापसे नट कर देनेके लिये ही मानो
जो अपने चरण-कमलका मुखचन्द्रसे संयोग कराते रहते हैं
(श्रेष्ठता चूसते रहते हैं) ऐसे वे बटके पत्तेपर सानेवाले भगवान्
आपका आनन्द दें ॥ ५६ ॥

लक्ष्मी : सारे संसारको सुख देनेवाली, पवित्र मुरकानवाली,
द्वामयी तथा मधुर रूपवाली लक्ष्मी देवीकी हम उपासना करते
हैं ॥ १ ॥ स्वयंवरके समय जब भाट (धन्वन्तरि) एक-एक कर परिचय

आख्याते हसितं पितामह इति अस्तङ्गपालीति च
व्यावृत्तं गुरुरित्ययं दहन इत्यादिभूता भीरुता ।
पौलोमीपतिरित्यस्यितमथ व्रीडाधिनम्रश्रिया पायाद्वः
पुरुषोत्तमोऽयमिति यो न्यस्तः स पुष्पाञ्जलिः
॥ २ ॥ उत्तिष्ठन्त्या रतान्ते भरमुरगपतां पालिनैकेन
कृत्वा धृत्वा चान्येन वासो विगलितकवरीभार-
मंसे वहन्त्याः । भूयस्तत्कालकान्तिद्विगुणितसुगन्तमी-
तिना शौरिणा वः शय्यामालिङ्ग्य नीतं वपुरलसल-
सदाहु लक्ष्म्याः पुमातु ॥ ३ ॥ उत्तुङ्गस्तनमण्डलोपरि
लसत्प्रालम्बमुक्तामणेरन्तर्धिम्यतमिन्द्रीनीलनिकरच्छा-
यानुकारि घृतिः । लज्जाश्याजमुपेत्य नम्रवदना स्पर्धं
मुरारेवंपुः पश्यन्ती मुदिता मुदेऽस्तु भयतां लक्ष्मीवि-
द्याहोत्सवे ॥ ४ ॥ कमलासनकमलेक्षणकमलारिकिरी-
टकमलभृद्वाहैः । नूनपदकमलाकमला करधृतकमला

करोतु मे कमलम् ॥ ५ ॥ किञ्चलकगजिरिव नीलसरोज-
लम्बा लेखेव काञ्चनमयी निकरोपलम्बा । सांदाभिनी
जलदमण्डलगामिनीव पायादुरःस्थलगता कमला
मुगरेः ॥ ६ ॥ क्रीडाभिन्नहिरण्यशुक्तिकुङ्कुम रक्तात्मना-
वस्थितान्तरं हारमुदारकुङ्कुमरसानव्याजभज्याम्रनैः ।
वीरधीकुचकुम्भसीमि लिखनो वीरस्य पञ्चावलीम्न-
त्कालोचनभावबन्धमधुरं मन्दस्मितं पातु वः ॥ ७ ॥
जयन्ति जगतां मानुः स्तनकुङ्कुमयिन्दवः । मुकुन्दाश्ल-
पसंक्रान्तकाम्नुभध्रीचिर्दभिनः ॥ ८ ॥ तल्पीकृताहिर-
गलितगरुडो हाराभिहनविधिर्जयति । फणशतपीत-
श्वासो रागान्धायाः श्रियः केलिः ॥ ९ ॥ इन्द्रेः कोर-
किना स्मिन्नेधिकसिता भृथिभ्रमैः पन्निना दोभ्यां पल-
चिना नखैः कुसुमिता लीलाभिरुङ्कलिता । उत्तुङ्गस्तन-
मण्डलेन फलिता भक्ताभिलाषे हिता काचिन्कल्पलता

द्वेने लगे उस समय लक्ष्मीजी मङ्गाजीको देखकर हैम पड़ीं,
शिखीजीको देखकर सहम गईं, बृहस्पतिजीको देखकर सङ्कुचित
हो गईं, अग्निदेवको देखकर डर गईं, इन्द्राणीके पनि इन्द्रको
देखकर उन्हें कुछ ईर्ष्या हुई तथा पुरुषोत्तम भगवान् विष्णुको
जब देखा तो लजाकर प्रसन्नतासे सिर नीचा करके उन्होंने
कुलोंकी जो अञ्जलि विष्णुजीपर धीरेसे छोड़ दी वह आपकी
रक्षा करे ॥ २ ॥ रतिके पश्चात् अपनी देहके भारको एक हाथसे
शेषनागकी शीयापर रखकर उठनी हुई तथा दूसरे हाथसे अपने
सुले हुए कंधोंको सँभालती हुई उन लक्ष्मीजीका शरीर आपका
पवित्र करे जिनके सिरका जूड़ा सुलकर कंधोंपर बिलर गया
था और फिर उसी क्षण रतिके लिये दुगुने चाव और सुन्दरताके
साथ भगवान् विष्णुने आलससे शिथिल वोंहेंवाले जिस शरीरका
आलिङ्गन करके उसे अपनी शीयापर खींच लिया था ॥ ३ ॥
विवाहके समय अपने ऊँचे-ऊँचे स्तनोंपर लटकती हुई आलाके
मोतियाँ और मणियोंमें भगवान् विष्णुके नीले कमलोंकी
कान्तिके समान सुन्दर नीली कान्तिवाले शरीरकी पड़ती हुई
परछाईंको लम्बाके बहाने सिर नीचा करके ध्यानसे देखकर
प्रसन्न होती हुई वे लक्ष्मीजी आपको सुख दे ॥ ४ ॥
कमलमें रहनेवाले मङ्गा, कमलके समान नेत्रवाले विष्णु और
कमलके शत्रु चन्द्रमाका मुकुट पहननेवाले शिव तथा कमलको
धारण करनेवाले ऐरावत हाथीके वाहनवाले इन्द्र आदि जिनके
वरण-कमलोंको प्रशाम करते हैं तथा जो कमलको धारण कि-
रहती हैं, ऐसी लक्ष्मीजी मेरा कल्याण करें ॥ ५ ॥ नीले

रङ्गवाले विष्णुजीके वक्षःस्थलपर लेटा वे पीले रङ्गवाली लक्ष्मीजी
रक्षा करें जो नीले कमलपर लगे हुए पराग-सी, कमीटीपर
लगी संतरेका लंकार-सी तथा मेघोंके बीचमें घमकती हुई
विजली-सी जान पड़ती है ॥ ६ ॥ मिलवावमें ही फाड़ डाले हुए
हिरण्यकशिपुके बक्षःस्थलरूपी सीपोंमें भरे हुए रत्नरूपी केशरके
रसको स्वभावसे ही सुन्दर नम्ररूपी मूलिकाघोंसे निकाल-
निकालकर लक्ष्मीजीके वीर (पुत्र) स्तनोंपर चित्रकारी करते
हुए वीर (गरुडकी सत्रातीवाले या गुर) नृसिंहजीकी उस
समयके भावसे अधिक सुन्दर मन्द मुस्कान आपकी रक्षा करे ।
भाव यह था कि हिरण्यकशिपु जैसे महापराक्रमीके वक्षःस्थलका
भी फाड़ डालनेवाले मेरे ये कठोर और धीर नाभ जिन स्तनोंका
बाध्य होकर आदर करते हैं उनकी कठोरता तथा धीरताकी क्या
सीमा हो सकती है ॥ ७ ॥ जगन्माता श्रीलक्ष्मीजीके स्तनोंपर
लगी हुई कुकुमकी उन बँदोंकी जय हो जो विष्णुजीके आलिङ्गन
करते समय कौस्तुभ मणिके समान शोभित होती हैं ॥ ८ ॥
कामके भद्रसे अत्यन्त मनवाली होकर की जानेवाली लक्ष्मीजीकी
उस क्रीड़ाकी जय हो जिसमें शेषनागको शय्या बना लिया गया,
जिसमें गरुडकी कोई आड़ न की गई, हारकी झकझोरसे ब्रह्माकी
भी चोट लगती गई और जिसमें वेगसे निकली साँसोंको शेषनाग
अपने सिकड़ों फणोंसे पीते चले गए ॥ ९ ॥ देवताओं और असुरोंसे
प्रणाम की जाती हुई कल्प-वृक्षकी लताके समान वे समुद्रकी
पृथ्वी लक्ष्मीजी रक्षा करें जिनके दाँत लताकी कलियोंके समान हैं,
जिनकी मुस्कान ही उस लताकी खिलना है, भीहँ कोंपलें हैं,

सुरासुरनुता पायात्सुधाध्वेः सुता ॥ १० ॥ दरिद्रतो-
न्मूलनकर्मदत्ता मन्यञ्जसिद्धेश्वरनानिदानम् । सम्पद्भि-
धात्री करुणानिधात्री धात्रीय सा सांख्यपदस्य दात्री
॥ ११ ॥ देवेऽर्पितवरणस्त्राजि बहुमाये वहनि कैटभीरु-
पम् । जयति सुरासुरहसिना लज्जाजिह्वेलणा लक्ष्मीः
॥ १२ ॥ पद्मायाः स्तनहेमसग्ननि मलिश्रेणीसमाकर्षके
किञ्चिन्कञ्चकसन्धिसन्निधिगते शौरेः करे तस्करे ।
सद्यो जागृहि जागृहीनि वलयध्यानैर्ध्रुवं गर्जता कामेन
प्रतियोधिनाः महारिका रोमाङ्कुराः पान्तु वः ॥ १३ ॥
पयोधिसम्भूततया समन्नाद्गन्धस्थ चिन्दूनिय मानस-
ज्ञान् । लावण्यसन्तानमिषेण विष्यग्विभावयन्ती भव-
ताद्विभूयै ॥ १४ ॥ पायान्पयोधिदुहितुः कपोलामल-
खन्दमाः । यत्र संक्रान्तधिम्येन हरिणा हरिणायितम्
॥ १५ ॥ पीनभ्रोणि गभीरनाभि निभृतं भृङ्गशोषस्तनं
पायाद्दः पारिस्थमम्यदुर्बुहतुः काम्नेन कान्तं वपुः ।

भुजाएँ कामल पने हैं, नय फूल हैं, हाव-भाव लताका
हिलना है, ऊँचे-ऊँचे स्तन जिनके कम हैं और जो भक्तोंकी
हृत्पाथोंके लिये दिनकारिणी हैं ॥ १० ॥ दरिद्रताका नाश
करनेमें चतुर, ऐश्वर्य और सिद्धियोंका उत्पन्न करनेवाली,
सम्पत्तियोंकी रक्षणा करनेवाली तथा दयाकी स्वान लक्ष्मीजी
माताके समान सुख देनेवाली हैं ॥ ११ ॥ स्वयंवरमें
जवमाला पहनाने समय वह मायावी विष्णु भगवान् ने जब
कैटभीका रूप धारण कर लिया उस समय देवताओं और
दैत्योंके हँस पड़नेसे लज्जाकर निरङ्गी चिनडन कर लेनेवाली
लक्ष्मीजीकी जय हो ॥ १२ ॥ मणि आदिने घिरे हुए लक्ष्मीजीके
स्तनरुपी सोंनेके घरमें चालीकी ननिकनी सन्धिये विष्णुजीके
चौररूपी हाथके घुसनेपर नुरन्न ही हाथके कङ्गोंके 'जागो !
जागो !!' इस प्रकार चिल्लाने हो कामके द्वारा जगाए गए
रामाञ्ज रुपी रखवाले आपका रक्षा करे ॥ १३ ॥ दूधके समुद्रसे
उत्पन्न होनेके कारण देहमें लगी दूधकी वैद्योंको सुन्दरताके
कणोंकी भीति चारों ओर चमकती हुई लक्ष्मीजी कल्याण
करनेवाली हैं ॥ १४ ॥ समुद्रकी पुत्री लक्ष्मीजीका स्वच्छ
चन्द्रमाके समान वह कपोल रक्षा करे जिसमें पड़नी हुई
विष्णुजीकी परछाईं हिरण्यमी जान पड़नी है ॥ १५ ॥
प्रियतमसे आलिङ्गन किया हुआ वह पुष्ट नितम्बवाला, गहरी
नाभिवाला तथा पर्वतकार ऊँचे स्तनोंवाला समुद्र-पुत्री
लक्ष्मीजीका सुन्दर शरीर आपकी रक्षा करे, जिसका विष्णुजीको

स्वावासानुपघातनिर्मुक्तमनास्तत्कालमीलदशे यस्मै
सोऽच्युतनाभिपद्मवसतिबंधाः श्रियं ध्यायति ॥ १६ ॥
मनाङ्गप्रपन्नेऽपि कृपाकटाक्षे यस्याः कृतार्थो सकला-
श्चिराय । सा निर्मलाऽऽलेचनकस्वरूपा पायादपायात्
कमलासना माम् ॥ १७ ॥ यादृजानासि जाम्बूनदि-
गिशिखरे कान्तिरिन्दोः कलानामित्यात्सुप्पयेन पत्न्यौ
स्मितमधुरमुखाभोरुहं भापमाणे । लीलादीलायमान-
भुतिकमलमिलद्भङ्गलङ्गीतसाक्षी पायादम्भोधिजायाः
कुसुमशरकलानाट्यनान्दीनकारः ॥ १८ ॥ राजाधिरा-
जस्य सखापि नम्रोऽनुपेन्य यां भ्राम्यसि भिक्षमाणः ।
उपेतवान् हन्त जनार्दनोऽपि शेतेऽस्तध्विन्तं मम सा
श्रिये श्रीः ॥ १९ ॥ लोकेषु लोकोत्तरतानिधाननिदान-
भूता विभवाधिदेवी । मन्दाररूपा नमताञ्जनानास्य
कस्य धन्या विबुधस्य लक्ष्मीः ॥ २० ॥ सहोदरस्व
प्रतिपद्य यस्याः स्फुरत्कलङ्कोऽपि मतो द्विजेशः । सम-

नाभिसे निकले कमलमें रहनेवाले प्रह्लादने अपने निवास-स्थानके
सङ्कुल जब जानेपर स्वस्थचिन्त होकर मेरा वन्द करके ध्यान
किया था ॥ १६ ॥ जिनकी ननिक-सी कृपामयी निरङ्गी चितवन
पड़ने ही सब लोग सदाके लिये सन्तुष्ट (निहाल) हो जाते
हैं और जिनके स्वच्छ स्वरूपका देखते रहनेपर भी मन नहीं भरता,
वे कमलपर बैठी हुई लक्ष्मीजी सदा मेरी रक्षा करे ॥ १७ ॥
लक्ष्मीजीके सुमेरु पर्वत जैसे गोरे एवं ऊँचे स्तनोंसे ऊपर उनके
सुखचन्द्रकी शोभाको देखकर सुस्कारते हुए सुखकमलवाले लक्ष्मी-
पति विष्णुजीने लक्ष्मीजीसे पूछा—'तुम जानती हो, सुमेरु
पर्वतकी चाँटीके ऊपर बिसे हुए चन्द्रमाकी कलाओंकी कैसी
शोभा होती है ?' इसके उत्तरमें 'नहीं' कहनेके लिये जो
लक्ष्मीजीने सिर हिलाया, उससे उनके कानोंके कमलोंपर
मैंद्राने भीरोंकी गुञ्जार सुनकर ऐसा जान पड़ा मानो
कामदेवकी कला (रति) रूपी नाटकके पूर्व भीरोंके
गुञ्जाररूपी सङ्गीतके साथ लक्ष्मीजीने सिर हिलाकर पान्दी
(नाटकका प्रारम्भ) किया हो । लक्ष्मीजीका यह नान्दी कार्य रक्षा
करे ॥ १८ ॥ कुंवरके मित्र होते हुए भी शिवजी जिन्हें न पानेके
कारण भीख माँगते फिरते हैं और खेद है कि जिन्हें पाकर विष्णु
निश्चिन्त होकर सोते हो रहते हैं, ऐसी लक्ष्मीजी मेरा कल्याण
करे ॥ १९ ॥ संसारमें अत्यधिक ऐश्वर्यको जन्म देनेवाली,
ऐश्वर्योंकी स्वामिनी देवी तथा प्रणाम करनेवालोंके लिये कष्टपूर्वक
समान लक्ष्मी देवीको कौन देवता प्रणाम नहीं करेगा ॥ २० ॥

स्तसाम्पुण्यविधानदत्ता सदा शरण्या मम साम्नु
लक्ष्मीः ॥ २१ ॥ स्मेराननेन हरिणा सस्पृहमाकारवे-
दिनाकलितम् । जयति पुरुषायितायाः कमलायाः
कैटभीध्यानम् ॥ २२ ॥ स्वपादपीठं विनमत्सु सत्सु
स्मितच्छलेन श्रियमावधाना । पद्मासना पद्मभवादिष-
न्या सा मे शरण्या धिभवाय पद्मा ॥ २३ ॥ हिरण्यका-
न्तापि निजस्मिताभावितानसम्बन्धमुपेत्य शुभा ।
श्रवणजातं निपुणा निहन्तु सदा शरण्यास्तु महेश्वरी
सा ॥ २४ ॥

शङ्खः—पायास्त वः कुमुदकुन्दमृणालगौरः शङ्खो
हरेः करतलाम्बरपूर्णचन्द्रः । नादेन यस्य सुरशशुचि
लासिनीनाङ्गाञ्ज्यो भवन्ति शिथिला जघनस्थलीपु
॥ १ ॥ भिन्दन्नरानिहदयानि हरेः पुनातु निःश्वासवा-
तमुत्तरीकृतकोटरो वः । संक्रान्तकुलिकुहरास्थ-

वसतसिन्धुसङ्घट्टघोर्नरघोष इवागु शङ्खः ॥ २ ॥

चक्रम्—उद्धतदैत्यवृत्तनापनिकगदपीठकन्ददोच्छ्रित-
हलशोणितशोणधारम् । चक्रं क्रियादभिमनानि हरे-
वारदिग्दाहदाक्षणभः श्रियमुद्धतः ॥ १ ॥ इष्टस्य
यस्य हरिणा रणप्रधि मूर्तिरुद्धतदात्मदमःप्रवरा
समन्तान् । तल्लोचनस्थितरविप्रतिविम्बगर्भेणातानि
चक्रमरिचक्रनुदेऽस्तु तद्वः ॥ २ ॥

शेपः—महाराष्ट्रकुम्भकारं भुजगाकारज्जनादग-
न्तामि । स्फां यन्कणक्षमे धगा शरायश्रियं वहति ॥ १ ॥

गरुडः—सौधर्णाङ्गितपत्रमारुतहताहिमानकान्ता-
कुक्षरुजर्मन्मार्तिकभूषणः खगपतिः पूर्णन्दुविम्याननः ।
पद्माधीश्वरपादपद्मगलस्पर्शमहाज्ञाननः पायाङ्गो
विनतासुनो हरिकृपालोकैकपात्रीकृतः ॥ १ ॥

समुद्रः—आयास्ति यत्र नियसान्ति क्षिराय येष्टुं

लिनका सगा भाई होनेके नाते स्पष्ट कलहवाला चन्द्रमा भी
आदरणीय हो गया, वे सप्त सद्रुण रचनेमें चतुर लक्ष्मीजी
सदा मुझे अपनी शरणमें रक्खे ॥ २१ ॥ पुरुषकी भौंति आचरख
करनेवाली लक्ष्मीजी द्वारा किए जाते हुए उस कैटभी-रूपके ध्यानकी
जय हो जिसे सुन्दर मुखवाले विष्णु भगवान् बड़े चावसे
लक्ष्मीजीका मुख देखते ही सम्भक्त गए ॥ २२ ॥ अपने पैरोंमें नम्र
होकर प्रणाम करनेवालोंको मुष्कराहट-मात्रसे सुख-सम्पत्ति
देनेवाली, कमलपर बैठी हुई, सप्तकी शरण देनेवाली तथा
महाराष्ट्र देवताओंमें प्रणाम की जाती हुई वे लक्ष्मीजी मुझे
प्रेमार्प्य हैं ॥ २३ ॥ सोनेके समान कान्तिवाली होनी हुई भी अपनी
मुष्कराहटकी धन कान्तिसे घिरकर उजले रूपवाली तथा सारे
पाप-समूहको नष्ट करनेमें चतुर वे सबसे बड़ी स्वामिनी लक्ष्मीजी
सदा शरण दें ॥ २४ ॥

शङ्खः चन्द्रमा, कुन्दके फूल और कमलके डोरोंकी भौंति
उजले रहनेवाला तथा हथेली रूपी आकाशमें पूर्ण चन्द्रमाकी
भौंति रहनेवाला विष्णु भगवान् का वह शङ्ख आपकी रक्षा करे
जिसके गम्भीर शब्दकी सुनकर देवताओंके शत्रु राक्षसोंकी
खियोंकी कथनियों इरके मारे सरककर जघन-स्थलमें आ जाती
हैं ॥ १ ॥ (कूँकनेसे) जिसके खोखलेमें ऐसा शब्द होने लगता
है जो शत्रुओंके हृदयोंको फाड़े डालता है, वह विष्णुजीका
शङ्ख आप सबको पवित्र करे जो ऐसा जान पड़ता है मानो
सुँहसे निकले पवनके वेगसे उसके खोखलेमें अरे शत्रु सशस्त्रोंके

अंसमें टकरा जायेंगे ही उसमेंसे हतनी गम्भीर ध्वनि निकल
पड़ती है ॥ २ ॥

चक्रः श्रेयोके मेनपनिका माला काटनेसे पुन वेगसे गते
हुए रक्खे हैं गां हुई धारवाला तथा ऊपरका बड़े हुए धारवाला
वह विष्णु भगवान् का चक्र आपकी हृदयार्प्य है वरें जो श्रेयो
दिशाओंमें आग लग जानेपर आकाशके समान अत्यन्त भयानक
दिग्दाह पड़ता है ॥ १ ॥ भगवान् विष्णुका यह चक्र आपके
शत्रुओंका नाश करे जो पुनश्चलमें विष्णुजीके देव लेने-पानने
असहनीय तेजवाला हो जाना है और जो उस समय
ऐसा जान पड़ता है मानो भगवान् विष्णुके नेत्रमें विष नर्तकी
अमथमानी हुई परदाह हो ॥ २ ॥

शेपः महाराष्ट्र रूपी घड़ेकी रचना करनेवाले, नापी आकार-
वाले उन जनादेन भगवान् को मैं प्रणाम करता हूँ तिनके कलाके
ऊपर रक्खी हुई यह पृथ्वी परदेके समान जान पड़ती है ॥ १ ॥

गरुडः लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुके श्रेयो धरा-वसनोंके
धू जानेसे अत्यन्त निर्मल अश्रुवाले, सुखवर प्रणाम करते
हुए, संसार-भरमें भगवान् की कृपाके सबसे बड़े अधिकारी,
विनताके पुत्र तथा पूर्ण चन्द्रमाके समान सुँहवाले वे पत्तियोंके
स्वामी गरुडजी आपकी रक्षा करें जो सोनेसे सजे अपने पंखोंके
पवनके वेगसे लिये हुए नागोंकी खियोंके स्तनोंकी मोतियोंसे
सजे हुए हैं ॥ १ ॥

समुद्रः वे अत्यन्त नदियों सदाके लिये जहाँ आकर

निर्यान्ति चैवममिताः सरितो यतोऽग्नी । देवैर्हतेषु
बहुलेषु मणिष्वपीभ्यो यः पूर्ववत्स जयतादमृतैकभूमिः
॥१॥ वत्से मा गा विपादं श्वसन्मुरुज्वं सन्त्यजोर्ध्वप्र-
वृत्तं कम्प को वा गुरुस्ते किमिह बलमिहा जम्भिते-
नात्र याहि । प्रत्याख्यानं सुराणामिति भयशमनच्छ-
न्ना कारयित्वा यस्मै लक्ष्मीमिदाहः स दहतु दुरितं
मग्धमुग्धः पयोधिः ॥ २ ॥

दशावताराः

पाठीनः कमठः किटिर्नरहरिः सर्वाकृतिर्भागंधो
रामः कंसनिपूदनो दशवतः कल्की च नारायणः ।
युष्माकं स विभूतयेऽस्तु भगवान्नेतुर्भवाभ्योनि-
धावुत्ताराय युगे युगे युगपतिसौलोप्यनाथो हरिः
॥ १ ॥ यस्यालीयत शल्कसीञ्जि जलधिः पृष्ठे जगन्म-

निवास करती हैं और इष्टानुसार जहाँ से निकलकर चली जाती
हैं तथा देवताओं-द्वारा मणियोंके बार-बार निकाले जानेपर भी
जिसमें तनिक भी कर्मा नहीं आती उस अमृतको जन्म देनेवाले
समुद्रकी जय हो ॥ १ ॥ 'हे बेटी ! शोक न करो, अत्यन्त
वेगसे चलते हुए ऊर्ध्ववासको छोड़ दो, यह तुम बड़े
वेगसे क्यों रहीं हो ? चरे, बलका नाश करनेवाली यह
जैभाई क्यों लेती हो ? यहाँ आओ ।' दूसरे पक्षमें—'हे बेटी !
विपभर्ता (शिव) के पास न जाओ, अत्यन्त वेगवान्, ऊपर-
तक पहुँचने पर इस पक्षकों भी छुँद दो, वे गुरु आश्रय करण
भी तुम्हारे कीन हैं ? कोई नहीं, इन योगदाने हुए इन्द्रसे
भी क्या सम्बन्ध है ? यहाँ विष्णुके पास आओ, इस
प्रकार उर जुड़ानेके बहाने दूसरे देवताओंका वरण करनेसे
रोकते हुए वे भगवान् विष्णुको लक्ष्मीका दान करनेवाले तथा
मथनेसे थके हुए समुद्र पापोंका नाश करें' ॥ २ ॥

दशावतारः तीनों लोकों और युगोंके स्वामी वे विष्णु
भगवान् आपका कल्याण करें जो मछली, कछुआ, बराह, नृसिंह,
वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध, कल्की और नारायण आदि
वेपोंसे प्रत्येक युगमें संसार-समुद्रसे जीवोंको पार उतारनेके लिये
सेतु हैं ॥ १ ॥ मत्स्यवेपसे जिन भगवान्ने अपनी पीठपर
सारे संसारका भार रक्खा, बराह-वेपसे जिन्होंने अपनी दाढ़ीमें
पृथ्वीको लटका लिया, नृसिंह-वेपसे जिन्होंने अपने नखोंसे
दैत्योंके स्वामी हिरण्यकशिपुको काट डाला, वामन-वेपसे

एडलं दंष्ट्रायां धरणी नखे दितिसुताधीशः पदे रोदसी ।
कोधे क्षत्रगणः शरे दशमुखः पाणौ प्रलम्बासुरो ध्याने
विश्वमसाधार्मिककुलं कस्मैचिदस्मै नमः ॥२॥ वेदानु-
सरते जगन्निवहते भूगोलमुद्भिधते दैन्यं वारयते वलि
क्षलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते । पालस्यज्जयते हलं कलयते
काश्यमातन्वते स्लेच्छान्मूर्च्छयते दशाकृतिरुते
कृष्णाय तुभ्यं नमः ॥३॥ वेदा येन समुद्रता वसुमती पृष्ठे
भूताप्युद्धता दैत्येशो नखरैर्हतः फणिपतेलोकं वलिर्मा-
पितः । समाऽक्षया जगती दशास्यरहिता माता कृता
रोहिणी हिंसा दोषवती धराप्ययवना पायान्त नारा-
यणः ॥ ४ ॥ वेदोद्धारकृते गिरिं भूतवते पृथ्वीतलोद्धारि-
णे दैत्योरःस्थलदारकाय ददते त्रैलोक्यराज्यं
सरान् । राजन्याम्ययशश्चैव हतवते रक्षोऽर्कजां कर्षते
काश्यं दधते कृतं भूतवते भूयो नमः शार्ङ्गिणे ॥ ५ ॥

जिन्होंने अपने पैरोंमें सारे आकाश-पृथ्वीको समा लिया, परशुराम-
वेपसे जिनके क्रोधमें सब क्षत्रिय जल मरे, राम-वेपवाले जिन्होंने
अपने पाणवमें रावणको मार डाला, कृष्ण-वेपमें जिन्होंने अपने
पैरसे प्रलम्बासुरको मार डाला तथा कल्कि-वेपसे जिन्होंने अपने
खड्गसे सारे अधर्मों संसारका नाश कर दिया, ऐसे उस किसी
परमात्माको प्रणाम है ॥२॥ मत्स्यरूपसे वेदोंकी रक्षा करनेवाले,
कच्छुपरूपसे संसारका भार सँभालनेवाले, बराहरूपसे पृथ्वीको
उठा लानेवाले, नृसिंहरूपसे हिरण्यकशिपुको मारनेवाले, वामन-
रूपसे बलिको छलनेवाले, परशुराम-रूपसे क्षत्रियोंका नाश
करनेवाले, रामरूपसे रावणको जीतनेवाले, बलभद्र-रूपसे हल
चलानेवाले, बुद्ध-रूपसे सधपर दया करनेवाले और कलिरूपसे
सब स्लेच्छोंको दण्ड देनेवाले हे कृष्ण भगवान् ! आपको प्रणाम
है ॥ ३ ॥ वेदोंकी रक्षा करनेवाले, पृथ्वीको पीठपर धारण करके
उसकी रक्षा करनेवाले, दैत्योंके स्वामीको नखोंसे मारनेवाले,
बलिको पाताल भेजनेवाले, पृथ्वीको क्षत्रिय-रहित कर देनेवाले,
रावणको पृथ्वीसे नष्ट करनेवाले, रोहिणीको माता बनानेवाले,
'आशियोंको कष्ट देना महापाप है' यह बतानेवाले तथा पृथ्वी-भरके
यवनोंका नाश करनेवाले, वे भगवान् नारायण आपकी रक्षा करें
॥ ४ ॥ वेदोंका उद्धार करनेवाले, पर्वतको धारण करनेवाले,
पृथ्वीकी रक्षा करनेवाले, दैत्यकी छाती काटनेवाले, तीनों लोकोंका
राज्य देवताओंको देनेवाले, क्षत्रिय-कुलका नाश करनेवाले,
रावण राक्षसको मारनेवाले, यमुनाको सँभलनेवाले, दया धारण
करनेवाले तथा कलियुगमें सत्ययुग से आनेवाले उन विष्णुको
बार-बार प्रणाम है ॥ ५ ॥

मत्स्यः—आदिमत्स्यस्स जयनाथः भ्रासोल्लासिनै-
र्जलैः । विदधे गननेऽम्भोधिं गगनञ्च महोदधौ ॥ १ ॥
चन्द्रादित्योरुनेत्रः कमलभवभवस्फारपृष्ठप्रतिष्ठो भास्व-
त्कालाग्निजिह्वः पृथुलगलगुहादृष्टनिःशेषविभ्रः । अद्भिः
पुच्छोत्थिताभिश्चकितसुरयधूनेत्रसञ्चालिताभिर्मत्स्य-
शिल्पनाधिध्वेलं गगनतलमलं क्षालयन्वः पुनानु ॥ २ ॥
जीयासुः शकुलाकृतेर्भगवतः पुच्छच्छटाच्छोटनादु-
द्यन्तः शतचन्द्रिताम्यरत्नलं ते विन्दवः सन्धवाः ।
दैर्घ्यामृत्य पतद्भिरोर्व्यशिमिनस्तेजोजटालं वपुः पाना-
ध्मानवशादरोचकदजां चक्रे चिरादास्पदम् ॥ ३ ॥
जम्भाविस्तृतवक्त्रपङ्कजधिधेर्हन्ताः श्रुतीः सागरे लीनं
चस्तसमस्तनक्रनिकरं शङ्खं जघानाजिरे । पुच्छोन्मिस्त-
जलोत्करैः प्रतिदिशं सन्तर्प्य यो वै धरां पायाहः स
मृणालकोमलतनुर्मनाभिधानो हरिः ॥ ४ ॥ दिङ्मूढं तं
सुरारिं किल शितदशनैः पीड्यमानं रटस्तं हृत्वा तीरे

पयोधेः करनलकलिनं पूरयामास शङ्खम् । नादेनादो-
भ्य विभ्रं प्रमुदिनविबुधं चस्तदैव्यं स देवैर्दत्तार्घः पद्म-
योनेः प्रहसितचदनः पानु चो दत्तवेदः ॥ ५ ॥ दिश्या-
हः शकुलाकृतिः स भगवान्नैः श्रेयसीं सम्पदं यस्य
स्कूर्जदनुच्छुपुच्छुशिखग्नेहोलनकीडनैः । विभ्रग्याधि-
समुच्छलजलभरैर्मन्दाकिनीसङ्घनैर्गङ्गासागरसङ्गमप्रण-
यिनी जाता विहायःस्थली ॥ ६ ॥ पुच्छञ्चैदहमुन्नयाभ्य-
नयधिमनुच्छो भवेदम्बुधिः श्रीङ्गाञ्चैत्कलये मनार्गपि
जले पीडा परं यादसाम् । निष्पन्दो भृशमामृशमिनि
भरग्रहाण्डभाण्डक्षयक्षोभाकुञ्चितेव पद्म भगवान्भी-
णानु मीनाकृतिः ॥ ७ ॥ मर्मे मरं पतति तपने तोय-
चिन्दाधियेन्दावन्तलीने जलधिसलिले व्याकुलं देव-
लोके । मात्स्यं रूपं मुखपुटतटादृष्टनिर्मुक्तवार्धि श्री-
कान्तस्य स्थलजलगतं वन्यलक्षं पुनानु ॥ ८ ॥ माया-
मीनतनोस्तनोतु भवतां पुण्यानि पङ्कस्थितिः पुच्छा-

मत्स्यः : उम सबसे प्रथम मछली रूपवाले भगवान्की
जय हो जिन्होंने अपनी साँसें जल उछालकर आकाशमें समुद्र
और समुद्रमें आकाश रच डाला ॥ १ ॥ चन्द्रमा और सूर्यरूपी
बड़े-बड़े नेत्रवाले, ब्रह्माजीसे उत्पन्न हुने बड़े ब्रह्माण्डका अपनी
पीठपर रखनेवाले, प्रलयकालके आगिके समान क्षपलपारी
जीभवाले, अत्यन्त मोटे गलेकी सन्धिमें सारे संसारको
देखनेवाले तथा अपनी पूँछसे उछाले गए और देवताओंकी
क्षियों-द्वारा अन्धरजसे देखे गए जलसे समुद्रकी मर्यादा
सोचकर आकाशका मूल धोले हुए-से वे मत्स्यरूपी भगवान्
आपको पवित्र करें ॥ २ ॥ मत्स्य-रूपधारी भगवान्की पूँछकी
कटकारसे उड़कर आकाशमें सैकड़ों चन्द्रमाकी भाँति ज्ञान पड़ने-
वाली उम समुद्रकी बूँदोंकी जय हो जिन्होंने आकाशसे गिरकर
अत्यन्त तेजवाले बड़बानलको सदाके लिये 'अधिक पानी
पीनेसे उत्पन्न ग्रहण' रोगका रोगी बना दिया ॥ ३ ॥
जैसाई लेते समय भुँहके फैलते ही वेदोंको चुराकर समुद्रमें
धिपे हुए तथा पड़ियाल आदि सब जलचरोंको डरानेवाले
शङ्खसुरको युद्धमें जिसने मार डाला और अपनी पूँछसे जल
उछालकर सब दिशाओंको सींचकर पृथ्वीको बचा लिया वे
कमलकी जड़के समान कोमल देहवाले मत्स्य-रूपवाले भगवान्
आपकी रक्षा करें ॥ ४ ॥ देवताओंके शत्रु शङ्खसुरको अपने पैने
दाँतोंसे पकड़कर, अत्यन्त व्याकुल होकर चिल्लाते हुए ही उसे
समुद्रके तीरपर लाकर, हाथोंसे पकड़कर जिसने बड़े वेगसे

पूँछकर बजा डाला, जिसके गर्भीर नादसे संसार व्याकुल हो
उठा, देवता प्रसन्न हो गए, सब देव उर गए, सब देवता प्रसन्न
होकर आर्घ्य देने लगे और ब्रह्माजी वेदोंको पाकर जिन्हें देवकर
हैस पड़े, वे आपकी रक्षा करें ॥ ५ ॥ मत्स्य-रूपवाले वे
भगवान् आपको कल्याणकारी गुरुवर्य दे जिःकी बड़ी भारी पूँछके
वेगसे समुद्र उछलकर आकाश-गङ्गातक पहुँच गया और गङ्गा-
सागर तीर्थका समापमें ही आनन्द लेते हुए आकाशरूपी धल
प्रसन्न हो गया ॥ ६ ॥ 'यदि मैं पूँछ ऊपर उठाता हूँ तो इस
समुद्रकी मर्यादा टूट जायगी, यदि जलमें तनिक भी कीड़ा फँसेगा
तो जलचरोंका बड़ा कष्ट होगा' इस प्रकार सोचकर जो अपनी
देहको तनिक भी हिला नहीं पाते तथा 'ऊपर रखा यह ब्रह्माण्ड
रूपी घड़ा फूट न जाय' इस डरसे जो अपने रूपको सिकोड़े हुए
हैं ऐसे वे मछली-रूपवाले भगवान् प्रसन्न हों ॥ ७ ॥ जब सुमेरु
पर्वत समुद्रमें डूब गया, पानीकी बूँदोंमें मूर्ध छिप-सा गया,
चन्द्रमा समुद्रमें डूब-सा गया और देवता व्याकुल होने लगे
तब अपने भुँहके ओठोंके किनारोंसे समुद्रको खींचते-छोड़ते
हुए मछली रूपवाले भगवान्के उस शरीरकी जय हो जिसे
देखकर समझमें नहीं आता था कि यह जलमें है या धरतीमें
है ॥ ८ ॥ मायासे मछलीका रूप धारण करनेवाले नारायण
भगवान्का वह कीचड़में रहना आपके पुण्यांकी रक्षा करे जब
उनकी पूँछके वेगसे हिलनेके कारण समुद्रका सारा जल उछल
गया और नीचे पातालके छेदमें बड़े सङ्कोच और बहुत कष्टके

चक्रोदसनुवृत्तं जनपदमभारिकोदयेः । पातालाव-
 दमध्यमहोदयः परासहस्रस्थिते मेदोद्वारपरायणस्य
 सनतं नागराण्य प्रभोः ॥ ६ ॥ यं दृष्ट्वा मोनरूपं
 स्फुरद्वनलशभा कुक्षसंक्तनयं होलाद्विस्तीर्णकर्णकुभित-
 जलनिधिं नालजोत्पन्नवर्णम् । श्वासोच्छ्वासानिलौघैः
 प्रचलितगगनं पानवारिं भुगारिं दिङ्मूलेऽभूत्स शङ्खः स
 भवतु भवतां भूतये मानरूपः ॥ १० ॥ वियत्पुच्छातुच्छो-
 च्छलितजलगर्भे निधिरपामपान्नाथः पाथः पृथुललव-
 दुस्यो विप्रदभूत् । निधिभः सामथा दिनपतिरभूदोर्वद-
 हतश्चलकां यस्मिन्स जयति हरिमानवपुषा ॥ ११ ॥
 हं हो मोनतनो हरे किमुदधे किं वेपने शैत्यतः स्विन्नः
 किं यद्वानलान्पुलकितः फस्मान्स्वभावादहम् । इत्थं
 सागरकन्यकामुग्धशशिव्यालोकनेनाधिकप्रोद्यन्कामज-
 चिह्ननिह्नुतिपरः शौरिः शिवा गन्तु वः ॥ १२ ॥

कृमः—हरभ्यां यस्य विलोकनाय जगतो द्रागीरदुतो-
 लितग्रीवाग्रापरि घिरुङ्गरुद्रगणे क्षुभायितावाग्भुवि ।

साथ वे वेदोंकी रक्षा करनेके लिये कीचड़ में पड़े रहे ॥ ६ ॥
 मछली रूपवाले, चमकता हुई अग्निकी लपटोंमें युक्त लाल-लाल
 नेत्रवाले, अपने धड़े-धड़े कामोंकी हिलाकर समुद्रकी मधनेवाले,
 धीले मेवाफेमें रहनेवाले, अपनी साँसके तीस वायुमें आकाशकी
 उड़नेवाले और समुद्रका जल पी लेनेवाले विष्णु भगवान्की
 यह मन्त्र रूप आपकी प्रेरण दे जिसे देखते ही शङ्खामुख
 दिशाएँ भूल गया था ॥ १० ॥ उन मछली वेपनाले भगवान्की
 जय हो जिनकी पैरोंके धड़े वेगसे चलनेके कारण समुद्रका
 सारा पानी उछलकर आकाशमें चला गया अतः वहाँ मूर्त्यरूपी
 वद्वानलके रहनेमें आकाश समुद्र-सा जान पड़ने लगा और
 समुद्रमें वद्वानलरूपी सूर्य रहनेसे वह आकाश-सा जान
 पड़ने लगा ॥ ११ ॥ समुद्रमें मछली वेपनाले भगवान्से पूजा—
 'हे मन्त्र रूपवाले विष्णु ! भगवान्—कहा समुद्र ! समुद्र—आप
 कौन क्यों हैं ? भगवान्—शांत लगनेके कारण । समुद्र—यह
 पसीना क्या था रहा है ? भगवान्—वद्वानलके कारण आप
 पुलकित क्यों हो रहे हैं ? समुद्र—भगवान्—वह तो मेरा स्वभाव
 ही है । इस प्रकार समुद्रकी कन्याका चन्द्र-मुख देखकर धड़े हुए
 कामके वेगके चिह्न दिपान हुए वे विष्णु भगवान् आपका
 कल्याण करें ॥ १२ ॥

कृमः : वे कणुण रूपवाले भगवान् बलपूर्वक आपके
 पापोंका नाश करें जा संसारकी अपने नेत्रोंमें देखनेके लिये

हा धिम्भुः किमभूद्भूतदितरन्किञ्चेति पर्याकुलो हन्त्या-
 देष हठाद्यानि कमठाधीशः कठोराणि वः ॥ १ ॥ नम-
 स्कुर्मः कूर्मं नमदमरकोटीरनिकरप्रसर्पन्मणिष्यच्छवि-
 मिलितमात्रिप्रवपुषम् । जरो जृम्भाङ्गमधुमणिरमणोथां-
 गुलहरीपरीरम्भस्फूर्जद्वलभिदुपलाद्रिप्रतिभटम् ॥ २ ॥
 निरवधि च निराश्रयश्च यस्य स्थितमनिर्वर्तितकौतुक-
 प्रपञ्चम् । प्रथम इह भवान्स कूर्ममूर्तिर्जयति चतुर्दश-
 लोकवलिकन्दः ॥ ३ ॥ निष्प्रत्यूहमनल्पकल्पचरित-
 स्त्रैलोक्यरत्नागुहः कीडाकूर्मकलेवरः स भगवान् दि-
 य्यामन्दां मुदम् । कल्पान्तोदधिमध्यमज्जनवशाद्वास्त-
 र्पतः संलुठपृष्ठे यस्य वभूध सैकतकणच्छायं धरित्रीत-
 लम् ॥ ४ ॥ पृष्ठभ्राम्यदमन्दमन्दरगिरिप्राचाप्रकण्डयनै-
 र्निद्रालोः कमठाकृतेर्भगवतः श्वासानिलाः पान्तु वः ।
 यत्संस्कारकलानुवर्तनवशाद्वेलाक्षुलेनाम्भसां याताया-
 तमतन्निद्रजलनिधेर्नाद्यापि विधाम्यति ॥ ५ ॥ आ-
 म्यम्भहागिरिनिर्घर्षणलब्धपृष्ठकण्डयनक्षणसुधावितगा-

अपने गलेको कुछ मोड़ते ही गलेके आगेके भागपर रखी
 पृथ्वीके दृक्की भाँति हो जानेपर तथा ग्रहोंके चमक उठनेपर
 'हा यह क्या हो गया ! पृथ्वी कहाँ चली गई !' इस प्रकार
 चिन्ता उठे थे ॥ १ ॥ प्रणाम करते हुए देवताओंके मुकुटोंसे
 निकली हुई मणियोंकी कान्ति पड़नेसे लाल देहवाले उन
 कणुण-रूपधारी भगवान्को प्रणाम करते हैं जो अत्यन्त
 चमकीले दाँपहरके सूर्यकी सुन्दर किरणोंसे टकरानेसे दूसरे
 हृन्नील पर्वतके समान जान पड़ते हैं ॥ २ ॥ असीम, स्वतन्त्र
 और लेलवाड़ोंमें भरी हुई सत्तावाले, कणुण रूपवाले उन
 अनादि भगवान्की जय हो जो चौदहों लोकरूपी लताके
 कन्द हैं ॥ ३ ॥ प्रत्येक कल्पमें बिना किसी विघ्नके अपनी
 लालाएँ करनेवाले, तीनों लोकोंकी एकमात्र रक्षा करनेवाले,
 लाला करनेके लिये कणुणकी देह धरनेवाले तथा प्रलय-समयके
 समुद्रके बीचमें तैरते हुए वे भगवान् अत्यधिक सुख दे' जिनकी
 पीठपर पड़ी हुई हतनी बड़ी पृथ्वी वालोंके कण-सी जान पड़ती
 है ॥ ४ ॥ पीठपर वेगसे घूमते हुए मन्दराचलके नुकीले पथरोंकी
 सुजलाहटसे नाँद लेते हुए कणुण रूपवाले उन भगवान्के
 साँसोंके वायु आपकी रक्षा करें जिनके प्रबल वेगसे बेलाके
 बहाने लहराना हुआ समुद्र-जल आज भी शान्त नहीं होता ॥ ५ ॥
 पीठपर वेगसे घूमते हुए मन्दराचलकी रगड़से पीठ सुजलानेका
 चणिक आनन्द पाकर गहरी नाँदमें साँनेवाले तथा वेगसे गम्भीर

हनिद्रः । सुप्ताप दीर्घतरघर्घरघोरघोषः श्वासाभि-
भूतजलधिः कमठस्तस्य वोऽध्यात् ॥ ६ ॥ मेघाभूय
महाभिधमन्थनविधौ पुष्टं निजे ध्यायतो मा भू-
त्सन्दरपर्वतस्य च परिभ्रंश समुद्रस्य च । इत्यङ्गे सह
सज्जहार किल यः श्वासान्न यो रक्तनाम्नश्चावर्ति-
तकच्छपायितनसुस्त्रैस्तोकयदन्तो हरिः ॥ ७ ॥ यन्नि-
श्वाससमीरमेदुरतया दूरं समुल्लासिता धत्ते शेषभुज-
कभोगकलिता भूरानपञ्चश्रयम् । स्तोत्रे यस्य चतुर्मुखा
श्रुतिकवेः कुण्डलवमभ्यस्यति त्रौडाकर्मननुर्जगन्ति स
विभुः पायादपायाद्धरिः ॥ ८ ॥ यां धत्ते शेषनागं तद-
नु वसुमतीं स्वर्गपातालयुक्तां युक्तां सर्वैः समुद्रैर्हिम-
गिरिकनकमस्थमुपैर्नैर्गन्धैः । एतद्रक्षागुडमस्यामृत-
घटसरशं भाति वंशे सुरारोः पायाद्दः कूर्मदहः प्रकटित-
महिमा माधवः कामरूपी ॥ ९ ॥

वराहः—अष्टौ यस्य दिशो दहानि विपुलः कोशः
सुषणांचलः कास्तं केसरजालमर्ककिरणाः भृङ्गाः पयो-

दाचलो । नालं शेषमनोरगः प्रवितर्न वागनिधेर्गीकथा
तद्वः पातु समुद्ररन्ध्रवर्ण्यं त्रौडाकर्मनः केशवः ॥ ६ ॥
केदानीं दृष्टिताम्ने घनसदमदिगामोदिना दिग्दिगन्द्रा हे
मेरो मन्दराद्रे मलय हिमनिर्गं साधु यः दमाधरन्ध्रम् ।
शेष श्लाघ्योऽसि दीर्घः पृथुभुवनभगेच्छ्वर इशाङ्गैः
शिरोभिः शंसन्तोऽप्रासमुच्चैर्गति धर्गणिभृतः पातु
युष्मान् वराहः ॥ ७ ॥ दध्यहैव्यनिनम्यतीजनमनः-
सन्नोपसङ्कोचनः कुर्याद्विधमनश्चरं स भगवान्कोडाच-
तारो हरिः । यद्द्राकुरकोटिकोटिकुटीकोणांतरस्थ-
यसो पृथ्वी भान्यवदानकेनकदलालीनेय भृङ्गाङ्गना ॥ ८ ॥
न पङ्कुरालेपं कलयति धरिर्त्रोध्ययभयान्न मुक्तामादत्त-
ऽप्युगनगरभ्रंशभयतः । न धत्ते ब्रह्माण्डस्फुटनभयतो
घर्घररवं महाकोडः पायादिति मकलसङ्गांचितमुचः
॥ ९ ॥ नमस्तस्मै वराहाय हेलयाद्धरते महीम् । गुरम-
ध्यगतो यस्य मेरुः गुरुचुरायते ॥ १० ॥ न मृद्वीयान्मृद्वी
कथमिष मही पोन्निकर्णैर्मुखाग्निश्वालाभिः कतकगि-

करादे' भरनेवाले वे कपुआ वेपवाले भगवान् आपकी रक्षा करें
जिसकी सौलंके बेगमे समुद्र लहरा उठा ॥ ६ ॥ वे भगवान् विष्णु
आपकी रक्षा करें जिसने महामुद्रके मन्थनमें अपनी
पीठपर मन्दराचलके धूमके समय 'यह मन्दर पर्वत और समुद्र
होनों ही कहीं नष्ट न हों जायें' ऐसा सोचकर अपनी सौलंका
बेग कम करनेके साथ अपने श्रृङ्गांको भी निकाल लिया ॥ ७ ॥
हीलाके लिये कपुआ शरीर धारण करनेवाले वे परमेश्वर सदा
रक्षा करें जिनके श्वासांके बेगमें दूरमें ही चमकती हुई शेषनागके
कण्ठपर रक्ती हुई पृथिवी, उनपर नने हुए दुग्ध-मं सुन्दर जान
पड़ती थी, और जिनकी स्तुति करनेमें केदोंके रक्षादिना मङ्गाकी
चार मुँहवाली आर्षा भी हार मान रही थी ॥ ८ ॥ इन्द्रानुसार
रूप धारण करनेवाले, अथवा प्रभाववाले, कपुआ-शरीरवाले वे
विष्णु भगवान् आपकी रक्षा करें जिनकी पीठपर स्वर्ग, पाताल,
समुद्र, हिमालय और सुमेरु आदि पर्वतांसे युक्त पृथ्वीका धारण
करनेवाले शेषनाग-सहित रक्तवर्ण हुआ यह ब्रह्माण्ड अमृतके
पद-सा जान पड़ता है ॥ ९ ॥

वराहः—विले कमलके समान जान पड़नेवाली उस
पृथ्वीको समुद्रसे ऊपर निकालते हुए वराह-रूपधारी विष्णु
भगवान् आपकी रक्षा करें जिसमें आठ दिग्गण ही मानों
पंखुदियाँ हैं, सुमेरु पर्वत ही कोषा है, सूर्यकी किरणें ही सुन्दर
केसर हैं, मेघ ही भीरें हैं और शेषनागजी उस कमलकी

सुन्दर डपटी हैं ॥ १० ॥ 'वे भारी वमण्डके मध्ये मतवाले दिग्गज
कहाँ गए ! हे मेरु पर्वत ! हे मन्दराचल ! ॥ मलयाचल ! हे
हिमालय ! आप लोंगांका पृथ्वीका धारण करना सार्थक है, हे
शेषनाग ! तुम अपने सिरपर पृथ्वीका कितना भारी बोझ
रखते हुए हो, धन्य हो !' जैसे म्बरमे हम प्रकार हँसकर कहते
हुए, पृथिवीका धारण किए हुए वराह भगवान् आप लोंगांकी
रक्षा करें ॥ २ ॥ घमण्डी पृथ्वीकी स्त्रियोंके मनका सुख-
सन्तोष नष्ट करनेवाले वे वराह भगवान् इस संसारकी
सदा रक्षा करें जिनके दौतकी नोकपर रक्ती पृथ्वी ऐसी जान
पड़ती है मानों केतकीके उजले फूलपर कोई भारी घड़ी हो ॥ ३ ॥
'समुद्र और पृथ्वीसे घने कांचडमें मेरे लोंटनेसे यह पृथ्वी मेरी
देहमें लिपटकर ही न समाप्त हो जाय, मेरे मोथा लोंदकर खानेसे
यह सारा पाताल ही नष्ट न हो जाय—तथा मेरे शक्ति-भर
बोलने (चर्घर शब्द करने) से यह सारा ब्रह्माण्ड ही न फट
जाय' इस प्रकार सोचकर जो न इन्द्रानुसार कांचडमें लोंट
पाते हैं, न मोथा खा पाने और न स्वच्छन्दतासे बोल
ही पाते हैं ऐसे वे सिमटे-सिमटे-से रहनेवाले वराह भगवान्
रक्षा करें ॥ ४ ॥ खेल-खेलमें ही समूर्वा पृथ्वीकी स्त्रीएँ लानेवाले
उन वराह-शरीरवाले भगवान्का प्रणाम है जिनके खुरदूतने बड़े धे
कि सुमेरु पर्वत भी उनके बीचमें पड़कर छोटे कण्डकी भौंति
खरखराता था ॥ ५ ॥ 'मेरी यूनन-रूपी कसौटीसे विसक

रिरीयान्न विलयम् । न शुष्येयुः भ्वासैस्सलिलनिधयः
सस च कथं वराहो वः पायादिनि विपुलचिन्तापरिकरः
॥ ६ ॥ पातु व्रीणि जगन्ति सन्नतमकूपारात्समभ्युद्धर-
न्धात्रीं कोलकलेवरस्स भगवान्यस्यैकदंष्ट्राङ्कुरे । कूर्मः
कन्दति नालति द्विरस्तनः पत्रन्ति दिग्दन्तिनो मेरुः
कोशति मेदिनी जलजति ज्योमापि रोलम्यति ॥ ७ ॥
पातु वो मेदिनीदोला बालेन्दुधुतितस्करी । दंष्ट्रा महाव-
राहस्य पातालगृहदीपिका ॥ ८ ॥ पातु वः कण्टकोल-
केशवो यस्य निभ्वसितमारुनोद्धता । उच्छिष्टतिप्रपतनै-
रघीकूपन्केलिकन्दुकतुलामिला मुहुः ॥ ९ ॥ पातु श्री-
स्तनपत्रभङ्गिमकरीमुद्राङ्कितोरःस्थलो देवो वः स जग-
त्पतिर्मधुवधूषकत्राज्यचन्द्रोदयः । क्रोडाक्रोडननोर्नख-
शुविशदे दंष्ट्राङ्कुरे यस्य भूर्भाति स्म प्रलयाधिष-
ल्वलनलोन्मानैकमुस्ताकृतिः ॥ १० ॥ विभ्राणोऽभिन-
वेन्दुकोटिकुटिलं दंष्ट्राङ्कुरं लीलया क्रोडाकारधरो

हरिः स भगवान्भूयाद्विभूतिप्रदः । यस्योन्तिसवतः
छमाकमलिनीमालम्बमानः छणं लोलद्वालमृणालमाल-
तुलनाम्भोजे भुजङ्गेश्वरः ॥ ११ ॥ भूयादेव सतां हिताय
भगवान्कोलावनारो हरिः सिन्धोः क्लेशमपास्य यस्य
दशनप्रान्ते नटन्त्या भुवः । तारा हारति वारिदस्तिल-
कति स्वर्वाहिनी माल्यति क्रीडादर्पणति क्षपापतिरहवै-
वञ्च ताटङ्कति ॥ १२ ॥ मुक्तैर्यास्यति कुञ्चचिद्वसुमती
दंष्ट्राङ्कुरस्थेयसी कुक्षौ लोभमत्रान्यति त्रिभुवनं वदैर-
मीभिः क्रमात् । इत्यस्वल्पविकल्पमीलितमतेः कण्ठे
लुडन्तो मुहुः क्रोडाकारधरस्य कैटभजितः भ्वासानि-
लाः पान्तु वः ॥ १३ ॥ मेरुवृकेशरमुदारविगन्तपत्रमा-
मूललम्बिचलशेषशरीरनालम् । येनोद्धतकुवलयं सलि-
लान्सलीलमुत्तंसकार्थमिव पातु स वो वराहः ॥ १४ ॥
लीने धोत्रैकदेशे नभसि नयनयोः तेजसि कापि नटे
भ्वासमासोपभुक्ते मरुति जलनिधौ पादरन्मार्धपीते ।

यह अत्यन्त कोमल पृथ्वी नट क्यों न हो गई ! मेरे मुँहके
तापसे यह सुमेरु पर्वत पिघल क्यों न गया और मेरी साँसोंके
तीव्र पवनसे ये सातों समुद्र मूल क्यों न गए !' इस प्रकार
बड़े साँच-विचारमें पड़े हुए वे वराह भगवान् आपकी रक्षा करें
॥ ६ ॥ पृथ्वीको समुद्रमें से निकालकर लाते हुए वे वराह
भगवान् सदा तीनों साँसोंकी रक्षा करें जिनके कमलके
कौंकुएके समान उजले दाँतके नीचे चिपटे कधूप उस कौंकुएके
काढ़के समान, उसपर स्थित शेषनाग उस कमलके नालके
समान, दिग्गज पक्षोंके समान, सुमेरु पर्वत कांशके समान,
पृथ्वी लिले कमलके समान और आकाश मैदराते हुए
भीरोंके समान जान पड़ता है ॥ ७ ॥ बड़े भारी शूकर भगवान्का
बड़े टेढ़े चन्द्रमाकी चाँदनीकां चुराकर उजला दिग्गह देनेवाला
दाँत आपकी रक्षा करे जो ऐसा जान पड़ता है मानां पृथ्वीका
मूला है अथवा पाताल-गृहका दीपक है ॥ ८ ॥ शूकरका
मायामय शरीर धारण करनेवाले वे विष्णु भगवान् आपकी रक्षा
करें जिनकी साँसोंके वायुसे बार-बार उल्लसता-गिरती यह पृथ्वी
मैंद-सी जान पड़ती है ॥ ९ ॥ अपनी छातापर लक्ष्मीकी
स्तनोंकी चित्रकारीकी विगड़ी हुई छापवाले तथा मधु दैत्यकी
भ्रोंके मुल-कमलको उदास करनेके लिये चन्द्रादयके समान वे
संसारके स्वामी तथा जाला करनेके लिये शूकर-देह धारण
करनेवाले भगवान् आपकी रक्षा करें जिनके टेढ़े चन्द्रमाके समान
रजसे दाँतरूपी कौंकुपमें, प्रलय-समयकी गर्दीके समान समुद्रसे

निकाली गई पृथ्वी सोधा-सी जान पड़ती थी ॥ १० ॥ लीलाके
लिये शूकर-देह धारण करनेवाले तथा देवे चन्द्रमाकी भाँति
उजले दाँतवाले वे विष्णु भगवान् ऐश्वर्य दे' जिनके पृथ्वीरूपी
कमलिनीको ऊपरकी ओर फेंकनेपर उसके नीचे सिर लगाए
शेषनाग एक चणके लिये ऐसे जान पड़े माने हिलती हुई कोमल
कमलकी जड़वाले कमल-नाल हैं ॥ ११ ॥ वराह अचतारवाले वे
विष्णु भगवान् सज्जनोंकी भलाई करें जिनके दाँतपर पृथ्वीरूपी
नर्त्तकीके नाचने समय तारा उस नर्त्तकीके हारके समान,
मेघ निलकके समान, आकाश-गङ्गा हारके समान, चन्द्रमा
लिलवाड़के दर्पणके समान और सूर्य कनकूलके समान जान
पड़ते थे ॥ १२ ॥ 'यदि मैं साँस छोड़ता हूँ तो दाँतपर रखी
पृथ्वी उड़कर न जाने कहाँ चली जायगी, यदि नहीं छोड़ता तो
इसके रुकनेमें कोसमें स्थित नीनों लोकोँको बड़ा कष्ट होगा' इस
प्रकारके असमझसमें पड़े हुए शूकर देहवाले विष्णु भगवान्के
गलेमें ही रुककर मचलनेवाले वे साँसके पवन आपकी रक्षा
करें ॥ १३ ॥ वे वराह भगवान् आपकी रक्षा करें जिन्होंने
सुमेरुरूपी केशरवाले, दूरतक फैली हुई विशारूपी पक्षोंवाले और
नीचेतक फैले हुए शेषनागके हिलते हुए शरीररूपी मालवाले
इस समूची पृथ्वीरूपी कमलको खेल-खेलमें ही मानो गहना
बनानेके लिये उखाड़ छिया ॥ १४ ॥ अपने कानोंमें सारे
आकाशके समा जानेपर, नेत्रोंके किसी कोनेमें लेजके लीज हो
जानेपर, साँसोंके द्वारा पवन साँच छिप जानेपर, चुरोंके

पोत्रप्रान्तैकरोमान्तरविवरगतां मार्गैस्तत्रकपाणैः क्रो-
डाकारस्य पृथ्वीमकलितविभवं वैभवं च पुनातु
॥ १५ ॥ स जयति महावराहो जलनिधिजडरे चिरं
निमानोऽपि । येनान्नैरिष सह फणिमणैर्वैलादुद्धता
धरती ॥ १६ ॥ सिन्धुष्वङ्गावगाहः स्रुरविवरविशन्तु-
च्छतोयेषु नासः प्राप्ताः पातालपङ्के न लुडितरुचयः
पोत्रमात्रोपयोगात् । दंष्ट्राविष्टेषु नासः शिखरिषु च
पुनः स्कन्धकण्डूविनोदो येनोद्धारे धरिण्याः स जयति
धिभुताविघ्नितेच्छो वराहः ॥ १७ ॥ हरेर्लोलावराहस्य
दंष्ट्रादण्डः ॥ पातु घः । हेमाद्रिकलसा यत्र धात्री
क्षुभ्रश्रियं दधौ ॥ १८ ॥

नृसिंहः— अन्तःक्रोधोजिहान्जलनभवशिखाकार-
जिह्वावलीदमौदमहाण्डमारण्डः पृथुभुवनगुहागर्भगम्भी-

रनादः । हृष्यत्पारीन्द्रमृत्सिमुर्गजिदवतु घः सुप्रभामण्ड-
लीभिः कुर्वन्निर्धूमधूमध्वजनिचिन्तमिच व्योम रोमच्छ-
टानाम् ॥ १ ॥ आदित्या किं दर्शने प्रलयमयकृतः स्त्री-
रुनाकाशदेशाः किं चोत्कामण्डलानि त्रिभुवनवद्वना-
योद्यतानीतिभीतः । पायासुर्नागसिंहं वपुर्मरगलैर्वि-
भ्रतः शार्ङ्गपाणैर्वेष्टा रसासुरोरःस्थलद्वरगालद्रक्तका
नखा वः ॥ २ ॥ किं किं सिंहस्ततः किं नरसदृशवपुर्वैव
चित्रं गृहीतो नैतादृकापि जीवोऽद्भुतमुपनय मे देव
सम्प्राप्त एषः । चापश्चापं न चापित्यहहहहहा कर्कशत्वं
नखानामिन्धं दैत्येन्द्रवत्तः खरनखमुखरैर्जघ्निचान्यः
स योऽव्यान् ॥ ३ ॥ केदं गर्जितमेव किञ्चु दलति स्तम्भो
नृसिंहस्ततस्सोऽवाधावति कोत्र भो धनुस्ती इहंति
दैत्येभ्यश्चरम् । जलपन्तं निजगर्जितेन बलवन्स्तम्भान्नि-

हेतुके साथे भागसे ही समुद्रके पी लिए जानेपर तथा अपने
धूधनके किसी एक रौमकूपमें पृथ्वीके घुस जानेपर, उस पृथ्वीको
हूँदनेवाले, बराहरूपवाले, उन भगवान्का प्रसीम देरवर्य आप
सोनोंको पवित्र करे ॥ १५ ॥ उन भारी वराह शरीरवाले
भगवान्की जय हो जो समुद्रके गर्भमें बहुत समयतक रहकर
प्राप्ता पतदियों जैसे सोंपोंसे उलाने-पुलाने बलपूर्वक पृथ्वीको
लींचे निकले चले आ रहे हैं ॥ १६ ॥ पृथ्वीका उद्धार
करते समय अपने सुरोंमें ही सारे समुद्रोंके जलके समा
जानेसे जो समुद्रमें गोता लगाकर स्नान करनेका आनन्द न ले
सके, अपने धूधनकी नोकमें ही पातालके समूचे कीचड़के लिपट
जानेसे जो कीचड़में लोटनेका आनन्द न ले सके, अपने दूर्तोंमें
ही सारे पर्वतोंके समा जानेसे जो पर्वतोंसे रगड़कर कन्धोंको
खुलानेका आनन्द नहीं पा सके तथा इस प्रकार अपनी
व्यापकताके कारण ही जिनकी इच्छा पूरी न होने पाई ऐसे उन
वराह भगवान्की जय हो ॥ १७ ॥ लीला करनेके लिये वराह-
शरीरधारी विष्णु भगवान्का वह दौतरूपी दण्ड आपकी
रक्षा करे जिसपर सुमेरु पर्वतरूपी कलरावाली पृथ्वी तने हुए
कणके समान सुन्दर जान पड़ती है ॥ १८ ॥

नृसिंहः । अत्यन्त वेगसे दहाड़ते हुए सिंह-रूपवाले
वे दैत्यको मारनेवाले नृसिंह भगवान् आपकी रक्षा करें
जो अपने भीतर बड़े हुए कोषसे उत्पन्न अभिकी लपटोंके
समान रक्तवाली जीभसे इतने बड़े महाएडरूपी घड़ेको चाटे
आ रहे हैं, जिनके गरजनेसे संसारमें ऐसा गम्भीर शब्द होता
है जैसा गुफाके भीतर सिंहके दहाड़नेसे होता है और

जिनके गलेके फैले हुए चमकीले बालोंसे भरा आकाश ऐसा
जान पड़ता है मानों बिना धुएँकी आगसे भर गया हो
॥ १ ॥ 'अरे ! क्या आकाशमें वे प्रलय समयके भयङ्कर दस्तों
सूबे हैं ! अथवा नीनों लोंकोंका जला देनेके लिये वे उल्काएँ
आकाशमें निकल आई हैं !' इस प्रकार हड़बड़ाकर
देवताओंने नृसिंह रूप धारण करनेवाले त्रिन विष्णु भगवान्का
नृसिंह-रूप देखा उनके वे नख आपकी रक्षा करें जो चमपट्टी
हिरण्यकशिपुकी छाती फाड़नेपर उससे बड़े हुए रक्तमें सनकर
झाल-झाल हो गए हैं ॥ २ ॥ नृसिंह भगवान्को चले आते देखकर
उरके मारे सेवक जब भागकर हिरण्यकशिपुके पास आए तो
उन्हें घबड़ाते देखकर हिरण्यकशिपुने उनसे पूछा—'अरे क्या है ?'
सेवक—महाराज ! सिंह है ! हिरण्यकशिपु—तो इसमें डरनेकी
क्या बात है ! सेवक—महाराज ! मनुष्यके समान शरीर धारण
किए हैं ! बड़ा विचित्र है ! हम लोगोंने ऐसा विचित्र जीव कहीं
नहीं देखा । हिरण्यकशिपु—तां मेरे पास ले आओ पकड़कर !
सेवक—महाराज ! वह तो दूधर ही....यह आ ही गया...!
हिरण्यकशिपु—धनुष कहाँ है धनुष ? धनु...अरे ! अरे ! हाय ।
आह ! वे कितने कठोर नख हैं !' इस प्रकार अपने तीखे ।
नखोंसे जिन्होंने हिरण्यकशिपुकी छाती फाड़कर उसे मार
डाला, वे आपकी रक्षा करें ॥ ३ ॥ नृसिंहजीकी दहाड़ सुनकर
हिरण्यकशिपु पूछने लगा—यह गर्जना कहाँ हो रही है ? क्या
फट रहा है ? क्या खम्भा फट रहा है ? सेवकोंने उत्तर दिया—
नृसिंह हैं, वे इसी ओर दौड़े आ रहे हैं । हिरण्यकशिपु बोला—
अरे यहाँ कोई है ! अरे धनुष, तबवार लाओ.....' इस प्रकार

रीयावधीदेकस्मिन्क्षण एव हा नरहरिस्त्राता स
 पयाम्नु यः ॥ ४ ॥ चटच्चटिति चर्मणि च्छुमिति चो-
 च्छुनचच्छागिते धगज्जगिति मेदसि स्फुटरदोऽस्थिति
 प्रागिति । एतात्तु भवतो हरेर्मरचैरिवदुःस्थलकलम्क-
 रजपङ्कजराजकापजन्मानलः ॥ ५ ॥ चञ्चच्चगडनखा-
 ग्रभेदविगलहैरेन्द्रदहःत्तरद्रुकाभ्यक्तसुपातोद्भटमटा-
 सम्प्रान्तभीमाननः । तिर्यक्कण्टकटोरघोषघटनास-
 र्याङ्गवर्षाभवहिङ्मातङ्गनिरीक्षितो विजयते वैकुण्ठ-
 कण्ठीरवः ॥ ६ ॥ चन्द्रार्धायितनिणिघानदशनो
 श्योमायितान्तर्मुखो घालार्कयितलोचनः सुरधनु-
 लीलायितधूलतः । अन्तर्नादनिगोधपीयन्मलस्यफकूप-
 निर्यसङ्गितारङ्गफारसटाग्रहजगनः पायान्मुसिहो
 जगन् ॥ ७ ॥ जयन्ति नरसिंहस्य स्फुरन्तस्वशि-
 खाङ्कुराः । हरिणकोधकृष्टेन्दुकलाखण्डैरिवाङ्किताः ॥ ८ ॥
 दिश्यान्सुखं नरहरिर्भुवनेकवीरो यस्याहंवे दितिसुतो-

हलनोद्यनस्य । क्रोधोद्धतं मुखमवेहितुमत्तमन्वज्जामे-
 ऽभयन्निजनयेष्वपि यन्ननास्ते ॥ ६ ॥ दैत्यानामधिपे
 नखाङ्कुरकुटीकाणमधिष्ठान्मनि स्फारीभूतकरालकेसर-
 सटासङ्गानघोगकृतेः । सकोधो सविस्मयश्च सगुरु-
 र्बीडश्च सान्त स्मितं क्रीडाकेसरिणो हरेर्विजयते तत्का-
 लमालोकितम् ॥ १० ॥ दैत्यामधिपञ्चरविदारणलघ्वर-
 न्धरक्ताम्बुनिर्जरसरिध्वनजानपङ्गाः । वालेन्दुकोटिकु-
 टिलाः शुकवश्रुभासा रस्तन्तु सिंहवपुषो नखरा हरेर्वः
 ॥ ११ ॥ दंष्ट्रासङ्कटवक्त्रकन्दरललज्जिह्वस्य हव्याशन-
 ज्वालाभासुग्भृङ्गिकेसरसटाभासस्य दैत्यद्रुहः । व्याव-
 लादलवर्धिरयकशिपुकोडस्थलास्फालनस्फारप्रस्फुट-
 दस्थिपञ्चरचक्रा नखाः पान्तु यः ॥ १२ ॥ नमस्तस्मै
 नृसिंहाय दैत्यराजास्तकारिणे । अन्तःक्रोधशिला
 यस्य समुपपन्नः सटामिपात् ॥ १३ ॥ पायान्माथासु-
 मेन्द्रो जगद्विलमसां यस्तनूद्विचरिष्वज्वालाजालाव-

वद्विशालं हुण्दिरण्यकशिपुको मुद्रय मग्नेमे निकलकर दहाइ
 मारने हुण्द एक ही कलमें जिन नृसिंहजाने मार डाला, वे हा
 नरहरि आपकी रक्षा करें ॥ ४ ॥ नखरुपी दूनोंवाला विष्णुजीका
 हाथ रुपी थारा जब दैतनाथोंके शत्रु हिरण्यकशिपुकी छाती
 मारने लगा उन समय उसकी रगड़मे उम्रख हुई वह घात
 आपकी पक्षिण करे जो उसकी प्यावर पड़कर चट-चट,
 उछलने हुण्द रक्तमें पादर दम-उम, चयामें धग-धग और
 हड्डियोंमें पड़कर ३५१ रूपये कड़ा-कड़ा शब्द करने लगा
 ॥ ५ ॥ उस सिंहेकेथाले विष्णु भगवान्की जय हो जो
 अपने धञ्जल और नाथे नखोंको नोकसे फाड़ी जामी हुई
 हिरण्यकशिपुकी छातीसे धागे हुण्द रक्तमें सतकर फैली हुई
 गलेकी केसरोंसे पड़े भयङ्कर तो रहे हैं और जिनके
 निरुद्ध गला करके दहाइनेमे इसे सुलकर दिग्गजोंकी सारी
 देह धरा उड़ी और वे उनके मारे हुम्में देखने लगे ॥ ६ ॥
 वे नृसिंह भगवान् संयाचकी रक्षा करें जिनके मुखे हुण्द
 दूनों आये चन्द्रके समान देदे हैं, मुग्गका भीतरा भाग
 आकाशके सामान गहन है, नेत्र उदय होने हुण्द सूर्यके समान
 लाल-लाल हैं, भौंहें दृढ़-धनुषके समान खींची हैं तथा भीतरमे
 निकलनी हुई दहाइकी गेकनेमे जिनके गलेके फल जालेपर
 विजलीकी मेघावोंके समान केसरोंके घिरर जानेगे आकाश
 घिर-स्ता गया है ॥ ७ ॥ नृसिंहजोंके उन अश्रिणी लपटोंके
 समान धमकाले नखोंकी जय हो, जो ऐसे जान पड़ते हैं

मारने चन्द्रमाके भीतर स्थित हिरण्यपर क्रोध करके कपटकर
 सींचे हुण्द चन्द्रमाकी देवी कलाएँ हों ॥ ८ ॥ मुद्रमें दितिके
 पुत्र हिरण्यकशिपुको मारनेको तैयार हुण्द, चीन्हां भुवनोंमें
 सबमे पड़े बार वे नृसिंह भगवान् आपकी ऐश्वर्य दे जिनके
 क्रोधमे भरे मुँहको देखनेकी शक्ति जान पड़ता है उनके नखोंमें
 भी नहीं है, नभी तो वे नीचेको नवे हुण्द हैं ॥ ९ ॥ अपने नखोंके
 देहके एक कोनेमें ही राजभराज हिरण्यकशिपुके समा जानेपर
 लीला करनेके लिये सिंह वेप धारण करनेवाले उन विष्णु
 भगवान्के क्रमशः क्रोधित होने हुण्द, आश्रय करते हुण्द, लजाले
 और मुस्कराने हुण्द देखने की जय हो, जो ननकर फैली हुई
 भयङ्कर केसरोंके दिलनेमे और भी भयङ्कर रूपवाले दिखाई पड़ते
 हैं ॥ १० ॥ हिरण्यकशिपु ईश्वरकी हड्डियोंके दूटनेपर उनसे वही
 शकरुपी गङ्गाके कीचड़मे सनकर तोतेकी थाँचके समान
 जानिवाले तथा द्विनीचके चन्द्रमाके समान देदे वे सिंह वेपधारी
 विष्णुके नीचण नम्र आपकी रक्षा करें ॥ ११ ॥ दूनोंकी बाइसे घिरी
 मुँदरुपी गुफामें लपलपाती हुई जीभवाले और अश्रिणी लपटोंकी
 भीति चमकाले केसरोंका योग धारण करनेवाले, दैत्यके शत्रु
 नृसिंह भगवान्के वे नख आपकी रक्षा करें जो यलवान्
 हिरण्यकशिपुको गोदमें रखकर फाड़नेमे उसकी फटती-दूटती
 हड्डियोंके चट-चट शब्दमे और भी भयङ्कर हो गए हैं ॥ १२ ॥
 हिरण्यकशिपुका नाश करनेवाले उन नृसिंह भगवान्को प्रणाम
 है जिनके भीतरके क्रोधकी लपटें केसरके रूपमें बाहर निकल

सीदं वत भुवि सकलं व्याकुलं किन्न भूयान् । न
स्याधेदाशु तस्याधिकविकटसटाकोटिभिः पात्तमाना-
दिन्योरानन्दकन्दात्तदुपरि तुहिनासारसन्दोदवृष्टिः
॥ १४ ॥ पूर्यन्तो जलराशयो वसुमती मज्जन्यधो नुत्यते
पातालं शतधा गतं निपतन्ति ब्रह्माण्डखण्डं दिवः ।
निलिप्तेन सुरद्विषोऽस्य वपुषा मत्वेति मग्ने वहन्नुत्स-
ङ्गेन हतं हिरण्यकशिपुं सिंहो हरिः पातु वः
॥ १५ ॥ प्रोज्ज्वलन्मलान्ज्वालाविकटोरुसटाच्छटः ।
भ्वासक्तिकुलधमाभूत्पातु वो नरकेसरी ॥ १६ ॥
भूयः कण्ठावधूतिव्यनिकरतरलोत्सनक्षत्रमालावाले-
न्दुछुद्रघण्टारणितदशदिशार्दन्तिचीन्कारकारी । अ-
व्याहो धैत्यराजप्रथमयमपुरीयानघण्टानिनादो नादो
विभित्तिभेदप्रसरसरभसः कूटकग्रीरवस्य ॥ १७ ॥
वपुर्दलनसम्भ्रमात्स्वनखरं प्रपिष्टे रिपां फव यात इति
विस्मयात्प्रहितलोचनस्सर्यतः । वृथेतिकरताङ्गनाभि-

पतितं पुरो दानवं निरोच्य भुवि रेणुवज्जयन्ति ज्ञान-
हासो हरिः ॥ १८ ॥ विद्युच्चक्रकगलकंसरसटाभागस्य
धैत्यद्रुहः शोणन्नेत्रदुनाशडम्बरभूतः सिद्धाकृतः
शार्ङ्गिणः । चिरकृज्जलमर्जितर्जितककुम्भातद्दृष्टो-
दयाः संरम्भाः मुखयन्तु वः खरनखजुगणद्विषद्वन्द्वः
॥ १९ ॥ व्याधूतकेसरसटाविकगलवक्त्रं हस्ताग्रवि-
स्फुरितशङ्खगदासिचक्रम् । आविष्कृतं सपदि येन
नृसिंहकणं नारायणं तमपि विश्वमृजं नमामि ॥ २० ॥
शत्रोः प्राणानिलाः पञ्च ययं दश जयोऽत्र कः । इति
कोपादिषाताम्राः पातु वो नृदरेर्नखाः ॥ २१ ॥ सन्ध्या-
रञ्जितशीतदीधितिकलासांन्दर्यभाजो नखाः प्रीति-
पीवयन्तु कंटभरिषोः कीडानृसिंहस्य वः । धैर्यो-
स्थलपीठकुण्डिततया दीनेन दम्भोलिना सामूर्यं सकु-
तुहलं सधिनयं साश्चर्यमालोकिताः ॥ २२ ॥ ससन्ध-
रमितस्ततस्ततविहस्तहस्ताटघीनिकुससुरशमुहन्त-

पड़ी है ॥ १३ ॥ मायाकी सिंहरूपवाले वे भगवान् सारे संसारकी
रक्षा करें जिनकी देहमें केसर रूपमें निहली आगकी लपटें जब
लपलपाने लगती हैं उस समय उन्हींकी करोड़ों भयङ्कर केसरोंसे
उके हुए आनन्दके डेर चन्द्रमाले यदि संसारपर हिमकी मोटी
आरकी वर्षा न होने लगे तो बड़ो तो भस्मा, सारे संसारके प्राणी
भी न बचाकुल हो जायें ! ॥ १४ ॥ 'यदि मैं इस देवताओंके
शत्रुकी देहको कैंकटा हूँ तो समुद्र उमड़ पड़ेगा, पृथिवी धँस
जायगी, पाताल लुप्त हो जायगा, ब्रह्माण्डके दुकड़-दुकड़े हो जायेंगे
और स्वर्ग नीचे गिर पड़ेगा।' यह सोचकर ही मानो मरे हुए
हिरण्यकशिपुको गोदमें ही रखले रहनेवाले सिंहरूपधारी विष्णुजी
आपकी रक्षा करें ॥ १५ ॥ वेगसे जलती हुई आगकी लपटोंके समान
भयङ्कर बड़ी-बड़ी घनी केसरवाले वे नृसिंहजी आपकी रक्षा करें
और अपनी साँसेसे कुलाचल पर्वतको भी उछाले दे रहे हैं ॥ १६ ॥
दिशार्थोंकी दीवालोंने मानो फाड़ ढाखनेके लिये वेगसे दौड़ते
हुए भयङ्कर नृसिंह भगवान्की वह घोर दहाड़ आपकी रक्षा करे
जो उनके वार-वार हिलते हुए गलेमें पड़ी फहराती हुई मालाके
समान ताराओंके समूहमें बँधे चन्द्रमारूपी घण्टेके उस शब्दके
समान है जिसे सुनकर दशों दिशाएँ और दिग्गज चिरघाड़
उठते हैं तथा जो ऐसी जान पड़ती है मानो हिरण्यकशिपुके
यमजोकर पर सर्वप्रथम चढ़ाई करते समय बजाए जाते हुए
घण्टेका नाद हो ॥ १७ ॥ जब अपनी देहके फाड़े जानेके
अवसे हिरण्यकशिपु नृसिंह भगवान्के नखमें घुसकर छिप

गया तो वे आश्चर्यसे 'कहाँ गया, कहाँ गया ?' कहने हुए चारों
ओर देखने लगे, जब यह न दिखी दिया तो 'अरे, सब व्यर्थ
हो गया !' ऐसा कहकर जो उन्होंने भुँकलाकर हाथ फटककरा तो
यह गाँचे गिर पड़ा, उस समय उस हिरण्यकशिपु धैर्यका
पृथ्वीपर धूलकी भीति पड़ा देखकर हँस पड़नेवाले उन नृसिंह
भगवान्की जय हो ॥ १८ ॥ चित्रालोंके समूहके समान भयङ्कर
केसरोंके भारवाले, लाल-लाल नेत्रोंसे अग्निकी घराघरी करनेवाले,
तीक्ष्ण नखोंमें हिरण्यकशिपुकी छाती खीरनेवाले, सिंहरूपवाले
तथा हिरण्यकशिपुके शत्रु विष्णुजीके फड़कते हुए गलेकी
दहाड़से दिग्गजोंके घमण्डको कुचल देनेवाली वे चेष्टाएँ आपका
मुख पकूँचावे ॥ १९ ॥ इस संसारकी रचना करनेवाले उन
नारायण भगवान्का प्रणाम करता हूँ जिन्होंने एकाएक हिलती हुई
केसरोंसे भयङ्कर मुखवाला, ऐसा नृसिंह-वेष प्रकट कर दिया
जिसके हाथोंके अग्रभागमें शङ्ख, गदा, तलवार और चक्र
चमचमा रहे थे ॥ २० ॥ नृसिंह भगवान्के वे नख आपकी रक्षा
करें जो मानो यह विचारकर कोधसे लाल-लाल हो रहे हैं कि
'शत्रुके प्राणवायु तो पाँच ही हैं और हम दस हैं, अतः कैसे
शत्रु हमें जीत पावेगा' ॥ २१ ॥ सन्ध्याकालीन लाल
चन्द्रमाकी कलाकी सुन्दरताके समान काम्तिवाले वे लीलाके
लिये नृसिंह रूपधारी, कंटभासुरके शत्रु (विष्णु) के नख
आपका आनन्द बढ़ावें जिन्हें हिरण्यकशिपुकी छाती फाड़नेमें
असमर्थ बज्रने डाह, कुतूहल, नम्रता और अचरजपूर्वक देखा

जसिक्तवल्गुःस्थलः। स्फुरद्भरगभस्तिभिः स्थगितसप्त-
सप्तधृतिः समस्तनिगमस्तुतो नृहरिस्तु नः स्वस्तये
॥ २३ ॥ सुरासुरशिरोरत्नकान्तिविच्युरिताङ्गये ।
नमस्त्रिभुवनेशाय हरये सिंहरूपिणे ॥ २४ ॥

वामनः—अङ्घ्रिदण्डो हरेरुर्ध्वमुत्तिस्रो यलिनग्रहे ।
विधिविष्टरपद्मस्य नालदण्डो मुदेऽस्तु नः ॥ १ ॥ अप-
सर पृथिवि समुद्राः संवृणुताम्बुनि भूधरा नमत ।
वामनहरिलघुतुन्दे जगतां कलहः स यः पायान् ॥ २ ॥
अव्याद्वो वामनो यस्य कौस्तुभप्रतिविम्बिता । कौतु-
कालोकिनी जाना जाडरीव जगन्प्रयी ॥ ३ ॥ आरुष्टः
शिक्षया नखैर्विलिखितः स्पृष्टः कपोलस्थले मांसी
दामभिराहतः प्रनिदिशं कामस्सलीलं पथि । इत्थं
वारविलासिनीकृतपरीहासस्य दैत्याध्वरे विष्णोर्धाम-

॥ २२ ॥ अपनी श्रेष्ठ चमकीली केसररूपी किरणोंसे सूर्यके
प्रकाशको छीप देनेवाले तथा वेदोंमें स्तुति किए जाने हुए वे
नृसिंह भगवान् हमारे लिये कल्याणकारी हैं जो हृदयद्रोहके
मारो यहाँ-वहाँ फैले हुए शत्रुके व्याकुल हाथोंरूपी वनको
काट डालनेके लिये पुरुषार्थी हैं तथा देवताओंके शत्रु
हिरण्यकशिपुके कटे हुए हृदयमें घटने हुए रक्तमें जिनका
बलःस्थल रँग गया है ॥ २३ ॥ तीनों लोकोंके स्वामी
उन नृसिंहरूपी विष्णुको प्रणाम हैं जिनके चरण देवता और
राक्षसोंके मुकुटोंके रत्नोंकी काम्निमें चक्रमका उठे हैं ॥ २४ ॥

वामनः यलिको योधने समग्र ऊपर उठा हुआ
भगवान् विष्णुका वह चरण हम लोगोंको सुख दे जो ऐसा
जल पड़ता है मानो महाजलको उत्पन्न करनेवाले कमलका
नालदण्ड हो ॥ १ ॥ छोट्टेमें पेटवाले वामन भगवान्के
विषयमें उठा हुआ वह सारे संसारका कलह आपको रक्षा करे
जिसमें यह घोषणा की गई कि 'हे पृथिवी ! दूर हट जाओ,
हे समुद्रो ! आप अधमा जल मैंभालिए और हे पर्वतों ! आप
और नष्ट जाइए।' ॥ २ ॥ वे वामन भगवान् आपकी रक्षा करें
जिनके चमचमाने हुए कौमुभ मणिमें तीनों लोकोंकी परछाईं
पड़कर ऐसा कौतुक उत्पन्न कर रही थी मानो तीनों लोक
उनके पेटमें स्थित हों ॥ ३ ॥ यलिके शत्रुमें चारों ओर लीलापूर्वक
घूमने हुए, वामन-वेशकी शोभा धारण करनेवाले उन भगवान्
विष्णुकी हँसीकी छटाएँ आपको रक्षा करें जिनसे वेश्याओंने
उनकी चाँदी खींचकर, नगोंसे उनका देहमें चिह्न बनाकर, उनके
गालोंको छूकर तथा सिरपर रस्सियों मारकर परिहास किया

भवेपविभ्रमभृतो हासोर्मयः पान्तु वः ॥ ४ ॥ कस्व
ब्रह्मन्नपूर्वः क्व च तथ वसतिर्यासिला ब्रह्मसृष्टिः कस्ते
नाथो ह्यनाथः क्व च तथ जनको नैथ तातं स्मरामि ।
किं तेऽभीष्टं ददामि त्रिपदपरिमिता भूमिरल्प किमेत-
न्त्रैलोक्यं भावगर्भं यलिमिदमवदद्वामनो वः स पायात्
॥ ५ ॥ सर्वप्रन्थिचिमुक्तसन्धिधिलसद्वत्ःस्फुरत्कौ-
स्तुभं तिर्यन्नाभिसरोजकुङ्कुमलपुटीगम्भीरसामध्वनि ।
पात्रावातिसमुत्सुकेन यलिना सानन्दमालोकितां पा-
याद्वः क्रमवर्धमानमहिमाश्रयं मुरारेर्धनुः ॥ ६ ॥ ब्रह्माण्ड-
च्छत्रदण्डः शतधृतिभवनाम्भोरुहो नालदण्डः क्षोणी-
नांकूपदण्डः क्षरदमरसरिप्पट्टिकाकेतुदण्डः । ज्यो-
तिश्चक्रालदण्डलिभुवनधिजयस्तम्भदण्डोऽङ्घ्रिदण्डः ।
धोयस्त्रैविक्रमस्ते वितरन्तु विबुधद्वेषिणां कालदण्डः

था ॥ ४ ॥ आप् हुए वामन भगवान्को देखकर यलिके
उनसे पूछा—हे विचित्र रूपवाले तुम कौन हो ? वामन—मैं
ब्रह्मण हूँ। यलि—तुम्हारा निवास-स्थान कहाँ है ? वामन—यह
सारी ब्रह्माकी रचना मेरा निवास-स्थान ही तो है। यलि—
आपका स्वामी कौन है ? वामन—मैं अनाथ हूँ, मेरा कोई स्वामी
नहीं है। यलि—आपके पिता कौन हैं ? वामन—मुझे अपने
पिताका स्मरण नहीं है। यलि—तुम क्या चाहते हो, तुम्हें क्या
है ? वामन—केवल तीन पग पृथ्वी चाहता हूँ। यलि—यह तो
बहुत कम है, यह क्या तुमने माँगा ? वामन—भरे, उसमें तीनों
लोकोंको माँगनेका भाव है। इस प्रकार यलिके कहनेवाले वे
वामन भगवान् आपकी रक्षा करें ॥ ५ ॥ दानके योग्य पात्रको
हैदनेकी चिन्ता करनेवाले यलिके प्रसन्नतापूर्वक देखा जाता हुआ
विष्णुका वह वामन-वेष आपकी रक्षा करे जिसकी बीच
छातीमें कौस्तुभ मणि चमचमा रहा है, जिसमें नाभिके निकले
कमलमें बैठे ब्रह्माजीके साम-गानका गम्भीर स्वर सुनाई
पड़ रहा है तथा जो धीरे-धीरे बढ़कर इतना बड़ा हो गया
कि देखकर अश्वरज होने लगा ॥ ६ ॥ वामन वेषवाले त्रिविक्रम
भगवान्का वह उठा हुआ संसूचा पैर तुम्हारा कल्याण करे
जो सारे ब्रह्माण्डरूपी क्षुत्की डण्डोंके समान, ब्रह्माको उत्पन्न
करनेवाले कमलके नालदण्डके समान, पृथ्वीरूपी नावके
मस्तूलके समान, ऊपरसे भर-भर बहती हुई आकाश गङ्गारूपी
पताकामें लगे दण्डके समान, सारे नक्षत्रोंसे भरे आकाशरूपी
पट्टिकी धुरीके समान और तीनों लोक जगत लेनेके परचाव गाढ़े
हुए विजयस्तम्भके समान जान पड़ता है तथा जो देवताओंके

॥ ७ ॥ यस्मादाक्रामतो धां गरुडमणिशिलाकेतुदरदाय-
मानादाश्च्योतन्त्यावभासे सुरसरिदमला वैजयन्तीच
कान्ता । भूमिष्ठो यस्तथान्या भुवनगृहमहास्तम्भशोभां
दधानः पातामेतो पयोजोदरलालिततलां पङ्कजाक्षस्य
पादौ ॥ ८ ॥ स्वस्ति स्वागतमर्थ्यहं वद विभो किं
दीयतां मेदिनी का मात्रा मम चिकमत्रयपदं दत्तं जलं
दीयताम् । मा देहीत्युशनाश्रवीक्षरिरयं पात्रं किमस्मा-
त्परश्चेत्येवं बलिनाचिंतो मखमुखे पायान्स वा वामनः
॥ ९ ॥ स्वामी सन्भुवनत्रयस्य धिक्कति नानाऽसि किं
याश्चया बद्धा विश्वसृजा त्वयैव न कृतं तदीयतां ते
कृतः । दानं श्रेष्ठतमाय तुभ्यमतुलं बन्धाय नो मुक्तये
विहसो बलिना निरुत्तरतया हीतो हरिः पातु यः

॥ १० ॥ हस्ते शस्त्रकिणाङ्गिनाऽरुणविभाकिमोरिनां-
स्थलो नाभिग्रन्थदालिधिलोचनयुगप्रोद्धतशीतातपः ।
वाह्मिश्चित्तवह्निरेव तदिनि व्याप्तिर्य चाक्यं कंचस्ता-
रैरध्ययनैर्हरेर्न्यालिमनः पाथाज्जगद्दामनः ॥ ११ ॥

परशुरामः—किं दाभ्यां किमु कार्मुकापनिपदा भर्ग-
प्रसादन किं किं वेदाधिगमन भास्वनि भृगाव्यंश च किं
जन्मना । किं वानेन ममाद्भूतेन तपसा पीडां कृता-
म्नाऽपि चेद्विप्राणां कुरुतेऽन्तरित्यनुशयो रामस्य
पुण्यातु यः ॥ १ ॥ कुलाचला यस्य महीं द्विजंभ्यः
प्रयच्छतः सोमदयत्वमापुः । यभूवुरुत्सर्गजलं समुद्राः
स रैणुकैः धियमातनोतु ॥ २ ॥ द्वारं कल्पतदं गृहे
सुरगर्वां चिन्तामणीनङ्गदे पीयूषं सरसोपु विप्रवदनं

शत्रुघांका नाश करनेके लिये कालदण्ड ही है ॥ ७ ॥ आकाशकां
और बढ़ते हुए कमलके समान नेत्रवाले वामन भगवान्‌के
कमलके भीतरी भागके समान लाल-लाल वे दोनों चरण रक्षा
करें जिनमेंसे एक चरण मरकत मणिमें बने उस केंदुदण्डके
समान जान पड़ता है जिसपरसे फरती हुई निर्मल आकाश-
गङ्गा सुन्दर पलाका-सी जान पड़ती है तथा दूसरा धरतीपर
रक्षा पर ऐसा सुन्दर जान पड़ता है मानों चर्चितां भुवनरूपी
बड़े भारी घरका छम्भा हो ॥ ८ ॥ वामनरूपी भगवान्‌ने आते ही
आशीर्वाद देनेकी मुद्रा में बलिसे कहा—आपका कल्याण हो ।
बलिने कहा—आह, आपका स्वागत है । वामन—मैं भिक्षार्थी
हूँ । बलि—कहिए माध ! आपका क्या दिया जाय ! वामन—
मुझे पृथ्वी चाहिए । बलि—कितनी चाहिए महाराज ! वामन—
मेरे पैरोंसे मापकर केवल तीन पग ! बलि—अच्छा महाराज
दिमा, (शुक्राचार्य पुरोहितसे) जल हीजिए ताँ ! शुक्राचार्य—
अरे मत दो, ये विष्णु हैं । बलि—ताँ इनसे अच्छा दानका
चात्र दूसरा कौन होगा ! इस प्रकार अपने यज्ञमें बलिने जिनका
पूजन किया था वे वामन भगवान्‌ आपकी रक्षा करें ॥ ९ ॥
'आप तीनों लोकोंके स्वामी होते हुए भीख भोगकर क्यों अपने
इशों अपनेको छोड़ा (हीन) बनाते हैं ! अथवा संसारको अपने
हाथोंसे रक्ते हुए भी आपने जो वस्तु नहीं बनाई वह आपको
कहाँसे दी जाय ? आप जैसे दानके श्रेष्ठ पात्रको दिए गए दानका
फल तो बन्धनोंसे छूटना है, बन्धनमें पड़ना नहीं, और मैं आपको
इतना बड़ा दान दे रहा हूँ फिर भी आप ही मुझे बौधते हैं !'
बलिकी इन बातोंको सुनकर निरुत्तर होनेसे लज्जित होते हुए वे
वामन भगवान्‌ आपकी रक्षा करें ॥ १० ॥ 'अरे, इनके हाथोंमें

शस्त्र धारण करनेका चिह्न है अर्थात् ये सुदर्शन चक्रधारी हैं, इनकी
छातीपर लाल-लाल चकमकाहट है अर्थात् ये कीम्बुभ मणि
धारण करनेवाले हैं, इनकी नाभिपर भीरे मेंदरा रहे हैं अर्थात्
इनकी नाभिमें कमल है, इनकी आँखोंमेंसे एकमे दण्डक और
एकसे गर्मा निकल रही है अर्थात् चन्द्रमा और सूर्य दोनों इनके
नेत्र हैं, अरे ये विष्णु भगवान्‌ बाहुकरी लहरोंके भीतर द्विपे
बड़बानल हैं, इन्हें दान न देना', आगे हुए वामन भगवान्‌की
दान देनेसे बलिको रोकते हुए शुक्राचार्यकी इन बातोंको
अनमनी करके अपने ऊँचे म्वरके वेदपाठ आदिमें बलिके
मनको अपनी ओर आकर्षित करनेवाले वे वामनरूपी भगवान्‌
संसारकी रक्षा करें ॥ ११ ॥

परशुराम : 'मेरी इन भुजाओंके बलवान्‌ होनेसे, मुझे
घनुबंधारूपी वेदोंके रहस्यका ज्ञान होनेसे, शिष्योंकी कृपा-
शक्ति प्राप्त होनेसे, वेदोंको पढ़नेसे, त्र्यंके समान तेजस्वी
शृगुर्वंशमें जन्म लेनेसे अथवा मेरी इतनी बड़ी अश्रुत तपस्यासे
ही क्या लाभ हुआ ! जब कि यमराज अभी भी माह्मणोंको कष्ट
दे ही लेता है !' परशुरामके भीतरका इस प्रकारका सोच-विचार
आपका स्वस्थ रखे ॥ १ ॥ वे रैणुकदेवोंके पुत्र परशुरामजी
ऐश्वर्य दे जिन्होंने माह्मणोंको इतनी अधिक पृथ्वी दानमें
दी कि कुलाचल पर्वतसे ही एक-एकके भागकी सीमा बँधी गई
और जिनके दानका सङ्कल्प करते समय छँदे हुए जलसे सारे
समुद्र भर गए ॥ २ ॥ सारे त्रिगोंका नाश करनेवाले, माह्मणोंको
सजानेवाले मलि तथा भृगुके वंशके आभूषणके समान
वे परशुराम भगवान्‌ आपकी रक्षा करें जो केवल इसलिये तपस्या
करते हैं कि माह्मणोंके द्वारपर कल्पवृक्ष लग जायें, उनके घर-घर

विद्याश्चतस्रो दश । एवं कर्तुमयं तपस्यति भृगोर्वेशा-
यनं सो मुनिः पायाद्वोऽखिलराजकृत्यकरो भूदेवभूषा-
मणिः ॥ ३ ॥ नाशिष्यः किमभूद्भवः किमभवन्नापुत्रिणी
रेणुका नाभूद्विभ्वकामुकं किमिति वः प्रीणातु राम-
त्रया । विषाणां प्रतिमन्दिरं मणिगणोन्मिश्राणि दण्डा-
हतेनाग्नीनां स मया यमोऽपि महिषेणाभ्यासि नो-
द्वाहितः ॥ ४ ॥ नो सन्ध्यां समुपासते यदि तदा
लोकापयादाभयं सा चेन्स्त्रीक्रियते भविष्यति तदा
राजन्यवीजे नतिः । इत्थं चिन्तयतश्चिरं भृगुपतेर्निश्वा-
सकोष्णीकृतो नेत्रान्तःप्रतिविम्बकोणसालिलः सन्ध्या-
ञ्जलिः पातु वः ॥ ५ ॥ पायाद्वो जमदग्निवंशतिलको
वीरमतालङ्कृतो रामो नाम मुनीश्वरो नृपवधे भास्व-
भुडारायुधः । येनाश्रयदत्तादिताकृदधिरैः सन्तपिताः

कामधेनुपै हों जायें, उनके भुजपद्ममें चिन्तामणि जड़ जायें,
उनका सत्तया-न्यायलियामें अमृत भर जाय और मुँहमें ही चढ़ें।
विद्या, रहने लगें ॥३॥ 'शिवजी शिष्य-रहित हो क्यों न हुए !
रेणुका पुत्ररहित क्यों न हुई ! विश्व कर्मशालासे रहित क्यों
न हुआ ! जम कि मेरे बरसे यमराज अपने भैंसका दण्डसे पाँटता
हुआ उसपर समुद्रका मणियाँसे मिला हुआ पाना लाकर
माझणोंके घर-घर नहीं पहुँचा आता !' धीपरशुरामजीकी
हस प्रकारकी गद्गान आपका प्रसन्न करे ॥ ४ ॥ 'यदि
सन्ध्या नहीं करना तो सारे संसारमें बर्षा निन्दा होगी, यदि
सन्ध्या करना हूँ तो राजाओंके हाँ वंशवाले सूर्यका सिर गवाया
पड़ेगा', सन्ध्या-समय देरतक ऐसे साँच-विचारमें पड़े हुए
परशुरामजी हाँ सौंसाँसे गरम हाँकर उनके नेत्रके कोमिले बहने
हुए आँसूरूपी जल-द्वारा दी जाती हुई वह अञ्जलि आपकी
रक्षा करे ॥५॥ जमदग्निवंशके तिलक-से सुन्दर जान पड़नेवाले,
वीर-प्रससे सुशोभित होनेवाले, 'राम' नामवाले, राजाओंकी
मारते समय चमचमार्ता हुई कुल्हाड़ीरूपी शस्त्रवाले, वे मुनियोंके
स्वामी परशुरामजी आपकी रक्षा करें जिन्होंने सम्पूर्ण मारे गए
राजाओंके रक्तसे पिनारोंको सन्तुष्ट किया और अस्वयज्ञमें भक्तिके
मारे समुद्रसे घिरी घृष्टीको ही हन्तकार (दानकी वस्तु) बना
दिया ॥६॥ सदा युद्धसे ही प्रेम रखनेवाले, परशुरूपी शस्त्रवाले
नथा राजाओं का नाश करनेवाले वे परशुरामजी आपका ऐश्वर्य हूँ
जिन्होंने सहजमें ही राजाओंमें श्रेष्ठ सहस्रार्जुनके शिर, पैर और
कन्धोंके पाससे घाहुँ काटकर (सहज ही सहस्रार्जुन
घरकी जड़ें, फुनगी तथा चारों ओरकी डालियाँ काटकर उसे

पूर्वजा भक्त्या चाश्वमेले समुद्रवसना भूर्हन्तकारी
कृता ॥ ६ ॥ लीलोन्मूलितमौलिमस्तचरणं मूर्धस्वपि
द्वामाभूतामास्कन्धादपवाहुशास्त्रमभितः कृत्वा सहस्रा-
र्जुनम् । यश्चक्रे भुवने तमेव विजयस्तम्भं कुडारायुधो
दत्ता वः शिवमाहवैकरसिको रामः स राजान्तकः ॥७॥

रामः—अधिपञ्चवटीकुटीरवर्त्तिस्फुटितेन्द्रीवरसुन्द-
रोरुमूर्त्तिः । अपि लक्ष्मणलोचनैकसख्यं भजत ब्रह्म
सरोरुहायताक्षम् ॥ १ ॥ उत्फुल्लामलकोमलोत्पल-
श्यामाय रामामनःकामाय प्रथमाननिर्मलगुणग्रामाय
रामान्मेने । योगारूढमुनीन्द्रमानससरोरुंसाय संसार-
विध्वंसाय स्फुरदोजसे रघुकुलोत्तंसाय पुंसे नमः ॥२॥
शूषाणां भूरिधात्रां धितमधिपतिना प्रस्फुरन्नीमतारं
स्फारं नेत्रानलेन प्रसभनियमितोष्मापमीनभ्वजेन । रा-

पर्वतकी चाँटियाँपर गढ़ाकर) उसे ही अपना विजयस्तम्भ
बनाया ॥ ७ ॥

रामचन्द्र : पञ्चवटीमें कुटीके भीतर रहनेवाले, कमलके
समान विशाल नेत्रवाले उस ब्रह्मका भजन करो जो जिले हुए
नीले कमलके समान सुन्दर कान्तिवाले हैं और केवल लक्ष्मणजीके
नेत्रोंसे ही जिनकी मित्रता है अर्थात् जिन्हें लक्ष्मणजी एकटक
निहारते रहते हैं ॥१॥ लिले हुए स्वच्छ नीले कमलकी पैलुकी
समान श्याम रहनेवाले, सीतार्जकके मनको प्यारे लगनेवाले,
संसारमें प्रसिद्ध सुन्दर गुणोंवाले, यद्धे-यद्धे यौग्री और मुनियोंके
हृदय रूपा मानसरोवरमें इसकी भीति विहार करनेवाले, संसार
(जन्म-मरण) का नाश करनेवाले तथा रघुकुलकी शोभा
बढ़ानेवाले, राम-नामवाले तेजस्वी पुरुषको प्रणाम है ॥२॥ वस
तिरवाले रावणके सिर कटानेवाली वन्दरोंकी सेना या शिवजीकी
देह परवर्ध दे जो यद्धे तेजस्वी रीछोंके स्वामी जाम्बवान्से युक्त है
अथवा अत्यन्त तेजस्वी वज्रोंके स्वामी चन्द्रमासे युक्त है, जिसमें
तार नामका भयङ्कर वन्दर बूढ़ रहा है अथवा जिसमें तीसरे
नेत्रकी भयावर्त्ता पुतली चमक रही है, नल सेनापतिको पाकर जो
अत्यन्त बलवाली जान पड़ती है अथवा जो तीसरे नेत्रकी चागसे
चमचमा रही है, ऊँचा-ऊँचा लहरनेवाला समुद्र जिसका रास्ता
रोंके हुए है अथवा कामदेवने धनुष उठाकर जिसपर दठाव चढ़ाई
कर दी है, जो रामजीके वशमें रहनेवाली है अथवा जो पार्वतीजीके
अधीन है, जो कुमुद वन्दरके रहनेसे अत्यन्त उजली है अथवा
जो कुमुद फूलके समान उजली है, जो नील और सुगंधित वानरोंसे
सुशोभित है अथवा जो सुन्दर नीले रङ्गके गलेसे सुशोभित

मायसं पुरारेः कुमुदशुचि सलन्तीलसुग्रीवमङ्गं शिवङ्गं
वापि सैन्यं दशवदनशिरश्चेदहेतुः श्रियेऽस्तु ॥३॥ एतां
ह्यौ दशकण्ठकण्ठकदलीकान्तारकान्तिच्छिदा वैदेहीकु-
ञ्जकुम्भकुङ्कुमरजःसान्द्रारुणाक्काङ्कितौ । लोकत्राणवि-
धानसाधुसवनप्रारम्भयूपा भुजां देयास्तामुरुविक्रमां
रघुपतेः ध्रैयांसि भूयांसि वः ॥ ४ ॥ कनकनिकगभासा
सीसयालिकिताङ्गो नवकुचलयदामश्यामधर्णाभिरामः ।
अभिनव इव विद्यन्मण्डितो मेघस्वरदः शमयतु मम
तापसर्वतो रामचन्द्रः ॥५॥ कल्याणानाग्रिधानहूलिमल-
मथनं पायनं पावनानां पाथेयं यन्मुमुक्षोः सर्पादि परप-
द्माप्तये मन्थितस्य । विश्रामस्थानमेकं कवियरथससां
जीवनं सज्जनानां यीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतयं
रामनाम ॥ ६ ॥ कल्याणोष्णससीमा कलपतु कुशलं
कालमेवाभिरामा काचित्साकेतधामा भवमहनगति-
कलान्तिहारिप्रणामा । सान्दर्भ्यहीणकामा धृतजनकसु-

॥ १ ॥ रामचन्द्रजीकी अत्यन्त शक्तिशाली वे दोनों भुजाएँ
आपकी अत्यन्त सुख-सम्पत्ति दें जो दस तिरवाले रावणके गले
रूपी केलेके घने घनका सुन्दरता नष्ट करनेवाली हैं, जो जानकीजीके
दोनों स्तनोंमें लगे कुङ्कुमकी रज जगनेसे सुन्दर लाल चिह्नवाली
हैं और जो सीनों लोकांकी रक्षाके लिये साधुओं-द्वारा किए
जाते हुए व्रतके धारण-वृत्त हैं ॥ ४ ॥ गिले हुए नीले कमलकी
भौंति अत्यन्त सुन्दर नीले रङ्गवाले वे रामचन्द्र सप आरसे मेरे
दुःख दूर करें जो जानकीजीसे आलिङ्गन करके सानेकी कसीरांके
समान दिखाई देते हुए ऐसे सुन्दर जान पड़ते हैं मानो प्रियलाले
भरे नये बादलके टुकड़े हों ॥ ५ ॥ कलियुगके पापोंका
नाश करनेवाला, भैरुण्ड धानेके लिये चले हुए मोरकी
इच्छावाले पुरुषके मार्गका भोजन, सुख-सम्पत्तिका भण्डार,
पवित्र वस्तुओंमें सबसे अधिक पवित्र तथा धर्मरूपी वृक्षका बीज
यह राम-नाम आपका कल्याण करे जिसका वर्णन करनेपर
ही कवियोंकी वाणीको शान्ति मिलती है ॥ ६ ॥ अधिकसे
अधिक कल्याण और सुख-सम्पत्तिवाले, काले मेघोंकी भौंति
सुन्दर दिखाई देनेवाले, अयोध्यामें रहनेवाले, प्रणाम करने-
मात्रसे जीवोंकी संसारके आदे-देदे मार्गसे चलनेकी धकावट दूर
करनेवाले, अपनी सुन्दरतासे कामदेवको भी लज्जित करनेवाले
और दसों दिशाओंमें प्रसिद्ध यशवाले—'राम' नामवाले
वे भगवान् कुशलता दें जिन्हें श्रीजानकीजी अपनी चमल
तिरछी चितवनसे देखती हैं और देवता प्रणाम करते हैं ॥ ७ ॥

तासादरापाङ्गधामा दिक्षु प्रख्यातभूमा दिविषदभिनुता
देवता रामनामा ॥ ७ ॥ कारुण्यामृतामृतनीरमाश्रितजन-
थाचातकानन्दं शार्ङ्गखण्डलचापमभ्युज्जभवाग्नीन्द्रा-
द्विहोष्टदम् । चारुस्मरमुखोल्लसजनकजासांदाग्निनी-
शोभितं श्रोणामाभ्युदमाश्रयेऽखिलजगत्संसारनापाप-
हम् ॥ ८ ॥ कृमां मूलवदालवालवदपां राशिलतावहि-
शो मेघाः पञ्चवयःप्रसूनफलवधत्तत्रसूर्येन्दवः । स्थामि-
न्द्योमततः क्रमे मम कियाष्टुन्वेति गां मारुतैः सीता-
स्येपणमादिशन्दिशतु वो रामः सलज्जः धियम् ॥ ९ ॥
नमो रामपदाम्भोजं रेणवो यत्र सन्ततम् । कुर्वन्ति
कुमुदमीनिमरण्यगृहमधिनः ॥ १० ॥ परिणयविधौ
भङ्गकृत्वानङ्गद्विषो धनुरप्रणी जनकसुतया दत्तां करुणै
कजं हृदि धारयन् । कुसुमधनुषा पाशेनैव प्रसह्य यशी-
कृताऽघनतवदो रामः पायान्त्रपाचिनयान्वितः ॥११॥
यालकीडनमिन्दुशंखधनुर्भङ्गापाधि प्रकृता ताते कानन-

मेघके समान जान पड़नेवाले उन श्रीरामचन्द्रजीकी मैं शरणा
लता हूँ जो द्यारूपी अमृतके समान जलसे भरे हुए हैं, आपने
भक्त और लक्ष्मीरूपी जानकको सन्तुष्ट करनेवाले हैं, जिनका
'शार्ङ्ग' नामवाला धनुष है। इन्द्रधनुषके समान है, जो ब्रह्मा,
अग्नि, इन्द्र आदि देवतारूपी मोरोंको सन्तुष्ट करनेवाले हैं,
अत्यन्त प्रसन्न मुखवाली जानकीजीरूपी धिजलीसे सुन्दर दिखाई
देनेवाले हैं तथा सारे संसारकी तपन (कट) भण कर देनेवाले
हैं ॥ ८ ॥ सीताको हूँडनेके लिये आदेश देते समय जब
हनुमान्जीने कहा कि 'हे नाथ ! कव्यारूपी जड़वाला, समुद्ररूपी
धालेवाला, दिशारूपी लतावाला, मेघोंरूपी पल्लवाला,
ताराओंरूपी फूल और सूर्य-चन्द्ररूपी फलवाला यह आकाशरूपी
वृक्ष मेरी उछालके सामने कितना है !' तब उनकी इस बातको
सुनकर लज्जा जानेवाले रामचन्द्रजी आपको प्रेरवर्त दें ॥ ९ ॥
श्रीरामचन्द्रजीके उस चरणकमलको प्रणाम है जिससे उड़ी हुई
रज वनमें रहनेवाले गृहस्थोंको कुमुदिनीका आनन्द देता थी अर्थात्
रामचन्द्रजीके चन्द्रमाके समान मुखके सामने उनके कोमल चरण
खिली हुई कुमुदिनीसे जान पड़ते थे ॥ १० ॥ विवाहके समय
कामदेवके शत्रु शिवजीका धनुष तोड़कर सामनेसे आती हुई
जानकीजी-द्वारा पहनाई गई जयमाला हृदयमें धारण करते हुए,
नक्षत्रपूर्वक लजाकर नाचें मुँह कर लेनेवाले वे रामचन्द्रजी रक्षा
करें जो ऐसे जान पड़ते हैं मानो फूलोंका धनुष धारण करनेवाला
कामदेव अपने बन्धनसे उन्हें बलपूर्वक बाँध रहा हो ॥ ११ ॥

सेवनावधि कृपा सुग्रीवसख्यावधि। आका वारिधिव-
न्धनावधि यशो लङ्केशनाशावधि श्रीरामस्य पुनातु
लोकवशता जानक्यपेक्षावधि ॥ १२ ॥ यस्तीर्थानामुपा-
स्त्यागलितमलभरं मन्यते स्म स्वमेघं नाज्ञासीज्जज्ञिरे
यन्ममचरणरजःपादपूतान्यमूनि। पादस्पर्शनं कुर्वन्क-
टिति विघटितग्राधभावामहत्यां कौसल्यासूनुरूनं
अपनयतु स घः श्रेयसा च श्रिया च ॥ १३ ॥ योऽद्वा
षोडावधीत्तान्सपदि पलभुजः सम्पराये परा ये येना-
येनाश्रितानां स्तुतिरधनमितेशानचापेन चापे। लङ्का-
ङ्कारहर्त्ता ककुभि-ककुभि यः कान्तया सीतयासीदुनो
हृनोऽथ हृष्टः स विभुरवतु घः स्थःसभार्यः सभार्यः
॥ १४ ॥ यो रामो न जघान वल्लसि रणे तं राघवं सा-
यकैर्हृषस्य प्रणिघासरं वसति सा तस्या ह्यहं राघवः।
मन्यास्ते भुवनावली परिवृता द्वीपैः समं सप्तभिः स
भेयो विदधातु नलिभुवनशालैकचिन्तापरः ॥ १५ ॥

श्रीरामजीका वह खेस जिसमें उन्होंने शिवजीका धनुष तोड़
चाका, वह उल्लास, जो बन जाने समय भी था; वह नम्रता,
जो पिताके प्रति थी; वह कृपा, जिसमें सुग्रीवसे भी मित्रता
की गई; वह आज्ञा, जिसमें समुद्रमें भी पुल बंध गया; वह
बरा, जो राघवका नाश होनेमें यदा; वह संसारमें लिप्त रहना
बिना करे, जिसके कारण वे वनोंमें सीताके विवाहमें रोंते फिरे
॥ १२ ॥ अपने पैरमें छूकर पाथर घना हुई अहम्पाका उद्धार
करते हुए वे कौसल्याके पुत्र रामचन्द्रजी अपनी शोभा और
प्रेमवर्षसे आपके दुःख दूर करें जो यह तो जानते हैं कि तीर्थोंमें
स्नान करनेसे मेरे सब पाप धुल गए, पर यह नहीं मानते कि
मेरे ही चरणोंकी धूलि लगनेसे वे सब तार्थ पवित्र हो रहे
हैं ॥ १३ ॥ युद्धमें मोक्षभरी शत्रुओंका विनाश करनेवाले,
शिवजीका धनुष बटानेवाले, बड़े-बड़े भाव्यशालियोंसे स्तुति की
जानेवाले, लङ्काकी सारी शोभा धूलमें मिला डालनेवाले, सीताके
विवाहसे पहले तो सर्वत्र दुःख होनेवाले किन्तु उसके परचाह
शत्रुका नाश करके अपनी प्राणप्रियासे मिलकर प्रसन्न होनेवाले
तथा देवताओंकी सभामें सम्मान प्राप्त करनेवाले व्यापक भगवान्
रामचन्द्र भगवता जानती सहित आपकी रक्षा करें ॥ १४ ॥
'राघवके हृदयमें सदा जानकी बसती है, जानकीके हृदयमें मैं
बसता हूँ और मेरे हृदयमें सानां ह्रीं और चौदहों भुवन रहते
हैं, अतः मेरे वाक्यके लगने ही सबका नाश हो जायगा', इस प्रकार
सीतां लोकोंकी नचानेकी चिन्ता करते हुए जिन्होंने युद्ध-भूमिमें

राज्यं येन पदान्तलघ्नतृणवत्यक्तं गुरोराख्या पाथेवं
परिगृह्य कार्मुकचरं घोरं वनं प्रस्थितः। स्वाधीनः श-
शिर्मालिचापविषये प्राप्तो न वै विक्रियां पायाहः ॥
विभीषणाग्रजनिहा रामाभिधानो हरिः ॥ १६ ॥ वन्दा-
महे महेशानचरुडकोदण्डखण्डनम्। जानकीहृषयानन्व-
खन्दनं रघुनन्दनम् ॥ १७ ॥ स्वर्णैणाजिनशायिनो यो-
जितनयनो दशास्यदिग्भागे। मुहुरथलोकितचापः
कोऽपि दुरापः स नीलिमा शरणम् ॥ १८ ॥

सीता—उन्मृष्टं कुचसीमि पत्रमकरं दृष्ट्वा हठा-
लिङ्गनात्कोपो मास्तु पुनर्लिखाम्यमुमिति स्मेरे रघूणां
वरे। कोपेनारणितोऽधुपातदलितः प्रेम्णा च विस्ता-
रितो दत्तो मैथिलकन्यया दिशतु नः क्षेमं कटाक्षा-
ङ्कुरः ॥ १ ॥

हनुमान्—अशेषलहापतिसैम्यहन्ता श्रीरामसेवा-
चरलैककर्त्ता। अनेकदुःखाहतलोकगोप्ता त्वसौ हृद-

भी राघवके हृदयमें बाध नहीं मारा वे रामचन्द्रजी कल्याण
करें ॥ १५ ॥ विभीषणके पड़े भाई राघवको मारनेवाले वे
'राम' नामवाले भगवान् आपकी रक्षा करें जिन्होंने अपने पिताकी
आज्ञा मानकर सारे राज्यको वल्लके छोरमें लगे पार्श्वकी भाँति
खंड दिया, एकमात्र धनुषका सहारा लेकर जो भयङ्कर वनको चल
पड़े तथा चन्द्रमाका मुकुट पहननेवाले शिवजीका धनुष तोड़कर
सबको जीत लेनेपर भी जिन्हें तनिक भी घमण्ड नहीं
हुआ ॥ १६ ॥ उन रामचन्द्रजीको प्रणाम करता हूँ जिन्होंने
शत्रुजीका अत्यन्त कठोर धनुष तोड़ डाला और जो जानकीजीका
हृदय प्रसन्न करनेके लिये चन्दन हैं ॥ १७ ॥ उन किसी
अत्यन्त कठिनतासे प्राप्त होनेवाले भोजनपनकी शरण सेता हूँ
जो सोनेके मृगकी खासपर सोए हुए भी दस्त मुँहवाले राघवकी
दिशा (दक्षिण) की ओर देखकर बार-बार अपने धनुषको
ताकते हैं ॥ १८ ॥

सीता : बलपूर्वक आलिङ्गन करनेसे स्तनोंकी चित्रकारी
मिटि हुई देखकर 'जानकीजीको क्रोध न हो' ऐसा सींचकर
'मैं फिरसे वैसी ही चित्रकारी किए देता हूँ ?' ऐसा कहकर
हैंसते हुए रामजीको तिरछी चितवनसे देखती हुई जानकीजीके
वे कटाक्ष हम लोगोंको ऐश्वर्य दे जो क्रोधके मारे लाल-लाल,
आँसू गिरनेसे भीगे हुए और प्रेमके कारण फैले हुए हैं ॥ १ ॥

हनुमान् : राघवकी सारी सेनाका नाश करनेवाले, श्री-
रामजीके चरणोंकी सेवा करनेवाले और अनेक प्रकारके दुःखोंसे

मांस्तव सौख्यकर्ता ॥ १ ॥ कृतक्रोधे यस्मिन्नमरनगरी
मङ्गलरवा नवातङ्गा लङ्का समजनि वनं वृश्चति सति ।
सदा सीताकान्तप्रणतिमतिविख्यातमहिमा हनुमान-
ध्याहः कपिकुलशिरोमण्डनमणिः ॥ २ ॥

रामकृष्ण—आतः काकोदरो येन द्रोधापि करुणा-
त्मना । पूतनामारण्ययातः स मेऽस्तु शरणं प्रभुः ॥ १ ॥
मदितरावणकंसां सरयूयमुनाचिहारिणां देवा । अर्पित-
विप्रकुमारौ हरिपतिहरिकेतनप्रियां वन्दे ॥ २ ॥ यः
पूतनामारण्यलब्धकीर्तिः काकोदरो येन विनीतदर्पः ।
यशोदयालङ्कृतमूर्तिरव्यापतिर्यदूनामधवा रघूणाम् ॥ ३ ॥

बलभद्रः—उष्णालु कचिद्वर्कधामनि मनाङ् निद्रालु
शीतानिले हालानां गृह्यालु शुम्बदसकृज्जालु जाया-
मुखम् । नित्यं निष्पतयालु तिर्यगवनीशय्याशयालु क्षणं
गीतेभ्यः स्पृहयालु धामधवलं दीने दयालु श्रये ॥ १ ॥

नष्ट होते हुए संसारकी रक्षा करनेवाले वे हनुमान्जी आपका
सुखी रखें ॥ १ ॥ वन्दोंके कुलरूपी सिरमें अड़े मणिके
समान अव्यक्त श्रेष्ठ वे हनुमान्जी आपकी रक्षा करें जो
सीतापति रामजीके चरणोंको प्रणाम करनेमें अपना मन लगाए
रहते हैं, जिनकी महिमा सारे संसारमें प्रसिद्ध है तथा जिनके
क्रोधपूर्वक अशोकवाटिकाको उजाड़ते समय लङ्कामें एक नये
प्रकारका भय छा गया और देवताओंके नगरमें आनन्दसे
गाने-बजानेका स्वर गूँजने लगा ॥ २ ॥

राम और कृष्ण : वे दयालु कृष्ण भगवान् मुझे शरण दें
जिन्होंने सबसे द्रष्टा करनेवाले कालिय नागकी भी रक्षा की और जो
पूतना राक्षसीको मारनेके लिये प्रसिद्ध हैं तथा पवित्र नामवाले और
शुद्धमें यश पानेवाले वे रामचन्द्रजी मुझे शरण दें जिन्होंने अव्यक्त
निद्रा और अपराध करनेवाले कौपकी भी रक्षा की ॥ १ ॥ क्रमशः
रावण और कंसका भव्न करनेवाले, सरयू और यमुनामें विहार
करनेवाले, माह्यणोंको उनके मरे हुए पुत्र देनेवाले तथा सुग्रीव
और अर्जुनके अव्यक्त प्यारे उन दोनों देवों (राम और कृष्ण)की
प्रणाम करता हूँ ॥ २ ॥ पूतनाको मारकर यश पानेवाले,
नागके घमण्डको चूर्ण करनेवाले तथा अशोक-द्वारा सजाई गई
सुन्दर देहवाले वे यदुवंशके स्वामी (कृष्णजी) अथवा
पवित्र नामवाले, युद्धमें यश पानेवाले, वीठ कौएका घमण्ड नष्ट
करनेवाले तथा यश और दयासे सजी हुई सुन्दर देहवाले वे रघु-
वंशके स्वामी (रामचन्द्रजी) रक्षा करें ॥ ३ ॥

बलभद्र : दीनोंपर दया करनेवाले, कहीं सुबकी कड़ी भूपमें

निष्पान्याशु हिमांशुमण्डलमधः पीत्वा तदन्तःसुधां
हन्वेनं चयकं हर्षाच्चित्ति हलापानाय कान्दहलान् । भां
वेष द्विजराजि मादृशि सुरास्पृशंऽपि न श्रयसं मां
मुञ्चति तदर्थितो हलधरः पायादपायाज्जगन् ॥ २ ॥
प्रमोत्रामितरेवतीमुखगतामाम्वाद्य कादम्यरीमुन्मत्तं
कचिदुन्पतन्कचिदपि श्राम्यन्कचिन्प्रस्त्रलन् । रक्तापा-
ङ्गमधीरलाङ्गलमलिश्यामाम्बराडम्यरं क्रेशं नः फवली-
करोतु सकलं पाकाभिरामं महः ॥ ३ ॥ फालाग्रेण समु-
द्धरन्कुरुपुरं दसप्रमादं हन्स्मारं स्मारमनादरांकि-
मचिदां तां तां किरन्सुस्मितम् । संहारोऽसमये कुतो-
ऽयमिति तैर्निर्मुक्तदपः स्तुतः शान्ता दीनदयार्निधिः
स भगवान्पायान्प्रलम्भान्तकः ॥ ४ ॥

कृष्णः—अकृत्या कः कपाटं प्रहरति कुटिले माध-
वः किं वसन्तो नो चक्री किङ्कुलालो नहि धरणिधरः

किञ्चित् उष्ण होनेवाले, ठण्डे वायुमें थोड़ा सोनेवाले, हल ग्रहण
करनेवाले, पत्तोंके मुखका बार-बार घुम्बन करनेमें लगानेवाले,
सदा ही ऊँची-नीची गृधियोंके चिड़चिड़ेपर मौजेवाले और गानेसे भी
थोड़ा प्रेम करनेवाले उस उज्ज्वल नेत्रोंमें मैं शरण लेता हूँ ॥ १ ॥
हल धारण करनेवाले वे बलभद्र सदा सारे संसारकी रक्षा करें
जिन्होंने चन्द्रमण्डलका नाँव गिराकर उसमेंका सब अमृत पीकर
जब मदिरा पीनेके लिये उसे खेल-खेलमें ही प्याला बना
लिया तब चन्द्रमा तिनसे यह प्रार्थना करके ही छूट पाए कि 'हे
देव ! मैं द्विजराज हूँ, मुझसे मदिरा सू भी गई तो मेरा कल्याण
यहीं है अतः मुझे कृपया छोड़ दीजिए' ॥ २ ॥ प्रेमपूर्वक
रेवतीके हुँहको नचाकर उसमेंकी मदिरा चखकर, मतवाले होकर
कहीं घूमते, कहीं गिरते, कहीं उठते हुए, लाल नेत्रवाले, चञ्चल
हलवाले तथा भीरोंके समान श्याम वस्त्र पहननेवाले वे
सिद्धियोंसे शोभित तेज हमारे सब दुःख नष्ट कर दें ॥ ३ ॥
प्रलम्भासुरको मारनेवाले तथा दीनोंपर अव्यक्त दया करनेवाले वे
वे भगवान् बलभद्र रक्षा करें जिन्होंने मूर्ख कीरियोंकी अपमान-
भरी बोलीका स्मरण कर-करके एक-एक बातपर मुस्कराते हुए
कुरुपुरको अपने हलकी नोकसे खींचकर उन घमण्डियोंका
घमण्ड धूर कर डाला और तब 'अरे यह असमयमें कैसे
प्रसन्न होने लगा' इस प्रकार बरते हुए, घमण्ड छोड़कर उनके
प्रार्थना करनेपर प्रसन्न हुए ॥ ४ ॥

कृष्ण : जैसे ही कृष्णजीने सत्यभामाका द्वार खटखटाया
तो सत्यभामा भीतरसे बोली—कौन उँगलियोंसे किवाड़पर

किं विजिह्वः फलीन्द्रः । नाहं घोराहिमदीं किमुन खग-
पतिनां हरिः किङ्करीन्द्र इत्येवं सत्यभामाप्रतिवचन-
जिनः पातु वक्षकपाणिः ॥ १ ॥ अतर्साकुसुमोपमेय-
कान्तिर्यमुनातीरकदम्बमध्यवर्त्ती । नयगोपवधुविनोद-
शाली धनमाली वितनोतु मङ्गलं वः ॥ २ ॥ अन्नमोह-
नमौलिधूर्णनयलन्मन्दारचिस्संजनः स्तब्धाकर्णदण्डिह-
र्षणमहामन्त्रः कुरङ्गीदशाम् । दृष्यद्दानवदुयमानदिधि-
पद्वारदुःखापदां भृशः कंसरिपोर्यपोह्यतु योऽश्रे-
यांसि वंशीरयः ॥ ३ ॥ अभिनयनवनीतमीतमानाप्रनेत्रं
धिकचनलिनलक्ष्मीरुपधिसानन्द्यफजम् । हृदयभवन-
मध्ये योगिभिर्ध्यानमग्नं नयमगनतमालश्यामलं कञ्जि-
वीडे ॥ ४ ॥ अभिनयनवनीतस्निग्धमापीनदुग्धं दधि-
कणपरिदिग्धं मुग्धमङ्गं मुरारेः । दिशतु भुवनकृच्छ्रच्छे-

खटवट करना है? पाहरसे श्रीकृष्णजी योंले—मैं हूँ माधव ।
सत्यभामा—माधव कौन? क्या यस्तुत हो? श्रीकृष्ण—नहीं
बकी (वक्र धारण करनेवाला) हैं । सत्यभामा—क्या कुहार
हो? श्रीकृष्ण—नहीं, मैं धरणीधर (गुह्यांक) धारण करनेवाला)
हूँ । सत्यभामा—क्या दो जीभवाले साँप हो? श्रीकृष्ण—नहीं
मैं भयङ्कर साँपका मर्दन करनेवाला हूँ । सत्यभामा—क्या गरुड़
हो? श्रीकृष्ण—नहीं मैं हरि (विष्णु) हूँ । सत्यभामा—अरे,
मन्दर हो? यानचीनमें इस प्रकार सत्यभामासे हारे हुए वे
कृष्णजी आपकी रक्षा करें ॥ १ ॥ अलक्ष्मीके फूलकी कान्तिके
समान श्याम रङ्गवाले चे घनमाली (श्रीकृष्णजी) आपका फन्दा
करें जो यमुनाके तटपर कदम्बके नीचे लड़े हुए नई-नई
गोपियोंसे मनयहलाव करते हैं ॥ २ ॥ कंसके शत्रु भगवान्
श्रीकृष्णकी वंश्यासे निकले हुए वे स्वर आप लोगोंके दुःख दूर
करें जो गोपियों के भीतर घुमकर उन्हें मोहिन करके उनके
सिर हिला-हिलाकर उनके माथेमे मन्दारपुष्प गिरा देने हैं,
जो मृगके समान नेत्रवाली स्त्रियोंको ज्यों की त्यों बुला लेने
और उनकी रक्षिको प्रसन्न करनेके लिये माने मन्त्र ई और
जो अमृत मन्त्रवाले शङ्खसे कट पाने हुए देवताओंकी भारी
विपत्तियोंके अन्त हैं ॥ ३ ॥ भगवान् कृष्णके वस ताजे
मखनको चाहनेवाले, लाल-लाल नेत्रवाले तथा अन्वन् प्रसन्न
मुँहको प्रणाम करना है जो गिले हुए कमलकी मुन्दरनासे मानां
होद कर रहा है, योगी लोग अपने हृदयरूपी घरमें ध्यान करके
ही जिसे देख पाते हैं तथा जो स्पर्श आकाश और तमालके
समान श्याम रङ्गवाला है ॥ ४ ॥ संसारके साते दुःख दूर करनेवाला

दिनापिच्छगुच्छच्छुवि नवशिखिपिच्छालाच्छित्तं वा-
च्छित्तं वः ॥ ५ ॥ अम्ब आम्बसि तिष्ठ गोरसमहं
मथ्नामि मन्थानकं प्रालम्ब्य स्थितमीश्वरं सरभसं दीना-
ननो वासुकिः । सासूर्यं कमलालया सुरगणः सानन्द-
मुद्यद्भयं राहुः प्रैक्षत यं स घोऽस्तु शिवदो गोपालयालो
हरिः ॥ ६ ॥ अधोन्मीलितलोचनस्य पिवतः पर्याप्तमेकं
स्तनं सद्यःप्रस्तुतदुग्धदिग्धमपरं हस्तेन सम्मार्जतः ।
मात्रा चाङ्गुलिलालितस्य चिवुके स्मेरायमाणे मुले
विष्णोः क्षीरकणाम्युधामधवला दन्तद्युतिः पातु वः
॥ ७ ॥ अवलोकितमनुमोदितमालिङ्गितमङ्गनाभिरनु-
रागैः । अधिवृन्दावनकुञ्जं मरकतपुञ्जं नमस्यामः ॥ ८ ॥
अचेमव्यापाराकलनमनुगीस्पर्शमचिरादनुन्मीलितस्तनुप्र-
करघटमायासमसकृत् । विधीव्याञ्जालीविपदपतयैक-

तमालके गुच्छोंकी कान्तिके समान कान्तिवाला तथा मोरोंकी
नई-नई पंखोंसे सजा हुआ वह श्रीकृष्णका मुख आपकी
इच्छाओं पूर्ण करे जो तत्काल निकला हुआ मखन पानेसे सिग्ध
है, अभी ही दूध पी चुका है और जिसमें अभी भी दूधके कण
लिपटे हैं ॥ २ ॥ 'हे माँ! तुम धक गई हो, डहर जाओ, अब
मैं दूध मधे देता हूँ' ऐसा कहकर मथनी हाथमें लेते हैं जिन्हें
वासुकिने यह सोचकर अमृत दीन हाँकर देखा कि 'कहीं फिर
मुझे मथनीमें न लिपटना पड़े', लक्ष्मीने यह सोचकर ईर्ष्याके
साथ देखा कि 'फिर मेरी कोई दूसरी सौत (लक्ष्मी) न निकल
आवे', देवताओंसे यह सोचकर प्रसन्नतासे देखा कि 'फिर अमृत
पीनेको मिलेगा' और राहुने यह सोचकर डरके साथ देखा
कि 'फिर सिर कटनेका समय आया जान पड़ता है,' वे गोपके
याक्षक कृष्णजी आपको सुख दें ॥ ६ ॥ आधी आँखें भूँदकर, जी
भरकर माँका एक स्तन पीते हुए, दूध भरते हुए, दूसरे स्तनपर
हाथ फेरते हुए तथा मानाकी उँगलियोंसे ठोड़ी सहलाए जानेपर
मुस्कराने हुए श्रीकृष्णजीके दाँतोंकी वह कान्ति आपकी रक्षा करे
और अपने तेजसे दूधकी दूँतोंके समान चमचमा रही है ॥ ७ ॥
मरकत मणिके डेरकी भाँति श्याम रङ्गवाले उन कृष्णजीको
प्रणाम करना है जिन्हें वृन्दावनके कुञ्जोंमें गोपियोंने बड़े
प्रेमसे देखा, जिनकी वंशसा की और जिनका आलिङ्गन किया
॥ ८ ॥ खेहपूर्वक सङ्कटमें पड़ी हुई व्रीषदीकी विपत्ति दूर
करनेके लिये गरुड़के चिह्नवाली पताकावाले कृष्ण भगवान्का
वह तत्काल वक्षका धुनगा हमारी रक्षा करे जिसमें न तो वेमका
दिखना दिखाई पड़ा, न तुरी दिखाई दी और न बार-बार

प्रणयिनः पदानां निर्माणं पतनपतिकेतोरवतु नः ॥ ९ ॥
अव्यक्तमहर्मुपास्य बभूव कश्चिन्स्वं लब्धवर्णमव-
गत्य कृतार्थमानी । सद्यस्त्रिभङ्गललितस्फुरणादमन्दन-
न्दोन्मथया जडतयैव वयं कृतार्थाः ॥ १० ॥ अस्मिन्कुञ्जे
विनापि प्रचलति पवनाद्वर्त्तते कोऽपि नूनं पश्यामः किं
न गत्येत्यनुसरति गणे भीतभीतेऽर्भकाणाम् । तस्मि-
न्नाधासजो वः सुखयतु विलसज्जीलया कैटभारिर्व्यात-
न्वाना मृगारिप्रवलधुरधुरावावरोद्ग्राशिनादान् ॥ ११ ॥
आताम्रे नयने स्फुरन्कुचभरः श्वासो न विधाम्यति
स्वेदाम्भःकणदन्तुरं तव मुखं हेतुस्तु नो लक्ष्यते ।
धिकौ घेद मनः स्त्रिया इति गिरा कष्टां प्रियां भीषयै-
स्तस्यास्तन्मृगकातरैकणपरिस्पृष्टो हरिः पातु वः
॥ १२ ॥ आनन्दधामनि खिदेकरसेऽद्वितीये तस्मिन्प-
देऽस्तु मम चित्तमगोचरेऽपि । यत्सद्भजस्थितिजुषां
सुहृषां कुमारानीनामधीनमिव गोचरतामुपैति ॥ १३ ॥

आनन्दमाधतमायत्रलोचनानामानीलमावलिनकन्धर-
मात्तवंशम् । आपादमासुकुटमाकलिनामूर्त्ताधमाकार-
माकलयताममुमान्तरः ॥ १४ ॥ आनन्देन यशोदया
समदनं गोपाङ्गनाभिश्चिरं साशङ्गं चलविद्विषा सकुसुमं
सिद्धैः पृथिव्याकुलम् । संप्र्य गोपकुमारकैः सकलैः
पौरैः सुरैः सस्मितं यो दृष्टः स पुनातु वां मधुरिपुः
प्रोत्तिसगोवर्धनः ॥ १५ ॥ इन्द्रावरवलश्यामसिन्दुरा-
नन्दकन्दलम् । वन्दारुजनमन्दारं वन्देऽहं यदुतन्दनम्
॥ १६ ॥ उत्कुलमानसरसोरुहचारुमध्यार्थनयः मधुवनभ-
रद्यतिहारिणीभिः । राधाविलाचनकटाक्षपरम्पराभि-
र्दृष्टो हरिस्तव सुखानि तनोतु कामम् ॥ १७ ॥ अंता-
लम्यतवाप्रकुरण्डलधरं मन्दोद्यतधूलतं किञ्चित्कुञ्ज-
कोमलाधरपुटं साविप्रसारीक्षणम् । आलोलाकुलिप-
ल्लवैर्मुललिकामापूरयन्तं मुवा मूले कल्पनरोस्त्रिभङ्ग-
ललितं ध्याये जगन्मोहनम् ॥ १८ ॥ कठिनतरदामवद-

मूलोंको सँजोने-सँभालनेका परिश्रम ही करना पड़ा ॥ ९ ॥
दिलाई न पड़नेवाले तथा माया-जालसे परे रहनेवाले निर्गुण
ब्रह्मकी उपासना करके कोई अपनेको भले ही कृतकृत्य समझकर
धन्य हो जायँ पर हम तो उन तिरछे खड़े हुए श्रीकृष्णकी
भीँकीके दर्शनसे उत्पन्न हुए आनन्दकी मस्तामी ही
अपनेको धन्य समझते हैं ॥ १० ॥ राधाके प्रिय और कैटभके
शत्रु वे श्रीकृष्णजी आपको सुख पहुँचावें जिन्होंने खेल-खेलमें
ही कुञ्जमें छिपकर निहके समान ऐसा भयङ्कर घुरघुर शब्द किया
कि साधके सब खासवाल ऐसा कहकर डरके मारे एकके पीछे
एक होकर उस कुञ्जकी ओर चल पड़े 'यहाँ कुछ आहट हो रही
है, वायु भी नहीं बहता, अचरय हो कोई इस कुञ्जमें होगा,
बसो, देखें, कौन है !' ॥ ११ ॥ 'तुम्हारे नेत्र जाल हैं, स्तन
ऊपर-नीचे हो रहे हैं, साँस नहीं धम रही है और मुँहपर
पसीनेकी बूँदें निकल आई हैं, कुछ समझ में नहीं आता
क्या कारण है ! धिक्कार है ! खोके मनकी बात कौन जान
सकता है !' अपनी कही हुई इस बातसे कोपित प्रियतमाको
फटकारते हुए वे श्रीकृष्णजी आपकी रक्षा करें जिन्हें तत्काल
■ वह थड़ी कातर दृष्टिसे देखने लगी ॥ १२ ॥ उन भगवान्‌के
चरणोंमें मेरा चित्त रू जाय जो आनन्दके भयङ्कार हैं,
प्रकाररूप हैं, सदा एकसे रहते हैं, जिनके समान कोई दूसरा
नहीं है, जो इन्द्रियोंसे नहीं जाने जाते और जो इस रूपमें
दिखाई पड़ते हैं मानो बजमें रहनेवाले सब मित्रों और

वासकोंके वशमें हों ॥ १३ ॥ बड़े-बड़े नेत्रवाली स्त्रियोंको
आनन्द देनेवाले, रयाम रङ्गवाले, भुके हुए गाल और ऊँचे
कन्धोंवाले, धोष्ठ वंशमें उत्पन्न तथा सिरसे घैरतक घनृतके ठरके
समान जाम पड़नेवाले श्रीकृष्णजी हम लोगोंके हृदयके भीतर
आकर अपना रूप दिखावें ॥ १४ ॥ मधु राक्षसका मारनेवाले
वे कृष्ण भगवान् आपको पवित्र करें जिन्हें गोवर्धन पर्वत
उठाते समय यशोदाने आनन्दसे, गोविधौने काम-भाषने,
कंसने शक्ति होकर, सिद्धोंने फूल धरमाकर, पृथिवीमें व्याकुल
होकर, ग्वालवालोंने ईप्साके साथ, गौँबवालोंने दवापूर्वक
और देवताओंने मुखराइटके साथ देखा था ॥ १५ ॥
नीले कमलकी वैशुडीके समान रयाम रङ्गवाले, लक्ष्मीतीका
आनन्द अस्यधिक बढ़ानेवाले तथा यदुर्वशियोंको आनन्द
देनेवाले उन श्रीकृष्णको प्रणाम करता हूँ जो भक्तोंकी इच्छा पूर्ण
करनेके लिये मानो कल्पवृक्ष हैं ॥ १६ ॥ वे कृष्णजी आपकी
इच्छाएँ पूर्ण करें और आपको सुख दें जिन्हें राधाजी अपनी
उस तिरछी चितवनसे देख रही हैं जिसने मानो मानसर-
वरमें खिले हुए कमलसे निकलनेवाले भीरोंकी शोभा चुरा ली
हो ॥ १७ ॥ मैं उन श्रीकृष्णजीका ध्यान करता हूँ जो कल्पवृक्षके
तले तिरछे खड़े होकर प्रसन्नतासे अपनी चञ्चल उँगलियोंसे
मुखीमें स्वर भरते हैं, जिनके बाएँ कानमें कन्धेतक फुण्डल
लटकता है, जिनकी भीँहें कुछ ऊपरकी खिंची हुई हैं, जिनके नेत्र
बड़े-बड़े और बौँके हैं, जिन्होंने वंश फूँकनेके लिये अपने

नलेवासन्देहदायिनो यस्य । राजन्ति यलिविभङ्गाः स
पातु दामोदरो भवतः ॥ १६ ॥ कण्डालिङ्गमङ्गलं घन-
कुचाभोगोपभोगोत्सवं श्रोणीसङ्गमसौभगश्च सनतं
मत्प्रेयसीनां पुरः । प्राप्तुं कोऽयमिनीर्षयेव यमुनाकृते
यलाद्यः स्वयं गोपीनामहरदुकूलनिचयं कृष्णः स
पुष्पातु नः ॥ २० ॥ कनककलशस्यञ्जले राधापयोधर-
मण्डले नयजलधरश्यामामात्मयति प्रतिविम्बिताम् ।
अस्तिनसिचयप्रान्तभ्रान्त्या मुहुर्मुहुर्कान्तपञ्चयति जनि-
तम्रीडाहासप्रियाहसिनो हरिः ॥ २१ ॥ कपोले पञ्चालीं
पुलकिनि विधातुं व्यथसितः स्वयं श्रीराधायाः करक-
लिनवर्त्तिर्मधुरिपुः । अभूद्वक्त्रेन्द्रो यन्निहितनयनः
कम्पितभुजस्मनेतस्सामर्प्यं तदभिनवरूपस्य जयति
॥ २२ ॥ कस्तूरीतिलकं ललाटपटले यत्स्थले कौस्तु-
भं नासाग्रे वरमौक्तिकं करतले वयं करे कङ्कणम् ।

साँधके काँमल छोड़को कुछ सिकोड़ लिखा है और जो साँ
संसारको मोहित किए हुए हैं । ॥ १८ ॥ वे दामोदर भगवान्
आपकी रक्षा करें जिनके पदपर शोभित इन्देवाली शिवजीकी
देखकर यह भ्रम होने लगा है कि रस्सीमे कसकर योंधे
जानेके कारण उसकी ही तीन साँठें पड़ गई हैं ॥ १९ ॥ 'मेरी
प्यारी गोपियोंको गल्ले लगानेका सुख, उनके पुत्र स्तनोंके
उपभोगका आनन्द और उनके निमग्न भावसे संयोग करनेका
सौभाग्य मेरे रहने कीन पाना चाहना है' इस प्रकारकी
ईर्ष्यासे ही मानो जिसने यमुनाके तीरपर बलपूर्वक गोपियोंके
बल पुराए हैं वे कृष्णजी हमारा पालन करें ॥ २० ॥
सँभके कलशोंके समान कान्तिवाले राधाके स्तनोंपर पड़ती हुई
नये मेघोंके समान श्याम रहवाली अपनी परछाईके भ्रमसे
काली साड़ीका आँचल समझकर उसे बार-बार हटानेका प्रयत्न
करते हुए उन कृष्ण भगवान्की जय हो जिन्हें देखकर लजानी
और हैसती हुई राधा उनकी खिल्ली उड़ा रही हैं ॥ २१ ॥
उस निराले चित्रकारके रूपवाले श्रीकृष्णजीकी उस कलाक
जय हो कि राधाजीके पुलकित गालोंपर चित्रकारी करनेके लिये
उधोही हाथमें नुलिका लेकर नैपार हुए कि उनके सामने पहुँचने
ही से एकटक होकर चित्रकारी भूलकर उनका कमल जैसा
झूँह ताकने लगे और उनके हाथ काँपने लगे ॥ २२ ॥ गोपियोंसे
घिरे हुए तथा ग्वालोंमें धूँदामणिके समान उन कृष्णजीकी
जय हो जो अपने योंधे माथेपर कस्तूरीका तिलक,
छातीपर कौस्तुभ मणि, नाकके नथनेमें मोतीका केसर,

सर्वाङ्गे हरिचन्दनं सुललितं कण्ठे च मुक्तावलीं विभ्र-
न्त्रीपरिवेष्टितो विजयते गोपालचूडामणिः ॥ २३ ॥
कस्थं कृष्णमवेहि मां किमिह ते मन्मन्दिराशङ्कया युक्तं
तत्रवनीतभाजनपुटे न्यस्तः किमर्थं करः । कर्तुं तत्र
पिपीलिकापनयनं सुप्ताः किमुद्रोधिता याला घत्सगतिं
विवेकमिति सञ्जल्पन्हरिः पातु वः ॥ २४ ॥ काम्ने
विलासिनि कलावति पञ्चनेत्रे नित्यं त्वयि प्रियतमे
रमते मनो मे । इत्थं भवन्तमुकभायतया वदन्तं श्री-
कृष्ण मां धुधजना अपि हा हसन्ति ॥ २५ ॥ कालिन्दी-
पुलिनोदरेषु मुसली यावद्वतः क्रीडितुं तावत्कर्षुरिका-
पयः पिय हरे वर्धिष्यते ते शिखा । इत्थं बालतया
प्रतारणपराः धत्वा यशोदागिरः पायाद्भः स्वशिखां
स्पृशन्प्रमुदितः क्षीरेऽर्धपीते हरिः ॥ २६ ॥ कालिन्दाः
पुलिनेषु केलिकुपितामुत्सृज्य रासे रसं गच्छन्तोमनु-

हाथमें बंसी, गलेमें मोमियोंकी माला, हाथमें कङ्कन तथा
सारी देहमें हरिचन्दनके लेपसे सुरोभित हैं ॥ २३ ॥ कोई
गोपी अपने घर आकर रही गुराते हुए कृष्णसे कहती
है—'तुम कीन हो ?' कृष्णजी बोले—'मैं कृष्ण हूँ'
गोपी—'तुम यहाँ कैसे आ पहुँचे ?' कृष्ण—'मैं थोड़ेसे अपना
घर समझकर चला आया।' गोपी—'ठीक है, पर इस मकानकी
मदकीमें क्यों हाथ डाला ?' कृष्ण—'उसमें चँदियों पड़ी हुई
थीं, उन्हींको हटा रहा था।' गोपी—'अच्छा, तो तुमने सोते
हुए बालकोंको क्यों जगाया ?' कृष्ण—'बच्चे सयन जाने कहाँ
चले गए होंगे, उन्हें ढूँढ़नेके लिये ही मैंने इन्हें जगाया है।'
इस प्रकार गोपीसे बातें करनेवाले कृष्णजी आपकी रक्षा करें
॥ २४ ॥ हे श्रीकृष्णजी ! यद्यपि मैं शूद्र भावनासे ही आपसे
कहती हूँ कि 'अत्यन्त सुन्दर, विलासी, चतुर, कमलके समान
नेत्रवाले और अत्यन्त प्रिय आपमें ही मेरा मन सदा रमता
है,' तथापि खेद है कि बड़े-बड़े बुद्धिमान् लोग भी यह
सुनकर मेरी हँसी उढ़ाते हैं ॥ २५ ॥ वे कृष्णजी आपकी रक्षा
करें जिनसे मैंने खिलवाड़के लिये जैसे ही कहा कि 'कृष्ण !
जबतक बलराम यमुना किनारे खेलने गए हैं तबतक तुम
कधरी गायका दूध पी लो तो तुम्हारी छोटी बच्चा जायगी,'
जैसे ही वे उस गायका दूध पीने लगे और आधा दूध
पाँकर तन्मल ही छोटी छूकर देखने लगे कि बड़ी या
नहीं ॥ २६ ॥ यमुनाके तीरपर खेल-खेलमें रुकी हुई,
आँसू बहाती हुई तथा रास छोड़कर जाती हुई राधाके पीछे-

गच्छतोऽश्रुकलुपां कंसद्विपो राधिकाम् । तत्यादप्रति-
मानिवेशितपद्मस्योद्भूतरोमोद्भूतेरनुशणोऽनुनयः प्रसन्न-
दयितादृष्टस्य पुष्पातु यः ॥ २७ ॥ कासि त्वं यद् चौर-
कारिणि कुतः कस्त्वं पुरो यामिकः किं द्रुपे मुपितां
सुवर्णकलशौ भूपस्य केन स्वया । कुत्र स्तः प्रकटौ तया-
ञ्जलतटे कुत्रेति तत्पश्यतामित्युक्ते धृतवल्गवीकुचयु-
गस्तथां पातु पीताम्बरः ॥ २८ ॥ किं विभ्राम्यसि कृष्ण
भोगिभवने भाण्डोरभूमोदहि आतर्यासि न दृष्टिगोच-
रमितः सानन्दनन्दास्पदम् । राधाया वचनं तदध्वग-
मुखाश्रम्वान्तिके गोपतो गोविन्दस्य जयन्ति सायमति-
धिप्राशस्त्यगर्भा गिरः ॥ २९ ॥ किं युक्तं वत मामनम्य-
मनसां यतःस्थलस्थायिनीं भक्तामप्यवधूय कर्तुमधुना
कान्तासहस्रं तव । इत्युक्त्वा कणभृत्कणामणिगतां

स्वामेव मन्वा तनुं मिद्राच्छेदकरं हररचतु घो लक्ष्म्या
विलक्ष्मिमतम् ॥ ३० ॥ कुञ्जिताधरपुटन पूरयन्त्य-
शिकां प्रचलदङ्गुलिक्रमः । मोहयन्निखिलवामलोचनाः
पातु कोऽपि नवनीन्दच्छायिः ॥ ३१ ॥ कृष्ण त्वं नवयो-
वनोऽसि वपलाः प्रायेण गोपाङ्गनाः कंसा भूपतिर-
ञ्जनालमृदुलग्रीवा वयं गोदुहः । तथाचेऽञ्जलिना भव-
न्तमधुना वृन्दावनं मङ्गिना मा यासीरिति नन्दगापच-
जसा नम्रो हरिः पातु यः ॥ ३२ ॥ कृष्ण त्वं पठ किं
पठामि ननुरे शास्त्रं किमु श्रायते तत्त्वं कस्य विभोः स
कस्त्रिभुवनाधीश्वर तेनापि किम् । ज्ञानं भक्तिरथा
धिरक्तिरनया किं मुक्तिरेवास्तु ते दध्यादीनि भर्जामि
मातुसृदिनं चाक्यं हरिः पातु यः ॥ ३३ ॥ कृष्णेनाम्य
गतेन रन्तुमसकृन्मृद्वलिना स्वेच्छया सत्यं कृष्ण क

पीछे उन्हें सनानेके लिये चले हुए कृष्णजी उनके न लौटनेपर
उनकी प्रतिमाके चरणमें ही अपना चरण उसकाकर
(रासका मुख प्राप्त करने हुए) शोभित हो गए ।
कंसके शत्रु कृष्णका यह अनोखा मनावन आपका पालन करे
जिससे राधाजी तत्काल प्रसन्न होकर उन्हें देखने लगीं
॥ २७ ॥ किसी गोपीको देखकर कृष्णजीने सहसा उससे
पूछा—‘दे चोरी करनेवाली ! तू कौन है ? कहाँ रहती है ?’
गोपीने पूछा—‘तुम कौन हो ?’ कृष्ण—‘मैं नगर-रक्षक हूँ ।’
गोपी—‘क्या बात है ?’ कृष्ण—‘राजाके दो सोनेके कलश
चोरी गए हैं ।’ गोपी—‘किसने चुराए ?’ कृष्ण—‘तूने और
किसने !’ गोपी—‘मेरे पास कहाँ है ?’ कृष्ण—‘सामने ही तो
तेरे धौंसलेके भीतर दिखाई दे रहे हैं ।’ इस बातको सुनकर जैसे
ही उसने यह कहकर अपना धौंसल उछाड़ा कि ‘देख लो,
कहाँ हैं,’ वैसे ही उसके दोनों स्तन पकड़कर, ‘यही तो
हैं’ कहनेवाले पीतान्धरधारी कृष्णजी आपकी रक्षा करें
॥ २८ ॥ नन्द बाबाके घर रातकी अतिथिके रूपमें टिकनेवाले
किसी व्यक्तिने आकर कृष्णमे राधाका सन्देश कहा—
‘कृष्ण ! सौंपोंके घर इस भाण्डोर नामक बट-बूचके तले
क्यों घूमते हो । सन्ध्या हो गई है । आनन्दसे अपने (नन्दके)
घर क्यों नहीं चले जाते जो यहाँसे दिखाई पड़ रहा है ।’
इस बातको मन्दजीके आगे छिपानेके लिये उन्होंने उस
समय उस अतिथिसे जो हथर-उधरकी चापलूसीकी बातें कीं,
उनकी जप हो ॥ २९ ॥ उन लक्ष्मीजीकी ज्यंगम-भरी
शुक्ल आपकी रक्षा करे जिन्होंने शोभनगके फव्वोंमें अपनी

ही परछाई देवकर वह कहकर बिजुजीकी नींद उखाट दी थी
कि ‘आपमें ही मन लगाए रहनेवाली, आपकी छायांपर लेटी
रहनेवाली मुझ भक्ताको छोड़कर क्या आपका सहसां स्त्रियों
रख लेना अच्छा है ?’ ॥ ३० ॥ नये मेघोंके समान स्वाम
रङ्गवाला यह कोई रक्षा करे जो उँगलियों नचा-नचाकर, अपने
नीचेके आँटकी गिराकर, धरी पजाते हुए सब बोंकी
चितवनवाली स्त्रियोंको मोहित कर रहा है ॥ ३१ ॥ ‘हे
कृष्ण ! तुम्हारी नई अवस्था है और गोपियों प्रायः सभी चञ्चल
(दीड) हैं, वहाँका राजा कंस बड़ा दुष्ट है और हम सब बालोंके
गले कमलकी डण्डोंके समान कामल हैं, अतः मैं इस समय हाथ
जोड़कर तुमसे भाँग माँगता हूँ कि तुम मेरे बिना वृन्दावन मत
जाया करो ।’ नन्दजीकी ऐसी बातें सुनकर सकुचा जानेवाले
कृष्णजी आपकी रक्षा करें ॥ ३२ ॥ यशोदाने कृष्णसे कहा—
‘कृष्ण ! तुम कुछ पढ़ा करो !’ कृष्ण बोले—‘मैं, क्या पढ़ूँ ?’
यशोदा—‘अरे, शास्त्र पढ़, और क्या पढ़ेगा !’ कृष्ण—‘शास्त्र
पढ़नेसे क्या ज्ञान होगा ?’ यशोदा—‘बेटा ! उससे तत्त्वका ज्ञान
होगा ।’ कृष्ण—‘किस तत्त्वका ?’ यशोदा—‘अरे, परमात्माके
तत्त्वका ।’ कृष्ण—‘यह परमात्मा कौन है ?’ यशोदा—‘बेटा,
यह तीनों लोकोंका स्वामी है ।’ कृष्ण—‘तो उससे क्या लाभ
होगा ?’ यशोदा—‘अरे, ज्ञान होगा, भक्ति होगी और वैराग्य
होगा ?’ कृष्ण—‘फिर, इनसे क्या लाभ होगा ?’ यशोदा—
‘इन्हें जाननेसे मुक्ति मिलेगी ।’ कृष्ण—‘मिला करे मुक्ति, मैं
तो तुम्हारे घरका दही, दूध आदि ही खाया करूँगा ।’ इस
प्रकारकी यशोदा और कृष्णकी बातचीत आपकी रक्षा करे

एवमाह मुसली मिथ्याम्ब पश्यान्नम् । व्यादेहीति
विकासिते च वदने दृष्टा समस्तं जगन्माता यस्य
जगाम त्रिस्मयपदं पायान्त वः श्रोपतिः ॥ ३४ ॥ कृष्णो
गोरसचर्यमम्ब कुरुते किं कृष्ण मातः सुरापानं न
प्रकरोमि राम किमिदं नाहं परस्त्रीरतः । किं गोविन्द
वदन्यसां हलधरो मिथ्येति तां व्याहरन्मोषीगोपक-
म्बकं विहसयन्मुग्धो मुकुन्दोऽवतु ॥ ३५ ॥ केयं भाग्य-
यती तवारासि मणीं प्रपेऽप्रचर्यं धिना कृत्वास्याः प्रथमं
धिना क सहजो यणां मणस्तादृशः । स्त्रीरूपं कथमस्य
लिङ्गनियमात्पृच्छामि बध्वाकृतिं मुग्धे त्वत्प्रतिबिम्ब-
मिन्यपलपन्नाधां हरिः पातु वः ॥ ३६ ॥ कोऽयं द्वारि
हरिः प्रयाह्युपवर्गं शास्त्रमृगस्याथ किं कृष्णोऽहं दयिते
विभेमि सुतरां कृष्णादहं वानरात् । राधेऽहं मधुसूदनो

व्रज लतां तामेव पुष्पाश्वितामिच्छं निर्वचनीकृतो
दयितया हीणो हरिः पातु वः ॥ ३७ ॥ कौन्तेयस्य सहा-
यतां करुणया गत्वा विनीतान्मनो येनोल्लङ्घितसत्पथः
कुरुपतिश्चक्रे कृतान्तान्तिथिः । त्रैलोक्यस्थितिसूत्रधार-
तिलको देवः सदा सम्पदे साधूनामसुराधिनाथमथनः
स्तादेवकीनन्दनः ॥ ३८ ॥ कंसं ध्वंसयते मुरं तिर-
यते हंसं तथा हिंसते याणं स्त्रीण्यते वकं लययते
पौरवृं तथा लुम्पते । भौमं क्षामयते बलादलभिदो वपे
पराकुर्वते क्लृप्तं श्लिष्टगणं प्रणम्रभवते कृष्णाय तुभ्यं
नमः ॥ ३९ ॥ कयासि कलु खारिके प्रमुषितं स्फुटं
दृश्यते द्वितीयमिह मामकं बहसि कन्दुकं कञ्चके ।
त्यजेति नवगोपिकाकुञ्जयुगं प्रमथन्वलाङ्गसत्पुलकप-
ञ्जरो जयति गोकुले केशवः ॥ ४० ॥ शिखोऽसि मुञ्च

॥ ३१ ॥ बलभद्रे यशोदासे कृष्णकी चुगली करते हुए कहा—
देव माँ ! कृष्ण खेलने गया था, वहाँ इसने बार-बार जान-
बूझकर मिट्टी खींची है । यशोदाने कृष्णसे पूछा—क्यों कृष्ण यह
धान सच है ? कृष्ण—कीन कहता है माँ ! यशोदा—यही
बलभद्र तो कह रहा है । कृष्ण—यह झूठ कह रहा है माँ ! तुम
मेरा मुँह देख लो न ! यशोदा—अच्छा खोल अपना मुँह !
देखा मुनकर मुँह खोलते ही जिसके मुँहमें सारा संसार देखकर
यशोदा आश्चर्य-चकित रह गई' ने लक्ष्मणोपनि भगवान् कृष्ण
आपकी रक्षा करें ॥ ३४ ॥ बलभद्रे यशोदासे चुगली की—
माँ ! कृष्ण दूध चुराया करता है । यशोदाने कृष्णसे पूछा—
क्यों कृष्ण ? कृष्ण—माँ ! मैं इसकी भैंसि मरिचा नहीं पीता ।
यशोदाने बलभद्रेसे पूछा—क्यों राम ! वह क्या बात है ?
बलभद्रेने कृष्णकी ओर उँगली उठाकर कहा—मैं दूसरोंकी
जिह्वामें नहीं फँसा रहता । यशोदाने कृष्णसे कहा—
क्यों कृष्ण ? यह राम क्या कह रहा है ! 'बलभद्र झूठ कह रहे
हैं' यह कहकर सारे बाल-बालोंको हँसाते हुए कृष्णजी रक्षा
करें ॥ ३५ ॥ राधाने कृष्णसे पूछा—तुम्हारे हृदयमें यह कौन
भाग्यवती बैठी है ? कृष्ण—यह मयी है । राधा—क्या उस
(रमणी) का पहला अक्षर (र) छोड़कर कह रहे हो ? कृष्ण—
मर्याके पहले आनेवाले 'र' से अधिक सरल, स्वाभाविक अक्षर
और हो ही क्या सकता है ? राधा—इसका स्त्री-रूप क्यों है ?
कृष्ण—यह शब्द नां अलित है ही । राधा—मैं पृथ्वी हूँ—
यह मणी श्री-शैली क्यों दिखाने पड़ रही है ? कृष्ण—प्रिये ! यह
तो तुम्हारी परछाईं इसपर पड़ रही है । हम प्रकारकी

बातोंसे राधाको दुकाते हुए कृष्ण आपकी रक्षा करें ॥ ३६ ॥
राधाने पूछा—द्वारपर कौन है ? कृष्ण—मैं हूँ हरि । राधा—
तो वनमें जाओ, यहाँ हरि (बन्दर) का क्या काम है ?
कृष्ण—प्रिये ! मैं कृष्ण हूँ । राधा—फाले बन्दरसे तो मैं और
भी अधिक डरती हूँ । कृष्ण—राधे ! मैं मधुसूदन (फूल
चूसनेवाला) हूँ । राधा—तो किसी फूली हुई लतापर जाकर बैठो ।
इस प्रकार अपनी प्रेमिकाको उत्तर न दे सकनेके कारण लजाए हुए
कृष्णजी आपकी रक्षा करें ॥ ३७ ॥ तमों लोकोंके श्रेष्ठ सम्भालक,
असुरोंके स्वामी तथा कंसकी मारनेवाले ये देवकीके पुत्र कृष्णजी
सकलजनोंको प्रेक्ष्य दे जिन्होंने दयाके मारे अत्यन्त सुखील
(उद्धत) भीमकी सहायता करते हुए भेद मार्ग छोड़कर
चलनेवाले (अभ्यापी) कुरुवंशके स्वामी दुर्गोधनकी
भरवा डाला ॥ ३८ ॥ कंसका नाश करनेवाले, मुर राक्षसकी
मिट्टा डालनेवाले, इसासुरकी हिंसा करनेवाले, बाणासुरकी
मार डालने वाले, बकासुरका प्राण लेनेवाले, पौण्ड्रको काट
डालनेवाले, भीमासुरको धूलमें मिला देनेवाले, इन्द्रका घमण्ड
बलपूर्वक चूर करनेवाले तथा विपत्तिमें पड़े हुए और प्रणाम करते
हुए सुखील भक्तोंकी रक्षा करनेवाले हे कृष्ण ! आपकी प्रणाम है
॥ ३९ ॥ 'श्री चोड़ी ! मेरी दूसरी गेंद चुराकर चोलीमें छिपाए
कहीं भागी जा रही है । यह देख सामने तो दिखाई दे रही है,
रख दे मेरी गेंद !' ऐसा कहकर बलपूर्वक गोकुलमें गई गोपीके
दोनों स्तन मसलकर रोमाञ्जित होनेवाले कृष्ण भगवान्की
जय हो ॥ ४० ॥ ग्यालबालोंने गोवर्धन धारण किए हुए कृष्णजीसे
कहा—'हे कृष्ण ! आप थक गए होंगे; लाइए इस पर्वतको

शैलं विश्वमो वयमिति वदन्सु शिथिलभुजः । भरभुग्न-
विनतबाहुषु गोपेषु हसन्हरिर्जयति ॥ ४१ ॥ गच्छा-
म्यच्युत दर्शनेन भयतः किं तृप्तिरुपचते किन्त्वयं
विजनस्थयोर्हृतजनः सम्भावयत्यन्यथा । इत्यामन्त्रणभ-
क्षिसूचितवृथाप्रस्थानत्वेदालसामाशिल्यन्यपुलकाङ्कुरा -
ञ्चितवपुर्गोपी हरिः पातु वः ॥ ४२ ॥ गायन्तीनां गोप-
सीमन्तिनीनां स्फोताकाङ्क्षामक्षितोलम्बमालाम् । निष्ठा-
ञ्चल्यामात्मवक्त्रारविन्दे कुर्वन्मन्यद्देयकीनन्दनो वः
॥ ४३ ॥ गीतावैष्णवमन्दगानमधुराः सम्भावयन्निर्भर-
स्वेदाभ्युक्षपितं धिलोक्य पुरतो राधामुखाम्भोरुहम् ।
उत्कम्पस्त्रलवकुलिः परिगलद्देशु निर्मिलध्वनिः स्थिर-
व्याणिरपाकरोतु दुरितं गोपालयेगो हरिः ॥ ४४ ॥
गोपीलोचमयुग्मगोलवसतिगोपालगोष्ठीरतिगौरदाभृ-
तगोपयेपवजिरो गोवर्धनागोदरः । गोलोकाधिपतिः
सगोसमरथो गोत्रासमुद्धारकद्रोधिन्दोऽवतु गोकुला-

इधर दीजिए, हम उड़ाए लिए लेते हैं ।' उनके ऐसा कहनेपर
ज्योंही कृष्णने अपना हाथ डाला किया त्योंही ग्वालवालोंके
हाथ पर्वतके गोष्ठसे उचने लगे, उस समय उन्हें देखकर हैस
पड़नेवाले कृष्णजीकी जय हां ॥ ४१ ॥ एकान्तमें उदासीन
भावसे बैठे हुए कृष्णके पास धँसी हुई गोपी यह कहकर जैसे ही
जानेका हाँग रचती हुई चलने लगी कि 'हे अच्युत ! मैं वहाँसे
जाती हूँ । तुम्हारे देखते रहने-मात्रसे क्या लाभ है, वरन् दुष्ट
लोग कुत्रका कुत्र समय धेड़ते हैं,' जैसे ही दुली हाँती हुई उस
गोपीका आलिङ्गन करके रोमाञ्जित होनेवाले कृष्णजी आपकी
रक्षा करें ॥ ४२ ॥ गानी हुई गोपिकाओंके चायसे भरे नेत्र-
रूपी भीतोंकी पॉत जिनके मुक्कमलपर स्थिर हो गई है
वे देवकीके पुत्र कृष्णजी आपकी रक्षा करें ॥ ४३ ॥ वंशीसे
मन्द तानका मधुर गीत गाकर उसका आनन्द लेते हुए,
गोपाल वेपवाले वे कृष्ण पाप नष्ट करें जिनकी डँगलियोंसामने
राधाका मुख पसीने-पसीने हुआ देखते ही, कोंपकर हृष-
उधर पड़ने लगीं, वंशी हाथसे छूटने लगी, ध्वनि मन्द पड़ गई
और हाथोंसे पसीना छूटने लगा ॥ ४४ ॥ गोपियोंके नेत्रोंकी
पुलकियोंमें बसनेवाले, ग्वाल-बालोंकी सभासे प्रेम रखनेवाले,
गौओंकी रक्षाके लिये सुन्दर ग्वालका वेप बनानेवाले,
गोवर्धन पर्वत धारण करनेवाले, गरुड़की सवारीवाले, गौओंकी
विपत्ति दूर करनेवाले, ग्वालवालोंके प्रेमका आदर करनेवाले
वधा गोपालगोष्ठमें उत्पन्न होनेवाले, गोलोक (वैकुण्ठ) के

हतरसो गोपालगोत्रोद्भवः ॥ ४५ ॥ गोवर्धनोदर-
णहृष्टसमस्तगोपनानाम्पुनश्चयगलजितमानसस्य ।
स्मृत्वा वगद्वचपुर्गिन्दुकलाप्रकाशदंष्ट्राङ्गनक्षिति हरं-
वतु स्मितं वः ॥ ४६ ॥ चगडन्नागुन्दीर्गगडमगडली-
खण्डमगिडनम् । अद्याहो बालवयस्य विष्णोर्गोपननो-
र्वपुः ॥ ४७ ॥ जयधौविन्यस्नेर्महित इव मन्दारकुसुमैः
स्वयंसिन्दूरेण द्विपरणमुद्रा मुद्रित इव । भुजापीड-
कीडाहतकुचलयापीडकरिणः प्रकीर्णानृग्विन्दुर्जयति
भुजदण्डो मुरजितः ॥ ४८ ॥ नमं केनं तपोभिः
फलितं तद्रोपयालानाम् । लोचनयुगले यासामञ्जनमा-
सीन्निरञ्जनं ग्रह ॥ ४९ ॥ निर्विक्रगडचिलोलमालिनर-
लोत्संसम्य वंशोदरद्वीतस्थानकृतावधानललनालक्षैर्न
संलक्षिताः । सम्मुग्धं मधुमन्दमथ मधुरं राधामुग्धं
मृदुम्पन्दं पल्लविनाश्चिरं ददतु यः क्षेमं कटाक्षोर्मयः
॥ ५० ॥ त्वामप्राप्य मयि स्वयंचरपरं लीरोवनीरोदरे

स्वामी रक्षा करें ॥ ४५ ॥ गोवर्धन पर्वतके उठनेसे लगन
हो उठनेवाले, ग्वालोंका प्रशंसा सुनकर लजते हुए तथा अपने
बराह अवतारके समय चन्द्रमाकी कलाके समान चमकते हुए
दौतने पृथ्वीको उठानेका स्मरण करते हुए भगवान्की मुस्कराहट
आपकी रक्षा करें ॥ ४६ ॥ ग्वालके बालकका रूप धारण करनेवाले
भगवान् कृष्णकी वह देह आपकी रक्षा करें जो आप्यन्त बलिष्ठ
तथा भयङ्कर धारणकी बाहें ताँदकर उनके टुकड़े धारण करके
शोभित हो रही थीं ॥ ४७ ॥ खेल-तेलमें ही कुचलयापीड
हाथोंको अपनी भुजाओंमें बसलकर मार डालनेवाले तथा
सुर राजसकों जीतनेवाले भगवान् कृष्णके उस भुजदण्डकी जय
हाँ जिसमें लटकते हुए कल्पवृक्षके फूल ऐसे जान पड़ते हैं मानो
जीत जानेपर जयमालामें उसकी पूजा की गई हो तथा उसपर
झिटककर पड़ी रत्नोंके घूँटें ऐसी जान पड़ती हैं मानो हाथीसे युद्ध
करनेकी प्रसन्नतामें सिन्दूरमें उसपर चित्रकारी की गई हो
॥ ४८ ॥ वैसे तो बहुताने तपस्या को है पर तपस्याका फल
उन गोपियोंको ही मिला है जिनके नेत्रोंमें उस निरञ्जन वल्ल
श्रीकृष्णका खाम रूप ऐसा बस गया है जैसे नेत्रोंमें काजल
लग जाना है ॥ ४९ ॥ श्रीराधाके मधुर चन्द्रमुखपर विकसित
होकर मन्द-मन्द, लगातार, एकटक पड़ती हुई भगवान् श्रीकृष्णकी
वह तिरछी चितवन आपकी ऐश्वर्य दे जिसे तिरछी गर्दन करके
मुकुट हिला-हिलाकर वंशी बजाने हुए कृष्णकी वंशी-ध्वनि
सुननेमें हवी हुई गोपियों देख ही नहीं पाईं ॥ ५० ॥ 'हे

शङ्के सुन्दरि कालकूटमपिबन्मूढो मृडानीपतिः । इत्थं
पूर्वकथाभिरन्यमनसो विलित्य वासोऽञ्जलं राधायाः
स्तनकोरकोपरिलसन्नेत्रो हरिः पातु वः ॥ ५१ ॥ त्वां
पातु नीलनलिनीदलदामकान्तेः कृष्णस्य पाणिसरसो-
रुहकोशवन्धः । राधाकपोलमकरीलसिन्धुयोऽयं कर्णा-
वतंसकमलं विपुलीचकार ॥ ५२ ॥ दर्पणापितमालोक्य
मायास्त्रीरूपमान्मनः । आत्मन्प्रेयानुरक्तो वः शिवं
दिशतु केशवः ॥ ५३ ॥ दूरं यातु भुजङ्गपुङ्गवपतिः पयं
दिनशाभ्यजातोयं चास्तु अलप्रसङ्गयशो मोक्षया च
निर्दूषणा । इत्थं पानितकन्दुकाङ्कितकृते मोत्कूर्प
नीपाह्लासन्मृन्मृदुर्वमभागिमूर्धसु मुने येषु स मे वा-
यन् ॥ ५४ ॥ दृष्ट्वागमपयति विभुः स्वयमित्यमन्दान-
न्दाशया न गणिता विपद्दो दुरन्ताः । पीयूषसागरतरङ्ग-
निर्भरपाङ्गैः श्रीनन्दनम्यन दयोदय मन्दयास्मान् ॥ ५५ ॥

सुन्दरी राधे ! जान पड़ता है कालसमुद्रके तीरपर स्वयंवरमें
जब तुम मुझे प्रनेका निश्चय कर चुकीं मग मुझे न पा सकनेके
कारण ही दुःखके भार रावर्तनके स्वामी शिवजीने कालकूट
विपरी लिया था ।' इस प्रकार पहलेकी यांती हुई कथापर
मन लगाई हुई राधाका आँखल उपाड़कर उसके स्तनोंके
आप्रभागपर दृष्टि गड़ाए हुए कृष्णजी आपकी रक्षा
करें ॥ ५१ ॥ गौली कमलिनीकी धँसईके समान रसाम
रङ्गवाले कृष्णजीका वह कमलके कोशके समान हाथ आपकी
रक्षा करे जिसने राधाका कनपटीपर चित्रकारी करते समय
उसके कामपर लगे कमलके भूपलकी सुन्दरता और भी बढ़
गई थी ॥ ५२ ॥ दर्पणमें अपने बनावटी काँ-रूपकी परछाईं
देखकर उन्नीपर मोहित हैं। जानेवाले कृष्णजी आप लोगोंको
मुख दे ॥ ५३ ॥ 'यह सर्पराज कहीं दूर चला जाय और सूर्य-
पुत्री यमुनाका जल पीने योग्य हो जाय तथा यह गिवाँप यमुना
दुष्टके साथसे छूट जाय', ऐसा साँधकर हैं अपनी गँव
फेंककर फिर उसे ले आनेके बहाने कदम्बके वृक्षसे कूदकर
अग्र्यन्त भयङ्कर नागके सिरपर सुरली वजा-वजाकर नाचते हुए
कृष्णजी मुझे सुख दें ॥ ५४ ॥ 'वे व्यापक भगवान् आप
हैं कृपा करके दर्शन देंगे' इस बड़े भारी सुखकी आशामें
यही-यही तुलनाई विपत्तियोंकी भी भेने कुछ नहीं समझा
(किन्तु अग्र्यन्त आपका दर्शन न हुआ) अतः नन्दकी सुख
देनेवाले हे दयालु ! अब तो आप अमृत-सिन्धुकी तरङ्गोंके
समान सुखदाई अपनी तिरछी चितवनसे देखकर हमें आनन्द

दएः कापि स केशवो मज्जवधूमादाय काञ्चित्तः सर्वा
एव हि वञ्चिताः खलु यथं सोऽन्वेयणीयो यवि । द्वे द्वे
गच्छन्त इत्युदीर्य सहसा राधां गृहीत्वा करे गोपीवे-
पधरो निकुञ्जभवनप्राप्तो हरिः पातु वः ॥ ५६ ॥ दृष्ट्वा
केशव गोपरागद्वतया किञ्चिन्न दृष्टं मया तेनात्र स्ख-
लितास्मि नाथ पतितां किं नाम नालम्बसे । एकस्त्वं
विप्रेषु खिन्नमनसां सर्वायत्नानां गतिर्गोच्यैव गदितः
सलेशमवनाद्गोष्ठे हरिर्वन्धिरम् ॥ ५७ ॥ देवः पाया-प-
यासि धिमले यामुने मज्जतीनां याचन्तीनामनुनयपदै-
र्वञ्चितान्यंशुकानि । लज्जालोलैरसलवलिर्तन्मिपत्प-
ञ्चयाणैर्गोपस्त्रीणामन्यनकुसुमैरञ्चितः केशवो नः ॥ ५८ ॥
देवः पायादपायान्नः स्मरेन्दीवरलोचनः । संसारध्व-
सविध्वंसहंसकंसनिपूवनः ॥ ५९ ॥ देहि मत्कन्दुकं
राधे परिधाननिर्गूहितम् । इति चिह्नं सयन्नीचीं तस्याः

दीजिए ॥ ५६ ॥ 'उस कृष्णको किसीने देखा है ? वह किसी
गोपीको लेकर न जाने कहाँ चला गया ? उसने तो हम सबको
छका दिया ! उसे ढूँढ़ना हो तो चलो, दो-दो मिलकर उसे यहाँ-
वहाँ ढूँढ़ जाय ।' गोपीका बेरा धारण करके सब गोपियोंसे ऐसा
कहकर स्वयं राधाका हाथ पकड़कर एक कुञ्जमें घुस जानेवाले
कृष्णजी आपकी रक्षा करें ॥ ५६ ॥ 'हे कृष्ण ! गौधोंके सुरोंसे उड़ी
हुई धूलके कारण मुझे कुछ दिखई नहीं पड़ा, इसीसे मैं यहाँ
गिर पड़ी । हे नाथ ! विपत्तिके समय सब दुखी स्त्रियोंके आप
ही तो एक-मात्र रक्षक हैं । मुझ गिरी हुईका आप सहारा क्यों
नहीं देते !' अथवा 'हे केशव ! आपके प्रेममें धन्वी होनेसे मुझे
कुछ भी नहीं सूझता, इसीसे मैं इस प्रकार पतित हो गई हूँ ।
हे नाथ ! कामके बाणोंसे कट पाती हुई सब स्त्रियोंके एकमात्र
आप ही तो रक्षक हैं, फिर आप मुझ पतिताको क्यों नहीं
सँभालते ?' गौधोंके स्थानमें इस प्रकार किसी गोपीसे ऐसी बातें
सुननेवाले धर्मकृष्णजी सदा भली-भाँति आपकी रक्षा करें ॥ ५७ ॥
वे कृष्ण भगवान् हमारी रक्षा करें जिनसे यमुनाके निर्मल
जलमें स्नान करती हुई गोपियों प्राधर्ना करती हुई, अपने लाजके
कारण चञ्चल, आलससे झुके हुए तथा कामके कारण खिले हुए
फूलोंके समान नेत्रोंसे मानो उनकी पूजा करनी हुई अपने चुराए
हुए वस्त्र मँगती हैं ॥ ५८ ॥ खिले हुए लाल कमलके समान
नेत्रवाले तथा कंसका नाश करनेवाले वे कृष्ण भगवान् सदा
हमारी रक्षा करें जो संसाररूपी घना जँधरा नष्ट करनेके लिये
सूर्य हैं ॥ ५९ ॥ 'राधे ! अपने वस्त्रोंमें छिपाई हुई मेरी गँव

कृष्णो मुदेऽस्तु नः ॥ ६० ॥ दैत्यं परासुमणि निर्दहदु-
ग्मेकं बालं स्वभक्तममृतैरिव सिञ्चदम्यन् । आश्वास-
यत्तुरगणानपरं भयार्त्तान्नेत्रत्रयं नरहरेर्दिशतात्सुखं
नः ॥ ६१ ॥ नामोदस्ताखिलामो दमनियमयुजां
यः प्रकामोदवाहस्यामो दर्पाढ्यधामोदयमिलितयशो-
धारया मोदते यः । वामोदस्यासदामोदरत्नरत्नदशां
दक्ष-कामोदयो यः सामोदः श्रीललामो दलयतु दुरितं
सोऽत्र वामोदरो वः ॥ ६२ ॥ नीलन्नवनवनीतं किय-
दिति पृष्टो यशोदया कृष्णः । इयदिति गुरुजनसंसदि
करधृतराधापयोधरः पातु ॥ ६३ ॥ नीलाम्भोरुद्रकोश-
कोमलतनुं स्मेराननं मालिनं सुस्निग्धं दधत् दुकूलयु-
गलं शान्वैभक्त्यास्पदम् । स्वोयानामुदिनामृतेन हृदयं
सन्तर्पयन्तं सतां राधाकेलिकथासु सन्ततरतं श्रीकृष्ण-
चन्द्रं नमः ॥ ६४ ॥ नूतनजलधररुचये गोपयधूटीदुकूल-
धोराय । तस्मै कृष्णाय नमः संसारमहीरुहस्य बीजाय

॥ ६५ ॥ पद्मे न्यन्नयनं स्मरामि सततं भायो भयङ्कु-
स्तले नीले मुहानि किं करोमि महिनः क्रीनोऽस्मि ते
विभ्रमैः । इत्युन्मथवचो निशम्य सरुपा निर्भस्विता
राधया कृष्णस्तत्परमेव तद्व्यपदिशन्प्रीडाविष्टः पातु
वः ॥ ६६ ॥ पातु वो जलदश्यामाः शार्ङ्गन्याघानक-
कंशाः । त्रैलोक्यमण्डपस्तम्भाध्वन्वागे हरियाहवः
॥ ६७ ॥ पीठे पीठनिपगणवालकगले तिष्ठन्स गोपालको
यन्वान्तःस्थितदुग्धभागदमवभिधाच्छाय घण्टारवम् ।
वक्त्रोपान्तद्विताञ्जलिः कृतशिरःकम्पं पियम्प्यः पयः
पायादागतगोपिकानयनशोर्गङ्गुयङ्गुङ्कारकृन् ॥ ६८ ॥
पुञ्जीभूतं प्रेम गोपाङ्गनानां मूर्त्ताभूतं भागधेयं यदृ-
नाम् । एकीभूतं गुप्तचित्तं श्रुतीनां प्रयामीभूतं ब्रह्म मे
सन्निधत्ताम् ॥ ६९ ॥ प्रातर्नालनिचोलमच्युतमुरःसं-
वीर्यपातांशुकं राधायाश्चकितं त्रिलोक्यं हसति स्वैरं
सखीमण्डले । श्रीडाक्षञ्जलमञ्जलं नयनयोराधाय राधा-

यो ।' ऐसा कहकर उनकी धोतीकी गाँठ खोल देनेवाले कृष्ण हमें
मुख दें ॥ ६० ॥ नृसिंह-वेषधारी भगवान् कृष्णके वे नीलां नेत्र हमें
सुख दें जिनमेंसे एक नेत्रने सीषण होकर भयङ्कर दैत्यकों जला
हाला, एक नेत्रने अपने भक्त बालक प्रह्लादको मानो घबरावने सींच
दिया और एक नेत्रने बरे हुए देवताओंको धीरज दिया ॥ ६१ ॥
जिनका नाम लेते ही इन्द्रियोंको बशमें रखनेवालों तथा नियमसे
रहनेवालोंकी दरिद्रता भाग जानी है, जो अपने पराक्रमसे बड़े
हुए तेजसे मिली यशकी धारासे मानो प्रसन्न रहने हैं, जिन्हें
देखते ही प्रसन्न तथा खज्जल नेत्रवाली कामिनीयोंमें कामके
भाव उत्पन्न हो जाते हैं ऐसे मेवोंके समान स्वाम वर्णवाले
तथा सदा प्रसन्न रहनेवाले लक्ष्मीके सहित परम सुन्दर विष्णु
आपके पाप मट करें ॥ ६२ ॥ जैसे ही यशोदामे पूछा कि
'कृष्ण ! तुमने टटका मक्खन कितना लिया है ?' वैसे ही सब
बड़े-बूढ़ोंके सामने अपने हाथसे राधाका स्तन पकड़कर
'इतना लिया है' बतानेवाले कृष्ण रत्ना करें ॥ ६३ ॥ नील
कमलके कोशके समान कोमल देहवाले, प्रसन्न मुँहवाले,
वनमालाधारी, स्नेह-भरे, दुपट्टा और पीताम्बर धारण करनेवाले,
उत्तम वाणीके भण्डार, राधाकी क्रीड़ाकी वानोंमें सदा मग्न
रहनेवाले और अपने मित्रों एवं भक्तोंके हृदयको (समुद्रसे
निकले) अमृतसे सन्तुष्ट करनेवाले श्रीकृष्णजीकी हम प्रणाम
करते हैं ॥ ६४ ॥ नये मेघोंकी-सी कान्तिवाले और गोपियोंके
पक्ष पुरानेवाले उन कृष्णको नमस्कार है जो इस सारे संसार-

रूपी वृत्तके बीज हैं ॥ ६५ ॥ 'हे कमलचरनी ! मैं सदा ही तुम्हारे
नेत्रोंका स्मरण करना रहता हूँ, तुम्हारे धुँधराते काले प्रालोंमें
मेरा चित्त उलझा रहता है और तुम्हारे सुन्दर हाव-भावपर ना
मैं बिना मोल विक गया हूँ' ऐसा स्वप्नमें करते हुए वे चतुर
लेलाही कृष्ण आपकी रत्ना करें जिन्होंने राधाके कांछित होकर
ढाँटेनेपर मुरम्मा ही कह दिया कि 'राधे ! यह सब मुझमें
ही तो कह रहा था,' ॥ ६६ ॥ बादलोंके-से रहवाली विष्णुकी
वे चारों भुजाएँ आपकी रत्ना करें जो शार्ङ्ग धनुषकी डोरी
खींचनेसे कड़ी हो गई हैं और जो त्रैलोक्य-रूपी मण्डपके
चार स्तम्भ हैं ॥ ६७ ॥ अहीरके डे बालक रत्ना करें जो पीठपर
पड़े हुए ग्वालबालोंके कन्धेपर चढ़कर लींकेमें रखी दूधकी
मटकी फोड़कर सिर हिला-हिलाकर अञ्जलिये दूध पी रहे हैं,
उस लींकेमें बँधे घण्टोंके यजनेसे रोके हुए हैं और जो 'कूः' करके
उसका समर्थ आई हुई गोपीके मुँहपर अपने मुँहमें भरा दूध
छोड़ रहे हैं ॥ ६८ ॥ स्वाम रहवाले वे भक्ता मुझे
अपने पास रखें जो ऐसे जान पड़ते हैं मानो गोपियोंके
प्रेमके डेर हों या ग्वालोंका सुन्दर भाग्य ही मूर्त्ति धारण
करके आ गया हो यथवा वेदोंका रहस्य ही इकट्ठा होकर
प्रत्यक्ष हो गया हो ॥ ६९ ॥ प्रातःकाल नीले वस्त्र पहने हुए
श्रीकृष्णको और पीले वस्त्रोंसे लिपटा राधाका बहःस्थल
देखकर जब सखियों चकित होकर हैंसने लगीं तब लाजके
मारे खज्जल तिरछी चितवनसे राधाका मुँह और नेत्र देखकर

नने स्वादुस्मेरमुखोऽयमस्तु जगदानन्दाय नन्दान्मजः ॥ ७० ॥ ग्रीणि वस्तुनां हरिः कुवलयपीडेन सार्धं
रणे राधापीनपयोधरस्मरणकृन्कुम्भेन सम्भेदवान् ।
पत्रे विभ्यति मीलति क्षणमपि क्षिप्रं तदालोकना-
द्यामोहेन जितञ्जितञ्जितमभूद्यालोलकोलाहलः ॥ ७१ ॥
प्रीतिस्तवास्ति मध्येषु विटेषु चारेष्वपि हन्त
यदि दुर्जन नो जहासि । गोपीविटे न मध्ये नयनीन-
चारे तां क्वापि धामनि यधान धृतायधानः ॥ ७२ ॥
वलिनोऽपि बलान्निहन्त्य मल्लान्ननु मध्ये यदुवीरवु-
न्दमद्या । धिनिगृह्य कक्षेषु कंसमेव व्रजयालैर्विहरन्
मुनेऽस्तु कृष्णः ॥ ७३ ॥ भक्तान् रत्नवत्सलान्निघ्निर-
क्तानुद्धरन्भवान् । अभयश्च ददर्शनाञ्छरणं मे चतु-
र्भुजः ॥ ७४ ॥ भुजप्रभादण्ड इवोर्ध्वगामी स पातु यः
कंसरिपोः कृपाणः । यः पाञ्चजन्यप्रतिघ्नम्भङ्गया
घाराभ्रसः केनमिथ व्यनक्ति ॥ ७५ ॥ मकरीयैरचन-

भङ्गया राधाकुचकलशपीडनव्यसनी । अञ्जुमपि रेखां
लुम्पन्वल्लवेषो हरिर्जयति ॥ ७६ ॥ मदमयमदमयदुरागं
यमुनामवनीर्य वीर्यशाली यः । मम रतिममरतिरस्कृ-
तिशमनपरः स क्रियात्कृष्णः ॥ ७७ ॥ मातः किं यदु-
नाथ देहि चयकं किं तेन पातुं पयम्नन्नास्थद्य कदास्ति
तन्निशि निशा का बान्धकारोदये । आमील्याक्षियुगं
निशाद्युपगता देहीति मातुः पुनर्वसोजाम्बरकर्णलोच-
तकरः कृष्णः स पुण्यातु नः ॥ ७८ ॥ मातस्पर्णकरक-
लाय यमुनाकच्छं न गच्छाम्यहं कस्माद्वत्स पिनिहि
पीवरकुचद्वन्द्वेन गोपीजनः । भृत्संवायिनिवारितोऽपि
बहुशो जल्पन्त्यशोदाग्रता गोपीपाणिसरोजमुद्रितमुखो
गोपीपति पातु यः ॥ ७९ ॥ मामेकमेव शरणं व्रज मा
स्म शोषीरित्यर्जुनञ्जिगदियोः परमस्य पुंसः । तत्का-
लजातकदलोद्भूतगद्गदन्वह्रस्वाक्षरा जयति मा शुच
इत्यसौ वाक् ॥ ८० ॥ मालायहमनोककुम्भलभरां धन्यप्र-

मुक्तरा उदनेवाले नन्दके पुत्र कृष्ण संसारको मुक्त हैं ॥ ७० ॥
उस कुवलयपीड हार्थिकां युद्धमें मार डालनेवाले कृष्ण भगवान्
आपका सुख हैं जिसका गण्डस्थल देखकर उन्हें राधाके
स्तनोंका स्मरण हो गया था और जिसके हरकर भागते समय
घबराकर देखते ही 'जीत गए, जीत गए, जीत गए', ऐसा
हयला मच गया ॥ ७१ ॥ हे दुर्जन मनुष्य ! यदि तू मधु पीनेवालों,
लम्पटों या खोरोंकी ही सज़ा करना चाहता है और तू अप
भी उमका प्रेम नहीं छान्दना तो गोपियोंमें लम्पट, मधु पीनेवाले
तथा मक्खन चुरानेवाले उन किमी तेजस्वी शक्ति कृष्णसे क्यों
नहीं भन लगाना ॥ ७२ ॥ मे कृष्णजी आनन्द हैं जिन्होंने सब
और ययुषिणियोंके देखते-देखते बड़े-बड़े मल्लोंको मार डाला और
जो कंसके बाल पकड़कर उसे मारकर ग्वालवालोंके साथ खेलने
लगे ॥ ७३ ॥ भक्तोंकी रक्षा करनेवाले, दुष्टोंको मारनेवाले,
विरक्तोंको संसार-सागरसे पार करनेवाले, दीनोंको अभयदान
देनेवाले तथा चार भुजावाले भगवान् कृष्णकी शरणमें हैं ॥ ७४ ॥
कंसके शत्रु श्रीकृष्णकी वह ऊपर उठती हुई तलवार आपका
रक्षा करें जो उनकी भुजाओंकी कान्ति-सी जान पड़ती हुई
पाञ्चजन्य शङ्खके परछाई-रूपा जलकी धारामें तैरते हुए फेनकी
भोंति शोभित होती है ॥ ७५ ॥ गोपवेषधारी उन कृष्णजीकी
जय हो जो राधाके स्तनोंपर चित्रकारी करते हुए उन्हें अधिक
देरतक दयाते रहनेकी इच्छासे साँधी रेखाको भी दया-दवाकर
मिटा देते हैं ॥ ७६ ॥ देवताओंके अपमानका बदला लेनेवाले वे

पराक्रमशाली कृष्ण मुझसे प्रेम करें जिन्होंने यमुनामें घुसकर
मनवाले नागका दमन कर डाला था ॥ ७७ ॥ श्रीकृष्णने यशोदाको
पुकारा—मैं ! यशोदा बोलें—क्या है यदुवंशके स्वामी !
श्रीकृष्ण—मैं ! पानपात्र दे । यशोदा—उसे ! क्या करोगे !
श्रीकृष्ण—दूध पीना है । यशोदा—अह अभी नहीं मिलेगा ।
कृष्ण—कब मिलेगा ? यशोदा—रात्रिमें । कृष्ण—रात्रि कब
होगी ? यशोदा—जब सौंधरा हो जायगा । यशोदाके ऐसा कहते
ही चौखें बन्द करके 'अब तो रात हो गई मैं ! अब दे', ऐसा
कहते हुए मौका खोजते खोजनेकी हाथ बढ़ाए हुए कृष्णजी
हमारा पालन करें ॥ ७८ ॥ कृष्णने यशोदासे कहा—मैं ! मैं
अब बखड़े चरानेके लिये यमुना किनारे नहीं जाऊँगा । मैंने
पूछा—क्यों बेटा ! वे बोले—'मैं ! गोपियों मुझे अपने बड़े-बड़े
स्तनोंसे दबा डालती हैं ।' यह सुनते ही पासमें खड़ी हुई
गोपीने कृष्णको हाथसे चुप रहनेका सङ्केत किया पर जब वे न
माने और यशोदाके सामने कहते ही चले गए तो गोपीने
जिन कृष्णके मुँहपर हाथ रखकर उनकी बोली बन्द कर दी, वे
गोपीपति कृष्ण आपकी रक्षा करें ॥ ७९ ॥ 'हे अर्जुन ! शोच न करो,
एक भेरी ही शरणमें आ जाओ', ऐसा अर्जुनसे कहना चाहते
हुए तुरन्त ही दयासे गद्गदकण्ठ हो जानेके कारण बड़ी कठिनतासे
उन परम पुरुष भगवान्के मुँहसे निकल पाई हुई—'शोच न
करो' इस बोलीकी जय हो ॥ ८० ॥ सुन्दर मोरफड़से सजे
केशवाले, धनसाखा धारण करनेवाले, कस्तूरी और अगर

सुनोहितां शैलेयागुरुस्तकचित्रतिलकां शश्वन्मनोहारि-
लीम् । लीलावेणुरचामृतेकसिकां लावण्यलक्ष्मीमयीं
वालां बालतमालनीलवपुषं वन्दे परां देवताम् ॥ ८१ ॥
मीमांसारण्यसोमं लसदकं तर्कपद्मस्य । वेदान्तविपिन-
सिंहं वन्दे गोविन्दसाभिधं ब्रह्म ॥ ८२ ॥ मेघमंदुरम-
स्वरं वनभुवः श्यामास्तमालद्रुमैर्नक्तं भीरुर्यं त्वमेव
तदिमं राधे गृहं प्रापय । इत्थं नन्दनिदेशतश्चलितयोः
प्रत्यध्वकुञ्जद्रुमं राधामाधवयोर्यजन्नि यमुनाकूले रहः-
केलयः ॥ ८३ ॥ मालौ केकिशिखरिण्यनी मधुरिमाधारा-
धरे वंशिनी पीनांसं वनमालिनी हृदि लसत्कास्यक-
ल्लोलिनी । श्रोण्यां पीतदुकुलिनी चरणयोर्व्यन्यस्तावि-
न्यासिनी लीला काचन मोहिनी विजयते धृन्दावना-
वासिनी ॥ ८४ ॥ यन्किञ्चिदस्ति विगुणं विरसं विरूपं
तद्वस्तु भोः कृतधियः स्वदत्तां भवद्भयः । लोकोत्तरा-

स्तिलगुणं मथुरालयं यत्तस्मिन्निनान्तकचिरे रुचिरस्तु
नस्तु ॥ ८५ ॥ यामिन्यां परिवृत्तिभाजि चरिते चागय
वृन्दे गवां गोपानाञ्च विपार्यवृणुतुमुलध्याने समुत्स-
र्पित । गाढालिङ्गितराधिकाभुजलतावदस्य फंसद्विपो
यानुं स्थातुमनीश्वरस्य मनसो दालायितं पातु यः
॥ ८६ ॥ यावच्चित्रजनमजं पुरुषं जरन्नं सञ्चिन्तयामि
सकले जगति स्फुरन्तम् । नावद्वलात्स्फुरति हन्त
हृदन्तरे मे गोपस्य कोऽपि शिगुरजनपुञ्जमजः
॥ ८७ ॥ यां दृष्ट्वा यमुनापिपासुर्गतिशं व्यूहो गवां गाढते
विघृस्वानिति नीलकण्ठनिवहो यां द्रष्टुमुक्कण्ठते ।
उत्तंसाय तमालपञ्चर्यामितिच्छिन्दन्ति यां गोपिकाः
कान्तिः कालियशासनस्य वपुषः सा पायनी पातु यः
॥ ८८ ॥ राधामधुसूदनयोरनुद्दिनमुपर्जयमानस्य ।
प्रसवतरोरिव कुसुमं मिथोऽवलोकस्मिन् पायाम् ॥ ८९ ॥

मिलाकर रह-बिरहा तिलक लगानेवाले, सदा मन हरनेवाले,
खेल-खेलमें ही घोंसुरी बजाकर अमृतके समान मधुर स्वर
निकालनेवाले, आत्यधिक लावण्यवाले तथा तमालके छंदसे वृक्षके
समान रवाम रहवाले बालकरूप संपत्ते बड़े देवता (कृष्ण) को
प्रणाम करता हूँ ॥ ८१ ॥ गोविन्द नामवाले उन ब्रह्मका प्रणाम
करता हूँ जो मीमांसारूपी समुद्रको प्रसन्न करनेके लिये चन्द्र,
म्यायरूपी कमलको विकसित करनेके लिये सुन्दर सूर्य और
वेदान्तरूपी वनके सिंह हैं ॥ ८२ ॥ कृष्णको साथ लेकर कहीं
जाते हुए नन्दजीको मार्गमें राधा मिल गई । कृष्ण और राधा
दोनों एकान्तमें खेलना चाहते थे अतः भगवान् ने तत्काल अपनी
मायासे आकाशमें मेघोंकी ऐसी घटाई छा दी कि रात हुई
जान पड़ने लगी और नन्दजीने राधासे ही कहा कि 'राधे !
आकाशमें बादल छा गए हैं, तमालके इन काले-काले वृक्षोंसे
जङ्गली मार्ग और भी अधियारे जान पड़ने लगे हैं, रात हो गई
है और यह (कृष्ण) बड़ा डरपोक है । अतः तुम ही इसे अपने साथ
घरतक पहुँचाती जाओ ।' नन्दजीकी यह आज्ञा पाकर कुओंमें
होकर यमुना तटकी ओर चले हुए राधा और कृष्णकी एकान्तकी
कीड़ाओंकी जय हो ॥ ८३ ॥ धृन्दावनमें निवास करनेवाली उस
मनमोहनी भगवल्लीलाकी जय हो जिसके लिये भगवान् ने मस्तकपर
मोरपङ्क लगाए हैं, गोवर्धन पर्वतपर मधुर बंगी बजाई, मोटे-मोटे
कंधोंपर वनमाला खटकाई, हृदयमें कल्याणी नदी लहराई,
कमरमें पीताम्बर पहराया तथा वे पैर तिरछे रखकर खड़े हुए
॥ ८४ ॥ हे छोटी बुद्धिवादी ! इस संसारमें जो भी बुरे रूप,

रस, और गुणवाला वस्तु है, हाँ उनका आप लोग ही स्वाद लें ।
इस तो चाहते हैं कि संसारमें सबसे अधिक उत्तम गुणवाले
और अत्यन्त सुन्दर मधुरा-निवासी कृष्णमें ही हमारा प्रेम
रहे ॥ ८५ ॥ कुछ रात्रि शेष रहते ही जब गीर्ण छटपर घरनेके
लिये उत्सुक हो उठीं और बाहर ग्वाल-यालोंके सिंगों और
वंशियोंका तीव्र कोलाहल होने लगा, उस समय कमकर राधाका
आलिङ्गन किए हुए तथा उसका भुतलताओंमें धँसे हुए कृष्णकी
वह दुःखी आपकी रक्षा करे जिसके कारण न तो वे उठकर जा
ही सकने थे, न सो ही सकने थे ॥ ८६ ॥ 'खेद है कि
जैसे ही मैं निश्चिकार, अजन्मा, अपने आप प्रकाशवान् और
सारे संसारमें चमकते हुए उस पुरुषका चिन्तन करता हूँ, वैसे
ही यत्नपूर्वक मेरे हृदयमें काजलका पियूझके समान सुन्दर कोई
गोपका बालक अभिमाने लगता है ॥ ८७ ॥ कालिय नागपर
शासन करनेवाले भगवान् कृष्णके देहकी वह पवित्र कान्ति
आपका रक्षा करे जिसे यमुनाका जल समझकर उसे पीना
चाहती हुई गीर्ण सदा घेरे रहती हैं, जिसे बिजलीभरा
मेघ समझकर मोर देखनेको छटपटाते रहते हैं तथा गोपिथी
जिसे तमालके पत्ते समझकर गहना बनानेके लिये नोचती
रहती हैं ॥ ८८ ॥ आपसमें एक दूसरेकी ओर देखते हुए राधा और
कृष्णकी वह मुस्कराहट रक्षा करे जो ऐसी जान पड़ती है मानो
उन दोनोंके क्रमसे बड़े हुए प्रेमरूपी वृक्षका पुष्प हो ॥ ८९ ॥
देवकीकी अथानन्दित करनेवाले तथा पृथ्वीका भार उतारनेमें
समर्थ वे कृष्ण सदा तुम्हारी रक्षा करें जो राधाके प्रसन्न

राधामुग्धमुखारविन्दमधुपल्लोलोपयमौलिस्थलीनेपथ्यो-
चितनीलरत्नमवनीभारावतारत्नमः । स्वच्छन्दमजसुन्द-
रीजनमनस्तोपप्रदोषश्चिरं कंसध्वंसनधूमकेतुगधतु त्वां
देवकीनन्दनः ॥ ६० ॥ राधामोहनमन्दिरं जिगमिषोऽ-
न्द्रावलीमन्दिराद्राधे सेममिति प्रियस्य वचनं श्रुत्वाह
चन्द्रावली । सेमं कंस ततः प्रियः प्रमुदितः कंसः क
दृष्टव्या राधा केति तयोः प्रसन्नमनसोर्द्वासोद्गमः
पातु यः ॥ ६१ ॥ रामो नाम यभूय हं तदवला सीतेति हुं
तौ पितुर्वाचा पञ्चवटीवने निवसतस्तामाहरद्रावणः ।
कृष्णेनेति पुरातनीं निजकथामाकर्ण्य मात्रेरितां सौमित्रे
क धनुर्धनुर्धनुरिति प्रोक्ता गिरः पान्तु यः ॥ ६२ ॥
रासोऽस्मासभरेण विभ्रमसृतामाभीरवामध्रुवामभ्यर्ण
परिरभ्य निर्भरमुरः प्रेमान्धया राधया । साधु त्वद्वदनं
सुधामयमिति व्याहृत्य गीतस्तुतिभ्याज्जदुग्धदुग्धचितः

स्मितमनोहारी हरिः पातु यः ॥ ६३ ॥ ललितगमना
नार्यो राजन्मनोजनितान्तभाः सुरतिसदृशस्ताः सन्सु-
क्यो भवानपि तद्वृत्ते । वनभुवमितो गोहादेको न गच्छतु
मां विनेत्यसकृदुदितः पुत्रः पित्रा जयत्यनघो हरिः
॥ ६४ ॥ सुभ्यन्भवन्मधुरिमानुभवाय कृष्ण न प्राप्नुवंस्त-
महमेव न वञ्चितोऽस्मि । शुच्याभमप्यशुचि मे नवनी-
तबुद्ध्या चेतो हरंस्त्वमपि वञ्चक वञ्चितोऽसि ॥ ६५ ॥
वामांसस्थलचुम्बिकुण्डलद्वया जातोत्तरीयच्छदि धंशी-
गीतिभयन्निभक्कवपुषं भूलास्यलीलापरम् । किञ्चित्क-
स्तशिक्षणदशेखरमतिक्रिग्धातिनीलालकं राधादिप्रम-
दाशतावृतमहं वन्दे किशोराकृतिम् ॥ ६६ ॥ विलिख्य
सत्याकुचकुम्भसीसि पञ्चावलिन्यासमिषेण राधाम् ।
लीलारविन्देन तया सरोपं पायाद्विष्टः कोऽप्यभिहस्य-
मानः ॥ ६७ ॥ विहाय पीयूषरसं मुनीश्वरा ममाग्निरा-

मुखकमलका रस पीनेवाले भीरे हैं, जो प्रेक्षकोंके सिरपर
स्थित मुकुटमें जड़े हुए नीलमणि हैं, जो यज्ञकी स्वतन्त्र
सुन्दरियोंका मन सन्तुष्ट करनेके लिये रात्रि हैं और जो कंसका
माश करनेके लिये धूमकेतु हैं ॥ ६० ॥ चन्द्रावलीके घरसे
राधाके सुन्दर घरकी ओर जाना चाहते हुए कृष्णने चन्द्रावलीसे
पूछा—‘राधे! सब कुशल तो है!’ चन्द्रावलीने आपने प्रियतमकी
इस (त्रिभिन्न) बातको सुनकर उत्तर दिया—‘हाँ, कंस!
सब कुशलना है।’ फिर प्रसन्न होकर कृष्णने जैसे ही पूछा—
‘तूने कंसको कहाँ देखा?’ वैसे ही चन्द्रावली बोल उठी—
‘आपने राधाको कहाँ देखा?’ इस प्रकार आपसमें परिहास करते
हुए उन दोनोंकी हँसी आपकी रक्षा करे ॥ ६१ ॥ यशोदाजी
कृष्णको पुरानी कथा सुना रही थीं और कृष्ण हुँकारी भर रहे
थे। यशोदा बोली—‘बेटा! पुराने समयमें ‘राम’ नामके
एक राजा थे। कृष्ण—हूँ। यशोदा—उनकी स्त्रीका नाम सीता
था। कृष्ण—हूँ। यशोदा—वे दोनों पिताकी आज्ञा मानकर
पञ्चवटीमें रहते थे, जहाँसे रावणने सीताको हर लिया।
कृष्ण—अरे लक्ष्मण! धनुष कहाँ है? धनुष? धनुष? इस
प्रकार मौंसे कही हुई अपनी पहले अवतारकी कथा सुनकर
आवेशमें कृष्णजीके मुँहसे निकले थे वचन आप लोगोंकी रक्षा
करें ॥ ६२ ॥ अपनी मुमकानसे सबका मन हरनेवाले ने कृष्ण
आपकी रक्षा करें जिन्हें रासके परमानन्दसे भरी, प्रेममें अन्धी
राधाने मदमाती गोपियोंके सामने ही छार्तासे लगा लिया और
‘आपका अमृतमय (अमृतके समान मधुर गीतोंसे भरा हुआ)

मुख बहुत ही सुन्दर है’ इस प्रकार प्रशंसा करते हुए जी भरकर
उनका मुँह चूमा ॥ ६३ ॥ ‘बेटा! (इस गाँवमें) सुन्दर बालवाली,
कामकी मर्सीसे अत्यधिक कान्तिवाली और रसिके समान
सुन्दर मुखवाली स्त्रियाँ अधिक हैं और तुम भी अत्यन्त मधुर
गीत गाते हो, कामकी सुन्दरता भी तुम्हारे सामने कुछ नहीं
है, कामकीद्वामें बड़े चतुर तथा रति करने योग्य हो, तुम्हारे
जैसा कोई श्रेष्ठ (पुरुष) है ॥ नहीं, इसलिये मैं तुमसे कहता
हूँ कि अकेले घरसे निकलकर बिना मुझे साथ लिए चन्द्रावलीकी
ओर कभी न जाना।’ इस प्रकार पिता (मन्दवाबा) से बार-
बार समझाए जाते हुए निष्पाप पुत्र श्रीकृष्णकी जय हो
॥ ६४ ॥ हे धूर्तराज (कृष्ण)! आपकी सुन्दरताका दर्शन
पानेका लालच होते हुए भी जो मैं उसे न पा सका, इससे
केवल मैं ही नहीं ठगा गया, बरन् पवित्रसे जान पड़नेवाले मेरे
अपवित्र मनको मक्खन समझकर चुराते हुए आप भी ठगे ही
गए ॥ ६५ ॥ तिरछे खड़े होकर और भीहें नचा-नचाकर बंशी
बजानेवाले, भीरोंके समान काले और अत्यन्त चिकने केशवाले
गया राधा आदि सैकड़ों मतवाली स्त्रियोंसे घिरे हुए उन किशोर
अवस्थावाले कृष्णको प्रणाम करता हूँ जिनके बाएँ कन्धेसक
लटकते हुए कुण्डलकी कान्ति दुपट्टेसी जान पड़ती है और
जिनका मोरमुकुट कुछ टेढ़ा-सा हो गया है ॥ ६६ ॥ चित्रकारीके
वहाने सत्याके स्तनोंपर राधाका चित्र बनानेवाले वे कोई धूर्त
(कृष्ण) रक्षा करें जिन्हें प्रेममें क्रोधित होकर सत्या हाथमें लिए
हुए कीड़ा-कमलसे ही मारने लगी थी ॥ ६७ ॥ ‘सब श्रेष्ठ मुनि

जीवरत्नं विवन्ति किम् । इति स्वपादाभ्युज्ज्वलनकौतुकी
स गोपबालः श्रियमातनोतु वः ॥ ६८ ॥ वृन्दारण्ये
घरन्ती विभुरपि सततं भूर्भुवः स्वः सृजन्ती नन्दोद्-
ताप्यनादिः शिशुरपि निगमैर्लक्षिता वीक्षितापि ।
विचल्लेखावनद्गोमदमलमहाम्भोदसञ्छायकाया मा-
या पायादपायाद्विदितमहिमा कापि पैनाम्यरी वः
॥ ६९ ॥ वृन्दारण्ये तपनतनयातीरवानीरकुञ्जे गुञ्जन्म-
ज्जुभ्रमरपटलीकाकलीकेलिभाजि । आभीराणां मधुरमु-
हूर्त्नादसम्मोहितानां मध्ये कीडन्नयतु नियतं नन्दगो-
पालबालः ॥ १०० ॥ वृष्टिव्याकुलगोकुलायनरसादुद्-
स्य गोवर्धनं विध्वल्लयललाभाभिरधिकानन्दाधिर-
ञ्जुम्भितः । कन्वपेण तद्वर्षिताधरतटीसिन्दूरमुद्राङ्कितो
यादुगोपतनोस्तनोतु भवतां श्रेयांसि कंसद्विषः ॥ १०१ ॥
मज्जजनघनिताभिर्हेमपुष्पप्रभाभिः सहजलद ह्वासध-
ञ्जलाभिः समन्तात् । सपवि निविडतापोल्लासशान्तां

प्रवीणो मृगमदरमणीयो हन्तु दैन्यं दयालुः ॥ १०२ ॥
शत्रुघ्नलक्ष्मणयुक्तो दलितोऽग्रधन्वा गोवर्धनाङ्गर-
सकृन्कनधर्मजश्रीः । सम्पादिनार्जुनयशाश्चतुराकृतियः
श्रेयः प्रभुर्दिशतु कोऽपि मनुष्यमूर्तिः ॥ १०३ ॥
शरणं व्रजजनतायाः हरणं कंसादिदानवान्वचायस्य ।
भरणं प्रणतकुलस्य प्रणये यद्वलवीमनाहरणम् ॥ १०४ ॥
शिरश्छायां कृष्णः क्षणमकृत राधाचरणयामुजायदिल-
च्छायाभिमयमपि तदीयप्रतिहृता । इति क्रीडाकोपे
निभृतमुभयोरप्यनुनयप्रसादां जीयास्तामपि गुरुसमक्षं
स्थितवन्तः ॥ १०५ ॥ श्रीमद्रूपयधृस्वयंग्रहणारण्यकेषु
तुङ्गस्तनव्यामर्दाङ्कलितेऽपि चन्दनरजस्यङ्गे बहन्सोर-
भम् । कश्चिज्जागरजातरागनयनहन्धः प्रभाते श्रियं
विश्रन्कामपि वेणुमादरसिकां जाराप्रणीः पातु वः
॥ १०६ ॥ धृतिमपरे स्मृतिमपरे भारतमपरे भजन्तु
भवभीताः । अहमिह नन्दं यन्दे यस्यासिन्दे परं

अमृतको सोढकर मेरे चरकफलका इस क्यां पाते हैं ? देखें
तो इसमें क्या है ! यह सांचकर अपने चरण-कमलको चूमनेकी
इच्छा करनेवाले बाल-बालक (कृष्ण) आपको देखकर ॥ ६८ ॥
भूः, भुवः और स्वः लोकोंको रचनेवाला यह कोई पीनाम्बर-
धारिणी माया (कृष्ण) आप लोंगोंका सदा रक्षा करे ओ सदा
व्यापक होकर भी वृन्दावनमें घूमनी दिखाई पड़ती है, जिसे
वेदोंमें यनादि कहते हुए भी नन्दके बालकके रूपमें देखा है, ओ
विजलीसे भरकर मुझे हुए बड़े-बड़े स्वच्छ मेवांकी-सी कान्तिवाली
है और जिसकी महिमा कोई भी नहीं जानता ॥ ६९ ॥ यमुनाके
किनारे मधुर गुआर करके सँझरते हुए भीरोंवाले बानीरके
कुञ्जमें वंशीकी ध्वनि सुनकर मोहित हुई गोपियोंके बीचमें
मिलकर खेलनेवाले तथा नन्दकी गोपों चरानेवाले बालक सदा
रक्षा करें ॥ १०० ॥ कंसको मारनेवाले कृष्णको यह भुजा
आपका कल्याण करे जिससे घनी वर्षासे गोकुलको बचानेकी
धुनमें जब गोवर्धन पर्वतको उठा लिया तब गोपियों अन्यन्त
प्रसन्न होकर जिसे चूमने लगीं तथा कामके कारण उनके
अधर चिपकानेसे जिसमें सिन्दूरके चिह्न लग गए हैं ॥ १०१ ॥
जब भरमें सारे कष्ट नष्ट कर देनेमें चतुर तथा कस्तूरी लगानेसे
प्रसन्न सुन्दर वे दयालु कृष्ण दीनता दूर करें जो हेमपुष्पके
समान कान्तिवाली मज्जकी चिरोंसे घिरे ऐसे जान पड़ते हैं
सोने जिनजिनके घिरे हुए, तत्काल ही तपन मिटानेवाले मेघ
हैं ॥ १०२ ॥ मृगमद और लक्ष्मणके साथ रहनेवाले, अति

कठोर धनुष तोड़नेवाले, पृथ्वीका चिन्नार और उद्धार करनेवाले
धर्मपूर्वक सम्पत्तिका उपार्जन करनेवाले, उज्ज्वल यश प्राप्त
करनेवाले तथा चार वेपोंवाले अथवा शत्रुघ्नराजक चिह्न
(चक्र, गदा आदि) धारण करनेवाले, उग्रधन्वाको मारनेवाले,
गोवर्धन पर्वतका उद्धार करनेवाले, युधिष्ठिरको सम्पत्ति देनेवाले,
अर्जुनका यश फैलानेवाले तथा सुन्दर आकृतिवाले वे कोई
मनुष्य रूपधारी ईश्वर आपका कल्याण करें ॥ १०३ ॥ सारी
मज्ज-जनताको शरण देनेवाले, कंस आदि दानवोंका कुलसहित
नाश करनेवाले, भक्तोंका पालन करनेवाले और गोपियोंका
मन हरनेवाले श्रीकृष्णको मैं भली भाँति प्रणाम करता हूँ
॥ १०४ ॥ खेल-खेलमें रुठी हुई राधाके पैरोंपर जैसे ही क्षणभर
कृष्णजने अपने सिरकी छाया डाली (पैरों पड़नेका भाव
दिखाया) वैसे ही राधाजीने प्रसन्न होकर उसकी परछाईपर
अपनी दोनों भुजाओंकी छाया कर दी (आलिङ्गन करनेका
भाव दिखाया) । इस प्रकार बड़े-बड़ोंके बीच बैठे-बैठे ही
उन दोनोंके मनाने और प्रसन्न होनेका जय हो ॥ १०५ ॥
जारोंके मुखिया, वंशीकी ध्वनिका रस लेनेवाले तथा रातभर
जागनेके कारण लाल-लाल नेत्र हो जानेसे एक निराली शोभा
धारण किए हुए वे कृष्णजी आपकी रक्षा करें जिनकी छातीपर
बलपूर्वक गोपीका आलिङ्गन करते समय उसके मोटे-मोटे
स्तनोंकी रगड़से उनपर लगा चन्दन गिर पड़नेपर भी चन्दनकी
सुगन्ध बस गई ॥ १०६ ॥ भले ही संसारसे करनेवाले लोग वेदों,

ब्रह्म ॥ १०७ ॥ स पातु वो यस्य हनावशेषास्तुल्यव-
र्णाञ्जनरञ्जितेषु । लावण्ययुक्तेष्वपि धिक्प्रसन्ति दैत्याः
स्वकान्तानयनोत्पलेषु ॥ १०८ ॥ साकृन्तस्मितमाकुला-
कुलगलद्धमिलमुल्लासिनभ्रवल्लीकमलीकदर्शितभुजा-
मूलार्धदृष्टस्तनम् । गोपीनां मिभृतं निरीक्ष्य ललितं
काञ्चिच्चिरम्बिन्तयन्तन्तर्मुग्धमनोहरो हरतु वः क्लेशं
मयः केशवः ॥ १०९ ॥ सान्द्रानन्दपुरन्दरादिदिविषद्-
न्दैरमन्वादरादानम्रैर्मुकुटेन्दनीलमणिभिः सन्दर्शिते-
न्दीवरम् । स्वच्छन्दं मकरन्दसुन्दरगलम्भन्दाकिनीमे-
धुरं श्रीगोविन्दपदारविन्दमगुभस्कन्दाय वन्दामहे
॥ ११० ॥ सुपर्णः स्वर्णादां रचितमणिपट्टं जलाधजा-
मुखाम्भोजे भृङ्गो निगमधिलसन्पञ्चरशुकः । त्रिलोकी-
कस्मुरीतिलककमनीया मज्जधूविहारी श्रीकृष्णो दिशतु
भवतां शर्म सततम् ॥ १११ ॥ संसक्तानिध पातु मां प-

निपदव्याहारमाध्वीरसानुष्माष्टं मज्जसुन्दरीकुचतटी-
पाटीररेणुनिव । उन्मीलनमुरलीनिनादवदुलामोदोपसी-
द्वर्ध्वाजिह्वालीढमलीकचल्लवशिखैः पादाम्बुजं पातु
वः ॥ ११२ ॥ स्तनन्धयन्तञ्जननीमुखाम्भोजं विलोक्य
मन्दस्मितमुज्ज्वलाङ्गम् । स्पृशन्तमन्यं स्तनमङ्गुलीभि-
र्हन्दे यशोदाङ्गतं मुकुन्दम् ॥ ११३ ॥ स्वप्रासादित-
दर्शनामनुनयन्प्राणेश्वरीमादरादंसेऽस्मिन्पतितैरपाङ्गव-
लितैर्यद्वोदधितोऽप्यश्रुभिः । प्रत्याप्यस्त्वमतो मया ननु
हरे कोऽयं कमव्यत्ययः पातु त्वां व्रजयोपितेत्यभिहितं
लज्जाकरं शार्ङ्गिणः ॥ ११४ ॥ स्वामी मुग्धतरो वनं
वनमिदं बालाहमेकाकिनी क्षोणीमावृणुते तमालमलिन-
कक्षया तमःसंहतिः । तन्मे सुन्दर कृष्ण मुख सहसा
वन्मेति गोप्या गिरः श्रुत्वा तां परिरभ्य मन्मथकला-
सक्तो हरिः पातु वः ॥ ११५ ॥ हृदयं कीस्तुभोद्भासि

स्मृतियों (धर्मशास्त्र) या महाभारतका मानते रहें, पर मैं
तो उन मन्दजाकी प्रणाम करता हूँ जिनके आँगनमें ही परमेश्वर
विराजमान हैं ॥ १०७ ॥ वे कृष्णजी रक्षा करें जिनके मारनेसे
मैंने हुए देव अपनी क्षियोंके परम सुन्दर कमल-नयनमें आँज
हुए कृष्णजीके रङ्गका अभ्रम देखकर डर जाते हैं ॥ १०८ ॥
वे सुन्दर नयनयुक्त कृष्ण आपके कट हों जहाँ कहीं छिपकर
सुपथाप एकान्तमें बैठे गोपियोंकी मुस्कराहट, बिन्दुएँ केश,
सनी हुई भोंहें, आँगड़ाई-जैभाई लेते समय अधस्तुले स्तन और
हाथ-भाव देखकर उनमेंसे किसी एकका देरतक चिन्तन करते
हुए भीतर ही भीतर प्रसन्न होते रहें ॥ १०९ ॥ पाप नष्ट करनेके
लिये श्रीगोविन्दके उस चरण-कमलका प्रणाम करते हैं जो उस
समय नीलकमलसे जान पड़ते हैं जब इन्द्र आदि सब देवताओंके
आनन्दित होकर अत्यन्त आदरपूर्वक इन्द्रनील-मणि-जटित
मुकुट नवाकर प्रणाम करते समय उनपर मणियोंकी कान्ति
पड़ती है और जिनमें परागसे सुवासित जल बहानेवाली स्वच्छ
गङ्गा भरि हुई है ॥ ११० ॥ स्वर्णमय सुमेरु पर्वतके मणिजटित
शिखरपर सिन्धु-पुत्री लक्ष्मीके मुग्धकमलको भौंरेके समान
आहनेवाले, मज्जकी गोपियोंसे विहार करनेवाले, बेदरूपी
पिंडमें तोतेके समान शोभित होनेवाले तथा त्रिलोकीके
निलकके समान सुन्दर भगवान् वामुदेव (श्रीकृष्णजी)
आपका सदा प्रेरक रहें ॥ १११ ॥ गोप-जालक कृष्णजीका वह
चरणकमल आपका रक्षा करें जिसे उनकी वंशकी दूरतक गूँजती
हुई ध्वनि सुनकर अत्यधिक आनन्दसे विह्वल गोएँ, मानो

उसमें लिपटा हुआ उपनिषद्का सूक्तिकर्पी माध्वीरस (मधुपसे
बनी सुरा) पीनेके लिये प्रथमा मज्जकी सुन्दरी गोपियोंके
स्तनोंसे गिरकर उसमें लिपटी हुई चन्दन-रत्न हटानेके लिये ही,
चाट रही है ॥ ११२ ॥ यशोदाकी गोदमें लेटकर दूध पीनेवाले,
मौंका मुत्तकमल देख-देखकर मुस्करानेवाले, उँगलियोंसे दूसरा
स्तन घूनेवाले तथा उमड़ी देहवाले बालक मुकुन्दको प्रणाम
करता हूँ ॥ ११३ ॥ 'मैंने आपको जगानेके लिये नेत्रके कोनोंसे
आपके कंधेपर आँसू भी गिराए, पर आप तो स्वप्नमें प्राप्त
हुई प्राणेश्वरीकी ही आदरपूर्वक मनानेमें मग्न थे ! हे कृष्ण !
वह क्या गड़बड़ है ? अब क्या आप मेरे विश्वासके योग्य रह
गए हैं ?' इस प्रकार मज्जकी गोपीने कृष्णको लजित करनेवाली
जो वाणी कही वह आपकी रक्षा करे ॥ ११४ ॥ 'हे सुन्दर
कृष्ण ! मेरा पति मुझे बहुत चाहता है (मुझे जल्दी
जाना चाहिए), यह वन बहुत घना है, एक तो मैं
नई-नवेली दूसरे अकेली हूँ, इन तमालोंकी काली-काली
छाया भी धरती रेंके लेती है और अन्धकार घना होता
जाता है अतः मुझे छोड़ दो (अथात् देर न करो) ।' इस
प्रकार मार्गमें गोपीकी बात सुनकर एकाएक उसका आलिङ्गन
करके कामकला (रति) में जुट जानेवाले श्रीकृष्ण आपकी
रक्षा करें ॥ ११५ ॥ कीस्तुभ मणिकी कान्तिसे चमकना हुआ
श्रीकृष्णजीका वह हृदय आपका प्रेरक बढावे जो ऐसा जान
पड़ता है मानो उसमें राधाको न घुसने देनेके लिये लपटोंने
ताला लगा दिया हो ॥ ११६ ॥ हे गोपबालक (कृष्ण) !

हरेः पुष्पातु धः श्रियम् । राधाप्रवेशरोधाय दत्तमुद्र-
मिव श्रिया ॥ ११६ ॥ हे गोपबालक भवानवलम्ब्य
लीलां चित्ते नः किमिति हन्त ! तमोन्धकूपे । अस्यां
महाविपदि सन्ततमर्दितांस्त्वं पश्यन् कदा नु करुणाम-
घलम्बितासे ॥ ११७ ॥ हे मुक्तिदेवि यदुज्ज्वलमिन्द्रियस-
भ्यामर्च्यपि गोपशिशुकस्य करं गतासि । पर्यस्य
खण्डमपि हन्त निवेद्य यस्मै कीर्णानि मङ्ग भवतां वत
भिस्तवोऽपि ॥ ११८ ॥

देवकी—अव्यास्यलोकचूडामणिपटलशिखार्रेणि-
शोलीकृताङ्घ्रिः क्षोणीभारं चिन्तेतुं जडजुपि जगद्बान्धवे
देवकी धः । राशामुहामदोष्णां रणशिरसि रणकोकस-
क्लेदभीमाः शस्त्राणां खणकाराः प्रतिहतगुरयो यदु-
तेर्दोहदोऽभून् ॥ १ ॥

राधा—राधा पुनातु जगद्व्युत्पन्नदसचिन्ता मन्था-
नमाकलयती दधिरिक्तपात्रं । यस्याः स्तनस्तयकचूचु-
कलोलहृदिर्दोऽपि दाहन्धिया घृषमं युवोह ॥ १ ॥

आपने लीलाका आश्रय लेकर हमें तमोगुणरूपी अव्यास्यमें
स्वीं डाल दिया ? हाय ! हम वीर विपत्तिमें निरन्तर कष्ट
पाते हुए हमें देखकर अब आप कब दयालु होंगे ॥ ११७ ॥
हे मुक्ति देवि ! ऐह ! अनेक जन्मोंमें भी प्राप्त न होनेवाली
तथा अत्यन्त श्रेष्ठ होकर भी तुम ऐसे अहीरके घरचे (कृष्ण)
के हाथ लगीं जिसे भिन्नमङ्ग भी पनेका दुकड़ा (मुखसाँदल)
आर्पण करके तत्काल उस मूल्यमें तुम्हें ले जाते हैं ॥ ११८ ॥

देवकी : स्वर्गके बृहस्पतिदेवकी कान्ति पड़नेमें लाल-
लाल चरणवाली तथा संसारका भार हटानेकी अवतरित
होनेवाले संसारके हितैषी प्रभुकी गर्भमें धारण करनेवाली
वे देवकीजी आपकी रत्ना करें जिनके गर्भके बालकके संस्कार भी
किस समय युद्धभूमिमें अपनेसे यहाँका भी बध करनेवाले उद्दण्ड
राजाओंकी मार-काट तथा शस्त्रोंकी भयङ्कर ध्वनि सुननेसे पैसे
ही बन रहे थे ॥ १ ॥

राधा : वे राधा संसारका पवित्र करें जिनका चित्त
कृष्णमें ऐसा जमा हुआ है कि वे बिना दही डाले ही मटकेमें
मयनी चलाने लगीं और जिनके स्तनोंके अग्रभागपर रश्मि
जमाए कृष्ण भी चले तो गौ दुहने, पर बैलकी ही दुहने लगे
॥ १ ॥ 'हे प्राणप्यारी ! तुम्हारे सुस्वकमलके सुन्दर गुहोंसे
जवाकर ही मानो इस अमृतके भण्डार चन्द्रमाकी कान्ति मन्द
पड़ने लगी' ऐसा अपने प्रिय कृष्णके मुँहसे निकलते ही

सुधाघातः कान्तिस्तथ वदनपङ्केरुहगुणैर्जितेव स्ला-
नत्वं व्रजनि सहसा प्राणदयितं । यदन्यथ कान्ते दिवस-
विरहान्कचकिता नदङ्गे संलग्ना नव दिशतु राधा
प्रियशनम् ॥ २ ॥ हे लोदस्नमहो धरम्य तनुनामालोक्य
दोष्णो हरेर्हस्तेनांस्तनोऽघलम्य चरणाधारोन्पतन्पाद-
कम् । शैलोद्धारसहायतां जिगमिषोरुपृष्टगोवर्धना
राधाया गगानं जयन्ति सुचिरं वन्द्याः कर्मभ्रान्तयः ॥ ३ ॥

रुक्मिणी—प्रसाध्याशेषतनुं सुवर्शनकरः सर्वाङ्गली-
लाजितवैलोक्यां चरणार्चिन्दललितेनाक्रान्तलोको
हरिः । विश्रालां सुखमिन्दुसुन्दरकचञ्चन्द्रामचक्षुर्धत्
स्थानं यां स्थितनारपश्यदधिकां सा रुक्मिणी यांऽव-
तान् ॥ १ ॥

वेणुः—कङ्करोः स्मरकामुकस्य सुरतकीडापिकानां
रयो कङ्करो रतिमञ्जरीमधुलिङ्गां लीलाचकोरीध्वनिः ।
तन्ध्याः कञ्जुलिकापसारणभुजाशेषस्वल्लङ्कणकाणः
प्रेम तनोतु यो नववयांलास्याय वेणुस्थनः ॥ १ ॥

दिन-भर उमसे न मिल पायेके अपने चकित होकर गुरन्त ही
कृष्णकी देहमें लिपट जानेवाली राधा आपकी रिकवाँ इच्छाएँ
पूर्ण करें ॥ २ ॥ जब श्रीकृष्णने खेल-खेलमें ही पर्वत उड़ा
लिया तब उनके हाथोंकी निर्यल समझकर पर्वत उड़ानेमें
सहायता करनेकी इच्छासे धरतीसे उचक-उचककर भी गान्धर्वन
पर्वतको न पू सकनेवाली राधाकी कृष्णजीके कर्धेतक ही
पहुँचनेवाली भुजाओंके स्थिति ही आकाशमें हिलनेकी जय हो ॥ ३ ॥

रुक्मिणी : अपने सय अङ्गोंके हावभावोंसे तानों लोंकोंको
जीतनेवाली, चन्द्रमाके समान सुन्दर कान्तिपुष्प भूँहवाली
तथा यदाई करने-योग्य सारे शरीरवाली वे रुक्मिणी आप
सांगोंका रचा करें जिन्हें अपने चरणकमलकी सुन्दरतासे सारे
संसारका जीत लेनेवाले, हाथमें सुदर्शनचक्र धारण करनेवाले,
तथा चन्द्रमाकी नेत्ररूपमें धारण करनेवाले विष्णु भगवान्ने
अपनी देहसे भी अधिक आदरपूर्वक देखा ॥ १ ॥

वेणु : वंशीका वह मधुर स्वर आपके मनमें नई अवस्थामें
नृत्यके प्रति प्रेम उत्पन्न करे जो ऐसा जान पड़ता है मानो
कामदेवके धनुषकी टङ्कार हो, या रति-क्रोड़ा करती हुई कोयल्लोंका
मीठा म्वर हो, या रतिरूपी मञ्जरीका रस लेनेवाले भीरोंकी
गुञ्जार हो, या क्रोड़ा करती हुई चकोरीका स्वर हो, या नवयुवती
सुन्दरीके कञ्जुकी (चोंली) उतारते समय उसके हाथोंके हिलनेसे
बने हुए कङ्कलोंकी मधुर ध्वनि हो ॥ १ ॥

नन्दकः—सान्द्रां मुदं यच्छनु नन्दको वः सोल्लास-
लक्ष्मीप्रतिविम्बगर्भः । कुर्वन्नजस्रं यमुनाप्रवाहसलील-
राधास्मरणं मुरारेः ॥ १ ॥

बुद्धः आयाह्वयतमण्डलाग्ररुचयः सन्नखवत्-
स्थलाः सोष्माणो व्रणिनो विपक्षहृदयप्रोन्माधिनः
कर्कशाः । उत्सृष्टाम्बरदृष्टिविभ्रमभरा यस्थ स्मराग्रे-
सरा योधा वारवधूस्तनाश्च न दधुः क्षोभं स वोऽव्या-
जिनः ॥ १ ॥ कामेनारुह्य चापं हनपटुपटहं वल्गुभि-
र्मारवीरैर्भ्रूभङ्गान्तेपजृम्भास्मितलालतदशा दिव्यनारी-
जनेन । सिद्धैः प्रहोत्तमाङ्गैः पुलकितवपुषा यिस्मयाह्ला-
सधेन ध्यायन्त्यो योगपीठादचलित इति वः पातु दृष्टो
मुनीन्द्रः ॥ २ ॥ किं स्याद्वास्वाम्न भामोरकृणघनरस-
स्यन्दितः सन्ति पादाः किं वा राकाशशाङ्को न हि
तुहिनरुचिः कुष्वर्चिन्निष्कलङ्कः । साक्षाच्छिन्तामणिः
किं विपुलफलमणैः सांकुमार्यं कुतस्त्यं सन्देहान्मुग्ध-
धीभिः प्रथममिति मुनेः पातु दृष्टं वपुर्वः ॥ ३ ॥ ध्यान-

मन्दकः वह 'नन्दक' नामका लक्ष्मी आपकी चतुर्भुज
ज्ञानन्द दे जो हैंसती हुई लक्ष्मी तथा सौख्यके कृष्णजीकी परछाई
अपने भीतर धारण करके हिलता हुआ, कृष्णकी सदा सहचारी
हुई यमुनाके तीरपर सुन्दर हाव-भाववाली राधाके स्मरण
दिखाता है ॥ १ ॥

बुद्धः वे बुद्ध भगवान् आपकी रक्षा करें जिनका मन
कामदेवके आगे चलनेवाली प्रधान अप्सराओंके छातीपर
भुजाघातक उभरे हुए, आगेकी ओर कान्तिवान्, नखचिह्नोंसे
सुशोभित, दूसरोंके हृदय मध डालनेवाले, आँचल उभरे जानेपर
देखने-मात्रसे व्याकुल कर देनेवाले उष्ण तथा कठोर स्तन
भी नहीं डिगा सके ॥ १ ॥ ध्यानमें मग्न तथा आसनसे
न डिगनेवाले वे बुद्ध भगवान् आपकी रक्षा करें जिन्हें कामदेवने
धनुष खींचते हुए, कामदेवके सैनिकोंने डंका बजाते हुए, बाँकी
चितवनवाली अप्सराओंने मुस्कराकर, भाँहें नचा-नचाकर रँगड़ाई,
जैभाई लेते हुए, सिद्धोंने प्रसन्नतापूर्वक सिर नवाते हुए तथा
हृन्त्रने आश्चर्यचकित होकर पुलकित होते हुए देखा ॥ २ ॥
वे तेजस्वी बुद्ध भगवान् आपकी रक्षा करें जिन्हें सबसे पहले
देखकर लोग मोहित होकर इस प्रकार शंका करने लगे कि 'क्या
यह सूर्य है ! नहीं, सूर्यकी किरणें इस प्रकार अमृत जैसा सुन्दर
रस नहीं बरसती, वे तो बहुत उष्ण होती हैं, तो क्या यह
पूर्णमासा चन्द्रमा है ? नहीं, चन्द्रमा क्या कहीं निष्कलंक होता

व्याजमुपेत्य चिन्तयसि कामुन्मील्य चक्षुः क्षणं पश्या-
नकशरातुरं जनमिमं व्रतापि नो रक्षसि । मिथ्या
कारुणिकोऽसि निर्घृणतरस्त्वत्तः कुतोऽन्यः पुमाश्च-
न्मारवधूभिरित्यभिहितो बुद्धो जिनः पातु वः ॥ ४ ॥
निःशेषापि विलोकी विनयपरतया सन्नमन्तो
पुरस्तादस्याद्विद्वन्सकाकुलिधिमलनखादर्शसङ्क्रान्त-
देहा । निर्भीतिस्थानलीना भयदभवमहारातिभीत्येव
भाति श्रोमास्सर्वज्ञदेवः स भवतु भवतां शर्मणे कर्मभक्तः
॥ ५ ॥ बद्धा पद्मासनं यो नयनयुगमिदं न्यस्य नासा-
ग्रदेशे धृत्वा मूर्त्तां च शास्तो समरसमिलितौ चन्द्रसू-
र्याख्यवार्ता । पश्यन्तर्विशुद्धं किमपि च परमकज्यो-
तिराकारहीनं सौख्याम्भोधौ निमग्नः स विशतु भवतां
ज्ञानबोधं धुधोऽयम् ॥ ६ ॥ रेतोरक्तमयान्यमूमि भयिनां
विरभूवपूणांदराण्यालोकयेव कलेवराणि विगलतोया-
र्द्ररन्ध्राणि वः । मायाजालनियन्त्रितानि घृणया नोम्भी-
लयत्यस्तिषी निर्व्याजप्रविधाननिष्कलमतिर्बुद्धैः स

है ! हो सकता है वह प्रत्यक्ष चिन्तामणि ही हो ! पर उसमें
इतनी कोमलता कहाँ होती है !' ॥ ३ ॥ वे महायोगी बुद्ध आपकी
रक्षा करें जिन्हें उत्तेजित करनेके लिये कामदेवकी खिचीं बार-बार
उनसे कहतीं 'तुम ध्यानके बहाने किस छोटी चिन्तन कर रहे
■ ? क्या भरके लिये नेत्र खोलकर देखा तो हम कामकी पीड़ासे
कितनी व्याकुल हैं, तुम रक्षक होकर भी हमारी रक्षा नहीं करते !
तुम मूठमूठ अपनेको दयालु कहते हो, तुमसे अधिक निष्ठुर
तुम्हारे सिवाय दूसरा कौन हो सकता है !' ॥ ४ ॥ वे शोभा-
सम्पन्न तथा कर्ममार्गपर चलनेवाले सर्वज्ञ (बुद्ध) भगवान्
आपकी रक्षा करें जिनके चरणोंकी उँगलियोंके स्पर्श नखरूपी
वर्षामें सामने झुककर प्रणाम करते हुए श्रेष्ठोक्तके प्राणियोंकी
पदनी हुई परछाईं देखकर ऐसा जगमग पड़ता है मानो आगे हो-
नासे किसी भयङ्कर महाप्रलयके भयसे वे सब इस सब प्रकारसे
सुरक्षित स्थानमें आ छिपे हैं ॥ ५ ॥ वे बुद्ध भगवान् आपकी
ज्ञान-मार्गका बोध दें जो पद्मासन लगाकर नासिकाके अग्रभागपर
रुद्ध स्थिर करके, शरीरके पूर्वशान्त हो चुकनेपर, चन्द्र धीरे सूर्य
नार्द के प्रकार होते ही अपनेमें अत्यन्त विशुद्ध निराकार
ज्योतिस्वरूप प्रभुका दर्शन पाकर ब्रह्मानन्दमें मग्न हो गए ॥ ६ ॥
मायाजालमें फँसे हुए संसारी प्राणियोंके रक्तवीर्यमय तथा मल-
मूत्र-भरे शरीरोंका प्रत्येक किन्न बहते हुए जलसे भीगा देखकर
पृथ्वीके मारे नेत्र न खोलनेके बहाने प्राणायाम-द्वारा बुद्धि स्थिर

बुद्धोऽस्तु यः ॥७॥ यद्वचके कमभावनापरिगतं हृत्पद्म-
मध्यस्थितं सम्पश्यच्छिवरूपिणं लयवशादात्मानमध्या-
सितः । शुष्माकं मधुसूदनो बुधवपुर्धारी स भूया-
न्मुदे यो संस्थः कमलासने कृतचर्चिर्बुद्धैकलिका-
कृतिः ॥ ८ ॥

कलिकः—उपस्करकरवालः शक्तिमिरध्वसने महा-
निपुणः । कलिकहरिर्वः पायादपायतः कलिनिशा-
म्लोत्थः ॥ १ ॥ मेरुद्वाराजितरङ्गमुन्मदगजग्राहप्रगल्भं
भटव्यायलगत्कुटपुण्डरीकनिलयं डिण्डीरपिण्डाव-
लिम् । म्लेच्छानीकमहार्षं सुधिपुलं संग्रामकल्पायधौ
पञ्चोर्वाग्निरिवाभवद्यतु स यः कल्पानि कल्की हरिः
॥२॥ यवनीनयनाम्बुधोरणीभिर्धरिणीनामपनीय ताप-
वह्निम् । सुकृतद्रुमसेकमाचरन्तं धृतकल्कं प्रणमामि
निर्विकल्पम् ॥ ३ ॥

किण् हुण् बुद्ध भगवान् आपको बुद्धि दें ॥ ७ ॥ कमलः
सूत्रधार, स्वाधिष्ठान, मणिपरक, चमाहत, विद्युद्धि और आशा
पक्षोंपर ध्यान करनेसे दिखाई पड़े हुए तथा हृदय-कमलपर
विराजमान कल्याणमय परमात्माका एकप्र हांकर दर्शन करनेमें
हीन होकर आत्मामें स्थित, पञ्चासन लगाकर धटे हुए, बुद्धके
वेषमें अवतार लेनेवाले, ज्ञानमय स्वरूपवाले मधुसूदन (कृष्ण)
भगवान् आपको आनन्द दें ॥ ८ ॥

कलिकः कलियुगरूपी रात्रि नष्ट करनेके निमित्त उठे हुए
हाथमें किरणरूपी शस्त्र धारण किए हुए तथा अन्धकार नष्ट
करनेमें चतुर वे उदय होते हुए सूर्यके समान कलिक
भगवान् आपको नाशसे बचावें ॥ १ ॥ ये कलिक भगवान्
आपके पाप नष्ट करें जो म्लेच्छोंकी सेनाके उस समुद्रको
सोखनेवाले बड़बानलके समान हैं जिसमें दीड़ते हुए घांड़े ही
सहर हैं, मतवाले हाथी ही मगर हैं, थोड़ाओंके कटे हुए सिर
ही कमल हैं और पियड ही केन हैं ॥ २ ॥ यवनोंकी स्त्रियोंकी
धौंसरूपी जलधारासे धरतीकी तपन बुझाकर धर्मरूपी वृक्षको
सींचनेवाले तथा कल्क धारण किए हुए उन निर्विकल्प
भगवान्को प्रणाम करता हूँ ॥ ३ ॥

शिवः

रूढ़ी हुई पार्वतीजीकी मनानेके लिये भगवान् शङ्करजीने
कहा—हे सुन्दरी ! लाल-लाल आँखों, टेढ़ी भीहों तथा नीचेके
कुण्ड-कुण्ड हिलते हुए थोड़ोंवाला मुन्हरा मुख हमारे माथेपर बैठे
हुए चन्द्रमाकी सुन्दरताको लम्बित कर दे । मैं चाहता हूँ कि

शिवः

अक्षणनयनं सन्धुभङ्गं दग्गुक्तिताधरं सुतनु शशितः
क्लिष्टां कान्तिं करोतु तथाननम् । कृतमनुनयः कोपोऽन्ये
मनस्विनि यर्धनामिनि गदिनया श्लिष्टो देव्या शिवाय
शिवोऽस्तु यः ॥१॥ असोढा तन्कालोल्लसदमहभायस्य
तपसः कथानां विश्रम्भेऽपि न रमिकः शैलद्विजितुः ।
प्रमोदं वा दिश्यात्कपटयदुचेयापनयनं त्वगाशैथिल्याभ्यां
युगपदभियुक्तः स्मरहरः ॥ २ ॥ अहिभूषणोऽप्यभयदः
सुकलितहालाहलोऽपि यो नित्यः । दिग्यसनोऽप्यखिलेश-
स्तं शशधरशेखरं वन्दे ॥३॥ आशुर्वाञ्छन्नि भम्मसूत्र-
हरणं व्यालस्तथा मूपकं व्यालं वहिर्यं हरिश्च वृषभं
गङ्गा तथा चन्द्रकम् । इत्थं दुःखमहर्निशं शृणु विभो
सांख्यमेतत्कथं शम्भोऽस्मदशानिवोधनपरं त्वां पातु
दीनं वचः ॥ ४ ॥ आवाय आपमचर्त्त कृत्वाहीनं गुणं

ज्यों-ज्यों मैं तुम्हें मनाऊँ त्यों-त्यों तुम और भी रुझती जाओ ।
यह सुनते ही पार्वतीजीने शिवजीका जो आलिङ्गन किया उस
आलिङ्गनसे युक्त भगवान् शङ्कर आप लोगोंका कल्याण करें
॥ १ ॥ [पार्वतीजीका तप देवकर उनकी स्नेह-परीक्षाके लिये
जब स्वयं शङ्करजी ब्रह्मचारीका वेष बनाकर गए, उस समय]
कोमल शरीरवाली पार्वतीजीकी कठोर तपन्याका दुःख सहन
न करनेके कारण जो आपना ब्रह्मचारी-वेष छोड़नेकी उतावले
हो रहे थे, साथ ही पार्वतीजीकी विश्वास करने योग्य बातोंमें
अन्यन्त रस पानेके कारण वेष छोड़नेमें दिखाई भी कर रहे थे,
वे एक साथ उतावलापन और शिथिलता दोनोंका साथ-साथ
अनुभव करनेवाले शङ्करजी आपको अत्यधिक आनन्द दें ॥ २ ॥
चन्द्रमाका मुकुट पहने हुए उन शङ्करजीको प्रणाम करता हूँ जो
सौंपोंके गहने पहने हुए भी दूसरोंको भयसे बचाते हैं, जो
भयङ्कर विष पीकर भी अमर हैं और जो नङ्गे रहते हुए भी सारे
ब्रह्माण्डके स्वामी हैं ॥ ३ ॥ विष्णुजीसे अपनी दशाका वर्णन
करते हुए शङ्करजीके ये दीन वचन आपकी रक्षा करें कि 'चूहा
तो भस्म और जनेऊपर दाँत लगाए है, चूहेको सौंप गटक जाना
चाहता है, सौंपको मोर खा लेना चाहता है, सिंह नन्दीको
दबोचनेके लिये ऋषटना चाहता है और गङ्गा चन्द्रमाको पाना
चाहती है, इस प्रकार हे भगवान् ! दिन-रातका यह दुःख कैसे
सहा जाय !' ॥४॥ उन तीन नेत्रवाले शङ्कर भगवान्को प्रणाम
हैं जिन्होंने अटख हिमालय पर्वतको धनुष बनाकर शेषनागाकी
टोरी उसपर लगाकर और विष्णुका अचूक बाण चढ़ाकर ही

विषमदृष्टिः । यश्चित्रमच्युतशरी लज्जमभाङ्गोन्नम-
स्नम्मे ॥ ५ ॥ आदत्तकुपितभवानीकृतकरमालादिव-
न्धनव्यसनः । केलिकलाकलहादौ देवो वः शङ्करः
पायान् ॥ ६ ॥ आनन्दश्लाघिताः समाधिपु मुने गांधी
विलासोपलसाः सम्भ्रान्ताः क्षणमुद्रताः क्षणमथ ममेरा
सिजे वैकुण्ठे । भूराः कृष्णशरासने मनसिजे दग्धे घृणाकृ-
णितस्मत्कान्तादिनेऽधूपुरतरलाः शम्भोर्दशः पान्तु
धः ॥ ७ ॥ आसन्नाय सुदूराय गुप्ताय प्रकटान्मने । सुल-
भायानिदुर्गाय नमश्चिन्नाय शम्भवे ॥ ८ ॥ आसीने पूर्णि
तूर्णी व्यसननि शशिनि व्योम्नि कृष्णे सत्पणे दैव्येन्द्रे
जातनिद्रे द्रवति मधवति क्लान्तकान्तो कृमान्तः ।
अग्रहणार्थं द्रुवाणे कमलपुटकुटीशोभिते शान्त्युपाये पा-
याद्वः कालकूटभट्टिनि कचलर्यञ्जोत्तया नीलकण्ठः ॥ ९ ॥
उज्जिम्ब्या दिशमन्वरं वरतरं वासो वसानाभिरं हित्वा

वासरम् पुनः पितृवने कैलासतन्म्याश्रयः । त्यक्त्वा
भस्म कृताङ्गगगनिचयः श्रीखण्डसारद्रवैर्देवः पातु-
हिमाद्रिजापगिर्यां कृत्वा गृहस्थः शिवः ॥ १० ॥ उद्दाम-
भ्रमिवेशविस्तृतजटावल्लीमलालीपतस्यर्गङ्गाजलदरिद्र-
कावलयितं निर्माय तन्पञ्चरम् । सम्भ्राम्यद्भुजदण्डप-
क्षपटलद्वन्द्वेन हंसायिनस्त्रैलोक्यव्ययनाटिकानयनटः
स्वामी जगन्नायताम् ॥ ११ ॥ उपहरणं विभवानां संह-
रणं सकलदुग्निजालम् । उद्धरणं संसाराद्धरणं वः
श्रेयमेऽस्तु विश्वपतेः ॥ १२ ॥ एकैश्वर्यस्थितोऽपि प्रणत-
बहुफलो यः स्वयं कृत्तिवासाः कान्तासम्मिश्रदेहोऽ-
प्यधिपयमनसां यः पुगस्ताद्यतीनाम् । अष्टाभिर्यस्य
कृत्स्नं जगदपि तनुभिर्विध्नो नाभिमानः सन्मार्गा-
लोकनाय व्यपनयतु स नस्नामसीं धृतिमीशः ॥ १३ ॥
एकोऽन्ते द्विसर्मासलोचन इति ख्यातश्चतुर्भिः स्तुतो

त्रिपुरामुरको मार डाला ॥ १ ॥ वे शङ्कर भगवान् आप लोगोंकी
रक्षा करें जिन्होंने शनि के समय खड़ी हुई पार्वतीजीको
मनाने के लिये उन्हें अपने शान्ति हाथोंसे इस प्रकार विपदा
लिया मानों उन्हें माला बनाकर पहनना चाहते हों ॥ २ ॥
शङ्करजीके वे भेज आपकी रक्षा करें जो समाधि लगाने समय
आनन्दसे भर जाते हैं, पार्वतीके मुँहके हाव-भाव देखकर
खिल जाते हैं, जो कामदेवके पीछे पहुँचानेपर अपनेमें
कामका विकार देखकर घबराहटसे भरकर ऊपर उठ गये, फिर
एक क्षणमें हींससे भर गये श्रीर कामदेवकी स्त्री (रति) का
बिलाप सुनकर घबराये लगे थे ॥ ३ ॥ उन निराले
रङ्ग-द्वन्द्वसे शङ्करजीको प्रणाम है जो बहुत पास भी हैं, बहुत
दूर भी हैं, पीछे भी हैं और सामने भी हैं, जो सरलतासे पाए
जा सकते हैं और कठिनातासे भी नहीं पाए जा सकते ॥ ४ ॥
समुद्र मधनेपर उससे निकले हुए महाविषकी भयङ्करतासे जब
सूर्य हारकर बुधचाप चेंड गये, चन्द्रमा उदास हो गये, आकाश
काला पड़ गया, यमराज मलिन पड़ गये और मल्ल जय
'बषाओ, बषाओ !' चिल्लाते हुए अपनी कमलकी कुटियामें प्राण
बचानेको घुसे उस समय शान्ति करनेके लिये जिन शंकरजीसे
मल्लपट सरलतासे वह कालकूट नामक महाविष छूटकर
अपना गला नांला कर लिया वे आप सबकी रक्षा करें ॥ ५ ॥
जिन्होंने दिशार्कपी वज्र छोड़कर (नङ्गे रहना छोड़कर) मद्भक्त
लिये अच्छे-अच्छे मूल्यवान् कपड़े पहन लिए, जो रमराममें
रहना छोड़कर कैलासमें महल बनाकर रहने लगे, शरीरमें भस्म

रामा छोड़कर चन्द्रनादिके तेलसे बने सुन्दर लेप लगाने लगे
और सब प्रकारसे सुन्दर हाँकर जो पार्वतीसे अप्पाइ करके गृहस्थ
हो गये ऐसे शङ्कर भगवान् भगवती रक्षा करें ॥ १० ॥ संसारको
मट होनेसे बचानेवाले नाटकके नायक, सबको स्वामी वे भगवान्
शङ्कर संसारकी रक्षा करें जिन्होंने आकाश-नागाको उतारते
देखकर बड़े कटकेसे सिर घुमाकर अपनी जटाकृपी लताएँ
फँसा दीं, जो आकाश-नागाकी उमड़ी धाराओंके उनमें
समा लेनेपर, उन्हें लपेटकर बाँधे जानेपर ऐसी आन पड़ने लगीं
मानों हंसका शरीर है और उसके ऊपर उठकर घूमते हुए गङ्गाके
दोनों हाथ हंसके दोनों पङ्क्तिके समान दिखाई देने लगे ॥ ११ ॥
संसारके स्वामी शङ्करके वे वरणा आप सबका कल्याण करें जो
सब प्रकारका ऐश्वर्य देनेवाले, सारे पाप-साधकोंका नाश
करनेवाले और संसारके प्राणियोंका उद्धार करनेवाले हैं ॥ १२ ॥
एक प्रकारकी सन्धतिवाले होते हुए भी जो अपने भक्तोंको कई
प्रकारकी सुख-सम्पत्ति देनेवाले हैं तथा स्वयं खाल शोड़े रहते
हैं, आधी देह स्त्रीकी होते हुए भी जो विषय-वासनासे दूर
रहनेवाले संन्यासियोंमें सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं और अपने
आठ शरीरोंसे मली-भौति संसारका पोषण करते हुए भी बिन्हीं
तनिक भी घमण्ड नहीं होता वे शङ्कर भगवान् हमारी
तमोगुणी बुद्धि दूर करें, जिससे हम अच्छे मार्गपर चल सकें
॥ १३ ॥ वे शङ्करजी सबकी रक्षा करें जो महाप्रलयके पश्चात्
अकेले बच रहनेसे गिनतीमें एक ही रह जाते हैं, जो पार्वती-
समेत दो हैं, जो तीन नेत्रवाले हैं, चारों वेद जिनके गुण गाते

वेदैः पञ्चमुखः पञ्चाननपिता सप्तर्षिभिर्वन्दितः। अष्टाङ्गो
नवतुल्य आमरवाणे वासां दशांश दधन्स्वधैकादश
सोऽवतान्न विजितो यो द्वादशान्मांशुभिः ॥ १४ ॥ एकं
हन्स्त्वस्य स्फुरति जययशादधर्मन्यग्रकोपादेकः
पाणिः प्रणन्तुं शिगसि कृतपदः लेपुमन्यस्तमेव । एकं
ध्यानान्निमीलन्यपरमविग्रहं धीक्षितुञ्जुगिन्धं तुल्यानि-
च्छापि वामा तनुरग्रतु स यो यस्य सन्ध्यावसाने ॥ १५ ॥
एषा ते हर का सुगात्रि कतमा मूर्ध्नि स्थिता किजटा
हंसः किं भजते जटां नहि शशी चन्द्रां जलं मेयते ।
मुग्धे भूतिरियं कुतोऽत्र सलिलं भूतिस्तरङ्गायते यद्येवं
विनिगृह्यते त्रिपथनां पायान्त वः शङ्करः ॥ १६ ॥ ओं
नमः परमार्थैकरूपाय परमान्मने । स्वेच्छावभासिता-

सन्ध्याभेदभिन्नाय शम्भवे ॥ १७ ॥ अहं येन रथीकृतन्नयन-
योग्यं रथाङ्गीकृतं पत्रं म्वं रथकर्मन्मार्गधिकृतं श्वासा-
न्तुङ्गीकृताः । कोदगङ्गीकृतमाभ्यर्चयामि रग्मांशुं कृतं
भूयते वामाङ्गं विशिर्माकृतं दिशतु नः जेमं स धन्वी
पुमान् ॥ १८ ॥ कथयत कथमेषा मेनया विप्र वत्ता शिव
शिव गिरिपुत्री वृद्धकापालिकाय । हनि वदति पुनर्ध्याम-
गडले सिद्धिलेशस्य कृतवन्धवः पानु वः श्रीमदेशः ॥ १९ ॥
कल्पान्ते शमिर्नार्थविक्रममहाकङ्कालयङ्गभूरन्ध्रेपश्य-
तनुसिंहपाणिनखग्रप्रान्तादिकोलाभिः ॥ विश्वैकार्गवना-
विशेषमुदितां तां मन्मथकुमांशुभां कर्मन्ध्यावन्तां गतः
स्यतु सनां मोहं महाभैरवः ॥ २० ॥ कल्पान्तकूरकलिः
कृतकुन्दनकरः कुन्दकूर्पूरकान्तिः कीदृन्कलासकूटकलिः

रहते हैं, जिनके पाँच लुह (सघोजाल, वामदेव, तपुरुष, अघोर
और ईशान) हैं, जो सः मुँहवाले कार्तिकेयजोंके पिता हैं,
सातों कपि (विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, अत्रि,
वशिष्ठ और क्रष्य) जिनकी प्रार्थना करते हैं, जिनके आठ
(पूर्वा, जल, अग्नि, वायु, आकाश, यजमान, चन्द्र और सूर्य)
छद्म हैं, जो नवग्रहोंके समान नेत्रज्यो देवताओंसे घिरे रहते हैं,
जो दशों दिशाओं (पूर्व, आग्नेय, दक्षिण, नैऋत्य, पश्चिम,
वायव्य, उत्तर, ईशान, ऊपर और नीचे) को अपनेमें टिकाए
हुए हैं और जिनके ग्यारह (अत्र, एकपाद्, अहिर्बुध्न,
पिनाकी, अपराजित, प्रमथक, महेश्वर, वृषाकपि, शम्भु, हरण
और ईश्वर) रूप हैं और बारहों (विष्णु, अर्जुन, पूषा,
त्वष्टा, सविता, भग, धाना, विधाना, वरुण, मित्र, शक्र और
उत्क्रम) सूर्योकी किरणें भी जिनके तेजकी बराबरी नहीं कर
सकती ॥ १४ ॥ वे अर्धनारीश्वर शिवजी आपकी रक्षा करें
जिनका पार्वतीजीवाला बायाँ छद्म सन्ध्याके पश्चात् रुट गया
है, जिनके आठका आधा शिववाला भाग पार्वतीजीके रुटनेके
भयसे काँप रहा है और दूसरा गौरीवाला आधा भाग क्रोधसे
फट रहा है, जिनका दाहिना शिववाला हाथ क्रमा-याचनाके
लिये सिर छू रहा है और बायाँ पार्वतीजीवाला हाथ उसे हटा
रहा है, जिनका दाहिना नेत्र पार्वतीके ध्यानमें मुँदा है और
बायाँ नेत्र दाँएँ अङ्गों न देखनेकी इच्छासे बन्द है ॥ १५ ॥
पार्वतीजीने शङ्करजीसे गङ्गाजीकी ओर सङ्केत करके पूछा—
शङ्करजी ! ये तुम्हारी कौन हैं ? शङ्करजीने कहा—हे सुन्दर
देहवाली ! किसे पूछ रही हो ? पार्वती—उसे, जो सिरपर चढ़ी
बैठी है । शङ्करजी—यह तो जटा है । पार्वतीजी—तो नटापर

ईम कैसे बैठा है ? शङ्करजी—यह तो चन्द्रमा है । पार्वतीजी—
चन्द्रमा क्या जलके पाम रहना है ? शङ्करजी—पगर्वा ! यह
तो भस्म है, जल क्यों है ? पार्वतीजी—भस्ममें क्या लहरें
उठती हैं ? इस प्रकार जो शङ्करजी बड़ाना कर-करके पार्वतीजीसे
गङ्गाकी छिपा रहे हैं वे आप सचकाँ रक्षा करें ॥ १६ ॥ जिन्हें
लोग धाम्, सत्यस्वरूप और परमात्मा कहते हैं पर जो
सबभुव देवनेपर अपनी इच्छासे न जाने किनने प्रसन्न प्रसीत
होनेवाले स्वरूप धारण कर लेते हैं, उन शङ्करजीको प्रणाम है
॥ १७ ॥ धनुषधारी पुरुषके रूपमें वे शङ्करजी हमें आनन्द दें
जो अपने शरीरको रथ, दोनों नेत्रोंको दोनों पहिए, मनको रथ
होकेनेवाला, सौम्योंको घोड़े, अपने बलको धनुष, सूर्यको धनुषकी
डोरी और बाएँ हाथको बाण बनाए हुए ऐसे लगते हैं मानो
सच्चा हुआ धनुष खींचे हुए रथपर बैठे हों ॥ १८ ॥ वे शङ्कर
भगवान् आप लोगोंकी रक्षा करें जिन्होंने बड़ी-बड़ी मिश्रणोंके मुँहसे
ज्यों ही यह सुना कि 'शिव ! शिव !! इस बड़े औघड़की मैदाने
कैसे अपनी कन्या दे दी ?' त्यों ही धोड़-सी ही सिद्धिसे अपना
रूप बहुत सुन्दर बना लिया था ॥ १९ ॥ वे महा भयङ्कर रूपवाले
शङ्करजी सजनोंको मोह दूर करें जो कल्पके अन्तमें विराट् रूप
धारण किए हुए वामन भगवान्से भी बड़े दिखाई देने लगे,
अपने उतने बड़े हड्डियोंके ढाँचेमें लिपट शेषनागसे जिन्होंने
नृसिंह रूपवाले विष्णुकी बाँधकर उनके हाथके तीले नखोंमें
बराहवतारको डलवा लिया तथा सारे संसारके जलमग्न होनेपर
अत्यन्त प्रसन्न होते हुए मत्स्य और कच्छप अवतारको बाँधकर
खींचते हुए मछली मारनेवाले मछल्लेके समान जान पड़ने लगे
॥ २० ॥ जिनका खेल भी महाप्रलयके समान भयङ्कर होता है,

तकुमुदिनीकामुकः कान्तकायः । कङ्कालकीडनोक्तः
कलितकलकलः कालकालीकलत्रः कालिन्दीकालकण्ठः
कलयतु कुशलं कोऽपि कापालिको नः ॥२१॥ कल्पान्ते
कोधनस्य त्रिपुरविजयिनः क्रीडया सञ्चरिष्णोः कृन्वापि
प्राणिजानैर्निजमुखकुहुरतिथ्यमप्राप्ततृप्तेः । दिग्भ्रतीः
प्रेक्ष्य शून्याः प्रलयजलनिधिप्रेक्षिताम्भीयमूर्त्तिप्रासव्या-
सक्तमोघध्रमजनितरुषः पान्तु वो गञ्जिनानि ॥ २२ ॥
कल्याणं चः क्रियासुमिलदटनियुगस्थास्नुगीर्वाणभो-
गिस्त्रैण्यन्यस्तकल्पद्रुमनवसुमनोनागहारावलीनि । ना-
लीकाशिलपुलन्मीकरतलकमलद्वान्तमाध्वीकधाराति -
रुपफालेक्षणानि त्रिपुरहरधनुर्ज्यालताकर्षणानि ॥२३॥
कस्थं शूली मृगय भिपजं नीलकण्ठः प्रियेऽहं केकामेकां

कुरु पशुपतिनैव दृश्ये विधाणे । स्थाणुमुग्धे न वदति
तहर्जीयितेशः शिवायाः गच्छाटव्यामिति हतवचाः पातु
वभ्रन्द्रचूडः ॥ २४ ॥ कान्तां कामपि कामयत्यनुद्दिनं
ध्यानापदेशादयं येनामुं मुनयांऽप्यनादिनिधनं ध्यायन्ति
धातस्पृहाः । इत्यङ्गास्वकरे हते गिरिजया पात्रे च
पद्मासनादिश्वं पातु पुरन्ध्रनञ्जयपुत्रः शम्भोः समाधि-
व्ययः ॥ २५ ॥ किं गौत्रं किमु जीवनं किमु धनं का
जन्मभूः किं वयः किञ्चारित्रममुष्य के सहचराः के
वंशजाः प्राक्तनाः । का माता जनकः शिवस्य क इति
महेश पृथ्वीभृता पृष्टाः सस्मितनम्रमूकवदनाः सत्तर्पयः
पान्तु वः ॥२६॥ कुसुमशरघिलासे भङ्गुरस्याद्रिपुत्रीक-
रतलवलयस्य दमागतस्यार्धमेकम् । निजमिषः शिखण्डं

मिहोंने रचका यह विभ्रंस किया, जिनकी कान्ति कुन्दके कुल
और कपूरके समान उजली है, जिनका शरीर कैलास पर्वतकी
चोटीपर कानी होकर कुमुदिनीसे खेलते समय बहुत सुन्दर
लगता था, जो प्रलयके समय इन्द्रियोंके डोंवोंसे खेलनेको उत्सुक
रहते हैं, जो भयङ्कर कलकल शब्द करते हैं, अप्यग्र भयङ्कर
कालीजी जिनकी स्त्री हैं और जिनका कण्ठ धनुषाके समान
रयाम है, ऐसे कोई औपद् इमारा कन्याह करे ॥ २१ ॥
त्रिपुरासुरको मारनेवाले शङ्करजी जब महाप्रलय करते हुए
क्रोधित होकर सरसतासे टहलते हुए संसारके सब प्राणियोंको
अपने मुँहमें भरने लगे पर पेट न भरा तब उन्होंने सब
दिशाओंकी ओर दूरतक देखा पर केवल अपने समान
प्रलय-कालके वड़े हुए भयङ्कर समुद्रके अतिरिक्त कुछ न
दिखाई पड़ा, उस समय चचा डालनेका कुछ पानेका प्रयत्न
करनेपर भी कुछ न मिलनेसे स्तब्ध हो जा बहुत बेगसे
उन्होंने गर्जनाएँ कीं, वे गर्जनाएँ आपकी रचा करे ॥ २२ ॥
[त्रिपुरासुरको जीतनेके लिये शिवजीने जब शेषनागकी प्रत्यक्षा
बनाई और विष्णुको नाश बसाया उस समय] जब धनुषके दोनों
छोरोंपर शेषनाग बैधे थे और विजयकी आशासे प्रसन्न होकर
शेषनागकी स्त्रियों कल्पवृक्षको हिलाकर उसके गिरे हुए फूलोंसे
सर्पके समान कुपडलीवाली गोल मालाएँ बनाकर धनुष
सींचनेवाले शिवजीको समर्पण कर रही थीं तथा बाणके रूपमें
लगे हुए विष्णुजीके पास गयी हुई लक्ष्मीके हाथके कमलसे
निकलती हुई रसकी धारा शङ्करके मस्तकके तीसरे नेत्रकी अग्नि
धुकाए दे रही थी उस समयका शिवजीका प्रत्यक्षा सींचना
आप लोगोंका कन्याह करे ॥ २३ ॥ द्वार खटखटानेवाले

शङ्करजीसे पार्वतीजीने भीतरसे पूछा—आप कौन हैं ? शङ्करजीने
कहा—मैं हूँ शूली (त्रिशूलवाला या पीड़ावाला) ।
पार्वतीजीने कहा—तो जाकर औपधि डूँढ़ें । शङ्करजी—प्यारी !
मैं नीलकण्ठ (नीले कण्ठवाला या मोर) हूँ । पार्वतीजी—
मोर हो तो एक कुछ सुनाओ । शङ्करजी—मैं पशुपति
(प्राणियोंका या पशुओंका स्वामी) हूँ । पार्वतीजी—पर आपके
सींग तो दिखाई नहीं देते । शङ्करजी—मैं स्थाणु (स्थिर या
ढूँढ) हूँ । पार्वतीजी—ढूँढ तो बोलता नहीं । शङ्करजी—मैं
शिखा (पार्वती या सियारी) का पति हूँ । पार्वतीजी—तो
जङ्गलोंमें जाकर भूमो । पार्वतीजीके इस प्रकार कहनेपर कोई
उत्तर न दे सकनेवाले शङ्करजी सबका रक्षा करे ॥ २४ ॥ 'जान
पड़ता है कि ध्यान करनेका बहाना करके वे किसी दूसरी स्त्रीका
ही चिन्तन करते रहते हैं और इच्छाओंका दमन करनेवाले मुनि
लोग भी धोखेमें पड़कर हाँ इन जन्म-मरणसे रहित शङ्करजीका
ध्यान करते हैं' ऐसा मनमें आते ही पार्वतीजीने शङ्करजीकी
गोदसे अपने अङ्गका हाथ और पद्मासनसे अपने अङ्गका
पैर सींच लिया । ऐसा होनेसे जिन शिवजीकी समाधि टूट
गई वे संसारकी रक्षा करे ॥ २५ ॥ शङ्करजीके विवाहके समय
पृथ्वीको धारण करनेवाले हिमालयने जब नम्र होकर पूछा कि
'इनका (शङ्करजीका) क्या गोत्र है, क्या जीवन-वर्षा है, क्या
सम्पत्ति है, कहीं जन्म-मृति है, क्या अवस्था है, चरित्र कैसा
है, इनके साथी कौन-कौन हैं, इनके पूर्वज कौन हैं और इनके
माता-पिता कौन हैं ?' उस समय मुसकामके साथ सिर
झुकाकर चुप हो जानेवाले सप्तर्षि आपकी रक्षा करे ॥ २६ ॥
फूलोंकी सेजपर विराजमान रहते समय जो कलन टूटकर आया

याचमानस्य शम्भोर्भवतु सह विवादः कान्तया कौतु-
काय ॥ २७ ॥ केयूरीकृतकङ्करीकृतजटाजूटाचतंसीकृत-
ज्यावलीकृतकुराडलीकृतकटीसूत्रीकृताहीश्वरः । पायाह-
स्त्रिलक्रीकृतप्रियतमादर्शकृताशीकृतधृतराष्ट्रभण्णीकृते-
न्दुशकलः कान्त्यायनीकामुकः ॥ २८ ॥ केयं मूर्धन्यन्धकारे
तिमिरमिह कुतः सुभ्रु कान्तेन्दुयुके कान्ताप्यत्रास्त्रि
काचिन्नतु भवतु मया पृष्टमेताचंदय । नाहं इन्हं
करोमीत्यपनय शिरसन्मूलमिनामिदानीमिन्धं प्रोक्तो
भवान्या प्रतिययनजितः पातु वध्नद्वचूड ॥ २९ ॥ कैला-
साद्रावुदस्ते परिचलति गणेषु सन्कांतुकेषु कोऽं मातुः
कुमारे दिशति विपमुचि प्रेक्षमाणं सरोपम् । पादा-
वपुम्भसीवद्रूपि दशमुखे याति पातालमूलं कञ्जोऽप्या-
श्लिष्टमूर्ध्निर्भयघनमुमया पातु हृष्टां शिवो नः ॥ ३० ॥ की-

इन्मन्दरकन्दरोदग्बलन्मन्दारवृन्दावने क्रोधान्धान्धक-
टातटासुहृन्गे जम्भन्निशूलोद्गमः । प्रैलोक्यास्त्रिलसङ्कटो-
न्कटभयोद्वेलान्धकारांशुमान्पायाहस्त्रिपुत्रप्रमाथनपट्ट-
दैवो हि पञ्चाननः ॥ ३१ ॥ क्रोधैर्द्वैष्टिपार्तैश्चिभिन्पश-
मिना वहत्योऽभी त्रयोऽपि प्रसार्त्ताः प्रवृत्तिजोऽधश्चपल-
गणहृतोष्णीषपट्टाः पतन्ति । दहः स्तान्यस्य पत्नी विल-
पति कृपणं विद्रुतं चापि देवैः शंसन्निन्यात्तहासः मख-
मथनार्थिषां पातु देव्यै शिवो नः ॥ ३२ ॥ क्व तिष्ठतस्ते
पितरौ ममेवेत्यर्णयोक्ते परिहासपूर्वम् । क्व वा ममेष
श्वसुरौ तवेति तामीत्यन्तस्मिन्मतीश्वरोऽप्यात् ॥ ३३ ॥
क्षितौ हस्तावलग्नः प्रसभमभिहतोऽप्याददानोऽशुकान्तं
गृह्णन्केश्यपास्तश्चरणनिर्पातितो नक्षितः सम्भ्रमण ।
आलिङ्गन्वोऽवधूतस्त्रिपुत्रयुवतिभिः साभनेभ्योत्पलाभिः

पृथ्वीपर गिर पड़ा उसे अपना देहा चन्द्रमा समझकर जब
पार्वतीजीसे शङ्करजी माँगने लगे उस समय उन दोनोंमें जो
विवाद हुआ वह सबके लिये आनन्द देनेवाला है ॥ २७ ॥
कान्त्यायनी देवीकी चाहनेवाले वे शङ्करजी आप लोगोंकी रक्षा
करें जो सौंपके स्वामी वासुकिहो हैं भुजवन्द, कङ्कन, जटामूट,
मुकुट या फुलझल यना लेते हैं, उसे हैं लपेटकर कमरकी
ताड़ी और उसीकी धनुषकी डोरी बनाने हैं तथा चन्द्रकलाको
तिलक और प्रियतमा गौरीका दर्पण बनाने हैं और मुखा मेलने
समय उसीको पास और पैसा बना लेते हैं ॥ २८ ॥ शङ्करजीकी
जटापर गङ्गाको देखकर पार्वतीजीने उनसे पूछा—हे चन्द्रकारे !
(चन्द्रकासुरके शत्रु) तुम्हारे निरपर वह कौन है ?
शङ्करजी—हे सुन्दर भाँहीवाली ! मेरे मस्तकपर तो चन्द्र
बैठा हुआ है, वहाँ श्रैधरा कैसे हो सकता है ! पार्वतीजी—
वहाँ कोई स्त्री भी तो है । शङ्करजी—होगी कोई, मैं तो केवल
वहाँ पूछना चाहता था कि वहाँ श्रैधरा कैसे हो सकता है ?
पार्वतीजी—मैं भगवा नहीं करना चाहती । आप इसे शीघ्र ही
अपने सिरसे अलग कर दें । इस प्रकार पार्वतीजीसे बातचीतमें
हारकर कोई उत्तर न दे पानेवाले शिवजी आपकी रक्षा करें
॥ २९ ॥ शवणके कैलास पर्वत उठा लेनेपर उसके दिलनेसे
उसपर आनन्दसे हैंसते-लेलते शिवजीके गण जब चल-विचल
होने लगे, स्वामिकान्तिकेय डरके मारे मौकी गोदमें घुसने लगे,
सौंप क्रोधित होकर देखने लगे तथा शिवजीके पैरोंकी हुमकसे
दक्का हुआ रावण पातालमें घँसने लगा, उस समय अत्यन्त
क्रोधित होनेपर भी जो बरी हुई पार्वतीजीके विपट आनेसे

प्रयत्न हो गय, वे शङ्करजी हम सबकी रक्षा करें ॥ ३० ॥ जिन्होंने
मन्दराचलकी गुफाके भीतर लगे हुए मन्दार और मुलसीके
वनमें खेलने हुए हो क्रोधसे आन्धे चम्पकामुरके कपोल फड़फड़
उसके प्राण लेनेका चमकता हुआ त्रिशूल उठा लिया था, जो
तीनों लोकोंके दुःख और बढ़ने बढ़ा भय-रूपी श्रैधरा नष्ट
करनेके लिये साधाम् सूर्य हैं और जिन्होंने त्रिपुरामुरकी बड़ी
चतुरतासे मार डाला था वे सौंप मुँहवाले भगवान् शङ्कर
आप लोगोंकी रक्षा करें ॥ ३१ ॥ घट्टहास कर-करके सर्तोंके
अपमानका बदला लेनेके लिये दक्का वज्र बिज्रस करनेमें
लगे हुए वे शङ्करजी आप लोगोंकी रक्षा करें जिनकी क्रोधसे
ताँबा तान रठियोंके पड़नेसे ताँबां धमियाँ (गार्हपत्य,
दक्षिणाग्नि और आहवर्ण्य) शान्त हो गईं, जिनके
चञ्चल गणोंने भटकेसे ऋषिजनोंकी पगदियों उतार लीं
और वे डरके मारे गिरने लगे, दक्ष जिनकी स्तुति करने लगे,
दक्की स्त्री जिनके सामने आकर दुखी होकर बिलाप करने
लगी और देवता हड़बड़ाकर जहाँ-तहाँ भागने लगे ॥ ३२ ॥
जब पार्वतीजीने शङ्करजीसे पूछा कि 'मेरे माता-पिताके समान
आपके माता-पिता कहीं हैं ?' तब उसके उत्तरमें हैंसकर
जिन्होंने कहा कि 'मेरे मास-संसुरके समान तुम्हारे मास-
सुर कहीं हैं ?' वे शिवजी सबकी रक्षा करें ॥ ३३ ॥
शङ्करजीके थालकी वह धमि सबके पास भस्म करे जो शैली
हुई त्रिपुरामुरकी स्त्रियोंके रोकनेपर भी परस्त्रीगामी कामीके
समान उनके हाथ पकड़ लेता था, भटका देनेपर भी बलपूर्वक
साड़ीका आँचल पकड़ लेता था, सिर हटानेपर भी केश

कामीवाद्वापराधः स दहतु दुरितं शाम्भवो वः
शराग्निः ॥३४॥ गर्जद्भीमभुजङ्गभूषणकणाकृतकारभीति-
मदः क्रीडन्मेनपिशाचगच्छसगणः प्रत्यक्षतः प्रान्ततः ।
भालस्थप्रलयानलोद्भटशिवः सङ्क्रान्तसर्वास्रपदः शा-
ईलाजितभृङ्गयानकभयो भूयाद्भवो भूयते ॥३५॥ गौरी-
चुम्बनचञ्चलं परिचलद्गण्डममामण्डलं व्यावल्गन्कणि-
कुण्डलं रतिरसमस्विन्नगण्डस्थलम् । प्रादप्रेमपरम्प-
रापरिचयप्रोक्तुल्लनचाञ्चलं शम्भोरस्तु विभूयते हि
भयतामुन्मत्तगङ्गं शिवः ॥ ३६ ॥ चिन्ताचक्रिणि हृन्म-
चक्रिणि भिया कुञ्जासनेऽञ्जासने नश्यद्दामनि तिग्म-
धामनि धूनाशङ्के शशाङ्के भृशम् । अश्वघेतसि च
प्रचेतसि शुचा तान्ते कृतान्ते वयः व्यग्रोऽभूत्कटुकाल-
कूटकघलीकाराय पायान्त वः ॥ ३७ ॥ चञ्चलान्द्रि-
कचन्द्रचारुकुसुमो माद्यजटापल्लवो रव्यदारुणदम्भः-

प्रहण कर लेता था, शीश्वं पर लेनेपर भी गिरा पड़ना था
और मटक देनेपर भी घालिहूँन किए ले रहा था ॥ ३४ ॥
वे शिवजी विषका कल्याण करे जिनके फुककारने हुए बड़े-बड़े
साँपोंकी भयानक फूँकारने मय लोंग डरे रहने हैं, जिनके चारों
ओर प्रेत, पिशाच और राक्षस खेलने रहने हैं, जिनके मन्मकके
तीसरे नेत्रमे प्रलय-कालकी आग्निके समान लपटें उठती रहती
हैं, जो सर्वत्र व्यापक हैं, जो धावकी माल छोड़े रहने हैं और
जिन्हें देवकर भयानक जीव भी भयभीत हो जाते हैं ॥ ३५ ॥
लहराती हुई गङ्गासे युक्त वह शङ्करजीका मन्मक आप लोंगोंका
कल्याण करे जो पार्वतीजीकी चूम लेनेके लिये चञ्चल होकर चमक
उठता है, जिसपर कुण्डली सारे हुए मौँप मन्म हाँकर डोलते हैं,
जिस्तके माथेपर रतिके आनन्दसे पसंजनेकी पैँदें झटक आई हैं
और अपना घना प्रेम जलाने समय जिसकी शीश्वं और भी अधिक
खिल उठती हैं ॥ ३६ ॥ महाविषकी उठनी हुई ज्वालाओंमे
जय सुदर्शन चक्र धारण करनेवाले विष्णु अधिक चिन्तित हो
गए, बड़ा प्राण बचानेको कमलमें घुस गए, सूर्य निस्तेज हो
गए, चन्द्रमा असमभ्रसमें पड़ गए, कुबेरका चित्त व्याकुल
हो गया और यमराज शोकमे मूर्च्छित हो गए उस समय उस
भयङ्कर कालकूट नामक महाविषकी निगल जानेकी उतावलीमें
हड़बड़ाकर गये, देनेवाले शङ्करजी आपकी रक्षा करें
॥ ३७ ॥ 'म्याण्ड (दूँद) नामवाले तथा कल्पवृक्षके समान
वे शङ्कर भगवान् मेरा इच्छाएँ पूर्ण करें' जिनके सिरपर
छिट्की हुई चाँदनीवाला चन्द्रमा माना मुन्दर फूल हैं, विष्णुकी
हुई जटाएँ माना घने हैं, गलेमें सिर उठाए हुए मखियाले

कमलिमाँस्तत्पञ्चशाखालयः । स्थाणुमें फलदो भव-
त्वतितरां गौरीमुखेन्दुद्रवणीयूपद्रवदोहदाविध दधे-
वद्रुमन्वं सदा ॥ ३८ ॥ चन्द्राननार्धदेहाय चन्द्रांशुसित-
मूर्त्तये । चन्द्राकानलेनचाय चन्द्रार्थशिरसे नमः ॥३९॥
चूडाभस्मकणाङ्किताधिव जटापत्राञ्चलेनामृशन्नेत्राग्नि-
द्युनितापिताधिव करैस्सिञ्चन्सुधादीधितेः । नागधा-
सकलङ्किताधिव मुहुर्गङ्गाजलैः चालयन्माभिन्याश्चरणौ
गिरीन्द्रदुहितुर्भूत्यै गिरीशोऽवतु ॥ ४० ॥ चूडोत्तंसित-
चारुचन्द्रकलिकाचञ्चिच्छाभासुरो लीलादग्धविलो-
लकामशलभः श्रेयो दशाग्रं स्फुरन् । अन्तर्गुहदुरन्तमो-
हतिमिरप्रारम्भारमुच्छेदयैच्छेतःसप्तानि योगिनां विजयते
बोधप्रदीपो हरः ॥ ४१ ॥ व्युतामिन्दोलैर्जां रतिकलह-
भग्नञ्च धलयं ह्वयं चक्रीकृत्य प्रहसितमुखी शैलतनया ।
अशोचयं पश्यन्त्यवतु स शिवः सा च गिरिजा स च

भयङ्कर पाँच साँप ही डालिपाँ हैं और पार्वतीके चन्द्रमुखसे
टपकता हुआ रस ही माना घसृत है ॥ ३८ ॥ उन शङ्करजीको
प्रथाम है जिनकी आधी देहमें चन्द्रमुखी पार्वतीजी बिराजमान
हैं, जो चन्द्रमाकी किरणोंसे उजले दिखाई पड़ते हैं, चन्द्रमा और
सूर्य दोनों जिनके नेत्र हैं और जो देवा चन्द्रमा सिरपर
धारण किए हैं ॥ ३९ ॥ वे गिरीश (शिवजी) आपकी
देरबरे हैं जो कड़ी हुई पार्वतीजीके पैर पड़ते हुए ऐसे
जाम पड़ते हैं मानो अपनी जटाओंसे उनके पैरोंमेंसे अपने
मस्तककी लगी हुई भस्म पोंछ रहे हों, अपने तीसरे
नेत्रके तापसे तपे हुए उनके चरणोंपर चन्द्रमाकी असूत-
मयी किरकें धरसाकर उन्हें रंगतल कर रहे हों अथवा
नागकी बिपेली साँसोंकी भापसे मैले किए हुए उनके चरण
गङ्गाजलमे धो रहे हों ॥ ४० ॥ मस्तककी शोभा बढ़ानेवाली
चन्द्रकलाकी उमली कान्तिसे चमकमाते हुए, स्वभावसे
ही चञ्चल कामरूपी पतङ्गोंको जला देनेवाले, योगियोंके
चित्तरूपी भवनमें बिराजमान तथा उनके भीतर छिपे हुए
अपार मोहरूपी घने ग्रन्थकारकी घटाका विनाश करनेवाले
कल्याणरूपी बत्तीके अग्रभागमें चमकनेवाले ज्ञान-दीपक शिवकी
जय हो ॥ ४१ ॥ रतिके समय कलहमें गिरे हुए शङ्करजीके
देहे चन्द्रमाको और टूटकर गिरे हुए अपने हाथके आधे कान्ति
मिलाकर उसे चन्द्रमाके समान गोल बनाकर हिमालयकी पुत्री
पार्वतीजीने हैंसते हुए जिन शङ्करजीकी 'मह देविण' कहकर
दिलाया, तथा दाँतोंकी कान्तिसे जिसका सारा शरीर चमक रहा
है वे शङ्करजी, वे पार्वतीजी और शङ्कर-पार्वतीके दाँतोंकी चमकसे

कीडाचन्द्रो दशनकिरणापूरिततनुः ॥४२॥ जगज्जीय-
नमव्याहः शम्भोरम्भोमयं तपुः । प्रह्लादमपि यस्या-
न्तस्तरत्तुम्भीफलायते ॥४३॥ जगन्निस्सृत्ताप्रलयकि-
याविधौ प्रयत्नमुन्मेषनिमेषविधमम् । वदन्ति यन्म-
ल्लोलपद्मणां पराय तस्मै परमेष्ठिने नमः ॥४४॥
जयति जटाकिञ्जल्कं गङ्गामधु मुगडधलययीजमयम् ।
गलगरलपङ्कसम्भवमम्भोरुहमाननं शम्भोः ॥४५॥
जयति प्रियापदान्ते गलग्रैव्यकः स्मररगतिः । विषम-
विशिले विशिष्टे शरणं गलयङ्ककस्थालः ॥४६॥ जीर्ण-
प्युक्तकालकूटगरले प्लुष्टं तथा मन्मथं नीते भासुर-
भालनेत्रतनुतां कल्पान्तदावानले । यः शक्या समलङ्क-
तोऽपि शशितं शैलान्मजां स्पर्धुनां धत्ते कान्तुकराजनी-
तिनिपुणः पायान्स वः शङ्करः ॥४७॥ ज्वाला जातु
करालतां न दधतां भाले रुशानांरिति स्वर्गङ्गा विहित्वा
कपर्दीनलया प्रागव धनं स्वयम् । त्वङ्ग्रासहते सुधाक-

रक्ता मूर्धाचिता येन च प्राज्ञोऽसौ भवभीतिशान्ति-
विधये भूयापिनाकी शिवः ॥ ४८ ॥ तत्कालाग्नीवि-
जुम्भणपरिवासादिव अश्वना चामार्धेन तदंशेषकरणं
विभ्रष्टपुमैरवम् । तुल्यश्चास्मिभुजङ्गभूषणमसौ भागो-
न्द्रकङ्कालकैविभ्रातः परमेश्वरो विजयते कल्पान्तकर्मा-
न्तकः ॥ ४९ ॥ तानं तत्तानतानं कथय हरकुलेऽलङ्कृतं
सम्प्रदानं तदङ्गुल्या चन्द्रमालिननमुखकमलो जातलज्जो
बभूव । प्रह्लादादीतदानीं शृणुत हरकुले वेदकण्ठोद्यक-
राटो श्रीकराश्रीलफगडः प्रहसितवदनः पातु चक्षुश्चन्द्रः
॥५०॥ तादृक्सससमुद्रमुद्रितमहीभूभृद्भिर्भृङ्गैः स्रोतो-
भिः परिघारिता दिशि दिशि द्वीपैः समन्तादयम् । यस्य
स्फाग्फणायलीमणिव्ये मज्जन्कलद्राहृतिः शेषः सोऽ-
प्यगमयद्रुद्रपदं तस्मै नमः शम्भवे ॥५१॥ तारागायकश-
स्त्राय जगदाधाराय धाराधरच्छायाधारककन्धगाय
गिरिजासङ्गैकभृङ्गारिणे । नद्या शेखरिणे दशा तिलकिने

चमकता हुआ खेल-खेलमें बना वह चन्द्रमा, वे मय संसारकी
रक्षा करें ॥ ४२ ॥ सारे संसारके जीवन, शङ्कर भगवान्का वह
जहमय शरीर आपकी रक्षा करें जिसमें ईश्वरता हुआ सारा
महापद मैत्रीके समान जान पड़ता है ॥४३॥ जिनके विषयमें
शोक कहते हैं कि उन्हें संसारकी मृति और प्रलय करनेमें
केवल अपने भेषोंकी चञ्चल पलकों मिशाने और उड़ाने-माथका
प्रयत्न करना पड़ता है उन सर्वश्रेष्ठ परमपदरूप भगवान्
शिवकी प्रणाम है ॥ ४४ ॥ गलेके काले विषकर्पा कीचड़से
उत्पन्न कमलके समान जान पड़नेवाले उस शङ्करजीके
मुखकी जय हो जिसमें जटाएँ हो केशर हैं, गङ्गा हर मकरन्द
है और सिरका घेरा ही मानो कोरा है ॥ ४५ ॥ कामदेवके
दण्ड उन नीले कण्ठवाले भगवान् शिवकी जय हो जो प्रियाके
पैर पड़ते समय ऐसे जान पड़ते हैं मानो गलेमें खड्ग
बाँधकर कामदेवकी शरण जा रहे हों ॥ ४६ ॥ खेल और
राजनीतिमें अनुर वे शङ्करजी आप लोगोंकी रक्षा करें जिनमें
कालफूट विषको पचा लेनेपर, कामदेवकी भस्म कर देनेपर और
महाप्रलयके समय भयङ्कर दावाशि उत्पन्न करनेसे चमकते हुए
सप्ताहके नेत्रके शान्त हो जाने (सुँद जाने) पर भी हतनी
शक्ति है कि वे आकाश-गङ्गा, पार्वती और चन्द्रमाको एक साथ
सिरपर धरे रहते हैं ॥ ४७ ॥ अत्यन्त बुद्धिमान तथा पिनाक
धनुष धारण किए हुए वे भगवान् शङ्करजी संसारका भय शान्त
करें जिन्होंने पहलेसे ही सर्पोंके विषसे बचानेके लिये चन्द्रमाको

सिरपर धारण कर लिया और माथेकी छत्रिका लपटोंको
आवधिक प्रयत्न न होने देनेके लिये गङ्गाको जटाओंमें ही समा
लिया ॥ ४८ ॥ स्वका संहार करके एक शकलें पक्ष रहनेवाले,
हड्डियां और नागोंका आभूषण धारण करनेसे हड्डियोंके ढोंचे
और वास्तुिके समान ही भयावहे दिखाई देनेवाले, धार
वेध धारण करके महाप्रलयके समय आरभटो नृत्य करनेवाले
उन परमात्मा शिवकी जय हो जिनके जैभाई लेते समय
भयके मारे चापै भागमें स्थित पार्वती तिरने लगी थी
॥ ४९ ॥ विवाहमें शाकोरचार होते समय जय पुरोहितने
शिवजीसे पूछा कि 'आप अपने पिता, पितामह और
अपितामहका नाम बताइए' उस समय शङ्करजीने तां लज्जित
होकर अपना मुँह नीचा कर लिया किन्तु महाजीने टाँककर कहा—
'सुजिग, इसके पूर्वजाके नाम हैं क्रमशः—वेदकण्ठ, उग्रकण्ठ और
भ्राकण्ठ !' यह सुनते ही मुस्करा देनेवाले तथा सिरपर
चन्द्रमा सजाए हुए शङ्करजी आप लोगोंकी रक्षा करें ॥ ५० ॥
इतने पड़े साल समुद्रोंमें घिरा हुआ, आकाशकी चूमनेवाले ऊँचे-
ऊँचे पर्वतोंसे भरा हुआ तथा स्थान-स्थानपर बहते हुए सैकड़ों
खरनों और द्वीपोंवाला पृथ्वी जिसके चमकते हुए फणोंमें
रक्ती ऐसी जान पड़ती है मानो मणिमें छोटा-सा काला धब्बा
लग गया हो, ऐसे शेषको भी जिन्होंने हाथका कड़न बनाकर लपेट
रक्ता है उन शिवजीको प्रणाम है ॥ ५१ ॥ उन स्वामी भगवान्
शङ्करको सदा प्रणाम है जो मेघोंके समान उजले कन्धेवाले हैं,

नारायणेनास्त्रिणे नागैः कङ्कलिने नगेन गृहिणे नाथाय
नित्यव्रतिः ॥५२॥ आना भीतिभृतां पतिश्चिदचितां क्लेशं
सतां शंसतां हन्ता भक्तिमतां सतां स्वसमतां कर्त्तापकऽ-
र्त्तासताम् । देवः सेवकभुक्तिमुक्तिरचनाभूर्भुवःस्वस्व-
योनिर्माणस्थितिसंहतिप्रकटितकीडो मृडः पातु यः ॥५३॥
दास्येऽहं परिरम्भणानि कितव घृते जिनानि न्वया धैर्यं
धेहि यतः कृतः शतमहोत्तराणि तत्रावधिः । इत्युक्तः
शिवया निशादिवस्करज्योतिर्मयासिद्धयद्रागुन्मेषनिमे-
पकोटिघटनाव्यग्रा हरः पातु यः ॥५४॥ दिक्कालान्मसमंव
यस्य विभुता यस्तत्र विद्योतते यत्रामुष्य सुधीभवन्ति
किरणा राशेः स यासामभून् । यश्नन्पितमुपःसु योऽस्य

हविषे यस्तस्य जीवानवे वोढायद्गमेप मन्मथरिपोस्ताः
पान्तु नो मूर्त्तयः ॥५५॥ दिगम्बरानितम्बिन्याः किमम्बर-
विभूषणम् । इत्यम्बरहरः पायान्परीरम्भपरो हरः ॥५६॥
दिव्यं वारि कथं यतः सुरधुनी मौली कथं पावको दिव्यं
तद्धि विलोचनं कथमहिर्दिव्यं स चाङ्गे तव । तस्माद्युत-
विधौ त्वयाद्य मुषितो हारः परित्यज्यतामित्थं शैलभुवा
विहस्य लपितः शम्भुः शिवायास्तु यः ॥५७॥ दिश्यात्स
शीनकिरणभरणः शिवं वो यस्योत्तमाङ्गभुवि विस्फुर-
दूमिपला । हंसीय निर्मलशशाङ्ककलामृणालकन्दार्थिनी
सुरसरिभ्रमसः पपात ॥५८॥ दीव्यन्मांलि त्रिदशपरिप-
ञ्चीघनीयेन धाम्ना पश्यद्भालं धलभितकरं प्राणता कङ्क-

जो सारे संसारको अपने ऊपर टिकाए हुए हैं, जो एकमात्र
पार्वतीजीके साथ विहार करते हैं, चन्द्रमा और गङ्गाने जिनका
मुकुट सजा हुआ है, जिनका साँसरा नेत्र ही निकल है, भगवान्
विष्णु ही जिनके अस्त्र हैं, सौँप ही जिनके कङ्कण हैं और
हिमालय ही जिनका घर है ॥ ५२ ॥ इन्हें हुए लोगोंको वरसे
बचानेवाले, जड़ और चेतनके स्वामी, सज्जनोंको कर देनेवालोंको
मारनेवाले, भक्तोंको अपने समान करनेवाले, दुष्टोंको दबक
देनेवाले, अपने सेवकोंको सांसारिक सुख और भाग्य देनेवाले
तथा भूः भुवः स्वः लोक आदिको खेल-खेलमें ही बनाते,
विगाड़ते या पाकते रहनेवाले शङ्कर भगवान् आप लोगोंको रक्षा
करें ॥ ५३ ॥ जब पार्वतीजी शिवजीको आलिङ्गन करनेकी
आजी लगाकर गुप्ते हार गई तब उन्होंने शङ्करजीसे कहा—
'हे धूर्तराज ! मैं तुम्हें गुप्ते हारे हुए आलिङ्गन एक सी
दिनोंके पश्चात् दूँगी, तबतक तुम धीरज रखो ।' तबसे जो
शङ्कर भगवान् मृत्यु और चन्द्रमाकी पुतलियाँवाले दिन और
रातरूपी नेत्रोंको कराड़ों बार जल्दी-जल्दी मूँदने-खोलनेमें लगे
हुए अपना समय बिता रहे हैं, वे आपकी रक्षा करें ॥ ५४ ॥
१-जो दिशा और काशमें अपनी व्यापकता समान रखता है
(आकाश), २-जो उन आकाशमें प्रकाश देता है (मृत्यु),
३-जहाँ उस सूर्यकी किरणें अमृतमयी हैं जाती हैं (चन्द्रमा),
४-जो उन अमृत-विन्दुओंका विस्तृत रूप हुआ (जल),
५-अग्नि, ६-जो अग्निमें हविष्य डालता है (यजमान),
७-जो जीवनको वहन करता है (वायु), और ८-जो
उसमें सहन करनेका गुण है (पृथ्वी), वे मन्मथरिपु शिवजीकी
आठ मूर्तियाँ हमारी रक्षा करें ॥ ५५ ॥ 'नङ्गे रहनेवालेकी
स्त्रीको वस्त्र पहननेकी क्या आवश्यकता है !' ऐसा कहते

हुए आलिङ्गन करनेके लिये पार्वतीके वस्त्र खींचनेवाले
शिवजी संसारकी रक्षा करें ॥ ५६ ॥ शुभा खेलते हुए
शिवजीने पार्वतीजीका हार जीत लिया, उस हारको जीतनेके
लिये पार्वतीजीने कहा—आपको जलकी सौगन्ध है जो आप हार
न लौटा दें । शिवजीने कहा—जल कैसा ? पार्वतीजी बोलीं—
वही जो गङ्गारूपमें आपके सिरपर है (अर्थात् आपको अपने
सिरकी सौगन्ध है जो आप हार न लौटावें) । जब शिवजीने
न दिया तो पार्वतीजीने अग्निकी सौगन्ध दिखाई । शिवजीने
पूछा—यह क्यों ? पार्वतीजी बोलीं—यह आपका नेत्र है न !
(अर्थात् आपको अपने नृतीय नेत्रकी सौगन्ध है जो आप हार
न लौटावें) । इसपर भी असफल होकर पार्वतीजीने सूर्यकी
सौगन्ध दिखाई, शिवजीने पूछा—यह क्यों ? पार्वतीजी बोलीं—
यह आपके शरीरपर है न ! (अर्थात् आपको अपने शरीरकी
सौगन्ध है !) आज जो आपने गुप्ते मेरा हार भटक लिया है
उसे सीधेसे लौटा दीजिए । इस प्रकार पार्वतीजी-द्वारा हँसे
गए महादेवजी आप लोगोंका कल्याण करें ॥ ५७ ॥ शीतल
किरणोंवाले चन्द्रमाको गहना बनाकर पहने हुए वे शङ्करजी
आपको आनन्द दें जिनके सिरपर स्थित चञ्चल लहररूपी
पङ्खोंवाली गङ्गारूपी हंसिनी मानों उजले टण्डे चन्द्रमाकी कमल-
नाल समझकर उसे खानेके लिये ही आकाशसे झपट पड़ी
हो ॥ ५८ ॥ देवताओंकी सभाको शिक्षानेवाले तेज (चन्द्रमा)
से बचकते हुए मस्तकवाले, यहाँ अङ्गसे प्रत्यक्ष ही काम-कला-
रूपी ब्रह्मविद्याका उपदेश करनेवाले (काम-कला-स्वरूपिणी
तथा ब्रह्मविद्या-स्वरूपिणी पार्वतीजीको धारण करनेवाले)
तथा त्रिपुरासुरकी युवती किरणोंके स्तन, कपोल आदिकी
चित्रकारीरूपी सताको काटनेवाले चाकूरूपी जन शिव-स्वरूप

लेन । वामाङ्गेन स्फुटमभिदधन् मान्मथीं ब्रह्मविद्यां
जीवाद्भोजिपुरयुचतीपत्रवल्लीलचित्रम् ॥ ५६ ॥ दूरे
दादवनाभिसारक धूधान्नादूनि मुञ्चाधना भूयस्त्व-
स्तुतप्यहं यदि तदा चन्द्रः क्षितिं यास्यति ।
इत्युक्तः शशिमौलिर्द्रिस्तुतया बृडेन्दुभूलम्बनव्याज-
व्यञ्जितपादपत्रपतनप्रीतप्रियः पातु वः ॥ ५७ ॥ हृष्टः
सप्रेम देव्या किमिदमिति भयान्सम्भ्रमाच्चासुगीभिः
शान्तान्तस्तत्त्वसारैः सकलसृष्टिभिर्विष्णुना तस्मि-
न्नेन । आदायास्त्वं सगर्वरूपशमितवधूस्त्रयैर्देव्यीरैः
स्तानन्दं देवताभिर्मयपुरवहने धूर्जटिः पातु युष्मान् ॥ ५८ ॥
देव्याः प्राक्परिरम्भणे किल कटीं ह्रीं ह्रीं पुनस्तनकरीं
रोक्षुं तन्मुखमुन्मुखं रचयितुं ह्रीं चाधरास्यादने । ह्रीं
नेत्रान्तपलालकापनयने मोक्षश्च नीवीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं

सफलीकृताखिलकरः पायास्त वः शङ्करः ॥ ५९ ॥ देहाध्या-
नदकान्ताकचकुसुमचया भालनेचाना त्रिभिः पीनाभ्या-
मौलिष्वेत्स्वमुखसुगन्दीनामग्न्या जगन्ति । स्फीतान-
मेन्दुकार्न्तिद्विन्दर्शनदृष्टाच्छादनव्यनशीतः शम्भुर्भू-
पास्थिकुन्दप्रकर्णविकृतः पातु सर्वत्रभूतिः ॥ ६० ॥
धन्या केयं स्थिता ते शिर्गसि शशिकला किन्तु नामैतद-
भ्याः नामैवाभ्याम्नदेनत्परिचिन्तयामि ते विस्मृतं कस्य
हेतोः । नारीं पृच्छामि नेन्दुं कथयतु विजया न प्रमाणं
यदीन्दुदेव्या निहोतुमिच्छोग्रिति सुगन्तिं शाश्वत-
व्याद्विभोर्वः ॥ ६१ ॥ न क्रोधः क्रियतां प्रिये स तु भयन्मा-
लिम्भगङ्गोदरे मुग्धे मानमपूजितं न्यज कृतं शुष्माक्षि-
योगव्रयम् । यक्षे श्लेषममुं निगफुक कदा शिष्टांऽसि
यक्षे मया वामाङ्गेन हृतांसरः स्मरहरः स्मराननः

लेखकी जय ह्रीं जो अपने उस मस्तकको देख रहे हैं जिसपर
स्थित चन्द्रमाको समानताके कारण ही बाएँ भाग (पार्वती)
वाला प्राणप्रिय कहन प्रेमपूर्वक सहसा रहा है ॥ ५६ ॥
'हे दादवमैं अभिसरण करनेवाले ! दूर हटो ! न्यर्धका चाटुकारी
मत करो, यदि हन कीर तुम यने रहे तो फिर भी चन्द्रमा
पृथ्वीपर दिखाई देगा ।' पार्वतीके ऐसा कहते ही आभूषण बने
हुए चन्द्रमाकां पृथ्वीपर रखनेके यहाने पार्वतीजीके चरलकमलमें
सिर रखकर उन्हें प्रेमपूर्वक मनानेवाले शिवजी आपकी रक्षा
करें ॥ ५७ ॥ त्रिपुरामुरका नगर गलाए डालते हुए वे शङ्करजी
आप लोगोंकी रक्षा करें जिन्हें उस समय पार्वतीने प्रेमपूर्वक,
'अरे यह क्या' इस प्रकार कहकर बरनी हुई राक्षसियोंने
घमड़ाकर, शान्त अन्तःकरणवाले तत्त्वज्ञानी ऋषियोंने द्वा-
पूर्वक, विष्णुने मुस्कराते हुए, घमण्डी और ईर्ष्याने अपनी
घबराती हुई स्त्रियोंको शान्त (निर्भय) करके हाथोंमें सम्भ्र-
लेते हुए और देवताओंने यद्दे आनन्दपूर्वक देखा था ॥ ५८ ॥
वे शङ्करजी आप लोगोंकी रक्षा करें जिन्होंने पार्वतीजीका
सर्वप्रथम आलिङ्गन करते समय दो हाथोंसे पार्वतीजीके
घञ्जल हाथ पकड़े, और दो हाथोंसे पार्वतीजीका मुँह
ऊपर उठाया, दूसरे दो हाथोंकी सहायतासे पार्वतीजीका श्मर
पान किया, और दो हाथोंसे पार्वतीजीकी आँखोंपर आते हुए
बालोंकी पीछे हटाया तथा शेष दो हाथोंसे पार्वतीजीकी
कमरमें कसकर बँधी हुई साड़ीकी गाँठ खोलकर अपने दोनों
हाथ सार्थक कर लिए ॥ ५९ ॥ वे शङ्करजी सक्की रक्षा
करें जो अपनी देहसे सटी हुई पार्वतीके बालरूपी फूलोंसे वसन्त

जलवाले, आधेके नेत्रका अग्निके तापसे गमां जलवाले,
मस्तकपर कलकल करके बहनी हुई सुन्दर जलवाली गङ्गासे क्या
जलवाले, गिरे हुए चन्द्रमाका सुन्दर चौदमासे शरद जलवाले
और उजली हाडियों और कुन्दके फूलोंका सजावटने हंसभक्त
जलवाले, अथवा एक साथ ही उहाँ जलवाले जान
पड़ते हैं ॥ ६० ॥ पार्वतीजीने शङ्करजीसे पूजा—आपके सिरपर
यह कीन भाग्यवती है ? शङ्करजीने कहा—यह चन्द्रमाका कला है ।
पार्वतीजी—इसका नाम क्या है ? शङ्करजी—इसका यही नाम
है । यह तो तुम जानती ही हो, भूल कैसे गई ? पार्वतीजी—
मैं स्त्रीको पढ़ती हूँ, चन्द्रमाका नहीं । शङ्करजी—चित्तयाकां
ही कहो वह देखकर क्या दे कि यह चन्द्रमा है या नहीं ।
इस प्रकार अपने सिरपर स्थित गङ्गाको पार्वतीजीने छिपाना चाहते
हुए शिवजीकी यह धूर्तता आप लोगोंकी रक्षा करें ॥ ६१ ॥
शिवजीने कहा—प्रिये ! क्रोध न करो (न क्रोधः क्रियताम्) ।
पार्वतीजीने कहा—नक्र (घड़ियाल) तो तुम्हारे सिरपर
स्थित गङ्गामें है । शिवजी—मान करना अच्छा नहीं, तुम मान
झाड़ दो । पार्वतीजी—वह (मान=प्रतिष्ठा) तो तुम्हारे मिल जानेसे
और बढ़कर दूना हो गया । शङ्करजी—प्रिये ! अपने मुँहका
यह श्लेष (न्यंग) दूर करो । पार्वतीजी—तुम मेरे मुँहसे
कय सटे हो जो मैं छल्ला करूँ ? इस प्रकार अपने बाएँ भागमें
बैठी पार्वतीजीकी बातोंका उत्तर न दे सकते हुए तथा हँसते हुए
शिवजी आप लोगोंकी रक्षा करें ॥ ६२ ॥ उन शिवजीको प्रणाम
है जिनके ऊँचे सिरको चूमनेवाला चन्द्रमा चँवरके समान
सुन्दर जान पड़ता है और जो त्रैलोक्यरूपी नगरको सँभाले

पातु वः ॥६४॥ नमस्तु शिवाय शिवचन्द्रामरचारवे ।
 त्रैलोक्यनगरारम्भमूलस्तम्भाय शम्भवे ॥ ६५ ॥ नमस्तु-
 भ्यं देवासुरमुकुटमारिष्यकिरणमणालीसम्भेदस्त्रपि-
 तचरणाय स्मरञ्जिते । महाकल्पस्वाहाकृतभुवनचक्रेऽपि
 नयने निरोद्धं भूयस्तः प्रसरामिव कामं हुनघते ॥ ६७ ॥
 नमः शिवाय निःशेषकलेशप्रशमशालिने । त्रिगुणग्रन्थि-
 दुर्भेदभवचन्धविभेदिने ॥ ६८ ॥ निरुपादानसम्भारम-
 भित्तायेव तन्वते । जगच्चित्रं नमस्तस्मै कलाशलाघाय
 शूलिने ॥ ६९ ॥ नृत्यारम्भरसत्रसङ्गिरसुतारिकाध-
 सम्पूत्तये निर्व्यूढभ्रमिविभ्रमाय जगतामीशाय तुभ्यं
 नमः । यद्वाङ्मातुजगेश्वरप्रभृतिभिस्तादृग्भ्रमन्तीर्दिशः
 पश्यन्निर्घनघूर्णमाननयनैः शान्तोऽपि न भ्रष्टे ॥ ७० ॥
 पर्यङ्कग्रन्थिवन्धप्रिगुणितभुजगः श्लेषसंवीतजानोरन्तः-
 प्राणाधरोधव्युपरतसकलज्ञानरुद्धेन्द्रियस्य । आन्मन्या-

त्मानमेव व्यपगतकरणं पश्यतस्तत्पदपृथा शम्भोर्वः
 पातु शन्येत्तत्पटितनलयब्रह्मलघ्नः समाधिः ॥ ७१ ॥ पाणि-
 ग्रहे पर्यनगजपुत्र्याः पादाम्बुजं पाणिसरोरुहाभ्यां ।
 अश्रमातमार्गेपयतः स्मरारेर्मन्दस्मितं मङ्गलमातनोतु
 ॥ ७२ ॥ पाणिग्रहे पुलकितं वपुरैशं भूतिभूषितजयति ।
 अङ्कुरित इव मनोभूर्यस्मिन्भस्मावशेषोऽपि ॥ ७३ ॥ पाणौ
 कङ्कणमुत्फलं फलिपनिर्नयं लसत्पाषाणं कण्ठः कुण्डित-
 कालकूटविषमो यत्नं गजेन्द्राजितम् । गौरीलोचन-
 लोभनाय सुभगो वेषो धरस्यास्ति मे गण्डोल्लासविभा-
 चितः पशुपतेर्हासोद्गमः पातु वः ॥ ७४ ॥ पादस्थाविभं-
 चन्तीमखननिमयने रञ्जतः स्वैरपात्रैः सहोच्चैर्नैव दोष्णां
 सुहृदभिनयतः सर्वलोकान्तिगानाम् । दृष्टिं लक्ष्येयु मोघ-
 उचलनकणमुचं वध्मतो दाहभीतेरित्याधाराधुरोधात्रि-
 पुरविजयिनः पातु वो दुःखनृत्तम् ॥ ७५ ॥ पार्श्वस्थपृथ्वी-

रखनेके लिये मरुद् खम्भे हैं ॥ ६९ ॥ देवता और असुरोंके
 मुकुटोंमें लगे मणियोंकी उजली चमकने धाँप गये चरणोंवाले,
 कामदेवकों जीतनेवाले तथा महाप्रलयके समय नांसरे नेत्रकी
 अग्निकी भड़कनेमे रोकनेके लिये उसमें चौदहों भुवनोंकी
 आहुति देकर 'फिर भी यह न भड़क उठे' इसलिये कामदेवकी
 आहुति छोड़कर उस अग्निकी शान्त कर देनेवाले हैं शिवजी !
 आपको प्रणाम है ॥ ६७ ॥ सम्पूर्ण कशोंकी मिटा डालनेवाले
 तथा सन्, रज और तमरूपी नाभ डारोंकी बहुत कड़ी
 गोंठोंवाले संसारका बन्धन खोल डालनेवाले शिवजीका
 प्रणाम है ॥ ६८ ॥ शूल धारण किए हुए उन बड़े भारी
 कलाकार शिवजीका प्रणाम है जिन्होंने बिना किसी सामग्रीके
 इतना बड़ा संसाररूपी चित्र शून्यमें ही रच डाला ॥ ६९ ॥
 अर्धनारीश्वर शिवजीने जब नाचना आरम्भ किया उस समय
 ढरके मारे पार्वतीके गिर जानेमे आधे रीते हुए अङ्गको पुनः
 भरनेके लिये जिन्होंने नाचना बन्द तो कर दिया पर उनमे
 बेगमे घूमती हुई दिशाओंको देखनेमे घना चक्कर खानेवाली
 आँखोंवाले सर्पोंके डोलने रहनेमे जो अभी भी शान्त नहीं हो
 पाए, ऐसे सारे संसारके स्वामी हैं शिवजी ! आपको प्रणाम है
 ॥ ७० ॥ पर्यंक आसन लगानेपर सर्पोंके निगुने लिपट जानेसे
 जिसमें घुटने ठके हुए हैं, जिनकेद्वारा प्राणवायु रोक लेनेके
 कारण किसी प्रकारका ज्ञान न रह जानेसे सब इन्द्रियाँ शान्त
 हो चुकी हैं, जिसके द्वारा अपने आत्माकी सब क्रियाएँ
 आत्मामें ही कीज करके दिव्य दृष्टिसे भी वे संसार-प्रपञ्चको न

देखते हुए अपने मनका एकाग्र करके ब्रह्ममें मिल गए हैं ऐसी
 शिवजीकी समाधि आप लोगोंकी रचा करे ॥ ७१ ॥ हिमालयकी
 पुत्री पार्वतीका पाणिग्रहण करने समय उनके कमल जैसे
 कोमल पैरोंको मुस्कराने हुए अपने कमल जैसे हाथोंसे पधरपर
 रखनेवाले तथा कामदेवकी जला देनेवाले शिवजीकी मन्द
 मुसकान चाबुद देनी रहे ॥ ७२ ॥ शंकरजीका वह शस्त्रसे
 लिपटी हुई देह विजयी हो जिसमें पार्वतीजीका पाणिग्रहण
 करने समय रंभाश्रु होनेमे ऐसा जान पड़ा मानो शरीर जल
 जानेपर भी भस्मरूपमें बचे हुए कामदेवके चक्कर निकल रहे
 हों ॥ ७३ ॥ 'मेरे हाथोंमें क्या उठाए हुए सर्पोंके कङ्कन हैं,
 आँखोंमें अग्नि चमक रही है, गलेमें भयङ्कर कालकूट विष अटका
 हुआ है और हाथीकी खाँख वस्त्रोंका काम दे रही है, पार्वतीके
 नेत्रोंको लुभानेके लिये मेरा यह दुलहा-रूप बहुत सुन्दर है'
 ऐसा सोचकर शङ्करजीके कण्ठ जिस हैसीसे खिल उठे वह
 हैसी आप लोगोंकी रचा करे ॥ ७४ ॥ त्रिपुरासुरका जीतनेकी
 प्रसन्नतामें शिवजीका वह दुःखपूर्वक नाचना आपकी रचा करे
 जिसमें धमकसे पृथ्वीके नट हानेके डरसे पृथ्वीके आग्रहसे वे
 स्वच्छन्द होकर पर न पटक पाए, सब लोकोंसे पर पहुँचनेवाली
 वाहुओंकी इच्छा न रहने हुए भी उन्हें संकुचित करना पड़ा
 तथा त्रैलोक्यके जल जानेके डरसे भयङ्कर चिनगारियाँ उड़ाती
 हुई दृष्टिको वे कहीं स्थिर न कर पाए ॥ ७५ ॥ सायंकाल
 चाप भागमें स्थित, पर्वतोंमें श्रेष्ठ हिमालयकी पुत्री पार्वतीकी
 क्रोधसे कौपती हुई देख डरके मारे 'मौ ! तुम्हें प्रणाम है' ऐसा

धराजकन्याप्रकोपनिस्फूर्जशुक्रातरम्य । नमोऽस्तु ते
मानरिति प्रणामाः शिवस्य सन्ध्याविषया जयन्ति ॥ ७६ ॥
पिनाकफणियालेन्दुभस्ममन्दकिनीयुता । पवर्गरचिता
मूर्तिरपवर्गप्रदास्तु वः ॥ ७७ ॥ पैलस्यपीनभुजसम्पदु-
दस्यमानकैलाससम्भ्रमचिलोदशः प्रियायाः । श्रेयांसि
षो दिशतु निहितकोपचिह्नमालिङ्गनोत्पुलकमासितमि-
न्दुमैलेः ॥ ७८ ॥ प्रणयकुपितप्रियापदलात्तासन्ध्यानु-
यन्धमधुरेन्दुः । सहलयकनकनिकपप्रावशोवः शिवो
जयति ॥ ७९ ॥ प्रणयकुपिता दृष्ट्वा देव्यां ससम्भ्रमवि-
स्मितस्त्रिभुवनगुरुभोक्ता सद्यः प्रणामयगेऽभयन् । नमि-
तशिरसो गङ्गालोके तथा शरणाहताययतु भवनस्यस्त-
स्यैवद्विलक्ष्मघञ्चितम् ॥ ८० ॥ प्रतिधिम्बितमारीमुच-
चिलोकमोक्तम्पशिथिलकस्तगलिनः । स्वेदभरपूर्यमाणः
शम्भोः सलिलाञ्जलिर्जयति ॥ ८१ ॥ विधन्याधः कपदे

कहकर शङ्करजी-द्वारा किए गए प्रणामोंकी जय हो ॥ ७६ ॥
पिनाक (धनुष), फणी (साँप), यालेन्दु (देवा चन्द्रमा),
भस्म (राख) और मण्डाकिनी (गङ्गा) इन पवर्गके पाँच
अक्षरोंसे आरम्भ होनेवाले नामकी वस्तुएँ धारण करनेवाले
शिवजी आपको अपवर्ग (मोक्ष) दें ॥ ७७ ॥ शयणकी
बलवान् भुजाओंपर उठे हुए कैलास पर्वतके उगमगानेपर दूरके
मारे पञ्चल श्रौण्ण्डाली पार्वतीका क्रोध छिपाकर शङ्करजीसे
लिपटकर पुलकिन होना और शङ्करजीका धैर्य जाना आप
लोगोंका कल्याण करना रहे ॥ ७८ ॥ उन शङ्करजीकी जय हो जो
सायंकाल प्रेममें कोधित हुई पार्वतीके पैरोंमें लगे महावरमें
रहे हुए लाल रङ्गवाले सुन्दर चन्द्रमाको माथेपर धरे हैं और
पार्वतीजीका हाथ अपने कण्ठमें डालनेसे जिनका गला गेला
जान पड़ता है माना पार्वतीके हाथोंमें पहने हुए सोनेके कङ्कनकी
परल करनेवाली कसौटी हो ॥ ७९ ॥ पार्वतीजीको प्रेममें
कोधित देवदर हृदयदाने हुए अचरजमें पदकर तीनों लोकोंके
स्वामी भगवान् शङ्कर तुरन्त दूरके मारे जैसे ही उन्हें प्रणाम
करने लगे वैसे ही सिर नवाए हुए शङ्करजीके सिरकी गङ्गा
और चन्द्रमा दोनोंको पार्वतीने लाल मार दिया । तीन नेत्रवाले
भगवान् शङ्करका यह अनोखा रङ्ग-रङ्ग याप लोगोंकी रक्षा करे
॥ ८० ॥ अञ्जलि के पानीमें पड़ती हुई पार्वतीजीकी परछाईं देवनेपर
हाथोंके कोंपकर बीले पड़ जानेके कारण पानी गिर जानेसे रीती
हुई, पर तुरन्त ही बहते हुए पसीनेसे फिर भरी हुई शङ्करजीकी
अञ्जलिकी जय हो ॥ ८१ ॥ देवलोककी युवतीके समान जाम

सुगन्धगन्धगीहिनल्लेखां ललाटे नेत्रान्नः दालधति गर-
लमपि गले दशाक्षचर्माम्भुगो । पञ्चाभ्यां वै त्रिनयनं वृष-
भगतिरनिर्वाणभगार्थयामः सन्ध्यासम्पदं वः सत-
सकलगुणैर्गुणताकार ईशः ॥ ८२ ॥ भस्मान्धोरगपुच्छ-
निस्फुटभयङ्गालम्भयैश्वरान् ज्वालाभिवज्जनुधांशुमण्डल-
गलन्पीयूषधागारसैः । सर्वाथ दृष्टिपचर्मर्गजितस्यध्या-
भ्यहृण्य दर्पणव्यासक्तः सहस्राद्रिजोपहसितो नशो हरः
पातु वः ॥ ८३ ॥ त्रिलुकोऽपि सकलेस्त्रितदानी प्रतभूमि-
निलयाऽपि पवित्रः । भूतमिचमपि याऽभयसर्त्री न
विचित्रचरितं शिवमीडे ॥ ८४ ॥ भोतिनार्मिन् भुजङ्गपुङ्ग-
वाधिपान्प्रीतिर्न चन्द्रामृताशायोचं हि कपालदाम-
लुलनारङ्ग्यं न गङ्गाजलात् । नोद्विगच्छतिभस्मना न
च सुखं गौरीमननार्लङ्गनादात्ताराप्रतया तिताहित-
समः स्वस्था हरः पातु वः ॥ ८५ ॥ भुजङ्गकुण्डलीध्व-

गद्नेवालां चाद्रमाकां कला तथा गङ्गाकां अपने गटामुकुटमें
तथा प्रलय कर देनेवाली अग्निको माथेके नीसरे नेत्रमें धारण
किए हुए, गलेमें महाविष धरे हुए तथा देहपर वाचकी ग्याल
आदे हुए, पाँच मुँह तथा तीन नेत्रोंवाले, शैलकी लयारीकी ही
अच्छा समझनेवाले, अपनी देहके आधे दाएँ भागमें
पार्वतीजीको धारण किए रहनेवाले तथा इन सब गुणोंमें अनोखे
रङ्ग-रङ्गवाले शङ्कर भगवान् आपको सम्पत्ति दें ॥ ८२ ॥
शिवजीकी देहमें लगी भस्मके उद्धर श्रौण्ण्डालीमें पड़नेसे अन्धेमें
होते हुए साँपकी फुफ्फुआरमें माथेकी अग्निके धधक पड़नेपर,
उसके नापके कारण चन्द्रमासे पसीने-रूपमें टपकना हुआ
अमृत जब हाथीकी ग्यालपर पड़ा तो वह जी उठा और उसके
छिछाड़नेसे दूरके मारे भागते हुए शैलको लींचने हुए जिन
मझे शिवजीका देवदर हिमालयकी पुत्री पार्वतीजी हैंस पड़ीं
वे शङ्कर भगवान् आपको रक्षा करें ॥ ८३ ॥ उन अनोखे रङ्ग-
रङ्गवाले शिवजीको मैं प्रणाम करता हूँ जो भिखमङ्गे होकर
भी भक्तोंकी सब प्रकारकी इच्छाओंका पूर्ण करनेवाले हैं, जो
रमराममें रहते हुए भी पवित्र हैं और भूत-प्रेतोंके मित्र होते
होते हुए भी जो दूरसे बुदबुदनेवाले हैं ॥ ८४ ॥ महानन्दमें
मस्त रहनेके कारण जिन्हें न विपैले साँपोंका डर है, न अमृतले
भरे चन्द्रमासे ही प्रेम है, न लुदकती हुई साँपड़ियोंकी मालासे
अपवित्रता है, न गङ्गाजलसे कोई अपवित्रता है, न चिताकी
राखसे जिन्हें कोई कष्ट है, न पार्वतीजीके स्तनोंका आलिङ्गन
करनेमें आनन्द ही है, इस प्रकार अपनी भलाई और

कशशिशुभ्रांशुशीतशुः । जगन्त्यपि सदापायादव्याचे-
तोहरः शिवः ॥ ८६ ॥ भूत्यालेपनभूषितः प्रविलसन्ने-
त्राग्निदीपाङ्कुरः कण्ठे पन्नगपुष्पदामसुभगो गङ्गाजलैः
पूरितः । ईपत्ताग्रजटाग्रपल्लवयुतो न्यस्तो जगन्मण्डपे
शम्भुर्मङ्गलकुम्भतामुपगतो भूयान्स्तां श्रेयसे ॥ ८७ ॥
मल्लीमालधिया सुधाकरकलां कण्ठधियं कज्जल-
भ्रान्त्या भालविलोचनानलशिखां सिन्दूरपूराशया ।
कैलासे प्रतिविम्बितान्स्वयपुपो गृह्णन्सन्त्या मृदुः
पार्वत्याः प्रतिकर्मकर्मणि चिन्तं मुग्धो हरः पातु वः ॥ ८८ ॥
मानर्जीय किमेतदङ्गुलिपुटे तातेन गोपाय्यते वत्स स्वा-
तु फलं प्रयच्छति न मे गत्वा गृहाण स्वयम् । मात्रैवं
प्रहिते गृहे विघटयत्याकृष्य सम्भ्याज्जलिं शम्भोर्भिन्नसमा-

गुराई करनेवालोंके साथ एक-सा यत्नाय करनेवाले शाश्वत शिव
भगवान् आपकी रक्षा करें ॥ ८६ ॥ वे मनको हरण करनेवाले
शिवजी सदा संसारको नष्ट होनेसे बचावें जिनके कुण्डल बने
हुए सौंपमें एक साथ ही उनके नेत्रोंमें स्थित सूर्य, चन्द्र और
अग्नि की परछाईं पड़कर चमक रही ॥ ८७ ॥ शुभ कार्योंमें
सजाए हुए मङ्गल-कलशके समान, वे संसाररूपी मण्डपमें स्थित
शिव भगवान् सजनोंका कल्याण करें जिनकी देहमें कलशमें लगे
लेपकी भौंति राख लिपटी है, कलशके ऊपर जलते हुए दिण्डुके
समान माथेकी आँखमें अग्नि चमक रही है, कलशमें लिपटी
कूल-मालाओंके समान जिनके गलेमें सौंप सजे हैं, कलशमें
भरे गङ्गाजलके समान जिनके माथेमें स्वयं गङ्गा भरी है तथा
कलशमें रखे पल्ल-पल्लवके समान जिनके सिरपर कुल
लाल-लाल जटाएँ सजी हैं ॥ ८८ ॥ कैलाश पर्वतपर
पवनी हुई अपनी परछाईं पर सजी हुई चन्द्रकला जब
शिवजीको पार्वतीजीके केशोंमें सजी मल्लीकी मालाके समान
जान पड़ी, गलेका कालापन पार्वतीजीकी आँखोंमें लगे काजल-
सा जान पड़ा, माथेमें चमकमाना आगकी लौ पार्वतीजीके
माथेपर लगे सिन्दूर-सी जान पड़ी तो उस परछाईंको पार्वती
ही समझकर जैसे ही शिवजी उभे पकड़ने चले वैसे ही शृङ्गार
करती हुई पार्वतीजी यह देखकर हँस पड़ी, तब अपनी
वास्तविक पार्वतीका शृङ्गार देखकर जो सदाके लिए उस
शृङ्गारपर मोहिन हो गए वे शिव भगवान् आपकी रक्षा करें
॥ ८८ ॥ सम्भ्या करते हुए शिवजीको हाथ जोड़कर ध्यान
लगाए बैठे देखकर स्वामिकान्तिकेयजीने माता पार्वतीके पास
आकर कहा—माँ ! पार्वतीजी बोलीं—जिधों बेटा ! क्या है ?

धिरुद्धरभक्तो हासोद्भ्रमः पातु वः ॥ ८९ ॥ मायम संवृणु
विषमिदमिति सातङ्गं पितामहेनोक्तः । प्रातर्जयति
सलज्जः कज्जलमलिनाधरः शम्भुः ॥ ९० ॥ मुक्तिर्हि नाम
परमः पुरुषार्थ एकस्तामन्तरायमवयन्ति यदन्तरात्मा ।
किं भूयसा भवतु सैव सुधामयूखलेखाशिखाभरणभ-
क्तिरभङ्गुरा वः ॥ ९१ ॥ मौनादस्तमितैव चारुभलितः
अस्तैकहस्ताद्वतं दूरेऽप्यञ्जलिवन्धनं प्रणमनं स्तब्धा-
धर्म्यं कुतः । इत्थं सङ्कटितैकविप्रहृतया व्यग्रो
गिरिग्रामणीर्जायाञ्जानरुपऽज्जयन्नुनयन्देवस्त्रिलोकी-
गुरुः ॥ ९२ ॥ मौलिलग्नृहिणां दग्धिरदयस्विना-
र्जचन्द्रामृतप्रगुञ्जीवितदेवदेवैर्यशिरसामव्योन्यविद्वेषि-
णाम् । जाते वाक्कलहे प्रठासनपरे तन्द्राचितारे परं किं

कान्तिकेयजी—पिताजी अपनी उँगलियोंके पीछमें क्या छिपाए
हुए हैं ? पार्वतीजी—बेटा, उसमें कोई मीठा फल है जिते वे
मुझे नहीं देते, तुम स्वयं जाकर ले लो । इस प्रकार माता
पार्वतीजीके भेजेपर कान्तिकेयजीने जैसे ही जाकर शिवजीके
मुँह हाथोंको खींचकर अलग-अलग किया वैसे ही शिवजीकी
वह समाधि टूट गई जिसमें वे वेगले आत्म-तत्त्वोंकी ओर बढ़े
जा रहे थे । माता पार्वतीके किए इस परिहासका ध्यान करके
हँस पड़नेवाले शिवजीकी हँसी आपकी रक्षा करें ॥ ८९ ॥
प्रातःकाल अपने आँठमें लगे काजलको छिपाते हुए शिवजीले
जब प्रह्लादीने कहा कि 'विषको बमन न कीजिए इसे
मैं भालकर कण्ठमें ही रखिए' उस समय आपका लज्जित
होनेवाले शिवजीकी जय हो ॥ ९० ॥ अधिक कहते क्या
साम ! अमृतसे भरो हुई किरणोंवाले, चन्द्रमाका मुकुट पहने
हुए शिवजीके चरणोंमें आपकी वह भक्ति ही और अधिक बढ़
हो, जिसके ध्यानन्दका जाननेवाले लोग सबसे बड़ा पुरुषार्थ
(लाभ) समझी जानेवाली मुक्तिको भी विप्र ही समझते हैं
॥ ९१ ॥ अपनी आधी बोईं देहमें वैठी पार्वतीजीके क्रोधित
होकर चुप हो जानेसे शिवजीकी चापलूसी भरी बोली भी
बन्द हो गई, पार्वतीजीके अपना एक हाथ खींच लेनेपर जो हाथ
भी नहीं जोड़ सकते, पार्वतीजी अपना सिर नहीं हिलाती तो
शिवजी सिर भी कैसे मुका सकते हैं, इस प्रकार एक ही
शरीरमें दोनों रूप होनेके कारण इतनी अन्कटांके आ पड़नेसे
तब आए हुए, क्रोधित पार्वतीका मनाते हुए, कैलासरूपी
गर्वके मुखिया और त्रिलोकीके स्वामी शिवजीकी जय हो
॥ ९२ ॥ तीसरे नेत्रकी उठी हुई लपटोंके तापसे पिघलकर

कुर्वादिनि तद्वचःस्मितमुखः पायान्त वः शङ्करः
॥ ६३ ॥ मौलां किन्तु महेश मानिनि जलं किं वक्त्र-
ममोहहं किं नीलालकवेणिका मधुकरी किं भूलगा
वीचिका । किं नेत्रे शुफरी किमु स्तनयुगं मेरुद्रधाद्र-
हयं साशङ्कामिति वञ्चयन्निग्नितुतां गङ्गाधरः पातु
मः ॥ ६४ ॥ यत्तत्त्वं धृतिभिस्तथोपनिषदां वृन्देन वन्द्य-
स्वन्नित्यं भीयत ईशता निरवधिर्यत्रैव सर्वान्मना ।
पूर्णानन्दतनुं दयैकजलधिं दुर्लभं प्रवृत्तं सदा मायेशान-
मनन्तमव्ययमजं वन्दे परं शङ्करम् ॥ ६५ ॥ यन्मातृभ्र-
मिष्टुर्मानवसुधाक्षमाधिकठे भृशं मेरीं पार्श्वनि-
वासिवासरनिशाचित्रे परिभ्राम्यति । नैजस्यस्तद्विती

भवन्तु शनशो दृष्टा हि ताम्नाः कथं तामस्योऽपि स यः
पुनातु जगतामन्येष्टियथा चिभुः ॥ ६६ ॥ यस्मिन्नुद्भ-
सङ्गा इव बहुप्रह्लागडवगडाः क्वचिद्भ्रान्ति कथापि च
सीकरा इव विरिञ्चयाद्याः स्फुरन्ति भ्रमान् । चिद्रूपा
लहरीव विध्वजननी शक्तिः क्वचिद्विद्यान्ते म्यानन्दा-
तनिर्भरं शिवमहापाधानिधिं नन्नुमः ॥ ६७ ॥ यस्या-
दुरागमचिदः परिपूर्णशक्तेश्च कियन्त्यपि निविष्टममुं
प्रपञ्चम् । तस्मै तमानन्दचिन्मासुगन्धराय नारायणी-
सहचराय नमः शिवाय ॥ ६८ ॥ या सृष्टिः क्षणदुराधा
बहति विधिदुर्गं या हविर्या च होत्री ये छे कासे
विधसः धृतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विध्वम् ।

हैं चन्द्रमासे गिरा हुआ अमृत पड़नेसे मुग्धमात्रामें पहुँच हुए
एक दूसरेके धैरा देवतायों और देवोंके सिर जय जो उठे
और आपसमें लड़ने लगे, उपेक्षा-पूर्वक हैसने लगे तथा थककर
ऊँघने लगे उस समय 'अथ क्या करना चाहिए' कहकर
मुस्करी देनेवाले शिवजी आपकी रक्षा करें ॥ ६३ ॥ शिवजीके
सिरपर गङ्गाको देखकर सौतियाडाहसे पार्वतीजीने उनसे
पूछा—हे शिव ! यह मस्तक पर क्या है ? शिवजी बोले—
मानिनि ! यह तो जल है । उन्होंने पूछा—उसमें कुछ कहाँसे
आया ? शिवजी बोले—मुख कहाँ, यह तो उसी जलका कमल
है । पार्वतीजीने पूछा—तब यह काली-काली चोटो कैसी है ?
शिवजी बोले—यह तो कमलपर मैङ्गलाचाली भीरोंकी पोंत है ।
पार्वतीजीने पूछा—ये भीरु कैसी दिग्राई पड़ रही हैं ? शिवजी
बोले—ये तो लाहुरें हैं । पार्वतीजीने पूछा—तब इनमें आँखें
कहाँसे आईं ? शिवजी बोले—ये तो मल्लियारों हैं । पार्वतीजीने
पूछा—इनके स्तन कैसे हैं ? शिवजी बोले—ये तो चकवी-
चकवे हैं । इस प्रकार मस्तकपर बैठी हुई गङ्गासे सौतियाडाह
करनेवाली पार्वतीजीको चकमा देते हुए शिवजी आप जांगोंकी
रक्षा करें ॥ ६४ ॥ ब्रह्मानन्दसे भरे हुए, दयाके एक अकेले समुद्र,
अत्यन्त शुद्ध, सदा ज्ञानमय, मात्राके स्वामी, अपार, अमिट,
अजन्मा तथा सबसे बड़े उन भगवान् शिवजीको मैं प्रणाम
करता हूँ जिनके तत्त्वको सब वेद और उपनिषद् एक साथ
मिलकर भाटाँकी भीति गाया करते हैं और जिनमें सब प्रकारकी
अपार शक्ति भरी हुई है ॥ ६५ ॥ संसारका अन्तिम संस्कार
करनेवाले वे शिवजी आप लोगोंको पवित्र करें जिनके नाचते
समय घने चक्कर खानेसे वेगले धूमती हुई पृथ्वीरूपी चकपर
स्थित घुमेरुके आस-पास रहनेवाले दिन और रात्रिरूपी चित्र

(सूर्य, चन्द्र) जब वेगले घुमने लगे तो ऐसा ज्ञान पड़ा
मामा उन चन्द्र-सूर्यके मकड़ों टुकड़े होकर चारों ओर
बिखर गए हों या चित्रलाके मकड़ों टुकड़े बिखरकर चमक
रहे हों जो अधिक तेजके कारण देखे नहीं जाते ॥ ६६ ॥
बड़े भारी मसुद्रके समान उन शिवजीको हम प्रणाम करते
हैं जिनमें कहीं-कहीं बिकले हुए अनेक ब्रह्माण्ड पानीके
बुलबुलोंके समान दिग्राई देते हैं और ब्रह्मा आदि देवता धर्मके
कारण कहीं-कहीं उड़ी हुई बूँदोंके समान ज्ञान पड़ते हैं, सारे
संसारका उपजानेवाली चिन शक्ति प्रशमाया जिनमें कहीं
उठी हुई लहर-सी ज्ञान पड़ती है और जो अपने ही आनन्द-
रूपी अपार जलमे भरे हुए हैं ॥ ६७ ॥ यह सारा दिग्राई
देनेवाला जड़-बेजड़ संसार जिनके किन्हीं एक अंशमें जमा
हुआ है, जो तमालके रङ्गके समान चमकमाते हुए नीले
कण्ठवाले हैं और नारायणीके सहचर हैं उन बहुत बड़ी शक्तिसे
भरे हुए भगवान् शिवको प्रणाम है ॥ ६८ ॥ शिवजी उस
जलके रूपमें हमें प्रणम दिग्राई देते हैं जिसे ब्रह्माने सबसे
पहले बनाया, उस अग्निके रूपमें दिग्राई देते हैं जो विधिके
साथ ही हुई हवन-प्राप्तरी ग्रहण करती है, उस होताके रूपमें
दिग्राई देते हैं जिसे यज्ञ करनेका काम मिला है, उन सूर्य
और चन्द्रमाके रूपमें दिग्राई देते हैं जो दिन और रातका
समय निश्चित करते हैं, उस आकाशके रूपमें दिग्राई देते हैं
जिसका गुण शब्द है और जो संसार-भरमें रमा हुआ है,
उस पृथ्वीके रूपमें दिग्राई देते हैं जो सब वस्तुओंको
उत्पन्न करनेवाली बताई जानी है और उस वायुके रूपमें
दिग्राई देते हैं जिसके कारण सब प्राणी जी रहे हैं । जल,
अग्नि, होता, सूर्य, चन्द्र, आकाश, पृथ्वी, और वायु

यामाहुः सर्वशोभप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राण्यन्तः
 प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिराशः
 ॥ ६६ ॥ योगिध्येयं विमलविशदम्स्फुरद्रम्यकान्तिं
 शान्तं शुद्धं सुरपरिहृदैरानन्दैर्यमानम् । कारुण्यार्द्रं
 हसितसुषमांमादिताशेषविश्वं साक्षात्तत्त्वप्रतिवृत्ति-
 मुमासंयुतं नामि शम्भुम् ॥ १०० ॥ यं वेदाः सततं
 स्तुवन्ति नितरां ध्यायन्ति यं योगिनां यः सृष्ट्यादि-
 निदानमुष्णकिरणैर्दृशन्ति यः पुमान् । अस्मिन्शैल-
 सुताकृतार्धवपुषि प्रक्षाल्यते मन्त्रिणं रमतां
 सदा भयहरे श्रीमत्परब्रह्मणि ॥ १०१ ॥ यः कन्दुकैरिव
 पुरन्दरपद्मसमपद्मापतिप्रभृतिभिः प्रभुरप्रमेयः । खेलन्त्य-
 लङ्घ्यमानमा स हिमाद्रिकन्याकान्तः कृतान्तदलनां
 लघयत्ययं यः ॥ १०२ ॥ रचयति सहसा यच्चित्रमलम्प्रपञ्चं
 प्रशमयति च तद्वत्केनाचक्रान्तुकेन । आद्यादितमपरैस्त-
 ष्णैरङ्गुलिभिरङ्गुलिनामादनुजदलनदलं शयनमस्वमव्यान्
 ॥ १०३ ॥ राजा राजाचिताङ्गैरनुपचितकलां यस्य

हृत् प्रातः प्रत्यहं रूपं मे जा भगवान् शिव सबकां दिखाई देत
 हैं वे आपका कल्याण करें ॥ १०१ ॥ योगियोंसे ध्यान किए
 जानवाले, चारों ओर फैलती हुई स्वच्छ कान्तिवाले, देवताओंके
 द्वारा झुक-झुककर पूज जातवाले, दयाका वादसे भागे
 हुए, ज्ञानमय, अत्यन्त शान्त तथा अपनी आत्मा सुन्दर
 हैंसांसे सारे संसारको सुन्दर बना देनेवाले, पार्वतीजीके साथ
 बैठे हुए उन शङ्करजीका प्रणाम करता हूँ जो प्रलयके सागर
 दूसरे रूप हैं ॥ १०० ॥ बुद्धिके भयङ्कर, तीनों कालमें
 रहनेवाले, भय हर देनेवाले, उस ज्योतिःस्वरूप परब्रह्ममें
 मेरा मन सदा रमता रहे जिनकी स्तुति वेद सदा हो करते रहते
 हैं, जो संसारके उत्पन्न होनेके प्रधान कारण हैं, सूर्य, चन्द्र और
 अग्नि ये तीनों जिनके भेद हैं और जिन्होंने अपने आधे बाएँ
 शरीरमें हिमालयकी पुत्री पार्वतीका बैठा लिया है ॥ १०१ ॥
 इन्द्र, प्रलय, विष्णु आदि देवोंको जो गँद बनाकर खेलते हैं,
 जिन्हें बुद्धि-द्वारा समझा नहीं जा सकता, जिनकी महिमाकी
 कोई धाड़ नहीं लगा सकता और जो कालके भी महाकाल हैं वे
 पार्वतीजीके पति भगवान् शङ्कर आप लोगोंके पाप दूर करें
 ॥ १०२ ॥ खेल-खेलमें ही जो इस अनोखे संसारको एकाएक
 रच डालते और नष्ट कर डालते हैं, जिन्हें कोई भी जान नहीं
 पाया वे चन्द्र-मुख आदि बहुतसे राक्षसोंको बड़ी चतुरतासे
 मार डालनेवाले भगवान् शिव सदा सबकी रक्षा करें ॥ १०३ ॥

चूडामणित्वं नागा नागात्मजाभ्यं न भसितधवलं यद्वपु-
 र्भूषयन्ति । मा रामरागिणी भून्मर्तिरसित यमिनां येन
 वोऽदाहि मारः सताः सताभ्यनुकारुणकिरणनिभाः
 पातु विश्वन्त्रिनेत्रः ॥ १०४ ॥ लीलाद्युतजितां कलाधर-
 कलां मौलौ ददं कीलितां स्वीकर्तुं युगमुन्नमय्य भुज-
 योर्विश्लेषयन्त्यास्तदा । पार्वत्याः कुचकुम्भपार्श्वयुगले
 सप्रेमदत्तेक्षणः कालक्षेपणमिन्दुमोचनविधां देवः स
 नो रक्षतु ॥ १०५ ॥ वक्त्राणि पञ्च कुचयोः प्रतियिम्बि-
 तानि दृष्ट्वा दशाननसमागमनभ्रमेण । भूयोऽपि शैल-
 परिर्युक्तिभयेन गदमांलङ्कितो गिरिजया गिरिशः
 पुनातु ॥ १०६ ॥ वक्त्राभ्योऽहं विस्मिताः स्तब्धकलाः
 वक्षोऽहं स्फारिताः धोणीसीमनि गुम्फिताभरणयो-
 रक्षणाः पुनर्विस्तृताः । पार्वत्याः प्रतिगात्रचित्रगतयस्त-
 न्यन्तु भद्राणि वां विद्वस्थान्तिकदुष्पसायकशरैरीशस्य
 दम्भजयः ॥ १०७ ॥ वामार्द्धकृतवामाङ्गि कुण्डलीकृत-
 कुण्डलि । आचिरस्तु पुरो वस्तु भूतिभूत्यम्बराज-

लीन नेत्रवाले तथा तासरे नेत्रमें सूर्यसे निकलती हुई काल
 किरणोंके समान सात अग्नि-शिराएँ धारण करनेवाले, कुंवरसे
 पूजे जात हुए चरणवाले वे शिवजी रक्षा करें जिनके सिरके
 आभूषणके रूपमें देवाध्यमान चन्द्रकला विराजमान हैं तथा
 जिनके बाईं ओरके पायोंवाले भस्म-रहित भागकी शोभा सोंप
 बढ़ा रहे हैं ॥ १०४ ॥ शिवजीकी जटामें अच्छे ढङ्गसे घँधी हुई
 चन्द्रमाकी कलाकी लूपमें जाँतकर पार्वतीजी जब अपने फीले हुए
 दोनों हाथोंको ऊपर उठाकर उसे जटासे निकालने लगीं तब
 उनके दोनों स्तनोंको बड़े प्रेमसे पारो-पारीसे देखकर चन्द्रमा
 निकालनेमें देर करनेवाले शिवजी हमारी रक्षा करें ॥ १०५ ॥
 अपने स्तनोंमें शिवजीके पाँच मुँहोंकी परछाईं देखकर इस
 सिरवाले रावणके आ धमकनेके भ्रमसे कैलास पर्वतके पुनः
 ढगमगानेके भयसे पार्वतीजी जिनसे भली-भाँति बिपट गईं, वे
 शिव भगवान् सबको पवित्र करें ॥ १०६ ॥ कामदेवके बाणोंसे
 पण्डित होनेपर पार्वतीजीके कमलके समान मुँहपर अक्षरप्रसे,
 स्तनोंपर गुच्छोंके समान गोल होकर, नितम्बोंपर चौड़ी होकर
 तथा पैरोंपर सिमटकन पड़नेवाली शिवकी अनोखी दृष्टियों आप
 लोगोंको सुख दें ॥ १०७ ॥ अपनी देहके आधे बाएँ भागमें
 पार्वतीजीकी रखनेवाले, सोंपोंको कुण्डल बनाकर पहननेवाले,
 कल्याणमयी भस्म लपेटे हुए तथा आकाशरूपी वस्त्रवाले
 (नङ्गे रहनेवाले) शिव भगवान् प्रत्यह प्रकट हों ॥ १०८ ॥

रम् ॥ १०८ ॥ विष्णोर्गमनं निशम्य सहसा कृत्वा
कलीन्द्रं गुणं कौपीनं परिधाय चर्मं कण्ठि। शम्भो पुनो
धावति। इष्टा विष्णुस्थं सत्सपहृदयः सपांः पतद्भुतले
कृतिविस्मयिता हियाननमुखो नयो हरः पातु
वः ॥ १०९ ॥ धृत्वाभिख्यां हतायां श्रितविधिधगणां
लुब्धतां वर्णनीयां धानां सखादिमत्त्वं सुरगणकलितां
भासमत्त्वं दधानाम्। युक्तं स्थानं नयन्तीं लघुमपि
सकलं विभ्रतां मालयापान्धन्दे वाधाभयणीं धृतमुनिव-
तिकां सन्धरां शम्भुमूर्तिम् ॥ ११० ॥ वृषाङ्गाय नम-
स्तस्मै यस्य मालिचिर्धाम्यती। जटावपनजां शोभां
विभावति जाह्नवी ॥ १११ ॥ वेदान्तेषु यमादुरकपुरुषं

व्याज्य स्थितं रोदसी यस्मिन्नीध्वर इत्यनन्यविषयः
शब्दा यथाधोतरः। अन्तर्यश्च मुमुक्षुभिर्निर्वामितप्राणा-
दिभिर्मृग्यते स स्थाणुः स्थिरभक्तियोगसुलभो निःश्र-
यसाधाम्नुवः ॥ ११२ ॥ चन्द्रे देवं जलधिर्गर्गधि देवता-
सार्वभौमं व्यासप्रष्टा भुवनविदिता यस्य वाहाधि-
वाहाः। भृगोपटी भुवनमध्यं पुष्करं पुष्पवाटी शार्दी-
पालाः शतमक्षमुक्ताश्चन्दनदुर्मनाभूः ॥ ११३ ॥ व्याघ्रीव
नीरुद्भरः सर्गाव वीचिज्यूतः सहस्रमहत्सीव मुधांशु-
धाम। यस्माद्विदं जगदुदति च लीयते च तच्छास्त्रं
भवतु वैभवमृदये वः ॥ ११४ ॥ शुद्धान्ते सीधुषानोन्मद-
मदनमदंभादमत्तालिकालीनालीसन्ताड्यमानोद्भटमु-

ज्योंही शिवजीने सुना कि विष्णुजी आ रहे हैं त्योंही वे सौंप-
कपी डोरके सहारे बैधी हुई हाथोंकी लाकड़ा कर्पाज पहने हुए
उनसे मिलने दीदे, पर विष्णुकी सवारी (गरुड) को देखते ही
हरके मारे काँपते हुए सौंपके धरतापर जिसक पड़नेसे जिनका
हीपीम भी गिर पड़ा और लाकड़े मारे जिन्होंने अपना सिर
नीचे कर लिया वे नहें शिव भगवान् आपका रक्षा करें ॥ १०९ ॥
लोकप्रसिद्ध पार्वतीजीका तथा अनेक गणोंका धारण करनेवाले,
वेदोंमें वर्णन किए जानेवाले, सयसे पहले गिने जानेवाले,
देवताओंसे घिरे रहनेवाले, प्रकाश धारण करनेवाले, माँच-पद
धरनेवाले, सब दान-दुखियोंका भार सँभालनेवाले, चन्दनसे
पुते हुए आभूषण, चारसागरोंकी सी कान्तिवाले, यति-मुनियोंका
धारण-गोपण करनेवाले तथा माला धारण किए हुए शिवगोंके
उस स्वरूपको प्रणाम करता हूँ जो लोक-प्रसिद्ध आया लुब्धकां
धारण करनेवाले, अनेक गणोंवाले, लुब्ध-शास्त्रमें वर्णन किए
जानेवाले, सब लुब्धोंमें प्रधान, सगण और रमणवाले, समान
रूपसे भगवन्पुष्क, उचित स्थाय (राजसभा या पवित्र-सभा
आदि) में पहुँचानेवाले, लघु अक्षर धारण करनेवाले, चन्दनकी
गन्धके समान हृदयको शांत करनेवाले, अक्षरोंके भण्डारसे
समुद्रके समान जान पड़नेवाले, मगण और नगणपर यतिवाले
तथा कल्याणकारी सन्धरा लुब्धके समान हैं ॥ ११० ॥ बैलके
चिह्नवाले उन शिवजीको प्रणाम है जिनके माथेपर बहती हुई
गङ्गा उनकी लिपटी हुई जटाकी सुन्दरताको और भी बढ़ा रही
है ॥ १११ ॥ वेदान्ती लोग जिन्हें ऐसा अकेला पुरुष बताते हैं
जो पृथ्वी और आकाशमें समा हुआ होनेपर भी सबसे अलग
धना रहता है, जिनका 'ईश्वर' नाम ऐसा सटीक और सच्चा है
कि और किसीको भी इस नामसे नहीं पुकारा जा सकता

और मोक्ष पानेकी दृष्टा करनेवाले लोग जिन्हें प्राणायाम
साधक धरने हृदयके भीतर बाँजने हैं वे सच्ची भक्तिसे
मिलनेवाले शिवजी आप सब लोगोंका कल्याण करें
॥ ११२ ॥ विष्णुको शान बनाकर त्रिशुरामुरका मारनेवाले तथा
देवताओंके सयसे बड़े स्वामी उन भगवान् शिवको प्रणाम
करता हूँ जिनकी सत्ताके ज्ञानको अपनेमें धारण कर रखनेसे
भगवान्के निवास-स्थान कहे जानेवाले वेदोंको संसारमें
प्रसिद्ध व्यास आदि मुनि अपनेमें धारण किए हैं, सौंपोंका
आभूषण पहने रहनेसे सौंपोंको अपनेमें रखनेवाला पामाल
जिनकी श्रद्धाकी पिढारी-सा जान पड़ता है, चन्द्रमाको मिले
हुए फूलके समान अपने सिरपर रखनेसे उसे अपनेमें
रखनेवाला आकाश जिनका ऐसी फुलधारी-सा जान पड़ता है
जिसमें उनके दिशारूपी वस्त्रोंकी सदा रखवाली करते रहनेवाले
हन्द्र आदि देवता उगे हुए वृक्षके समान जान पड़ते हैं और
कामदेवकी राखका अपनी देहमें चन्दनके समान लगाए रहनेसे
कामदेव भी जिसमें उगा हुआ चन्दनका वृक्ष-सा जान पड़ता
है ॥ ११३ ॥ मेघ जैसे आकाशमें दिखाई देते और मिटते
रहते हैं, लहरें जैसे तालाबमें उठती और विलीन होती रहती
हैं और चंद्रनी या किरणें जैसे चन्द्रमासे ही निकलती और
उसीमें लीन हो जाती हैं ठीक वैसे ही यह सारा संसार
जिसमें उत्पन्न होता और नष्ट होकर उसीमें फिर मिल
जाता है ऐसा शिवजीका ऐश्वर्य आपकी उन्नति करे
॥ ११४ ॥ जिस कालीकी सखियाँ मंदिर पीनेसे बड़े हुए कामके
वेगसे उन्मत्त हो गई थीं उस कालीने जब विशाल शृङ्गपर
वेगसे याप लगाई तब उसकी प्रचण्ड ध्वनि सुनकर शिवजीका
शरीर हँसे इतना फूल उठा कि वे रनिवासमें ही लज्ज लोड़

रजरथाङ्गमरोष्णसिताङ्गः । नृशत्रो विलज्जश्चलचिह्न-
 टनटैः सस्नयै चिन्तार्धेष्टः स्त्रीभिः सहासं प्रहसन-
 मुदितः पातु वो वामदेवः ॥११५॥ शैलेन्द्रमणिपायमा-
 नगिरिजाहस्तोपगूढाङ्गसद्रोमाञ्चादिविलंपुलाखिलधि-
 धियासङ्गभङ्गाकुलः । आः शैव्यं तुहिनाचलस्य करयारि-
 त्यूचिवान्सस्मितं शैलान्नः पुरमातृमण्डतगर्भेष्टं ऽव-
 ताङ्गः शिवः ॥११६॥ श्रीकण्ठस्य सकृत्किर्त्तनभरणीमू-
 र्त्तिः सदा रोहिणी श्रेष्ठा भाद्रपदा पुनर्वसुयुगा चित्रा-
 विशाखान्विता । दिश्यादत्तनहस्तमूलघटितायादा मघा-
 लङ्कृता श्रेयो वैश्रवणान्विता भगवतो नक्षत्रपालीय वः
 ॥११७॥ श्रेयांसि वो दिशतु यस्य सिताश्रुश्रा विश्राज-
 ते सुरसरिद्वरमालिमाला । ऊर्ध्वेक्षणाञ्चलनतापचिलीय-
 मानचन्द्रामृतमविनतामृतयाहिनीय ॥११८॥ स जयति
 हिमकरलेखा शकास्ति यस्योमयोत्सुकान्निहिता । नय-

कर नक्षत्राङ्ग नाचने लगे, उस समय रनिवासकी क्षिरां जो
 आपना चञ्चल अश्रुमाला आँखोंसे आधर्यमें भरी उन्हें देख-देख
 हैंस रही थी, उनका हैमाने मगन होते हुए शिवजी आप
 साँकोंकी रक्षा करें ॥११५॥ हिमालयके द्वारा समर्पित की गई
 पार्वतीजीके हाथोंका छुनेसे उत्पन्न हुए आनन्दका सिपानेपर
 भी रंभाङ्ग द्वारा उसे प्रकट होते देव व्याकुल होकर मुस्कराते
 हुए 'आह ! हिमालयके हाथ किमने ठण्डे हैं !' ऐसा कहते हुए,
 हिमालयके अन्तःपुरकी माताओंमें देसे जाने हुए शिवजी
 आपकी रक्षा करें ॥११६॥ साल धारण करनेवाला, दीन-दुस्वियोंका
 भरण - पोषण करनेवाला, सतागुणी स्थितिमें रहनेवाला,
 सयसे मड़ा, कल्याणका भण्डार, ऐश्वर्य-सम्पन्न, नेत्रमें अग्नि
 धारण करनेवाला, अम्यन्त विचित्र, कुंवरसे संयुक्त, मेनपुष्पसे
 शोभित तथा कन्धपर पलाशका दण्ड (मल्लकारीका चिह्न)
 धारण करनेवाला वह शिव-स्वरूप आपका कल्याण करे जो
 भरणी, कुन्तिका, रोहिणी, भाद्रपदा, पुनर्वसु, चित्रा, विशाखा,
 हस्त, मूल, पूर्वाषाढा, मघा, वैश्रवण आदि नक्षत्रोंकी पंक्तिके
 समान है ॥ ११७ ॥ वे शिवजी आपका आनन्द दे जिनके
 माथेपर माला बनी हुई उजले मेघोंके समान स्वच्छ गङ्गाजी
 ऐसी जान पड़ती हैं भानो तीसरे नेत्रकी अग्निके तपसे पिघलकर
 चन्द्रमामे बहे हुए अमृतकी नदी हैं ॥ ११८ ॥ उन शिवजीकी
 जय हो जिनकी चन्द्रकला आनन्दपूर्ण पार्वतीजीके माथेपर रक्ती
 जाकर ऐसी सुन्दर जान पड़ती है मानो उनके नेत्र रूपी
 दिएका काजल उतारनेकी सीपी हो ॥ ११९ ॥ सन् और असन्

नमदीपकज्जलजिघृक्षया रजतशुक्तिरित् ॥११६॥ सद्स-
 त्वेन भावानां युक्ता या द्वितीय स्थितिः । तामुल्लङ्घ्य
 तृतीयस्मै नमश्चित्राय शम्भवे ॥१२०॥ सन्ध्यानतौ नर-
 पुगन्धितनोः संगममुत्सारिते गिरिजया निजपाणि-
 पथे । उत्सर्पिकङ्कणफणीन्द्रफणार्पणेन पूर्णाऽञ्जलिर्जयति
 बालमृगाङ्गमालेः ॥१२१॥ सन्ध्यासलिलाञ्जलिमपि कङ्क-
 णफणपीयमानमधिजानन् । गङ्गासुखार्पितमना विज-
 याहसितः शिवो जयति ॥ १२२ ॥ स पातु वो यस्य
 जटाकलापे स्थितः शशाङ्कः स्फुटद्वारगौरः । नीलोत्प-
 लानामिव नालपुञ्जं निद्रायमाणः शरद्वीव हंसः ॥१२३॥
 समस्तलक्षणयोग एव यस्योपलक्षणम् । तस्मै नमोऽ-
 स्तु देवाय कस्मैचिदपि शम्भवे ॥ १२४ ॥ सह-
 स्राक्षैरङ्गैर्मसितरि नीलोत्पलमयोमिधाम्मानम्माला-
 मुपनयति पत्यौ दिविषदाम् । जिघृक्षौ च प्रीडार-

रूपमे पार्वतीकी दो प्रकारकी स्थितिको भी पार करके किसी
 नीसरी स्थितिमें रहनेवाले विचित्र शिवजीको प्रणाम है
 ॥ १२० ॥ सायङ्काल आधे बापें भागमें घड़ी पार्वतीजीने
 जब आँधिन होकर आपना हाथ हटा लिया तब उन्हें
 मनानेके लिये हाथ जोड़ते समय कहन बने हुए साँपके उठे हुए
 फनकों चौड़ा करके बापें हाथके स्थानपर लगा देनेसे दूजके
 चन्द्रमाका मुकुट धारण किए हुए शिवजीके जुड़े हुए दोनों
 हाथवाली अञ्जलिकी जय हो ॥ १२१ ॥ सन्ध्या करते समय
 पार्वतीजीके मुँहका एक टक देखते रहनेके कारण 'अञ्जलिका
 पानी कहन बने हुए साँपने पी लिया' यह न जाननेवाले जिन
 शिवजीको देखकर विजया हैंस पड़ी थी उन शिवजीकी जय
 हो ॥ १२२ ॥ वे शिवजी आपका कल्याण करें जिनके जटा-
 मुकुटपर चमकते हुए द्वारके समान उजला चन्द्रमा ऐसा जान
 पड़ता है मानो शरद् ऋतुमें खिले नीले कमलके उपल्लोंके बीच
 कोई हंसिनी सो रही हो ॥ १२३ ॥ किसी प्रकारके कोई लक्षण न
 घटना ही जिसका लक्षण है ऐसे किसी 'शम्भु' नामवाले
 भगवान्को प्रणाम है ॥ १२४ ॥ देवताओंके स्वामी इन्द्र जब
 साष्टाङ्ग प्रणाम करके सहस्रों नयनोंसे दर्शन करने लगे तो
 ऐसा जान पड़ा भागों वे शिवजीको नीले कमलोंकी माला पहना
 रहे हैं ! उस समय अपने गणोंके साथ आँड़के वेगमें भरे हुए
 स्वामी कान्तिकेय जैसे ही इन्द्रके नयनोंको कमल समझकर उन्हें
 सँपने चले बैसे ही उन्हें देखकर हैंस पड़नेवाले पार्वतीजीसे
 आलिङ्गित शिवजी आपका ऐश्वर्य स्थिर करें ॥ १२५ ॥ 'साँपके

भस्मिनि कुमारे सह गौर्हसन्वो भद्राणि दृढयन्तु
मृडानीपरिवृद्धः ॥ १२४ ॥ सहस्रास्यो नागः प्रभुरपि
प्रतः पञ्चद्वनः पडास्यो हन्तैकस्तनय इतरो वारण-
मुखः । सदा मैत्र्यं शश्वप्रभवन्तु कथं वर्त्तनामनि
श्वसन्त्यां पार्श्वन्यामथ जयति शश्वः स्मितमुखः ॥ १२५ ॥
सन्ध्यां यन्मणिपत्न्य लोकपुरतो यद्वाञ्छित्याचमे धन्ते
यच्च नवीं विलज्ज शिरसा तन्नाम सोढं मया । श्रीया-
तामृतमन्धने यदि हृदि कस्माद्विषं भक्षितं मा स्त्री-
लम्पट मां स्पृशेति यदि नो गौर्या हरः पातु वः ॥ १२७ ॥
संसारैकनिमित्ताय संसारैकधिरोधिने । नमः संसा-
ररूपाय निःसंसाराय शम्भवे ॥ १२८ ॥ संमंचितभृशुतुङ्गं
विद्योत्तितयेदयेदाङ्गम् । पङ्गितितभयङ्गं मनसिजभङ्गं
समाश्रये लिङ्गम् ॥ १२९ ॥ स्नानः स्वर्गानरङ्गिणीजलधने-
नैवोपलेनाञ्जितः पार्श्वन्याः सितभूतिचन्दनखयैरालिप्त-
गात्रोऽप्यसः । देवश्चन्द्रकलासितभूतिलको गौरी वि-

वाहोत्सवाग्रम्भे शैलकुमारहर्णस्त्रिजगतामर्च्यो हरः पातु
वः ॥ १३० ॥ स्पष्टव्याकृष्टदंष्ट्राधिकटमुखनटो नातदंष्ट्रान्त-
रासन्यस्तप्रह्लादस्वगुप्तसन्धनदण्डाकारकोलाहलि-
न्यः । चरुर्दानीयस्य युष्मानधिरलविलसज्जैत्रलालाट-
नेत्रमालाहलानिपीतप्रलयजलधयः पातु कल्याणलौ-
लाः ॥ १३१ ॥ म्बर्मानुः सुगन्धमनानुसरति प्रासाभि-
लापादसाविन्दोऽस्मिन्मुखि प्रमेत किमुत ध्रान्त्या भवत्या
मुखम् । इयं नाथगिरा नभोऽपितदशो वक्त्रे भवान्या
भृशं मानिन्याः कृतचुम्बनस्त्रिनयनस्नादिष्ट सिद्धयै
सताम् ॥ १३२ ॥ हर्षादभोजजन्मप्रभृति दिविपदां
संसदि प्रीतिमन्या प्रयश्वा माला पुगांर्दुहितुपरिणये
साततचुम्बयमाने । तद्वक्त्रं मालिचकत्रे मिलितमिति
भृशं वीक्ष्य चन्द्रः सहस्रो दृष्ट्वा तद्वत्तमाशु स्मितमुख-
गमुखः पातु वः पञ्चवक्त्रः ॥ १३३ ॥ हेयांपादयशस्त्रं
मुनिगणमनसामह्वयानन्दहेतुः संतुः संसारवार्ताश्रि-
ध-

तो हजार मुँह हैं, पति स्वयं पाँच मुँहवाले हैं, एक लड़का
धुः मुँहवाला और दूसरा हार्थीके मुँहवाला है, सदा भीष ही
मँगतेसे कमाई होती है, इस प्रकार कैसे काम चलेगा !' इस
प्रकार कहकर लक्ष्मी साँसें सींचती हुई शिवाको देखकर
मुस्करानेवाले भगवान् शिवकी जय हो ॥ १२६ ॥ 'सारे
संसारके सामने तुम हाथ जोड़-जोड़कर भीले मँगते हो और
निराज्ञ होकर जो नदीको सिरपर चढ़ाए हो यह तो मैंने किसी
प्रकार सह लिया पर समुद्र मधकर अमृत निकालते समय
लक्ष्मी यदि विष्णुके पास चली गई तो तुमसे विष क्यों पी
लिया ? तुम परस्त्रीगामी हो, मुझे न छूना।' सावडाल ऐसा
कहते हुए पार्वतीजीने जिन्हें किट्ठक दिया था वे शिवजी आपकी
रक्षा करें ॥ १२७ ॥ जो संसारको उत्पन्न और नष्ट करनेमें
एकमात्र कारण हैं तथा जो संसारसे सदा दूर रहते हुए भी
उसमें व्याप्त (संसार-स्वरूप) हैं ऐसे शिवजीको प्रणाम है
॥ १२८ ॥ भृशुकी ऊँची चोटीमें रहनेवाले, वेद और
वेदाङ्गोंको प्रकाशित करनेवाले, संसाररूपी माटुकी चलावेवाले
और कामदेवका नाश करनेवाले लिङ्गरूपी शिवजीकी शरण लेता
हूँ ॥ १२९ ॥ वे त्रिभुवनके पृथ्वी शिवजी आप लोगोंकी रक्षा करें
जिनकी पूजा पार्वतीजीके विवाहके प्रारम्भमें हिमालयने की, जो
सहस्राती हुई आकाश-नाङ्गाके जलसे स्नान किए हुए थे, जिनकी
शुचि पार्वतीजी अपने कमलनयनसे एकटक निहार रही थीं,
जिनके स्वच्छ शरीरपर श्वेत भस्मरूपी चन्दन पुता हुआ था

और जो चन्द्रमाकी उजली कलाको श्वेत अभ्रकके तिलकके
समान मरतकपर लगाए हुए थे ॥ १३० ॥ अर्थात्पति
भगवान् हरकी वे पात्यके अन्नकी प्रलयकारी लीलाएँ आपकी
रक्षा करें तिनमें उनके अत्यधिक फैले हुए भयङ्कर मुँहके भीतर
रक्ते हुए बड़े भारी मल्लाहको निगल जानेके भयसे उससे
विचित्र कोलाहल हो रहा था और तिनमें उन्होंने मल्लाहमें
अपनी शमकनी हुई ललाटकी प्रबल अग्निकी ज्वालाओंसे ही
प्रलयकालीन समुद्र सोख डाले थे ॥ १३१ ॥ 'हे चन्द्रमुखी !
चन्द्रमाको प्रसनेके लिये आकाश-मार्गसे चला आता हुआ
वह राहु कहीं धोखेसे मुंहारे मुँहको ही न ग्रस ले !' अपने
पतिकी ऐसी बात सुनकर जब मान धरनेवाली पार्वतीजीने
ऊपरको मुँह उठाया उस समय बलपूर्वक उनका मुँह
चूम लेनेवाले तीन आँखवाले शिवजी सज्जनोंका कल्याण करें
॥ १३२ ॥ कमलसे जन्म लेनेवाले मल्लाह आदि देवताओंकी
भरी सभामें अपनी कन्याके विवाहके समय बड़े प्रेमसे मैना
जब अश्रुत लेकर शिवजीका सिर चूमने लगीं तो सिरपर बैठी
गङ्गाके और मैनाके सिरको मिलते देखकर चन्द्रमा हँस पड़े।
यह सब कीतुक देखकर हँस पड़नेवाले, पाँच मुँहवाले सुन्दर
शिवजी आपकी रक्षा करें ॥ १३३ ॥ भीतर फैले हुए घने
खेदरेकी घटाओंका विनाश करनेमें चतुर, सुखपूर्वक संसार-
सागर पार करनेके लिये पुल, मुनियोंके मनको अद्वितीय
आनन्द देनेवाले, अपने और जुरेके पचहोंसे दूर रहनेवाले

सुखतरणे श्रीमद्देशानसंहम् । प्रालेयञ्ज्योतिरन्तः-
परिलततिमिरव्यूहविच्छेददत्तं किञ्चिद्वाचामधीशं स्फु-
रतु मम हृदि ज्यत्तरं विश्वसाक्षि ॥ १३४ ॥

पार्वती—अङ्कनिनीनगजाननशङ्कः। कुलवाहुलेयहृत-
घसनौ । सस्मितहरकरकलितौ हिमगिरितनयास्तनौ
जयतः ॥ १ ॥ अपरैव लता सेव्या विद्वद्भिरिति मे मतिः।
यथा वृतः पुराणोऽपि स्थाणुः सतेऽमृतं फलम् ॥ २ ॥
आर्द्रं प्रेमकपायिता हरमुखव्यापारलोला शनैर्ब्रीडाभा-
रविधूषिता मुकुलिता धूमोद्गमव्याजतः । पन्थुः सम्मि-
लिता दशा सरभसव्यावर्तनव्याकुला पार्वत्याः परिणी-
तमङ्गलविधौ दृष्टिः शिवायास्तु वः ॥ ३ ॥ आनन्दम-
न्धरपुरन्दरमुक्तमाल्यं मौला हृतेन निहितं महिषासुर-
स्य । पादाम्बुजं भवतु यो धिजयाय मञ्जुमतीरशिञ्जित-
मनोऽरमम्यिकायाः ॥ ४ ॥ आस्रे पूर्णमुधानिधिधर-
ण्योः कालपद्रुमं वैभवं देहे काञ्चनफान्तता त्वच्च पुन-
र्ह्यङ्गघ्नीनं स्वयम् । यस्या लोचनयोनिरूपधिसदोदीता-

नुकम्पाततिः सा माता जगतां प्रसादपदवी साक्षान्मु-
दे स्तादुमा ॥ ५ ॥ उद्धाहारोपितार्द्राक्षतनिजपदयोः सङ्ग-
तामिन्दुमौलावानत्रे यां सुधांशोर्ध्वयित किल कलां तूर्ण-
मेधान्नपूर्णम् । सकानामक्षतानाममृतदग्धनलोपाधितः
पक्वभायान्नानाधैरन्नपूर्णं प्रणतजनततेः पूर्णतामात-
नोतु ॥ ६ ॥ उन्नालनाभिपङ्केह इव येनावभाति शम्भु-
रपि । जयति पुरुषायितायास्तदाननं शैलकन्यायाः ॥ ७ ॥
औत्सुक्येन कृतत्वर सहभुवा व्यावर्तमाना द्विया तै-
स्तैर्वन्धुवधूजनस्य वचनैर्नीताभिमुख्यं पुनः । दृष्ट्वाप्रे घर-
मातसाध्वसरसा गीरी नवे सङ्गमे संरोदन्नुत्सका हरेण
हसताश्लिष्टा शिवायास्तु वः ॥ ८ ॥ कण्ठोचितोऽपि
हुङ्कृतिमात्रनिरस्तः पदान्तिके पतितः । यस्याश्चन्द्र-
शिक्षः स्मरभल्लनिभो जयति सर चण्डी ॥ ९ ॥ कैला-
सालयभाललोचनदया निर्धसितालककक्ष्यक्तिः पाद-
नखघृतिगिरिभुवः सा वस्सदा आयताम् । स्पर्धाय-
न्धसमुद्भवेव सुहृदं कृता यया मेघयोः कान्तिः

(उद्दर्शना) , बायाँके स्वामी, कोई तीन अक्षरके 'महेरा'
नामवाले उष्कट अंतिःस्वरूप परमात्मा मेरे हृदयमें प्रकाशित
हैं ॥ १३४ ॥

पार्वती : 'गोत्रीमें विषा-विषा गणेश ही मौका दूध विष्ट
स्रोत है,' ऐसी शङ्कसे स्वामी कालिकेयने जैसे ही वक्ता अलग
किष्ट जैसे ही मुन्कराते हुए शिवजीके हाथों-द्वारा ग्रहण किष्ट
गए पार्वतीजीके स्तनोंकी जय हो ॥ १ ॥ मेरी बुद्धिसे तां
विद्वानोंको धपसां (बिना पत्तोंवाली) जला (पार्वतीजी)
का ही सेवन करना चाहिए जिससे लिपटे हुए (वरदा
किष्ट हुए) स्थाणु (हुँड या शिवजी) भी अमृतमय फल देने
लागते हैं ॥ २ ॥ पार्वतीजी के दृष्टियों आपका कस्यास करे जो
विवाहके समय पहले तो प्रेमके कारण अलसाई-सी थीं फिर
शिवजीको देखकर चञ्चल होकर लज्जासे भर उठीं, फिर पुर्ण
लगनेके बहाने भूँद ली गई और शिवजीकी नेत्रोंसे मिलकर
वेगसे वहाँसे हट जानेको व्याकुल हो उठीं ॥ ३ ॥ नृपुंरोंकी मधुर
मनकारमे शरयन्त मनोहर वे पार्वतीजीके चरण आपको विजय
वें जिनपर शिथिल होकर इन्द्रने मालाएँ चढ़ाई थीं तथा
जो बलपूर्वक महिषासुरके सिर पर रक्खे गए थे ॥ ४ ॥ साक्षात्
प्रसन्नताकी मूर्ति वे उगन्माना पार्वती आपको सुन्न दें जिनके
मुँहमें पूर्ण चन्द्रमा विराजमान है, चरणोंमें कल्प-वृक्षका सारा
पेदवर्ष लौट रहा है, नेहमें सोनेके समान सुन्दरता है, त्वचामें

मक्षबनके समान कामलता है और जिनकी आँखें ऐसी जान
पड़ती हैं मानो जयाध रूपसे कृपाकी पाँत हों ॥ ५ ॥ वे पार्वतीजी
अनेक प्रकारकी सम्पत्ति देकर प्रणाम करनेवालोंकी मनोकामनाएँ
पूर्ण करें जिनके चरणोंकी घोर विवाहके समय भुके हुए शिवजीकी
चन्द्रकलापर उनके चरणोंपर लगे हुए रीले अलत चिपक जानेसे
ऐसा जान पड़ रहा था मानो प्रणाम करते हुए शिवजीके
चन्द्रकलारूपी भिक्षापात्रकी अन्नपूजांजीने अन्नसे भर दिया
हो और वह शिवजीके तीसरे नेत्रकी अभिले पक रहा हो
॥ ६ ॥ पुरुषके समान आचरस करती हुई हिमालयकी पुत्री
पार्वतीके उस मुँहकी जय हो जिससे शिवजी भी ऐसे बिप्लवे
समान शोभित होने लगे जिनकी नाभिमें बड़ी हुई मालवला
कमल खिला रहता है ॥ ७ ॥ वे पार्वतीजी आपका कल्याण करें
जो शिवजीसे प्रथम समागमके समय पहले तो मिलनेके लिये
शीघ्रता करनी हुई थी स्वाभाविक लाजके कारण लौट आई, फिर
जब सखियाँ कह-सुनकर शिवजीके सामने खे गई तो वे उन्हें
देखकर भयभीत हो गई और फिर रोमाञ्चित होती
देखकर हँसते हुए शिवजीने जिनका आलिङ्गन कर लिया ॥ ८ ॥
क्रोधमें भरी हुई उन पार्वतीजीकी जय हो जिनके 'हुँ' करने-मात्रसे
कण्ठमें धारण करने योग्य चन्द्रकला पैरोंके पास गिरकर
ऐसी जान पड़ती थी मानो कामदेवका भाला हो ॥ ९ ॥
[रुठी हुई मिथसमाके पैर पढ़कर उन्हें मनाते हुए] कैलास-

कोकनदानुकारसरसा सद्यः समुत्सार्यते ॥ १० ॥
 क्रीडासरोपगिरिजाचरणरविन्दं धन्दे यदग्रपतिता
 हरिणाङ्गुलेस्त्रा । कामापहस्तितवृषध्वजघैर्यलक्ष्मीपा-
 तावभग्नवलयाईनिभा विभाति ॥ ११ ॥ गोनासाय
 नियोजितागदरजाः सर्पाय यक्षौषधिः कण्ठस्थाय
 विषाय वीर्यमहतः पालौ मलीन्यश्रुती । भर्तुर्भूतगणाय
 गोप्रजरतीनिर्दिष्टमन्त्राक्षरा रक्षन्वद्रिसुता विवाहस-
 मये प्रीता च भीता च यः ॥ १२ ॥ चण्डीजङ्घाकाण्डः
 शिरसा चरणरूपशि प्रिये जयति । शङ्करपर्यन्तजितो वी-
 रस्तम्भः स्मरस्येव ॥ १३ ॥ चिरमाविष्कृतप्रीतिभीतयः
 पान्तु वो द्विपाम् । शलयज्यारवोन्मिथ्राश्चरुकाः कोद-
 ण्डकृष्टयः ॥ १४ ॥ जन्मान्तरीणरमणस्याङ्गसङ्गसमु-
 त्सुका । सलज्जा चान्तिके सख्याः पान्तु नः पार्वती

सदा ॥ १५ ॥ जङ्घाकाण्डोरुनालो नम्रकिरणलसत्केसरा-
 लीकरालः ग्रन्थग्रान्तकाभाप्रसरकिसलयो मञ्जमञ्जीर-
 भृङ्गः । भर्तुर्भूतानुकारे जयति निजतनुचन्द्रकुलावलय-
 वापीसम्भूताम्भोजशोभां विदधदभिनभो द्रगडपादौ
 भवान्याः ॥ १६ ॥ ज्याकृष्टिवडल्लटकामुगपाणिपृष्ठप्रेङ्गन्त-
 खांशुचयसंवलिनोऽम्बिकायाः । त्वां पान्तु मञ्जरितप-
 ल्लवकर्णपूरलोभभ्रमङ्गमर्याभ्रमभृङ्गकटाक्षः ॥ १७ ॥ ज्यो-
 त्स्नासन्दोहरूपा प्रमुदितध्वना प्रफुटन्कान्तिकान्ता
 भक्तान्तरथा पुरस्नात्तयनविषयनामानयन्ती स्वरूपम् ।
 देवीभिः सेव्यमाना परभयहर्णप्रेक्षणा प्रेक्षणीया कारु-
 ण्याधारभूता मम भवतु मुदे सर्वदा सा भवानी ॥ १८ ॥
 तद्वः प्रमादं विषदः प्रणतात्तिहन्त्या न्यस्तं पदं महिष-
 मूर्धनि क्षणिकयाः । वैरी यदीयनखरांशुपरीतभृङ्गः

वासी शिवजीके मस्तकके नेत्रकी लाल कान्ति पढ़नेसे महावर
 जगत्से जान पढ़नेवाले पार्वतीजीके नखोंकी वह कान्ति सदा
 आपकी रक्षा करे जो शिवजीका क्रोध शान्त हो जानेसे उनके
 नेत्रकी लज्जाई मिटनेपर ऐसी जान पड़ती है मानो शिवजीके
 नेत्रोंकी लाल कमलकी कान्तिवाली लज्जाईसे होइ करके उसे
 मिटाकर पुनः तत्काल शान्त हो गई हो ॥ १० ॥ खेल ही खेलमें
 रुठी हुई पार्वतीके उस चरणकमलको प्रणाम करता हूँ जिसके
 पैरोंपर पड़ी शिवजीके माथेपरके चन्द्रमाकी कला ऐसी लगती
 है मानो कामदेवके धक्केसे गिरी हुई शिवजीकी धीरजरूपी
 सखीके टूटे हुए कङ्कनका आधा टुकड़ा हो ॥ ११ ॥ बिनाइके
 समय एक साथ (अपनी तपस्या सफल होती देखकर) प्रसन्न
 तथा (शिवजीका चेहरे देखकर) भयभीत होनेवाली वे पार्वतीजी
 आपकी रक्षा करें जिन्होंने अपने पतिके गोनाससे बचनेके लिये
 औषधिका चूर्ण लगा लिया था, सर्पोंसे बचनेके लिये जड़ी
 बाँध ली थी, गलेके विषके तापसे बचनेके लिये मणियाँ पहन
 ली थी और भूत-प्रेतोंसे बचनेके लिये अपने घरकी बड़ी-बूढ़ी
 स्त्रियोंसे मन्त्र-तन्त्र सीख लिए थे ॥ १२ ॥ क्रोधमें भरी
 पार्वतीजीको मनायेके लिये जब शिवजी उनके पैरों पढ़ने
 लगे उस समयकी पार्वतीजीकी उस जोंधकी जय हो जो ऐसी
 जान पड़ती थी मानो कामदेवके शत्रु (शिव) जैसे विरागी-तकको
 जीध लेनेका विजयस्तम्भ हो ॥ १३ ॥ पार्वतीजीका वह बार-बार
 कान और प्रत्यङ्गाकी मिली हुई झनकारसे युक्त धनुष
 खींचना सदा आपकी रक्षा करे जिससे शत्रुओंकी (धनुषकी
 दृष्टि सुनकर) डर भी लगता था और (कङ्कनोंकी झनकार

सुनकर) मोह भी होना था ॥ १४ ॥ अपने पिछले जन्मके पनि
 (शिवजी) का आतिथन करनेकी उसुफ होतें हुए भी सर्पोंके
 सामने लज्जावेवाली पार्वतीजी सदा हमारा कल्याण करें
 ॥ १५ ॥ शिवजीके नृत्यका अनुकरण करने समय उजली
 देहरूपी यावद्वाके सौन्दर्यरूपी जलमें उत्पन्न होनेवाले,
 जोंधरूपी खड़ी इच्छावाले, नखोंकी सुन्दर किरण-रूपी
 केसरपाले, तत्काल लगाए हुए महावरकी कीली हुई कान्ति-रूपी
 कोमल पत्तोंवाले, नूपुरकी झनकाररूपी भीतोंकी गुञ्जरवाले
 तथा आकाशकी आर उठकर कमलके समान शोभित होनेवाले
 भवानीके चरण-दण्डकी जय हो ॥ १६ ॥ धनुषकी डारी खींचने
 समय हूँ के पासतक हाथका ऊपरी भाग पहुँचते ही नखोंकी
 घनी कान्ति पढ़नेसे अत्यधिक सुन्दर दिखाई देनेवाली तथा
 कानोंमें पहने हुए मञ्जरीवाले कोमल पत्तोंसे बने कमलोंके
 रसके लोभसे मेंडराते हुए भीतोंके समान सुन्दर शोभित
 होनेवाली पार्वतीजीकी बाँकी चितवन आपकी रक्षा करे ॥ १७ ॥
 चाँदनीके ढेरके समान जान पढ़नेवाली, प्रसन्न मुखवाली,
 भक्तोंके हृदयमें बसनेवाली, भक्तोंके नेत्रोंको अपने स्वरूपका
 प्रत्यक्ष दर्शन भी करानेवाली, देखने-मात्रसे दूसरोंका भय
 हरनेवाली, सब कुछ देनेवाली, अपनी बिसरती हुई कान्तिके
 कारण अधिक सुन्दर तथा दर्शन करने योग्य वे भगवती पार्वती
 मुझे सुख दें जिनके सहारे दया टिकी है और सब देवियों
 जिनकी सेवा करती हूँ ॥ १८ ॥ भक्तोंकी पीड़ा हरनेवाली
 तथा क्रोधमें भरी पार्वतीजीका वह महिषासुरके मस्तकपर रखता
 हुआ चरण आपकी विपत्तियों दूर करे जिसके नखोंकी किरणों

शक्रायुधाङ्कितनवाम्बुधरप्रभोऽभूत् ॥१६॥ तपस्वी कां
गतोऽवस्थामिति स्मेराननाविव । गिरिजायाः स्तनौ
घन्दे भवभूतिसिताननौ ॥ २० ॥ दिव्यान्महासुरशिरः-
सरसीप्सितानि प्रेङ्खन्त्यावलम्बयुसमृणालनालम् ।
चरदपाश्वलच्चद्वलनपुरचञ्चरीकम्पकारहारिचरणा-
म्बुरुहद्वयं वः ॥ २१ ॥ दीप्तजुह्वेगयोगाद्बदनलहलह-
ल्लम्यजिह्वाप्रलोढब्रह्माण्डद्वौद्विचिन्दुप्रवलतरभवजाउरा-
गिस्फुल्लिकाम् । कालाङ्ककालशेषामनुलगलवलन्मुण्ड-
मालाकरालीङ्कुजासंवादिनेधामजिननिवसनान्तामि पा-
शासिहस्ताम् ॥ २२ ॥ दुर्गा दानवनाशिनी हरजटारधेनी-
ध्यलोल्लासिनी धीराशङ्कपालतोमरधरा मुण्डस्रजा
शोभिना । रक्ताक्षी ननु रक्तवीजमधिनी भक्त्या सदान-
न्दिनी पायान्ता परमेश्वरी प्रतिदिनं कल्याणमुक्तिप्रदा
॥ २३ ॥ देवीं सुवर्णरुचिरां परिभाष्यमानभूषाविभाति-

शयतां प्रकृतेर्दधानाम् । कामं द्विपन्तमपि कामवशं
नयन्तां स्मेराननां भगवतीं शिरसा नमामि ॥ २४ ॥
धूमव्याकुलदृष्टिरिन्दुकिरणैराह्लादितार्क्षी पुनः पश्य-
न्तीव समुन्मुका नतमुखी भूयो हिया ब्रह्मणः । सेष्या
पादनवेन्दुदर्पणगते गङ्गां दधाने हरे स्पर्शादुत्पुलका
करप्रहविधां गौरी शिवायास्तु वः ॥ २५ ॥ नमामि
यामिनीनाथलेखालङ्कृतकुन्तलाम् । भवानीं भवस-
न्तापनिर्वाणसुधानदीम् ॥ २६ ॥ पादाग्रस्थितया
मुहुः स्तनभरेणानीतया नम्रतां शम्भोः सस्पृहलोचन-
त्रयपथं याम्या तदाराधने । ह्रीमत्या शिरसीहितं सपु-
लकस्वेदाद्रमोत्कम्पया विश्लेष्यन्कुसुमाञ्जलिगिरिजया
क्षितोऽन्तरं पातु वः ॥ २७ ॥ पार्वतीमोपधामिकाभरणं
मृगयामहे । श्लीं हालाहलं पीत्वा यया मृत्युज्योऽभवत्
॥ २८ ॥ पुरारितनुहारिणी दुरितसङ्घसंहारिणी भज्यमति-

पङ्कजे शायु (महिषामुर) का सिर उन नये मेघोंके समान
शोभित होता है जिनमें इन्द्रधनुष चमक रहा हो ॥ २० ॥
शिवजीकी भस्मसे जिनका अग्रभाग उजला हो गया है उन
पार्वतीजीके स्तनोंको भी प्रणाम करना है जो मानो यह
सांघकर मुस्करा रहे हैं कि शिव जैसे तपस्वी भी कैसे हमारे
चक्रमें पड़ गए ! ॥ २० ॥ महिषामुरके मस्तकरूपी पावड़ीमें
गिरे कमलोंके समान वे दोनों । श्रीपार्वतीजीके चरण आपकी
मनांकामनाएँ पूर्ण करें जिनके नयनोंसे निकलनेवाली किरणें ही
मृणाल और माला हैं तथा हिलते हुए नूपुरोंकी कनकार ॥
भीरोंकी गुहार है ॥ २१ ॥ सुवर्णके समान खाल नेत्रोंवाली
तथा हाथोंमें तलवार और पाश (फौस) धारण करनेवाली उन
भयंकर रूपवाली कालीजीको प्रणाम करता है जो गलेमें पड़ी
बहुतसे मुण्डोंकी मालाके हिलनेसे अत्यन्त भयंकर लग रही है,
अत्यन्त वेगसे भूय लगनेपर मुँहमें लपलपानी हुई लम्बी जीभके
अग्रभागसे छोटो-सी दूँद जैसे सारे ब्रह्माण्डको चाट लेनेपर
जिनके पेटकी उबालाकी चिनगावियाँ और भी प्रवल ॥ उड़ी
हैं, जो खाल-भर पहने हैं और जिनका शरीर हड्डियोंका ढाँचा-
मात्र रह गया है ॥ २२ ॥ दानवोंका नाश करनेवाली, शिवजीकी
जटाओंसे खेलवाड़ करनेवाली, बाणा, शङ्ख, खोपड़ी और तोमर
धारण करनेवाली, मुण्डमालामें शोभित होनेवाली, लाख
आँखोंवाली, रक्तबीजको मथ डालनेवाली, भक्तिसे ही सदा प्रसन्न
होनेवाली तथा कल्याण और मुक्ति देनेवाली सबसे बड़ी स्वामिनी
दुर्गा प्रति दिन मेरी रक्षा करे ॥ २३ ॥ सोनेकी कान्तिके समान

सुन्दर कान्तिवाली, इच्छानुसार शयुषोंकी भी कामदेवके बगलें
कर देनेवाली तथा प्रसन्न मुखवाली उन भगवती पार्वतीकी
सिर नचाकर प्रणाम करता है जिनके चमकते हुए आभूषणोंकी
सजावटसे उनकी स्वाभाविक सुन्दरता अत्यधिक बढ़ गई है
॥ २४ ॥ विवाहके समय पुष्पांजलि लगानेसे कहुआनेपर शिवजीके
मस्तकके चन्द्रमाकी शीतल किरणें पङ्कजेसे प्रसन्न आँखोंवाली,
शिवजीको देखनेके लिये उनकी ओर मुँह करते ही ब्रह्माजीकी
सामने देण्डकर लाजमें सिर नीचे कर लेनेवाली, चन्द्रमाके समान
चमकीले आपने पैरके नखरूपी दर्पणसे गङ्गा धारण किए हुए
शिवजीकी परछाई देखनेवाली तथा पालिप्रहणके समय शिवजीसे
छू जानेपर रोमाञ्चित हो उठनेवाली पार्वतीजी आपका कल्याण
करे ॥ २५ ॥ शतके स्वामी चन्द्रमाकी कलासे शोभित केतों-
वाली उन भवानीजीको प्रणाम करता है जो सांसारिक कष्टोंको
बहानेके लिये अमृतमयी नहीं है ॥ २६ ॥ शिवजीके सिरकी
पूजा करनेके लिये उनके चाहसे भरे तीनों नेत्रोंके सामने जाकर
पैरके पंजरे सहारे खड़ी हुई, स्तनोंके भारसे झुकी हुई और
लजानी हुई पार्वतीजीके हाथोंमें शिवजीके माथेपर चढ़ानेके
लिये रक्खी हुई वह पुष्पाञ्जलि आपकी रक्षा करे जो शिवजीको
देखकर पार्वतीजीके रोमाञ्चित होने और कौप उठनेके कारण
पहले ही गिर पड़ी ॥ २७ ॥ पर्वतसे उत्पन्न होनेवाली (पार्वती
नामवाली) और बिना पत्नीवाली (अषणा नामवाली)
उस एक त्रीपथिको हम हैंवते हैं जिसे पीकर पेटकी पीड़ावाले
(शिथिल धारण करनेवाले शिवजी) भयङ्कर महाविष पीकर भी

विवर्धिनी प्रचलदानधोन्मर्दिनी । मुषारगिरिनन्दिनी
मुनिहृदन्तरालम्बिनी कुमारमुखचुम्बिनी हरनितम्बिनी
पातु वः ॥ २६ ॥ प्रचण्डचण्डमुण्डयोमहाबलैकख-
रिडनी हनेकरुण्डमुण्डयुग्रणे बलैकदायिनी । कच्चित्त्व-
शक्तिकारिणी रमाधिलासदायिनी मुदेऽस्तु कालिका
सदा समस्तपापहारिणी ॥ ३० ॥ प्रत्यासन्नविवाहम-
ङ्गलविधौ देवार्चनव्यग्रया दृष्ट्याये परितोतुरेव लिखितां
गङ्गाधरस्वाकृतिम् । उन्मादस्मितरोयलज्जितधिया
गौर्या कथञ्चिश्चिराद्बुद्धस्त्रीवचनान्प्रिये विनिहितः
पुष्पाञ्जलिः पातु वः ॥ ३१ ॥ प्रातः कालाञ्जनपरिचितं
वीक्ष्य जामातुरोष्ठं कन्यायाश्च स्तनमुकुलयोरङ्गुलीभ-
स्ममुद्राम् । प्रेमोल्लासाज्जयति मधुरं सस्मिताभिः
स्त्रीभिर्गौरीमातुः किमपि-किमपि व्याहृतं कर्णमूले
॥ ३२ ॥ प्रियकरणपरिध्वङ्गमीलितालीं नमाम्युभाम् ।

कालकूटस्य संस्पर्शाज्ज्ञानमृच्छांगमामिव ॥३३॥ चाली-
युतश्रवणपालीयुगा ललितचूलीचिराजिवकुला केलीग-
तानुगमरालीकुला मधुरमालीभिगहनकथा । नालीक-
इक्षुसुमनालीकपाणिश्चि कालियशासिसहजा नालीद-
लाभतनुमाली सदा भयतु काली शुभाय प्रम सा ॥३४॥
ब्रह्मादयोऽपि यदपाङ्गनरङ्गभङ्गया मृष्टिस्थितिप्रलय-
कारणतां व्रजन्ति । लावण्यवारिनिधिर्धाचिपागेलुनायै
तस्यै नमोऽस्तु सनतं हरचक्षभायै ॥ ३५ ॥ भिक्षार्थं स
कथातः सुतनु बलिप्रणे ताण्डवं काय भद्रं मन्ये
वृन्दावनान्ते क नु स मृगशिशुर्नव जाने वराहम् ।
याले कच्चिन्न दृष्टो जरठवृषपतिर्गोप एवास्य वेत्ता
लीलासंलाप इत्थं जलनिधिहिमयत्कन्ययोक्तायतां वः
॥ ३६ ॥ भिक्षुः कास्ति यलेमंस्त्र पशुपतिः किं नास्म्यसौ
गोकुले मुग्धे पन्नमभूषणः सांखि सदा शेते च तस्यो-

‘मृत्युञ्जय’ (मृत्युका नाश करनेवाले) हो गए ॥२८॥ शिवजीके
आगे बाईं तराईको आपना शरीर बना लेनेवाली, पापोंके ठेरका
नाश करनेवाली, भक्तोंकी बुद्धि बढ़ानेवाली, ग्रन्थस्त बसबाध
दानवांको मार डालनेवाली, मुनियोंके हृदयोंमें रहनेवाली और
कालिकेयका मुँह घूमनेवाली शिवजीकी पत्नी तथा हिमालयकी
पुत्री पार्वतीजी आपकी रक्षा करें ॥ २९ ॥ ग्रन्थस्त बलवान्
बबड़ और मुयड़की बहुत बड़ी सेनाका नाश करनेवाली, बहुतसे
सिर और धड़ोंसे भरी हुई बुद्ध-भूमिमें लड़नेकी शक्ति देनेवाली,
कहीं शत्रुओंकी शक्तिका नाश करनेवाली, कहीं लक्ष्मीका
प्रेरक देनेवाली तथा सारे पापोंका नाश करनेवाली कालीजी
सदा आनन्द देती रहें ॥ ३० ॥ विवाहमें देव-पूजनके लिये
सामने भावी पति (शिवजी) की ही गङ्गा धारण की हुई मूर्ति
स्थापित देखकर घबराहट, हैस, क्रोध और लज्जासे भरी हुई
पार्वतीजीकी वह पुष्पाञ्जलि आपकी रक्षा करे जिसे यद्दी-बुद्धी
छिपाके बहुत समझाने-सुझानेपर उन्होंने शिवजीकी मूर्तिपर
धड़ाया था ॥ ३१ ॥ प्रातःकाल जामाद (शिवजी) के गीलेके
घोठमें लगा काला अञ्जन और कन्या (पार्वतीजी) के
स्तनपर उँगलीके भस्मयुक्त चिह्न देखकर अत्यधिक प्रेम और
आनन्दसे मुस्कराती हुई सखियोंमें पार्वतीजीकी माँ (मैना) के
कानमें जो धीरे-धीरे कोई मधुर बातें कहें, उनकी जय हो ॥३२॥
शिवजीके गलेसे लिपटकर आनन्दसे आँखें मूँद लेनेवाली उन
पार्वतीजीको प्रणाम करता हूँ जो ऐसी जान पड़ती हैं मानो
शिवजीके कण्ठका विष जानेसे बेसुध हो गई हों ॥३३॥ दोनों

कानोंमें चाली, चालोंमें मौलसिराके कुल और हाथोंमें फूलके
घाण धारण किए हुए वे ताड़पत्रों-जैसी सौंदर्य कमलनयनी
कालीजी मेरा कल्याण करें जिनकी लीलामयी चालका हंसिनी
अनुगमन करती हैं, जिनकी दातांका दण्डियों प्रेमपूर्वक आदर
करती हैं तथा जो कालिय नागको शिखा देनेवाले श्रीकृष्णजीकी
बहन हैं (दुर्गाजी वशोदारी कन्या थीं) ॥ ३४ ॥ सुन्दरताके
समुद्रमें उठनेवाली लहरोंसे अञ्जन-प्रोत उन शिवजीकी प्रियतमा
पार्वतीजीको प्रणाम है जिनकी निरर्घी चितवनका थोड़ा-थोड़ा
सङ्केत पानेपर ही यक्षा, विष्णु और शिवजी सारे संसारका
निर्मातृ, पालन और नाश करनेमें समर्थ होते हैं ॥ ३५ ॥
लक्ष्मीजीने पार्वतीजीसे पूछा—भियमनहे (शिवजी) कहीं गए
हैं ? पार्वतीजीने कहा—हे सुन्दर देहवाली ! वे (वामन) तो
बलिकी यज्ञशालामें होंगे । लक्ष्मीजी—कल्याणी ! आज मृत्यु
(ताड़व) कहीं होगा ? पार्वतीजी—मैं तो सोचती हूँ
कि (रास) वृन्दावनमें ही कहीं होगा । लक्ष्मीजी—और वह
पशु-बालक (गणेश) बाला (शिव) कहीं गया ? पार्वतीजी—
उसे (वराहका) तो मैं नहीं जानती । लक्ष्मी—बाले ! बुद्धे
बैलके स्वामी (शिवजी) नहीं दिखाई पड़े ? पार्वती—उसे तो
ग्याल (गौँरे घरानेवाले कृष्ण) ही जानें ! इस प्रकार समुद्रसे
उत्पन्न लक्ष्मी और हिमालय पर्वतसे उत्पन्न पार्वतीजीकी
आपसकी मन-बहलावके लिये होनेवाली बातचीत आपकी
रक्षा करे ॥ ३६ ॥ लक्ष्मीजीने पार्वतीजीसे पूछा—भील
मँगनेवाले (शिवजी) कहीं हैं ? पार्वतीजीने कहा—वे (वामन

परि । आर्ये मुञ्च विद्यादमाशु कमले नाहं प्रकृत्या चला
चेत्थं वै गिरिजासमुद्रसुतयोः सम्भाषणं पातु वः ॥ ३७ ॥
मानस्मानजटासु किं सुरसरिर्निकं शेषरे चन्द्रमाः किं
भाले हुतभुग्लुडत्युरसि किं नागाधिपः किं कटौ ।
कृत्तिः किञ्जघनद्वयान्तरगतं यद्दीर्घमालम्बते श्रुत्वा
पुत्रवचोऽम्बिका स्मितमुखी लज्जामुखी पातु वः ॥ ३८ ॥
मृणालव्यालवलया वेणीचन्धकपर्दिनी । हरातुकारिणी
पातु लीलया पार्थसी जगत् ॥ ३९ ॥ यस्याङ्घ्रिद्वितयं
नमन्ति विबुधाः स त्वेककः सर्ववित्तं मृत्युत्रयमाम-
नन्ति मुनयः सोऽद्यापि यातिव्रताः । इत्याकर्ण्य
कथां रहस्यपि यया पर्युर्ध्वबाहान्पुरा भङ्क्त्वाहानि
धिजृम्भितं गिरिभुवो मोक्षयितुं पातु वः ॥ ४० ॥ या
याचः साधुतायाकिभुवनभुवनस्याङ्गने सञ्चरन्ती

वामांसासक्तवीणाध्वनिगणविलसन्मूर्च्छनानन्दपूर्णं ।
सन्तोषोल्लासिमौलिः स्फुरदमलमणिः स्वर्णताटङ्कभूषा
विभ्राजन्तुस्मितास्या भवतु भवमुदे भव्यभाग्यम्भवानी
॥ ४१ ॥ रचयति सहसा यच्चित्रमेतत्प्रपञ्चं प्रशमयति
च तद्वत्केनचित्कौतुकेन । अघिदितमपरैस्तच्छरदमु-
शब्दादिनानादनुजदलनदत्तं सर्वसर्वस्वमव्यात् ॥ ४२ ॥
रामाद्याचय मेदिनीं धनपतेर्यजं वलालाङ्गलं प्रेतेशान्म-
हितं तवास्ति वृषभः फालं त्रिशूलं तव । शक्ताहं तव
चान्नदानकरणे स्कन्दोऽस्ति गौरव्ये स्निग्धाहं हर
भित्त्या कुरु कृपि गौरव्यः पातु वः ॥ ४३ ॥ रामा-
र्चिताङ्घ्रिरभिरामाकृतिः कृताघेरामा सुपर्वविपदां
कामासिंहसफलकामा निदेशरतकामादिनिर्जरवधूः ।
भामा हरस्य नुतभामा जपासहशभा माननीयचरिता

भगवान्) तो बलिकी पञ्चशालामें होंगे ! लक्ष्मीजी—पशुपति
(नन्दोंके स्वामी) कहाँ हैं ? पार्वतीजी—क्यों क्या (पशुओंके
स्वामी कृष्ण) गोकुलमें (गोकुल नगर या गौघाँके बीचमें)
नहीं हैं ? लक्ष्मीजी—अरी पगली ! पञ्चभूषण (सर्पविभूषित)
काँ पृथ्वी हैं । पार्वती—सखी ! वे (साँपोंकी शोभा
घटानेवाले विष्णु) तो उन्हींपर (शेषभागपर) ही सोते
होंगे । लक्ष्मीजी—आर्ये ! विषादो (विषभकी) को
छोड़ो । पार्वतीजी—हे लक्ष्मी ! मैं चञ्चल स्वभाववाली नहीं
हूँ । समुद्र और हिमालयकी पुत्रियोंकी यह बातचीत आपकी
रचा करे ॥ ३७ ॥ गणेशजीसे पार्वतीजीसे पूजा—माँ !
पिताजीकी जटामें क्या है ? पार्वतीजीने कहा—उनकी जटामें
गङ्गा है । गणेशजी—उनके सिरपर क्या है ? पार्वतीजी—वह
चन्द्रमा है । गणेशजी—उनके मस्तकमें क्या है ? पार्वतीजी—
वह अग्नि है । गणेशजी—उनके हृदयपर क्या सोंट रहा है ?
पार्वतीजी—वह शेषनाग है । गणेशजी—उनकी कमरमें क्या
है ? पार्वतीजी—वह खाल है । गणेशजी—उनकी दोनों जाँघोंके
बीचमें वह लम्बा-सा क्या लटक रहा है ? पुत्रकी इस बातको
सुनकर मुक्काकर लजा जानेवाली भगवती पार्वती आपकी
रचा करें ॥ ३८ ॥ साँपके समान मृणालोंके कङ्कन पहनकर
और अपनी खोटीसे जटामुकुट बाँधकर शिवजीका अनुकरण
करनेवाली पार्वतीजी अपने खेलवाड़से संसारकी रचा करें
॥ ३९ ॥ विवाहमें पहले शिवजीके विषयमें जब वदी-वृद्धी
स्त्रियाँ ऐसी खर्चा करने लगती थीं कि 'उनके चरखोंमें
देवता भी प्रवेश करने हैं, वे ही एक सर्वज्ञ हैं, उन्हें सब

सुनि 'मृत्युत्रय' (मृत्युकी जीतने वाली) कहते हैं और अबतक
वे तपस्या कर रहे हैं', उसे सुनकर उनके सामने बैठी
हुई पार्वतीजीका कान खुजलाने या घोंगड़ाई-जैभाई लेने
आदिकी चेष्टाएँ आपकी रचा करें ॥ ४० ॥ जो सरस्वती बनकर
वर्षाके रूपमें तीनों लोकोंके सज्जनता-रूपी घरके आँगनमें
नाचती रहती हैं (सज्जनोंके मुँहमें बसती हैं) तथा अपने
कंधोंपर रखी हुई धीयाके अत्यन्त मीठे स्वरोंके आनन्दमें मस्त
हैं, जिनका मुँह सन्तोषसे खिलता रहता है, जिनके उजले मणि
चमक रहे हैं, जो सोनेके कर्णपूज पहने हैं तथा जिनका मुँह मीठी
मुस्कानसे सजा हुआ है, ऐसी कल्याणकारी सौभाग्यके समान
पार्वतीजी सारे संसारकी आनन्द दें ॥ ४१ ॥ अष्ट-मुख आदि
अनेक दानवोंका विनाश करनेमें जो चतुर हैं और जिनमें दूसरे
जान नहीं पा सकते हैं, जो एकाएक इस विचित्र संसारको
रच दास्यती हैं और न जाने किस खेलमें ही उसे भट कर
हास्यती हैं वे शिवजीकी सब-कुछ श्रीपार्वतीजी रचा करें ॥ ४२ ॥
'हे शिव ! तुम परशुराम (अपने शिष्य) से धरती (खेल), कुबेर
(अपने मित्र) से धन, बलभद्रसे हल और यमराजसे भैंसा
माँग लो, एक बेल तुम्हारे पास है ही, तुम्हारा त्रिशूल ही बने-
बनाए फालका काम देगा, मैं तुम्हें भोजन दे सकती हूँ और यह
कासिकेय देवोंकी देख-भाल कर ही लेगा, अब तुम खेलती करो
क्योंकि भीखसे तो मैं ऊब चुकी हूँ ।' शिवजीसे पार्वतीजीका
यह कथन आपकी रचा करे ॥ ४३ ॥ लक्ष्मी जिनके चरखोंकी
पूजा करती हैं वे सुन्दर रूपवाली, राक्षसोंसे (देवोंपर)
जानेवाली विपत्ति भट करनेवाली, यदी हुई पीड़ाको हरनेवाली

सा मामवत्वखिलसामादृतस्तुतिरसामान्यमुक्तिसुखदा
॥ ४४ ॥ लघुः केलिकचग्रहश्लथजटालघ्वेन निद्रान्तरे
मुद्राङ्कः शितिकन्धरेन्दुशकलेनान्तःकपोलस्थलम् ।
पार्वत्या नखलक्ष्मशङ्कितसखीनर्मस्मितवीडया प्रोन्मुष्टः
करपल्लवेन कुटिलाताम्रञ्जविः पातुः वः ॥ ४५ ॥ वक्त्रं
शीतकरोऽधरो घनरसः कामप्रदो विग्रहः श्वासो गन्ध-
वहः सरोरुहसुहृन्वाणिः स्मिताभा शुचिः । वक्षः पीन-
पयोधराधिकरणं पृथ्वी नितम्बस्थलीत्यष्टौ धूर्जटिभू-
संघः स्मरभयादुर्गाश्रिताः पान्तु वः ॥ ४६ ॥ वक्षःपाठं
निरीक्ष्य स्फटिकमणिशिलामण्डलस्वच्छभासि स्वां
छायां साभ्यसूयां त्वमियमिति मुहुः सन्त्यमाभ्यासि-
तापि । धामे मे दक्षिणेऽस्याः श्रवसि कुवलयप्राहमि-
त्यालपन्ती वसाराशेणा सहस्रं मदनविजयिना पार्वती

वः पुनातु ॥ ४७ ॥ यहन्ती सिन्दूरं प्रचलकचगीभारति-
मिरन्वितां वृन्दैर्वन्दीकृतमिव नवीनार्ककिरणम् ।
तनोतु क्षेमं नस्तत्र वदनसौन्दर्यलहरीपरीयाहस्रोतःसर-
णिरिव सीमन्नसरणिः ॥ ४८ ॥ चिद्राणे रुद्रवृन्दे सचिन-
रि तरले वज्रिणि ध्वस्तवज्रं जाताशङ्कं शशाङ्कं धिरमति-
मरुति त्यक्तवैर कुबेर । वैकुण्ठे कुण्डिनास्त्रं माह्वमति-
रूपं पारुणापन्ननिघ्नं निर्विघ्नं निघ्नती वः शमयतु दुरितं
भूरिभावा भवानो ॥ ४९ ॥ विरिञ्चनारायणवन्दनीयां
मानं विनंतु गिरिशोऽपि यस्याः । कृपाकटाक्षेण निरी-
क्षणानि व्यपेक्षते साऽवतु यो भवानो ॥ ५० ॥ वेणीव-
न्धकपर्दिनी सिततनुः श्रीखण्डपांसूकरैः केतक्यंकद-
लेन्दुभृद्विसलताव्यालोपवोतिन्यपि । प्राक्पाणिग्रहणा-
द्विनोदरभसा सख्याः पुरां लीलया कुर्वाणानुकृतिं

(कामकी पीड़ा नष्ट करनेवाली), भक्तोंकी इच्छाएँ पूर्ण करने-
वाली (पूर्णकाम रहनेवाली), राक्षसोंका नाश करनेके लिये
क्रोध करनेवाली, जपाकुसुमके रत्नके समान कान्तिवाली और
श्रेष्ठ आचरणवाली वे शिवजीकी पत्नी सदा ही मेरी रक्षा करें
जिनकी आज्ञाके प्रशमं कामदेव आदि सब देवोंकी स्त्रियाँ रहती
हैं, सामवेदके श्रेष्ठ मन्त्र जिनका स्तुति करते रहते हैं तथा
जो अश्वत्थ श्रेष्ठ मुक्ति देनेवाली हैं ॥ ४४ ॥ कामकीड़ाके समय
पार्वतीजीने शिवजीकी डीली जटाओंकी खींचा तो उसके साथ
देदे चन्द्रमाके लटकने और सोती हुई पार्वतीजीके गालोंके
नीचे दृश्य जानेसे उनके गालोंपर जो चिह्न पड़ गया, जिसे
देखकर सखियाँ पतिका नखचिह्न समझकर मुस्कराने लगीं और
पार्वतीजीने जिसे लजाकर अपने हाथोंसे पोंछ डाला उस देदे
चिह्नकी जाल कान्ति आपकी रक्षा करे ॥ ४५ ॥ कामदेवके
हरसे शिवजीके पाससे भागकर पार्वतीजीके देहरूपी दुर्गमें
बैठी शिवजीकी वे छाट मूर्तियाँ आपका कल्याण करें जिनमेंसे
चन्द्रमाने पार्वतीजीके मुँहमें, श्रेष्ठ जलने उनके नीचेके आँठमें,
यजमानने शरीरमें, पवनने सर्पसंघमें, सूर्यने हाथोंमें, अग्निने
मन्द मुस्कानमें, बड़े-बड़े पयोधरों (बादलों) ने हृदयमें और
पृथ्वीने नितम्बोंमें छिपकर मानो अपने प्राण बचाए ॥ ४६ ॥
श्रीशिवजीकी स्फटिक मणिके समान उजली छातीकी चमकमें
पार्वतीजीने अपनी परछाईं देखी तो वे सौमिया-डाहसे भर गईं ।
शिवजीने बहुत समझाया कि 'यह तुम्हारी ही परछाईं है, दूसरी
कोई नहीं' पर पार्वतीजीकी विश्वास नहीं हुआ और वे कहने लगीं
कि 'यह अवश्य ही कोई दूसरी की है । देखो न, मेरे तो बाईं

कानमें कुमुदिनीका फूल है और इसके दाहिने कानमें, घतः यह
मेरी परछाईं नहीं है ।' इस प्रकार कहती हुई जिन पार्वतीजीका
कामदेवको जानेवाले शिवजीने हैंसते हुए आलिङ्गन किया वे
आपको पवित्र करें ॥ ४७ ॥ हे पार्वतीजी ! आपके घने गालोंके
नीचमें चमकती हुई जाल रत्नवाली वह माँगके सिन्दूरकी रेखा
हमारा कल्याण करें जो उदय हाँसे हुए सूर्यकी ऐसी किरणके
समान जान पड़ती है जिसे मानो चौंधरेकी काली रेखाओंने वन्दी
बना रक्खा हो या जो आपके मुँहकी सुन्दरतारूपी नदीके उजलने
हुए जलकी सीपी बहती हुई धारा हो ॥ ४८ ॥ जिससे डरकर
रुद्र-गण भाग गए, सूर्य निस्तेज हो गए, इन्द्रका वज्र टूट गया,
चन्द्रमा शङ्कामें पड़ गए, पवनका बहना रुक गया, कुबेरने शस्त्र
डाल दिए और विष्णुका चक्र कुण्डित हो गया, उस बड़े-बड़े
बलवानोंको मारनेवाले तथा देवताओंके भी धक्के चुड़ानेवाले
अत्यन्त क्रोधी महिषासुरको सहज ही मारनेवाली, अपार
शक्तिवाली, शिवजीकी पत्नी आपके पापोंका नाश करें ॥ ४९ ॥
जिम शिवजीको प्रह्ला और विष्णुतक प्रणाम करते हैं वे भी
जिनके रूठ जानेपर उन्हें मनाते समय उनकी ह्याभरी तिरछी
चितवन पानेके लिये जालायित रहते हैं वे पार्वतीजी आपके
रक्षा करें ॥ ५० ॥ वे पार्वतीजी आपको ऐरवर्ध दें जिन्होंने विवाह
होनेसे पहले सखियोंके साथ खेलते समय अपनी थोड़ीको जटाके
समान लपेटकर, उजली भस्मके स्थानपर देहमें चन्दनका चूर्ण
लपेटकर, देदे चन्द्रमाके स्थानपर केतकीके फूलकी पेंसुड़ी
लगाकर तथा सर्पोंके जनेउके स्थानपर कमलजाल धारण करके
अपना रूप शिवजीके समान बनाया था ॥ ५१ ॥ अपने प्रिय

हरस्य दिशतु श्रेयांसि वः पार्वती ॥ ५१ ॥ व्यानप्राः
दयितानने मुकुलिना शार्दूलचर्माम्बरे सोन्कम्पा भुजगे
निमेषरहिता चन्द्रेऽमृतस्यन्दिनि । मीलङ्कः सुरसिन्धु-
दर्शनविधां म्लाना कपालोदरे पार्वत्या नवसङ्गमण-
यिनीं दृष्टिः शिवायास्तु वः ॥ ५२ ॥ शम्पाकस्य रजः
प्रमृज्य चरणे दत्तो मया यावको निर्मृज्य स्तनकुङ्-
मले च भसितं पश्चाद्भूरो निर्मितः । स्वच्छन्दं विहरति
जल्पितगिरं साकूनमालोजनं दृष्ट्वा केवलमाप्नोती
कुटिलया दाक्षायणीं पातु वः ॥ ५३ ॥ शिरसि धूनसुप-
रागे स्मरारावहणमुखेन्दुसचिगिरीन्द्रपुत्री । अथ चरत्-
युगानते स्वकान्ते स्मिनसरसा भवतेऽस्तु भूनिहेतुः
॥ ५४ ॥ ध्रुवा पदाननजनुर्मुदिनान्तरण पद्मानन
सहसा चतुराननाय । शार्दूलचर्म भुजगाभरणं सभस्म
दत्तं निशम्य गिरिजाहसितं पुनातु ॥ ५५ ॥ सत्पादि-
स्थैरगणितगुणैर्हस्त विश्वं प्रसूय इयं धत्ते महसनकरां

या कुमारीति संज्ञाम् । मोहध्वान्तप्रसरविरतिविश्व-
मूर्तिः समन्तादाद्या शक्तिः स्फुरतु मम सा दीपवद्देह-
गेह ॥ ५६ ॥ सन्ध्यारागवती स्वभावकुटिला गङ्गा
द्विजिह्वः फली चक्राङ्गैर्मलिनः शशी कपिमुखो नन्दी च
मूलां वृषः । इत्थं दुर्जनसङ्घटे पनिगृहे वस्तव्यमेतत्कथं
गौरीभ्यं नृकपालपाणिकमला चिन्तान्विता पातु वः
॥ ५७ ॥ सत्रीडा दयितानने सकलणा मातङ्गचर्माम्बरे
सत्रासा भुजगे सविस्मयरसा चन्द्रेऽमृतस्यन्दिनि ।
सेर्या जङ्घुनावलोकनविधां दीना कपालोदरे पार्वत्या
नवसङ्गमणयिनीं दृष्टिः शिवायास्तु वः ॥ ५८ ॥ सिंहा-
कटैकपादा दशभुजधिलसङ्घापचर्मसिखकमोघरपा-
शाङ्कुशालीदरवरविलसतर्जनोवाणरम्या । प्रन्ती शूलेन
वत्स्यसुरमद्विहरिग्रस्तहस्तन्तु काञ्चीपीतक्षामार्ध-
चन्द्रा त्रिनयनललिता सा भवान्यस्तु सिद्धये ॥ ५९ ॥
स्वेदस्ते कथमादृशः प्रियतमे त्वच्छेषकं विभो कस्माद्दे-

(शिवजी) का मुँह देखकर नीचेकी भुक्त जानेवाली, वायस्वर
देखकर कुछ मुँह जानेवाली, नागकी देखकर काँप उठनेवाली,
अमृत चुसानेवाली चन्द्रमाकी एकटक देखनेवाली, गङ्गाकी देखने
ही चन्द हो जानेवाली, मुहम्मदाला देखकर मलिन हो जानेवाली,
तथा शिवजीके मये समागममें प्रेम रखनेवाली पार्वतीजीकी
दृष्टि आपका कल्याण करे ॥ ५२ ॥ 'मैंने घमेलनामकी पुष्प-रज
पोंछकर पैरोंमें महावर लगा दिया तथा स्नानमें लगी हुई भस्म
छलगा करके वहाँ चिक्कारी रच दी, अब मुम स्वपद्मद्वारा
विहार करो अर्थात् अथकोंई न जान पायगा कि मुमने शिवजीमें
रमण किया है' ऐसा करनेवाली सर्वाको निरुद्ध दृष्टिमें कंधपर्वक
देखनेवाली भगवती आपका रक्षा करे ॥ ५३ ॥ चन्द्रमाकी
कान्तिके समान कान्तियुक्त मुँहवाली ये हिमालयकी पुत्री
पार्वतीजी आपका कल्याण करें जो कामदेवको नाश करनेवाली और
गङ्गाकी तिरपर धारण करनेवाली पति शिवजीको अपने पैरों पड़ने
देखकर प्रमत्त होकर मुम्कारने लगी थी ॥ ५४ ॥ 'कान्तिकेयका
जन्म सुनकर अन्यन्त प्रसन्न होकर पाँच मुँहवाली शिवजीने
चार मुँहवाली ब्रह्माकी अपनी आपकी त्वाल, सौंपोंके गहने और
भस्म दे डाला' यह सुनकर हैसनेवाली पार्वतीजी सयका कल्याण
करें ॥ ५५ ॥ सन्, रज, तम आदिमें स्थित अनगिनत गुणोंसे
हूतने बड़े संसारको उत्पन्न करके भी अपना हैसने योग्य 'कुमारी'
नाम रखनेवाली, मोहरूपी घने अंधेरेके फैलावको रोकनेवाली,
हूतने बड़े संसारके रूपवाली, सयने बड़ी और प्रथम शक्ति

(स्वामिनी) भरे हृदयमें दीपकी भीति कमकी रहें ॥ ५६ ॥
'जहाँ लाल रङ्गवाली सन्ध्या, जन्मसे देदी, दुष्ट स्वभाववाली)
गङ्गा, दो माँभवाली (पुगलशोर, सौंप, देदी आँववाली मलिन
और कान्तिहीन (कुरूप) चन्द्र जैसे मुँहवाली नन्दी और मूल
धूल आदि एक साथ रहते हैं, ऐसे दुर्गमों भरे पतिके घरमें
कैसे रहा जाय !' इस प्रकार अपने हाथमें खोपड़ी लेकर सोचमें
पड़ी हुई पार्वतीजी आपकी रक्षा करें ॥ ५७ ॥ शिवजीसे पहले-
पहल मिलनके लिये उन्मुक्त पार्वतीजीकी यह दृष्टि आपका
कल्याण करे जो शिवजीका मुँह देखकर लज्जित हो उठती
है, हाथीकी त्वाल देखकर दयासे भर जाती है, सौंप देखते ही
कर जाती है, अमृत टपकते हुए चन्द्रमाको देखकर अचरजसे
भर जाती है, गङ्गाको देखकर वाहसे भर उठती है और
खोपड़ियोंके भीतर भौंककर घृणासे भर उठती है ॥ ५८ ॥ सिंहकी
पीठपर एक पैरसे खड़ी हुई, अपने दसों हाथोंमें धनुष, बाल,
नलवार, चक्र, चमकने हुए पाश, अङ्गुश आदि धारण की हुई,
अपनी तर्जनी उँगलीसे बाण भीचनी हुई, उस राक्षसकी
सूनीमें त्रिशूल चुनेड़नेवाली जिसका एक हाथ पाशसे बँधा है
तथा एक हाथ सिंहने दबाँध लिया है, करधनी, पीले नेशमी वस्त्र
और आधे चन्द्रमाको धारण करनेवाली तथा तीन नेत्रोंसे
अनन्त सुन्दर दिग्याई देनेवाली भवानी सबको सिद्धि दे
॥ ५९ ॥ शिवजीमें पार्वतीजीसे पूछा—प्रियतमे ! तुम्हें
पर्सोना क्यों बूट रहा है ? पार्वतीजी—स्वामी ! आपके

पितमेतदिन्द्रुचदने भोगीन्द्रभीतेस्तव । रोमाञ्चः कथमेव
देवि भगवन्नाङ्गाम्भसां सौकरैरिदं भर्तारि भावगोपन-
परा गौरी चिरं पातु वः ॥ ६० ॥ स्वेदस्यन्दितसान्द्र-
चन्दनचयं दोर्बल्लियन्ध्रमादूर्ध्ववासपरिस्खलन्स्मर-
कथं सन्दृष्टन्तच्छ्रद्धम् । लीनकाराञ्जितलोचनं सपुलकं
भ्रान्तभ्रु नृत्यन्करं पार्श्व्यां सुरतं मुदे रसवतामास्तां
मृडानीपतेः ॥ ६१ ॥ हे गङ्गाधरपालि चक्रिबधु किं कुत्रा-
स्त्यसौ नर्तको वृन्दारण्यभुवि यत्र सर्पकुतुकी स्यात्का-
लियस्य द्वेदे । भिक्षुः कृत्र गतोऽस्ति यज्ञसदने कथासां
विपादी यकीक्रोडे स्यादिति पद्मजागिरिजयोर्धाम्भस्यः
पातु वः ॥ ६२ ॥ हे हेरम्य किमस्य रोदिपि कथं कर्णौ
लुट्यन्निभूः किमेते स्कन्द यिचेष्टितं मम पुरा संख्या
कृता क्षुण्डाम् । नैतत्तेऽप्युचितं गजास्य चरितं नासां

मिमोतेऽप्य मे तावेवं सहसा विलोक्य हसितव्यग्रा
शिवा पातु वः ॥ ६३ ॥

चण्डिकाश्रुङ्गाटी—देवी सुनुमसूत नृत्यत गणाः
किं तिष्ठतेत्युद्धृजे हर्षाद्भक्तिरिटाववाञ्जितगिरा चामु-
रङ्ग्यालिङ्गिते । अद्याहो हतदेवदुन्दुभिघनध्वाना-
तिरिक्तस्त्रयोरन्योन्यप्रवृत्तास्थिपञ्जरजरत्नकङ्कालजन्मा
रवः ॥ ५५ ॥

अर्धनारीश्वरः—अक्षिमेखलमलधरोपगृहमप्रा-
प्तचुम्बनमर्नाक्षितवक्त्रकान्तिः । कान्ताविमिश्रवपुषः
कृतविप्रलम्भसम्भागसम्प्यमिव पातु वपुः मुगारः ॥ १ ॥
अर्धाङ्गनापुंषपुषः पुरांमूर्त्तिः श्रियं नागिध घस्तनोतु ।
प्रेमादिभारादपरं यमयं ममज शृङ्गाररत्नाम्बुराशौ ॥ २ ॥
आरलेपाधरविम्बचुम्बनसुखालापस्मिताग्यासतां दूरे

मेघकी अग्निके तापने एमना एट रत्ना है । शिवजी—
तुम्हारा चन्द्रमुख कौन क्यों रहा है ? पार्वतीजी—आपके
शेषनागके डरसे कौन रहा है । शिवजी—देवि ! तुम्हें रोमाञ्च
क्यों हो रहा है ? पार्वतीजी—भगवन् ! आपकी गङ्गाकी फुहारसे
रोमाञ्च हो रहा है । ऐसा कहकर अपना काम-भाव छिपानेवाली
पार्वतीजी सदा आपकी रक्षा करें ॥ ६० ॥ पुलकित होकर हाथ
और भींह नचा-नचाकर शिव और पार्वतीजीकी वह रत्निकाया
रत्निकाको आनन्द दे जिसमें पार्वतीजीके स्तनोंपर लगा हुआ
चन्दनका लेप पसीनेसे भंग गया एक दूसरेको कसकर
आलिङ्गन करनेके कारण यहाँके धक जानेसे सौंसे फूलने लगीं
और रत्निका वेग कम हो गया, शिवजीने पार्वतीजीका
छोट काट लिया और पार्वतीजी सां-सी करके आँखें मींचकर
पुलकित हो गई ॥ ६१ ॥ लक्ष्मीजीने पार्वतीजीसे कहा—हे
गङ्गाधरकी पत्नी ! लक्ष्मीजी बोली—क्या है गङ्गाधारीकी
गृहिणी ! लक्ष्मीजी—वे नाचनेवाले (ताण्डव करनेवाले)
कहाँ है ? पार्वतीजी—वृन्दारण्यमें ही होंगे । लक्ष्मीजी—
सौंपाँसे लेलवाव करनेवाले कहीं हैं ? पार्वतीजी—वे तो
कालिय कुपडमें होंगे । लक्ष्मीजी—भील मँगनेवाले कहीं गए ?
पार्वतीजी—वे बलिकी यज्ञशालामें होंगे । लक्ष्मीजी—विष
खानेवाले कहीं हैं ? पार्वतीजी—वे तो सर्प (शेषनाग) की गोदमें
होंगे । लक्ष्मी और पार्वतीजीकी वह भयभरी बातचीत आपकी
रक्षा करे ॥ ६२ ॥ पार्वतीजीने कहा—अरे गणेश ! गणेशने
कहा—क्या है माताजी ? पार्वतीजी—रोते क्यों हो ? गणेशजी—
वे (स्कन्द) मेरे कान बैठते हैं । पार्वतीजी—क्यों रे स्कन्द !

तेरा इसने क्या पिगाड़ा है ? स्कन्द—वह मेरी आँखें गिनता
था । पार्वतीजी—गणेश ! मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए ।
गणेशजी—माँ ! ये मेरी नाक मसल रहे हैं । इन दोनोंको इस
प्रकार देखकर हैम्नेवाली पार्वतीजी आपकी रक्षा करें ॥ ६३ ॥

चण्डिकाके द्वारपाल : जब अचान्त प्रसन्न होकर
चामुण्डाका आलिङ्गन करके पार्वतीजीके द्वारपालने हाथ
उठाकर कहा कि 'देवी (पार्वती) ने पुत्रको जन्म दिया है,
हे गण ! नुम नाचो । शेटे क्यों हो ?' उस समय उन दोनोंके
हृदयोंके त्रोंबांकी रगड़ने उत्पन्न उस भीषण तड़ित्वाहटकी
जय हो जिसके सामने देवताओंके पीटे हुए नगाड़ोंकी ध्वनि भी
मन्द पड़ गई ॥ १ ॥

अर्धनारीश्वर : बाएँ भागमें स्त्रीको धारण करनेवाले तथा
त्रिपुरासुरके शत्रु (शिवजी) का वह अर्धनारीश्वर शरीर आपकी
रक्षा करे जिसकी करधनी एक हाँते हुए भी ॥ तो उनके दोनों
रूप कसकर एक दूसरेका आलिङ्गन कर पाते, न चुम्बन कर पाते
और न मुँहकी सुन्दरता ही देख पाते । इस प्रकार जो मानो
एक दूसरेके विरोधां विप्रलम्भ और सम्भाग शृङ्गारमें मिश्रता
स्थापित कर रहा है ॥ १ ॥ आधे काँ और आधे पुरुष शरीरवाले
शिवजीका वह नावके समान ज्ञान पड़नेवाला रूप आपकी
पेशचर्य दे जिसने मानो प्रेमका भार न सँभाल सकनेके कारण
अपने दूसरे आधे भागको शृङ्गार-रसरूपी समुद्रमें डुबो दिया
॥ २ ॥ 'वह कैसा प्रेमका दौंग है कि आलिङ्गन, अधर-चुम्बन,
प्रेमात्माप या हँसना तो दूर रहा, एक दूसरेका मुँह भी हम
नहीं देख पाते, व्यर्थ ही हम दोनोंका शरीर एक हो गया'

तावदिदं मिथो न सुलभं जातं मुखालोकनम् । इत्थं
व्यर्थकृतैकदेहघटनोपन्यासयोरावयोः केशं प्रेमषिडम्ब-
नेत्यवतु वः स्मेरोऽर्धनारीश्वरः ॥३॥ एकः स्तनस्तुङ्ग-
तरः परस्य वार्त्तामिव प्रपुमगान्मुखाग्रम् । यस्याः
प्रियार्धस्थितिमुदहम्याः सा पातु वः पर्वनराज-
पुत्री ॥ ४ ॥ गिरितनयैकपयोधरनिहितकरः पातु
घञ्धिरं गिरिशः । विश्वासयितुं मनसिअमिव स्पृशन्
काञ्चनं लिङ्गम् ॥ ५ ॥ तद्वः पुनातु शिवयोरर्धनारी-
श्वरं वपुः । भवेदिव यद्यथ श्वः शिवः एव शिवैव वा
॥ ६ ॥ देहाद्भक्तुर्पार्वति स्थिरपदं हस्ते धनुर्धारय
स्वेदाद्रं यदि मृज्यतां करतलं भस्माङ्गरागेण मे ।
एवं जल्पत एव बाणशिलिनि प्रोक्षीय शिञ्जाफणिभ्वासैः
प्रज्ज्वलिते पुरेषु जयति स्मेरं पुरारंमुक्तम् ॥ ७ ॥
मन्दारमालालुलितालकायै कपालमालाङ्कितशेखराय ।
विद्याम्यरायै च दिगम्बराय नमः शिवायै च

नमः शिवाय ॥ ८ ॥ यस्योपवीतगुण एव फणावृतैकध-
त्तोरुहः कुचपटीर्याति वामभागं । तस्मै ममास्तु नमसा-
मवसानसीम्ने चन्द्रार्धमौलिशिरसे महसे नमस्या ॥ ९ ॥
सम्भोगानतिरिच्यमानविभयो यद्विग्रलम्भो रसस्तद्विव्यं
मिथुनं परस्परपरिस्मृतं नमस्कुरुमहे । एकस्याः प्रतिधि-
म्यसम्भृतविपर्यासे मुहुर्दर्पणे सव्याङ्गस्थितिकौतुकं
शमयति स्वामी स यत्रापरः ॥ १० ॥ स्वरञ्जन्दैकस्तनश्री-
रुभयदलमितलमौलिचन्द्रः फलीन्द्रप्राचीनाधीतवाही
सुखयतु भगधानर्धनारीश्वरो वः । यस्यार्धे विश्वदाहव्य-
सनविस्मरज्ज्योतिरर्धे कृपोद्यद्वाप्यं चाग्न्योन्यवेगप्रवृत्ति
सिमसिमाकारि चक्षुस्तृतीयं ॥ ११ ॥ स्वेदाद्रं वामकुच-
मण्डलपत्रभङ्गसंशोपिदक्षिणकराङ्गुलिभस्मरेणुः । स्त्री-
पुनपुंसकपदव्यतिलङ्घिनी वः शम्भोस्तनुः सुखयतु
प्रकृतिश्चतुर्थी ॥ १२ ॥

गङ्गा—इयं चिद्रूपापि प्रकटजडरूपा भगवती यदी-

इस प्रकार बातें करके मुस्कुरानेवाले, श्री और पुरुष दोनोंके
इकट्ठे रूपवाले भगवान् शिव आपकी रक्षा करें ॥ ३ ॥ अपने
प्यारे शिवजीकी आधी देह हाँसेवाली वे (सेटी हुई) पर्वतराज
हिमालयकी पुत्री आपकी रक्षा करें जिनका एक ऊँचा बायाँ
स्तन फुककर मानो दूसरे दाहिने (छोटे) स्तनका कुशल-
समाचार पूछ रहा हो ॥ ४ ॥ आधे शरीरमें स्थिर पार्वतीके
एक अकेले स्तनपर हाथ रखते हुए वे गिरिश (शिवजी)
आपकी सदा रक्षा करें जो मानो कामदेवकी विरवास दिला देनेके
लिये स्वर्णमय लिङ्गकी छूँकर शपथ ले रहे हों ॥ ५ ॥ पार्वती
और शिवका वह अर्धनारीश्वर शरीर आपको पवित्र करे जो
मानो आजकलमें या तो शिव ही हो जायगा या पार्वती ही हो
जायगा ॥ ६ ॥ 'हे पार्वती ! अपने आधे शरीरको स्थिर करके
हाथमें धनुष ले लो, यदि हाथ पसीजता हो तो मेरी देहमें
लगानेवाली भस्मसे हाथ मल जाँ ।' ऐसा शिवजी कह ही रहे
थे कि भूषण बने हुए साँपोंकी फुककारसे प्रज्वलित होकर तीसरे
मेघकी अग्निने पुर राक्षसको भस्म ही तो कर दिया । यह
देखकर मुस्करा उठनेवाले शिवजीके मुखकी जय हो ॥ ७ ॥ उन
पार्वती और शिवजीको प्रणाम है जिनमेंसे एकके सिरके बाल
मन्दार-पुष्पोंकी मालासे सजे हैं और दूसरेके सिरमें साँपदियोंकी
माला शोभित है तथा एक तो अति सुन्दर लज्जोले
निभूषित हैं और दूसरे दिगम्बर अधार नष्ट हैं ॥ ८ ॥
जिनके एक अकेले बाएँ स्तनपर यज्ञोपवीतके समान पड़े हुए

सर्पका कण्ठ ही चोली के समान है ऐसे उन अर्धनारीश्वर
रूपवाले अत्यन्त तेजस्वी शिवजीको मेरा प्रणाम है जो चौथेरा
वृत्त करनेवाला चन्द्रमा सिरपर धारण किए हुए हैं ॥ ९ ॥ सम्भोग
शृङ्गारके रसको भी निम्नित कर देनेवाले उस विग्रलम्भ और
सम्भोग शृङ्गारके मिले हुए मनोले जोड़े (शिव और
पार्वतीके मिले हुए रूप) की हम प्रणाम करते हैं जिसे
दर्पणमें देवकी पार्वतीजीकी दाहिनी ओर देखते ही शिवजीने
दर्पण हटा दिया ॥ १० ॥ अपने एक ही स्तनकी शोभासे
सुन्दर दिखाई देनेवाले वे अर्धनारीश्वर शिवजी आपको
सुख दें जिनके सिरके दोनों भागोंपर चन्द्रमा सजा हुआ
है, जो पुराने साँपका जनेऊ धारण किए हैं जिनका तीसरा
नेत्र आधे भागकी ज्योतिसे सारे संसारको जला डालनेके
लिये निकली पड़ने और आधे भागकी दयासे भरनेके
दोनों भाव एक साथ उत्पन्न होनेसे छिपछिपाने लगी
है ॥ ११ ॥ बाएँ भागमें धारण की हुई पार्वतीके स्तनपर
जने छेपको नष्ट करनेवाला पसीना सुखानेके लिये एक
चुटकीमें भस्म लिए हुए शिवजीका वह शरीर आपको ऐश्वर्य
दे जो मानो पुल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग और नपुंसक लिङ्गको भी पार
करके कोई चौथी प्रकृतिवाला बन रहा हो ॥ १२ ॥

गङ्गा : वे चेतन रूपवाली भगवती गङ्गाजी सदा ही सारे
संसारको भागसे बचावें जो संसारमें जड़ रूपसे प्रकट हैं, जिनकी
एक ही ईद जोड़को शिव बना देती है और जो सदा ही संसार-

याम्भोविन्दुर्वितरति च शम्भोरपि पदम् । पुनाना
धुन्वाना निखिलमपि नानाविधमघं जगत्कृन्तं पाया-
दनुदिनमपायान्सुरधुनी ॥१॥ एषा धर्मपताकिनी तट-
सुधासेवावसत्राकिनी शुष्यन्पातकिनी भगीरथतपः-
साकल्यहेवाकिनी । प्रेमाकृष्टपिनाकिनी गिरिसुतास्या-
केकालोकिनी पापाङ्गभ्रष्टाकिनी त्रिभुवनानन्दाय
मन्दाकिनी ॥ २ ॥ मां गीविभज्यमानार्धसङ्कीर्णं हर-
मूर्धनि । अम्य द्विगुणगम्भीरे भागीरथि नमोऽस्तु ते
॥ ३ ॥ खूडाशीतकरस्तनन्धयसुधानीरन्ध्रगन्धस्पृशः
क्रीडाकङ्कणपन्नगेश्वरकणापीनावशिष्टा मुहुः । अङ्गा-
लीनगिरीन्द्रजास्तनतटीहररायलीलोलनाः सन्तापं
शमयन्तु वो हरजटागङ्गानरङ्गानिलाः ॥४॥ अङ्गालस्फु-
र्जदूर्जस्वलकरिमकरप्रौढसम्मर्दजेलन्कलोलोत्कुलविन्दु-
स्तयकतिलकितव्योमकुक्षिभरीणि । वारीणि स्वर्गसि-
न्धोत्तिपुरहरजटाजूटस्थवाध्वनीनाम्युच्चैरुच्चरजटा-

ग्रन्थलिकलुपमगीशोपमुन्पोषयन्तु ॥ ५ ॥ नायन्कर्णा-
ध्वयाना जनघनकलुषाधूनने मन्धवाहा दृष्टाः किं दृश्य-
वाहाः सरुदधदहने स्वर्गतां पुण्यवाहाः । स्पृष्टाः
संसारहाहारवकटुकमहाम्भोधिमग्रे वराहाः पीनाः
पीयूषधाराधिकनरमधुराः पान्तु गोदोदवाहाः ॥ ६ ॥
दृष्टाः सङ्कष्टदाहाः श्रवणपथगताः पुण्यपुत्राधवाहाः
स्पृष्टाः संसारपाथोनिधिपतितधर्माङ्गधुर्या वराहाः ।
पीतास्नापोपशान्तिप्रजननपटवस्ते सुधाचारिवाहाः
कल्याणं कल्पयन्तां कलिकलुषहरा विष्णुपथाः
प्रवाहाः ॥७॥ पर्यंतमेदि पवित्रं जैत्रं नरकस्य बहुमन-
ङ्गहनम् । हरिमिव हरिमिव हरिमिव सुखसिद्धिदम्भः
पतन्मन ॥ ८ ॥ मुक्ताभा नृकपालशुक्तिषु जटावल्लीषु
मङ्गीनिभा वही लाजनिभा दशोर्मणिनिभा भोगान्कर
भोगिना । नृत्यावर्त्तवियर्त्तनेरितपथःसम्भूर्च्छनाच्छा-
लिताः खेलन्तो हरमूर्ध्नि पान्तु भवतो गङ्गापया-

भरके सब पापोंका नाश करती रहती हैं ॥१॥ धर्मकी धजा-सी
जान पड़नेवाली तथा उसुकतापूर्वक भगीरथकी तपस्या सकल
करनेवाली पार्वतीजीके मुखकी चार तिरछी दृष्टिसे देखनेवाली
और पापोंके समूहका नाश करने तथा सुखा हासनेवाली के गङ्गाजी
तीनों लोगोंको आनन्द दें जिनके तीरपर सब देवता अमृत
पीनेके लिये बैठे हैं तथा जिन्हें शिवजी हलना चाहते हैं कि तीरपर
बैठा रक्खा है ॥ २ ॥ पार्वतीजी-द्वारा आधे बटाए हुए शिवजीके
मस्तककी सन्धिमें रहनेसे दुगुणो गहरी ॥ मां गङ्गे ! आपको
प्रणाम है ॥ ३ ॥ शिवजीकी जटामें बहती गङ्गाकी लहरोंका वह
पवन आपके दुःख हर करे जो शिवजीके मस्तकपर बैठे बच्चोंके
समान चन्द्रमाके अमृतकी घनी गन्धसे भरा है, जो खेलवाड़में
कहन बने हुए साँपके फणोंसे बार-बार पिष्ट जानेपर भी बचा
हुआ है और जो शिवजीकी गोदमें बैठी पार्वतीजीके स्तनोंपर
घटके हारको दिलाता रहता है ॥४॥ त्रिपुरासुरके शत्रु शिवजीकी
जटाघोंके मार्गोंसे होकर आव्यस्त वेगसे बहता हुआ, आकाशकी
कोल भरता हुआ वह गङ्गाजीका जल कलियुगकी प्रचण्ड पाप-
रूपी कालिकाको सुखाता हुआ संसारका पोषक करे जिसमें बड़े-
बड़े चडियाल आदि उछल रहे हैं, बड़ी-बड़ी लहरें उठ रही हैं,
बड़ी-बड़ी बूँदें उड़ रही हैं तथा जो ऐसा जान पड़ता है मानो
आकाशका तिलक हो ॥ ५ ॥ गङ्गाका वह जल आप लोगोंकी
रक्षा करे जिसका नाम सुनना ही मनुष्योंके बड़े-बड़े पापोंको उड़ा
देनेके लिये पवनके समान है, जिसका दर्शन तुरत ही पापोंको
जवानेके लिये अग्नि के समान है, जो स्वर्ग जाते समय साथ-

साथ पुरुष वाता चलता है, जो बूँ लेनेपर संसारके फंदार 'हा !
हा !!' शब्द-रूपी बड़े भारी समुद्रमें डूबे हुए प्राणियोंको
बचानेके लिये वराह भगवान्के समान ॥ और जो पीनेमें
अमृतकी धारसे भी अधिक मीठा है ॥६॥ दर्शन करनेसे कंठका
नाश करनेवाला, अपनी चर्मा मुननेपर पुण्योंके हरमे नहला
देनेवाला, स्पर्श-मात्रसे संसार-रूपी समुद्रमें डूबनेवालोंको
बचानेके लिये वराह भगवान्के समान, पी लेनेसे तुरन्त दुःख
मिटानेवाला, अमृतकी धाराके समान जान पड़नेवाला,
कलियुगके पाप नष्ट करनेवाला और विष्णुके चरणोंसे बहता
हुआ गङ्गाजल सबका कल्याण करे ॥७॥ इस गिरने हुए अव्यस्त
श्रेष्ठ और गहरे गङ्गाजलको प्रणाम करो जो पर्वतका ताँड़-फोड़कर
बहनेके कारण पर्वतोंके पङ्क काटनेवाले इन्द्रके समान है, पवित्र
होनेसे विष्णुके समान है और नरकोंको नष्ट करनेवाला होनेसे
नरकासुरको मारनेवाले कृष्णके समान है ॥८॥ शिवजीके गलेमें
पड़ी खोपड़ियों-रूपी साँपोंमें पड़कर मोतीके समान, जटाकी
चोटीमें पड़कर उनमें गुँथे मल्लिकाके फूलोंके समान, शिवजीके
तीसरे नेत्रकी अग्निमें पड़कर धानकी खीलोंके समान, साँपोंके
कैले हुए फलोंमें पड़कर मणिके समान जान पड़नेवाली तथा
मैवरोंके पड़नेसे घूमते हुए तथा रुककर उछलते हुए जलसे
उत्पन्न होकर शिवजीके माथेपर खेलनेवाली गङ्गाजीकी बूँदें
आपका कल्याण करें ॥ ९ ॥ जिसके 'भागीरथी' नामका पहना
अक्षर 'भा' भानु (सूर्य) के नाममें शोभा पाता है, दूसरा
अक्षर 'ती' (वाणी) सदा श्रेष्ठ कवियोंके मुँहमें नाचता रहता

विन्दवः ॥ ६ ॥ यन्मात्रः प्रथमाक्षरं विजयते भानो
द्वितीयाक्षरं नित्यं नृत्यति सन्कयीन्द्रचन्दने भूत्वा-
न्तर्गणद्वयम् । रामो गवणमाजघान समरे शम्भोः
शिरःशालिनी सा सर्वाक्षरमालिनी भवतु मे भा-
ग्याय भार्गीरथी ॥ १० ॥ वाते वाति यदङ्ग-
सङ्गमवशाच्छ्रीशम्भुरूपमदे गौरी कृष्यति तुष्यति
व्यहृषति चिन्ध्याटवी शोचति । चन्द्रस्यस्यति कुप्यते
हरिरपि ब्रह्मा परं कम्पते सा गङ्गा निखिलं
कलङ्कनिचयं भङ्गं तरङ्गैर्नयेत् ॥ ११ ॥ शार्ङ्गो
ब्रह्मकमण्डलोरभिगतैर्यैः प्रापि तीर्थाङ्घ्रिनां यैर्मृत्यु-
जयतामनायि गरलप्रस्तो जटाजूटगैः । येभ्योऽशिक्षत
माधुरीं मृदुजटाजूटे मठे चन्द्रमास्तानीमानि पर्यासि
गीतमि तथ श्रेयांसि यच्छ्रुन्तु नः ॥ १२ ॥ शैवालश्रेणि-
शोभां दर्शयति हरजटाध्वजयो हन्त यस्यास्तदासोल्ला-
सयेल्लङ्काराफगुलां यत्र धत्ते कलायान् । उन्मीलद्गो-
विभोगावनिमुभगसिताम्भोजसम्भाषिताम्भा गङ्गान-

हैं और शम्भुजीने जिसके घन्तके दो अक्षर (रधा) होकर रावणको
युद्धमें मार डाला, ऐसे अक्षरांवाली तथा शिवजीके सिरपर
शोभा पानेवाली 'भार्गीरथी' नामवाली गङ्गाजी मेरा सौभाग्य
बढ़ावे ॥ १० ॥ जिनको छूकर शिवजीका रूप देनेकी शक्तिवाले
पद्मके जलनेपर पार्वतीजी कोपित हो जाती हैं, सौंप प्रसन्न हो
जाते हैं, बिम्बाचल सांघमें पड़ जाता है, चन्द्रमा उर जाता है,
विष्णु भी कोपित हो जाते हैं और ब्रह्मा कोपने लगते हैं,
ऐसी गङ्गाजी अपनी लहरोंसे सारे पापोंका नाश कर डालें
॥ ११ ॥ हे गोमती गङ्गा ! ब्रह्माके कमण्डलुमें भरे आपके जिस
जलने विष्णुके चरणोंको पवित्र कर दिया, शिवजीकी जटाघोंमें
भरे हुए जिस जलने विष्णुसे प्रसन्न शिवजीको 'मृत्युञ्जय' (मृत्युको
जीतनेवाला) बना दिया और शिवजीके जटामुकुट-रूपी मठमें
रहकर चन्द्रमाने जिससे मधुरता (मिठास) सीखी वह आपका
जल हमें आनन्द दे ॥ १२ ॥ शिवजीकी जटाएँ जिस जलमें
कैली लेवा-सी दिखाई देती हैं, चन्द्रमा जिस जलकी उछाल-
रूपा हैसोमें सुन्दर मछलीके समान जान पड़ता है और आँसू
मँदे हुए सौंपके सिरपर रक्तांश पृथ्वी जिस जलमें सुन्दर कमलके
समान दिखाई पड़ती है, ऐसी शिवजीके साथ रहनेवाली
गङ्गाजी आप लोगोंको यद्दे-वदे-वोंमें वर दे ॥ १३ ॥ जिनके
स्वच्छन्द उछलते हुए, स्वच्छ और पासकी गुफाओंमें कैलकर
क्षितराएँ हुए जलकी कान्तिसे अज्ञान नष्ट हो जाता है, जिनके

हारिसङ्का महति तत्र विधौ भङ्गलान्धातनोतु ॥ १३ ॥
स्वच्छन्दोच्छलदच्छुकच्छकुहरच्छासेतराम्बुच्छदा भू-
च्छन्मोहमहर्षिहर्षविहितस्नानाहिकाहाय वः । भिन्धा-
दुद्यदुदारददुर्दरीदीर्घा वरिद्रद्रुमद्रोहोद्रेकमहोर्मिमेहु-
रमदा मन्दाकिनी मन्दताम् ॥ १४ ॥

जटाजूटः—गङ्गाधारिभिरुक्षिताः कलिफणैरुपल-
वास्तच्छिखारत्नैः कोरकिताः सितांशुकलया स्मेरै-
कपुष्पश्रियः । आनन्दाधुपरिमुतास्तिहुतमुग्धमैमि-
लहोहदा नालपं कल्पलताः फलं ददतु योऽभीष्टं
जटा धूर्जटेः ॥ १ ॥ चूडापीडकपालसङ्कुलगल-
न्मन्दाकिनीवारयो विद्युन्मायललाटलोचनपुटज्योति-
रिमिश्रित्विषः । पान्तु त्वामकठोरकेतकशिखास-
म्बिन्धमुग्धेन्दवो भूतेशस्य भुजङ्गपल्लयलयलङ्ग-
ज्जटाजटाः ॥ २ ॥ जयति हरजटाभरो यदन्त-
र्वहति निराकुलमेव देवसिन्धुः । लहरिपु तरलेन्दुराज-
हंसा विततविरिञ्चिकपालफेनमाला ॥ ३ ॥ स धूर्जटि-

जलमें महर्षि लोग अत्यन्त प्रसन्न होकर अपना स्नान प्रापि
नित्यकर्म करते हैं, जिसमें मँदकोंकी बहुत बड़ी-बड़ी गड़हियाँ
बनी हैं और जिसकी बड़ी-बड़ी लहरोंके तीव्र प्रवाहसे विराट
हूँ भी उलटकर बह जाते हैं, वे गङ्गाजी तत्काल आपका
अभाष्य नष्ट करें ॥ १४ ॥

जटाजूटः कल्पवृक्षकी लताघोंके समान जान पड़नेवाली
वह शिवजीकी जटा आपकी सब हृच्छाएँ पूर्ण करे जिसे गङ्गाजल
ही मानो सींचता है, सौंपोंके फण ही जिसके पते हैं, उन
फणोंमें चमकनेवाले मणि ही जिसकी कलियाँ हैं, चन्द्रमाकी कला
ही जिसका एक खिला हुआ फूल है और आनन्दके प्रोत्सुचोंसे
भर जानेपर अग्निसे भरे नेत्रसे उठनेवाला धुआँ ही जिसपर
मँदराते हुए भीरोंके समान है ॥ १ ॥ शङ्करजीके माथेपर बैधी
हुई उनकी वे जटाएँ आपकी रक्षा करें जिनमेंसे गङ्गाजल बह
रहा है, जो विजलीके समान चमकते हुए अस्तक और
नेत्रोंकी चमकके समान चमकती हैं और जो कोमल
केतकीके फूलकी कलीके समान जान पड़नेवाले सुन्दर
चन्द्रमासे सुशोभित हो रही हैं ॥ २ ॥ शिवजीके जटारूपी वस्त्र
पर्वतकी जय हो जिसमें स्वच्छन्द रूपसे लहराती हुई गङ्गारूपी
समुद्रकी लहरोंके बीचमें देवा चन्द्रमा हंसके समान तथा ब्रह्माकी
सोपनियोंकी माता फेनके समान शोभित होती है ॥ ३ ॥
शङ्करजीका वह जटाजूट आपकी जीत करता रहे जिसमें मछली

जटाजूटो जायतां विजयाय वः । यज्ञैकपक्षितभ्रान्तिं
करोत्यद्यापि जाहुवी ॥ ४ ॥

शशिलेखा—जयति परिमुषितलक्ष्मा भयादनुपसर्प-
तेषु हरिणेन । इह केसरिकरमाङ्कुरकुटिला हरमालि
विभुलेखा ॥ १ ॥ दिव्याद्दर्जटजूटकोटिसरिति ज्योत्स्ना-
लयोद्भासिनी चान्द्री वः कलिका जलभ्रमिवशादाकृष्ट-
मया मुदम् । याञ्चञ्चकुरीध्रमेण मुकुलीकुर्वन्फणालीं
मुहुर्मुखलक्ष्मिर्जिघृक्षन्तिमामाकुञ्चनप्रोञ्जनैः ॥ २ ॥
ब्रह्मप्रतिष्ठाद्विसुतामुखेन्दुहिनीयखगडार्धमिवागतो यः ।
अवाप्तुकामः परिपूर्णभावं स पातु यः शम्भुजटार्ध-
चन्द्रः ॥ ३ ॥ पूर्णलखेन्दुहिगुणितमञ्जीरा प्रेमश्र-
ङ्खला जयति । हरशशिलेखा गौरीचरणकुलिमध्यगु-
ल्फेषु ॥ ४ ॥ लसल्लीलाचन्द्रस्वरणगतमालेः स्मर-
जितः किरटिः सुज्योत्स्नां नखमणिभिराभूतकलः ।
व्यलीके पावत्याः परिलघुलवैरजनश्रुयः पतङ्गिर्वा-

पस्य कमलिखितलक्ष्मा विजयते ॥ ५ ॥ श्रीकण्ठस्य
कपर्दवन्धनपरिश्रान्तोरगग्रामणीसन्दृष्टां मुकुटायनस-
कलिकां वन्दे कलामैन्दवीम् । या विम्बप्रतिपूरणाय
परितो निरपीड्य संदशिकायन्त्रेणैव ललाटलोचनशि-
खिज्जालाभिगद्यन्ते ॥ ६ ॥

लोचनम्—अन्तर्ताडनियमितमकल्लङ्घितग्रन्थान्धं
स्वान्ते शान्तिप्रणयिनि समुन्मीलदानन्दसान्द्रम् ।
प्रत्यङ्ग्योतिर्जयति यमिनः स्पष्टलालाटनेत्रव्याजय-
क्तौकतमिव जगद्व्यापि चन्द्रार्धमालेः ॥ १ ॥ एकं ध्यान-
निर्मलनाभ्युक्तितञ्जुद्धितीयं पुनः पार्यत्या यदना-
म्युजस्तनतटे शृङ्गारभागलसम् । अन्यद्व्यवृष्ट्या-
पमदनप्रोधानलोदीपितं शम्भाभिन्नरसं समाधिसमये
नेत्रप्रयं पातु वः ॥ २ ॥ जयति ललाटकटाक्षः शशिमालेः
पद्मलः प्रियाप्रणतः । धनुषि स्मरणं निहितः सफटकः
केतकेपुरिष ॥ ३ ॥ नीललोहितललाटलाभ्युनं लोचने

हुई गङ्गाकी उजली धाराको देखकर आज भी वह भ्रम हो
जाता है कि पूरी जटा एक गई है ॥ ४ ॥

शशिलेखा : मलिन कान्तिवाले श्रीर सिंहके नखोंके
समान टेढ़े रूपवाले उस चन्द्रमाकी जय हो जो भयके मारे न
भाग सकनेवाले हरिणके समान जान पड़ता है ॥ १ ॥
शिवजीकी जटाधोंकी छोरपर लगी हुई वह चन्द्रकला आपकी
आनन्द दे जिते गङ्गाकी लहरोंके बीचमें पड़कर हिलनेसे बचल
मछली समझकर सौंप धार-धार क्रममें पड़कर अपने फणोंको
सिकोड़ते-कैलाते हुए खँघते हैं ॥ २ ॥ शिवजीकी जटामें
लगा वह आधा चन्द्रमा आपकी रक्षा करे जो ऐसा जान
पड़ता है मानो शिवजीकी देहमें घेठी पार्वतीके मुखकमलका
दूसरा आधा भाग बनकर उसे पूर्ण बनानेकी इच्छासे आ गया
हो ॥ ३ ॥ शिवजीके सिरपर स्थित उस चन्द्रकलाकी जय हो
जो पर्वतीजीके पैर पड़ते समय ऐसी जान पड़ती है मानो
उनकी उँगलियों और शिवजीके मस्तकके बीचमें पड़ी हुई, बड़े
हुए नखरूपी पूर्ण चन्द्रमासे दुपुर्ण जान पड़नेवाली प्रेमकी साँकिल
हो ॥ ४ ॥ कामको जीतनेवाले शिवजीकी उस चन्द्रकलाकी
जय हो जो कटो हुई पार्वतीजीके पैर पड़ते समय उनके नखरूपी
मणियोंकी उजली किरणोंसे ओल-ओल है तथा जिसपर
पार्वतीजीके कानोंके काजलयुक्त श्रौंषू गिरनेसे ऐसा जान
पड़ता है मानो उसमें कमपूर्वक चिह्न बनाए जाते हों ॥ ५ ॥
शिवजीके मुकुटमें सजी कलाके समान जान पड़नेवाली उस

चन्द्रकलाको प्रशंसा करता हूँ जो शिवजीकी जटा बाँधनेमें थके
हुए माँोंके लिपट जानेसे ऐसी सुन्दर दिखाई पड़ती है मानो
शिवजीके नेत्रकी अमिरूपी संसारे दयाया जाकर गोल किया जा
रहा हो ॥ ६ ॥

लोचन : बड़े भारी योगी शङ्करजीके तीसरे नेत्रकी उस
नवीन ज्योतिकी जय हो जो ऐसी जान पड़ती है मानो उनकी
नाड़ियोंके भीतर दौधे पयसके द्वारा प्रहारग्रन्थका लौघ जानेवाली,
हृदयमें शान्ति पहुँचानेवाली, घने आनन्दसे भँड़े हुए नेत्रमें
रहनेवाली तथा नीचेकी ओर पड़नेवाली योग-शक्ति ही नेत्रके
बहाने प्रकट हो गई हो ॥ १ ॥ शङ्करजीके उन तीनों
नेत्रोंकी जय हो जिनमेंसे एक तो भगवान्का ध्यान करते हुए
मुँदा हुआ है, दूसरा गौरीके कमलके समान भूँद और स्तनोंको
देखकर मस्त हो रहा है और तीसरा समाधि लगानेके समय
धनुष खींचते हुए कामदेवपर बड़े हुए क्रोधरूपी अग्निके तेजसे
जलकर रसभङ्ग करता हुआ-सा जान पड़ता है ॥ २ ॥ चन्द्रमाको
सिरपर धारण किए हुए शङ्करजीके माथेके उस पलकवाले
नेत्रकी जय हो जो अपनी प्रिया पार्वतीके पैर पड़ते समय
ऐसा जान पड़ता था मानो कामदेवने अपने धनुषपर काटोंवाला
केतकीके फूलका बाण चढ़ा रखा हो ॥ ३ ॥ शिवजीके नीले
और लाल चिह्नवाले नेत्रमें स्थित उस किसी अग्निकी जय हो
जिसका प्रलयके लिये जलना ही अगली मृष्टिके लिये बह्मरूप
हो जाता है ॥ ४ ॥ जिस नेत्रके पलककी पाँतमें लगी भूरे

जयति कोऽपि पावकः । रत्नितस्य जगदन्तर्हेतवे यस्य
सञ्ज्वलनमाभ्यभूरभूत् ॥ ४ ॥ पद्मालीपिङ्गलक्षः कण
इव तडितां यस्य कृन्तनः समूहो यस्मिन्ग्रहाण्डमीष-
द्विघटितमुकुले कालयज्वा जुहाव । अर्चिर्निष्टसचू-
डाशशिगलितसुधाघोरक्लाङ्कारिकोणं तासां यं यन्पु-
रस्तेस्तद्वत्तु मदनस्रोपणं लोचनं वः ॥ ५ ॥ पाया-
न्कृतानङ्गपतङ्गदाहः खट्वाङ्गिनो नेत्रशिक्षिप्रदीपः ।
यस्यान्तिके शुभ्रदशानिवेशश्च यं किरीटन्दुकलाः ध-
यन्ते ॥ ६ ॥ सानन्दा गणनायके सपुलका गौरीमु-
खाम्भोरुहं सक्रोधा कुसुमायुधे सकरुणाः पादाम्भते
षष्टिणि । सस्मेरा गिरिजासखीषु सनयाः शैलाधिनाथे
यद्वन्भूर्मान्द्र प्रदिशन्तु शर्म विपुलं शम्भोः कटाक्ष-
च्छुटाः ॥ ७ ॥

कण्टः—कस्तूरीतिलकान्ति भालफलके देव्या मुखा-
म्भोरुहे रोलस्यन्ति तमालयालमुकुलोत्सन्ति मौलि
प्रति । याः कर्णे विकचोत्पलन्ति कुचयोरंसे च कालागु-

रङ्गवाली श्रीनिवां विजलांकी चिनगारीके समान दिखाई देती
है, जिस आधे सुले हुए नेत्रमें स्वयं भगवान् शङ्कर प्रलय-यज्ञ
करने समय इतने बड़े ब्रह्माण्डकी आहुति दे देते हैं, जिसके
तापसे पिघलकर शिवजीके माथेपर स्थित चन्द्रमासे अमृत
टपकनेमें उमके कोने छन-छना उठते हैं, वह कामदेवको जला
हालनेवाला शङ्करजीका भीसरा नेत्र सबकी रक्षा करे ॥ ५ ॥
कामदेवरूपी पतङ्गको जला डालनेवाला, वह शिवजीके तीसरे
नेत्रमें स्थित अग्निर्षापक रक्षा करे जिसके पास लगा हुआ
देवा चन्द्रमा उस दीपकमें लगनेवाली घर्तीके समान जान
पड़ता है ॥ ६ ॥ हे राजन् ! गणेशजीको देखकर आनन्दमें भर
जानेवाले, पार्वतीजीका मुखकमल देखकर पुलकित हो उठनेवाले,
कामदेवको देखकर क्रांति हो उठनेवाले, पर पढ़ने हुए इन्द्रको
देखकर करुणासे भर जानेवाले, गौरीकी सलियांको देखकर
मुस्करा उठनेवाले और हिमालयके सामने सँभले रहनेवाले
शङ्करजीके तिरछे नेत्रोंकी सुन्दरता अत्यधिक आनन्द बढ़ावे ॥ ७ ॥

कण्टः शङ्करजीके गलेका वह कान्ति आपका कल्याण
करे जो गौराजीके माथेपर कस्तूरीके तिलकके समान, उनके
मुख-कमलपर भौरांके समान, सिरपर तमालकी पिली हुई
छोटी-सी कलांके समान, कानोंपर मिलने हुए कमलके समान
तथा श्मनो और कर्णोंपर काले अंगरके समान रोशित होती
हैं ॥ १ ॥ त्रिशुरासुरको मारनेवाले शङ्करजीके गलेकी वह नाली

रुक्थासन्ति प्रथयन्तु तास्तव शिवं श्रीकण्ठकण्ठविषः
॥ १ ॥ कस्तूरयान्ति भाले तदनु नयनयोः कज्जलीयन्ति
कर्णप्रान्ते नीलोत्पलीयन्त्युरसि मरकतालङ्कृतीयन्ति
देव्या । रोमालीयन्ति नाभेरुपरि हरिमणी मेखलीयन्ति
मध्ये कल्याणं कुर्युरेते त्रिजगति पुरजितकण्ठभासां
विलासाः ॥ २ ॥ पातु वो नीलकण्ठस्य कण्ठः श्यामाम्बु-
दोपमः । गौरीभुजलता यत्र विद्युल्लेखेय राजते ॥ ३ ॥
पातु वः शितिकण्ठस्य तमालश्यामलो गलः । संस-
कपार्वतीचाहुसुवर्णनिकपोपलः ॥ ४ ॥

मुण्डमाला—पित्रोः पादाञ्जसेवागतगिरितनया-
पुत्रपत्रातिभीतसुभ्यङ्गपाभुजङ्गवसनगुहमकरीतनेत्रा-
मितापात् । स्थिचम्मांलीन्दुखण्डघृतयहुलसुधासेकस-
जातजीवा पूर्वाधीतं पठन्ती ह्यधतु विधिशिरोमालिका
शूलिनो वः ॥ १ ॥ भूत्यै धौऽस्तु कपालदाम जगतां पत्यु-
र्यदीयां लिपिं क्वापि-क्वापि गणाः पठन्ति पद्मो ना-
तिप्रसिद्धाक्षराम् । विभ्रं कल्पति वक्ष्यति सिसिमपा-

कमक कस्याण करे जो गिरिजाके माथेपर कस्तूरीके समान,
नेत्रोंमें काजलके समान, कानोंमें लिले नीले कमलके समान,
जातीमें मरकत मणिके गहनेके समान, नाभिपर रोपूँकी पौतोंके
समान और कमरमें हरे मणियोंकी करबनांके समान रोशित
होती है ॥ २ ॥ काले बादलके समान सुन्दर दिखाई पड़नेवाला
शङ्करजीका वह नीला कण्ठ सबकी रक्षा करे जिसमें पक्षी
पार्वतीजीकी गोरी बॉह विजलांके समान सुन्दर जान पड़ती
है ॥ ३ ॥ शङ्करजीका वह तमालके समान सौंवाला गला आपकी
रक्षा करे जो पार्वतीकी सोनेके समान बॉहोंकी परल करनेवाली
कसौटीके समान जान पड़ता है ॥ ४ ॥

मुण्डमाला : हिमालयकी पुष्पी पार्वतीजी जब अपने
माता-पिताकी सेवा करने चली गईं, उस समय उनके पुत्र
स्वामिकास्तिकेयके वाहन मोरसे ढरकर अत्यन्त घबड़ाते हुए,
भूषण बने हुए साँपकी फुफकारसे शङ्करजीके तीसरे आँखकी धधकी
झूँ चमिके तापसे तपकर पसीजते हुए चन्द्रमासे टपकती हुई
अश्रुतकी धारा पी-पाकर फिर जी उठनेवाली, पहले पढ़े हुए वेदका
पाठ दुहरानेवाली शङ्करजीके गलेमें पक्षी झूँ ब्रह्माके सिरोंकी
माला सबकी रक्षा करे ॥ १ ॥ संसारके स्वामी शिवजीकी वह
मुण्डमाला आपको प्रेरक दे जिसमें ब्रह्मा-द्वारा लिखे हुए
असष्ट पदोंको उनके गण कहीं-कहीं इस प्रकार पढ़ पाते थे—
त्रिष्वकी रचना करेगा—बोलेगा—पृथ्वीको—जलका—

मीशिष्यते शिष्यते भागे राशिषु रंस्यतेऽस्यति जग-
न्निर्वस्यति चामिति ॥ २ ॥

पञ्चमः—कण इव पुरां घट्ठेभस्मावधूतनसङ्गतो
जयति बहुलालोकस्फारावधूतनिशोदयः । स्मरहरजटा-
यन्धप्रन्धिर्भुजकफणामणिलिखितशतदिनीपूरानीतः स्फु-
रन्निव तारकः ॥ १ ॥

ताण्डवम्—अस्थीन्यस्थीन्यजिनमजिनं भस्म भस्मे-
न्दुरिन्दुर्गङ्गा गङ्गोरग उरग इत्युल्लसत्सम्भ्रमाणम् ।
भूवावेपोपकरणकरणप्रापणव्यापृतानां नृसारम्भमण-
यिनि शिषे पान्तु वाचो गणानाम् ॥ १ ॥ आर्द्रां कण्ठे
मुखाञ्जजमुपनयत्यम्बिका जानुलम्बां स्थाने कृत्येन्दु-
लेखां निविडयति जटाः पन्नगेन्द्रेण नन्दी । कालः कृत्ति
निषप्रान्तुपनयति कोर कालरात्रिः कपालं शम्भोर्नृता-
वतारे परिपर्वति पृथग्व्यापृता यः पुनातु ॥ २ ॥ आसी-
नैः स्वं विमानं कृत्तिपरिपुत्तिभिः सुन्दरीसङ्गतैस्तै र्वैः

पदावेगा—सिखावेगा—राशिषोमें भागोंसे रमण करेगा—जा
हालेगा—गूथी और आकाशसे मुक्त करेगा आदि ॥ २ ॥

साँप : कामदेवको मर्द करनेवाले शिवजीकी जटामें गई
लगाकर बँधे हुए साँपके कणमें चमकते हुए उस मणिकी जय हों
जो ऐसा जान पड़ता है मानों पुर राचसकी जलाकर उसकी राख
उड़ते समय कोई धनिका कण चिपक गया हो अथवा अत्यन्त
तेजस्वी तेजसे सिरस्कृत होकर रात्रिमें कोई छोटा तेज उद्भू
हुआ हो अथवा देवमयी गङ्गाकी वादमें बहकर कोई चमकता
तारा आ लगा हो ॥

ताण्डवः : ताण्डव नृत्यके लिये तैयार होते हुए शिवजीको
सज्जाले समय उनके शङ्करकी सामग्री जुटानेमें व्यस्त गथाँकी
ये माणियाँ रचा करें कि—‘अरे ! इड्डियाँ, हाथीकी खाल,
भस्म, चन्द्रमा, गङ्गा, साँप आदि (कहाँ हैं, शीघ्र लाओ)’ ॥ १ ॥
शिवजीके ताण्डव नृत्य करनेकी तैयार होते समय, उन्हें सज्जानेमें
लगे हुए उनके ये सब सभासद् आपकी पवित्र करें जिनमेंसे
पार्वतीजी उनके गलेमें घुटनोंतक लटकनेवाली मुण्डोंकी गीली
माला पहनाने लगीं, नन्दी जटाएँ सँभासकर उनमें साँप और
चन्द्रकला सजाने लगे, काल हाथीकी खाल बाँधने लगे और
कालरात्रि उनके हाथमें खोपड़ी देने लगीं ॥ २ ॥ साधुओंसे
धिरकर, अपनी-अपनी छियाँके साथ विमानोंपर बैठे देवता,
सिद्ध और यक्ष आदि जिसे बड़े भावसे एकटक देखते थे
और बीच-बीचमें गद्गद्गते हुए नगादोंके समान जा

सिद्धैश्च यत्नैर्निमिषनयनैर्दृश्यमानः सत्पणम् । मध्ये
मध्ये पयोर्देर्भुजसदृशनां बांधवार्द्रः सुमन्दमम्भः
सम्पात्य पुष्पैरिव ननु महितम्लान् उचः श्रेयमे स्तान्
॥ ३ ॥ इन्दोः किं द्रुहिणस्य वा सुरपतेः किं वा कृता-
न्तस्य वा किं भूतेश दिशाब्धिभूपणगणेष्वप्युप्य देयं
मया । इत्थमण्डनमन्दिरोद्गच्छरव्याहारनां भीकरान्
भीता यस्य सुराः प्रसाधनविधां पायात्सवः शङ्करः ॥ ४ ॥
उद्धेकतालमेलद्भुजधनपवनान्द्वन्द्वशैलाघपातस्फारादञ्च-
न्याधिप्रकाटितमुकुटम्वधुनीसङ्गमानि । जीयासुम्ना-
सङ्घानि स्फुटविकटजटाकोटिसङ्घभूरिभ्रश्यन्नस्रच-
क्रव्यवसिनसुमनां कृष्टिपातानि शम्भोः ॥ ५ ॥ चञ्चद्देव-
न्दुकुटपश्चलितदशदिशाकीर्णकोटीरकोट्यः सङ्गायन्त्य-
र्धधृत्तः सरभस्यिनमस्सिद्धगन्धर्वधात्यः । विधिलिप्य-
चर्मपट्टो विगलितशनपत्रासनोद्यत्कोट्यस्त्यक्तला-
सतटपस्त्रिपुरविजयिनः पान्तु मामारभत्यः ॥ ६ ॥ देवा

पड़नेवाले बादल जिसपर हम प्रकार धीरे-धीरे पानीकी बूँदे
बरसाने थे मानों फूल बरसा रहे हों, वह शङ्करजीका ताण्डव
सबका कल्याण करे ॥ ३ ॥ वे शिवजी आपकी रचा करें जिनके
नृत्य करनेकी तैयार होते समय जब उन्हें सज्जानेके लिये उनके
लेपक शङ्कर-चरके भीतरसे पूछने लगे कि ‘हे प्रभो ! आशा
हैजिए—चन्द्रमा, गङ्गा, इन्द्र, यमराज आदिमेंसे जिसकी
हुई खींचकर ले आये ?’ तब सब देखता उर गए थे ॥ ४ ॥
शिवजीके उस ताण्डवकी जय हों जिसमें ऊपर उठकर नाचते
हुए शिवजीके हाथरुपा बूझोंकी भोंकके पवनसे उड़े हुए पहाड़ोंके
गिरनेसे फटकर उड़ते हुए समुद्रसे उनके सिरपर मुकुटके समान
धारण की हुई आकाश गङ्गाका सङ्गम-सा होता जान पड़ता
है और फँकी हुई जटाओंकी तीव्र फटकारसे तारे आकाशसे
गिरते हुए ऐसे सुन्दर जान पड़ते हैं मानों फूल बरस रहे हों
॥ ५ ॥ त्रिपुरासुरकी जीतनेवाले भगवान् शङ्करके ताण्डव
नृत्यकी वह प्रचण्डता मेरी रचा करे जो इन्द्रभवनकी भी
हिसाकर ऋकभोर डालती है, जिसके कारण जटाकी जोरें
लहरानी हुईं दसों दिशाओंमें फैल जाती हैं, जिसके साथ
देवियों स्वर भरकर तानें ले रही हैं, जिसकी भोंकमें सिद्ध-
गन्धर्वोंकी नगरियाँ वेगसे उड़ी पड़ रही हैं, जिसके कारण
शिवजीके व्याघ्र-चर्मके वस्त्र कीले पड़ गए हैं, जिसके वेगसे
अपना कमलासन हिलता हुआ देखकर ब्रह्मा भी आश्चर्यसे
सिर ऊपर उठा लेते हैं और जिसकी चपेटसे कैलास पर्वतकी

दिक्पतयः प्रयात परतः खं मुच्यताम्भोमुचः पातालं
ब्रज मेदिनि प्रविशत लोणीतलं भूधराः । ब्रह्मन्मय
दूरमात्रमुचनं नाधस्य नो नृत्यतः शम्भोः सङ्कटमेतदि-
त्यवतु वः प्रोत्सारणा नन्दितः ॥ ७ ॥ देवस्वैर्गुण्यभेदा-
त्सृजति चित्तनुते संहर्त्येष लोकानस्यैव व्यापिनीभिस्त-
नुभिः पि जगव्याप्तमष्टाभिरेव । वन्यो नास्येति पश्य-
न्निव नरसुगतः पातु पुष्पाञ्जलिर्वः शम्भोर्नृत्यावतारे
घलयमणिगणाङ्गुलीनिविप्रकीर्णः ॥ ८ ॥ दोर्दण्डद्वयलील-
या चर्त्तागिरिधाम्यत्तदुच्चैरथवाध्नोर्द्वीजजगद्भ्रमन्पद्म-
शालोलन्कणाग्रयोरगम् । भृङ्गापिङ्गजटाटवीपरिसरोद्-
ग्रोर्मिमालाघलचन्द्रश्च महेश्वरस्य भवतां निःश्रेयसे
ताण्डवम् ॥ ९ ॥ पादस्याविर्भवन्तीमयननिमगने रक्ततः
स्वैरुपानैः सङ्क्रान्तेनैव दोष्णां मुहुरभिनयतः सर्वलो-
कानिगानाम् । दृष्टि लघ्वेषु नोप्राप्त्वास्त्वलनकणमुखं वभ्रतो

दाहभीतेरित्याधारानुरोधान्निपुरविजयितः पातु वो
दुःखनृत्तम् ॥ १० ॥ भद्रञ्चन्द्रकले शिवं सुरनदि श्रेयः
कपालावले कल्याणं भुजगेन्द्रवालि कुशलं विश्वगजटास-
न्तते । इत्याहुर्मिलिताः परस्परममू यस्मिन्प्रशान्तिं
गते कल्पान्तारभटोनटस्य भवतात्तद्वः श्रियै ताण्ड-
वम् ॥ ११ ॥ मूर्धन्याधूयमानध्वनदमरधुमीलोल-
कल्लोलजालोद्भूताम्भःक्षोददम्भाम्भसभमभिनमः क्षिप्त-
नक्षत्रलक्षम् । ऊर्ध्वन्यस्ताङ्गुलिदण्डभ्रमिभवरभसो-
द्यम्भस्यन्मवेशभ्रान्तप्रह्लाण्डखण्डं प्रधितरतु शिवं शा-
म्भवं ताण्डवं वः ॥ १२ ॥ यस्यां मौलिमिलत्सुधांशुकलया
सम्पूर्णविम्बायितं भालावस्थितलोचनेन सहस्रैवालात-
चक्रायितम् । आवर्त्तायितमाकपर्दममरकोतस्थती
धारया पातु श्रीणि जगन्ति खण्डपरशोः सा ताण्ड-
वाङ्गभिः ॥ १३ ॥ शर्वाणीपाणितालैश्चललयभ्रण-

चक्षुर्भी दृष्ट-दृष्टकर गिरने लगती है ॥ १ ॥ 'हे देवताओ
श्रीर दिक्पालो ! तुम लोता कहीं और सरक जाओ; पादलो !
तुम आकाशसे हट जाओ, पर्वतो ! तुम पृथ्वीमें घँस जाओ,
पृथ्वी ! तुम पातालमें जा क्षिपो और हे मल्ला ! तुम भी अपने
लोकको कहीं दूर से जाओ। क्योंकि यद्यपि हमारे स्वामी शङ्करजी
जाचना चाहते हैं।' इस प्रकार शङ्करजीके ताण्डव नृत्य करते
समय आनेवाली बाधाओंको दूर करनेके लिये सबको दी हुई
मन्त्रीकी चेतावनी आप लोगोंका कल्याण करे ॥ २ ॥ शङ्करजीके
ताण्डव नृत्य करते समय उनके हाथोंके कलन धने हुए सौपांध्ये
फुफकारसे उड़कर गिरा। हुई यह कलकों अञ्जलि आपकी रक्षा
करे जो यह स्नेहकर शङ्करजीके चरणोंपर गिर जाती है कि
'यहाँ शङ्कर भगवान् सन्, रज और तम इन गुणोंसे संसारकी
रचना करते हैं, यहाँ प्रलय-समयमें उसका नाश करते हैं और
इन्हींकी आठ मूर्तियोंमें संसार भरा हुआ है अतः इनसे बड़ा
कोई नहीं जान पड़ता है' ॥ ३ ॥ हिलते हुए दोनों
हाथोंसे पर्वतोंको ढगमगा देनेवाला, यद्दे-यद्दे पर्वतोंके
गिरनेके डरसे डरे हुए संसारको घुमानेवाला, शिवजीके पैरोंके
भारसे शेषनागके कण्ठके आगके भागको भुका देनेवाला और
भैंरोंके समान सोंबले रहकी जटाओंमें लहराती हुई गङ्गाकी
बढ़ी-बढ़ी लहरोंसे चन्द्रमाको खञ्जल कर देनेवाला शङ्करजीका
ताण्डव आपका कल्याण करे ॥ ४ ॥ पृथ्वीके प्राथना करनेपर
शङ्करजी अपने जिस ताण्डवमें पृथ्वीको घँस जानेसे बचानेके
लिये इच्छानुसार अपने पैर नहीं चला पाते, सब लोकोंसे परे

कैला जानेवाली भुजाओंको भली प्रकार कैला नहीं पाते और
सबको जलनेसे बचानेके लिये अपनी तीसरी चोंलकी टिकी
लक्ष्मणपर भली मौति स्थिर नहीं कर पाते, इस प्रकार त्रिपुर राजसको
मारनेवाले शङ्करजीका कटपृष्ठ ताण्डव आपकी रक्षा करे ॥ ५ ॥
प्रलय-कालमें धारभरी नृत्य करनेवाले शिवजीका वह ताण्डव
आपको देखिये दे जिसके शान्त होनेके पश्चात् आपसमें मिलकर
सबने एक दूसरेसे इस प्रकार कुशलता पूछी कि 'हे चन्द्रकले !
कल्याण तो है ? कहीं गङ्गा ! अस्थी तो हैं ! खोपड़ियोंकी माला !
सुरक्षित तो हैं ? क्यों सर्पराज ! क्यों जटाओ ! क्या स्थिति
है ? आदि' ॥ ६ ॥ शिवजीका वह ताण्डव आपकी आनन्द
देता रहे जिसमें सिरपर हिलकर शब्द करती हुई गङ्गाकी
खञ्जल लहरोंके वेगसे उड़कर कैली हुई पानीकी धूँरे आकाशमें
कैले तारोंके समान जान पड़ती हैं और ऊपर उठकर धूमते
हुए पैरोंके वेगसे उत्पन्न तीव्र वायुके कारण जिसमें सारा
प्रह्लाण्ड धूमता-सा जान पड़ता है ॥ ७ ॥ ताण्डव नृत्य करते
समय शिवजीके अङ्गोंका वह धूमता तीनों लोकोंकी रक्षा करे
जिसमें धूमते हुए माथेपर स्थित चन्द्रमाकी कक्षासे सारा
संसार चन्द्रमण्डल-सा जान पड़ता है, माथेके तीसरे नेत्रके
चमकनेसे सारा संसार चारों ओरसे आधा जला-सा जान पड़ता
है तथा जटानटमें सजी गङ्गाकी धारासे सारा संसार ऐसा जान
पड़ता है मानो वह गङ्गासे घिरा हो ॥ ८ ॥ शिवजीका
वह ताण्डव आपको प्रसन्नता दे जिसमें अचानक गणेशजीके
गरजनेसे शिवजीमें उत्साह आ गया था, जिसमें पार्वतीजीके

त्कारिभिः श्लाघ्यमानं स्थाने सम्भाव्यमानं पुलकितच-
पुपा शम्भुना प्रेक्षकेण । त्वेति च्छालिकेलाकलकल-
कलितं क्रोञ्चमिद्विह्विता हेरम्याकाण्डचुंहातरलितमन-
सस्ताण्डवं त्वां धिनोतु ॥ १४ ॥ सन्ध्याताण्डवडम्बर-
व्यसनिनो भर्गस्य चण्डभ्रमिध्यानृत्यद्भुजदण्डमण्डल-
भुवो भ्रमभ्रानिलाः पान्तु यः । येषामुच्छलतां ज्वेन
भ्रमिति द्यूहेषु भूर्मीभृतामुद्गीनेषु विडांजसा पुनरसां
धम्भोलिरालोकितः ॥ १५ ॥ संरम्भादविभाचितात्रिभु-
वनायासस्य कामद्विपो नृसारम्भायिजृम्भितैरवयवैर्ध-
ष्टाण्डमुन्निन्दतः । निर्यन्मालि विनिर्गताग्रचरणं प्रोञ्जा-
ति दोःपल्लवं पायाहो यद्विरम्भसः प्रविचलत्कूर्माय-
माणं वपुः ॥ १६ ॥

गणेशः—अगजाननपदार्क गजाननमहनिशम् । अ-
मेकदं तं भक्तानामेकदन्तमुपास्महे ॥ १ ॥ अन्तरायसिमि-

कहूँकी भक्तकार मिली तालियाँ बज रही थीं, जिसमें स्वामी-
कातिकेयका बाहन मोर अपनी विचित्र पैरु फैलाकर मनोहर
रुक् सुनाने लगा था और दर्शक रूपमें पुलकित होते हुए
सिखजाने भी जिसकी प्रशंसा की थी ॥ १४ ॥ सन्ध्या समय
ताण्डव सूर्य करनेके प्रेमी शङ्करजी जब अत्यन्त बेगसे घूमकर
गाछने लगे तब उनके हाथोंके सञ्चालनसे उत्पन्न हुई वह
छाँधी आपकी रक्षा करे जिसके बेगसे पर्वतोंको उड़ते हुए
देखकर इन्द्रको फिर अपना वज्र देखना पड़ा ॥ १५ ॥ तावटव
गृथ करनेसे पहले गैंगडाई-जैभाई लेते हुए अपने छात्रोंसे
प्रह्लादको फोड़े डालते हुए तथा प्रथम उत्साहके कारण तीर्थों
छोड़के शोभका ध्यान न रखनेवाले कामके शत्रु शिवजीका
जलके बाहर ही कछुपूके आकारवाला वह शरीर आपकी रक्षा
करे जिसमें सिर, पैर और हाथ धीरे-धीरे कमरा उठकर चञ्चल हो
रहे हैं ॥ १६ ॥

गणेश : हाथीके मुँहवाले तथा एक दाँतवाले उन
गणेशजीकी हम उपासना करते हैं जो हिमालयकी पुत्री
पार्वतीजीके मुखकमलको खिला देनेके लिये सूर्य हैं और
जो दिन-रात भक्तोंकी बहुत-सी इच्छाएँ पूर्ण करते रहते
हैं ॥ १ ॥ जो विघ्नरूपी शैवेरा नष्ट करनेवाले हैं, जो बिलकुल
सीधे और पवित्र हैं, जिनके पास इतना पेरवर्य है कि समझ
नहीं आ सकता, जिनका पूरा शरीर मनुष्यका और केवल
ऊँर ही हाथीका है, ऐसे नदी तोंदवाले तेजस्वी देवको हम
प्रणाम करते हैं ॥ २ ॥ उन गणेशजीको नमस्कार है जो अपने

रोपशान्तये शान्तपावनमचिन्त्यवैभवम् । तन्नरं यपुपि
कुञ्जरं मुने मन्महे किमपि तुन्दितं ममः ॥ २ ॥ अमीश्वर-
नार्थसिद्धयर्थं पूजितां यः सुरासुरैः । सर्वधिप्रद्वरन्तस्मै
शलाधिपतये नमः ॥ ३ ॥ अचिरलविगतान्मदत्तलकपोल-
पालीनिनीनमधुपकुलः । उक्लृप्तनवशमध्रं गिग्वि द्विप-
मुखो जयति ॥ ४ ॥ अचिरलमदधाराधीनकुम्भः शरगयः
फलधरवृत्तगात्रः सिद्धनाध्यादिवन्द्यः प्रिभुवनजनसि-
धध्वान्तविध्वंसदत्तो वितरतु गजयक्त्रः सन्ततं मङ्गलं
वः ॥ ५ ॥ अशेषधिप्रप्रतिषेधदक्षमन्त्रात्तनानामिव दिङ्मा-
लेषु । वित्तेपलीलाकर्शकगणां करान्तु वः प्रीतिभिभा-
नस्य ॥ ६ ॥ आनन्दमात्रमकरन्दमननगन्धं योगीन्द्रसु-
स्थिरमिलिन्दमपास्तबन्धम् । वेशान्तसूर्यकिरणैकचिका-
सशीलं हेरम्यपादशरदभ्युजमाननोऽस्मि ॥ ७ ॥ आलम्ब्य
जगदालम्ब्य हेरम्यचरणाम्बुजे । शुष्यन्ति यद्भजःस्पर्शा-

गणोंके सुनिया और सब विघ्नोंको नारा करनेवाले हैं और
अपने मनोरथोंको पूरा करनेके लिये सब देवताओंने मिलकर
जिनकी पूजा की थी ॥ २ ॥ उन गणेशजीकी जब हो जिनका
मुँह हाथीका है और जिनके गण्डमधलसे लगातार धार बाँधकर
बहना हुई मदजलकी लीकमें पड़ी भीतोंकी कतारें ऐसी जान
पड़ती हैं मानो उन्हें नई दाढ़ी-मुँह निकल रही हो ॥ ४ ॥
लगातार बहनेवाली मदकी धारासे जिनका सिर सदा घुंटा
रहता है, बड़े भारी सौंघ जिनके शरीरपर पड़े हैं, सिद्ध और
देवता जिनके प्रागे सदा सिर नवाते रहते हैं, जो तीनों लोकोंमें
रहनेवालोंके सब विघ्नोंका नारा करनेमें बड़े शत्रु हैं, ऐसे सयकों
शरद देनेवाले हाथोंके मुँहवाले गणेशजी आपको सदा आनन्द
दाँटते रहें ॥ ५ ॥ जब गणेशजी अपनी सूँघ चारों ओर
उछालते तथा सौंघ छोड़ते चलते हैं और उससे कुहारें उड़ती
हैं तो ऐसा जान पड़ता है मानो सब विघ्नोंको नष्ट करनेमें
शत्रु गणेशजी उन विघ्नोंको नारा करनेके लिये चुपचाप मन्त्र
पढ़-पढ़कर अपने हाथोंसे अस्त्र फेंक रहे हों । हाथीके मुँहवाले
गणेशजीकी यह लीला आप सबको सुख पहुँचावे ॥ ६ ॥
शरद भ्रतुमें खिले हुए कमलके समान गणेशजीके उन
चरणोंको प्रणाम करता हूँ जिनमेंका आनन्द ही मानो पराग है,
जिनकी कीर्तिरूपी सुगन्ध बहुत दूरतक फैल रही है, जिनमें
मन लगाए योगी लोग ही मानो भीरे हैं, जो किसी प्रकारके
बन्धनमें नहीं हैं इसलिये खिले हुए हैं तथा जो केवल
वेदान्तरूपी सूर्यकी कयाचौरूपी किरणोंसे ही खिलते हैं अर्थात्

न्तयः प्रन्यूहवार्धयः ॥ ८ ॥ उच्चैर्ग्रहाण्डस्त्रण्डद्वितय-
सहस्रं कुम्भयुग्मं दधानः मेघनागारिपन्नप्रतिभटविक-
टश्रोत्रनालाभिरामः । देवः शम्भोरपन्यं भुजगपतितनु-
रुपधिर्वधिष्णुहस्तल्लोलोपयाश्चर्यमूर्तिः स जयति जग-
तामीश्वरः कुङ्गराम्यः ॥ ९ ॥ उच्चैरुत्तालगण्डस्थलवहु-
लगलहानपानप्रमत्तस्फीमालिनातर्गीतिश्रुतिविधूतिक-
ल्लोन्मीलिनार्धाधिपमहा । भक्तप्रन्यूहपृथ्वीरुहनिवहसमु-
न्मूलनोच्चैरुदञ्चञ्चुण्डादण्डाग्र उग्रार्भक इभवदनो-
वः स पाशादपायान् ॥ १० ॥ एकदन्तद्युतिसितः शम्भोः
सूनुः श्रियेऽस्तु वः । विद्याकन्दवोद्भिन्नवाङ्मुरमनो-
हरः ॥ ११ ॥ एकरुद्र द्वैमासुर निस्त्रिगुण सतुर्भुजोऽपि
पञ्चकरः । जय परमुखयुत ससञ्चुदगन्धिमदाभृतनुतनय

॥ १२ ॥ कल्याणं वो विधत्तां करटमदधुनीलोलकल्लोल-
माला खेलद्रोलम्यकोलाहलमुखरितद्विचक्रवालान्तरा-
लम् । प्रन्नं वेतण्डरन्नं सततपरिचलन्कर्णतालमरोहद्वा-
ताङ्गराजिहीर्षान्द्रविश्रुतफणाट्टकभूषाभुजङ्गम् ॥ १३ ॥
कुम्भोपान्तात्पतद्भिर्मदजलनिवहैर्लब्धसेकातिरेका मो-
न्मीलद्वालचन्द्राकृतिदशनमिषाङ्कुरं धारयन्ती । आलो-
लत्कर्णतालप्रचलमधुकरा शीकरासारपुष्पा विस्तीर्णा
हस्तवल्ली दिशतु गणपतेः प्रार्थ्यमानं फलं वः ॥ १४ ॥
कोडं तातस्य गच्छन्विशद्विषाधिया शावकं शीतभानो-
राकर्णभालचैश्चानरनिशितशिखारोचिया तप्यमानः ।
गङ्गाम्भः पातुमिच्छुर्भुजगपतिफणाफूत्कृतैर्दूयमानो मा-
त्रा सम्बोध्य नीतां दुरितमपनयेद्दालवधौ गणेशः ॥ १५ ॥

प्रसन्न होते हैं ॥ ७ ॥ गणेशजीके उन दोनों चरणोंकी मैं
शरण लेता हूँ जिनके बलपर सारा संसार टिका हुआ है और
जिनकी धूलिके स्पर्श-मात्रसे पापोंके समुद्र अपने आप सूख
जाते हैं ॥ ८ ॥ शङ्करजीके पुत्र उन हाथोंके मुँहवाले और
तीनों लोंकोंमें आरचर्च-भरी मूर्तिवाले गणेश भगवान्की जय
हो जो संसारके स्वामी हैं, जिनका सिर ऐसा जान पड़ता है
मानों इस बड़े महाएडके दोनों गोलोंके समान ही एक दूसरा
छोटा महाएड इन्होंने ऊपर उठाकर अपनी दोनों कनपटीमें
आधा-आधा धर लिया है, जिनके कानोंका देखनेसे जान पड़ता
है मानों उड़ते हुए सोंपोंके बरी गरुड़के बड़े-बड़े पङ्खोंकी बराबरी
करनेके लिये ही वे हुनने बड़े-बड़े ताड़के पत्तों-जैसे सुन्दर कान
हिलाते रहते हैं और जिनकी मुँह देखनेसे ऐसा जान पड़ता है
मानों सोंपोंके स्वामी धामुनिके लम्बे शरीरसे होड़ करनेके
लिये ही इन्होंने अपनी मुँह इतनी लम्बी बड़ा की हो ॥ ९ ॥
वे अत्यन्त उग्र बालक गणेशजी आप लोंगोंकी रचा करें जो
अपने सिरसे लगातार बहनेवाले मदके पानेसे मस्त होकर
गानेवाले भीरोंके गीत सुनकर ध्यानन्दसे शींखें मुँदे हुए हैं और
जो भक्तोंके विग्ररूपी बुझोंको उसाड़ फेंकनेके लिये ही मानों
अपनी मुँह बराबर भटकेसे फटकारते रहते हैं ॥ १० ॥ वे
शङ्करजीके पुत्र गणेशजी आप लोंगोंकी शोभा बढ़ावें जो अपने
एक ही दाँतकी स्वच्छ चमकसे उजाले हैं और जिनका दाँत ऐसा
सुन्दर जान पड़ता है मानों विचाररूपी कन्दसे कामल चँकुआ
निकला आ रहा हो ॥ ११ ॥ हे गणेशजी ! आपके एक दाँत है,
पार्वती और गङ्गा दो आपकी माता हैं, आप तीनों गुणों (सत्त्व,
रज, तम) से बहुत दूर हैं, आप चार हाथवाले होकर भी मुँह

समेत पाँच हाथोंवाले जान पड़ते हैं, वः मुँहवाले स्वामिकान्तिकेय
आपको बहुत चाहते हैं, आप सदा सत्पर्या (कृतिवन) के
समान सुगन्धित मदजल बहाते रहते हैं तथा आठ मूर्तिवाले
शङ्करजीके पुत्र हैं । आपकी जय हो ॥ १२ ॥ वे अत्यन्त पुराने
तथा हाथियोंमें रत्न (गणेशजी) आपका कल्याण करें जिनके
सिरसे बहनेवाली मदकी नदीमें उठती हुई चञ्चल लहरोंमें
खेलते हुए भीरोंका हस्ता धरतीके काने-कानेमें भर गया है,
और जिनके हिलते हुए कानोंके पास पहुँची हुई सूँड़ ऐसी
सुन्दर जान पड़ती है मानों ताड़के हिलते हुए पत्तोंसे निकले
हुए वायुका कोई सोंप अपने फणके घागेका भाग थोड़ा
फँसाकर पी लेना चाहता हो ॥ १३ ॥ गणपतिकी वह बड़ी
भारी मुँहरूपी लला आपकी मनचाहा फल दे जो उनके गण्ड-
स्थलसे बहते हुए मद-तलकी थोड़ी धारसे सानो भसी प्रकार
सींची जा रही हो, जिसमेंसे द्वितीयाके चन्द्रमाके समान देवा
चमकीला एक दाँतरूपी चँकुआ निकल रहा हो, जिसमेंसे
ताड़पत्रके समान बड़े-बड़े कानोंके हिलनेसे भीरे उड़ रहे हों तथा
जिससे उड़ती हुई पानीकी फुहारे ही मानों पुष्प हों ॥ १४ ॥ अपने
पिता शङ्करजीके सिरपर सजे हुए चन्द्रमाकी कलाको कमलकी
मालका डोरा समझकर उसे सींच लानेके लिये शङ्करजीके गोदमें
चढ़कर उपरकी पड़े हुए, उनके माथेकी तीसरी शींखसे निकलती
हुई सपटकी भर लगनेपर उनकी अंटाओंमें बहनेवाली गङ्गाजीका
पानी पीनेको लपके हुए किन्तु शिवजीके गलेमें पड़े हुए सोंपके
कनकी फुफकारमे ढरे हुए वे बच्चे रूपवाले धवराए हुए
गणेशजी संसारके सब पाप मिटा देंगे जिन्हें माता पार्वतीजी
बहना-फुसलाकर साथ ले गईं ॥ १५ ॥ मनुष्यकी-सी देहवाले,

गजवदनं मनुजतनुं तुन्दिलमध्यं फलीभगभनलम् ।
भालेलोचनवन्तं विधुमौलिं नमि विघ्नेशम् ॥१६॥ गजा-
ननाय महसे प्रत्युहतिमिरच्छिदे । अपारकरुणापूर-
तरङ्गितरशे नमः ॥१७॥ गरुडस्थलीगलदमन्दमदप्रवाह-
माद्यद्विरेफमधुरस्वरदत्तकर्णः । हर्षादिवालसनिर्मालि-
तनेत्रयुग्मो विघ्नच्छिदे भयतु भूतपतिर्गणेशः ॥१८॥
चलत्कर्णानिलोद्धतसिन्दूरगरुणिताभ्यरः । जयन्त्यकाले-
ऽपि सृजन् सन्ध्यामिव गजाननः ॥१९॥ जेतुं यस्त्रिपुरं
हरेण हरिणा व्याजाहंसि यधता छपुं चारिभवोद्भवेन
भुयनं शेषेण धर्तुं धराम् । पार्यन्त्या महिषासुरप्रमथने
सिद्धाधिपैः सिद्धये ध्यातः पञ्चशरेण धिर्वाजितये पाया-
त्स नागाननः ॥ २० ॥ ते दूरोद्गण्डगुण्डाकुहरकवल-
तोक्षितसत्तापिधलधस्वेच्छासेफप्रमोदप्रभयनधरवद्रा-
धिताशागजेन्द्राः । देवस्याकाण्डकण्डकरकरदतटादो-

पसङ्कटभग्नक्षोलीभृत्तुङ्गशृङ्गाः पृग्मथनशिखौः पान्तु धौ
दुर्विलासाः ॥ २१ ॥ दधानं भृङ्गालीमनिशममले गण्ड-
युगले दधानं सर्वाधार्मिजचरणमेवासुर्कानिने दयाधारं
सारं निखिलनिगमानामनुदिनं गजाम्यं स्मेराम्यं तमिह
कलये चित्तनिलये ॥ २२ ॥ दन्ताग्रनिभिर्भाहिमाक्ष्यार्थी-
रन्ध्रोन्धिताहीन्द्रमणिप्रभांघे । नागाननः स्तम्भधिया
कपोलौ धर्षन्पितृभ्यां हसिनः पुनातु ॥ २३ ॥ दन्ताञ्चलन
धरणीनलमुशमस्य पानालकेलिपु धृतादिवराहलीलम् ।
उल्लाघनोत्कण्ठकणाधरगीयमानधीडावदानमिभराजमु-
खं नमामः ॥ २४ ॥ दानस्रोतस्सशब्देर्दशनरुचिचयैः कु-
म्भासिन्दूरपूरैकजुनेरैककालं प्रकटिगरजनीघस्रसन्ध्या-
विलासाः । आस्फालस्फारघटावहलकलकलदयाकुला-
हीन्द्रदाराः हेरम्यस्याङ्गहारप्रचलदधनयः पान्तु धौ नृ-
चर्लीलाः ॥ २५ ॥ दुरितसमूहबलाहकपटलीसंहरणपर्वमा-

हाथीके मुँहवाले, बड़ी लोंदवाले, माथेपर तीसरा नेत्र रखनेवाले,
चन्द्रमाका मुकुट पहननेवाले, सौँपाँका गहना शरीरपर
सजाए रखनेवाले तथा सब विशोंका नाश करनेवाले गणेशजीको
मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १६ ॥ हाथीके मुँहवाले, बड़े तेजस्वी,
विष्णुरूपी शंभेरा मिटा दानेवाले तथा अत्यन्त दयाकी बावले
वृत्तकली हुई आँखोंवाले गणेशजीको प्रणाम है ॥ १७ ॥
माथेसे लगातार बहता हुआ मद् पीकर मस्तीसे गुनगुनाते हुए
मीनोंकी मधुर गुंजार सुनकर आनन्दसे दोनों आँखें मूँदकर
बैठे हुए वे गणेशजी सब विशोंका नाश करें जो संसारके सब
जीवोंके स्वामी हैं ॥ १८ ॥ हाथीके मुँहवाले उन गणेशजीकी
जय हो जिनके हिलते हुए कानोंकी ब्यारसे माथेपर लगे
सिन्दूरके उद्गेसे आकाश लाल हो जाता है और बिना सौँके
ही सौँक-सी जान पड़ने लगती है ॥ १९ ॥ त्रिपुरासुरको मारते
समय शङ्करजीने, वृक्षसे यजिको बाँधते समय विष्णुने, संसारकी
रचना करते समय कमलसे जन्म लेनेवाले ब्रह्माने, अपने सिरपर
पृथ्वी धारण करते समय शेषनागने, महिषासुरको मारते
समय पार्वतीजीने, संसारको जीतनेके समय कामदेवने
और सिद्धि पानेके किये सिद्धोंने जिनका ध्यान किया था
वे हाथीके मुँहवाले गणेशजी सबकी रक्षा करें ॥ २० ॥
गणेशजीने अपनी अत्यन्त लम्बी सूँइके चिद्रसे सारों समुद्रोंका
जल पीकर उसे छोड़ा और उससे जो सुगन्ध उत्पन्न हुई
उसे सूँघकर अत्यन्त मस्त होकर जो उन्होंने गर्जनार्थ की उन्हें
सुनकर दिग्मात्र भाग लड़े हुए और बड़े-बड़े पर्वतोंके अपारोपर

जो उन्होंने भयङ्कर रूपसे छपना माथा मुलजामा प्रारम्भ
किया उससे पर्वतके ऊँचे-ऊँचे शिखर टूट-टूटकर गिरने लगे ।
यह सब त्रिपुरासुरके शत्रु शिवजीके पुत्र गणेशजीकी नटापटी
आपकी रक्षा करें ॥ २१ ॥ मैं अपने मनमें उन हाथीके
मुँहवाले प्रसन्न गणेशजीका ध्यान करता हूँ जिनकी दोनों
उजली कनपटियोंपर सदा भौंरोंके कुण्ड मैहराने रहते हैं,
जो अपने चरणोंकी सेवा करनेवाले भक्तोंकी सब इच्छाएँ
पूरी करते हैं और जो सदा उस दयाको धारण किए हुए हैं
जिसे वेदोंने जीवनका सार बताया है ॥ २२ ॥ अपने दाँतसे
हिमालयकी धरती फाड़ते समय जब पातालतक छेद हो गया
और उसमेंसे शेषनागके माथेकी मणिका चमकीला उजाळा
ऊपर निकल आया तब उसे खम्भा समझकर उससे छपना माथा
रगड़नेको बड़े हुए वे गणेशजी संसारको पवित्र करें जिन्हें इस
दङ्गसे बड़े देसकर शङ्कर और पार्वती हैंस पड़े थे ॥ २३ ॥ हाथीके
मुँहवाले तथा खेल-खेलमें ही पराक्रम दिखानेवाले उन
गणेशजीको हम प्रणाम करते हैं जिन्होंने पातालका खेल खेलते
हुए अपने दाँतकी नोकसे पृथ्वीको ऊपर उठाकर बराह चवतारकी
लीला कर दिखाई और जिन्हें देसकर शेषनागने भी प्रसन्नतासे
छपना फन ऊपर उठाकर स्तुति की थी ॥ २४ ॥ गणेशजीके
वे नाचनेके दङ्ग आपकी रक्षा करें जिनमें उनके अङ्ग हिलने-
मात्रसे पृथ्वी काँप उठती थी, जिनमें उनके गलेके हिलते हुए
बड़े भारी घण्टेका घोर शब्द सुनकर नागराजकी स्त्रियों व्याकुल
हो जाती थीं और जिनमें उनकी कनपटीसे बहते हुए मद्-जलकी

नम् । शिवयोरङ्गाभरणं वन्दे कश्चिद्भजनं तेजः ॥२६॥
 दोषान्तहन्तवण्डः सकलसुरगणाडम्बरेषु प्रचण्डः सि-
 न्दुराकीर्णगण्डः प्रकटितविलसच्चारुचान्द्रीयखण्डः ।
 गण्डस्थानस्तधण्डः स्मरहरतनयः कुरङ्गलीभूतशृण्डो
 विघ्नानां कालवण्डः स भवतु भवतां भूतये वक्रतुण्डः
 ॥२७॥ तमस्तस्मै गणेशाय यत्करुण्डः पुष्करायते । मदा-
 भोगधनध्वानो नीलकण्ठस्य नाण्डवे ॥ २८ ॥ पायाङ्ग-
 जेन्द्रवदनः स हमां त्रिलोकीं यस्योद्भूतेन गगने महता
 करेण । मूलायलगांसितदन्तयिसाङ्कुरेण नालायितं तपन-
 धिम्यसरोरुहस्य ॥२९॥ मङ्गलकलशद्वयमथकुम्भमदम्भेन
 भजत गजवदनम् । यद्दानतोयनरलैस्तिलतुलनालमिश्र
 रोलम्पैः ॥ ३० ॥ युगपत्स्वगण्डधुम्यन्तलोलौ पितरौ
 निरीक्ष्य हेरम्भः । तन्मुखमेतनकुतुकी स्थानमपनीय

परिहसन्पायान् ॥३१॥ यः सिन्धौ फेनराशिर्भुवि कुमुद-
 वनं व्योम्नि नक्षत्रलक्ष्मीरन्धौ मुक्तासमूहस्तरुषु सुमनसो
 मानसे हंससङ्घः । श्रीकण्ठे भूतिलेशः शिखरिषु मणयो
 दिक्षु नीहारपातः पाण्डुः शृण्डाग्रजन्मा जयति गरुपतेः
 शीकराणां विलासः ॥ ३२ ॥ रक्ताम्बराय फणिराजवि-
 भूषणाय प्रोद्धतभस्मकणकीर्णसुमोत्कराय । सक्रीयमान-
 यशसे मदपानलुब्धैर्भुङ्क्तेः सुरैरिव नमोऽस्तु गणाधिपाय
 ॥ ३३ ॥ लक्ष्मीं तनोतु सुतरामितरानपेक्षमङ्घ्रिद्वयं मि-
 गमशाखिशिखाप्रयातम् । हैरम्यमम्बुरुहदम्परखौर्यनिर्ग-
 विघ्नाद्रिभेदशतधारधुरन्धरं नः ॥३४॥ वन्दे तं गणना-
 यकं गुणनिधिं गण्यं विभूनां पुरो रम्यं भक्तजनस्य विघ्न-
 पटलं दुर्नीयं सम्पद्भिर्धौ । यस्याराधनमस्तरेण जगतां
 कश्चिन्न सिद्धिं गतो यश्चाराध्य चिराय चिन्तति परां

हाथों धाराओंकी काली चमक, दाँतकी उजली चमक और
 मल्लकके सिन्दूरकी लाल चमकसे एक साथ ही रात,
 दिन और साँझकी शोभा उत्पन्न हो जाती थी ॥ २६ ॥
 हाथोंके मुँहवाले तथा शङ्कर और पार्वतीकी गोदकी शोभा
 बढ़ानेवाले उन अत्यन्त तेजस्वी गणेशजीको मैं प्रणाम करना
 हूँ जो बादल-जैसे पाषाणोंका नाश करनेके लिये पवन है ॥ २७ ॥
 देखी सँझवाले वे गणेशजी आप लोगोंका कल्याण करें जिनकी
 सँझके पास उनका एक दाँत चमकता रहता है, जो सब
 देवताओंमें सबसे अत्यन्त बलशाली है, जिनके माथेपर सिन्दूर
 पुता हुआ है और सुन्दर देवा चन्द्रमा सजा हुआ है, जिनकी
 कनपटीपर बहुतसे भीरें जुटे हुए हैं, जिनकी सँझ गोल जलेबीके
 समान है, जो विघ्नोंका नाश करनेके लिये यमराजके दण्डके
 समान है और जो कामदेवके शत्रु शङ्करजीके पुत्र हैं ॥ २८ ॥
 महादेवजीके ताण्डवके समय जिनका कण्ठ मद पीनेसे बादलके
 समान ध्वनि करता हुआ मृदङ्ग बजकर बोलने लगता है,
 उन गणेशजीको नमस्कार है ॥ २९ ॥ हाथोंके मुँहवाले वे
 गणेशजी तीनों लोकोंकी रक्षा करें जिनकी सँझ ऊपर आकाशमें
 उठी हुई ऐसी जान पड़ती है मानो सूर्यकी धार मुँह किए
 हुए कमलकी नाल हो और सँझकी जड़में निकला हुआ उजला
 दाँत ऐसा सुन्दर जान पड़ता है मानो वह उस कमलकी जड़
 हो ॥३०॥ हाथोंके मुँहवाले उन गणेशजीकी शरत्कालो, जो शुभ
 कार्योंमें सजाए जानेवाले कलशोंके समान अपने दोनों पवित्र
 माथोंमें सदा मद भरे रहते हैं और जिनके माथेसे बहते हुए
 मदमें लिपटे हुए भीरे ऐसे जान पड़ते हैं मानो उन कलशोंपर

काले निल चिपके हुए हों ॥ ३० ॥ जब दोनों ओर बैठे हुए
 शिव और पार्वतीजी दोनों ओरसे गणेशजीके गाल चूमनेके
 लिये अपने-अपने मुँह बढ़ाने लगे उस समय गणेशजीने
 नटझपन करनेके लिये अपना सिर पीछे हटा लिया
 और उससे शिव और पार्वतीजीके मुँह परस्पर मिल गए
 यह देखकर उहाका मारकर ईसनेवाले गणेशजी सबकी
 रक्षा करें ॥ ३१ ॥ गणेशजीकी सँझसे निकली हुई उन
 उजली-उजली सँझोंकी फुहारोंकी बरसातकी जय हो जो फेन
 बजकर समुद्रका, कमलका समूह बनकर पृथ्वीका, तारोंका
 कुण्ड बनकर आकाशका, मोतिपोंके गुच्छे बनकर समुद्रका,
 फूल बनकर वृक्षोंका, हंस बनकर मानसरोवरका, भस्म बनकर
 शङ्करजीके गलेका, मणि बनकर पर्वतोंका और पाला बनकर
 सब दिशाओंका शृङ्गार करती रहती हैं ॥ ३२ ॥ गणोंके
 स्वामी उन गणेशजीको प्रणाम है जो लाल वस्त्रोंसे सजे हुए
 हैं, साँपोंके स्वामी वासुकिको ही जिन्होंने अपना आभूषण
 बनाया है, आकाशमें उठी हुई जिनकी सँझमें उजली भस्म
 पुती हुई है और जिनका मद पीकर मस्त हुए भीरे ही
 देवताओंके समान उनकी कीर्ति गाते रहते हैं ॥ ३३ ॥ सब
 कुण्ड करनेमें समर्थ गणेशजीके वे दोनों चरण हमें पेरवर्ष दें
 जो वेदरूपी वृक्षकी डालीकी काँपलें हैं, जो कमलोंकी सब
 शोभा होने जैदे हैं और जो विघ्नका पहाड़ तोड़नेके लिये
 देने वज्र हैं ॥३४॥ जो सभी अच्छे गुणोंके भण्डार हैं, संसारकी
 बड़ी-बड़ी शक्तियोंमें जो सबसे पहले गिने जाते हैं, जो अत्यन्त
 सुन्दर हैं, जो अपने भक्तोंके विघ्नोंको पेरवर्ष बना डालते

क्षुब्धोऽपि मालां श्रियाम् ॥३१॥ चन्दे चन्द्रारुमन्दारमि-
न्दुभूषणनन्दनम् । अमन्दानन्दसन्दोहवन्धुरं सिन्धुरान-
नम् ॥ ३६ ॥ विघ्नध्वान्तनिवारणैकतरणिविघ्नाटवीह-
व्यषाट् विघ्नव्यालकुलाभिमानमरुडो विघ्नेभयज्ञाननः ।
विघ्नोत्तुङ्गगिरिप्रभेदनपरिविघ्नाभ्युधौ वाडवो विघ्नाघो-
घघनप्रचण्डपवनो विघ्नेश्वरः पातु वः ॥३७॥ विघ्नेशो वः
स पायाद्विहतिषु जलधीनुत्कराग्रेण पीन्वा यस्मिन्नुद्धूय
तोयं धमति तदखिलं दृश्यते व्योम्नि देवैः । क्वायम्भः
क्वापि विष्णुः क्वचन कमलभूः क्वायनन्तः क्वचि-
च्छ्रीः क्वाय्यौघः क्वापि शैलाः क्वचन मणिगणाः
क्वापि नक्कादिसत्त्वाः ॥ ३८ ॥ विघ्नेशः सर्वविघ्नान्परि-
हरतु स यत्कर्णालातुदञ्जहायुध्याधूतकण्डस्थलयुग-
लालद्रूरिसिन्दूरपूरैः । आरुण्याद्वैनभावं गनवति
जगति क्वापि नो भ्राति भानुर्नैवासां शीतभानुः

क्वचिदपि नितरां भासते वा रुशानुः ॥३९॥ शिवयोः
सुधाहरिद्रादीसिमनोः सारभृजगणितोः । त्रिभुवन-
विघ्नध्वंसी कर्णिकल्पः कश्चिदर्त्तगमा जयति ॥ ४० ॥
सानन्दं नन्दिहस्ताहतमुरजवाहनकामागवहिचासा-
घासाग्रन्धं विशति फणिपतां भोगसङ्गाचभाजि ।
गरडोद्गीनालिमालामुखाग्निककुभस्ताण्डव शूलपाणैर्वै-
नायक्यश्चरं वो यदनविधुनयः पान्तु चीन्कारवयः
॥ ४१ ॥ सुवर्णगिरिकर्णिके तरलतारकाकेसरं चल-
जलदग्दग्धे स्फुटादिमन्तपत्राणके । स वः प्रथमनायकः
प्रदिशतु श्रियं यत्करः करोति जगदभ्युजे घलितनाल-
लीलायितम् ॥४२॥ हस्तपङ्कजनिचिष्टमोदकव्याजसञ्च-
रदशेषमुमथम् । नीमि किञ्चिदधर्भूनिनशुरडादण्डकु-
रडलिनमण्डितगण्डम् ॥ ४३ ॥

परमूलः—अचिन्मन्ति विद्यार्थं यक्कुहगाण्यारुकिनां

हैं, जिनकी पूजा किए बिना आज तक किसीको लिखि नहीं
मिली थीर जिनका पूजन करके अत्यन्त नीच मनुष्य भी
सदाके लिये धन-धान्यसे पूर्ण हो जाता है उन गुरुओंके
शामी गणेशजीका मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३१ ॥ शिवजीको
आनन्द देनेवाले उन हाथीके मुँहवाले गणेशजीको प्रणाम
करता हूँ जो अपने भक्तोंकी ह्मछा पूरी करनेके लिये कष्टवृक्ष
हैं तथा जो अत्यन्त आनन्दसे पूर्ण होनेके कारण और भी
सुन्दर लगते हैं ॥ ३६ ॥ विघ्नोंका नाश करनेवाले वे गणेशजी
आप लोगोंकी रक्षा करें जो विघ्नरूपी घने जँघरेको मिटा
डालनेके लिये सूर्य हैं, विघ्नरूपी जङ्गलको जला डालनेके लिये
अग्नि हैं, विघ्न-रूपी सर्पोंका अभिमान नष्ट करनेके लिये
गरुड हैं, विघ्नरूपी मत्तवाले हाथीको मारनेके लिए वज्र हैं,
विघ्नरूपी समुद्रको सोखनेके लिये बड़वानल हैं और भयहृर
पाप-समूहके विघ्न-रूपी बादलोंकी घटा उड़ानेके लिये प्रचण्ड
पवन हैं ॥ ३७ ॥ विघ्नोंको नाश करनेवाले वे गणेशजी रक्षा
करें जो खेल-खेलमें ही अपनी सूँड़के धूँधनेसे सारा समुद्र
पी गए और जब वह जल उन्होंने अपनी सूँड़से आकाशमें
छोड़ा तो देवताओंने देखा कि व्यवस्थित रहनेवाले वरुण,
विष्णु, ब्रह्मा, शेषनाग, लक्ष्मी, बड़वानल, पर्वत, मणि आदि
रत्न और मगर-भक्षियाल आदि जीव सब न जाने कहाँ-कहाँ
हृर-उभर छितराए पड़े हैं ॥ ३८ ॥ विघ्नोंका नाश करनेवाले
वे गणेशजी सब विघ्न मिटा डालें जिनके तालके पत्तोंके
समान हिलते हुए कानोंकी बगारसे उनके माथेपर पुते हुए

सिन्दूरके उड़नेसे सारे संसारके लाल हो जानेपर यहाँ नहीं
जान पड़ा कि कौन मूर्ख है, कौन चन्द्रमा है और कौन अग्नि है
॥ ३९ ॥ अमृतके समान उजले शिवजी और हृरके समान
पीली काम्निवाली पार्वतीजी जो माना-पिताके समान संसारका
पालन-पोषण करते हैं उनकी किसी ललाई (गणेशजी) की जय
हो जो विघ्नोंकोके विघ्न मिटा डालनेवाले हाथीके रूपधाली है
॥ ४० ॥ शिवजीका ताण्डव चारम्भ होते समय जैसे ही नन्दीने
मस्त होकर मृदङ्गपर धाप दी धैसे ही उस शब्दको सुनकर
वहाँ आ पहुँचनेवाले स्वामिकांतिकेयके मोरके उरसे गणेशजीके
शरीरमें लिपटा हुआ सौँप जब अपने प्राण बघानेके लिये
कण सिकोड़कर उनकी सूँड़के छेदमें घुसने लगा उस समय
उन गणेशजीका चिंगाड़कर सूँड़ फटकारना सदा आपकी
रक्षा करे जिनके मस्तकपर मेंडराते हुए भीरोंकी गुभ्रासे दसों
दिशाएँ भर गई थीं ॥ ४१ ॥ वे सर्वप्रथम गणनायक गणेशजी
आपको ऐश्वर्य दें जिनकी सूँड़ उस संसाररूपी कमलकी मुड़ी
हुई नालके समान शोभित है जिसमें सुमेरु पर्वत ही कोश है,
क्लितमिलाते हुए तारे ही केसर हैं, मेंडराते हुए मेघ ही चञ्चल
भीरे हैं, और प्रत्यक्ष आठ दिशाएँ ही अटदल हैं ॥४२॥ गोल
कुण्डलीके रूपमें हिलती हुई सूँड़से अत्यन्त सुन्दर मुखवाले
उन गणेशजीको मैं प्रणाम करता हूँ जो अपने कमलके समान
चारों हाथोंमें लड्डू लिए हुए ऐसे जान पड़ते हैं मानो चारों
पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) बाँटनेके लिये बैठे हों ॥४३॥

स्कन्द : शिवजीके शरीरमें लिपटे हुए वासुकि नागके घम-

वासुकेरकुल्या विपकर्तुराङ्गणयतः संस्पृश्य वन्ताङ्क-
रान् । एकं त्रीणि च सप्त पञ्च पडिति प्रध्वस्य संकषा-
क्रमा वाचः कौञ्जरिपोः शिशुत्वविकलाः धेयांसि
पुष्पन्तु वः ॥ १ ॥ विकसदमरनारीनेत्रनोलाजस्र-
रङ्गान्यधिसति सदा यः संयमाधःकृतानि । न तु
रुचिरकलापे वर्तते यो मयूरे वितरन्तु स कुमारो ब्रह्म-
चर्याश्रयं वः ॥ २ ॥ शरण्यः सर्वदेवानां वनुर्यशदवा-
नलः । शक्तिमान्धृतिमाश्रान्तः कार्तिकेयोऽस्ति मे
गतिः ॥ ३ ॥ शैलराजतनयास्तनयुग्मम्यापृतास्ययुग-
लस्य गुहस्य । शेषवक्त्रकमलानि मलं वो दुग्धपानवि-
धुराणि हरन्तु ॥ ४ ॥ स्वेच्छारम्यं सुठित्वा पितुररसि
चिताभस्मधूलीसिताङ्गो गङ्गावारिण्यगाधे भटिति
पृथुजटाजूटतो दत्तभूषः । सद्यः सीत्कारकारी
जलजडिमरणहस्तपङ्क्तिर्गुहो यः कम्पो पायादपायाञ्च-
लितशिखिशिखे चक्षुषि न्यस्तहस्तः ॥ ५ ॥

वसने और बिपके कारण चितकबरे मुँहोंको बचपनकी खेलवाड़में
खोश-खालकर अपनी उँगलीसे उनके दाँत छू-चुकर उलटे-
पुलटे क्रमसे एक, तीन, सात, पाँच, छः आदि गिननेवाले
स्कन्दकी तांतली बाली आपका आनन्द दे ॥ १ ॥
देवताओंकी शिखोंके खिले हुए नाले कमलके समान सुन्दर और
संयमसे झुके हुए नेत्रोंसे जो कभी प्रभावित नहीं होते और
सुन्दर पैरवाले अपने मोंपर ही जो सदा बैठ कर रहे हैं वे
स्वामिकार्तिकेय आप लोगोंको ब्रह्मचर्यका तेज दें ॥ २ ॥
अत्यन्त शक्तिवाले, धैर्यवाले और शास्त्र उन स्वामिकार्तिकेयकी
में शरण लेता हूँ जो राक्षसोंके कुलरूपी शैलके लिये श्वाभि
हूँ और सद्यका शरण देनेवाले हूँ ॥ ३ ॥ पर्वतोंके राजा
हिमालयकी पुत्री पार्वतीजीके दोनों स्तनोंको अपने दो मुँहसे
पति हुए स्कन्दके वे शेष चार मुखकमल आपके पाप हर लें
जो दूध नहीं पा पा रहे हैं ॥ ४ ॥ वे स्वामि कार्तिकेय आपको
बिनाशसे बचावें जिनकी देह पिताजी (शिवजी) की छातीपर जी
भर लोटनेसे उसपर लगी हुई चिताकी भस्म छिपट जानेसे अब
उजली है। गई तो वे तत्काल शिवजीके भारी जटामटपरसे गङ्गाके
अगाध जलमें गूढ़ पड़े किन्तु गङ्गा-जलकी ठण्ठक लगते ही जब
वे सी-सा करके ठिठुरने लगे और उनके दाँत किटकिटाने लगे
तब तत्काल पिताजीके तीसरे नेत्रकी जलती हुई शक्ति लपटोंमें
हाथ सँकने लगे ॥ ५ ॥

गणेश और स्कन्द : माँका दूध पीने हुए उन स्वामि-

गणेशकुमारों—दत्तस्तन्यरसं कराग्रिमभुवा वक्त्रा-
न्तरे स्वादराहोर्विदोपनिषिद्धकुम्भविचरन्मसद्विरेफो-
त्करम् । अम्यायाः पियतोः पयोधरयुगं तिर्यङ्मथः-
पश्यतोर्वात्यस्त्रेहविजृम्भितं विजयते द्वैमातुरस्कन्दयोः
॥ १ ॥ पित्रोरुत्सङ्गसंस्थौ विदुधमणनुतौ विघ्नदैत्यात्ति-
निघ्नौ स्वे-स्वे पार्श्वे च कन्दुं शिखिनमभिरुचिमेतमा-
शौ प्रहृष्टौ । विभ्राणौ पाणिपद्मैः कमलमथ गदामङ्कुशा-
दिभ्यश्चत्केशौ स्निग्धौ सुभूपावविरतमवतां कौच-
मैशौ कुमारौ ॥ २ ॥

गणेशः—सन्ध्याताण्डवडम्बरमणयिनीर्वैद्यस्थ वरुडी-
पतेर्भ्रष्टापीडविशीर्णमुण्डचयनव्यग्रा गणाः पान्तु वः ।
यैरौ सुख्यवशीकृतैर्ग्रहगणाद्राहौ गृहीते दृढात्सूर्याव-
न्मसोर्मिधः स्मितवतोर्जातं करास्फालनम् ॥ १ ॥

नन्दी—कण्ठासङ्करघटाघणघणरणिताभ्मातरोऽ-
कटाहः कण्ठे कालाधिरोहोचितघनसुभगं भावुक-

कार्तिकेय और गणेशकी जय हो जो अपने हाथकी उँगलियोंसे
माँके स्तन पकड़कर बड़े चावसे मुँहमें डाले हैं, गण्डस्थलमें
उड़ते हैं और माँको हाथ और सूँड़ हिला-दिलाकर उड़ाते हैं,
तिरछी चितवनसे एक दूसरेको देखते हैं तथा बचपनके कारण
जैंगड़ाई-जैभाई लेते जा रहे हैं ॥ १ ॥ कमलः बिम्बों और
राक्षसी पीदाका नाश करनेवाले, अपने-अपने पास बैठे बूढ़े
और मोरकी प्रेमसे देखनेवाले, कमलके समान हाथोंमें कमल
तथा गदा और अङ्कुश आदि धारण करनेवाले, सुन्दर केशवाले,
सुन्दर सजावटवाले, कोमल देहवाले, पिताजीकी गोदमें बैठे
हुए वे कोई शिकरीके शेरों यात्रक सदा रक्षा करें जिन्हें देवता
प्रणाम कर रहे हैं ॥ २ ॥

गणेशः सन्ध्याको हो चुकनेवाले ताण्डव नृत्यका आनन्द
लेनेवाले तथा शङ्करजीकी टूटी हुई मालासे गिरी हुई
खोपड़ियोंको इकट्ठा करनेमें लगे हुए वे गण आपकी रक्षा करें
जिन्होंने खेल-खेलमें ही जब मङ्गलके बीचसे राहुको बलपूर्वक पकड़
लिया तो सूर्य और चन्द्रमा प्रसन्नतासे मुस्कराते हुए अपनी
किशोर केलाने लगे ॥ १ ॥

नन्दी : गलेमें गहनेके रूपमें बैठे घण्टेके घणघन शब्दसे
आकाश और पृथ्वीरूपी खण्डको भर देनेवाले, शङ्करजीके
पीठपर बैठ जानेसे और भी अधिक सुन्दर दिखाई देनेवाले,
भावकोंको अश्रुतक कर देनेवाले, शिकनी पीठवाले, अपने उजले
दिल्लसे कैलासकी ऊँची चोटीको भी नीचा दितानेवाले तथा

क्षिप्रपृष्ठः । साक्षाद्भर्मा यपुष्मान्धवलककुर्वनिर्धृतकैला
सकूटः कूटस्थो वः ककुष्ठाक्षिप्रिडतरतमः स्तोमवृण्यो
वितृण्यत् ॥ १ ॥

मन्मथः

स एष भुवनत्रयप्रथितसंयमः शङ्करो विभक्तिं वपु-
षाधुना विरहकातरः कामिनीम् । अनेन किल निर्जिता
व्यमिति प्रियायाः करं करेण परिताडयज्जयति जात-
हासः स्मरः ॥ २६ ॥

रतिः—देवी रतिर्विजयते मृगनाभिचिप्रपञ्चावली
पृथुपयोधरसीम्नि यस्याः । भाति त्रिलोकविजयोपम-
तस्वकामप्रकान्तसायकनिशासनकालिके ॥ १ ॥

सूर्यः

अतिविततगगनसरणिप्रसरणपरिमुक्तधिधमानन्दः ।
मरुदुल्लासितसौरभकमलाकरहासहृद्रविर्जयति ॥ १ ॥
आदौ रक्तं पुनः रक्तं मध्य उज्ज्वलभास्वरम् । दुर्मिरी-

पहादपर बसनेवाले धर्मके साक्षात् स्वल्प नन्दी अत्यन्त
रमे तथा भवानक पापकपी घासका डेर चर जायें ॥ १ ॥

कामदेव

‘यही वे सीनों लोकोंमें प्रसिद्ध शङ्करजी हैं जिन्होंने हमें
जीत लिया है । अब देखो वे वियोगसे व्याकुल होकर प्रियतमाको
अपने शरीरमें ही धारण किए हैं ।’ ऐसा कहकर हैंसते हुए
रतिके हाथपर बेगसे हाथ मारनेवाले कामदेवकी जय हो ॥ १ ॥

रति : उन रतिदेवीकी जय हो जिनके मोटे स्तनोंपर
शोभा पाती हुई कस्तूरीकी चित्रकारी ऐसी जान पड़ती है
जामो त्रिलोकीको जीतनेके लिये कामदेवके द्वारा तेज किए जाते
हुए बाणकी कालिमा हो ॥ १ ॥

सूर्य

वायु जिनकी सुगन्धि उड़ाता फिरता है उन कमलोंके
भण्डार तालाबको हैंसानेवाले (विकसित करनेवाले) उन सूर्यकी
अव हो जिन्होंने अत्यन्त लम्बे-चौड़े आकाश-भागमें निरन्तर
चलते रहनेके लिये अपना विभाम और आनन्द सब छोड़
दिया है ॥ १ ॥ सारे जगत्को देखनेवाले उन सूर्यकी
शरणा में जाता हूँ जो उदय और अस्त होते समय साल तथा
शेषहरमें इतने अधिक चमकीले रहते हैं कि देखे नहीं
जाते ॥ १ ॥ अपने एक ही नेत्रसे अत्यधिक सपनेवाले,
प्रलयकालमें क्रमशः अपना ताप बढ़ानेवाले, आकाशके चरके
समान वे सबसे बड़े देव सूर्य हमारी रक्षा करें जिन्हें उदय

व्यप्रभावन्तं दृश्यं द्रष्टारमाश्रये ॥ २ ॥ एकस्मिन्नयनं
भृशं तपति यः काले स दाहकमो येनानन्यत यन्मकाश-
समयेनैषां पदं दुर्लभम् । सा व्यामाव्यवस्य यज्ञ
विदिता लोके गतिः शाश्वती धीमृत्युः सुरमेधिनोऽपि
हि महादेवः स नस्त्रायनाम् ॥ ३ ॥ कटुभिरपि कठोरच-
क्रवाकोन्करविरहज्वरशान्तिशीनचौर्यैः । निमिगहनमयं
महोभिरङ्गजयति जगन्नयनोधमुष्णमानुः ॥ ४ ॥ कर्जा-
लनपूर्वचेष्टितं वस्तुभीष्टप्रदमस्तु तिग्मभासः । क्रियते
भवबन्धनादिमुक्तिः प्रणतानामुपमेधितेन येन ॥ ५ ॥
किं क्लृप्तं किन्तु रत्नं तिलकमुत तथा कुण्डलं कौस्तुभो
वा चक्रं वा वारिजं चैन्यमरयुवनिभिर्यद्भलिर्हृदिपदे ।
ऊर्ध्वं मौलां ललाटे धर्वासि हृदि करे नाभिदेशे च हृष्टं
पायासहोऽर्कविम्बं स च दनुर्जरिपुर्वर्धमानः क्रमेण ॥ ६ ॥
सं येऽन्युज्यन्त्यन्ति लूनतमसो ये चानखोद्भासिनो
ये पुष्पन्ति सरोरुहश्चयमर्धिल्लसाज्जभासश्च ये । ये

होनेके परचाह कोई या नहीं सकता तथा जिनकी निरय गतिकी
संसारमें कोई नहीं जानता ॥ ३ ॥ उन सूर्यकी जय हो जिनकी
किरणें तीव्र होते हुए भी चक्रवाचकीके भयङ्कर विधोगरूपी
ज्वरको नष्ट करते समय शांत हो जाती हैं और उन किरणोंसे
संसारका प्रवेश नष्ट करते हुए जो ऐसे जान पड़ते हैं सानी
चँधेरेसे अन्धे हुए संसारके प्राणियोंके नेत्रोंमें प्रकाशका आँजन
लग रहे हों ॥ ४ ॥ अत्यन्त तेजस्वी सूर्यकी अचूत बाल-
वाली वे किरणें आपके मनोरथ पूर्ण करें जो स्मरण करने
मात्रसे भक्तोंको संसारके बन्धनोंसे मुक्त कर देती हैं ॥ ५ ॥
बलिको सुलते समय जब वामन भगवान् क्रमशः ऊपरकी
ओर बढ़ने लगे उस समय जिस सूर्य-मण्डलको देखकर
देवताओंकी छियाँ क्रमशः यह सोचने लगीं कि—‘क्या
यह वामन भगवान्के ऊपर तना हुआ वृक्ष है या उनके मुकुटमें
जड़ा हुआ रत्न है या उनके मस्तकमें लगा हुआ तिलक है
या कानोंपर पहना हुआ कुण्डल है, या हृदयमें धारण किया
हुआ कौस्तुभ-मणि है या हाथोंमें धारण किया हुआ चक्र या
कमल है अथवा उनकी नाभिसे निकला हुआ कमल है, वह सूर्यका
मण्डल तथा वे दैत्यको मारनेवाले वामन भगवान् आपकी रक्षा
करें ॥ ६ ॥ दिनके स्वामी सूर्यकी वे किरणें हमें ऐश्वर्य
देनेवाली हों, जो चँधेरा नष्ट करके आकाशको अत्यन्त उज्ज्वल
करती रहती हैं, जो सिरसे परतक चमकती रहती हैं, जो
कमलोंकी शोभा बढ़ाती और उनमें कान्ति भरती रहती

मूर्धस्ववभासिनः क्षितिभृतां ये चामराणां शिरांस्या-
क्रामन्त्युभयेऽपि ते दिनपतेः पादा ध्रियै सन्तु नः
॥ ७ ॥ खण्डितानेत्रकञ्जालिमञ्जुजनपरिडताः । मण्डि-
ताखिलदिक्प्रान्ताश्चण्डांशोः पान्तु भानवः ॥ ८ ॥
चक्री चकारपङ्क्तिं हरिरपि च हरीन्धूर्जटिर्धूर्ध्वजान्ता-
नक्षन्नक्षत्रनाथोऽरण्यमपि वरुणः कुशरात्रं कुचेरः । रंहः
सङ्घः सुराणां जगदुपकृतये नित्ययुक्तस्य यस्य स्तौति
प्रीतिप्रसन्नोऽन्वहमहिमरुचेः सोऽवनात्स्यन्दनो वः
॥ ९ ॥ जम्भारानीमकुम्भोद्भवमिव दधतः सान्द्रसिन्दु-
रेणुं रक्तैः सिक्ता इयंघैरुदयगिरितटीधातुधाराद्-
धस्य । आयास्या तुल्यकालं कमलवनरुनेवाहणा यो
विभूयै भूयासुर्भासयन्तो भुवनमभिनवा भानवो भान-
वीयाः ॥ १० ॥ निर्घोतध्वान्ताय प्रसृमरकरायोप्रमहने
निकामं कामानां चितरणविनोदव्यसज्जिते । समस्तप्रयु-
हप्रशमनकृते श्रीर्दिनकृते नमस्तस्मै यस्मै स्पृहयति
समस्ताभ्युज्जतिः ॥ ११ ॥ मार्चाकुङ्कुमसिलकं पूर्वाचल-

रोहणैकमालिक्यम् । त्रिभुवनगृहेकदीपं वन्दे लोकैक-
लोचनं देवम् ॥ १२ ॥ ब्रह्माण्डसम्पुटकलेवरमध्यवर्ति
चैतन्यपिण्डमिव मण्डलमस्ति यस्य । आलोकितोऽपि
दुरितानि निहन्ति यस्तं मार्तण्डमादिपुरुषं प्रणमामि
नित्यम् ॥ १३ ॥ भक्तिप्रकाशं दातुं मुकुटपुटकुटीकोटर-
कोडलीनां लक्ष्मीमाकण्डुकामा इय कमलवनोद्घाटनं
कुर्वते ये । कालाकारान्धकाराननपतितजगत्साध्वस-
ध्वंसकल्याः कल्याणं वः क्रियासुः किसलयरुचयस्ते
करा भास्करस्य ॥ १४ ॥ यद्विम्यमम्बरमणिर्येषां
प्रसृतिर्नक्तं निविञ्चति यदग्निशिखासु भासः । ज्योत्स्ना
निशासु हिमधास्त्रि च यन्मयूखाः पूषा पुराणपुरुषः स
नमोऽस्तु तस्मै ॥ १५ ॥ युष्माकमम्बरमणैः प्रथमे मयू-
खास्ते मङ्गलं विदधतूदयरागभाजः । कुर्वन्ति ये
दिवसजम्भमहोत्सवेषु सिन्दूरपाटलमुखीरिष दिक्पु-
रन्धीः ॥ १६ ॥ यो रक्तताम्रतितरामतुलं दधानो
दिक्प्रोद्गदारनुह मोहनवातवासः । योपिद्दयीपतिवि-

है, जो महाराजाओंके मुकुटमें कमलकी रहती है और जो
देवताओंके सिरके ऊपर घूमती रहती है ॥ ७ ॥ खण्डिता
नायिकाके कमल-नयनोंकी विकसित करनेमें चतुर तथा सब
दिशाओंकी शोभा बढ़ानेवाली सूर्यकी किरणें रक्षा करें ॥ ८ ॥
सदा संसारकी भलाईमें लगे रहनेवाले तथा उज्ज्वल किरणवाले
सूर्यका वह रथ आपकी रक्षा करें जिसके पहिणकी विष्णु भगवान्,
घोड़ोंकी इन्द्र, सामनेके भागकी शिवजी, धुरेकी चन्द्रमा,
अरुण (सारथी) की वरुण, जणकी कुंवर तथा बेगम्बी सब
देवता स्तुति करते हैं ॥ ९ ॥ जम्भासुरके शत्रु इन्द्रके पेशावत
हार्थीके मस्तकमें लगे हुए घने सिन्दूरकी धूँवकी भाँति लाली
धारण करके उदय होते हुए सूर्यकी वे नई लाल-लाल किरणें
आपको पेशकर दें जो ऐसी जान पड़नी हैं मानो उदयाचलसे
बहती हुई गेरुकी धाराने रँगी हुई हों अथवा कमलोंके खिलनेके
साथ ही उदय होनेसे जिनपर उन कमलोंकी ललाई पड़ रही हो
॥ १० ॥ सब प्रकारके विग्रह शान्त करनेवाले तथा श्रेष्ठता पी
हालनेवाले उन अत्यन्त तेजस्वी सूर्यकी प्रणाम है जो जी भरकर
भक्तोंके मनोरथ पूर्ण करके अपना मन बहलाले रहने है तथा
जिन्हें कमलोंके समुदाय सदा चाहते हैं ॥ ११ ॥ सारे संसारके
एक-मात्र नेत्ररूपी उन श्रीसूर्यको प्रणाम करता हूँ जो मानो पूर्ण
दिशामें लगे हुए कुङ्कुमके तिलक हैं अथवा त्रिशोकरीपु गृहके
एक-मात्र दीपक हैं अथवा उदयाचलके शिखररूपी मुकुटमें जड़े

हुए एकमात्र माणिक्य हैं ॥ १२ ॥ सबसे पहले उत्पन्न होनेवाले
उन सूर्यको सदा प्रणाम करता हूँ जिनका मण्डल ब्रह्माण्डरूपी
ट्रिवियाके बीचमें चेतन गोलैके समान कमलता है तथा जिन्हें
देख लेने-मानने सारे पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ १३ ॥ अन्धकाररूपी
कारागारके मुँहमें पड़े सारे संसारके पापोंका नाश करनेमें चतुर
तथा नये पक्षोंके समान जाल काम्तिवाली वे सूर्यकी किरणें
आपका कल्याण करें जो भक्तिसे पुलकित भक्तोंको पञ्चद्वीरूपी
कुटियाकी गोदमें संतों हुई लक्ष्मी देनेके निमित्त कमलकी
(लक्ष्मी) से स्वीकृति लेनेके लिये ही मानो कमल-वनको विकसित
करने हों ॥ १४ ॥ उन प्राचीन पुरुष सूर्यको प्रणाम है जिनका
मण्डल आकाशमें मणिके समान कमलता है, जो जल उत्पन्न
करनेवाले हैं, जो रातको अग्निकी लपटोंमें तेज बरसा देते हैं
तथा जिनकी किरणें रातको चन्द्रमामें भाँदनी भर देती हैं ॥ १५ ॥
उदय होते हुए आकाशके मणि (सूर्य) की वे लाल-लाल किरणें
आपका कल्याण करें जो ऐसी जान पड़नी हैं मानो दिनके
जम्भोत्सवमें दिशारूपी छिन्नोके मुँह सिन्दूरसे रँग रही हों ॥ १६ ॥
दो छिन्नो (संज्ञा और छाया) के पति होनेकी विडम्बना धारण
करनेवाले (दो छिन्नाले), पाप-समूहकी हरनेवाले तथा अत्यन्त
गाढ़ी ललाई धारण करनेवाले वे सूर्य सदा हमारी रक्षा करें
जिन्होंने मानो दिशाओं-रूपी युवतियोंको रिसानेके लिये ही जाल
वस्त्र धारण कर रखे हों ॥ १७ ॥ कमलके बनोंकी सिखा देनेवाले,

उम्वनभृत्स शम्भवायादपायसमुदायहरो रविर्नः ॥१७॥
 लालयन्तमरविन्दवनानि लालयन्तमभितो भुवनानि ।
 पालयन्तमथ कोककुलानि ज्योतिषां पतिमहं महयामि
 ॥ १८ ॥ शीर्षाणाङ्घ्रिपाणीन्त्रणिभिरपघ्नैर्घराज्य-
 कपोपान्दीर्घाघ्नानघैः पुनरपि घट्यन्त्येक उल्लाघ-
 यन्त्यः । घर्मांशोस्तस्थ वोऽन्तर्हिगुणघनघृणानिघ्ननिचि-
 घ्नतेर्दत्तार्घाः सिद्धसहैविदधत घृणयः शीघ्रमहो-
 विघातम् ॥ १९ ॥ शुक्रतुण्डव्यधि सवितुश्चण्डव्येः
 पुण्डरीकघनयन्धोः । मण्डलमुदितं वन्दे कुण्डलमाख-
 ण्डलाशयाः ॥ २० ॥ साटोपश्चोमहृष्टोपितरजनियलि-
 कृतायकोन्मुक्तारा मुक्ताहारापहारासरलखगरवप्रो-
 स्थिताकीर्तिशान्त्यै । कर्पञ्जप्रोजकुम्भोदरकुहुरयहिर्निः-
 सरत्पट्टशालीकालव्यालीं करणाकलयतु दिनकृत्कलम-
 योन्मूलनं वः ॥ २१ ॥ सिन्दूरस्पृहया स्पृशन्ति करिणां
 कुम्भस्थमाधोरणा भित्री पल्लवशङ्कया विचिनुते सान्द्र-
 द्रुमद्रोणिषु । कान्ताः कुकुमशङ्कया करतले मृदन्ति

लक्षश्च यत्तत्तेजः प्रथमोद्भवं भ्रमकरं सौरज्ज्वरं पातु
 वः ॥ २२ ॥ सिन्दूराणीव सीदन्कृपणकुलवधूमृष्टिषु
 सञ्चरन्तः प्रेक्ष्यन्ते दिक्षु शैलाः शिखरभुवि लसन्पद्म-
 गाकुलैः । धुन्वन्ते धातधागाः सह दुर्गितत्रयैर्दूर-
 दृश्याः सुदृश्या यान्तु त्वां पद्मवन्द्योरकर्णकिरणाः
 पूरताः पद्मयन्धोः ॥ २३ ॥

सूर्यतुरगाः—अथतु नः सधितुस्तुग्मावली समन्तिल-
 क्षिततुङ्गयोधरा । स्फुरितमध्यगताङ्गनायका मङ्ग-
 तैकलतेय नभश्चिषः ॥ १ ॥ निगलभ्यमपि प्राप्याग्राम-
 स्तांऽनुदिनजगम् । अनूरोर्यमनायसाः श्रिये सन्तु
 रवेर्हयाः ॥ २ ॥

चन्द्रः

नित्यं कुवलयोक्तासवर्धनैकपरायणः । आदधन्त-
 र्वतः शान्तिमेष भाति द्विजेश्वरः ॥ १ ॥ भो भो चन्द्र !
 कलानिधानमसि यत्त्वां तत्र पूर्णं सदा द्रष्टुं वाञ्छति

सब लोकोंको चारों ओरसे धीरे-धीरे, चकवा-चकवियोंका
 पालन करनेवाले तथा नक्षत्रों एवं ग्रहोंके स्वामी सूर्यका मैं
 आदर करता हूँ ॥ १८ ॥ जिन लोगोंके हाथ, पैर, माक आदि
 अङ्ग सद् गये हैं, शरीरोंमें घाव होनेके कारण जो अस्पष्ट घर-घर
 शब्द कर रहे हैं तथा जिन्हें बहुत समयसे पापोंके समूह मसे
 हुए हैं, ऐसे लोगोंको भी स्वस्थ करके एक-सा बना देनेवाले
 और अपने भीतरकी अस्पष्ट कृपाके कारण निर्दोष आचरणवाले
 सूर्यकी वे किरणें शीघ्र ही आपके पाप नष्ट करें जिन्हें सिद्धोंके
 समूह अर्घ्य दिया करते हैं ॥ १९ ॥ सुगोकी बाँचके समान लाल
 कान्तिवाले, प्रचण्ड तेजवाले तथा कमल-वनके प्यारे, तत्काल
 उदय हुए सूर्यके उस मण्डलको प्रणाम करता हूँ जो मानो
 इन्द्रकी पूर्व दिशारूपी नायिकाके कुण्डल हैं ॥ २० ॥ वड़े
 भारी आकाशरूपी हाटमें बैठी रात्रिरूपी नायिकाके लिये चन्द्र-
 रूपी नायकने जो तारारूपी मोतियोंके हार फैलाए तो उन्हें
 सुराते समय बीचमें ही पहियोंके कोलाहल किए जानेपर
 इस अकीर्तिकी दबानेके लिये तत्काल कमलरूपी घड़ोंके भीतरसे
 बाहर निकलती हुई औरोंकी पॉलरूपी काली नागिनकी
 किरणों (हाथों) से खींचते हुए, दिनको रचनेवाले सूर्य आपके
 पापोंको जड़से नष्ट कर दें ॥ २१ ॥ हाथियोंके मस्तकों, बूछों
 और झियोंके हाथोंपर पड़ी हुई तत्काल उदय हुए सूर्यकी वह
 कान्ति सदा आपकी रक्षा करे जिसे क्रमशः महानत भ्रमसे

सिन्दूर समझकर घूमे हैं, भालनी नये कामल पत्ते समझकर
 तोड़ती हैं और झियां कुकुम समझकर मलती हैं ॥ २२ ॥
 पापोंके साथ-साथ अन्धकारका भी नाश करनेवाली, दूरसे ही
 सुन्दर दिमाई देनेवाली तथा कमलोंकी इच्छाएँ पूर्ण करनेवाली
 वे बिना देहवाली सूर्यकी किरणें आपके रक्षा करें जो कृपणके
 घरोंकी सिन्दूर न धानेवाली दुर्भा झियोंकी मीलोंमें पड़कर
 सिन्दूरके समान तथा पर्वतकी चोटियोंपर पड़कर पश्चराग मणिके
 चमकीले अङ्गूरोंके समान शोभित होती हैं ॥ २३ ॥

सूर्यके छोड़े : ऊँके-ऊँके मेघोंकी लीपनेवाले सूर्यके
 छोड़ोंकी वह पॉल हमारी रक्षा करे जिसके बीचमें चमकते हुए
 अरुण (सारथी) ऐसे जान पड़ते हैं मानो आकाशकी रांभा
 (नालिमा) रूपी मरकत मणिकी माझमें लाल रत्नका सुमेरु
 गूँथा गया हो ॥ १ ॥ अनूर (सारथी) के शासनमें चलनेवाले
 वे सूर्यके छोड़े ऐश्वर्य दें जो प्रतिदिन शून्य आकाशमें चलकर
 सारे संसारका भ्रमण करते रहते हैं ॥ २ ॥

चन्द्रमा

सदा कुमुदिनियोंको विकसित करनेमें लगे हुए तथा चारों
 ओर शान्ति रखनेवाले वे चन्द्रमा चमक रहे हैं ॥ १ ॥ हे
 चन्द्रदेव ! आप कलाओंके भण्डार हैं, इसीलिये सारे संसारको
 लपानेवाला तेजस्वी सूर्य आपकी पूर्णता नहीं देख सकता ।
 जोड़िए इस बातको, आप कृपया अपनी शान्ति न छोड़िए तथा

लोकतापनपरस्तेजस्वितागर्भभृन् । तत्स्थाने द्विजराज
किन्तु भवता देया न सा शान्तता स्खल्लासाय कला
धिलासय यतः सोऽस्तं स्वयं पत्स्यते ॥ २ ॥ रविमाव-
सते सतां क्रियायै सुधया तर्पयते सुराम्पितृश्च ।
तमसां निशि मूर्च्छतां विहन्त्रे हरचूडानिहताग्ने
नमस्ते ॥ ३ ॥ स्वर्भानुप्रतिधारपारणमिलदन्तांघ्रयन्त्रो-
द्ग्रयश्चभ्रालीपतयालुदीधितिसुधासारस्तुषारद्युतिः ।
पुष्पेष्वासनतन्मियापरिणयानन्दाभिषेकोत्सवे देवः प्राप्त-
सहस्रधारकलशश्रीरस्तु नस्तुष्टये ॥ ४ ॥

पृथ्वी

अयि सर्वसहे देवि त्वां नमामि पुनः पुनः । यदिमं
धुर्भरं भारं वहन्म्यपि न क्षिपसि ॥ १ ॥ नानाम्भोनि-

धयः शिलोव्यगणाः द्विस्त्राश्च सिंहादयो बाधन्ते भवतीं
सदैव वसुधे मूर्तिः क्षमायाः मता । किं प्रयामितरद्भ-
वन्ति पतयो येऽमी भवन्त्या मताः सैन्यौघैर्भत तेऽपि
भूरि सनतं बाधन्त एघोद्धताः ॥ २ ॥ स्वर्गौकोभिरदो-
निवासिपुरुषारब्धातिशुद्धाध्वरस्वाहाकारवषट्क्रियो-
त्थममृतं स्वादीय आदीयते । आम्नायमवर्णैरलङ्कितजु-
षेऽमुष्यै मनुष्यैः शुभैर्दिव्यक्षेत्रसरित्पवित्रघण्डपुषे देव्यै
पृथिव्यै नमः ॥ ३ ॥

वारणः

कुम्भद्वयं तद्वरद्विरदस्य षोऽध्यातुर्निधमानमुष-
धेमर्धनावसाने । प्रोद्यद्द्वितीयकमलाकुचशङ्किनीभिः
सेष्यं यदैक्षत सुरासुरसुन्दरीभिः ॥ १ ॥

॥ इति धीमन्नारायणस्वामिभिः सङ्गलिते सूक्तिसागरे देवसूक्त्य इत्यभिधानकं
सानुवार्दं प्रथमप्रकरणं सम्पूर्णम् ॥

देवताओंके आनन्दके लिये अपनी कलाएँ बढ़ाते रहिए,
क्योंकि सूर्य तो अस्त होकर गिरेगा ही ॥२॥ सज्जनोंके धार्मिक
कार्य पूरे करनेके लिये सूर्यमें निवास करनेवाले, देवताओं
तथा पितरोंको अमृतले समुद्र करनेवाले, रातमें चौपेर नष्ट
करनेके लिये भ्रमण करनेवाले तथा शिवजीके मस्तकमें निवास
करनेवाले चन्द्रदेवको प्रणाम है ॥३॥ पालेके समान काम्तिवाले
वे चन्द्रदेव हमें सन्तोष दें जिनपर बार-बार निगलनेका प्रयत्न
करनेवाले राहुके दाँतरूपी कौलंके चुभनेसे घने हुए बहुतसे
क्षेत्रोंमेंसे अमृत जैसा श्रेष्ठ पदार्थ बू रहा है तथा जो रति और
कामदेवके विवाहमें सहज धारावाले कलशके समान शोभित
होते थे ॥ ४ ॥

पृथिवी

सब कुछ सहन करनेवाली हे देवि ! आप इतना भारी
भोज खाते हुए भी नहीं थकती ! मैं आपको बार-बार प्रणाम
करता हूँ ॥ १ ॥ हे पृथ्वी देवि ! अनेक समुद्र, पर्वतोंके समूह

तथा सिंह आदि हिंसक प्राणी आपको सदा कष्ट देते हैं । अधिक
क्या कहूँ, आपकी ही कृपासे आपके स्वामी बने हुए ये महाराज
भी उद्वेग होकर अपनी बड़ी-बड़ी सेनाओंके समूहोंसे आपको
सदा कष्ट ही देते हैं । आप सचमुच हमारी मूर्ति ही हैं ॥ २ ॥
अनेक तीर्थ और नदियोंसे पवित्र देहवाली उस पृथ्वी देवीको
प्रणाम है, जिसमें वेद-पुराण आदिके माननेवाले सब मनुष्य
आभूषणके समान हैं और जिसमें बसनेवाले मनुष्योंके
पवित्र यज्ञोंमें स्वाहा और वषट्कारात्मक क्रियाओंसे उत्पन्न
अमृतको स्वर्गके निवासी देवता भी बड़े स्वादके साथ चखते
हैं ॥ ३ ॥

देरावत

समुद्र मगनेपर उससे निकलते देवताओंके हाथी
(देरावत) के वे दोनों गण्डस्थल (कनपटी) आपकी रक्षा
करें जिन्हें देवता और असुरोंकी क्षियोंने दूसरी निकलती हुई
आपकी स्तन समककर ईर्ष्यापूर्वक देखा था ॥ १ ॥

॥ श्री १०८ नारायण-स्वामी-द्वारा सङ्गलित सूक्तिसागरके देवसूक्ति नामक प्रथम
प्रकरण अनुवादसहित पूर्ण हुआ ॥

रससूक्तयः

ताम्रनङ्गजयमङ्गलश्रियं किञ्चिदुच्चभुजमूललोकिनाम् ।

नेत्रयोः कृतचनोऽस्य गोचरे कोऽप्यजायत रसो निरन्तरः ॥ १ ॥

नायकनायिकयोर्विलासचरितं दृष्ट्वा सुधापूरितं नानाहाससुभाचरागललितं वागङ्गचेष्टायुतम् ।

सद्यो यद्वसराद्भूषणहृदये सञ्जायते सद्रसस्तच्छृङ्गाररसः रसाशर्नाप्रियः प्रियस्तदा पानु घः ॥ २ ॥

[कामदेवकी शोभाको जाननेवालों यह कथाशुकारों शोभावालों कामियों तब अपने हाथ उठानी है उस समय दिनाई देनेवाले उसके स्तनोंको देखकर हम युवकके हृदयमें कोई (शृङ्गार) रस निरन्तर उत्पन्न होने लगा ॥ १ ॥ नायक और नायिकाकी अनेक हास-भास, अनुराग तथा वाणी और चरित्रकी चेष्टाओंमें भरी समृद्धमयी प्रेम-जीलाई देखकर इसका स्वाद लेनेवाले रमिक सहरयके हृदयमें जो सच रसोंका राजा 'शृङ्गाररस' नामक सुन्दर और प्रिय आनन्द उत्पन्न होता है वह आप लोगोंकी रक्षा करे ॥ २ ॥]

शृङ्गारप्रकरणे कामप्रशंसा

अतस्तेनायः शालङ्काजिना येन जगज्जयी । स चित्र-
चरितः कामः सर्वकामप्रदोऽस्तु घः ॥ १ ॥ अथला
अपि क्षीणेशान्यस्तादायपमुपाधिनाः । पराभयान्ति
हफकोणपातेनैव स मम्मथः ॥ २ ॥ अथलानां दशैवाशु
यो जिहस्ति यस्तीयसः । तस्मै कुसुमयाणां नमो लोको-
त्तरोजसे ॥ ३ ॥ इक्षुर्धन्य शराः प्रसूनविततिर्भुङ्गायली
शिञ्जिनी यस्याश्वाशशर्षणिनः प्रमनसो निर्विष्टराष्ट्रादयः ।

यद्वालाभिहता विनिश्चिमुजिन्मृन्मु ज्येष्ठादयो व्यासा-
शेषमस्त्रा इयञ्चिभुवनं पायादजयः स्मरः ॥ ४ ॥ एकं वस्तु
द्विधा कर्तुं यद्वयः सन्ति धन्विनः । धन्वी स मार
एवैको द्वयोरैक्यं करोति यः ॥ ५ ॥ कर्पूर इव दग्धो-
ऽपि शक्तिमान्यो जने जने । नमोऽस्त्वपारवीर्याय
तस्मै मकरकेतवे ॥ ६ ॥ कान्तेत्युत्पललोचनेति विपुल-
ओशीभरेत्युल्लसन्पीनोऽनुपपयोधरेति सुमुखाम्भोजेति

शृङ्गार रसके प्रकरणमें कामदेवकी प्रशंसा

बिना शरीरबाह्य होनेपर भी जिसने अथला (निर्बल
की) के सहयोगसे तीनों लोक जीत लिए, वह अनुत्त
करसव करनेवाला कामदेव आप लोगोंको सब कामनाएँ
पूरी करे ॥ १ ॥ यह कामदेव ही है जिसका सहारा
पाकर बड़े-बड़े वीरोंको भी केवल अपनी तिरछी चितवन
मात्रसे क्षीयों घायल कर डालती है ॥ २ ॥ जो फूलोंके
बाण धारण करनेवाला केवल अक्काओंके नेत्रोंसे ही
बड़े-बड़े वीरोंको घायल कर डालता है उस अद्वितीय
शक्तिवाले कामदेवको नमस्कार है ॥ ३ ॥ ईश ही जिसका
धनुष है, फूलोंके समूह ही जिसके बाण हैं, भीरे ही
जिसके धनुषकी बोरी हैं, उँके मनवाले विभिन्न राष्ट्रोंके

लोग ही जिसकी आज्ञा पालन करनेवाले सेवक हैं, मझा,
विष्णु, शङ्कर तथा इन्द्र आदि भी जिसके बाणसे घायल किए जा
चुके हैं और जो सब यज्ञोंके समान तीनों लोकोंमें व्याप्त है,
वह किसीसे भी जीता न जा सकनेवाला कामदेव आप लोगोंकी
रक्षा करे ॥ ४ ॥ ऐसे तो बहुतसे धनुषधारी वीर हैं जो
किसी वस्तुके दो टुक कर दें किन्तु दो (चित्तों) को एकमें
मिला देनेवाला धनुषधारी वीर यदि कोई है तो वह केवल कामदेव
ही है ॥ ५ ॥ कपूरके समान जल जानेपर भी जो संसारके
प्रत्येक व्यक्तिपर अपनी धींस जमाए हुए है, उस मकरकी ध्वगा-
वाले अपार बलशाली कामदेवको प्रणाम है ॥ ६ ॥ आह !
कामदेवकी ये चेष्टाएँ कैसी अनुचित और अपरज-भरी है कि

सुभ्रूति । दृष्ट्वा मायति मोदतेऽभिरमते प्रस्तौति
विद्वानपि प्रपद्यताश्चिपुत्रिकां स्त्रियमहो कामस्य दुःखे-
ष्टितम् ॥ ७ ॥ कुमारा या जग्न्तो या सन्तु काममुपे-
क्षिताः । इत्ते किन्तु सर्वेऽपि कन्दर्पेण सुमदिताः ॥ ८ ॥
कुलगुरुरयलानां केलिदीक्षाप्रदाने परममुद्वेगं रोहि-
णीधन्यस्य । अपि कुम्भपृष्णकैर्देवदेवस्य जेता जयति
सुरतलीलानाटिकास्वधारः ॥ ९ ॥ को नाम त्रिषु
लोकेषु कामेन न पराजितः । ययं तु विजितं येन
पश्यामो भुवनत्रयम् ॥ १० ॥ चन्द्रं शीतलयन्यलीकन-
यनं शम्भोः सुधाशीकरैश्चिपुत्रयाकुलयन्तु संयमधना-
म्कान्तादृगन्तेषु च । लीलायै परमैक्ष्वर्यं धनुरिष्यन्विभ्र-
म्यस्नान्मनः स्वच्छन्दं रनिचलभो विजयते वैलोफ्य-
शीरः स्मरः ॥ ११ ॥ जेतोभुवध्यापयति प्रसङ्गे का वा

कथा मानुषलोकभाजाम् । हर्तुः पुरामव्यलिकेतस्य
तथाविधं पौरुषमर्थमासीत् ॥ १२ ॥ जयति मनसिजः
सुसैकहेतुमिथुनकुलस्य त्रियोगिनां कठोरः । यपुषि
यदिपुपानवारणार्थं बहनि ययं शशिलण्डमण्डनोऽपि
॥ १३ ॥ न कठोरं न वा तीक्ष्णमायुधं पुष्पधन्वनः ।
तथपि जितमेवासीदमुना भुवनत्रयम् ॥ १४ ॥ न
गम्यो मन्त्राणां न च भवति भ्रैषड्यधिपयो ॥ चापि
प्रध्वंसं व्रजति विविधैः शान्तिकशरैः । भ्रमावेशाद्वै-
किमपि विदधद्भ्रमसमं स्मरापहमारोऽयं भ्रमयति
दृशं धूर्णयति च ॥ १५ ॥ प्रासादायति वैलघ्यादिगहनं
दीपीयति द्राक्तमः पर्यङ्गीयति भूतलं दप्यपि श्लक्ष्णो-
पधानीयति । कस्तूरीयति कर्मः किमपरं यूतो रसा-
विष्टोऽर्थेनालोकितयोस्स वन्द्यमहिमा देवो नमस्यः
स्मरः ॥ १६ ॥ वाणेष्वादीष्य गुणान्विधाय चापं चियो-

अध्विप्रताकी पुतली नारीकां देवकर विचारवान् पुरुष भी
उसे कामता (सुन्दरी), कमलके समान नेत्रोंवाली, बड़े-बड़े
निभभ्रोंवाली, मोटे-मोटे और उठे हुए स्तनोंवाली, कमलके
समान सुन्दर मुखवाली और सुन्दर आँखोंवाली कहकर उसपर
मत्त होता है, प्रसन्न होता है, सीकता है और उसके गुण
बखानता है ॥ ७ ॥ केवल बालक और बूढ़ ही ऐसे बचे हुए हैं
जो कामदेवकी चपेटमें नहीं आते अन्यथा इसके अनिष्ट
लक्षकों कामदेवने मुटुकींसे मसल दिया है ॥ ८ ॥ अनेक पंडितोंसे
त्रिषुलोको काम-क्रांदाका उपदेश देनेवाला, रोहिणीके पति
चन्द्रमाका लैंगोटिया यार, फूलोंके बागोंसे भगवान् शङ्करकी भी
जान लेनेवाला और काम-क्रांदाके नाटकका आरम्भ करनेवाला
मूत्रधार कामदेव ही मयमे अधिक जय प्राप्त करनेवाला
है ॥ ९ ॥ तीनों लोकोंमें कौन ऐसा माईका साल है जिले
कामदेवने पंडित न कर दिया हो ! हम तो समझते हैं कि तीनों
लोकोंकी यदि कोई जान पाया है तो वह कामदेव ही है ॥ १० ॥
जब इन्द्रियोंका वशमें रहनेवाले महान्मात्रोंकी भी स्त्रियोंकी
चोंकी चिन्तन बायल कर देती है और जब अपनी किरणोंकी अमृ-
त-वप-मे भगवान् शङ्करके नेत्रोंकी दृष्टा करनेवाला चन्द्रमा भी सबको
बुराकुन कर सकता है तब निर्भय होकर रनिकी प्यारा लगने
वाला और तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध और कामदेव यदि इसके
धनुषपर फूलोंके शण चढ़ाकर बानकी-बानमें विजय प्राप्त कर
ले रहा है तो आश्चर्य क्या है ! उमे तो तीनों लोकोंपर विजय
पानी हो चाहिए ॥ ११ ॥ जब त्रिपुरका नाश करनेवाले तथा

अग्निके नेत्रवाले भगवान् शङ्करकीका बल भी धनुषधारी
कामदेवके सामने आधा हो गया तब साधारण मनुष्य
किस गिनतीमें है ॥ १२ ॥ जिसके बाणोंकी वज्रसे वज्रनेके लिये
चन्द्रमाको अपनी भुवक्ष बनानेवाले शङ्करकी भी अपनी पत्नीके
साथ हो निवास करते हैं, वह एक साथ रहनेवाले पति-पत्नीको
सुख देनेवाला, त्रियोगियोंकी दुःख देनेवाला और मनसे उत्पन्न
होनेवाला कामदेव सबको जीतता चला जा रहा है ॥ १३ ॥ फूलोंका
धनुष धारण करनेवाले कामदेवके प्रसन्न न तो कठोर ही हैं और
न बहुत तीव्र ही, फिर भी आश्चर्य तो यह है कि उसने तीनों
लोक जीतकर अपनी मुटुमें कर लिए हैं ॥ १४ ॥ जिसमें न
तो मन्त्र कुछ कर सकते हैं, न औपधियोंसे काम चल सकता है,
न शान्तिके उपायोंसे ही कुछ लाभ होता है वह एक विचित्र
(प्रेमका) रोग सारे शरीरमें सहसा फैलन उत्पन्न करना हुआ,
स्मरक मात्रसे उत्पन्न होनेवाले मिरगी रोगके समान शरीरमें
ऐसा आ घुसता है कि माथा घूमने लगता है और आँखें चकरा
जानी हैं ॥ १५ ॥ जिस कामदेवकी दृष्टि पड़नेपर ईश्वरकी
ऊबड़-न्याबड़ धरती ही आदरियोंके समान आनन्द देनेवाली
बन जाती हो, बना भँवरा ही दीपकके समान प्रकाश-दाता हो
जाता हो, धरती ही सुन्दर परलंग बन जाती हो, पथरके
दुकड़े धन्वन ही सुन्दर लकड़का आनन्द देने लगते हों,
यहैतक कि कंचड़ भी कस्तूरीके समान सुहावनी लगने
लगती हो, वह महिमाशाली कामदेव सबकुछ प्रणाम
करने योग्य है ॥ १६ ॥ संसारके सब धनुषधारियोंमें यह

मिनीनयने । स्वयमतनुर्जगदेतज्जयति सुमात्रो विचि-
त्रधानुष्कः ॥ १७ ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाना अपि कामेन
निजिताः । इतरं तत्पराभूता इति किं चरितं महत्
॥ १८ ॥ ब्रह्मा वा मधुहापि वा पुररिपुर्वापि त्रिलोकी-
श्वरम्मन्या वा त्वपरं भवन्तु कृतिनमनावन्तुनास्म-
वतः । यावत्पुण्यशरस्य लक्ष्यविषयीभूता न हा त्वपरं
स्वर्लीणामपि किङ्कराः किमु भवेत्तुल्यं यत्नं नादशम्
॥ १९ ॥ भस्मीभूतशरीरोऽपि पुण्यधन्वापि वा भवान् ।
विश्वं व्याकुलयन्नेव स एव परमेश्वरः ॥ २० ॥ याभि-
रनङ्गः साङ्गीकृतः स्त्रियोऽङ्गीकृताश्च ता येन । वामा-
चरणप्रयत्नौ प्रणमत तां कामिनीकामौ ॥ २१ ॥ यक्ष-
स्थलीयदनषामशरीरभागैः पुष्प्यन्ति यस्य विभुनां
पुरुषास्त्रयोऽपि । सोऽयं जगन्नित्यजित्स्वरूपाधारी
भारः पराभ्रह्मरतीति न विस्मयाय ॥ २२ ॥ यथं वीरा

यथं वीरा इति गर्जन्तु तेऽनिशम् । तात्त्रयन्ययत्ना
यस्य सङ्गातं स्तौमि मन्मथम् ॥ २३ ॥ शतशो शश्विनः
सन्तु धीरम्मन्या वनस्ततः । यथं त्वकं स्तुमः कामं
नादशामपि यो जयी ॥ २४ ॥ शम्भुस्वयम्भुहरयो हरि-
लेखणानां यनाक्रियन्त सततं गृहकर्मदाताः । वाचाम-
गोचरचरित्रविचित्रिनाय तस्मै नमो भगवते कुसुमा-
युधाय ॥ २५ ॥ शिव शिव हि शिवेन पुण्यधन्वा प्रल-
यन्तेन किमन्यकारि भस्म । स हि पुनश्चिन्तश्रुताय
लोकं स तु मणिमन्त्रमहापथैरसाध्यः ॥ २६ ॥ स एक-
कीर्णं जयति जगन्नि कुसुमायुधः । हरतापि तनुं यस्य
शम्भुना न हतं यत्नम् ॥ २७ ॥ सन्त्यज्य देहमपि यो
निशिताञ्शर्माश्च कृत्याऽयलैकनिष्ठयं स सहायवर्गम् ।
यो देवदानवमनुष्यसरीसृपादीन्मर्यान्विजित्य हृदि नः
स सुमपुरीयः ॥ २८ ॥ सम्पद्मतरललब्ध्यामनन्यसा-

कोई मिराला ही धनुषधारी है जो बिना शरीरका होकर
बायाँपर गुण (इंद्री) बंधाकर विदोषिनी श्रियोंके नेत्रोंका
धनुष लेकर फूलोंके चरित्रोंके ही तीनों लोकोंको जीतता चला
जा रहा है ॥ १७ ॥ इस कामदेवने जब ब्रह्मा, विष्णु तथा
शिवजीको भी चुका दिया है तब अन्य साधारण लोग
यदि उससे हार गए हों तो कौन बड़ी बात है ॥ १८ ॥
अपनेकों त्रिलोकीरवर माननेवाले ब्रह्मा, विष्णु तथा शङ्करजी जैसे
अथवा अन्य लोग तभीतक चरित्रोंके योग्य हैं जबतक वे
कामदेवके आलेख नहीं घन जाते हैं क्योंकि कामदेवकी चपेटमें
आ जानेपर तो वे सबके सब अपनी-अपनी पत्नियाँके दास
यग जाते हैं ॥ १९ ॥ शङ्करजीके नासरे नेत्रसे भस्म हो
जानेपर और केवल फूलोंके धनुषसे काम लेनेपर भी जो सारे
संसारको व्याकुल कर देता है, वहाँ (कामदेव ही) वास्तवमें
सबसे बड़ा परमेश्वर है ॥ २० ॥ हे मनुष्यो ! जिन कामिनियोंने
बिना शरीरवाले कामदेवको भी सब चरित्रोंले पूर्ण कर दिया है और
जिस कामदेवने श्रियोंको ही अपनी आश्रय बना रक्खा है इन दोनों
बलदा आचरण करनेवाली कामिनी और कामकी सिर झुकाकर
प्रणाम करो ॥ २१ ॥ ब्रह्मा, विष्णु और शङ्कर ये तीनों भी
जब अपनी-अपनी पत्नियोंको क्रमशः अपने मुख, हृदय
और शरीरके बाएँ भागमें बसाकर कामदेवका शोभा मान
रहे हैं तब वह तीनों लोकोंको जीतनेके लिये धनुष धारण
करनेवाला कामदेव यदि अन्य लोगोंको भी चपेटे बांध रहा हो
तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं ॥ २२ ॥ जो लोग वह कहकर

अपनी ईंग होंका करते हैं कि 'हम वीर हैं, हम वीर हैं'
उन्हें भी कामिनी लक्ष भस्म जीत लेती है । हमका श्रेय मैं
कामदेवको देना हूँ क्योंकि उमीके सहायता से वह सबको जीत
पाता है ॥ २३ ॥ ऐसे मैत्रियों धनुषधारी हो सकते हैं जो अपने
आपको बड़ा धीर मानने हों किन्तु हम तो उस कामदेवका ही
लौहा मानते हैं जो उन धनुषधारियोंको भी जीत लेता है ॥ २४ ॥
कारणकी पहुँचसे परे और शत्रुव चरित्रवाले उस फूलोंके अक्ष
धारण करनेवाले भगवान् कामदेवका प्रणाम है जिसने शङ्कर,
ब्रह्मा और विष्णुको भी अपनी हरिणके नेत्रोंके समान आँखोंवाली
पत्नियोंके चरित्रोंमें काम करनेवाला बांध बना दिया है ॥ २५ ॥
शिव ! शिव !! भला बनाइए तो कि प्रलयकालके समय नाशने-
वाले शिवने फूलोंका धनुष धारण करनेवाले कामदेवको भस्म
करके किया क्या, क्योंकि वह तो अब मणि, मन्त्र और श्रीपथि,
सबके प्रभावसे निकलकर संसारको ढगनेके लिये फिर संसारमें
आ धमका है ॥ २६ ॥ जिसका शरीर नष्ट करके भी भगवान्
शङ्कर उसका यत्न नहीं नष्ट कर सके वह कामदेव अपने फूलोंके
अक्षसे बिना किसीकी सहायताके ही अकेला तीनों लोकोंको
जीतता रहता है ॥ २७ ॥ जो अपनी देहका त्याग करके
भी अपने नुकीले बाणों तथा वसन्त आदिकी सहायतासे देवता
राक्षस, मनुष्य तथा सर्प आदि जीवोंको जीत चुका है, उस
फूलोंका धनुष धारण करनेवाले कामदेवका हम अपने हृदयमें
आदर करते हैं ॥ २८ ॥ गम्भीर स्वभाववाले व्यक्तियोंको भी
न मिल सकनेवाली सम्पत्तिका जो स्वामी है, असाधारण

मान्यवहहर्षनिधेः । पुष्पातु चित्तयोनेरधटितघटना-
पटीयसी विभुना ॥ २६ ॥ स्तोकास्तसाधनवता भवता
मनोज स्वैरं जगज्जितमनकृतयापि सर्वम् । स्याच्चेद्भ-
वान्यदुशरः प्रतिलब्धगात्रः कुर्यास्ततो यदपि कर्म
कियन्न जाने ॥ ३० ॥ स्वाप्ताज्ञां यत सर्वतोऽप्रतिहतां
सञ्चार्य धन्यो यदि त्रैलोक्ये ननु केवले मनसिजो देवः
समुद्गीयते । अन्ये त्वस्य शरप्रतापभयतः सम्पीडिताः
प्राणिनः स्वस्वस्त्रीः पुरतो विधाय कृपणाः कुर्वन्ति
वीरा अपि ॥ ३१ ॥ हारो जलाद्रवसनं नलिनीदलानि
प्राक्षेयसीकरमुखस्तुहिनांशुभासः । यस्येन्धनानि सर-
सानि च चम्पनानि निर्वाणमेप्यति कथं स मनोभवा-
न्निः ॥ ३२ ॥ हृदयदणकुटीरे दीप्यमाने स्मराग्नाबुधित-
मनुधितं वा वेत्ति कः पण्डितोऽपि । किमु कुयस्य-
नेत्राः सन्ति नो नाकनार्यस्त्रिदशपतिरहण्यां तापसां
यत्स्तिपेषे ॥ ३३ ॥

लोगोंमें रहनेवाले गर्भका जो भयङ्कर है और जिसका जन्म मनसे
हुआ है, उस कामदेवकी वह शक्ति आप सबको पुष्ट करे
जिसकी सहायतासे वह सङ्गी-प्रवां अगहोनी धारण कर डालता है
॥ २३ ॥ हे मनसे उत्पन्न होनेवाले कामदेव ! तब तुम थोड़ेसे
धरत लेकर और अङ्ग न होनेपर भी केवल अपनी हृष्टतासे ही
सम्पूर्ण जगत्को जीत लेते हो तब यदि तुम शरीरवाले होते
और तुम्हारे पास बहुतसे बाण होते तब तो तुम न जाने क्या-क्या
कर डालते ॥ २४ ॥ तीनों लोकोंमें यदि कोई अङ्गि आग्रा
देनेवाला है तो वह कामदेव ही है क्योंकि अग्न्य जितने
भी धीरे हैं वे सब कामदेवके बाणके भयसे व्याकुल होकर
अपनी-अपनी स्त्रियोंके आगे कायर बने बैठे हैं ॥ २५ ॥
जब हार, जलसे भीगा हुआ वस्त्र, कमलिनीके पते, ठण्डी
फुहारें छोड़नेवाली चन्द्रमाके किरणोंकी चोदनी और गीला
चन्द्रन भी मनसे उत्पन्न होनेवाली (कामकी) अग्निके लिये
हृथन बने हुए हैं तब क्या वह अग्नि किसीके पुष्पाप पुष्प
सकती है ॥ २६ ॥ जब यह हृदयरूपी कोपही कामदेवरूपी
आगसे जलने लगता है तब विचारवान् लोग भी उचित-
अनुचितका विचार छाड़ बैठते हैं । बताइए, क्या देवलोकमें
कमलके समान नेत्रोंवाली देवाङ्गनाएँ कम थीं कि स्वर्गके
स्वामी इन्द्रने तपस्वीकी पत्नी सहस्र्याके साथ सम्भोग
किया ॥ २७ ॥

शृङ्गारस्य आलम्बनविभावाः—नायकप्रशंसा

दाने शौर्ये कश्चित्त्वे वा पण्डित्ये साधुताजने ।
सुयशः प्रथितं येषां जन्मवन्तस्त एव कौ ॥ १ ॥ मदनः
स्त्रीणां करुणो दीनानां दण्डभृत्तथा द्विपताम् । धर्मः
साक्षान्महतां विभक्ति यः कोऽपि धन्योऽस्ती ॥ २ ॥
यद्यपि लाक्षत्यकलाधरं भूतं मार्दवेन गात्रं स्यात् ।
तदपि रिपूणां विजये पवित्रकठिना भवन्ति ते केऽपि
॥ ३ ॥ लज्जा कृतापराधेव कुलीनानां मृगीदृशाम् । येषु
दृष्टेषु निर्याति त एव युवनायकाः ॥ ४ ॥ यद्वापि
कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि । लोकोत्तराणां चेतांसि
को नु विज्ञातुमर्हति ॥ ५ ॥ वयं कृतार्था विभ-
वप्रपूर्णा मन्यन्त एवान्तरिति प्रभूताः । तथा भवन्तो-
ऽपि पुनर्नता ये गीताः परैरेव त एव केचित् ॥ ६ ॥
वसनं सुदृशां मानो मानिनां दीनताधिनाम् । येषु दृष्टेषु
लौक्यैरस्त एव भुवि भाषुकाः ॥ ७ ॥ स्त्रीणां नितम्बाङ्क-

शृङ्गाररसके आलम्बन विभावः : नायक-प्रशंसा

पृथ्वीपर उन्हींका जन्म सकल ॥ जिन्होंने दान, वीरता,
कवित्व, विद्वत्ता तथा सज्जनतामें नाम कमाया हो
॥ १ ॥ वह व्यक्ति धन्य है जो स्त्रियोंको कामदेवके समान,
दीनोंको करुणके समान, शत्रुओंको दण्डधारीके समान और
महापुरुषोंको साक्षात् धर्मके समान प्रसन्न होता है ॥ २ ॥ वे
कोई विचित्र ही पुरुष होते हैं जिनका शरीर यद्यपि लाक्षत्यकी
कलासे भरा हुआ और कामकलासे पूर्ण होता है किन्तु जो शत्रुओंपर
विजय पाते समब वस्त्रके समान कठोर हो जाते हैं ॥ ३ ॥
जिन्हें देख लेनेपर हरियोंके नेत्रोंके समान आँखोंवाली कुलीन
महिलाओंके मुखपरसे अपराधीकी भौंति लज्जा भाग जाती है
वे ही वास्तवमें युवा नायक हैं ॥ ४ ॥ संसारमें निराले उन
महापुरुषोंके मनकी भावनाओंका कौन जान सकता है जो वस्त्रसे
भी कठोर और फूलसे भी अधिक कामल हो जाती हैं ॥ ५ ॥
ऐसे बहुतसे लोग हैं जो अपनेकी समझते हैं कि 'हम सब
कुछ कर चुके हैं, हमारे पास सब प्रकारकी सम्पत्ति है और
आप भी बैसे ही हैं' किन्तु ऐसे लोग होने-गिने होते हैं जो सब
वैभव पाकर भी नष्ट होते हैं और जिनकी प्रशंसा ॥ भी
करते हैं ॥ ६ ॥ जिन्हें देखकर सुनयनी युवतियोंके वस्त्र ढीले
पड़ जाते हैं, अभिमानियोंका गर्व चूर-चूर हो जाता है और
कमलोंकी दीनता दूर हो जाती है, वे ही वास्तवमें पृथ्वीपर
भाषुक कहलानेके योग्य हैं ॥ ७ ॥ जिन्हें देखते ॥ स्त्रियोंके

सनं शक्यश्च द्विपतां करान् । पततो येषु दृष्टेषु त एव
कृतिनो नराः ॥ ८ ॥

नायकभेदाः

विनीतः—यद्रूपवादिभिरुपासितवन्द्यपादे विद्या-
तपोव्रतनिधौ तपसां वरिष्ठे । दैवान्कृतस्त्वयि मया
विनयापचारस्तत्र प्रसीद भगवन्मयमञ्जलिस्ते ॥ १ ॥
प्रियदर्शनः—राम राम नयनाभिरामतामाशयस्य
सदृशीं सद्गुणद्वन्द्वम् । अप्रतर्प्यशुभरा मणीयकः सर्वथैव
हृदयकमोऽस्मि मे ॥ २ ॥ त्यागी—त्यजं कर्णः शिषि-
मौसं जीवं जीमूतयाहनः । दधीर्धृषीचिरस्थीनि नास्त्य-
देवं महात्मनाम् ॥ ३ ॥ दक्षः—स्फूर्जद्वज्रसहस्रनिर्मि-
तमिव प्रादुर्भवत्यप्रतो रामस्य त्रिपुरान्तकृद्विषिपदां
तेजोभिरिच्छं धनुः । शुण्डारः कलमेन यद्गदधले वन्सेन
दोर्दण्डकस्तस्मिन्नाहित एव गजितगुणं कृष्टं च भस्मं

च तन् ॥ ४ ॥ प्रियन्दः—उत्पत्तिर्जमदग्निस्स भगवा-
न्देवः पिनाकी गुरुवीर्यं यत्तु न नद्रिरा पथि न तु व्यक्तं
हि तत्कर्मभिः । त्यागः सप्तसमुद्रमुद्रितमहीनिर्व्याज-
दानावधिः सत्यव्रह्मनपोनिधेर्भगवतः किं वा न लोको-
त्तरम् ॥ ५ ॥ रक्तलोकः—स्नेहं दयां तथा सांख्यं यदि
वा ज्ञानकीमपि । आराधनाय लोकस्य मुञ्चनां नास्ति
मे व्यथा ॥ ६ ॥ शुषिः—का त्वं शुभे कस्य पत्रिग्रहो वा
किं वा मदभ्यागमकारणं ते । आचक्ष्व मन्वा द्याशनां
रघूणां मनः परश्रीयिमुग्रप्रवृत्तिः ॥ ७ ॥ वाग्मी—वाङ्मा-
वर्लं न विदितं न च कार्मुकस्य त्रैयम्बकस्य तनिमा
तत एव दोषः । तथापलं परशुराम मम लमस्य
दिम्भस्य दुर्धिलसितानि मुदं गुरुणाम् ॥ ८ ॥ लब्धदंशः—
ये चन्दारो दिनकरकुलजसन्तानमल्लोमान्नास्मान-
स्तयकमधुपा जहिरं राजनुवाः । रामस्तेपामन्वत्सभवा-

नितम्बसे वरप्र घोर शत्रुघ्नांके हाथसे शस्त्र खिसक पड़ते हैं वे
ही मनुष्य वास्तवमें भाग्यशाली हैं ॥ ८ ॥

नायकोंके भेद

मन्त्र : परशुरामसे राम कहते हैं—जिसके वन्दनीय चरणोंकी
उपासना प्रकृशानी लोग करते हैं, जो विद्या, तप और व्रतके निधान
हैं और जो तपस्विधर्मोंमें श्रेष्ठतम हैं, ऐसे आप महापुरुषके प्रति मैंने
ओईवयोगसे ढिंढाई और अभिनय किया है, उसे हे भगवन्! आप
कृपा करें, मैं आपके सम्मुख आग्यन्त नम्रतासे हाथ जोड़ता हूँ
॥ १ ॥ प्रियदर्शन या मधुर : हे राम ! मेरी भावनाके अनुकूल
सुन्दरता धारण किए हुए, अपने अद्भुतविषय गुणकी सुन्दरता
हीकर आप पूर्ण रूपसे मेरे हृदयमें विराजमान हैं ॥ २ ॥ त्यागी :
कर्णने अपनी साज (कवच) दे दी, शिविने (कपूरकी रक्षाके
लिये) अपना मौस दे दिया, जीमूतयाहनने अपने प्राण दे
दाले और धृषीचिने अपनी हड्डी दे डाली क्योंकि महात्मा लोग
कुछ भी देनेमें सज्जोच नहीं करते ॥ ३ ॥ दक्ष : हाथीके
बन्धोंकी सूँढ़ोंके समान लोभा देनेवाली रामकी दाँतों
भुजाओंपर जब त्रिपुरासुर शिवजीका वह धनुष रक्सा गया
तो देवताओंके सजसे पुष्ट था तथा अत्यन्त प्रभावशाली
सहस्रों वज्रोंसे निर्मित आम पड़ता था सब ऐसा प्रतीत हुआ
मानो वह उनके हाथपर रक्ता-रक्ता चण-भरमें गूँजकर
और खिचकर अपने आप ही टूट गया हो ॥ ४ ॥ प्रियवादी :
रामचन्द्रजी परशुरामसे कहते हैं—'जमदग्नि आपके पिता
हैं, भगवान् महादेवजी आपके गुरु हैं, आपका पराक्रम वाहीसे

नहीं कहा जा सकता, वरन् आपके कमोंसे ही प्रकट होता है
क्योंकि आप जैसे प्रतापी पुरुषने सानां समुद्रोंसे पिराई हुई पृथ्वी
तत्काल दाममें दे दी, इसे त्यागकी पराकाष्ठा कहना चाहिए ।
सचमुच सत्य, प्रकाशान और तपकी निधियासे आप जैसे
भगवान्की कीन-सी यानें संसारमें निराली नहीं होंगी' ॥ ५ ॥
रक्तलोक या लोक-सेवक : अपने वहनोई शस्त्री आपिके यशमें
पहुँचे हुए वशिष्ठजीका सन्देश पाकर उनके वचनमें रामने उन्हें
कहलाया—'यदि प्रजाके सुखके लिये मुझे स्नेह, दया, सुख
वहाँतक कि जानकीका भी परिभ्याग करना पड़े तो मुझे कोई
व्यथा नहीं होगी' ॥ ६ ॥ पवित्र : जब कुशने अपनी राजधानी
अयोध्यासे हटाकर कुशावतीमें बना ली थी उस समय
अयोध्याकी राज्य सत्तामें कुशके अन्तःपुरमें स्त्रीका रूप बनाकर
प्रवेश किया । उसे देखकर पवित्र मनवाले कुशने कहा—'हे
शुभे ! तुम कौन हो ? किसकी स्त्री हो और तुम मेरे पास
क्यों आई हो ? तुम यह समझकर मुँह खोलना कि रघुवंशी
बड़े संयमी होते हैं और वे कभी परश्रीकी ओर आँख नहीं
ठठाते' ॥ ७ ॥ वाग्मी : श्रीरामचन्द्रजी परशुरामसे कहते हैं—
'हे परशुरामजी ! मैं न तो आपकी भुजाओंका बल जानता था
और न महादेवजीके धनुषकी कोमलता जानता था इसीलिये
मुझसे यह भूल हो गई । कृपया मेरी ढिंढाई करना कीजिए
क्योंकि यदि बालक कुङ्कु नटखटपन करें भी तो बड़े लोग उससे
प्रसन्न ही होते हैं ॥ ८ ॥ सूर्यकुलकी चत्रिय-सन्तानरूपी
मल्लिकाष्टी माताके खिले हुए गुच्छेके भीरोंके रूपमें जो चार

स्ताडकाकालरात्रिमन्यूपोऽयं सुचरितकथाकन्दलीमूलकन्दः ॥ ६ ॥ ॥४२॥—प्रायश्चित्तं चरिष्यामि पूज्यानां वो व्यतिक्रमान् । न त्वेव दूषयिष्यामि शस्त्रग्रहमहा-
घनम् ॥ १० ॥ प्रारभ्यते न खलु विघ्नमयेन नीचैः प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः । विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः प्रारब्धमुत्तमजना न परित्य-
जन्ति ॥ ११ ॥ युवा—महोत्सवां वन्तस्ततः स्पृशन्निव द्विपेन्द्रभावं कलभः श्रयन्निव । रघुः क्रमार्थाघनभिन्न-
शैशवः पुषोऽयं माभ्यर्च्यमनोहरं ययुः ॥ १२ ॥ बुद्धिम-
न्तः—धृतस्य यायादयमन्तमर्भकस्तथा परेषां युधि चेति पार्थिवः । अवेद्य धानोर्गमनार्थमर्थविच्छकार नास्त्रा रघुमात्मसम्भवम् ॥ १३ ॥ उत्साहसमन्वितः—
स्थलाकलधमीकचकर्णाय होर्मण्डलं चलगति यस्य खण्डम् । इदं न चक्षुःश्रितपानकेलमहाय कुर्वन्तु शरा

राजपुत्र (राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न) हुए हैं उनमें राम सर्वप्रथम है । वे ताड़काकली कान्तरात्रिके प्रातःकाल हैं और संसारके श्रेष्ठ मनुष्योंकी कथारूपी लताके स्वादिष्ट कन्द हैं ॥६॥ स्थिरः यदि आप जेने पृथ्वीका अनादर करनेका प्रायश्चित्त मैं नहीं कहेंगा तो शस्त्र-ग्रहण करनेके महाघनको कलङ्क लगाऊँगा ॥ १० ॥ याथा पढ़नेके भयसे नीच लोग कोई काम प्रारम्भ ही नहीं करते, जो दुर्लभुक्त लोग होते हैं वे प्रारम्भ तो कर देते हैं किन्तु बाधा पढ़नेपर रोक देने हैं किन्तु उत्तम मनुष्य वे ही हैं जो बार-बार याथापुं पढ़नेपर भी प्रारम्भ किए हुए कामको कभी पूरा किए बिना नहीं छोड़ते ॥ ११ ॥ युवाः जैसे गायका बड़का यद्वा होकर मौड़ हो जाना है और हाथीका बच्चा बढ़कर गजराज हो जाता है वैसे ही जब रघुने अपना बचपन बिताकर युवावस्थामें पर रक्षता तब उनका शरीर यौवनसे और भी खिल उठा ॥१२॥ बुद्धिमे युक्तः शब्दोंके ठीक अर्थ पड़धाननेवाले राजाने 'रवि' धातुका 'गमन' अर्थ समझकर अपने पुत्रका नाम इसलिये रघु रक्खा कि वह सम्पूर्ण शास्त्रोंको भी पार कर लेगा और युद्ध-क्षेत्रमें शत्रुओंके स्थलोंको तोड़कर उनके भी पार जायगा ॥ १३ ॥ उत्साहसे युक्तः देवलोकपर अधिकार किए हुए तारकके घरसे जब देवता लोग देवलोकमें जातेसे उरने लगे तब देवताओंकी सेनाका नेतृत्व करते हुए कुमार कार्तिकेयने कहा—'हैं देवताओं ! मैं तो चाहता हूँ कि जिस तारक शत्रुकी भुजापुं चल-पूर्वक रूपोंके बाल पकड़कर उनकी दुर्दशा करते हुए उन्हें लीचनेके लिये मचली

ममेते ॥ १४ ॥ स्मृतिसमन्वितः—कार्या सैकतलीनहंस-
मिथुना स्रोतोवहा मालिनी पादास्तामभितो निपण्ण-
हरिणा गौरीगुरोः पावनाः । शाखालम्बितघटकलस्य च तरोर्निर्मातुमिच्छाम्यधः शृङ्गे कृष्णमृगस्य वामनयनं कण्डूयमानां मृगोम् ॥ १५ ॥ प्रज्ञावान्—इत्यर्थपात्रानु-
मितव्ययस्य रघोरुदारामपि मां निशम्य । स्वार्थोप-
पत्तिं प्रति दुर्वलाशस्तमितश्वोचद्वरतन्तुशिष्यः ॥१६॥ कलावान्—स स्वयं प्रहृतपुष्करः कृती लोलमालयचलयो हरन्मनः । नर्तकीरभि न याति लङ्घिनीः पार्श्ववर्त्तिपु-
गुरुष्वलज्जयन् ॥ १७ ॥ मानसमन्वितः—ततः प्रहस्या-
पमयः पुरन्दरं पुनर्यभापे तुरगस्य रक्षिता । गृह्णाण शस्त्रं यदि सर्ग एव ते न खल्वनिर्जित्य रघुं कृती भवान् ॥ १८ ॥ शूरः स पञ्चमुक्त्वा मघवस्तमुन्मुखाः करिष्यमाणः सशरं शरासनम् । अतिष्ठदासीदविशेष-

रहती हैं, उसका लहू पीनेका आनन्द मेरे पाशोंको कटसे यहींपर मिल जाय' ॥ १४ ॥ स्मृतिमान् : राजा दुष्पत्त अथवा प्रिया शत्रुनलाका विघ्न बनाते हुए पुराने रथको स्मरण करके सादृश्यसे कहते हैं—'सुनो ! यहाँ अभी मालिनी नदी बनानी है जिसकी रेतमें हंसके प्रांवि घेडे हों, उसके दोनों ओर हिमालयकी बड़ तलहटी दिखानी है जहाँ हरिण घेडे हुए हों, इसीके साथ मैं एक ऐमा बृह भी बनाना चाहता हूँ जिसपर बरकलके वस्त्र डेंगे हुए हों और जिसके नीचे एक हरिणी काले हरिणके संगमे रगड़कर अपनी बाँहें आँख खुलजा रही हो ॥ १५ ॥ प्रज्ञावान् : कौंसने ध्यानसे रघुकी उदार बातें सुनीं पर देखा तो उनके हाथमें केवल मिट्टीका पात्र मचा था अतः उन्होंने इसीसे समझ लिया कि यहाँ काम नहीं बनेगा और वे उनसे बोले ॥ १६ ॥ कलावान् : राजा अभिवर्ष नर्तकीयोंके नाचते समय जब स्वयं मृदङ्ग बजाने लगता था, तब उसके गलेकी माला हिल उठती थी और उस समय वह ऐसा सुन्दर लगता था कि नर्तकीयों सुध-बुध खोकर नाचना भी भूल जाती थीं । इसका फल यह होता था कि उन्हें नाचना सिखानेवाले उनके जो गुरु वहाँ बैठ रहते थे उनके आगे उन नर्तकीयोंकी लज्जित होना पड़ता था ॥ १७ ॥ मानसमन्वितः जब रघुके लज्जकारनेपर भी इन्द्रने दिलीपका छोटा हुआ घोड़ा नहीं लौटाया वरन् युद्धके लिये चुनौती दी तब अरवके रथक रघुने निरुद्ध होकर हैंसते हुए कहा—'यदि आपने यही निश्चय किया हो तो शस्त्र उठाइए और युद्ध कीजिए, रघुकी जीते बिना आप घोड़ा नहीं ले

शोभिना वपुःप्रकर्षेण विडम्बितेभ्यः ॥ १६ ॥ दृढः—
क्षताक्लिष्टायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रुढः।
राज्येन किं तद्विपरीतवृत्तेः प्रालैरुपकोशमलीमसैर्वा
॥ २० ॥ तेजस्वी—न महर्तुमलमस्मि निर्दयं विप्र इत्य-
भिभवत्यपि त्वयि। शंस किं गतिमनेन पन्त्रिणा हन्मि
लोकमुत ते मखाग्निम् ॥ २१ ॥ शास्त्रवत्—कामं
कर्णान्तविधान्ते विशाले तस्य लोचने। अक्षुप्मता तु
शास्त्रेण सूक्ष्मकार्यार्थदर्शना ॥ २२ ॥ धार्मिकः—भवा-
नपीदं परधानवैति महान्दि यत्नस्तत्र देवदारौ। स्थातुं
नियोक्तुर्महि शक्यमग्रे विनाश्य रक्ष्यं स्वयमन्ततेन ॥ २३ ॥

चत्वारो नायकाः

धीरललितः—राज्यं निजितशत्रु योग्यसन्धिं
व्यस्तः समस्तो भरः सम्यग्पालनलालिताः प्रशमि-

ताशेषोपसर्गाः प्रजाः। प्रद्योतस्य मुता यसन्तसमय-
स्वं चेति नाम्ना भूति कामः काममुपैचयं मम पुन-
र्मन्ये महानुत्सवः ॥ १ ॥ धीरशान्तः—तत्र उदयगिगन्वित्रैक
एव स्फुरितगुणधुनिसुन्दरः कलावान्। इह जगति
महोत्सवस्य हेतुनयनवतामुदियाय बालचन्द्रः ॥ २ ॥
धीरोदात्तः—आहूतम्याभिप्रेकाय विसृष्टस्य वनाय च।
न मया लक्षितस्तस्य स्वल्पाऽप्याकारविभ्रमः ॥ ३ ॥
शिरामुलैः स्थन्दन एव रक्तमद्यापि देहे मम मांस-
मस्ति। तृप्तिं न पश्यामि तत्रैव तावत्किं भक्षणार्थं
धिरनो गरुडम् ॥ ४ ॥ स्वसुखनिरभिलाषः स्थितं
लोकहेतोः प्रतिदिनमधवा ते वृत्तिरर्थविधेयं। अनुभ-
वति हि मूर्ध्ना पादयस्तीक्ष्णमुष्णं शमयति परितापं
छाययोपाश्रितानाम् ॥ ५ ॥ धीरोदात्तः—किं ब्रूध रे
व्योमचरा महासुगः स्मरारिस्नुप्रतिपक्षवर्तिनः।

चार प्रकारके नायक

जा सकते' ॥ १८ ॥ शूरः यह कहकर रघुने धनुषपर बाण
बाढ़ाया और पैतरा साधकर वे इन्द्रकी धार ऊपर मुँह करके लड़े
हो गए। उस समय वे पैते लग रहे थे मानों इन्द्रसे युद्ध करनेके
लिये स्वयं शङ्कर भगवान् आ डटे हों ॥ १९ ॥ दृढः जब सिंहने
बलिष्ठजीकी गायपर आक्रमण किया तब दिलीपने उस गायकी
रक्षा करनेके लिये उससे कहा—'हे सिंह! 'लत्रिय' शब्दका अर्थ
ही 'दूसरेको नष्ट होनेसे बचावना' है। यदि मैंने यह काम नहीं
किया तो मेरा राज्य करना ही किन्तु कामका और अपयश लेकर
जीते रहना ही किस कामका' ॥ २० ॥ तेजस्वीः रामने परशुरामसे
कहा—'यद्यपि आपने हमारा अपमान किया है पर आप माझण
हैं इसलिये मैं निर्दय होकर आपकी माँगा नहीं। पर यह
बताइए कि अब इस माँसे मैं आपकी गति रोऊँ या आपका
उन दिव्य लोकमें पहुँचना रोक दूँ जो आपने यज्ञ करके जल
लिए हैं' ॥ २१ ॥ शास्त्रवत्तुः यद्यपि रघुके नेत्र कामांतक फले
हुए और बहुत बड़े-बड़े थे पर उन्हें सबसे अधिक भरोसा अपने
उस शास्त्रचक्रपर था जिससे वे सूक्ष्मसे सूक्ष्म बात भी समझ
जाते थे ॥ २२ ॥ धार्मिकः आपने गुरुकी गायकी रक्षा करनेके
लिये दिलीपने सिंहासे कहा—'हे भाई! तुम भी दूसरेके सेवक
हो और वही जगनसे देवदासकी रक्षा कर रहे हो। तुम यह जानते
होगे कि जिसकी रक्षाका भार सेवककी मिलता है यदि वह नष्ट
हो जाए और सेवक जीता रह जाय तो वह अपने स्वामीके आगे
क्या मुँह लेकर आएगा' ॥ २३ ॥

धीरललितः उदयनके सम्बन्धमें कहा गया है—
'उत्पन्ने शत्रुघातं जानकर अपनी भली प्रकार लाजित
और पालित प्रजाके दुःख दूर करके रागपका सब भार
बोझ मन्त्रियोंको सौंप दिया है, अब वे प्रद्योतकी पुत्री
वासवदत्ताको साथ लेकर वसन्त समयमें आनन्द लें। मैं
इसीको अपना सबसे बड़ा उत्सव मानता हूँ' ॥ १ ॥
धीरशान्तः उदयाचलके गुण और प्रकाशसे सुन्दर तथा
कलावान् एक ही बालचन्द्र (युद्ध) उदय हुआ है जो संसारमें
आँखवालोंके लिये सबसे बड़े महोत्सवका कारण है ॥ २ ॥
धीरोदात्तः रामको जब अभिप्रेकके लिये निमन्त्रित किया
गया और वन जानेकी आज्ञा दी गई तब भी उनके मुखपर
किसी प्रकारके हर्ष या शोककी तनिक-सी भी रेखा नहीं दिखलाई
पड़ी ॥ ३ ॥ जामूनवाहन गरुडसे कहते हैं 'हे गरुड! अभी भी
मेरी नसाँसे रक्त बह रहा है, मेरे शरीरमें मांस भी बचा हुआ
है और मैं यह भी देख रहा हूँ कि तुम्हारा पेट नहीं भरा, तब
बनाओ तुम खाने-खाने रुक क्यों गए' ॥ ४ ॥ एक वैनालिक
दुष्यन्तका वर्णन करता है—'अपने सुन्वको इच्छा जाँचकर आप
प्रजाकी भलाईमें लगे रहते हैं या यह कहना चाहिए कि इस
प्रकार आप अपना धर्म ही पाल रहे हैं क्योंकि वृक्ष अपने सिरपर
तो कड़ी धूप सह लेता है पर अपने तले बैठे हुए जीवोंको छाया
ही देता रहता है' ॥ ५ ॥ धीरोदात्तः तारकासुर देवताओंको

मदीयवाणमणवेदना हि साऽधुना कथं विस्मृतिगोचरीकृता ॥ ६ ॥

शृङ्गारनायकाः

दक्षिणः—प्रसीदेत्यालोके किमपि किमपि प्रेमगुरुरथो रतिक्रीडाः कोऽपि प्रातर्दिनमपूर्वोऽस्य चिन्तयः । सचि-
श्रम्भः कश्चित्कथयति च किञ्चिन्परिजनो न चाहं
प्रप्येमि प्रियसखि किमप्यस्य विह्वलिम् ॥ १ ॥ शठः—
शठोऽन्यस्याः काञ्चीमणिरणितमाकर्ण्य सहसा यदा-
श्लिष्यन्नेष प्रशिथिलभुजग्रन्थिर्भवः । तदेतन्कषाखले
धृतमधुमयं न्यद्रुवचोविण्णेषाधूर्णन्ती किमपि न सखी
मे गणयति ॥ २ ॥ धृष्टः—लालालन्म ललाटपट्टमभितः
केयूरमुद्रा गले धपन्ने कज्जलकालिमा नयनयोस्ताम्बु-
लरागोऽपरः । दृष्ट्वा कोपप्रियायिमण्डनमिदं प्रातश्चिरं
प्रेयसो लीलातामरसोदरे मृगदृशः श्वासाः समाप्तिं गताः
॥ ३ ॥ अनुकूलः—अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगतं सर्वास्व-
वस्थासु यद्विभ्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्महायौ

जलकारकर कहना है—‘अरे कार्तिकेयकी यड़ाई करनेवाले तथा
आकाशवासी देवताओ ! क्या आज मुझें मेरे बाणोंके पाकोंकी
पीड़ा भूल गई है जो इस प्रकार बक-बक कर रहे हो ॥ ६ ॥

शृङ्गार रसके नायक

दक्षिण नायक : उन्हे देखकर बड़े-बड़े प्रेमी लोग कुछ म
कुछ आनन्द ही पाते हैं, वह प्रतिदिन कंई न कंई नई
रतिक्रीड़ा करता है, उसका विषय भी कुछ गिरला ही है,
उसके परिजन भी अत्यन्त विरवासके साथ उससे बातचीत
करते रहते हैं । हे सखी ! मैं उसमें कोई भी तो दोष नहीं पाती
॥ १ ॥ शठ नायक : मुझे अपनी भुजाओंमें लिपटाए
हुए जब शठनायकने किसी दूसरी नायिकाकी लगदीकी
मणियोंकी खनखनाहट सहसा सुनी तो अपने हाथ ढीले कर
दिए, उस समय जब मैंने पूछा कि ‘यह क्या?’ तब उसने बड़ी
मीठी-मीठी बातें बनाकर मुझे बहला दिया । मैं विषकी घाँलोंसे
उसे घूरती भी रही फिर भी उसने मेरी तनिक भी परवाह न
की और बात बनाकर चलता बना ॥ २ ॥ धृष्ट (ढीठ) नायक :
‘उसके माथेपर लावका चिह्न बना हुआ था, गलेमें भुजबन्दकी
छाप पड़ी हुई थी, घोड़ोंपर कान्तलकी कालिमा थी, दोनों नेत्रोंमें
पानकी लालीकी छाप थी’ इस प्रकार अपने प्रियके इस कांक्ष
उत्पन्न करनेवाले शृङ्गारको प्रातःकाल देरतक देखकर उस
मृगनयनीके रवास लीला-कमलमें ही समाप्त हो गए ॥ ३ ॥

रसः । कालेनावरणाव्यान्परिणते यत्स्नेहसारे स्थितं
भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि नम्राप्यते ॥ ४ ॥
प्रतिनायकः—इत्युक्तवन्तमवदन्निपुरारिपुत्रं दैत्यः
कुधौष्टमधरं किल निर्विभिद्य । युद्धार्थमुद्रदभुजावल-
दपितोऽसि वाणान्सहस्र मम सादितशत्रुपृष्ठान् ॥ ५ ॥

सात्त्विकनायकगुणः

धृष्टः—उत्तालनाडकोन्पातदर्शनेऽप्यप्रकम्पितः ।
नियुक्तस्तम्भमाधाय खौणेन विचिकित्सति ॥ १ ॥ स्वर्धा—
एतां पश्य पुरःस्थलीमिह किल क्रीडाकिरातो हरः
कोदण्डेन किरीटिना सरभसं चूडान्तरे ताडितः ।
इत्याकर्ण्य कथाद्भुतं हिमनिधावद्रो सुभद्रापतेर्मन्दं
मन्दमकारि येन निजयोदोर्दण्डयोर्मण्डलम् ॥ २ ॥
शौर्यशोभा—रथी निपट्री कवची धनुष्मान्दसस्त राज-
न्यकमेकवीरः । निवारयामास महाधराहः कल्पलवो-
द्भुतमिवार्णवाभः ॥ ३ ॥ विलासः—एवंविधेनाहवचे-

अनुकूल : जो सुख और दुःख दोनोंमें एक ला रहता है, सब
अवस्थाओंमें साध देता है, जिससे हृदयको बुझापेमें विभ्राम
मिलता है, जिसमें सदा प्रेम बना रहता है तथा जो बहुत कास
बीन जानेपर भी प्रेमपात्र बना रहता है, ऐसा स्नेही मनुष्य कोई
विरला हो प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ प्रतिनायक : कुमार
कार्तिकेयकी बात सुनकर तारफने कुछ होकर, कार्तिकेयपर दौँत
पाँसकर दोनोंसे बाँठ चबाने हुए कहा—‘यदि तुम्हें मुझके लिये
अपनी प्रचण्ड भुजाओंका घसपड़ है तो आओ और शत्रुओंके
पीठको चरतनी बना देनेवाले मेरे बाणोंकी चोट चलो ॥ ५ ॥

सात्त्विक नायकके गुण

धृष्टः : जो राम भयङ्कर ताड़काके उत्पातको देखकर
भी अडिग रहे वे ही जब उस ताड़काको मारनेके लिये निकु
किण गए तब उन्हें यह हिचकिचाहट होने लगी कि स्त्रीपर कैसे
बाध चलानें ॥ १ ॥ स्वर्धा : ‘देखिए, यही आगे वह स्थली
है जहाँ किरात-वेशाधारी शिवजीके सिरपर अर्जुनने अपने
धनुषसे चोट की थी ।’ हिमालय पर्वतपर अर्जुनकी यह कथा
सुनकर उन्होंने भी अपनी दोनों भुजाएँ धीरे-धीरे मिलाकर
गोल कर ली ॥ २ ॥ शौर्य : जैसे प्रलयके समय बराह भगवान्
समुद्रके बड़े हुए जलको चोरते चलते थे वैसे ही घोड़ेपर बड़े,
मूर्धार बाँधे, स्वाभिमानी वीर आज अकेले ही शत्रुओंकी सेनाको
चोरते चले जा रहे थे ॥ ३ ॥ विलास : जब अजने अपने

पितेन त्वं प्रार्थ्यसे हस्तगता ममैभिः । तस्याः प्रति-
द्विन्द्वभवादिपादात्सद्यो विमुक्तं सुखमायभासे ॥ ४ ॥
माधुर्यम्—कपोले जानक्याः करिकलभदन्तचुनिमुषि
स्मरस्मेरं गण्डोद्गमरपुलकं ययत्रकमलम् । मुहुः पश्य-
श्चरवन्नजनिस्वरसेनाकलकलं जटाजूटग्रन्थिं द्रवयति
रघूणां परिधृढः ॥ ५ ॥ गाभीर्यम्—प्रसन्नतां यो न
गतोऽभियेकतस्तथा न ममलौ घनवासदुःखतः । मुखा-
श्रुजः श्रीरघुनन्दनस्य सदास्तु मे मञ्जुलमङ्गलप्रदः
॥ ६ ॥ स्थैर्यम्—अथात्सरोमीनिरपि क्षणेऽस्मिन्द्वारः
प्रलम्बयानपरो यभूव । आत्मेश्वराणां नहि जातु विघ्नाः
समाधिभेदप्रभवो भवन्ति ॥ ७ ॥ तेजः—यत् नूतनकृ-
ष्णाण्डफलानां के भयन्त्यमी । अङ्गुलीदर्शनाद्येन न
जीवन्ति मनस्विनः ॥ ८ ॥ ललितम्—लावण्यममध-
विलासविजृम्भितेन स्वाभाविकेन सुकुमारमनोहरेण ।
किं वा ममेव ललितं योऽपि ममोपदेष्टा तस्यैव किं न
विषमं विवर्षीत तापम् ॥ ९ ॥ औदार्यम्—गृहीतप्रति-

मुक्तस्य स धर्मविजयी नृपः । श्रियं महेन्द्रनाथस्य
जहार न तु मेदिनीम् ॥ १० ॥ सदुपग्रहः—एते वयममी
द्वाराः कन्येयं कुलजीवितम् । द्यूत येनात्र यः कार्यम-
नास्था याहावस्तुप ॥ ११ ॥

तरुणीवर्णनम्

अदम्भा हि रम्भा विलक्षा च लक्ष्मीर्घृताची द्विया
क्षीरसञ्ज्ञादिनास्या । अहो जायते मन्दचर्णाश्रपणां
समाकर्ण्य तस्या गुणम्यैकदेशम् ॥ १ ॥ अपाङ्गतरले
दृशो तरलवक्रयणां गिरो विलासभरमन्धरा गगिरनीय
कान्तं मुखम् । इति स्फुरितमङ्गके मृगदृशां स्वतो
लीलया तदत्र न महोदयः कृतपदाऽपि संलज्यते ॥ २ ॥
अमन्दानन्दनिष्यन्दमपास्तान्यक्रियाक्रमम् । जगज्ज-
न्मोत्सवे तस्याः पीतामृतमिवाभयम् ॥ ३ ॥ अमलमृ-
णासकाण्डकमनीयकपोलरुचेस्तरलसलीलनीलनलिनप्र-
सिक्कुलदृशः । बिकसदशोकशोणकरकान्तिभूतः सुतनो-

सब शत्रुओंको हरा दिया तब उसने इन्दुमती को बुद्ध-भूमि
दिखाते हुए कहा—'हे इन्दुमती ! यहाँ राजा साँग इस
प्रकार सोए पड़े हैं कि बालक भी उनके शस्त्र क्षीन जावें,
हैलो, इसी बलपर ये तुम्हें मेरे हाथोंसे क्षीयने चले थे' ॥ ४ ॥
माधुर्यः श्रीजानकीजीके कपोलपर हाथोंके बन्धके दौलती
धमक चुरानेवाली सुन्दर मुस्कराहट थी और कपोलोंपर
सुन्दर पुलक बिराजमान थी, उसे बार-बार देखते हुए और
राजसौकी सेनाका कोलाहल सुनते हुए रामचन्द्रजी अपने
जटाजूटकी गोंठ कसते जा रहे थे ॥ ५ ॥ गाभीर्यता : जो
अपने राज्याभियेककी बात सुनकर प्रसन्न नहीं हुए और
रामबासकी बात सुनकर दुःखी नहीं हुए ऐसे श्रीरामचन्द्रजीका
मुखकमल सदा हमारा मङ्गल करे ॥ ६ ॥ स्थिरता : उस
समय अप्सराओंका सुन्दर गीत सुनकर भी महादेवजी समाधि
खाकर बैठ गए क्योंकि जो आत्मेश्वर होते हैं उनकी समाधि
किसी प्रकारके विघ्न नहीं तोड़ पाते ॥ ७ ॥ तेजः कही तो, वे
तेजस्वी कौन हैं जिनके उँगली दिखाने-मात्रसे लोग कुम्हड़-
बलिया जैसे खूब जाते हैं ॥ ८ ॥ ललितः सुन्दर, स्वाभाविक,
सुकुमार, कोमल और मनोहर काम-चेष्टाओंके द्वारा जिस प्रियने
मुझे ताप दिया है, हे सखी ! यह न समझना कि वह ताप मुझे
ही प्राप्त हुआ है, उसे मुझसे भी बढ़कर हुआ होगा ॥ ९ ॥
उदारता : राजा रघु तो धर्म-युद्ध करते थे इसीलिए उन्होंने

महेन्द्र पर्वतके राजाको बन्दी तो बना लिया पर जब उसने
इनकी अर्धीनता स्वीकार कर ली तब उसे छोड़ भी दिया ।
इस प्रकार उन्होंने महेन्द्रके राजाकी राज्यश्री तो ले ली पर राज्य
उन्हींको सौटा दिया ॥ १० ॥ कृपा : हम आपके सम्मुख हैं, ये
हमारी पत्नियाँ हैं, यह हमारे कुलकी प्राण-कन्या हैं, अब आप
कहिए कि हम आपकी क्या सेवा कर सकते हैं क्योंकि अन्य सब
बाह्य वस्तुओंमें हमारी कोई भद्रा नहीं है ॥ ११ ॥

नयेलीका वर्णन

उसके थोड़े-से गुणकी चर्चाआत्र सुनकर रम्भाका गर्व गल
गया, लक्ष्मी लज्जित हो गई, घृताचीने लाजसे अपने सिरपर
बख उक लिया और पार्वतीजी भी रुक पड़ गई ॥ १ ॥ तिरछी
चितवनवाली चञ्चल छाँसें, सीम गतिसे कठोर वचन बोलने-
वाली वाक्की, हाव भावसे भरी हुई मन्द-मन्द चक्ष, अत्यन्त
सुन्दर मुख, ये सब गुण अपने आप ही मृगके नेत्रके समान
छाँसेंवाली छिपोंके अङ्गोंमें प्रकट हो गए किन्तु छाती पर जो
उभार आने लगा है वह आता हुआ भी दिखाई नहीं पड़ा रहा है
॥ २ ॥ अत्यन्त आनन्दमें निमग्न होकर और सब काम छोड़कर
यह संसार स्त्रीके जन्मोत्सवपर इस प्रकार आनन्दित हुआ मानो
उसे अमृत पीनेकी मिल गया हो अर्थात् स्त्रीके उत्पन्न होनेके
समय संसारको अमृत पीनेका-सा आनन्द मिला ॥ ३ ॥ स्वच्छ
कमलकी भाँजके समान सुन्दर जिसके गाल हैं, चञ्चल और

मंदलुलितानि हन्त ललितानि हरन्ति मनः ॥ ४ ॥
 अमुष्या लावत्यं मृदुलमृदुलानप्यवयवान्मनोलील्यं
 धातुः कर्कशितनां मे विमृशति । पदं विसृजे धत्ते
 मतिरिति परा पङ्कजधरा धव्यं वत्याणीयं कलितसङ्क-
 नैरेव रञ्जिता ॥ ५ ॥ अमृतं तदधरविभ्यो धवनेष्वमृतं
 विलोकनेऽप्यमृतम् । अमृतभृतौ कञ्चकम्भौ सत्यं सा
 तृष्टिर्पश्ये ॥ ६ ॥ अलिकुलमञ्जलकेशी परिमलवद्भुला
 रसावहा तन्वी । किल्लयपेशलपाणिः कोकिलकल-
 भापिणी प्रियतमा मे ॥ ७ ॥ अस्याश्चेद्वनिसौकुमार्यम-
 धुना हंसस्य गर्वणं संलापो यदि धार्यतां परभृतैर्वा-
 च्यमन्यत्रनम् । अङ्गानामकटोरता यदि रथप्रागैव सा
 मालतो कान्तिश्चेत्कमला किमत्र यद्गता कायायमालम्ब-
 ताम् ॥ ८ ॥ अस्याः सर्गाधिधौ प्रजापतिरभूच्चन्द्रो नु
 कान्तिप्रदः शृङ्गारैकसः स्वयं नु मदनो मासो नु
 पुष्पाकरः । वेदाभ्यासजडः कथं नु विषयव्यावृत्तकौ-

लीलासे भरे हुए नीले कमलके समान जिसकी हुई जिसकी छाँवें
 हैं और फूले हुए अशोकके पत्तोंके समान जिसके हाथोंकी लाल
 कान्ति है, उस सुन्दरी नायिकाकी मदसे भरी हुई सुन्दर
 कीड़ाएँ हाथ ! हमारा मन चुराए लिए जा रही हैं ॥ ४ ॥ इसकी
 सुन्दरता, अत्यन्त कोमल पङ्क, और मनकी चञ्चलता के साथ
 मल्लोके हाथकी कटोरनाका अब हम स्मरण करने हैं तब यही बात
 जैवती है कि प्रह्लादांगे यह कल्याणमयी नायिका निरचय ही अपने
 सञ्चित पुरस्कारोंमें ही गर्वा होगी ॥ ५ ॥ उसका निचला ओठ, बाली,
 छाँवें और पदोंके समान उठे हुए स्तन सभी अमृतसे भरे हैं ।
 सचमुच यह मल्लाजीकी कोई निराली ही रचना है ॥ ६ ॥ भौतोंके
 समूहके समान सुन्दर काले बालोंवाली, सुगन्धसे भरी हुई,
 रसीली, पत्तोंके समान विकने हाथोंवाली और कोयलके समान
 मधुर बोलनेवाली यह दुहलो-पनली नायिका मुझे बड़ी प्यारी
 लगती है ॥ ७ ॥ इसकी सुकुमार गतिने हंसोंकी चाल व्यर्थ
 कर दी है, इसकी सुन्दर बाली मुनकर कोयलोंको भी अपना
 मुँह स्पर्श लेना चाहिए, इसके अङ्गोंकी कोमलताके आगे
 मालतीकी लता पथर-सी लगती है, अधिक क्या कहें, इसकी
 कान्तिके आगे लक्ष्मीको तो भगवा रँगाकर संन्यासिनी बन जाना
 चाहिए ॥ ८ ॥ इमे (उर्वराको) बनानेके लिये या तो चाँदनी
 देनेवाले चन्द्रमा ही स्वयं प्रह्लाद बने होंगे या शृङ्गाररसके देवता
 स्वयं कामदेवने इसे बसाया होगा या फिर वसन्त ऋतुने ही
 इसका निर्माण किया होगा, नहीं तो क्याइए भला, वेद पद-

तूहलो निर्माणुं प्रभवेन्मनोहरमिदं रूपं प्राणो मुनिः
 ॥ ९ ॥ अतन्द्रवन्द्राभरणा समुदीपितमन्मया । तार-
 कातरला इयमा सानन्दं न करोति कम् ॥ १० ॥
 अभ्यासः कर्मणां सम्यग्गन्पादयति कौशलम् । विधिना
 तावदभ्यस्तं यावत्तृष्टा मृगेक्षणा ॥ ११ ॥ आयाति
 धियमञ्जसा नयनयोरम्भोरुहप्रेयसी सद्भाहः स्तनयोरयं
 कलयते सम्भोगयोग्यां दशाम् । वैदग्ध्येन सहासिकां
 धितनुते वाचामिधं प्रक्रिया मुग्धायाः पुनरैन्द्रवीं न
 सहते मुख्यामभिख्यां मुखम् ॥ १२ ॥ आस्यप्रोज्झित-
 धार्वणेन्दुयशसं नेत्रावधूतोत्पलभीगर्षां दशनच्छब्दव्य-
 वहिताशोकप्रवालपनिम् । एतां दृष्टिसुधाप्रपां त्रिज-
 गतः शिल्पी विधाय स्वयं मन्त्रे हर्षवशाद्जायत निज-
 स्तोत्रप्रचण्डः कविः ॥ १३ ॥ इयं व्याधायते बाला
 भ्रम्याः कार्मुकायते । कटाक्षाश्च शरायस्ते मनो मे
 हरिणायते ॥ १४ ॥ उचुक्लस्तमभरतास्ततास्तमभ्यं विशिल-

पदकर पथराए हुए और भोग-विलाससे दूर रहनेवाले वे बड़े
 मुनि ब्रह्माजी ऐसा सुन्दर रूप कैसे बना सकते थे ॥ ९ ॥
 पृथिमाके चन्द्रमाके समान चमकीले आभूषणोंसे सजी हुई,
 चञ्चल चितवनवाली और कामको उकसानेवाली यह सोलह
 वर्षकी कुमारी किसे आनन्द नहीं देती ॥ १० ॥ अभ्यास करते-
 करते ही मनुष्य कुशल होता है । अतः जब ब्रह्माने स्त्रीकी रचना
 की तो समस्त लेना चाहिए उससे पहलेतक वे अभ्यास
 ही कर रहे थे ॥ ११ ॥ कमलके समान प्यारी लगनेवाली
 वह भोली-भाली नायिका नेत्रोंकी शोभा बढ़ाती है, अपने बड़े-
 बड़े स्तनोंसे सम्भोगके योग्य होनेकी दशा बताती है, चुराईले
 बोलनेकी कला दिखाकर साथमें बैठनेकी योग्यता सिद्ध करती
 है और उसका यह मुख तो चन्द्रमाकी मुख्य शोभाकी भी
 लजाए जा रहा है ॥ १२ ॥ पृथिमाके चन्द्रमाका यश उसके मुखने
 हरण कर लिया है, कदल-दलकी शोभा उसके नेत्रोंके कम कर
 दी है और उसके ओठोंने अशोकके पत्तोंकी शोभा फीकी कर दी
 है, इस प्रकार नेत्रोंके लिये अमृतकी वावरीके समान उस
 नायिकाको बनाकर ब्रह्मा इतने हर्षसे विह्वल हो गए हैं कि वे
 दिन-रात बैठे अपनी प्रशंसाके ही गीत गाया करते हैं ॥ १३ ॥ यह
 बाला हमारे मनरूपी हरिकके लिये ऐसा बहेलिया बनी जा
 रही है कि इसकी भाँवें धनुष बन रही हैं और इसकी तिरछी
 चितवनें बाण बनी जा रही हैं ॥ १४ ॥ अपने उठे हुए स्तनोंके
 भारसे जिसकी कमर लचक गई हो, जिसके गँठे हुए बने बालोंमें

पद्ममकषयान्तयान्तस्तनम् । वक्राः जभ्रमदलिभीतभी-
तनेत्रं मुग्धाक्षी मम धुरि मन्दमन्दमेनि ॥ १५ ॥ उदयदुदय-
वीक्षणाय पन्थुधपलदशस्त्रपया निरुध्यमानम् । मन
इव रूपणस्य दानकाले कति न नतान गतागतानि
चक्षुः ॥ १६ ॥ उदासीनालीनामपि वचसि लीनाननुल-
सन्नपाधीना दीनालपनपदवीनायकभूता । कवीनामा-
सीना हृदि कुमुदिनीनाथवदना नयीना मीनाक्षी ध्यथ-
यति मुनीनामपि मनः ॥ १७ ॥ एकान्तसुन्दरविधान-
जडः क धेधाः सर्वाङ्गकान्तिचतुरं क च रूपमस्याः ।
मम्ये महेश्वरभयान्मकरध्वजेन प्राणाधिना युषतिरूप-
मित्रं गृहीतम् ॥ १८ ॥ एताः स्खलद्वल्यसंहनिमेखलो-
स्थम्भशूरा नूपुररथाङ्गतराजहंसाः । कुर्वन्ति कश्यप
मनो विवर्शतकश्यो विश्वस्तमुग्धहरिणीसदृशैः कटाक्षैः
॥ १९ ॥ एषा भविष्यति विनिद्रसरोरुहाक्षी कामस्य
कापि दयिता तनुजानुजा वा । यः पश्यति क्षणमिमां

कथमन्यथासां कामस्तमस्तकृष्णस्तकृष्णं दिनस्ति
॥ २० ॥ कर्पूरेण स्थलचिन्तना कुङ्कुमेनालघानं माध्या-
कानि प्रतिदिनपयः पञ्चवाणः कृपाणः । तन्नाम्यत्रा
यदि किल भवेन्काञ्चनी कापि धल्ली सा चन्द्रम्याः
किमपि लभते मुग्धः सांकुमार्यम् ॥ २१ ॥ किं कामुदी
शशिकलाः सकला चिच्छुर्य संयोज्य चामृतस्मेन पुनः
प्रयत्नान् । कामस्य घोरहृदङ्कनिदग्धमूर्ध्निः सञ्जीव-
नागधिर्यं शिष्टिना विधात्रा ॥ २२ ॥ किमिन्दुः किं
पद्मं किमु मुकुरशिवं किमु मुग्धं किमञ्जु किं मीनां
किमु मदनवाणां किमु दशां । खगां वा गुच्छां वा
कनककलशं वा किमु कुचां तडिडा नागा वा कनक-
लतिका वा किमवला ॥ २३ ॥ कुङ्कुमपङ्केनाङ्गिन्दहा
गौरपयोधरकम्पितहागा । नूपुरहंसरणपदपद्मा कं न
वर्शिकुरुते भुवि रागा ॥ २४ ॥ कुचाभ्यां भास्यन्ती
विजितलकुचाभ्यां युवमनो हरस्ती चिच्छुर्यैः सरसि

फूल खोले हुए हैं, जो अपने मुख-कमलपर मैथुनाने हुए धीरे-धीरे
सकपकाए हुए नेत्रोंसे देख रही हैं, वह भोले-भोले नेत्रवाली
धीरे-धीरे मेरे पास आ रही है ॥ १५ ॥ उस चञ्चल नेत्रवाली
नायिकाके नेत्र अपने पनिका द्रव्य करनेके लिये उन्मी प्रकार कई
बार खिले और फिर जाग्रते कुछ गप, जैसे किसी कम्पसका
मन दान देने समय बहुत आगा-पीछा करता है ॥ १६ ॥
किसी बातमें चित न लगानेपर भी जो लम्बियोंके कहनेमें चलती
है, नायककी बातमें बात मिलाने समय जाग्रते के बारे लिकुड़
जाती है, कश्चियोंके हृदयमें समाई रहती है, चन्द्रमाके
समान मुखवाली है और मछलीके समान नेत्रवाली है, वह
मई-मधेली एक बार मुनियोंका मन भी भ्रमभोर देती है ॥ १७ ॥
कहाँ तो आँखोंको सुन्दर बनानेकी कलासे अनभिज्ञ गङ्गाजी,
और कहाँ यह सब आँखोंकी कान्तिसे सजा हुआ इसका रूप !
इससे मैं तो यह समझता हूँ कि शङ्करजीके कोपसे अपने प्राण
बचानेके लिये कामदेवने ही युवतीका रूप धारण कर लिया है
॥ १८ ॥ अपने डीले कङ्कमोंको सँभालती हुई, अपनी करधनीके
धुँवरु बजाती हुई, अपने बिजुओंकी मधुर स्तनखनाटसे
राजहंसोंको पास बुलानेवाली और विरवासमें भरी हुई भोली-
भाखी हरिणीके नैनोंके समान धितवनवाली ये तरुणी स्त्रियाँ
कितना मन नहीं हर लेती ॥ १९ ॥ खिले हुए कमलके समान
आँखोंवाली यह नायिका निरञ्ज रूपसे या तो कामदेवकी पत्नी
है या कन्या है या बहिन है, नहीं तो उसकी ओर सनिक-सा

देखनेवाले उम युवकों कामदेव इनकी निर्दयताके साथ क्यों
मार डालता ॥ २० ॥ यदि कश्यपकी धरती हो, कुङ्कुमकी बगारी
हो, प्रतिदिन दागकी मन्दिरासे सीकरी जानी हो और कामदेव
ही किसान हो, तब उसमेंसे यदि कोई सोनेकी लता उगम
हो तो वह कहाँ इस सुन्दर भाँहावाली नायिकाकी कामलता-
तक कुछ-कुछ पहुँच पा सकती है ॥ २१ ॥ एषा मङ्गाजीने चोर्दनी
और चन्द्रमाकी कलाधोंका चूर्ण बनाकर उसे बड़े जतनसे
चामृतके रसमें भिगाकर भगवान् शङ्करकी भयानक हुकारसे
जले हुए शरीरवाले कामदेवको अङ्घित करनेके लिये ही तो
यह नायिकाकुरी सँजीवनी छीपधि नहीं बनाई है ॥ २२ ॥
जब कोई व्यक्ति इस नायिकाका मुख देख लेता है तो उसे
भ्रम होने लगता है कि यह चन्द्र है या कमल है, या दर्पण
है या मुग्ध ! इसकी आँखोंको देखकर भ्रम होता है कि ये कमल
हैं या मछलियाँ हैं या कामदेवके माण हैं या नेत्र हैं ! उसके
स्तनोंको देखकर भ्रम होता है कि ये चक्रे हैं या फूलोंके गुच्छे
हैं या सोनेके घड़े हैं या स्तन हैं और उस पूरी नायिकाके
शरीरकी देखकर यह भ्रम होता है कि यह विजली है या तारा
है या सोनेकी लता है या नारी है ॥ २३ ॥ जिनके शरीरपर
कुङ्कुम पुता हुआ है, जिनके गोरे स्तनोंपर हार काँप रहे हैं और
जिनके चरण-कमलके पास बिजुओंकी रुनझुनमें हंसकी बोली
गूँज रही है ऐसी रमणियाँ किसे बरसमें नहीं कर लेती ॥ २४ ॥
जिसमें अपने बहुरकी जीतनेवाले सुन्दर स्तनोंसे युवकोंका मन

विहरन्ती मधुरगीः। तरुण्या लावण्यं किमपि विदधा-
नार्भकविधौ नवीना मीनाली व्यधयति मुनीनामपि
मनः ॥ २५ ॥ कचस्त्रभूमङ्गैः कचिदपि च लज्जापरि-
णतैः कचिद्भूतित्रस्तैः कचिदपि च लीलाविलसितैः।
नयोढानामेभिर्वदनकमलैर्नचलितैः स्फुरत्लीलालीना-
मकरपरिपूर्णा इव दृशः ॥ २६ ॥ घुणाक्षरन्यायतया
विधात्रा विनिर्मितेयं मृगशावकाली। जाने पुनः
कांशलमेतदीयमेतादृशीं यद्यपरां विधत्ते ॥ २७ ॥ चन्द्रो
जडः कदलिकाण्डमकाण्डशीतमिन्दीवराणि च विमु-
द्रितविभ्रमाणि। येनाक्रियन्त सुतनाः स कथं विधाता
किं चन्द्रिकां कचिदशीतदधिः प्रसूते ॥ २८ ॥ चित्ते
निवेश्य परिकल्पितसत्त्वयोगाप्रपोष्येन विधिना
विहिता कृशाङ्गी। स्मरन्सृष्टिरपरा प्रतिभाति सा
मे धातुर्विभुन्धमनुचिन्त्य घपुञ्ज तस्यारः ॥ २९ ॥ तनु-
स्पर्शादस्या दरमुकुलिते हृत्त नयने उद्भ्रमोभाञ्जं

वज्रति जडतामङ्गमखिलम्। कपोलौ धर्माद्रौ ध्रुवमुपर-
ताशेषविषयं मनः सान्द्रानन्दं स्पृशति भटिति ग्रह
परमम् ॥ ३० ॥ दग्धो विधिर्विधत्ते न सर्वगुणसुन्दरं
जनं कमपि। इत्यपवादभयादिव मुग्धाङ्गी निर्मिता
विधिना ॥ ३१ ॥ दृशः पृथुतरीकृता जितमिजाजपञ्च-
न्विपञ्चतुभिरपि साधुसाध्विति मुखैः समं व्याहृतम्।
शिरांसि चलितानि विस्मयवशाकुर्वन् वेधसो विधाय
ललनां जगत्त्रयललामभूतामिमाम् ॥ ३२ ॥ न देवकन्यका
नापि गन्धर्वकुलसम्भवा। तथाप्येषा तपोभङ्गं
विधातुं वेधसोऽप्यलम् ॥ ३३ ॥ निर्माणकौशलं धातुव्य-
म्बिका लोकचक्षुषाम्। कीडागृहमनङ्गस्य सेयमिन्दीव-
रेक्षणा ॥ ३४ ॥ निर्माणं नयनश्रियः कुवलयं वक्त्रस्य
दासशशी भ्रूयुग्मस्य लनाभि-मम्मथचतुर्ज्यांस्त्ना
स्मितस्याञ्जलः। सङ्गीतस्य च मत्तकोकिलवतान्मुच्छि-
ष्टमेणीदृशस्त्वर्धाङ्गीणमहो विधेः परिणतं विज्ञानचित्रं

लुभा लिया है, जिसकी बोली अत्यन्त मधुर है, जो अनेक हाव
भावके साथ तात्प्राथम्ये विहार करती है वह मछलीके समान
नेत्रवाली नहीं नयनी मुखियाका मन भी झकझोर डालती है
॥ २२ ॥ कभी भीहें चढ़ाकर, कभी लाजसे झेंपकर, कभी डरसे
घबराकर, कभी हाव-भावसे खेल करके इन नयनी नारियोंके
मुख-कमलकी चञ्चल चितवन छाँवोंको अनेक प्रकारकी सुन्दर
लीलाओंसे भरे डालती हैं ॥ २३ ॥ मछलाने केवल आटकलसे
ही इस मृगके समान छाँवोंवाली नारियोंको बना डाला है,
क्योंकि उसमें कोई कीराएँ हैं यह तो हम तब जानें जब वह
ऐसी ही कोई दूसरी बना दे ॥ २४ ॥ चन्द्रमा जड़ है, यह चेतनतासे
भरी है, केला अत्यन्त डबड़ा होता है पर इसे जूनेसे गरभी घाती
है, कमल कभी-कभी मुँदे रहते हैं पर इसका शरीर सदा
खिला रहता है, तब उन वस्तुओंसे मछली इस सुन्दर
शरीरवालीकी आकृति कैसे बना सकते हैं? कहीं गरम किरणोंवाले
सूर्यसे चोँदनी उत्पन्न हुआ करता है ॥ २५ ॥ मछली शक्ति
और उसकी सुन्दर देह दोनोंका विचार करके मेरी समझमें तो
यही आता है कि सुन्दरियोंके बनानेकी यह कोई नहीं निराली
कला है क्योंकि मछलीने अपने मनमें पहले इसके रूपका ठीक
ध्यान करके और नये-नये अच्छे गुणवाले पदार्थोंकी रचनाकर
अभ्यास करके तब कहीं इस दुबले-पतले अङ्गवाली नायिकाका
शरीर बनाया होगा ॥ २६ ॥ जब इस नायिकाके शरीरका स्पर्श
करते हैं तब अश्वि धन्द हो जाती हैं, रोंगटे उठ खड़े होते हैं,

सब अङ्गोंको काठ मार जाता है, मुँहपर पसीना छूटने लगता है
और मन संसारके सब विषयोंसे हटकर अत्यन्त घने आनन्दमें
मस्त होकर परमानन्दका अनुभव करने लगता है ॥ २७ ॥
मछलीने इस भोली-भाली छाँवोंवाली नायिकाकी इसलिये
रचना कर दी कि कहीं कोई उन्हें यह कलङ्क न लगावे कि इस
मुए मछलाने सब गुणोंसे भरा हुआ कोई व्यक्ति बनाया ही नहीं
॥ २८ ॥ जब मछलीने इस त्रिलोक-सुन्दरी नायिकाकी रचना की
होगी उस समय वे निश्चय ही कमलकी पङ्क्तिपोंकी कान्ति
जीतनेवाले अपने नेत्र आश्रयसे फाड़कर चारों मुँहोंसे एक
साथ 'वाह, वाह' कहकर थिझाए होंगे और अपने चारों
तिर हिला-हिलाकर प्रसन्नतासे झूम उठे होंगे ॥ २९ ॥ यद्यपि
यह नायिका न सो देवलोककी कन्या है, न गन्धर्वोंके कुलमें
ही उत्पन्न हुई है, फिर भी इतनी रसीली है कि मछलीकी
सारी तपस्या एक क्षणमें बिगाड़ सकती है ॥ ३० ॥ यह कमलके
समान नेत्रवाली नायिका मछलीने विज्ञानकी सारी चतुराई है,
संसारके नेत्रोंको डबड़क देनेवाली चोँदनी है और कामदेवका
कीड़ा-भवन है ॥ ३१ ॥ मछलाने उसके नेत्रकी शोभाके निर्माल्यके
रूपमें कमल बनाया, चन्द्रमाको इस नायिकाके मुलका दास
बनाया, उसकी दोनों भीहोंसे कामदेवका भ्रूयुग्म बनाया,
खेरमात्र मुस्कराहटसे चोँदनी बनाई, सङ्गीतसे ही मतवाले
कोयलके स्वर बनाए और बच्चे-सुचेसे हरिणीकी छाँवें
बना दीं, इस प्रकार मछली जितना विचित्र विज्ञान था वह

चिरात् ॥ ३५ ॥ निर्मिन्सुः सुदतीमजो विरचिते वक्त्रे
शशिभ्रान्तितः कोशीभूतनिजाभुजासनमधिष्ठानं ॥
शक्तो विधिः । मध्यं विस्मृतवान्कुक्षो च कठिनो पीनो
नितम्बी कचान्वक्राभिमितवान्मतिः स्फुरति हि स्वस्थे
नृणां चेत्तसि ॥ ३६ ॥ निलीना वेश्मान्तः कथमपि
सखीनामभिहितैः कृताधीना हीनाकृतिरपि मतीनाम-
धिपया । कवीनामङ्गत्वं ज्ञपयति विपीना तनुतया
नवीना मीनाक्षी व्यथयति मुनीनामपि मनः ॥ ३७ ॥
निर्मुक्तशेषदशाशिशिरा नवीनसम्प्राप्तयौवनवसन्तम-
मोरमश्रीः वस्त्रमालितस्तननवस्तवका निकाममेर्णादश-
स्तनुलता तनुते मुदं नः ॥ ३८ ॥ नीलोत्पलोल्लसितख-
ञ्जनमञ्जुनेत्रा सम्पूर्णशारदसुधाकरकान्तवक्त्रा । बाला
जगन्नितयमोहनदिव्यमूर्तिर्मन्ये विभाति जगति स्मर-
वीरकीर्तिः ॥ ३९ ॥ नयं मुखं मृगयिष्युक्तशशाङ्कयिष्यं

नेमौ स्तनायमृतपुग्निहेमकुम्भौ । नैवालकावलिर्ग्यं
मदनाखशाला नैयदमलियुगलं निगडं हि शृणाम्
॥ ४० ॥ प्रेङ्गणप्रललापापान्कुर्वन्त्यः सस्मिन्त्रयम् । न
वीणायाः प्रवीणायाः खञ्जनं स्मररञ्जनम् ॥ ४१ ॥ भज-
त्रासीन्निद्रापञ्चयमुपेन्द्रः खलु नदा यदा नाभीपङ्के-
रुहवसतिनाऽसजि विधिना । इयं यद्यायाना लणमपि
भवंल्लोचनपथं कथं तस्य म्यान्ते नित्यमति तदद्यापि
कमला ॥ ४२ ॥ मधुरवर्चनः सभ्रभङ्गः कृताङ्गुलितर्ज-
नैरलसवलितैरङ्गन्यामैर्महोत्सववन्धुभिः । असह-
दसहृत्स्फारस्फारैरपाङ्गविलोकिनेस्त्रिभुवनजये सा
पञ्चपोः करोति सहायताम् ॥ ४३ ॥ मनोऽपि शङ्कमा-
नाभिर्वालाभिरुपजीव्यते । अयडसीलगादगुण्यमन्त्री
मकरकेननः ॥ ४४ ॥ मन्दमन्दगमना कर्त्तुं किं वा
विशालनयना हरिणी किम् । पूर्णचन्द्रवदना रजनी किं

बड़ी देरमें सर्वाङ्गीण होकर इस नायिकाके रूपमें रक्खा जा सका
॥ ३५ ॥ बुद्धिमान् लोगोंके मनमें यह बात समझमें आती है
कि जब मझाने सुन्दर शरीरवाला नारियोंका निमाण करनेकी
इच्छासे इस नायिकाका मुँह बना दिया तब उनका वासन
अर्थात् कमल उस मुखकी चन्द्रमा समझकर मुँहने लगा और
मझाजीका उसमें बैठना भी कठिन हो गया इसलिये वे इस
व्यञ्जनमें कसे जानेके कारण हुलने पधरा गए कि उसके शरीरमें
कहर धनाना भूल गए, स्तन कटार कर दिए, नितम्ब
मोटे-मोटे बना दिए और बाज टेंडे-मेड़े (घुँघरासे) बना दिए
॥ ३६ ॥ यद्यपि सखियोंने उसे समझा-बुझाकर भीतर परमें
बेठा दिया और बड़ी कठिनाईसे वह बुद्धिकी पहुँचसे यादर
दुबली-पतली नायिका किसी-किसी प्रकार स्थिर भी किया
फिर भी वह हलनी दुबली है कि उसने सब कवियोंको मूर्ख
बना डाला क्योंकि कोई भी उसकी दुर्बलताका ठीक वर्णन नहीं
कर पा रहा है । बड़ी मझुलीके समान नेत्रोंवाली नई-नवेली
मुनियोंका भी मन मधे डाल रही है ॥ ३७ ॥ जिसमें वक्षपन-
रूपी शिशिर बीत गया, मनकी रिक्कानेवाली नये यौवनके
वसन्तकी शोभा बढ आई, स्तनरूपी नये फूलोंके गुच्छे खिल
उठे, वह हरिणीने नेत्रोंके समान आँखोंवाली नायिका रूपी लता
हमारा मन मस्त किए डाल रही है ॥ ३८ ॥ नीले कमलके
समान बड़े-बड़े, कजारे और फुड़कते हुए खञ्जन पत्तीके समान
पञ्चपल नेत्रोंवाली, शारद ऋतुकी पूर्णिमाके समान सुन्दर
मुखवाली और तीनों लोकोंको मोह लेनेके योग्य सुन्दर देहवाली

वह बाला ऐसी प्रतात होती ॥ मानों बार कामदेवकी कोत्ति ही
संसारमें शोभा पा रही हो ॥ ३९ ॥ यह इस सुन्दरी नायिकाका
मुँह नहीं है, वह तो बिना कालिमायाला चन्द्रमा है, ये
उसके स्तन नहीं हैं, ये तो अमृतने भरे हुए साँगेके फलश हैं,
यह उसके बालोंकी लट नहीं है, वह तो कामदेवके अस्त्र
बनानेकी प्रयोगशाला है और जिन्हें तुम चोंचें समझते हो, ये
आँखें नहीं हैं, ये तो युवकोंके घोंघनेवाली बेड़ियाँ हैं ॥ ४० ॥
अब और मुसकानके साथ मुड़-मुड़कर देखने और बोलनेवाली
स्त्रियोंके वचनोंके सामने अपर्यासे अगड़ी बाँयाकी गूँज भा इस
योग्य नहीं होता कि वह कामकी उत्तेजित करे ॥ ४१ ॥ जिस
समय भगवान् विष्णुके नाभि-कमलपर बैठकर मझाने इस
नायिकाकी रचना की होगी उस समय भगवान् विष्णु निश्चित
रूपसे गहरी नींद लेते रहे होंगे क्योंकि यदि यह कहीं लणभरके लिये
भी विष्णुके आँखोंके सामने आ जाती तो क्या आज लक्ष्मी उनके
पास रह पाती अर्थात् लक्ष्मीको छोड़कर वे इसे ही पत्नी बना
लेते और लक्ष्मी सीतियाहासे उनके पाससे चली जातीं
॥ ४२ ॥ अपनी मधुर वाणीसे, कटीली आँखोंसे, डँगली उठा-
उठाकर डाटनेसे, आनन्दसे भरे हुए अलसाए आँखोंकी चटक-
मटकसे और बार-बार अपने बड़े-बड़े नेत्रोंकी चितवनसे यह
नायिका ऐसी जान पड़ती है मानो त्रिभुवनपर विजय प्राप्त
करनेवाले कामदेवकी सहायता कर रही हो ॥ ४३ ॥ शङ्का
करनेवाली बालाएँ अपने मनको किसी-किसी प्रकार फाल रही
हैं क्योंकि उनका पाँच बाँखोंवाला समर्थ और छः गुणोंसे युक्त

पश्य भवत्युति सखे तरुणी किम् ॥ ४५ ॥ मीनवती नय-
नाभ्यां चण्डाभ्यामपि सुकुलकमलवती । शैवालिनी च
केशैः सुरसेयं सुन्दरी सरसी ॥ ४६ ॥ लावण्यपुण्यपर-
माणुदलं तदन्यदन्यस्स चापि निपुणः खलु कोऽपि
वेधाः । येनाद्भुता कृतिरियं चिह्निता विशिष्टकार्येषु
कारणविशेषगुणाऽनुमेयः ॥ ४७ ॥ लावण्यामृतदोधिका
कुलपृष्ठं सान्द्रयेसभाग्ययास्त्रैलोक्याकररत्नकन्दलि-
रियं जीव्यान्सहस्रं समाः । कपालोक्तकान्तुकेन बहुना
शिल्पधमेष्टाद्वारान्मन्यं यां विधिना विधाय चिह्नितं
सृष्टध्वजारोपणम् ॥ ४८ ॥ वक्रं चन्द्रविकासि पङ्कज-
परीहासक्षमं लोचने वर्णः स्वणमपाकरिप्पुर्लली-
जिष्णुः कचानां वयः । वृष्टाजायभकुम्भाविभ्रमहरां
गुणान् नितम्बस्थली याचां हारि च मादवं युवतिषु
स्थाभाविकं मण्डनम् ॥ ४९ ॥ समीचीना चीनांशुकप-
रिबुनाङ्गी प्रचिलसन्कुचार्पिता हीना अधमघनभागेऽ-
जवदना । न वीना वीनान्तःकालितमदना संयमधुना

नवीना मीनाङ्गी व्यथयति मुनीनामपि मनः ॥ ५० ॥
सर्गाव्यापारस्त्रिभस्य बहोः कालाद्विधेरपि । आसी-
दिमां विनिर्माथ श्लाघ्यः शिल्पपरिध्रमः ॥ ५१ ॥
सान्द्रयेस्य तरङ्गिणी तरुणिमोत्कर्षस्य हृषोद्भयः
कान्तेः कार्मणकर्म नर्मरहसामुज्जासनावासभूः । विद्या
वक्रगिरां विधेरनवधिप्रावीण्यसाक्षात्किया वाणाः
पञ्चशिलीमुखस्य ललनाचूडामणिः सा प्रिया ॥ ५२ ॥
स्तनकलशस्त्रलक्ष्मरसंवरणव्यग्रपाणिकमलायाः ।
निपतन्ति भाग्यभाजामुपरि कटाक्षाः सरोजाख्याः
॥ ५३ ॥ स्फुरन्नानारत्नारणितयसना वृत्तमसृणस्तना-
पीना मत्ता तरलजघना हंसगमना । स्मराधीनासीना
कविहृदि जिताशेषललना नवीना मीनाङ्गी व्यथयति
मुनीनामपि मनः ॥ ५४ ॥

वयःसन्धिवर्णनम्

अखल : चलदिव चक्षुः प्रकृतमपीदं समुपविध

मन्त्री उनकी सहायता करता रहता है ॥ ४४ ॥ देखो मित्र ! यह
सामने धीरे-धीरे चलनेवाली क्या काई हथिनी है या बड़े-बड़े
नेत्रोंवाली काई हरिणी है या आगे-आगे पाँखोंवाली चन्द्र किए हुए
राशि है या काई नवेली हा चला आ रहा है ॥ ४५ ॥ वह पाला
रसोले भरा एक पावड़ा-सा जल पड़ता है क्योंकि इसका आँखें
मछलीके समान हैं, इसके चरण खिले हुए कमलके समान हैं और
इसके लम्बे-लम्बे पाल सेवारके समान हैं ॥ ४६ ॥ सुन्दरताके पुण्यका
वह परमाणुअसे इस नायिकाका रचना करनेवाला चतुर मछला ओ
काई निराला हा है क्योंकि विशेष कार्यका कारण भी काई विशेष
गुणवाला हा समझना चाहिए ॥ ४७ ॥ सुन्दरता कृपा प्रसूतकी
बायबा, सुन्दरता और सौभाग्य दोनोंका उत्पत्ति-स्थान तथा
तीनों लोकोंका आनन्द उपाय होनेवाली वह रत्नकी डली-
रूपा नायिका सहस्र वषे जिष्ट क्याकि रूप देखनेके लोभी मछला-
जाने बड़े परिश्रम, आदर और कलाके साथ इसे बनाकर सृष्टि-
निर्माणके विजयका अण्डा गढ़ दिया है ॥ ४८ ॥ चन्द्रमाका खिलाने-
वाला मुख, कमलकी लज्जानेवाली नेत्र, स्वर्णकी जीत लेनेवाला रत्न,
भीराकी पाँतोंकी हरानेवाला धुँवराला लट, हाथीके मस्तककी
सुन्दरताका परास्त कर देनेवाला कठार स्तन, बड़े-बड़े नितम्ब
और मन हरनेवाले कामल रसोले वैन, ये सब तो नवेलियोंके
स्वाभाविक भ्रष्टार हैं ॥ ४९ ॥ रेशमी वस्त्र पहनकर सुन्दर

लगनेवाली, मोटे-मोटे स्तनोंसे खिल उठनेवाली, पतली कमर-
वाली, कमलके समान मुखवाली, सदा प्रसन्न रहनेवाली, काम-
रससे भरे हुए मनवाली तथा मछलीके समान आँखोंवाली नई-
नवेली मुनियोंका मन भी झकझरे डाल रही है ॥ ५० ॥ बहुत
दिनोंतक रचना करते-करते थके हुए मछलाकी कारीगरीका
परिश्रम इस नायिकाको बनानेके पश्चात् प्रशंसनीय हो
गया ॥ ५१ ॥ वह मेरी प्रियतमा सुन्दरताकी नदी, पीवनकी
श्रेष्ठताके आनन्दका केन्द्र, कान्ति बनानेकी कला, गोपनीय
रहस्योंकी उत्पत्तिका घर, कठोर मोक्षीकी विधा, मछलाकी
अपरिमित चतुराईका साक्षान् रूप, पाँच बाखोंवाले कामदेवका
बाण और सब स्थितियोंमें निरालाणि है ॥ ५२ ॥ कलशरूपी
स्तनोंसे गिरते हुए आँखलकी सँभलनेमें लगे हुए करकमलों-
वाली कमलनयनी युवतीकी निरखी चितवन भाग्यवानोंपर ही
पड़ती है ॥ ५३ ॥ थनेक वक्रकते हुए रसोले खाल कान्तिवाले
वस्त्रोंसे सजी हुई, गोल, चिकने और मोटे स्तनोंवाली,
चञ्चल जघनवाली, डुमुक-डुमुककर चलनेवाली, सदा काममें
मनवाली, कवियोंके हृदयमें सदा बसनेवाली, सब नायिकाओंकी
जोस चुकनेवाली और मछलीके समान आँखोंवाली नई-नवेली
मुनियोंका भी मन झकझरे डालती है ॥ ५४ ॥

दक्षपन और रीचनके मिलनकी अवस्थाका वर्णन
इस देवी मोंहोंवाली नायिकाकी आँखें पल नहीं रही हैं कि

बलः । अतद्विष तदपि शरीरं सम्पन्नि वामभ्रूवो जयति ॥ १ ॥ अत्युन्नतस्तनमुगो जयने सुदीर्घं वक्रं भ्रूवावनि-
तरां घनं ततोऽपि । मध्योऽधिकं तनुग्ननगर्भि-
तस्यो मन्दा गतिः किमपि चाद्गुनलोचनायाः ॥ २ ॥
अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू ।
कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु सखदम् ॥ ३ ॥
अनाकूतैरेव प्रियसहचरीणां शिशुनया यत्रोभिः पाश-
लीमिधुनमधुना सङ्गमयितुम् । उपादत्ते नो या विर-
मति न या केवलमियं कपोलौ कल्याणी पुलकमुकुलै-
र्वन्तुरयति ॥ ४ ॥ अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कण्ठ-
हैरनाघिखं रत्नं मधु नयमनाम्यादितरसम् । अखण्डं
पुण्यानां फलमियं च तद्रूपमनघं न जाने भोक्तारं
कमिह समुपस्थास्यति विधिः ॥ ५ ॥ अनायासकृतं
मध्यमशङ्कतरले दृशः । अभूषणमनोहारि वपर्ययसि
सुभ्रवः ॥ ६ ॥ अस्तरङ्गमनङ्गस्य शृङ्गारकुलदैवतम् ।

अङ्गीकरोति तन्वङ्गी सा विलासमयं वयः ॥ ७ ॥ अन्येयं
रूपसम्पत्तिगम्या वैदग्ध्यधोऽगती । नैपा नलिनपद्माङ्गी
सृष्टि साधारणी विधेः ॥ ८ ॥ अकान्ते वाग्ने तरुणि-
मनि चागन्तुमनसि प्रयाने मुग्धत्वे चतुर्गमिणि चाण्डो-
परमिके । न केनापि स्पृष्टं यदिह वयसा मर्म परमं
तदेतन्पञ्चैर्गोर्जयति वषट्मिन्द्रीवन्द्यः ॥ ९ ॥ अयमङ्ग-
भाव एव तावत्कुञ्जयोः कर्पति लोकलोचनानि । इन्द्रे-
तरपीडनीमवस्थां गतयोः श्रीग्नयोः कथं भविषी
॥ १० ॥ असम्भृतं मण्डनमङ्गयष्टेऽनामयाग्यं फलं
मदस्य । कामस्य पुष्पव्यतिरिक्तमग्नं वाग्याग्यं माधु-
ययः प्रपदे ॥ ११ ॥ आकगडार्पितकञ्जकार्पितमुरो
हस्ताङ्गुलं मुद्रतामाश्राम्भितताम्यमाभ्यमन्ताः पा-
श्रान्तिकाकेलयः । निर्यम्लोचनवर्णिगतामि वयसां
छेकोक्तिस्तन्वानयस्नस्यास्तीदति शैशवे प्रमिकर्त
कोऽप्येव केलिक्रमः ॥ १२ ॥ आलापाभ्रविलासो विर-

भी बलली-सी जान पड़ती है, छाती भी गैसी भी वैसी ही है पर कुछ
उठती-सी जान पड़ती है और शरीर भी है तो वैसा ही किन्तु कुछ
नया-नया-सा लग रहा है । इन सब परिवर्तनोंसे यह नायिका
संसारको जीते ले रही है ॥ १ ॥ उस अनोखी आँखोंवालीकी
छातीपर कुछ ऊँचे-ऊँचे उठे हुए स्तन, उसकी बड़ी-बड़ी आँखें, देखी-
देखी भौंहें, अल्पभूत देवे वचन, पतली कमर, बड़े-बड़े नितम्ब और
मन्द-मन्द चाल यह सब कुछ नये उद्भूत दिव्याई पड़ रहा
है ॥ २ ॥ कोमल पत्तोंके समान उसके लाल-जाल घोंट हैं,
कोमल नई बालियोंके समान उसकी दोनों भुजाएँ हैं और
उसके अङ्ग-अङ्गमें फूलके समान लुभावना यौवन मिठा
हुआ है ॥ ३ ॥ वचनके कारण गुड़िया खेलती हुई उसकी
सखियाँ हैंसी-हँसीमें जब उससे गुड़े-गुड़ियाका ग्याह
रखानेको कहती हैं तब उसकी पेसी दृशा हो जाती है कि वह
न तो उन्हें उठाती है न छोड़ती ही है बरन् बात सुनकर पेसी
झेंप जाती है कि उसके गालोंपर रोमाञ्च हो जाता है ॥ ४ ॥ उसका
रूप बिना भुंघे हुए फूल, मल्लोंसे अखूते पत्ते, बिना बिंधा हुआ
रत्न, बिना घसा हुआ नया मधु और बिना भोगे हुए पुण्याँके
फलके समान है । ऐसे पवित्र रूपको भोगनेके लिये बहाने
न जाने किते चुन रक्खा है ॥ ५ ॥ परिभ्रम न करनेपर भी
उसकी कमर पतली हो गई है, बिना किसी शङ्काके ही उसकी
आँखें खज्जल होने लगी हैं और बिना आभूषणके ही इस सुन्दर
मौहोंवाली नायिकाका शरीर इस समय मनोहर हो गया है

॥ ६ ॥ यह दुबले-पतले अङ्गोंवाली नायिका उस रमणी
वचनको पहुँच रही है जिसका मार्ग कामदेव है और जिसका
कुल-देवता शृङ्गार रस है ॥ ७ ॥ इन नये उद्भूत रूप लावण्यसे
और नये उद्भूत चतुराई-भरी चालसे जान पड़ता है कि
कमलकी पंखुड़ियोंके समान आँखोंवाली यह नायिका मङ्गलकी
कोई अनोखी रचना है ॥ ८ ॥ जब वचनक घोंट गया और
तकलाईने आनेका विचार किया, भोलापन बना गया और
चतुराईने उसे गले लगाया, उस बालापन और चौदनके सन्धिकी
अवस्थाके समय कामदेवका वह मर्म कोई नहीं समझ सका
जिसके कारण उस कमलके समान नेत्रवाली नायिकाका शरीर
संसारको जीतने लगा ॥ ९ ॥ जब उस नायिकाके उभड़ते हुए
स्तनके श्रेष्ठ ही संसारके नेत्रोंको बरबस खींचे ले रहे हैं तब उस
समय इसकी क्या शोभा होगी जब ये बड़े होकर एक दूसरेसे
सटने लगेंगे ॥ १० ॥ बालापनके पश्चात् उस नायिकाकी अङ्ग-
रूपी लतामें बिना मन्दिराके ही मादकता लानेवाले और काम-
देवके पौँचों फूलोंके बाणोंके अतिरिक्त नये बाणके रूपमें अपने
आप आनेवाला सौन्दर्य बनकर नया यौवन आ पहुँचा है
॥ ११ ॥ गलेनक बन्द चोलीसे ढँके हुए स्तनोंवाली, घोंटोंपर
उँगली रखकर धीरे-धीरे मुस्करानेवाली और तिरछी आँखें करके
बातचीत करनेवाली उस नायिकामें वचनमें ही यह निराला
खेल आरम्भ हो गया है ॥ १२ ॥ हरिणके बरबेकी आँखोंके
समान आँखोंवाली नायिकाके यौवनकी शोभा पेसी जान पड़ती

लयति लसद्वाहुविलसितं शतं नीविप्रस्थं प्रधिक्षा प्रत-
नयति मनास्त्रधनिष्ठो नितम्बः । उत्पुण्यन्परश्वमच्छ-
त्कुचशिखरमुगो नूनमन्तः स्मरणं स्पृष्टा कोदण्ड-
कोट्या हरिणशिखरशो दृश्यते यौवनश्रीः ॥ १३ ॥
आवृणोति यदि सा मृगीदृशी स्वाञ्जलेन कुचकाञ्चना-
चलम् । भूय एव वहिरेति गारवादुन्नतो न सहते
तिरम्बिक्याम् ॥ १४ ॥ इदं परमसुन्दरं तनुपुरं कुरङ्गीदृशां
निघार्य खलु शैशवं स्वयमनेन नीतं वलाम् । तदागम-
नशङ्कया मकरकेतुना किं हृतं पथोधरधराधरा त्रिच-
ल्लिवाहनीदुस्तरा ॥ १५ ॥ इमे तारुण्यधीनवपरिमलाः
प्रौढसुगन्धप्रतापप्रारम्भाः स्मरयिजयदानप्रनिभुवः ।
चिरं क्षेत्रधारा अभिनयधिकारैककचयो विलासव्या-
पाराः किमपि विजयन्ते मृगदृशः ॥ १६ ॥ उत्सालाल-
कभञ्जनानि कवरीपाशेषु शिखारसो वल्लानां परिकर्म
नीचिनहनं भूलास्ययोग्याग्रहः । तिर्यग्लोचनचोष्टिनानि

वचसां लेकोक्तिसंक्रान्तयः स्त्रीणां म्लायति शैशवे प्रति-
कलं कोऽप्येव केलिक्रमः ॥ १७ ॥ उदञ्चद्वल्लोज्ज्वलतटभ-
रत्तोभितकटि स्फुरद्दृग्भ्यां मन्दीकृतघिलसद्दिन्दीवर-
युगम् । समुद्यद्भ्रमं प्रविहितधनुर्भङ्गमनिशं वयस्तत्प-
द्यान्तः कथमिव मनो न व्यथयतु ॥ १८ ॥ उदयति
तरुणिमतरलौ शैशवशशिनि प्रशान्तिमायते । कुच-
चक्रवाकयुगलं तरुणिनटिन्यां मिथो मिलति ॥ १९ ॥
उन्मीलितं तूलिकयेव चित्रं सूर्योशुभिभिन्नमिवारवि-
न्दम् । यभूय तस्याञ्चतुरक्षशोभि यपुर्विभक्तं नवयौव-
नेन ॥ २० ॥ एतस्यां रतिवज्रभक्तितपतेः क्रीडासरस्यां
शूनैः संशोभं नयनीय शैशवजलं तारुण्यतिभ्रमद्युतिः ।
अन्तःस्था च यथा यथा विकसति प्रायः कुचोच्चस्थली
स्थाल्यं हन्त तथा तथा वितनुते दृष्यपीनमीनावली
॥ २१ ॥ कलितगरिमा श्रोणिर्मध्यं विवृण्वल्लिख्यं
हृदयमुदयस्तलजं मञ्जुकिञ्चरस्तनवापलम् । मुकुलित-

है मानो निश्चय ही उसके हृदयको कामदेवने अपने धनुषकी
कोरसे छू दिया है क्योंकि बातचीत करने-वहने उसकी तिरछी
चितवन बाधा देती रहनी है, बार-बार उसके हाथ चलने रहते
हैं, कमरके नारेंकी गाँठ वह कसकर बाँधनी जाती है, उसके
नितम्बका विचलता भाग भी कुछ गहरा हो गया है, उसके हृदय-
पर दोनों धार स्तन उठ आए हैं और उनकी पुच्छिङ्गों काकां पद
गई हैं ॥ १३ ॥ जब-जब वह हरिणके समान आँखोंवाली
नायिका अपने चौंचलसे स्तनरूपी मेरु पर्वतको एक लेती है तब-
तब वे फिर बाहर आ ही जाते हैं क्योंकि जिनका जन्म गौरव
(उच्छता) के साथ होता है वे निरन्कार (अपमान या परदा)
नहीं सह सकते ॥ १४ ॥ हरिणके समान सुनयनी नायिकाओंके
आवन्त सुन्दर शरीररूपी नगरोंमें वचपनको बलपूर्वक हटाकर
उसपर कामदेवने अपना अधिकार जमा लिखा है और
इस भयसे कि कहीं वचपन पुनः लौट न आवे उसने आदके
लिये दो स्तन रूपी पर्वत और त्रिवली (पेटपर पड़ी हुई तीन
रेखाएँ) रूपी अजय सेना खड़ी कर रखी है ॥ १५ ॥ हरिणकी
आँखोंके समान नेत्रोंवाली नायिकाके ये विलास-भरे व्यापार
विजय पारहे हैं जो कामदेवकी विजयमें सहायता देनेवाले तथा
यौवनकी शोभा बढ़ानेवाले नवीन गन्ध हैं, उत्तम कामक्रीडारूपी
प्रतापको आरम्भ करनेवाले हैं, चिरकालतक चिनको हरब
कनेवाले हैं और जिन्हें नये विकार उत्पन्न करनेमें ही सदा
आनन्द आया करता है ॥ १६ ॥ बालाओंके वचपन बीतनेकी

इस बेलामें यह कोई बड़ा बल्लेड़ा खड़ा हो गया है क्योंकि देखो,
उसकी आँखें बौकी हो चली हैं, बाल सँवारनेकी कलामें
उसे रुचि हो चली है, दाँतांका रँगावट और स्वच्छतापर ध्यान
जाने लगा है, वह बार-बार अपने कमर बाँधने लगी है, भौंह
नचान-नचाकर आग्रह करने लगी है, निरछी चितवन चलाने
लगी है और ऐसी बाली बोलने लगी है जिसे खुर लोग ही
समझ सकते हों ॥ १७ ॥ उभरते हुए दोनों स्तनोंके भारसे
उसकी कमर हटी जा रही है, उसके दोनों चञ्चल नेत्र देखकर
सुन्दर कमल भी मुदकाया जा रहा है और उसकी चलती हुई भौंहें
निरन्तर धनुष बना जा रही हैं, तब घनाहूए, उस कमलनयनीकी
यह अवस्था युवकोंका हृदय क्यों न बेधती पड़े ॥ १८ ॥
यौवनरूपी सूर्यके उदय और वचपनरूपी चन्द्रमाके अस्त होनेकी
बेलामें दोनों स्तन रूपी चक्रवा-चक्री इस युवतीरूपी नदीके
तटपर परस्पर गले मिल रहे हैं ॥ १९ ॥ तूलिकासे रँगे हुए चित्रके
समान अथवा सूर्यका किरणोंसे लिखाए हुए कमलके समान
उसकी नवजीवनसे विकसित देह सब प्रकारसे भली लग
रही है ॥ २० ॥ यह नायिका कामदेवरूपी राजाकी जलक्रीडाकी
उस बावर्दीके समान है जिसमें जब यौवनरूपी तीव्र किरणोंवाला
सूर्य धीरे-धीरे वचपनरूपी जल साँझने लगा तब उसके बीचसे
स्तनरूपी स्थली निकलने लगी । पर सबसे बड़े आश्चर्यकी बात
तो यह है कि नेत्ररूपी मोटी-मोटी मङ्गलियाँ और भी मोटी होने
लग गई हैं ॥ २१ ॥ उसके हृदयके नीचे नाभिके पास तीन रेखाएँ

कुचं वक्षश्चक्षुर्मताभूतचकिमकमपरिगलहल्यं तस्या
वपुस्तनुते श्रियम् ॥ २२ ॥ केलीकौतुकमादराच्छुषण-
वीरालीभिर्ग्राह्यते वासाभिस्तु पुरः पुरेव रजसि
क्रीडार्थमाह्वयते । चेतो याति न वा ततस्तदुभयोरङ्गी-
दशः साम्प्रतं मध्ये शुभ्यकयोरयःशकलवन्निष्पन्नपानं
मनः ॥ २३ ॥ क्षणं सरलवीक्षणं क्षणमपाङ्गमंवीक्षणं
क्षणं रजसि खेलनं क्षणमतीव भूषादरः । क्षणं द्रुततरा
गतिः क्षणमतीव मन्दा गतिः क्षणक्षणविलक्षणं जयति
चेष्टितं सुभ्रुवः ॥ २४ ॥ क्षोभं धत्ते यदतिवहलः क्षिण्ध-
लावण्यपूरः प्रत्यङ्गं वक्षटमनुसरन्त्यूर्मयो विभ्रमा-
णम् । उन्मथं यत्फुरति च मनाफकुम्भयोर्द्वन्द्वमेतस-
मन्येऽस्याः स्मरगजयुधा गाहते वृत्तडागम् ॥ २५ ॥
गण्डे मण्डनमात्मनैव कुरुते वैदग्ध्यगवांसो त्यक्त्वा
हेमबिभूषणानि तनुते तालीदलेष्वाग्रहम् । मन्दा

कन्दुकखेलनाय भजते शरीर्यु शिलासं तन्व्या चित्र-
मकाण्ड एव लटभाभावे निवद्धो भरः ॥ २६ ॥ चाञ्चल्यं
चरणौ विहाय नयनप्रान्तं प्रनिष्ठाप्ते! वस्तु वाञ्छति
वाचि काचिदमृतस्पर्धाकरी माधुरी । कान्तिः काचन
वत्सो विजयते नन्व्या दुकूलाञ्चलं तन्मन्ये दिवसैः
क्रियद्विरतनुर्जिता जगन्मण्डलम् ॥ २७ ॥ तत्तस्याः
कमनीयकान्तिविजितत्रैलोक्यनारीवपुः शृङ्गारम्य
निकेतनं समभवन्तंसारसारं वयः । यस्मिन्विस्मृतप-
द्मपालिचलनाः कामालसा दृष्ट्यो नो मृता पुनरप्य-
तन्ति पतिनाः पाशे शकुन्ता इव ॥ २८ ॥ तद्वान्वप्रोन्मी-
लन्म्रदिमरमणीयाः कठिनतां विचित्र्य प्रत्यङ्गादिय
तरुणभावेन घटिता । स्तनां सम्बिभ्राणा क्षणयिनयवै-
यान्यमस्तुल्यस्मरोन्मेयाः केवामुपरि न रसानां युवतयः
॥ २९ ॥ दरोत्तानं खणुः कसितविरलापाङ्गकपलं

पड़ती जा रही हैं, स्तनके उदय होनेसे हृदय जग्नित हो रहा
है (धीरे-धीरे हृदयपर स्तन निकल आए हैं), दृष्टि तिरछी
चितवन चलाने लगी है अतः निश्चय ही उस कामिनीके
शरीरसे वक्षपन चलाने वाला और यौवन अपनी छटा दिखाने
लगा है ॥ २२ ॥ वक्षपन और यौवनके मिलापके समय
हरिणीके नेत्रोंके समान झलझली नायिकाका चित उस समय
वो चुम्बकोंके बीचमें पड़े हुए लोहेके टुकड़ोंके समान दोनों ओर
लिपककर रुक जाता है जब एक ओर उसकी सखियाँ उसके
कानोंमें कामकीवाकी नई-नई बातें सुनाती हैं और दूसरी ओर
छोटी-छोटी कम्पाईं उसे भूलमें खेलनेके लिये बुलाती हैं ॥ २३ ॥
उस सुन्दर भीहँवालीकी जय-जयपर होनेवाली अनोखी
वैधाई संसारको जीत रही है । वह जयभर तो सीधी
चितवनसे देखती है, दूसरे ही जय तिरछी चितवन चलाने
लगती है, जयभर भूलमें खेलती है, दूसरे ही जय शरीरपर
आभूषण सजाने लगती है तथा जयभर हृदयवाकर कटपट
चलती है और दूसरे ही जय धीरे-धीरे पैर रखने लगती है
॥ २४ ॥ इस नवेलीके अङ्गमें जो कोमल सुन्दरताका प्रवाह
लहरें ले रहा है, विज्ञासकी जो लहरियाँ अङ्गके छोरतक आ-जा
रही हैं और यह जो उसके हृदयपर उठा हुआ घड़ोंका जोड़ा
दिखाई पड़ रहा है वह सब ऐसा लगता है मानो इसके
हृदयरूपी सरावरमें कामदेवरूपी वह तरुण हाथी डूबकी लगा
रहा हो जिसके मस्तकके ठठे हुए दोनों ओर ऊपर दिखाई दे
रहे हैं ॥ २५ ॥ यह नायिका चित्रकार बननेका घमण्ड करके

अपने-आप अपने गाल पीतले लगी है, सोनेके आभूषण छोड़कर
ताड़के पत्तोंके आभूषण बनाने लगी है, रंग रंगिलाना बन्द करके
मीनाको सिखानेमें अधिक रस लेने लगी है अतः उस नायिकामें
कुछ ऐसी विचित्र बात होने लगी है कि वह दिन-रात अपनेको
आकर्षक बनानेके फेरमें पड़ी रहती है ॥ २६ ॥ उस नवेलीके
स्तनपर उठा हुआ पल्लू कुछ विचित्र छटा उत्पन्न करता
हुआ ऐसा लग रहा है मानो धोई ही दिनोंमें कामदेव
इस संसारपर उसका कण्ठा फहरानेवाला है क्योंकि
उसके शरीरमें उसके पैरोंकी चञ्चलता नेत्रोंमें पहुँचना चाहती
है और अमृतसे शोष करनेवाली मिठास उसकी दाढ़ीमें बसना
चाहती है ॥ २७ ॥ उसकी वह प्यार करने-योग्य सुन्दरता, तीनों
लोकोंकी नारियोंको जीतनेवाली सुन्दर देह और संसारका
सार बनी हुई वक्षपन और यौवनके मिलापकी अवस्था
वास्तवमें शृङ्गार रसका ऐसा घेरा है जिसमें कामसे अलसाई हुई
युवकोंकी आँखें कन्देमें पड़े हुए पक्षियोंकी भाँति पल्लू हिलाना
भूल गई हों ॥ २८ ॥ वक्षपन और यौवनकी सन्धिके समय
अपनी कोमलताके कारण सुन्दर लगनेवाली तथा जय-जयपर
अपने पुलकलेपनसे कोमल कामदेवका उभाड़नेवाली युवतियाँ
सब अङ्गोंकी कठोरता अपने बड़े-बड़े दोनों स्तनोंमें भरकर
कितनी रसीली नहीं हो जाती ? ॥ २९ ॥ भयसे सुली हुई
सी बड़ी-बड़ी आँखें, सुन्दर सजी हुई तिरछी चितवन, भविष्यमें
बड़े होकर उभरनेवाले दोनों स्तनोंके भाँसे अलसाया
हुआ उसका हृदय और उसके नितम्ब उस गोरे शरीरपर

भविष्यद्विस्तारिस्तनयुगलगर्भात्समुद्रः । नितम्बं
सङ्क्रान्ताः कतिपयकला गौरवपुण्यो वपुर्मुञ्चद्वात्यं
किमपि कमनीयं मृगदृशः ॥ ३० ॥ दृशोः सीमावादः
श्रयणयुगलेन प्रतिकूलं स्तनाभ्यां संरुद्धे हृदि मनसिज-
स्तिष्ठति बलान् । नितम्बः साग्रन्दं क्षिपति रशनादाम-
परनः प्रवेशस्तन्वङ्गया वपुषि तरुणिम्नो विजयते ॥ ३१ ॥
दृश्यं दृशां सहस्रैर्मनसामयुनैर्विभायनीयञ्च । सुकृतश-
तकोटिभोग्यं किमपि वयः सुभूयो जयति ॥ ३२ ॥
दृष्टिः शैशवमण्डना प्रतिकूलं लाघवमभ्यस्यते पूर्वा-
कारमुदस्तथापि कुचयोः शोभां नचामीदृते । सम्प्राप्ता
शुरुतां तथाऽप्युपचिताभोगा नितम्बस्थली तन्व्याः
स्वीकृतमन्मथं विजयते तन्मन्त्रेण वयः ॥ ३३ ॥ दोलायां
जघनस्थलेन चलता लोलेशणा लज्जते साराङ्गं तनु-
कण्टककृतभिया क्रीडावने क्रीडति । धत्ते दिक्षु निरीक्षणं
स्मितमुखी पारावतानां दत्तैः सज्जं भौग्यविसर्जनाय

सुतनोः शृङ्गारमिश्रं वयः ॥ ३४ ॥ न दन्तुरमुद्रः स्थलं
वचसि नाश्रिता चातुरी विकारि म विलोकितं भ्रुवि
न वकिमोपक्रमः । तथापि हरिणीदृशो वपुषि कापि
कान्तिच्छटा पटावृतमहामणिघातिरिवात्र संलस्यते
॥ ३५ ॥ न शीलं दम्भक्री कलयति कुरङ्गीनयनयोः
कुचश्रीः कर्कन्धूपलमपि न बन्धूकृतवती । सुधायाः
सध्रीची न च वचनं वीचीपरिचिता तथापि श्रीरस्या
युवजननमस्या विजयते ॥ ३६ ॥ मिशितशरधियार्पय-
त्यनङ्गो दृशि सुदृशः स्ववलं वयस्यराले । दिशि निप-
तति यत्र सा च तत्र व्यतिकरमेव समुन्मिषस्यवस्थाः
॥ ३७ ॥ न्यञ्जति वयसि प्रथमे समुदञ्जति तरुणिमपि
सुदृशः । दधति स्म मधुरिमाणं वाचो गतयश्च विश्र-
माञ्च भृशम् ॥ ३८ ॥ परिहरति यथा यथा वयोऽस्याः
स्फुरदुरुकन्दलशालिबालभायम् । द्रवयति धनुषस्तथा
तथा ज्यां स्पृशति शरानपि सज्जयन्मनोभूः ॥ ३९ ॥

कुछ ऐसे घनांशु दृक्से पद खले हैं कि उस मृगनयनीके सुन्दर
शरीरसे वचपन सरकता जाता जा रहा है ॥ ३० ॥ नवेलीकी देखमें
भानेवाले उस यौवनकी विजय हो जिसके कारण नेत्रों और
कानोंमें सीमाका कगड़ा खड़ा हो गया है, स्तनोंसे सुरचित
हृदयमें भी कामदेवने वलपूर्वक प्रवेश कर लिया है और नितम्ब
भी चिल्लाती हुई करधनीको दूर धँके डाल रहा है ॥ ३१ ॥ इस
सुन्दर भौंहवाली नवेलीकी यह वचपन और यौवनके मिलनकी
व्यवस्था सबको जीम रहा है जिसे सहस्रों आँखोंवाला ही भली-
भौति देख सकता है, जिसका दस सहस्र मनवाला ही आनन्द
ले सकता है और जिसने सौ करोड़ पुण्य किये हों वही इसे
भोग सकता है ॥ ३२ ॥ उस पतली नायिकाकी कामदेवसे
विभूषित वह अवस्था संसारको जीत रही है जो आँखभर
देखने-योग्य है क्योंकि अपनी आँखोंपर वचपनकी झलक
होते हुए भी वह सौन्दर्यका अन्वयास करने लगी है, हृदय
यद्यपि पहले ही जैसा है फिर भी उसमें स्तनोंकी कुछ निराली
शोभा भर आई है और यद्यपि उसके नितम्ब बंधे नहीं हुए हैं
फिर भी उन्होंने अपने फैलावका पूरा चक चौंध लिया है
॥ ३३ ॥ फूला फूलने समय जब उस चञ्चल नेत्रोंवाली नवेलीके
अङ्ग-अङ्ग नितम्ब हिलने लगते हैं तब वह लजा उठती है, धरोंमें
काँटे गड़ जानेकी आशङ्कासे वह इधर-उधर न खेलकर
केवल क्रीडावनमें ही खेलती है और कदूरका शब्द सुनते ही
सुसकानके साथ चारों ओर देखने लगती है, अतः जान पड़ता

है कि इस सुन्दर देहवाली नायिकाका भोलापन दूर करनेके
लिये शृङ्गारका मित्र यौवन धीरे बढ़ाए जाता जा रहा है ॥ ३४ ॥
अभी उस नवेलीके हृदयपर न तो कुछ उभार ही आया है, न
उसकी बाहीमें ही कोई चतुराई आ पाई है, न अभी उसकी
चितवन ही किसीको धावत करने योग्य हुई है, न उसकी भीहें
ही बाँकी हुई हैं फिर भी हरिणोंके नेत्रोंके समान आँखोंवाली
उस नायिकाके शरीरकी शोभाकी दमक ऐसी मनोहर जान पड़ती
है मानो किसी वखसे ठके हुए मछिसे कान्ति फूटी पड़ रही हो
॥ ३५ ॥ यद्यपि इसके नेत्रोंने हरिणियोंके नेत्रोंकी चितवन नहीं
पाई, स्तनोंका उभार अभी बर नितन भी नहीं हुआ और
इसके वचन भी अभी अमृतके समान मनोहर नहीं हुए, फिर
भी इसकी जिस मनोली शोभाकी युवकोंमें अच्छा है उसकी
चारों ओर बिजय हो रही है ॥ ३६ ॥ यौवनकी अवस्थामें
पहुँची हुई सुन्दर आँखोंवाली नवेलीके नेत्रोंकी तीला पाण
समझकर कामदेव प्रोत्साहन देता खलता है क्योंकि जिस-जिस
ओर उसकी दृष्टि पड़ती है उस-उस दिशामें रहनेवाले लोगोंतक
पहुँचकर वह दृष्टि उनकी इसी दृशाएँ (अभिलाष, चिन्ता, स्मृति,
गुण-कथन, उद्देग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण)
कर डालती है ॥ ३७ ॥ वचपनके खोलने और यौवनके आगमनके
समय इस सुन्दर आँखवालीकी बोली, चाल और हावभावमें
बड़ी मिठास आ गई है ॥ ३८ ॥ इस नवेलीकी अवस्था ज्यों-
ज्यों वचपन छोड़ रही है त्यों-त्यों कामदेव अपने अनुपकी डोरी

पाञ्चाली मिथुनेषु नातिरसिका लोला विभूषाविधौ
सौत्कल्या कलगीतिषु प्रियतमालापेषु लज्जालसा ।
स्मारंस्मारमहर्निशं प्रियसखीसम्भोगवातां पुनस्स-
न्दिष्टा मन्देन तत्र विदुषा बाला चिरं लायते ॥ ४० ॥
प्रगल्भानामन्तः प्रयिशति शृणोति प्रियकथां स्वयं
तत्सन्धेष्टाशतमभिनयैर्वञ्चयति च । स्मृतामन्तः कान्ते
यहति न समभ्येति निकटं यथैव्यं वाभा हरति हि
तथा चित्तमधिकम् ॥ ४१ ॥ प्रायो दास्यति नो पयोधर-
तटी गन्तुं पुरस्तादिति ध्यानेनैव यथास्ति साचिगमने
शिखारसक्षक्षुषाः । अन्तःस्थानमिव प्रदानुमधुना
कस्यापि पुण्यात्मनो निर्गन्तुं बहिरुक्तं स्तनतटं
विस्तारि सन्नहते ॥ ४२ ॥ प्रेमाशङ्कि च भङ्गि च प्रति-
षक्तोऽप्युक्तं च गुप्तं तथा यत्नादाचित्तमाननं प्रति
समाधाने च हने च धीः । इत्यन्यो मधुरस्स कोऽपि

शिशुतातास्मययोगस्तरं वल्लिष्णुर्मृगजक्षुषो विजयते
द्वैविध्यमुग्धो रसः ॥ ४३ ॥ बाल्ये गेहपतौ निमीलति
वयःसन्धिं विधाय स्मरश्चान्धकारतरं विवेश निभृतं
बालाशरीरालयम् । चाश्रयं चरणे पृथुल्यमुदं निर्ले-
जनां चेनसि लामन्त्रं हृदये दशाः सरलतां मर्षस्वम-
स्यादरन् ॥ ४४ ॥ भ्रूयो कान्चिर्जिला परिणतिरपूया
नयनयोः स्तनाभोगो ध्यक्तस्तर्कममसमाग्मसमये ।
इदानीं बालाया किममृतमयः किं विषमयः किमागन्दः
साक्षाद्गुनिनमधुरः पञ्चमखः ॥ ४५ ॥ भ्रूवल्लवो धनुः-
पाङ्कतरङ्गितानि बाणा गुणा श्रवणपालिरिति स्मरेण ।
तस्यामनङ्गजयजङ्गमेवतायामस्त्राणि निर्जितजगन्ति
किमपितानि ॥ ४६ ॥ मध्यस्थ प्रथिमानमेति जयनं
घसो जयोर्मन्दता दूरं यात्युदरं च रोमलनिकां नेत्रार्जवं
धायति । कम्पं परिशील्य नूतनमनोराज्याभिविक्तं

कसता जा रहा है और अपने बालोंको झोक करना हुआ इन्हे
स्पर्श कर रहा है ॥ ४१ ॥ वह नवेली अब गुह्य गुहिया खलनेमें
रस न लेकर अपनी सजावट करनेमें लगी रहती है, सुन्दर
गीतोंमें आजकल उसे बर्बाद कि हो गई है, प्रियतमके सम्पन्धमें
बातचीत चलानेपर वह लजाने और झलसाने लगती है और
रात-दिन अपनी प्यारी सखीके सम्भोगकी बातें स्मरण किया
करती है । अतः ऐसा जान पड़ता है कि परम विद्वान् काम-
देवने जो उसे पाठ पढ़ाया है, वह अब उसीमें भग्न रहता है
॥ ४० ॥ वह नवेली चतुरोंके बीच घुसकर प्यारी बातें सुनती है,
उन बातोंके अनुसार सैकड़ों हावभावका अभिनय करके उन्हें
ढगती भी है तथा उसके प्रति जब उसे पास बैठाना चाहते हैं
तब पासमें नहीं बैठती, फिर भी वह इस समय जैसी है
बैसी ही चित्त हरती है ॥ ४१ ॥ ऐसा नहीं है कि वह
नवेली किसीको अपने स्तनोंकी कोर ही छूने देती हो
कि कोई उसी लोभसे उसके पास जा पहुँचे । सब बात यह है
उसकी आँखोंने ही कुछ ऐसा रस सीख लिया है (आँखें ऐसी
रसाली हो गई हैं) कि जो उनका ध्यानमात्र कर ले उसे ही
साध लगनेको उकसा देती हैं । इतना होने पर भी वह बाला
जब आजकल किसीको नहीं अपना सकी है तो जान पड़ता है कि
किसी पुण्यात्माको भीतर हृदयमें स्थान न देनेके लिये ही वे
ऊँचे-ऊँचे बड़े-बड़े स्तन आदु बनकर खड़े हो गए हैं ॥ ४२ ॥
बचपन और जीवनके बीचमें विचरनेवाली इन हरिश्चकी-सी
आँखोंवाली बालाओंका बुरही घालसे भरा हुआ मनोहर रस

सदा जानना रहता है जिसमें प्रेमकी आशङ्का भी भरी रहती
हुई है और शङ्काका चिन्ताश भी, वह कभी उतर भी देती है कभी
कानको गुप्त भी रखती है, बड़े यत्नसे यदि उसका मुख शुभ्रनके
जिने मिल भी जाता है तो उसमें कभी सफलता मिलती है
और कभी असफलता अर्थात् बचपन और जीवनके सम्मिलनके
समय रसिकोंको संयोग और वियोग दोनोंका एक साथ
अनुभव मिलना रहता है ॥ ४३ ॥ बचपन-रूपी गृहस्वामीके साथ
रहनेपर कामदेवरूपी चोर, बचपन और जीवनकी मिलन-रूपी
संध लगाकर उस नवेलीके सुन्दर शरीररूपी घरमें चुपचाप घुस
गया और वहाँसे पँखोंकी चञ्चलता, कमरकी मोटाई, मनकी
निर्लज्जता, हृदयकी दुर्बलता तथा आँखोंकी सरलता, सब कुछ
चुरा ले गया ॥ ४४ ॥ बचपन और जीवनके इस मिलनके
समय उसकी आँखोंमें कुछ नया बँकापन, आँखोंमें कुछ अपूर्व
परिवर्तन तथा स्तनोंमें कुछ विचित्र विस्तार हो चला है और
उसकी जो मधुर कोकिल-वाणी है उसे अमृतमय कहें,
विषमय कहें या आनन्दमय कहें कुछ समझमें नहीं आता
क्योंकि वह बोली मारे भी डाल रही है, जिलाप भी डाल रही
है और तन्मय भी किए डाल रही है ॥ ४५ ॥ वह नायिका ऐसी
जान पड़ती है मानो कामदेवके विजयकी चलने-फिरनेवाली
देवी हो जिसमें कामदेवने भीहरूपी पल्लवोंका धनुष, नेत्रोंकी
चितवनके बाण और कानोंकी सीमाकी डोरी बनाकर संसारको
जीतनेवाले अपने अस्त्र स्थापित कर दिए हैं ॥ ४६ ॥ सुन्दर
आँखोंवाली नवेलीके गये सगोराभ्यपर कामदेवका अभिप्रेक

सृणादङ्गानीव परस्परं विदधते निर्लुण्ठनं सुध्रुवः ॥४७॥
मन्दं मन्दं श्रवणपुटकोपान्तगन्ता दगन्तः किञ्चित्कि-
ञ्चिद्विरमति मनो धूलिकेलीरसेभ्यः । आविर्भावः
स्तनमुकुलयोः कापि कामितः समन्तादय श्वो वा
कुसुमधनुषो यौवराज्याभियेकः ॥ ४८ ॥ मात्रा नर्तन-
परिहृतध्रुवधनं किञ्चित्प्रगल्भे दृशौ स्तोकोद्वेदनिघे-
शितस्तनमुरो मध्यं दरिद्राति च । अस्या यज्जघनं घनं
च कलया प्रत्यङ्गमेणीदृशः सत्यश्चारमिव स्मरैकसुहृदा
तर्षाधनेनापितम् ॥ ४९ ॥ मुखं विकसितस्मितं वशित-
घकिमप्रेक्षितं समुच्छलितधिभ्रमा गतिरपास्तसंस्था
मतिः । उरो मुकुलितस्तनं जघनमंसवन्धोद्वरं वतेन्दुव-
धनातनौ तरुणिमोद्गमो मोदते ॥५०॥ मृदुलघलिलसित-
मध्यं पृथुलकुचं चारु विपुलभूजघनम् । पुष्पागरुहणीयं
स्फुरति घनं यौवनम् च नारीणाम् ॥ ५१ ॥ यथा यथा

विशस्यस्या हृदये हृदयेश्वरः । तथा तथा वहिर्यासौ
मन्ये सङ्कोचतः कुचौ ॥ ५२ ॥ यथा यथास्याः कुचयोः
समुन्नतिस्तथा तथा लोचनमेति वक्रताम् । अहो सहन्ते
यत नो परेदयं निसर्गतोऽन्तर्मलिना ह्यसाधवः ॥५३॥
यद्वधि विलासभवनं यौवनमुदियाय चन्द्रधनायाः ।
वह्नं विनैव तद्वधि यूनां हृदयानि दहन्ते ॥ ५४ ॥
रेखा काचन कज्जलस्य नयनाभोजे मिथः कौशलादा-
लीभिः सरलीकृतापि कुटिलीभावं समालम्बते । लक्ष्या
धक्षसि पाणिपद्मविषमरूपशोदशदुन्नतिर्जानीमां वयमे-
खशावनयने वार्यं न पाल्यं तव ॥५५॥ लब्ध्वा मण्डल-
मुन्नतं कुचतटं स्फीता जघन्यश्रियस्ताः कान्ता वलि-
भिश्च मध्यमध्रुवो भ्रूयां धृतो वकिमः । पञ्चेर्षुविजिगी-
पते त्रिजगती तद्वात्यताकणयोर्द्वैराज्ये समुपस्थिते
सृगदशः किं केन मारभ्यते ॥ ५६ ॥ लावण्यामृतनिर्भ-

हुआ देखकर उसके आँखें एक दूसरेके गुणोंकी इस प्रकार सूट-
पाट करने लगे हैं कि कमरकी भोटाई नितम्बोंने, स्तनोंका
छोटापन कमरने और नेत्रोंका सीधापन रोमावलीने उसे क्षिप्रा
आधातू स्तन मोटे तथा नेत्र चञ्चल और कुटिल हो गए ॥ ४७ ॥
उस नवेलीकी आँखें धीरे-धीरे कानके पासतक फैल आई हैं,
उसका मन भी धूलमें खेलनेके आनन्दसे कुल-कुल हट जाता है,
उसके हृदयपर भी स्तनरूपी कली प्रकट होने लगी है और उसके
शरीरपर चारों ओर सुन्दर कामित बढ रहा है । इससे जान
पड़ता है कि वस आजकलमें ही इसके शरीररूपी राजपपर
फूलोंके धनुषधाला कामदेव युवराज बनाया जानेवाला है
॥ ४८ ॥ इस नवेलीके मुखपरकी आँखें उचित उल्लेखे नाचनेमें
चमुर हो चली हैं, आँखें दौट जाती जा रही हैं, छातीपर स्तनोंका
उभार कलका आ रहा है, कमर पतली होती जा रही है और
जघन (पेट) कड़ा हो रहा है । इस प्रकार इस हरिणीके नेत्रोंके
समान आँखोंवाली नायिकाके प्रत्येक अङ्गको कामदेवके अकेले
मित्र यौवनने ही ठीक-ठीक सजा दिया है ॥ ४९ ॥ चन्द्रमाके
समान मुखवाली इस नवेलीके शरीरमें यौवनके आ जानेसे
खिली हुई सुसज्जनवाला मुख, तिरछी चिनचन, हावभाव-भरी
हुई चाल, चञ्चल बुद्धि, उभरे हुए स्तनोंवाला हृदय तथा कड़ा
और उभरा हुआ जघनस्थल बढ़ा सुहावना लग रहा है ॥५०॥
एक ओर कोमल लवलीकी लता, बड़े-बड़े बड़हलके फल, लम्बी-
पीड़ी सुन्दर भूमि तथा नागकेंसरके वृक्ष इस समय वनकी सुन्दर
और आकर्षक बना रहे हैं, दूसरी ओर लवली लताके समान

पतली कमर, बड़हलके समान मोटे स्तन, विलसत भूमिके
समान बड़े-बड़े नितम्ब तथा नागकेंसरके पीछोंके समान सुन्दर
खिलखिली खियोंके यौवनको आकर्षक रूपसे सुशोभित कर रही
हैं ॥ ५१ ॥ इस नवेलीके दोनों स्तनोंको बढ़ते देखकर ऐसा
प्रतीत होता है कि इसका प्राण-प्यारा ज्यों-ज्यों इसके हृदयमें
प्रवेश कर रहा है त्यों-त्यों वे सङ्कोचके मारे बाहर निकले आ रहे
हैं ॥५२॥ इस नवेलीके स्तन ज्यों-ज्यों बढ़ते जा रहे हैं त्यों-त्यों
नेत्रोंकी चितवन टेढ़ी होती जा रही है । लक्ष्मण जिन दुर्भिक्ष
मन खाता होता है वे स्वभावसे ही दूसरेकी उन्नति नहीं सह
सकते ॥ ५३ ॥ जबसे इस चन्द्रमाके समान मुखवाली
नवेलीमें यह आनन्द देनेवाला यौवन उभरने लगा है तबसे
युवकोंके हृदय बिना आगके ही जलने लग गए हैं ॥ ५४ ॥ है
सृगके खीनेके नेत्रोंके समान चञ्चल नेत्रोंवाली ! हम समझ
गए कि तुम अब बचपनकी रक्षा नहीं कर सकती क्योंकि
तुम्हारी सखियोंने तुम्हारे नेत्रोंमें जो एकान्तमें काजलकी सीधी
रेखाएँ बना दी थीं वे टेढ़ी हो चली हैं और हाथ-रूपी कमलके
स्पर्शसे दुखनेवाली छातीका उभार भी अब स्पष्ट दिखाई पड़ने
लगा है ॥५५॥ अब बालापन और जवानीका दुराज आ जाता है
और कामदेव तीनों लोकोंको जीतनेके लिये कमर कस लेता है
तब हरिणके नेत्रोंके समान आँखोंवाली नायिकाका कौनसा अङ्ग
क्या उत्पात नहीं करता ? देखो, स्तन तो अपना घेरा बढ़ाकर फैले
हो जाते हैं, नितम्ब चौड़े हो जाते हैं, उदरपर वलियों पड़ जाते
हैं और आँखोंमें भी आँकापन आ जाता है ॥ ५६ ॥ उस सुन्दर

रेण सुदृशः सित्काञ्चिताङ्गस्थली जातस्मिन्न नवीन-
यौवनकलालीलालतामण्डपः । तस्मिन्नेवविशेषशीतल-
तरङ्गछायासु सुप्तोत्थितः कन्दर्पस्त्रिजगज्जयोधमपरोऽ-
प्यद्यापि निद्रालसः ॥ ५७ ॥ लावण्यामृतमाहितं वरतनो-
रङ्गे स्थितं यत्पुरा तत्तारुण्यघनोदयेन बहुधा सम्ब-
द्धितं पद्मभूः । वीक्ष्य स्पन्दनशङ्कितः कुचयुगल्याजा-
ञ्जितम्यस्थलाश्रये सेतुयुगं न चेद्विह कुतस्तः । दृग्रसस्था-
स्तुता ॥ ५८ ॥ लास्याभ्यासमिषेण चित्रमनया गात्रा-
र्पणं शिञ्जितं लीलापञ्चमङ्गलेन दलितं करउस्थ कुरङ्गा-
गतिः । किं व्यावर्णनया समस्तलटभालङ्कारतामेष्यति
स्वल्पेनैव परिश्रमेण रमणी देवस्य रामागुरोः ॥ ५९ ॥
वक्षस्यावरणाद्वरस्तनयुगोद्धेवं विनाप्यङ्गुलीमुद्रासुचि-
तहास्यमास्यमधिकं नो पुत्रिकादां रसः । तिर्यग्लाञ्च-
नवीक्षितानि वक्षसां छेकांक्तिसमान्तयस्तस्थास्तीदति
शैशवे समभवत्कोऽप्येव नय्यः क्रमः ॥ ६० ॥ श्रोणीव-
न्धस्त्यजति तनुतां सेव्यसे मध्यभागः पद्मयां मुक्तास्त-

रत्नगतयः सञ्चिता लोचनाभ्याम् । धत्ते वक्षः कुचस-
चिद्यतामङ्गिनीयं तु चक्रं तद्गात्राणां गुणचिनिमयः
कल्पितो यावनेन ॥ ६१ ॥ सन्नद्धोऽयं नवनरणिमा
काममास्कन्दुकामो नैनां मुञ्चन्त्यद्वह महत्त्वा कौतुकी
यालभावः । नद्वैराजं वरतर्तनुस्वर्णभूमां प्रवृत्तं प्राय
स्वस्मादनुदिनमयं लीयते मध्यदेशः ॥ ६२ ॥ सञ्चभङ्गं
कराकितलयायर्तनैरालपन्ती सा पश्यन्ती ललितललितं
लोचनस्याञ्जलेन । विन्यस्यन्ती चरणकमलं लीलया
स्वैरयानैर्निःसङ्गातं प्रथमययसा नत्तिना पङ्कजाक्षी
॥ ६३ ॥ समं विलासोऽङ्कुरितः स्तनाभ्यां त्रया विला-
सेन सहायनीणां । अवर्ततान्यत्पयैव साकं कान्तः
प्रकारो वचसां कृशाङ्गयाः ॥ ६४ ॥ सम्मिश्रयोरमुष्या
वयसोः पयसंरिथाङ्गम् । अनयो रसद्विभेदं मानस-
जन्मा परं वेद ॥ ६५ ॥ स्तननटमिदमुत्तुङ्गं निम्नो मध्यः
समुन्नतजघनम् । विषमे मृगशावाक्या यपुपि नयं क
इव न स्वलति ॥ ६६ ॥ स्थिरत्वमविरचनीं तमसि

श्रीलौकाजी नवेलीके सुन्दरतारुपी अमृतके धरनेसे हींचे
हुए अङ्गुली केतमेंसे सुन्दर वेश-रचनाकी आवृन्त शीतल
छायावाला तथा नये यौवनकी कलाकपी लतावाला जो मण्डप
मिलत थाया है उसमेंसे तीनों जाँकोंके जीतनेके फेरमें पहुँ-
चनेवाला कामदेव सोकर उठा हुआ अभीतक भी भौंगड़ाई
ले रहा है ॥ ५७ ॥ प्रह्लाजने उस नवेलीकी सुन्दर देहमें
तरुणाई कपी मेधाँके आनेसे बड़े हुए सौन्दर्यकपी अमृतको जब
घाता देखा तब इस डरसे कि वह कहीं वह न जाय, उन्होंने
दोनों स्तनों और नितम्बोंके दो बाँध बना दिए, नहीं तो
इस प्रकारका रस यहाँ उधर कैसे पाता ॥ ५८ ॥ कामस
नृप सीखनेके सहाने इस नवेलीने कुछ अनांसा हाव-भाव
सीख लिया है और जिलवाइमें पद्मम स्वर साधकर उसने
अपने गलेका वेसुरापन भी बूर कर दिया । हम और उसका
क्या बर्णन करें, वह तो बाँधे ही परिधमसे बनाव-सिंगारमें
अपसराओंके भी कान काटने लगेगी ॥ ५९ ॥ बचपन समाप्त
होनेके समय उसमें ये नई बातें होने लगी हैं कि दोनों स्तनोंके
बिना उभरे ही वह छाती टकती चलती है, अपने मुँहपर उँगली
रख-रखकर मुसकराती है, गुदियोंसे खेलनेमें रस नहीं लेती,
तिरछी चितवनसे देखती है और बात-चीत भी नदी चतुराईके
साथ करने लगी है ॥ ६० ॥ यौवनने उस नवेलीके अङ्गोंमें गुलोंकी
ऊँचे-ऊँची अनोखी अद्विष्ट-बदली कर दी है कि नितम्बका

पतलापन कमरमें चत्रा गया, पैरोंकी चञ्चलता नेत्रोंमें चली गई,
हृदयने स्तनोंको अपनी सभ्रा बना लिया और मुख अङ्गिनीय
(अकेला या अनुपम) हो गया ॥ ६१ ॥ इस नवेलीके
शरीरमें एक ओर तो कामदेवको परास्त करनेके लिये नया
यौवन कमर कसे लड़ा है, दूसरी ओर कौतुकी बचपन इसे
छाँदनेका नाम नहीं लेता, इसलिये उस नवेलीके सुन्दर शरीरकपी
स्वर्णारामपर दाँ-दाँ राजाओंका आक्रमण हो रहा है जिसकी
चिन्तासे उसकी कमर छोजता चला जा रहा है ॥ ६२ ॥ देखो,
उस कमलके समान नेत्रवाली नवेलीको यह तरुणाई बिना
गीतके ही नचा रही है क्योंकि वह हाथ नचा-नचाकर और भी
मटका-मटकाकर बातें करती है, अपनी आँखोंकी सुन्दर लुभावनी
चितवनके साथ देखती है और मनमाने उहसे बड़े हाव-भावके
साथ धरतीपर पर धरती चलती है ॥ ६३ ॥ इस पतले शरीरवाली
नवेलीमें स्तनोंके साथ-साथ काढ़ाएँ उभरीं, काढ़ाओंके साथ
लम्बा आ गई और लज्जाके ही साथ सुन्दर बोलनेका उह भी
आ गया ॥ ६४ ॥ जैसे मानस (मानसरावर)में उत्पन्न होनेवाला
इंस ही दूध और जलका भेद करना जानता है वैसे ही मानस
(मन) में जन्म लेनेवाला कामदेव ही इस नवेलीके अङ्गोंमें
खिलती हुई अवस्थाओंके रसोंका भेद जान सकता है ॥ ६५ ॥
ऊँचे-ऊँचे स्तन, पतली तथा लचकीली कमर और ऊँचे-
बड़े-बड़े नितम्बोंसे नीची-ऊँची इस हरिणके नेत्रोंके समान

कोऽपि बन्धग्रहो विधां किमपि सौख्यं प्रयुनि कापि
वर्णात्मता । शिरीषनवदामनिस्फुरति कोऽपि शैलोदयो
धयोऽभिनववेधसन्निविह मन्महे कांशलम् ॥ ६७ ॥
स्मितं किञ्चिद्वक्ष्ये सखलतरलो दृष्टिविभवः परिस्यन्दो
याचामभिनवचिलासोक्तिसरसः । गतीनामारम्भः किस्-
लयितलीलापरिकरः स्पृशन्त्यास्तारुण्यं किमिह नहि
रस्यं मृगदृशः ॥ ६८ ॥

युवतीवर्णनम्

अधारि पक्षेपु तद्विधेया घृणा क्व तच्छ्रुयच्छ्राय-
लवोऽपि पल्लवे । तदास्यदास्येऽपि गतोऽधिकारितां न
शारदः पार्थिवशर्वरीश्वरः ॥ १ ॥ असुख्य दोर्भ्यामस्तिदुर्ग-
लुण्ठनं ध्रुवं गृहीतागलदीर्घपीनता । उरःश्रिया तत्र च
शोपुरस्फुरत्कपाटदुर्धर्यनिरःप्रसारिता ॥ २ ॥ ऊरुद्वन्द्व-
मनिन्दितं प्रथयता धोर्णां समातन्धता रोमालो रज्जता

शौंशोंवाली नवेलीकी देह देखकर कीज नहीं विचलित हो
जाता ॥ ६६ ॥ इस नवेलीकी इस अवस्थाका निमाख करनेमें
किसी नराले मझाने कोई विचित्र हो कांशल किया है क्योंकि
उसने पित्रलां स्थिर कर दी अन्धकार बाँध दिया, चन्द्रमामें
सुगन्ध भर दी, मधुमें सुन्दर स्वरूप भर दिया और शिरीषके
फूलोंकी नई मालामें विचित्र उठते हुए पर्वत बना दिए अर्थात्
उस नायिकाकी देह स्थिर पित्रलांके समान प्रकाशमान, उसके
बैधे हुए घने केश अन्धकारके समान काले, उसका मुख सुगन्धसे
पुस्त, उसकी आकृति मधुर और उसके हृदयमें उठते हुए स्तन
अत्यन्त सुन्दर लग रहे हैं ॥ ६७ ॥ इस मृगके नेत्रोंके समान
धौलौंवाली नवेलीका क्या सुन्दर नहीं लगता ? अर्थात् उसके
मुखकी मन्द मुसकान, सीधा और चञ्चल चितवन, नई चिलास
भरी उक्तियोंसे सरस बाणी, हाव-भाव-पूर्ण चलनेका उद्ग और
कोमल पत्तोंके समान चिकना स्पर्श आदि सभी कुछ अच्छा
लगता है ॥ ६८ ॥

युवतीका वर्णन

जय उस युवतीके चरणोत्तकने लाल कमलको नीचा दिखाना
प्रारम्भ कर दिया तब भला बेचारी कौपलोंमें उसके हाथकी
ललाईकी कलकतक भी कहीं मिल सकती है ? और तो और,
शरदकी पुनोकी रातका स्वामी चन्द्रमा भी उसके सामने
पेसा फीका जान पड़ने लगा है कि उसके सुन्दर दास
बनने तकका भी वह अधिकारी नहीं रह पाया ॥ १ ॥ इस
नवेलीके हाटने शत्रुओंका दुर्ग लूटकर उसके फाटकी भंगला

समागमयता नाभिं गभीरश्रिया । मध्यं क्षामयता
स्तनीं धनयता कान्त्या मुखं सिम्पता तन्त्रक्या
नवयौवनेन किमपि प्रत्यङ्गमुन्मीलितम् ॥ ३ ॥ किमस्य
रोम्णां कपटेन कोटिभिर्विधिर्न लेखाभिरजीगह-
हृणां । न रोमकूपौघमिपाज्जगरुता कृताश्च किं
दूषणशून्यविन्दवः ॥ ४ ॥ गतं कर्णाभ्यर्णं प्रसरति
तथाऽप्यलियुगलं कुक्षौ कुम्भारम्भौ तदपि चिबुकोत्त-
म्भनरुची । नितम्बप्राग्भारो गुरुरपि गुरुत्वं मृगयते
कथाञ्जिनो तृप्तिस्तरुणिमनि मन्त्रे मृगदृशः ॥ ५ ॥
तरसारश्चक्षुः क्षपयति मुनीनामपि दृशः कुचद्वन्द्वक्रान्तं
हृदयमहृदः कान्तं कुरुते । गतिर्मन्दीभूता हरति
गमनं मन्मथवतामहो तुल्यं तन्ध्यास्तरुणिमनि सख्यं
धिजयते ॥ ६ ॥ तरन्तीयाङ्गानि स्खलदमललायण्यजलधौ
प्रधिप्लवः प्रागदभ्यं स्तनजघनमुन्मुदयति च । दशोर्ली-

(अगरी, ध्यर्णिके) की गोलाई और लम्बाई तथा छाती ने उस
फाटकी कठोरता तथा ऊंचाई अवरय ले ली है उसकी
बाहें गोल-गोल लम्बो और छाती कठोर तथा ऊँची हो गई
है ॥ २ ॥ नई जवानीने उस नवेलीके अंग-अंगको कुछ अपोके
हंगसे पेसा लिखा दिया है कि उसकी दोनों नाँवें अत्यन्त
शोभाके साथ मोटी हो गई हैं, नितम्ब फैल गए हैं, छातीके
भीचे रोम-पंक्ति फूट आई है, नाभि गहरी हो चकी है, कमर
पतली हो गई है, स्तन मांटे हो गए हैं और मुँहपर चमक
आ गई है ॥ ३ ॥ मझाने इस नवेलीके शरीरपर जो रोम बनाए
हैं वे ऐसे जान पड़ते हैं माना इसके गुणोंकी गिनती करनेके
लिये ही उसने कपटने उपाय रचा है और उनके साथ शून्यके
समान रोमके चिद्र यही बतानेके लिये बनाए हैं कि इसमें एक
भी दोष नहीं है अर्थात् यह दोषशून्य है ॥ ४ ॥ इरिणकी शौंशों
जैसे नेत्रोंवाली युवतीकी जवानीमें किसी प्रकार भी सन्तोष नहीं
होता क्योंकि यद्यपि उसकी दोनों नाँवें कानके पास तक
जा पहुँची हैं फिर भी बढ़ती हो जा रही हैं, उसके स्तन बढ़ीं
जितने बढ़े होनेपर भी ठोड़ीतक उठनेके लिये मजबूर रहे हैं
और उसके नितम्ब भी यद्यपि पहलेसे ही बढ़े और भारी हैं फिर
भी और बढ़े इंगना चाहते हैं ॥ ५ ॥ उठती हुई जवानीमें उस
नवेलीके सब अङ्ग सबको समान रूपसे जीतते चले जा रहे हैं
क्योंकि उसकी चञ्चल शौंशें सुनियोंकी शौंशोंकी भी विचलित
किष्ट डालती हैं, उसके दोनों स्तन किन हृदयवालोंको बिना
हृदयका नहीं कर रहे हैं और उसकी मतवाली चाल न जाने

सारम्भास्फुटमपवदन्ते सरलतामहो सारकान्या-
स्तदलिमनि गाढः परिकरः ॥ ७ ॥ न का निशि स्वप्न-
गतं ददर्श तं जगाद् गोप्रस्त्रलिते च का न तम् ।
तदात्मताध्यातधया रते च का चकार वा न स्वमनो-
भवोद्भवम् ॥ ८ ॥ निर्मलनभ्रंशजुषा दशा भूयं निर्णीय
तं यस्त्रिदशीभिरर्जितः । अमुस्तमभ्यासभरं चित्तुगवते
निमेषनि स्वैरधुनापि लोचनैः ॥ ९ ॥ पर्याप्तस्तनभार-
पीडितमुरस्तेनैव मध्यो हन पुंसां चित्रवधं भूतेविदधते
काभिदृशोर्ध्वसयः । किं भूयः कथितेन पद्मलदशः
पूर्णं तथा यौघेन कम्प्यः परिपूर्णचित्रवधिययः किं
दर्पतो नाचरेत् ॥ १० ॥ विलोकयन्तीभिरञ्जस्वभाव-
नायलादमुं तत्र निर्मलनेत्रपि । अस्मिन् मर्त्याभिरमुप-
वर्तते न विघ्नलेशोऽपि निमेषनिर्मितः ॥ ११ ॥
शारीर्यतकलाकुतूहलि मनश्चेकोकिशिक्षारतिः हृद्यं

दर्पणपाणिना स्वकवरीवन्धेन चानार्यकम् । प्रौढस्त्री-
चग्नितानुवृत्तिषु रसां वाग्यं च लज्जा मनास्मन्तोका-
गेहितानि यौघेन मृगदशः कोऽप्येव केलिक्रमः ॥ १२ ॥
सरोरुहं तस्य दृश्यं तज्जितं जिताः स्मितेनैव विधौर्गपि
श्रियः । कुतः परं भव्यमहो मर्त्ययसो नदाननस्याप-
मिनो दग्धना ॥ १३ ॥ स्मितपरिचयना वृत्तिर्वाचाम-
पाङ्गनगङ्गा नयनचरितं पादन्यासां तिनम्यभगात्मनः ।
हृद्गुह्यं सुननोर्लालाम्बैः कृतं पद्मद्वके यदनु मदनः
शोभाभात्रं धनुर्ननु सम्पति ॥ १४ ॥ स्वकेलिलेशस्मिन्-
निन्दितेन्दुना निजांशदृक्कजितपद्मवन्दः । अतद्वृत्ति-
जित्यस्तुन्दगन्तरे न मन्मुखस्य प्रनिमा चराचरं ॥ १५ ॥
स्वयालभाभ्यं तदनुमाहृतैः समं चमय्य तुलाभिला-
षतः । अनागमे शंसति बालचापलं पुनः पुनः पुच्छ-
विलासनच्छलान् ॥ १६ ॥

कितने कामियोंकी बाल बन्द कर रही है ॥ ६ ॥ आह ! उठती
जवानीमें हरियके चाँवोंकी-सी चाँववाली नवेलीके साथ बड़ी
कठिनाई उत्पन्न हो जाती है क्योंकि उसके अङ्ग स्वच्छ सौन्दर्यके
समुद्रमें तेरते हुए-से जान पड़ते हैं, स्तनों और मितम्बोंका
भारीपन उसकी चञ्चलताको रोक के डालता है और नेत्रोंमें जो
गहरे चञ्चलता आ रही है वह स्वच्छ रूपसे उनकी सरलता
धूर कर रही है ॥ ७ ॥ इस अवस्थामें किसने अपने मनकी
आइसे रसको स्वप्नमें अपने प्रियको नहीं देखा, अचानक भूलसे
उसका नाम नहीं लिया और अपने मनमें हो अपने सोचे
हुए प्रियके साथ रमण नहीं किया ॥ ८ ॥ अपलक नेत्रोंसे भरी
प्रकार देखनेका जो अभ्यास देवलोकेकी अप्सराओंने किया है
वही अभ्यास यह नवेली आज अपने अवलक नेत्रोंसे देखकर
प्रकट कर रही है ॥ ९ ॥ अब और क्या कहा जाय, उस
कटीको चाँवोंवालीके शरीरपर नई जवानी चढ़ आनेपर मानों
कामदेवने अपना विरवविजय पूर्ण कर लिया अतः अब वह
अपने धर्मद्वयें क्या-क्या नहीं कर सकता ! देखो, एक और तो
स्तनोंके अत्यन्त भारसे हृष्य पीडित है और उसी भारसे
उसकी कमर पतली हुई जा रही है और उसकी चितवन
ऐसी अनोखी चल रही है कि निश्चय प्रकारसे वह जोंगोंके
धैर्यकी हत्या करती चली जा रही है ॥ १० ॥ चाँलें मुँद
जानेपर भी अपनी रद भावनाके बलसे अनुप्य-लोककी स्त्रियोंने
उस युवकको निरन्तर देखते-देखते अपनी पलकें ऐसी सिद्ध
कर लीं कि उन्हें पलक गिर जानेपर भी उसके दर्शनमें तनिक-

सी भी बाधा नहीं हुई ॥ ११ ॥ वासा और मुष्मावैलनेकी कलामें
मन लगानेवाली, बात बनानेकी कला सीखनेमें रुचि दिखानेवाली,
स्वयं हाथमें दर्पण लेकर अपनी मृदा घँघनेमें चतुर, बचपनके
कारण कुछ लज्जा करनेवाली पर प्रौढ़ स्त्रियोंके समान आचरण
करनेमें रस लेनेवाली इसीली नवेलियोंका उस समय ऐसा ही
लेख होना है जब वे कुछ-कुछ जवानीकी सीढ़ीपर चढ़ने
लगती हैं ॥ १२ ॥ कमलको उसकी चाँवोंने हरा दिया और
चन्द्रमाकी सारी काग्नि उसकी मुसकानने जीत ली, इसीलिये
उसके मुखकी उपमा देनेमें इनकी बड़ी दरिद्रता दिखाई पड़ने
लगी है ॥ १३ ॥ मुसकानसे धुली हुई उसकी बातें, लहराली
हुई चितवन तथा नितम्बोंके भारके कारण मन्द गति देखकर
जान पड़ता है कि उस कोमलाहलीके अङ्गोंमें कुछ नये हाव-
भावके सूत्रोंने प्रवेश कर लिया है । अब इसके सामने
कामदेव अपने अनुपको शोभाभात्रके लिये भले ही धारण किए
रहे किन्तु वह इनके सामने कुछ नहीं है ॥ १४ ॥ अब उसने अपनी
खिलवाड़की तनिकसी मुसकानसे चन्द्रमाको लजा दिया और
अपनी चितवनकी एक भपकसे कमलकी शोभा फीकी कर दी तब
चन्द्रमा और कमलको जीतनेवाली तीसरी कोई वस्तु रह ही
नहीं गई; इसीलिये उस नवेलीके मुखकी उपमा पर और
अचर कहीं भी नहीं मिल सकी ॥ १५ ॥ चँचरी गौदें बार-बार
अपनी पूँछें हिला-हिला कर मानो यह सिद्ध कर रहा हैं कि हम
निरपराध हैं और यह हमारे बालोंका लटकपन है कि वे उस
नवेलीके सिरपर शोभा पानेवाले बालोंकी बराबरी चाहते हैं ॥ १६ ॥

नखगिखवर्णनम्

केशपाशः—अस्याः कञ्चानां शिखिनश्च किन्तु विधि कलापौ विमलेरगाताम् । तेनायमेभिः किमपूजि पुष्पैरभस्ति दत्त्वा स किमर्धचन्द्रम् ॥ १ ॥ अस्या मनोहराकारकयरीभारनिजिताः । लज्जयेव घने वासं चकुश्मरवर्हिणः ॥ २ ॥ अस्या यदाश्चेन पुरस्तिरश्च तिरस्कृतं शीतरुचान्धकारम् । स्फुटस्फुरद्भङ्गिकचञ्चलेन तदेव पञ्चाविदमस्ति वदम् ॥ ३ ॥ अस्याः सप-
लौकविधोः कञ्चाघः स्थाने मुखस्योपरि वासमाप । पक्षस्थतावद्वहुचन्द्रकोऽपि कलापिनां येन जितः कलापः ॥ ४ ॥ आभाति शोभातिशयं प्रपञ्चादेणीदृशोऽस्या रमणीयशोभा । वेणी लसन्कुन्तलधोरणीनां श्रेणीव किं वास हरिन्मणीनाम् ॥ ५ ॥ इयं मुलाम्भोरुहसन्निधाने विलम्बिधम्मिलनतिच्छलेन । समागतां सादरमेव बाला द्विरेफमालामुत वा दधाति ॥ ६ ॥ उम्मीलवद-

नखशिला-वर्णन

केश : मोरोंके इसके बालोंके निर्माणके समय महाश्रीका क्वा विनाहा था कि उन्होंने इन बालोंको तो फूलोंसे पूजा और मोरोंको पैरोंको अर्धचन्द्र देकर उनका चनादर किया ॥ १ ॥ चैंबरी गीर्ण और मोर जो घनमें रहते हैं उसका कारण यही है कि इसके मनोहर गुँदोंसे पराजित होकर उन्होंने मनवास ग्रहण कर लिया है ॥ २ ॥ इसके सिरके पीछे जो चमकने हुए चोटीके रूपमें बाल बँधे हुए हैं वे ऐसे जान पड़ते हैं मानो इसके चन्द्रमारुपी मुखके सामनेसे और चमक-चमकते जो चपेरा हटा वही पीछे बँध दिया गया है ॥ ३ ॥ उस नखेलीके चन्द्रमाके समान मुखके पास उचित स्थानपर स्थापित वह गुँदा सचमुच बड़ा सुन्दर लगता है क्योंकि इसने बहुत-से चन्द्रिकावाले मोरोंके समूहोंकी अपनी शोभासे जीत लिया है ॥ ४ ॥ इस हरिखके समान आँखोंवाली नायिकाकी सुन्दरता और विलासोंसे भरी हुई उसकी शोभा उस सुन्दर गुपी हुई बालोंकी चोटीके कारण और भी अधिक बढ़ गई है जो नीलमकी पत्तिके समान सुन्दर लग रही है ॥ ५ ॥ इस नखेलीके मुखकमलपर जहराते हुए बाल ऐसे जान पड़ते हैं मानो भीराँकी पारतें हों आदरपूर्वक चली चारों हों ॥ ६ ॥ उसके बाल हतने काले हैं कि वे ऐसे जगते हैं मानो जब चैंबरा इस नखेलीके पास आया तो पहले निकलते हुए चन्द्रमाके समान मुखकी चमकने उसे दूर कर दिया, मोटे

नेन्दुकान्तिविसरेद्वारे समुन्सारितं भग्नं पौनकुचस्थलस्य च रुचा हस्तप्रभाभिर्हतम् । एतस्याः कलविङ्ककएठक-
दलीकल्पं मिलत्कौतुकादप्रमाताङ्गसुखं रूपेण सहसा केशेषु लभ्यतमः ॥ ७ ॥ एणीदृशः पाणिपुटे निवद्धा वेणी विरेजे शयनोन्मितायाः । सरोजकोशादिव निष्प-
तस्ती श्रेणी घनीभूय मधुव्रतानाम् ॥ ८ ॥ एतां नवाशु-
धरकान्तिमुदीक्ष्य वेणीमेणीदृशो यदि वदन्ति वदन्तु नाम । ब्रूमो वयं मुखसुधांशुसुधाभिलाषादभ्यागतां भुजगिनीं मणिमुद्रहन्तीम् ॥ ९ ॥ एणीदृशो विजयते वेणी पृष्ठावलम्बिनी । कशेष पञ्चबाणस्य युवतर्जनहे-
तवे ॥ १० ॥ केशांस्तुमनसां सेव्यान्वामा वभस्ति निर्दयम् । स्थाने तथाविधानां वा प्रमदानां समीहितम् ॥ ११ ॥ कौटिल्याच्छुभ्रमाहास्यस्तदीयोऽलकसञ्चयः । कृष्णपुतिः पुरस्तिप्रभादधे कं समाकुलम् ॥ १२ ॥ वलत्कामिमनोमीनमादातुं विलज्जमनः । गलयद्विदि-

स्तनोंकी कान्तिने डले तोड़ दिया और हाथोंकी दमकने उसे दूर-दूर कर दिया तब वह बड़े क्रोधसे गीरैयाके गलेके समान उसके सुन्दर भङ्गोंकी न खू सकनेके कारण उलझकर उसके बालों पर ही चढ़ बैठा ॥ ७ ॥ वह हरियालीके नेत्रोंके समान आँखोंवाली नखेली जब सीयाने उठी तो उसके हाथोंमें उसकी हुई चोटी देसी शोभा वा रही थी मानो कमलोंके कोशोंसे भीराँके कुण्डके कुण्ड पौन बाँधकर निकले चले आ रहे ॥ ८ ॥ हरियालीके नेत्रोंके समान आँखोंवाली नखेलीकी नये बादलोंके समान सुन्दर चोटीको यदि कुछ लोग 'चोटी' कहते हैं तो भले कहें, पर इस तो यही कहेंगे कि मुखरूपी चन्द्रमाका प्रकृत पीनेकी इच्छासे कोई मखिपर सपिणी बर्छा घा पहुँची है ॥ ९ ॥ हरियालीके नेत्रोंके समान आँखोंवाली उस नखेलीकी पीठपर लटकती हुई चोटी देसी लगती है मानो मुखकोंकी चमकानेके लिये कामदेवका कोड़ा हो ॥ १० ॥ सुन्दर मनवाले लोगों (फूलों) से जो सेवा करते हैं उन बालोंको चिथों जो कसकर बाँधती हैं वह ठीक ही है । ऐसे दुष्टोंको इस प्रकार बाँधना ही ठीक है (क्योंकि वे अच्छे मनवालोंसे अपनी सेवा करते हैं) ॥ ११ ॥ सामने लहराते हुए उसके बाल सचमुच बड़े कुटिल (चैंबराके, दुष्ट) हैं क्योंकि उनकी कानी चमक किये आकुल नहीं कर देती ॥ १२ ॥ इस नखेलीकी जो चोटी मोतियोंकी लवियोंसे चमक रही है वह देसी जान पड़ती है मानो चमक कामियोंके मनरूपी मखियोंकी फँसानेके लिये कामदेवकी बंसी हो ॥ १३ ॥

वाभाति बालायेणी गुणोज्ज्वला ॥ १३ ॥ चिकुरप्रकरा
जयन्ति ते विदुषी मूर्धनि यान्तिभति सा । पशुनाप्य-
पुरस्कृतेन तत्तुलनामिच्छति चामरेण कः ॥ १४ ॥
तमस्तोम भृशं सोममण्डलोपरि राजसे । धूमपानेन
किं नाम धाम गम्यमतः परम् ॥ १५ ॥ तस्याः कचभ-
रव्याजासनयस्त्रेहलालितः । आरुढः पार्वनीयुद्धा गुह-
वर्धिव मूर्धनि ॥ १६ ॥ धुनोसु ध्वान्तं नस्तुलितदलित-
तेन्द्रीवरधनं घनस्त्रिभ्यं श्लक्ष्णं चिकुरनिकुरभ्यं तव
शिवे । यदीयं सौरभ्यं सहजमुपलभुं सुमनसो वसन्त्य-
स्मिन्मग्न्ये यलमधनवाटीविटपिनाम् ॥ १७ ॥ न जीमू-
तच्छेदः स हि गगनचारी न च तमो न तस्येन्दोर्मर्त्री
न च मधुकरास्ते हि मुखराः । न पिच्छं तत्केकिन्मु-
षितमसितोऽयं न च मणिर्मुदुत्वादाह्लातं घनचिकुर-
पाशो मृगदशः ॥ १८ ॥ बाला बालान्वशीकृत्य निवभा-

तीति नाद्रुतम् । किन्तु नैः सह हा हन्त पधिकानपि
दर्शकान् ॥ १६ ॥ भाति विन्यस्तकहारां सुकेश्याः केश-
सञ्जयम् । शोणितार्द्रैः शनैः पूर्णं नृणीरमिव मान्मथम्
॥ २० ॥ मलिना अपि संयमनाङ्कुटिला अपि सुमनसां
समागमतः । बाला अपि मुक्तानामनुपद्वाघ्रिर्जगन्वमु-
पयान्ति ॥ २१ ॥ यं यं न्यं प्रमदे मनागपि दृशोर्लक्ष्यं
विधन्तेऽध्वगं छिन्नप्राण इव क्षणान्तं सकलो व्यापयते
हा क्षणम् । तज्जन्यं वृजिनं समुक्षितमिदं मन्ये न केशो-
द्ययं न ध्वान्तं न हि तस्य सम्भवति संयोगो मुग्धेन्द्रो
स्थिते ॥ २२ ॥ हसन्मार्तिकश्रेणिगङ्गातरङ्गा स्थयं
नन्दिनी भास्वतो नीलधर्णा । ससीमन्तसिन्दुरसारस्थ-
ताभा त्रिवेणीयमेणीदृशो मालिचेणी ॥ २३ ॥ विकचक-
लकलापः किञ्चिदाकुञ्चितोऽयं कुचकलशनिवेशी शोभते
श्यामलाख्याः । मधुरसपरितोयात्किञ्चिदुत्फुल्लकोश

हस विदुषीने अपने मस्तकपर जो बालोंके गुच्छे धारण किए हैं
वे संसारको जीत रहे हैं क्योंकि जब चैंदरी गौ, पशु होकर भी
इन बालोंसे हारकर अपने बाल कागं न रखकर पाँखे पँखपर
रख धोइती है तब भला इन बालोंसे और दूसरा कौन तुलना
करना चाहेगा ॥ १४ ॥ बालोंको सम्बोधित करके कवि कहता है कि
हे अन्धकार समूह ! तुम तो यों ही चन्द्रमण्डल (मुख) के ऊपर
अग्रन्त शोभा पा रहे हो तिसपर यह अग्रका पुष्पा पीकर
तुम और किस ऊँचे पदपर चढ़ जाना चाहते हो ॥ १५ ॥ उस
नायिकासे मस्तकपर बाल ऐसे लगा रहे हैं मानों पुत्र-स्नेहसे पला
हुआ कालिकेयका मोर उसे पार्श्वतो समझकर उसके मस्तकपर
जा बैठा हो ॥ १६ ॥ सबका कुरपाण करनेवाकी है भवानी !
बाइलके समान काला और खिले हुए नीले कमलके समान
सुन्दर नायिका यह केश-पाश हमारे चित्तका अन्धकार दूर करे
मिसकी स्वाभाविक सुगन्ध लेनेके लिये देखता सांग फुल
बनकर नन्दनवनके झूलोंपर फूलते हैं क्योंकि नन्दनवनके कश्य-
पुर्षोंके फूलोंसे ही भवानीके जूड़ेका शृङ्गार होता है ॥ १७ ॥ उस
नायिकाके जूड़ेको देखकर कवि कल्पना करता है कि यह बाइल
नहीं हो सकता क्योंकि यह आकाशमें चलता है, यह अन्धकार
भी नहीं है क्योंकि उसकी चन्द्रमाके साथ मित्रता नहीं होती
और यह चन्द्रमा (मुख) के पास है, यह औरोंका समूह भी
नहीं है क्योंकि वे तो गुँजते रहते हैं, यह पूँख भी नहीं है क्योंकि
वह तो मोरोंके होती है और यह मणि भी नहीं है क्योंकि
कावा है किन्तु इसकी कीमलता देखकर समझमें आ जाता है

कि यह हरिणके नेत्रोंके समान चाँलोंवाली नायिकाके घने
बालोंका जूड़ा ही है ॥ १८ ॥ यदि वह नायिका अपने बाल समेटकर
कसकर बाँधनी है तो बाँधे, इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है
किन्तु दुःख तो यह है कि वह उन बालोंके साथ दर्शक
पथिकोंको भी कसकर बाँध लेती है ॥ १९ ॥ उस सुन्दर केशवाली
के बाल लाल कमलोंसे गुंथे हुए ऐसे प्रतीत हो रहे हैं मानों
वह रक्तसे भीगे हुए बाणोंसे भरा हुआ कामदेवका तरकस
हो ॥ २० ॥ जैसे हन्डियोंको धरामें रखकर मलिन स्वभाववाले,
देवनाबाँका संसर्ग करके दुष्ट स्वभाववाले और जीवमुक्तोंके
साथ रहनेसे बच्चे भी देवना बन जाते हैं वैसे ही ये काले-काले
बाल भी माँग काढ़नेसे, पुष्पोंसे गुँथनेसे और मोतियोंसे गुँथे
जानेके कारण जरायुन्य (कभी न गिरनेवाले) हो रहे हैं
॥ २१ ॥ हे कामिनी ! जो पथिक पण भरके लिये भी मुग्ध देख
लेता है वह तत्काल मृतक होकर गिर तो पड़ता है किन्तु
तत्काल जी भी उठता है पर उसका कारण तुम्हारे बाल नहीं
हैं बरन् बालोंके साथ लगा हुआ तुम्हारा मुखरूपी चन्द्रमा है
जिसके अमृतसे वह मर नहीं पाता ॥ २२ ॥ उस हरिणीके
समान नेत्रोंवाली नायिकाके सिरकी चाँटी त्रिवेणीके समान
लगती है क्योंकि उसमें गुँची हुई मोतियोंकी लड़ी तो
गंगाजीकी तरंग है, काले बाल ही यमुनाकी धारा हैं और
माँगमें सिन्दूरकी रेखा ही सरस्वती लहरा रही है ॥ २३ ॥ इस
कत्रारे नयनोंवाली नायिकाके स्तन-रूपी कलशोंपर जो
कुछ सुखकर छट बगकर लटदार बाल फैले हैं वे ऐसे शोभा दे

कमल इव निलीनाः पेटकाः पटपदानाम् ॥२४॥ विधिः
किमस्या नितराममान्तमङ्गेषु भृङ्गाररसं सुकेरयाः ।
स्निग्धोलसत्कुन्तलकैलेन निधाय मूर्ध्नि स्तवकीचकार
॥ २५ ॥ घेणीश्यामा भुजङ्गीयं नितम्बान्मस्तकं गता ।
धक्त्रचन्द्रसुधां लेहं सान्द्रसिन्दूरजिहया ॥ २६ ॥
श्यामा मिलिन्दमाला यालाया वदनपद्मकरन्दम् ।
आस्वादितुमिव मिलिना ललिता घेणीमिषादेया ॥२७॥
स्तनाभोगं पतन्भाति कपोलाङ्कुटिलोऽलकः । शशाङ्क-
विश्रमो मेरी सम्प्रमान इवोरगः ॥ २८ ॥ क्षान्द्रसु-
क्तेष्वनुधूपशामं विन्यस्तसाधनमङ्गिकेषु । कामो
यसन्तान्ययमन्दवीर्यः केशेषु लेभे यत्नमङ्गनाम् ॥२९॥
रघुर्भाङ्गकलयितुं स समुपनोऽभूद्राकां विनाननसु-
धां शुभहो यदस्याः । मय्ये तदस्य न च तिष्ठति पूर्णि-
मायां भावो हि किन्तु परिपूर्णकले सुधांशो ॥ ३० ॥

रहे हैं मानो मकरन्द पीकर तब हुए भीरे लिले हुए कमलके
कोपर रंगे उँच रहे हों ॥ २४ ॥ इस नवेलीके सिरके सुन्दर
चमकाले बाल देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो इस सुन्दर
केशवाली नायिकाके शरीरमें जो भृङ्गाररस इसके शरीरमें न
समा सकनेके कारण उफन पड़ा उसे इकट्ठा करके प्रक्षालने
इसके सिरपर बालोंके गुच्छके रूपमें स्थापित कर दिया
हो ॥ २५ ॥ मूर्ध्नि स्निग्धरसे सुरोभित उसकी लम्बी
छोटी ऐसी जान पड़ती है मानो कोई काली नागिन उस
नायिकाके मुख रूपी चन्द्रमाका अमृत लाल जीभसे चाटनेके
लिये नितम्बसे माथेतक चढ़ी हुई हो ॥ २६ ॥ इस
बालाकी सुन्दर छोटी ऐसी प्रतीत होती है मानो इसके
मुख-कमलका रस पीनेके लिये काने भीरोंकी पाँत धाकर उठ
गई हो ॥ २७ ॥ उस नायिकाके गालोंसे होकर स्तनोंतक
लटकी हुई घुँघराली कुटिल अलकें ऐसी जान पड़ती हैं मानो
चन्द्रमण्डलसे मेरु पर्वततक कोई नागिन लटकी हुई हो ॥२८॥
कमलके वीत जानेपर भी कामदेवको नवेलियोंके उन केशोंका
महारा मिल ही रहा है जो स्नानसे भोग जानेके पश्चात् धूपकी
गन्धके लिये खोल दिए जाते हैं और सायंकाल मल्लिकाके
फूलोंमें गूँथ दिए जाते हैं ॥ २९ ॥ इसके मुखरूपी चन्द्रमाको
प्रसनेके लिये यह जो पूर्णिमाके विना भी केशरूपी राहु
दिलाई देता है यह वषे आरच्यकी बात है । इससे हम
समझते हैं कि राहु पूर्णिमाकी प्रतीति नहीं करता, वह
तो जहाँ भी पूर्ण चन्द्रमा देखता है वहाँ प्रसनेके लिये आ

हृतं यद्यपि नीलाब्जं हृतमवमची गजात् । अलकानां
तथाव्यस्याः प्रापुः कान्तिं न पटपदाः ॥ ३१ ॥

ललाटः—आस्वादितोन्मुक्तमिवार्धविम्बं तमोमुखा-
ज्जन्त सुधाकरस्य । सीमन्तसीमान्तमुदाररूपमिवं
ललाटं ननु पट्टजावयाः ॥ १ ॥ केशान्धकारादथ दृश्य-
भालस्थलार्धचन्द्रा स्फुटमष्टमीयम् । एनां यद्वासाय
जगज्जयाय मनोभुवा सिद्धिरसाधि साधु ॥ २ ॥

भूवौ—असितात्मा समुन्नतः समाधिप्लुतधापलः ।
भुजङ्गकुटिलस्तस्या भूविक्षेपः सहायते ॥ १ ॥ काम-
कार्मुकतया कथयन्ति भ्रूतां मम पुनर्मतमम्वत् ।
लोचनाम्बुरुहयोरुपरिस्थं भृङ्गशावकततिहयमेतत्
॥ २ ॥ किञ्चित्सविश्रमोद्भिन्नभूलता भाति भामिनी ।
बालकीडामतिद्वन्धिर्जयस्तीय यौवनम् ॥ ३ ॥ जड-
स्येन्दोर्लक्ष्मीं गतमपि मदाब्धस्य करिणः किशोरस्य

हृता है ॥३०॥ यद्यपि भीरोंसे नीले कमल और हाथीके मदकी
कालिमाको हरा दिया है फिर भी उस कामिनीके अलकोंकी
चमक भीरोंमें नहीं ही आ पाई ॥ ३१ ॥

माथा : उस कमलकी-सी चोंलवाली नवेलीका मूर्ध्नि
केशा हुआ माथा ऐसा जान पड़ता है मानो चन्द्रमाके मुखसे
निगले जाते हुए चन्द्रमाका आधा बिम्ब सुझाकर बधा लिया
गया हो ॥१॥ उस नायिकाके सिरके बाल अन्धकारके समान हैं
और उसका माथा चन्द्रमाके आधे चन्द्रमाके समान । इनके
साथ यह नवेली ऐसी प्रतीत हो रही है मानो इस अर्धमाका
आधार लेकर ही कामदेवने विश्व-विजयकी कामना सिद्ध की हो
क्योंकि अष्टमीको मन्त्र साधे जाते हैं ॥ २ ॥

भौंहें : इस नवेलीकी ये काँकी, बड़ी-बड़ी, चञ्चल और
साँपके समान लहरानेवाली, भौंहें मनके काले, अभिमानी, छिद
(चपल) और खोटे दुर्गोंका सा आचरण कर रही हैं ॥१॥ कुछ
खोले इन भौंहोंको कामदेवका धनुष बताते हैं किन्तु मेरा तो
मत यह है कि ये भौंहें नहीं वरन् नेत्ररूपी दो कमलोंपर बैठ हुए
भीरोंके बच्चोंकी दो पाँतें हैं ॥२॥ यह हाव-भावसे अपनी भौंहें
टेढ़ी किए हुए वह कामिनी ऐसी प्रतीत होती है मानो बाल-
कीड़ासे होद लेनेवाले यौवनको डाट रही हो ॥३॥ इस सौवर्णी
युवनामें अवरण ही कोई विचित्र बाल है क्योंकि सीधे-साधे
चन्द्रमा, मतवाले हाथीके बच्चे तथा हिरनोंके नेत्रोंकी शोभा
तो इसने ले ही ली साथ ही देखते-देखते कामदेवके सामने ही
इसने अपनी चञ्चल भौंहें चलाकर उस बच्चेका धनुष भी छीन

छायां हरतु हरिणस्येक्षणागताम् । इदं तु श्यामाङ्गयाः
किमपि ललितं यन्मदनतः समलं भूलेपधनुरपि विद-
ग्धादपहतम् ॥ ४ ॥ तस्याः शलाकाञ्जननिर्मितेय
कान्तिर्भूवोरायतलेखयोर्या । तां वीक्ष्य लीलाचतुराम-
नङ्गः स्यचापसौन्दर्यमदं मुमोच ॥ ५ ॥ भूरेखायुगलं
भाति तस्याश्चटुलचक्षुषः । पञ्चद्वयीव हरिता नासाव-
शविनिर्गता ॥ ६ ॥ भूभ्यां प्रियाया भवता मनोभूयाणेन
आपे घनसारभासः । निजां यद्वक्ष्येपदशामपेक्ष्य सम्प्र-
त्यतेनाधिकर्यताञ्जि ॥ ७ ॥ स्मरकल्पद्रुमो यासे नय
भाले द्विपद्मकः । पद्मयोरनयोश्छाया भूयोर्ध्याजादुष-
ञ्चति ॥ ८ ॥ स्मारं धनुर्ध्विधुनोज्झितास्था यास्येन
भूतेन च लवमलेखा । एतद्भूयो जन्म तदाप युग्मं लीला-
चलत्वोचितयालभासम् ॥ ९ ॥

श्रे—अतिपूजिततारेयं हरिः धृतिलङ्घनप्रमा
सुतनुः । जिनसिद्धान्तस्थितिरिय सवासना कं न मोह-

लिया अर्थात् इसकी भीहें कामदेवके धनुषके समान हैं ॥ ४ ॥ उस
मधे-मधे खेल करनेवाली नायिकाकी काजलकी सलाईसे बनाई हुई
लक्ष्मी-लक्ष्मी सुन्दर भीहें देखकर कामदेवने भी अपने धनुषकी
सुन्दरताका गर्व करना छोड़ दिया ॥ ५ ॥ उस चंचल नेत्रवाली
मनेलीकी भीहें ऐसी जान पड़ती है माना उसकी नाकरूपी
बाँसकी डालीसे निकली हुई दो पत्तियाँ हैं ॥ ६ ॥ कामदेवके
धनुषमें इस प्यारीकी भीहें अधिक कठारना आ गई है क्योंकि
इस भीहेंके धनुषमें जब देखा कि कामदेवका धनुष तो जल
गया था पर मैं जल नहीं पाया तब उसमें और भी
अधिक गुहड़ा भर आई ॥ ७ ॥ हे यासे ! तुम्हारे माथेपर
दो पंजाबासा जो कामदेव रूपी कल्पद्रुम उग आया है उसकी
छाया यह भीहेंके रूपमें दिखाई पड़ रही है ॥ ८ ॥ अपने मुखकी
शोभासे चन्द्रमाकी हरानेवाली नायिकाके मुखपर यह कामदेवका
धनुष ही इसकी भीहेंके रूपमें उत्पन्न हुआ है जिसमेंसे अभी
लवकपनकी चञ्चलता गई नहीं है ॥ ९ ॥

श्रीलै : इस सुन्दरीकी श्रीलै जैन सिद्धान्तके अनुसार
तारादेवीको अत्यन्त पूजनेवाली (अत्यन्त रसाली पुतलियों-
वाली) देशोंकी मयादा लौघमेवाली (कानकी पार करके आगे
बढ़नेका दम भरनेवाली) और वासना या इच्छासे ही संसारका
मोहित होना माननेवाली (चाहसे भरी हुई) श्रीलै किसे
भी मोहित करती ॥ १ ॥ उस नवेलीकी जो भीहें कामदेवकी
संगतमयी बेदी बनी हुई है उनके वीकेपनने सुबकोंके

यति ॥ १ ॥ अनङ्गमङ्गलभुवन्तदपाङ्गस्य भङ्गयः । जन-
यन्ति मुदुर्यनामन्तः सन्तापसन्ततिम् ॥ २ ॥ अमुष्य
मुपिता लक्ष्मीश्चक्षुषेति न नूतनम् । न वेसि कथय-
न्यस्याः कर्णे लग्नं किमुफलम् ॥ ३ ॥ अर्जुनः कृष्णमे-
युकः कर्णं यद्वानुधावति । तद्वेत्रं तु कुरुतेवर्माति
मुग्धे सूरामहे ॥ ४ ॥ आधूणिनं पद्मलमक्षिपत्तं प्राप्त-
यति धैर्यजिनामृतांगु । अस्या इवास्याश्चलदन्दनी-
लमोलाभलश्यामलतारतारम् ॥ ५ ॥ आयामिनास्तद-
क्षोरञ्जनरेखाविधि चितम्बन्धाः । पाणिः प्रसाधि-
कायाः प्रापदपाङ्गं चिरेण विध्रम्य ॥ ६ ॥ आत्मां वनम-
तीयाङ्गोर्यंपुरः परिसर्पणम् । सह यानं मनस्तत्र
न्यक्त्या भूयो निवर्त्तनम् ॥ ७ ॥ इन्द्रीवरं लोचनयाम्नु-
लायै निर्माय यत्नेन विधिः कदाचिन् । अतुल्यतां वीक्ष्य
तनो रजांसि मित्तिय चित्तं स पद्ममध्य ॥ ८ ॥
इषुचयेर्वाच जगत्त्रयस्य विनिर्जयापुष्पमयाशुगेन ।

हरयमें निरन्तर सन्तापकी धारा यहा दी ॥ २ ॥ कमलकी शोभा
आँखोंने खरा ली है वह कोई गई यान नहीं है । मैं देव रहा है
कि इस नवेलीके कानोंमें लगा हुआ कमल कानोंमें यही यान
कह रहा है ॥ ३ ॥ हे भोली ! तरे जिन नेत्रोंमें कृष्ण (काली
पुनर्ली) को साथ लेकर अर्जुन (श्वेत कंठ) आगे बढ़कर
कर्ण (कान) तक दीड़ने लगे हैं उन्हें मैं कुरुक्षेत्र ही
मानता हूँ (अर्थात् जब आँखें बड़ी-बड़ी होकर कामनक फैलने
लगी हैं तब महाभारत ही मचा हुआ समझना चाहिए) ॥ ४ ॥
इस नवेलीकी आँखोंकी जिन कोरोंने चन्द्रमाकी श्वेतता भी
जाल ली है वे चंचल इन्द्रनीलमणिके समान गोल और सुन्दर
चमकीले तारोंमें सुराभिन नेत्ररूपी कमलोंकी पलकें चक्कर
खानी-सी जान पड़ रही हैं ॥ ५ ॥ उस नवेलीकी आँखें इतनी
बड़ी-बड़ी हैं कि जब उनमें आँजन लगाया जाता है तब
इस कानेसे उस कानेतक आँजन देनेमें हाथका बहुत सुस्ता-
सुस्ताकर चलाना पड़ता है ॥ ६ ॥ इसकी आँखोंने वेगसे
चलनेका ऐसा मत ले रक्खा है कि उसके साथ चलनेवाला मन
बीचसे ही धक्कर लौट आता है ॥ ७ ॥ ब्रह्माजीने नेत्रोंकी
उपमाके लिये एक बार बड़े प्रयत्नसे कमलका निर्माण किया,
किन्तु जब देखा कि यह किसी प्रकार भी नेत्रोंकी समानता
नहीं कर सकता तब पहले तो उसपर धूल (पराग) फेंकी
और फिर उसे कीचड़में डाल दिया ॥ ८ ॥ कामदेवने अपने
कुक्षोंसे बने हुए और वेगसे चलनेवाले तीन बाणोंसे तो तीनों

शेषा द्विधाणी सफलीकृतैश्च धियादगममोजपदेऽभि-
षिष्य ॥ ६ ॥ शृणोता किं हरिणीभिरासीदस्याः
सकाशान्नयनद्वयश्रीः । भूयोगुणैश्च सकला वलाचता-
भ्योऽनयालभ्यत विभ्यतीभ्यः ॥ १० ॥ एकमेवास्ति
यामासि रजयाञ्जनलेखया । जायतामैन्द्वे विभ्ये खञ्ज-
नाभ्युजसङ्गमः ॥ ११ ॥ कणात्पलेनापि मुसं सनाथं
लभेत नेत्रद्युतिनिर्जितेन । यद्येतदीयेन ततः कृतार्था
स्वचक्षुषी किं कुरुते कुरङ्गी ॥ १२ ॥ कामिनीनयनकज्ज-
लपङ्कादुत्थितो मदनमसवराहः । कामिमानसवनान्त-
रधारी मूलमुत्सर्जति मानलतायाः ॥ १३ ॥ केशरभाजा
शिखरप्रवेशात्पुण्याय मन्ये मृतमुन्पलिन्या । जाता
यतस्तत्पुसुमेक्षणैश्च यतश्च तत्कोरकदम्बकोरः ॥ १४ ॥
खकोरनेत्रैश्चद्वयपलानां निमेषयन्नेत्रेण किमेष कष्टः ।
सारः सुधोद्वारमयः प्रयत्नविधातुमेतन्मन्यते विधातुः
॥ १५ ॥ तस्याः श्रवणमार्गेण खलिते यदि लोचने । कुतः

प्रकामधचले धस्तः कृष्णानुरक्तताम् ॥ १६ ॥ त्वसः
समुत्तार्य दलानि रीत्या मोचान्वचः पञ्चपाटलानाम् ।
सारैर्गृह्णते विधिरूपलौघादस्यामभूदीक्षणरूपशिल्पी
॥ १७ ॥ दृशो किमस्याश्चपलस्वभावे न दूरमाकम्प
मिधो मिलेताम् । न चेच्छ्रुतः स्यादनयोः प्रयाणे विप्रः
श्रवःकूपनिपातभौत्या ॥ १८ ॥ नतभ्रुवो लोचनखञ्जरीदौ
विहारमानङ्गमिहारभेते । कथं न सानन्दद्वन्द्वं युवान-
स्तारुण्यमस्तनिधिमुन्नयन्तु ॥ १९ ॥ नयनच्छलेन सुत-
मोर्ध्वदर्शजते शशिनि कुलपतां क्रोधात् । नासानाहनि-
बद्धं स्फुटितमिवेन्द्रीवरं ब्रूया ॥ २० ॥ मलिनं मलिनं
विवृण्वती पूषतीमस्पृशती तदीक्षणे । अपि खञ्जनमङ्ग-
नाञ्जिते विदधाते रुचिगर्वदुर्धिधम् ॥ २१ ॥ निःक्षीम-
शोभासभास्यं नताङ्गया नयनद्वयम् । अन्योऽप्यालोक-
नानन्दविरहादिव चञ्चलम् ॥ २२ ॥ नूनमाकाकर-
स्तस्याः सुधुवो मकरध्वजः । यतस्तत्रोन्नतश्चरसिचि-

लोक जीत लिए और शेष जो दो पाण बने, जान पड़ता है
उन्हींको उसने प्रियममाके नेत्रकमलके स्थानपर रखकर उन्हें भी
सफल कर दिया ॥ ६ ॥ यों तो इस नवेलीकी आँखोंकी लुनाईसे
हरिणियोंकी आँखें पहले ही ऋणी हो गई थीं किन्तु उनकी
आँखोंको ढरते देखकर इसकी आँखोंने उनकी बची-भुची शोभा भी
दलपूर्वक छीन ली ॥ १० ॥ हे बोंके मैनोंवालों ! तुम अपनी केवल
एक ही आँखमें आँजन लगाओ जिससे कि एक चन्द्रमिवपर
खञ्जन और कमल दोनों साथ साथ दिखाने पड़ने लगें ॥ ११ ॥
जब इस नवेलीने आँखोंकी कान्तिसे हारे हुए उन कमलोंको
ही अपने कामपर रखकर अपने मुखकी सजावट करके उन्हें
कृतार्थ कर दिया तब हरिणी अपनी आँखें लेकर क्या करेंगी
क्योंकि वे तो इतनी सजावटके भी काम नहीं आ सकती ॥ १२ ॥
कामिनीके नेत्रोंमें लगे हुए काजलरूपी कीचड़से निकला हुआ
कामदेवरूपी मतवाला शूकर कामियोंके मनरूपी वनमें खलता
हुआ उनकी भागरूपी लताकी जड़ खाँदे डाल रहा है ॥ १३ ॥
यह बड़ा अन्ध्रा हुआ कि क्या रियोंमें रहनेवाली कमलिनी
शिशिर ऋतुके छात ही जल गई क्योंकि अब पुनः वह फूलोंकी-
सी आँखोंके रूपमें जन्म लेकर इतनी रसीली बन गई है
उसकी सुन्दरता देखनेके लिये उसकी आँखोंके कोर ही चकोर
बन गए हैं ॥ १४ ॥ दृष्टाजीने चकोर, हरिणीके नेत्र तथा लाल
कमलके अमृत-मुरख रसोंका पलकके चन्द्रसे खींचकर बड़े
परिश्रमसे इसके नेत्र बनाए हैं ॥ १५ ॥ उसके उज्जले-उज्जले

नेत्र यदि कामोंकी ओर चले हैं तो वे काले और (वेद मार्ग)
लाल क्यों हो उठे हैं (कृष्णके अनुरागी या वैष्णव क्यों हो
गए हैं) ॥ १६ ॥ दृष्टाजीने कमलकी पङ्कटियों लेकर उनपरसे
पाँच-छः परतें खींचकर उनके भीतरकी कामल गुहरी भली भाँति
निर्चाइकर उस रससे ही इसकी आँखें बनाई हैं ॥ १७ ॥ इस
नवेलीकी चञ्चल आँखें सिरका चक्कर लगाकर आपसमें अचरय
मिल जातीं यदि इनके मार्गमें कानकपी कुँदे खोदकर हों बर। न
दिया गया होता ॥ १८ ॥ नीची भाँहोंवाली उस नायिकाके अग्ररूपी
खञ्जन उसे जय कामदेवकी कीड़ास्थली बना रहे हैं तब भला
आनन्द भरे हृदयवाले युवक अपने भीतरकी तहलाने रूपी
निधियों क्यों न उकसावे ॥ १९ ॥ उस नवेलीकी आँखोंकी
देखकर ऐसा जान पड़ता है मानो जब उस सुन्दरीके मुखने
चन्द्रमाकी जीत लिया तब चन्द्रमारूपी कुलपतिके कोपसे नाक
रूपी मालमें रँधा हुआ नीला कमल दो भागोंमें फट गया हो
॥ २० ॥ जब उस नवेलीकी आँखें आँजनकी सलाई बिना छुए
ही कमलकों मलिन बनाए रहती हैं तब यदि उनमें आँजन
लग जाय तो तब पूछना ही क्या है ! तब तो बेचारे खञ्जन भी
अपनी सुन्दरताका अभिमान स्वर्थ समझने लगेंगे ॥ २१ ॥
उस कामलाङ्गके असीम शोभासे भरे हुए दोनों नेत्र मानो
इसलिये चञ्चल हो रहे हैं कि वे एक दूसरेको देख नहीं पा रहे
हैं ॥ २२ ॥ निरचय है कि कामदेव उस सुन्दर भाँहोंवालीकी
आँखाका अचरय पालन करता है क्योंकि वे आँखें मिथर

तेषु प्रवर्तते ॥ २३ ॥ नेत्रयोरनयोश्चन्द्रमुख्याः सुन्दर-
रङ्गयोः । का स्तुतिः कियते लोकैः कुरङ्गान्णोः परा-
जये ॥ २४ ॥ प्रघातनीलोत्पलनिविशेषमधीरविप्रक्षिप्त-
मायताक्ष्या । तथा गृहीतं नु मृगाङ्गनाभ्यस्तनो गृहीतं
नु मृगाङ्गनाभिः ॥ २५ ॥ भास्वकुण्डलमाणिक्यप्रभा-
प्रतिहतेरिव । नताङ्गयाः श्रवणोत्सङ्गमारुढा नयनद्वयी
॥ २६ ॥ मुखविधुपरिधृतोत्तानताटङ्गपाशावधिवचनच-
कोरीकास्तिर्चरं तदक्षि । त्रिभुवनयुक्तेतोवन्धसङ्कुत-
हेतोः सहचरमिष कर्तुं पाशमाशङ्क्य याति ॥ २७ ॥
मुखारविन्दोपरिभागसंस्थं नेत्रद्वयं सञ्जनमामनन्ति ।
प्रफुल्लवक्राभ्युजपाभ्रवर्ति दलद्वयं भृङ्गयुतं मतं मे
॥ २८ ॥ मृगसम्प्रग्निनी दृष्टिरर्त्ता यदि न सुभ्रूयः ।
भाषति श्रवणोत्सङ्गलीलादूर्वाङ्कुरे कुतः ॥ २९ ॥ यदि
स्यान्मण्डले सक्तमिन्द्रारिन्दोवरद्वयम् । तदप्रीयते

तस्या यदनं वादलोचनम् ॥ ३० ॥ रामाविलोलनयने
किमु मानवालो नालोपले किमथवा किमु खञ्जरीटो ।
किं वा जगत्त्रयजयाय कृतिर्न जाने कन्दर्पभृपरचिन्ता
नवकर्मणस्य ॥ ३१ ॥ लोचने हरिणगर्वमोचने मा विदु-
ष्य नताङ्गि कज्जलैः । सायकः सर्पदि जीवहारकः किं
पुनर्हि मरलेन लेपितः ॥ ३२ ॥ श्रमयति शरीरमधिकं
श्रमयति चेतः कर्माणि सन्तापम् । मोहं मुहुश्च कुरुते
विषविषमं वीक्षणं तस्याः ॥ ३३ ॥ श्रुतिलङ्घनमीहमा-
नयोर्मलिनाभ्यन्तरयोर्गधीरयोः । स्मृतिनापकरणमेत-
योरुचितं लोचनयोर्मृगोदशः ॥ ३४ ॥ ध्रुयतां कौतुकं
लोऽपि स्मरः शृङ्गारिणो गुरुः । अमुष्याशिश्यतामेति
श्रवणोन्मुखोदशोः ॥ ३५ ॥ नेत्रं मृदुः कौसुमचापयष्टिः
स्मरस्य मुष्टिप्रहणार्हमध्या । तनोति नः श्रीमदपाङ्ग-
मुक्ता मोहाय वा दृष्टिशरीरदृष्टिम् ॥ ३६ ॥ स्वदशा-

पूज जाती है ऊपर ही कामदेव भी घूम जाता है ॥ २३ ॥
नबेली चन्द्रमुखीके इन रसीले नयनोंने जिन हरिणोंके नेत्रोंको
पराजित कर दिया है उनकी प्रशंसा क्या की जाय ॥ २४ ॥
बड़ी-बड़ी आँखोंवाली नायिकाकी आँखोंसे हिलते हुए माले
कमलोंके समान चञ्चल चितवनका देखकर यही ज्ञात नहीं होता
था कि यह कला हरिणियोंने इनसे सीखी है या हरिणियोंसे
इन्होंने सीखी है ॥ २५ ॥ उस नबेलीके कानतक फैले हुए
शेनों नेत्रोंको देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो कानोंमें
चमकते हुए कुण्डलमें जड़ी हुई मणियोंकी कान्तिसे चिदकर
शेनों नेत्रोंने कानोंपर भाषा बोझ दिया हो ॥ २६ ॥ उसके
मुखचन्द्रसे चिपके हुए और सीधे लटकते हुए कुण्डलको देखती
हुई उसकी आँखें चकरीकी शोभा भी हरण करती हैं । उनकी
(कानोंकी) ओर बढ़ती हुई ये आँखें देखी जान पड़ती हैं
मानो त्रिभुवनके युवकोंके चित्तको बाँधनेका आधार बनानेके
लिये ये आँखें उन कुण्डलोंको पार समझकर उन्हें साथी
बनानेके लिये आगे बढ़ी जा रही हों ॥ २७ ॥ कवि लोग मुख-
रूपी कमलपर स्थित दोनों आँखोंको सञ्जन कहते हैं किन्तु मेरा
मत तो यह है कि ये तो जिते हुए मुख-कमलके दोनों चारदी
दो पंखुदियौ हैं जिनपर भँरे बैठे हुए हैं ॥ २८ ॥ यदि उस सुन्दर
मोहोवाली नबेलीकी आँखें 'मृगकी आँखें' नहीं हैं तो कानपर
लटके हुए बनावटी दूबके आङ्गुरोंकी ओर क्यों दौड़ती हैं ॥ २९ ॥
सुन्दर नेत्रोंसे सजे हुए उसके मुखकी उपमा चन्द्रमासे तभी
ही जा सकती है जब उसके मण्डलमें दोनों ओर दो कमल

हैंक जार्य ॥ ३० ॥ यह समझमें नहीं आता कि ये रमणीका
आँखें हैं या छोटी-बोटी मण्डलियाँ हैं या माल कमल हैं या
तीनों लंकाके जातनेके लिये कामदेवने कोई नया प्रच्छ ही रच
ढाला है ॥ ३१ ॥ हे कामलाङ्गी ! हरिणियोंका अभिमान बुर
करनेवाले अपने इन नेत्रोंको काजलसे क्यों काला किए हाल
रही हो क्योंकि जो बाण यों ही सधके प्राण हर लेता हो उसपर
विषका लेप करनेकी आवश्यकता क्या है ॥ ३२ ॥ उसकी चिपेली
चितवन शरीरको बुर कर डालती है, बुद्धि चकरा देती है,
दिन-रात तपाए रखती है और उसपर भी यह बार-बार मूर्छित
किए रहती है ॥ ३३ ॥ हरिणियोंके समान आँखोंवाला इन
नबेलियोंकी आँखें कान (श्रुति अध्या वेदमार्ग) को भी
सीधे माना चाहती हैं, भीतरसे मलिन हैं, अधिक चञ्चल हैं
और स्मरण करनेपर जैसे ही कट देती हैं जैसे कोई वेदका
उल्लङ्घन करनेवाला, मलिन हृदयवाला, चञ्चल बुद्धिवाला तथा
स्मृतियोंकी व्यवस्थाको नष्ट करनेवाला व्यक्ति सबको कट
देता है ॥ ३४ ॥ एक नया कौतुक तो सुनिष्ट ! जब इस
नबेलीकी आँखें कानोंकी ओर चल पड़ती हैं तब शृङ्गारियोंका
गुरु कामदेव भी उनका शिष्य बनकर उनके पीछे-पीछे चल
पड़ता है ॥ ३५ ॥ कामदेवकी पुष्पधनुर्हीके समान मुट्ठीभरकी
कमरवाली यह कोमलाङ्गी अपनी सुन्दर आँखोंकी कोरोंकी
चितवनसे कटाफके बाणोंकी वर्षा करके हम सब लोगोंको मूर्छित
किए हाल रही है ॥ ३६ ॥ वनमें जो मृग अपने सुरोंसे अपने
नेत्र लुजला रहे हैं वे ऐसे प्रतीत होते हैं मानो नायिकाकी

जनयन्ति सान्त्वतां खुरकण्डयनकैतवान्मृगाः । जित-
योरुदयन्ममीलयोस्तद्वर्षेक्षणाशोभया भयान् ॥ ३७ ॥

नासा—कोचित्तिलस्य कुसुमं शुक्लचञ्चुमन्ये नासां
वदन्ति कथयाम्यहमन्यदेव । संरक्षितो निजशरासन-
सन्निधाने कामेन केतकदलैकमया निषङ्गः ॥ १ ॥ दन्ता-
लिदाडिमीवीजभक्षणाकण्डचेतसः । मन्ये भारशुक्-
लस्येयं नासा चञ्चुधिराजते ॥ २ ॥ नासादसीया निलपु-
ष्पतूलं जगन्नयन्यस्तशरभ्यस्य । श्वासानिलामोदभरा-
नुमेयां दधद्द्विवाणीं कुसुमायुधस्य ॥ ३ ॥ पुराणपाल-
त्यागाय नूतनात्कुतूहलात् । तन्नासा भाति कामेन
तूणीयाधोमुखीकृता ॥ ४ ॥

कर्णा—अस्या यदष्टादश संविभज्य विद्याः श्रुती
दधतुरधर्मधर्मम् । कर्णान्तरुक्कीर्णगभीररेखः किं तस्य
सङ्ख्येयं न वा शशाङ्कः ॥ १ ॥ आत्मैव तानस्य चतुर्भु-

जस्य जातश्चतुर्दोषचितः स्मरोऽपि । तद्यापयोः कर्ण-
लते ध्रुवोर्ज्यं वंशत्वगंशां चिपिटे किमस्याः ॥ २ ॥
इहाविशयेन पथातिवक्त्रः शस्त्रौघनिष्पन्दरसप्रवाहः ।
सोऽस्याः श्रवःपद्मयुगे प्रणालीरेखेय धावत्यभिकर्तु-
कूपम् ॥ ३ ॥ कमनीयतानिवासः कर्णस्तस्या विचित्र-
मणिभूयः । सविधप्रसूतरत्नं शङ्कुनिधिं दूरतरमकरोत्
॥ ४ ॥ तालीदलं काञ्चनकर्णपाशौ प्रसारयन्ती सुननुः
कराभ्याम् । रराज कर्णान्तनिपण्यदृष्टिः शाणे वधानेष
कटाक्षयाणान् ॥ ५ ॥ मन्येऽमुना कर्णलतामयेन पाश-
द्वयेन च्छिदुरेतरेण । एकाकिपाशं वरुणं विजिग्येऽ-
नङ्गीकृतायास्ततती रतीशः ॥ ६ ॥ वियोगवाण्याञ्जितमे-
वप्रचक्षुषान्धितोत्सर्गपयःप्रसूनी । कर्णी किमस्या
रतितन्यतिभ्यां निवेद्यपूर्णं विधिशिल्पमीदृक् ॥ ७ ॥

कपोली—आयभ्रगारिषेयमण्डलमलं वक्त्रेन्दुविम्बा-

सीधी सीं चितपनकी शोभासे हारे हुए अपने दुखी नेत्रोंको
डाढ़स बैधा रहे हों ॥ ३७ ॥

नाक : कुल लोग इस नवेलीकी नाकको तिलका फूल
कहते हैं, कुल इसे सुगंधी ठहर कहते हैं पर मेरा मत तो यह
है कि कामदेवने अपने धनुष (बाणों) के पास यह केवड़ेके
फूलका तरकस बनाकर रख छोड़ा है ॥ १ ॥ नवेलीकी यह नाक
ऐसी शोभा पा रही है मानो दोनोंकी पंक्तिरूपी अनारदानोंको
पुगनेके लिये कामके पालन सुगंधी बांध हो ॥ २ ॥ कामदेवने
अपने पाँच बाणों (कमल, शंकाका फूल, ग्रामकी और,
नवमल्लिका तथा मालकमल) मेंसे केवल तीनोंको लेकर तीनों
लोक जीत लिए हैं, शत्रु (दमयन्तीके) रवास-वायुकी प्रति
सुन्दर सुगन्धकों देखकर ऐसा जान पड़ता है मानो इसकी
भासिका कामदेवके शेष दो बाणोंको रखनेके लिये तिलके
फूलका तरकस बन रही हो ॥ ३ ॥ उस नवेलीकी नाक ऐसी
प्रतीत होती है मानो नये बाण रखनेकी चाहसे कामदेवने पुराने
बाणोंको उलटकर गिरानेके लिये अपने तूँधारका मुँह उलट
दिया हो ॥ ४ ॥

कान : नवेलीके इन दोनों कानोंका आकार जो भी (९) के
अङ्कके समान दिखाई पड़ता है उससे यह जान पड़ता है मानो
इसने अट्टारहों विद्याओंको आधा-आधा बाँटकर जो दोनों कानोंमें
प्रतिष्ठित कर दिया है उन्हींकी सूचना ये नौके अङ्कके रूपवाले
कान दे रहे हैं ॥ १ ॥ इस नायिकाके दोनों चिपटे हुए कान
ऐसे जान पड़ते हैं मानो इसके भीड़रूपी दो धनुषोंके लिये

बाँसकी चिनीतांकी दो प्रत्यक्षाएँ हों क्योंकि जित कामदेवके लिये
ये दो धनुष बने हैं वह यदि चार हाथवाला हो तो आश्चर्य ही
क्या है क्योंकि वह चार भुजावाले (कृष्ण) का ही तो पुत्र
(प्रद्युम्न) है ॥ २ ॥ इस युवतीके कान देखकर यह भ्रम होता है
कि कहीं वे मर्याने अपनी चञ्चुत कलासे विप्रांगिनीके नेत्रकमलोंसे
कहे हुए शार्ङ्गरूपी दूधले रनि और कामदेवको अर्पण करनेके
लिये नैवेद्यके निमित्त पुष्ट तो नहीं बनाकर रख छोड़े हैं
॥ ३ ॥ उस नायिकाके सौन्दर्यधाम तथा अनेक प्रकारकी
संस्थितसे अलंकृत कानने अपने पासमें स्थित शङ्कु (गला)
नामकी उस निधि (शङ्कु) को लज्जित कर दिया जो
निरन्तर रत्न उत्पन्न करता रहता है ॥ ४ ॥ कानोंतक फैली
हुई शार्ङ्गावाला सुन्दरी जब अपने सोनेके समान चमकते हुए
कानोंमें अपने हाथोंसे सोनेके कुण्डल पहनती है सब ऐसी
शोभित होती है मानो अपने कटाक्षरूपी बाणोंपर शान चढ़ा रही
हो ॥ ५ ॥ इस नवेलीके कानों देखकर हमें ऐसा समझमें
आता है कि इसके दोनों कानरूपी कभी न फटनेवाले दो जान
लेकर कामदेवने बिना परिश्रमके ही एक पाशवाले मरुकाकी जीत
लिया है ॥ ६ ॥ इस नवेलीके कानमें बनी हुई टेढ़ी-मेढ़ी
नालिकाओंको देखकर यह जान पड़ता है कि जिन मागींसे
अत्यन्त टेढ़े-मेढ़े कटाक्षरूपी शङ्कोंकी रसीली धारा इन कानोंकी
ओर बहती है, वे ही मार्ग बाणों पहुँचकर चकर खाते हुए
कानरूपी कुशोंमें समा रहे हैं ॥ ७ ॥

ताल : उस नवेलीके मुलरूपी चन्द्रमाके बाहरकी ओर जो

दृष्टिः । कुर्वन्त्यङ्गजम्भमाणकलिकाकर्णवित्तंसकि-
याम् । तन्वङ्गवाः परिमृन्त्यतोच हसनोचोन्सर्वनीचो-
त्थणं लावण्यं सलतीव काञ्चनशिलाकान्ते कपोलस्थले
॥ १ ॥ कपोलपालीं तव तन्वि मय्ये लावण्यधन्ये दिश-
मुत्तराग्राम् । विभाति यस्यां ललितालकायां मनोहरा
वैश्रवणस्य लक्ष्मीः ॥ २ ॥ स्पर्शच्छर्चिनामस्तिष्ठणानां
कर्णान्ततो गण्डलतानलानि । भृङ्गाः संहलं यदि नाप-
तिष्यन्कोऽवेद्यिष्यद्यच्चम्पकानि ॥ ३ ॥

मधुरः—अधरं खलु विम्यनामकं फलमाभ्यामिनि
भक्ष्यमन्वयम् । लभतेऽधरविम्य इत्यदः पद्मस्या रदन-
च्छेदे घटत् ॥ १ ॥ अधरममृतं कः सन्देहो मधून्यपि
नान्यथा मधुरमधिकं द्राक्षायाश्च मूलशरत्सं फलम् ।
सकृदपि पुनर्मध्यस्थः संरसान्तरविज्जनो घट्नु यदि-
हाम्यत्स्वादु स्यात्प्रियादशनच्छदान् ॥ २ ॥ अधरोऽय-

मधीगत्या बन्धुजीवप्रभाहरः । अन्यजीवप्रभां हन्त
हरतीति किमदुनम् ॥ ३ ॥ अधरोऽसौ कुरङ्गान्याः
शोभते नासिकानले । सुवर्णनलिकामध्यान्माणिफ-
मिव चिच्युनम् ॥ ४ ॥ अभिलषन्ति नयाधरमाधुरीं
नदिह किं हरिणाक्षि मुधा वृधाः । गुरमुधामधरीकु-
हते यतस्त्वद्धरोऽधरतामगमत्तनः ॥ ५ ॥ अपि मृगाक्षि
नवाधरपल्लवे दयितवन्तपदं न भवन्त्यदः भुवनमोहनम-
न्त्रपदाङ्कितं किमुन यन्त्रमिदं स्मर्यन्त्रिणः ॥ ६ ॥ अलेप-
नापि सुरक्तेन साधनेन प्रयोजनम् । श्रोष्ठद्वयसन्नायेन
कान्तास्थेन अगजितम् ॥ ७ ॥ अस्या मुग्धवाधरः
सुधाभूर्विम्यस्य युक्तः प्रतिविम्य एव । तस्याधरा
शीर्दुमभाजि देशे सम्माध्यमानस्य तु विद्रुमेऽसौ
॥ ८ ॥ जानेऽतिरागादिदमेव विम्यं विम्यस्य न व्यक्त-
मिताऽधरत्वम् । द्वयोर्विशेषावगमाक्षमाणां नास्ति धर्मो-

कमलकी खिलती हुई कर्णोंके कर्णभूपलका बढ़ता हुआ सौन्दर्य
गोल मण्डल बना रहा है वह सौमेकी परियाके समान उसके सुन्दर
गालोंपर नाचता, हैसता, फलता और उदलता-सा जान पड़ता
रहा है ॥ १ ॥ हे सुन्दरी कामलाही ! मैं तुम्हारे गालोंको यह
उत्तर दिना समझता हूँ जिसमें सुन्दर अलकापुरी और कुबेरकी
सुन्दर सम्पत्ति है अथवा जिसमें सुन्दर खट्टे लटकी हुई हैं
और कामोंकी शोभा दीप्त है ॥ २ ॥ स्वर्णोंके समान कान्तिवाली
और काले नेत्रोंवाली युवतियोंके गाल ऐसे सुनहरे रहके हैं कि
कामले गालोंतक लटके हुए नई चम्पाके फूलोंपर यदि अचापक
भीरे न चा टूटते तो यह जानना ही कठिन था ॥ उनपर चम्पाके
फूल भी खरके हैं ॥ ३ ॥

छोट : विम्बा (लाल कुँदरू) नामका फल इसके थोड़ोंसे
घटकर है इसलिये शौल डकनेवाले इसके छोड़का अधर-विम्ब
(विम्बको नीचा दिखानेवाला) नाम सचमुच सार्थक हो रहा
है ॥ १ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि अमृत अमृत ही है, मधु भी मधु
ही है और अंगूरका सुन्दर फल भी मीठे रससे भरा होता है
किन्तु अनेक रसोंके जाननेवाले लोगोंसे मैं पूछता हूँ कि क्या
मियाके अधरोंके बढ़कर संसारमें कोई दूसरी मधुर वस्तु
है ॥ २ ॥ इस चंचल नेत्रवाली नायिकाका अधर जब बन्धुजीव
(जपाकुसुम, कुटुम्भजन) की कान्ति नष्ट कर देता है
एव यदि वह दूसरे जीवोंकी काम्ति हरण करे तो क्या
आश्चर्य है ॥ ३ ॥ उस हरिणके नेत्रोंके समान शौलोंवाली
नायिकाका निचला छोड़ नाकके नीचे ऐसा सुन्दर प्रतीत हो

रहा है मानो सौमेकी नलीसे बहकर गिरा हुआ कोई लाल
मणि हो ॥ ४ ॥ हे हरिणके नेत्रोंके समान शौलोंवाली ! क्या
कारण है कि बुद्धिमान लोग तुम्हारे अधर (थोड़ा और तुच्छ
वस्तु) की मिठासको व्यर्थ ही या ज़ा समझते हैं ? मैं तो
समझता हूँ कि तुम्हारे थोड़ने देवताओंके घमृनको भी जो अधर
(नीची वस्तु) बना दिया है इसीलिये वह अधर कहा जाने लगा,
इसलिये नहीं कि वह तुच्छ है ॥ ५ ॥ हे मृगके नेत्रोंके समान
शौलोंवाली ! तुम्हारे थोड़ा-रूप पनेपर यह चिह्न तुम्हारे पनिके
दौलोंका नहीं है परन्तु यह तो कामरूपी तान्त्रिकका वह यन्त्र है
जिसपर उसने जगत्को वशमें करनेवाले मन्त्र अंकित कर रखे
हैं ॥ ६ ॥ यदि अपने प्रेमी सहायक सन्ने हों और संन्यामें कम
भी हों तब भी कार्यकी सिद्धि हो जाती है क्योंकि धोड़से
(केवल दो) तथा अत्यन्त रहतः लाल तथा प्रेमपूर्ण) दोनों
थोड़ोंकी सहायतासे इस नायिकाके मुखने संसारको जीत
लिया है ॥ ७ ॥ इस नायिकाके मुखचन्द्रमें थोड़ा ऐसे विम्बाफलके
समान लगता है जो घमृनकी भूमिमें उत्पन्न हुआ हो। पर ऐसा
हो नहीं सकता क्योंकि विम्बाकी शोभा तो बृहत्वाले स्थानमें
देखी जाती है किन्तु थोड़की शोभा तो चिद्रुम (बृहत्-रहित
स्थान या मूँगे) में ही दिखाई देती है ॥ ८ ॥ इसके थोड़की
खलाई देखकर मैं समझता हूँ कि यह थोड़ा ही वास्तवमें विम्ब
(कुँदरू) है और जिसे लोग विम्बाफल कहते हैं वह इससे
बहुत ही घटकर है। वास्तवमें दोनोंका भेद न समझनेके कारण
ही लोगोंको इनके नामसे भ्रम होगया है इसीलिये लोग उलट-

ऽभूदनयोर्जनानाम् ॥ ६ ॥ तवैष विद्रुमच्छाया मरुमार्ग
श्चाधरः । करोति कस्य नो मुग्धे पिशाभाकुलितं
मनः ॥ १० ॥ त्वं पीयूष दिवोऽपि भूरणमसि
द्राक्षे परीक्षेत को माधुर्यं तव चिम्बनोऽपि विदितं
माध्वीक माध्वीकता । एतन्किं तु मनागरुन्तु-
दमिष ब्रूमो न चेत्कुप्यसि यः कान्ताधरपद्मवे
माधुरिमा नान्यत्र कुत्रापि सः ॥ ११ ॥ द्विजसङ्गतिमा-
साद्य सर्वा रागाद्विमुच्यते । रक्तस्तथापि तन्वङ्गया
विम्बोष्ठः केन हेतुना ॥ १२ ॥ प्रियामुक्षीभूय मुक्षी
सुधांशुर्वसन्त्यसीं राहुभयव्ययेन । इमां दधाराधरविम्ब-
सीलां तस्यैव बालं करचक्रवालम् ॥ १३ ॥ बन्धूकवन्धू-
भयदेतदस्या मुलेन्दुनागेन सहोर्ज्ज्वहानम् । रागाधिया
शैशव्यायनीयां स्वमाह सन्ध्यामधरोष्ठलेखा ॥ १४ ॥
मुक्षारविन्दसर्पिः सुननोरुखोऽधरः । कुरुते हार-

माणिक्यप्रदीपान्पातदुरन्धिषः ॥ १५ ॥ सन्ततोदयस-
न्ध्येव वदनेन्दोगनिन्दिता । तदोष्ठमुद्रा लावण्यसमुद्र-
स्येव विद्रुमः ॥ १६ ॥ सर्वस्यैव हि रत्नस्य वणेऽर्धः परि-
हीयते । दयिताधरग्लं तु अणितं यात्यनर्घताम् ॥ १७ ॥

दन्ताः— चन्द्राधिकैतन्मुखचन्द्रिकाणां दरायतं
तन्किरणद्वानाम् । पुरःपरिस्त्रस्तपृषद्वितीयं रक्षा-
वलिद्वन्द्वति यिन्दुवृन्दम् ॥ १ ॥ द्विधा विधाय
शीतांशुं कपोलौ कृतयाम्बुधिः । तन्ध्यास्तद्रसनिष्य-
न्दयिन्द्वो रदनावलिः ॥ २ ॥ भाति दन्तच्छदेनास्या-
स्त्वच्छा दशनमञ्जिका । सरस्वत्यक्षमालेव पूजापद्म-
दलाञ्जिता ॥ ३ ॥ पात्रपावत्कुवलयदशा मृज्यते दन्त-
पालिस्तावतावद्विगुणमधरच्छापया शोणशोभिः ।
काचित्त्यस्याः परिमलकलाहृतमात्रालिकाम्या वक्त्रा-
भ्रासे प्रसरति मुहुः श्यामिकाप्याभिरासीत् ॥ ४ ॥

कर विम्बोष्ठः अधर-विम्ब तथा अधर-विम्ब (मुख-विम्ब ।
कुँदरुको विम्बा कहने लगे ॥ ६ ॥ हे सुन्दरी ! मूँगकी-सी
कामिबाला तुम्हारा अधर मादवाइके रेखाएँ और उज्ज्वल मार्गके
समान किमके मनकी व्यासने व्याकुल नहीं कर देता ॥ १० ॥
हे अमृत ! तुम सबमुख स्वर्गके भूषण हो । हे अंगूर ! भला
तुम्हारी मिठासतक क्या कोई पहुँच सकता है ! हे मदिरा !
तुम्हारी मधुरता तो सब जानते हैं किन्तु यदि बुरा न मानो तो
मैं तुम्हारा जी दुखानेवाली यह बात कहूँ कि प्रियाके छाँटमें
जो मिठास है वह संसारमें अन्यत्र कहाँ नहीं है ॥ ११ ॥ द्विज
(बाह्यण) की सङ्गति पाकर सभी जाँग रागों सांसारिक विषयों
से हीन हो जाते हैं फिर भी क्या कारण है कि इस कोमलाङ्गीका
अधर, द्विज (दाँत) का संग पाकर भी विम्बाके समान
(रागयुक्त, लाल) बना हुआ है ॥ १२ ॥ वह चन्द्रमा जब इस
नायिकाका मुख बनकर रात्रिमें निर्भय होकर मुख-पूर्वक निवास
कर रहा है तिसकी कोमल किरणोंने इसके ओठोंका रूप धारण
कर रक्ता है ॥ १३ ॥ मुख-रूपी चन्द्रमाके साथ निकलनेवाली
इस नायिकाके पीछे ओठकी रेखा बन्धूक (जपाकसूम)
के समान यह मचना दे रही है कि वह इस नायिकाके
बचपन और यौवनकी सम्पत्ति (बचकी चम्पत्ति) है
॥ १४ ॥ इस सुन्दर शरीरवाली नायिकाका लाल अधर-रूपी
सूर्य जहाँ मुखकमलको सिखा रहा है वहीं तरंगों जड़े हुए लाल
मणिरूपी दीप्ताङ्गी निस्तेज मौ बना रहा है ॥ १५ ॥ उसके
मुखरूपी चन्द्रमासे ऐसा प्रतीत होता है मानो सदा निर्दोष

सम्पत्ति उदय होती रहती है और उसके ओठोंकी मुद्रा
ऐसी प्रतीत होती है मानो वह सौम्य-सिन्धुका मूँगा
हो ॥ १६ ॥ जब किसी रत्नमें छोट या दोष पड़ा जाता है तब
उसका मूल्य कम हो जाता है पर इस नायिकाका अधर कभी
रत्न दाँतके चिह्न रूपी घात लगनेपर और भी अधिक मूल्यवान्
(सुन्दर) हो गया है ॥ १७ ॥

दाँत : चन्द्रमासे भी अधिक सुन्दर इसके मुखकी
चौखनीकी किरणोंसे जो चूँचें गिरीं उनमेंसे पड़ने गिरी हुई चूँचें
तो पीछेकी दाँतोंकी पंक्ति है और पीछे गिरी हुई चूँचें ऊपरकी पंक्ति
है ॥ १ ॥ गलाने चन्द्रमाके दो टुकड़े करके जब इस नायिकाके
गाल बनाए तब उन्हीं टुकड़ोंसे जो इसकी चूँचें टपकीं वे ही
दाँतकी पंक्तियाँ बन गईं ॥ २ ॥ इस कामिनीके ओठोंसे भी
अधिक म्वत्त इसके दाँत ऐसे प्रतीत होते हैं मानो पद्मदलोंसे
सरस्वतीकी चक्रमाळाकी पूजा की जाती हो ॥ ३ ॥ वह कमलनयनी
नायिका ज्यों-ज्यों अपने दाँत मँजकर उजले करती जा रही है
हे त्यों-त्यों ओठोंकी ललाईसे वे और भी अधिक लाल दिखाई
देते जा रहे हैं, और फिर जब उसके मुखकी सुगन्धयुक्त सौँसेके
कारण मुँहपर और मँदराने लगते हैं तब उनकी चमकते
दाँतोंपर कालापन भी फैलक पड़ता है ॥ ४ ॥ इस नायिकाके
दाँतोंके राजा धागेके चार दाँत हैं जो मञ्जनसे ऐसे उजले कर
दिए गए हैं कि उनपरसे खैर-सुपारीके चिह्न मिट गए हैं और वे
ओंतीके समान हो गए हैं । वे दाँत चित्तकी चञ्चलता,
अनुराग तथा द्वेष न होनेसे विकार-शून्य हैं इसलिये

राजो द्विजानामिह राजदन्ताः सम्भिभ्रति श्रोत्रिय-
विभ्रमं यत् । उद्वेगरागादिमृजावदाताश्चत्वार एते
तद्वैमि मुक्ताः ॥ ५ ॥

(वृत्त) — विलोकिताम्या मुखमुन्नमस्य किं वेध-
लेयं सुप्रमासमाप्ती । धृत्युद्धवा यच्चिबुके चकास्ति
निम्ने मनागङ्गुलियन्त्रणेष ॥ १ ॥

मुखम्—अज्ञातेन्दुपराभव परिलसद्यालोलनेत्राञ्जुनं
भ्रान्तभूलतमैरुनाभितिलकं धीस्त्राण्डपञ्चालकम् । यन्ध-
काधरसुन्दरं सुरमुनिव्यामोहि याक्यामृतं त्रैलोक्य-
कपाद्भुतपङ्कजं परतनोरास्यं न कस्य प्रियम् ॥ १ ॥
अनाकाशे चन्द्रः सरसिजदलद्वन्द्वज्जितो गृहीतः
पश्चाधै कुटिलकुटिलैः सोऽपि तिमिरैः । सुधां मुञ्च-
त्युच्चैरशनिमथ सम्मोहजननी किमुपातालीयं यदत
जगतः कर्तुं हृदिता ॥ २ ॥ अनुच्छिद्यो देवैरपरिदलितो

राहुदशनैः कलङ्केनामृष्टो न खलु परिभृतो दिनकृता ।
कुहभिर्नो लुप्तो न च युधनिचक्रेण विजितः कलानाथः
कोऽयं कनकलनिकाशमुदयते ॥ ३ ॥ अनेन रम्भोरु-
तवाननेन पीयूषभानोऽस्तुलया धृतस्य । ऊनस्य नूनं
परिपूष्णाय ताराः स्फुरन्ति प्रतिमानमृगडाः ॥ ४ ॥
अपि सुभगं तव वदनं पश्यति सुभगं यदा यदा चन्द्रः ।
ग्लपयति हन्त पिधने सपदि सुखं स्वं पयोदान्तः ॥ ५ ॥
अवले सलिले व्ययस्यता ते मुखभावो गमिनी न पङ्क-
जेन । कथमादिमघर्णनान्यज्ञस्य द्विजराजेन कृतो क-
निग्रहस्य ॥ ६ ॥ अमृतनिधानं हृदयं सन्तापनिवर्तनं
सदा निरतम् । चन्द्रमुखं तव सुन्दरि सुस्मितभाना
विकासते परितः ॥ ७ ॥ अमृतजम्बुनि मग्नं प्रासादा-
काशमाश्रितचन्द्रः । सम्प्रति कः परिपश्यी यं प्रति
कोपाहतं वदनम् ॥ ८ ॥ अयं ज्योत्स्नाजानिस्तव वदन-

देवताकीका रूप धारण कर रहे हैं और इसीलिये हम उन्हें
मुख (मोती या जीवन-मुक्त) समझ रहे हैं ॥ ५ ॥

डोही : हम नायिकाकी डोहीमें पड़े हुए गह्वरेको देखकर
पेसा जाम पड़ना है मानो वहाने इसकी रचना करके जब इसके
सौन्दर्यकी पूर्णता परखनेके लिये डोहीमें उँगली लगाकर
इसे ऊपर उठाकर देखा होगा कि वह सुन्दर बनी है या नहीं
तब व्यापारीकी उँगली लगनेसे ही यह बन गया है ॥ १ ॥

मुख : तीनों लोकोंको आश्चर्यमें डाल देनेवाला इस
नायिकाका वह कमल-मुख किसे प्यारा नहीं लगता जिसने
आज तक चन्द्रमाये हारना नहीं जाना, जिसके चञ्चल नेत्र
आँजनसे रसीले हो गए हैं, जिसकी भीड़ निरन्तर चलती
रहती है, जिसके माथेपर कस्तूरीका तिलक लगा है, जिसके
बालोंमें चन्दनके पत्ते सुँसे हुए हैं, जिसके छोटे दुपहरियाके
फूलके समान सुन्दर लाल हैं और जिसके मुखमें देवता
और मुनियोंकी लुभानेवाला वाक्की-रूपी अमृत भरा हुआ
है ॥ १ ॥ नायिकाका मुख दिखाकर कवि कहता है—'वह देखो,
पृथ्वीपर कैसा चन्द्रमा निकला है, जिसमें दो नोले कमल (नेत्र)
ढो हैं, जिसे पीछेसे लहराता हुआ अम्बुकार (दुपहराले बाक)
पकड़े हुए है, जो ऊपरसे निरन्तर अमृत (मुखकान) और
विजली (कटाह) बरसा रहा है, बताइए तो, वह वस्तु कर
देनेवाली उपद्रवोंकी जड़ संसारमें किसे मिटानेपर तुली हुई है'
॥ २ ॥ नायिकाका मुख दिखाकर कवि कहता है—'उस सोनेकी
कला (नायिका) में वह कैसा चन्द्रमा (मुख) उग आया

है, जिसकी कलाएँ देवता भी नहीं पाएँ, जिसे राहुने घपने
दौंतांसे चबाया नहीं, जिसे कलंकने स्पर्श नहीं किया, जिसे सूर्य
भी अपनी ज्योतिसे मद्ध नहीं कर पाया, जो अमावास्याके
दिन भी अस्त नहीं हुआ और जिसे संसारकी स्त्रियोंके
मुख भी कभी हरा नहीं पाए' ॥ ३ ॥ हे कलेके एग्रेके समान
जौंवाँवाली ! इन तारोंको देखकर यह निश्चय हो गया कि
जब तुम्हारे मुखके समान तौलनेके लिये चन्द्रमा लाया गया
तब नुलापर पड़े हुए उस चन्द्रमाकी कमी पूरी करनेके लिये
ये तारोंके बहुतसे प्रकाशके टुकड़े कटे बनानेकी हकड़े कर लिए
गए ॥ ४ ॥ हे सुन्दरी ! जब जब चन्द्रमा तुम्हारा सुन्दर
मुख देखता है तब-तब लजाकर वह कटले बादलोंमें छपना शुरू
विषा लेता है ॥ ५ ॥ हे अवले ! जलमें रहनेवाला पंख
(कमल) तुम्हारे मुखकी बराबरी नहीं कर पा सकता क्योंकि
द्विजराज (चन्द्रमा या व्याघ्रणोंमें श्रेष्ठ) ने जिसे संकुचित रहनेका
हथक दिया है और जिसका अन्तिम अक्षर 'ज' है (जो अन्वयज
अर्थात् चालकाल या पङ्कज) है वह आदिम वर्ण (जिसका
पहला अक्षर 'म' अर्थात् मुख या व्याघ्रण) कैसे हो सकता
है ॥ ६ ॥ हे सुन्दरी ! तुम्हारा मुख सचमुच चन्द्रमुख है
क्योंकि यह अमृतका सुन्दर भण्डार है, सारा दूसरोंका ताप
हरण करनेमें लगा रहता है और तारों और मुखकानकी चमक
विलेखना रहता है ॥ ७ ॥ हे प्यारी ! अब तो तुम्हारा कोई
विरोधी भी नहीं रहा, फिर भी तुम्हारा मुँह क्रोधसे क्यों लाल
है ? एक कमल या, वह तुम्हारे डरसे पानीमें डूबा पड़ा है और

दुनोऽम्बरगुहां प्रविष्टस्तत्रापि प्रसृतमिदमेन ददतमः ।
इति त्रासोद्रेककमगलितसत्त्वः क्षयगदी धिधिर्दग्धो
दीनं व्यथयति निदानं हि सृदुता ॥ ६ ॥ अयि दयिते
तव वदनं सुधानिधानं द्वितीयमभ्युदितम् । तदसहृद-
यमवलोक्य त्रस्येदिति निश्चितं स्थाने ॥ १० ॥ अयि
सुन्दरि तव वदनं नित्यं पूर्णं सुधानिधिर्मत्वा । हन्त
पतत्युपरिष्ठान्मध्येऽभ्युधि नित्यमेवासां ॥ ११ ॥ अल-
कतमः परिपीतं सुस्मितसुपमापुरस्कृतं मधुरम् । को न
सुधानिधिसहजं सुमुखि मुखं हन्त सम्मनुगाम् ॥ १२ ॥
असायन्तश्च द्विकचनवलीलाः जयुगलस्तलस्फूर्जत्क-
म्युधिलसदलिसङ्घात उपरि । विना दोषासङ्गं सततप-
रिपूर्णाखिलकलः कुतः प्राप्तश्चन्द्रो विगलितकलङ्कः
सुमुखि ते ॥ १३ ॥ अस्यामपूर्वं इव कोऽपि कलङ्करिक-
श्चन्द्रोऽपरः किमुत तन्मकरध्वजेन । रोमावलीगुणमि-

लत्कुचमन्दरेण निर्मथ्य नाभिजलधिं ध्रुवमुद्धतः स्यात्
॥ १४ ॥ अस्या मुखध्रीप्रतिविम्बमेव जलाच्च तातान्सु-
कुराच्च मिथान् । अभ्यर्ध्य धत्तः खलु पञ्चचन्द्रो विभू-
षणं याचितकं कदाचित् ॥ १५ ॥ अस्या मुखव्यास्तु
न पूर्णिमास्यं पूर्णस्य जित्वा महिमा हिमांशुम् ।
भ्रूलक्ष्मणखण्डं दधदधमिन्दुर्भालस्तृतीयः खलु यस्य
भागः ॥ १६ ॥ अस्या मुखेनैव विजित्य नित्यस्पर्धी
मिलत्कुङ्कुमरोपभासाः । प्रसह्य चन्द्रः खलु नष्टमानः
स्यादेव तिष्ठन्परिवेषपाशः ॥ १७ ॥ आननं मृगशा-
वाच्या धीक्ष्य लोलालकावृतम् । अमङ्गलमरसङ्कीर्णं
स्मरामि सरसीरुहम् ॥ १८ ॥ आरब्धे दयितामुख-
प्रतिसमे निर्मातुमस्मिन्नपि व्यक्तं जन्मसमानमेव
मिलितामंशुच्छटां वर्पति । आत्मद्रोहिणि रोहिणीप-
रिवृद्धे पर्यङ्कपङ्कदहः सङ्कोचादथ दुःस्थितस्य न विधे-

दूसरा चन्द्रमा था, वह आकाशमें छिप गया है ॥ १० ॥ यह निगोहा
महान जाने इस बेचारे चन्द्रमाको क्यों कष्ट दिव जा रहा है ? एक
तो वह तुम्हारे मुखसे डरकर आकाशकी गुफा में चोदनी उत्पन्न
करता है पर वहाँ तक भी पहुँचाने इस मुखकी चकाचांधभरी चमक
पहुँचा दी है । इसी चिन्ता में मुखपुलक वह निरन्तर कमसे
अपनी कलापैलोकर हतमा चीख हो गया है कि अन्त में कुछ भी
नहीं रह जाता ॥ ११ ॥ हे प्रिये ! तुम्हारा जो मुख अब दूसरा चन्द्र
बनकर निकल आया है वह यदि आकाशमें स्थित उस कलङ्की
चन्द्रमाको देखकर इस आशङ्कामें डरे तो ठीक है कि कहीं इस
समान कहलानेवाले चन्द्रमाके कलङ्कके कारण मुझे भी लोग
कलङ्की न कहने-समझने लगे ॥ १० ॥ हे सुन्दरी ! यह चन्द्रमा
नित्य तुम्हारे सुखचन्द्रको पूर्ण ही पाता है इसलिये वह नित्य
उससे हातरकर प्रतिदिन ऊपरसे समुद्रमें डूब मरनेके लिये कूद
पड़ता है ॥ ११ ॥ हे सुन्दर मुखवाली ! कौन ऐसा व्यक्ति है
जो तुम्हारे इस मुखको स्वाभाविक चन्द्रमा न समझ ले, जो
शालरूपी अँधेरा भी रहा है और जिसमेंसे सुन्दर मुखानरूपी
मधुर चोदनी बाहर बिजरी पड़ रही है (चन्द्रमामें भीतर
कालापन होता है किन्तु बाहर प्रकाश होना है) ॥ १२ ॥ हे
सुन्दर मुखवाली ! तुमने ऐसा चन्द्रमा (मुख) कहीं पाया जिसके
भीतर खिले हुए तथा भई-नई चटक-मटकते भरे हुए दो कमल
(नेत्र) फटक रहे हैं, जिसके नीचे शङ्ख (कण्ठ) रोमा दे
रहा है, जिसके ऊपर भीरोंका समूह (केरा) मँदरा रहा है,
जिसमें दोषा (दोषके समूह, रात) के बिना ही सदा, पूरी

कलाचौसे भरा रहता है और जिसमें कलङ्क (उदासी या
कालापन) का नाम नहीं है ॥ १३ ॥ इस नायिकाका मुख कोई
दूसरा ही बिना कलङ्कवाला अमोला चन्द्रमा है जिसे कामदेवने
नाभिरूपी समुद्रमें स्तनरूपी मन्दर पर्वतकी संधानी बनाकर
रोमावलीरूपी रस्सीसे मथकर उत्पन्न किया हो ॥ १४ ॥ कमल
और चन्द्रमाकी धोड़ी-बहुत सुन्दरता ऐसी लगती है मानो
उस नायिकाने जल और धर्पणमें जो अपनी छाया देखी है वही
छाया कमलने अपने पिता जलसे और चन्द्रमाने अपने मित्र
धर्पणसे माँगकर उसीसे अपनेको सजा लिया हो ॥ १५ ॥
अब इसके मुखका तीसरा भाग (माथा) ही भीड़रूपी
कलङ्कसे युक्त आधे चन्द्रमाके बराबर है तब इसका पूर्ण मुख तो
केव चन्द्रमाके समान हुआ । इसलिये यदि नायिकाके इस डेढ़
चन्द्रमाके समान मुखने उस एक चन्द्रमाको इस भी दिया तो
कौन बड़ा काम किया है ॥ १६ ॥ चन्द्रमाके चारों ओर जो
मच्छर (परिणेष) दिखाई पड़ता है वह मयङ्गल नहीं है, वह तो
कन्दा है, जिससे उस नायिकाके मुखने सदा यरावरीकी
होड़ करनेवाले चन्द्रमाको जीतकर धूल-पूर्वक बाँध लिया है
और उस नायिकाके माथेपर जो केशर लगा है वही मानो
उसके कोपकी लज्जाई है ॥ १७ ॥ हरिके लीनेके समान
खँखोवाजी इस नायिकाके लहराते हुए बालोंसे बिरे मुखको
देखकर उड़ते हुए भीरोंसे घिरा हुआ कमल स्मरण हो आता
है ॥ १८ ॥ बहाने उस रोहिणीके पति चन्द्रमाको नायिकाके
मुखके समान नहीं वरन् अपना शत्रु बनाकर उत्पन्न किया क्योंकि

स्तच्छीलमुन्मीलितम् ॥ १६ ॥ आसाधं सलिलभरे
सवितारमुपास्य सादरं तपसा । अधुनाञ्जेन मनाक्त्व
मानिनि तुलना मुखस्यासा ॥ २० ॥ इयं सुनयना दासी-
कृततामरसञ्चया । आननेनाकलङ्केन जयतीन्दुं कलङ्कि-
तम् ॥ २१ ॥ उन्धितो निशि कलानिधिर्भवेदेतदीयमु-
खतुल्यतासये । प्रापितो मलिनभायमेतया लज्जया
नभसि यावदृश्यताम् ॥ २२ ॥ उपरि स्थितः सुधा-
मिधिरत्र पुनस्ते स्थितं मुखं सुभगे । उभयोरभयोर्भूयः
स्पृहणीयं दर्शनं कस्य ॥ २३ ॥ कपोलपद्मान्मकरान्तके-
तुर्भ्रूयां जिगीर्षुर्धनुषा जगन्ति । ह्रावलभ्यास्ति रति
मनोभू रज्यद्वयस्यो मधुनाधरेण ॥ २४ ॥ कलङ्कहीनः
क्षयदोषशून्यः सदा निवृत्तस्तमसो भयाङ्क । यत्राभिव-
्यद्विज्जतायकाऽपि तदापि मन्ये न तवाननाभम् ॥ २५ ॥

अव्यक्त होते हैं। उसने जो अपनी किरणें मिलाकर फैलाई,
तो उसे देखते ही मन्नाजीका आसन कमल मुँदने लगा
और मन्नाजी उसीके भीतर कस गये। इसमें क्या मन्नाजी
हुदिमानीका परिचय नहीं मिलता ॥ १६ ॥ ॥ कंटनेसे लाल
मुख कर लेनेवाली ! देखा, सायंकाल तक गहरे जलमें जब
आव्यक्त लगनके साथ लाल कमलने सूर्यकी ठपामना की तब
कहीं वह तुम्हारे इस कौंधसे लाल मुखकी कुछ-कुछ समानता
कर पाया है ॥ २० ॥ इस सुन्दर नेत्रोंवाली नायिकाके कमलकी
कान्ति हरनेवाले अपने कलङ्क-रहित मुखसे इस कलङ्क-रहित
चन्द्रमापर विजय प्राप्त कर ली है ॥ २१ ॥ कलाओंसे भरा
हुआ चन्द्रमा इस नायिकाका समानता पानेके लिये ही रागमें
निकलता है, पर उग्राँही वह इस नायिकाके सामने आता है
रणों ही लजाकर, उदास होकर भट आकाशमें मुँह छिपा
लेता है ॥ २२ ॥ हे सुन्दरी ! ऊपर आकाशमें निकला हुआ
चन्द्रमा और यहाँ पृथ्वीपर चमकता हुआ तुम्हारा मुख
इन दोनोंमेंसे अधिक चाहने योग्य दर्शन किसका है ?
(तुम्हारे मुखका ही, ॥ २३ ॥ इस नायिकाका देखकर
यह निश्चय विरवास हो जाता है कि कामदेव इसके शरीरमें
अवश्य निवास करता है क्योंकि इसके गालोंपर आँखा हुआ
मगर ही कामका अण्डा है, इसके भीतरूपी धनुषसे ही वह
संसारकी जीतना चाहता है, इसमें जो रति (प्रियका प्रेम)
है वही माना। इसके साथ रहनेवाली रति (कामकी पत्नी) है
और इसका मुक्कानसे भरा हुआ अघर ही मानो कामका
मित्र बसन्त है ॥ २४ ॥ यदि कोई देखा चन्द्रमा बना भी

कस्ते शशाङ्क मोहः मुधाकरोऽहं न कोऽपि मङ्गिनः ।
किं ननु पश्यसि निजभाजयि यनिताया मुखं मूढ
॥ २६ ॥ कस्यामोदं कमलं वदनमिदं ते प्रिये न सन्तनु-
यान् । अथलभ्य मित्रमेकं विकसति ॥ यदन्यथा जानु
॥ २७ ॥ कान्तामुखस्वादपराङ्मुखा यत्पान्थाः शशाङ्कस्य
करविमृष्टाः । सुदुःसहं तापमिमं प्रयाप्ति भन्य ततां
मेव सुधेतरत्र ॥ २८ ॥ कोपः स्फोटनतः स्थितानि
परितः पद्माणि दुर्गे जलं मैत्रं मण्डलमुज्ज्वलं चिरमभ्यो
नीनास्तथा कलटकाः । इत्याहृष्टशिलीमुखेन रचनां
कन्या नदन्यद्भूतं यन्पश्यन् जिगीर्षुणापि न जितं सुगंधं
स्वर्दीयं मुखम् ॥ २९ ॥ चन्द्रं कलङ्करहितं शक्यद्वयं
अनिस्तोयमन्धतमसश्च सुगन्धि तन्मयाः । यकपद्म-
लेन भुवि स्पृष्टता विधानुर्यण्येत केन करकौशलम-

दिया जाय जिसमें कलङ्क न हो, जो पाँख न हुआ करे और
जिसे कभी राहुका डर न हो, तब भी मैं समझता हूँ कि
वह तुम्हारे मुखकी शोभा नहीं प्राप्त कर सकता ॥ २६ ॥
हे चन्द्रमा ! वह तुझे कैसा भ्रम हो गया है कि मैं चन्द्रमा
हूँ और तुझसे पदकर कोई नहीं है ? परे सूर्य ! क्या तूने अपनी
शोभाको जातनेवाला उस नायिकाका मुँह नहीं देखा ॥ २७ ॥
हे प्यारी ! तुम्हारा वह मुखकमल जिसे आनन्द नहीं देता जो
अपने एकमात्र मित्र (पति या सूर्य) के सामने आनेपर ही
खिलता है, अन्यथा नहीं ॥ २८ ॥ अपनी या मयोंके अधरामृतके
स्वादमें वलित अधिक लांग जब चन्द्रमाकी किरणोंसे तू जानेपर
आव्यक्त जले जा रहे है, तब यह निश्चय है कि चन्द्रमाकी
किरणोंमें अमृत नहीं, विष भरा हुआ है ॥ २९ ॥ हे भोली-
भाली नायिका ! कमलने तुम्हारा मुख जीतनेके लिये कोप
(कमलगट्टा, धन) प्रकट किया, पारों पोर पत्र (बाहन,
पट्टाई) सजाए, जलकी उसने दुर्ग (पहुँचसे बाहर, गढ़)
बनाया, मित्र (सूर्य, मित्र) उसके साथी रहे, कंटकों
(शत्रुओं, कारों) को उसने पहले ही नीचे (पदाकान्त) कर
रक्सा है, इनना सब प्रबन्ध करके वह स्वयं शिलीमुख (भोरे,
बाध) लींचकर जीतना चाह रहा है पर आश्चर्य तब है कि इतनी
अव्यक्त विराल सैवारी कर लेनेपर भी वह तुम्हारे मुखकी
जीत नहीं पा रहा है ॥ २६ ॥ जिस मन्नाने यह विना कलङ्कका
चन्द्रमा (नायिकाका मुख) बनाया है उसकी विचित्र कारीगरीका
कौन वर्णन कर सकता है क्योंकि उस चन्द्रमामें बिना जलके
ही दो मण्डलियों (आँखें) बनाई हैं और उसके ऊपर सुगन्धित

हृतं तत् ॥ ३० ॥ चलद्रूढमिषाम्भोजमधीरनयनं
मुखम् । तदीयं यदि दृश्येत कामः कुब्जोऽस्तु किं ततः
॥ ३१ ॥ चातुर्यस्यैकाचहं फलममलगरां मूलमुत्ताप-
शन्तेः पद्मायाः सप्रसादं स्थलमपि च रुचां कोशभूतं
फलानाम् । शृङ्गारस्यानिमानं शरदमृतकरस्पर्धि
संभाष्यसिन्धोरास्यं तस्याः सहास्यं मनसि न मृदुले
कस्य सास्यं तनोति ॥ ३२ ॥ जगन्नानन्दं वदनमनुसं
पद्मलदशः कथङ्कारं पङ्कजहमनुविधातुं प्रभवति । अयं
चेष्टाकाङ्क्षी सह मदनकोदण्डलतया वराकां राकेन्दुः
कुघलययुगं किं न सहति ॥ ३३ ॥ जनानन्दमग्नौ
भवति न कथं नाम सुकृतो प्रयातोऽवस्थाभिस्तिष्ठ-
भिरपि यः कोटिमयतीम् । भ्रुवोर्लीलां यालः श्रयम-
लिकपट्टस्य तरुणो मुखेन्दास्त्वयस्त्वं हरति हरिणाख्याः
परिणतः ॥ ३४ ॥ जितेन्दुपद्मलावणं कः काम्नावदनं

यना चन्द्रकार (मूढ) स्थापित किया हुआ है ॥ ३० ॥ यदि
चञ्चल भौंसे युक्त कमलके समान चञ्चल नेत्रोंवाली उस
नायिकाका मुख दिखाई पड़े जनेवर कामदेव भी हमपर
विगड़ पैदा हो तो हमें उसका कोई चिन्ता नहीं ॥ ३१ ॥
उस नवेलीका हैसना हुआ मुख चतुराईका सूचक है,
स्तोत्र-पाठ आदि निर्मल वाणीका फल है, बड़े हुए
तापका दूर करनेकी जड़ी है, लक्ष्मीके निवासका भवन है,
शोभाका धाम है, सुन्दर कल्लोंका भण्डार है, शृङ्गारको
उकसानेवाला है, शरद ऋतुके चन्द्रमाका समानता करनेवाला
है और सीभाग्यका समुद्र है, वह किसके कामल चित्तमें नहीं
भाजता ॥ ३२ ॥ सुन्दर यशोनिवासे युक्त भौंसेवाली इस
नायिकाका जो अद्वितीय मुखकमल सारे संसारकी भौंसेकी
आनन्द देता है इसका समानता यह बेचारा पूतोंका चन्द्रमा
कैसे कर सकता है ! यदि उसे इस मुखकी बराबरी करनेका
इतना चाव हो है तो कामदेवके धनुषमें दो तीजे कमल
जोड़कर क्यों नहीं अपने मुँह टॉक लेता क्योंकि तभी वह
उसके मुखकी समानता कर पा सकता है ॥ ३३ ॥ बेचारा
चन्द्रमा संसारके सभी प्राणियोंको सुख देता रहता है फिर भी
उसके माथे यश नहीं है । यद्यपि वह भी बाल, तरुण और
पूर्ण तानों प्रवन्धाग्रामें होकर बढ़ता है फिर भी इस
मृगनयनीका मुखरूपी चन्द्रमा भौंसाकी लीलाका वारुण,
मौग काटनेका जवान, और पूर्ण चन्द्रमाकी प्रीतिवस्था
लेक उसकी कान्ति हर ही लेता है ॥ ३४ ॥ उस मृदु की

जयेत् । मुक्त्वा तदेव सुरनश्रमजिह्वितलोचनम् ॥ ३५ ॥
तव वदनेन तिरस्कृतमश्रुकुहं तपति पाथसो मध्ये ।
अभ्रान्तविधुमण्डलमिदमपि धावति विलीनं सत् ॥ ३६ ॥
तस्या मुखस्यानिमनोहरस्य कर्तुं न शक्तः
सदृशं प्रियायाः । अद्यापि शीतद्युतिरात्मविभ्यं निर्माय
निर्माय पुनर्भिनसि ॥ ३७ ॥ तस्या वदनचन्द्रस्य
कान्तिरन्यैव आयते । कलङ्कतुलनां धत्ते यत्र नासाग्र-
मौक्तिकम् ॥ ३८ ॥ तानि प्राञ्चि दिनानि यत्र रजनी
सेहे तमिकापदं सा सृष्टिचिरराम यत्र भवति ज्योत्स्ना-
मयो नातपः । अधान्यः समयस्तथाहि तिथयोऽप्यस्या
मुखस्योदये हस्ताहस्तिरकया हरन्ति परितो राकावरा-
कीयशः ॥ ३९ ॥ त्वरितं पिथेहि वदनं बहिरधवा मैत्र
मोदये यासीः । प्रस्फुरद्मृतनिधानं पातुं समयः सवै-
वास्ते ॥ ४० ॥ दिवारजन्यो रविस्तोमभीते चन्द्राम्बुजे

जिस मुखने चन्द्रमा और कमलकी सुन्दरता की ही है उसे,
सम्भोगकी थकावटसे उनीचे नेत्रवाले उसीके मुखको जोड़कर,
और कौन जीत सकता है ॥ ३५ ॥ तुम्हारे मुखसे हारा हुआ
कमल तो जलके भीतर घुसकर तपस्या कर रहा है और चन्द्र-
मण्डल बेचारा भागकर बादलोंके बीचमें छपना मुँह बिपा
रहा है ॥ ३६ ॥ चन्द्रमाने उस प्यारीके आत्मन्त सुन्दर मुखके
समान छपनेका बनानेका बहुत प्रयत्न किया पर बना न
पाया, तभीसे आजतक वह उसी उधेड़-धुनमें छपना स्वरूप
बार-बार बनाया और बिगाड़ा करता है ॥ ३७ ॥ उसके मुख-
चन्द्रकी कुछ निराखी ही छटा है जिसमें कि वहाँ बेतरका
मोती कलङ्क जैसा जान पड़ने लगा है ॥ ३८ ॥ वे दिन गए, जब
कि बेचारी रात्रिको भौंधेकी लात सहना पड़ती थी, वह युग भी
चला गया जब चन्द्रमाकी चौंदनी धुँधली हुआ करती थी, अब
तो वह युग आ गया है कि इस नायिकाका मुख-चन्द्र निकलते
ही सब तिथियाँ पृथिमाका घरा लूटनेके लिये भस्का-मुखी करने
लगी हैं ॥ ३९ ॥ हे प्रिये ! तुम तो कटपट छपना मुँह ठक
लो या बाहर निकलनेका विचार ही छोड़ दो क्योंकि सामने
उमड़ता हुआ प्रसृत पीनेके लिये प्यासकी आबरकता नहीं पड़ती
अपना तुम मुँह ठक लो, कहीं कोई तुम्हारे भौंसेका प्रसृत
न पी ले ॥ ४० ॥ दिनमें सूर्यके तेजसे डरकर चन्द्रमा और
रातमें चन्द्रमासे डरकर कमल अपनी अपनी शोभा इस
नायिकाके मुखमें धरोहर रख जोड़ते हैं इसीलिये इस नवेलीका
मुख रात दिन शोभासे भरा रहता है ॥ ४१ ॥ उस मूर्ख पुण्य

निक्षिपतः स्वलक्ष्मीम् । अस्या यदास्ये न तदा तयोः
श्रीरेकश्रियेद् तु कदा न कान्तम् ॥ ४१ ॥ धितस्य
मन्दमनसः कुक्षेः कवित्वं यः स्त्रीमुखं च शशिनं च
समं करोति । भूभरुधिभ्रमकटाक्षनिरीक्षितानि कोप-
प्रसादहसितानि कुतः शशाङ्के ॥ ४२ ॥ नतार्द्धि त्वद्वक्त्र-
श्रियमसहमानः कुशननुर्जटारहये स्थित्वा गलवम-
लग्ने गृहगुरोः । प्रियामाप्रोक्षः शृणु निजकलहं
शमयितुं समुद्यत्सङ्कल्पः परिचरति मन्ये तप इति
॥ ४३ ॥ न दिवा सुधानिधानं विकसति नक्तं न हस्त
वा कमलम् । एकं पुनस्त्वदीयं सुभगे यदनं दिवानिशं
विकसत् ॥ ४४ ॥ ननु नीलाञ्जलसंवृतमाननमाप्नाति
हरिणयनायाः । प्रतिविम्बित इव यमुनागभीरनीरा-
स्तरेणाङ्कः ॥ ४५ ॥ न हसति यद्वर्धते न च मलिनं न च
दृश्यते मनाक्कथापि । यदनमिदं तव सुभगे श्रुतांत
न कस्य प्रमोदाय ॥ ४६ ॥ पिबन्ति कान्तावदनं मुदा

ये त एव धन्याः अनुमानुमिष्टाः । अन्ये तु केचिन्प-
धिका भ्रमन्ति केचिद्विवस्त्रा जटिलाश्च केचिन् ॥ ४७ ॥
पुंसान्दर्शय सुन्दरि मुखेन्दुमीषत्रपामपाकृत्य । जाया-
जित इति रुढा जनश्रुतिर्मे यशो भवतु ॥ ४८ ॥ प्रविश
कटिति गेहं मा वर्हिस्मिष्ट कान्ते ग्रहणसमयंचला
वर्तते शीतरश्मेः । तव मुखमकलहं वीन्य नृने स राहु-
ग्रंसति तव मुखेन्दुं पूर्णचन्द्रं विहाय ॥ ४९ ॥ विभ्राणो
मृगसख्यमेव किमपि प्रोढं तपस्तप्यतामाग्राभोतु
निरन्तरं दिविगदः पीयूषसत्रेण च । देहाधेन पुनः
करोतु यदि वा भूतेभ्यस्त्वाचर्य नद्रूपत्रेण समस्तधापि
भविता शङ्के न शीतद्युतिः ॥ ५० ॥ भानि विलास्युप-
रिष्टाद्दुष्प्रियादधार्दयमस्य लोकस्य । यदनमिदं रम-
णीयं सुभगे तमसो भयान्मुक्तम् ॥ ५१ ॥ मण्येऽप्यु-
तपति कमलं निपतति मण्येऽपि चन्द्रा निन्यम् ।
सुभगे तव मुखमेकं जयति विकासं वधजितराम्

कविकी कविताकां विष्कार है आं अपनी कवितामें छांके मुखकी
उपमा चन्द्रमासे देता है । भला बनाइए तां, भाँहाँका कौकापन,
हाव-भाव भरी चेष्टाएँ, सिरकी चितवन, क्रांथ, प्रसन्नता और
हैली आदि चन्द्रमामें कहीं मिल पाती है ॥ ४२ ॥ हे कामलाङ्गी ।
महादेवजीके मस्तकपर स्थित द्वितीयाके चन्द्रमाकां देखकर
ऐसा प्रतीत होता है कि जब चन्द्रमा तुम्हारे मुखकी शोभा
नहीं प्राप्त कर सका तब वह लीफकर महादेवजीकी जटाके
वनमें अपना शरीर भुजा-भुजाकर वहीं तपस्या कर रहा है और
अपना कलह धोमेके लिये महादेवजीके सिरसे यहनी हुई स्वच्छ
गङ्गाजीमें कूदनेका सङ्कल्प किए बैठा है ॥ ४३ ॥ अमृतका
भयवार चन्द्रमा तां दिनमें नहीं निकलता और कमल रातकी
नहीं खिलता किन्तु हे सुन्दरी ! तुम्हारा मुख अवश्य ऐसा
है जो रात-दिन सदा खिल रहा है ॥ ४४ ॥ उस हरियाँके
नेत्रोंके समान आँखोंवाली नायिकाका मुख नीले आँखजैसे
रुका हुआ ऐसा जान पड़ता है मार्गो यमुनाके गहरे जलमें
चन्द्रमाकी परछाईं किलमिला रही हो ॥ ४५ ॥ हे सुन्दरी !
तुम्हारा मुख न कभी छोटा होता है, न बढ़ता है और न कहींसे
भी मलिन दिखाई पड़ता है, तब भला बलाओ, इसकी कान्तिसे
किते नहीं आनन्द मिलता है ॥ ४६ ॥ हम तो उन्हीं लोगोंको
धन्य समझते हैं जो प्रसन्न होकर अपनी कान्ताका अधरामृत
पीते हैं, इसके अतिरिक्त जितने लोग हैं वे या तो पात्री होकर
या नष्ट या बड़ा बौधकर घूमते हैं ॥ ४७ ॥ हे सुन्दरी !

सङ्कोच छाँदकर तनिक उन लोगोंको अपना मुखचन्द्र तो
दिखा दो जिससे मेरा यह अपवश थड़कर पश यन जाय कि
यह अपनी छाँके वशमें रहता है यधान् लोग यह समझ लें
कि ऐसा सुन्दरी छाँके वशमें रहना ठीक है ॥ ४८ ॥
ग्रहणके समय एक रत्निक अपनी सुन्दरी प्रेयसीसे कहता है—
'हे प्यारी ! तुम अटपट घरमें घुस जाओ, बाहर न बैठो,
क्योंकि अब चन्द्रमाके ग्रहणका समय हो रहा है, कहीं ऐसा
न हो कि राहु उस चन्द्रमाका छाँदकर तुम्हारे इस कलह-
रहित मुखचन्द्रमाका ही निगल जाय' ॥ ४९ ॥ मृगके
साथ मित्रता करके अत्यन्त उम्र तपस्या करकेसे देवता लोग
अमृतके लिये चन्द्रमाकी भले ही निरन्तर आराधना करें और
बड़े चन्द्रमा अपने आँधे शरीरसे भले ही शिवजीकी पूजा भी
करता रहे किन्तु फिर भी वह उस नायिकाके मुखकी समानता
कभी नहीं कर सकता ॥ ५० ॥ ऊपर आकाशमें इस संसारका
प्रिय चन्द्रमा भले ही शोभा दे किन्तु इस नायिकाका मुख
जो अन्धकार और भय दोनोंसे मुक्त है यह उससे कहीं अधिक
सुन्दर प्रतीत हो रहा है ॥ ५१ ॥ कमल तो जलमें खड़ा
तपस्या करता है और चन्द्रमा नित्य जाकर समुद्रमें डूबता
है किन्तु हे सुन्दरी ! तुम्हारा मुख ही अकेला ऐसा है
जो निरन्तर प्रकाश धारण करता हुआ सबको जीतता रहता है ।
॥ ५२ ॥ हे सुन्दरी ! कामदेवके समान पतिरूपी मित्र (सूर्य)
धाकर जब तुम्हारा मुख प्रसन्नतासे खिल उठता है तब

॥ ५२ ॥ मानससम्भवदयितं मित्रमुपेत्य ग्रहपदास्य-
रुचि । सरसिजविकाससहजं सुमुखि तवेदं मुखं
भुवनं ॥ ५३ ॥ मुखं ते दद्रेदं ललितनममिन्दुर्मृगपदप्रहारं
हस्ताभ्यामुरसि तनुने मे मनिरिति । न चेद्वत्तु श्यामं
वहति किमसौ स्मेरवदने मनस्यो को नाम प्रनुदति न
दृनो निजननुम् ॥ ५४ ॥ मुखं वहति धन्वः कवचधुरेण-
धरेण सा । पूर्येन्दुमिव सान्द्र्यादङ्गलालितकौस्तुभम्
॥ ५५ ॥ मुखेन तन्व्या ननु तोल्यमानं सुधांशुविम्बं
विधिना कदाचिन् । आकाशमापन्नमदस्तदैव स्थिरं
तथैवेदमिहेति चित्रम् ॥ ५६ ॥ मुखे स्मायं स्मायं हस्त
किमेनाग्निहंसि दैवहस्तान् । हननं सुकृतं सुकृतो सुक-
तिनि नहि कोऽपि निर्वर्त्ति ॥ ५७ ॥ मृगमदनिलकित-
निटिलं केशच्छटयापि सर्वदाऽधरिणम् । निन्यं विक-
सनशीलं विकसन्येवाननं सुभगे ॥ ५८ ॥ मैत्रं तमस्तवक-
मूर्ध्मपाकृधास्त्वमेणं त्यजास्य विमले नयने गृहाण ।

गुहारे उस मुखकी शोभा भवनमें सहज ही मिलनेवाले
कमलकी-सा होने लगती है ॥ ५३ ॥ हे मुखकानसे भरे
मुखवाली ! मैं तो समझता हूँ कि चन्द्रमामें यह कालिमा
नहीं है वरन् ऐसा जान पड़ता है कि वह गुहारा सुन्दरतम
मुख देखकर स्वयं अपने हाथोंसे अपनी छातीपर हरिणकी
लातें सह रहा है, क्योंकि ऐसा कौन भवस्था है जो दुःख
होकर अपनी छाती नहीं पीट लेता ॥ ५४ ॥ उस नायिकाके
मुखपर जो दुपहरियाके फूलके समान लाल-लाल अभर है
उसके साथ वह मुख ऐसा जान पड़ता है माना पूर्ण चन्द्रमाने
अपना सौन्दर्य बढ़ानेके लिये अपनी छातापर कौस्तुभ भण्डि
बाँध ली है ॥ ५५ ॥ एक बार जब मछानी उस सुन्दराके
मुखसे चन्द्रमाके चिम्बका तीलने लगे तो वह चन्द्रमाका
विम्ब ऊपर आकाशमें उठ गया और सुन्दरीका मुख भारी
हानेसे नाँचे पृथ्वी पर गया । उसीसे चन्द्रमा आजतक
आकाशमें ही लटक रहा गया है । यह सचमुच वदे माधवकी
घटना है ॥ ५६ ॥ हे भोली-भाली ! तुम बार-बार मुस्करा-
मुस्कराकर उन दैवसे मारे हुआक फिरे क्यों मारे डालता हा ?
हे सुन्दर भववाली ! शुभ कामोंमें किसने इत्याका भला नहीं
कहा है ॥ ५७ ॥ हे सुन्दरी ! गुहारे बालोंको छुटाने कस्तूरीका
तिलक लगे हुए माथेको सदा नाँचे हो रक्ता है फिर भी
गुहारा सदा खिलता रहनेवाला मुख निरन्तर खिलता ही जा
रहा है ॥ ५८ ॥ हे चन्द्रमा ! यदि तुम इस मृगजवनाके

लोलासकं तरलवीक्षितमायताव्यास्ताक्षाम्मुखं यदि
भवाननुकर्तुंकामः ॥ ५९ ॥ यः ससर्ज कमलं रमागृहं
विश्वलोचनमहोन्सवं विधिः । एष तादृगसृजन्मृगी-
दृशो मीनकेतननिकेतनं मुखम् ॥ ६० ॥ यदमरशतैः
सिन्धोरन्तः कथञ्चिदुपाजितं सकलमपि तज्ज्ञाना
कान्तामुखे विनिवेशितम् । सुरसुमनसः श्वात्तामोदे
शशी च कपोलयोरमृतमधरे तिर्यग्भूते विपश्च दितो-
चने ॥ ६१ ॥ यन्मञ्जुसिञ्जितमितो रसनमणीनां यच्छू-
सलारभयलादलयो वदन्ति । यशीतयः स्खलदलकृत-
यश्च लोला वीलाधिलासतरलस्नयं मुखेन्दुः ॥ ६२ ॥
राकायामकलङ्कवेदमृतांशोर्भवेद्वपुः । तस्या मुखं
तदा साम्यपराभवमयामशान् ॥ ६३ ॥ लावण्यमधुभिः
पूर्णमास्यमस्या विकस्वरम् । लोकलोचनरोलम्यक-
वर्मैः कैर्न पीयते ॥ ६४ ॥ लोके कलङ्कमपहातुमर्थ
शशाङ्को जातो यतस्तव मुखं तरलायताक्षि । तत्रापि

चञ्चल चलकों (केशों), बड़े-बड़े नेत्रों और सहज सुन्दर
चित्रवनवाले मुखकी समानता करना ही चाहते हो तो अपने
ऊपर कालिमा धारण करने मात्रसे काम नहीं चलेगा । इसके
लिये तुम अपने मृगकी हटाकर केवल उसके दोनों सुन्दर मीन भर
रख लो ॥ ५९ ॥ जिस मछाने संसारकी धौलियोंको आनन्द देने-
वाला वह कमल बनाया जिसमें लक्ष्मी निवास करती है, उसी
मछाने हरिणोंके समान नेत्रोंवाली नायिकाका यह मुख भी बना
दिया जिसमें मछलीके कपड़ेवाला कामदेव आकर निवास करता
है ॥ ६० ॥ सैकड़ों देवताओंने मिलकर समुद्रके भीतरसे जो भी
कुछ बड़ी कठिनाईसे प्राप्त किया वे सभी वस्तुएँ मछानीने लीके
मुखमें लाकर सज्जित कर दीं । देखिए, उसने उसकी सौंसकी
सुगन्धमें लता कल्पके फूल, दोनों गालोंमें चन्द्रमा, ओठमें
अमृत और बाँकी चित्रवनमें विप लाकर रख दिया है ॥ ६१ ॥
वह जो हथर कहीं कर्धनाके मणियोंका-सा मनोहर शब्द सुनाई
पड़ रहा है, सौंसकी सुगन्धसे खिचकर भरे गूँज रहे हैं, गीत-
सा सुनाई पड़ रहा है और गहने जिसके जा रहे हैं, इन सब
सीखार्योंसे ऐसा जान पड़ता है कि किसी नायिकाका मुखरूपी
चन्द्रमा उसके हाव-भावके मुखपर फूल रहा है ॥ ६२ ॥ यदि
कभी किसी पूर्विकाकी रातमें चन्द्रमा कलङ्क-रहित हो जाय
तब कहीं यह मुख चन्द्रमाके समान हो सकेगा और इस
नायिकाके मुखकी पराजय हो सकेगी ॥ ६३ ॥ इस मछलीके
जिस मुखरूपी कमलमें सुन्दरतारूपी उपरस भरा हुआ है

कल्पयसि तस्मिन् कलङ्कलेखां नार्यः समाश्रितजनं हि ।
कलङ्कयन्ति ॥ ६४ ॥ वक्त्रं जेष्यामि चन्द्रः प्रतिदिश-
समस्तौ कान्तिमभ्येति शुभौ नेत्रच्छायां हरिष्याम्यह-
मिति विकसत्युत्पलं दीधिकायाम् । कुर्याते ते तथापि
श्रियमधिकतरां वीक्ष्य लोलेक्षणया वैलक्ष्यान्दीण
एको विघटितमपरं मन्सरे नास्ति भद्रम् ॥ ६५ ॥
वदनमिदं कमलं कमलमिवैवं सुचारु वा वदनम् ।
मुदमाधातुं मधुपां तममिति सम्भाष्यते कविभिः
॥ ६६ ॥ वदनसुधानिधिर्गयि सखि सुस्मितकलया
सुधारसाश्रुतया । कस्य निपिचयानङ्गं साङ्गं कर्तुं
समुत्ससति ॥ ६७ ॥ वदनसुधानिधिरेव प्रमदे न पुन-
स्तवया तथा विदितः । तद्विदित सुधानिधिमपरं वीक्ष्य
कृतार्था मुधा मनसि ॥ ६८ ॥ वलितभ्रु मुकुलितार्क

घीटीरसरञ्जिनाधरं तन्व्याः । सीत्काराञ्जितमधुरं
वदनं रुचिरं सुधासदनम् ॥ ७० ॥ विकसतु कमलं
राजतु सुधानिधिर्वा मुदा किमेतन् । मम तु परं तव
वदनं रुचये रुचिरं सुवर्णायाः ॥ ७१ ॥ विकसन्कमलं
समुदितमिन्दुं पीयूषसागरं यापि । समुन्नि यदैव
विलोके तदा तदैव प्रमोदेऽहम् ॥ ७२ ॥ विचरसि
यतो यतो यतस्त्वं मधुपा अनुयान्ति तत्र हन्त त्वाम् ।
केनापि गृहसि हृष्टं हन्त तवैवं प्रिये वदनम् ॥ ७३ ॥
विधायापूर्यपूर्णन्दुमस्या मुखमभूङ्गयम् । धाता निजा-
सनाम्भोजविनिमीलनदुःस्थितः ॥ ७४ ॥ विधाविधि-
विम्वशतानि लापं लोपं कुहगात्रिपु मासि मासि ।
अभङ्गुरश्रीकमसुं किमस्या मुखेन्दुमन्थापयदेकशेषम्
॥ ७५ ॥ विना सायं कोऽयं समुदयति सारभ्यसुभगः

उसे किन्ने नेत्ररूपी भीरे नहीं थी रहे हैं चर्चाएँ सभी लोग
उनके सुन्दर मुखकी ओर टकटकी लगाए देख रहे हैं ॥ ६४ ॥
हे चञ्चल तथा वदे-वदे नेत्रोंवाली नवेली ! चन्द्रमाने संसारमें
कलङ्क-रहित कहलानेके लिये तो तुम्हारे मुखका रूप धारण
किया है और तुम उसपर भी कलङ्क (काला हैसी
बिन्दी) लगाए डाल रही हो । ठीक ही है, खियोंका जो सङ्ग
करता है उसे रिजयों क्या कलङ्कित किए बिना मानती है ॥ ६५ ॥
चन्द्रमा प्रतिदिन अपनी कान्ति यह समझकर यद्वाना है कि मैं
बदले-बदले एक दिन उस कामिनीके मुखकी जीत लूँगा ।
तल्लियामें कमल भी यही सोचकर फँसता जा रहा है कि मैं
इसके नेत्रोंकी शोभा हर लूँगा । किन्तु जब इन दोनोंने ही उस
चञ्चल चितवनवालीके मुखमें अपनेसे अधिक विलक्षण शोभा
देखी तो इसी सोचमें बेचारा चन्द्रमा तो दुबला होने
लगा और कमल झितराकर बिखर गया । तात्पर्य यह कि
इन्हीं करनेसे किसीका भी कल्याण नहीं होता ॥ ६६ ॥
'कमल ही उसके मुखके समान है और उसका सुन्दर मुख
ही कमलके समान है ।' यह कल्पना कवियोंने इसीलिये
की है कि ये दोनों ही भीरों (नेत्रों) को प्रसन्न होकर
(खिलकर हँसकर अपनी आर सींच लेते हैं ॥ ६७ ॥ हे सखी !
अमृतके रससे भरी हुई मुस्कानकी सुन्दरतासे वह तुम्हारा मुख-
चन्द्र धाज किस भ्रम (कामदेव अथवा बिना भ्रमवाले) को
सींचकर धङ्ग-सहित करनेके लिये उतावला हो रहा है ॥ ६८ ॥
हे नवेली ! जिसे तू दूसरा चन्द्रमा समझे घेरी है और जिसे
देख-देखकर तू मनमें कुत्ती नहीं समा रही है वह दूसरा

चन्द्रमा नहीं है, वह तो तेरा चन्द्रमुख ही है ॥ ६९ ॥ नवेलीका
यह मुख कोई निराला ही सुन्दर चन्द्रमा है जिसमें देवों
भी हैं, हैंसती हुई खीं हैं, पालके कोड़ेमें रेंगे हुए खोंड हैं तथा
जिसमेंसे साँसोंकी मधुर घाणों निकल रहा है ॥ ७० ॥ भले
ही कमल खिलें और चन्द्रमा भी चौदनी फँसावे, किन्तु मुझे
उनकी शोभासे क्या लेना देना ! मैं तो तुझ साँने जैसी
सुन्दरीके सुन्दर मुखकी शोभापर ही लट्टू हूँ ॥ ७१ ॥
हे सुन्दर मुखवाली ! खिलते हुए कमल और उदय होने हुए
अमृतमे भरे चन्द्रमाको मैं जव-जव देखता हूँ तब-तब खिल
उठता हूँ अर्थात् उन्हें देखकर तुम्हारा मुख स्मरण हो आता
है ॥ ७२ ॥ हे प्यारा ! जहाँ-जहाँ तुम जाती हो वहाँ-वहाँ भीरे
भी तुम्हारे साथ लगे चले जाते हैं । जान पड़ता है किंसाँने
गुपगुप तुम्हारा मुँह देख लिया है इसलिये उसकी कुत्ती
बचानेके लिये ये भीरे छिटीना बने साथ लगे रहते हैं ॥ ७३ ॥
मझाने जब इस नायिकाका यह निराला मुखचन्द्र बनाया जो
कभी अस्त नहीं होता तब उसे क्या पड़तावा हुआ क्योंकि
उसके बनते ही वह कमल सदा मुँह रहने लगा जिसपर वे बैठे
थे ॥ ७४ ॥ इस नवेलीके मुखकी देखकर यह प्रश्न उठता है
कि क्या मझाने प्रत्येक सासकी अमावास्याकी रातमें चन्द्रमाके
सैकड़ों मण्डल तोड़-तोड़कर ही तो इस स्थिर शोभावाने
नवेलीके मुखचन्द्रकी रचना नहीं की है ॥ ७५ ॥ उस नायिकाके
मुखचन्द्रकी देखकर कवियों भ्रम हो गया है और वह कहता
है कि सार्यकाल हुए बिना ही पृथ्वीपर यह कौनसा चन्द्रमा
निकल रहा है जो सुगन्धसे भरा हुआ है, चारों ओर चौदनीकी

किरञ्ज्योन्क्ताधागमधिधरणि तागपरिवृढः । धनु-
र्धत्ते न्मरं तिरयति विहारं न तमसां निगतङ्कः
पद्मेरुहरमलमङ्कं नटयति ॥ ७६ ॥ विलसन्त्याननं तस्या
नासाग्रस्थितमौक्तिकम् । आललितवुधाश्लेषं राकेन्दो-
रिव मण्डलम् ॥ ७७ ॥ विलसत्पृष्ठलीयरुचिमित्रप्रेम्णा
विमुक्तचन्द्रमनाः । जीवनदिव्यविभूतिः पद्मिनी
मानसमुपेतासि ॥ ७८ ॥ व्यधत्त धाता मुखपद्ममस्याः
सम्प्राजमम्भोजकुलेऽखिलेऽपि । सगेजराज्ञां सृजतोऽ-
दसीयां नेत्राभिधेयायन पद्म सेषाम् ॥ ७९ ॥ शरत्का-
लसमुल्लासिपूणिमशर्यरीप्रियम् । कमेति ते मुखंतन्वि
अपेटापातनातिधिम् ॥ ८० ॥ शारदराकाचन्द्रो मुखम-
नुकर्तुं कमेत चेन्ममदे । पुनरपि दर्पः कथमिध न पर-
ब्राह्म्यांशतोऽव्यभा ॥ ८१ ॥ साधु चन्द्रमसि पुष्करैः
कृतं मीलितं यद्भिरामताधिके । उद्यता जयिनि

कामिनीमुखे तेन सादृशमनुष्ठितं पुनः ॥ ८२ ॥ सुधा-
करधन्व इति प्रवृत्ता वदन्तु कामं यमराजहृष्टाः ।
धन्यास्तु कान्तावदनं यतोऽस्य पानात् मोक्षो नतु तस्य
जातु ॥ ८३ ॥ सुधावदग्रासैरुपयनचकोरैरनुस्तां
किरञ्ज्योन्क्तामच्छां नवलप्रतिपाकप्रणयिनीम् । उप-
प्राकाराग्रं ग्रहिणु नयने तर्कय मनागनाकाशे कोऽयं
गलितहरिणः शोनकिरणः ॥ ८४ ॥ सुधाधिश्रद्धः
स्याद्यदि कथमयं तत्स्वयमपि प्रयाति क्षीणत्वं कथम-
मृततां वा व्रजति नो । ततो मम्ये कान्तावदनमिद-
मेकं ननु परं यदीयं सम्पद्य स्मितमपि कृतार्थाः सङ्ख्याः
॥ ८५ ॥ सुभगे तव मुखमिन्दुमानसजातं यत् प्रफुल्ल-
यति । क्रीडनमेतत्तस्यैतस्य पुनः सङ्गतो मृत्युः ॥ ८६ ॥
सुभगे तव मुखमेकं पश्यन्सुकृती कृतार्थतां मनुते ।
अमति स एव सुततः क्वचिदपि विन्दन्न वारम्भदा शर्म

धारा फैला रहा है, कामदेवका धनुष (भँहि) किधुं हुए है,
अन्धकार (केश) के फैलावको भी नहीं रोक रहा है, किसी
(राहु) में डरना भी नहीं है और अपनी गोदमें दो नीले
कमलों (पौखों) को उद्यालता जा रहा है ॥ ७६ ॥ नाकमें लटके
हुए बेसरके साथ उस नवेलीका मुख ऐसा सुन्दर जान पड़ता
है मानो पूर्णिमाके चन्द्रमण्डलमें बुध आ गया हो ॥ ७७ ॥
सुन्दर मुखवाली कामिनीको सम्बोधित करके कवि कहता है—
'हे कमलिनी (कमलके समान मुखवाली) ! तुम्हारी शोभा मित्र
(सूर्य, प्रिय) के प्रेमसे अत्यन्त आकर्षक हो जाती है, तुम
चन्द्रमा (चन्द्रके समान अस्थिर चित्तवाले लोगों) से मुक्त हो
और जीवन (जल) की दिव्य विभूति हो, इसीलिये तुम मानस
(मन और सरोवर) में समाई हुई हो ॥ ७८ ॥ प्रकाने इस
नवेलीके मुखकमलको सभी कमलोंका सञ्जाट् बना दिया है
इसलिये कमलोंके नेत्र नामके दो राजा निरन्तर इसकी सेवा
किया करते हैं अथवा मुखकमलपर दो नेत्र-कमल मानो उसकी
सेवाके लिये नियुक्त हैं ॥ ७९ ॥ हे कामलाङ्गी ! तुम्हारा सुन्दर
मुख तो शरदमें उगे हुए पूर्णिमाके चन्द्रमाको भी चपेटे
काह रहा है ॥ ८० ॥ शरदकी पूर्णिमाका चन्द्रमा तुम्हारे मुखकी
सदृशता कर तो सकता था पर हे नवेली ! उसमें तुम्हारी
आभाका एक अंश भर भी तो नहीं है, सब क्या वह बार-बार
अभिमान करता है ॥ ८१ ॥ अत्यन्त सुन्दरतासे भरे चन्द्रमाके
सामने कमल सकुचा गए, यह उन्होंने शिष्टताका काम किया
किन्तु उस कामिनीके जिस दुःखने चन्द्रमाको हरा दिया है

उसके सामने भी चन्द्रमा निकलता है यह सबसुच बड़े
साहसकी बात है ॥ ८२ ॥ जो लोग बड़े यमराजकी रहिमें आ गए
हों वे भले ही चन्द्रमाको अमृतका भण्डार कहें किन्तु वास्तवमें
नवेलीका मुख ही धन्य है जिसके अधर-पानसे आनन्द मिलता
है, चन्द्रमासे तो कुछ भी हाथ नहीं लगता ॥ ८३ ॥ पसकी
बहारदीवारीपर आँख जमाकर देखिए तो सही कि पृथ्वीपर
यह बिना कलङ्कका कौनसा चन्द्रमा निकला हुआ है जो पकी
हुई हरका देवकीके समान ऐसी उजली चोंदनी फैला रहा है
जिसकी ओर अमृत पीनेके लोभो इस उपवनके चकोर उड़े चले
जा रहे हैं ॥ ८४ ॥ यदि कहें कि चन्द्रमा अमृतका समुद्र है
तो यह हो नहीं सकता क्योंकि यदि उसमें अमृत होता तो जब
वह क्षीण होता चलता है उस समय वह अपनेको अमर
न बना लेता । इससे तो हम यही परिणाम निकालते हैं कि
वास्तवमें सुन्दरीका मुख ही सुधाका समुद्र है जिसकी एक
मुस्कराहट भी सङ्ख्याको या रसिकोंको कृतार्थ कर देती ॥
॥ ८५ ॥ हे सुन्दरी ! तुम्हारा मुख चन्द्रमा तो है किन्तु वह
मनसे उन्पन्न कामदेवको खिलाता जा रहा है क्योंकि वह
उसीका खिलौना है । इसके साथ जिसका मेल हुआ कि वह
मृत्युका आखेट बना ॥ ८६ ॥ हे सुन्दरी ! तुम्हारे इस एक
मुखको देखकर बड़े-बड़े पुरुषवान् भी अपनेको कृतार्थ समझ
लेते हैं किन्तु जो लोग दूसरोंसे आनन्द प्राप्त करनेके फेरमें पड़े
रहते हैं वे पीड़ासे व्याकुल होकर धूमते ही रह जाते हैं उनके कुछ
हाथ नहीं लगता ॥ ८७ ॥ जब देवता लोग चन्द्रमाका अमृत पीने

॥ ८७ ॥ सुमनोनिषीयमानो याति सुधांशुः शनैः शनैः
होसम् । सुमुखि मुखं ते भूयो मधुरिमसम्भारसम्भृतं
सततम् ॥ ८८ ॥ सुमुखि मनोजो मदनः सुधानिर्वापि
विभ्रतः परितः । इति तव वदनसुधानिधिरहंति
मदनात्मना भवितुम् ॥ ८९ ॥ सुमुखि मुखं ते रुचिरं
स्वमिध न केनापि तुल्यमन्येन । इति यत्पश्यन्हसति
प्रवर्धमानोऽपि हन्त शशी ॥ ९० ॥ सुमुखि मुखं ते
शशिना तुलितं न च तेन तद्वरं मन्ये । रक्तस्य गुञ्जया
स्यान्तास्य तथा तोलनं इष्टम् ॥ ९१ ॥ सुचिरलमौकि-
कतारे धवलांशुकचन्द्रिकाधमत्कारे । वदनपरिपूर्ल-
खन्द्रे सुन्दरि राकास्ति नात्र सन्देहः ॥ ९२ ॥ सुप्रमा-
दियये परीक्षणे निखिलं पद्ममभाजि तन्मुखान् । अधु-
नापि न भङ्गलक्षणं सलिलोन्मज्जनमुज्झति स्फुटम्
॥ ९३ ॥ स्मरते यथा यथेदं सुमुखि मुखं ते तथा तथा

हन्त । सहृदयहृदये मदनो निदधानि शरान्वलान्नि-
शितान् ॥ ९४ ॥ स्मितज्योत्स्नागङ्गा नयनननया श्याम-
लरुचिः सरस्वन्योष्ठाभारुणकिरणसौन्दर्यजयिनी ।
इमास्तिष्ठस्तीर्थाधिप इव मुखे सञ्चु मिलितान्मनेव
सेवको न लभत इहानन्दलहरीम् ॥ ९५ ॥ स्मितसद-
शानि स्मानि त्वन्मुखसूचया सपिच्यमाणानि । प्राण-
प्रिये मनोभव आदाय जगन्ति संहरन्ति ॥ ९६ ॥

कथः—अष्टपूरुषः कण्ठोऽयं कान्ताया भुवनत्रये ।
यस्माद्गीर्णानिनावस्य समुद्रनिर्विभाव्यते ॥ १ ॥ अयं
त्रयाणां ग्रामाणां विधानं मधुगन्धर्विनः । रेखात्रयमिती-
वास्याः सञ्चितं कण्ठकन्दले ॥ २ ॥ असावुद्वेललाचस्य-
रक्ताकरसमुद्भवः । जगद्विजयमाकलयशङ्कः कुसुमध-
म्वनः ॥ ३ ॥ अहं लोकैर्निर्गम्यन्त्याः कण्ठेन सदृशो मतः ।
इति स्वं कृतिने मत्वा प्रणदन्नाह उच्यते ॥ ४ ॥ कण्ठस्य

लगते हैं तब वह धीरे-धीरे पीछे होता चलता है किन्तु हे सुन्दर
मुखवाली ! तुम्हारा मुख तो निरन्तर माधुर्यके भयङ्करसे भरा
रहता है ॥ ८८ ॥ हे सुन्दरी ! चारों ओर सुना जा रहा है
कि मनसे उत्पन्न कामदेवने प्रमत समाप्त कर दिया है
इसीलिये मानो मदनका आगम । उसके प्रायश्चित्तके लिये
तुम्हारे मुखरूपी प्रमत-भयङ्करके रूपमें अपनेको प्रकट
करना चाहता है ॥ ८९ ॥ हे सुन्दरी ! तुम्हारा मुख तुम्हारे मुखके
ही समान है, उसकी उपमा किसी दूसरेसे नहीं दी जा सकती
क्योंकि पृथिव्याका चन्द्रमा तो यही देखनेसेकर घुलता जा
रहा है ॥ ९० ॥ हे सुन्दर मुखवाली ! यदि चन्द्रमासे तुम्हारे
मुखकी तुलना की जाय तो वह तुम्हारे मुखसे श्रेष्ठ थोड़े ही हो
सकता है क्योंकि यद्यपि रातोंको गुआ (धुँपणी या रसी) से
तौला तो जाता है पर ये रातके समान हो नहीं जाती ॥ ९१ ॥ हे
सुन्दरी ! इसमें सन्देह नहीं कि तुम पृथिव्याकी रात हो क्योंकि
तुम्हारे शरीरपर वैभी हुई मोतियोंकी मालाएँ ही स्वच्छ तारे हैं,
तुम्हारा उज्ज्वल वस्त्र ही चाँदनीका प्रकाश है और तुम्हारा मुख
ही पृथ्वी चन्द्रमा है ॥ ९२ ॥ अब सुन्दरताकी परीक्षा होने लगी
तब सारे कमल उस परीक्षामें नायिकाके मुखसे हार गए ।
ये कमल अब भी उस हारका लक्षण दिखाते हुए जलपर उतराया
नहीं छोड़ रहे हैं क्योंकि अब जलमें डूबनेकी होड़ लगती
है तब उसमें जो पहले बाहर निकल आता है वह हार जाता
है । अतः जलके ऊपर निकले हुए कमल मानो अपनी हार
मान रहे हैं ॥ ९३ ॥ हे सुन्दर मुखवाली ! अब-अब तुम्हारा वह

मुख मुस्करा देता है तब-तब रसिकोंके हृदयमें कामदेव जलपूर्वक
अपने घने बाण बंधता चलता है ॥ ९४ ॥ हे सुन्दर भाँहोंवाली
नखेली ! तुम्हारा मुख इस समय प्रयागके समान वह एबिन्न
तीर्थराज हो गया है जिसमें तुम्हारी मुमकानरूपी चाँदनी हो
गङ्गा है, तुम्हारे (बाणोंकी) सौंदर्यी चमक ही यमुना है और
सूर्यकी किरणोंकी चमककी हरानेवाली तुम्हारे ओठकी कान्ति
ही सरस्वती है, अतः इस मुखकी सेवा करनेवाला ऐसा कीन
है जो निरन्तर आनन्द न प्राप्त करता हो ॥ ९५ ॥ हे प्राण-
प्यारी ! तुम्हारे मुखके अमृतसे भरी प्रकार सींचे हुए
मुसकानरूपी फूल लेकर ही कामदेव आज संपूर्ण संसारको
मारे हाक रहा है ॥ ९६ ॥

माला : इस नखेलीका कण्ठ तीनों लोकोंमें कुछ ऐसा
अमृत है जिसमें निरन्तर बीणाकी गूँज निकलती ही रहती
है ॥ १ ॥ इसका मधुर गला तीनों ग्रामों (ससकों) का भागो
निवासस्थल है इसीलिये तो इसके गलेमें तीन तारोंके समान
तीन रेखाएँ बनी हुई हैं ॥ २ ॥ इसका यह कण्ठ ऐसा जाह
पड़ता है भागो फूलोंका धनुष धारण करनेवाले कामदेवका वह
शङ्क हो जो अत्यन्त बड़ी हुई सुन्दरताके समुद्रसे उत्पन्न हुआ
हो और जो संसारको जीतनेके लिये मङ्गल-सूचक शब्द करता
हो ॥ ३ ॥ शङ्क इसीलिये बहुत ऊँचे स्वरसे चिन्ताता है कि
वह अपनेको इस बातसे पुष्टवान् मानता है कि लोग मुझे
उस कामिनीके कण्ठके समान मानते हैं ॥ ४ ॥ स्तनोंकी
ऊँचाईके कारण कुछ ऊँचे हुए गलेमें अब गोल मोतियोंकी

तस्याः स्तनबन्धुरस्य मुक्ताकलापस्य च निस्तलस्य ।
अन्योन्यशोभाजननादभूय साधारणो भूषणभूषणभावः
॥ ५ ॥ कण्ठस्य विद्ये कान्ति मुक्ताभरणता यथा ।
नास्याः स्वभावस्यस्य मुक्ताभरणता तथा ॥ ६ ॥
कविवृत्तानप्रियवादसत्यान्यस्या विधाना न्यधिताधि-
कण्ठम् । रेखात्रयस्यासमिगदमोषां घालाय सोऽयं
विधभाज सीमा ॥ ७ ॥ मनोज्ञेन निजः कम्बुविजित्य
भुवनत्रयम् । मन्ये कण्ठं नितम्बिन्याः समर्पित इति प्रिये
॥ ८ ॥ मुक्तोत्करः सङ्कटशुक्तिमप्याद्विनिर्गतः सारस-
लोचनायाः । जामीमहेऽस्याः कमनीयकम्बुग्रीवाधिवा
सागुणवत्त्वमाप ॥ ९ ॥ ओन्नप्युपगहृष्टैः काकली-
कलगीतिभिः । कण्ठः कुण्ठितचातुर्यो विपश्चीपञ्चम-
ध्वनेः ॥ १० ॥

वाह—अजीयतावर्तशुभंयु नाभ्या दोभ्यां मृणालं
किमु कोमलाभ्याम् । निःसृजमारते घनपङ्क्तुत्सु भूर्त्ता-

माका पहनाई जाती है तब ये दोनों एक दूसरेकी शोभा
बढ़ाते हैं इसलिये दोनों एक दूसरेके भूषण भी ये और एक
दूसरेसे भूषित या सज्जित भी ये ॥ ५ ॥ इसका गला
स्वभावसे ■ इतना सुन्दर है ■ वह बिना भूषणके जितना
मनोहर लगता है उतना मोतियोंकी माला पहनकर नहीं
॥ ६ ॥ मझाने इस नवेलीके गलेमें जब कविता, संगीत, मधुर
वाणी तथा सत्य इन चारोंको स्थापित कर दिया तब मानो इन
चारोंके अलग-अलग करनेके लिये ही उसने तीन रेखाओंके बहानेसे
सीमाएँ बना दी हों ॥ ७ ॥ इस कामिनीके कण्ठको देखकर ऐसा
प्रतीत होता है मानो कामदेवने तीनों लोक जीतकर अपना शङ्ख
इसके कण्ठको सीप दिया हो ॥ ८ ॥ मोतियोंका ढेर जब
कठोर सीपियोंसे निकलकर इस कमलनयनी नवेलीके गलेमें
पहुँचा तभी मानो वह गुणी (गुणवाला, डॉरेके सहित) हो
पाया ॥ ९ ॥ कानोंको अमृतकी धाराके समान मधुर
लगनेवाले कोमल पतले स्वरसे इसका गला जब अलाप लेता
है तो उसके आगे जीह्याके पञ्चम स्वरकी मधुरता भी नीरस
जान पड़ने लगती है ॥ १० ॥

भुजाएँ : इस गहरी तथा घुमावदार सुन्दर नाभिवाली
नवेलीकी कोमल बाँहोंने क्या सबमुच कमलकी नालको
जीत लिया है कि वह जादूके मारे घने कीचड़की मिट्टीरूपी
अकीर्तिमें अशहाय होकर आ दूबा है ॥ १ ॥ इस नवेलीकी ये
दोनों भुजाएँ कुछ ऐसे विचित्र प्रकारका जाल बना गई हैं कि

सुनाकीर्तिषु तन्निमग्नम् ॥ १ ॥ दयिताबाहुपाशस्य
कुतोऽयमपरो विधिः । जीवयन्वर्पितः कण्ठे मारयन्-
पर्वजितः ॥ २ ॥ वाह तस्याः कुशाभोगनिरुद्धान्यो-
न्यदर्शनौ । सम्भ्रितं कथमेताभ्यां मृणालीकीर्तिलुण्ठ-
नम् ॥ ३ ॥ वाह प्रियाया जयतां मृणालं द्वन्द्वे जयो
नाम न विस्मयोऽस्मिन् । उच्चैस्तु तच्छिन्नममुष्य
अग्रस्यालोपयते निर्व्यथं यदन्तः ॥ ४ ॥ शब्दवन्नि-
रलङ्कारैरुपेतमतिकोमलम् । स्रुत्तं काव्यवद्वेजे तद्वाहु-
लनिकाद्वयम् ॥ ५ ॥ सरले अपि दोर्लभे शिथिलञ्जल-
चक्षुषः । अमुग्धाभ्यो मृणालीभ्यः कथमाजहनुः
श्रियम् ॥ ६ ॥

श्रो—अस्याः करस्पर्शनमर्धमर्द्धिर्बासत्वमापन्नम्
पल्लवो यः । भूयोऽपि नामाधरसाम्यगर्वं कुर्वन्कथं
वास्तु न स प्रवालः ॥ १ ॥ अस्यैव सर्गाय भवत्करस्य
सरोजसृष्टिर्मम हस्तलेखः । इत्याह धाता हरिरेव

जब वे किसीके गलेमें पड़ती हैं तो उसे जिता देती हैं और
गलेसे हट जाती हैं तो उसके प्राण ले लेती हैं ॥ १ ॥ नवेलीके
बड़े-बड़े ऊँचे स्तनोंके फैलावसे जो बाँहें आपसमें मिल-जुल-
तक नहीं पालीं उन्होंने कमलकी नालका यश लटवनेके लिये
मिलकर पङ्कज केसे कर लिया ॥ २ ॥ उस प्यारीकी दोनों
बाँहोंने कमलनालको जीत लिया हो तो कोई आश्चर्यकी बात
नहीं क्योंकि युद्धमें एक न एककी तो जीत होती ही है पर सबसे
बड़ा आश्चर्य तो यह है कि उस बेचारे हारे हुए कमलनालके
हृदयमें निर्व्यथन (दुःसका अभाव, खेद) हो गया है ॥ ३ ॥ इस
नवेलीकी दोनों कोमल बाँहें काव्यके समान सुन्दर हैं क्योंकि
जैसे काव्यमें शब्दालङ्कार भरे होते हैं, वैसे ही इसकी बाँहें भी
शब्द करते हुए या बजते हुए गहनोंसे सजी हुई हैं, जैसे काव्यमें
कोमल वर्ण होते हैं वैसे ही इसकी बाँहें भी कोमल वर्णवाली हैं,
तथा जैसे काव्यमें सुन्दर वृत्त (छन्द) होते हैं वैसे ही इसकी
बाँहें भी सुन्दर गोल हैं ॥ ४ ॥ इस चञ्चल नेत्रोंवाली नवेलीकी
सीधी सुन्दर लम्बी बाँहें उस अमुग्ध (अचतुर, असुन्दर)
कमलनालकी शोभा कैसे जीत पाई, यही बड़ा आश्चर्य है ॥ ५ ॥

हाथ : कौपलोंका यही बड़ा लक्ष्मण था कि ये इस
नवेलीके हाथोंकी बराबरी करने चली थीं । और फिर जब ये
ओठकी बराबरीका दम भरेगी तब भला उन्हें कौन प्रवाल
(मूर्ख, कौपल) नहीं कहेगा ॥ १ ॥ उस हरियके नेत्रोंके
समान बाँहोंवाली नायिकाके हाथमें बनी हुई कमलकी रेखा

शायां किं हस्तलेखीकृतया तथा स्याम् ॥ २ ॥ कुसुमा-
युधकोदण्डे हस्ती विस्तीर्णचक्षुः । अशोकपल्लवा-
स्त्राणां प्रतिहस्तत्वमागता ॥ ३ ॥ नाहं धार्यमधीरासि
मुखेन्द्रोः सम्मुखं त्वया । इतीव लीलापत्रेण करेऽस्याः
कान्तिरर्पिता ॥ ४ ॥ मुखे प्रतारयसि किं कुसुमानि
हर्षमेतान्यशोकघिटपस्य कुतहलेन । अस्यैव तन्वि
मधपल्लवडम्बरेषु त्वं हारयिष्यसि ननु स्वयमेव पाशां
॥ ५ ॥ स्फुटस्त्वयैव दयिते स्मरपूजायावृतेन हस्तेन ।
उद्भिन्नापरमृदुतरकिललय इव लयतेऽशोकः ॥ ६ ॥

हस्तरेखा—आयूरेखां चकारास्याः करे द्वाधीयसौ
विधिः । शोण्डोर्यगर्वनिर्याहमन्याशां च मनोभुवः ॥ १ ॥
ध्वजाकारा रधाभासा गजाभा पविभास्वरा । पाखिरे-
खेति कन्दर्पसर्पस्थं निश्चितं स्थितम् ॥ २ ॥

अङ्गुल्यः—उद्यन्मखस्याङ्गुलिपञ्चकस्य मियादसौ

मानो नहीं सिद्ध करती है कि मछाने यह सूचना देनेके
लिये हाथमें यह रेखा बना दी है कि मैंने तुम्हारा हाथ
बनातेसे पहले कमलोंकी रचना करके इन हाथोंका निमांश
किया था ॥ २ ॥ उस बड़ी-बड़ी आँखोंवाली नायिकाके हाथ
देते जान पड़ते हैं मानो कामदेवके धनुषपर अशोकके पत्ते
बाणोंके प्रतिविधि बनाकर चढ़ा लिए गए हों ॥ ३ ॥ उस
नवेलीने अपने हाथमें खेखके लिये जो कमल ले रक्ता है
वह ऐसा लगता है मानो कमलने यह कहकर अपनी
सुन्दरता उस नवेलीके हाथमें रख दी हो कि 'हे कमल
नेत्रवाली ! कृपाकर मुझे अपने मुखरूपी चन्द्रमाके सामने न
कर देना, मैं तुम्हारी शरण हूँ' ॥ ४ ॥ हे भोली ! अशोककी
शाखाके फूल लोढ़नेकी उमड़में तुम क्यों भोला खड़ा कर
रही हो ? क्योंकि हे कोमलाङ्गी ! अशोकके इन नये पत्तोंमें
तुम्हारे हाथ भी नहीं पहचान पड़ेंगे ॥ ५ ॥ बसन्तके दिन
कामदेवकी पूजाके समय तुमने जब अशोकको हाथ लगाया
तब ऐसा जान पड़ा मानो इसमेंसे अश्वत्थ कोमल कुछ नये
ही पत्ते निकल आए हों ॥ ६ ॥

हाथकी रेखा : मछाने इस नवेलीके हाथमें चायुकी
लम्बी रेखा क्या बना दी कि कामदेवको यह आशा हो चली
कि मेरी बीरताके अभिमानकी अब सुरक्षा हो जायगी ॥ ३ ॥
इस नवेलीके हाथकी रेखाओंमें ध्वजा, रध, हाथी, वज्र आदि
देखकर ऐसा जान पड़ता है कि मछाने कामदेवकी चढ़ाईकी
सब सामग्री लाकर इसमें हकड़ी कर डाली है ॥ २ ॥

हेङ्गुलपञ्चले । हेमैकपुङ्खास्ति विशुद्धपथा प्रियाकरे
पञ्चशरी स्मरस्थ ॥ १ ॥ सुदीर्घा रागशालिन्यो बहुप-
र्वमनोहराः । तस्या विरञ्जुरङ्गुल्यः कामिनां सङ्ख्या
इव ॥ २ ॥

स्त्री—अन्योन्यमुत्पीडयदुत्पलाद्याः स्तनद्वयं
पाण्डु तथा प्रवृद्धम् । मध्ये यथा श्याममुखस्य तस्य
मृणालसूत्रान्तरमव्यलभ्यम् ॥ १ ॥ अपि तद्वपुषि प्रस-
र्पतोगमितः कान्तिभरेरगाधताम् । स्मरर्यायनयोः
ललु द्वयोः स्रवकुम्भा भवतः कुचावुभौ ॥ २ ॥ अल्पं
निमित्तमाकाशमनालोच्यैव धेधस्ता । इदमेवंविधं
भावि भवत्याः स्तनमण्डलम् ॥ ३ ॥ अविचेकि कुच-
द्वन्द्वं हन्तु नाम जगन्नयम् । श्रुतिप्रणयिनोरक्षारयुक्तं
जनमारणम् ॥ ४ ॥ अस्यप्रतिसमाधेयं स्तनद्वन्द्वस्य
वृषणम् । स्फुटतां कञ्चुकानां यन्तायान्यावरणायताम्

उँगलियाँ : इस मियाका हाथ ऐसा जान पड़ता है
मानो कमलकी हँगुरसे रँगकर ऐसा लूणीर बना लिया गया
हो। जिसमें लाल-लाल मखोंवाली पाँच उँगलियोंके रूपमें
कामदेवके मुनहरे पङ्कवाले और ऐनी मोंकवाले पाँच बाण
हों ॥ १ ॥ उस नवेलीकी उँगलियाँ कामियोंकी बातचीतके
समान लम्बी, प्रेमकी बातोंसे भरी तथा अनेक प्रसङ्गोंसे
सुक हैं अर्थात् वे लम्बी हैं, लाल हैं और अनेक सुन्दर
पोरोंवाली हैं ॥ २ ॥

स्तन : उस कमलनयनी नवेलीके परस्पर रगड़ खानेवाले
तथा काली घुघड़ीवाले उन दोनों गोरे-गोरे स्तनोंके बीच
कमलकी मालके पतले सूनोंके लिये भी स्थान नहीं दिया ॥ १ ॥
यद्यपि उस नवेलीके शरीरकी शोभाके जलकी गहराई अथाह
है किन्तु ये दोनों स्तन ऐसे प्रतीत होते हैं मानो काम और
वीर्य दोनोंके तैरनेकी सुविधाके लिये दो घड़े तैर रहे हों ॥ २ ॥
हे नवेली ! मछाने यह ज्ञात नहीं था कि तुम्हारे स्तन फैलते-
फैलते इतने बड़े हो जायेंगे नहीं तो ये आकाश-भण्डालकी कुछ
और फैला देते ॥ ३ ॥ हे नवेली ! तुम्हारे ये दोनों अविचेकी
स्तन तीनों लोकोंकी हत्या भले ही कर डालें पर तुम्हारी
ये श्रुतिप्रसूयी (वेदका अभ्यास करनेवाली, कानतक फैली
हुई) आँखें भी हत्या करना प्रारम्भ करें यह ठीक नहीं ॥ ४ ॥
इन दोनों स्तनोंका दोष (किसीसे स्पर्श) कैसे एक सकता है
क्योंकि भोलीका बन्धन टूट जानेपर ये उके ही नहीं रहते अतः
जो दोष रोके नहीं जाते उनका कोई उपाय ही नहीं है ॥ ५ ॥

॥५॥ आभ्यां कुचाभ्यामिभकुम्भयोः श्रीरादीयतेऽसा-
वनयोः क ताभ्याम् । भयेन गोपायितमौक्तिकौ तौ प्रज्य-
क्तमुक्ताभरणाविमौ यत् ॥ ६ ॥ उच्छ्रुसन्मण्डलप्रान्तेरे-
खमावद्धकुड्मलम् । अपर्याप्तमुरो वृद्धेः संसत्यस्याः
स्तनद्वयम् ॥७॥ उद्विग्नं किमिदं मनोभवन्नृपक्रीडारवि-
न्ध्वयं सूते तत्कथमेकतः किल लसद्रोमावलीनालतः ।
चक्रद्वन्द्वमिदं क्षमं तदपि न स्थातुं मुखेन्द्रोः पुरो लाघ-
ण्याभ्युनिमग्नयौवनगजस्यावैमि कुम्भद्वयम् ॥८॥ उद्वेगं
प्रतिपद्य पक्ष्यदरीभावं समेत्य क्रमात्पुन्नागाकृतिमाव्य
पूगपदवीमारुह्य बिल्वश्रियम् । लब्ध्वा तालफलोपमां
च ललितामासाद्य भूयोऽधुना चञ्चत्काञ्चनकुम्भजृम्भ-
णमिभाषस्याः स्तनौ विभ्रतः ॥ ९ ॥ पतत्कुक्षस्पर्धि-
तया घटस्य ज्योतस्य शास्त्रेषु निदर्शनत्वम् । तस्माच्च

इस नवेलीके स्तनोंमें हाथीके माथेकी शोभा तो ले ली है
पर हाथीका माथा इनकी शोभा नहीं ले पा रहा है इसलिये
हाथीके मस्तकने लजाकर अपना मोती भीतर छिपा रक्खा है
और इन स्तनोंमें अपने मोतीके गहने बाहर लोखकर लटका
रखे हैं ॥ ६ ॥ इस नवेलीके जिन स्तनोंके घेरेके चारों ओर
रेखाएँ (चक्र) निकल आई हैं और जिनमें घुपहीरूपी
कतिपय लगे गई हैं वे मानो यह कह रहे हैं कि हमारे फूलनेके
लिये उस नवेलीकी छाती पर्याप्त नहीं है ॥ ७ ॥ इस नवेलीके
स्तन क्या कामदेवरूपी राजाके लेखनेके लिये सिले कमल
हैं ? नहीं, ऐसा नहीं है क्योंकि ये तो शोभासे भरी रोमान्ती
रूपी बगलसे इटकर निकले हुए हैं । तो क्या ये चक्रवा-
चकी हैं ? नहीं, ऐसा भी नहीं है क्योंकि चक्रवाचकी होते
तो मुखरूपी चन्द्रमाके सामने तनिक भी न उभर पाते । तब तो
यही जान पड़ता है कि ये सौन्दर्यके जलमें डूबे हुए वीचनरूपी
हाथीके दो कुम्भ (मस्तक) ही हैं ॥ ८ ॥ इस नवेलीके ओ
स्तन पहले तनिकसे उभरकर पके घेरेके समान हुए, फिर
धीरे-धीरे नागकेशरकी कर्जोंके समान फूलकर सुपारीके समान
बढ़े हो गए, फिर पके हुए बेजकी शोभा पाकर ताड़के फूलके
बराबर हो गए, वे स्तन इस समय चमकते हुए सानेके घड़ेके
समान बढ़े-बढ़े हो गए हैं ॥ ९ ॥ इस नवेलीके स्तनोंकी बराबरी
करनेके कारण ही यदा इतना प्रसिद्ध हो गया कि राजाओंमें
उसका उदाहरण दिया जाने लगा तथा गगरी आदि पात्र
पनानेवाले भी 'कुम्हार'के नामसे प्रसिद्ध हो गए ॥ १० ॥
हैं सुन्दर आँखोंवाली ! ये स्तन किस सौभाग्यराजीके भागमें

शिल्पान्मणिकादिकारी प्रसिद्धनाथाजनि कुम्भकारः
॥ १० ॥ कनककमुकायितं पुरस्तादथ पङ्कटहकोरकाय-
माणम् । क्रमशः कलशायमानमास्ते सुदृशो वदसि
कस्य भागधेयम् ॥ ११ ॥ करतलयुगपरिणद्धे कुक्ष-
लशे कुङ्कुमारणे तस्याः । सिन्दूरिते करिपतेः कुम्भे
नक्षत्रमालेव ॥ १२ ॥ कराग्रजाग्रच्छ्रुतकोटिरचीं ययो-
रिमौ तौ तुलयेत्कुचौ चेत् । सर्वं तवा भीषणमुम्भ-
दिष्णु जातं घटीमप्यधुना न तुम्भम् ॥ १३ ॥ कलशे
निजहेतुदण्डजः किमु चक्रभ्रमिकारिता गुणः । स
तदुच्चकुचौ भवन्प्रभाभरचक्रभ्रमिमातनोति यत्
॥ १४ ॥ काठिन्यमङ्कुरखिलैर्निरस्तं कुचौ युवत्याः
शरणं जगाम । अधः पतिष्याद्य इतीव भीत्या न शक्नु-
तस्तावपि हातुमेतत् ॥ १५ ॥ कामिन्याः कुचयोः

पढ़नेवाले हैं जो कुम्हारी वालीपर पहले सुपारीके समान फिर
कमलकी कर्जोंके समान और अब धीरे-धीरे घड़ेके समान
बढ़ते जा रहे हैं ॥ ११ ॥ अपने दोनों स्तनोंपर हाथ रखकर
कही हुई नवेलीको देखकर कवि कहता है कि 'केशरसे रंगे
लाल स्तनोंपर उस नवेलीके दोनों हाथ और चमकीले
बल ऐसे जान पड़ते हैं मानो हाथीके सिन्दूरसे रंगे हुए
मस्तकपर तारोंकी माला टँगी हुई हो' ॥ १२ ॥ हाथमें पहना हुआ
चमकीला हीरा भी जिससे (कठोरताकी) नीच माँग रहा है
उन स्तनोंकी बराबरी करनेके लिये यदि बेलके फल मचलें तो
उन्हें खोल पागल कहेंगे और कोई कौड़ीके मोल भी न
पूछेगा ॥ १३ ॥ जब कुम्हार यदा बनाता है तब वह डबड़ेसे
चाक घुमाता है अतः घड़ेका कारण हुआ वह डबड़ा, जिसमें
कुम्हारका चाक घुमानेकी शक्ति है । नवेलीके स्तनोंको देखकर
कवि प्रश्न करता है कि 'क्या वह घुमानेकी शक्ति डबड़ेसे
घड़ेमें भी आ गई है क्योंकि आज यही यदा इस नवेलीके
ऊँचे-ऊँचे स्तन बनकर अपनी सुन्दरताकी अधिकताके कारण
देखनेवालोंकी चकरमें डाल रहा है (या चक्रवाचकीका अस
उत्पन्न कर रहा है) ॥ १४ ॥ उस नवेलीके सब चक्रोंमें जब
कठोरता जोड़ दी तब वह कठोरता उस नायिकाके
स्तनोंकी शरणमें पहुँची और मानो स्तन उसे जोड़नेमें इस
करसे समर्थ नहीं हो रहे हैं कि कहीं इसे छोड़ने (शरणागतता
परित्याग करने) के कारण मैं भी नीचे न सरक जाऊँ (नीच
न कहलाऊँ) ॥ १५ ॥ इस नवेलीके स्तनोंकी जो शोभा मोहलाई
बढ़ गई है वह अब मेरु पर्वतकी चोटियोंकी जीतनेकी तैयारी कर

कान्तिः पीनत्वेन पुरस्कृता । सुवर्णाचलशृङ्गाभां विनि-
जैतुं समुद्यता ॥ १६ ॥ किं नर्मदाया मम तेयमस्या
दृश्याभितो बाहुलतामृणाकी । कुर्वा किमुत्तस्थतुरन्त-
रीपे स्मरोज्जुष्यत्तरवात्यवारः ॥ १७ ॥ कुचद्वये
अकोराक्षी चिम्बुकप्रान्तचुम्बिनि । मर्मोक्तिपु न
शक्नोति स्थातुं लज्जानतानना ॥ १८ ॥ कुचावस्थाः
कामद्विपकलभकुम्भाधिति परे यदन्यग्ये वक्षःसरसि
कमले काञ्चनघटी । ममार्य सिद्धान्तः स्फुरति मर्दनेन
त्रिजगतीं विनिजित्य न्युज्जीकृतमिव निजं दुन्दुभि-
युगम् ॥ १९ ॥ कुम्भौ सद्यम्भौ करिणौ कलशौ मन्द-
कौशलौ । अक्रवाकौ घराकौ च तदीयकुचयोः पुरः
॥ २० ॥ अञ्जत्काञ्चनशैलायस्या वक्षोरुर्हा तन्मयाः । नो
षेसाधधिकृता कथमनिमिषतां भञ्जन मे दृष्टिः ॥ २१ ॥
जम्बीरं वा कमलमुकुलं इममुकुलं यथेष्टं माङ्गल्यं

वा कलयतु जना भूपतेर्मन्मथस्य । पतद्द्वन्द्वं कलयति
मतिमामकीना नयीना केना यस्या हृदि विनिहितं मन्म-
थानन्दकन्दम् ॥ २२ ॥ जम्बीरश्रियमनिलद्वय लीलयैव
ध्यानप्रीकृतकमनीयहेमकुम्भा । नीलाम्भोरुहनयन-
ध्रुवा कुचां ते स्पन्दते किल कनकाचलेन सार्धम्
॥ २३ ॥ तत्कुचां चरतः किञ्चिन्न मनसिजमतम् ।
नित्योन्मुखा यदासते मालीरक्षस्य भास्वनः ॥ २४ ॥
तन्वङ्गयाः स्तनयुग्मेन मुखं न प्रकटीकृतम् । हाराय
गुणिनं स्थानं न दत्तमिति लज्जया ॥ २५ ॥ तथोपक-
लठस्थितनारदारस्फुरन्प्रभाशैर्यालिनीजलेषु । लीनो
मनोजद्विप एव तस्य व्यक्ता नु गण्डो किमुराज-
पिरडो ॥ २६ ॥ तस्यास्तुङ्गस्तनच्छाया चकास्ति श्रिय-
लीतटं । लीना निर्मिरलेख्य यदनेन्दामोचरं ॥ २७ ॥
तस्याः स्मितप्रणयिपूर्वमुखेन्दुविम्बान्निर्गच्छदच्छदश-

रही है ॥ १६ ॥ मुझे आनन्द देनेवाली इस प्यारीके दोनों ओर
छटकनेवाली कोई क्या कमलकी माल है और इसके ये दोनों स्तन
ही क्या दो हीप हैं जो कामदेवका स्तनसे बालपनकथा जलके
सूल जानेपर ऊपर उठ आए हैं ॥ १७ ॥ अकोरके समान अञ्जल
मेघोंवाली उस नायिकाकी सखियाँ जब उससे खेड़-साड़ करती
हैं तब वह लाजसे अपना मुँह नीचा करके दोनों स्तनोंकी ऊँचाईके
कारण उनसे अपनी ठोड़ी टकरा जानेसे वहाँ नहीं ठहर पा रही है
॥ १८ ॥ किसीका कहना है कि इसके स्तन ऐसे जगते हैं मानो
कामदेव-कपी हथियार (हार्थीके पक्ष) के मस्तक हो, कोई इन्हें
छातीकपी साँसके कमल बताते हैं तथा कोई इन्हें साँसेका
घड़ा कहते हैं; पर मेरा तो मत यह है कि ये कामदेवके दो
मगादे हैं जिन्हें उसने तीनों लोक जीत लेनेपर प्रीति करके
रख दिया है ॥ १९ ॥ उस नवेलीके स्तनोंके सामने हार्थीके
मस्तक होंग जान पड़ते हैं, धड़ेकी रचना निरर्थक जान पड़ती
है और चक्रे-चक्रीपर भी बढ़ी दया आने लगती है ॥ २० ॥
सुमेरु पर्वतपर उन देवताओंका वास है जिनकी पलकें कभी नहीं
गिरती, इस बातको ध्यानमें रखकर उसके स्तनोंकी देखकर
कवि कहता है—'इस कामलाङ्गीकी छातीपर चमकते हुए
साँसेके पहाड़ (सुमेरु) के समान स्तनोंपर यदि हमारी दृष्टि
न पड़ती तो निषेध (पलकोंके गिरने) से शून्य न होती
[अर्थात् हमारे दृष्टि निरन्तर उस नवेलीके बड़े-बड़े स्तनोंपर
ही गड़ी रहती है] ॥ २१ ॥ खोग भले ही इसके दोनों स्तनोंकी
पथनी-अपनी भावनाके अनुसार, जैसीरी नौव, कमलकी

कली, साँसेका गुच्छा या कामदेवरूपी राजाकी महल बलुएँ
समक्ष पर मेरा निराशा बुझिमें तो ये ऐसे जान पड़ते हैं कि किसीने
इसकी धातीपर कामदेवका रसभरा कन्द रख दिया है ॥ २२ ॥
हे नीले कमलके समान आँखोंवाली नवेली ! तुम्हारे स्तनोंके
पहले तो बिना परिश्रमके ही जैभीरी नायिका शोभा लीकी
कर दी फिर उसने सुन्दर साँसेके घड़ेको नीचा दिखाया और
अब ये साँसेके पहाड़ (सुमेरु) की बराबरी करनेपर मचले
हैं ॥ २३ ॥ उसके स्तन निरन्ध्र ही कोई कामदेवका मत कर
रहे हैं इसीलिये तो वे उस नवेलीके मस्तकपर सुशोभित
रत्नरूपी सूर्यकी ओर अपने मुख ऊँचा किए हुए उठे हैं
॥ २४ ॥ इस कामलाङ्गीके दोनों स्तन मानो इस लाजसे
अपना मुँह नहीं खोलते (अर्थात् उके रहते हैं) कि हमने
गुर्खा (गुणवान्, बरवाले) हारका अपने ऊपर नहीं ठहरने
दिया ॥ २५ ॥ हे नवेली ! तुम्हारे दोनों स्तन ऐसे जान पड़ते
हैं मानो तुम्हारे गलेमें पड़े हुए चमकाले हारकी चमकरूपी
बावड़ीके जलमें डुबका खगानेवाले कामदेवरूपी हार्थीके
मस्तक हों ॥ २६ ॥ उस नवेलीके पेटका रेखाओंपर जो उसके
ऊँचे-ऊँचे स्तनोंका परचाई पड़ रही है वह ऐसी जान पड़ती
है माना मुखरूपा चन्द्रमाके ठरसे भागकर अन्धकारकी राशि छिपी
बैठा हा ॥ २७ ॥ उस नवेलीके मन्द मुस्कानसे भरे मुखचन्द्रके
विम्बसे निकलते हुए उजले दोँतोंकी चमकका प्रसृत रखनेके
लिये मानो मछाने जोभसे इन दोनों स्तनोंके रूपमें
साँसेके घड़े सजाकर रख दिए हों ॥ २८ ॥ इस नवेलीके

नांशुसुधां निधातुम् । पीनस्तनद्वयमिषात्तपनीयकुम्भौ
लोभादधः प्रगुणिताविव पद्मजेन ॥ २८ ॥ तालं प्रभु
स्यादनुकर्तुमेतावुन्धानसुस्थौ पतितं न तावन् । परं
च नाश्रित्य तरुं महान्तं कुर्वी कृशाङ्गयाः स्वत एव
तुङ्गा ॥ २९ ॥ दिवानिशं वारिणि कण्ठदग्धे दिवाकरा-
राधनमाचरन्ती । खलोजतान्यै किमु पद्मलान्यास्त-
पश्चरत्यम्बुजपङ्क्तिरेषा ॥ ३० ॥ धृतघनरुचिरघुतिना
बिलसद्दारेण मण्डलाग्रेण । दलयति कं नाभिमुखं
घाला कुचमण्डलाग्रेण ॥ ३१ ॥ नयननीरज किं
भवता कृतं मुखशशी यदयं रिपुराश्रितः । इति वधो
वितरीनुमिथोन्मुखं धरतनोः स्तनचक्रयुगं वर्षा ॥ ३२ ॥
नायं शशी तन्प्रतिरूपमग्न्यद्यस्मान्न विस्लेपयति द्वयं
मौ । इति स्म तर्कादिव पश्यतस्तां तस्या मुखेन्दुं कुच-
चक्रवार्ता ॥ ३३ ॥ निःशङ्कसङ्कोचितपङ्कजाऽयमस्यामु-
दीतो मुखमिन्दुविम्बः । चित्रं तथापि स्तनकोकयुग्मं न

स्तोकमप्यञ्जति चिप्रयोगम् ॥ ३४ ॥ निखिलैर्निरस्तमद्दे-
रङ्गीकृत्यापि भाविपरिमर्दम् । शरणागतमिव रक्षति
काठिन्यं कुचयुगं तन्व्याः ॥ ३५ ॥ पङ्कोद्भवत्वपरिवाह-
भयान्मृगान्धया जातं सरोजयुगलं कुचवेपधारि । शक्यं
न धातुविहितं परिहर्तुमस्य भूयोऽपि येन घनचन्द्र-
पङ्कयोगः ॥ ३६ ॥ पटविघटितमपि कुचतटमकपटम-
नसः कुरङ्गनयनायाः । मणिभवमयूखपटलीपटलीनतया
न सम्यगालोचि ॥ ३७ ॥ पयोधरघनीभावस्तावदम्बर-
मध्यगः । आश्लेषोपगमस्तत्र यावज्जीव प्रयच्छते ॥ ३८ ॥
पीनोन्नतत्वे न परत्र दृष्टे अस्मादृष्टे इत्यभिमानयोगः ।
कान्ताकुर्वी नो भवतोः सुयुक्तो सुदुर्लभो दन्तिघटौ न
यस्मात् ॥ ३९ ॥ पुष्पेयोरभिषेकहेमकलशौ द्वारप्रभावा-
हिनीचक्राङ्का मदनोन्मदद्विपपतेः कुम्भौ रतेः
कन्दुर्का । कन्दौ यादुमृणालिकायुगलपोल्लालतास-
म्भले नभ्या रत्नसमुद्रको वर्हति सा लावण्यपूर्णस्तनौ

इन दोनों उठे हुए तथा सुन्दर स्तनोंकी समता तादृका
फल तभीतक कर सकता है जबतक वह मोचे नहीं गिरता
क्योंकि वह ऊँचे पेड़के सहारे रहकर ऊँचा रहता है किन्तु इस
कोमलाङ्गीके स्तन तो बिना किसीके आधारके ही ऊँचे बने
हुए हैं ॥ २९ ॥ रातदिन गलेतक पानीमें खड़े रहकर सूर्यकी
उपासना करनेवाली यह कमलोंकी पंक्ति क्या उस सुन्दर
वरीमियोंकी छाँवाँवाली नायिकाके स्तन बननेके लिये तपस्या
कर रही है ॥ ३० ॥ घनों सुन्दर कान्ति धारण किए हुए तथा
हारसे शोभित इन स्तनोंके नुकीले धरेके द्वारा यह सुबली
किसका मन नहीं हरती ॥ ३१ ॥ जान पड़ता है नेत्रोंसे यहाँ
कहनेके लिये इस सुन्दरी नायिकाके चकवेके समान दोनों
स्तन ऊपर मुँह उठाए हुए बड़े सुन्दर प्रतीत हो रहे
हैं कि 'हे नेत्ररूपी कमल ! तुमने यह क्या किया कि
अपने शत्रु मुख-कमलका आश्रय ले लिया !' ॥ ३२ ॥
'इस नवेलीका मुख वास्तव में चन्द्रमा नहीं है, वह तो उसका
दुमरा प्रतिरूप है तथा तो यह हम दोनोंमें वियोग नहीं
कराता !' यही तर्क करते हुए ही मानो स्तनरूपी चक्रवा-
चकवी उस कामिनीके मुखचन्द्रकी ओर देख रहे हैं ॥ ३३ ॥
यह बड़े आश्चर्य की बात है कि इस नवेलीमें कमलोंकी सङ्कुचित
करनेवाली चन्द्रमाके निर्भय होकर उदय हो जानेपर माँ दोनों
स्तनरूपी चकवी-चक्रवाचभीतक एक दूसरेसे अलग नहीं हो
रहे हैं ॥ ३४ ॥ इस नवेलीके स्तन यह जानते हैं हम आगे मसले

जानेवाले हैं फिर भी वे शरीरके अन्य अङ्गोंसे निकल बाहर
की हुई कठोरताको शरणागतके समान पाले जा रहे हैं ॥ ३५ ॥
इस नवेलीकी छातीपर बैठे हुए दोनों स्तन ऐसे प्रतीत होते हैं
मानो दो कमलोंने इसलिये स्तनका रूप धारण किया हो कि
अब हमें कोई यह दोष न लगावे कि हम कीचड़से उगए
हुए हैं । पर इतना होनेपर भी प्रकाश बनाया हुआ दोष वे
तुर नहीं कर सके क्योंकि इनपर घने चन्द्रमाका चोबा (कीचड़)
फिर भी पोता ही जाता है ॥ ३६ ॥ निरखल मनवाली और
हरिणकी छाँवाँके समान नेत्रोंवाली नायिकाके स्तन वधपि
कपड़ेसे ढके नहीं थे फिर भी उनके चारों ओर लटकी हुई
जमकीली मणियोंकी किरणोंका ही ऐसा वज्र उनपर छा
गया कि वे मली-भौंति देखे नहीं जा सके ॥ ३७ ॥
जैसे आकाशमें तभीतक अधिक बादल रहते हैं जबतक
आरक्षेण नक्षत्रका योग नहीं आ जाता, इसी प्रकार
स्तनकी कठोरता भी तभीतक वहाँमें छिपी रहती है जबतक
आरक्षेण (आलिङ्गन) नहीं होता ॥ ३८ ॥ हे नवेलीके स्तनो !
तुम्हारा यह अभिमान मुझे तनिक नहीं जँचता कि 'हमारे
समान ऊँचे और मोटे संसारमें कोई है ही नहीं' क्योंकि
हाथियोंके मस्तक अभी संसारसे उठ नहीं गए हैं ॥ ३९ ॥ उस
नायिकाके सौन्दर्यसे भरे हुए दोनों स्तन ऐसे प्रतीत हो
रहे हैं मानो कामदेवके स्नानके लिये सोनेके दो घड़े रस दिए
गए हों । हारसे घिरे हुए वे ऐसे लगते हैं मानो किसी नदीके

॥ ४० ॥ प्रतिपक्षो यदि घक्षोरुहपरिणाहः कुरङ्गमय-
नायाः । आकाशवासतपसः श्रीफल विफलस्तथायासः
॥ ४१ ॥ प्रायश्चित्तं न गृहीतस्तन्वद्भयाः पतितौ स्तनौ ।
अत एव तयोः स्पर्शं लोकोऽयं शिथिलादरः ॥ ४२ ॥
घदरामलकाप्रदाडिमानामपहत्य श्रियमुपगता क्रमेण ।
अधुना हरणे कुक्षी यत्तेते दयिते ते कश्चावकुम्भल-
क्ष्म्याः ॥ ४३ ॥ भाति निधिवरे तस्याश्चित्रं कुचयुगा-
न्तरे । कीडाकण्डलितोच्चरङ्गकोदण्डः कुसुमायुधः
॥ ४४ ॥ मध्यं तनूकृत्य यदीदमीयं वेधा न दध्यात्म-
नीयमंशम् । केन स्तनौ सम्प्रति यौवनं ऽस्थाः खजेदन-
म्यप्रतिमाङ्ग-पद्ये ॥ ४५ ॥ मध्येन तनुमध्या मे मध्यं
जितवतीत्ययम् । इभकुम्भौ भिनत्यस्याः कञ्चकम्भ-
निभौ हरिः ॥ ४६ ॥ मध्योऽयं वलिस्रष्ट इष्टिरधिकं
पृथ्वी स्रष्टुर्बालयो बाहुस्तत्कमलेक्षणा त्रिजगतीमेकैव

संरक्षति । अन्येवं स्तनयोर्मियेण कनकक्षोणीभृता
संधृता यस्यामात्मकिशोरका पवित्रव्यग्रेषु जम्भ-
क्षिपः ॥ ४७ ॥ सुमेन्दुचन्द्रिकापूरसाव्यमाना पुनः पुनः ।
शीनभीताविवान्योऽन्यं तस्याः पीडयनः स्तनौ ॥ ४८ ॥
मृद्वङ्गि कठिनौ तन्वि र्थानां सुमुखि दुर्मुखा । अत एव
वह्निर्यातो हृदयासे पयोधरौ ॥ ४९ ॥ यन्न माति तद्-
ङ्गेषु लावण्यमनिसम्भृतम् । पिण्डीकृतमुरादेशे तन्प-
योधरतां गतम् ॥ ५० ॥ युनां मोहमहाफलप्रसन्नानां
नाभ्यालयालोन्धितां नेकुं रोमलतां मुखामृतनिधेला-
वण्यनामामृतम् । नेप्यन्सारणिकां विभज्य कृत्याङ्कु-
टद्वयं पार्श्वयोः पञ्चोपस्तद्विं पयोधरयुगं लोकाः
समानवृत्ते ॥ ५१ ॥ रत्यासप्रियलाभ्युने कठिनतायासे
रसालिङ्गिते प्रह्लादैकरसे क्रमादुपचिते भूभृदगुरुधा-
पह । कोकस्पर्धिनि भोगभाजि जनितानङ्गं खलीनो-

बीचमें दो चक्के हों या कामरूपी मलवाले हाथोंके मस्तक हों
या कामदेवकी छोटी गैर हों या बौद्धरूपी कमलनालके कन्द हों
या लीला-जलके सुन्दर फल हों या रमकी दो निराली पिटा-
रियाँ हों ॥ ४० ॥ हे गेलके फल ! यदि इस मृगमयनीके स्तनोंके
केलावकी ही तुम्हें जलन हो तो भैया, उससे बदला चुकानेके लिये
तुम्हारा आकाशमें लटककर तपस्या करना स्वर्ग है ॥ ४१ ॥ उस
कोमलपत्नीके पतित (बीच धीरे लटके हुए) स्तन प्रायश्चित्त
नहीं करते (पाप हर करनेका उपाय नहीं करते या प्रायः
मग नहीं करते) इसीलिये पतित होनेके कारण लोग उन्हें
नहीं छूना चाहते ॥ ४२ ॥ हे प्यारी ! तुम्हारे ये दोनों स्तन
धीरे-धीरे घेर, आँवला, आन और अनारकी शोभा लूटकर
हूतने मोटे हुए हैं । अब तो ये हाथोंके चपेके मस्तककी शोभा
छीननेके लिये मचले जा रहे हैं ॥ ४३ ॥ परस्पर सटे हुए
उसके दोनों स्तनोंका घेरा ऐसा सुन्दर जान पड़ता है मानो खेल-
ही खेलमें अपने विशाल धनुषको खींचकर गोल करके साधान्
कामदेव उसमें बैठा हो ॥ ४४ ॥ यदि यद्वा इसकी कमर छूँटकर
उसका सुन्दर भाग अपने पास न रख छोड़ता तो इस
अनुपम अङ्गोवाली नायिकाके यौवनके समय इसके स्तन किस
बलुसे बनाता ॥ ४५ ॥ 'इस पतली कमरवाली नवेलीने
अपनी पतली कमरसे मेरी कमरको हरा दिया' यह समझकर
नायिकापर कोई बरा न चलनेसे सिंह उस नायिकाके घड़े जैसे
बड़े स्तनोंके समान हाथोंके मस्तकको ही फाड़ डालता है
॥ ४६ ॥ यह कमलनयनी नवेली अकेली ही त्रैलोक्यकी रक्षा

कर रही है क्योंकि इसका मध्यभाग (उदर) बलि (राजा बलि,
पेटकी रेखाओं) का स्थान (पाताल) है, औप ही अगस्त्य
गर्भार भूतोंके है, और ही वैजलियों (देवताओं) का आश्रय
अधोत् स्वर्ग है । इसीलिये इन्द्रके बज्रसे ध्वराकर मुसेर
परतने इन स्तनोंके रूपमें मानो अपने दो चपे रत्नाके लिये
इस नवेलीके पास रख लेंगे हैं ॥ ४७ ॥ इस नवेलीके दोनों
स्तन एक दूसरेसे मानो इसलिये चिपके हुए हैं कि बार-बार
मुखरूपी चन्द्रमाकी चौदनीकी धारामें डुबकी जानेसे कहीं अधिक
शीन न लग जाय ॥ ४८ ॥ हे नवेली ! ये तुम्हारे स्तन
इसलिये हृदयसे बाहर निकल आए हैं कि इनके स्वभावसे
तुम्हारा स्वभाव नहीं मिलता क्योंकि तुम कोमल अङ्गवाली
हो, ये कठोर हैं; तुम पतली हो, ये मोटे हैं; तुम्हारा मुँह
गोरा है और इनका काला है ॥ ४९ ॥ जब सुन्दरता हतनी
अधिक हकड़ी हो गई कि इसके शरीरमें न समा सकी तब
बड़ी गोल पिण्डी बनकर छातीपर स्तन बन गई है ॥ ५० ॥ नाभि
रूपी धालेसे उठकर युवकोंके माँहरूपी त्रिराल फलकी उत्पन्न
करनेवाली रोमावली रूपी लनाका खींचनेके लिये कामदेवने
मुखरूपी चन्द्रमासे सुन्दरता-रूपी अमृतको क्यारीतक खे-
जानेके लिये उस नालीके दोनों ओर ऊँची मेढ़ बना दी है,
उसी ऊँची मेढ़को लोग पयोधर (जल धारण करनेवाला,
स्तन) कह रहे हैं ॥ ५१ ॥ हे नवेली ! सम्भोगके समय पतिके
नख तथा अङ्गरागके चिह्न धारण करनेवाले तुम्हारे स्तनमें
विष्णुके दशों अवतार दिखाई पड़ते हैं । ये मानो रतिके परम-

न्मुखे भाति धीरमणावतारदशकं धाले भवत्याः स्तने ॥ ५२ ॥ शङ्के तच्चित्तमङ्गेशसाध्यं कस्मधन्वनः । काठिन्यं बहिरेवास्याः स्तनाभ्यां येन धारितम् ॥ ५३ ॥ शुकीचञ्चुत्वातच्छवि फलयुगं यौवनतरोरयः शङ्कुगुणं मदनकरिणः कुम्भयुगलम् । समुद्रं भोगायामृतकलश-युग्मं सुकृतिनः कुचद्वन्द्वं तन्व्या नवनखपदाङ्गं विज-यते ॥ ५४ ॥ सतां समालोकयतां विवेकान्धवीं वि-दुत्वा स्मरवाणवह्नी । धत्ते स्तनः श्यामशिरोमिषेण तनूदरि ज्वायुपभस्मविन्दुम् ॥ ५५ ॥ सा धारयत्यघी-राक्षी दुर्बलं स्तनमण्डलम् । गर्भपर्वतमारुढश्चित्रं कसु-मकार्मुकः ॥ ५६ ॥ सा स्तनाञ्जलिबन्धेन मन्मथं प्रथमा-गतम् । करोतीद्योन्मुखं धाला बान्धवं यौवनधियः

प्रिय पति कामदेव बाह्य मन्मथ हैं, ये कठोरताके आधार होनेसे (कल्प) हैं, इनके अनुरागसे आलस्य होता है अथवा ये पृथ्वीसे आलस्य (बराह) हैं, ये अत्यन्त आनन्दप्रद हैं अथवा इसमें प्रह्लादका अत्यन्त अनुराग है अर्थात् ये नृसिंह हैं, ये कमसे बड़े हुए हैं अर्थात् धामन हैं, ये पहाड़की विशालताका नाँवा दिखानेवाले तथा राजाओंका गौरव मिटानेवाले परशुराम हैं, ये चक्रवाक पक्षीके समान गोल हैं अथवा सीताके वियोगमें चक्रवाकको शाप देनेवाले राम हैं, ये सुख भोगनेवाले अथवा फणोंवाले शेष हैं, ये देखनेवालोंके मनमें कामविकार उत्पन्न करते हैं अथवा शरीरके विरोधी मौनव्रत तपस्या आदि स्वाँकार करनेवाले शुद्ध हैं तथा इनपर इन्द्रियोंके बर्षाभूत होनेवाले आँग आसक्त रहते हैं अथवा ये छोड़ेकी रास पकड़े हुए कल्कि हैं ॥ ५२ ॥ मैं समझता हूँ कि कामदेव उस नवेलीके मनको सरलतासे बशमें कर सकता है क्योंकि उसके चित्तकी कठोरता कामदेवने इसके स्तनोंके रूपमें बाहर ही रोक दी है ॥ ५३ ॥ उसके मनमें चिह्नसे युक्त ये दोनों स्तन ऐसे आन पड़ते हैं मानो यौवनरूपी वृक्षके ऐसे दो फल हों जिनपर सुगंधकी ठोकरों से शोभा दे रही हो या जोहेके अङ्गुलिसे छिदे हुए कामदेव रूपी हाथीके दो मस्तक हों या पुण्यात्माओंके लिये भोगके सागररूपी दो अमृतके घड़े हों ॥ ५४ ॥ हे पतली कमरवाली ! मुझे देखनेवाले सज्जनोंके विचाररूपी हविकां कामदेवके बाह्य-रूपी अग्निमें हवन करके तुम्हारे ये स्तन काले मस्तक (घुएली) के रूपमें मानो ज्वायुप भस्म (चक्रके अन्तमें लगाए जानेवाली भस्म) की बिन्दी धारण कर रहे हैं ॥ ५५ ॥ यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि उस चक्रक नेत्रवाली नायिकाको

॥ ५७ ॥ स्तनराजौ तथाम्योऽन्यं मण्डलाक्रमणोचतौ । कर्तुं यथैतयोस्सन्धिर्विधात्राऽपि न शक्यते ॥ ५८ ॥ स्वकीयं हृदयं भित्त्वा निर्गतौ यौ पयोधरौ । हृदयस्या-न्यदीयस्य भेदने का रूपा तयोः ॥ ५९ ॥ स्वयम्भूः शम्भु-रम्भोजलोचने त्वत्पयोधरः । नखेन कस्य धन्यस्य चन्द्रचूडो भविष्यति ॥ ६० ॥

नाभिः— उरोजवचक्रमणोरूपका केशवलीच भ्रमरा-जिता वा । सङ्गीतवस्तुनपुटभेदद्वया विद्येत नाभीसरसी मृगाक्ष्याः ॥ १ ॥ कुचकुम्भौ समालम्ब्य तरस्ती कान्तिनिष्पगाम् । अमादितस्ततो दृष्ट्वा दृष्टिर्नाभौ निमज्जति ॥ २ ॥ नाभं हारस्य मध्ये तरलमरकतो नाभि-देशे कृशद्वयाः नैषाऽप्यत्र भियामारमणमुचिरभिः

भारी बोझीले विशाल स्तन धारण किए देखकर ही कामदेव अहङ्कार-रूपी पर्वतपर चढ़ गया ॥ ५२ ॥ वह भोली नवेली अपने यौवनकी शोभाके पहले-पड़ल आप सगन्धी कामदेवको मानो स्तनरूपी अञ्जलि बाँधकर अपनी ओर आकृष्ट कर रही हो ॥ ५३ ॥ ये दोनों स्तन-रूपी राजा परस्पर एक दूसरेके मण्डल (घेरे) पर इस प्रकार आक्रमण करनेके लिये तैयार हो गए हैं कि मझा भी अब इनमें समर्थ नहीं करा सकता (अर्थात् ये दोनों स्तन इतने बड़े हो गये हैं कि इनके बीचकी सीमाका भी पता नहीं चलता) ॥ ५४ ॥ जो स्तन स्वयं अपना हृदय फोड़कर बाहर निकल आ सकते हैं उन्हें दूसरेका हृदय फोड़नेमें क्या सङ्कोच है ॥ ५५ ॥ हे कमलनयनी ! तुम्हारे स्तन स्वयम्भू (अपने आप उत्पन्न होनेवाला वृक्ष) और स्वभू (स्वयं उत्पन्न होनेवाला विष्णु) तो हैं पर वह नहीं ज्ञात होता कि स पुण्यात्माके मन अगनेपर यह मस्तकपर बाह्यचन्द्रको धारण करनेवाले शङ्कर बन पावेंगे ॥ ६० ॥

नाभिः : इस युगनयनी नायिकाकी नाभि ऐसी मील है जिसमें स्तनरूपी चक्रके शोभित हैं, घुँघराके केशरूपी भेरे हैं और उसके गीत ही तटपर शब्द करनेवाली पानीकी लहरियाँ हैं ॥ १ ॥ उसकी नाभिको देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि दूरककी दृष्टि स्तनरूपी घड़ेके सहारे सुन्दरता-रूपी नदीमें तैरती हुई, चक्कर खाती हुई, हवर-उधर देखती हुई नाभि-रूपी मैदरमें डूबी जा रही हो ॥ २ ॥ उस कोमलाङ्गीकी नाभिपर न तो यह मरकतका डार है न चन्द्रमाकी पवित्र कान्तिके समान मोहियोंकी भाखा है बरन् ऐसा आन पड़ता है मानो

पद्धतिमौक्तिकानाम् । नाभीलायण्यथाप्यामयमसमश-
रस्यल्लकोपाश्रिद्धो मग्नस्तस्यापि भ्रम्भापनसमु-
दिता शीकरश्रेणरेषा ॥ ३ ॥ मन्ये समासलायण्यसारे
सर्गे मृगीदशः । अपूरयित्वेव गतो नाभिरन्ध्रं चतुर्मुखः
॥ ४ ॥ स्तनौ तुङ्गा समाकृते चापन्यस्तभरे स्मरे ।
कोदण्डाटनिमुद्रेव जाता नाभी नतध्रुवः ॥ ५ ॥

मध्यदेशः—अंशुकेन जघनं तिरोक्ष्ये कञ्चुकेन च कुक्षौ
मृगीदशम् । पीयमानमनिसं प्रियेक्षलैः क्षामतामिव
जगाम मध्यमम् ॥ १ ॥ अस्मिन्प्रकृतिमनांके लक्ष्मा
प्रायेण मान्मथी दृष्टिः । सुन्दरि यतो भवत्याः प्रति-
क्षणं लीयते मध्यः ॥ २ ॥ आक्रान्ते शैशवेऽस्मिन्नभिन-
वययसा शासनान्मीनकेतोर्वालाया नेत्रयुग्मं श्रुतियुग-
मविशङ्क्युगेनापि सार्धम् । वक्षोमहन्त्रमुच्यैर्हिरिह
निरगाच्छ्राणिधिम्येन साकं मध्यः सङ्गृह्य यदस्त्रिवाल-
भिरभितः कार्यमङ्गीकरोति ॥ ३ ॥ काञ्चीशुलैर्विर-

चिता जघनेषु लक्ष्मीर्लब्धा स्थितिः स्तनतटेषु च गज-
हारैः । नो भूयिता वयमिनीष निगम्यनीनां कार्यं
निर्गलमधार्यन् मध्यभागैः ॥ ४ ॥ तुङ्गाभोगं स्तनगि-
रियुगे प्रौढचित्ते निनम्ये सीमादेशं हरति नृपतं यौवने
जृम्भमाणे । मध्यो भीरुः कचिदपि यथा पद्मपत्रं ल-
लायाः शून्यं मध्यस्थलमिति ततः किञ्चिदन्ती यदन्ति
॥ ५ ॥ वेहं हेमद्युतिपरिहृताभोजवृष्टिं च दृष्टिं राशी-
भूतभ्रमरपटस्तीव्राकेशं च केशम् । दृष्ट्वा सद्यो विपुल-
हृदयानन्दमुद्रेन धात्रा सारङ्गाद्याः किमु रञ्जयितुं
विस्मृतो मध्यदेशः ॥ ६ ॥ यद्वा ह्रियोमा प्रियली
गुणेन शृङ्गाति रोमायस्त्रिजवल्लीम् । इतीष चिन्ताकु-
लभङ्गुरोऽयं मध्यो मृगादयाः कृशतामुपैति ॥ ७ ॥ मध्यं
तव सरोजालि पयोधरभरार्दितम् । अस्ति मास्तीति
सन्देहः कस्य चित्ते न भासते ॥ ८ ॥ युक्तं मध्यं कृशा
तन्वी कामुकीकरणाथ यत् । अत्रैव कुसुमाखण्डं पीड्यते

राक्षसीके कोपसे विपम बाधवासे कामदेवके जलनेपर नाभि
रूपी सुन्दरताकी बावड़में उसके कूदनेपर उड़ी हुई चूँचोंकी
पंक्ति हो ॥ ३ ॥ इस नवेली मृगनयनी नायिकाकी गहरी नाभिको
देखकर ऐसा जान पड़ता है मानो इसे बनाते-बनाते सुन्दरताका
सब सार समाप्त हो जानेके कारण मरवाने नाभिका किन्न
बिना भरे ही छोड़ दिया ॥ ४ ॥ उस कुक्षी हुई भीहोंवाली
नवेलीकी नाभिका गढ़ा ऐसा जान पड़ता है मानो जब कामदेव
अपने धनुषका सहारा लेकर उसके ऊँचे स्तनोंपर उड़कर
बड़ा तो उसकी कोंरका बल पड़नेसे गढ़ा बन गया ॥ ५ ॥

कमर : उस नवेलीकी नाभिके पास कमरपर ही प्रियकी
दृष्टि पड़ती है और वह अपने नेत्रोंसे कमरको ही पीना रहता
है इसलिये वही भाग पतला पड़ गया है और औँचें तथा
दोनों स्तन इसलिये मोटे रह गए कि कपड़ेसे उनके रहनेके
कारण उनपर प्रियकी दृष्टि नहीं पड़ पाई ॥ १ ॥ हे सुन्दरी ! जान
पड़ता है कि स्वभावसे ही सुन्दर तुम्हारी कमरपर कामदेवकी
बीठ लग गई होगी इसीलिये वह निरन्तर पतली होती
जा रही है ॥ २ ॥ कामदेवकी आश्रयसे जब यौवजने उस
नवेलीके वक्षपत्रपर आक्रमण किया तब उसके दोनों नेत्र
अपनी भीहोंके साथ दोनों कानोंमें जा धुसे, दोनों बड़े-बड़े स्तन
और नितम्ब बाहर निकल आए और त्रिवली (पेटपर पड़ी
हुई तीम रेखाओं) से बकड़ा हुआ मध्यभाग चीण हो गया
॥ ३ ॥ बड़े-बड़े नितम्बोंवाली नवेलियोंकी कमर इसी वजनसे

इतनी दुबली हो गई है कि 'नितम्बोंपर तो करधनी लटकती हुई है
और स्तनोंपर रत्नके द्वार हैं पर हमारी सजावटके लिये कुछ भी
नहीं है' ॥ ४ ॥ ऐसा कहा जाता है कि यौवज रूपी उत्साही
राजाने अत्यन्त बड़े-बड़े स्तनरूपी दोनों पहाड़ों तथा फैले हुए
दोनों बड़े-बड़े नितम्बोंकी सीमाको जब अपनी लिया तब उस
कमरकी पङ्खुड़ीकी-सी बाँसवाली नायिकाकी कमर डरकर कहीं
भाग लगी हुई, इसीलिये उसका मध्यभाग सूना पड़ गया
॥ ५ ॥ मरवाने उस मृगनयनी नायिकाको बनाते समय
उसका सुनहली कान्तिवाला शरीर, नीले कमलोंको हरा देनेवाली
दृष्टि और भींसीकी भीड़के समान सुन्दर चमकीले बाल देखकर
ही कहीं आनन्दमें इतने मस्त तो नहीं हो गए कि उस मस्तीमें
उसकी कमर बनाना ही भूल गए हों ॥ ६ ॥ उस नायिकाकी
पतली कमर देखनेसे जान पड़ता है मानो वह इस चिन्तासे सुख-
लूटकर दुबली हुई जा रही हो कि 'जो कामदेव मुझे त्रिवली
रूपी रस्तीसे बाँध चुका है वही अब मुझे दुबारा बाँधनेके
लिये रोमकी पंक्ति रूपी रस्ती सँभाल रहा है' ॥ ७ ॥ हे कमल-
नयनी ! स्तनोंके भारसे दबी हुई तुम्हारी पतली कमर देखकर
किसके मनमें यह सन्देह नहीं होता कि तुम्हारे कमर है भी
था नहीं ॥ ८ ॥ इस नवेलीकी कमर पतली होनी ही चाहिए
थी क्योंकि फूलोंके अक्ष धारण करनेवाले कामदेवने इस कमरको
ही तो अपना धनुष बनानेके लिये अपनी दृढ़ मुट्ठीसे दबा दिया
है ॥ ९ ॥ हमारी समझमें तो यही आता है कि इस मृगनयनीकी

विलम्बमुद्रिना ॥ ६ ॥ वयःप्रकर्षादुपचीयमानस्तनद्वय-
स्थोद्धहनश्रमेण । अन्यन्तकाश्यं वनजयताद्या मध्यो
जगामेति भ्रमेथ तर्कः ॥ १० ॥ सुहृत्तमावेकत उन्नतो
स्तनौ गुरुर्नितम्बोऽप्ययमन्यतः स्थितः । कथं भजे
कान्तमितीव चिन्तया ततान तन्मध्यमतीव तानवम्
॥ ११ ॥ स्तनौ भारार्पणव्यग्रौ काञ्चो कलकलोन्मुखौ ।
कस्यां दिशि न मध्यस्थ तस्याः काश्यं सहेतुकम् ॥ १२ ॥
स्फुटमसद्वलघ्नं तन्वि निश्चिन्वते ते तदनुपलभमाना-
स्तर्कयन्तोऽपि लोकाः । कुचगिरिवरयुग्मं यद्विनाधा-
रमास्ते नदिह मकरकेतोरिन्द्रजालं प्रतीमः ॥ १३ ॥
स्मरमानसिकसमस्याः स्यान्स्तनिमा निरवधिर्मध्यः ।
अत्रेव पूरयति थां न गिरां देवी न चापि गुरुरस्याः
॥ १४ ॥

रोमावली—अतिबहुतरलआभूतलावण्यपाशो मद्-
ननृपतिपाशो यौवनोन्मत्तहस्ती । प्रकटितकुचकुम्भो

कमर इसके भारी शरीर तथा जबानीके कारण बड़े हुए दोनों
स्तनोंका बोक डोले-डोले इतनी पतली हो गई है ॥ १० ॥ उस
नवेलीकी कमर मानो इसी सोचमें दुबली हुई जा रही है कि
'एक ओर तो दोनों ठप्प कोटिके (ओष्ठ, ऊँचे-ऊँचे) सहृदय
(मित्र, हृदयके ऊपर) स्तन स्पड़े हैं, दूसरी ओर यह गुरु (बड़े
लोग, भारी) नितम्ब स्थित है, अब मैं अपने प्यारेसे कैसे मिलूँ ?'
॥ ११ ॥ जब एक ओरसे स्तन उसे अपने बोकमें चाँप रहे हैं
और दूसरी ओरसे करघन दिनरात चिस्ल-पों मचाली रहती है
तब वैचारी कमर क्यों नहीं दुबली होगी ॥ १२ ॥ हे दुर्बल
शरीरवाली ! तुम्हारी कमर न देखकर लोग बहुत सोच-विचार
करके यही निश्चय करते हैं कि तुम्हारे कमर ही नहीं हैं, फिर
भी ये स्तन रूपी दो पहाड़ जो बिना सहारेके टिके हुए हैं इन्हें
कामदेवका हृन्द्जाल ही समझना चाहिए ॥ १३ ॥ इस
नायिकाके दुर्बल शरीर और उसकी पतली कमर वास्तवमें
कामदेवकी मनसे बनाई हुई समझाई है जिसकी पूर्ण लक्ष्मी
(धी तथा सुन्दरता) ही कर सकती है, सरस्वती या उसके
गुरु (ग्याचार्य बृहस्पति) नहीं पूरा कर सकते ॥ १४ ॥

रोमावली : उस नायिकाकी नाभिपर उठी हुई रोमावली
ऐसी जान पड़ती है मानो महाराज कामदेवकी सज्जतीका यौवन-
रूपी मनवाला हाथी इस रोमावलीरूपी सँझये नाभिमण्डलरूपी
तालाबमें जल पी रहा है जिसके पैर लज्जारूपी साँकलसे बँधे
हुए हैं और जिसका मस्तक स्तनोंके रूपमें स्पृष्ट दिखाई दे रहा

लोमराजीकरेख पिवति सरसि नाभीमण्डलाख्ये
पयांसि ॥ १ ॥ अमुर्ध्निजावण्यामृतसरसि नूनं मृग-
दशः स्मरः शर्वप्लुष्टः पृथुजघनभागे निपतितः । यद्-
ङ्गाङ्गाराणां प्रशमपिशुना नाभिकुहरे शिखा धूमस्येयं
परिणमति रोमावलिमिवान् ॥ २ ॥ आनीलचूचुकशि-
लीमुखमुश्रनैकरोमावलीविपुलनालमिवं प्रियायाः ।
उत्तुङ्गसङ्गतपयोधरपद्मयुग्मं नाभेरधः कथयतीव महा-
विधानम् ॥ ३ ॥ इयं स्पृष्टा चञ्चलकलतिका पङ्कज-
भुधा निपिता लावण्यामृतरसभरेणानुद्विबलम् ।
अकस्माद्रोमास्तीमधुपपटलीह स्फुरति यत्ततः शङ्के
पुष्पोद्गमसमयमायातमधुना ॥ ४ ॥ उत्तुङ्गस्तनपर्वता-
द्वतरङ्गकेव हारावली रोमास्ती मखनीलनीरजरुचिः
सेयं कलिम्वाग्मजा । जातं तीर्थमिदं सुपुण्यजनकं
यत्रानयोः सङ्गमश्चन्द्रो मज्जति लाञ्छनापट्टतये नूनं
नखाङ्गच्छलात् ॥ ५ ॥ उत्तुङ्गस्तनभार पप तरले नेत्रे

है ॥ १ ॥ इस नवेली मृगनयनीकी नाभिपर निकली हुई
रोमावली ऐसी जान पड़ती है मानो इस विशाल जघन
(पंक्षु) के सुन्दरता-रूपी अमृतके तालाबमें शिखीके शीधसे
जलकर बड़े हुए कामदेवके शरीरसे उठते हुए धुँएकी लहरें हों
॥ २ ॥ उस प्यारीके उठे हुए स्तनोंकी पुण्ड्रपोंतक बढ़ी हुई
रोमावली कमलके नालके समान जान पड़ती है, जिसके
ऊपर उठे हुए स्तनरूपी कमल यह सूचना देते हैं कि नाभिके
नीचे कोई गहरी निधि छिपी हुई है ॥ ३ ॥ लक्ष्मणे यह
सुन्दर नाभिका वास्तवमें सोनेकी लता बनाई है जिसे वह
प्रतिदिन सौन्दर्यके अमृतरसमें सींचता रहता है; पर इसपर
जो अचानक यह रोमावली-रूपी भीरोंकी पतित दिखाई पड़ रही
है वह ऐसी जान पड़ती है मानो अब इसके फूलने (युवती
होने) का समय आ गया हो ॥ ४ ॥ नवेलीके ऊँचे स्तन-रूपी
पर्वतोंपर हारकी लहरें पर्वतसे उतरती हुई गङ्गाके समान आम
पड़ती हैं और नये नीले कमलके समान सुन्दर रोमावली ही
चमुन्याके समान है और जहाँ इन दोनोंका सङ्गम होता है वहीं
सुन्दर पुण्य-देनेवाला तीर्थ है जिसपर बने हुए नलके चिह्न ऐसे
जान पड़ते हैं मानो अपना कलङ्क धोनेके लिये चन्द्रमा उस
त्रिवेणी कुवकी खगा रहा हो ॥ ५ ॥ इस नवेलीके बड़े-बड़े स्तन,
मनोहर आँखें, चञ्चल भीहें तथा पलेके समान हिलते हुए
अधर यदि प्रेमियोंको मारे काँसते हों तो ठीक है पर जिसे
कामदेवने सौभाग्यके अक्षरोंकी पंक्ति-ला बजाकर खिल दिया है

चले भ्रूलते रागान्धेषु तदोष्ठपल्लवमिदं कुर्यन्तु नाम
व्यथाम् । सौभाग्याक्षरपङ्क्तिरेव लिखिता पुष्पागुधेन
स्थयं मध्यस्थापि करोति तापमधिकं रोमावली केन
सा ॥ ६ ॥ उन्मूलितालानविलाभनाभिश्छिन्नस्खलच्छु-
क्लरोमदामा । मत्तस्य स्नेयं मदनद्विपस्य प्रस्थापयप्रोद्य-
कुचास्तु वास्तु ॥ ७ ॥ कुचदुर्गराजधान्योर्मध्येमार्गं मृगी-
दृशो मदनः । किमकृत नाभीचापीमपि रोमाली तमाल-
वनरेखाम् ॥ ८ ॥ गभीरनाभीहृदपाथर्वसिनी विगाजते
लोमतनी मृगीदृशः । मुखारविन्दस्य रसाभिलाषिणी
द्विरेफपङ्क्तिश्चलितेव नीरया ॥ ९ ॥ गम्भीरनाभिहृद-
सन्निवेशे रराज तन्वी मधरोमराजिः । मुक्तेन्दुभीतस्त-
नकक्रवाकहन्त्रोम्भिता शैयलमञ्जरीय ॥ १० ॥ गौरीय
पत्या सुभगा कदाचिन्कर्त्तव्यमध्यधृतनूतनमस्याम् ।
हृनीय मध्ये निदधे विधाता रोमावलीमैवकसूत्रमस्याः
॥ ११ ॥ जने रात्रिपु तन्मध्ये इवाति शनैः पदम् ।

गम्भीरनाभिकुहप्रवेशाशङ्कया स्मरः ॥ १२ ॥ तस्याः
प्रविष्टा नननाभिगन्धं रराज तन्वी तवरोमराजिः ।
नीचोमतिक्रम्य सितेतरस्य तन्मेखलामध्यमणिर्याचिः
॥ १३ ॥ दत्तं मया पश्मिदं नययौवनाय त्वं सन्वरं
कचन शैशव साधयेति । कामस्य हस्तलिखिताक्षमा-
लिकेष रोमावली चित्रयते जलजंलगायाः ॥ १४ ॥
नाभिगन्धं प्रविष्टाभ्याः श्यामला रोममञ्जरी । अस्मा
निमिरलेवेव मेखलामणिकान्तिनः ॥ १५ ॥ नाभिसङ्केत
गौराङ्ग्याः शोभते रोममञ्जरी । कन्दर्पहैमकटकाला-
क्षाधारेण निर्गता ॥ १६ ॥ नाभीविलान्तराग्निनिर्गतप-
ञ्चगीयं सम्प्रस्थिता नयनखञ्जनभङ्गणाय । नासामुद्रीनय
गदडध्रममुदहन्ती गुप्तेय पीनकुचपर्वतयोग्धस्तान्
॥ १७ ॥ नाभीवल्लयसम्यङ्गा रोमाली भाति मुञ्चयः ।
सहिता निगडनेय शृङ्खला स्मरदन्तिनः ॥ १८ ॥ निर्ण-
तस्या मनसिजकलातन्त्रासिद्धान्तसारो जेतव्या च

यह मध्यस्थ (बीचमें रहनेवाली, बीच-बिचाव करनेवाली)
रोमावली क्यों इतनी प्राणकी गाहक हो रही है ॥ ११ ॥ इस नवेलीकी
नाभि ऐसी जान पड़ती है मानो यहाँसे कामदेव रूपी हाथीको
बौध्नेका खाभा उखाड़ दिया गया है जिससे गड्ढा पड़ गया और
यह उसके पेटपर बनी हुई रोमावली है उस हाथीकी टूटी हुई
सोंकिलके समान है जिसे सोंककर कामदेव-रूपी हाथी ऊँचे
टीलेके समान स्तनोंपर बिधाम करने चढ़ गया है ॥ ७ ॥
हिरण्मयीके नेत्रोंके समान आँखोंवाली नवेलीके स्तन-रूपी दुर्ग
और योनि-रूपी राजधानीके बीच कामदेवने रोमावली-रूपी
तमालवनसे सजाकर यह नाभि-रूपी बाढ़ई तों नहीं बनाई है
॥ ८ ॥ इस मृगनयनी नवेलीके शरीरपर रोमावली ऐसी जान
पड़ती है मानो नाभि-रूपी गहरे तालाबके पास रहनेवाली
मौम भौरोंकी पौल, मुख-रूपी कमलकी गन्ध लेनेका हृन्नासे
ऊपर उड़ी चली जा रही हो ॥ ९ ॥ गहरे नाभि-रूपा तालाबसे
उठी हुई पतलीसाँ नई रोमावली ऐसी जान पड़ती है माना
मुख-रूपी चन्द्रमाके डरले भागते हुए स्तन-रूपी चक्रवा-चक्योंके
जोंके साथ सेवारकी लताएँ उलझी हुई हैं ॥ १० ॥ सौभाग्यवता
नवेलीके वदरपर यह धातकी रेखा ऐसी जान पड़ती है
माना मछाने इसके शरीरके बीचमें यह समझकर काले सूतसे
सीमा बीच दी है कि कहाँ यह सौभाग्यवती, नवेली पावतीके
समान अपने पतिके आगे शरीरमें मिल न जाय ॥ ११ ॥
इस नवेलीके शरीरपर रोमावली ऐसी जान पड़ती है मानो

नाभि रूपी गहरे गड्ढेमें गिर पड़नेके डरसे रातके समय
इस नाभिकामें प्रवेश करनेके लिये कामदेव धीरे-धीरे डग रखा
रहा हो ॥ १२ ॥ उस नवेलीको गहरी नाभिके गड्ढेमें घुसती
हुई नई रोमावलीकी रेखा ऐसी जान पड़ती है मानो करधनके
बीचमें जड़े हुए नीलमके प्रकाशकी रेखा धाँतीकी गोंठको
आँवर ऊपरकी उठी जा रही हो ॥ १३ ॥ इस कमलनयनी
नवेलीकी रोमावली ऐसी जान पड़ती है मानो कामदेवने
अपने हाथमें यह आक्षर-पङ्क्ति लिख दी हो कि 'हे बचपन !
मैंने यह नाभिका रूपी स्थान नये यौवनके लिये सुरक्षित कर
लिया है इसलिये तुम शीघ्र कहाँ चले जाओ ॥ १४ ॥ उस
नवेलीकी गहरी नाभिमें घुसी हुई काजी रोमावली ऐसी
जान पड़ती है माना कमरमें घँघरी हुई करधनके मणिकी
चमकसे उरी हुई धँधरेका पौल हो ॥ १५ ॥ उस गौरी
नवेलीकी गोल नाभिले उठी हुई रोमावली ऐसी जान पड़ती
है माना कामदेवके सानेके कङ्कसे लातकी धारा पिघलकर बही
चली जा रही हो ॥ १६ ॥ इस नवेलीकी रोमावली ऐसी जान
पड़ती है माना नय रूपी सज्जनका निगलनेके लिये चली हुई
नाभि-रूपा बिलसे निकला हुई साँपन, नाकका गरुड
समझकर डरके मार विशाल स्तन-रूपा पर्वतके नाचे-जा द्विपी
हो ॥ १७ ॥ उस सुन्दर भाँहवाली नाभिकाकी गोल नाभिले
मिली हुई रोमावली ऐसी जान पड़ती है माना कामदेव-
रूपी हाथको जड़के सोंकिलमें बेड़ा बेधी हुई हो ॥ १८ ॥

त्रिदशसुदृशामङ्गलावयलक्ष्मीः । रोमश्रेणीलिखनसु-
भगं पद्ममादशेयन्ती पत्रालम्बं जगति कुर्वते सुभ्रुवो
यौवनश्रीः ॥ १६ ॥ पयोधरस्तावदयं समुन्नतो रसस्थ
वृष्टिः सविधे भविष्यति । अतः समुद्रच्छति नाभिर-
न्ध्रतो विसारि रोमालिपिपीलिकावलिः ॥ २० ॥ भाति
रोमावली तस्याः पयोधरभरोन्नता । जाता रत्नशला-
केव श्रोणिवैद्युत्भूमितः ॥ २१ ॥ यूनां धैर्यदृष्टाङ्कुरं
कवलयन्त्रीडाम्युपूरं पियम्भृद्गारो हरिणस्तय स्तन-
गिरेः सीमानमारोहति । नाभेः काचन तस्य निःसृत-
वती कस्तूरिकामालिका रोमध्रंणिमद्वोत्सवं वितनुते
कल्पार्णि जानीमहे ॥ २२ ॥ रचयति युवनेत्रक्षेत्रपीयू-
षवृष्टिं नवजलधरं रक्षा रोमराजिच्छलेन । यदुदयति
कलापिप्रक्रिययं तदुच्चैः स्तनघनसमयोऽस्यामाविर-
स्तोति विप्रः ॥ २३ ॥ रोमावलिभ्रुकुसुमैः स्पर्मावा-

चापेयुभिर्मध्यखलाटमूर्ध्नि । व्यस्तैरपि स्थासुभिरेतदी-
यैर्जैत्रः स त्रिप्रं रतिजानिवीरः ॥ २४ ॥ रोमावली-
रज्जुमुरोजङ्गुम्भौ गम्भीरमासाद्य च नाभिकूपम् ।
मद्दृष्टिदृष्ट्या चिरमेद्यदि स्यान्नैषां यतैषा सिचयेन
गुप्तिः ॥ २५ ॥ रोमावली विलासिन्याः प्रविष्टा नाभि-
मण्डलम् । कियद्गाम्भीर्यमवेति तात्पर्यमिव विभ्रती
॥ २६ ॥ लिखन्त्याः कामसाग्राज्यशासनं यौवनश्रियः ।
गलितैव मयीधारा रोमाली नाभिगोलकात् ॥ २७ ॥
वयसी शिशुतातदुत्तरे सुदृशि स्वामिविधि विधि-
त्सुनो । विधिनापि न रोमरेखया कृतसीम्नि प्रविभज्या
रज्यतः ॥ २८ ॥ समुदितकुचकुम्भमङ्गनाया दृढयमन-
ङ्गमतङ्गजोऽधिरोते । तद्विलपद्वन्धनाय रोमावलि-
रिह शृङ्गलिका विलोकयते यत् ॥ २९ ॥ सौम्यर्यस्य
मनोभवेन गणमारेखा किमेया कृता लाघव्यस्य विलो-

सुन्दर भीहोंवाली नवेलीकी रोमावली ऐसी जान पड़ती है
मानो उसके यौवनकी कात्ति, रोमावली-रूपी लेखसे सजे
पत्रकां दिखला-दिखलाकर इस अभिमानके साथ संसारको
चुनीती दे रही हो कि मैं कामके कलाशास्त्रका वास्तविक
तत्व परख सकती हूँ और देखियोंके शरीरकी सुन्दरता
जीत सकती हूँ ॥ १६ ॥ उस नवेलीके शरीरपर उठा हुई
रोमावली ऐसी जान पड़ती है मानो उठे हुए (उमड़े हुए)
पयोधर (स्तन और बाहु) तत्काल रस (आनन्द और
जल) की वषा करेंगे इसलिये नाभि-रूपा बिजसे चाँदियाँकी
पाँत अन्यत्र उठ चला हा ॥ २० ॥ उस नायिकाके शरीरपर
रोमावली ऐसी जान पड़ती है मानो स्तनोंका बांध सँभालनेके
लिये उदर-रूपी भूमिपर वैद्युत्माखका पतला-सा झम्भा
खड़ा कर दिया गया हा ॥ २१ ॥ हे मङ्गलमयी नवेली !
तुम्हारे शरीरपर रोमावली ऐसी सुन्दर जैव रहा है मानो
युवकोंके धैर्य-रूपा घासके अङ्कुर भर जानवाला तथा जन्मा-
रूपा जल पी जानेवाला शृङ्गार-रस-रूपा मृग तुम्हारे स्तन-
रूपा पर्यंतपर चढ़त हुए अपना नाभिस कस्तूरी बसावा जा
रहा हो ॥ २२ ॥ युवकोंके नेत्र-रूपा खेतोंमें अमृतकी वषा
करनेवाले बादलकी पतला-सी रेखा हो इस नवेलीका रोमावली
शनकर निकल आई है इसलिये इस नवेलीमें मयूरीकी क्रिया
(धोलाई) सुनाई पड़ने लगी है जिससे जान पड़ता है कि
पयोधर (स्तन, बाहु) उमड़ आए हैं (बढ़ चले हैं)
॥ २३ ॥ यह वहे आश्चर्यकी बात है कि इस नायिकाकी

रोमावली रूपी डोरी तो पेटपर है, भीह-रूपी धनुष माथेपर
है और फूल-रूपी बाख मस्तकपर है, फिर भी वीर कामदेव
सबको जीतता ही चला जा रहा है ॥ २४ ॥ रोमावलीकी
रेखा-रूपी रस्सी, स्तन-रूपी घड़े और गहरी नाभि रूपी कुर्मी
यदि बचसे उनके न हाँसे और तलवार (भीहों) से इनकी
रकवाली न की गई हाँती तो निरवय ही इन वस्तुओंको पकर
हमारी घाँसोंकी प्यास बुझ जाती ॥ २५ ॥ इस नवेलीकी
गहरी नाभिसें घुसती हुई-सी रोमावली ऐसी जान पड़ती
है मानो वह नाभिकी गहराई नापनेके लिये भीतर घुसी जा
रही हो ॥ २६ ॥ इस नवेलीकी रोमावली ऐसी जान पड़ रही
हो मानो कामदेवके साम्राज्यके नियम लिखते समय यौवनकी
शोभाके नाभि-रूपी मर्सीपात्रसे स्थाहीकी धारा वह बछी
हो ॥ २७ ॥ उस नवेलीके शरीरपर रोमावली ऐसी शोभा
पा रही है मानो उस सुनयनीपर अपना-अपना अधिकार
जमानेकी दृष्ट्या रत्नबाले बचपन और यौवनको अलग-अलग
रत्न-के लिये प्रहारने लामा बना दी हो जिससे वे निमेषाद
शोभा पाते रहें ॥ २८ ॥ उस नवेलीके शरीरपर रोमावली
ऐसी जान पड़ती है मानो इसके हृदयमें सांते हुए कामदेव-
रूपी जिस हार्थके दो स्तन-रूपी माथे दिखाई पड़ रहे हैं
उसके पैर बाँधनेके लिये सँकल गढ़ दी गई हो ॥ २९ ॥ इस
नवेलीके उदरपर रोमावली देखकर यह प्रश्न होता है कि
कामदेवने सुन्दरताकी सीमा नापनेके लिये यह कोई रेखा बनाई
है या तीनों लोकोंकी सुन्दरता देखनेके लिये वह खम्भा

किंतु त्रिजगतामेव किमुद्वीचिका। आनन्दद्रुमकन्दली
नयनयोः किंवा समुज्जम्भते सुन्दर्याः किमु वा स्वभा-
वसुभगा रोमालिहन्मन्तानि ॥ ३० ॥ स्वर्णावदानयनि-
कायकाण्डे सम्पूर्णपीयूषमयसमुत्थः। पत्नीदशः पृष्ठ-
विलम्बिवेणीचिम्बः पुरो राजति रोमराजी ॥ ३१ ॥
हरकोधन्वात्तावलिभिरवलीदेन वपुषा गर्भीरे ते नाभी-
सरसि कृतभ्रम्यो मनसिजः। समुत्तस्थौ तस्माद्वल-
तनये धूमलतिका जगस्तां जानीते तव जननि रोमाव-
लिरिति ॥ ३२ ॥

वलित्रयम्—अनन्यसाधारणकाम्तिकान्ततनोरमुष्याः
किमु मध्यदेशः। जगत्त्रयीजन्मभृतां निपत्ता विसा-
वलीयं त्रिवलीमिषेण ॥ १ ॥ एकमेव वलि यद्वा जगाम
हरिहन्मन्तिम्। तन्व्यास्त्रिवलियन्धेऽपि सैव मध्यस्य
मन्त्रता ॥ २ ॥ तन्त्रिविष्टपमाश्रयतं तन्वद्वा यद्वलि-
त्रयम्। येनानिमिषदृष्टित्वं नृणामप्युपजायते ॥ ३ ॥
तदीयत्रिवलीमार्गसोपानारोहणभ्रमः। अनङ्गत्वादन-

ङ्गस्य जानो रन्येकगोचरः ॥ ४ ॥ तनुन्धरमणीयस्य
मध्यस्य च भुजस्य च। अभवन्तिनगमस्या वलयः
कान्तिवृद्धये ॥ ५ ॥ दग्निमुदरं दृष्ट्वा चक्रं लाचनयपू-
र्योः। पन्थानं स्तनयोस्तस्यास्त्रिवलीचिपमं चिधिः
॥ ६ ॥ परिहृत्य दुरागोहं तस्याः स्तननटं कृता।
कन्दर्परथसञ्चारमार्गात्तय वलित्रयी ॥ ७ ॥ मन्वा
चापं शशिमुखि निजं मुष्टिना पुष्पधन्वा तन्वीमनां
तव तनुलतां मध्यदेशे यभार। तस्मादत्र त्रिभुवनय-
श्रीकारमुद्रानुकारास्त्रिधा भास्ति त्रिवलिकपटादङ्गु-
लीसन्धिरेखाः ॥ ८ ॥ मध्यत्रिवलीत्रिपथे पीवरकुचच-
त्यरे च खपलदशाम्। क्षुल्यति मदनपिशाचः पुरुषं हि
मनागपि स्थलितम् ॥ ९ ॥ मध्यान्तमानीय सुसार-
भागं वलोजमुन्यादयिता विधाता। अनिप्रयत्नान्त्रिव-
लीमिषेण सोपानयन्मन्त्रितयं चकार ॥ १० ॥ मध्यं
सा वेदिविलस्रमध्या वलित्रयं चाव यभार याला।
आरोहणार्थं मध्यायनेन कामस्य सोपानमिव प्रयुक्तम्

गता है या बाँझोंकी नृसिके छिये आनन्द-रूपी धूममें
झरूर आ रहा है या यह इस सुन्दरीकी स्वभावतः सुन्दर
रोमावली ॥ ३० ॥ इस नवेली चन्द्रमुखीके पेटपर उठी
हुई रोमावली ऐसी जान पड़ती है मानां इसके सांगेकी भौंति
स्वयं कामिवाले शरीरमेंसे पीठपर लटकी हुई चाँटीका ही
प्रतिबिम्ब रोमावलीके रूपमें सामने दिखाई पड़ रहा हो
॥ ३१ ॥ हे पार्वतीजा ! जब महादेवजीकी कथाभिकां छपटीसे
मसा हुआ कामदेव आपके नाभि-रूपी कुँदमें दूर पड़ा तब
धुँईकी ओर लहरें ऊपरको उठीं उसीका लोभ रामावली कहने
लागे ॥ ३२ ॥

तीन सिकुड़नें : उस नवेलीके पेटपर जो तीन सिकुड़नें
पड़ी हैं वे ऐसी जान पड़ती हैं मानो इस भगोली सुन्दरीके
उदरपर इन तीन रेखाओंके रूपमें तीनों लोंकोंके लोंगोंका मन-
समूह ला रक्खा हो ॥ १ ॥ भगवान् विष्णुने एक बलि (राजा
बलि) को बाँधकर अपनेको बड़ा किया अथवा तिराट्-रूप
बनाया पर इस नवेलीकी कमर तीन बलि (सिकुड़ने) बाँधकर
भी झुकी (लचकीली) रह गई ॥ २ ॥ उस कामिनीके उदरपर
तीन रेखाएँ ही तो सचमुच स्तन हैं जिनकी ओर मनुष्य एक-
टक होकर देखते रह जाते हैं ॥ ३ ॥ उस नवेलीके पेटपर
तीन रेखाएँ देखकर कामदेवकी पत्नी (रति) ने यह समझा
कि मेरे शरीर-रहित पति (कामदेव) ने ऊपर चढ़नेके लिये

ये सीढ़ियाँ बना ली होंगी ॥ ४ ॥ पतली होनेके कारण सुन्दर
लगनेवाली कमरकी शोभा वलयः (पेटपर पड़ी हुई रेखाओं)
से और हाथोंकी शोभा वलयः (कमरों) से बढ़ती है ॥ ५ ॥
मझाने देखा कि उस नायिकाका उदर अत्यन्त दृढ़ (पतला) है
इसलिये सुन्दरतासे भरे हुए स्तनोंसे लेकर उदरतक उसने
तीन रेखाओंका मार्ग बना दिया कि इनसे होकर सुन्दरता-
रूपी धन कमरमें भी चला आवे ॥ ६ ॥ इस नवेलीके उदरपर
कभी हुई तीन रेखाएँ ऐसी जान पड़ती हैं मानां इसके स्तन-
रूपी दुर्गम पर्वतके शिखरसे उतरते हुए कामदेवके रथके लिये
सीकें बना दी गई हों ॥ ७ ॥ हे चन्द्रमुखी ! फूलोंका धनुष
रखनेवाले कामदेवने अवरय ही तुम्हारे दुर्बल शरीरको छपना
धनुष समझकर मुँहासे एकड़ा हाँगा उसीसे उँगलियोंके बाँधको
तीन रेखाओंसे तीन सिकुड़नें पड़ गई होंगी जो ऐसी जान
पड़ती हैं मानां तीनों लाकोंको बसमें कर लेंगी ॥ ८ ॥ इन
पञ्चाल नेत्रवाली छियोंके पेटकी तीन रेखा-रूपी तिराहेंपर
तथा मोटे स्तन-रूपी चौराहेंपर जो लोग तनिक भी भटके कि
कामदेव-रूपी पिशमचने उन्हें चक्करमें डाला ॥ ९ ॥ मझाने इस
नायिकाकी कमरसे तार निकालकर स्तन तो बना दिए किन्तु
उसके पश्चात् जब कुछ भी सामग्री नहीं बची तब बड़ी
कठिनाईसे उसने तीन रेखाओंके रूपमें तीन सीढ़ियाँ बना
दीं ॥ १० ॥ वेदीके समान बीचसे छिड़ली उस नायिकाके पेटपर

॥११॥ राजनि त्रिवली तस्याः स्तनभारोन्नतिकमान् ।
उपर्युपरि जातेव हारमुद्रापरम्परा ॥ १२ ॥ स्तनभा-
राय मध्येन त्रिवलिव्याजतः कृता । तस्याः शङ्कित-
भङ्गेन भूभङ्गानामिवावलिः ॥ १३ ॥

पृष्ठभाग — अस्याः खलु ग्रन्थिनियन्त्रकेशमङ्गीकृ-
त्यप्रतिविम्बवेशात् । स्मरप्रशस्ती रजनासुरेयं पृष्ठस्थ-
लीहाटकपट्टिकायाम् ॥ १ ॥

नितम्ब — अपर्याप्तभुजायामः सखेदोऽस्याः सखी-
जनः । श्रोत्राणां कथञ्चित्कृते रशनादामबन्धनम् ॥ ११ ॥
अमृतमधुरैः काञ्चीनादैः कृताभयडिएडिमे त्रिवलिल-
हरीलायण्याम्भःकणोत्करकर्तुरे । विषमनयनज्वाला-
जालावलीढपराक्रमो लुडति मदनस्तन्यङ्गीनां नितम्ब-
शिलातले ॥ २ ॥ चक्रेण विभं युधि मत्स्यकेतुः पितु-

र्जिनं वोच्य सुदर्शनेन । अगजिगीषत्यमुना नितम्ब-
येन किं दुर्लभदर्शनेन ॥ ३ ॥ तन्निनितम्बस्य निन्दन्ति
वृद्धिपरिजनाङ्गनाः । काञ्चीनयनवग्रन्थिग्रथनेन क-
थिताः ॥ ४ ॥ नितम्बगौरवेणालो गौराङ्गी स्थिते
दृढम् । हारयन्यपरिस्पन्दा कन्दुकं क्रीडितेषु यत् ॥ ५ ॥
नितम्बविम्बं विभ्योष्ठौ चन्द्रकान्तशिलाघनम् । धत्ते
कन्दर्पदोःस्तम्भप्रशस्तिफलकोपमम् ॥ ६ ॥ पृथुवर्तुल-
तन्निनितम्बकृन्मिहिरस्यन्दनशिल्पशिक्षया । विधिरेक-
कचक्रचारिणं किमु निभन्सति मान्मथं रथम् ॥ ७ ॥
रोमावलीदण्डनितम्बचक्रे गुणञ्च लावण्यजलञ्च
धाता । तारुण्यमूर्त्तेः कुचकुम्भकर्तुर्विभक्तिं शङ्के सहका-
रिचक्रम् ॥ ८ ॥ विस्तारिणा मुहुस्तस्याः श्रोणीविम्बेन
पीडिता । वृष्टिता वृष्टितास्मीति पून्करोतीव मेखता
॥ ९ ॥ स कथं न स्पृहणीयो विषयरत्नैस्तन्निनितम्बवि-

पद्मी दुई तीन रेखाएँ ऐसी जान पड़ती हैं मानो कामदेवका
ऊपर चढ़ानेके लिये यौवनने साँझियाँ बना दी हों ॥ ११ ॥
इस नायिकाके शरीरपर तीन रेखाएँ ऐसी जान पड़ती हैं मानो
उसके स्तनोंके बहुत जानेपर उधो-उधो हार ऊपर उठता गया
स्थो-स्थो उस हारका रगड़के चिह्न इस रेखाकाके रूपमें बने रह
गए ॥ १२ ॥ उस नवेलीके शरीरपर तीन रेखाएँ ऐसी जान
पड़ती हैं मानो उसके उदरमें स्तनका बाँध भोंपकर अपने दूध
जानेके सम्बन्धसे स्तनोंपर काँध किया है जिससे ये तीन रेखाएँ
ऐसी बन गईं मानो उदरकी देवी भीहँ हों ॥ १३ ॥

पीठ : इस नवेलीके गूँघमें गुँघे हुए बेलके फूलोंका
प्रतिविम्ब पीठपर पड़ता हुआ ऐसा जान पड़ता है मानो पीठ-रूपी
साँनेका पीठियापर पीठके अक्षरोंमें कामदेवका प्रशंसाके लेख
लिख दिए गए हों ॥ १ ॥

नितम्ब : उस नवेलीके नितम्ब इतने बड़े बड़े हैं कि
उसकी सखियोंके दोनों हाथोंके धरेमें नहीं आते इसलिये वे
बेचारा बड़े कठिनाईसे उसके नितम्बोंपर तगड़ीका लदेँ बाँध
पाती हैं ॥ १ ॥ तगड़ीमेंसे गूँघनेवाले अमृतके समान मधुर शब्दसे
अपना निभयताका डट्टा पीठनेवाला, त्रिवली-रूपी लहरनेवाली
नदीके सौन्दर्य-रूपी जलकणसे चित-कपरा बना हुआ गया
शंकरजीके नेत्रोंकी ज्वालासे जल आनेपर भी अपना प्रताप
दिखानेवाला यह कामदेव कामिनियोंके नितम्ब-रूपी चट्टानपर
जेठ रहा है ॥ २ ॥ जैसे कामदेव (प्रद्युम्न) के पिता (कृष्ण)
ने युद्धमें सुदर्शन चक्रसे सारे विश्वका जीत लिया, वैसे ही क्या

कामदेव भी इस दुनों दुर्लभदर्शन (देखनेको न मिलनेवाले)
नितम्बोंसे संसारका जीतना चाहता है ॥ ३ ॥ इस नवेलीकी
वासियों उसके नितम्बोंके बड़े होनेका इसलिये निन्दा कर रही
है कि उसका तगड़ी बड़ी करनेके लिये बार-बार गूँघते-गूँघते
वे तंग था गई हैं ॥ ४ ॥ वह गौरी नायिका अपने नितम्बोंके
भारीपनसे बहुत दुखी हो गई है क्योंकि उनके चोकरसे न बल
पानेके कारण वह गँदके लेहमें बार-बार हार जाती है ॥ ५ ॥
पके विम्बाके समान छोटीवाली ये नवेली ! अन्धकान्त
मणिकी पटियाके समान कड़ा तुम्हारा यह नितम्ब ऐसा
जान पड़ता है मानो कामदेवके बाहुरूपी खम्भेपर उसकी
प्रशंसासे अङ्कित पंथरकी पटिया हों ॥ ६ ॥ मङ्गलने सूर्यके लिये
एक पहिएका रथ बनाया था तो उसने क्या फिर इस कामिनीके
विशाल नितम्ब बनाकर अपनी पुरानी कारीगरीके अनुसार
कामदेवके लिये भी एक ही पहिएका रथ बनानेका संकल्प
किया है ? ॥ ७ ॥ मैं समझता हूँ कि जब इस नवेलीमें रोमावली
रुपा डबडा, नितम्बरुपा चाक और उदारता आदिका गुण
(डारी) तथा सुन्दरता-रुपा जल है तो निश्चय ही स्तन
रुपा बड़ा बनानेवाले यौवन-रुपा कुम्हारके लिये इसके पास
सभी सामग्री उपस्थित है ॥ ८ ॥ इस नवेलीके प्रतिदिन फँडनेवाले
नितम्बपर कसाँ दुई यह तगड़ी प्रतिदिन फँडती हुई ऐसी प्रतीत
होती है मानो वह कराह-कराहकर कह रही हो—'हाय मैं दूटी ।
मैं दूटी !!' ॥ ९ ॥ जब विषयोसे विमुख तथा अति शान्त मङ्गलने
नितम्बोंमें बड़ापन और भारीपन डालकर इनका आदर किया है

न्यासः । शान्तात्मनापि विहितं विश्वसृजा गौरवं यत्र ॥ १० ॥

जघनम्—अनङ्गरूपीतोऽस्याः ऋद्धास्वर्णविष्टरः । लाक्ष्यसारसङ्घातः सा घना जघनस्थली ॥ १ ॥ तदीयजघनाभोगगरिमा विस्मयारूपदम् । दूरपानीपृथक्कोऽभूद्येनानङ्गस्य साङ्गना ॥ २ ॥ तस्याः पद्मपलाशाद्यास्तन्यास्तजघनं घनम् । दृष्टं सखीभिर्याभिस्ताः पुम्भावं मनसा ययुः ॥ ३ ॥ मुक्तेरपि प्रियतमाजघनोपभोगः श्रेयाञ्च मृग्यमिह घस्तुनि नः प्रमाणम् । यत्पश्यतापतदृशो रशनाकरूपे मुक्ता अपि स्वयमहां पुनरेव यद्धाः ॥ ४ ॥ वपुरनुपमं नाभेरुर्ध्वं विधाय मृगोदृशां ललितललितैरङ्गन्यासैः पुरा रभस्तादिव । तदनुसहसा स्निग्धेनैव प्रजापतिना भृशं पृथुलपृथुला स्थूलस्थूला कृता जघनस्थली ॥ ५ ॥

मदनमन्दिरम्—अङ्गेन केनापि विजेतुमस्या मयेष्यते

तब विपयोंके प्रेमी लोग उक्त नितम्योंसे क्यों न स्नेह करें ॥ १० ॥

पेङ्गु : इस नायिकाका कठोर पंङ्गु वास्तवमें कानदेवके नाटकका रहस्य है, अङ्गर रसका पल्लव है तथा सुन्दरभाका रूप है ॥ १ ॥ उस नवेलीके पेङ्गुकी चौड़ाईकी ऐसी आश्चर्यजनक महत्ता है कि उसके कारण यह नायिका कामदेवका दूरवेधी बाण बन गई है ॥ २ ॥ कमलकी पंखुइयोंके समान बड़ी-बड़ी आँखोंवाली उस पतली नायिकाके कठोर पंङ्गुकी जिन सखियोंने देखा वे मनमें तरसने लगीं कि 'हाय! हम पुरुष क्यों नहीं हुई' कि इनका उपभोग हमें भी प्राप्त हो जाता' ॥ ३ ॥ 'इस प्रियतमाका जघन-भाग मुझसे भी कहीं भेड़ है' इस सम्बन्धमें हमें प्रमाण नहीं देना पड़ेगा क्योंकि इसकी यह विशिष्ट बात हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि मुक्त लोभ (मोती) भी इस बड़ी-बड़ी आँखोंवालीकी लगड़ामें स्वर्य आकर बैठ गए हैं ॥ ४ ॥ मझाने हरिणोंके समान नेत्रोंवाली नायिकाओंका शरीर नाभिसे ऊपर तो अद्वितीय ढंगसे बनाकर उसमें अत्यन्त सुन्दर घंग सजा दिए किन्तु नाभिसे नीचे चौड़ी-चौड़ी तथा मोटी-मोटी आँखें देखकर ऐसा जान पड़ता है मानो मझाने धक जानेके कारण वेगार टाली हो ॥ ५ ॥

योनि : इस नवेलीका क्या कोई घंग (योनि) पीपलके पत्तेको जीतनेके लिये मचल उठा है ? यदि यह बात न होती तो दूसरे पत्तोंकी अपेक्षा एकमात्र पीपलके पत्ते ही किसके दस्तरे भिरन्तर बाँधते रहते ॥ १ ॥ पेङ्गुके बीचमें एक बड़ी गुफामें जो

किं चलपत्रपत्रम् । न चेद्विशेषादित्यङ्गदेभ्यस्तस्यास्तु कम्पस्तु कुतो भयेन ॥ १ ॥ जघनान्तगले वियरे विशाले हाधोमुखी निष्ठानि काऽपि चन्या । सुगटानि-भ्रष्टान्तमुख्ये पतन्तं दन्तैर्विना भ्रष्टानि चर्मदण्डम् ॥ २ ॥

जघनोरुहा — गौमुखधनितानावगाहके गेजुनस्थित-तनूरुहादुराः । तर्पणाय मदनस्य वेधसा स्वर्णशुक्ति-निहितास्त्रिला इव ॥ १ ॥

ऊरु—अस्यां मुनीनामपि मोदमूहे भृगुर्महान्यन्कुचशीलशीली । नानागदाहादि मुखं ध्रिन्तरुर्ध्वालो महाभागतसर्गयोग्यः ॥ १ ॥ ऊरुः पुरङ्ककटशश्चक्षु-चेलाञ्जली भाति । सपनाकः फनकमयो विजयस्तम्भः स्मरस्येव ॥ २ ॥ ऊरुप्रकाण्डद्विनेयन तस्याः करः पराजीयत आरणीयः । युक्तं द्विया कुण्डलनच्छलेन गोपायति स्वं मुखपुष्करं सः ॥ ३ ॥ कदली कदली

कोई घनाम्बी नीचे सुँह लिए घेरी है वह आँखोंके जङ्गलके सुँहपर या पड़नेवाले घावके दण्डोंका घिना दौनके ही था डालती है ॥ १ ॥

योमिके घाल : इस गौरी नवेलीकी योनिपर निकलते हुए घालके शंकर ऐसे सुन्दर जान पड़ते हैं मानो मझाने कामदेवका तर्पण करनेके लिये सोनेकी सीपा (योनि) में काले तिल ला रखे हों ॥ १ ॥

टाँगों : ऐसा जान पड़ना है कि इस नवेलीकी टाँगें देखकर बड़े-बड़े मुनियोंका भी भ्रम हो गया होगा क्योंकि श्रेष्ठ भृगुमुनि (अत्यन्त दालूपन) इसके स्तनरूपी पहाड़पर रहते हैं, इसका मुख नारर मुनिकी (अनेक दौतोंके कारण) आनन्द देता है और महाभारतकी रचना करनेवाले व्यासमुनि इसका सहारा लेते हैं (ज्यों अत्यन्त सुन्दर कामक्रोड़ाके लिये विमृष्ट हैं) ॥ १ ॥ टाँगोंपर उड़ते हुए साँझोंके पल्ले हरिणीकी आँखोंके समान नेत्रोंवाली नवेलीके शरीरपर ऐसी शोभा दे रहे हैं मानो कामदेवकी विजयके सुनहरे खम्भोंपर पताका फहरा रही हो ॥ २ ॥ इस नवेलीके टाँग-रूपी खम्भेसे हाथीकी सूँड़ हारकर लजा गई है इसलिये वह अपनी सूँड़के आगेका भाग बार-बार मोड़कर छिपाता जाता है, यह ठीक ही है ॥ ३ ॥ केला केला ही है अर्थात् जड़ भाग रह गया है, करभ (कानी रँगलीकी ओरका हथेलीका भाग) भी करभ ही है अर्थात् बहुत छोटा है और हाथीकी सूँड़ भी हाथीकी सूँड़ ही है

करभः करभः करिराजकरः करिराजकरः । भुवनत्रि-
तयेऽपि विभर्ति तुलामिदमूरुयुगं न चमूरुदृशः ॥ ४ ॥
तरुमूरुयुगेण सुन्दरी किमु रम्भां परिणाहिना परम् ।
तरुणीमपि जिह्युरेष तां धनदापत्यतपःफलस्तनीम् ॥ ५ ॥
नागेन्द्रहस्तास्त्वचि कर्कशत्वादेकान्तशैत्यात्क-
दलीविशेषाः । लम्बापि लोके परिणाहि रूपं जाना-
स्तदूर्ध्वोरुपमानवाद्याः ॥ ६ ॥ पश्यन्हतो मन्मथवाण-
पानैः शक्तो विधातुं न निमील्य चक्षुः । ऊरु विधात्रा
हि कथं कृतौ तां विम्यासवत्याः सुमतेवितर्कः ॥ ७ ॥
मन्ये तदूरु सम्भाष्य हस्तसर्वस्वहारिणौ । वहन्त्यसू-
क्ष्मताद्देतोर्मातङ्गत्वं मतङ्गजाः ॥ ८ ॥ रम्भापि किं
विह्वयति प्रकाण्डं न चात्मनः स्वेन न चैतदूरु ।
स्वस्यैव येनोपरि सा दद्याना पत्राणि जागत्यनयोभ्रमेण ॥ ९ ॥
लम्बिताः कदलीस्तम्भास्तदूरुभ्यां पराभवम् ।

अर्थात् सुरदरी है । तात्पर्य यह कि इस युगनयनी नवेलीकी
दोनों टोंगोंकी बराबरी संसारमें कोई नहीं कर सकता ॥ ४ ॥ उस
नवेलीने अपनी दोनों मोटी-मोटी टोंगोंसे केवल रम्भा (केले)
को ही नहीं बरन कुँवरके पुत्र नलकृवरकी तपस्याही जिस रम्भाके
स्तन बनकर फले हैं उस अप्सराको भी जीत लिया है ॥ ५ ॥
हाथीकी सूँड़ बहुत लम्बी होती है और केलेके लम्बे अत्यन्त
शीतल होते हैं इसलिये संसारमें बहुत सुन्दर होते हुए भी
वे इस नवेलीकी टोंगके बाहरी रूपकी ही बराबरी कर पाए,
गुणोंकी नहीं ॥ ६ ॥ इस नवेलीकी जो लकी उसके शरीरपर
चित्रकारी कर रही है उस बुद्धिमान् कीके मनमें यह शंका हुई
कि जब इस नवेलीका ऊपरी भाग बनाकर मछा कामके बाहोंसे
पीड़ित होकर अँसों में सूँड़ बैठे और आगे कुछ न बना पाए तब
वे नवेलीकी टोंगे बन कैसे गई ॥ ७ ॥ हाथियोंने जब देखा कि
इस नवेलीकी टोंगे हमारे सूँड़की सुन्दरता हर से जायेगी तब
वे लाजके मारे यह सोचकर मातङ्ग (चाण्डाल) बन गए कि
कि हम अछूत होकर समाजके बाहर ही रहने लग जायें
॥ ८ ॥ रम्भा (केले) का पेड़ भी क्या इस नवेलीकी टोंग
और अपने लम्बेको एक ही समक बैठा है क्योंकि दोनोंके
ऊपर पत्र (पत्ते तथा चित्रकारी) जो दिखाई दे रहे हैं उससे
उसे भ्रम हो गया है कि इन दोनोंमें हमारा लम्बा कौन सा
है ॥ ९ ॥ यदि उस नवेलीकी टोंगोंसे केलेके लम्बे हार सा गए
तो आश्चर्य क्या है क्योंकि अत्यन्त कोमल और जड़ (शीतल
और मूर्ख) लोगोंको विजयका वश मिलता ही क्यों है ॥ १० ॥

अत्यन्तमृदुभिर्लब्धो जडैः क जयद्विदिग्धमः ॥ १० ॥
विधाय मूर्धानमधश्चरं चेन्मुञ्चेत्तपोभिः स्वमसारभा-
वम् । जाड्यञ्च नाञ्चेत्कदली वलीयस्तदा यदि स्यादि-
दमूरुचारुः ॥ ११ ॥

जंघे—कमोदता पीवरताधिजहं वृक्षाधिकरुढं विदुषी
किमस्याः । अपि भ्रमीभक्तिभिरावृताहं वासो लता-
वेष्टितकप्रवीणम् ॥ १ ॥ जहं तक्षीये सन्तर्प यज्ञनस्या-
नुरागिणः । जनयाञ्चक्रतुस्तीमं तत्र हेतुर्विलोमता
॥ २ ॥ प्रसृते प्रसृते तस्याः मुग्धानामिति का कथा ।
तरुणानामपि प्रज्ञां प्रवर्धयत इमे यतः ॥ ३ ॥ लीलाग-
तिस्तत्र निसर्गसिद्धा मत्तो न दन्ती मुयितो न हंसः ।
हृतीष जहायुगलं यदीयञ्चरे तुलाकोट्यधिरोहणानि
॥ ४ ॥ वृत्तानुपूर्वं च न चातिदीर्घं जहं शुभे स्पृष्टवत-
स्तवीये । शेवाङ्गनिर्माणविधौ विधातुर्लावण्य उत्पाद्य

वरि केला अपना सिर नीचा करके अर्धाङ्ग उखटा होकर तपस्या
करके अपनी निःसारता तथा आस्थम्य जड़ता (मूर्खता और
शीतलता) छोड़ दे तब कहीं वह इसकी टोंगोंके समान हो
पा सकता है ॥ ११ ॥

जॉर्ज : इस नवेलीकी जॉर्जोंमें कमसे ऊपरको जो मोटाई बढ़
रही है वह क्या वृक्षाधिकरुढ (उठते हुए पत्तियों गहलें हाथ
डाककर उसकी गोदमें बटना) जानती है और इसके पारों
और लिपटनेवाला वज्र क्या कतावेष्टितक (बैठे हुए पत्तियों
लोती हुई की द्वारा जपेटा जाना) सीख चुका है ॥ १ ॥ इस
नवेलीकी जॉर्जोंने रसिकोंके मनमें जो भयंकर मग्न उपजा दी
है उसका कारण है इसकी विलोमता (उल्टी चाल, काज न
होना) ॥ २ ॥ इस नायिकाकी जिन जॉर्जोंने फैलते-फैलते बढ़े-
बढ़े जवानोंकी प्रदितक बाँध दी है वे यदि भोले-भाले लोगोंको
कैसा लेली हों तो कौन बड़ी बात है ॥ ३ ॥ 'इस नवेलीकी
वही चाल ही है, इसे न तो मतवाला हाथी समझो, न वह
समझो कि इसने इसकी गति पुराई है', यही कारण है कि
इसकी जॉर्जें तुझाके समान बना दी गई है कि जिसे समानता
करनी हो वह आकर अपनेको तीख ले ॥ ४ ॥ मछाने जब इस
नवेलीके गोठवल्गों और ठीक मोटाईवाली जॉर्जें बना दीं तब वे
इतनी सुन्दर बन गई कि अन्य जंगलोंकी उसी अनुपातमें सुन्दर
बनानेके लिये उन्हें बड़ा परिश्रम करना पड़ा ॥ ५ ॥ सोनेकी
सुँघरुदार तगदीके साथ उसकी दोनों जॉर्जें ऐसी सुन्दर जान

इवास यक्षः ॥ ५ ॥ हेममञ्जीरमालाभ्यां भानि जङ्गल-
तादयम् । लाघव्यशाखिनः स्थानं कुङ्कुमेनेव वेष्टि-
तम् ॥ ६ ॥

गुल्मी—अरुन्धतीकामपरन्धिलक्ष्मीजम्भद्विपहार-
नवान्धिकानाम् । चतुर्दशीयं तदिहोचिनेष गुल्फद्व-
यासा यदृश्यसिद्धिः ॥ १ ॥

चरणी—अत्यपूर्वस्य गमस्य पूर्वपक्षाय पल्लवाः ।
पद्मानि पादयुग्मस्य प्रत्युदाहरणानि च ॥ १ ॥ अननु-
रणन्मणिमेखलमधिरलसिञ्जानमञ्जमञ्जीरम् । परिसरण-
महणवरणे रसरणकमकाणं कुरुते ॥ २ ॥ अभ्युद्य-
ताकुष्ठनखप्रभाभिनिक्षेपणाद्रागमिषोद्विरन्तौ । आज-
ह्नुस्तचरणी पृथिव्यां स्थलारविन्दधियमन्यवस्थाम् ॥ ३ ॥
अमृत्यस्य मम स्वर्णतुलाकोटिद्वयं कियम् ।
इति कोपादिवाताम्रं पादयुग्मं मृगीदृशः ॥ ४ ॥ अस्याः
पद्मौ आरुतया महास्तावपेक्ष्य सौन्दर्याल्लवभावभाजः ।

पद्मरही है मानो सुन्दरतारूपी बुझकी जड़में चारों ओर केसरकी
पाद लगी ही गई हों ॥ १ ॥

घुट्टी : अवतक तो अरुन्धती, रति, जयभी, इन्द्राक्षी और
मम हुआ। इन तरह देवियोंके ही। अचानक अन्तधान (छोड़से
छोड़ल) होनेको बात सुनी जाती थी पर पद घुट्टी कीदृशी
देवी था गई जो दिखाई नहीं पड़ रही है। ठीक भी क्योंकि
चतुर्दशीमें जब करने वालेको सिद्धि भी मिल जाती है ॥ १ ॥

पैर : इस नवेलीके पैरोंकी चमकीली ललाईकी बराबरीके
लिये पत्तोंका रङ्ग ही उदाहरणमें दिया जाता है किन्तु वास्तवमें
उनकी समता यदि कोई कर सकता है तो वस कमल ही कर
सकता है ॥ १ ॥ हे लाल-लाल पैरोंवाली ! तुम्हारी जिस चालके
साथ मणिकी लगदी और सुन्दर पायल निरन्तर बजते जा
रहे हैं वा बिना कारण ही मनमें हृदयही उपजाए दे रही है
॥ २ ॥ चलते समय जब इस नवेलीके पैर धरतीपर पड़ते हैं
तब इसके ठठे हुए अँगुठके नखकी चमकसे भूमिपर बिलसरी हुई
ललाईसे खलकमलकी शोभा भी फीकी दिखाई पड़ने लगती है
॥ ३ ॥ इस नवेलीके पैर मानो इस क्रोधसे जाल हो गए
हैं कि मुझ अमृत्यकी तुलनाके लिये दोनों प्रकारका स्वर्ण
क्यों लाया जाता है, वे मेरे आगे हैं क्या ? ॥ ४ ॥ इस
नवेलीके सुन्दरतामें बहुत बड़े-बड़े पैरोंके आगे पैरोंके नये पते
बहुत लव (नीचे) हैं इसीलिये हम समझते हैं कि पद
(पैर) से खव (हीन) होनेके कारण ही वे 'पस्त्व' कहे जाने

जाना प्रवालस्य महीकटाणां जानीमहे पल्लवशन्दलधिः
॥ ५ ॥ चरणकमलं नदीयं लाक्षायालानपेन संवलितम् ।
अध्याम्न भृङ्गमालावलिभिर्मणिखलितनूपरव्याजान्
॥ ६ ॥ जगद्धर्मधर्मं रूपदर्पाद्यदेतयाधायि पदारवि-
न्दम् । तन्तान्द्रसिन्दूरपगागर्गोर्द्वयं प्रवालप्रवलारुणं
तम् ॥ ७ ॥ जाग्रतः कमलालक्ष्मीं यज्जग्राह नदद्नम् ।
पादद्वन्द्वस्य मन्तेभगनिम्नेये तु का स्तुतिः ॥ ८ ॥
वशकैरवयवान्धवान्धानां जडसंसर्गविमुक्तिसाधधानां ।
चरणी नलिनेन तोलयन्तः कथमस्याः कथयो न यान्ति
लज्जाम् ॥ ९ ॥ दृश्यन्ते मानसोत्तंसा राजहंसाः
कविचदि । गर्वा चरणयोस्तस्याः प्रदयते यावदन्तरम्
॥ १० ॥ नितम्बपीड्यमानेन पादयुग्मेन सुभ्यः । कृता
कुट्टिमहोष नीलनूपुरमाख्या ॥ ११ ॥ प्रियासखी-
भूतयनो मुदेदं व्यधाद्विधिः साधुदृशत्वमिन्दाः । एत-
न्पदचतुस्ररागपक्षलाभाभ्यभान्यं कथमन्यथा स्यान्

कहे हैं ॥ ५ ॥ महाबलसे रेंगे हुए खीर मणिले जड़े विषुप पहले
उस नवेलीके पैर ऐसे कमलोंके समान जान पड़ते हैं जिनपर
प्रातःकालकी धूप पड़ रही हो और भीरे घिरे हुए हों ॥ ६ ॥
इस नवेलीके पैरकी ललाई नहीं कौपलासे भी अधिक देखकर
जान पड़ता है मानो इसने अपनी सुन्दरताके अभिमानसे
सँसारही सभी जियोंके सिरपर जो अपना चरणकमल रख
दिया उससे खियोंकी मँगलपर लगे हुए घने सिन्दूरकी ललाई
इनमें छिपट गई हो ॥ ७ ॥ इस नवेलीमें यदि मतवाले
हाथीकी चाल छीन ली तो कीन यही बात है। पर आश्चर्य तो
यह है कि इसके दोनों पैरोंने खिले हुए तथा सावधान
कमलकी भी सारी शोभा छीन ली ॥ ८ ॥ उस उँगली-रूपी
कुमुद-बन्धुओंको साथमें रखनेवाले तथा जड़ (मूर्ख) से
दूर रहनेवाले इसके पैरोंकी उपमा जिन कवियोंने कमलसे
दी है उन्हें लज्जा क्यों नहीं आती, क्योंकि कमल तो अकेला
ही निकलता है और जड़ (पानी) से ही सम्पर्क भी
रखता है ॥ ९ ॥ यदि कहीं मानसरोवरकी शोभा बढ़ानेवाले
राजहंस मिल आते तो उनसे पूछा जाता कि तुम्हारी और
इस नवेलीकी चरणोंकी चालमें क्या अन्तर है (पर वे तो
लाजके गारे सामने ही नहीं आते) ॥ १० ॥ नितम्बोंके भारसे
बिचुओंके साथ ऐसे जान पड़ते हैं मानो वे पैर भी भीहें टँकी
किए बैठे हों ॥ ११ ॥ मझाने इस प्यारीका मुँह चन्द्रमासे बनाकर

॥ १२ ॥ यानेन तन्व्या जितदन्तिनाथौ पदाब्जराजौ
परिशुद्धपाणौ । जाने न शुभ्रयितुं स्वमिच्छन्तेन
मूर्ध्ना कतरस्य राक्षः ॥ १३ ॥ स्तनभारोऽत्र वक्रैन्दुच-
न्द्रिकावरणं मम । इति तत्पादयोर्लज्जा वेदि प्रह्वलय-
शिनी ॥ १४ ॥

पादाङ्गुल्यः—एष्यन्ति यावद्गुणनाहिगन्ताभूषाः
स्मरार्ताः शरणे प्रवेष्टुम् । इमे पदाब्जे विधिनापि
सृष्टास्तावत् पदाङ्गुलयोऽत्र रेखाः ॥ १ ॥

नसाः—तत्पादनखरखानां यदलककमार्जनम् । इदं
श्रीखण्डलेपेन पारङ्गुलीकरणं विधौः ॥ १ ॥ तद्वर्कं
नेत्रपद्मं प्रकटितमसकृत्पुद्गितं यन्मयैतज्ज्ञातं तस्मान्क-
शब्दं ग्रहणमपि ततो जायमानः कलङ्कः । तत्सर्वं
क्षम्यतां मे पुनरपि न करोम्येवमुपस्था तु तस्या गाढं
लज्जाः शशाङ्कखरणनखमणिच्छयना पादयुग्मम् ॥ २ ॥

चन्द्रमाका बड़ा कस्याण किया नहीं तो उसे लाख कमलों
(चरणों) का सङ्घास प्राप्त कहाँसे होता ॥ १२ ॥ इस
नायिकाके चरणरूपी राजा कमल, अपने यान (चढ़ाई, वाह)
से गजराजोंको जीतसे हुए तथा अपनी शुद्ध (निष्कपट, सुन्दर)
पाण्डि (पीछेकी लेना, पृष्ठ) लेकर न जाने किस राजाके भुके
हुए मस्तकसे अपनी सेवा कराना चाह रहे हैं ॥ १३ ॥ इस
नखेलीके दोनों पैर पैले जान पड़ते हैं मानो दो स्वस-कमलिनीयों
उसके पैरोंमें यह सोचकर भा विषी हों कि इसके मुखरूपी
चन्द्रमाकी चाँदनी इसके अङ्ग-वङ्ग स्तनोंसे ढकनेके कारण इतक
नहीं पहुँच पावेगी ॥ १४ ॥

पैरकी उँगलियाँ : इस नखेलीके पैरोंमें ब्रह्माने दस
उँगलियोंकी रेखा मानो हसलिये बना दी हैं कि दसों दिशाओंके
अनेक कामपीड़ित राजा इन चरणोंकी शरण लेंगे ॥ १ ॥

नख : उस नखेलीके पैरोंके नखरूपी रत्नोंपर जगा
हुआ महावर ऐसा जान पड़ता है मानो चन्द्रमाको लाख
चन्दनसे रँग दिया गया हो ॥ १ ॥ इस नखेलीके पैरोंके नख
पैले जान पड़ते हैं मानो चन्द्रमा यह कहता हुआ उसके पैरोंसे
लिपट गया है कि नेत्ररूपी कमलसे युक्त आपके मुखचन्द्रसे
झीने बार-बार बराबरी करनेके फेरमें मैं दुबला भी हो गया
हूँ (नख पतले हैं), सुकपर राहु भी आक्रमण करने लगा
(नख बढ़नेके कारण उसमें कालिमा आ गई और ग्रहणरूपी
कलङ्क भी आ गया) अतः अब आप मेरा खपराध क्षमाकर
दीजिए अब मैं फिर ऐसा कभी नहीं करूँगा ॥ २ ॥ उस

तस्याः पादनखश्रेणिः शोभते किल सुभ्रुवः । रक्षाव-
लीव लायल्यरक्षाकरसमुद्रता ॥ ३ ॥ प्रसीद मेवं पति-
भूदखण्डं नाराधिपं ते वदनामृतांशुः । इतीन्दुमुखाः
पतितेव पादे ताराततिर्दोशनखच्छलेन ॥ ४ ॥

समग्रस्त्रीभ्वरूपवर्णनम्

अकृशं नितम्बभागे क्षामं मध्ये समुन्नतं कुचयोः ।
अत्यायतं मयनयोर्मम जीवितमेतदायाति ॥ १ ॥ अङ्गं
भूषणनिकरो भूषयतीत्येष लौकिको वादः । अङ्गानि
भूषणानां कामपि सुषमारमजीजनस्तस्याः ॥ २ ॥ अधरे
मधुरा सरस्वती इति गङ्गा तदधः कलिन्दजा ।
शिरसि प्रतिभाति आरुघेणी कथमेणीनयना न तीर्थ-
राजः ॥ ३ ॥ अलीककपो यदि मध्यभागः पयोधराका-
रभूतश्च केशः । उत्सङ्गशोभापि सरोरुहाख्याः करस्य
शोभां कलयेत् कस्मात् ॥ ४ ॥ अग्न्याजसुन्दरीं तां

सुन्दर भीलोंवाली नखेलीके पैरोंके नख पैले सुन्दर जान पड़
रहे हैं मानो सुन्दरताके समुद्रसे निकली हुई रत्नोंकी पतत
हो ॥ ३ ॥ तुम्हारे मुखरूपी चन्द्रमासे हारकर चन्द्रमा
अपने साथ तारोंको लेकर जो तुम्हारे पैरोंसे लिपटा है वे ही
नखोंके रूपमें दिखाई पड़ रहे हैं, अब तो तुम प्रसन्न हो
जाओ ॥ ४ ॥

स्त्रीके पूरे स्वरूपका वर्णन

यह मोटे नितम्बोंवाली, पतली कमरवाली, ऊँचे उठे हुए
स्तनोंवाली और बड़ी-बड़ी आँखोंवाली मेरी प्राणप्रिया ही आ
रही है ॥ १ ॥ यह सब कहनेकी बात है कि आभूषणोंसे उसके
अङ्गोंकी शोभा बढ़ती है । सच्ची बात तो यह है कि उसके
अङ्गोंसे ही आभूषणोंमें चमक आती है ॥ २ ॥ जब इस
शृगनपनीके अधरमें मधुर सरस्वती है, हृदयमें गङ्गा है,
उसके नीचेकी रोमावली यमुना है और सिरपर सुन्दर वेणी
शोभा दे रही है तब उसे तीर्थराज त्रिवेणी कहनेमें क्या सङ्कोच
है ॥ ३ ॥ एक नायिका अपनी कमरपर हाथ रखे खड़ी है
और उसके सिरके बाह स्तनोंतक लटके हुए हैं । साथ ही
उसकी कमर इतनी पतली है कि दिखाई नहीं देती इसीपर
कवि कहता है—‘यद्यपि इसकी कमर शून्य-रूप है तब भी
कोई चिन्ताकी बात नहीं क्योंकि इसके स्तनोंकी गोलाईका
भार बालोंने सँभाल लिया है और अब बालोंने इतना काम
कर हो लिया है तब इस कमल-नयनीके हाथ नितम्बोंकी
शोभा क्यों न बढ़ावे ॥ ४ ॥ उस स्वाभाविक सुन्दरीको अपने

विज्ञानेनाद्भुतेन योजयता। उपकल्पितो विधात्रा थातः
कामस्य विषदिग्धः ॥ ५ ॥ अस्याश्चेदलकावली कृत-
मलिध्रेणीभिरेणीदृशः सौन्दर्यं यदि चक्षुषोस्तरलयोः
किं मन्मथस्यायुधैः। का प्रीतिः कनकारविन्दमुकुलं
पीना स्तनौ चेदतो मन्ये काचिदियं मनोभवकृता
माया जगन्मोहिनी ॥ ६ ॥ आलपति पिकवधूरिष
पश्यति हरिणीष चलति हंसीष। स्फुरति तडिल्लति-
केष स्वदत्ते तुहिनांशुलेखेव ॥ ७ ॥ आलोक्य विकुर-
निकरं सततं सुमनोऽधियासयोग्यं ते। कामो निजं
नियङ्गं परिवृत्य पराममर्षं साशङ्कः ॥ ८ ॥ इदं वक्त्रं
साक्षाद्विरहितकलङ्कः शशधरः सुधाधारधारधिर-
परिणतं विस्मयधरः। इमे नेत्रे रात्रिन्दिवमधिकशोभे
कुचलये तनुर्लायण्यानां जलधिरघगाहे सुखतरः ॥ ९ ॥
इन्दुलित इवाजनेन जडिता दृष्टिर्मुगीणामिव प्रमलाना-
दणिमेष विद्रुमदलं श्यामेव हेमप्रभा। कार्कश्यं कलया

च कोकिलवधूकण्ठेऽप्यिव प्रमृत्तं सुन्दर्याः पुरतश्च
हन्त शिखिनां वहांः सगर्हा इव ॥ १० ॥ ऊरुद्वयं मृग-
दृशः कदलेश्च काण्डां मध्यञ्च वेदितुलौ स्तनयुग्म
मस्याः। लावण्यचारिपरिपूरितशानकुम्भकुम्भां मना-
जन्तुपतेरभिषेचनाय ॥ ११ ॥ ऊर्ध्वं नीरदवृन्दमन्दव-
मिदं विम्वं त्वधो निर्मितं व्योमः पल्यलन्वित्रितस्य
निहितां शैलावुपर्युधतां। किञ्चाधः पुलिनोच्चयस्य
कदलीकाण्डाश्चारापितां तन्मन्ये चतुरस्य पुष्पधनुषः
सर्गांऽथमन्यादृशः ॥ १२ ॥ एतस्याः स्तनपत्रकोरक-
युगं यस्याननेन्द्रोः सितज्योत्स्नाभिर्न भजन्यदां मृग-
दृशः शङ्के विकासं पुनः। तस्मिंल्लोचनपङ्कजं विक-
सितं भ्रूभृङ्गसंश्रितं स्वान्ते संशयमातनोति सुतरा-
मेतन्ममैवासकम् ॥ १३ ॥ कमलशरधिरम्भासैकतानु-
क्रमान्वं कनककलशभागाक्रान्तसंदाभिनीकम्। किं-
लपितमृणालं हारगर्भप्रवालं कुचलपितशशाङ्कं कौशलं

प्रभुत कौशलले बनाकर प्रकाने मानो कामदेवका बाण
विषमें बुझाकर धर दिया हो ॥ ५ ॥ इस कमजनयनीके
केशोंके सम्मुख भीरोंके समूहको कीन पड़ता है, इसकी चञ्चल
चितवनके सौन्दर्यके आगे कामदेवके बाणोंकी गिनती ही
क्या है, इसके मोटे मोटे स्तनोंके सामने सोनेके कमलकी
कलियाँसे कोई क्या प्रेम करेगा! अतः इसे देखकर तो मुझे
ऐसा जान पड़ने लगा है कि यह संसारका मोहित करनेवाला
कामदेवकी रक्षा हुई कोई माया है ॥ ६ ॥ वह महेली कोचलके
समान खोलती है, हरियाँके समान देखती है, हंसोंके समान
एग धरती है, विमलके समान चमकती है और चन्द्रमाकी
रेखाके समान रसीली लगती है ॥ ७ ॥ उसके गालोंमें फूल
और सुन्दर मन बसे देखकर और अपने स्थीरमें यही
गुण न पाकर ध्वस्तके मारे कामदेव अपने स्थीरको
उलटकर हँवने लगा कि कहाँसे कोई ऐसा बाण निकल आये जो
इसके केशोंसे भी अधिक प्रभावशाली हो ॥ ८ ॥ इस नवेलीका
मुख प्रत्यक्ष कलङ्क-रहित चन्द्रमा है, इसके आँठ जम्बूतकी
भारासे भरे हुए पके बिम्बाके समान हैं, इसके नेत्र दिनरात
अत्यन्त शोभा देनेवाले नीले कमल हैं और इसका शरीर भी
लावण्य (सुन्दरता, नमकीनपन) का समुद्र है जिसमें स्नान
करनेसे अत्यन्त सुख मिलता है ॥ ९ ॥ उस सुन्दरीके मुखके
सामने चन्द्रमा काँसा लगता है, उसकी आँखोंके आगे
हरिषिर्बोंकी चितवन रूसी जान पड़ती है, उसके ओठोंके

सामने मूँगकी लालिमा कीकी दिखाई पड़ती है, उसके गँरे
शरीरके आगे साँगा भी साँवला दिखाई देता है, उसकी मधुर
बासीके सम्मुख कोचलकी बूक कानको कदकी लगती है और
उसके केशके सामने मोहोंके पङ्क अत्यन्त मुग्ध जान पड़ते
हैं। इस प्रकार उस सुन्दरीके आगे अहोंके सब उपमान भाँड़े
जान पड़ते हैं ॥ १० ॥ उस मृगनयनीके दोनों पैर केलेके लम्बे
हैं, उसकी कमर ही यज्ञकी वेदी है, वधा उसके चतुर्थीय स्तन
ही राजा कामदेवके अभिषेकके लिये सौन्दर्यरूपी जलसे भरे हुए
सोनेके दो घड़े हैं ॥ ११ ॥ यह क्या है जिसके ऊपर बादलोंका
समूह (केश) है, फिर उसके नाँचे आकाशकी तलीया
(हृदय) पर दो ऊँचे-ऊँचे पर्वत रखे हुए हैं, इस द्वीप (निताब)
के भीचे दो केलेके लम्बे (टाँगें) लगे हुए हैं इसे देखकर
मैं तो समझता हूँ कि यह चतुर कामदेवकी कोई निशाली ही
रचना है ॥ १२ ॥ इस मृगनयनीकी स्तनरूपी कमलकी कलियाँ
उसके मुखरूपी चन्द्रमाकी चाँदनी पड़नेपर भी खिल नहीं
रहीं हैं, उलटे उसके मुखरूपी चन्द्रमामें भीहरूपी भीरोंसे घिरे
हुए नेत्ररूपी कमल खिले हुए हैं। यह सब उलट-पलट देखकर
मेरे मनमें बार-बार न जाने क्यों बड़ा सन्देह होता जा रहा
है ॥ १३ ॥ यह मल्लिका कुछ विचित्र कौशल है कि उसने
कमसे कमल (चरण), स्थीर (विषयकी), केलेका
लम्बा (जाँव), पदीका उठा हुआ तट (निताब), सोनेके
कलशों (स्तनों) के बीचसे दूरी हुई बिजली (नायिकाकी

सा विधातुः ॥ १४ ॥ करे वेलीमेणीसदृशनयनास्त्रान-
विरता दधाना हर्म्याग्रे हरनयनतेजोदुतमपि । इयं
मुग्धा दुग्धाम्बुधियहलकलोलसदृशा दृशा वारंवारं
मनसिजततं पल्लवयति ॥ १५ ॥ कर्णाक्षिदन्तच्छ्रदयाहु-
पाणिपदाङ्गनः स्थासिलतुल्यहेतुः । उद्वेगभागह-
यताभिमानादिदैव वेधा व्यधित द्वितीयम् ॥ १६ ॥
कर्णारुन्तुदमेव काकिलरुतं तस्याः श्रुते भाषिते चन्द्रे
लोकवर्चस्तदाननरुचेः प्रागेव सन्दर्शनान् । चक्षुर्माल-
गमेव तन्मयनयोरग्र मृगीणां धरं हैमी वल्लयपि तावदेव
लालिता दावन्न सा लक्ष्यते ॥ १७ ॥ कर्णाः सङ्गविसर्पिणी
मयनयोः कान्तिवर्तसंरोपलं लाक्षासम्भ्रमनिर्व्यपेक्षम-
धरं लावण्यमेवाश्नति । हारोऽस्याः स्मितचान्द्रिकैव
कुचयोरङ्गप्रभाकञ्चुकी तस्याः केवलमङ्गभारमधुना

मन्ये परं भूषणम् ॥ १८ ॥ कलयति कुचलयमालाल-
सितं कुटिलः कटाक्षविशेषः । अधरः किसलयलीला-
माननमस्याः कलानिधिविलासम् ॥ १९ ॥ कात्स्न्येन
निर्वर्णयितुं च रूपमिच्छति तत्पूर्वसमागतानाम् । न
■ प्रियम्वायतलोचनानां समप्रपातीनि विलोचनानि
॥ २० ॥ किं तादृश्यतरोरियं रसभरोद्भिज्ञा नवा
वल्लरी वेलामोच्छलितस्य किं लहरिका लावण्यवारा-
भिधेः । उद्गाढोत्कलिकावतां स्वसमयोपन्यासविश्र-
म्भणः किं साक्षादुपदेश्यष्टरथवा देवस्य शृङ्गारिणः
॥ २१ ॥ गतिर्वैणो च नागेन घणुरुरु च रम्भया । पाणी
प्रवालैरोष्ठी च यस्यास्तुल्यत्वमाययुः ॥ २२ ॥ गुरुणा
स्तनभारेण मुखचन्द्रेण भास्वता । पादाभ्यां पद्मरा-
गाभ्यां रेजे रत्नमयीव सा ॥ २३ ॥ अक्षुर्मधकमम्युजं

छाती), पत्तोवाली कमल (उँगलियोंसे युक्त भुजाएँ), हारकों
भीतर बन्द किए हुए मूँगा (लाल घांटोंके बीच दाँतोंकी पंक्ति)
और कमल धारण किए हुए चन्द्रमा (आँखोंके साथ मुख) बना
दिया ॥ १४ ॥ इस भोली-भाली मृगनयनीने स्नान करके
सुतपर पहुँचकर जब अपने हाथसे अपनी धाँदी पकड़ी और
और-सागरकी विशाल लहरके समान अपनी चितवन बजाई
तब शङ्करजीके नेत्रकी अग्निसे भस्म हुए कामदेवरूपी वृक्षमें
नये जैकुण्ठ फूटने लगे ॥ १५ ॥ मझाने इस (दमयन्ती) के
शरीरमें पहले एक-एक कान, आँख, घाँट, बाँह, हाथ और पैर
बनाए । वे इतने सुन्दर बने कि उन्होंने अपने समान दिखाई
पड़नेवाली सब वस्तुओंको अपनी शोभासे हरा दिया । इससे
मझाजीको इतना अभिमान हुआ कि वे उसी प्रकारके सुन्दर
अङ्ग बनानेके फेरमें पड़कर ऐसी बुध-बुध भूले कि उन्होंने
बिसे ही एक-एक अङ्ग बनाए तां सदा किन्तु भौंकमें वे अङ्ग
उसके शरीरमें लगा दिए अर्थात् उसके कान, आँख, घाँट,
बाँह, हाथ और पैर उसके ही काम, आँख, घाँट, बाँह, हाथ
और पैरके समान हैं, कहीं उनकी समानता नहीं हो सकती
॥ १६ ॥ उस नवेलीकी बाकी एकवार सुन खेनेपर काँवलकी एक
कान फाड़ने लगती है और चन्द्रमा भां लाँगोंका तभीतक अन्का
लगता है जबतक धाँगा उसके मुखकी शोभा नहीं देख लेते ।
उसकी आँखें इसभां रसालां हैं कि उनके आगे हरिलियोंको
अपनी आँखें मूँद जाना चाहिएँ और सामकई लता भी तभीतक
भली जान पड़ती है जबतक यह नवेली आँखोंके आगे नहीं
आ जाती ॥ १७ ॥ इस नवेलीकी कानोंक फौजी हुई आँखोंकी

कसक ही कामको शोभित करनेवाला कमल है, उसके छोटे
स्वभावसे ही इतने सुन्दर लाल हैं कि उन्हें लालसे रंगनेकी
आवश्यकता ही नहीं है, इसकी मुस्कुराहटका फौजी हुई चमक
ही इसके स्तनोंका हार है, इसके शरीरका दमक ही इसकी
आँखों है इसलिये मैं तो यह मानता हूँ कि इसके जो धन्य
आभूषण हैं वे सब शरीरपर बाँक ही हैं ॥ १८ ॥ उस नवेलीकी
तिरछी चितवन नीले कमलके समान मनाहर है, उसके घाँट
नई काँपलोंके समान लाल और पतले हैं और उसका मुख
चन्द्रमाके समान आनन्द दे रहा है ॥ १९ ॥ अपने पतिके
साथ पहले-पहल समागमके समय स्त्रियाँ अपने पतिके सब
अङ्गोंकी सुन्दरता भली भाँति देखना तो चाहती हैं किन्तु उन
बढ़ी-बढ़ी आँखोंवाली नायिकाओंकी दृष्टि संकाचके मारे अपने
पतिशोपर पूरी पड़ भी तो नहीं पाती ॥ २० ॥ नवेलीके
शरीरको देखकर कवि कल्पना कर रहा है कि यह नवेली यौवन-
रूपी वृक्षकी रसभरी मञ्जरी है या कगारतक लहराते हुए
सौन्दर्य-सागरकी लहर है या अपने नियमोंको पूरा पालन
करानेवाले कामदेवकी वह बूढ़ी है जिससे वह रसिकोंको
शिक्षा देता रहता है ॥ २१ ॥ इस नवेलीके कान और छोटी
तो सर्प जैसे, शरीर और आँखें केलेके लम्बे जैसी और इसकी
हथेलियाँ और घाँट मूँगेके समान हो चले हैं ॥ २२ ॥ अपने स्तनोंके
बोम्बे (गुह) भारी और मुखरूपी चन्द्रमाके कारण दमकती हुई
अपने पालराजके समान चरणोंसे यह नवेली शनमयी-सी जान
पड़ती है ॥ २३ ॥ इस नवेलीकी आँखोंकी शोभा नीले कमलकी
हराए डाल रही है, चन्द्रमा इसके मुखका मित्र है, कामदेवका

विजयते वक्रस्य मित्रं शशी भूस्त्रस्य सनाभि मन्मथ
धनुर्लावण्यपण्यं वपुः । लेखा कापि रदच्छदे च सुत-
नोर्गात्रे च तत्कामिनोमेनां वर्णयिता स्मरो यदि भये-
हृद्गन्धमभ्यस्यात् ॥ २४ ॥ जानीमो वदनं सरोरुहदशो
निर्माय पश्यन्मुहुर्हृत्पङ्कामकदोरपावकशिलासन्ना-
पितः पद्मभूः । रम्भामृकतटीं स्तनं रसघटीं पीयूषवीचीं
वचो बाहू घालाविसं करं किसलयं नाभौ सरा निर्ममि
॥ २५ ॥ जानीमो वयमासनस्य कमले तस्या मुखेन्द्रो-
स्त्यया सङ्कोचं समुपागते स भगवान्दुःस्थः सरोजा-
सनः । भुशं भूलतिकापुगं विहितचान्द्रके दृशो सृष्ट-
वाम्मध्यं त्रिस्मृतवान्कचांश्च कुटिलाभ्यामभुवः सृष्ट-
वान् ॥ २६ ॥ जिघ्रन्त्याननमिन्दुकान्तिरधरं विम्बप्रभा
सुम्पति स्मरुदं वाम्बुति चारुपद्मकुलच्छायाविशेषः
स्तनी । लक्ष्मीः कोकनदस्य खेलति करावालम्भ्य

किञ्चादगादेतस्या सुदृशः करोति पदयोस्सेयां प्रवा-
लचुतिः ॥ २७ ॥ तदा तदङ्गस्य विभक्तिं सम्प्रभं धिले-
पनामोदमुच स्फुरद्भुज । दग्धकुरङ्काञ्जनकेतकीदला-
न्सुवर्णमभ्यस्याति सारभं यदि ॥ २८ ॥ तद्वक्त्रं यदि
मुद्रिता शशिकथा तच्चन्मिमतं का मुग्धा तच्चतुर्यादि
हासितं कुचलयैस्ताश्चोद्विगं धिक्प्रभु । धिक्चन्द्रपद्मनु-
भ्रंयां यदि च ते किं या बहु ब्रूमहे यन्सन्धं पुनस्तुत्य-
स्तुविरसः सर्गकनो बंधसः ॥ २९ ॥ तद्वक्त्रस्य कलङ्क
पथ तुलना पीयूषधात्रापि यन्कन्दर्पस्य धनुर्निदर्शन-
मिदं निन्दास्पदं तद्भुवः । सा तल्लोचनयोः खपा कुचल-
यैस्ताधर्म्याचिन्तापि या तस्यास्तम्भतिविम्यमेव नियतं
मात्रा विसंवादिनी ॥ ३० ॥ तन्वी शरन्निपथगापुलिने
कपोलां लोलं दृशो रुचिरचञ्चललक्ष्मीरीटा । तद्वन्धनाय
सुचिरापितसुभ्रुचापचाण्डालपाशदुगलाघव शन्य-

धनुष इतनी भीहोंके समान है, इसका शरीर सुन्दरताकी दूकान
है और इस सुन्दरके छोठ और शरीरमें जनाका रंसाप है
इसलिये इसका वर्णन केवल कामदेव ही तब कर सकता है
जब वह कहीं जाकर वर्णन करनेकी चतुराई सीख ले ॥ २४ ॥
महाने उस नायिकाके शरीरमें जो इतनी सुन्दर जाँघें,
स्तन, मधुरबाणी, बाँहें, हाथ और नाभि बनाई हैं उसका
कारण यह है ■ जब उसने इस कमल-नयनी नायिकाका
मुख बनाया और चारों ओर देखकर उसे अपनी सबसे सुन्दर
कृति समझी उसी समय वे हृदयसे फूल उठे और सहसा काम-
रूपी आसिकी विशाल लपटोंसे जलने लगे । उस पापको दूर
करनेके विचारसे उन्होंने इसकी जाँघोंके रूपमें केलेका लम्भा,
स्तनोंके रूपमें जलके पड़े, बाँहोंके रूपमें अमृतकी लहर,
बाँहोंके रूपमें गदे पत्ते और नाभिके रूपमें तालाव बना दिए
जिनसे ठंडक पाकर कामका ताप दूर किया जा सके ॥ २५ ॥
इस नायिकाके शरीरमें जो देवी भीहों, तिरछी चितवन, कमरका
अभाव और देदे (धँधराले बाल) दिखाई पड़ते हैं उसका
कारण यह है कि जब महाने इस सुन्दर भीहोंवाली नायिकाका
मुखरूपी चन्द्रमा बनाया तब उसकी बाँहोंसे महाने के बैठनेका
आसन (कमल) सिकुड़ गया और महाने उसी सिकुड़े हुए आसनमें
बैठनेसे कस गए । उसी क.के कारण उन्होंने भीहोंका देवा, बाँहोंको
बाँका और केशोंको धँधरावा बना दिया और कमर तो बनाना
ही भूल गए ॥ २६ ॥ यह नवेली इतनी सुन्दर है कि चन्द्रमाकी
बाँहों ही इससे अधिक प्रकार लेनेके लिये इसका झुँह सूँघ रही

है, विम्बाकी ललाई और भी अधिक लाल होनेके लिये इसके
छाँठ चूम रही है, सुन्दर कमलकी कलियोंका शोभा अपनी
बनावट आकर्षक करनेके लिये इसके स्तन लुना चाहती है, लाल
कमलोंका शोभा बड़े आदरसे इसका हाथ पकड़कर खेला रही
है और मूँगेकी दमक और भी अधिक लालिमा पानेके लिये
इस सुनयनके चरियोंकी सेवा कर रही है ॥ २७ ॥ उस नवेलीके
सुगन्ध फैलानेवाले और दमकते हुए आँखोंका शोभाकी तुलना
तभी हो सकती है जब खिले हुए और दमकते हुए साँनेका
पकुरियोंसे सुन्दर रंग और गन्ध फटकर निकलने लगे ॥ २८ ॥
जब उस नवेलीका मुख है ही तब चन्द्रमाका बात चलाना ही
नहीं चाहिए । जब उसकी मुस्कुराहट है ही, तब अमृतका
क्या मूल्य है । जब उसकी आँखें हैं ही तो कमलका हारा ही
समझना चाहिए । जब उसकी बाणामें इतना मिठास है तो
धिकार है मधुका । जब इसका भीह है ही तब कामदेवका धनुष
क्या है । हम और अधिक क्या कहें, सरचा बात ता यह है
कि उस नायिकाके अन्न बनानेके पधान् महाने जितनी भी
सुधि रची है वह सब अनुकरायकी वस्तु हानेके कारण नौरस
हो गई है ॥ २९ ॥ धमृत धारण करनेवाला चन्द्रमा उस
नवेलीके मुखकी समानता कर सकता था किन्तु वह कलकी है,
कामदेवका धनुष भी कुछ आदर पाता किन्तु उसे ता भीहोंने
ही बाँचा दिखा दिया है । यदि उसके नेत्रोंका भँपकी तुलना
कमलोंके साथ करें भी तो वे कुछ-कुछ बूढ़े प्रतिविम्ब-जैसे
मतीत होते हैं ॥ ३० ॥ उस दुबली-पतली नायिकाके शरीरकी

कर्णौ ॥ ३१ ॥ तन्वी श्यामा शिखरिदशना पञ्चविम्बा-
धरोष्ठी मध्ये क्षामा चकितहरिणीऽक्षणा निम्ननाभिः ।
शोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां या तत्र
स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः ॥ ३२ ॥ तमःस्तोमः
पूर्य तदनु सकलः शीतकिरणस्ततः कोकद्वन्द्वं तदनु
च न किञ्चित्पुनरभूत् । अधस्तस्थासर्तस्तदनु कदली-
कारड्युगलं ततोऽघाश्च पद्मां शिव शिव ! विधेः
शिरपरचना ॥ ३३ ॥ तरुणिमनि कलयति कलामनु
मदनधनुर्भूयोः पठत्यग्रे । अधिवसति सकलरुलनामौ-
लिमियं चकितहरिणचलनयना ॥ ३४ ॥ दन्तप्रभापुष्प-
चिता पाणिपल्लवशोभिनी । केशपाशालिवृन्देन सुयेषा
हरिणेषणा ॥ ३५ ॥ दायादन्वं मनसिजधनुर्ध्विलासस्य
धत्ते योगक्षेमो वहति नयनद्वन्द्वमिन्द्रीयराणाम् ।

आकार - गंगाके समान कपोल-रूपी तटपर जो चञ्चल
झोंकोंके रूपमें दो सुन्दर चपल सज्जन हैं, उन्हें बाँधनेके
लिये ही मानो बहुत देरसे सुन्दर झोंहके धनुष रूपी
व्याधने दो जालोंके समान सुने काम कैला दिए हैं ॥ ३१ ॥
मेघकों देखकर पक्ष उसे अपने विरहिणी पत्नीका परिचय
देता है कि 'अलकामें जो पुष्पा-पतली, नन्हें-नन्हें दौतों-
वाली, पके हुए विम्बाके समान लाल-लाल झोंकोंवाली,
पतली कमरवाली, डरी हुई हरिणीके समान झोंकोंवाली, गहरी
भाभिवाली, नितम्बोंके बाँहसे धरे चलनेवाली और स्तनोंके
भारसे कुछ आँगोंको झुकी हुई युवती मुझे दिखाई दे उसे
संसारकी सब युवनियोंमें मझाकी सर्वश्रेष्ठ कृति समझना' ॥ ३२ ॥
शिव शिव ! मझाने यह क्या उटपटाँग रचना की है कि ऊपर
झोंधरेका समूह (केश) बनाया उसके नीचे पूरा चन्द्रमा
(मुख) बना दिया, उसके नीचे चकवेका जोड़ा (स्तन)
बैठा दिया, उसके नीचे रिक स्थान (कमर) छोड़ दिया,
उसके नीचे भँवर (नाभि) बना दी, उसके नीचे दो केलेके
खम्भे (पैर) खड़े कर दिए और नीचे दो कमल (चरण)
लगा दिए हैं ॥ ३३ ॥ चकित हरिणीके समान चञ्चल नेत्रोंवाली
यह नवेली आज जो संसारकी समस्त नवेलियोंकी सिरभीर हो
रही है उसका कारण यह है कि उसने तो अपने युवापनमें
कलाई सीखी किन्तु उसकी झोंहोंने कामदेवके धनुषके साथ-साथ
पहलेसे अध्ययन कर लिया है ॥ ३४ ॥ दौतोंकी चमक-रूपी कृत्तोंसे
सजी हुई, हाथ-रूपी पत्तोंसे सुशोभित और जूदे-रूपी झोंहोंके
समूहसे घिरी हुई मृगनयनी इस समय अत्यन्त सुन्दर लनाके

तद्भावाणां पुनरिह जगज्जैत्रलावण्यभाजामाभात्यग्रे
मलचदस्त्रिलं भ्रानवर्णं सुवर्णम् ॥ ३६ ॥ दीर्घाक्षं शरदि-
न्दुकान्ति वदनं वाहू नतायंसयोः सङ्क्षिप्तं निविडोन्नत-
स्तनमुरः पाश्वे प्रमृष्टे हव । मध्यः पाणिमितो नितम्बि
जघनं पादाधुदग्राङ्गुली छन्दो नर्तयितुर्यथैव मनसः
सृष्टं तथास्या वपुः ॥ ३७ ॥ दृष्टिः कापि सुरा सुधा
स्मितमिदं वक्रं कलानां निधिर्वत्तः कुम्भि भूपौ दृशौ
विजपते धन्वन्तरिः सन्तुषा । कान्तिः श्रीस्त्रियलीत-
रङ्गलदरी नामी गतावर्ततामेतस्थामचिरेण भाविकलने
लावण्यवाराभिर्धौ ॥ ३८ ॥ नयनयुगासेचनकं मानस-
धृत्यापि दुष्प्रापम् । रूपमिदं मदिरास्या मदयति
हृदयं युनोत्यपि च ॥ ३९ ॥ नीलाङ्गानां नयनयुगल-
द्राघिमा दसपत्रः कुम्भावैभौ कुचपरिकरः पूर्वपक्षीच-

समान प्रतीत हो रही है ॥ ३२ ॥ कामदेवका धनुष उस नवेलीके
झोंहोंकी शोभासे अपना नाता जोड़ रहा है, उसके दोनों नेत्र
कमलोंकी देखभाल कर रहे हैं और सम्पूर्ण सौन्दर्यवालोंको
जीतनेवाले उसके झोंहोंके आगे संसारका समस्त स्वर्ग मैला
और छोटा प्रतीत हो रहा है ॥ ३३ ॥ इस नवेलीके झोंहोंको
देखकर ऐसा जान पड़ता है कि संसारको मचानेवाले मझाके
मनमें जैसा-जैसा भाव आता गया धीरे-धीरे इसका शरीर
भी बनना चला गया, जिससे झोंहें बड़ी-बड़ी हो गईं, मुख
शरदके चन्द्रमा-सा सुन्दर हो गया, कंधोंसे बाँहें झुक गईं,
कसी हुई छातीपर कठोर ऊँचे स्तन निकल आए, छाती
दोनों ओर खिंच गई, कमर मुड़ी भरकी रह गई, जघन
नितम्बोंके बीचमें आ गया और उसके पैर ऊँची-ऊँची उँगलियों-
वाले हो गए ॥ ३४ ॥ इस सुन्दरताकी खान नवेलीको देखकर
ऐसा जान पड़ता है कि इस सुन्दरताके समुद्रका शीघ्र ही
मग्न होनेवाला है क्योंकि इसकी दृष्टि ही मदिरा (मत्तवाला
बना देनेवाली) है, इसकी सुसकान ही अमृत है, इसका मुख
ही चन्द्रमा है, इसके दोनों स्तन ही पेशाबत हाथी हैं, इसकी
झोंहें ही मद्यलियाँ हैं, इसकी कृपा ही धन्वन्तरि है, इसके
शरीरकी शोभा ही लक्ष्मी है, इसके पेटपर बनी हुई तीन
सिकुदनें ही लहरें हैं और नाभि पानीकी भँवर है ॥ ३५ ॥
इस मदभरे नयनोंवाली नवेलीका जो सौन्दर्य हमारी झोंहोंको
शांत कर रहा है और जिसके सुन्दरताकी कोई मनसे भी
थाह नहीं पा सकता उसका सौन्दर्य हृदयको जिजाए भी आ
रहा है और जलाए भी आ रहा है ॥ ३६ ॥ उसकी झोंहें

कार । भ्रुविश्रान्तिर्मदनधनुषो विभ्रमानन्ववादीद्वक्त्र-
ज्योत्स्ना शशधररुचं दूषयामास तस्याः ॥ ४० ॥
नेत्रोपान्तघतंसिते श्रुतिपुटे नोलोत्पलं निष्कलं हासधी-
परिकमिते स्तनतटे हारोऽन्यहारः कथम् । पिरडाल-
ककपातनं चरहयोः पोडाफलं तान्नयोर्यामाद्या वपुषि
स्वभावसुरभौ व्यर्थानुलेपव्यथा ॥ ४१ ॥ पदाभ्यामुद्रि-
द्रामधरयति शोभाभ्युज्ज्वलं कराभ्यामादत्ते नवकिस-
लपानामरुणताम् । प्रवालस्य दृष्ट्यां दशनवसनाप्रेण
पिबति स्मितज्योत्स्नापूरैरुपटसति कान्ति हिमरुचेः
॥ ४२ ॥ पदे वाफे प्रमाणे च परां काष्ठामुपागता ।
अतो विद्वज्जनस्यापि स्पृहणीया मृगेक्षणा ॥ ४३ ॥
पानायाधरतोऽमृतं वसतयेऽप्यस्या स्तनमाधरोऽ-
धस्तात्सज्जघनान्तकन्दरधरः सख्याय चक्षुर्मगः ।
ज्यो मन्त्रवरो मनोहरकथा ध्यानाय वक्राभ्युज्ज्वलं

रीले कमलको और उसके स्तन हाथीके मस्तकको निरन्तर
चुनौती दे रहे हैं, उसकी भीड़ें कामदेवके धनुषको तुल्य कर
रही हैं और उसके मुखकी शोभा चन्द्रमाकी चाँदनीकी फीकी
किन्तु बाल रही है ॥ ४० ॥ तिरछी चितवनवासी जिस नवेलीके
कान उसके नेत्रोंकी कोरसे ही पर्याप्त सुरोभित हैं उन्हें भीले
कमलसे सजाना और जिसके स्तन उसको हँसीकी चमकसे
ही सजे हुए हैं उनपर हार पहनाना व्यर्थ है । इसी प्रकार
इसके जो चरण स्वभावसे ही लाल हैं उनमें महाशरका शोक
बाँधनेसे उसे कष्ट ही होगा और उसके जिस शरीरसे स्वाभाविक
सुगन्ध निकलती है उसपर चन्दन आदि लगाना निरर्थक ही
है ॥ ४१ ॥ वह नवेली अपने पैरोंकी छलाईसे खिले हुए लाल
कमलोंकी शोभाको नीचा दिसा रही है, उसके हाथोंकी
खालिमासे नई कोपलोंकी ललाई फीकी जान पड़ रही है,
उसके लाल-खाल ओठोंसे मूँगेकी खालिमा मन्द पड़ रही है
और उसकी मुखकानकी चाँदनी चन्द्रमाकी चाँदनीकी हँसी
उड़ा रही है ॥ ४२ ॥ वह नवेली पद (पैरोंकी चाल), वाक्य
(बोली) और प्रमाण (ऊँचाई) में अत्यन्त बढ़ गई है
इसलिये पद, वाक्य और प्रमाणका पाण्डित्य प्राप्त करनेवाले
विद्वान् भी उस सुगन्धभीको इतना चाहते हैं ॥ ४३ ॥ मेरी
समझमें नहीं आता ॥ इस नवेलीकी देहरूपी तपोभूमिमें
जब साधु-सन्तोंको पीनेके लिये अधराभृत, ऊँचाईपर रहनेके
लिये स्तनरूपी पर्वत, भीतर बन्द होकर रहनेके लिये
अपनरूपी गुफा, मित्रताके लिये नेत्ररूपी मृग, अप करनेके

देहतपःस्थले सति कथं सन्तो वनान्तं गताः ॥ ४४ ॥
प्रत्यङ्गमस्यामभिदेन रत्नां कर्तुं मघोनेत्र निजालम्बितम् ।
वज्रञ्च भूपामणिमृनिधारि नियोजितं तद्युतिकामु-
कञ्च ॥ ४५ ॥ कलायते कुचद्वन्द्वमियं हेमलतायते ।
अङ्गानि कुसुमायन्ते मनो मे भ्रमरायते ॥ ४६ ॥ वन्धु-
कवन्धुरधरः सिनकेतकामं चक्षुर्मधुकलिकामधुरः
कपोलः । दन्तावली विजितदाडिमरीजराजिगस्थ
पुनर्यिकचपङ्कजदत्तदास्यम् ॥ ४७ ॥ बाहू हौ च
मृणालमास्यकमलं लावण्यलीलाजलं ध्रुवोत्तीर्थाशिला
च नेत्रशफरीधम्मिल्लशैवालकम् । कान्तायाः स्तनचक्र-
वाक्युगलं कन्दर्पवाणानलैर्दधानामवगाहनाय विधना
रस्यं सरो निर्मितम् ॥ ४८ ॥ भ्रुभ्रुमसुशैर्धनुर्दृक्कि-
तज्यं वाणाः कटाक्षाः कुटिला नितान्तम् । तथापि
युनां हृदयं भिनत्ति कोऽयं विलासो युयतीजनस्य

लिये उसकी मनोहर चचांके मन्त्र और ध्यान करनेके लिये
उसका सुन्दर मुख कमल ॥ ई तब वे लोग वनमें क्या
करने जाते हैं ॥ ४४ ॥ इस भायिकाने अपने प्रत्येक अङ्गपर जो
हीरेके आभूषण पहने हैं उन्हें देखकर प्रतीत होता है कि इस
नवेलीके प्रत्येक अङ्गकी रक्षा करनेके लिये इन्द्रने इन हीरोंके
रूपमें अपना वज्र स्थापित कर दिया है और उन हीरोंकी जो
गोल-गोल चमक ॥ यही मानो इन्द्रका धनुष है जो उसके
आँखोंकी रक्षा करनेमें बरुका साथ दे रहा है ॥ ४५ ॥ वह
नवेली सोनेकी लता बनती जा रही है, इसके अङ्ग अङ्ग फूलसे
खिले जा रहे हैं, इसके दोनों स्तन कलके समान बढ़ते जा रहे
और मेरा मन ही इसपर भीरा बना जा रहा है ॥ ४६ ॥ इस
नवेलीका नीचेका ओठ जपाकुसुमके समान लाल है, आँखें
स्वच्छ केवड़ेके फूलके समान खिली हुई हैं, गाल महुवेकी
कलीके समान गोल हैं, दाँतोंकी पंक्ति अनारके बीजोंकी नीचा
दिसा रही है और इसका हँसता हुआ मुख खिले हुए कमलको
लजा रहा है ॥ ४७ ॥ इस नवेलीको सुन्दर तालाब समझना
चाहिए जिते गङ्गाने कामके बाणोंकी शक्तिसे जले हुए लोगोंको
डुबकी जगानेके लिये बना दिया है और जिसमें दोनों बाँहें ही
कमलकी गाल हैं, मुख ही कमल है, सुन्दरता ही जल
है, नितम्ब ही चट्टान है, आँखें ही मज्जलियाँ हैं, केशपाश
ही सेवार है और स्तन ही चकवा-चककी हैं ॥ ४८ ॥ स्त्रियोंको
न जाने कैसी निराखी कला आती है कि वे अपनी भाँहाँके
बिना डोरीवाले धनुषसे चितवनके डेढ़े ही बाण चलाकर

॥ ४६ ॥ भ्रूश्चित्ररेखा च तिलोत्तमास्या नासा च रम्भा
च यदुरुचिः । दृष्टा ततः पूरयतीत्येकानेकाप्सरः-
प्रेक्षणकौतुकानि ॥ ४७ ॥ भृङ्गालीमुदरे क्षिपन्ति शतशः
पद्मानि शङ्खीमिव प्रत्यागच्छन्ति लङ्घनार्थम् । रुद्रोमा-
ङ्गलं चन्द्रमा । चक्रेणापहते कुरङ्गसुदृशस्त्रैलोक्यरूपो-
चये प्रत्याघर्तनयाञ्छयेव कति न क्लेशं समातन्वते
॥ ४८ ॥ मधुरः सुधावदधरः पल्लवतुल्योऽतिपेलवः
पाणिः । चकितमृगलोचनाभ्यां सदृशी चपले च लोचने
तस्याः ॥ ४९ ॥ मध्यं विष्णुपदं कुर्वी शिषपदं वक्रं
विधातुः पदं धम्मिल्लः सुमनःपदं प्रविलसत्काञ्ची
नितम्बस्थली । धाणी चेन्मधुराधरोऽरुणधरः श्रीरङ्ग-
भूमिर्ध्वपुस्तस्याः किं कथयामि पुरयचरितं मान्या
सदा निर्जरैः ॥ ५० ॥ मुक्ताः विद्रुममन्तरा मधुरसः

पुष्पं परं धूर्वहं मालेयद्यतिमण्डले खलु तयोरेकात्मिका
नार्हवे । तच्चोदञ्चति शङ्खमूर्ध्नि न पुनः पूर्वचलाभ्य-
स्तरे तानीमानि विकल्पयन्ति त इमे येषां न सा
दृक्पथे ॥ ५१ ॥ मुखं यदि किमिन्दुना यदि चलाञ्चले
लोचने किमुत्पलकदम्बकैर्यदि तरङ्गभङ्गी भवौ । किमा-
त्मभवधन्वना यदि सुसंयताः कुन्तलाः किमम्बुदह-
डम्बरैर्यदि तनूरियं किं श्रिया ॥ ५२ ॥ मुखेन चन्द्र-
कान्तेन महानीलैः शिरोरुहैः । पादाभ्यां पद्मरागाभ्यां
रेजे रत्नमयी च सा ॥ ५३ ॥ यतो यतोऽङ्गावपयाति
कञ्जुकं ततस्ततः स्वर्णमरीचिबीजयः । यतो यतोऽस्या
निपनन्ति दृष्ट्यस्ततस्ततः श्यामसरोजवृष्टयः ॥ ५४ ॥
यक्षीर्धाम्बु मुक्ताम्बुजासवरसो नेत्रे नयेन्द्रोदरे दन्तश्रे-
णिरक्षरिडतास्तचयो दूर्वा च रोमावली । उज्ज्वलं च

सुवर्णके हुद्दय वेध वासती है ॥ ४६ ॥ इस नवेलीको देख
लेनेपर अपनेक अप्सराओंके दर्शनकी सब उमङ्ग डण्डी पड़ जाती
है क्योंकि इसकी भीड़ ही चित्ररेखा नामकी अप्सरा (सुन्दर
रेखावाली) है, इसकी नाक ही भिल्लान्तमा (तिलके फूलसे
भी सुन्दर, भिल्लान्तमा अप्सरा) है और इसकी जड़ें ही रम्भा
(केला, अप्सरा) हैं ॥ ४७ ॥ उस मृगवर्णीके जिस मुखने
संसारकी सम्पूर्ण सुन्दरता लीच ली है उसे लीटा लेनेके लिये
कीन-कीन व्याकुल नहीं हो रहे हैं ? देखो, उस नायिकाके
मुखपर सुन्दर काले नेत्र देखकर कमलोंकी भी यह भाव उठा
कि मैं भी वैसा ही सुन्दर बन जाऊँ और इसलिये वे सूरोंके
समान कट देनेवाले भीरोंके समूहको अपने पेटमें बसा रहे हैं ।
उपर चन्द्रमा भी उसके मुखकी चमक पानेके लिये बार-बार
आकाश-रुनी भाँगतमें आ-जा रहा है ॥ ४८ ॥ इस नवेलीका
नाथेका श्रोत्र अमृतके समान मधुर है, उसके हाथ पानेके समान
अत्यन्त कोमल हैं और उसके नेत्र चकित हरिणके नेत्रोंके
समान चञ्चल हैं ॥ ४९ ॥ इस नवेलीकी कमर विष्णुपद
(शून्य) है, इसके स्तन शिषपद (कैलासके समान उठे हुए)
हैं, इसका मुख मङ्गलाका स्थान (कमलके समान खिला हुआ
और सुन्दर) है, इसका जूड़ा देवताओं (फूलों) का स्थान
है, इसके नितम्बमें काञ्ची (करघनी, काञ्ची नगरी) है, इसकी
मधुर धाणी ही सरस्वती है, इसके अधर अरुण (सूर्यकी
लालिमा) धारण किए हुए हैं तथा इसकी देह श्री-रङ्गभूमि
(लक्ष्मीका नृत्यस्थल, शोभासे पूर्ण) है । इसलिये जिसका
आदर देवतातक करते हैं उसके पवित्र आचरणको भी क्या

बतानेकी आवश्यकता है ॥ ५० ॥ जिस लोगोंने उस नवेलीको
भर घोंसल नहीं देखा है वे उसे दूरसे देखकर ऐसा ही तर्क
करते हैं कि मोनी (दाँत) और मूंगे (धोठोंके बीचमें ही
वास्तविक मकरन्द) चधरायुन रहना है, फूल भी केवल
मकरन्दका भार डोले हैं । वे मोनी और मूंगे भी चन्द्रमण्डल
(मुख) में साथ-साथ रहते हैं समुद्रमें नहीं और वह
चन्द्रमण्डल भी शङ्ख (गले) के ऊपर है, उदयावस्यपर नहीं
॥ ५१ ॥ जब इस नवेलीका मुख है ही तब चन्द्रमाका क्या
प्रयोजन है, इसकी चञ्चल आँखोंके आगे नीलकमलका क्या
मूल्य है, इसकी निरली भीलोंके होते हुए कामके धनुषकी
क्या आवश्यकता है, इसके सुन्दर कंधे हुए गुरुके आगे मेघ
भी व्यर्थ हैं और जब इस नवेलीका यह सुन्दर शरीर है ही तब
अधमीकी काँई आवश्यकता नहीं ॥ ५२ ॥ चन्द्रमाके समान
चमकीले (चन्द्रकान्त मणिके समान) मुखसे, अत्यन्त नीले
(महानीलमणिके समान) काले बालोंसे और पद्मराग (पोखराज)
के समान पैरोंसे वह ऐसी जान पड़ती है मानो रत्न-जड़ी हो
॥ ५३ ॥ इस गोरी नवेलीके जिस-जिस अङ्ग परसे साड़ी
हटती है वहाँ-वहाँसे सुनहरी किरणोंकी लहरें निकलने लगती
हैं और जिधर-जिधर वह देखती है उधर-उधर नीले कमलोंकी
बर्षा होने लगती है ॥ ५४ ॥ जान पड़ता है कि इस नवेलीने
अपने शरीरके अङ्गोंमें कामदेवकी पूजाके लिये सब
सामग्री जुटा ली है क्योंकि इसके मुखरूपी कमलका रस ही
गंगाजल है, इसके नेत्र ही नये नीले कमलके फूल हैं, इसके
दाँतोंकी पंक्ति ही लड़े चावल (अण्ड) हैं, इसकी रोमावली

कुचद्वयं फलयुगं पात्रं कराम्भोरुहं तन्मन्ये मदनार्च-
नाहितमतिः स्वाङ्गोपहारैरियम् ॥ ५३ ॥ यशः पदाङ्ग-
प्रमुखौ मुखश्च विभक्तिं पूर्णन्दुचतुष्टयं या । कलाचतुः-
पट्टिरुपैति वासं तस्यां कथं सुभ्रूवि नाम नास्याम् ॥ ५४ ॥ येनोत्पलानि च शशी च सृणालिकाश्च रम्भा-
लताश्च कमलानि च निर्मितानि । नूनं स एव मृगशा-
वदशोऽपि वेधाः सृष्टिक्रमो यदयमेकतया चकास्ति ॥ ६० ॥ राजीव जीवसि मुधा न सुधाकर त्वमस्या-
स्त्वमः पदनखस्य कुतो मुखस्य । अग्रे दशोर्मृगदशः
कतमः कुरङ्गस्तस्वजनं त्वमपि किं जनरञ्जनाय ॥ ६१ ॥
वक्रं निर्मलमुद्रता कुचतटी मध्यप्रदेशः कृशः श्रोणी-
मण्डलमङ्गनाकुलगुरोर्द्वयस्य सिंहासनम् । कृत्या चारु-
दण्डतुष्टयमिदं तुष्टाय मध्ये विधिर्हर्षाद्गद्गदपद्य-
वनागर्भश्चतुर्भिर्मुखैः ॥ ६२ ॥ वक्त्रं गुरुत्वं यदि ते

सुन्दःशास्त्रविदो विदुः । कठिते कुचयुग्मेऽस्याः घटनां
किञ्चु हीयते ॥ ६३ ॥ यदन्यस्या दृष्टिर्विकचनवनीलो-
त्पलतुलामखण्डव्याभिरुपां यदनमिदमिन्द्राः कल-
यति । कुर्वा किञ्चिन्मीलत्कमलतुलनां कन्दलयनस्त-
मःशोभां चित्रं चिकुरनिकुरम्यं हि कुरुते ॥ ६४ ॥
यापी कापि स्फुरति गगनं तत्परं सूक्ष्मपद्या सांपाना-
लौमधिगतवती काञ्चनीमैन्द्रनीली । अग्रे शैलां सुकृति-
सुगमौ चन्दनञ्जुन्ददेशां तन्नन्यानां सुलभममृतं सन्नि-
धानान्सुधांशोः ॥ ६५ ॥ विकसन्नेत्रनीलाञ्जे नथा
तन्व्याः स्तनद्वयी । तव दत्तां सदा मादं लसत्तरलहा-
रिणी ॥ ६६ ॥ विनयाम्भोवाहं यहलरुचिर्दीप्ताभ्यरत्नला-
सिद्धिलेखा हेमघुतिचिन्तिगम्या विलसति । विनय
स्वर्गज्ञां नभसि रभसव्यग्रशफरीपरीयत्सैस्सार्धं स्फुरन्नि
विकसेन्द्रीवरयनम् ॥ ६७ ॥ धरणीयन्धमहीनं कृत्वा

ही दूबके मेंकुने हैं, इसके दोनों बड़े-बड़े स्तन ही फल हैं और
इसके कर-कमल ही पंचपात्र है ॥ ५३ ॥ जब इस नवेलीमें
एक तो उसके यशका चन्द्रमा, पैरके चैंगूँइके नन्नोंके दो चन्द्रमा
और मुखरूपी एक चन्द्रमा मिलकर चार-चार चन्द्रमा हैं तब
इस सुन्दर भीहोंवाली नायिकामें सोलह कलावाले चन्द्रमासे
चौगुनी अर्थात् चौसठ कलाएँ क्यों न निवास करें ॥ ५४ ॥
जिस मङ्गलाने नीला कमल, चन्द्रमा, कमलनाभ, केला तथा
कमल बनाया उसीने यह हरिणके नन्नेकी आँखोंके समान
नेत्रोंवाली नायिका भी बनाई है क्योंकि इन सभीके बनानेका
रह एक-सा ही है अर्थात् ये सभी कीमल और मनोहर
हैं ॥ ५५ ॥ हे कमल ! इस नायिकाके रहते तुम स्वयं भी रहे
हो । हे चन्द्रमा ! तुम जब इस नवेलीके पैरके नलकी भी
बराबरी नहीं कर सकते तब मुखकी बराबरीकी तो बात ही क्या
है ! इस मृगनयनीकी आँखोंके सामने हरिणकी क्या बिसात है !
हे रंजन ! तुम भी क्यों स्वयं लोगोंको प्रसन्न करनेका प्रयत्न
कर रहे हो क्योंकि तुम्हारा भी उसके नेत्रोंके सामने कोई
महत्त्व नहीं है ॥ ५६ ॥ जब मङ्गलाने उस नवेलीके शरीरमें सुन्दर
मुख, ऊँचे स्तन, पतली कमर और स्त्रियोंके कुलगुरु कामदेवका
सिंहासन नितम्ब बना लिया तब वे इतने फूले नहीं समाए
और अपने चारों मुखोंसे गद्य और पद्यमें स्वयं अपनी प्रशंसा
करने लगे ॥ ५७ ॥ सुन्द-शास्त्रके पंडित लोग यदि तुम्हारे
वक्त्र (मुख) तथा वक्त्र (शब्द) में गुरुता (महत्त्व और गुरु-
मात्रा) मानते हैं तब इस नायिकाके दोनों कंठोर स्तनोंमें

लौग गुरुता (विशालता) बनाने हों तो उनका अपराध ही
क्या है । क्योंकि जब वक्त्र शब्दमें संयुक्ताक्षर 'व' के पहले
आनेवाला 'व' अक्षर गुरु हो सकता है तब जो स्तन एक साथ
वो हैं वे गुरु (शीघ्र) क्यों न कहलावें ॥ ५८ ॥ इसकी
चितवन लिले हुए नीले कमलके समान जान पड़ रही है,
इसका मुख पूरे चन्द्रमाके समान शोभा दे रहा है इसके स्तन
मुँदे हुए कमलके समान दिखाई पड़ रहे हैं और इसके केश
अन्धकारकी विचित्र शोभा फैलाने हैं ॥ ५९ ॥ एक सुन्दरीको
देखकर कवि कल्पना करता है कि आकाश (सूक्ष्म तथा
अलक्षित कमर) में एक बावड़ी (नाभि) है, उसके ऊपर
सोनेकी सीढ़ियों (उदरकी श्रिजली) से सजी हुई इन्द्रनील-
मणिकी बनी सकरी बटिया (रोमावली) है । उसके ऊपर
स्वभावसे ही सुन्दर पर्वत (स्तन) हैं जो चन्द्रमा (मुख) के
समीपतक पहुँचे हुए हैं । अतः जो वहाँ पहुँच जाता है उसे
अमृत (अक्षररस) अनायास मिल ही जाता है ॥ ६० ॥
उस नवेलीके चमकते हुए चञ्चल तथा मनोहर नेत्र-रूपी दो
नीले कमल तथा हिलते हुए हारसे सुशोभित उसके दोनों
स्तन तुम्हें सदा आनन्द दें ॥ ६१ ॥ एक नवेलीकी सुन्दरता
और उसकी आँखोंका वर्णन करते हुए कवि कहता है कि
' बिना बादलके ही सुन्दर स्वच्छ अम्बरतल (आकाश, वक्त्रके
नीचे) से सोनेके समान दमकती हुई बिजली (शरीरकी
गोराई) चमक रही है और आकाश-नागाके बिना ही आकाश
(ऊपर मुख) में सहसा बरी हुई मछलियों (आँखके कोयों)

नेत्रान्तमचलरूपं तम् । कुचमस्याः स्वीकुर्वन्पुरुषो
लीलां बह्व्यहो शम्भोः ॥ ६८ ॥ वेणी विडम्बयति
मत्तमधुव्रतालीमङ्गीकरोति गुणमैन्दवमास्यमस्याः ।
बाहू मृणाललतिकाश्रियमाश्रयेते पुङ्खानुपङ्खयति काम-
शरान्कटाक्षः ॥ ६९ ॥ वेणीवेल्लनमङ्गलं किमु वलन्ने-
लीदृशो मध्यमं संन्यानं किमिदं विवृत्तिविषमाद्वासः
स्तनान्छंसते । नृत्यन्तीव किमन्तिके वलितयोः स्निग्धा
दृशोः कान्तयः साकूतस्मितगर्भितं किमु मुखं वफतुं
सखीं वाञ्छति ॥ ७० ॥ व्याकोशकोकनदशोककरः
करोऽयं खेलञ्चकोरमदचोरमिदञ्च चक्षुः । उद्भिन्नवि-
द्रुमरहस्यहरोऽधरोऽयं तत्स्यादरण्यमपि धण्यमवश्य-
मस्याः ॥ ७१ ॥ संन्यस्तभूषापि नवैव नित्यं विनापि
हारं हसतीव कान्त्या । मदं विनापि स्खलतीव भावै-

र्वाचं विना व्याहरतीव दृष्टा ॥ ७२ ॥ सखीपमाद्रव्य-
समुच्चयेन यथाप्रदेशं विनिवेशितेन । सा निमिता
विश्वसृजा प्रयत्नादेकस्थसौन्दर्यदिदृक्षयेव ॥ ७३ ॥ सा
कान्ता यदि का सुवर्णलतिका पादौ यदाऽस्याः पुनः
किं पद्यं कुचमण्डलं यदि पुनः कल्पद्रुमीयं फलम् ।
पाणी चेत्किमु तर्हि विद्रुमदलं पाणी यदा का सुधा
तस्याश्चेन्ननु सङ्गमः किमु पुनः स्वर्गोऽधिकं स्यात्सुखम्
॥ ७४ ॥ सा दुग्धमुग्धमधुरञ्जुविरङ्गयतिस्ते लोचने
तरुणकेतकपत्रदीर्घे । कम्बोविडम्बनकरश्च स एव
कण्ठः सैवेयमिन्दुवदना मदनायुधं वा ॥ ७५ ॥ सा
दृष्टा यैर्न वा दृष्टा मुपितास्सममेव ते । हृद्यं हृतमे-
केषामप्येषाञ्चक्षुषोः फलम् ॥ ७६ ॥ सा रामणीयकमि-
शेरधिदेवता वा सौम्यरसारसमुदायनिकेतनं वा ।

के कदुक्के के साथ लिला हुआ नीलकमल (गोलोंकी पलकों) का
बन दिखाई पड़ रहा है' ॥ ६८ ॥ जो पुरुष उस नवेलीके
छोटी-रूपी सर्पको, उसके काले नेत्रोंके कोर-रूपी कृष्ण (विष्णु)
को और उसके स्तन-रूपी पर्वतको धारण कर लेता है वह
शाकात् शिवजीके समान बन जाता है क्योंकि शिवजी शरीरपर
सर्प धारण करते हैं हृदयमें विष्णुका ध्यान करते हैं और कैलास
पर्वतपर निवास करते हैं ॥ ६९ ॥ इस नवेलीकी छोटी देखकर
मतवाले भीरोंका भ्रम हो जाता है, इसके मुखने चन्द्रमाके सब
गुण इधिया लिए हैं, इसकी नाँहें कमलनालके समान हैं और
इसकी चितवन कामदेवके बाणोंका काम करने लगी है ॥ ७० ॥
अपनी सखीसे बात करनेके लिये जाती हुई नवेलीको देखकर
कवि कहता है कि 'उस मृगमयनीकी लहराती हुई छोटी क्या
कमर-रूपी आँगनकी और बढ़ी जा रही है ? इसके शरीरको
ठकनेवाला क्या क्या इसके स्तनोंसे नीचे सरका जा रहा है ?
क्या इसके गोलोंकी सुन्दर शोभा इसकी चञ्चल चित्रवनके पास
नाच रही है ? और क्या इसका मेद और मुस्कान-भरा मुख
सखीसे कुछ बोलनेके लिये उतावला हो रहा है' ॥ ७१ ॥ इस
नवेलीने निश्चय ही सारे जंगलको अपने वशमें कर लिया है
इसीसे तो इसके हाथोंने लिये हुए कमलको चिन्तामें डाल
दिया है, इसके नेत्रोंने खेलते हुए चकोरका अभिमान चूर किया
है और इसके ये अचर पके हुए भूँगकी शोभाको भी नीचा
दिखा रहे हैं ॥ ७२ ॥ वह नवेली बिना भूषणोंके भी सदा
नई सी लगती है, बिना हार पहने भी वह अपनी सुन्दरतासे
ही हँसती-सी जान पड़ती है, मदका सेवन न करनेपर

भी वह डगमग पैर रखती चलती है और बिना बोले ही
देखनेपर ऐसी जान पड़ती है मानो वह बातचीत कर रही
हो ॥ ७३ ॥ मझाने एक ही स्थानपर सब सौम्य देखनेकी
इच्छासे कल्पन्त परिभ्रम करके उस नवेलीका निमाण किया
है और इसीलिये उसके शरीरमें यथास्थान उपमाके सब पदार्थ
इकट्ठे करके स्थापित कर दिए हैं ॥ ७४ ॥ उस म्रियतमाकी
देहके सामने सोनेकी जताका क्या मूल्य है, उसके पैरोंके आगे
कमलका क्या महत्त्व है, उसके स्तनोंके सम्मुख कल्पवृक्षके
फल किस कामके हैं, उसके कोमल हाथोंके सामने भूँगके बने
हुए पर्णोंका क्या आश्र हो सकता है और उसकी मधुर बोलीके
सामने अमृत लेकर क्या होगा ? ऐसी अनुपम सुन्दरीका
यदि कहीं सम्भोग मिल जाय तब क्या स्वर्गमें उससे बढ़कर
सुख देनेवाली कोई वस्तु मिल सकेगी ॥ ७५ ॥ इस नवेलीकी
देहम्पी लनामें बुधके समान स्वच्छ और मधुर शोभा है,
इसके नेत्र केतकीके लिये हुए फूलकी पंखुदियोंके समान बढ़े-
बढ़े हैं और इसका गला शङ्खके समान सुन्दर है । इसे देखकर
यह सम्येह होता है कि यह वही चन्द्रमुखी है या कामदेवका
कोई नया अक्ष है ॥ ७६ ॥ उस नवेलीको जिन्होंने देखा है
वे भी उसे नष्ट और जिन्होंने नहीं देखा वे भी, क्योंकि जिसने
देखा उसका तो मन इरण कर लिया गया और जिसने नहीं
देखा उसकी गोलोंका अम्भ लेना व्यर्थ हो गया ॥ ७७ ॥ उस
नवेलीको देखकर ऐसा लगता है कि या तो वह सुन्दरतापर
राज्य करनेवाली उसकी स्वामिनी है या सुन्दरताके सब
तत्त्वोंका एकमात्र भयकार है । देखो मित्र ! मुझे तो ऐसा

तस्यास्सखे नियतमिन्दुसुधामृणालज्योत्स्नादि कारख-
मभून्मदनश्च वेधाः ॥ ७७ ॥ सौरभ्यं मृगलाञ्छने यदि
भवेद्विन्दीवरे घकता माधुर्यं यदि धिद्रुमे तर्लता
कर्मर्षचापे यदि । रम्भायां यदि विद्वन्तीपगमनं प्राप्नोप-
मानं तदा तद्वक्त्रं तद्वीक्षणं तदधरस्तङ्गस्तदुरुदुगम्
॥ ७८ ॥ सौरभमम्भोहृद्यन्मुखस्य कुम्भाविद्य स्तनौ
पीनौ । हृद्यं मदयति यदनं तव शरदिन्दुर्यथा चाले
॥ ७९ ॥ स्निग्धस्मेरुविलोलमुग्धमधुरा यन्नेत्रयोर्विभ्रमा
यद्यामृष्टविलासपञ्चलनिका घमांश्चमाद्गण्डयोः । यच्च
म्राहकदम्पकुड्मलसखी काव्यङ्गके चिक्रिया तसस्यां
किमपि स्फुटं रतिपतेः कोदण्डविस्फुजितम् ॥ ८० ॥
स्निग्धेन्द्रोपलसुन्दरः कचभरो यत्नं सगोत्रं विधोर्व-
क्षोजं मणिकुम्भदम्बरमुपौ मध्योऽस्ति वा नास्ति वा ।
श्रीलीमण्डलमूकदुर्यहमहो शोणाम्जतुल्ये पदे मन्ये

मञ्जुगिरो मरालमहिलाध्येयो गतेर्विभ्रमः ॥ ८१ ॥

नायिकाप्रशंसा

अञ्जनमियतः स्त्रीणां दृशोर्विषं शब्ददावसनि ।
कथमन्यथा तदीयत्वातेऽपि हना युवानः स्युः ॥ १ ॥
अभविष्यस्तपःसिद्धाः स्वपारो यद्वचः परे । नाश-
व्यन्त कुरङ्गान्यो यदि नाय मनोहराः ॥ २ ॥ अस्पृष्टे
राहुभीन्याऽहनि निशि च समे कल्मषच्छाययानं हास-
वासाद्विदूरे समुपचितविभावैभवे हृद्यमन्ये । पाथो-
दाच्छादहीने धरणिनलमतादुर्लभे सर्वलोकाह्वारं
चाप्यादधाने सुमुखि तय मुखपम्यलेशः सुधांशी
॥ ३ ॥ कान्ते त्वन्नेत्रकान्तं पुरु कमलचनं त्वन्मुखस्यो-
पमेयश्चन्द्रः प्रत्यक्षसिद्धः पिककलमपि च त्वन्स्वरस्या-
नुकारि । रम्भाकाण्डस्त्यदूरुच्छविरपि सुलभः कम्ब-
वच्च त्वदीयकराकाराः शिखण्डास्तय कचसदृशास्त-

जान पड़ता है कि चन्द्रमा, अमृत, कमलकी डंढी और चाँदनी
आदि सामग्रीयों लेकर स्वयं कामदेवने ही मक्का बनकर
उसकी रचना की है ॥ ७७ ॥ यदि चन्द्रमामें सुगन्ध बस जाय,
कमलोंमें वीकापन आ जाय, मैंगेमें मिठास भर जाय, काम-
देवका धनुष डगलु हो जाय और केला उलटा हो जाय तब
कहीं ये सब उसके मुख, चितवन, निचले मोठ, भाँड़ और
जोंघोंकी समानता प्राप्त कर सकेंगे ॥ ७८ ॥ हे प्यारी !
तुम्हारे मुखकी सुगन्ध कमलकी गन्धके समान है, तुम्हारे स्तन
धवले समान मधु-मधु है और तुम्हारा मुख शरदके पूर्ण चन्द्रमाके
समान हृद्यको आनन्दसे भस्म कर देता है ॥ ७९ ॥ उस
नवेलीके नेत्रोंकी चितवन प्रेमसे भरी, चञ्चल और मधुर
मुखानसे पूर्ण है, गालोंपर पसीमेकी चूँचें आ निकलनेसे उनपर
बनी हुई सुन्दर चित्रकारी घुँघली पड़ती आ रहो है और उसके
आँखोंमें पके हुए कदम्बके फूलके समान विकार (रोमाञ्च) आने
लगता है । अतः जान पड़ता है कि कामदेवके धनुषकी टङ्कार
उसके शरीरमें गूँज चुकी है ॥ ८० ॥ उस नवेलीके बाल
हृन्नील-मणिके समान चमकीले और भीले हैं, उसका मुँह
चन्द्रमाके समान चमकीला है, उसके स्तन मखियोंसे बने
हुए पदोंकी शोभाको भी फीकी कर रहे हैं, उसकी कमर हतनी
एतसी है कि कहना कठिन हो रहा है कि यह है भी या नहीं,
उसके चितम्ब हतने भारी हो चले हैं कि ज्यों उन्हें लीला
नहीं पाती । उसके पैर कमलके समान लाल हैं और उस
मिठवोलीकी चाल तो ऐसी है कि इंसानियाँ भी वैसी मनोहर

चाल सीखनेके लिये उसका मुँह जोहा करती हैं ॥ ८१ ॥

नायिकाकी प्रशंसा

स्त्रियोंके नेत्रोंमें जिसे आप काजल समझते हैं वह वास्तवमें
विष है इसलिये यदि उस विष (इटि) के तनिकसे छू जाने-
मात्रसे ही युवक मरने लगते हैं तो आश्चर्य क्या है ॥ १ ॥ यदि
संसारमें मनोहर मृगनयनी बालाएँ न रची गई होती तो आज
सिद्ध लोग तपस्या करके दूसरे मक्का बन जाते अर्थात् केवल
तपस्या करनेके ही कारण मक्काजी मक्का नहीं बने हैं वरन्
वे इसलिये मक्का बने हैं कि उन्होंने सुन्दरी नारियोंकी भृति
भी की है । साथ ही इन मृगनयनी बालाओंके कारण सिद्धोंकी
तपस्या नहीं पूरी हो पाती और वे मक्का नहीं बन पाते ॥ २ ॥
हे सुन्दर मुखवाली ! यदि कोई ऐसा निराशा चन्द्रमा उत्पन्न
हो जाय जिसे राहुका डर छू भी न गया हो, जो दिन-रात
एक-सा बना रहे, जिसमें तनिक भी कलङ्ककी छाया न
हो, जिसकी कोई हँसी न उड़ा सके, जिसमें सदा पूरा प्रकाश
भरा रहे, जिसमें अत्यन्त मधुर गन्ध बसी हुई हो, जिसे
बादल कभी ठक न सकें, जो धरतीपर सरलतासे प्राप्त हो
सके और जो समान रूपसे विश्वके सभी प्राणियोंको सुख
पहुँचा सके तब कहीं जाकर वह तुम्हारे मुखकी कुछ-कुछ
समानता प्राप्त कर सकता है ॥ ३ ॥ हे प्यारी ! अत्यन्त
श्रेष्ठ कमल तुम्हारे सुन्दर नेत्रोंके समान हैं, चन्द्रमा प्रत्यक्ष
ही तुम्हारे मुखके समान है, कोपलकी कूक तुम्हारे
स्वरके समान है, केलेके लम्बे तुम्हारी आँखों जैसे चिकने

त्कथं तेऽसमत्वम् ॥ ४ ॥ दृशः सञ्चारमात्रेण हरन्ति
सुदृशो मनः । यदि स्याज्जातु संश्लेषो जीयितेच्छा
पुनः कुतः ॥ ५ ॥ नान्यः स्यान्मादृशः कश्चिद्विधाता
तपसोर्जितः । इत्येव विहिताः कान्ता मुनीनामपि
मोहदाः ॥ ६ ॥ नाभिर्घापी त्रिवलिः सोपानं रोमराजि-
रिन्द्रमणिः । ललिताङ्गया उच्चकुर्वी मदनशिखरबन्ध-
मन्दिराभासौ ॥ ७ ॥ मनः सूक्ष्मं न तद्वद्दुःशक्यं
शिक्षापि कीदृशी । अधापि सुदृशो धन्या दृष्टमात्रा
हरन्ति याः ॥ ८ ॥ मनसिजविहरणविपिनं युवजनम-
नसो वशीकरं शक्यम् । अमृतकलासर्वस्वं कुरङ्गशावक-
विलोलाक्षी ॥ ९ ॥ यष्टिर्नां काञ्चनी सा नहि सुरभि-
धृता नापि कस्तूरिका सा नो कान्ता नाटिजनी सा न
जड (ल) विरहिता नाप्युमा सा हि भीमा । नो

और गोल हैं, शङ्ख तुम्हारे गलेके समान सुन्दर है और
मोर तुम्हारे केश के समान हैं, तब क्याओ तुम्हारी समानता
कहाँ नहीं है ॥ ४ ॥ जो सुनयनी बालाएँ अपनी चितवन
बलाकर ही मन लेती हैं उनका यदि कहीं आसिद्धन प्राप्त
हो जाय तब तो इनकी नृति हो जाय कि जीनेतककी इच्छा
न रह जाय ॥ ५ ॥ महाने मुनियोंतकका मन मोहित
कर डालनेवाली तरुणियोंकी रचना मानो इस अभिमानसे की
कि कोई तपस्या करके भी मुक्त जैसा रचयिता नहीं बन सकता
॥ ६ ॥ मनोहर बालाके सब अङ्ग अत्यन्त सुन्दर हैं । इसकी
माभि मागो याच्यी है, जिसके ऊपर गनी हुई तीन सखबटें
ही सीढ़ियाँ हैं, रोमावली ही इन्द्रजीलमखिले जड़ी हुई यटिया
हैं और उसके ऊँचे-ऊँचे स्तन मानो कामदेवके निवासके
लिगे ऊँचे शिखरवाले मन्दिर हैं ॥ ७ ॥ मन इतना सूक्ष्म
है कि किसी प्रकारकी शिक्षा पाकर भी कोई उसे वेध नहीं
सकता (जान नहीं सकता) किन्तु धन्य है वे सुनयनी नारियाँ
जो केवल देखने-मात्रसे उस मनको हर लेती हैं ॥ ८ ॥ कवि
सोचता है कि मृगके छीनेके नेत्रोंके समान चञ्चल नेत्रोंवाली
यह बाला कामदेवके विहारका उपवन है या युवकोंका मन
कैसावेचला । कोई यन्त्र है या सम्पूर्ण कलाओंसे भरा हुआ
अमृत है ॥ ९ ॥ एक नवेलीको देखकर कवि सोचता है कि
'यह सोनेकी छड़ी भी नहीं है, न यह सुगन्ध-भरी कस्तूरी
ही है, न यह शिखर-लता ही है, न यह कमलनी ही है
क्योंकि वह जल-रहित नहीं होती, न यह पार्वती है क्योंकि वे
तो बहुत भयङ्कर (काली) हैं, यह लक्ष्मी भी नहीं है क्योंकि

पद्मासन पर नहीं बैठी है, यह गायत्री भी नहीं है क्योंकि उसका
ठिकाना वेदोंमें भी नहीं बताया है, तब यह कौन है जो हमें
अपनी ओर आकृष्ट किए डाल रही है !' ॥ १० ॥ उस सोनेकी
लता (नवेली) की जप हो जिसके ऊपर (सिरपर) मेपकी
घटाएँ (केश) उमड़ रही हैं, नीचे आधा चन्द्रमा (माथा)
चमक रहा है, उससे नीचे दो कमल (नेत्र) खिले हुए हैं,
उससे नीचे कामदेवकी विजय-धात्रामें बजनेवाली भेरी (नाक)
विराजमान है, उससे नीचे मूँगकी पंखुड़ियाँ हैं और उससे भी
नीचे वीणाके समान मधुर वाद्योंवाला शङ्ख (गला) शोभा दे
रहा है ॥ ११ ॥ उस पतली कामिनीकी देह ऐसी सोनेकी
लता है जिसपर उठे हुए स्तन ऐसे लगते हैं मानो चकबेका
जोड़ा बैठा हो, मुख ऐसा जगता है मानो उस लतापर खिली
हुआ शरद फलतुका अमृतमय पुष्प चन्द्र हो और जिसके
खिलते (हैंसते) ही ऐसा जान पड़ता है मानो कामदेवने
अपने चक्र-शङ्ख सँभाल लिए हों ॥ १२ ॥ तपस्वियोंको तभी-
तक अपनी इन्द्रियाँ अपने वशमें समझनी चाहिएँ जबतक
वे किसी युवतीके कमलनयनोंके आलोक नहीं बन जाते ॥ १३ ॥
वे लोग मूर्ख हैं जो झूठे ही नारीको 'सुमुखी' कहते हैं । हमें तो
आजतक यही समझमें नहीं आया कि उनमें सुमुखी होनेके
लक्षण क्या हैं । उल्टे हमने तो यह देखा है कि विदेशमें गए
पथिक जहाँ अपनी नारीको स्मरण करते हैं वहाँ तुरन्त उनके
हृदयमें एक विचित्र दाह उत्पन्न होकर बढ़ने लगता है ॥ १४ ॥
केवल मूर्ख लोग इन नवेलियोंको सुनयनी कहते हैं क्योंकि
वे उल्टे बालवाली नवेलियाँ कैसे सुनयनी कही जा सकती हैं,

पद्मासनपर नहीं बैठी है, यह गायत्री भी नहीं है क्योंकि उसका
ठिकाना वेदोंमें भी नहीं बताया है, तब यह कौन है जो हमें
अपनी ओर आकृष्ट किए डाल रही है !' ॥ १० ॥ उस सोनेकी
लता (नवेली) की जप हो जिसके ऊपर (सिरपर) मेपकी
घटाएँ (केश) उमड़ रही हैं, नीचे आधा चन्द्रमा (माथा)
चमक रहा है, उससे नीचे दो कमल (नेत्र) खिले हुए हैं,
उससे नीचे कामदेवकी विजय-धात्रामें बजनेवाली भेरी (नाक)
विराजमान है, उससे नीचे मूँगकी पंखुड़ियाँ हैं और उससे भी
नीचे वीणाके समान मधुर वाद्योंवाला शङ्ख (गला) शोभा दे
रहा है ॥ ११ ॥ उस पतली कामिनीकी देह ऐसी सोनेकी
लता है जिसपर उठे हुए स्तन ऐसे लगते हैं मानो चकबेका
जोड़ा बैठा हो, मुख ऐसा जगता है मानो उस लतापर खिली
हुआ शरद फलतुका अमृतमय पुष्प चन्द्र हो और जिसके
खिलते (हैंसते) ही ऐसा जान पड़ता है मानो कामदेवने
अपने चक्र-शङ्ख सँभाल लिए हों ॥ १२ ॥ तपस्वियोंको तभी-
तक अपनी इन्द्रियाँ अपने वशमें समझनी चाहिएँ जबतक
वे किसी युवतीके कमलनयनोंके आलोक नहीं बन जाते ॥ १३ ॥
वे लोग मूर्ख हैं जो झूठे ही नारीको 'सुमुखी' कहते हैं । हमें तो
आजतक यही समझमें नहीं आया कि उनमें सुमुखी होनेके
लक्षण क्या हैं । उल्टे हमने तो यह देखा है कि विदेशमें गए
पथिक जहाँ अपनी नारीको स्मरण करते हैं वहाँ तुरन्त उनके
हृदयमें एक विचित्र दाह उत्पन्न होकर बढ़ने लगता है ॥ १४ ॥
केवल मूर्ख लोग इन नवेलियोंको सुनयनी कहते हैं क्योंकि
वे उल्टे बालवाली नवेलियाँ कैसे सुनयनी कही जा सकती हैं,

तथापि मूढा वदन्ति हन्त तथा । यद्दर्शनमुपयाताः
सफला विकला महान्तोऽपि ॥ १५ ॥ शृङ्गाररस-
शाला भव्याभरणं नितम्बधस्ताः । रतिरियं परि-
स्फुरन्ती हरति न बाला मनः कस्य ॥ १६ ॥ सान्द्र्य-
सारमपहृत्य यतस्ततोऽपि निर्माति पद्मनयनां दुर्दृष्टिः
कथञ्चित् । ज्योत्स्नाकरादिषु यद्भरराचिरास्ते तत्स-
म्भवो हि तत एव न चाप्यथा स्यात् ॥ १७ ॥ हृत्तिरिव
होलिकायां विद्युदिव द्योतमानकान्तिवया । शारदया-
वर्णचन्द्रं विद्यार्यं निष्कासितेय सुतनुः ॥ १८ ॥

नायिकाभेदाः

स्वीयामुग्धा—कुलयालिकायाः प्रेक्ष्य यौवनलाय-
णविभ्रमविलासाः । प्रयसन्तीय प्रयसिते आगच्छ-
न्तीय प्रिये शुद्धमगते ॥ १ ॥ स्वीयामभ्या—हलितमार्ग-
धारमुग्धं भ्रमितं विरहितविलाससुच्छायम् । भणितं

जिनकी दृष्टि पड़ते ही पड़ेसे वड़े लोग भी भाकुल हो जाते हैं
॥ १५ ॥ यह सुन्दर आभूषणोंसे सजी, बड़े-बड़े नितम्बोंवाली
तथा रतिकी भँति चमकनेवाली बाला किसका मन नहीं
हर लेती जो शृङ्गार रसके मदिरालयके समान मदिर है ॥ १६ ॥
मूढा इधर-उधरसे सौन्दर्यका तत्त्व चुराकर तब कहीं किसी
कमलनयनीको बनाता है । ये जो आकाशमें चमकनेवाले
चन्द्रमा धारि हैं वे सब भी तो उसी कमलनयनीसे ठापन्न हुए
हैं और वहींसे पने हैं, नहीं तो ये किसी दूसरे प्रकारके होते
अर्थात् हूतने न चमकते ॥ १७ ॥ यह सुन्दर देहवाली नवेली
ऐसी जान पड़ती है मावो जलती हुई होलीकी चिनगारी हो
या चमकती हुई कान्तिसे भरी बिजली हो या गरद अतुकी
पृथ्वीमें उदय हुए चन्द्रमाका पेट फाड़कर उससे निकाली
गई हो ॥ १८ ॥

नायिकाओंके भेद

मुग्धा स्वीया : इस कुलीन युवतीके यौवनकी सुन्दरता,
चमक-दमक और हाव-भाव तो देखो कि जब उसका
प्राधान्यधारा घर रहता है तब तो वे इस युवतीमें रहते हैं और
जब प्रियतम बाहर चलने लगता है तो वे उसके साथ ही
चल देते हैं ॥ १ ॥ स्वीया मभ्या : वे लोग धन्य हैं जिनके
घरोंमें उनकी छियाँ सदा अनायास ही भोजी हँसी हँसती
रहती हैं, विजासकी सामग्रियोंसे शोभित होकर भी वे प्रसन्न
घूमती हैं और सदा स्वभावसे ही सरल तथा निरञ्जल वाणी
बोलती हैं ॥ २ ॥ स्वीया प्रगल्भा : वे लोग धन्य हैं जिनके

स्वभावसरल धन्यानां गृहे कलत्राणाम् ॥ २ ॥ स्वीया-
प्रगल्भा—लज्जापर्याप्तमसाधनानि पर्युत्तिनिष्पिपासा-
नि । अश्विनयदुर्मर्धांसि धन्यानां गृहे कलत्राणि ॥ ३ ॥
वयोमुग्धा—चिरागी स्तनभार एव गमिनो न म्बोचि-
तामुन्नति रेखोद्भासितुं धलिचर्यामिदं न स्पष्टनिष्प्रो-
न्नतम् । मध्येऽस्या ऋजुरायतार्धकपिशा रोमावली
निर्मिता रम्यं यौवनशैशवव्यतिकर्गन्मिश्रं ययो वर्तते
॥ ४ ॥ काममुग्धा—दृष्टिः सालसतां विभक्तिं न शिशुकी-
डालु वद्धादग धात्रे प्रपयति प्रवर्तितसर्वासम्भोगवा-
सांस्वयि । पुंसामद्रुमपेनशङ्कमधुना नाराहति प्राग्यथा
पाला नृननयोयनवर्णनकरावष्टभ्यमाना शनः ॥ ५ ॥
रतया—व्याहता प्रतिययो न सन्देहे मन्तुमैच्छद्वयल-
म्यितांशुका । सेचनं स्म शयनं पगङ्गुली सा तथापि
रतये पिनाकिनः ॥ ६ ॥ दृष्टा दृष्टिमर्धा ददाति कुरुते

घरकी छियाँ केवल उतना ही शृङ्गार करती हैं जितना लज्जा
रकनेके लिये पयास हो, वे इतनी नृत्न रहती हैं कि उन्हें किसी
कस्तुरी चाह नहीं रहती और जो कभी मनमें भी उदय
नहीं होती ॥ ३ ॥ वयोमुग्धा : इस नवेलीकी यह किशोर
और युवावस्थाके मिलनकी सुन्दर स्थिति चल रही है जिसमें
स्तनोंके फैलावका घेरा तो बँध गया है पर वे अपनी पूरी
ढँचाईतक नहीं पहुँच पाए हैं, पेटपर त्रिबलीकी रेखाएँ
तो पड़ चुकी हैं, किन्तु वे भली-भँति ऊँची-नीची नहीं हो पाई
हैं तथा बाँधमें सीधी और लम्बी रोमावली तो घन गई है
पर वह अभीतक धाँधी भूरी ही है ॥ ४ ॥ काममुग्धा :
नये यौवनकी चहल-पहलसे भरी हुई उस नवेलीकी दृष्टिमें
कमसे धीरे-धीरे आलस्य आने लगा है, छोटे-छोटे वस्त्रोंके
साथ खेलना उसे भा नहीं रहा है, सखियोंकी सम्भोग-
सम्बन्धी बातोंमें वह काम लगाए रहती और जैसे पहले वह
किसी भी पुरुषके गोदमें निःशङ्क होकर चढ़ जाती थी वैसे अब
नहीं चढ़ती ॥ ५ ॥ रतयामा : यद्यपि शिवजीके कुछ पल्लवपर
पार्वतीजी उत्तर नहीं देती थी और उठकर जानेकी तैयार हो
जाती थी पर उस समय उनके डीले वस्त्र खिसकने लगते थे ।
इसी प्रकार यद्यपि वे शैयापर करबट बदलकर सोती थीं फिर
भी उनकी दृष्टि यही होती थी कि शिवजीके साथ रति करें
॥ ६ ॥ कोई अपनी प्रेयसीका वर्णन करते हुए कहता है—
‘मेरी प्रेयसी मिलते ही अपनी आँखें भीधी कर लेती है, बार-बार
बातें चेढ़नेपर भी एक शब्द नहीं बोलती, पल्लवपर साथ

नालापमाभाषिता शय्यायां परिवृम्य तिष्ठति वला-
दालिङ्गिता वेपथे । निर्यान्तीषु सखीषु वासभवनाभि-
र्गन्तुमेवेहते जाता वामतयैव सम्प्रति मम प्रीत्यै
नवोदा प्रिया ॥ ७ ॥ मृदुः कोपे—प्रथमजनिते वाला
मन्यो विकारमजानती कितवच्चरिते नासज्याङ्गे चिन-
म्रभुजैव सा । चिबुकमलिकं चाश्रम्योच्चैरकृत्रिमवि-
भ्रमा नयनसलिलस्यन्दिन्योष्ठे रुदन्यपि शुम्बिता
॥ ८ ॥ सा पत्युः प्रथमापराधसमये सख्योपदेशं विना
नो जानाति सविभ्रमाङ्गवलनाचक्रोक्तिसंसूचनम् ।
स्वच्छैरच्छकपोलमूलगलितैः पर्यस्तनेत्रोत्पला वाला
केयलमेव रोदिति लुटलोलालकैरभ्रभिः ॥ ९ ॥
अभेदऽपि मृग्याभ्यवहाराः—न मध्ये संस्कारं कुसुम-
मपि घाला धिपहते न निभ्यासैः सुभूर्जनयति तरङ्ग-

बैठती भी है तो मुँह फेर लेती है, यदि मैं वलपूर्वक गले भी
लगाना हूँ तो कॉप जाती है और उसकी सखियाँ जब उसे
अकेली छोड़कर भवनसे बाहर जाने लगती हैं तो वह भी उनके
साथ कलनेके लिये उठ जाती है । इस प्रकार मेरी नई
विवाहिता प्रिया जो यह सब उलटा आचरण करती है उससे
भी मुझे बड़ा सुख मिलता है' ॥ ७ ॥ मधुर कोपवाली :
किसी नवेलीका पति पहली बार जब किसी दूसरी स्त्रीसे
सम्भोग करके लौटा उस समय उस नवेलीको यह तो श्रात
था नहीं कि अपने पतिपर क्रोध आनेपर क्या-क्या करना चाहिए
अतः वह अपनी भुजाएँ तो उठीं किन्तु रही किन्तु पतिकी
गोदमें नहीं बैठी और आँसू बहाकर रोने लगी । उस समय
उसके पतिने अपनी उस रोती हुई स्वाभाविक व्यवहार
करनेवाली प्रियतमाकी डाँकी उठाकर उसका आँठ घूमकर उसे
मना लिया ॥ ८ ॥ जब उस नई नवेलीका पति दूसरी स्त्रीसे
सम्भोग करके लौटा उस समय उसे यह तो श्रात था नहीं कि
ऐसे पतिके आनेपर मुँह फेर लेना चाहिए और अजीब-कड़ी बातें
सुनानी चाहियें क्योंकि किसी सखीने ये बातें उसे सिखाई
ही नहीं थीं । किन्तु यह अपने सुन्दर गालोंपर गिरते
हुए और छुँघराले धालोंसे उलके हुए माँतियोंके समान स्वच्छ
आँसू बहाकर व्याकुल होकर केवल रोती रही ॥ ९ ॥
मृग्याके अन्य व्यवहार : वह नई नवेली हुई सुन्दर
भाँहावाली नवेली अपने प्रियतमपर रीझकर इतनी मस्त हो
गई है कि वह अपने और प्रियतमके हृदयोंके बीचमें बाधा
देनेवाली फूलोंकी माखातक भी अपने गलेमें नहीं पहनती और

व्यतिकरम् । नवोदा पश्यन्ती लिखितमिव भर्तुः प्रसि-
मुखं प्ररोहद्रोमाञ्च न पिबति न पात्रञ्च लयति ॥ १० ॥
समाधकलज वती—दत्ते सालसमन्धरं भुवि पत्रं निर्याति
नान्तःपुराशोहामं हसति क्षणात्कलयते हीयन्त्रणां
कामपि । किञ्चिद्भावगभीरव्यक्तिमलवस्तृप्तं मनाग्भापते
सम्भ्रममुदोक्षते प्रियकथामुल्लापयन्तीं सखीम् ॥ ११ ॥
मध्यावाधनसुरता प्रकृष्टस्मरा च—कान्ते तथा कथमपि
प्रथितं मृगाद्या चातुर्यमुद्धतमनोभवया रतेषु ।
तत्कृजितान्यनुवदद्भिरनेकवारं शिष्यायितं गृह-
कपोतशून्यथास्थाः ॥ १२ ॥ यौवनवती (प्रकृष्ट-
यौवना)—नेत्रे खञ्जनगञ्जने सरसिजप्रत्यर्थि पाणिद्वयं
वसोजौ करिकुम्भविभ्रमकरीमत्युधति गच्छतः ।
कान्तिः काञ्चनचम्पकप्रतिनिधिवर्णी सुधास्पन्दिनी

वह इसलिये खम्बी साँसें नहीं लेती कि उससे बड़ा उड़कर
प्रियके दर्शनमें बाधा न पहुँचा दे । अतः वह चित्रमें यहाँ हुई-
सी स्थिर होकर एकटक प्रियका मुँह देख रही है, उसे रोमाञ्च
हो गया है जिससे वह अपने प्रियके दिए हुए आसबके
प्यालेको न तो पीती ही है न हटाती ही है ॥ १० ॥ अधिक
लज्जाघराली : जिस नायिकाके मनमें पहली बार कामका विकार
उत्पन्न हुआ है और जो बहुत खजीली है वह धीरेसे अपने
हगमग पर धरतीपर रखती चलती है, रनिवासे बाहर नहीं
निकलती, खिलखिलाकर हँसती नहीं, धाँकी-धाँकी पैरमें
विचित्र प्रकारसे भेंवकर टक् रह जाती है, बहुत धीरेसे खम्बीर
भाँकोंवाले कुछ चमकार-भरे धाँके बज्ज बोलती है और
जब उसकी सखी उससे प्रियतमकी कथा कहने लगती है
तब उसकी आँर आँखें तरेरेने लगती है ॥ ११ ॥ मध्या
विचित्रसुरता तथा प्रकृष्टस्मरा : आप्यन्त कामोत्तेजित
मृगनयनाने ऐसा चमकार दिखाया कि उसने रतिके समय
जो घनेक बार मुँहसे धनिर्पा निकाली उन्हें सुनकर ऐसा जान
पड़ता था मानो उसके घरके कश्तरीने अपनी 'गुटराँ' उसी
प्रकार सीखी हो जैसे वेदपाठियोंके शिष्य गुरुका उच्चारण
सुनकर उसका अनुकरण करते हैं ॥ १२ ॥ यौवनवती या
प्रकृष्टयौवना : उस सुन्दरीके नयन खञ्जनकी चञ्चलताको
परास्त कर रहे हैं, दोनों हाथ कमलोंको चुनौती देते हैं, दोनों
स्तन हाथीके मस्तकके समान आत्यन्त उद्धत हैं, शरीरकी चमक
स्वर्ण और चम्पाके फूलके समान है, मधुर वाणी अमृतकी
जहर उठानेवाली है और उसकी चितवनकी झटा लिके

स्मेरेन्दीधरदामसोदरवपुस्तस्याः कटाक्षकृच्छ्रः ॥ १३ ॥
 कामवती—स्मरनवनदीपूरेणोढाः पुनर्गुरुमेतुभिर्यदपि
 विधृतास्तितृण्यारादपूर्णमनोरथाः । तदपि लिखि-
 तप्रख्यैरङ्गैः परस्परमुन्मुखा नयनमलिनीनालाकृष्टं
 पियन्ति रसं प्रिया ॥ १४ ॥ मध्यासम्भोग—सायदेव
 रतिसमये महिलाणां विभ्रमा विराजन्ते । यावन् कुच-
 लयदलस्वच्छभानि मुकुलयन्ति नयनानि ॥ १५ ॥
 मध्यामानमपृत्त—न खलु वयममुष्य दानयोग्याः पिय-
 ति च पाति च यासकौ रहस्याम् । व्रज विटपममुं
 इदं तस्यै भवतु यतः सदृशोभिराय योगः ॥ १६ ॥
 मध्याध्वीरा—तद्वितथमवादीर्यन्मम त्वं प्रियेति प्रिय-

जनपरिभुक्तं यद्वृत्तं दधानः । मदधिवसनिमागाः
 कामिनां मण्डनश्रीर्द्वजति हि सफलव्यं घञ्जभालोकेन
 ॥ १७ ॥ मध्याध्वीरा—याते नाथ विमुञ्च मानिनि
 कथं रोषान्मया किं कृतं खेदोऽस्मासु न मेऽपराध्यति
 भवान्मयेऽपराधा मयि । तन्किं मेदिपि गद्वेन घञ्जसा
 कस्याग्रनो रुचते नन्वेतन्मम का तवाम्मि दधिता
 माम्मीन्यनो रुचते ॥ १८ ॥ अधीरा—यातु यातु किम-
 नेन तिष्ठता मुञ्च मुञ्च सखि मादरं कथाः । खण्डिना-
 धरकलङ्कितं प्रियं शक्नुमो न नयनैर्निर्गलितुम् ॥ १९ ॥
 सार्धं मनोरथशून्यस्तव धूर्त कान्ता सैव स्थिता
 मनसि कृत्रिमहावरण्या । अस्माकमस्ति नहि कश्चि-

हुए भीले कमलोंकी मालाके समान सुरोभित है ॥ १३ ॥
 कामवती : कामके आशेगकी गई नदीकी वादसे मतवाली
 नवेलियों वधवि दूर होनेसे और धरके बड़े लोग-रूपी पुलोंके
 कारण अपना मन्दिप पूर्ण नहीं कर पाती फिर भी ये प्यारी
 नारियाँ अपने प्यारेके सम्मुख होकर मेश-रूपी कमलिनीकी
 नाखते खींचकर अपने चित्रित अङ्गोंसे प्रियका रस पी रही हैं
 ॥ १४ ॥ मध्या-सम्भोग : रतिके समय इन नवेलियोंके हाव-
 भाव तभीतक भले जात पड़ते हैं जबतक कमलके समान स्वरूप
 कान्तिवाले इनके मेश मुँह नहीं जाते ॥ १५ ॥ मध्याके मनकी
 रुचि : कोई नायक किसी दूसरी स्त्रीके साथ रमण करके
 वहाँसे कुछ सुन्दर पत्ते बटोरकर ले आया है और अपनी रुडी
 हुई प्रेयसीको पत्ते देकर मनाना चाहता है, इसपर वह उसे
 फटकारती हुई दुकरे अर्थके साथ कहती है कि 'आप जो पत्ते
 आप हैं उन्हें ले जाकर उसी वृक्षको सीप आइए जो इनके
 सहारे पानी खींचता है और उनकी रक्षा करता है । हम इन्हें
 खेने योग्य नहीं हैं । ये वृक्षके साथ रहेंगे तो उसके साथ उनका
 ठीक मेल भी होगा ।' दूसरे अर्थमें वह कहती है कि 'ये पत्ते
 हमारे किस कामके हैं ? आइए, इन्हें ले जाकर उस विटप
 (तुम्हारे जैसे बेटों अर्थात् धूर्तोंको पाकनेवाली) को जाकर
 दें आइए, जो अकेलेमें तुम्हारे जैसाँको छिपाकर रखती है
 और तुम्हारे आँठोंका रस लेती है । इन्हें ले जाकर उसीको
 दीमिष्ट जिससे जलेको तैसा देकर तुम्हारी अच्छी आँखों में
 जाय' ॥ १६ ॥ मध्या अधीरा : दूसरी स्त्रीसे सम्भोग करके
 छोटे हुए और उसकी धानी लपेटे हुए अपने प्रियसे नायिका
 कहती है—'आपने मुझे ठीक ही कहा था कि तुम मेरी प्रिया हो
 इसीजिये तो मेरी प्यारी (शत्रु या सौत) के पड़ने हुए वक्ष

लपेटकर उमे मुझे दिवानेके लिये वहाँ ले जाए हो क्योंकि
 कामियोंका शहर तो प्यारोंके देखनेपर ही सकल होता है' ॥ १७ ॥
 धीर और अधीर मध्या : दूसरी स्त्रीसे सम्भोग करके लौटा
 हुआ नायक अपनी प्रेयसीसे पक्ष रक्ता है और वह उत्तर दे
 रही है— नायक : बाने ! नायिका : हाँ, नाथ ! नायक :
 हे रुठनेवाली ! यह रुठना छोड़ो । नायिका : रुँहोंगी भी तो
 आपका क्या पिगाइ लूँगी ? नायक : तुम्हारे रुठनेसे मेरा
 जी कसमसमाने लगता है । नायिका : जी हाँ, आपका कुछ
 दोष थोड़े ही है, सब आपराध मेरा ही है । नायक : तब यह
 कैसे गलेमें लूबक-सूबककर चॉम् क्यों बहा रही हो ?
 नायिका : मेरा कीम है जिसके आगे चॉम् बहाऊँगी ?
 नायक : क्यों, अभी मेरे ही सामने हो रही हो । नायिका :
 पर मैं आपकी गोनी कौन हूँ ? नायक : क्यों, तुम मेरी प्यारी
 हो न ? नायिका : अब प्यारी नहीं रह गई यही तो रोमा हो
 गया है ॥ १८ ॥ अधीरा : किसी दूसरी स्त्रीसे भोग करके
 आए हुए प्रियको नायिकाकी जो सखी बहला-फुसला रही है,
 उसपर स्वीकृति नायिका कहती है—'अजी जाने भी दो, इनके
 यहाँ बैठने देनेसे क्या होगा ? छोड़ दो, इन्हें बहुत सिरपर न
 चढ़ाओ । इनके निचले ओठपर यह घाव नहीं देखती हो,
 ऐसा भी कहीं प्रिय होता है ? ऐसीको थोर तो मैं चॉल
 उठाकर भी नहीं देखना चाहती' ॥ १९ ॥ दूसरी स्त्रीके साथ
 सम्भोग करके लौटा हुआ एक नायक अपनी प्रेयसीको मनानेके
 लिये उसके पैरोंपर गिर रहा है, इसपर वह कहती है—'आइए,
 वह पैरोंपर गिरनेका नाटक किसी औरको दिखाइएगा । वस
 रहने दीजिए धूर्तराज ! आपके जिस हृदयमें सैकड़ों प्रकारकी
 कामकीड़ाके मनोरथोंके साथ बनावटी हाव-भाव दिखावेवाली

विहावकाशस्तस्मान्कृतं चरणपातविडम्बनाभिः ॥२०॥
 त्रीडानुपहतमध्याव्यवहारा—स्वेदाम्भःकणिकाञ्चितेऽपि
 वदने जातेऽपि रोमोद्गमे चित्राम्भेऽपि गुरो पयोधर-
 भरोन्कम्पेऽपि वृद्धि गते । दुर्वारस्मरनिर्भरेऽपि हृदये
 नैवाभियुक्तः प्रियस्तन्वङ्गया हृदकेशकर्णघनाश्लेषा-
 मृते लुब्धया ॥ २१ ॥ प्रगल्भागतयोयना—अत्युन्नत-
 स्तनमुरो नयने च दीर्घं वक्त्रे ध्रुवावतितरां वचनं
 ततोऽपि । मध्योऽधिकं तनुरनीय गुरुर्नितम्बो मन्दा-
 गतिः किमपि चाद्भुतयोयनायाः ॥ २२ ॥ स्मरान्धा—
 धन्यासि या कथयसि प्रियसङ्गमेऽपि चित्रध्वचाटुक-
 शलानि रतान्तरेषु । नीवीं प्रति प्रणिहिते तु करे प्रियेण
 सख्यः शोषामि यदि किञ्चिदपि स्मरामि ॥ २३ ॥

कोई दूसरी पत्नी की बसी हुई है, उसमें हमारा जिसबाँके
 लिये कहाँ स्थान होगा' ॥ २० ॥ लज्जासे युक्त मध्याके
 व्यवहारः यद्यपि उस मुखली-पनली नायिकाके मुखपर
 पसंभेकी वृद्धि फलक आई है, रोपेँ करकरा उठे हैं, वह अत्यन्त
 प्रेम और विश्वास भी दिखला रही है, उसके बड़े बड़े स्तन
 भी वेगसे काँपने लगे हैं, उसके हृदयमें कामका वेग भी प्रवृत्त
 हो गया है और वह यज्ञपूर्वक बाल खींचकर और कलकर
 छ्वातीसे लगानेका रस शीनेके लिये भी व्याकुल है, फिर भी
 दूसरी स्त्रीसे सम्भोग करके पापा हुआ उसका प्रिय लगाने
 मारे उससे खुलकर प्रेमलीला नहीं कर पा रहा है ॥ २१ ॥
 प्रगल्भा : गादयोयना : उस नवेलीकी छ्वातीपर उठे
 हुए स्तन बड़े-बड़े हैं, उसकी बाँलें अत्यन्त रसीली और बड़ी-
 बड़ी हैं, उसकी बाँहें कामदेवके धनुषके समान देखी हैं, उसके
 मोलनेका दङ्ग और उसकी बातें उन आँहोंसे भी अधिक देखी
 हैं, उसकी कमर अत्यन्त पतली है, उसके नितम्ब अत्यन्त
 भारी-भारी हैं और उसकी बाल राजहंसके समान मनको
 मोहित करनेवाली अत्यन्त धीमी है । सचमुच उस शनोले
 यौवनवालीका सब कुछ निराला ही है ॥ २२ ॥ कामान्धा :
 एक सखी किसी नायिकाको बता रही है कि अपने प्रियके
 साथ सम्भोग करते समय मैं इस प्रकारके हाव-भाव और
 भीठी-मोड़ी बातें किया करती हूँ । इसे सुनकर वह नायिका
 कहती है—'हे सखी ! सचमुच धन्य है कि अपने प्रियके
 साथ सम्भोग करते समय इतने धीरजके साथ मैकड़ों मये-नये
 हाव-भाव और प्रेमकी बातें किया करती हूँ । मेरी तो यह
 दशा हो जाती है कि जैसे ही प्रियतम मेरी कमरकी गाँठमें हाव

भावप्रगल्भा—न जाने सम्मुखायते प्रियाणि वदति
 प्रिये । सर्वाण्यङ्गानि किं यान्ति नेत्रतामुत कर्ण-
 ताम् ॥ २४ ॥ रतप्रगल्भा—कान्ते तल्पमुपागते
 विगलिता नीवी स्थयं बन्धनाद्वासः प्रश्लथमेख-
 लागुलभृतं किञ्चिन्नितम्बे स्थितम् । एतावत्सखि
 वेद्यि केवलमहं तस्याङ्गसङ्गे पुनः कोऽसौ कास्मि रतं
 नु किं कथमिति स्वल्पापि मे न स्मृतिः ॥ २५ ॥
 कवचित्ताम्बुलाकः कचिदगठपङ्काङ्गमलिनः कचिकुसु-
 मौद्गारी कचचिदपि च सालककपदः । वलीभङ्गाभो-
 गैरलकपतितैः शीर्णकुसुमैः स्त्रियाः सर्वावरुधं कथयति
 रतं प्रच्छदपटः ॥ २६ ॥ स्वल्पवीडा—दर्पणेषु परिभोग-
 दर्शिनीर्नर्मपूर्वमनुपृष्टसंस्थितः । क्षायया स्मितमनोक्षया

लगता है वैसे ही सींग-ध लाकर कहती हूँ कि मैं सब सुपशुभ
 भूल जाती हूँ' ॥ २३ ॥ भाव-प्रगल्भा : एक नायिका अपने
 प्रियसे मिलनेके समयकी दशा बता रही है कि 'जब प्रियतम मेरे
 पास आकर मुझसे प्यार भरी बातें करने लगते हैं सब मुझे
 बड़ी नहीं समझ पड़ता कि मेरे सारे अङ्ग नेत्र बन गए
 हैं या कान बन गए हैं अर्थात् मैं एकटक होकर उन्हें
 देखती रहती हूँ और उनकी बातोंमें अपनी सब सुब-बुध
 खोकर मग्न हो जाती हूँ' ॥ २४ ॥ रतप्रगल्भा :
 अपनी सखीसे अपने सम्भोगका वर्णन करती हुई नायिका
 कहती है—'हे सखी ! जैसे ही मेरा प्रियतम पल्लेगपर आता है
 वैसे ही मेरी बाँलीकी गाँठ अपने-आप ढीली पड़ जाती है
 और पैरोंके बीचलेक पहने हुए बख अपने आप मेरी करबनीकी
 कोरीमें फँसकर नितम्बके ऊपर ही रह जाते हैं, बस इतना
 तो मैं जानती हूँ, इसके पश्चात् जब मेरा प्रियतम मेरे अङ्ग छूने
 लगता है वह तो मुझे यह भी सुध नहीं रह जाती कि वह कौन
 है, मैं कौन हूँ और यह सब क्या हो रहा है ॥ २५ ॥ नायक-
 नायिकाने जो कई आसनोंसे सम्भोग किया है उसके पिछोसे
 सजी हुई चादरका वर्सन कोई सखी करती है कि 'पल्लेगपर
 बिछे हुए इस विद्यावनपर कामिनीने अपने प्रियके साथ अनेक
 आसनोंके साथ अनेक प्रकारकी काम-क्रीड़ाएँ की हैं क्योंकि
 यह विद्यावन कहीं तो पानसे रेंगा है, कहीं अगरके छेपसे
 काला पड़ गया है, कहीं गालों और बालोंपर लगा हुआ
 पूर्ण विश्राम पड़ा है, कहीं पैरके महावरकी छाप बनी है, कहीं
 उसके पेटकी त्रिवलीकी छाप है और कहीं उसके बाँलोंसे
 लिसके हुए फूल पड़े हुए हैं' ॥ २६ ॥ भँपनेवाली : जब कभी

वधूहीनिमीलितमुखीप्रकारः सः ॥२७॥ आक्रान्तनायक—
स्वामिन्भङ्गुरयालकं सतिलकं भालं चिलासिन्धु
प्रादेशे त्रुटितं पयोधरतटे हारं पुनर्वीजय । इत्युक्त्वा
सुरतावसानसमये सम्पूर्णचन्द्रानना स्पृष्टा तेन तथैव
जातपुलका प्राप्ता पुनर्मोहनम् ॥२८॥ अस्था कोपचेष्टा—
अङ्गुलीकिसलयाग्रतर्जनं भ्रुविभङ्गकुटिलञ्च वीक्षितम् ।
मेखलाभिरसकृच्च यन्धनं वञ्चयन्प्रणयिनीरघोप सः
॥ २९ ॥ सावहित्था दारा—एकव्रत्तसन्निधितः परिहृता
प्रत्युद्गमादुरतस्ताम्बूलादुरणकृत्स्नेन रभसाश्लेषोऽपि
संयिञ्चितः । आलापोऽपि न मिश्रितः परिजनं व्यापा-
रयन्त्यास्तिके कान्तं प्रत्युपचारतश्चातुरया कोपः कृता-

धीकृतः ॥ ३० ॥ रतावदामीना—आयम्ना कलहं पुरेय
कुक्ते न दंसने वाससो भग्नभृगतिस्वगृह्यमानमधरं
धसे न केशग्रहे । अङ्गान्यर्पयति स्वर्गं भवति नो वामा
दृढालिङ्गने तन्व्या शिष्टिन एव सम्प्रति कुतः कोपप्र-
कारोऽपरः ॥ ३१ ॥ अधीरप्रगल्भा—कोपान्कामललो-
लाहुलनिकापाशेन बद्धा दृढं नीत्वा कैलिनिकेननं दधि-
तया सायं सखीनां पुरः । भूयोऽप्येधमिति म्वलन्कान-
गिरा संसृज्य दुष्प्रेषितं धम्यो हन्यत एव निहतिपरः
प्रेयान्कदन्त्या हसन् ॥ ३२ ॥ धीराधीरप्रगल्भा—कोपो
यत्र भ्रुकुटिचवना निग्रहो यत्र मोहनं यत्रान्योन्यस्मिन्त-
मनुनयो दृष्टिपातः प्रसादः । तस्य प्रेम्णस्तद्विदमधुना

नायकी प्रेमिकाएँ दर्पणके आगे खड़ी होकर आपसमें बातें काटने
था। दूँटने आदिके सम्भोग-चिह्न देखने लगती थीं तब वह नायक
उनके पीछे चुपकेसे आकर खड़ा हो जाता और मुस्करा देता
था । अतः जब उसका प्रतिबिम्ब भी दर्पणमें उन मञ्जुलियोंको
दिखाई दे जाता तो वे भँपकर लज्जा जाती थीं ॥ २७ ॥
आक्रान्तनायका : सम्भोग कर चुकनेके पश्चात् चन्द्रमुखी
नायिका अपने प्रियसे कहती है 'हे विह्वलसी स्वामी ! मेरे
बाल तो ठीक कर दीजिए, मेरे माथेपर तिलक तो लगा
दीजिए और स्तनोंपर दूडे हुए इस हारको पुनः बाँध तो
दीजिए ।' यह सुनकर ज्यों ही नायकने यह सब करनेके लिये
उसका स्पर्श किया त्यों ही उस नायिकाके शरीरमें रोमाञ्च हो
आया और वह फिर अपने प्रियपर खड़े हो गई ॥ २८ ॥
इसकी कोप-चेष्टाएँ : जब कभी वह नायक उन
कामिनीयोंको धोखा या चकमा दे जाता था तब वे बिगड़कर
अपनी लाल-लाल उँगलियों चमकाकर उसे धमकाती
थीं, उसपर भीड़ें तरेरती थीं और अपनी करधनीसे उसे
बाँध रखती थीं ॥ २९ ॥ सावहित्था दारा : किसी
नायिकाका प्रिय जब दूसरी स्त्रीके साथ सम्भोग करके लौटा तो
उसने बड़े क्रोधसे उसके प्रति अपना क्रोध प्रकट किया ।
जैसे ही उसने अपने प्रियतमको आगे देखा वैसे ही वह तत्काज
उठ खड़ी हुई और आगे बढ़कर स्वागत करनेके बहानेसे उसने
प्रियतमकी यह इच्छा नहीं पूरी होने दी कि वह नायिकाके
पास आकर उसके साथ एक ही आसनपर बैठ जाता, अब
वह नायक गले लगानेके लिये आगे बढ़ा तो उससे पहले
ही पान ले आनेके बहाने उसने गले लगानेमें भी बाधा डाल
दी और जब प्रियतमने कुछ बात पचाई तो उसकी बातका

उत्तर न देनेके लिये उसने यह उपाय रखा कि वहाँ पानमें
खड़े ठाम-ठामियोंको घनेक आग्राएँ देने लगी कि मेरे प्रियके
लिये यह करो, वह करो इत्यादि । इस प्रकार उसने अपने
प्रियको बाहरी आदर भी दिखला दिया जिससे मेयकगण यह
न समझें कि स्वामिनी कूटी हुई है और साथ-साथ अपना
क्रोध भी जता दिया ॥ ३० ॥ रतिमें उदासीन : जब इस
कोमल अङ्गोंवाली नायिकाका प्रिय उसके घर ग्योलने लगता
है तब वह तनिक भी विरोध नहीं करती, जब वह बाल छूना है
तो भीड़ें नहीं तरेरती, न छोठ उठाकर सीन्सी करती है, घरन्
अपने आप अपने सब अङ्ग ढीले कर देती है और जब वह
बलपूर्वक गले लगाना चाहता है तब भी कुछ आगा-पीछा नहीं
करती । न जाने करनेका यह नया ढङ्ग इसने कहाँ से सीख लिया
है ॥ ३१ ॥ अधीर प्रगल्भा : धम्य है वह पुरुष, जिसे
सापेक्षा उसके लौटेनेपर उसकी प्रियतमा (दूसरी स्त्रीके साथ
उसके सम्भोग करनेका समाचार पाकर) खीझते रोती हुई अपनी
कोमल और चञ्चल भुजा-रूपी लताओंमें कसकर, सखियोंके
सामने ही उसका सब कुकर्म सुना-सुनाकर, लटपटाती हुई सुन्दर
बाधासे 'फिर ऐसा करोगे ?' कहकर डाटती हुई क्रीडाभवनमें
ले जाकर उसकी कुटुम्बस करती है और वह भी हँसता हुआ
कूटी बातें बना-बनाकर अपना अपराध छिपाए जाता है ॥ ३२ ॥
धीराधीरा प्रगल्भा : दूसरी स्त्रीके साथ सम्भोग करके आए
हुए अपने प्रियसे नायिका कहती है—'जहाँ हम लोगोंमें इतना
गाढ़ा प्रेम था कि यदि हममेंसे कोई कूट भी अता था तो
अधिकसे अधिक भीड़ें-भर देदी कर लेते थे, मनचाही बात न
हुई तो चुप हो रहते थे, कूटेनेपर मुस्करा भर देनेसे मान जाते
थे और जहाँ दूसरेको देखते थे वहाँ खिल उठते थे । वह

वैशसं पश्य जातं त्वं पादान्ते लुठसि न ख मे मन्यु-
मोक्तः स्वनाम्नः ॥ ३३ ॥ ज्येष्ठः नष्टे—रष्ट्रैकासनसं-
स्थिते प्रियतम मे पश्चादुपेत्यादरादेरस्या नयने निमील्य
विहितक्रीडानुपबन्धच्छलः । ईषद्वक्तिकन्धरः सपुलकः
प्रेमोल्लसन्मानसामन्तर्हासलसत्कपोलफलकां धूसींऽ-
परां चुम्बति ॥ ३४ ॥ नायकान्तरसम्बन्धनी—दृष्टि हे
प्रतिवेशिनि क्षणमिहाप्यन्यस्मिन्गृहे दास्यति प्राये-
णस्य शिशोः पिता न विरसः कौपीरपः पास्यति ।
एकाकिन्यापि यामि तद्वरमितः स्तोतस्तमालाकुलं
मीरन्प्राप्तनुमालिखन्तु जरठच्छेदानसम्बन्धयः ॥ ३५ ॥
कन्या—मन्दाकिनीन्मैकतथेदिकाभिः सा कन्दुकैः रुत्रि-
मपुत्रकैश्च । रेमे मुहुर्मध्यगता सखीनां क्रीडारसं निर्धि-
शतीच यात्ये ॥ ३६ ॥ परकीया—स्वामी निःश्वसितेऽ-

प्यसूयति मनोभिन्नः सपत्नीजनः श्वश्रुरिहितदैवतं नय-
नयोरीहालिहो यानरः । तद्गादयमञ्जलिः किमधुना
दग्भक्तिभावेन ते वैदग्ध्यमधुरप्रवन्धरसिक व्यथोऽय-
मत्र धमः ॥ ४७ ॥

अष्टनायिकाः

अभिसारिका—अम्भोजाश्रयाः पुरनयननाधाक्षि
सङ्केतभाजश्रेतोनाथे चिरयति भृशं मोहनिद्रां गतायाः ।
स्वच्छं नाभीद्वयलयितं कान्तरक्षांशुजालं तोयभ्रा-
म्या पिबति हरिणी बिस्मयञ्च प्रयाति ॥ १ ॥ उरसि
निहितम्मारो हारः कृता जघने घने कलकलवती
काञ्ची पादौ रणम्मलिजपरौ । प्रियमभिसरस्देवं मुग्धे
त्वमाहन्दिदृशमा यदि किमधिकजालोत्कम्पं दिशः
समुदीकसे ॥ २ ॥ जनो दुर्लभोऽयं कुलममलिनं वर्यं

मादा प्रेम अब यहाँ तक बिगड़ गया है कि तुम मेरे पैरोंपर
जोड़ रहे हो और मुझ दुःखा का मोक्ष ही नहीं उल्ला हो पा रहा
है ॥ ३३ ॥ बड़ी और छोटी प्रेयसी एक साथ : किसी
धूर्त नायककी छोटी और बड़ी प्रेमिकाएँ साथ-साथ एक पल्लवपर
बैठी हुई थीं । उसने उनके साथ प्रेमभरी लेह-गाड़ करनेके
लिये पीछेसे आकर खेसके बढाने एककी गो धर्निं मुँद लीं
(जिसने उसे चित्रवाम हो गया कि मेरा प्रिय मुझे ही चाहता
है) और थोड़ा मिर घमाकर प्रेमसे पुलकिन और मन्कशमी
हुई दूसरी प्रेयसीका मुँह घूम लिया ॥ ३४ ॥ दूसरे नायकसे
प्रेम करनेवाली स्त्री : एक नायिका किसी वरमे पुरुषसे
आयनूसके कुत्तासे छाप हुए सोतेपर मिलनेका वचन दे आई
है । वहाँ जानेका कुछ दूसरा ही कारण अपनी पड़ोसिनको
समझाती हुई वह कहती है कि 'हे पड़ोसिन ! मेरा घर देवती
रहना क्योंकि लल्लाके बाबू (मेरे पति) यहाँके कुँएका वेस्वाद्
पानी नहीं पीते इसलिये शीघ्रताके मारे मुझे चकेले ही उस
आयनूसके कुत्तासे छाप हुए पानीके सोतेपर जाना पड़ रहा है,
भले ही वहाँ पुराने बरकटोंके मूखे हुए काँटे शरीरको लेद क्यों
न डालें (अर्थात् वहाँ जो नरकोंके चिह्न होंगे उन्हें विषानेकी
उसने पहलेसे ही भूमिका बाँध ली) ॥ ३५ ॥ कन्या :
यह कन्या कभी तो अपनी सखियोंके साथ गङ्गाजीके बलुवे
तटपर बेदियों बनाती थी, कभी गेंद खेलती थी कभी गुड़ियाँ
बनाकर सजाती थी । इसी प्रकारके खेल-कूदमें उसका पूरा
वचपन व्यनने लगा ॥ ३६ ॥ परकीया : किसी नायिकाका
दूसरा प्रेमी उसके पास आया है, उससे वह कहती है कि

'मेरे पति तो मेरे सौँस लेनेपर ही लीक डूबते हैं, सौँसे
दिनरात मेरा मच डटोलती रहती हैं, सास बात-बातमें उँगली
उठाया करती है और देवराजी-जैठानी भी हर घड़ी मेरी
सौँसे भाँपती रहती हैं । इसलिये हे चनुर रसिक ! अब आपकी
हम भावभरी चितवनोंकी यहाँ दाल नहीं गलेगी, अब आप वे
अवयवी मीठी-मीठी चादुकारी-भरी बातें कृपया यहाँ न चलाइए
और वरमे ही मेरा प्रणाम स्वीकार करके यहाँसे नौ-दो-
म्बारह होइए' ॥ ४७ ॥

आठ नायिकाएँ

अभिसारिका : वह नायिका पहलेसे निरवयव किए हुए
नगरके नये खता-मण्डपमें पहुँच गई किन्तु जब बहुत देर हो
जानेपर भी उसके प्रियतम नहीं आए तब वह कमलनयनी
निवारा होकर मुत्तैभुन हो गई । उस समय उसकी गहरी
नाभिपर उसके हाथके कङ्कनमें जड़े हुए रत्नोंकी चमकसे ऐसा
प्रकाश हुआ मानो किसी जलाशयमें जल भरा हो । इसी भ्रमसे
एक हरिणी वहाँ पहुँचकर जल पीनेके लिये मुँह बढ़ाती
और आश्चर्य करती जाती थी कि मेरी प्यास क्यों नहीं
बुझ रही है ! ॥ १ ॥ हे नायिका ! तुमने अपनी छातीपर
वह स्नाननानेवाला लम्बा हार बाल रक्खा है, अपने बड़े-बड़े
भित्तकोंपर घुँघरूदार कपडनी बाँध रक्खी है तथा पैरोंमें कम-
भुन करनेवाले पायल पहन रक्खे हैं । इसलिये जब तुम इस
प्रकार डहा बजाकर अपने प्रियतमसे अभिसार करने निकली
हो तब अत्यन्त डरसे काँपती हुई चारों ओर देख क्या रही हो ?
॥ २ ॥ एक नायिका अपने प्रियसे सुरतके लिये पहलेसे निश्चय

विषमं पतिश्चिद्रान्वेषी प्रणयिवचनं दुःपरिहरम् । अतः
काचित्तन्वी रतिविहितसङ्केतगतये गृहाद्वारं चारं निर-
ममदध प्राविशदध ॥ ३ ॥ पल्लीनामधिपस्य पङ्कजदशां
पयोंसयामन्धरे जाते सपञ्जना मिथः कृतमहोन्साहं
पुरः प्रस्थिता । सव्याजं स्थितयोयिहस्य गतयोः
शुद्धान्तमग्रान्तरे शूनोः स्थिन्नकपोलयोयिजयते
कोऽप्येष कण्ठग्रहः ॥ ४ ॥ भ्रान्तः कङ्कणं किं कदाप्यसि
घनाश्लेषेषु विश्लेषितं दूरे किङ्किणि किं कृताप्यसि
रत्नारम्भे रण्णकारिणि । किम्भञ्जीर यद्दिः कुतोऽप्यसि
रहस्तलपाधिरोहं मया सङ्केताध्यामं यदधैराग्रय यस्मा-
त्तर्ज्यमालम्बसे ॥ ५ ॥

कृष्णभिसारिका—इह जगति रतीशमक्रियाकांश-
लिम्बः कति-कति न निशीथे सुभ्रुवः सञ्चरन्ति । मम

किण्डु रूप स्थानपर जानेके लिये घरसे बाहर पैर रखती है और
फिर भीतर आ जाती है क्योंकि उसका दुविधामें पड़ा हुआ मन
सांच रहा है कि 'उसके पास जाना भी सम्भव चाहिये
क्योंकि ऐसा प्रेमी मिलता यहाँ कठिनाईसे है, उधर मेरा कुल
भी पवित्र है, माता भी बीहड़ है और मेरे पति भी बहुत मोन-
मेक निकालनेवाले हैं, साथ ही अपने प्रेमीका बात भी
नहीं शक्य जाती' ॥ ३ ॥ किसी गौँवके मुखियाके घरकी
छियाँ कोई उत्सव मना रही थी, जिसके निमन्त्रणपर
घरके सभी लोग यहाँ भूमधामके साथ गौँवके बाहर चले गए
थे किन्तु वे तद्वय और तद्वकी, दोनों किसी गहनेसे रुक
गए और घरके भीतर पसीनेसे तर-बतर गालवाले वे दोनों
विचित्र रूपसे एक दूसरेके गले लगने लगे ॥ ४ ॥ अपने
प्रियसे मिलनेके लिये जाती हुई नवेली अपने यज्ञसे हुए
गहनोंसे कहती है—'हे भाई कहन ! अपने प्रियसे कसकर
आलिङ्गन करते समय क्या कभी मैंने तुम्हें उतार दिया था ?
हे ध्रुवक ! सुरतके प्रारम्भमें जब तुम यज्ञती थी तब क्या तुम्हें
मैंने अपने शरीरसे कभी अलग किया था और हे पायल ! अपने
प्यारके पलङ्गपर चढ़ते समय क्या मैंने कभी तुम्हें दूर निकाल
केका था कि जिसमें आज तुम सब सङ्केतके भावोंमें लड्डु बनकर
बराबर चिक्काते जा रहे हो' ॥ ५ ॥

कृष्णभिसारिका : एक नायिका अपनी सखीसे अपनी
कठिनाई बताती हुई कहती है कि 'इस संसारमें न जाने कितनी
कामक्रोड़ामें चतुर छियाँ रातको अपने प्रेमियोंसे मिलनेके लिये
भूमती रहती हैं पर मैं ऐसी अभागिनी हूँ कि (मैं काली

तु विचिह्नताया जायमानस्मितायाः सहचरि परिपन्थी
हन्त दन्तांगुरेव ॥ १ ॥ उत्तमतं कम्पङ्कणद्वयमिदं वञ्चो
ददा मेखला यत्नेन प्रतिपादिता मुग्धयोर्मञ्जीरयोर्म-
कता । आरब्धे रमसान्मया प्रियसखि क्रीडाभितारो-
न्त्येव चागङ्गालम्निमिगावगुलटनपटलेन विधत्तं चित्रः
॥ २ ॥ उदामाम्बुदवधितान्धनमसि प्रभृष्टदिग्गङ्गजले
काले यामिकजाप्रदुग्धनुभटव्याकीर्णकोलाहले । कर्ण-
स्यामुहृदार्णवाभ्युद्यत्वाश्लेषदन्त-पुगादायानासि तद-
भ्युजासि कृतकं मन्ये भयं यापिताम् ॥ ३ ॥ एषा कुल-
कदम्बनीपसुरभी काले घनोद्भासिते कान्तस्यालम्बमा-
गता समदना हृष्टा जलाद्रालका । विधुद्गादिगजिनैः
सचकिता त्वद्दर्शनाकाङ्क्षिणी पादौ नृपुलकनकर्दमभ्रान्त
प्रक्षालयन्ती स्थिता ॥ ४ ॥ किमुत्तीर्णः पन्थाः कुपित-

रातमें काले रूपसे पहनकर भी चलती हूँ तो) मेरी हँसीसे
मिले हुए मेरे दोनोंकी चमक ही मेरा शत्रु बन जाती है
(अर्थात् मुझे पहचानना देना है) ॥ १ ॥ एक नायिका अपनी
सखीसे कहती है कि 'हे प्यारी सखी ! अपने प्यारसे मिलनेके
लिये मैंने इतने उपाय किए कि अपने हाथके दोनों कड़े ऊपर
कसकर खिस्तका लिए, करधनी कसकर बाँध ली, अपने यज्ञसे
हुए पायलकां यड़े कीरालसे चुपकर रखवा पर इस चाण्डाल
चन्द्रमाका ता हेलों कि उग्यो हाँ मैं फटपट अपने प्रियके पास
जाकेका तैयार हुई खोड़ा इस निगाँवने अँधेरेका परदा खींचकर
थारा आर छोड़ना कैला हाँ ॥ २ ॥ मिलनेके स्थानपर पहुँची
हुई अपनी प्यारसे नायक कहता है कि 'इस समय उमड़ हुए
बादलोंके कारण इतना बनघार अँधेरा हाँ गया है कि दिशाऐतक
नहीं सूझ पड़ रही, जिस समय तुम चली हाँ उस समय चारों
चार जागत हुए पल्लवान् पहरेदार गला काड़-काड़कर चिल्ला रहे
थे, ऐसे समय भाँ हे कमलनयनी ! जब तुम शत्रु-रूपी समुद्रके
जलका तपानेवाले बड़वानलके समान प्रतापी कर्णके रनिवाससे
निकलकर चली आई हाँ तो मैं समझता हूँ कि त्रिषोंका
सारा डर दिखावटी होता है' ॥ ३ ॥ मिले हुए कदुबोंकी सुगन्ध
फैल रही है तथा बदलों भी फिर आई हैं, ऐसे समय अपने
प्रियतमसे मिलनेका साध लेकर यह जा बिजली और बादलोंकी
गड़गड़ाहटसे घबराई हुई, भीगे खलोंवाली, कामातुर तथा
प्रसन्न-चित्तवाली युवती आई है, वह खड़ो-खड़ी कीचड़से स्ने
हुए पायलोंवाले अपने पैर भी रही है ॥ ४ ॥ अपने प्रियसे
मिलनेके लिये ज्योंही उस नायिकाने घरकी देहलीसे बाहर पैर

भुजगीभोगविषमो विसोढा भूयस्यः किमिति कुलपा-
लीकटुमिरः । इति स्मारं स्मारं दरदलितशीतघृतिकचौ
सरोजाली शायं दिशि नयनकोशं विकिरति ॥ ५ ॥
छिद्रान्वेषणतत्परः प्रियसखि प्रायेण लोकोऽधुना
रात्रिश्चापि घनान्धकारवहला गन्तुं न ते युज्यते । मा
मैवं सखि बल्लभः प्रियतमस्तस्योन्मुक्तुका दर्शने युक्ता-
युक्तविचारणा यदि भवेच्छेदाय दत्तं जलम् ॥ ६ ॥
वृत्ती विद्युदुपागता सहचरी रात्रिः सहस्थायिनी दैवज्ञा
दिशति स्वनेन जलदः प्रस्थानवेलां शुभाम् । वाचं
माङ्गलिकीं ततोऽति तिमिरस्तामोऽपि । भ्रूलोरवैर्मा-
तोऽयं दायताभिसारसमयो मुग्धे विमुञ्च त्रयाम् ॥ ७ ॥
प्रत्यावृत्त्य यदि यज्ज्वां भवनं वाचां भवेत्प्रच्यवो निर्ग-
च्छामि निकुञ्जमेव यदि वा का घेद किं स्यादितः ।
तिष्ठामो यदि वा कर्वाचद्वनतदे किञ्जातमेतावता मध्ये

रक्ता प्योही पूर्वे दिशामें चन्द्रमा निकल आया । उसकी और
लाल-लाल आँखें निकलकर नायिका बड़बड़ात हुए कहती है
कि 'बताइए, एक तो काधसे भरी हुई नागिनके समान भयङ्कर
मार्ग (पराइयदा) भी पार करें उसपर घरका मालकिनकी सरी-
खोटा दस घण्टे भी सहनी पड़े तो लाभ क्या होगा ?' (क्योंकि
यह निगाहा चन्द्रमा तो निकलकर मेरे सय किए-धरेपर पानी
फेर रहा चुका है) ॥ ५ ॥ अपने प्रियके पास रातको जानेवाली
सखीसे उसकी सखी कह रही है कि 'हे सखी ! एक तो घातकल
यों ही लोभ बहुत प्रकारका बाने करने लगे हैं उसपर रात भी
बहुत घनी घँघेरी है इसलिये तुम्हारा वहीं जाना ठीक नहीं है ।'
इसपर वह उत्तर देती है—'ऐसी बातें न कहो, सखी !
मेरा प्रियतम मुझे यदा प्यारा है । उसके दर्शनके लिये मैं
मरी जा रही हूँ । ऐसे समय यदि मैं भले-बुरेका विचार
करने लगूँगी तो समझो कि प्रेमका ही तिलाञ्जलि दे दी
गई' ॥ ६ ॥ हे सुन्दरी ! देखो, आकाशमें चमकनेवाली बिजली
तुम्हारे प्रियका सन्देश जानेवाली वृत्ती बनकर आ गई है, वह
काली रात भी तुम्हारी सखीके समान तुम्हें सहजता देगी,
ये गरजनेवाले बादल भी ज्यातिषो धनकर चित्ला-चित्लाकर
तुम्हारे प्रस्थानका सुन्दर मुहूर्त बता रहे हैं और यह घँघेरा
भी झोंगुराका झङ्कारसे मझल-पाठ कर रहा है, इसलिये अब
लज्जा छोड़कर प्रियके पास जानेके लिये शीघ्र ही प्रस्थान करो ।
इससे बढ़कर सुन्दर अवसर अब कब मिलेगा ॥ ७ ॥ अपने
प्रियसे मिलनेके लिये जानेका विचार करनेवाली एक नायिका

वर्त्म कलानिधेः समुद्यो जातः किमातन्यताम् ॥ ८ ॥
प्राणेशेन विना वृथैव वयसस्सौभाग्यलाभोऽप्ययं किं
त्वासत्तिरमुष्य नास्ति तदिति प्रेम्णा विधया मया ।
इत्यालोच्य विहाय भीतिमभितः प्रौढा सरोजेषणा
प्रेयांसं समुदेतुमुद्यतवती भव्ये निशीथे क्षणात् ॥ ९ ॥
भीतासि नैव भुजगात्पथि मद्भुजस्य सक्ते पुनः किमपि
कम्पमुरीकरोषि । अम्भोधरध्वनिभिरक्षुभितासि तस्मि
मद्वाचि साचिवदनासि किमाचरासि ॥ १० ॥ मार्गे
पङ्कचिते घनान्धतमसे निःशब्दसञ्चारया गन्तव्या च
मया प्रियस्य वसतिर्भुग्धेति कृत्वा मतिम् । आजानू-
तनूपुरा कर्तलेनाच्छाद्य नेत्रे भृशं कृच्छ्रेणासपद-
स्थितिः स्वभवेन पस्थानमभ्यस्यति ॥ ११ ॥

शुक्लाभिसारिका—द्वित्रैः केलिसरोरुहं विषतुरैर्ध-
म्मिलमल्लोत्तजं कण्ठाम्भीक्तिकमालिकाञ्च तदनु

कुछ दूर जाकर सखीसे सम्मति लेती है—'क्यों सखी ! यदि
मैं अब लौटकर घर जाती हूँ तो मेरी बात जाती है, यदि
उस काहीमें जाती हूँ तो कौन जाने यहाँ क्या हो ? और
यदि यहाँ वनके किनारे हाँ जाकर उठर जाऊँ तो इससे लाभ
क्या होगा ? देख तो, मार्गमें ही चन्द्रमा निकल आया और
सब किया-धरा मिट्टी हाँ गया ! बता अब क्या करें ?'
॥ ८ ॥ 'उस प्राणप्यारेके बिना यह मेरा जीवन ■■■ व्यर्थ है !
किन्तु जैसे मैंने बड़े प्रेमसे साधा है उसका साथ मुझे मिल
नहीं रहा है,' यह सोचकर वह प्रीढ़ा कमलनयनी सब भय
छोड़कर सुन्दर आधी रातके समय अपने प्रियसे मिलनेकी
तैयार हो गई ॥ ९ ॥ हे दुखले शरीरवाली ! तुम मार्गमें तो
सोंपसे भी नहीं घबराई और यहाँ मेरी बाँह घू जानेसे ही
हतनी काँपी जा रही हो ! कहीं तो तुम बादलके गर्जनसे भी
नहीं घबराई और कहीं अब मेरी बातें सुनकर भी मुँह फेर रही
हो, बताओ मैं तुम्हें कैसे प्रसन्न करूँ ॥ १० ॥ किसी नायिकाने
यह सोचा कि कीचड़से भरे हुए अत्यन्त घँघेरे मार्गमें बिना
शब्द किए चुपचाप प्रियके घर मुझे जाना है इसीलिये वह
अपने घरमें ही छुटनीतक पायल सींचकर तथा हथेलियोंसे
अपनी आँखें ठककर धीरे-धीरे बहुत तौल-तौलकर पैर रक्ती
हुई उसी प्रकार चलनेका अभ्यास कर रही है ॥ ११ ॥

शुक्लाभिसारिका : अपने प्रियसे मिलनेके लिये चकती
हुई नायिका अपने शरीरपरसे सब योक्तिक वस्तुएँ उतार रही
है जिससे वह शीघ्रसे शीघ्र अपने प्रियसे जाकर मिल सके ।

त्यक्त्वा पदैः पञ्चभिः । अन्तः कान्तचियोगकान्तरनया
दूरामिसारातुरा तन्वङ्गी निरुपायमध्यनि परं श्रोत्री-
भरं निन्दति ॥ १ ॥ लोलचोदयमन्दकृति प्रचिलस्तन्का-
शीलताभङ्कृति न्यञ्जकञ्चुकयन्धवन्धुरचलद्वजोजकु-
म्भोन्नति । स्फूर्जद्दीधिति विस्फुरद्वति चलचामीक-
रालङ्कृति श्रीडाकुञ्जगृहं प्रयाति कृतिनः कस्यापि
वाराङ्गना ॥ २ ॥ शीतंशावुदिते च कृजति पिपे मन्दं
समीरे सति स्वात्मानं पगिलिप्य चन्दनरसैराच्छाद्य
वासः सितम् । निःशब्दमलहीरकाभूतिभूता दन्तप्रभां
सर्वतो यपेन्ती शनकैः प्रयाति दयितावासं कुरङ्गेक्षणा
॥ ३ ॥ सितं वसनमपितं यपुषि नीलचोलभ्रमान्मया
मृगमशशया मलयजद्रवः सेवितः । करेण परियोधितः
स्वजनशङ्कया दुर्जनः परं परमपुण्यतः सखि न लङ्घिता
देहली ॥ ४ ॥

अतः हो-तीन पग चलकर उसने अपने हाथका मीठाकमल
केंद्र दिया, तीन-चार डग बढ़कर बालोंमें गुंथा हुई बेलकी
माला उतार फेंकी, पौंचथी डग भरते ही गलेसे मोतीका माला
भी निकाल दी, अपने मनमें पतिके शिरोमणिका दुःख होनेसे
घौर मार्गे लम्बा होनेसे वह इतनी धक चली थी । इतनी
सब बस्तुएँ उतार फेंकनेपर भी जय उसकी चाल नहीं बढ़ा
तब वह हारकर सारा दोष अपने भारी नितम्बोंका देने लगी
॥ १ ॥ अपना कमकदार पल्लू लहराती हुई, अपनी
कमकीकी करधनका बराबर रुनकुन करती हुई, अपनी चालोंमें
कसे हुए चक्के समान बड़े-बड़े सुन्दर स्तनोंका शोभाके साथ
हिलावा हुई तथा अपना चटकाला चालके कारण अपने स्वर्णके
गहने झुलारा हुई वह बेरथा किसी भाग्यशालाके सङ्केतपर
झीङ्गके कुञ्जमें घेर बड़ाए चली जा रही है ॥ २ ॥ जिस समय
चन्द्रमा निकल आए हैं, कोयलकी कूक सुनाई दे रही है और
मन्द-मन्द पवन चल रहा है, उस समय अपने शरीरपर
चन्दनका बोधा लेपकर घौर खेत बस्त्र पहनकर स्वच्छ हारेके
रोस आभूषणोंसे सुसज्जित वह मृगनयनी चारा चार अपने
दाँतोंकी कमक फैलाती हुई धीरे-धीरे अपने प्रियके भवनकी ओर
चली जा रही है ॥ ३ ॥ एक नायिका अपनी सखीसे कहती है कि
'हे सखी ! नीली चोलके भ्रममें मैंने उज्जले बस्त्र पहन लिए,
कस्तूरीके भाँसेमें खेत चन्दन लगा लिया, अपने हितैषीके भ्रममें
अपने विरोधीको हिलाकर जगा दिया, पर हे सखी ! बड़े
भाग्यकी बात तो यह रही कि मैं अपने घरकी देहली चौक

स्वाधीनभूत—अस्माकं सखि वाससी न रुचिरे
प्रेष्यकं नोऽन्यत् नो वका गतिरुद्धतं न हस्तिनं
नैवास्ति कश्चिन्मदः । किं न्यन्येऽपि जना वदन्ति
सुभगोऽप्यस्याः पतिर्नान्यनां दृष्टिं निक्षिपन्तीति विश्व-
मियता मन्यामहे दुःखितम् ॥ १ ॥ एतन्किं प्रणयि-
न्यापि प्रणयिनी यन्मानिनी जायते मन्य मानावर्धा
भविष्यति मुखं किञ्चिद्दिशिपुं रसान् । वाङ्मया तस्य
सुखस्य मेऽपि हृदयं जागति नित्यं परं स्थनेऽप्येव न
मेऽपराध्यति पतिः कुन्यामि तस्मै कथम् ॥ २ ॥ मध्ये
न कश्चिमा स्तने न गरिमा देहे न वा कान्तिमा श्रोत्रां
न प्राधमा गतां न गरिमा नेत्र न वा वाक्कमा । लास्यं न
द्रविमा न दास्यं पटिमा दास्य न वा स्फातमा प्राण-
शस्य न धारिपि मज्जां न मना मय्येव किं कारणम् ॥ ३ ॥
मा गधेमुदह कपालतले चकास्ति कान्तस्य हस्तलि-

निकल नहीं पाई' ॥ ४ ॥

स्वाधीनपतिका : हे सखी ! न तो मेरे वस्त्रोंका
जोड़ा ही सुन्दर है, न मेरे गलेका हार ही बहुत अच्छा है,
न चाल ही बहुत चटक-मटक-भरी है, न हैंसी ही बहुत
खिलखिलाहटसे भरी है और न तो मुझमें कोई मतवालापन
ही है, फिर भी लोग कहते यहाँ है कि इसका सुन्दर पति
किसी भाँ दूसरी स्त्रीकी चार आँख नहीं उठाता । जान पड़ता
है संसारका यहा सचसे यहा दुःख है ॥ १ ॥ हे सखी ! यहा बात
है कि स्त्रियाँ अपने प्रभोस रह-रहकर भी रुठ जाया करती हैं । मैं
समझता हूँ कि रुठनेमें प्रेमसे भाँ अधिक बढ़कर कुछ आनन्द
हता हागा इसालिये यह सुख पानेकी इच्छा मेरे मनमें भी
नित्य उठा करता है । पर मेरे पति स्वप्नमें भी कोई ऐसा काम
नहीं करत कि मुझे रुठना पड़े, तो बलाघो मैं रुठनेका
अवसर कैसे निकालूँ ॥ २ ॥ हे सखी ! न तो मेरी कमर ही
पतली है, न मेरे स्तन ही बहुत बड़े-बड़े हैं, न मेरे शरीरमें ही
कोई कमक है, न मेरे नितम्ब ही बहुत मोठे हैं, न मेरो चाल
ही कोई चलबेली है, न मेरी आँखोंमें ही झोंकापन है, न मुझे
भावनेका ही अभ्यास है, न बोलनेका ही उद्ग आता है और न
मेरी हैंसी ही लहरदार होती है फिर भी प्राणनाथका मन जो
मुझमें ही दूना रहता है उसका कारण क्या है ॥ ३ ॥ हे सखी !
तुम यह अभिमान न करो कि तुम्हारे प्रियने अपने हाथसे
तुम्हारे गालोंपर बेल-बूटे बना दिए हैं । और भी स्त्रियोंके पति
ऐसा कर सकते हैं किन्तु उनके पतिके हाथ शरीरमें लगते ही

स्त्रिता मम मञ्जरीति । अन्यापि किं न सखि भाजन-
मीदृशानां वैरी न चेद्भवति वेणुश्रुन्तरायः ॥ ४ ॥
यदपि रतिमहान्स्त्रे नकारो यदपि करेण न नीयिष्या-
रणानि । प्रियसखि पतिरपि पाश्वेदेशं नदपि न मुञ्चति
तत्किमाचरामि ॥ ५ ॥ यक्षस्याधरपल्लवस्य वचसो
हास्यस्य लास्यस्य वा धन्यानामरविन्दसुन्दरदशां
कान्तस्तनोति स्तुतिम् । स्वप्ननापि न गच्छति धृति-
पथं चतःपथ दक्षपथं काव्यन्या दायतस्य मे सांख्य कथं
तस्यास्तु भेदग्रहः ॥ ६ ॥ वपुषि तव तनोति रत्नभूषां
प्रभुरिति धन्यतमार्त्तसि किं प्रवीमि । सास्र तनुमयना-
न्तरालभीकः कलयति मे न विभूषणानि कान्तः
॥ ७ ॥ श्वश्रूः पश्यति नैव पश्यति यत्र भ्रूभङ्गकेतुणा
मर्मच्छेदपटु प्रतिलक्षणमसां श्रुते नानन्दा वचः । अस्या-
सामपि किं प्रवीमि चरितं स्मृत्या मनो धेपते कान्तः
स्निग्धदशा विलोकयति ममेतावदागः सखि ॥ ८ ॥

सन्त्येव प्रतिमन्दिरं युधतयो यासां सुधासागरस्रोतः-
स्यूनसरोजसुन्दरचमत्कारा दशोर्विभ्रमाः । चित्रं
किन्तु विचित्रमन्मथकलावैशद्यहेतोः पुनर्विस्तं चित्तहरं
प्रयच्छति युवा मय्येव किं कारणम् ॥ ९ ॥ स्त्रीयाः
सन्ति गृहे गृहे मृगदशो यासां विलसत्स्वणत्काञ्ची-
कुण्डलहेमकङ्कणफणत्कारो न विधाम्यति । को हेतुः
सखि कानने पुरपथे सांधे सखीसन्निधौ धाम्यन्ती
मम बल्लभस्य परितो दृष्टिर्न मां मुञ्चति ॥ १० ॥

वासकसज्जा—कृतं वपुषि भूषणं चिकुरधोरणी
धृषिता कृता शयनसन्निधौ क्रमुक्वीटिकासम्भृतिः ।
अकारि हरिणीदशा भवनमेव्य देहत्विषा स्फुरत्कनक-
केतकीकुसुमकान्तिभिर्दुर्दिनम् ॥ १ ॥ चोलं मीलनि-
चोलकर्णविधौ चूडामणिं सुम्पने वाद्यप्ये कुचयोः
करार्णविधौ काञ्चीं पुनः काञ्चीनीम् । इत्थं चन्दन-
चर्चितैर्मृगमदैरङ्गानि संस्कुर्वती तत्किं यन्न मनोरथं

जो कैपकैपी उठती है वह तत्काल शत्रु बनकर बाधा डाल देता
है अर्थात् मेरा पति भी मेरे गालपर ऐसे ही बेल-बूटें बना
सकता है वह जैसे ही हाथ लगाता है वैसे ही सारा
शरीर कम्प (सापिथक भाव) से काँप उठता है और
बेल-बूटें धरे रह जाते हैं ॥ ४ ॥ हे प्यारी सखी ! यद्यपि
सम्भोगके समय मैं अपने प्रियको 'ना-ना' भी करती रहती
हूँ और हाथसे कन्धरपरकी धोनीकी गोंड भी पकड़े रहती
हूँ फिर भी वह वह मेरे पाससे हटनेका नाम नहीं लेता,
बताओं में क्या कहें ॥ ५ ॥ सखि ! मैं सुना करती हूँ कि
दूसरे-दूसरे लोग सदा कमलके समान सुन्दर आँखावाली
स्त्रियोंके मुख, गोंड, शोलबाल, हैंसी और नाथकी प्रशंसाके
पुल बाँधत अघाते नहीं । परन्तु मेरे पतिके कानोंमें किसी दूसरी
स्त्राका स्वर, मनमें किसी दूसरी स्त्राका रूप और आँखाके
सामने किसी दूसरी स्त्राका सौन्दर्य स्वप्नमें भी नहीं आया,
तब उन्हें दूसरा स्त्रियोंके गुणोंका ज्ञान ही क्या हा सकता है ॥ ६ ॥
हे सखि ! तुम अत्यन्त धन्य हो, मैं क्या तुम्हारा प्रशंसा करूँ
कि तुम्हारा स्वामी तुम्हारा शरीर रत्नोंसे सजाता है; किन्तु मेरा
स्वामी तो इस दरसे मुझे गहने नहा पहनाता कि कहीं वे
उनका आँखाक और मेरा देहके बीच बाधा बनकर न खड़े हो
जायें ॥ ७ ॥ हे सखी ! सास्र तो मुझे फूटा आँखों नहीं
देखना चाहती, यदि कभी देखता भी है तो भाँड़े तरकर हा
देखता है, ननद भी दिन-रात जो चलनी करनेवाला जाते

बोलती रहती है । घरकी और भी छियाँ मुझे कैसे कैसे सताती
हैं उसे स्मरण करके ही मन काँप उठता है । अर्थात् मेरा हृत्मा
है कि मेरे पति मुझे सदा प्रेमभरी आँखोंसे देखते हैं ॥ ८ ॥
घर-घरमें ऐसी नवेलियों हैं जिनकी आँखोंकी चितचनें अमृत-
सागरके प्रवाहमें लीसे हुए कमलके समान मग़ाहर हैं किन्तु
आश्चर्यकी बात तो यह है कि अनेक प्रकारकी कामकलाके
विस्तारके लिये मनकी ललचानेवाला धन लाकर मेरा मध्य पति
सब मुझे ही दे देता है (किसी दूसरीको नहीं) । यथाशो, क्या
कारण है ॥ ९ ॥ हे सखी ! घर-घरमें ऐसी अनेक फुलीन मृग-
नवनी छियाँ हैं जिनकी वजती हुई करधनी, खनखनाते
हुए कानके कुण्डल और कनकनाते हुए साँगेके कङ्कणोंकी कण-
कार कभी यन्द नहीं हंती, पर न जाने क्या कारण है कि मेरे
पतिके दृष्टि, वनमें, नगरकी गलियोंमें, घरमें और सखियोंके
पास चारों ओर चक्कर लगाती हुई भी सदा मेरे ही पीछे पड़ी
रहती है ॥ १० ॥

वासकसज्जा : उस कमलनयनी नायिकाने अपने घरमें
सुसज्ज शरीरपर गहने सजाए, बालोंमें धूपकी गन्ध भरी,
पलङ्के पास पानके बाँड़े सजाकर रखे और फिर चमकते हुए
सुनहरें केवड़ेके फूलोंका पराग ऐसा पिछेरा कि मेघ धिरेसे
जान पड़ने लगे ॥ १ ॥ जिस समय चेरबाण्डे शृङ्गार-भवनमें
अपने शरीरपर चन्दनमें कस्तूरी मिलाकर लेप करती हैं उस
समय वे मनमें कौन-कौनसी आकांक्षायें नहीं करती । वे सोचती

वितनुते वारेषु वाराङ्गना ॥ २ ॥ दृष्ट्वा दर्पणमण्डले
निजवपुर्भूयां मनोहाग्निं दीप्ताग्निः कपिशञ्ज मोहन-
गृहं प्रस्यन्कुङ्कुमदृशा । एवं नौ सूर्यं भविष्यति
विरादयेति सानन्दया कामं कान्तदिदृशया च
ललिता द्वारेऽपि ता दृष्टयः ॥ ३ ॥ निजपाणिपल्लवत-
टस्खलनादिभिर्नामिकाविवरमुत्पलितैः । अपरा परीक्ष्य
शनकैर्ममदे मुखवासमाम्यकमलध्वमनैः ॥ ४ ॥ नेदं
समीक्षितमकारि कला न चेयमित्याकुलाः कथमपि
प्रथमार्धमहः । एवं विधेयमथ वाच्यमिदं मयेति शेषं
प्रियाः सुकृतिनामतिवाहयन्ति ॥ ५ ॥ विदूरे केयूरे कुक्कु-
रयुगे रक्तचलधैरलं गर्वी प्रीयाभरणलतिकेयं किम-
नया । मधामेकामेकायलिमपि मयि त्वं विरचयेनं
मेपथ्यं पथ्यं यदुत्तरमनङ्गोत्सवविधौ ॥ ६ ॥ शिल्पं
दर्शयितुं करोति कुतुकात्कङ्कारहाररुजं चित्रमेक्षणकै-

नयेन किमपि द्वारं समुद्गीक्षते । गृहान्याभरणं नयं
सद्वचनीभ्याजिगीर्णामिषादित्यं पञ्चरशः प्रतीत्य
चरितं स्मेराननोऽभून्मरः ॥ ७ ॥ ध्वश्र्वं स्यावयति
कृत्तलेन च निगोधने प्रदीपाङ्कुरं धत्ते सौधकपोनपोत-
निन्दैः स्वाहेतिकं संष्टितम् । शब्दपार्श्वविवर्तिनाङ्गल-
तिकं लोलकपोलवृत्तिं कथापि-कथापि फगस्वजं प्रिय-
धिया नरुणान्तिके न्यस्यति ॥ ८ ॥ द्वारं गुम्फति तार-
कान्तिकविरं मध्यानि काञ्चीलतां दीपं न्यस्यति
किन्तु तत्र यदुलं कोहं न धत्ते पुनः । आलीनामिति
वासकस्य रजनां कामानुरूपां प्रियां साचिस्मेरमुखी
नयोदमुमुखी दृष्टान्ममुद्गीक्षते ॥ ९ ॥

उक्ता—अम्भोरुद्राक्षि शम्भोरुद्राक्षि वाग्नाथितां केन ।
यस्मै विचलितवदनं भदनाकृतं विभाययसि ॥ १ ॥
आनेतुं न गता किमु प्रियसखी भीतो भुजङ्गात्किमु

है कि जब वह मेरी नीली चोली लीकैगा तब मैं चोली
मार्गेंगी, ध्वननके समय बुझासगिए। प्ररन रुकूँगी और
स्ननोंपर हाथ रखते समय मोमेकी करधनी रखवा लूँगी ॥ २ ॥
उस डरी हुई इतलीके समान नेघोंयाभी नबेली नायिकाने
वर्षणमें अपने शरीरको सुन्दर सजावट देववर तथा जलते हुए
दिएकी लौमें भूरे रङ्गके दिग्गर्ह देनेवाले क्रीडाभवनको देवकर
यह सोचा कि आज वरन दिनोंपर इस लोनोंकी कामकीड़ा तमकर
होगी और फिर उम आनन्दमें अपने प्रियको देखनेकी इन्द्राग्ने
उसने अपनी रसीली आँखें द्वारकी ओर घुमा लीं ॥ ३ ॥ एक
स्त्री अपने मुँहके सामने हथेली करके अपने मुख-कमलकी
साँस नाककी ओर उठाकर अपने मुँहकी सुगन्धकी परीक्षा करती
हुई मन ही मन उसका आनन्द ले रही है ॥ ४ ॥ आनन्दान्
लोनोंकी गिरणों आधा दिन तो इस चिन्तासे बिता देती है कि
प्रियसे मिलनेके समय मैंने ये बातें नहीं कहीं और इस
कलाका प्रयोग नहीं किया और शेष आधा दिन इस
उपेक्ष-बुनमें बिताती है कि प्रियके मिलनेपर अब यह-यह
कहूँगी और यह-यह कहूँगी ॥ ५ ॥ वह नबेली अपनी
वासीसे कह रही है—‘दोनों भुजबन्द उतार दे, ये रत्नके
कड़े भी दोनों हाथोंमें पहनानेकी आवश्यकता नहीं है और
इस भारी गलेके हारसे भी कोई लाभ नहीं है। तू बस इतना
कर कि मेरे लिये एक एकलड़ा हार बना दे क्योंकि रति-
क्रीडाके समय बहुत सी सजावट बाधा ही पहुँचाती है ॥ ६ ॥
वह नबेली अपने प्रियको अपनी कला दिखानेके लिये

वड़े प्रेमसे कमलकी माला बना रही है, प्रकाशमें चित्र
देखनेके बहाने द्वारकी ओर देख रही है तथा अपनी
सगिणोंके आभयनोंको नीचा दिखानेके लिये गड़ने पहन रही
है । उस कमलनयनीकी हृदय प्रकारकी आँखें देखकर कामदेव
कलकर कण्ठा तो चला है ॥ ७ ॥ वह नायिका अनेक बहाने
करके अपनी मानको मूला रही है, दीएकी लौ मन्दी कर रही
है, कवनरके बच्चोंके समान शब्द करके अपने प्रियको संकेत
कर रही है और करवटें ले-लेकर अपने गाल चमकती हुई
बिम्बोनेपर पत्तिका टटोलनेके विचारसे हृष-उषर हाथ फैला
रही है ॥ ८ ॥ वह मन्दिर नई दुलहिन अपने पतिकी प्रतीक्षामें
बैठी पर गैँध रही है, अपनी चमकती हुई सुन्दर करधनी
घुमाया जा रही है, दिया उठाकर रख तो रही है किन्तु उसमें
बहन तेल नहीं डालती । उसकी सखि ने सुहागरातके लिये
वहाँ जो कामकीड़ाके अनुरूप सजावट कर दी है उसे मुस्कराहटके
साथ मुँह घुमा-घुमाकर दूरसे देख रही है ॥ ९ ॥

उदास नायिका : हे कमलके समान आँखेंवाली !
ऐसा कौन तुम्हारा प्रिय है जिसके लिये तुम मुँह मोड़-मोड़कर
प्रेमकी आकांक्षा कर रही हो और जो शिवजीके आखोंकी सेवा
कर रहा है (अर्थात् ऐसा कौन व्यक्ति है जो कामदेवका जला
डालनेवाले शिवकी आराधना करता हुआ तुम्हारे मनमें उत्पन्न
कामकी व्यवहेलना कर रहा है) ॥ १ ॥ एक नई व्याही हुई
नायिकाने अपनी एक सखीको प्रियके पास भेजा, किन्तु देरतक
उसके न लौटनेपर वह सोच रही है—‘क्या मेरी प्यारी सखी वसे’

कुडो वा प्रतिपेधवाचि किमसौ प्रागेऽहो वर्तते ।
इत्थं कर्णसुवर्णकेतकरजःपातोपघातच्छूनदृशोः कापि
नयोदनीरजमुखी वाष्पोदकं मुञ्चति ॥ २ ॥ किं रुद्धः
प्रियया कयाचिदधवा सख्या ममोद्वेजितः किं वा
कारणमौरवं किमपि यन्नाद्यागतो वदसभः । इत्यालोच्य
मृगीदृशा करतले विन्यस्य वक्राम्बुजं दीर्घनिःश्वसितं
चिरञ्च रुदितं क्षिप्त्वा पुष्पस्रजः ॥ ३ ॥ श्रृंगे रुचि-
तेऽपि दृष्टिरधिकं लोन्कणमुद्वीकते हृदयायामपि
वाचि सस्मितमिदं दग्धाननञ्जायते । कार्कश्यं गमि-
तेऽपि चेतसि तनू रोमाञ्जमालम्यते दृष्टे निर्यहसं
भविष्यति कथं मानस्य तस्मिन्ने ॥ ४ ॥ यन्नाद्यापि
समागतः पतिरिति प्रायः प्रपेदे परामिधं चेतसि
चिन्तयन्त्यपि सखी न मीडया पृच्छति । दीर्घनिःश्व-
सितं दधाति शक्तितं न मेक्षते केवलं किञ्चित्पदप-

साण्डुपाण्डुररुचिं धत्ते कपोलस्थलीम् ॥ ५ ॥ सखि स
धिजितो वीणावाद्यैः कयाप्यपरस्त्रिया पणितमभवत्ता
भ्यां तत्र त्पालसितं ध्रुवम् । कथमितरथा शोफालीषु
स्खलन्कुसुमास्वपि प्रसरति नभोमध्येऽपीन्दौ प्रियेण
विलम्ब्यते ॥ ६ ॥ स्नानं वारिदवारिभिर्विरचितो वासो
घने फानने शीतश्चन्दनचिन्दुभिर्मनसिजो देवस्समारा-
धितः । नीता जागरणवतेन रजनो मीडा कृता दक्षिणा
तप्तं किं न तपस्तथापि स कथं नायाति भेषातिथिः
॥ ७ ॥

लघुदत्ता—अनलङ्कृतोऽपि सुन्दर हरसि मनो मे
यतः प्रसभम् । किं पुनरलङ्कृतस्त्वं सम्प्रति नखरक्ष-
तैस्तस्याः ॥ १ ॥ उरस्तव पयोधराङ्कितमिदं कुतो मे
क्षमा ततो मयि विधीयतां वसु पुरा पदङ्गीकृतम् ।
इति प्रबलचेतसः प्रियतमस्य वारस्त्रिया पयण्कन-

लिखाने ही नहीं गई या वही साँपके डरके मारे नहीं आया, या
हमसे ही कोई उलटी बात मुँहमें निकल गई जिससे वह रु-
गया है ।' इस प्रकारकी उधेड़-पुनमें पड़ी हुई वह नायिका
अपने कानपर धरे हुए सुनहले केवड़ेका पराग आँखमें पड़
जानेका वहाना लेकर भर-भर आँसू बहा रही है ॥ २ ॥ अपने
प्रियके न आनेपर वह नवेली सौचरती है कि—'क्या उसकी
किसी दूसरी प्रेमिका ने उन्हें रोक लिया है या मेरी ही किसी
सखी ने उन्हें भड़का दिया है या कोई ऐसा बड़ा काम हो आ-
पदा कि मेरे प्रिय आज नहीं आ पाए ।' मनमें यह सब
सोच-विचार करते उस मृगमयीने अपनी हथेलीपर अपनी
मुख-कमल रखकर लम्बी साँस खींची, देरतक आँसू बहाए और
अपने प्यारेको पहनानेके लिये जो माला मूँधी थी उसे भी
तोड़ फेंका ॥ ३ ॥ सखीके पूछनेपर वह नायिका कहती
है कि 'उसके आनेपर मैं अपनी आँखें बहुत बड़ाती हूँ फिर
भी मेरी आँखें उसे बड़ी उत्सुकताके साथ देखती रह जाती
हैं; मैं चुप रहनेका प्रयत्न करती हूँ पर वह जसा मुँह भरसे
मुस्करा देता है तथा मैं अपने मनको बड़ा कड़ा कर लेती हूँ
किन्तु शरीरमें रोंगटे उठ खड़े होते हैं । ऐसी दशा में हे सखी !
बताओ तो उस प्रियको देखकर मैं उससे कैसे रुठी रह सकती
हूँ' ॥ ४ ॥ उस नवेलीके मनमें बड़ी उथल-पुथल हो रही है
कि जब अभीतक भी मेरे प्रिय नहीं आए तो जान पड़ता है
कि किसी दूसरी प्रेमिकाके फेरमें पड़ गए हैं । इस लाजके मारे
भ तो वह अपनी किसी दूसरी सखीसे उनका ठिकाना पूछ रही

है, न लम्बी साँस ही ले रही है, न तो सकपकाकर डहर-डघर
झोंक ही रही है, फिर भी चिन्तासे ऐसी चुल गई है कि उसके
गाल पके हुए प्याजके समान पीले पड़ गए हैं ॥ ५ ॥ हे सखी !
मेरे प्रियतम जो अभीतक नहीं आए हैं उसका कारण यही
होगा कि वे या तो किसी दूसरी स्त्रीके धोखा बजानेपर मोहित
हो गए होंगे या जुएमें रातभरकी जीदाको ही दाब लगाकर
हार गए होंगे इसीलिये अबतक नहीं आए, नहीं तो आकारमें
कष्टमा निकल आनेपर और शोफाली (निर्गुण्डी) के फूल
कड़ुनेके समय वे कहीं भी कैसे रुक सकते हैं ॥ ६ ॥ एक नवेली
सोच रही है कि मैंने बादलके जलसे स्नान किया, घने जङ्गलमें
निवास किया, शीतल चन्दनकी दूँदोसे कामदेवकी पूजा की,
रातें जाग-जागकर बिताई और दक्षिणामें अपनी लजातक
दे दी, इसपर अब कीज-सी तपस्या शेष रह गई कि मेरे नेत्रोंको
आभन्द देनेवाला मेरा प्यारा अबतक नहीं आया ॥ ७ ॥

स्त्रियुक्ता नायिका : हे सुन्दर ! तुम तो बिना किसी लाज-
शुद्धारके ही मेरा मन हर लेते हो, फिर उस (दूसरी नायिका)
के नलोंके चिह्नोंसे शृङ्गार कर लेनेपर तो कहना ही क्या
है ॥ १ ॥ एक बेरया अपने किसी वारसे कहती है कि 'तुम्हारी
छातीपर किसी स्त्रीके स्तनोंका यह चिह्न देखकर मैं कैसे ब्रमा
कर सकती हूँ ? इसलिये मुझे तुमने जो पहले धन देनेका
वचन दिया था वह पहले इधर बढ़ाओ !' यह सुनकर नायिका
चित्त टाँवींढोल हो गया और उसके हाथसे भनकगते हुए
सोनेके कंगन उस बेरयाने निकास लिए ॥ २ ॥ अपनी दूतीके

ककङ्कणं करतलान्तमाकुर्यते ॥ २ ॥ कान्तं निरीक्ष्य
बलयाङ्कितकण्ठदेशं मुक्तास्तथा परमिया पक्ष्या न
वाचः । दूतीमुखे मृगदशा स्खलदम्बुपूरा दूरात्परं
निक्षिप्रे मयनान्तपाताः ॥ ३ ॥ कान्तं वीक्ष्य विपन्न-
पक्ष्मलदृशः पादाभ्युज्जालककैरालिप्ताननमानतीकृत-
मुखी चित्रापितेवाभवत् । कृतं नोक्तवती न वा कृत-
वती निःश्वासकोष्णी दृशी प्रातर्मङ्गलमङ्गना करतला-
दादर्शमादर्शयत् ॥ ४ ॥ जातस्ते निशि जागरो मम
पुनर्नशाम्युजे शोणिमा निःपीतं भवता मधु प्रविततं
ध्याधूर्णितं मे मनः । ध्याम्यद्भृङ्गघने निकुञ्जभयने लब्धं
त्वया श्रीफलं पञ्चेषुः पुनरेष मां बहुतरैः क्रूरैः शूरैः
कृन्तति ॥ ५ ॥ नघनक्षपदमङ्गं गोपयस्यंशुक्रेम स्थग-
यसि पुनरोष्ठं पाणिना दन्तद्वयम् । प्रतिदिशमपर-
स्त्रीसङ्गंसी विसर्पन्मघपरिमलमग्धः केन शक्यो

साथ मायकको आपा देखकर नवेलीने उसके गलेपर उस
दूतीके हाथके कहनकी छाप देखकर दूसरोंके सङ्काचके मारे
मुँहसे तो कोई कही बात नहीं निकाली पर वह आँखोंसे आँसू
बहाती हुई एकटक दूतीका चार देखने लगी ॥ ३ ॥ प्रातःकाळ
जब उस नवेलीका प्रिय घर लौटा तो उसके मुखपर देवी भीहों-
वाली सौतके पैरके महावरकी छाप देखकर नायिका अपना
सिर झुकाकर ऐसी चित्रलिखी स्ती रह गई कि न तो उसने उसे
करी-खोटी ही सुभाई और न अपनी गरम साँसोंसे अपनी आँखें ही
झुलसाईं वरन् अपने हाथका दर्पण ठठाकर उसके मुँहके सामने
कर दिया ॥ ४ ॥ किसी दूसरी स्त्रीके घरसे लौटे हुए प्रियका
देखकर कुछतो हुई वह नायिका कहती है कि 'रातमें जागे तो
तुम हो पर आँखें हमारी लाक हो रही हैं, मदिरा तुमने पी है
पर सिर हमारा चकरा रहा है तथा उड़ते भीरोंसे भरे
हुए घने कुञ्जमें भीफल (बेल, स्तन) तो तुमने पाया
किन्तु कामदेव अत्यन्त निर्दयताके साथ अपने पैने बायाँसे बेधे
हमें ढाक रहा है ॥ ५ ॥ दूसरी स्त्रीसे सम्भोग करके प्रातः
लौटे हुए अपने प्रियसे नायिका कहती है कि 'उस सौतके
मसोंसे बने हुए चिह्नोंसे क्षी हुई अपनी देह को तुम बरसोंसे
लपेट लोगे और उसके दाँतके चानवाले ओठोंको हाथसे दबा
लोगे पर वह तो बताओ कि उसे आच्छिन्न करनेसे जो तुम्हारे
शरीरपर पराग छा गया है उसकी फैलती हुई गन्ध मछा कैसे
रोक पाओगे' ॥ ६ ॥ प्रातः लौटे हुए प्रियसे नवेली कहती है कि
'हे प्रियतम ! सवेरे-सवेरे आकर आपने मेरी आँखोंसे नींद मगा

खरीतुम् ॥ ६ ॥ प्रातः प्रातरूपागतेन जनिता निर्नि-
द्रिता खलुयोर्मन्दाया मम गौरवं व्यपहृन् प्रोत्पादितं
लाघवम् । किं नयन्न कृतं त्वया मम भीर्मुक्ता मया
गम्यतां दुःखं तिष्ठसि यच्च पथ्यमधुना कर्त्तास्मि
सच्छ्रोण्यसि ॥ ७ ॥ भवतु चिदिनं व्यर्थात्तापैर्गलं प्रिय
गम्यतां तनुरपि न ते दोषोऽस्माकं विधिस्तु परा-
क्षयः । तव यदि तथा कृतं प्रेम प्रपन्नमिमां दशां
प्रकृतिनरले का नः पीडा गते हनन्तीविते ॥ ८ ॥ वचुः
किमु कलशाङ्कितमिति किमपि प्रष्टुमिच्छन्त्याः
नयनं नवोदमुदृशः प्राणेशः पाणिना पिबधे ॥ ९ ॥
बलोज्ज्वलितमुगे द्यितस्य घोर्य दीर्घं न निःश्वासति
जल्पति नैव किञ्चिन् । प्रातर्जलेन यदनं परिमार्ज-
यन्ती चाला विलोचनजलानि निरोद्धाति ॥ १० ॥
शङ्किताय कृतवाष्पनिपातामार्थ्या विमुक्तितां दयि-

री (बेचैन कर दिया), मुक अभागिनका भारीपन बढ़ाकर
मुझे हल्का कर दिया (मेरा सारा गौरव नष्ट करके मुझे सबके
सामने क्षमित कर दिया), आपने मेरे लिये इतना सब कर
दिया है इसलिये मेरा भी सब भय जाता रहा (जब मैं
आपसे नहीं बोल्नी), जाहए, आपको भी यह खड़े रहनेमें
बुल होता होगा । जब मैं अपनी भलाईके लिये जो कुछ
करूँगी (आयमहत्या कर लूँगी) उसे आप औरोंसे सुन ही लेंगे'
॥ ७ ॥ दूसरी स्त्रीका सम्भोग करके जब उस नवेलीका प्रिय
घर लौटा तो अनेक प्रकारकी बातें बनाने लगा, उसपर
वह कहती है—'अच्छा-अच्छा, मैं सब समझ गई, व्यर्थ
बातें बना रहे हैं ? आप जाहए, आपका इसमें क्या दोष
है, मेरा भाग्य ही मुझसे रुठ गया है । जब आपके इतने सच्चे
प्रेमकी यह दशा हो गई है और स्थिर प्रेम भी जाता रहा तब
वह स्वभावसे ही चञ्चल तथा तुरख जीवन भी जाता रहे तो
कौन बड़ी चिन्ता है' ॥ ८ ॥ किसी दूसरी स्त्रीका सम्भोग
करके लौटे हुए पतिको देखकर उन्हीं ही नई ब्याही नवेलीने
यह पूछना चाहा 'आपको छातीपर क्या घड़ेकी साँट पड़
गई है ?' उन्हीं ही उसके पतिने दोनों हाथोंसे उसकी आँखें
धक लीं ॥ ९ ॥ अपने पतिकी छातीपर किसी दूसरी स्त्रीके
स्तनोंकी छाप देखकर न तो उस नवेलीने खम्बी साँस ही
ली और न मुँहसे ही कुछ कहा, वरन् प्रातःकाळ पानीसे मुँह
धोनेके बहाने वह अपने आँसू छिपानेमें लग गई ॥ १० ॥
दूसरी स्त्रीसे सम्भोग करके लौटा हुआ उस नवेलीका पति

ताय । भानिनीमभिमुखादितचित्तां शंसति स्म घनरो-
मविभेदः ॥ ११ ॥ सत्यमेव गदितं त्वया विभो जीव
एक इति यत्पुरावयोः । अन्यदारनिहिता नक्षत्रणा-
स्तावके वपुषि पीडयन्ति माम् ॥ १२ ॥ सव्यलीकमव-
धीरितस्त्रिन्नं प्रस्थितं सपदि कोपपदेन । योषितः
सुहृदिष्व स्म कृण्वि प्राणनाथमभिवाप्यमिपातः ॥ १३ ॥
सुभग कुरवकस्त्वं किं ममालिङ्गनोक्तः किमु मुक्कम-
विरेच्छुः केसरी नो हृदिस्थः । त्वयि नियतमशोके
युज्यते पादघातः प्रियमिति परिहासात् पेशलं
काचिद्वृत्ते ॥ १४ ॥

कलहान्तरिता—अनुनयति पतिं न लज्जमाना कथ-
यति नापि सखीजनाय किञ्चित् । प्रसरति मलयानिले

यद्यपि दूरा लड़ा था परन्तु उस नवेलीसे प्रेम भी करना
चाहता था । उधर नायिका छल्लोंसे भौंन् भी बहा रही थी
और उसकी करनीपर भीमकर मुँह भी केरे बैठी थी, पर इतना
रुठनेपर भी उसके शरीरपर उठ कदे हुए रोंगटे यह भी प्रकर
कर रहे थे कि वह नायकके आनेसे प्रसन्न अवश्य है ॥ ११ ॥
कोई नवेली अपने अपराधी पतिसे भीमकर कहती है कि 'हे
सर्वशक्तिदेव ! आपने जो पदमे कहा था कि हम दोनोंका
तो एक ही है वह आज सचमुच सत्य निकला क्योंकि आपके
शरीरपर नखोंसे घाव तो किया किसी दूसरी स्त्रीने पर उसकी
डीस हो रही है मुझे' ॥ १२ ॥ उस नवेलीका पति अपराध
तो करके भागा ही था, अतः जब उसकी प्रियाने उसका
अप्रमान कर दिया तो वह उदास होकर सटपट बनावटी क्रोध
करके वहाँसे ज्योंही चलनेको पैर बढ़ाने लगा त्योंही उस
नवेलीकी छल्लोंसे निकलते हुए चाँसुधौने भिन्न बनकर उसे रोक
दिया ॥ १३ ॥ 'हे सुन्दर प्रिय ! तुम स्वयं कुरवक (जाज फूल,
अप्रिय बोझनेवाले) हो तब फिर मुझे गले लगानेके लिये क्यों
प्याकुल हो ? जब तुम्हारे हृदयमें केसरी (मलका चिह्न और
केसर की गन्ध) है ही तब मेरे मुक्ककी मविरा लेकर क्या
करोगे ? तुम्हारे जैसे अशोक (निखिन्त, अशोकका वृक्ष) के लिये
तो कात ही डीक होती है' । इस प्रकार रक्षेपकी हँसीसे किसी
नवेलीने ये चतुरार्थ-भरी जोटें कीं ॥ १४ ॥

कलहान्तरिता : वह नई ज्वाही नवेली न तो आजके
मारे अपने पतिको ही मनाती है न अपनी सखियोंसे ही कुछ
कहती है पर इतना अवश्य है कि अब दृष्टिकोण सुगन्धित
और शीतल प्रायु चकने लगता है तब बहुत देरतक उसका

नवोढा वहति परन्तु चिराय शून्यमन्तः ॥ १ ॥
आनन्द क्वचिदञ्च मुञ्च हृदयं चातुर्यं धैर्यं त्वया स्वेयं
क्वेति विचार्यतां रसिकते निर्याहि पर्याकुला । रक्ता-
म्भोजपरीतपट्पदनदत्पक्षोपमानक्षमपुभ्यत्पद्मचलान्न-
लेक्षणेयुगं पश्यामि तस्या मुक्कम् ॥ २ ॥ आशङ्क्य
प्रणतिं पटान्तपिहितौ पादौ करोत्यादराद्वायाजेनागत-
मावृणोति हसितं न स्पष्टमुद्गीक्षते । मध्यालापवति
प्रतीपवचनं सख्या सहभाषते तन्व्यास्तिष्ठतु निर्भरम-
ण्यिता मानोऽपि रम्योदयः ॥ ३ ॥ एकस्मिन्मन्यने
विपक्षरमणीनामग्रहे मुग्धया सद्यः कोपपरिग्रहस्तपि-
तया चाट्टमि कुर्वन्नपि । आवेगाद्वधिरितः प्रियत-
मस्तूष्णीं स्थितस्तत्कणं मा भूत्सुप्त इत्येत्यमन्वक्षति-

मन कुछ जोया जोया-सा हो जाता है ॥ १ ॥ एक नायक
अपनी रुठी हुई नायिकाको मनानेके लिये चलाता हुआ
कहता है—'हे आनन्द ! तुम थोड़ी देर कहीं सरक जाओ । हे
चतुरते ! तुम भी हमारा हृदय छोड़ो । हे धैर्य ! तुम भी सोच
ओ कि तुम्हें कहीं जाकर बसना है और हे रसिकते ! तुम भी
तबतक धीरेसे कहीं छिप बैठो जबतक मैं काफ़ी-काफ़ी चञ्चल
पलकोंवाले अपनी प्यारीके नेत्रोंसे मुक्त उसका ओषर्मे
जाक मुक्त देख लूँ, जो ऐसा आम पड़ता है मानो
जाक कमलपर पड़ूँ फैलाकर गुआर करते हुए भीरे मेंबरा
रहे ॥ १ ॥ २ ॥ एक नायक अपनी रुठी हुई प्यारीका
बर्णन करता है—'ज्योंही मैं पहुँचा त्योंही उसने अपने पैर
बन्धसे ढँक लिए कि कहीं मैं उसके पैर न चू लूँ, मुकपर
चाई हुई हँसी किसी बहनेसे छिपा ली, मेरी ओर भर
छल्लें देलातक नहीं और मेरी धातें सुनी-अनसुनी करके
अपनी सखियोंसे बातचीत आरम्भ कर दी । उसका इस
प्रकारका क्रोध करना मुझे उसके प्रेम करनेसे भी अधिक
सुन्दर जान पड़ता है' ॥ ३ ॥ पति-पत्नी दोनों एक विद्वानेपर
छेदे हुए थे, इतनेमें नायकने मूलसे उसकी सौतका नाम
ले लिया । इतना सुनना था कि वह नायिका तुरन्त भाग-
बद्धा हो गई और इतनी आपसे बाहर हो गई कि यद्यपि
उसका पति बहुत बहलाता-फुसलाता रहा फिर भी उसने उसे
अत्यन्त करारी फटकार सुनाई । वह भी गुप मारकर छल्लें
भँदकर पड़ रहा । किन्तु नायिकाने शीघ्र ॥ अपना सिर
सुमाकर इस विचारसे उसकी ओर देखा कि-कहीं वह सो सो
नहीं गया ॥ ४ ॥ बरे हुए हरिचके समान चञ्चल नेत्रोंवाली

श्रीवं पुनर्धीक्षितः ॥ ४ ॥ चकितहरिणसोललोचनायाः
क्रुधि तरुणावणसारहारकान्ति । सरसिजमिदमान-
नञ्च तस्याः सममिति चेतसि सम्मदं विधत्ते ॥ ५ ॥
चरणपतनप्रत्याख्यानात्प्रसादपराङ्मुखे निभृतकितवा-
चारेत्युक्त्वा रुषा परधीकृते । व्रजति रमणे निभ-
स्योच्चैः स्तनस्थितहस्तया नयनसलिलच्छन्ना दृष्टिः
सखीषु निवेशिता ॥ ६ ॥ चलञ्जेतः पुंसां सहज-
सरलाः पङ्कजदृशो भयत्येव क्रोधः क्वचिदपि कदा-
चित्तरुणयोः । दहेदङ्गं भृङ्गी विधरपि विदध्यात्परि-
भवं स्मरो मां मथ्नीयादिति किमपि नाज्ञासिपमहम्
॥ ७ ॥ ततश्चाभिज्ञाय स्फुरदरुणगण्डस्थलरुचा मन-
स्विन्या रोपप्रणयरभसाद्गदगिरा । अहो चित्रं-चित्रं
स्फुटमिति निगद्याभुकुलुपं रुषा प्रसाक्तं मे शिरसि
निहितो वामचरणः ॥ ८ ॥ तत्तद्वदपि यथावसरं

हसत्यप्यालिङ्गनेऽपि न निषेधति शुभ्यनेऽपि । किन्तु
प्रसादनभयादपि निकृतेन कोपेन कोऽपि विहितोऽद्य
रसावतारः ॥ ६ ॥ तत्परोपान्तमुपेयुषि प्रियतमे
वकीकृतग्रीवया काकुव्याकुलयाचि साचिहसितस्फु-
र्जत्कपोलभ्रिया । हस्तन्यस्तकरे पुनर्मृगदृशा लाक्षा-
रसक्षालितप्रोष्ठीपृष्ठमयूखमांसलरुचो विस्फारिता
दृष्टयः ॥ १० ॥ तरुल्यं मुखमलने न च वचां वेद-
ग्यमन्यादृशं न धूम्ररूपरिग्रहो न च रहःप्रभ्रेऽपि
मौनस्थितिः । एवं सम्प्रति तर्क्यते तु सुदृशः
कोपस्तु मद्भस्तुनि स्वार्धनेऽपि पुरेव पङ्कजदृशो
यत्र प्रभुत्वग्रहः ॥ ११ ॥ दूरादुत्सुकमागते विधलितं
सम्भाषिणि स्फारितं संश्लिष्यत्यरुणे गृहीतघसने
कोपाक्षितभ्रूलतम् । मानिन्याभरणानतिव्यतिकरे
वाष्पाभ्युपलक्षणं चक्षुर्जातमहो प्रपञ्चचतुरं जाता-

इस नायिकाका जो मुख चमकते स्वप्न सात मकियोंके हारसे
सुरोभित था वह कोपके समय वैसे ही मनको प्रसन्न कर रहा था
जैसे कमल ॥ ५ ॥ जब रुठी हुई नायिकाने नायकको जीभर
फटकारा तो उसने भी जान लिया कि मैं भी नहीं मनाऊँगा ।
इसपर नायिकाने अत्यन्त क्रोधसे उसे 'क्षिपकर थोलेका म्बवहार
करनेवाले !' कहकर और भी दृष्ट कर दिया । अतः जब वह
कीमकर जाने लगा तो नायिकाने अपनी छातीपर हाथ रखकर
कन्नी सँस भरकर अपनी आँसुओंसे भरी आँसु सलियोंकी
ओर धुसा लीं (कि तुम्हीं मना लो) ॥ ६ ॥ कोई नायिका अपनी
सखीसे कहती है कि 'पुरुषोंका चित्त बड़ा चञ्चल होता है और
स्त्रियों स्वभावसे ही बड़ी सरल होती हैं इसलिये कभी-कभी
नायक-नायिकामें झटपट भी हो ही जाती है । पर वह मैं नहीं
जानती थी कि प्रियसे अनन्य हो जानेपर भी तो भी मेरा जी
जलावेगी, चन्द्रमा भी मुझे दुःख देगा और कामदेव भी मुझे
मथ डालेगा' ॥ ७ ॥ कहकते हुए सात-सात सुन्दर गालोंवाली
भमस्विनी प्रियाने मेरी सब करतूत जानकर अत्यन्त क्रोधपूर्वक,
गद्गद कण्ठसे, आँसुओंसे आँसु गिराते हुए पहले तो इतना हाँ
कहा कि 'बाह ! क्या नये-नये बहाने निकाले हैं !' और फिर
मेरे सिरपर म्बवहारके समान अपनी बाईं जात असा दी ॥ ८ ॥
उस नायिकाने एक निरासे ही उड़का संयोग-भङ्गार रस उत्पन्न
कर डाला है जिसमें वह कठनेपर बातचीत भी करती है, बीच
बीचमें हँसती भी जाती है, आखिज्जन तथा सुम्बन करते समय
विरोध भी नहीं करती और इस तरह कि 'कहीं मेरा प्रिय मुझे

मनाने न कने' वह अपना क्रोध भी क्षिपाय रहती है ॥ ९ ॥
ज्योंही नायक पलङ्गपर आया त्योंही नायिकाने अपना मुँह
फेर लिया । जब वह धबराकर (मनानेके लिये) कुछ
अटपटसट्ट बाँसे करने लगा तो नायिकाके गालोंपर कुदिल
हैसी जा गई । पर ज्योंही नायकने नायिकाके हाथपर हाथ
रक्का त्योंही वह महावरके रसमें रँगो हुई मछलीकी
पीठके समान चमकती हुई अपनी लाल-लाल आँसु फाड़कर
उसकी ओर देखने लगी ॥ १० ॥ मुँहसे मुह मिलानेमें भी
वह वैसे ही जुलजुली है, उसकी बोलचालके ढङ्गमें भी कोई
नवापन नहीं आया है, उसकी भीड़ें भी चढ़ी हुई नहीं हैं
और कोई भेदकी बात उसनेपर वह बतानेमें भी नहीं चूकती ।
इन सब बातोंसे तो उसके क्राधका कोई परिचय नहीं मिलता,
पर हाँ, अपना सब वस्तुएँ आँसुमें उसे देखकसी हैं उन्हें वह पराया
समझने लगी है, यही उसके क्रोधकी एकमात्र पहचान दिखाई
पड़ रही है ॥ ११ ॥ ज्योंही उस नवेलीके पतिने उसका अनादर
किया त्यों ही उसकी आँसुओंसे अनेक रङ्ग दिखाने लगी । पहले तो
वे आँसु उल्लेख दूरसे ही देखनेको मचलीं, जब पति सामने पास
जा गया तो उसके शरीरपर झटपट चिह्न देखकर वे दूसरी-
ओर घूम गईं, जब उसने बातचीत चलाई तो वे चौड़ी होकर
फैल गईं (उसने क्रोधसे आँसु फाड़कर देखा), ज्यों ही उसने
गले लगानेको वदा त्यों ही वे लाल हो उठीं, जब वह उसके
बकपर हाथ लगाने लगा तो उन नेत्रोंकी भीड़ें टेढ़ी हो चलीं
और जब वह नायक उसके पैरपर गिर पड़ा तब वे आँसुसे भर

मसि प्रेयसि ॥ १२ ॥ द्वारि चक्षुरधिपाणि कपोलौ
जीवितं त्वयि कुतः कलहोऽस्याः । कामिनामिति
वचः पुनरुक्तं प्रीतये नवनवत्वमियाय ॥ १३ ॥ न
तिर्यगवलोकितं भवति चक्षुरालोहितं वचोऽपि परु-
षाक्षरं न च पदेषु सङ्गच्छते । द्विमात्रं इव वेपते
सकल एव विम्याधरः प्रकामयिनते भ्रुवौ युगपदेव
भेदं गते ॥ १४ ॥ न वरीभरीति कयरीभरे सजा न
चरीकरोति मृगनाभिचित्रकम् । विजरीहरीति न
पुरेव मत्पुरो विवरीवरीति न च विप्रयं प्रिया
॥ १५ ॥ न मृते परुषां गिरं वितनुते न भ्रूयुगं
भङ्गुरं नोत्सवं क्षिपति क्षितां अवलतः सा मे स्फुटे-
ऽप्यागसि । कान्ता गर्भगृहे गद्यार्त्तविधरव्यापारि-
ताख्या यहिः सख्या वक्त्रमभिप्रयच्छति परं पर्य-
भूणी लोचने ॥ १६ ॥ निःश्वासा वदनं दहन्ति

हृदयं निर्मूलमुन्मथ्यते निद्रा नैति न दृश्यते प्रिय-
सुखं नक्तन्दिवं दधते । अङ्गं शोषमुपैति पादपतितः
प्रेयास्तथोपेक्षितः 'सख्यः कं गुणमाकलय्य दयिते
मानं धयं कारिताः ॥ १७ ॥ नो चादृश्वचणं कृतं न
च दशा दारोऽन्तिके वीक्षितः कान्तस्य प्रियहेतवो
निजसखीवाचोऽपि दूरीकृताः । पादान्ते विनिपत्य
तत्क्षणमसौ गच्छन्मया मूढया पाणिभ्यामवदन्त्य
हन्त सहसा कण्ठे कथं नार्पितः ॥ १८ ॥ पयःपीठं
दत्ते त्वरितमभिधत्ते न च वचः समाश्रमाधत्ते
शिरसि न विधत्ते च मिलनम् । इति स्वान्ते गोपा-
यितमिविडकोपा प्रतिपद् कुशोर्व्याभ्यां प्रियमहह
पर्याकुलयति ॥ १९ ॥ पुरस्तम्भ्या गोत्रस्खलनचकि-
तोऽहं नतमुखाः प्रवृत्तो वैलक्ष्यात्किमपि लिखितुं
दिवदतकः । स्फुटो रेखान्यासः कथमपि स तादृश्य-

वटी ॥ ११ ॥ जब किसी नायिकाकी दूती नायकसे आकर
कहती है—'बह नवेली तुम्हें देखनेके लिये द्वारपर आँस लगाए
रहती है, इयेलीपर गाऊ रखते रहती है, तथा तुम्हारे भरोसे
जीवन धारण किए हुए है (तब भला बताओ वह क्यों भला
करेगी?)' तब दूतीके मुखसे बार-बार ऐसी बातें सुनकर
कामियोंके मनमें कुछ नई-नई-सी प्रसन्नता सहर्ष छेने
लगती है ॥ ११ ॥ एक रुठी हुई नायिकाका वर्णन करते
हुए कवि कहता है—'उस रुठी हुई नायिकाने टेढ़ी चितवनसे
देखा भी नहीं, पर उसकी आँखें लाल हो उठीं, उसकी बातें
धीं बढ़ी कधी पर उनमें कोई खेल नहीं था, उसका सारा
घोठ ऐसा काँप रहा था मानो रात का गया हो और उसकी
झुकी हुई भौंहें एकाएक आपसमें सट गईं थीं' ॥ १२ ॥ अपनी
रुठी हुई नायिकाका वर्णन करते हुए नायक कहता है—'उस
रुठी हुई प्रेयसीने मालासे अपने बाँस नहीं सजाए, कस्तूरीसे
अपना शरीर नहीं पीता, न पहल्लेके समान मेरे सामने
कोई घटक-मटक ही दिखलाई और न मुझे कोई उत्सदी-
सीधी बातें ही सुनाई' ॥ १३ ॥ एक नायक अपनी रुठी हुई
नायिकाका वर्णन करता है—'मेरे अपराधका भयङ्गाशोक हो
जानेपर भी उसने तो मुझे कुछ मोच-कँच कहा, न अपनी
भौंहें चढ़ाई और न अपने कानके आभूषण निकालकर घरोरपर
पटके, किन्तु इतना अनरय किया कि लिङ्काँसे बाहर देखती
हुई अपनी आँसुआँसे भरी आँखें सखीकी ओर फेर दीं
(जिसका अर्थ यह था कि सारे जगत्की जड़ तुम्हीं

हो) ॥ १४ ॥ हे सखी! मेरी तपी हुई साँसें मेरी देह जलाए
बाक रही हैं, मेरा हृदय उलझा-उलझा-सा हो रहा है, मेरी
आँखोंमें नींद नहीं समाती, प्रियतमका सुख मुझे दिखाई नहीं
देता, रातदिन मुझे रुकाई छाती रहती है और सब अङ्ग
खुलते जा रहे हैं, तब बताओ मुझमें कौनसी ऐसी बात रह
गई जिसके बलपर मैं अपने प्रियतमसे रुठने लगी हूँ! हाय री
मेरी मूर्खता! प्रियतमने मेरे पैरों पदकर मुझे इतना मनावा
पर देखो तो सही कि मैंने उनकी एक भी न सुनी और
उन्हें ठुकरा दिया ॥ १५ ॥ एक नायिका अपने दुःखका
वर्णन करती हुई कहती है—'मेरा प्रिय मेरे सामने इतना
गिड़गिड़ावा पर मैंने उनकी सब बातें सुनी-घनसुनी कर दीं,
उन्होंने जो हार दिया था उसे फूटी आँखों नहीं देखा,
प्रियतमका भला चाहनेवाली अपनी सखीकी बातोंपर भी
कान नहीं दिया, हाय रे! मैं कितनी बड़ी मूर्ख हूँ! जब मेरे प्रिय
मेरे चरणोंपर गिरकर चले जा रहे थे, उस समय मैंने उन्हें एकदम
सहसा छातीसे क्यों नहीं लगा लिया' ॥ १६ ॥ जब दूसरी
स्त्रीसे रति करके उस पतली कमरवालीके पति आए ता उसने उन्हें
पानी-पीड़ा तो दिया पर मुझे एक भी बात न हीं कही।
सिर झुकाकर उनकी आज्ञा तो मानी पर गले लगनेकी बात
स्वीकार नहीं की। इस प्रकार जो नायिका अपने मनका बड़ा
हुका मोघ दबाकर इस प्रकार सत्कार करती जा रही है
वही इस समय उसके पतिके व्याकुल किए बाक रहा है
॥ १७ ॥ नायक कह रहा है कि 'नायिकाके आगे मैंने

रिणतो गता येन व्यक्तिं पुनर्गव्यधैः सैव तरुणी
॥ २० ॥ प्रयच्छतोच्चैः कुसुमानि मानिनी विपत्त-
गोत्रं दयितेन लम्बिता । न किञ्चिद्दूचे चरणेन
केवलं लिखेद्यथापाकुललोचना भुवम् ॥ २१ ॥
भूभेदो रश्मितश्चिरं नयनयोरभ्यस्तमामीलनं रोद्धं
शिक्षितमादरेण हस्तितं मानेऽभियोगः कृतः । धैर्यं
कर्तुमपि स्थिरीकृतमिदं चेतः कथञ्चिन्मया बद्धो
मानपरिमृष्टे परिकरः सिद्धिस्तु दैव स्थिता ॥ २२ ॥
अभ्यायाते सपदि नयनादुन्धितं चाट्ट वाक्यं यज्जु
पाणी बद्ध निगदितं दालितं पादपद्मम् । इत्या
धीर्दी सविनयमथोद्भाजितं तालवृन्तैर्मते कापं कुयल-
घटशो भूयसी भक्तिरेव ॥ २३ ॥ मामम्लानमना
मनागपि नतं नालोकते बल्लभं निर्याते दायते निर-
म्तरमिषं वाता परं तप्यते । आनीते रमणं यस्तान्प-

रिजनैर्मनं समालम्ब्यते धत्ते कण्ठगतानसूत्रियतमे
निर्गन्तुकामे पुनः ॥ २४ ॥ विरमति कथनं विना न
खेदः सति कथने समुपैति कापि लज्जा । इति कल-
हमधोमुखी सखिभ्यो लपितुमनालपितुं समावकाङ्क्ष
॥ २५ ॥ शौलं वीज्य मुखं विचुम्बितुमहं यातः
समोपं ततः पादेन प्रहतं तथा सपदि तं धृत्वा
सहासे मयि । किञ्चित्तत्र विधातुमक्षमतया यार्ण्यं
यज्जन्याः सखे ध्यानश्चेत्तसि कौतुकं घितनुते कापोऽपि
वामभ्रूयः ॥ २६ ॥ स्फुटतु हृदयं कामः कामं करांतु
तनुं तनुं न सखि बटुलं प्रेम्णा कार्यं पुनर्दयितेन मे ।
इति सरभसं मानोद्रेकादुदीर्यं यच्चस्तथा रमणपदवी
सारङ्गाद्या ससम्भ्रममीक्षिता ॥ २७ ॥

[१७३]—अस्यत्र प्रजतीति का कलु कथा ना-
प्यस्य तादृक्सुहृद्यो मां नच्छति नागतश्च दृष्ट्वा

ज्योंही उसकी सौतका नाम लिया त्यों ही मैं धरती गया और
फिर जानते सिर मुकावर मैं अनागा धरती कुरेदने लगी ।
इन धरतीपर बनी हुई देखाओंने कुछ ऐसा गद्गद-घोंटाका
कर दिया । (उन देखाओंके द्वारा भी अनजाने उसका
सौतका नाम लिख गया अतः उसे देखकर) उस तरुणीने
भी अपने क्रोध-भरे फट्ट फट्टा-फट्टाकर अपने मनका क्रोध
प्रकट कर दिया ॥ २० ॥ नायकने प्रेमके कारण नायिकाको
फूल देते समय भूलसे उसकी सौतका नाम ले लिया,
इसपर रुठकर वह नायिका मुँहसे तो कुछ नहीं बोली पर
आँखोंमें आँसु भरकर धरती कुरेदने लगी ॥ २१ ॥ एक
नायिका कहती है—‘मैंने बहुत देरतक अपनी भीड़ देवी किए
रखीं, आँखें मुँहे रहनेका भी अभ्यास किया, हँसी रोक रखना
भी सीखा, चुप रहनेका भी अभ्यास किया और धारज
आँखनेका भी निश्चय किया, इस प्रकार ज्यों-त्यों करके मैंने
रुठनेके लिये कसर तो कर्ती हूँ पर देखें क्या होता है, क्योंकि
सफलता तो हरभरके हाथ है’ ॥ २२ ॥ नायक कहता है—‘मेरे
आनेपर वह रुठी हुई नायिका अपने आसनसे उठ गई,
हाथ जोड़कर उसने बड़ी मीठी-मीठी बातें भी कीं, पैर धोए,
बड़े आदरके साथ पानका बीड़ा दिया और पट्टा डुलाया । इस
प्रकारकी बड़ी भक्ति दिखाकर ही उस कमलनयनीने अपना
क्रोध स्पष्ट कर दिया’ ॥ २३ ॥ रुठ जानेके कारण उस नवेलीका
मन ऐसा उदास हो गया है कि उसका पति सामने मुककर
उसे मना भी रहा है फिर भी वह उधर देखतीतक नहीं,

सदा दुःखभरी साँसें लिया करती है, यदि सखियाँ बलपूर्वक
उसके पतिको पास ले भी जाती हैं तो वह बाततक नहीं
करती, फिर भी अपने पतिसे उसका प्यार इतना है कि जब
उसके पति बाहर जानेको तैयार होते हैं तो उसके प्राण बाहर
निकलनेके लिये गलेतक आ पहुँचते हैं ॥ २४ ॥ एक नायिका
दुविधामें पड़ी हुई है और नीचा मुँह किए सोचती है कि
बिना कहे दुःख दूर नहीं होता और कहनेमें लज्जा आती है,
इसलिये वह अपने भगदेका समाचार सखियोंसे कहना भी
चाहती है और छिपाना भी ॥ २५ ॥ नायक कहता है कि ‘ज्योंही
मैं उसका क्रोधसे जाल मुख चूमनेके लिये उसकी ओर बढ़ा त्यों
ही उसने मुझपर लात चला दी, बस मैं भट उसके पैर पकड़-
कर हँसने लगा । इसपर भी जब उसका कुछ बस न चला तो
वह कर-भर आँसु बहाने लगी । हे मित्र ! उस देवी भीहोंवाली
अपनी प्यारीके उस क्रोधका जब-जब मैं स्मरण करता हूँ
तब तब मुझे एक अपूर्व आनन्द मिलता है’ ॥ २६ ॥ यद्यपि
उस मृगनयनी नायिकाने क्रोधकी झोंकमें बड़े उत्साहसे यह
कह दावा कि ‘भले ही हृदय फट जाय और भले ही कामदेव
मेरे शरीरको गुला-गुलाकर दुबला कर दे पर इस दण्डिक
श्रेम करनेवाले पतिसे मैं कोई सम्बन्ध नहीं रखूँगी’, फिर भी
वह धरती-धरतीकर अपने पतिके आनेका मार्ग देखती ही
रही ॥ २७ ॥

ठगी हुई : किसी नायिकाको शपन-गृहमें पड़े-पड़े
बीद नहीं आ रही है । वह करघों बंद-बंदकर मनमें

कोऽयं विधेः प्रकमः । इत्यल्पेतरकल्पनाकचलित-
स्थान्ता निशान्तान्तरे वाला वृत्तविवर्तनस्थतिकरा
नाप्रोति निद्रां निशि ॥ १ ॥ आलीभिः शपथैरनेक-
कपटैः कुञ्जोदरं नीतया शून्यं तच्च निरीक्ष्य विबुधि-
तया न प्रस्थितं न स्थितम् । न्यस्ताः किन्तु नवो-
दनीरजदशा कुञ्जोपकण्ठे रुषा तादृग्भृङ्गकदम्बदम्बरच-
मत्कारस्पृशो दृष्टयः ॥ २ ॥ उत्तिष्ठ दूति यामो यामो
यातस्तथापि नायातः । यातः परमपि जीवेज्जीवित-
मायो भवेत्तस्याः ॥ ३ ॥ कपटयन्त्रनभाजा केनचि-
द्धारयोवा सकलरसिकगोष्ठीवञ्चिका यञ्चितासां ।
इति विहसति रिङ्गझङ्गवधिसचञ्चुयिकचकुसुमका-
म्तिच्छन्नना केलिकुञ्जः ॥ ४ ॥ तत्किं कामपि कामि-
नोभविस्तुतः किं वा कलाकेलिभिर्यदो यन्धुभिरन्ध-
कारिणि वनोपान्ते किमु भ्राम्यति । कामतः कला-

न्तमना मनागपि पथि प्रस्थातुमेवाद्यमः सङ्केतकृत-
मञ्जुवज्रललाकुञ्जोऽपि यथागतः ॥ ५ ॥ दृष्ट्वा धैर्य-
भुजकमूर्ध्नि चरणावुल्लङ्घ्य लज्जानदीमङ्गीकृत्य यनान्ध-
कारपटलं तस्या न दृष्टः प्रियः । सन्तापाकुलया
तया च परितः पाथोधरे गर्जति क्रोधाकान्तकृता-
न्तमन्तमद्विषभ्रान्त्या दृशौ योजिते ॥ ६ ॥ नायातो
यदि निर्दयः सखि शठस्त्वं दूति किं दूयसे स्वच्छन्दं
बहुवल्लभः स रमते किं तत्र ते दूषणम् । पश्याद्य
प्रियसङ्गमाय दयितस्याकृष्यमाणं गुणैरुत्कृष्टासिम्भ-
रादिव स्फुटदिदञ्जेतः स्वयं यास्यति ॥ ७ ॥ मिःस्नेह
निष्कण्ठ निरूप निर्निमित्तं मद्भञ्जक त्वमपि सम्प्रति
वञ्चितः स्याः । इत्यधराणि लिखितानि समीप्य
कश्चित्सङ्केतकेतकदले नितरामताम्यम् ॥ ८ ॥ शून्यं
कुञ्जपटलं निरीक्ष्य कुटिलं विज्ञाय चेतोभुवं दूती नापि

इस प्रकार अनेक तर्क-वितर्क कर रही है कि मेरे पति कहीं
दूसरे स्थानपर चले जायेंगे इसकी तो आशङ्का ही नहीं है
क्योंकि उनका कोई ऐसा मित्रजन भी नहीं है जो मेरा दुरा-
चाहता हो, फिर भी शाय ? वे आए क्यों नहीं ? मेरे भाग्यने यह
क्या पलटा साया है ॥ १ ॥ उस नई स्वाही हुई नवेलीकी
सखियों बहुत सीगन्ध दिलाकर और बहुत-सी कपट-भरी बातें
करके नायिकाको उस कुञ्जतक पहुँचा तो आई पर जब उसने
यह कुञ्ज सूना देखा तो इतनी दुखी हुई कि न वहाँसे हट ही
सकी न वहाँ एक ही सकी वरन् मैं डराते हुए भीरोंके
समान अपनी सुन्दर चितवनसे अल्पमत् क्रोधपूर्वक कुञ्जकी
भार घूरने लगी ॥ २ ॥ हे दूती ! चलो चलो, एक पहर बीत
गया फिर भी अभीतक वे आए नहीं । अब तो वे उसीके प्राच-
नाथ होंगे जो इतनी बाढ जोड़कर भी जाती रह जाय ॥ ३ ॥
झूठा विश्वास दिखानेवाले किसी नायकने सभी रसिकोंका
सामान लूटनेवाली किसी वेश्याको चकमा दे दिया और सङ्केत
किए हुए कुञ्जतक नहीं पहुँचा इसलिये वह भावो, जिसमें भँरे
उड़ रहे थे और फूल लिले हुए थे, ऐसी जान पड़ती थी मानो
वह अपनी भीरों-रूपी आँखें चलाकर लिले हुए फूलोंके बहाने
उस वेश्याकी हँसी उड़ा रही हो ॥ ४ ॥ जब उस नायिकाका
प्यारा उस कुञ्जतक नहीं पहुँचा तब वह सोचती है कि 'मेरा
प्रिय क्या किसी दूसरी कामिनीके पास रम गया था मेरी
सखियोंने ही तो उसे खेदनेके लिये नहीं रोक लिया था इस
धैर्ये वनमें मार्ग न मिलनेसे कहीं वह भटक तो नहीं रहा है

अथवा जान पड़ता है कि प्रियतम इतने थक गए हैं ॥ उनमें
चलनेकी शक्ति नहीं रह गई, इसीलिये तो पहलेसे निश्चय किए
हुए इस सुन्दर बँतके कुञ्जतक अभीतक नहीं आ पाए' ॥ ५ ॥
उस नायिकाने धैर्य-रूपी साँपके मस्तकपर पैर रखता, लज्जा-रूपी
नदी पार की, अपने धैर्येकी भी तनिक चिन्ता नहीं की पर कुञ्जमें
आकर जब उसने वहाँ अपने प्रियको नहीं पाया तब कामके तापसे
तपी हुई उसकी गरजता हुआ बादल ऐसा डरावना जान पड़ा
मानो यमराजका मतवाला ऐसा ही क्रोधसे हँक रह रहा हो ॥ ६ ॥
हे दूती ! यदि वह मेरा निर्दय और पूर्ण प्रिय अभीतक नहीं
आया तो तुम्हारा झूठ क्यों सूना जा रहा है । उसकी बहुत सी
प्यारियों हैं, वह सममाने उड़ने कहीं रम रहा होगा । इसमें
तुम्हारा क्या दोष है ? देखो, आज प्रियके गुच्छोंसे उसकी
और लिखा हुआ और उल्लुक्ता तथा पीड़ाकी अधिकतासे
दृक्कर फूटा हुआ मेरा मन उससे मिलने स्वयं जायगा ॥ ७ ॥
जब निश्चित किए हुए स्थानपर वह नायक देरसे पहुँचा
तब वहाँ केवन्देके वल्लेपर यह बात लिखी हुई देखकर वह
बहुत दुखी हुआ कि 'हे प्रेसशून्य, निर्दयी, निर्लज्ज और मुझे
न्यर्थ धाला देनेवाले ! तुम भी कभी यों ही थोला साधोगे' ॥ ८ ॥
उस नायिकाने जब मिलनेके स्थान (कुञ्ज) को सूना पाया
और कामदेवकी कुटिल करतुत समझ ली तब जानेवाली दूतीसे
न तो उसने कुछ कहा न कुछ पूछा ही वरन् उस समय उस
कमलनयनीने इस प्रकार शंकरकी स्तुति प्रारम्भ कर दी
कि 'हे शम्भो, ! हे शङ्कर, ! हे चन्द्रशेखर, ! हे हर, ! हे

नियेदिता सहचरी पृष्ठापि नो वानया । शम्भो शङ्कर
चन्द्रशेखर हर श्रीकण्ठ शूलिञ्जिव प्रायस्वेति परन्तु
पङ्कजदशा भर्गस्य चक्रे स्तुतिः ॥ ६ ॥ सङ्केतकेलि-
गुह्यमेव निरीक्ष्य शून्यमेणीदृशो निभृतनिःश्वसिता-
धरायाः । अर्धाक्षरं वचनमर्धविकासि नेत्रं ताम्बूलम-
र्धकवलीकृतमेव तस्थौ ॥ १० ॥ सास्त्रे मा कुरु लोचने
विगलति न्यस्तं शलाकाञ्जन तीव्रं निःश्वसितं निव-
र्त्तय नवास्ताम्यन्ति कण्ठस्त्रजः । तस्ये मा लुठ कोम-
लाङ्गि तनुतां हस्ताङ्गरागोऽश्रुते नातीतो दयितोप
यामसमयो मा स्मान्यथा मन्यथाः ॥ ११ ॥

प्रोषितभट्टक—अर्पयति प्रतिदिवसं प्रियस्य पथि
शोचने वाला । निरुपति कमलमालाः कोमलमिव
कर्तुमभ्वानम् ॥ १ ॥ आकस्मिकस्मितमुखीपु सखीपु
विज्ञा विज्ञास्वपि प्रणयनिहवमाचरन्ती । तत्रैव रङ्ग-
मयना नयनारविन्दमस्पन्दमाद्रितवती दयिते गतेऽपि

श्रीकण्ठ, ! हे शक्तिन्, ! हे शिव, ! मेरी रक्षा करो' ॥ ६ ॥
जब पहिले निधित किए हुए कीड़ाकुष्ठमें उस नायिकाने
अपने प्रियको नहीं देखा तो उसकी साँस थोड़ोंपर आ गई,
बातें आधी रह गईं, आँखें अधलुकी रह गईं और मुँहमें
पाग भी आधा बचाया हुआ रह गया ॥ १० ॥ हे कोमलाङ्गी !
आँखोंमें आँसु न भरो क्योंकि सझाईसे लगाया हुआ आँजन
खूट रहा है, लम्बी-लम्बी साँसें लेना बन्द करो क्योंकि
गलेकी नई माला मुरझाई जा रही है, बिछीनेपर करवटें न
बढ़ाओ क्योंकि शरीरमें लगा हुआ केशर आद्रिका रङ्ग छूटता
जा रहा है । अभी तुम्हारे प्रियके आनेका समय बीता नहीं है,
अभीसे तुम छछटा न समझ बैठो ॥ ११ ॥

प्रोषित-पतिका (परदेश गए हुए पतिका की स्त्री) :
उस नवेलीका प्रतिदिन अपने पतिके मार्गकी ओर एकटक
देखना ऐसा जान पड़ता है मानो वह अपने पतिके मार्गको
कोमल बनानेके लिये कमलकी माला बिछा रही हो ॥ १ ॥
हरियाली आँखोंके समान भेजाँवाली चतुर नायिकाने सुस्करानी
रहनेवाली अपनी चष्ट सखियोंसे भी अपने प्रेमकी बात नहीं
कही और पतिके चले जानेपर भी केवल उसके मार्गकी ओर
दृष्टकी आँखकर देखती रही ॥ २ ॥ अर्धोत्क मार्गमें दृष्टि जाती
थी वहाँतक दिनभर अपने प्रियका मार्ग देखती-देखती वह
परदेसीकी नवेली पत्नी तक गई और सम्भ्रा समय जब कँधेरा
फैलने लगा और मार्ग चक्करा भी बन्द हो गया तब ज्योंही

॥ २ ॥ आदृष्टिप्रसरान्प्रियस्य पदवीमुद्वीक्ष्य निर्वि-
णया विधान्तेषु पथिष्वहःपरिणतौ ध्वान्ते समुत्स-
र्पति । दत्त्यैकं सशुचा गृहं प्रतिपदं पान्थास्त्रियास्मि-
न्तले मा भूदागत इत्यमन्दवलिनप्रीयं पुनर्वीक्षितम् ॥ ३ ॥ कान्ते कन्यपि वासगाणि गमय त्वं मीलयित्वा
दृशो सत्यं नाम निमीलयामि नयने यावच्च शून्या
दृशः । आयाता वयमागमिष्यसि सुहृद्वर्गस्य भाग्यो-
दयैः सन्देशं यद् कस्तयाभिलपिनस्तीर्थेषु तोयाञ्जलिः
॥ ४ ॥ ताञ्जानीयाः परिमिनकथां जीवितं मे द्वितीयं
दूरीभूते मयि सहचरं चक्रवाकीमिवैकाम् । गाढो-
त्कण्डां गुरुषु दिवसेष्वप्यु गच्छन्सु वालां जातां मन्ये
शिशिरमथितां पद्मिनीं धान्यरूपाम् ॥ ५ ॥ धातः
मालमल प्रयाणसमये प्राणाधिनाथस्य मे कुर्याः स्थैर्य-
मपि क्षणं करुणया कण्ठस्थलेऽपि स्थितः । यावज्जी-
वननीरनिर्मितनदीवन्याभिरन्यादृशं पन्थानं परिकल्प-

उसने एक पैर अपने घरके भीतर रक्खा त्योंही उसने पुनः
अपना सिर घुमाकर फिर बाहरकी ओर दृष्टि डाली कि कहीं वे
आ तो नहीं रहे हैं ॥ ३ ॥ विदेश जाते समय पति-पत्नीमें बातें
हो रही हैं : पति—हे प्रिये ! तुम बिचांगके कुछ दिन आँखें
मूँदकर बिता लेना । पत्नी—हाँ नाथ ! जबतक आँखें न फूट
जायँगी तबतक आँखें मूँदे ही रहूँगी । पति—प्रिये ! मुझे बस
आया ही समझो ! पत्नी—आइएगा अपने प्यारोंके भगवसे,
मेरा क्या है ? पति—यदि कुछ कहना चाहती हो तो कहो ।
पत्नी—यही कहना चाहती हूँ कि गिन तीर्थोंमें जाइएगा वहाँ
मेरे नामसे अञ्जलिधर्मोंमें भरकर पानी दे दीजिएगा ॥ ४ ॥
बादलको अपनी पत्नीका परिचय देते हुए यह कह रहा है—
'अपने साथीसे विछुड़ी हुई चकरीके समान अकेली रहनेवाली
और कम बोलनेवाली उस सुन्दरीको देखकर तुम समझ
जाओगे कि वह मेरा दूसरा प्राण ही है । विरहके कठोर दिन
कड़ी उतावलीसे बिताते-बिताते उसका रूप भी बदल गया
होगा, उसे देखकर तुम्हें यह भ्रम हो जायगा कि यह कोई
बाका है या पालेसे भारी हुई कमलिनी है ॥ ५ ॥ हे भाई प्राणो !
जब मेरे प्राणनाथ जाने लगे उस समय तुम निकल भागनेके
लिये हड़बड़ी न मचा देना वरन् दया करके मेरे कण्ठतक
आकर थोड़ा रुक जाना क्योंकि तबतक तो मेरे आँसुआँसे नदीमें
ऐसी बाढ़ आ जायगी कि उनका मार्ग जलमग्न हो जायगा
और वे न आ सकेंगे । इस प्रकार तुम्हारे और मेरे दोनोंके

सुहृदः कटाक्षव्यादेयाः शिशुशफरफालप्रभिवुवः ।
सुधाजाः सर्वस्वं कुसुमधनुषोऽस्मान्प्रति सखे नवं
नेत्राद्वैतं कुषलयदशः सन्निधयति ॥ ६ ॥ भयनभुवि
सृजस्तस्तारद्वारावतारावन्दिशि दिशि विकिरन्तः
केतकानां कुटुम्बम् । वियति च रचयन्तश्चन्द्रिकां
तुग्धमुग्धां प्रतिनयननिपाताः सुभ्रुवो विभ्रमन्ति
॥ ७ ॥ यत्र यत्र बहते शनैः शनैः सुभ्रुवो मयनको-
णविभ्रमः । तत्र तत्र शतपद्मधोरली तोरणोभवति
पुष्पधन्वनः ॥ ८ ॥ यान्तीं गुरुजनैः सार्धं स्मयमान-
मुक्ताम्बुजा । तिर्यग्ग्रीवं यद्वाहीर्ताम्रपद्माकरोज-
गत् ॥ ९ ॥ यासां कटाक्षविशेषैः स्मरचरैश्च
ताडिताः । हतचैतन्यलघ्वस्वा मोहान्ते मुग्धकामुकाः
॥ १० ॥ रे रे घट्ट मा रोहीः कं कं न भ्रामय-
स्यमूः । कटाक्षवीक्षणदेव करारूपस्य का कथा
॥ ११ ॥ वसन्तमीलोत्पलपदपदानां गीतामृतं श्रोतु-

भायिकाकी उस चितवनकी मार हम लोगोंमें प्रतिबल एक
नये वज्रका आईत (आँखोंकी टकटकी) उत्पन्न कर रहे हैं जो
नालीके समान सखे नेत्रकी कोरसे निकल रहे हैं, मधुलीके
बगनोंके समान उद्वल रहे हैं और हमारे मनमें काम-विकार
उत्पाद रहे हैं ॥ ६ ॥ उस सुन्दर भौंहोंवाली मधेलीकी प्रत्येक
चितवन परमें चमकीले इरोंकी लक्ष्मि-सी विद्यती हुई,
चारों ओर केवड़ेके फूलसी बिलेरती हुई और आकाशमें वृधली
ममोत्तर चाँदनी छिड़कानी हुई दिखाई दे रही है ॥ ७ ॥ वह
सुन्दर भौंहोंवाली मधेली जिस-जिस ओर अपनी चितवन चलाती
है उधर-उधर मानो कामदेवके स्वागतके लिये कमलोंकी वन्दन-
चार लटक जाती है ॥ ८ ॥ अपने माता-पिताके साथ जाते समय
मुत्कराहटसे भरे मुख कमलवालों उस मधेलीने जो तिरछे
घूम करके चितवन चलाई उसीसे सारा संसार अभौतक छटपटा
रहा है ॥ ९ ॥ कामदेव-रूपी चोरने इन स्त्रियोंके चितवन-रूपी
बाणोंसे भोले-भाले कामियोंको भारकर उनका हृदयरूपी
सर्वस्व लूट लिया है इसीसे ये पागल हो गए हैं ॥ १० ॥ खूँ-खूँ
करके घूमते हुए रहटको सम्बोधन करके कवि कहता है—
'दे रहट ! तू रो मत ! देख, ये स्त्रियाँ अपनी चितवन
चलाकर कितने चकरमें नहीं डालती फिर ये जिसे अपने
हाथसे घुमा रही हों (रहट चका रही हों) उसकी
तो बात ही क्या है ॥ ११ ॥ इस झुकी हुई भौंहोंवाली
भायिकाके नेत्र-रूपी दृग सदा कानोंकी ओर देते वीधे जा रहे

मिवोत्तरङ्गो । नतभ्रुवो लोचनकृष्णसारौ कर्णान्तिकं
सन्ततमाश्रयेते ॥ १२ ॥ विशालानीकटाक्षस्य साक्षी
व्यक्तो मधेश्वरः । नात्रापि प्रकृतिं याति येन विद्धो
दिग्गम्बरः ॥ १३ ॥ शिलासम्यग्धोनोऽञ्जलधवलधारा-
परिसरानिमानन्तः श्यामानिव विपमशालस्य विशि-
खान् । दृढप्रज्ञावर्माश्याप हृदयमर्माणि वृजतः कटा-
क्षानेतस्या मुनिरपि न सोढुं प्रभवति ॥ १४ ॥ सन्मार्गे
तावदास्ते प्रभवति पुरुषस्तावदेवेन्द्रियाणां लज्जां
तावद्विधत्ते विनयमपि समालम्बते नाश्रयेत् । भूचापा-
कृष्टमुक्ताः श्रवणपथयुगे नालपद्माण पते यावज्जीला-
वतीनां हृदि न धृतिमुग्रे दृष्टिवाणाः पतन्ति ॥ १५ ॥
इत्या लोचनविशेषैर्गत्या कतिचिन्पदानि पद्माक्षी ।
जीयति युवा न या किं भूयो भूया विलोकयति ॥ १६ ॥
अथ'ण-अधुच्छलेन सुदृशो हुनपावकधूमकलुषाश्याः ।
अप्राप्य मानभङ्गं विगलति लाघव्यचारिपूर इव ॥ १७ ॥

हैं मानो, उसके कानोंपर लटके हुए भौंहोंका समुत्-गान
सुननेके लिये बड़े जा रहे हों ॥ १२ ॥ इन बड़ी-बड़ी आँखोंवाली
स्त्रियोंकी चितवनके साक्षां तो तीन आँखोंवाले भगवान् शंकर
ही हैं जो उनकी चाँदके मारे बल उभारकर नंगे नाच
रहे हैं और अभौतक भी संभल नहीं पाए हैं ॥ १३ ॥ पंथरपर
भक्ता-भौति विसमेले चमकनेवाले, तीखी धारवाले और
भीतरसे काले-काले जो इस मधेलीके कटाक्षरूपी कामके बाण
हैं वे (तपस्वियोंके) स्थिर बुद्धिरूपी कवचसे सुरक्षित हृदयोंके
मर्मको भी फाड़ डालते हैं अथवा उन्हें मुनि भी नहीं सह
सकते ॥ १४ ॥ मनुष्य तभीतक अच्छे मार्गपर चलता है, अपनी
इन्द्रियोंको बरामें रखता है और लज्जाला तथा विनयी रहता
है जबतक भौह-रूपी धनुषसे तानकर चाँदे हुए कानोंकी ओर
निकलते हुए और धैर्यको उखाड़नेवाले खीलाभरी खलनाओंके
चितवनरूपी काली नोकवाले बाण उनका हृदय नहीं बेध
देते ॥ १५ ॥ वह कमल-सी आँखोंवाली नायिका अपने चितवन-
रूपी बाणोंसे किसीको अभमरा करके कुछ ही दग आगे चलकर
बार बार तिर घुमाकर देख रही है कि वह युवक अभी जी रहा
है या डँडा हो गया ॥ १६ ॥

आँखू : हृदयके धुरैसे खाल-खाल होकर भर आनेवाली
नायिकाकी आँखें ऐसी जान पड़ती हैं मानो उसके सौन्दर्यके
जलका प्रवाह जो उसके करीरमें नहीं समा पाया वही आँखू
बनकर बाहर निकला पड़ रहा हो ॥ १७ ॥

निद्रा—आमीलधवनीलनीरजतुलामालम्बते लोचनं
शैथिल्यं नयमल्लिकासदृचरैरङ्गैरपि स्वीकृतम् ।
आलापदधरः स्फुरत्कलयति मेढ्रप्रवालोलपमामान-
न्दमभवाश्च बाष्पकणिका मुक्ताश्रयं विभ्रति ॥ १ ॥
उत्तानामुपधाय बाहुलतिकामेकामपाङ्गश्रिता न्या-
मप्यलसां निधाय विपुलाभोगे नितम्बस्थले । नीधौ
किञ्चिद्वरलयां विदधती निधामलोलज्जका तल्पो-
त्पीडननिर्यगुञ्जतकुचं निद्राति शानोदरी ॥ २ ॥
निद्रार्धमीहितदृशो मदमन्धराणि नाप्यथेयन्ति न च
यानि निरर्थकानि । अद्यापि मे मृगरशो मधुराणि
तस्यान्तान्यक्षराणि हृदये किमपि ध्वनन्ति ॥ ३ ॥
सार्थकानर्थकपदं प्रयती मन्धराक्षरम् । निद्रार्धमी-
लितार्थी सा लिखन्वास्ति मे हृदि ॥ ४ ॥

।मनम्—आद्वितीयं निजं हौके विलोक्य वदतो
मुहम् । प्रमदावदनस्यायं दयाद्वेको न तु स्मितम् ॥ १ ॥

मीढ़ : उस नवेलीके नीचे हुए मेघ कुछ-कुछ मुँदते हुए
नये नीले कमलके समान दिखाई पड़ते हैं, बिछोनेपर बिल्लरे
हुए बेलके फूलोंके साथ-साथ शरीरके चमक भी मीढ़से डीके
पड़ गए हैं, मीढ़में बोलते समय कड़कना हुआ उसका नीचेका
छोठ भी हिलते हुए मूँगेके समान जान पड़ता है और नीरमें
आनन्दके कारण निकली हुई धौंसुआंकी मुँदें भी मांती-सी
कलक रही हैं ॥ १ ॥ वह पतली कमरवाली नवेली इस प्रकार
मीढ़ से रही है कि मीढ़में एक करघट होमेसे उसकी धौंसके
पास ही एक बौड़ मुड़कर तो उसका ठकिया बन गई
है, दूसरी बेली बौड़ बौड़ नितम्बपर बैठी है, उसकी
साड़ीका नाड़ा डीका हो गया है, उसकी साँसोंसे उसके
बाज दिख रहे हैं तथा करघट लेकर बिल्लीनेपर साँगेके कारण
उसके स्तन निरखे गया डँचे हो रहे हैं ॥ २ ॥ मेरी प्यारी मद
पी लेनेके कारण उनीची अवस्थामें जो कुछ अचानक कुछ
अर्थभरे और कुछ बे-सिर-पैरके अक्षर बह-बहा रहा थी वे आज
भी मेरे कानोंमें गूँज रहे हैं ॥ ३ ॥ मीढ़में अचट-सचट कराती
हुई वह उनीचे नयमोंवाली नवेली मेरे मनमें चित्रके समान
बनकर बस गई है ॥ ४ ॥

मुस्कान : इस नवेलीके मुखपर जो असीक्तिक प्रसन्नता
भाज रही है उसे आप मुस्कान न समझिए, यह तो उसके
वीरनकी मस्तीका उठान है ॥ १ ॥ युवकोंके जो हृदय पग-पगपर
कामके बाधोंकी मारसे व्याकुल हुए रहते हैं वे तन्हीं पारियोंके

कामबाधप्रद्वारेण मूर्च्छितानि पदे पदे । जीधमि युव-
चेतांसि युवतीनां स्मितामृतैः ॥ २ ॥ तावदेव मनोज्ञस्य
शरीरस्त्वै रुञ्जिता । न यावन्नपतेयुस्ते कान्त स्मि-
तसुधांशवः ॥ ३ ॥ धवलीकरोति हरिता मलिनीकुरुते
मनः सपञ्जीनाम् । अस्या हास्यविकासो मम तु मनो
रक्तमाचरात् ॥ ४ ॥ निरोक्ष्य वदत्य पतिं मयच्छुभ्रपा-
प्रशंसायुतसिद्धपारदम् । वभूव वैद्यस्य मिथानपत्या
रहस्यपूर्वस्मितवक्त्रयुक्ता ॥ ५ ॥ पुष्पं मवालोपहितं
थां स्यान्मुक्ताफलं वा स्फुटचिद्रुमरयम् । ततोऽनुकु-
र्याद्विशदस्य तस्यास्ताम्रहृषयस्तद्वचः स्मितस्य ॥ ६ ॥
मधुरः कुसुमविकासो विशदः पीयूषदीधितेवदयः ।
वरवर्णिनीस्मितं तु क्षमं न निर्वक्तुमीदृगिति ॥ ७ ॥ मां
जितं ननु सम्भाव्य स्मयते सुभगामुखम् । इति सम्भा-
व्यजनन्तच्छन्दोऽपि प्रधावति ॥ ८ ॥ पवि प्रसादी-
कुरुत सुधांशारेण सङ्काशमपि स्मितस्य । तत्की-

मुस्कानकरी अमृतसे अखड़े होते रहते हैं ॥ २ ॥ कामदेवके
बाध तभीतक छपना पराक्रम नहीं दिखा पाते जबतक प्यारेपर
प्रियनमाकी मुस्कानकी किरणें नहीं पड़ती ॥ ३ ॥ इस नवेलीकी
हँसीकी बौदनी चारों दिशाओंको तो कमका रही है किन्तु
सौतीका मन मेका कर रहीं है और हमारे मनको भी रक्त
(रक्तान, प्रेमपूर्व) बनाए बाध रही है ॥ ४ ॥ किसी
दिवने किसी नपुंसक शोभीते अत्यन्त धन लेकर उसे आभारी
करके बड़ी सराहनाके साथ पारा दिया उस समय वैद्यकी
निःसन्तान पत्नी बड़ी भेद-भरी मुस्कानसे अपने पतिका
मुँह देखने लगी (कि यदि पारमें यह गुण है तो आप ही क्यों
नहीं सेवन करके अपने उत्पन्न कर लेते, आप भी तो ऐसे ही
नपुंसक हैं ।) ॥ ५ ॥ इस नवेलीके साज-साज ओठोंपर
कसकती हुई जमली मुस्कानकी बराबरी तभी कुछ-कुछ हो
सकती है जब मई जाज कोपलोपर उजले फूल छाया दिए जायें
या कमकीसे साज मूँगेपर मोती टँक दिए जायें ॥ ६ ॥ वसन्तमें
फूलोंका निजना और अमृतमयी किरणोंवाले चन्द्रमाका
निकलना दोनों बड़े सुखदायक होते हैं किन्तु मेह चिह्नोते
सजी हुई नवेलीकी मुस्कान तो कुछ देसी अनोकी होती है
कि उसका कुछ कहकर वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ ७ ॥
नवेलीकी मुस्कान देखकर यह चन्द्रमा मानो पही सनभर
बादलोंमें छिपनेके छिपे दीदा वा रहा है कि 'यह सुन्दरी मुझे
हारा हुआ समझकर ही मुसकर रही है' ॥ ८ ॥ यह नवेली यदि

मुयीनां कुरुते तमेव निमित्त्य देवः सफलं स्वजन्म ॥ ६ ॥ सुधासिन्धोर्मुखस्येयं फेनलेखा चर्हिर्गता । प्रघट्म्ययथाप्रक्षोस्तव स्मितपरम्पराम् ॥ १० ॥

हासतम्—अकस्मादेव तन्वः १ जहास यदियं पुनः । नूनं प्रसूनवाणोऽस्यां स्वाराज्यमधिपतिप्रति ॥ १ ॥ स्म-यमानमायताक्याः किञ्चिदभिव्यक्तदशनशाभि मुखम् । अस्ममलक्ष्यकेसरमुच्छसद्वध पङ्कजं २ ॥ २ ॥

वाणी—अमृतद्रवमाधुरीधुरीणां गिरःकण्यं कुर-क्लेशनायाः । मुहुरभ्यसनं कषायकण्ठी कलकण्ठी कुरुते कुङ्कुमतेन ॥ १ ॥ कण्ठे वसन्ती चतुरा यदस्याः सरस्वती वाद्यते विपञ्चीम् । तदेव वाग्भूय मुखे मृगाशयाः भानुः भूतो यात सुधास्तनवम् ॥ २ ॥ पद्माङ्गुलसंगममध्यस्थ लक्ष्मीमेकस्य । धर्माः श्रयस्तस्य-पर्काम् । आस्यन्मुमस्या भजत जिता-जं सरस्वती

हुआ कारे अपनी मुसकानका सहजर्ब भाग भी चन्द्रमाको दे देती तो वह उसे अपनी चौदनीमें धाँककर अपना जन्म सफल कर लेता ॥ ६ ॥ तुम्हारे इस अमृतके समुद्रके समान मुखसे जो फेन बहकर बाहर आ रहा है उसे ठोक-ठोक न समझ सकनेवाले लोग तुम्हारा मुसकान कह बैठते हैं ॥ १० ॥

हैसी : इस पतला कमरवाला नखेलाका अचानक खिन्न-खिलाकर हँसत देखकर जान पड़ता है कि अब मिश्रण हा इसपर कामदेव अपना आधिकार जमानेवाला है ॥ १ ॥ उस चढ़-चढ़ी आँखोंवाली नायिकाका मुस्कराता हुआ और कुङ्कुम-कुङ्कुम लालक-वाले दाँतसे मुहावना कमानेवाला मुख उस कमलक समान दिखाई दे रहा है जो धाँदा-सा लाला हुआ और जिसके केसर भी धाँदे-धाँदे दिखाई पड़ते हैं ॥ २ ॥

वाणी : हरियाँके नेत्रोंके समान आँखोंवाली उस नायिकाकी जो वाणी अमृतके रसकी मिठाससे भी बढ़-चढ़कर है उसे सुनकर बार-बार 'कू-कू' करनेवाली यह मिठवाली कापल ऐसी जान पड़ती है मानो उस नखेलाके समान धाँकनेका प्रयास कर रही हो ॥ १ ॥ इस मृगालयनी नखेलाके गलेमें बँधी हुई सरस्वतीजी जो बीया बजा रहा है उसकी तारें ही इसके मुखका वाणी बनकर सुननेवाला कानमें अमृतक रसका रस भरकर दफकती हैं ॥ २ ॥ अकेले विष्णुका धाकके बलपर कमलके बीच बैठा हुई अपनी सात लक्षनाका दलकर हा क्या सरस्वतीने उसे जाननेके लिये कमलका शाभा प्राप्त लेनेवाले इसके मुखचन्द्रमें आकर डेरा डाल दिया है ॥ ३ ॥ इस नखेलाका वाणी

सद्विजिगीषया किम् ॥ ३ ॥ प्रसूनवाणाद्वयवादिनी सा कापि द्विजेनोपनिषन्विजेन । अस्याः किमास्य-द्विजराजो वा नाशोयत भैक्षभुजा नदभ्यः ॥ ४ ॥ शिरीषकोपादपि कोमलाया वेधा विधायाद्गमशेष-मस्याः । प्राप्तप्रकर्षं सुकुमा सर्गं समापयद्वाचि मृदुन्वमुद्राम् ॥ ५ ॥ सरस्वती दीव्यति विभ्वधात्रा समं सराजे यदने त्वदीये । तत्काकल दिग्धरसा गभीराः धमानुराधाविष निस्सरन्ति ॥ ६ ॥ स्वरण तस्याममृतकृतेष प्रज्जल्पितायामभिजातवाचि । अव्य-म्यपुष्टा प्रतिकूलशया भानुवितन्त्रीरिव ताव्य-माना ॥ ७ ॥

जृम्भा—आस्येन्दोः परिवेषवद्वृत्तिपतेभ्याम्येयको-द्वद्वयवद्विज्जाम्भुमुचः लण्यतिवदसज्जा स्तिपन्ती भुजा । विशिष्यद्वलि लक्ष्यनाभि विगलज्जाम्भुजमम-

सुनकर ऐसा क्या नहीं जान पड़ता है कि वेहाँसे भिन्न माँगकर अपना पेट पालनेवाला द्विज (पक्षी, माइण / पिक (कापल) इसके मुखरूपी द्विजराज (चन्द्रमा, भेद मङ्गलानी) से कामदेव भी संसारका आपसमें एकता बनानेवाला उपनिषद् सीख रहा है ॥ ३ ॥ जिस मङ्गलाने कामल वस्तुएँ बनानेमें बहुत नाम कमा रक्खा है उसने शिरीषके फूलके भीतरी भागसे श्री कामल इसके सब अंग बनाकर, बची हुई कामलतासे इसको वाणी बनाई ॥ ४ ॥ तुम्हारे मुखसे निकली हुई मधुर वाणी ऐसी जान पड़ती है मानो तुम्हारे मुँहके भीतर मङ्गलके साथ काम-मीठा करते समय सरस्वतीके मधुर कण्ठसे या आनन्दकी मोंकमें ईश्वी स्वर निकलता है वही तुम्हारे मुँहसे बाकी बनकर बाहर निकल रहा हो ॥ ५ ॥ जब उस नखेलाकी वाणी कुङ्कुम-कुङ्कुम सुली तो ऐसा लगता मानो उसके स्वरसे अमृत बू रहा हो । उसके सामने कीपलकी कूँक ऐसी रूखी जान पड़ती थी मानो कोई केसुरी बीया छेदो जा रही हो ॥ ७ ॥

जैभाई : चढ़के समान स्तनोंवाली उस नखेलीने जिस समय जंभाई लेकर जैगाढ़ाईके लिये अपने दोनों हाथ मिलाकर बाँहें ऊपर उठाई उस समय वे गाल की हुई बाँहें ऐसी जान पड़ती थी माना मुखरूपी चन्द्रमाका मयइल हा, चन्द्रके फूलसे बना कामदेवका धनुष या तिरके अङ्क-स्फी चन्द्रापर निजकीका घेरा हा । इस प्रकार जंभाई लेते समय उसके पेटपरकी सिकुड़ने मिट गई, भाभि दिखाई

धर्मं किञ्चित्किञ्चिदुद्भूतं दध्मलमहो कुम्भस्तनी जृम्भते
॥ १ ॥ चक्रीकृतभुजलतिकं चक्रीकृतचक्रमुन्नमद्भी-
षम् । नो हरति कस्य हृदयं हरिणदशो जृम्भण-
रम्भः ॥ २ ॥

गमनम् - गुरुतरकलनूपुरानुनादं सललितगति-
तयामपादपणा । इतरदनतिलोलमादधाना पदमथ
मन्मथमन्धरं जगाम ॥ १ ॥ दूरयन्त्या जनं सर्वं निरा-
गसमचक्षया । मातङ्गानां गतिर्यादृक्तादगासीदसं-
शयम् ॥ २ ॥ मारयन्त्या जनं सर्वं निरागसमिवा-
क्षया । मातङ्गानां गतिर्यादृक्तादगासीदसंशयम् ॥ ३ ॥
सहीलमियमायाति कामिनी गजगामिनी । उज्जतं हि
नक्षज्योतिः पुष्पैर्भुधमियार्चती ॥ ४ ॥ सा राजहंसे-
रिषि सन्नताङ्गी गतपु लीलाश्चित्तविक्रमेण । स्थनीयत
मस्युपदेशलुब्धेरादिरसुभिर्नृदुरासिञ्जितानि ॥ ५ ॥

देने लगी, भाड़ा चुक गया, कमर सीधी हो गई और
झातीपरका आँखल कुछ-कुछ उधलने और उठने लगा
॥ १ ॥ जैभाई खेत समय जब उस मृगनयनी नवेलीके दोनों
हाथ ऊपर उठकर गोल हो जाते हैं, मुँह टेढ़ा हो जाता है और
गला सीधा होकर उठ जाता है तब वह किसका मन नहीं
लेती ॥ २ ॥

चावल : कोई नवेली अपने पतिके बाईं ओर उसके
शरीरसे सटकर चलती हुई अपनी पैनी भनभनानी है, बाधें
पैर बहुत सँभाल-सँभालकर रखती चलती है और इस प्रकार
कामके बोझसे बहुत धीरे-धीरे चल रही है ॥ ३ ॥ इस नवेलीकी
मतवाली और बिना अपराधके ही सब मनुष्योंको दूर
हटानेवाली मदमाली चाल मतवाले हाथियोंकी चालसे
मिलती-जुलती है क्योंकि हाथी भी ऐसे ही झूमते हुए और सँभ-
लकर चलते हैं माना मैं संसारमें किसीको कुछ नहीं
समझता ॥ ४ ॥ वह नायिका अपनी आँखोंसे सबका बिना
अपराधके ही मारे डाल रही है इससे निश्चित है कि इसकी
गति (चाल, व्यवहार) मार्तण्ड (हाथी, चाण्डाल) जैसी
ही है ॥ ५ ॥ हाथोंके समान चालवाली यह नायिका जब
चटक-मटकके साथ चलती है और धरतीपर इसके पैरोंका नल्लोंका
धमक पड़ती है तब ऐसा जान पड़ता है माना उस धमककरी
पुष्पोंसे धरतीका पूजा करती चल रही है ॥ ६ ॥ रीचनके
भारसे झुकी हुई वह नवेली जब बड़ो चटक-मटकके साथ
चलती है तब ऐसा जान पड़ता है माना उसके पायजोंसे

उड़ीपनविभावाः

प्रभातवर्णनम्—अधिरजनिमुखे यः सान्द्रलाक्षानु-
रागेर्ध्यातिकरित इवोच्चैः पाटलत्वं दधानः । उषसि स
खलु दीपः पामनिर्धूतरागः स्फुरदधर इवायं धूसरत्वं
विभक्ति ॥ १ ॥ अनुनयमश्रुहीत्वा व्याजसुप्ता पराची
रतमथ कृकषाकोस्तारमाकर्ण्य कल्पे । कथमपि परि-
वृत्ता निद्रयाग्धा किल स्त्री मुकुलितनयनैवाश्लिष्यति
प्राणनाथम् ॥ २ ॥ अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुदतीयं
दृष्टिं न नन्दयति संस्मरणीयशोभा । इष्टप्रवासजनि-
ताम्यवलाजनेन दुःस्वप्न नूनमतिमात्रदुःखहानि ॥ ३ ॥
अन्यथ यापितनिशं परिलोहिताङ्गमन्याङ्गनागतमिवा-
गतमुष्णरश्मिम् । प्रातनिरीक्ष्य कुपितेव हि पश्चिमीय-
मुत्फुल्लहङ्गकसुलोहितलोचनाभूत् ॥ ४ ॥ अपयान्तीनाम-
धुना सङ्केतनिकेतनाम्भुगाक्षांशम् । वासस एव न केव-

निकलनेवाली 'दमभुन' ध्वनि सीलनेके लिये ललचाए
राजहंसोंने अपनी हाव-भरी चाल उसे पहले ही बदलेमें लिका
वाली हो ॥ ५ ॥

उड़ीपन विभाव

प्रातःकालका वर्णन : जो दीपक रातको महाभरके
रङ्गके समान लाल-लाल प्रकार दे रहा था उसकी लौ
प्रातःकाल होनेपर बिली ही मन्द पड़ गई है जैसे चुन्चल
लेनेके पश्चात् निचले छोटाका रङ्ग पीका पड़ जाता है
॥ १ ॥ रातमें जो प्रियतमा अपने प्रियतमके बहुत मनानेपर
भी नींदका बहाना करके मुँह फेरकर सो गई थी उसने
प्रातःकाल जब सुर्गेकी बौंग सुनी तो वह प्रियतमसे विरोग
होनेके भयसे घबराकर गहरी नींदका बहाना करती हुई कबल
बदलकर आँखें बिना खोले ही अपने प्राणनाथका आलिङ्गन
करने लगी ॥ २ ॥ इस कुमुदनीकी जो शोभा वह पहले आँखोंको
सुख दे रही थी, चन्द्रमाके क्षिप जानेपर जाती रही क्योंकि
प्रियतमका बिछाव खियाँ किसी प्रकार भी सहन नहीं कर पाती
॥ ३ ॥ तालमें खिले जाल कमलके पीछे और जाल कमलोंको
देखकर ऐसा जान पड़ता है कि प्रातःकाल खिले हुए जाल
सूर्यको देखकर कमलनिपा (कमलके पीछे) ने अपनी-
अपनी कमलकुरी आँखें इसलिये खाल कर ली हैं कि सूर्य
रातभर किसी दूसरा नायिकाके साथ रहा है और उस लौके
शरीरमें पुत हुए केंसरके रंगसे अपनेको रङ्गकर प्रातःकाल चला
आ रहा है ॥ ४ ॥ प्रातःकाल अपने आँख-आँखोंसे निकलकर

लभप्रभश्चमनसोऽपि परिवर्त्तः ॥ ५ ॥ अभूत्प्राची पिक्ता
रसपतिरिव प्राप्य कनकं गतच्छायश्चन्द्रो युधजन इव
आम्यसदसि । क्षणक्षीणास्तारा नृपतय इवानुयम-
परा न दीपा राजन्ते द्रविणरक्षितानामिव गुणाः
॥ ६ ॥ अयमुद्यमहीभ्रूमूभिर्पाणि गृहीत्या दिवस-
पतिरहोपीदिन्दुपादान्दृष्योपि । अरुणकरणचक्रं
कन्यका पौरुहुती हरिदपि किमकार्योत्तरकाजाल-
होमम् ॥ ७ ॥ अयं मृदुमृणालिनीवनविलासयैर्हार्तिक-
स्त्रिपां धितपते पतिः सपदि दृश्यमाना निजाः ।
स्तनौ पुलकयन्ति चोत्पलदृशां प्रियोरःस्थले विपर्ययि-
तवृत्तयो पुस्तपङ्कपत्राङ्कुराः ॥ ८ ॥ अरुणजलदराजी-
मुग्धहस्ताग्रपादा बहुलमधुपमालाकजालेभ्दीवराक्षी ।
अनुपतति विरायैः पद्मिण्या व्याहरन्ती रजनिमञ्जिर-
जाता पूर्वसन्ध्या सुतेष ॥ ९ ॥ आविरतमविरामा रा-
गिणां सर्वरात्रं गवनिधुवनलीलाः कांतुकेनाभिधीप्य ।

रदमुदवसितानामस्फुटालोकसम्पन्नयनमिव सनिद्रं
धूलंते दैपमचिः ॥ १० ॥ आद्ये जग्मुपि ताम्रचूडरचिते
शोत्रं प्रबुद्धा जवान् किञ्चिद्वासरदिक्ष्वथं प्रविकस-
द्भूषा गवाक्षाध्वना । सन्त्रासेन समीरिता प्रियत-
मप्रेम्णा च रक्षा शनैरन्धानोपनिवेशनानि कुरुते तल्पे
मुहुः पांसुला ॥ ११ ॥ आपाटलैः प्रथममङ्कुरिर्नर्मयुल्ले-
रक्षां गतिः प्रथमशैलधिहारिणीनाम् । नाऽयं करानि
सुरपुङ्गवसुन्दरीणां कर्णेषु कल्पनरूपलक्षभङ्गलक्ष्मीम्
॥ १२ ॥ आलोकेरतिपाटलैरचरमां विस्तारयद्भिर्दिशं
नक्षत्रद्युतिमाक्षिपद्भिरचिरादाशङ्क्य सूर्योदयम् ।
पुञ्जीभूय भयादिवान्धनमसं मन्ये द्विरेफच्छताम्नी-
सञ्जालसरोरुहोदरकुटीकोणान्तरे लीयते ॥ १३ ॥
आश्लेषशेषा रतिरङ्गनानामामोदेश्या कुचकुङ्कुमधीः ।
मूर्त्तिरशेषः कुसुमायुधाऽपि प्रभातशेषा रजनी यक्ष्य
॥ १४ ॥ आसीस्थं निशिराज्रकट्टदयेतीर्ष्यालुना

जाती हुई सुगन्धनी नखेलियोंके केवल बस ही नहीं बदल
जाते बरन् उनका मन भी बदल जाता है और भोगविलाससे
मन जाता है ॥ ५ ॥ प्रातःकाल पूर्व दिशा बर्सा ही
पीली पड़ गई है जैसे पारेसे मिला हुआ सोना, चन्द्रमा कैसा
ही पीका पड़ गया जैसे मूकोंकी सभामें पवित्रत तथा तारे ऐसे
ही मन्द हो गए जैसे दृष्टिके गुण ॥ ६ ॥ प्रातःकालका दृश्य
ऐसा जाम पड़ता है मानो उद्याचलके शिखरपर पूर्व दिशाकूपी
कन्याके साथ विवाह करता हुआ सूर्य, लाल किरणरूपी
आगमें अग्निभस्मी किरणरूपी हविका आहुति दे रहा हो । क्या
पूर्व दिशाकूपी कन्या भी सूर्यके साथ साथ उठी आंसमें
ताररूपी धानकी आंखें होम करती जा रही हैं ? ॥ ७ ॥
प्रातःकाल कमल कमलिनियोंके कममें काँड़ा करनेका व्यवसाय
सूर्य चमकने लगा है और कमलके समान आँखेंवाली शिखी
जब अपनी छातीपर केसरसे बने हुए येलबूटीकी छाप अपने
पक्षियोंके छातीपर लगी देखती है तो उसके स्तनपर रमा
उठता है ॥ ८ ॥ लाल कमल ही जिसके सुन्दर हाथ-पैर हैं,
भीरोंका भुयब ही काजल है, लिले हुए नीले कमल हो नेत्र हैं,
पक्षियोंके कलत्रके रूपमें जो अपनी मौका पुकार रही है वह
प्रातःकालकी ललाईरूपी तत्काल उत्पन्न हुई कभी अपनी माता
रात्रिके पीछे-पीछे दौड़ी चली जा रही है ॥ ९ ॥ प्रातःकाल
इस धुँधले दीपकको देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो धरकी
आँख बमकर जो यह सारी रात बड़े चावसे कामियोंकी निरन्तर

होनेवाली काम-कावापें देखता हुआ सारी रात जागता
रहा इसलिये प्रातःकाल भपका चापसे उसकी देखनेकी
शक्ति भी मन्द पड़ गई हो और उसकी आँखें भीपी जा
रही हों ॥ १० ॥ तरके-तदके मुँकोंकी पाँग लुनकर भट
नींद लुल जानेपर वह नवेली आँखेंसे दिन निकला देखकर
अपने प्रियतमसे बिछोह होनेके उरके मारे छटियापर कबड
बदल ही रही थी कि इतनेमें पूर्व दिशामें लाल-लाल
सूर्य दिखाई पड़ गया ॥ ११ ॥ पहले-पहल फूट निकलने-
वाली सूर्यकी लाल-लाल किरणें ऐसी शोभा दे रही हैं मानो
उद्याचलपर टहलनेवाली शिखीके कानोंपर कल्पवृक्षकी कोपलें
हँगी हुई हों ॥ १२ ॥ प्रातःकाल सूर्यकी लाल-लाल किरणोंसे
पूर्व दिशा कैल ली गई और तारोंकी चमक धुँधली पड़ गई ।
इस प्रकार सूर्य निकलनेके समय कुछ-कुछ लिले हुए नीले
कमलके भीतर बँटे हुए और ऐसे आन पड़ते हैं मानां सूर्यके
करसे सारा अंधेरा हकड़ा होकर उस नील कमलरूपी कुटीके
कोनेमें छिपा जा रहा हो ॥ १३ ॥ अब कियोंकी सब कीड़ाएँ
समाप्त हो गईं, केवल (अपने प्यारेको) गले छगाना-भर बस
रहा है, स्तनपर पुता हुआ केसर छूट गया है और उसकी
सुगन्ध-मात्र बच रही है तथा कामदेवके सारे बाण छूट चुके हैं
और धुँधला मूर्त्तिर मात्र शेष रह गया है । अतः आन पड़ता है कि
रात भी बीत चली है और अब उसका अन्तिम पहर (उपकाल)
मात्र शेष रह गया है ॥ १४ ॥ प्रातःकाल निकला हुआ सूर्य

वज्रिणा प्रातः शङ्खितयेव दिव्यपदवीं गत्वात्मनः
शुद्धये । और्वोत्तापितवाधितापकतलादादाय मुक्तो
यहिः प्राच्याऽसौ दिवि तप्तमायक इय प्रद्योतनो
द्योतते ॥ १५ ॥ इतः पौरस्त्यायां ककुभि चिक्षणोति
कमदलसमिद्धामर्माणं किरणकलिकामम्बरमणिः ।
इतो निष्क्रामन्ती नवरतिगुरोः प्रोद्भुति वधूः स्वक-
स्तूरोपत्राङ्गुरमकरिकामुद्रितमुरः ॥ १६ ॥ इतः शुक्ला
चन्द्रधतिभिर्गिरि रकारणकरेस्तमिस्त्रैरव्यन्तःस्वलि-
तगतिभिर्मैश्चकरुचिः । प्रमातभोरेषा विलसति
पुरस्था सुकृतिनां मिमङ्गुलां जङ्घमणिविधिजासङ्गम
इव ॥ १७ ॥ इतः शोचिः प्राच्यां दिशि दिशति भानो-
रकण्ठामितो भृङ्गः कूजप्रभिकमलिनीं प्रोचलसि
च । इतो निर्यान्त्युद्यौ विहितसुरतकशान्तिशिथिल-
स्त्रालत्पाद्म्यासक्षुण्णरणितमञ्जीरमयलाः ॥ १८ ॥ उत्था-
योन्नतवासयपिशिकरे विस्तारिताकुञ्चितं विभ्रत्पा-

वमुदस्तकेसरसटः किञ्चिद्विनिद्रेक्षणः । दूराद्विशित-
कन्धरः शमयशाद्याभूय पक्षद्वयं मानम्लानिकरः
कुरङ्गकदशां कोकूयते कुक्कुटः ॥ १९ ॥ उत्फालं
हेलयैव द्रुतमभिपततः पूर्वपृथ्वीधराग्रादुद्यौर्विध-
पेटाद्विभिर्गिरि हरेर्ध्वान्तवस्ती विदीर्णः । रक्ताः
कुम्भैर्विमुक्ता इव सकलदशां विस्मयं सन्धानाः
सन्ध्याशान्तिवस्तुः सपदि निपतितास्तारकास्ताः
समस्ताः ॥ २० ॥ उन्मीलन्ति निशानशाचरवधूः प्रो-
चाटनानामन्त्रिकाः सायं सालससुषुप्तजवनप्राङ्गो-
धैतालकाः । कुलपङ्कजकोशगर्भकुहरप्रोद्भूतभृङ्गाव-
लीभङ्गादप्रणवोपदेशगुरवस्तीव्रद्युतेरंशुवः ॥ २१ ॥ एक-
द्विभृतिप्रमेण गणनामेषामियास्तं यतां कुर्वाणा सम-
कोचयद्दशशतान्यम्भोजसंघातिकाः । भूयोऽपि कमशः
प्रसारयति ताः सम्प्रत्यमनुचता सङ्ख्यातुं सकुतह-
लेव नलिनी भानोः सहस्रं करान् ॥ २२ ॥ एतत्तर्क्य

ऐसा दिखाई पड़ता है मानो जब हृदये अपनी प्रियतमा पूर्व
दिशापर यह सन्देश दिया कि 'तुम चन्द्रमासे प्रेम करने लगी
हो', तब वह तपस्या करके यह कलङ्क छुड़ानेके लिये पाताल
लोकका चली गई और अपने पवित्र हों जानेका प्रमाण देनेके
लिये यद्वानलसे तपे हुए समुद्रतलसे जां दहकता हुआ
सामेका गाला हाथमें लेकर आई है वहा यह सूर्यके कपमें
चमक रहा है ॥ १५ ॥ ह्मर ता पूर्व दिशामें सूर्य कमशः
चौधरेका इदम फाड़ देनेवाला अपनी किरणोंका कलया फैला
रहा है और उधर अपने आकाशमणसे निकलती हुई
वायिका अपने शरारसे छूटकर अपने साथ निरधन है रात
करनेवाले प्रभातका छातापर लगी हुई कस्तूराके बेक-पूडाकी
छाप पावता जा रहा है ॥ १६ ॥ प्रातःकालका बुदा
ऐसी निराशा है कि कहीं ता हूयत हुए चन्द्रमाका चोदनोंका
पुंछलापन छाया हुआ है, कहीं सूर्यका किरणोंकी लज्जाई
छाई हुई है और कहीं-कहीं रहे हुए अन्धकारसे काजापन भी
दिखाई दे रहा है । इसलिये प्रभातकी छटा स्नान करनेवाले
पुण्यारमाओंके लिये गङ्गा, यमुना और सरस्वतीके सहमके
समान पवित्र हो गई है ॥ १७ ॥ पूर्वमें एक ओर तां
सूर्यकी लज्जाईका चमक शोभा दे रही है, दूसरी ओर
गुनगुनाता हुआ भौरा कमलिनीकी ओर यदा जा रहा है
और ह्मर अत्यन्त वेगसे रात करनेके परिश्रमसे थकी हुई
मारियाँ जगमग पिरांसे चलनेके कारण ठक-ठककर, बिबुध

जमाती हुई अपने कीड़ा-भयनोंसे निकल रही हैं ॥ १८ ॥
तदके तदके उठकर, जैसे अङ्गुर चढ़कर, एक-एक पैर उठाकर
सिकांदा-देलता हुआ, अपने गलेपरके रोंपे उठाकर कुच
उनींदी ओलोंसे देखता हुआ तथा अपने कंधे उचकाकर,
अपने दोनों पङ्क भरपूर कुलाकर शान्तिके साथ उन्हे फड़कड़ाता
हुआ, यह इरिणकी-सी ओलोंवाली कामिनियोंका मान भङ्ग
करनेवाला मुर्गा 'कुक्कु' 'सूँस' की डेर सुना रहा है ॥ १९ ॥ पर्वतोंके
पूर्वी ढालपर खाली फैलाता हुआ, अपनी किरणोंके उभावेसे
चौधरेकपी ऐरावत हाथीके दौत उल्लासता हुआ, जाल-जाल
चमकता हुआ और रात्रि तथा दिनके मिलनकी लज्जाई धारण
करनेवाला सूर्य ज्यों ही उदय हुआ (यों ही सबको चकित
करते हुए तारागण ऐसे ऋग् गप् मानो चढ़ोंसे रत गिर गप् हों
॥ २० ॥ तदके-तदके चारों ओर फैलनेवाली सूर्यकी किरणें ऐसी
जान पड़ती हैं मानो रातरूपी राक्षसीको भगानेके लिये सन्ध्या
जप करनेवाले तान्त्रिक हों, या आलस्यसे सोए हुए कमलोंको
जगानेवाले वैतालिक (चारण) हों अथवा लिले हुए कमलोंके
बीचसे निकलते हुए भौरोंकी गैररूपी प्रणय (प्रीति) का
उपदेश करनेवाला आचार्य हों ॥ २१ ॥ प्रातःकाल कमसे अपनी
पङ्कड़ियों संजलती हुई कमलिनी ऐसी जान पड़ती है मानो
सन्ध्या समय सूर्यके साथ सिमटनेवाली किरणोंकी जां गिनती
कमलिनीने अपनी पङ्कड़ियोंका कमसे सिकांद-सिकांदकी भी,
वही अब निकलती हुई किरणोंका बड़े प्रेमसे एक-एक करके

चक्रवाकसुहृशमाध्यासनादायिनः प्रौढध्वान्तपयोधि-
मग्नजगतीदतावलम्ब्योत्सवाः । दीप्तांशोऽधिकसन्ति
विष्णुगदशां काश्मीरपङ्कोदकज्यानुत्तीचतुराः सरो-
रुहवनध्रीकेलिकाराः कराः ॥ २३ ॥ एते केतकधूलि-
धूसररुचः शीतघृतेरंशवः प्राप्ताः सम्प्रति पश्चिमस्य
अलघेस्तीरं जराजर्जरा । अप्येते विकसन्सरोरुहव-
नीदृक्पातसम्भाविताः प्राचीनगमुदीरयन्ति तरणे-
स्तादृश्यभाज कराः ॥ २४ ॥ का कावला निधुव-
नधमपीडिताङ्गी निद्रां गता दयितयाहुलतानुवदा ।
सा सा तु यानु भवनं मिहिराङ्गमोऽयं सङ्गतयाप्य-
मिति काकचया घटन्ति ॥ २५ ॥ किञ्चिद्विश्रुध-
केशधान्तकुसुमाः कीडाविलोलांशुका लुप्तालुप्तशरीर-
चम्पनतया लोकैकनेत्रोत्सवाः । सम्भागश्रमविह्वलैर-
वयवैः सङ्केतशालान्तराभिद्राशेपकपायिताधनयना
निर्यान्ति घाराङ्गनाः ॥ २६ ॥ कुफकुटे कुर्वन्ति काख-

माननं शिल्पयोस्तयोः । दिवाकरकगकान्तं शशिका-
न्तमिवायमौ ॥ २७ ॥ कुमुदवनमपथि शोमदम्भोज-
खण्डं न्यजति मुदमुत्कः प्रीतिमांश्चक्रधाकः । उदयम-
हिमगेजिर्यानि शीतांशुरभ्यन्तं हनविधिलसितानां ही
विनिघ्नो विपाकः ॥ २८ ॥ कुयंभ्राभुशपृष्ठो मुखनिकट-
कटीस्कन्धरोमा तिरश्चां लोलेनाहन्यमानस्तुद्गिनक-
णमुन्ना चञ्चता केशरेण । निद्राकराङ्कपायं कर्पनि
निविडितथात्रशुक्तिस्तुरङ्गस्यङ्गपद्माप्रलम्पतनुवुत्स-
कणं कोणमणः स्मरण ॥ २९ ॥ कृतधवलमभेदैः
कुङ्कुमेनैव किञ्चिन्मलयरुहरजाभिर्भूयन्पश्चिमाशाम् ।
हिमरुचिररुणिम्ना राजते रज्यमानैर्जरठकमलकन्द-
वृद्धगौरैर्मयूखैः ॥ ३० ॥ कोकानुद्धीचयन्तः पथि
पथ कुलटामानसं कथयन्तः प्रस्थानारं प्रभाते प्रिय-
तममयहा गाढमालिङ्गयन्तः । उधातुं चारुभङ्गीः
कुलकमलदशां कारयन्तो निशान्ते कुङ्कराः कुफकु-

गिते हुए कमराः एक-एक पङ्कड़ी खोल रही हो ॥ २२ ॥
पह देखो, चकवेकी सुनवनी नवेलियों (चकवियों) का डाँस
बैधानेवाली, घने चन्द्रकारकी समुद्रमें डूबे हुए संसारको
सहारा देनेवाली, दिशाकी नाविकापर केशरके पानका छाँटा
हालनेवाली तथा कमल-वनका शोभाकी नाविकाके साथ
कीड़ा करमें रस लेनेवाली सूर्यकी किरणों चमकने लगीं
॥ २३ ॥ एक बार तो केवड़े के फूलके परागके समान पुँधकी
चन्द्रमाकी किरणों पुरानी पड़ जानेके कारण चूर-चूर टाँकर
पश्चिम-सागरके किनारे जा पड़ी है और दूसरी बार सूर्यकी ये
चमकती हुई नई-नई किरणों पूर्ण दिशाको छाछ बनाए दे रही
हैं जिनका बादर जितनी हुई कमजिनिर्वा अपनी शितवन-द्वारा
किया करती है ॥ २४ ॥ प्रातःकाल कीड़े जो कौब-कौब कर
रहे हैं वे मानो रँगोली नवेलियोंको चेतावनी दे रहे हैं कि
'सम्भोगसे थककर पतिकी बाँटोंमें लिपटी हुई कौन जो अबतक
सो रही है ? अब दिन निकल आया है, अतः उसे अपने घर
चले आना चाहिए' ॥ २५ ॥ देखो, जिनके सुले हुए जूँहोंसे
फूल सरक-सरककर गिर रहे हैं, जिनके वस्त्र रति-काँड़ासे
मिसे हो गए हैं, जिनके शरीरपर कहीं-कहीं लगे रह गए चन्दनके
थकसे देखकर लोग आनन्द ले रहे हैं, जिनके अङ्ग सम्भोगकी
थकावटसे ढीले पड़ गए हैं और जिनकी जींलें नींद पूरी न
होनेसे छाछ-छाछ और रँपो-सी लग रही हैं वे बेरुवाई अपने-
अपने मेमियोंसे मिलनेके कीड़ा-गुहोंसे तड़के-तड़के निकली

चली जा रही हैं ॥ २६ ॥ उरों ही प्रातःकाल सुर्गेकी बाँग
सुनाई पड़ा ॥ उरों ही नायक और नाविकाके आपसमें सटे हुए
मुँह ऐसे काँके पड़ गए जैसे सूर्यकी किरणोंके भागे चन्द्रकान्त
मणिकी चमक पुँधकी पड़ जाती है ॥ २७ ॥ प्रातःकाल कुमुदका
वन मुरझा गया, कमल गिर गए, उल्लू उड़ा हो गया,
चकवा फूल उठा, सूर्य निकल आए और चन्द्रमा अस्त
होने लगा । सचमुच भाग्यहीनोंके कर्मोंका फल यद्वे विचित्र
उड़का होता है ॥ २८ ॥ प्रातःकाल अपने शरीरपर पड़ती
हुई अस्त होतं हुए चन्द्रमाको तिरङ्गी किरणोंसे चाँककर घोंका
अपनी पाँठ तालकर तथा कन्धा मोड़कर, अपनी कमरके पास
हिलते हुए अयाजोंवाला गला बार-बार घुमा रहा है और
अपने कान विपटाकर सुरसे अपनी कङ्कड़ाई हुई उमीदी
जीँलके काँमे सुमला-सुमलाकर बरीनियोंमें लगे हुए भूसे
(या खीद) के मन्हें-मन्हें कण घुंका रहा है ॥ २९ ॥
प्रातःकाल रँगो हुई-सी किरणोंवाला, कमलकी पुरानी जड़के
डुकड़ोंके समान उजला और ताल-ताल-सा वह चन्द्रमा ऐसा
शोभित हो रहा है मानो केशरके पाँजे रहते चन्दनका पीला
करके उसके चूँलसे पश्चिम दिशाका शङ्कार कर रहा हो
॥ ३० ॥ रात बीतनेके समय सुर्गेकी कुकड़ू-कूँ, मधुके समान
मधुर, गर्भीर और ऐसी ऊँची सुनाई पड़ रहा है कि उसे सुनकर
चकवे उतावलेपनके साथ सिर उठा रहे हैं, न्यभिचारिणी
जियोंके हृदय कीप रहे हैं, जियों वस्त्रे जाते हुए नायकोंको गले

दानां मधुमधुरसमारम्भगम्भीरधीराः ॥ ३१ ॥ चन्द्र-
कान्तगलदधुनाधुना हा चकारनयने समाश्रिते ।
कोकलोकहृदयानलः पुनः सूर्यकान्तमणिमाश्रयत्यहो
॥ ३२ ॥ चिरतररतखेदप्राप्तनिद्रासुखानां चरममपि
शयित्वा पूर्वमेव प्रबुद्धाः । अपरिचलितगात्राः
कुर्वन्ते न प्रियाणामशिथिलभुजचक्राश्लेषभेदं तरुण्यः
॥ ३३ ॥ जाताः पकपलाण्डुपाण्डुमधुरकङ्कायाकिर-
स्तारकाः प्राचीमङ्कुरयन्ति किञ्चन रुचां राजीव-
जीघातवः । लूतातन्मुदितानवर्तुलमिता विभ्यं दध-
कचुम्बति प्रातः प्रापितरोम्बिरम्बरतलादस्ताचलं
चन्द्रमाः ॥ ३४ ॥ जम्भारम्भप्रचिततदलोपान्तजालम-
षिष्टैर्हस्तेर्भानानृपतय इव स्पृश्यमाना विमुद्धाः ।
स्त्रीभिः साधे घनपरिमलस्तोरलदयाङ्गरागा मुञ्च-
न्त्येते विकचनलिनीगभेशय्यां द्विरेफाः ॥ ३५ ॥
ततोऽरुणपरिरूपन्दमम्ब्रीकृतवपुः शशी । दध्ने काम-
परिक्लामकामिनीगण्डपाण्डताम् ॥ ३६ ॥ तमोभिः

पीयन्ते गतवयसि पीयूषवपुषि ज्वलिष्यन्मार्तण्डोप-
लपटलधूमैरिव दिशः सरोजानां कर्पञ्जलिमयमय-
स्कान्तमणिवन्तुणादन्तःशल्यं तपति पतिरद्यापि न
रुचाम् ॥ ३७ ॥ तरुणां दिवाकरमयूखमञ्जरीमहणाम-
शोकशिसराचलम्बिनीम् । कमनीयपुष्पममला समा-
श्रितां मधुपो विडम्बयति मञ्जभाषिणीम् ॥ ३८ ॥
दिङ्मण्डलीमुकुटमण्डनपद्मरागरसाङ्कुरे किरणमा-
लिनि गभितेऽपि । साक्ष्यप्रसुप्तिकमधुव्रतचक्रवालवा-
चालपङ्कजवनीसरलाः सरस्यः ॥ ३९ ॥ दिशि दिशि
मृगयन्तः बल्लुना घासमेते मुहुरपगतमिद्राः सप्तयो
द्वेपितेन । अयमपि च सरोचैः कामिभिः भ्रूयमाणो
नदति मधुरतारं तान्नचूडो विहङ्गः ॥ ४० ॥ हुत-
तरकरदत्ताः क्षितवैशाखशेले वधति वधमि धीरा-
मारवान्धारिणीव । शशिनमिव सुरीघाः सारमुज-
तुमेते कलशमुदधिगुर्वी बल्लवा लोडयन्ति ॥ ४१ ॥
हुमाः पाण्डुमाया धृतनिविडगर्भाः स्त्रिय इव प्रकु-

लगा रही हैं और कुल-बधुर् विधौनेसे उठनेके लिये घँगड़ाहूयों
ले रही हैं ॥ ३१ ॥ प्रातःकाल चन्द्रकांतमणिले निकला हुआ
सारा जल तो चक्रोंकी आँखोंमें पहुँच गया और चक्रवा-चक्रवीके
हृदयकी आग सूर्यकांत मणिमें समा गई ॥ ३२ ॥ सुखसे
जी-भर सोकर भी जो नवेलियाँ कुछ पढ़ले हो उठ गई हैं वे बहुत
देरतक रति करनेसे थक जानेके कारण गहरी नींदका सुख लेते
हुए अपने मिश्रतमोंको अपनी मुग्याँमें कसकर निभः होकर
आलिङ्गनका सुख ले रही हैं, उन्हें बाँधती नहीं ॥ ३३ ॥
प्रातःकालके तारोंमेंसे पके हुए आमकी-सो पोली पीछी सुन्दर
चमक निकल रही है, कमलोंको जिलानेवाले सूर्यकी किरणें पूर्व
दिशाको सुहावनी बना रही हैं तथा मकड़ीके जालके समान
गोल-गोल चन्द्रमा धुँधला होकर अस्ताचलकी ओर बढ़ा चला
जा रहा है ॥ ३४ ॥ प्रातःकाल ज्योंही कमलकी पंखड़ियाँ सुजने
लगीं त्योंही उसी मार्गसे सूर्यकी वे किरणें हाथ धमकर उन
कमलोंमें जा घुसीं जिनके धूँते ही बहोँ सोए हुए सब भीरे,
राजाओंके समान जाग उठे और जब कमलके परागसे
अङ्गराग लगे हुएसे शरीरकासे वे भीरे अपनी आँखोंके
साथ कमलानाँके लिये हुए फूलरूपी बिलौनेको घोंट रहे हैं ॥ ३५ ॥
सूर्यके निकलते ही चन्द्रमा धुँधला पड़कर कामकी पाँदासे
दुबली नायिकाके गालके समान पीछा दिखाई पड़ने लगा
है ॥ ३६ ॥ वर्यापि चन्द्रमाके अस्त हो जानेपर सब दिशाओंपर

वाया हुआ घँघेरा जगे हुए सूर्यकांत मणिका धुँधो-सा जान
पड़ने लगा है फिर भी कमलोंके भीतर बाणके समान जुमे
हुए भीरोंको चुम्बकके समान बाहर खींच लेनेवाला सूर्य
अभीतक भी निकला नहीं है ॥ ३७ ॥ एक मिठबोली नायिका
अशोकके पत्तोंपर पड़कर चमकती हुई प्रातःकालकी लाल लाल
किरणोंको फूल समझकर ज्योंही उन्हें तोड़नेकी इच्छासे बड़ी
त्योंही भीरे उसके पीछे पड़ गए ॥ ३८ ॥ जिस सूर्यकी किरणें
दिशाओंके मुकुटोंपर जगे हुए पोलराजकी किरणोंके समान
चमकती हैं, वह अभी निकला भी न था कि सभी तालाब उन
किरणें हुए कमलोंसे सज गए जिनपर सुखसे सोकर जो हुए
भीरे मस्तीसे गुनगुना रहे थे ॥ ३९ ॥ प्रातःकाल एक बार तो
जगे हुए सभी घोंडे बार-बार हिमहिनाकर और हैंद-हँदकर पास
चरते हुए बढ़े भले खग रहे हैं इधर मुगोंने भी ऊँचे स्वरसे
'ऊँऊँ' 'ऊँऊँ' करना आरम्भ कर दिया है जिसे सुनकर कामी
लोग काँधसे जख उठे हैं ॥ ४० ॥ जैसे चन्द्रमाको निकालनेके लिये
वैद्यताओंने मन्त्र पर्वतको मधानी बनाकर समुद्र मथा था
वैसे ही प्रातःकाल वेगसे हाथ चलावनेवाले ग्वाले मक्कल
निकालनेके लिये मटकेमें मधानी डालकर दही खींच रहे हैं और
उसमेंसे 'घर्रघों-घर्रघों' की मधुर गम्भीर गूँज निकल रही है
॥ ४१ ॥ प्रातःकाल वेद बैठे ही पीछे दिखाई पड़ रहे हैं
जैसे गर्भ पूरा होनेपर स्त्रियाँ पीली पड़ जाती हैं, कन्द पेसे

ह्लास्ते कन्दा नृपतिकृतमाना इव जनाः । पिको
मन्दं मन्दं हृदि मदननामानि जपति प्रभोरग्रे
पूर्वापरचित्तसभाकः फयिरिव ॥ ४२ ॥ द्वित्रैव्यांसि
पुराणमौक्तिकमणिच्छायेः स्थितं तारकैर्ज्योत्स्नापा-
नभरालसेन धृष्टा मत्ताश्चकाराङ्गना । याताऽस्ता-
वलचूलमुद्रसमधुल्लव्णचलधिश्चन्द्रमा प्राची यालधि-
डाललोचनरुचां जात च पात्रं ककुप् ॥ ४३ ॥
मत्तं निरकुशतया कुशस्त्रिभेदो यः सर्वतस्त्रिभुव-
नेऽपि ममो कथञ्चित् । मानि स्म सोऽपि दशि चूक-
विहङ्गमस्य भामोर्भयाज्भटिति सङ्कुचितोऽन्धकारः
॥ ४४ ॥ नभसि धिरलताग मांत्तिकानीव भान्ति
स्फुटतमयमस्तवमाधरं चुम्बतीन्दुः । रचिरुद्धधरि-
त्रीधारिर्धाममेतुं हृदयमनु नितान्तोह्लासमङ्गीकरोति
॥ ४५ ॥ नभोवनं नक्तमसां धिगाह नक्षत्रसेनासंहतः
शशाङ्कः । करामलपान्कसिचिप्रहृत्य पाम्थ्याग्मभाते

फूल आए हैं जैसे राजासे सम्मान पाए हुए मनुष्य फूल उठते
हैं और कांकिल भी पैसे ही धारे-धारे कुकर कामदेवका नाम
जप रहा है, जैसे कोई अनजान कवि पहले-पहल सभामें आकर
स्वामीके सम्मुख भँपके साथ धीरे-धीरे कविता-पाठ करता
है ॥ ४२ ॥ प्रातःकाल आकाशमें पुराने मांतीके समान
धुंधली चमकवाले दो-तीन तारे रह गए हैं, भरपेट चाँदनी
पी लेनेसे मतवाली चकारियोंका शरीर झलझल गया है,
चन्द्रमा भी मधु निकल जानेपर पीले बड़े हुए मधुके छत्रके
समान पीला-सा होकर घस्ताचलकी आँर जा रहा है और पूर्व
दिशाकी शोभा बिलौटने (बिस्झीके पथे) की आँखोंके समान
लाल-लाल दिखाई पड़ रही है ॥ ४३ ॥ सुईसे भी न बेधा
जा सकनेवाला जो पना चौंधेरा रातमें निडर होकर फैलता
हुआ तीनों लोकोंमें नहीं समा रहा था वही चौंधेरा, सूर्यके
उदय होनेपर सिकुड़कर उल्टुके नेत्रमें जा पैठा है ॥ ४४ ॥ प्रातः-
काल आकाशमें कहीं-कहीं टिमटिमाते हुए एकाध तारे मांतीके
समान चमक रहे हैं, यह चन्द्रमा प्रत्यक्ष ही अस्ताचलकी
धूमने जा रहा है और सूर्य भी उदयाचलके शिखरपर चढ़नेके
लिये भनमें फूला नहीं समा रहा है ॥ ४५ ॥ रातको चन्द्रमा
अपनी तारोंकी सेना लेकर आकाश-रूपी धनको रँदना-कुचलता,
हाथ आए हुए कुल पधिकों (राहियों यथवा दिवांगियों)
को मारकर प्रातःकाल भागा चला जा रहा है ॥ ४६ ॥
नायिकाने जब देखा कि रात बीत गई है और दिन निकल

प्रफलायनेऽद्य ॥ ४६ ॥ निर्यान्त्या रतिशेषमतः परिगत-
शयां विलोक्य सर्गं मादालिङ्गनचुम्बनानि बहुशः
कुन्वाप्यसन्तुष्टया । एकं भूमितले निधाय चरणं तले
प्रकट्यापरं तन्वहृद्या पवित्रनिनाङ्गलनया प्रेयसीश्चिरं
चुम्बितः ॥ ४७ ॥ निवेद्य बहु शरणां जलनिधौ
स्वलन्नं क्षणमुं विगलिनांशुकं द्विजपतिं विलाप्य
ध्रुवम् । इयं प्रियतमा होर्दिगङ्गादयस्य कङ्कलाकुसु-
म्भवसनाञ्जलैः स्वमुखमावृणोति ह्रिया ॥ ४८ ॥ पत्न्यौ
पात्रे कलानां मज्जति विधिवशादम्भमिन्दो क्रमेण
कन्दन्ती पत्रिनादैर्दिगलितनिमिरन्तोमधम्मिलभाता ।
प्रअशयम्भूलमुक्ताफननिकम्परिम्पधिनागप्रविन्दुः
प्रोन्मालनपूदसन्ध्यादुजभुजि रजनी पश्य देहं शुद्धानि
॥ ४९ ॥ पद्मिन्याः सकलां विधाय विकलां ताराधिपः
सम्पदं तन्मेयस्त्वयोन्मुखे सति रदासुद्विगतामा-
श्रितः । ताराः रवस्य करैर्विकृप्य सहसा गच्छन्ति-

आया तब वह क्रीड़ागृहसे निकलते-निकलते भी बार-बार
अपने प्रियका क्षातीसे लगाने तथा चूमने लगी । फिर भी
उसे सन्तोष नहीं हुआ और वह अपना एक पैर धरतीपर और
दूसरा पलंगपर रखकर अपनी देह घुमाकर अपने प्रियको घूमती
ही रह गई ॥ ४७ ॥ बहुत मंदिरा पीनेके (मर्के)
कारण, समुद्रमें गिरते हुए डगमग चलते हुए नष्टे,
(बिना किरणोवाले) चन्द्रमा (माझण) को देखकर मानो
हन्द्रका प्यारी पूर्व दिशा लजाकर गुलाबी साईंके आँचलसे
अपना मुँह ठक रही हो ॥ ४८ ॥ देखा, प्रातःकालकी
कलआई ऐसी जाग पड़ती है मानो रात्रिरूपी नायिका अपने
कलावान् प्रियतम चन्द्रमाके दुभाग्यवश धीरे-धीरे समाप्त होनेपर
अपने घने अन्धकाररूपी बाल धिलेरकर, बड़े-बड़े मांतिरोंके
समान चमकनेवाले ताररूपी आँसू गिराती हुई और
चिड़ियोंकी चहचहाहटके स्वरोंमें बिलखती हुई, पूर्व दिशा-
रूपी कुचदमें अकती हुई प्रातःकालकी लालिमा-रूपी
अग्निमें अ-नेका झोककर सती हानेकी तैयारी कर रही हो
॥ ४९ ॥ चन्द्रमाने रातके समय कमलिनीकी सारी शोभा
नष्ट कर डाली । अतः जब कमलिनीके पति सूर्यको चन्द्रमाने
उदित होते देखा तो उसके हाथ-पैर फूल गए और वह
अपनी किरणों (हाथों) से अपनी तारिका-रूपी स्त्रियोंको
पकड़कर वेगसे अस्ताचलकी ओर खींच ले चला । उस समय
सूर्यके कर (किरण तथा हाथ) में जो दो-चार तारिकाएँ

तोऽस्ताचलं लङ्गाः काश्चन ताः प्रभाकरकरे पश्यन्प-
रिस्तायनि ॥ ५० ॥ पारिशिर्धालितकर्णप्रोचमामोलि-
ताक्षः क्षणमयमनुभय स्वप्नमध्वानुरेय । रिरसयिगति
भूयः शम्पमग्रे चिकीर्णं पटुतरचपलोष्ठः प्रस्फुरत्प्रोद्य-
मध्वः ॥ ५१ ॥ पीन्वा भृशं कमलकृड्मलशक्तिकोपा
दोषातनीं तिमिरहृष्टिमथ स्फुटन्तः । निर्यन्मधुम्रतक-
दम्यमिषाद्रमन्ति विभ्रन्ति कारणगुणानिव मौकि-
कानि ॥ ५२ ॥ प्रम्यग्रज्वलितैः पतङ्गमणिभिर्नोत्ताजिता
भानवः सायिन्नाः कुरुचन्दकन्दलरुचः प्राचीमलकु-
र्वते । प्रौढध्वान्तकरालितस्य यः पश्यद्वायावृत्तेन क्षण-
वप्रक्षालितनिर्मलं जगद्दो निमांकमुन्मुञ्चति ॥ ५३ ॥
प्रत्यासन्नसुरेन्द्रसिन्धुरशिरःसिन्दूरसान्द्राक्षणा यत्ते-
जस्वसरेण्यो धियादितः प्राचीनमाचिन्वते । शङ्के
सम्प्रति यावदभ्युदयते तत्तकुटङ्काम्भुजारज्यद्विम्बर-

जश्रुटावलयितो देवस्त्रिगामीश्वरः ॥ ५४ ॥ प्रयात-
वति यामिनोरमणचन्द्रिकागथसि प्रशान्तमिष भास्ते
सरसकर्मभाभं नभः । प्रवेष्टुमिह शङ्कितैरिव रवेस्तु-
रङ्गैर्भूतः क्षणं त्यजति नोदयाचलचितङ्कवीर्यो रथः
॥ ५५ ॥ महरकमपनीय स्वं निदिद्रासतोद्यैः प्रतिपद्-
मुपहतः केनचिज्जागृहोति । मुहुरविशदवर्णां निद्रया
शून्यशून्यां वदपि गिरमस्तर्बुध्यते नो मनुष्यः ॥ ५६ ॥
प्राचीं वासकसज्जिकामुपगते भानौ दिशां वल्लभे
पश्येता रुचयः पतङ्गदपदामाग्रेयमाङ्घ्रिन्धमाः । लोकस्य
क्षणदानिरङ्कुशस्तौ सम्भोगनिद्रागमौ कोकद्वन्द्वकुमु-
द्वनोविपिनयानिन्नेपमानन्वते ॥ ५७ ॥ प्राची दिग्गम्भ-
रमणौ दयिते विभाते प्रान्तेऽम्बरं स्पृशति वासकस-
ज्जिकेयम् । धीरा जगाद् रमणस्य न भूयणानि रोपा-
कृशा त्यजति तारकभूयणानि ॥ ५८ ॥ प्राचीविभ्रमक-

पद् गई उन्हें देख-देखकर चन्द्रमा जो चुकी हो रहा है
इसीसे उदास लग रहा है ॥ ५० ॥ प्रातःकाल अपने
कान और प्रीवाको ढाँखा करके, आँखें मूँदकर तथा घुटना
सोढ़े हुए थोड़ी नींद लेकर वह थोड़ा अपने चक्कल छोड़ों
और फट्कने हुए धुधनेसे सामने डाली हुई घास खा रहा
है ॥ ५१ ॥ प्रातःकाल स्थिते हुए कमलोंमें निकलने हुए भीरे
देते जान पड़ते हैं मानो कमलकी कल्लारुगी सर्पोंमें शनको
अन्धकार-रूपी जल पड़ जानेसे उसमेंसे काले-काले मोती
निकल रहे हों ॥ ५२ ॥ सूर्योदय होते ही सूर्यकान्त माणसे
निकली हुई चमकते सूर्यकी जिन किरणोंकी आरती-सी होती
जान पड़ती है उन पोखराजके समान चमकती हुई किरणोंसे
पूर्व दिशा चमक उठी है, संसारकी सभी वस्तुएँ बिना थोप
ही निर्मल हो गई हैं और अब सूर्यके निकलनेपर उन
वातुघोंकी जो परदाई पड़ रही है वह देखी जान पड़ती
है मानो सूर्योदयसे पहले जो अन्धकार उन्हें घेरे हुए था वही
परदाईके सहाने अब छूट रहा हो ॥ ५३ ॥ सूर्यके जो किरण-
रूपी कण पूर्वमें अपने पास रहनेवाले इन्द्रके हाथों पंचरानके
आपेका सिन्दूर लग जानेसे अधिक लाल हो गए हैं, वे
आकाशमें फैले हुए ऐसे जान पड़ते हैं मानों आकाशकी मरम्मत
कर रहे हों । इसे देखकर मुझे तो यह शंका होती है कि कहीं
किरणोंपर विश्वकर्माकी खेनी चलानेसे ही तो उसमें छिटककर
वे चमकते हुए छोटे-छोटे कण चारों ओर नहीं बिखर गए हैं
॥ ५४ ॥ प्रातःकाल आकाश ऐसा जान पड़ रहा है मानो

रात्रिकपी नायिकाके स्वामी चन्द्रमाका चँदीरूपी सारा जल
बह जानेपर अब उसमें केवल कीचड़ रह गया हो इसीलिये
सूर्यके छोड़े उसमें घुसनेसे हिचकिचा रहे हों और इसीसे
सूर्यका रथ उदयाचलमें ही एक जगह रुक गया हो ॥ ५५ ॥
प्रातःकाल कोई पहरेदार अपने पहरेकी बारी बिताकर सोना
चाहता है और अपने स्थानपर काम करनेवाले दूसरे व्यक्तिको
चिन्ता-चिन्ताकर जगा रहा है—‘जागा-जागो !’ किन्तु
वह दूसरा व्यक्ति गहरी नींदमें बराता हुआ ‘अरे जागता
हूँ, उठता हूँ’ तो कहता है पर जागता नहीं ॥ ५६ ॥ देखो,
दिशाओंका प्रियतम सूर्य जब बिछीना बिछाकर प्रतीचा
करनेवाली प्यारी (पूर्व दिशा) को ओर पहुँचा तो उसका
प्रकार पाते ही सूर्यकान्त मणियोंमें ऐसी आवाजें कूट उठीं जो
रातमें चारों ओर उड़कनासे फैले हुए भोग तथा नींदको
अब चकवा-चकरी तथा कुमुदवनके पास धराहर-सा रख रही हैं
अर्थात् चकवा-चकरी तो आपसमें मिलकर आनन्द मना रहे हैं
और कुमुद सकुचित होकर सो रहे हैं ॥ ५७ ॥ पूर्व दिशाकी
नायिका बिछीना सजाकर सारी रात प्रतीचा करती रही,
किन्तु अब उसका पति सूर्य प्रातःकाल आकर अम्बर
(आकाश या वरु) धुने लगा तो उसकी छेद-छाड़से पूर्व
दिशाने गम्भीर होकर उससे आतंक नहीं की, बरन्
कंधसे लाल होकर अपने तारेरूपी गहने हथर-उथर उतार
केंके ॥ ५८ ॥ ज्यों ही आकाशमें उठती हुई सूर्यकी रो-
तान किरणें पूर्व दिशाके कानपर रखी हुई कमलकी पंखुदियोंके

शिक्षाक्रमहिनीसम्भनिकाः सम्प्रति हे निखो रमणी-
यमभ्यरमशेर्द्यामुच्चरन्ते वनः । सूच्योच्छ्वासमर्पादमु-
त्सुकतया सम्भूय कोपाद्विनिष्क्रामद्भ्रमराधसम्भ्रम-
भरादम्भोजमुज्जम्भते ॥ ४६ ॥ प्रालेयाभिधमकरन्दक-
रालकोशैः पुष्पैः समं निपतिता रजनी प्रयुद्धैः । अर्क-
शुभिन्नमुकुलोदरसान्द्रमन्धसंस्तुत्रितानि कमला-य-
लयः पतन्ति ॥ ६० ॥ प्रालेयांशुरितश्चकोरविपदानार्द्र-
प्ररोहैर्जरत्काश्मी-विदनादनाशुलतया दाभाग्यमभ्य-
स्यति । भासां भर्तुरितश्च कोकसुकुतैरद्रोविकां
विधत्ति द्विधाः कुङ्कुमकेसरैकसुदृढो मन्दं मयूखाङ्कुराः
॥ ६१ ॥ प्रियवसन्तेरप्यामृत्यो मिथः करस्मिन्कराभ्यु-
ज्जमानः । करजपदमणविरलस्तनगुलकममृः किमपि
विषदस्ते ॥ ६२ ॥ भिन्दानो मानिनोनां पतिषु स्वमयं
हर्म्यपारावतेभ्यो वासात्तत्त्वं ददानः कवित्वेषु कविता-

प्रातिभं सन्दधानः । प्रातस्त्यस्त्यनादः स्थगयति
गगनं मांसलः पांशुतल्लादम्यल्लादुन्धितानां नरधर
करिणां शृङ्खलासिञ्जनेन ॥ ६३ ॥ मालिन्यं परिदृश्यते
हिमरुचां मन्दश्रियस्तारका शीताः केचन सञ्चरन्ति
कमलामोदशृङ्गो मारुताः । आसीदन्ति च चक्रवाक-
मिशुनान्यन्योन्यमुक्कलदया शदिस्नाडितकैरया मधु-
लिहो गच्छन्ति पद्मादयीम् ॥ ६४ ॥ यः सैन्यं स्मरपा-
थियस्य विरहिप्रन्यधिनामश्रणीज्यान्धानिभरमुज्ज्वलि
स्म जगतां यस्तापनिर्वारणम् । सांध्यं तारकनायकः
किमपरं शृङ्गास्त्रज्जीयनं जातः पृष्ठपगगपाण्डुरजर-
त्कृष्णमाण्डपिण्डाकृतिः ॥ ६५ ॥ यद्गुप्तं वादतं रति-
प्रणयनो राशौ विलोलभया तन्संस्मारयति प्रिये स्मर-
मयं प्रातः प्रतिच्छन्दकैः । लोलाक्या स्मितधातगा-
लक्ष्मके पद्मायलीनूलकाध्यापारेविनिवारणाक्षरभ-

समान दिखाई दीं त्योंही हृदयहीने एक साथ जो कमलोंके
भीतरसे भीरोंकी भीड़ निकली उन्हें देखकर ही मानों भीरे-धीरे
साँस लेकर कमल जैभाई ले रहा हों ॥ ६१ ॥ जिन फूलोंका
भीतरी भाग रातकी घोसले मिले हुए रससे भरा हुआ है,
उनके खिलनेके साथ-साथ रात बीत गई थीर इस समय
सूर्यकी किरणोंसे जिन कमलोंकी खिली हुई कलियोंसे सुगन्ध
निकल रही है उसपर भीरे सँझराने लगे हैं ॥ ६० ॥
प्रातःकाल एक और तो शीतल किरणोंवाला चन्द्रमा अपनी
भीगी-सी किरणोंके द्वारा आँसू बहाता हुआ और पके हुए
केसरका-सा पीला मुँह बनाकर दुःखान्धारा विपतिमें पड़े हुए
चकोरोंके प्रातः समवेदना प्रकट कर रहा है और दूसरी ओर
केसर और कुङ्कुमके एक-भाव साथी परम तेजस्वा सूर्यकी
किरणों धीरे-धीरे सिर उठाकर चक्रवा-चकवियोंकी प्रसन्नतासे
खिली जा रही हैं ॥ ६१ ॥ अपने-अपने पतिके साथ क्रीड़ा करके
अपने घरोंसे बाहर निकली हुई जो स्त्रियाँ एक दूसरेका हाथ
पकड़े हुए हैं और नखके चिह्नोंके कारण जिनके स्तनोंपर कहीं-
कहीं रामायन दिखाई रहा है, वे न जाने किस बातपर तड़के-
तड़के आपसमें लड़-फाड़ रही हैं ॥ ६२ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! अपने
पतियोंसे रही हुई स्त्रियोंका रांप भगाली हुई, बर्बाद-ही
घटारियोंपर धीरे हुए कवूनरोंके गलोंमें मधुर गुटरगू भरती हुई,
कवियोंमें कविना बनानेका हुलास भरती हुई और लम्बे-
छोटे धूलरूपी विसृष्टीसे उठे हुए हाथियोंके सँकलकी भलभना-
इसे और भी अधिक बढ़ती हुई प्रातःकाल बसते हुए बानोंकी

मङ्गल ध्वनि आकाशमें गूँज रही है ॥ ६३ ॥ इस समय चन्द्रमा
पीला दिखाई दे रहा है, नारे पुँधले पड़ गए हैं, कमलकी
सुगन्ध लेकर शीतल वायु धीरे-धीरे बह रहा है, चक्रवर्के जांड़े
बड़े प्रेमसे आपसमें मिल रहे हैं और भीरे कुनुदोंकी पीरसे
ढेलते हुए कमल-पत्रकी ओर उड़ते चले जा रहे हैं ॥ ६४ ॥
जो चन्द्रमा, महाराज कामदेवकी सेनामें विरहियोंसे धीर
करनेवाले सैनिकोंका नेता था, जो संसारका ताप दूर
करनेके लिये अपनी आँसूओंकी धारा बरसाता रहता था
और जो शृङ्गाररसकी जिलानेकी सञ्जीवनी जड़ी था,
वही चन्द्रमा प्रातःकाल पीली धूलसे लिपटे पके हुए
कौहंदके समान पीला-पीला दिखाई दे रहा है ॥ ६५ ॥
एक चन्द्रम नेत्रोंवाली नवेली जब प्रातःकाल दर्पणके सामने
बैठा अपने मुस्तुराहटसे चमकते हुए गालोंपर नूलिकासे चित्र-
कारी करने लगी, उसी समय उसका पति उसीके शब्दोंमें
वे कामभरी बातें दुहरा-दुहराकर स्मरण कराने लगा जो उसने
रातमें रतिके आवमें भरकर भौंटे मचा-नचाकर पतिले
गुपचुप कही थी। उस समय पतिका गटखटपन रोकनेके
लिये वह नवेली अपने कपोलोंपर ऐसे अच्छर लिखने लगी
जिनका अर्थ होता था 'महीं' और उसीके साथ उसी 'नहीं'
के अर्थ में अपनी आँसे भी नचाती जा रही थी। इस प्रकार
भौंटेसे जिन कुछ बहे ही उसने अपने पतिका रातको काममयी
बातें कहनेसे रोक दिया ॥ ६६ ॥ प्रातःकाल एक और तो
औषधियोंका स्वासी चन्द्रमा अस्ताचलकी ओर बढ़ा जा

राकारा विकीर्णा दृशः ॥ ६६ ॥ यात्येकतोऽस्तशिसरं
पतिरोपधीनामाविष्कृतादृशपरः सर एकतोऽर्कः ।
तेजोद्वयस्य युगपद्यसनोदयाभ्यां लोको नियम्यत
इवैष दशान्तरेषु ॥ ६७ ॥ ये कुण्डीकृतवल्गभरणतयः
शस्त्रैर्नक्रस्य ये न प्राप्ताश्च निशीथिनीपतिकरः शोधे-
त्यवीथीमपि । ते निःशङ्कषिटकृतानुमुलप्रोतसुतस्रा-
वितंश्चिन्नाः कुक्कुटकुजिनैर्भृगदृशां मानग्रहग्रन्थयः
॥ ६८ ॥ रतिरभसविज्ञासाभ्यासतान्तं न यावन्नयन-
युगममीलसावदेवाहतोऽसौ । रजनिधिरनिशंसी कामि-
नीनां भावप्याद्विरहविहितनिद्राभङ्गमुक्चैर्मृदङ्गः ॥ ६९ ॥
लुठन्त्यपरवारिधौ कमठनिधिषेयः शशो प्रकटमुदया-
चले शुलुकमात्रमुष्णं महः । सणं गगनवेदिका मन्द-
मनकुश गादते कलिन्दगिरिकन्यकानटतमालनीलं
तमः ॥ ७० ॥ सुलितनयनताराः स्यामवफ्रेन्दुविम्बा

रजनय इव निद्राङ्गान्तनीलोत्पलाद्यः । तिमिरमिव
वधानाः झंसिनः केशपाशानघनिपतिशृङ्गेभ्यो याम्य-
मूर्वारवप्यः ॥ ७१ ॥ विकसितसङ्कुचितपुनर्विकस्य-
रेष्वभ्युजेषु दुर्लभ्याः । कलिकाः कथयति नूतनविका-
सिनीर्मधुलिहामर्धः ॥ ७२ ॥ विगततिमिरपङ्कं पश्यति
व्योम यावद्युषतिविरहस्त्रिभः पक्ष्मी यावदेव । रघ-
चरणसमाहस्तावदास्तु कथनुभा सरिवपरतटास्तादा-
गता चक्रवाकी ॥ ७३ ॥ विपुलतरनितम्बाभोगरुद्धे
रमण्याः शयितुमनधिगच्छन्नीधितशोऽवकाशम् । रति-
परिचयनश्यन्नैद्रस्तन्द्रः कथञ्चिद्रमर्याति शयनीये शर्वरीं
किं करातु ॥ ७४ ॥ विरलविरहीभूतास्ताराः कलौ
सुजना इव व्यपसरति च ध्यास्तं चित्तात्स्रतामिव
दुर्जनः । मम इव मुनेः सर्वत्रापि द्रस्यमभून्नभो विग-
लत निशा क्षिप्रं रुक्मीरनुपमिनामिव ॥ ७५ ॥

रहा है, दूसरी ओर अपने साथी अरुणके साथ सूर्य
सामने बढ़ा चला आ रहा है । जब ये दोनों इनने तेजस्वी
भी एक साथ उथाल और पलनके चक्करमें पड़े हैं तब सारे
संसारको सुख-दुःखके चक्करमें बढ़ा रहना तो अनिवार्य ही
है ॥ ६७ ॥ नायिकाके कोपकी जो गाँठें नायकके सारंग
अनुनय-चिनय करने और हाथ-पैर जोड़नेसे भी न खुल पाईं
और कामके याग-रूपी चन्द्रमाकी किरणोंसे भी जो दीकी न
पड़ सकी, वे तालूमें धक्का देकर झटकेसे ऊँचे स्वरमें निकली
हुई मुँगेकी कुकड़-कूँ सुनते ही अचानक सहज ही खुल
गईं ॥ ६८ ॥ निरन्तर देशक सम्भोग करनेके कारण चलसाईं
हुई स्त्रियोंकी आँखें अभी लग भी न पाई थीं कि रात बीतनेकी
सूचना देनेवाला यह मृदङ्ग वेगसे बज उठा, जिसे सुनकर उन
कामिनियोंको आती हुई भीड़ भी थोड़ी देरके पश्चात् आनेवाले
विरहका चिन्तामें उखट गई ॥ ६९ ॥ प्रातःकाल पश्चिमके समुद्रमें
बूझता हुआ चन्द्रमा तो ऐसा जान पड़ता है मानो समुद्रके उस
पार कोई मशमैला कसुआ झोट रहा हो, उदयाचलकी
छोटीपर उदय होता हुआ सूर्य ऐसा जान पड़ता है मानो उस
छोटीपर अजली भर उजालेका अकुर निकल रहा हो और
समुद्रा-तटके तमाल वृक्षके समान काला-काला अँधेरा
मानो निडर हाँकर आकाश-रूपी वेदीपर एक चक्के लिये
गँधरा रहा हो ॥ ७० ॥ प्रातःकाल धुँधले नारोंके समान उदास
पुनलियोंवाली आँखें लिपि हुए, चन्द्रमाके समान मलिन मुख-
वाली, नीले कमलके समान अवधुँदी आँखोंवाली और पीठपर

अन्धकारके समान बिले हुए आँखोंवाली बेरवारों रात बीतनेके
साथ ही राजाघोंके घरसे निकली चली जा रही हैं ॥ ७१ ॥ जो
कमल दिनमें खिलकर रातमें मुँद गए थे और अब फिर खिल
रहे हैं उनकी पहचान और उसी समय खिली हुई तथा कमलोंके
बीच न दिखाई देनेवाली कलियोंकी पहचान, निकलकर
उड़नेवाले भीरोंसे ही हो रही है अर्थात् जो कमल रातमें मुँद
गए थे उन्हींमेंसे भीरे निकल रहे हैं ॥ ७२ ॥ अन्धकाररूपी
कोपदले छूटे हुए आकाशको देखकर विरहसे दुखी चक्रवा,
अपनी चक्रवाके पास उड़ आनेके विचारसे अपने पङ्क कोज
ही रहा था कि उसी समय उल्लुक्तासे भरी हुई चक्रवी,
नदीके दूसरे किनारेसे उड़कर उसके पास आ ही तो पहुँची
॥ ७३ ॥ नायिकाके बीधे नितम्बोंसे सारा बिछीना इतना
धिर गया था कि नायकको सोनेके लिये स्थान ही नहीं मिल
पाया इसलिये उसने अपनी नींद और आसुर्य दूर भगानेके
लिये सारी रात सम्भोगमें काट दी, और चारा ही क्या
था ॥ ७४ ॥ प्रातःकाल तारे उसी प्रकार कहीं-कहीं रह गए हैं
जैसे कलियुगमें सज्जन कहीं-कहीं मिलते हैं । अन्धकारके लिये
वैसे ही कहीं स्थान नहीं रह गया जैसे सज्जनके मनमें दुर्जनको
स्थान नहीं मिलता, सारा आकाश भी वैसा ॥ स्वयं
दिखाई देने लगा जैसे मुनियोंके मन निर्मल रहते हैं और रात
भी वैसे ॥ शीघ्रताके साथ चक्र दी जैसे उद्यागहान श्यक्ति
पाससे जखमी चक्र देती है ॥ ७५ ॥ अभी सूर्य सामने आए
भी न थे कि सूर्यके सारंगी अरुणने ही सारा अन्धकार मिटा

मज्जति विषयमदणामंशुमाली न यावत्तिमिरमखिल-
मस्तं तावदेवाकरोत् । परपरिभवि तेजस्तन्वतामाशु
कर्तुं प्रभवति हि विपक्षोच्छेदमग्रेसराऽपि ॥ ७६ ॥
मज्जत्यपरवारिधिं रजतपिण्डपाण्डुः शशो न भ्रान्ति
जलशुद्धयुतिसर्पलिकास्तारकाः । कुरगटकविपाण्डुरं
वधति धाम दोषाङ्कुराश्चकोरनयनारुणा भयति दिक्च
सौभ्रामणी ॥ ७७ ॥ शिथिलयति सगणो यावदकां
नलिन्याः कमलमुकुलनीवीग्रन्थिमुद्रां करोत् । प्रविकस-
न्माला गुञ्जितैर्मञ्जुशब्दा जनयति मुदमुञ्जैः कामिनां
कामिनीषु ॥ ७८ ॥ शिशिरकिरणकान्तं वासराग्रेऽभि-
सार्य श्वसनसुरभिगन्धिः साम्प्रतं सन्वरेत् । मज्जति
रजनिरेया सन्मयुष्माङ्गरागैः परिमलितमनिन्दैरम्य-
रान्तं वहन्ती ॥ ७९ ॥ सद्यः सङ्गृह्यमानकोकमिश्र-
व्याजेन पीमस्तनद्वन्द्वव्यञ्जितयोधनाग्न्यलरुचा निमांश
दिक्कम्पकाः । दुर्धवाक्षरमालिकामिव भट्टित्या-

विषा । ठीक ही है ! जिनका तेज-माल ही शशुओंकी दवा
हैता है उनके आगे आगे चलनेवाले सेवक भी उनके शशुओंकी
शीघ्र ही पाश कर डाल सकते हैं ॥ ७६ ॥ प्रातःकाल
बाँदीके गोलेके समान उज्जला चन्द्रमा पश्चिमके समुद्रकी ओर
जा रहा है, छोटे-छोटे पार्श्वोंके बुलबुलोंके समान चमकनेवाले
तारे अब नहीं दिखटिमा रहे हैं, दाँपकरी लौ कटसरैयाके
फूलके समान उमड़ी दिखाई दे रही है और पूर्व दिशा भी
आँकुरके नेत्रोंके समान लाल-लाल दिखाई दे रही है ॥ ७७ ॥
प्रातःकाल जयसक ललाई (अनुशाग) से भरा सूर्य (नायक)
हृष्य अपनी किरण (हाथ) से कमलिनीरूपी नायिकाओंके
कलीरूपी नाड़ेको खींचा करे-करे तबतक ऊपर गुनगुनाती हुई
भौंरीकी पोंत भी कामिनी नायिकाके समान अपनी गुञ्जारसे
कामी पुरुषोंको मसज करने लगी ॥ ७८ ॥ सन्ध्या समय
चन्द्रमारूपी पतिके पास पहुँचकर विहार करके सु शिथिल
सौंसवालो जिस रात्रिरूपी नायिकाका अम्बर (आकाश,
बख), चन्द्रमाके किरणरूपी उत्तम केशरके लेपसे रँग-सा गया
है वह अब प्रातःकाल होते ही शीघ्रताके साथ निकली चली
जा रही है ॥ ७९ ॥ सूर्यादय होनेपर आपसमें मित्रते हुए चक्रो-
ष्मके-रूपी स्तनासे दिशांरूपी कम्पाग्रोमें युवावस्थाकी सुन्दरता
भरते हुए सूर्यदेव, कमलिनीयोंमेंसे दुभाग्यके अक्षरोंके समान
काकां औरका पोंतें निकालकर उन्हें तुरन्त भी (साभा)
प्रदान कर रहे हैं ॥ ८० ॥ प्रातःकाल ऐसा जान पड़ता है

कृप्य भुजावलीं लक्ष्मीमभ्युज्जिनो जनस्य तनुते देव-
भिन्यगामीश्वरः ॥ ८० ॥ सन्निगृह्य चिकुरं तमोमयं
यामिनी नदनु केलिचिद्रुतम् । कुर्यती श्रवसि चन्द्र-
मण्डलं कुण्डलं गगनकेलिमुज्जति ॥ ८१ ॥ सारभ्ये
चलिते रमे विगलिते चाभालिवर्गे गने मलानार्ताव
कुमुदनीयमधुना मूर्च्छां परामूर्च्छति । तामुद्रादय
तथाविधां कमलिनीं ज्ञाना महासोन्मुखी हन्तो-
द्दीप्य विपन्नवैश्विनितां का या न सन्तुष्यति ॥ ८२ ॥
स्तोकारक्तनखप्रणा स्तननटां कापि स्खलच्चन्द्रमं
वक्षः कर्तुमिनाङ्गे च नयने विश्रान्तगगाधरः ।
आपासादयमन्धरञ्च गमनं प्रातः प्रभङ्गालसं जाया-
वह्मनहस्तकरपरिच्छेदे कुर्यादृशः ॥ ८३ ॥ स्तो-
कोन्नद्रनिदाघदां गीतमहस्तद्रालुचन्द्रातपास्तापन्ते
ककुभां रथाङ्गहृणीगाढेऽध्यमहाभिदः । अद्यापि
स्वकुलापशाखिशिरसि स्थित्या दधन्ता मुहुस्तृण्यं

मानो रातको आकाशमें रति-कीड़ाके समय लुके हुए
अम्बरकार-रूपी केश समेटकर और कानोंमें चन्द्रमण्डलरूपी
कुण्डल पहनकर अब रात्रिरूपी नायिकाके कहीं लुहा ली
है ॥ ८१ ॥ प्रातःकाल सुगन्ध निकल जानेपर, रस भू जानेपर
और प्रेमी भौंरीके हट जानेपर जो कुमुदिनी अत्यन्त दुखी
और मूर्च्छित हो रही है उसे देखकर ही मानो गिली हुई
कमलिनी हैस रही है । भला शशुकी खीकी विपत्तिमें पड़ी
देखकर कौन खो प्रसन्न नहीं होगा ॥ ८२ ॥ रातमें कलकर
सम्भोग करनेके कारण भौंद पूरी न हो पानेसे जो सुगन्धनी
नखेलिगी प्रातःकाल रह-रहकर आलसके मारे घोंगड़ाई ले रही
है, उनके जिन स्तनोंपर गलोंके लाल-लाल चिह्न चमक रहे हैं,
उनकी जिन छातियोंपर लगा हुआ चन्द्रनका लेप तथा जिन
नेत्रोंका आँजन कहीं लगा है कहीं धुँस गया है, उनके जो
नाँवके धाँड कोंके पड़ गए हैं और अधिक थक जानेके
कारण उनके आँ पेर डगमगा रहे हैं उन सब सुन्दर अङ्गोंकी
जप हो ॥ ८३ ॥ प्रातःकाल दिशाएँ फैल सी गई हैं और
उनमें कुछ-कुछ निकले हुए सूर्यके प्रकाशसे चन्द्रमाका प्रकाश
धुँधला पड़ गया है तथा उन्हांते (दिशाओंमें) रातमें अपने
ग्रिपसे दूर गई हुई चक्रवीकी दशापर चिन्ता करना छोड़ दिया
है । अब भी कौवे पेड़ोंपर बने हुए अपने धाँस रोंपर शांतिके
साथ बड़े हुए बार-बार कौंव-कौंव करके फिर लुप होकर

प्रत्यभिजानते वलिभुजो भीताः स्वयुष्यस्वगन् ॥८४॥

प्रभानवायुध्वनम् — अयो-सङ्गवसङ्गजङ्गकथलङ्कोशादि-
वेशाचलप्रालेयस्रवनेरुक्ष्यानुवर्गनि श्रोत्रवद्विशालानिलः।
किञ्च स्निग्धरसालमालिमुकुलान्यालोफ्य हृष्यं दया-
दुन्मीलन्ति कुहूः कुहूरिति कलात्तालाः पिकानां गिरः
॥ १ ॥ अनन्यलुण्ठश्रीर्महयवनजन्मायमनिलो निपीय
स्वेदांश्च स्मरमकरसम्भुक्ताविभवम् । विदर्भाणां भूरि
प्रियतमपरीरम्भरभसप्रसङ्गादङ्गानि द्विगुलपुलकासञ्जि
तनुते ॥ २ ॥ अपहाय शनैः पटोरवाटीरह लाटीज-
नमानलुण्ठनाय । समुदेति मनोज्ञराजधाटीपरिषा-
टीपटुरेव गन्धबाहूः ॥ ३ ॥ अमी तटसमीपनिर्भरतर-
ङ्गरिङ्गपयोजडोरुतपटोरभूरुहकुटीरसञ्चारिणः । मनो
विधुरयन्ति मे मलयमेखलामेदुरादुरासद्वनप्रियप्रिय-
तमाहता मारुताः ॥ ४ ॥ अरविन्दवृन्दमकरन्दतु-
न्विलो मरुदेति मन्दमिह मन्दराचलात् । सुरतान्त-

हरते हुए साधियोंकी बोली पहचान रहे हैं (उड़नेका साहस
नहीं करते) ॥ ८४ ॥

प्रानःकालके पवनका ध्वनि : मलयचलका पवन
ततरकी चोर आना हुआ ऐसा जान पड़ता है मानो वह इस
हरते कैलास पर्वतके हिममे मिलनेकी चाहसे इधरका आ रहा
हो कि कहीं मलय पर्वतके साँव हमें पा न जायें और उसाँके
झोंकेमें हरे-भरे आमपर गया वीर देखकर कोयल भी ऊँचे स्वरसे
प्रस्तनताके गारे कूक उठा हो ॥ १ ॥ सुन्दरतामें निरासे और
मलय-वनमें उत्पन्न हुए वायुने आकर गालके पसाँनेकी
वे धँवें पी डालीं जिन्हें कामका बाइन मगर (कामका मकरा-
कृति कुण्डल) पहले ही चट कर चुका था । अब वहाँ पवन
पतिकां कसकर छातीसे लगाई हुई विदर्भ देशकी स्त्रियोंके
घङ्गाँमें दुगुनी फुर-फुरी भर रहा है ॥ २ ॥ महाराज
कामदेवके मनमोंको पालन करानेमें चतुर यह सुगन्धित वायु
चन्दनकी घाटिका छुड़कर विलासिनी नारिकाचाँका मान
दूर करनेके लिये धीरे-धीरे चला आ रहा है ॥ ३ ॥ मलय-
पर्वतके साँवकी भूमिमें रह-रहकर पुष्ट होनेवाले तथा
जङ्गली पुरुषोंकी थकी हुई नारियोंसे मुलाए हुए वे पवन हमारा
मन झकझोर रहे हैं जो पास वहने हुए भरतोंके लहरात हुए
जलकी फुहारसे ठंडे किए हुए चन्दनके वृक्षकी कुट्टाँमें घूम रहे हैं
॥ ४ ॥ कमलोंके रससे लदा हुआ और सम्भोगसे थकी हुई रमाली
नवेलियोंके बालोंकी तीव्र गन्धसे गमकता हुआ वायु मन्दरा-

तान्तसुदनीमनल्लिकाकवगीपरीमलभरीपरीवृतः ॥८५॥
आदाय धकुलगन्धानन्योर्कुर्वन्पदे पदे भ्रमरान् ।
अयमेति मन्दमन्द कावेरीवारिपावनः पवनः ॥ १ ॥
उत्सार्य कुन्तलमपास्य दुकूलकूलमुन्नाभ्य बाहुलति-
कामलसास्तरुण्यः । श्वेदाप्युत्तिकततवः स्पृहयस्मि
यस्मै तस्मै नमः सुहृदिने मलयानिलाय ॥ ७ ॥
उत्सिक्तः कुसुमासवैः कुमुदिनीं राजप्रियां पुष्पिणी-
मालिङ्गन्निशि निर्भयं पारिचयं कुर्वन्पुनः पल्लवैः ।
यावन्पद्मजसंसारभस्वमखिलं गृह्णेलघु प्रस्थितस्ताव-
त्कल्य उपस्थिते मरुदयं विश्वम्भयाज्जावति ॥ ८ ॥
उपसि मलयवासी जालमार्गप्रविष्टो विकचकमलरेणुं
व्याकिरन्मोहचूर्णम् । सपदि शमितदीपो वायुचोरो
बधूनां हरति सुरतखेदस्वेदमुकाफलानि ॥ ९ ॥
पते पाटीरयाटीनवविटपनटीलास्यशिक्षातिवृष्टा
दालाखेलतपुरन्धीभ्रमजलकशिकाजालपातिप्रतानाः ।

चलसे इधरको चला आ रहा है ॥ १ ॥ मीलसिरी की सुगन्धसे
लदा हुआ तथा डग-डगपर मीनोंकी झोंकोंमें पराग कोंककर
उन्हें प्रन्ध करता हुआ यह कावेरी नदीके जलमें डुबकी लगाने
बांशा वायु धीरे-धीरे चला आ रहा है ॥ २ ॥ पसीनेकी बूँदोंसे
तथपथ और आलस्यमें भरी हुई नवेलियों अपने बाल ऊपर
उठाकर, वक्ष समेटकर धीरे बाँहें ठक्काकर जिस मलयचलके
पवनका स्वागत करती हैं उस भाग्यशाली पवनको नमस्कार
है ॥ ३ ॥ कुलोंके रस-रूपी मदिरासे मतवाला होकर यह
वायु चन्दमा-रूपी राजाकी कुली हुई (रजस्वला) पत्नी
कुमुदिनीका जो आलिङ्गन कर रहा था और रातमें निर्भय
होकर पल्लवों (नये पत्तों तथा खीके प्रेमीजनों) के साथ
बराबर अडगेलियों कर रहा था वही जब कमलोंकी सुगन्ध
रूपी सारी सम्पत्ति लेकर बेगसे चम्पत होने लगा, उसी समय
प्रभात हो जानेसे अब यह भयसे चारों ओर भागता फिर रहा
है ॥ ४ ॥ यह मलयका पवन-रूपी चोर तटके-तटके सिक्कीकी
राह घुसकर, लिये हुए कमलकी पूलका मोहन (बेसुध करनेवाला)
भूख डालकर, फटपट दीपक बुझाकर, स्त्रियोंकी सम्भोगकी
थकावटसे निकले हुए पसीनेके दूँद-रूपी मोंसी चुराए लिए आ
रहा है ॥ ५ ॥ इस समय वहनेवाले जिस पवनके पाँवों-पाँवों
सुगन्धसे ललचाए हुए भीरे उड़ रहे हैं, जो कामकी आगि
अटकानेके लिये मन्त्रके समान है और जो सदा वियागिनी
स्त्रियोंका सहाया करता है वही पवन चन्दनके उपवनके नव-

सौरभ्यादापतद्भिर्मधुकरपटलैः पृष्ठतोऽनुप्रयानाः
कामाग्नेः स्फारधास्याः पथिककुलवधूवद्वैराः
समीराः ॥१०॥ एष कीडान्तताम्यकुसुमपुरवधूवक्त्र-
सौरभ्यवन्दुसुग्धं निद्राजडानां रसितमनुसरो द्राघ्य-
न्सारसानाम् । आघात्यज्ञानुकूलधूलितविचकिलप्रणि-
गन्धानुधावद्गोलम्योदघुप्यमाणस्मरजयचिरुदाड्यवरो
मातरिभ्या ॥११॥ कावेरीचारिवेदलल्लहरिपरिकरकी-
डनफलाग्नशान्तस्फीतश्रीसगडसगडधमलभरभयङ्कुरि-
सौरभ्यगर्भाः । चोलस्त्रीचीनवेलाधलकलनकलाक्रान्त-
कान्ताकुचान्ता घान्ति प्रेमाश्रिकीलाकृतितयवधूव-
ज्वैराः समोराः ॥१२॥ कुप्यल्लङ्घेश्याहुप्रकर्णिय-
मिताशेषलेखाम्बुजाक्षीशापक्षीणाः क्षुरन्त क्षणपरि-
कलिताः केकिमां कामिनोभिः । कार्णाटीनामकामडे
मृगमदमसृणं केशपाशं स्पृशन्तः पम्पासम्पातसम्पा
मलयजमहतौ जातकम्पाः पतन्ति ॥१३॥ कुसुमप-

रिमलेनामोदनालिल्लतानां चलिनकिसलयानां लास्य-
हीलोपदेष्टा । लुलिनकमलवृन्दः शीकरासारवोहा
मृदुमलयसमीरो घान्ति वैभानिकोऽयम् ॥ १४ ॥ कुन्वा
कार्णाटकान्ताकुचकनकगिरिशान्तमञ्जारीललां भम्पा-
मासाद्य पम्पापयसि वनभुवि क्षितमल्लीरजम्काः ।
आकपन्तः पुरस्तान्निगडामिव कलध्यानपुष्पधयालीं
घावन्त्येते मदान्धा मदननरपतेः सिन्धुरा गन्धवाहाः
॥ १५ ॥ चञ्चलकर्मिणां मलयगिरिगुरुप्रायहा-
धादवाप्ता मन्दानन्दैर्मिलिन्धैर्महामहमिकयानुदयदीर्घ-
पान्थाः । कावेरीचारिमेका विगलनरनरसारथानीग-
सिका मुफताद्राः स्वदनिद्रालय इव पयनास्ना तथन्यां
विशन्ति ॥ १६ ॥ चूतध्रेणीगर्मिलमुपध्वजरीकानु-
यातां भूयो भूयः कुप्यल्लङ्घीकोटरे लोयमानाः । मन्वं
मन्दं सुरनधिरनौ घान्ति स्त्रीप्रन्तिनीनां गण्डाभोग-
धमजललवप्राहिणो गन्धवाहाः ॥ १७ ॥ चोलाहना-

नये छोटे-छोटे पीछोंको नर्तकी बनाकर नचा रहा है और कूका
भूलती हुई जियोंके शरीरपर झककते हुए पसंजनेके ईर्-रूपी
जालमें सूतके समान दिखाई पड़ना है ॥१०॥ सम्भोगसे धरवन्त
घनी हुई कुसुमपुर (पटने) की स्त्रियोंके मुखकी सुगन्धमें बसा
हुआ, सरोवरके तटपर नींदमें आलसाए हुए सारसोंकी धोमी
कूकको बढ़ाकर फैलानेवाला तथा हिलते हुए चराओंका सुगन्धके
पीछे शीघ्रनेवाले औरोंकी गुआरमें भरो हुई कामदेवकी प्रशंसाकी
आरों और फैलानेवाला यह वायु शरीरमें अगकर बड़ा सुहावना
जान पड़ रहा है ॥ ११ ॥ वे पवन इस समय चलने लगे
हैं जो कावेरी नदीकी लहरोंके साथ खेल-खेलकर धककर
मन्द हो गए हैं, इरे-मरे बन्दोंके जलजमें घूमनेसे बड़ी
सीम सुगन्धमें बस गए हैं, चोलदेशकी जियोंकी रेतमी
चोली हटाकर उनके स्ननोंपर बिहार कर रहे हैं और
विरहाग्नि की लपटोंसे घिरी हुई नायिकाओंसे सदा टकटा
ठाने रहते हैं ॥ १२ ॥ इस समय वे वायु बड़े झककतेके साथ
बह रहे हैं जो कोची रावणके हाथों बन्दी किए हुए
देवनाघोंकी सभी देवियोंके शापसे डुबले हो गए हैं, औरनीके
झारा पी लिए जानेसे जिनकी चाल धोमी पड़ गई है, जो
कर्नाट देशकी जियोंके कन्तूरोंमें बसे हुए कैलोंको समयसे
पहले ही घूने जा रहे हैं और जो पम्पा सरोवरके जलमें डुबकी
खगानेसे कौर रहे हैं ॥ १३ ॥ प्रातःकाल यह मलय पवनका
मन्द वायु जलकी फुहारें ढाए चला आ रहा है, खताओंके

कूनोंकी सुगन्धसे औरोंको प्रसन्न कर रहा है, हिलते हुए नये
पत्तोंको नचाया सिला रहा है तथा कमलोंको झुला रहा ॥
॥ १४ ॥ कामदेव रूपी राजाके मनबासे हाथीके समान वे
इधर-उधर हलनेवाले पवन कर्नाटक देशकी जियोंके स्तन-
कपी पर्वतपर घूमते रहते हैं, पम्पा सरोवरमें कूर-कूरकर डुबकी
लगाते रहते हैं, वन-भूमिपर बेलोंके फूलका पराग बिलेरते रहते
हैं और मधुर गुआर करनेवाले औरोंको इस प्रकार अपभी
और लुभा रहे हैं मानों वेदोंमें बाँधकर खींच रहे हों ॥ १५ ॥
इस समय तालके वनमें वे पवन घुसे जा रहे हैं जिन्होंने
फैले हुए कपूर चुरा लिए हैं, जो मलय-पर्वतकी विशाल
बहामोंसे लम्बी यात्रा करके आए हैं, जिनके पीछे मत्स औरे
होड़ लगा-लगाकर दौड़ रहे हैं, कावेरी नदीके जलसे सींधी
हुई घनी घेतकी आदिपंमेंसे हाँकर आते हुए जो तर हो गए
हैं और जिनकी धोमी-धोमी चालसे जान पड़ना है मानो वे
नींदमें झूम रहे हों ॥ १६ ॥ प्रातःकालके वे पवन धीरे-धीरे
बह रहे हैं जिन्होंने मानो आमके औरोंकी सुगन्ध चुरा ली हो
हमलिये और उनका पीला कर रहे हों और बार-बार कमल-रूपी
कुटियामें छिपे रहे हों, फिर भागकर जियोंके रत्नके परचान् उनके
गाँवोंपर लड़ाई हुई पसोनेकी ईर् सुन्ना रहे हों (कि वे इन
औरे-रूपी राजसेवकोंसे हमें बचा लें) ॥ १७ ॥ देखो, चाल
देशकी जियोंके स्तनोंपरकी चालीमें घुसनेवाला, केरल देशकी
नवेजियोंके क्षितराए हुए बाँवोंका लहरानेवाला, साट देशकी

कुचनिचोललनानुलोनी द्वाक्केरलीविरजकुन्तलकम्प-
लोलः । लाटीलहाटतटशापणमानसोऽयं फुल्लारवि-
न्दघनवन्धुरूपति वायुः ॥ १८ ॥ ऊर्ध्वानिलोऽपि
सुरतान्तनिनान्ततान्तकान्ताकुनान्तघनघर्ममपाकरो-
ति । भूयोऽभिलाषजननी पुनरन्यथैव स्वेदाप-
नोदनकला मलयानिलस्य ॥ १९ ॥ दरकुल्लकमलका-
ननसारभसम्भारमन्धरः पवनः । द्यितारसि शयिता-
मपि द्यितां सन्तापयाञ्चक ॥ २० ॥ दरविगलितम-
ल्लोर्ध्वल्लिखञ्जत्यरागप्रकटितपटयासेवांसयन्काननानि ।
इह हि दहति चेतः केतकोगन्धवन्धुः प्रसदसम-
वाणप्राणवद्गन्धवाहः ॥ २१ ॥ धुन्वानाश्चन्दनालीं
पकुलमुकुलजां धूलिमुद्गल्यन्तश्चुम्बन्तश्चूतयटोः परि-
मलपहलौऽभ्यपकान्कम्पयन्तः । आराशारामसामातट-
घटितघटीयश्चनिमुक्कचारां धारामावाहयन्तः श्रमश-
मपटया धान्यमी गन्धवाहा ॥ २२ ॥ नाटोणां मृग-
नाभिपुङ्खुमरसमकाकनस्यामलासम्भोगधमशंकरान्य

रिहरश्चाकम्पयन्कुन्तलान् । पुष्पाभोदमनोरमाभिविग-
लितानन्भोजगन्धं सहन्प्रातस्त्यः पवनो बहुत्ययमलं
स्वान्तप्रमोदप्रदः ॥ २३ ॥ पुरातनपरीमलप्रकरमेदुरा-
मारुता न घास्ति मुकुलीभवत्कुमुदगर्भलीना इव ।
चरन्ति नवसौरभाः पुनरमी समीराङ्कुराः सज्जम्ब-
सरोजिनीसरसिजाप्यमुक्ता इव ॥ २४ ॥ प्रातः लोम-
न्तिनीनां निधुवनलुलितान्ध्रमयन्केशपाशानुन्मोक्त्य-
ङ्गजान्तपरिमलसुरभिः स्फुरत्यन्कामलीलाः । स्व-
कलाप्रशयाशयिन्दुन्दिशि दिशि चिकिरन्स्थूलमुक्ता-
फलाभाभूलीभिः केतकीनां धवलमधुवनो वाति
मन्दं नमस्वान् ॥ २५ ॥ भिक्षितकमलकुटुम्बाः शिक्षित-
गजगामिनोगतयः । ललितहिमगिरिपादाः प्रातरमी
भानरिभानः ॥ २६ ॥ मृङ्गालीकण्डमालाः स्फुटिकम-
लिनीधूनिभिर्धूसराङ्गाश्चञ्चन्तश्चन्द्रकणालघुतलहरी-
श्रीकरसारहाः । अङ्गादङ्गं मज्जन्तो चिकसित-
विलसन्केतकीमालतीनां मोदन्ते मन्दमन्दं मलयगिरि-

कामिनियोंके माथेका पसीना सुलानेवाला और खिले हुए कमलोंसे मेल-जोल यदनेवाला यह पवन बड़ा चला आ रहा है ॥ १८ ॥ सम्भोगसे चाम्यस्त धरती हुई ज़िरोंपर घाय हुए पसी-कों तो आँधोंका वायु भी सुन्ना देता है किन्तु सम्भोगको हृत्पाक जगानेवाला मलवानिल जिस कलासे पसीना सुखाता है वह कला कुञ्ज और ही है ॥ १९ ॥ कुञ्ज-कुञ्ज खिले हुए कमलघनकी सुगन्धके बाँकसे धीरे-धीरे डग भरनेवाला पवन उन नायिकाओंको भी सम्भोगके लिये उकसा रहा है जो घपने पतकी छालीसे लिपटी हुई सां रही हैं ॥ २० ॥ खिले हुए वेलेकी लतासे पराग उड़ाकर सारे जङ्गलको गमकाता हुआ, केवड़की गन्धमें बसा हुआ और प्रभावशाली कामदेवके प्राणके समान यह वायु हमारा जी जलाए डाल रहा है ॥ २१ ॥ प्रातःकाल चन्द्रके जङ्गलको हिला देनेवाले, मौलसिरोंके कज़ियोंका पराग उड़ा देनेवाले, चामके पेड़ोंको गलेसे लगाने-वाले, सुगन्धसे भरी हुई चम्पेकी लताका कँषा देनेवाले, पासके उपवनमें लगे हुए रहटसे निकलता हुई जलधारासे मिलकर चलनेवाले ये शीतल पवन थकावट दूर करत हुए वह रहे हैं ॥ २२ ॥ देखो, प्रातःकालका यह कैसा सुन्दर वायु वह रहा है जो सम्भोगकी थकावटसे उत्पन्न हुए तथा शरीरमें लगे हुए केशर और कस्तूरीके रससे मिलाकर काले पदं हुए पसीनेका पोंछता आ रहा है, जो नवेजियोंके फूलोंकी सुगन्धसे मन हरनेवाले और

खिले हुए बाजोंको लहरा रहा है और जो कमलकी सुगन्धमें बसा हुआ हमारा मन प्रमत्त कर रहा है ॥ २३ ॥ पहलेकी सुगन्धसे भरे हुए वायुके घब न चलनेसे जान पड़ता है कि वे कुमुरोंके भीतर घुस गए हैं और इस समय फिर नई सुगन्धवालों कमलनालपर खिले हुए कमलोंसे निकलकर वे नया गन्ध लेकर बहने लगे हैं ॥ २४ ॥ सम्भोगके समय स्त्रियोंके आँखें खुल गए थे उन्हें और भी लहराता हुआ, खिले हुए कमलोंकी गन्धमें बसकर कामलीलाकी उकसाता हुआ, मोतीके बड़े-बड़े दानेके समान स्वच्छ मोलकी बूँदें इधर-उधर छितराता हुआ और केबड़ेका पराग फैलाकर संसारका उमलासा बनाता हुआ वायु प्रातःकाल धीरे-धीरे वह रहा है ॥ २५ ॥ हिमालयकी पहाड़ियोंसे शीतलता लेकर, हाथीके समान क्रमकर चलनेवाली नायिकाओंसे धीमी पाक सीलकर और कमलोंसे सुगन्धकी भिछा लेकर यह शीतल, मन्द, सुगन्ध बयार चल रही है ॥ २६ ॥ खिले हुए कमलोंके पराग-करां पूचमें लिपटे हुए आँखोंकी पौलें ही जिसके कण्ठहार हैं, चन्द्रमाके समान चमकनेवाली लहरोंकी बूँदें ही जिनकी लार हैं, जो खिलकर सुन्दर लगनेवाली मातली तथा केतकीका पद मोदते दूसरे गोदपर कूद रहे हैं वे मलय-पर्वतकी कन्दराओंमें अञ्ज लेनेवाले वायु-न्पी बवं धीरे-धीरे सरकते हुए चटखेजिबों कर रहे हैं ॥ २७ ॥ बसन्तके महीनेमें प्रातःकालका वह वायु

दरीगर्भतो घातपोताः ॥ २७ ॥ रामाणां रमणीयवक्-
शशिनः स्वेदोदधिमुद्गतो व्यालोलालकमञ्जरीः प्रचल-
यन्धुन्वन्नितम्बाम्बरम् । प्रातर्वाति मधो प्रकामवि-
कसद्रात्रीवराजीरजःपुञ्जामोदमनोदुरो रतिरसग्लानि
हरम्पारुतः ॥ २८ ॥ लतां पुष्पवतीं स्पृष्ट्वा स्नातां
विमलधारिणा । पुनः सम्पर्कशङ्कीष मन्दं चरति
मारुतः ॥ २९ ॥ लताकुञ्जे गुञ्जमदचदलिपुञ्जश्चपल-
यन्समालिङ्गनङ्गं दृढतरमनङ्गं प्रयलयन् । मरुन्मन्दं
मन्दं दलिनमरविन्दं तरलयन् रजोवृन्दं विन्दुश्चरति
मकरन्दं दिशि दिशि ॥ ३० ॥ लवङ्गलतिकाभङ्गदया-
लुर्दक्षिणानिलः । कथमुन्मूलयत्येष मानिनीमानपर्व-
तान् ॥ ३१ ॥ लीलादोलातिखेलारसरभसलसद्वालखे-
लाञ्जलानाम्बोलीनामापियन्तो मृगमदसुरभस्वेदवि-
म्वूनमन्दान् । लोलस्तः केरलीनां कुचकलशलसन्कुङ्कु-
मालेपनेषु श्लिष्यन्तो मालवीनां मलयजमधुराः कञ्ज-

कीर्णान्ति घाताः ॥ ३२ ॥ धारं धारं धुनकुसुमितामृत-
रेवानटे वा मेवापगतं परिणमिदं तावकं तर्कयामि ।
यत्त्वां मन्थान्तिकमुपगतं कामवामाभिगमा रामाः
स्वैरं कुचकलशनो वल्लमुन्सान्यन्ति ॥ ३३ ॥ घासो
विधूय स्तनयोरमुष्णाः कपोलकीर्णा कश्यपमुदस्य ।
अवारितः प्रोञ्जति वाग्धारां मुने मृगादयाः सुकृती
समीरः ॥ ३४ ॥ विकचकमलमन्धैरन्धयन्भृङ्गमालाः
सुरभितमकरन्दं मन्दमाशानि वानः । प्रमदमदनमाद्य-
घावनोद्दामगमारमणरभसखेदस्वेदविम्वूनवृन्दः ॥ ३५ ॥
विलुलितकमलाद्य कीर्णवल्लीविनानः प्रतिवनमवध-
ताशेषशालिप्रसूनः । कचिद्वयमनवस्थः स्थास्यता-
मेति वायुचनकुसुमधिमर्द्वाग्निधिवश्मान्तरेषु ॥ ३६ ॥
वृथा धूसो धाराः परिकिरत्सि वाय्वा प्रथयन्ते मया-
वेगः कोऽयं पवन तव हा नम्यसमये । रतान्तथा-
स्ताभिः स्तिमितमयनास्ताभिरनिशं स्मृतो यन्कान्ता-

चल रहा है जिसमें स्त्रियोंके सुगन्धपर भक्तके हुए पसीनेकी
हूँदें भरी हैं, जो उनके लहराते हुए बाजोंको लहरा रहा है, जो
नितम्बोंपर पड़ी हुई साड़ीको बार-बार हटा रहा है, जो पूर्ण खिले
हुए कमलोंके परागकी सुगन्धमें बसकर मन हर रहा है और जो
सम्भोगकी थकावट दूर कर रहा है ॥ २८ ॥ प्रातःकाल बढ़ता
हुआ शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु ऐसा जान पड़ता है मानों खिले
[फूलोंवाली (रजस्वला) लताका स्पर्श करके अपवित्र हो
जानेसे वह निर्मल जलसे स्नान करके शुद्ध हुआ हो और अब
इस तरह धीरे-धीरे सब बचकर चल रहा है कि कहीं उससे
फिर न झू जाय ॥ २९ ॥ फूलके परागमें बसकर चारों ओर
फूलकी गन्ध बिखेरता हुआ, मतवाले औरसे रौजती हुई
लतकी आदिषोंको हिलाता हुआ, शरीरमें लगकर कामकी
ठकसना हुआ और खिले हुए कमलोंको झुलाता हुआ यह पवन
मन्द-मन्द बढ़ता चला आ रहा है ॥ ३० ॥ दक्षिणका जो पवन
लवङ्ग-लताके दूट जानेके डरसे उसपर दश करके धारे-धारे चल
रहा है वह रुठी हुई नवेलियोंके क्रोध-रूपी पहाड़ोंका न जाने
कैसे उल्लाड़ फेंकता है ॥ ३१ ॥ वह साड़ियोंके आँचल
उड़ा-उड़ाकर झूलनेवाली चोल देशकी स्त्रियोंकी कस्तूरसे
सुगन्धित पसीनेकी हूँदें पीनेवाले, केरल देशकी स्त्रियोंके
स्तनोंपर पोते हुए केशरके लेपपर टहलनेवाले तथा मालव
देशकी नवेलियोंकी चन्दनके रसमें बसी हुई चोलियोंसे
रंगव खानेवाले वायु इस समय बढ़ रहे हैं ॥ ३२ ॥

हे पवन ! तुम्हें पास आया देखकर कामदेवसे मनबाली
सुन्दर स्त्रियों जो अपने स्तनोंपरसे सहसा बल्ल हटा लेटी
है, इसे देखकर मैं अनुमान करता हूँ कि तुमने नर्मदा नदीके
तटके वनोंके फूल हिलाकर जो नर्मदाकी सेवा करके पुण्य
सञ्चय किया है वह उसीका फल है ॥ ३३ ॥ इस पुण्यशाली
वायुको तो देखो कि इसने पहले तो मृगनयनीके स्तनोंपरसे
बल्ल हटाए, फिर गालोंपर लहराते हुए वात ऊपर उठाए
और अब बिना कोई रोक-टोकके उसके मुखपर बहता
हुआ पसीमा पोंछ रहा है ॥ ३४ ॥ खिले हुए कमलोंकी
गन्धसे भीरोंको मतवाला कर देनेवाला और फूलोंके रसकी
गन्धमें बसा हुआ वह वायु बढ़ रहा है जो नई कामान्ध
नवेलियोंके सम्भोगकी थकावटसे निकले हुए पसीनेकी चतुरतासे
पोंछ रहा है ॥ ३५ ॥ कमलोंको झुला देनेवाला, लताओंको
झुका देनेवाला और वनके प्रत्येक वृक्षके फूलोंको कँपा
देनेवाला जो वायु कहीं ठिक नहीं पाता वही जङ्गली फूलोंकी
तीक्ष्ण गन्धसे भरे हुए घरोंके भीतर रुककर चल रहा है
॥ ३६ ॥ हे पवन ! इस समय तो तुम इतनी असमयकी आँक
लेखन व्यर्थकी धूल-धक्का उड़ाते हुए आँधी बनकर छा
रहे हो ? पर अब सम्भोगके अन्तमें थकी और अलसाई
आँखोंवाली नवेलियों तुम्हारे लिये तरसती रहती हैं उस
समय तो तुम कहीं हूँचे नहीं मिलते ॥ ३७ ॥ जागकर अलसाई
हुई स्त्रियोंसे जो पुनः पुरुषोंके समान आचरण करनेका नाटक

भिर्न सुलभतरः कापि च भवान् ॥ ३७ ॥ वैभा-
तिको मरुदनुव्रमवर्धमानपञ्चाटवीपरिमलप्रमगनुमेयः ।
आयानि सोऽयमलसंनिधितसागसातीन् भावन्त्युपुन
रुचमसूत्रधारः ॥ ३८ ॥ सललितमलकानां धललो
नर्तयन्तो मधुसुरभिमुखा जाल्मसगन्धानुवन्धाः ।
नघतरतभाजां योपितां स्वेदयिन्दूस्तृण इव पियस्तो
धान्ति मन्दं समीराः ॥ ३९ ॥ सुरतभरखिन्नपन्नगवि-
लासिनोपानकेलजर्जरितः । पुनरपि विरहिभ्वास्तैर्म-
लयमरुन्मांसलीक्रियते ॥ ४० ॥ इतनपरिस्तरभागे दूर-
माधर्तमाना स्फुटतनिमनि मध्ये किञ्चिदेव स्खलन्तः ।
षवुरलघुमितम्याभागरुद्धा वधूनां निधुवनरसखेदच्छे-
दिनः प्राङ्गवाताः ॥ ४१ ॥

सूर्योदयस्थानम्—अतुहिनरुचिनाली केवलं मोद-
याद्भिः क्षणमुपरिगतेन च्माभूतः सर्व एव । नयकर-
निकरेण स्पष्टवन्धूकसुनस्तयकरचितमेते शेररं विज-
तीय ॥ १ ॥ अयमुदयात् मुद्राभजनः पश्चिनानामुद-

यगिरिचनलीवालमन्दारपुष्पम् । विरहविध्वङ्कोक-
ह्रस्ववन्धुर्विभन्दन्कुपितकपिकपोलकोडनाप्रस्तमांसि
॥ २ ॥ आगन्त्य सम्पति वियांगधिसंस्थुलाङ्गीमम्मा-
जिनी कचिदपि क्षापितत्रियामः । एतां प्रसादयति
पश्य शनैः प्रभाते तन्वाङ्गि पादपतनेन सहस्ररश्मिः
॥ ३ ॥ आयान्त्या दिवसाधियः पदतलस्पर्शानुभावा-
द्विध व्योमाशोकतरोर्नवीनकलिकागुच्छः समुज्जृ-
म्भते । आतम्वन्नवर्तसविभ्रममसावाशाकुरङ्गीदृशामु-
न्मीलितरुणमभाकरकरस्तोमः समुद्रावते ॥ ४ ॥ उद-
यति वितताध्वरश्मिरज्जायहिमकचौ हिमधाक्षि
याति चास्तम् । वहति गिरिरथं विलम्बिघट्टाद्वय-
परिचान्तिधारणेन्द्रलीलाम् ॥ ५ ॥ उदयमयते दिङ्मा-
लिन्यं निराकुरुतेतरां नयति निधनं निद्रामुद्रां प्रवर्त्त-
यति क्रियाः । रथयतितरां स्वैराचारप्रवर्तनकचैर्न
वत वत लसतेजःपुञ्जो विभाति विभाकरः ॥ ६ ॥
उदयशिकरिष्टङ्गप्राङ्गणेष्वेव रिङ्गस्तकमलमुक्ताहास

करनेकी योजना करनेवाला यह प्रातःकाल का वायु सूत्रधार बनकर
या पशु या है जिसकी चालका अनुमान बारी-बारीसे खिलते हुए
कमलाका फैलती हुई सुगन्धसे किया जा सकता है ॥ ३८ ॥
प्रातःकालके समय वह प्रमसे खियाके बालोंका छहरनेवाला,
मदिदाकी गन्धसे गमकत हुए स्निग्धोंके मुख-कमलसे निकली
हुई सौंसकी गन्धसे बसा हुआ और अने सम्भागमें मुट्टी हुई
खियाके पसनेकी बुँदाका प्यामेके समान या जानेवाला पवन
इस समय धारे-धारे वह रहा है ॥ ३९ ॥ सम्भागके परिभ्रमसे
धकी हुई सौं पिनने जा दियका वायु या किया उससे वह पवन
बूझा पड़ गया था पर इस समय वह विरहिवाँकी लम्बी सौंसोंसे
फिर पुट ही गया है ॥ ४० ॥ इस समय खियाके स्तनोंपर
चमकर लगानेवाले, नखेलियोंकी पतली कमरमें कुछ रुक-रुककर
चलनेवाले, विशाल नितम्बोंके विस्तारके कारण रुके हुए और
सम्भागकी धकावट दूर करनेवाले ये प्रातःकालके पवन वह रहे
हैं ॥ ४१ ॥

सूर्योदयका वर्णन : प्रातःकालके सूर्यकी नई किरणोंका
जो समूह अभी ऊपर उठ आया है उसने पाला न जानेके
कारण अपनी निर्मल चमकसे केवल उदयाचलको ही नहीं धरन्
सारे पहाड़को ही चमका दिया है और अब वे किरणें खिले हुए
फूलोंके गुच्छोंके समान इस पहाड़की चाँटीपर सजने लगी हैं
॥ १ ॥ यह देखो, कौचिन चन्द्रके गालोंके समान जाल,

उदयाचलपर नन्हेंसे मन्दार पुष्पके समान खिलनेवाला,
कमलिनियोंकी चाँलें फोलनेवाला और विरहसे व्याकुल
चमकेके जाँड़ेका हिलीपी यह सूर्य, अन्धकारको धीरता हुआ
उदय हो रहा है ॥ २ ॥ हे पतली कमरवाली मिये !
देखो, वह सहस्रों किरणोंवाला सूर्य, रातके पिछले तीन पहर
न जाने कहीं चितकर अब प्रातःकाल अपने वियांगमें व्याकुल
कमलियोंके पास धीरे-धीरे आकर उसके पैरोंपर गिरकर उसे
मना रहा है ॥ ३ ॥ प्रातःकाल उदय होते हुए सूर्यकी किरणें
(हाथ) ऐसी शोभित होती हैं मानो प्रातःकाल चली जाती
हुई दिनकी शोभाकपी नापिकाके लहवेसे सू जानेके कारण
आकाराकपी अशोक वृक्षमें जो नई-नई कलियोंके गुच्छे निकल
आए हैं उनसे वे दिशाकपी मृगनयनी नखेलियोंके कर्णकुल
सजा रही हों ॥ ४ ॥ प्रातःकाल पहाड़के एक ओर अस्त होते
हुए चन्द्रमा और दूसरी ओर अपनी किरणें ऊपरकी ओर
फैलाकर उदय होते हुए सूर्यके कारण पहाड़ ऐसा लग रहा
है मानो किसी मतवाले गजराजकी पीठके दोनों ओर ही
घण्टे लटक रहे हों ॥ ५ ॥ देखो तो, प्रातःकाल यह अत्यन्त
तेजस्वी सूर्य कैसा अच्छा लग रहा है, जिसने उदय होते
ही दिशाओंका धँधरा मिटा डाला, निद्रा नष्ट कर दी,
संसारके सब काम-काज पुनः प्रारम्भ कर दिए तथा बेलठके
होनेवाले प्योरी, व्यभिचार आदि सब बुरे काम समाप्त कर दिए

वीक्षितः पद्मिनीभिः । धिततमृदुकराग्रः शब्दयन्त्या
वयोभिः परिपतति दिवोऽङ्गे हेलया यालसूर्यः ॥ ७ ॥
उन्निद्रकोकनदरेणुपिशङ्किताङ्गा गायन्ति मञ्जु मधया
गृहदीर्घिकासु । एतच्चकास्ति च रवेर्नयन्धजीवपु-
ष्पच्छदाभमुदयाचलचुम्बि विम्बम् ॥ ८ ॥ एतत्तर्क्य
सकवाकहृदयाभ्यासाय तारागणप्रासाय स्फुरादिन्दु-
मण्डलपरीहासाय भासां निधिः । दिक्कान्ताकुच-
कुम्भकुङ्कुमरसन्यासाय पङ्कुरहोल्लासाय स्फुटवैरर्कर-
वधनप्रासाय घियातते ॥ ९ ॥ करनखरविदीर्घा-
स्तकुम्भीन्द्रकुम्भात्तुहिनकणमिषेण क्षिप्तमुक्ताप्रराहः ।
अयमुदयधारप्रीधारिमूर्धाधिकरुदो नयनपथमुपेतो
भानुमत्केसरीन्द्रः ॥ १० ॥ कीलालैः कुङ्कुमानां सकल-
मपि जगज्जालमेतन्निषिक्तं मुक्ताब्जान्मत्तभृङ्गा विघ-
टितकमलकाङ्कशरागृहेभ्यः । उत्सृष्टं गोसहस्रं किमुत

कलकलः श्रूयते च द्विजानां भाग्यैर्द्वन्द्वारकाणां हरि-
हयहरिना सृगते पुष्करन्तम् ॥ ११ ॥ क्षणमयमुपविष्टः
ह्यमानलन्यस्तपादः प्रणतिपद्मवेन्य प्रीतमहाय
लोकम् । भुवनतलमशेषं प्रत्यवेक्षित्यमाणः क्षितिधर-
तटपीडास्थितः सप्तर्षिभिः ॥ १२ ॥ घटमानकोककुच-
मामृशङ्करैर्विकस्ययोजनयनायलोकिनः । परिचुम्ब्य-
जीदमरुणप्रभाधरं रविच्य धान्यनिनामुष्यं मुहुः ॥ १३ ॥
ततः कोकवध्वन्धर्वन्धककुसुमप्रभः । उदयाद्रिशिगे-
रत्नमुद्ययां तेजसां निधिः ॥ १४ ॥ नवकनकापिशङ्क
यासगणां विधातुः ककुभि कलिशपाणैर्भाति भासां
धितानम् । जनिनभुवनदात्रारम्भमम्भांसि दग्ध्या
ज्वलितमिष महारधेरुष्यमार्धानलाचिः ॥ १५ ॥ निजां-
शुकावृतां प्राच्यां शुभ्यन्यकैर्ऽनिरागिणीम् । लज्जयेव
यया क्वापि श्यामा मीलितलोचना ॥ १६ ॥ निसर्ग-

॥ १ ॥ प्रातःकाल उदयाचलकी चोटीके अँगनमें रँगता
हुआ, अपने किरणरूपी कोमल हाथ फैलाता हुआ तथा
पक्षियोंके कलरवके स्वरमें खोलता हुआ वह सूर्यरूपी बालक
लटपटाकर आकाशकी गोर्धमें निह रहा है जिसे कमलिनिषीं
घौर कमल हैं-हैंसकर देख रहे हैं ॥ २ ॥ प्रातःकाल खिले हुए
कमलोंके परागमें रँगी देहवाले ये और, घरकी प्रावड़ियोंमें
मधुर गुआर कर रहे हैं तथा जपाकुसुम की पल्लुधियोंके समान
लाल-लाल सूर्यमण्डल उदयाचलकी आर बढ़ता हुआ शोभा
पा रहा है ॥ ३ ॥ यह देखो, प्रातःकाल ये परम तेजस्वी सूर्य-
देव चकवा-चकवाको डाढ़स देनेके लिये, तारोंकी निगल
जानेके लिये, निर्मटिमाते हुए चन्द्रमण्डलकी हँसी उड़ानेके
लिये, अपनी प्यारी दिशाओंके चढ़ेके समान स्तनोंको कुङ्कुमके
शेपसे सजानेके लिये, कमलोंको विकसित करनेके लिये तथा
प्रत्यक्ष ही धर करनेवाले काँईके समूहोंको सतानेके लिये उदय
होते हुए चमक रहे हैं ॥ ४ ॥ प्रातःकाल अपने तीक्ष्ण नखों
(किरणों) से घने औंधेररूपी मतवाले गजराजका मस्तक काढ़-
कर उसमेंसे ओसकी धँदके मोती बिलेरकर ये सूर्यरूपी
सिंहराज, उदयाचलके शिखरपर चढ़ते दिखाई दे रहे हैं ॥ ५ ॥
कोई प्रातःकालकी शोभाका वर्णन करता है—'देवताओंके
भाग्यसे पूर्व दिशाने पुष्करन्तकी जन्म दिया, उस उत्साहमें
मानो यह सारा संसार कुङ्कुमके जलसे सींचा गया है, कमलके
कोशरूपी काशगरसे मतवाले औररूपी वन्दी छोड़ दिए गए
हैं, सहस्रों गोएँ दान की गई हैं (सूर्यकी सहस्रों किरणें फैल

भी हैं) घौर इसी प्रमन्नतामें मानो माछण (पक्षी) जहाँ-तहाँ
डा-हल्ला मचा रहे हैं' ॥ ६ ॥ प्रातःकाल सय लोगोंकी प्रार्थना
सुनकर उनकी विपत्ति दूर करनेके उद्देश्यसे सारे संसारका
निरीक्षण करनेके लिये महाराज सूर्यदेव उदयाचलके शिखररूपी
सिंहासनमें उठकर धरनीपर पैर रखकर एक लण्ड टहर गए हैं
॥ ७ ॥ इम समय (प्रातःकाल) सूर्य, लाल-लाल मुँहवाला
उस बेरवा (दिन-रूपी नायिका) के आपसमें सटे हुए चकवा-
चकवीरूपी स्तनोंपर हाथ (किरण) फेरता फैलाता) हुआ बार-
बार उसका मुँह चूम रहा है जो खिले हुए कमल-नेत्रोंसे उसे
ताक रही है ॥ ८ ॥ तदनन्तर (रात बीतनेपर) चकवीके हितैषी,
जपाकुसुमके समान लाल तथा उदयाचलके शिखररूपी मुकुटमें
ऊँचे रानके समान परम तेजस्वी सूर्य उदय हुए ॥ ९ ॥ प्रातः
काल पूर्व-समुद्रके ऊपर, दिनोंकी रचना करनेवाले सूर्यकी जो
नये सोनेके रहस्यी घर्मा चमक फैल रही है उसे देखकर ऐसा
आन पड़ता है मानो बटवानलकी लपटें सारे जलकां सुलाकर
अब सारे संसारको जलानेकी इच्छासे आगे बढ़ा आ रही हों
॥ १० ॥ प्रातःकाल जब सूर्य अत्यन्त अनुरागसे भरी (लाल
रहवाली) पूर्व दिशाका अपनी किरणों (दस्त्र) से ढाँककर
उसका मुँह चूमने लगा तब मानां लजाकर ही रात्रि अपनी
आँखें मूँदकर धीरेसे वहाँसे खिसक गई ॥ ११ ॥ प्रातःकाल
दिनके स्वामी सूर्यके उदय होते ही स्वाभाविक सुगन्ध
फैलाती हुई तथा औरोंकी गुआरके स्वरमें गीत गाती हुई
कमलिनी मुस्कराने लगी ॥ १२ ॥ जान पड़ता है रातको

सौरभोजान्तधृक्सङ्गीतशालिनी । उदिते वासराधीशे
स्मेराजनि सरोजिनी ॥ १७ ॥ पयसि सलिलराशेर्नक-
मन्तर्निमग्नः स्फुटमनिशमतापि ज्वाल्या वाडवाग्नेः ।
यदयमिदमिवाभीमङ्गमुच्यन्धाति ज्वलितस्रदिरकाष्ठा-
ङ्कारगौरं विवस्वान् ॥ १८ ॥ पुरुहूतदिगङ्गना मसूता
रविमुद्गमसुतं चिरादुपेतम् । अलिनो नालिनोदराङ्गि-
मुक्ताः प्रियवाहुद्वयवन्धनान्नयोढाः ॥ १९ ॥ भूयो
निपीय रूषणम् । धमाप्रभातं पुञ्जीभवन्नुदयते तपन-
च्छुलेन । आर्षाभिरम्बरपयोर्नाधमद्य पातुं लीनोदुषु-
वृद्धकदम्बमिति प्रतीमः ॥ २० ॥ मञ्जिष्ठारुणदोधि-
तिर्मधुकर्माङ्गल्यगोतिस्ततः कोकाङ्गादपट्टः सराङ्ग-
वनं प्रीत्या समुज्जृम्भयन् । लोकालोककरः करैश्च
तमसां स्तोमं समुत्सारयन्मारोहन्पुदपाचलं रविरयं
वन्धूकगुच्छच्छुचिः ॥ २१ ॥ भालकैरवलोकनां प्रवि-
गलत्ताराच्छुद्धारापलां ग्लायच्छन्द्रमुखां विभ्रङ्गल-
तमःकेशां सशेषाम्बराभू । प्रातः सत्त्वरमित्थरीमिव

समुद्रमें समाप्त हुए सूर्यको बहवानलकी ज्वालाएँ उसे
जलाती रहीं हैं, इसीसे इस समय (प्रातःकाल) उस
समुद्रसे निकलता हुआ वह सूर्य जहाँ हुई सौरकी लकड़ीके
अङ्गारोंके समान दहक रहा है ॥ १८ ॥ प्रातःकाल पूर्व दिशा-
रूपी नायिकाके बड़ी लम्बी प्रतीचाके पश्चात् वह सूर्यरूपी
तेजस्वी पुत्र उत्पन्न किया है, इसी प्रसन्नतामें मानो कमलके
कोशोंसे भीरे और प्रियतमकी दोनों भुजाओंके बन्धनसे
मोहितियों मुक्त कर दी गई हैं ॥ १९ ॥ हमें तो ऐसा जान पड़ता
है कि रात भर सारे समुद्रको पीकर अब तारापुत्री बुलबुलोंवाले
आकाश-सागरको पीनेके लिये वह बहवानल अपना सारा तेज
बटोरकर प्रातःकाल सूर्यका रूप धारण करके उदय हो रहा
है ॥ २० ॥ जपाकुसुमके समान कान्तिवाला, मैजोठके रङ्गके
समान लाल किरणोंवाला तथा चकवे-चकवीको सुख
देनेवाला वह सूर्य कमलवनके प्रेमपूर्वक खिलता हुआ तथा
अपनी किरणोंसे सारे घने सँभरेको हटाता हुआ उदवाचनपर
चढ़ता जा रहा है जिसके स्वागतके लिये भीरे माङ्गलिक गीत
गाते जा रहे हैं ॥ २१ ॥ [यह प्रातःकालका दृश्य ऐसा जान
पड़ता है माना] कमलिनीयाँका स्वामी सूर्य, घने प्रेमके कारण
चलपूर्वक अपनी लाल-लाल किरणों (हाथों) से उस रातको
पकड़नेके लिये उसके पाँखे दौड़ा आ रहा है जिसके तारेरूपी
मोनियोंका स्वच्छ द्वार टूट-टूटकर गिर रहा है, चन्द्रमुख मलिन

बलादुद्गादरागैः करैराकर्षन्मिव यामिनीमनुपतस्य-
म्भोजिनीवल्लभः ॥ २२ ॥ यावन्नोरनिधेः प्रभात-
समयः प्रोद्भूत्य लोकत्रयीमाशिक्ष्यं रविचिम्बमम्बर-
शिन्वीधोपथे म्यस्यति । तावत्कर्तुमिद्यास्य मूल्य-
मुचितं पञ्चाकरेण स्वयं लक्ष्मीलम्बविकासपङ्कजकर-
म्यस्ता पुरः स्थाप्यते ॥ २३ ॥ विततपृथुवरप्रातुल्य-
रूपैर्मयूखैः कलश इव गरीयान्दिग्भिरारुष्यमाणः ।
कृतचपलविहङ्गारूपकोलाहलाभिर्जलनिधिजलमध्या-
देव उत्तार्थतेऽर्कः ॥ २४ ॥

सूर्यास्तमनश्चान्दम् — अंशुपाणिभिरतीव पिपासुः
पञ्चजं मधु भूरं रसयित्वा । लीढतामिव
गतः स्थितिमेर्ष्यलोलितं वपुर्गवाह पतङ्गः ॥ १ ॥
अप्रसानुषु नितास्तपिशङ्गैर्भूरुहान्मृदुकर्दैरवलम्ब्य ।
अस्तशीलगहनं नु विवस्वानाधिवेश जलधि नु
महीं नु ॥ २ ॥ अथ साम्प्रसाध्यकिरणद-
णितं हरिद्वेतिहृतिमिधुनं पतताः । पृथगुत्पपात

हो रहा है, काले-काले सँभरेरूपी लाल विकरे जा रहे हैं,
आकाशरूपी वल्लभ लुलहर गिरा जा रहा है और जो अपनी
कुमुदिनीरूपी पाँखें मूँदकर बेगसे भागी चली जा रही है
॥ २२ ॥ जैसे ही प्रातःकाल-रूपी बगिया समुद्रमेंसे लीनों लोंकोंके
मानिक सूर्यको निकालकर बाजारमें लाकर रखता है वैसे ही
आकाश भी मानो उसका डीक मोल करनेके लिये अपने खिले
कमलरूपी हाथोंपर रखी हुई लक्ष्मी (द्रव्य, शोभा)
सामने ला रखता है ॥ २३ ॥ ऐसा जान पड़ता है मानो
फुदकते हुए पक्षियोंके कतरकके स्वरोंमें हैंसती-बोलाती कोसाल
करती हुई दिशारूपी मोहितियों, किरणरूपी लम्बी-लम्बी
रस्सियोंसे समुद्रके भीतरसे सूर्यरूपी भरा हुआ बड़ा लींच
रही हों ॥ २४ ॥

सूर्यास्तका वर्णन : सन्ध्या समयका लाल सूर्य ऐसा
दिखाई पड़ रहा है मानो अधिक ध्यास लगानेपर उसने अपने
किरणरूपी हाथसे कमलका मधु (रस, मदिरा) भरपेट पी
लिया हो और उससे पागल होकर धरतीपर गिरा पड़ रहा
हो ॥ १ ॥ अस्त होते हुए सूर्यको देखकर कवि सोचता है कि
‘अपने आश्रय पतखे और कोमल करों (हाथों, किरणों) से
पहाड़की चोटीके पेड़ोंको धामकर सूर्य अस्तावन्तके जङ्गलोंमें हल
गया या समुद्रमें डूब गया या पृथ्वीमें समा गया है’ ॥ २ ॥
सँभरे होते ही जो चकवा-चकवीका जोड़ा चलन हो रहा था

विरहातिविलदधुदयस्तुतासृगनुत्तिमिव ॥ ३ ॥
 अध्वानं नैरुचक्रः प्रभवति भुवनध्वान्निदोर्ध्वं विलङ्घय
 प्रातः प्रातुं रथो मे पुनरिति मनसि न्यम्नचिन्ता-
 तिभारः । सन्ध्याकृष्णवशिष्टस्वकर्णपरिकरैः स्पष्टहे-
 मारपङ्क्तिः व्याकृष्यावस्थितोऽस्ताक्षितिभृति नयतां वैष-
 द्विकचक्रमकैः ॥ ४ ॥ अनुरागयतो सन्ध्या द्वियसस्त-
 म्बुतः सरः । अहो देवगतिश्चित्रा तथापि न समागमः
 ॥ ५ ॥ अनुगमघस्तमपि लोचनयोर्दधत वपुः सुखम-
 तापकरम् । निरकासयद्रथिमपेनवसुं वियदालयादप-
 रदिग्यशिका ॥ ६ ॥ अनुलेपनानि कुसुमान्यवलाः
 कृतमन्यवः पतिषु दीर्घाशिक्षा । समयेन तेन परिसुप्त-
 मनोभवयोधनं समग्रयाधिपन ॥ ७ ॥ अपराहृशानल-
 तरेण शनैरनिलेन लोलितसनाकुलये । निलयाय
 शास्त्रिन इवाहयते ददुराकुलाः स्वगकुलानि गिरः

यह उस समयकी घर्ना किरणोंके लाल रङ्गसे रेंगा हुआ ऐसा
 जान पड़ता था मानो बिदागकी बेदनासे उनका हृदय फट
 गया हो और उससे निकले हुए रक्तसे वे सन गए हों ॥ ३ ॥
 सन्ध्या समय अस्त होते हुए सूर्य ऐसे लग रहे हैं मानां वे इस
 किन्तामें दूब गए हों कि 'यह हमारा एक पहिपवाला रथ
 सारे संसारका अत्यन्त सभ्य मार्ग पार करके प्रातःकाल यहाँ
 नहीं पहुँच सकता ।' इसीलिये मानो वे दिशाओंके मरदलरूपी
 उस पहिपको बाँधकर अन्धकारकी ओर ले जा रहे हैं
 जिसमें सन्ध्या समय कुछ-कुछ वर्षा हुई किरणें ही सुनहरे
 आरेके समान दिखाई दे रही हैं ॥ ४ ॥ यद्यपि अनुराग
 (प्रेम या लल्लाई) से भरी हुई सन्ध्या दिनके पीछे-पीछे लगी
 शीदमी रहती है और दिन भी सन्ध्याके ठीक आगे ही आगे
 चलता रहता है, पर देवकी विचित्र लीला तो देखा कि
 वे दोनों कभी आपसमें मिल नहीं पाते ॥ ५ ॥ जैसे अत्यधिक
 चाहनेवाले, भेजोंको खींचलता देनेवाले तथा शरीरको सुख
 देनेवाले अपने सुन्दर नायकका भी उसके पास धन न
 रहनेपर बेरया घरसे निकाल देनी है उसी प्रकार पश्चिम
 दिगमने भी लाल रहवाले, आँखोंको कट न देने वाले तथा सुख-
 दायक रूपवाले सूर्यमें जब किरणें न बच रहीं तो उसे आकाश-
 रूपी घरसे निकाल दिया ॥ ६ ॥ सन्ध्या समय जब बहुत
 बेरतक सोया हुआ कामदेव जगा उठा तब चन्दन-केशर आदिके
 छेप और फूल आदि हकट्टे किए जाने लगे, पतिपर रुकी हुई
 गवेलियाँ प्रसन्न हो गईं और दीपक भी जल उठे ॥ ७ ॥

॥ ८ ॥ अभितापसम्पदमथोपकारिनिर्जितेजसामसह-
 मान इव । पयसि प्रपित्सुरूपगन्धुनिधेरधिरोढुमस्त-
 गिरिमध्यपनन् ॥ ९ ॥ अभिनिग्मग्निश्चिग्मा विर-
 मादवधानस्विन्नमनिमेषनया । विगलन्मधुघ्ननकुलाश्रु-
 जलं न्यमिमालदञ्जनयनं मलिनी ॥ १० ॥ अभिभूय
 सतामवस्थानि जडजेतु प्रतिपाद्य च श्रियम् । जग-
 नीपरितापकृन्कथं जलधां नावपतेदसां रथिः ॥ ११ ॥
 अयमपि स्वयंयापित्कर्णकायायमोपद्विर्गमर्गनिमिर्गोर्गा-
 जर्जरोपान्तमधिः । मद्रकलकलचिह्नीबाकुनाम्दीक-
 रेभ्यः क्षितिस्तृतिशिवरेभ्यो भानुमानुच्चिनोति ॥ १२ ॥
 अयमपि पुरुहतप्रयसांमूर्ध्नि पूगः कलश इव सुधांशुः
 साधुरुल्लालसीति । मदनविजययात्राकालविज्ञापनाय
 स्फुरति जलधिमध्ये तान्त्रपात्रीय भानुः ॥ १३ ॥ अय-
 मसा गगनाङ्गलक्ष्मीपकम्बरलकालभुजस्तृतिशिवार्गाः ।

सन्ध्या समय पक्षियोंका चहचहाहट्ट ऐसा जान पड़ता है मानां
 जब उनके वृत्त, शीतल वायुसे धीरे-धीरे हिलाई हुई अपनी
 डाली-रुपी रेंगलियोंका हिला-हिलाकर पक्षियोंका बसेरके किये
 बुलाने लगे तो पक्षी भी उमक हाँकर अपने कलरवसे उन्हें उत्तर
 दे रहे हों कि हम आ रहे हैं ॥ ८ ॥ विपता हुआ सूर्य ऐसा जान
 पड़ता है मानां अपने ही नेत्रका भयङ्कर गरभी न सह सकनेके
 कारण वह पश्चिमके समुद्रमें कूदनेके लिये अस्तावलकी चाँटीपर
 चढ़ गया हो ॥ ९ ॥ सन्ध्या समय सूर्यदेते हुए कमलोंसे निकलने
 हुए भीरे ऐसे जान पड़ते हैं मानां दिन भर सूर्यके अस्त होनेतक
 कमलके पीधने सूर्यके सामने एकटक देखनेसे अलसाए हुए अपने
 कमलरूपी नेत्र सूँढ़े तो उसमेंसे भीरेरुपी आँसू निकल पड़े हों
 ॥ १० ॥ सज्जनोंकी रहन-सहनमें बाधा पहुँचानेवाला (संसारमें
 फैला हुआ चौधेरा दूर करनेवाला), नीचाँका सुख देनेवाला
 (कमलोंका खिला देनेवाला) और संसारका तपानेवाला (प्रकाश
 देनेवाला) यह सूर्य भला समुद्रमें क्यों नहीं दूबेगा ? अर्थात्
 ऐसा कुकर्म करनेवालेको तो दूब ही मरना चाहिए (विश्राम
 लेना ही चाहिए) ॥ ११ ॥ जो वृत्त गौरैयाकी चहचहाहट्टसे
 सूर्यकी प्रशंसा कर रहे हैं उनकी चाँटियोंपरसे सूर्य, गर्धाके
 कानाके समान मटमेली और फैलते हुए अन्धकारसे धुँधला
 पड़ी हुई अपनी किरणें समेट रहा है ॥ १२ ॥ सन्ध्या समय
 पूर्व दिशाके माथेपर धरे हुए चौदाँके घड़ेके समान चमकता
 हुआ चन्द्रमा कामदेवकी विजययात्राके समयकी सूचना
 दे रहा है और समुद्रके बीचमें दूबता हुआ सूर्य तबके

क्षणचिदभ्यतवाडवधिग्रहः पतति वारिनिधौ धिबुरो
रविः ॥ १४ ॥ अविभाव्यतारकमदृष्टिहमद्युतिविम्बम-
स्तमितभानु नभः । अवसन्ततापमतमिहमभादपदाप-
तैव धिगुणस्य गुणः ॥ १५ ॥ अस्तं गतवति सवितरि
भतरि मधुपं निवेश्य कोशान्ते । कमलिन्योऽपि रमन्ते
किमत्र चित्रं मृगाक्षोणाम् ॥ १६ ॥ अस्तावल-
म्यिरविम्यतयोद्याद्रिचूडोन्मिपन्सकलचन्द्रतया च
सायम् । सन्ध्यामनुत्तहरहस्तगृहीतकांस्यतालद्वयेष
समलक्ष्यत नाकलवर्माः ॥ १७ ॥ अस्तादयाचलावल-
म्यिरवीर्यम्यव्याजात्क्षणं धवणयोनिहितारविन्दः ।
ताराक्षलेन कुसुमानि समुत्क्षिपन्ती सन्ध्येयमागत-
वती प्रमदेव काचित् ॥ १८ ॥ आकुलक्षलपताङ्गकुला-
नामारवैरनुदितोपसरागः । आययावहारदभाधपा-
ण्डुस्तुल्यतादिममुखेन दिनान्तः ॥ १९ ॥ आरुष्टास

व्यथयति मनो दुर्वला वासरधीरेखाक्षिज्ज क्षप्य रज-
नीमेकिका चक्रवाकि । नान्यासक्तो न खलु कुपितो
नानुरागक्युतो वा दैवाधोनस्तादृह भवतीमस्वतन्त्र-
स्यजामि ॥ २० ॥ आयासाः सुकपर्क्षिणः कलहत्
क्रामन्ति वृक्षालयाङ्कान्ताभाषवियागभोरधकं
कन्दन्ययं कातरः । चक्राहो मधुपाः सराजगहनं
धावन्युल्लको मुखं धत्ते वाक्पतां गतो राविरसाव-
स्ताचलं चुम्बति ॥ २१ ॥ आयशङ्किरुटजाक्षणं मृगै-
र्मूलसेकसरसेष्व वृक्षैः । आश्रमाः प्रविशदप्रयधे-
नवा विभ्रति श्रियमुदीरिताग्रयः ॥ २२ ॥ आस्थितः
स्थगितवारिदपङ्कथा सन्ध्याया गगनप्राथमभागः ।
सामिषद्रुमावतानविभासा रक्षितस्य जलधेः श्रिय-
मूह ॥ २३ ॥ उर्व्वैस्तटादम्बरशीलमालेशक्युतो रवि-
गौरकनदशीलः । तस्यैव पातेन विधूयितास्य

खदेके समान जाल जाल चमक रहा है ॥ १३ ॥ देखो,
यह आकाश-रूपी आँगनका दीपक, अस्थिर आकाश-रूपी
सौंपके मस्तकका मण्डि तथा समुद्रकी बड़बगिनके समान
ज्वलन्त सूर्य भाग निराधार होकर समुद्रमें डूब रहा है ॥ १४ ॥
सन्ध्या समय अभी आकाशमें तारे नहीं निकले थे, चन्द्रमा
भी नहीं उगे थे, सूर्य भी अस्त हो रहे थे और न तो भूप भी,
न पौषा भी, फिर भी आकाश बड़ा भला जान पड़ता था
क्योंकि जिनमें गुण नहीं है उनमें दोषोंका न रहना ही गुण
हो जाता है ॥ १५ ॥ जब अपने पति सूर्यके अस्त हो जाने
पर कमलिनियों अपने कोशोंमें भीतरोंको घुसाकर झींझ कर
रही है तब यदि हरिके समान आँखोंवाली नायिकाएँ भी
बैसा ही करें तो क्या आश्चर्य है ॥ १६ ॥ सन्ध्या समय जब
एक ओर अस्ताचलपर सूर्य अस्त हो रहे थे और दूसरी ओर
उदयाचलपर चन्द्रमा उदय हो रहा था, उस समय नीला
आकाश ऐसा जान पड़ता था मानो सन्ध्या समय नृत्य करते
हुए शङ्करजीने दोनों हाथोंमें दो कौलेकी भाँझें ले रखी हों
॥ १७ ॥ उदयाचल और अस्ताचलपर अलग अलग खदेके
हुए चन्द्रमा और सूर्यका कनफूल पहनकर तारे-रूपी फूल
उड़ालती चलती हुई सन्ध्या-रूपी नायिका या पहुँची
है ॥ १८ ॥ सन्ध्याका समय भी प्रातःकालके समान लगने
लगा था क्योंकि दिन-झिड़े भी उड़ने हुए पक्षी चहचहा
रहे थे, खलाहें मिट गई थी और सूर्यके न रहनेपर भी
उजल-पल बना हुआ था ॥ १९ ॥ सन्ध्या होते देखकर

चकरीसे चकवा कहता है—‘हे चकरी ! मैं एलता हूँ कि
तू जो क्यों खोटा किए जा रही है । अभी सौंक होमवाली
है वतः आकर मेरे गले लग जा और किसी प्रकार
वह रात चकेली काट ले । (तुझी न होना क्योंकि) न तो
मैं किसी दूसरी चकरीसे प्यार करता हूँ, न तुझसे रुठ हूँ,
न तरे लिये मेरे मनमें प्रेम ही कम है, पर क्या करूँ,
मेरे हाथमें कुछ नहीं है । इसलिये न चाहते हुए भी तुझे
अकेला छोड़ रहा हूँ ॥ २० ॥ जाल-जाल सूर्य जिस समय-
अस्ताचलका चूर रहें उस समय यहबहातें हुए पक्षी बसेरके
लिये पेड़के घसलोंका प्यार उड़े चले जा रहे हैं, चकरीसे
अलग होनेके डरसे हुली हाकर चकवा ऊँचे स्वरसे चिल्ला
रहा है, भीरे कमलोंपर मैहरा रहे हैं और उल्लू मन ही मन
प्रसन्न हो रहा है ॥ २१ ॥ मुनियोंकी कुटियोंके आँगनमें
हरिक चले जा रहे हैं, सौंघे जानेके कारण पेड़ हरे-भरे दिखाई
पड़ रहे हैं, सुन्दर गौरों जङ्गलसे आश्रमकी ओर खीट रही हैं
और अग्निहात्रके लिये आग जगाई जा रही है । इस प्रकार
सन्ध्या समय आश्रम बड़ा ही मनोहर लग रहा है ॥ २२ ॥
सन्ध्याकी खलाहेंसे जब बादलोंकी रेखाएँ उड़ गईं उस
समय पश्चिम दिशाका आकाश उस समुद्रके समान सुन्दर
दिखाई देने लगा जिसकी पतली-पतली लहरोंपर मूँगेकी
जाल-जाल छाया पड़ रही हो ॥ २३ ॥ सौंफकी ललाहें ऐसी
जान पड़ रही है मानो आकाश-रूपी पर्वतकी ऊँची चोटीसे
नेरुकी चट्टानके समान जाल सूर्यके गिरकर चूर-चूर हो

सन्ध्यारजोराजिरिवोज्ज्वलीते ॥२४॥ उत्तरन्ति धिनि-
कीर्यं पल्लवं गाढपद्मनिवाहितातपाः । दंष्ट्रिणो वन-
वराहयूथपा वष्टभङ्गरविस्तारुण इव ॥ २५ ॥ उद्य-
गिरितटस्थः पद्मिनीयांध्रियिषा मृदुतरकिरणैस्ताः
स्वयं चोपभुज्य । मलिनमधुपसङ्गात्तासु सञ्ज्ञानकोपः
कृतकधिरविरोचिर्भानुरस्तं प्रयातः ॥ २६ ॥ उद्याङ्ग-
रुहीनो दिनं भ्रमिन्वा पतङ्गोऽयम् । अद्य प्रदोषसमये
वज्रवाज्यलने जुहोति देहं स्वम् ॥ २७ ॥ उद्गाढ-
प्रणये रुषां परिः द्वे विस्त्रंसमानेऽभ्यरश्रोक्ष्णामणि-
भूमिकामधिगते खलुःपथं मुञ्चति । मीलत्तामरस-
प्रविष्टमधुपव्याजेन हालाहलप्रन्धीनम्युजितो विधाय
कयलान्मृच्छामिषागच्छति ॥ २८ ॥ उपसन्ध्यमास्त
तनु सानुमतः शिखरेषु तन्मृणमर्शातरुचः । करज-
लमस्तसमयेऽपि सतामुचितं कलुषचतरमेव पदम्

जानेसे उसीकी उड़ी हुई पूलसे चारों ओर बसाई छा रही हो
॥ २४ ॥ धूपका समय बिताकर सन्ध्याको जहलती सुधर
कीचड़से भरे पोखरीमें लोट-लोटकर बाहर निकल रहे हैं और
उनके छोटे-छोटे दाँत ऐसे जान पड़ते हैं मानो कमलनालकी
तोड़-तोड़कर खानेसे उसके टुकड़े उनके मुँहमें खगे हुए हों
॥ २५ ॥ उद्गाढचलपर पहुँचकर सूर्यने अपने कोमल किरण-
रूपी हाथोंसे कमलनिधियोंको जगाकर उनके साथ विहार किया
पर जब उसने देखा कि इनका मधुपों (भँतों या मदिश पीने-
वालों) से संसर्ग हो गया है तो क्रोधसे लाल होकर वह उनसे
दूर होकर जा छिपा ॥ २६ ॥ यह पतङ्ग (सूर्य, फणिङ्गा)
उद्याचलसे उठकर दिनभर उड़ता रहा और अब सन्ध्या
समय (अतकी समाप्ति होनेपर सूर्य और अग्निकी ओर प्रेम
होनेके कारण फणिङ्गा) बदवाग्नमें अपनी देह हवन किए
दे रहा है ॥ २७ ॥ सन्ध्या समय कमलमें घुसते हुए भँरे
ऐसे जान पड़ते हैं मानो चाकाशके पूडामणि तथा अत्यधिक
प्रेम करनेवाले अति तेजस्वी प्रियतम सूर्यके आँखोंसे धोमल
होते देखकर कमलिनी, (उसका वियोग न सह सकनेके
कारण) मानो भँरोंके रूपमें बिपकी गोखियाँ बना-बनाकर
निगलती हुई मूर्च्छित होती चली जा रही हों ॥ २८ ॥
सूर्यकी किरणें प्रातःकाल भी पर्वतकी चोटियोंपर थीं और
सन्ध्याकाल भी अस्त होते समय अस्ताचलकी चोटियोंपर ही
जाकर उड़ीं । यह ठीक ही है क्योंकि वड़े लोगोंको तो सदा
उँचा स्थान मिला ही करता है ॥ २९ ॥ हे मोटी आँखवाली !

॥ २९ ॥ एष वृक्षशिवरे कृतान्पदो जातरूपसगौर-
मण्डलः । हीयमानमहन्त्ययानर्ष पीवराह पियनीच
वर्हिणः ॥ ३० ॥ करिष्यति कलानाथः कुतुको कर-
मन्वरे । इति निर्वापयामास रघुदीपं निशाङ्गना
॥ ३१ ॥ कान्तदृश्य इव कुङ्कुमनाम्नाः सायमगडन-
मभि न्यरयन्त्यः । सादरं दृष्टिशरे धनिनाभिः सांध-
जालपतिता रघिभासः ॥ ३२ ॥ कृतोपकारं प्रिय-
वन्धुमर्कं मा द्वाज्म हीनांशुमयः पनन्तम् । इतीव
मन्या नलिर्भीषधृभिर्निमीलनाम्यन्तु रुहेत्तणानि ॥ ३३ ॥
हन्वा प्रबुडकमलामखिलां धिलोकीमभ्भानिधेर्विशति
गर्भमसाविदानीम् । अन्तःप्रसुप्तहरिनाभिसराजयोध-
कांमहलीष भगवानरयिन्द्वन्धुः ॥ ३४ ॥ कोऽत्र भूमि-
चलयं जनान्मुधा तपयन्सुचिरमेति सम्पदम् । धृ-
यन्निति दिनेन भानुमानाससाह चरमाचलं ततः

यह पेड़की चोटीपर बैठा हुआ और सूर्यकी किरणोंकी
चमकसे सुन्दरता सा दिवाई पड़नेवाला मोर ऐसा जान
पड़ता है मानो धीरे-धीरे मुरझाती हुई सन्ध्याकां धूप दिए
हाल रहा हो ॥ ३० ॥ रात्रिरूपी नायिकाने जब देखा कि
कलानाथ (चन्द्रमा या कामकी कलार्थ जाननेवाला) अब
अन्तर (आकाश या वरश्च) में अपना घर (किरण या शोध)
लगाने ही वाला है तो उसने भट सूर्य-रूपी शीपक बुका
दिया ॥ ३१ ॥ सुन्दरी नवेलियोंने अपनी छटाखियोंके भरोखोंपर
पड़ी हुई सूर्यकी किरणोंको ऐसे आदरपूर्वक देखा मानां वे
सन्ध्या समयकी सजावटके लिये उतगवली करनेवाली उनके
पतिकी भेजी हुई दुनियाँ हों जिन्होंने शरीरमें केशरका शेष
पोत रखा हो ॥ ३२ ॥ सायंकाल कमलकी लतारूपी
नायिकाने अपने कमलरूपी नेत्र मानो इसलिये मूँद लिए
कि मैं अपनी भलाई करनेवाले अपने प्यारे वन्धु सूर्यको
किरणोंसे रहित होकर नीचे गिरते न देख पाऊँ ॥ ३३ ॥
सन्ध्या समय समुद्रमें पैरले हुए सूर्य ऐसे जान पड़ते हैं मानो
सारे जगत्के कमलोंको खिलाकर इस समय वे समुद्रके भीतर
सोप हुए विष्णुकी नाभिपर निकले हुए कमलको खिलानेके
लिये चले जा रहे हों ॥ ३४ ॥ अस्ताचलकी ओर जाता हुआ
सूर्य मानो यही उपदेश देता है कि संसारमें लोगोंको बिना
बानके तपानेवाला कोई व्यक्ति बहुत दिनोंतक सुखी नहीं रह
सकता ॥ ३५ ॥ अपने पतिते सम्मोग करनेकी उमड़ो हुई चाहसे
मरी हुई नायिका, सामने खिड़कीमेंसे अस्ताचल और सूर्यके

॥ ३५ ॥ गतया पुरः प्रतिगवाक्षमुखं दधनी रतेन
भृशमुत्सुकताम् । मुहुरन्तर्गलभुवमस्नगिरेः सवि
तुश्च योषिदभिमीत दशा ॥ ३६ ॥ गतवन्ति दिननाये
पश्चिमदमाधरान्तं शिशिरकरमयूखैर्निर्भरं दह्यमाना ।
परिहृतमिलितालिः पान्धकान्तेषु दीना सपदि कम-
लिनीयं हास्यहीना बभूव ॥ ३७ ॥ गतवन्त्यराजत
जपाकुसुमस्तवकचतौ दिनकरेऽघननिम् । वहला-
नुरागकुलविन्ददलप्रतिघडमध्यमिव दिग्बलयम् ॥ ३८ ॥
गाढं प्रांढाङ्गनाभिः सुगतरतमनःसम्मदोन्सारितालं
मुग्धाभिः सस्तनेषु रतिसमरभयं चिन्तयन्तोभिरे-
वम् । पान्थानामङ्गनाभिः ससलिलनयनं शम्यचित्ताभि-
रुच्चैः कष्टं हृष्टोऽस्तशैलं भृशमभजदयं मण्डलधर-
रश्मेः ॥ ३९ ॥ जगदयं बहुलातपाभितप्तं जनयितुमद्य
जलाभिषेकशीतम् । परिधुतराधशातकुम्भकुम्भा मव-
लति पश्चिमवारिधिं दिनभौः ॥ ४० ॥ जम्भारेः
प्रियया कयापि ककुभा पूर्वाचलप्राप्ततः धीमान्मोह-

पतकको वियति यः प्रातः समुद्वायितः । आः सौऽयं
च्युतरश्मिबन्धलुलितः पारेनभो न्यक्पतन् सम्प्रत्यु-
त्क्षिप्तोऽस्तपर्यन्तदरीदीर्घदृशास्त्रान्तरे ॥ ४१ ॥ तद्गो-
दोऽन्तरसन्ततान्धतमसं निर्भिद्य तिग्मांशुभि सञ्छेत्सुं
बलिसन्नगं कृतमतिर्भानुजगाहेऽभ्युधिम् । अन्यस्त-
म्प्रति सन्तिपत्य वृणुते लोके तमोमण्डलं किञ्चैतस्य
नयन्यहो परिभवं पाथोजिनीं वल्लभाम् ॥ ४२ ॥ ताप-
नैरिव तेजोभिर्दग्धनिर्वाणमेचकाः । दिशो जाताः
प्रसीची तु समुदाचरन्ति क्रमात् ॥ ४३ ॥ दिनभर्तुरस्त-
मयतः स्पन्दनतुरगेषु घनतमोमहिषः । घातावतर-
मिवेच्छस्पृष्टे निभृत् परिभ्रमति ॥ ४४ ॥ दिनावसाने
तरणेरकस्मात्प्रिमज्जनाद्विष्वविलोचनानि । अस्य
प्रसादादुड्गम्य नूनं तमोमयद्रोपवतां तरस्ति ॥ ४५ ॥
द्विस्तोऽनुमित्रमगमद्विलयं किमिहास्यते यत भयाव-
लया । कचिभर्तुरस्य विरहाधिगमादिति सन्ध्ययापि
सपदि व्यगामि ॥ ४६ ॥ दूरलग्नपरिमेपरश्मिना

बीचका अन्तर नाप रही है अर्थात् वह घाट जोह रही है कि
सूर्य वृक्षमेमें कितनी देर है ॥ ३५ ॥ सूर्यके अस्ताचलकी ओर
जाने जानेके पश्चात् चन्द्रमाकी किरणोंसे जगद् ई हुई और अपनी
सखी भारियांसे विछुड़ी हुई कमलकी लता, दुर्लभ विरागिनीके
समाप्त मुरझा गई और उसका हैसना बन्द हो गया ॥ ३६ ॥
जिस समय जाल-जाल सूर्य अस्ताचलपर जपाकुसुमके गुच्छके
समान लटक रहे थे उस समय वे ऐसे लम्बे माने दिशाओंकी
मालामें अत्यन्त चमकीला लाल मणिका सुमेरु लटक रहा हो
॥ ३७ ॥ आह ! सन्ध्या समय वे सूर्य अस्ताचलकी ओर जा
रहे हैं जिन्हें नवेलियाँ पतिके समागमकी आशासे प्रसन्न होकर
आँखें उठाकर देख रही थीं, नई टपार्ई बहूँ पहले-पहल पति-
समागमके भयसे चिन्तित होकर अबसुली आँखोंसे देख रही
थी और जिन्हें परदेस गए हुए जाँगीकी स्त्रियाँ जीसू भरकर
व्याकुल होकर देख रही थीं ॥ ३८ ॥ सन्ध्या समय अस्त होना
हुआ सूर्य ऐसा लगता है मानां दिनकी शांता-रूपी स्त्री
अत्यन्त गर्मीसे तपे हुए संसारको नहलाकर उँदा करनेके लिये
सूर्यरूपी सोनेका बड़ा हाथमें लेकर समुद्रकी ओर उसे
भरने चली जा रही हो ॥ ३९ ॥ २६ सुन्दर बलवान्
सूर्य जो पूर्वाचलके पास इन्द्रकी प्रियतमा पूर्वदिशासे प्रेम
करके आकाशमें उँदा था, हाय ! वही सन्ध्या समय अपने
किरणरूपी बन्धुओंसे विहीन होकर आकाशके उस पार

अस्ताचलकी गुफाओंके बड़े-बड़े वृक्षोंकी शाखाओंमें गिरा जा
रहा है ॥ ४० ॥ सन्ध्या समय सूर्यास्त देखकर ऐसा जान
पड़ता है मानो आकाशमें भरे हुए घने अंधकारको अपनी लीली
किरणोंसे काटकर अब पातालका अन्धकार भी भगानेके लिये
सूर्य लो समुद्रमें कूद रहा हो और उसके चले जानेसे संसारमें
एक दूसरा अन्धकार सूर्यकी आशा कमलिनीका जनादर
कर रहा हो ॥ ४१ ॥ सन्ध्या समय सारी दिशाएँ लो सूर्यके
तेजसे जलकर और बुझकर काली पड़ गईं पर पश्चिम दिशा
इस समय सूर्यका समागम पाकर ठीक व्यवहार कर रही है
अर्थात् लाल होकर प्रसन्नता दिला रही है ॥ ४२ ॥ सन्ध्या
समय बहना हुआ आँखें ऐसा जान पड़ता है मानो दिवके
स्वामी सूर्यके अस्त होनेपर घना अन्धकाररूपी भैंसा उनके
रथके पाँड़ोंपर बार करनेकी घात डूँदता हुआ पाँड़े-पीड़े
बुपचाप चला जा रहा हो ॥ ४३ ॥ सन्ध्या समय
अचानक तरहि (नाव या सूर्य) के दूब जानेसे
संसारभरके नेत्र अब इस उड्डप (चन्द्रमा या लकड़ियाँ
जोड़कर बनाई हुई दांगी) के सहारे ही अन्धकारकी गदी पार
कर रहे हैं ॥ ४४ ॥ सूर्यके बिरहमें सन्ध्या भी वही साँचकर
कट-पट चले दो कि जब मित्र (सूर्य) के पाँड़े-पीड़े दिन भी
बका गया तो मैं अबजा (रथी या पत्नी) होकर भला कैसे
उबर सकती हूँ ॥ ४५ ॥ सन्ध्या समय जाल बन्धका सूर्य और

वारुणी दिग्गणेन भानुना । भाति केसरवतेव मण्डिता
वन्धुजीवतिलकेन कन्यका ॥ ४७ ॥ दोषाकरं द्विजपति-
प्रतिमं सयत्नं निर्लेज्जवत्स्वपदमात्मवशं विधातुम् ।
आलोक्य धामनिधिरेव शुभेव हनो लोकान्तरे लप-
यितुं समर्थं प्रयाति ॥ ४८ ॥ द्रागैन्द्रीमनुचुम्ब्य
सस्मितमुखोमामोदिनीं पश्चिनां कृत्वासां परिरम्भस-
म्भ्रमपरिभ्रान्ताञ्च वारस्त्रियम् । संरक्तो हिमभानु-
रद्य चरमां श्लिष्यत्यहो रागिणीं काश्मीरोपलसत्पयो-
धरमरां कान्तां दिशं घातणीम् ॥ ४९ ॥ द्रुतशतकुम्भ-
निभमंशुमतौ घपुरधर्मश्रयपुयः पर्यासः । कुरुष्वे
विरञ्चिनस्त्रभिभ्रवृहज्जगद्वडकैकतरल्लहडमिव ॥ ५० ॥
ह्रायत्येतावभिनयजपापुष्पभासां निघासां तिष्ठत्यंत-
द्द्वयमपि धियन्मण्डलम्यापसन्ध्यम् । अस्तं को
वारयुदयति च कः कौ रविः कः शशाङ्कः का च

प्राची तदिह न वयं कः प्रतीचीनि विभ्रः ॥ ५१ ॥ नव-
कुमारगुणयोधरया स्वकगवसक्तकृत्रिगाम्बरया ।
अतिसक्तिमेत्य वरुणस्य दशा भृशमन्वरज्यदुपार-
करः ॥ ५२ ॥ निर्यद्वासरजीवपिण्डकरणि विभ्रन्क-
वोष्णैः करैर्माञ्जिष्ठं रविधिम्यमम्बरतलादस्ताचलं
चुम्बति । किञ्च स्तोकतमः कलापकलनाश्यामायमानं
मनाग्धूमश्यामपुराणविभ्ररचनारूपज्जगज्जायते ॥ ५३ ॥
निलयः श्रियः सततमेतर्दिति प्रथितं यदेव जलजन्म-
तया । दिवसान्ययात्तदप मुक्तमहो चपलाजनं प्रति
न चोद्यमदः ॥ ५४ ॥ निलायमानं विहर्गनिमीलञ्चि
पङ्कजैः । विकसन्त्या च मालिन्या गताऽस्मिं ह्रायते
रविः ॥ ५५ ॥ गो रविर्न च तमा न तमीशा न पुतिर्ग-
हगणा न च सन्ध्या । यादृशी प्रथमतः किल सृष्टंस्ता-
दमेव भुवनं श्रियमूह ॥ ५६ ॥ पञ्चलिमं दाडिममर्क-

उसकी पीली-पीली किरणें पश्चिम दिशामें ऐसी जान पड़ती
थीं मानो किसी कन्याने केसर लगे हुए हुएहरियाके फूलकी
चिन्दी लगा रखी हो ॥ ४७ ॥ सन्ध्या समय निकलते हुए
चन्द्रमा और उदते हुए सूर्यको देखकर ऐसा जान पड़ता है
मानो श्रेष्ठ द्विज (माण्डव, चन्द्रमा) का रूप धारण करने-
वाले इस दोषाकर (दाँपोंके भयङ्कार, रात्रि करनेवाले चन्द्रमा)
को अपने (सूर्यके) स्थान (आकाश) पर इस निर्दोषताके साथ
स्वामित्व करते देखकर ही तेजके भयङ्कार सूर्यको इतना दुःख
हुआ कि वे दूसरे लोकमें अपने दिन काटनेके लिये चले जा रहे
हों ॥ ४८ ॥ सूर्यने पहले तो कमकीली और हँसती हुई पूर्व
दिशारूपी नायिकाका मुँह चूमा, फिर सुगन्ध और हँसीसे
भरी हुई कमलिनीरूपी बेरवाकी कसकर छातीसे जगाकर
थका दिया और इस समय केसरके लेपले रँगें हुए स्तनोंवाली
(लाल बादलवाली या प्रेम-भरी) अपनी प्यारी पश्चिम
दिशाको बढ़े प्रेमसे छातीसे जगा रहा है ॥ ४९ ॥ समुद्रके जलमें
घाड़े दूढ़े हुए सूर्यका सोनेके समान दमकीला गोला ऐसा
जान पड़ता है मानो मछाने अपने नखसे सोनेके मछाचटका एक
पड़ा-सा टुकड़ा उखाड़कर जा चरा हो ॥ ५० ॥ सन्ध्या समय
अस्त होते हुए सूर्य और उदय होते हुए चन्द्रमा दोनों ही
जपाकुसुमके समान लाल-लाल दिखाई पड़ते हुए उदवाचल
और अस्ताचलपर एक रूपमें विराजमान हैं इसलिये न तो यही
जान पड़ता है कि कौन अस्त हो रहा है, कौन उदय हो रहा है
न यही पहचानमें आता है कि कौन सूर्य है, कौन चन्द्रमा है

और न यही समझमें आता है कि कौन-सी पूर्व दिशा है और
कौन-सी पश्चिम ॥ ५१ ॥ केसरके लेपले रँगें हुए स्तनोंवाली
(केसरके समान लाल-लाल बादलोंवाली) तथा अपने हाथोंसे
अपनी सुन्दर साड़ी सँभासे रखनेवाली (अपनी ओर सूर्यकी
किरणें फैलानेसे सुन्दर लगनेवाली) वरुणकी दिशा (पश्चिम)
से निकलकर सूर्य अथवा अनुरक्त (प्रेमपूर्ण, लाल) हो रहे हैं
॥ ५२ ॥ दिनकी समाप्तिपर अपनी कुछ-कुछ गरम किरणोंसे
उसके साथ समवेदना दिखलानेवाला सूर्य-मंडल अब
आकाशसे हटकर अस्ताचलकी ओर चला जा रहा है और
कुछ-कुछ चँबेरा सा जानेसे थुँधला दिखाई देनेवाला संसार
ऐसा जान पड़ता है मानो धुआँ लगनेसे काँड़े चिन्न काला
पड़ गया हो ॥ ५३ ॥ जो कमल सब ओर इसलिये
प्रसिद्ध था कि यह जपमीका निवासस्थान है वहाँसे भी
सन्ध्या समय श्री (जपमी, शोभा) उठकर चल दी, किन्तु
चञ्चल छिबोंका काम ही यही होता है अतः उनके विषयमें
कुछ कहना ही व्यर्थ है ॥ ५४ ॥ इस समय चिदिई
अपने-अपने घोंसलोंकी ओर जा रही हैं, कमल मुरका रहे
हैं और मालतीके फूल खिल रहे हैं । अतः जान पड़ता है कि
अब सूर्य अस्त हो गए हैं ॥ ५५ ॥ सन्ध्या समय संसारकी
बही दशा दिखाई पड़ने लगी जो धृतिसे पहले थी अर्थात् न
सूर्य था न अन्धेरा, न चन्द्रमा था न चाँदनी, न तारे
थे न सौंझ ॥ ५६ ॥ दिन छिपनेपर जान पड़ता है कि
अबने सूर्य-मण्डलरूपी पका हुआ जगार तोड़कर, उसका

विश्वमुत्तार्य सन्ध्या न्वगिवोज्ज्वलाऽस्य । तारावलि-
र्बोजभुजाऽदसीयं कालेन निष्ठयतमिषाम्नि यथम् ॥ ५७ ॥ पतति रविरपूर्वधारिराशी हवि पथिकस्य
यथान्मभूर्हुताशः । प्रसरति सरमां तमःप्ररोहः प्रति-
पद्मद्य यथा मनोविमोहः ॥ ५८ ॥ परां रागाकुले
प्राप्य जाते कमलिनीपता । शोकादिव तमोऽग्रस्ता
पूर्वेषा प्रतिभासते ॥ ५९ ॥ परिपतति पयोनिधौ पनक्तः
सरसिरुहामुदरेषु मत्तभृङ्गः । उपवनतरुकोटरे विहङ्ग-
स्तुरुणिजनेषु शनैः शनैरग्नक्तः ॥ ६० ॥ पश्य पश्चिम-
दिगस्तलभिन्ना निमिषं कथमिदं विषम्बना । दीर्घया
प्रतिमया सरोम्भसां नापनीयमिध सेतुयन्धनम् ॥ ६१ ॥
पादा यस्य सहस्रं सोऽपि न तिष्ठति समागते
यस्मिन् । हन्त प्रदोषसमयो दोगाकरसम्पदे मोऽज्ञा ॥ ६२ ॥
पाश्चात्याभ्युधिदृष्टपूर्वयद्व्यासन्दर्शनोन्करद्वया
धावद्ध्यतुरङ्गनिष्ठुरग्नुरजुणोऽस्नशैलस्थले । तस्मा-

दुच्छलितेन धातुरजसा लिसानुरकाङ्गको मम्यांशुः
प्रियदर्शनः खलु सहस्राङ्गुर्दरीदृश्यते ॥ ६३ ॥ पुराण-
रिमजालेषु स्रग्तेष्वस्ताचलम्बनम् । विम्बामध्वरुहां
नेतुरभ्यरादवलम्बते ॥ ६४ ॥ पूर्वभागतिमिरप्रवृत्तिभि-
र्यत्कपङ्कमिव जानमेकतः । खं हुतातपजलं विवस्वता
भाति किञ्चिदिव शेषवत्सरः ॥ ६५ ॥ पूर्वां क्षणकम-
निगन्तसमस्तरागां हित्वा निजान्तिकमुपेत्य रवी
सरामे । आलोकतः पुनरमुष्य धृतमसादा जाता
खिरेण सरमा परमानुरक्ता ॥ ६६ ॥ पूर्वाहं विहितो-
दयाऽहमसकृत्तस्मां विहायाधना यस्यामस्तमुपैति तां
कथमसां रागी जघन्यामगात् । इत्येवं श्लथितांशुके
दिनपतां याते दिशं पश्चिमामीर्षारोषविपादिनोव
तमसा प्राचो ककुत्सलप्यते ॥ ६७ ॥ पृथु गगनकयम्ब-
स्कन्धखक्रं किमेतन्किमु रुधिरकपालं कालाकापालि-
कस्य । कललभरितमन्तः किं नु तापवाण्डकाण्डं

सन्ध्याकृपां विलका फेंक दिया और दानोंका रस चूसकर
तारे-कपी बीज इधर-उधर धूँककर खिनरा दिए हैं ॥ ५७ ॥ जैसे
ही सूर्य पश्चिम समुद्रमें डूबा वैसे ही बिरहीके हृदयमें कामाग्नि
जाग उठी और पश्चिम दिशामें चँधेरा फैलनेके साथ-साथ
कामिणियोंके मनमें भी घबराहट वेगसे बढ़ गयी ॥ ५८ ॥ जब
पूर्व दिशामें देखा कि पश्चिम दिशाके पास पहुँचकर सूर्य अधिक
अनुरागयुक्त (प्रेमपूर्ण, लाल) हो गया है तब यह सोचके
जारे तमोगुण (शोक, चँधेरे) से भरकर उदास हो गई
है ॥ ५९ ॥ सन्ध्या समय सूर्य समुद्रमें डूब रहा है,
मतवाले भीरे कमलोंके भीतर घुसे जा रहे हैं, उपवनके
पेड़ोंके घोंसलोंमें चिड़ियाँ पसेरा ले रही हैं और नरेशियोंके
हृदयमें कामदेव धीरे-धीरे अपने पैर बढ़ा रहा है ॥ ६० ॥
देखो, पश्चिमकी ओर लटकते हुए सूर्यकी लम्बी परछाईं
सरोवरके जलपर पड़ी हुई ऐसी जान पड़ रही है मानो
सोनेका पुल बना दिया गया हो ॥ ६१ ॥ एक सहस्र
पैरोंवाला सार्मध्यवान् (सूर्य) भी जिसके आनेपर उठर
नहीं पाता वह प्रदोष-समय (अर्धकर दोपोंका समय,
सन्ध्याकाल) निश्चय ही दोषाकर (पापोंके डेर, चन्द्रमा)
की श्रद्धा करना चाहता है ॥ ६२ ॥ सन्ध्या समय
सूर्यके लाल-लाल होकर सुन्दर दिखाई पड़नेका कारण
यह है कि सूर्यके रथके घोड़ोंमें अब पहले-पहल समुद्रमें
बहवानलकी लपटें (घोड़ी) देखीं तो उन्हें देखनेकी उमंगमें वे

ऐसे सरपर होते कि उनकी करारी टापोंसे चलाचल बिल गया
और उनसे जो गेरू पादि धातुओंकी धूल उड़ी उससे सूर्यका
शरीर रँग उठा और किरणें पुंथकी पड़ गई ॥ ६३ ॥ अपनी
सब किरणें ऋक्ष मानेके कारण सूर्य निराधार हो गया है
हूसीलिये सन्ध्या समय उसका मरदल आकाशले लीचेकी
ओर लटका जा रहा है ॥ ६४ ॥ सन्ध्या समय जब पूर्व दिशामें
कुस-कुस चँधेरा खाने लगा और धूप मन्दी पड़ने लगी उस
समय आकाश उस सूखे तालाबके समान दिखाई देने लगा
जिसमें कोचड़-भर कपी रह गई हो ॥ ६५ ॥ समयके फेरसे
जिस पूर्व दिशाकपी नायिकाका सारा राग (प्रेम, ललाई)
बुर हो गया है उसे छोड़कर जब सूर्य अनुराग-सहित
(लाल होकर) पश्चिम दिशाके पास पहुँचे तो पश्चिम
दिशा भी प्रसन्न होकर उनपर अत्यन्त अनुरक्त (लाल)
हो उठी ॥ ६६ ॥ सन्ध्या समय बिना किरणोंवाले सूर्यको
पश्चिम दिशामें चस्त होते देखकर मानो हूसी चिन्तामें
घुलकर पूर्व दिशा उदास (चँधेरेसे भरी) दिखाई पड़
रही है कि—मैं ही पूर्व दिशा (प्रथम पत्नी) हूँ, मैंने
ही सूर्यका उदय (उन्नति) किया है फिर भी यह सूर्य
कैसा कामान्ध (लाल) है कि बार-बार मुझे छोड़कर
उसी नीच पश्चिम (दूसरी) दिशा (नायिका) के पास
जाता रहता है जहाँ उसे चस्त हो जाना पड़ता है !'
॥ ६७ ॥ सन्ध्या समय सूर्य-मंडलको देखकर यह विचारा

प्रजनयति वितर्कं सान्ध्यमर्कस्य विम्वम् ॥ ६८ ॥ प्रदो-
पसमयो कस्य कृते न स्याद्गुणवहः । यस्मिन्प्राप्ते
व्रजत्यस्तं तेजसां निधिरप्यहो ॥ ६९ ॥ प्राचीमालम्ब-
माने घनतिमिरचयं बान्धव बन्धकीनां सम्प्राप्ते च
प्रतीचीं शशिकरनिकरे वैरिणि स्वैरिणीनाम् । अर्ध-
श्यामोपलार्धस्फटिकमिव दिशामन्तरालं विधत्ते कालि-
न्धीजङ्घकन्यामिलदमलजलस्यन्दसन्दोहमैत्रोम् ॥ ७० ॥
प्राञ्जलावपि जने मतमूर्ध्नि प्रम तत्प्रवणचेतसि हिन्या ।
सन्ध्ययानुविदधे घिरमन्त्या चापलेन सुजनैतरमैत्री
॥ ७१ ॥ बद्धकाशमपि तिष्ठति क्षणं सावशेषविचरं
कुशेशयम् । पट्पट्वाय वसति प्रहीप्यते प्रीतिपूर्वमिव
वानुमन्तरम् ॥ ७२ ॥ भानुघिर्यामिदमस्तगामि च
प्रोद्यतं कुमुदवन्धुमण्डलम् । दृश्यते रतिपतेः प्रभा-
सिमां कोधरकमिव लोचनद्वयम् ॥ ७३ ॥ मध्यमोपल-

होता है कि यह आकाशकृपा धड़का सिर है या काक-
रूपों जघोड़के हाथका रत्नभरी सांपर्वा है या भीतर मोंसले
भरा हुआ वह बंधा है जिसमेंसे गरुड़ उत्पन्न हुए थे ॥ ६८ ॥
वह प्रदोप (सन्ध्या, अस्तम्य होना) का समय किसके
लिये भयानक नहीं होता जिसके आ पड़नेपर बड़े-बड़े
तेजस्वी (सूर्य, तेजस्वियोंका निधि) भी अस्त (समाप्त)
हो जाते हैं ॥ ६९ ॥ जिस समय स्वभिचारियों स्त्रियोंकी
पीठ ठोकनेवाला धंधेरा पूर्ण दिशामें फैल रहा था और उनको
बल पहनकर अपने प्रेमियोंसे मिलने जानेवालों नवेलियों
(शुक्लाभिसारिकाओं) के शत्रु (चन्द्रमा) की किरणें
परिधम दिशामें फैल रही थीं उस समय आकाश ऐसा जान
पड़ता था मानो वह आधा नीलमसे और आधा संगमर्मरसे
जड़ा हुआ हो अथवा गंगा और यमुनाका संगम बन रहा
हो ॥ ७० ॥ अपने सामने हाथ जोड़कर खड़े हुए और ध्यान
लगाए हुए (सन्ध्या करते हुए) लोगोंका निरादर करती हुई
चञ्चल सन्ध्या चल दी और उस समय उसने दुर्जनोंसे अपनी
मिश्रता जोड़ ली ॥ ७१ ॥ सायंकाल सुंदे हुए कमलका
धोड़ा-सा सुला हुआ सुँह ऐसा जान पड़ता है मानो वह बसेरा
बाइनेवाले भौंरोंको अत्यन्त प्रसन्नताके साथ स्थान देनेके
लिये प्रस्तुत हो ॥ ७२ ॥ सायंकाल अस्त होते हुए सूर्य
और उदय होते हुए चन्द्रमा दोनों लाल-लाल ऐसे जान पड़ते
हैं मानो कामदेवपर कांध किए हुए वियोगियोंके दो लाल-लाल
नेत्र हों ॥ ७३ ॥ लासमणिके सुमेरुके दानेके समान एक और

निभे लसदंशावकनश्रुत्युतिमुपयुगि भानो । द्यौरुवाह
परिवृत्तिविलोलां दारयष्टिमिव वासरलक्ष्मीम् ॥ ७४ ॥
मन्त्रसंस्कारसम्पन्नास्तन्वद्वादन्वरीरपः । एतत्रयीमयं
ज्योतिरादिव्याप्यं निमज्जति ॥ ७५ ॥ महद्भिरोद्यंस्त-
मसामभिद्रुतो भयेऽप्यसम्पृद्धमतिभ्रमन्तिना । प्रदीप-
घेयेण गृहे गृहे स्थितो घिसगृह्य देहं बहुधेव भास्करः
॥ ७६ ॥ मुक्तमूललघुकुञ्जितपूर्वः पश्चिमे नभसि
सम्भृतसान्द्रः । सामि मज्जति रवौ ॥ पिरंजे खल्ल-
जिह्व इव रश्मिसमूहः ॥ ७७ ॥ सुग्धस्य कालाव्रजित-
स्मरचापयष्टरातन्वती हाचमनाव सुधाकरस्य ।
रागाद्धुरा स्फुटमुर्दाञ्जिततारकधीः सन्ध्याविरास्ति
ननु कापि पतिवरेव ॥ ७८ ॥ यातोऽस्मि पद्यनयने
समया मर्मप सुसा मयैव भवतो प्रतिबोधनोया ।
प्रन्यायनामयमितीय सरोरुहहिताः स्याऽस्तमस्तक-

लटके हुए लाल सूर्यका किरणें सायंकाल जब ऊपर उठ रहा था
उस समय आकाश ऐसा जान पड़ता था मानो उसमें हारकी
लरियों उलटकर हिल रही हों ॥ ७४ ॥ सायंकाल अरवेद,
शुक्लेंद तथा सामवेदका साकार रूप जो सूर्य नामका
प्रकाश है वह समुद्रके जलका मन्त्रासे पवित्र करता हुआ
समुद्रमें डूब रहा है ॥ ७५ ॥ सायंकाल जब धंधेरेका
बड़ा भरा आक्रमण हुआ तब सूर्य उस आपत्तिके समयमें
भी बिना धारज खाए अपने शरीरके घनेट टुकड़े करके
बर-बरमें दीपकका बेश धारण करके भूमण्डलपर हो चक्कर
लगाने लगे ॥ ७६ ॥ जब सायंकाल सूर्य आधे डूब गए
उस समय सूर्यका जो किरणें जड़ कट जानेसे छूटकर
आकाशमें लट गई थीं वे इतनी दुखी और उदास जान
पड़ता था कि उनमें पहलेकी-सी चमक नहीं रह गई थी
॥ ७७ ॥ कामदेवके खिंचे हुए धनुषसे भा अधिक सुन्दर और
मनाहर चन्द्रमाकृपा नायकसे हथि (प्रेम, शोभा) रखने-
वाला सन्ध्या उस स्वयम्बर-भूमिमें आई हुई नायिकाके समान
जान पड़ता है जिसमें राग (प्रेम, ललाई) भरा है और
जिसके तारे (पुतलियों) टिमटिमा रहे हैं (चञ्चल हैं)
॥ ७८ ॥ सायंकाल अस्ताचलपर जाते हुए सूर्य ऐसे जान
पड़ते हैं माना वे अपनी लाल किरणें फैला-फैलाकर कमलकी
लताको यह कहकर वादस दे रहे हैं कि 'हे कमलके नेत्रवाली !
अब मैं चल रहा हूँ क्योंकि मेरे जानेका समय था गया है,
प्रातःकाल मैं ही नुम्हें सोतेसे जगाऊँगा (चिन्ता न करना)'

निविष्टकरः करोति ॥ ७६ ॥ रवेरस्तं तेजः प्रमुदयति
 खद्योतपटली मंगलाली मूका कलकलपरोलूक-
 पटली । इदं कष्टं दृष्ट्वा चिरमसहमाना कमलिनी
 भ्रमद्भृङ्गव्याजाः कवलयति हालाहलमिव ॥ ८० ॥
 लोभपरयेव परया पतङ्गमुल्लुखितं विलोक्य सखे ।
 खम्भमिषान्पुनरन्यं पूर्वा प्रोद्गायत्येषा ॥ ८१ ॥
 रुचिर्धास्य भर्तारं शृशं विमलाः परलोकमभ्युपगते
 विविशुः । उवलनं विषः कथमिवेतरथा सुलभोऽन्यज-
 न्मनि स एव पतिः ॥ ८२ ॥ घिरलातपच्छाघिरनुष्णवपुः
 परितो विपाण्डु दधन्भ्रशिरः । अभवद्गतः परिणतिं
 शिथिलः परिमन्दस्पर्दनयनो दिवसः ॥ ८३ ॥ विलोक्य
 सङ्गमे रागं पश्चिमाया विवस्वतः । कृतं कृष्णं मुक्तं
 प्राच्या नहि नायं विनेष्यया ॥ ८४ ॥ विश्लेषाकुलवक्र-
 घाकमिधुनैरुपलमाक्रन्दितं कारुण्यादिव भीलितासु
 नलिनीप्यस्तश्च मित्रं गते । शोकेनेव दिगङ्गनाभिर-

॥ ७१ ॥ कमलिनीमें घुसते हुए और ऐसे जाने पड़ते हैं मानो
 सन्ध्या समय जय सूर्यका प्रकाश जाता रहा, उगुन् चमकने
 लगें, इसका कुछ कुछ हा गया और उल्लू पू-पू करने लगे
 तब यह सब उलटकर देखकर कमलिनीसे न रहा गया और
 वह अपने ऊपर बैठे हुए औरोंके रूपमें अपनी गोखिर्षी घूटने
 लग रही हो ॥ ८० ॥ हे मित्र ! ज्यों ही पूर्व (पूर्व दिशा,
 पहली) ने देखा कि लांभके कारण सूर्य किसी दूसरी नाविकाके
 साथ करघट बदल रहा है त्यों ही वह भी चन्द्रमाकृपी दूसरे
 नाविकके साथ भाग निकली ॥ ८१ ॥ सूर्यको निश्चय प्रातः
 जो उनकी ज्योति मिल जाती है इसपर कवि कहता है कि जब
 सूर्यकृपी पति दूसरे लांभमें चला जाता है तब उनकी अत्यन्त
 पश्चिन्न ज्योतिरूपी स्त्री आगमें (सन्ध्याकी ललाईमें) प्रवेश
 कर जाती है, नहीं तो दूसरे जन्ममें (प्रातःकाल) उसे वही
 पति वैसे मिल पाता ॥ ८२ ॥ सन्ध्या समय दिन बूझ-सा
 दिखाई देने लगा, दिनकी धूप कम हो गई (बूढ़के शरीरपर
 झुर्रियाँ पड़ गई), गर्मी शान्त हो गई, शरीर ठण्डा पड़
 गया, चारों ओर आकाश उजला हो गया (सिरके बाल पक
 गए), अन्तिम दशामें पहुँचकर दिन मन्दा पड़ गया (बुढ़ापेमें
 शरीर ढीला पड़ गया) और सूर्य अस्त होने लगा (बालोंकी
 ज्योति जाती रही) ॥ ८३ ॥ स्त्रियोंके मनसे कभी डाह नहीं
 दूर हो सकता क्योंकि देखो ! साथकाल ज्यों ही पूर्व दिशाने देखा
 कि सूर्यके साथ पश्चिम दिशाका राग (ललाई, ग्रेम) हो गया
 त्यों ही उसका मुँह काला पड़ गया ॥ ८४ ॥ सन्ध्या समय

भितः श्यामायमानैर्मुखैर्निःश्वासानिलधूमवर्षस्य इषो-
 झोर्णास्तमोराजयः ॥ ८५ ॥ विहिताञ्जलिर्जनतया
 दधती विकसत्कुसुम्भकुसुमारुणताम् । चिरमुज्झि-
 तापि तजुराङ्गदसां न पितृप्रभुः प्रकृतिमात्मभुवः
 ॥ ८६ ॥ व्योमस्तापिच्छगुच्छावलिभिरिव तमोवल्ल-
 रीभिर्व्यस्ते पर्यन्ताः प्रान्तवृत्त्या पयसि घसुमती नूतने
 मज्जतीव । वाक्यासंवेगविध्वग्धिततवलपितस्फीतधू-
 म्यामकाशं प्रारम्भेऽपि श्रियामा तरुणयति निजं
 नीलिमानं वनेषु ॥ ८७ ॥ शुचिरिति परितः प्रसिद्धि-
 भाजि प्रकटिततेजसि दुर्जये कृशानौ । मिजवसुमिक्कु-
 रम्बमस्तवेलाव्यतिकरवान्निधे सरोजयम्भुः ॥ ८८ ॥
 सम्प्रयातादवचराडवराडपरशुमारम्भभीमभ्रमीवेगा-
 स्तकपर्वासुकिफलामाणिक्यशङ्कावहम् । मग्नं पाथसि
 पश्चिमस्य जलधेर्मातृशङ्खिभ्यं ततो ज्वास्मैर्भूतगणैर-

विज्ञाहके डरसे घबराए हुए चकमा-चकवी अपने पक्ष पद-
 फटकर चिन्ता रहे हैं, मानो उनकी वह विपत्ति न देख
 सकनेके कारण ही कमलिनीने कहासासे अपनी कमलकृपी
 झोलें घूट ली हैं और जब सूर्य अस्त हो गए तब दिशाकृपी
 नाविकाओंका मुख सानो शोकसे काला पड़ गया और उन्होंने
 अपनी झोलों-द्वारा धुआँ उगल-उगलकर चारों ओर फैला
 फैला दिया ॥ ८५ ॥ लिये हुए केसरके फूलके समान लाल
 बर्णकी उस मङ्गाके अंशकृपी सन्ध्याकी सभी लोग प्रणाम कर
 रहे हैं जिसने बहुत पहले मङ्गासे छोड़े जानेपर भी अपना
 स्वभाव नहीं बदला है क्योंकि अभीतक इसमें अचपलकी ललाई
 है अतः यह मङ्गाके समान ही पूज्य है ॥ ८६ ॥ सारा आकाश
 तमालके गुच्छोंके समान काले रौंधेरेसे ऐसा भर गया मानो
 वृद्धा गँदले पानीमें डूब गई हो और सन्ध्यासे ही रात्रि अपने
 उस रौंधेरेको जललोंमें बड़े वेगसे फैला रही है जो ऐसा जान
 पड़ता है मानो वायुके वेगसे चारों ओर फैल रहा हो और
 चिर-चिरकर उड़ रहा हो ॥ ८७ ॥ जैसे अन्तिम समय कोई
 अपनी सम्पत्ति किसी सज्जनको दे डालता है उसी प्रकार जब
 अस्त होनेका अवसर आया तब सूर्यने भी पवित्रतामें यश पाए
 हुए, चारों ओर प्रभावशाली तथा किसीसे भी न डर
 सकनेवाले अशिको अपनी किरणकृपी धन-सम्पत्ति सौंप दी
 ॥ ८८ ॥ सन्ध्या समय हुबते हुए सूर्य और बढ़ते हुए
 रौंधेरेको देखकर ऐसा लगता है मानो जब शङ्करजीने सन्ध्या
 समय सायध्व शृम्भ करते हुए अपने विशाल बड़ेबाजे

गाहि भुवनं मध्ये तदन्वेयिभिः ॥ ८६ ॥ सन्ध्यावध्यक्ष-
शोणं तनुदहनचिताङ्गारमन्दार्कविभ्यं तारानारास्थि-
कीर्णं विशदनरकरङ्गायमाणोज्ज्वलेन्दु । हृष्यन्नक्तञ्च-
रौघं घनतिमिरमहाधूमधून्नानुकारं जातं लीलाश्म-
शानं जगदखिलमहो कालकापालिकस्य ॥ ८७ ॥
सान्ध्यमस्तमितशेषमातपं रक्तलेखमपरा विभसि
दिक् । सम्पराययसुधा सशोणितं मण्डलाग्रमिव तिर्य-
गुत्थितम् ॥ ८८ ॥ सान्ध्यरागकधिराहणमारान्निःपपात
रश्मिमण्डलमधो । क्रूरकालकरवालविलूनं वासरस्य
सहसैव शिरो नु ॥ ८९ ॥ सैरन्धीकरकृष्टकङ्कणसरद्धी-
रध्वनिः सञ्जयदूतीसूत्रितसन्धिविप्रहृष्टधिधिः सोल्ला-
सलीलाधरः । घोरलीजनसज्जमानशयनः सन्नद्धपुष्पा-
युधः श्रीखण्डप्रयधातसंधिशिखरो रम्यः क्षणो घर्तते
॥ ९० ॥ स्थानमाह्निकमपास्य दन्तिनः सल्लकीर्षटप-

भङ्गवासितम् । आचिभातचरणाय गृह्णते वारि वारि-
कहवद्धपदपदम् ॥ ९१ ॥ स्पृष्टोल्लसन्किरणैः सरसूर्य-
विम्वविस्तीर्णैर्कणिकमधो दिवसाराधनम् । शिलष्टाष्ट-
दिन्दलकलापमुपावतारवह्नान्धकारमधुपावलि सञ्च-
कोच ॥ ९२ ॥

रजानर्शनम्—उन्मुक्ताभिर्दिवसमधुना सर्वतस्त-
भिरेव स्वच्छायाभिर्निचुलितमिष प्रेक्ष्यते विध्यमेनम् ।
पर्यन्तेषु ज्वलति जलधो रत्नसार्ना च मध्ये चित्रा-
क्षीयं रमयति तमःस्तोमनीला धरित्री ॥ १ ॥ जगत्ता-
पकरे लीने शयानास्वधिजनीषु च । निशा कथलयामोदं
विधातुमियमुद्यता ॥ २ ॥ ज्योत्स्ना भस्मच्छुरणध्वला
विभ्रती तारकास्थीम्यन्तर्धान्यसनरसिका रात्रिका-
पालिकीयम् । द्वोपाद्वीपं भ्रमति दधनी चन्द्रमुद्रा-
कपाले न्यस्तं सिद्धाञ्जनपरिमलं सांध्यनक्षत्रच्छलेन

करलेकी बेगसे घुमाया तब उसके बेगसे बायुकि नागके फक्का
ओ मणि गिरकर पश्चिम समुद्रके जलमें डूब गया उसी सूर्य-
रूपी मणिको अन्धकार-रूपी भूतगण संसार-भरमें घूम-
घूमकर डूँद रहे हों ॥ ८६ ॥ सृष्टास्तके समय सारा संसार
काशरूपी अंधाईकी साधनाका वह रमयान बन गया जहाँ
सौंफकी खलाई ही रुधिर थी, सूर्य ही चिन्ताके अहारे थे, तारे
ही हड्डियोंके टुकड़े थे, चन्द्रमा ही मनुष्यकी उजली खोपड़ी था,
प्रसन्न होकर रातमें कलनेवाले (राक्षस, खोर आदि) ही
भूत-पिशाच थे और घना अँधेरा ही पुर्ण था ॥ ८७ ॥ पश्चिम
दिशामें कुछ-कुछ बची हुई और तिरछी होकर उठी हुई लाल-
लाल धूप ऐसी दिखाई पड़ रही है मानो युद्ध-भूमिमें रुधिरसे
तर कोई तलवार तिरछी पड़ी हो ॥ ८८ ॥ सन्ध्याकी ललाई-
रूपी रुधिरसे रँगा हुआ और समुद्रमें डूबता हुआ सूर्यमण्डल
ऐसा जान पड़ता है मानो निपटुर यमराजकी तलवारने दिनका
तिर काट गिराया हो ॥ ८९ ॥ क्या ही सुन्दर समय है
एक ओर नायिकाको सजामेवाली रंगीली छियाले जा नायिकाके
हाथसे कड़े साचकर निकाले हैं उनका मधुर कन-कन सुनाई
पड़ रही है, उधर दूतियों पठि-पठ्ठोमें मेज मिठाप और लड़ाई-
भगाईका खौल खड़ा रहा है, कहीं अनेक नर-नारों प्रसन्नतासे
आनन्द-काड़ा कर रहे हैं, वेरयापै अपने मित्रोंसे सजा रहा हैं,
कामदेव अपनी कमर कस रहा है और कहीं चन्द्रके पानीसे
अदारियोंकी खेतें बोई जा रही हैं ॥ ९० ॥ वह ठीक ही है
कि हाथी अपना दिनभरका खेज-कूद करके सबईकी टूटी हुई

हाथियोंसे मड़कते हुए स्थान छोड़कर प्रातःकालतकके लिये वह
जल पी रहे हैं जिसके कमलापर और गैर रहे हैं ॥ ९१ ॥ सन्ध्या
समय वह दिनरूपी कमल मुँदने लगा जिसमें सूर्यमण्डल ही
उसका गट्टा (बीजकोष) है सूर्यकी किरणें ही जिसमें पराग
(केसर) हैं, प्रकाश न रहनेसे परस्पर मिली हुई आठों दिशाएँ
ही जिसकी पंखड़ियाँ हैं और घिरा हुआ अन्धकार ही जिसमें
भीतोंका समूह है ॥ ९२ ॥

रातका वर्णन : संसारने दिनभर जो अपनी परछाईं
छोड़ी थी, उसी परछाईंसे रातकी वह चारों ओर घिरा हुआ
ऐसा दिखाई पड़ रहा है मानो पृथ्वीके आस-पास समुद्रमें
बढ़वानलकी लपटें चमक रही हों, और बीचमें पहलुओंपर
रत्नोंका चोटियाँ जगमगा रही हों किन्तु पृथ्वी स्वयं अन्धकारसे
ढककर काली हो गई हो । इस प्रकार यह विचित्र प्रकारके
रहस्यवाली रात बड़ा मुहावनी लग रही है ॥ १ ॥ सूर्यके क्षिप
जानेपर (संसारको ताप देनेवालोंके समाप्त हो जानेपर) और
कमलिनियोंके सो जानेपर यह रात्रि धारे कुमुदके साथ आनन्द
करनेकी तैयारी कर रहा है (कुमुदमें गन्ध भरनेकी तैयारी
कर रही है) ॥ २ ॥ यह रात्रिरूपा अवधारण्यो खो चौंदनीरूपी
भस्म पातकर उजली बनी हुई है, तारेरूपी हड्डोके टुकड़ोंकी
माला पहने हुई है, सभी वस्तुओंको अँधेरेमें छिपाए हुए है
(अन्तर्धान हो जाती है), कलङ्करूपी सिद्ध काजलवाली चन्द्रमा-
रूपी खोपड़ी छिपे हुए है और इसी रूपमें एक द्वीपसे दूसरे द्वीप
(एक स्थानसे दूसरे स्थान) पर चक्कर लगा रही है ॥ ३ ॥ अत्यन्त

॥ ३ ॥ निविडतमनमस्तोमस्तिमिततमिच्छाविमिश्र-
श्वेलायाम् । अम्यरवादीकुसुमाकारास्तारास्तारा
विभास्ति सस्फाराः ॥ ४ ॥ नृपतिपुरुषशङ्कितप्रचारं
परशुतदृषणमिश्रितैकवीरम् । घनतिमिरनिरुद्धसर्व-
भाया रजनिरियं जननीव संवृणोति ॥ ५ ॥ रात्रिर्भ-
वित्री बहुदुःखदात्री दीर्घा ननु प्रापितभर्तृकाणाम् ।
हताव निश्चित्य मनस्यशेषाऽप्येषा त्रियामा विहिता
विधाया ॥ ६ ॥ व्योमपात्रमपि चैकपाणिना विस्फुटो-
डुकुसुमानि विभ्रता । अन्यपाणिकलितेन्दुवर्षणा
कामिनीय रजनीयमागता ॥ ७ ॥ शशाङ्के सप्तजं भरत
इव सन्ध्यायघनिका तिरोभूत्वा पुष्पाञ्जलिमिव विकी-
र्णाङ्गनिकरम् । कलं गायन्तीभिः कुमुदचनभृङ्गोभिरधुना
नभो रङ्गं प्राप्ता विहरति निशालासिकवधूः ॥ ८ ॥

मध्यरात्रकावर्णनम्—रातकृति गते मायानिद्रां

घने अन्धकारके समूहसे भरी हुई चौंधेरी रातमें आकाशकी
कुलशरांके फूलके समान दिग्दिग्माने हुए तारे ऐसे जान पड़ते
हैं मानों चौंधेरी फाड़-फाड़कर चौंधेरीमें देख रहे हों ॥ ४ ॥ रातके
जिम घने अन्धकारके कारण कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा है,
उस समय रात्रि ऐसे व्यक्तियोंकी माता बनकर उनकी रक्षा कर
रही है जिनके बाहर निकलनेपर राजाके पहरेदार उनपर सन्देह
करते हैं और जो अपने दुरागारोंसे दूसरोंका घर बिगाड़नेमें
प्रसिद्ध हैं ॥ ५ ॥ यज्ञाने यही सोचकर यह रात त्रियामा
(नीन ही पहरेकी) बनाई है कि यदि कहीं और वही कर ली
गई तो परदेशमें गए हुए लोगोंकी पत्नियोंकी बहुत कष्ट देने
लगेगी ॥ ६ ॥ चौंधेरी रात ऐसी कामिनी मायिकाले समान
प्रतीत हो रही है जो एक हाथमें उगे हुए तारेरूपी खिले हुए
फूलोंमें भरी आकाशरूपी पिटाती लिप्ट हुए हैं और दूसरे हाथमें
चन्द्रमारूपी शीशा लिए हुए हैं ॥ ७ ॥ जब रातके समय
चन्द्रमा नाट्याचार्यके समान अपनी कला दिखानेके लिये
उपस्थित हुआ उस समय सन्ध्यारूपी परदेके पीछेसे रात्रि
रूपी नटीने फूलके समान तारे अञ्जलिमें भरकर बिखेर दिए
और फिर कुमुदके वनमें गुमगुनाती हुई भीरीरूपी सखियोंके
साथ आकाशरूपी रङ्गमञ्चपर नाट्य करने लगी ॥ ८ ॥

आधी रातकी क्रीड़ाश्रीका वर्णन : आधी रातके
समय जब अत्यधिक चाहनेवाले प्रियतम बनावटी माँद करके
सो गए, तब उसकी प्रियतमा बार-बार उनका मुँह चूमने लगी
जिससे उसके शरीरमें रोमाञ्च और पसीना हो आया और वह

प्रवर्तितचुम्बना पुलकपयसा तत्त्वं मत्वा मुखाव-
हृतानना । कृतकशयना निशालोऽसोत्पुशार्थं कलं
वधूर्वणितमधरं कृत्वा दन्तैरपूरयत स्पृष्टाम् ॥ १ ॥
वदनशशिनः स्पर्शं शीतादिवागतवेपथुस्तनयुगलके
आनन्धा तुल्ले निविष्ट इव भवान् । उवलितप्रदनाङ्गारे
तन्व्यास्तनो जयनस्थले सलुलकजलः पत्न्युः पाणि-
र्विलोचन इवाभवन् ॥ २ ॥ शमितनिखिलदापे सुतनिद्रा-
लुलोके रतपरवशविस्ता मध्वरात्रे विबुद्धाः । प्रथम-
सुरतस्त्रिणां मुग्धिकां बोधयन्ता बहुदृढपरिरम्भैः
कामुकाः खेदयन्ति ॥ ३ ॥

तमोर्णनम्—अमुष्मिन्नुद्यानद्रुमकुहरनोरम्भमरिते
तम काण्डे पिएझाकृतयहलकाहायसवने । यतामया-
स्माकं कथमपि पुराण्यस्तखरणं निमेषेऽप्युष्मेये नहि
नहि विशेषो नयनयोः ॥ १ ॥ अम्यरविपिनमिश्रानीं

नवेजी समझ गई कि ये निश्चय ही बहुत-बूढ़ बीढ़का बहाना कर
रहे हैं; इसलिये उसने प्रियतमके मुँहसे सदा हुआ अपना मुँह
अलग न करके यह कहते हुए 'कि आप बनावटी माँदमें सोए
हुए हैं । आपका तो पास भी नहीं जाने देना चाहिए !'
अपने दाँतोंसे प्रियतमके आँठ काटकर ही अपनी इच्छा
पूरी कर ली ॥ १ ॥ किसी नवेजीके पतिने जब अपनी
प्रियतमके मुँहपर हाथ फेरा तो उसकी ठंडकसे कन्प हो आया
और हाथ पसीज उठा । उस समय ऐसा जान पड़ा मानों
मुलचन्द्रकी ठण्डकके कारण ही वह हाथ काँपने लगा हो, फिर
वहाँसे हाथ हटाकर स्तनोंपर हाथ फेरते हुए जो उसने स्तनोंके
अग्र भागपर हरथ रोक लिए तो ऐसा जान पड़ा मानों उसका
हाथ ऊँचा-सा स्थान देखकर विश्राम कर रहा हो, तथा फिर
वहाँसे हटाकर कामाग्निसे दहकते हुए अङ्गारके समान जलन-
स्थलपर आकर जो उसका हाथ रुक गया तो ऐसा जान पड़ा
मानों उसका जलमय हाथ उस कामाग्निके अङ्गारकां छूकर वहीं
झनझनाकर सूख गया हो ॥ २ ॥ आधी रातको जब दीपक
बढ़ गए और सब लोग गहरी नींदमें सो गए उस समय रतिके
केरमें जागते हुए कामी पुरुष पहले एकबार रति कानेसे थककर
सोई हुई अपनी नवेजी प्रियाओंकी जगा-जगाकर, कस-कसकर
छातीसे लगा-लगाकर उन्हें तड़क रहे हैं ॥ ३ ॥

अन्धकारका वर्णन : अमराहियोंके पैरोंके बीचके
स्थानमें ठसाठस भरे हुए और गझाकर ठोस बनाए हुए इस
काळे-काळे जोड़ेके समान घने चौंधेरीमें हम सँभलकर पैर

तिमिरघरादौऽवगाहते जलधेः । गेमस्तु यदस्य
लगास्तारकजलधिन्द्यो भान्ति ॥ २ ॥ अवधार्य
कार्यगुह्यतामभयन्न भयाय सान्द्रतमसन्तमसम् ।
सुतनोः स्तनौ च दयितापगमे तनुरोमराजिपथे-
पथधे ॥ ३ ॥ अधिज्ञातविशेषस्य सर्वतेजोपहारणः ।
स्थापिनो निर्विवेकस्य तमसश्च किमन्तरम् ॥ ४ ॥
आपूरितमिदं श्यामतमसन्तमसैरलम् । ग्रहाण्डम-
ण्डलं भाति सकज्जलकरण्डघत् ॥ ५ ॥ आभाति धूस-
रतरं तिमिरं पुस्तादन्त-स्फुरद्विरलतारकभारमेतत् ।
दग्धं विद्योगिविपिनं सितरश्मिवक्त्रं धूमो ज्वलित्यग-
श्वानुगतस्फुल्लिङ्गः ॥ ६ ॥ आह्निकात्तापदग्धानां
अयाणां अगतां यत । तपनाद्विधि शान्ते तद्गस्मेर्दं
तिमिरं तु न ॥ ७ ॥ इदं मभासि भोधणभ्रमदुल्लङ्घको-
लाहलैर्निशाधरविलासिनीनिवहदत्तेनोत्सवम् । परि-
स्फुरति निर्भरप्रचुरपङ्कमश्लोकसद्वराहपुलमांसलप्रय-
त्यन्धमन्धं तमः ॥ ८ ॥ उन्मात्तकिञ्चनसन्ध्याकल-

कमलवनो ज्योमकासाग्मध्यं मन्ये मत्तो निशीधादय-
वनमहिपो मङ्गल्यविचन्मिमजुः । तन्कालोद्भयमानः
सह तनुपुधुभिन्नाग्कावुद्दंष्ट्रैस्तन्मादेवाजिहीते
कलुषितभुवनं भीषणो ध्वान्तपङ्कः ॥ ९ ॥ उद्दाम-
दिग्दिग्दक्षश्रलकर्णपूरगण्डस्थलोच्चलदतिस्तयकाकु-
लीनि । मीलप्रभांसि मृगनाभिसमानभांसि दिक्कन्द-
रेषु विलसन्निनमां तमांसि ॥ १० ॥ एकतामिव
गतस्य विवेकः कस्यचिन्न महतांऽप्युपलेभे । भास्यना
मिदधिरे भुवनानामान्मनीच पतितेन विज्ञेयाः ॥ ११ ॥
एतन्नामधनीवराहयलयं विध्वेकवाग्मग्स्कन्धाधारम-
दान्ध्यान्धुरकुलं श्यामायधुर्गैश्चकम् । चतुष्याञ्जन-
वस्तु धूकसदसां विधिलघ्वक्रादगम्नामान्तर्गतधूम-
केतनमहाधूम्या तमस्मार्यते ॥ १२ ॥ आघसानपभया-
दपलीनं वासरच्छविविगमपटोयः । सन्निपत्य शन-
कैरिव निज्जादन्धकारमुदवाप समानि ॥ १३ ॥
काकोलं कलकण्ठका कुयलयं कादम्बिनी कर्दम-

तो अँ-लँ-रल लेते हैं किन्तु अँल लोकेने और लँ-लेमें कोई
अन्तर नहीं दिखाई पड़ रहा है ॥ १ ॥ अन्धकाररूपी यह सूअर
अब समुद्रसे निकलकर आकाशरूपी अज्ञको दिखो दे रहा है
जिसके सारे ही मानो वालोंमें उसकी हुई उसकी धूँ-धूँ हों
॥ २ ॥ उस नवेलीने अपने पतिके साथ समागम करनेको
इतना बड़ा काम समझा कि अत्यन्त घने अन्धकारसे भी उसे
हर न लगा और वह ऐसी हृदयधूममें चली कि उसके विशाल
स्थन भी उसकी पतली कमरको चलनेमें बाधा नहीं दे सके
॥ ३ ॥ जैसे विवेकहीन स्वामी धधधे-धुरेकी परल न करके
सभीको अपनी धँसमें दबाए रखता है वैसे ही अँधेरेमें
भी किसी वस्तुका भेद नहीं दिखाई देता और प्रकार नष्ट
हो जाता है ॥ ४ ॥ अत्यन्त घने काले अँधेरेसे भरा हुआ
यह ब्रह्माण्ड ऐसा जान पड़ता है मानो काजलसे भरा हुआ
बड़ा-सा कण्डाक हो ॥ ५ ॥ छिटफुट तारोंके साथ यह सामने
बढ़ता हुआ घना अँधेरा ऐसा जान पड़ता है मानो वियोगी-
रूपी वनको जलानेके लिये अन्धमारूपी अग्निकी चिनगारियोंके
सहित धुआँ उठ रहा हो ॥ ६ ॥ यह अँधेरा ऐसा जान पड़ता
है मानो दिनके तापसे जलाए हुए तीनों लोकोंके आगकी
लपटों (सूर्य) के दुभ्र जानेपर उनकी भस्म बच रही हो
॥ ७ ॥ इस समय आकाशमें उड़ते हुए भयावने उल्लू घू-
म रहे हैं, राक्षसियोंकी आँखें उबड़ी हो रही हैं और माने

कीचड़में लोटकर निकले हुए मोटे-से सूअरके समान काका
घना अँधेरा चारों ओर फैल रहा है ॥ ८ ॥ ऐसा जान पड़ता
है मानो यह अर्धरात्रिरूपी मतवाला जङ्गली भँसा सन्धारूपी
जाल कमलके वनको उगाड़-पगाड़कर उसका पानी चँपोलनेके
लिये आकाशरूपी तालाबमें घुस गया हो जिसके पानी
दिखो देनेसे उठे हुए पुलबुले ही तारे हों और संसारको
काका कर देनेवाला भयानक अँधेरा ही उससे उठा हुआ
कीचड़ हो ॥ ९ ॥ रातका अँधेरा उन कस्तूरीके रत्नके भीतोंके
समान हो गया है जो मतवाले दिग्गजोंके माथोंपर घेठकर उनके
घटफटाते हुए कानोंसे उड़कर सारे आकाशमें भरकर फैल गए
हैं ॥ १० ॥ अँधेरेमें छोटी-बड़ी सब वस्तुएँ जो एक-सी हो
गई हैं (सब धान बाहुस पसेरी हो गए हैं) इससे जान
पड़ता है कि यहाँसे जाते समय संसारका सारा विवेक
सूर्य अपने साथ लिए चला गया हो ॥ ११ ॥ चारों ओर
झाया हुआ घना अँधेरा ऐसा जान पड़ता है मानो आकाश-
रूपी जङ्गलके सूअर आ लुटे हों, संसारके अद्वितीय वीर
आमदेवकी सेनाके मतवाले हाथी लड़े हों, युवती स्त्रियोंके
केरा बिसरे हुए हों, उल्लूओंकी आँखें खोलनेवाला अँजिन रक्सा
हो या एक दूसरेसे जलजग हुए चकवी-चकवेके हृदयकी आगका
धुआँ हो ॥ १२ ॥ जो अन्धकार पहले प्रातःकालकी धूपके
करसे भाग गया था वही इस समय दिनके प्रकाशको निर्मूल

वंसारिः कवरी कृपाणलतिका कस्तूरिका कज्जलम् ।
कालिन्दी कपपट्टिका करिघटा कामाग्निकण्डस्थली
यस्यैते करदा भवन्ति सखि तद्वन्दे विनिद्रं तमः ॥ १४ ॥
काश्मोरगौरवपुष्यामभिसारिकाणामावद्धे-
स्त्रमभितो मणिमञ्जरीभिः । एतत्तमालदलनोलतमं
तमिस्त्रं तत्प्रेमहेमनिकपोपलतां तनोति ॥ १५ ॥ किं
भूमौ परितः स्फुरन्ति करिणः कस्तूरिकाया रसैः
सिक्ताः किं निखिला दिशः किमास्त्रजं व्याप्तं मयी-
भिर्नभः । किं व्याप्तं भुवनं समस्तमपि च धीकण्ड-
कण्ठाधिया कालिन्दीजलकाम्तिभाजि निविडे जातेऽ-
न्धकारेऽधुना ॥ १६ ॥ किमलम्ब्यताम्बरविलग्नमधः
किमवधेनोर्ध्वमवनीनलनः । घिससार निर्यगध दिग्द्वय
इति प्रचुरोभवन्न निरधारि तमः ॥ १७ ॥ घटितमिघा-
जनपुञ्जं पूरितामय मृगमदलादैः । ततमिघ तमालतक-
भिर्धृतमिघ भोलांशुकैर्भुवनम् ॥ १८ ॥ चरमगिरिर्नकुञ्ज-

मुष्णभानो भगवति गच्छति विप्रयोगसिन्ना । मुकुलि-
तनयनाम्बुजा धरिणी वपुषि वभार तमांसि शेषलानि
॥ १९ ॥ चिन्त्यञ्चोरचिकोर्षितानि घट्टयद्वेतालगोष्ठीसुखं
तन्वानं शयसाधनोद्धतरसं निर्व्याजवीरात्मताम् । कुर्व-
न्कामकृशानुतप्तमनसां गुमाङ्गनासङ्गमं दृष्यन्कोकिल-
कालकण्ठमलिनं ध्वान्तं समुज्जृम्भते ॥ २० ॥ चूडारसैः
स्फुरद्भिर्विषधरविचराण्युज्ज्वलान्युज्ज्वलानि मेदयस्ते
चकवाकीमनसि निविशते सूर्यकान्ताकृशानुः । किं
वामी शल्ययन्तस्तिमिरमुभयतो निर्भगाहस्तमिघा-
सङ्घट्टोन्पिष्टसम्प्राकणनिकटपरिस्पृधिनो भान्ति दीपाः
॥ २१ ॥ तनुलम्बा इव ककुभः वमाप्रलयं चरणचारपा-
त्रमिव । विपद्पि चालिकदग्धं मुष्टिप्राप्तं तमः कुरुते
॥ २२ ॥ दृश्येऽपि भास्करदृक्वाकिं न यः स तमी
तमोभिरभिगम्य तताम् । द्युतिमग्रहीद्महगणौ लघवः
प्रकटीभवन्ति मलिनाभयतः ॥ २३ ॥ नाकाशं न विशो

करनेका सीढ़ी उठाकर धीरे-धीरे नीचेसे ऊपरको उठ रहा है ।
॥ ११ ॥ हे सखी ! जिस प्रवाल अन्धकारको काकोश (विष),
कोपल, नीलकमल, जलभरे मेघ, कीचड़, कृष्ण भगवान्,
काले केश, सलवार, कस्तूरी, काजल, यमुना, कसौटीका पत्थर,
हाथियोंका भुजङ्ग और शङ्खरजाका गला आदि कर (लगान) दे
रहे हैं (घटका हैं) उस घने धँधरेको प्रक्षाम है ॥ १२ ॥ जब घने
धँधरेमें सिन्धियाँ अपने शरीरपर केशरका लेप लगाकर अपने
पतियोंके पास जा रही थीं उस समय धँधरेमें उनके गहनोंके
चमकते हुए मणिये ऐसे जान पड़ते थे मानो तमालके पत्तोंके
समान काले अन्धकारको कसौटीपर सोनेकी लोक बनी हो
॥ १३ ॥ यमुनाके जलके समान काले धँधरेके बह जानेसे यह
संदेह हो रहा है कि ये पृथ्वीपर चारों ओर हाथी दइख रहे हैं
या सारी दिशाएँ कस्तूरीके पानीसे रंग दी गई हैं, या
आकाशमें कालिख ही कालिख भरी हुई है या सारा संसार
ही शंकरजीके गलेकी काली चमकसे भर गया है ॥ १४ ॥
चारों ओर फैलते हुए घने धँधरेके सम्बन्धमें कोई भी यह
निश्चित रूपसे नहीं कह पाया कि यह आकाशसे उतरकर नीचे
लटका है या धरतीसे उठकर ऊपर छाया हुआ है या चारों
दिशाओंसे निकलकर आया होकर फैला है ॥ १५ ॥ चारों
ओर अन्धकारसे भरा हुआ संसार इस समय काजलसे सजा
हुआ-सा ऐसा जान पड़ता है मानो चारों ओर कस्तूरीका
जुरादा फैला दिया गया हो या चारों ओर तमालके पेटोंसे

धिरा हुआ हो या नीचे रंगकी चारसे ढक दिया गया हो
॥ १६ ॥ जब सूर्य भगवान् अस्ताचलकी आदिपोंमें जा लिये
तब उनके बिरहमें दुखी होकर धरतीने अपनी छाँसें खूँट लीं
और अपने ऊपर धँधरेके रूपमें साइराती हुई लेवार फैला
ली ॥ १७ ॥ चारोंको चोरीके लिये उकसानेवाला, भूल-
येनोंकी सभा जुटानेवाला, साहसी साधकोंको प्रेत-सिद्धिके
झिये उसाहिन करनेवाला, कामाग्निसे व्याकुल पुरुषोंकी
व्यभिचारिणी स्त्रियोंसे मिलानेवाला और मत्त कोयलके गलेके
समान काला-काला धँधेरा चारों ओर फैलता जा रहा है
॥ १८ ॥ सूर्योंकी चमकती हुई मणियोंके कारण सूर्यके
विल कहीं उजले और कहीं काले दिखाई दे रहे हैं, आलाएँ
सूर्यकान्त मणिको छाँड़कर चकतीके मनमें घुस रही हैं और
धँधरेको फाड़कर चमकनेवाले दीपक ऐसे जान पड़ते हैं मानो
शत्रिकी चपेटसे घिसी हुई सम्प्राके नन्हें-नन्हें टुकड़े चमक
रहे हों ॥ १९ ॥ इस समय धँधेरा इतना गाढ़ा हो गया है
कि वह मुट्ठीसे पकड़ा जा सकता है, सारी दिशाएँ मानो
शरीरसे लिपटी हुई हों, मृगयडल पैतोंके नीचे आ गया हो
(पैर छाने बढ़ता ही नहीं), सिर मानो आकाश छू रहा हो
(सिरके ऊपर कुछ दिखाई ही नहीं देता) ॥ २० ॥ जो तारे
सूर्यके प्रकाशसे ढबकर दिनमें दिशाई नहीं पड़ रहे थे वे
धँधरेसे भरी हुई रात पाकर चमक उठे, क्योंकि जोसे
खोम तो नीचाँक सहारा पाकर ही प्रसन्न होते हैं ॥ २१ ॥

न भूधरकुलं नाम्भोधयो न सितिर्न चोर्नाम्बुधरा न
मीप्रकिरणो नेन्दुर्न तारागणः । एनैः पटपदकायका-
न्तिपटलीपाशिशृङ्खलैश्चैतद्विदुः कल्लोलैस्तममामसाग्रत-
मयं विश्वव्ययः कल्प्यते ॥ २५ ॥ नीताः काव्यभिसारिका
इव दिशोऽप्युद्गाढरागोदया येनोप्लावितमन्मयेन
तदिदं निःशङ्कमुज्जृम्भते । सम्भोगान्तशयालुशैलतनया-
क्षो गाशनिर्भस्मितोन्मीलनीलिमनीलकन्धरगलस्पर्धा-
वलितं तमः ॥ २६ ॥ तोष्वमीक्षणगतिर्न चाप्यधो
नाभिर्नो न पुरतो न पृष्ठतः । लोक एव तिमिरांघवे-
ष्टितो गर्भवास इव वर्तते निशि ॥ २७ ॥ पतिते पत-
ङ्गमृगरात्रि निजप्रतिविम्बरेणित इवाप्युनिर्धा । अथ
नागयूथमलिनानि जगत्परितस्तर्मांसि परितस्तारिरे
॥ २८ ॥ पिदधति तिमिरं समस्तलोकं प्रलयमहाधि-
मिधे भूतोद्धनाचे । व्यसक्तदुःखगणो बलक्षराचयंदुःख-
धकेनसमृत्ततुल्यरूपः ॥ २९ ॥ पुरः पूर्यमिष स्थगयति
ततोऽप्यामपि दिशं कमात्कामाद्रिद्रुमपुरविभागस्ति-

रयति । उपेतः पीनन्यं नवनु भुवनस्येक्षणपर्यं तमः स-
ङ्घातोऽयं हरति हृत्कण्ठघातिहरः ॥ २६ ॥ भयानि हरि-
रगूढः कौस्तुभीयैर्मयूखैः पनिमपि न पशूनां शेखरे-
न्दुर्यनक्ति । इति मनसि न कश्चिन्निश्चयो यत्तदन्य-
ज्जगदिह तमसैव प्रस्तमयत्तमाम्ने ॥ २७ ॥ यच्चैव-
म्युधिमामनन्ति कवयस्तद्विन्दुतां विश्रुते वैकुण्ठान्तक-
कालकायजलदधोकण्ठकण्ठादयः । लुप्तलोकमुलूकद-
ष्टितमिरप्रध्वंससिद्धाञ्जनं तद्गणदूषितभूदिमन्तरिमिवं
नैशं तमो जृम्भते ॥ २८ ॥ योगिनामपि कृता यत योगः
कल्मषेण हृततेजसि येन । कापि भाव्यति गते प्रपयेव
सर्वतो जयति तस्य विलासः ॥ २९ ॥ रजिता नु
विविधास्तकशैला नामितं नु गगनं स्थगितं नु ।
परिता नु विषमेषु धरित्री मंहता नु ककुभन्तिमि-
रेण ॥ ३० ॥ रात्रिरागमलिनानि विकासं पङ्कजानि
रहयन्ति विहाय । स्पष्टतारकमियाय नभःश्रीयन्तुमि-
च्छति निरापदि सर्वः ॥ ३१ ॥ लिम्पतीव तमोऽङ्गानि

वह ठीक नहीं हो रहा है कि अंतर्लोक का भी नीचा
दिखानेवाली ये चँधेरेकी लहरें संसारको मिटा डाल रही हैं
क्योंकि इस समय न तो आकाश ही दिखाई पड़ रहा है, न
दिशाएँ समझमें आ रही हैं, न पहाड़ सुन्नाई पड़ रहा है न
समुद्र पहचानमें आ रहे हैं और न पृथ्वी, स्वर्ग, बादल, सूर्य
और चन्द्रमाका ही कोई ठीक-ठिकाना मिला रहा है ॥ २५ ॥
कामदेवके बेगमें भरकर आपस्त प्रेमभरी (कास कास)
दिशाओंकी अभिसारिकाओंको न जाने कहाँ ले जाने-
बाका तथा सम्भोग करके सोना चाहती हुई पार्वतीकी
भुजाओंके बन्धनसे छूटकर करबट बदलते हुए मीलकपट
(शिवजी) के गलेसे होड़ करनेके मदमें चूर यह चँधेरा
मिहर होकर चारों ओर जा रहा है ॥ २६ ॥ घने
चँधेरेसे घिरा हुआ संसार ऐसा जान पड़ता है मानो वह
ऐसे गर्भमें लिपटा हो जिसमें ऊपर-नीचे, दाएँ-बाएँ, आगे, पीछे,
कहाँ भी कुछ न दिखाई पड़ता हो ॥ २७ ॥ चँधेरा ऐसा जगता
है मानो सूर्यरूपी सिंह जब समुद्रमें पड़ी हुई अपनी परछाईको
दूसरा सिंह समझकर उसपर कपटनेके लिये क्रोधमें भरकर
समुद्रमें कूद पड़ा तब हाथियोंके झुपड़ेके समान काला चँधेरा
निश्चित होकर चारों ओर फैल गया ॥ २८ ॥ ऊँचे-नीचे सभी
स्थानोंमें भरा हुआ जो प्रलयके समुद्रके समान चँधेरा सारे
संसारपर छाया हुआ है उसमें चमकते हुए सारे केनके समान
उबले दिखाई पड़ रहे हैं ॥ २९ ॥ शङ्करजीके गलेकी काली
चमकती खजानेवाली इस चँधेरेने पहले तो पूर्व दिशाको ढक,

फिर चारी-चारीसे शेष दिशाओंमें फैला और फिर पहाड़, वृक्ष
और नगरीपर छाया मारकर अन्तमें घना होकर लोगोंकी
आँखोंके आगे मार्ग रोककर खड़ा हो गया ॥ ३० ॥ चँधेरेमें
हूये हुए संसारको देखकर यही नहीं निश्चय हो रहा है कि
यह विष्णुमय है या शिवमय है क्योंकि यदि विष्णुकुक्ष होता
तब तो कौस्तुभ मणिकी चमकते स्पष्ट हो जाता और यदि
शिवरूप होता तो मस्तकपर धरे चन्द्रमाकी चाँदनीसे स्पष्ट हो
जाता किन्तु यह तो चँधेरेसे भरा काँई निराला ही अस्पष्ट
संसार है ॥ ३१ ॥ उलूके नेत्रोंका चँधेरा दूर करने के लिये
सिद्ध अञ्जन बने हुए, आकाशसे पृथ्वीतकको अपने मुँहमें
कुत्तेके समान भर छेनेवाले तथा प्रकाशका मिठा डालनेवाले
चँधेरेकी यदि कवि जोग सागरके समान मानते हैं तो सँवले
शरीरवाले विष्णु, यमराज, बादल और शिवजीका माला ये
सब बूँदोंके समान जान पड़ते हैं ॥ ३२ ॥ कल्मष (पाप,
अन्धकार) तो योगियोंका योग भी छुड़ा देता है इसीलिये
उस कल्मषसे हारकर और तेजहीन होकर जब सूर्य आजके मारे
कहीं चला गया तब चँधेरा खुलकर चारों ओर फैल रहा
है ॥ ३३ ॥ चँधेरेमें सभी वृक्ष और पहाड़ ऐसे जान पड़ते हैं
मानो चँधेरेने उन्हें स्याहीसे रँग दिया हो, आकाशको झुका
दिया हो, भरतीका ऊँचा-नीचा स्थान पाटकर बराबर कर
दिया हो और सब दिशाओंको समेटकर हकड़ा कर दिया हो
॥ ३४ ॥ जो शोभा रातके चँधेरेसे उँधली पड़ गई थी वह
जुँदे हुए कमलोंकी जोड़कर चमकते हुए तारोंसे भरे आकाशमें

वर्षतीवाञ्जनं नभः । असन्पुरुषसेवेव दृष्टिर्निष्फलतां
गता ॥ ३५ ॥ दिवस्वतानाविपतेष मिथः स्वगोसह-
स्रेण समं जनानाम् । गायोऽपि नेत्रापग्ननामधेयास्तेने-
दमान्भ्यं खलु नामधकारैः ॥ ३६ ॥ दिश्यं चाक्षुषमस्त-
मस्ति हि तमः कैवल्यमौपाधिकप्रान्यादृश्यवहारवीज-
विरहाद्दिङ्मात्रमेव स्थितम् । गृह्यन्ते भयहेतवः पटु-
भिरप्यक्षान्तरैर्भाति च ध्वान्तेनानिघनेन वस्तुवचसा
हातः स्वरेणामुकः ॥ ३७ ॥ व्यसनिन इव विद्या क्षीयते
पङ्कजश्रीर्गुणिन इव विदेशे दैम्यमाशान्ति भृङ्गाः ।
कुन्तपतिरिव लोकं पीडयत्यन्धकारो धनमिव रूपणस्य
व्यर्थतामेति खलुः ॥ ३८ ॥ व्यसरन्तु भूधरगुहान्तरतः
पटलं यद्विह्वलपङ्कुरुचि । दिवसावसानपटुनस्तमसो
पहिरेत्य आधिकमभक्त गुहाः ॥ ३९ ॥ व्योम्नि प्राङ्मुख-
सीञ्चि सांध्यकिरणं घिस्तार्यं घेलाञ्जलं ध्यान्तैः
कामर्णपांसुभिश्च जगतां द्राक्काद्वयित्वा दृशां । तारा-

जा पहुँची क्योंकि सभी लोग बाधा-रहित स्थानमें ही निवास
करना चाहते हैं ॥ ३५ ॥ इस समय जँधेरा आँखोंमें लिपटा जा
रहा है, आकाशसे मानों आँजन बरस रहा है और जैसे दुःखी
सेवा निरर्थक होती है वैसे ही दृष्टि भी निरर्थक होती जा रही
है ॥ ३६ ॥ जँधेरेको देखकर कवि कहता है कि 'जँधेरा-जँधेरा
कहीं कुछ नहीं है वरन् सूर्यने जब जाले समय अपनी सङ्खों
किरणरूपी गीर्द साध ले जानेके लिये हाँकी तब उन्हींके साथ-
साथ वे संसारकी आँखरूपी गीर्द भी हाँक ले गए जिससे
संसार घन्घा हो गया और उसे कुछ भी नहीं दिखाई देता'
॥ ३७ ॥ जालों और जँधेरेका साम्राज्य फैल जानेसे आँखोंकी
शक्ति जाती रही, पूर्व-परिचयकी पहचान मिट जानेसे दिशाएँ
केवल नामकी दिशाएँ रह गई हैं, भयानक वस्तुओंका ज्ञान भी
आँखसे न होकर दूसरी इन्द्रियोंसे हो रहा है, यहाँतक कि
वस्तुओंका ज्ञान बतलानेसे होता है और व्यक्तियोंकी पहचान
उनका स्वर सुनकर होता है ॥ ३८ ॥ इस समय कमलोंकी शोभा
असावधान व्यक्तिकी विद्याके समान खोज रहा है, विदेशमें
गए हुए गुणियोंके समान भाँरोंका कहीं आदर नहीं हो रहा
है, दुष्ट राजाके समान यह जँधेरा सभीको कष्ट दे रहा है और
कन्युसके धनके समान आँखें व्यर्थ हो रही हैं ॥ ३९ ॥ गहरे
कीचड़के समान काले और दिनको समाप्त करनेवाले जँधेरेको
देखकर यही नहीं समझमें आता कि यह पहाड़की गुफाओंसे
निकलकर बाहर फैल रहा है या बाहरसे आकर गुफाओंमें भर
रहा है ॥ ४० ॥ यह जँधेरा ऐसा ज्ञान पड़ता है मानों इन्द्रजाल

शौक्तिकमौक्तिकानि विहगश्रेणीरवच्छन्ना मिश्रि-
कृत्य च मायिकः स्मरनटो वक्ताद्विचर्येति ॥ ४० ॥
शुद्धमाविर्भावस्थितं चलं वक्ताज्वगुणान्वितं च
यत् । सर्वमेव तमसा समीकृतं धिक्प्रहृत्यमसतां हता-
न्तरम् ॥ ४१ ॥ सद्यः सान्द्रमपीविलुप्तकुम्भः स्थि-
न्दनीलद्रवव्यामौलप्रभसो निरन्तरमिलन्नीलीरस-
श्च्योतिनः । एते कोकिलकायकालिभहतो लुम्पन्ति
वृत्तिं दशोरुशिद्राञ्जनपुञ्जमेवकरुचो भीमास्तमःप्र-
क्रमाः ॥ ४२ ॥ सर्वे कुवलयं सूर्यो दग्धवान् स्वकरेण
यत् । तेनेदं सर्वतःक्षुब्धं तिमिरं नान्यदीक्ष्यते ॥ ४३ ॥
सर्वे ध्वान्तमिदं यदन्तु बहुधा सिद्धान्त एव तु नः
स्वाधारेषु करेषु पुष्करमणैः कश्तेषु नृजं शनैः ।
अस्तालम्यतयाम्यरेण पतता प्रस्ते समस्ते जगत्पुन्मी-
लन्करकन्दलैरपि धिधोस्तत्तावदुत्तार्यते ॥ ४४ ॥
स्थगिताम्बरक्षितितले परितस्तिमिरे जनस्य दशम-

करनेवाले कामदेवरूपी आजीगरने आकाशरूपी चाँगममें
सम्पत्ती कीरियोंका वक्ता फैलाकर उसपर जँधेरेका बरीकरण
पूर्ण विदूषकर लोगोंको आँखोंपर जादू कर दिया और फिर
चिदियोंकी जड़बहादुरके स्वरोंमें कनकनाकर तारेरूपी मोती
मुँहसे निकाल रहा हो ॥ ४० ॥ इस जँधेरेने उठले और मैले,
चर और अचर, टेढ़े और सीधे सब पदार्थोंको एक-सा कर
दिया है । इस प्रकार बिबेक नष्ट करनेवाले नीचोंके
प्रभावको धिक्कार है ॥ ४१ ॥ काजलके समान चमकते हुए
भयानक काले आन्धकारकी बाढ़से आँखोंकी ज्योति नष्ट हो
गई है, दिशाओंमें स्वाही-सी पुल गई है और आकाशमें जो
मीलमका चिकना रस-सा पुल गया है, उसमेंसे जो निरन्तर
मीला रस चू रहा है वही मानो यह जँधेरा है जिससे
कीयलका कालापन भी हार खा गया है ॥ ४२ ॥ यह और कुछ
नहीं है, वरन् सूर्यने अपनी किरणोंसे जो कुमुदोंको जला दिया
था उसीकी कालिख जालों और काला-काला जँधेरा बनकर
फैली हुई है ॥ ४३ ॥ लोग यदि इसे आन्धकार कहते हों तो
भले ही कहें पर हम तो समझते हैं कि आकाशको धामे
रखनेवाले सूर्यके कर (हाथ, किरणें) जब एक-एक करके
उड़ पड़े तो टेक न रहनेसे अम्बर (वक्ता, आकाश) भी
गिर गया और उससे सारा संसार ढक गया, उसी वकें हुए
संसारको मानो चन्द्रमाके उठते हुए कर (हाथ, किरणें)
उछाड़ रहे हैं ॥ ४४ ॥ आकाश तथा पृथ्वीको जालों और तले
ढकनेवाले जँधेरेने जब लोगोंकी आँखें जन्धी कर दीं उस

मध्यति । दधिरे रसाञ्जनमपूर्वमतः प्रियवेशमचर्म
सुदृशो ददृशुः ॥ ४५ ॥

नक्षत्रोदयवर्णनम् — आकाशभ्रमस्त्रिभुजास्करहयप्रो-
द्धान्तफेनच्छटाविच्छिन्नस्तयका इवाम्बरतलश्रीद्वार-
मुक्ता इव । सन्ध्यामृत्यनटोन्नतोऽज्ज्वलजटाजूटज्वल-
ज्वाह्वीधाराघोच्छलदच्छयिन्द्रव इव स्फूर्जन्ति तारा
ग्रामी ॥ १ ॥ उद्भूता मधनक्षोभान्केनराजिः पयोदधेः ।
तारकावलिस्त्रिभुजैरियं सखि निवेद्यते ॥ २ ॥ उद्भूतं
किल शैलकेलिरभसस्त्रस्तानि पाथोनिधेरन्तर्भूयणमौ-
लिकानि द्विजल्लोभिः समुत्कण्ठया । गाढं तत्र निम-
ज्जितेन रविणा वद्धा दृढं रश्मिभिः प्रोत्क्षिप्तानि निपत्य
तामि गगने तारापदेशं दधुः ॥ ३ ॥ घनतरतिमिरघु-
णोत्करजम्भानामिव पतन्ति काष्ठानाम् । क्षिप्रैरर्माभि-
रङ्गुभिः किरणप्याजेन चूर्णानि ॥ ४ ॥ सिन्धोः सुधां-
शुशकलं परिगृह्य सन्ध्याक्षेमहुरी निपतिताम्बरभूय-

हाग्रे । चञ्चुपुटेन चपलेन तया विकीर्णस्तारामिवेण
पतिता इव पक्ष्मण्डाः ॥ ५ ॥

चन्द्रोदयवर्णनम् — अङ्गुलीभिरिव केशसञ्चयं सखि-
यम्य तिमिरं मरीचिभिः । कुड्मलीकृतसराजलोचन-
ञ्जुम्यनीय रजनीमुखं शशी ॥ १ ॥ अथ पथिकवधूदहनः
शनकैरुदभृन्निशाकरालोकः । कुमुदप्रवाधदूता व्यसन-
गुरुश्चक्रवाकीणाम् ॥ २ ॥ अथ मन्मथवाहिनीपरामः
किमपि ज्योतिरुदस्फुरन्पुरस्तात् । तिमिरस्य जरा
चकोरकुरं कुलटाकेलियनीदयानलाखिः ॥ ३ ॥ अथ
लक्ष्मणानुगतकाम्भवपुर्जलधि विलङ्घ्य शशिशशग्धिः ।
परिवारितः परितः ऋक्षगणैस्तमिराघराक्षसकुलं
विभेद ॥ ४ ॥ अद्यापि स्तनशैलदुर्गाविषमं किं मानिनीनां
हृदि स्थातुं वाञ्छति मान एष भ्रमति क्रोधादिवा-
लोहितः । उद्यन्दूरतरप्रसारिणकरः कर्णव्यसा तत्क्ष-
णान्कुञ्जकैरवकाशनिःसरत्तिथ्यणीरुपाणं शशी ॥ ५ ॥

समय उस धँधेरेमे नवेजियोंकी झॉझोंमें ऐसा अनोखा
जॉजन-सा लगा दिया जिससे उन्होंने उस धँधेरेमें भी अपने
मेमियोंके घरका मार्ग भली-भाँति पा लिया ॥ ४५ ॥

तारोंके उदय होनेका वर्णन : ये तारे ऐसे चमक
रहे हैं मानो आकाशमें चक्कर लगा-लगाकर धके हुए सूर्यके
पोहोंके मुल्लोंसे निकले हुए फेनकी फुहारें हों, आकाश-जगमीके
हारके छिरके हुए मोती हों जयवा सायझाल सायहव नृत्य
करते हुए शिवजीके उमले-उमले ऊँचे जटाजूटपर उड़लती
हुई गझाकी बूँदें हों ॥ १ ॥ समुद्र मधनेसे जो ढेर-सा फेन
उठा उसे ही सूर्य लोग तारोंका झुपट कहते हैं ॥ २ ॥
अत्यन्त चाहसे देवताओंकी प्रियाओंके साथ पर्वतोंमें विहार
करते समय जो उनके आभूषणोंके मोती झकझोरनेमें दूट
गए थे वे अब समुद्रमें गिर गए तो उन्हें निकालनेके लिये
सूर्यने तहतक गोता लगाकर अपनी किरणरूपी रस्तासे
उन्हें बाँधकर जो बाहर उछाला वे ही आकाशमें पहुँचकर तारे
कहलाने लगे ॥ ३ ॥ अत्यन्त घने होकर फैले हुए अन्धकार-
रूपी घुनोंसे सरोद-सरोदकर जो काठके पूरे कंके हैं वे ही
हम तारारूपी छेदोंसे किरण बनकर निकल रहे हैं ॥ ४ ॥
सन्ध्यारूपी धीखने सागरमेंसे चन्द्रमाकी कलारूपी पचीको
पकड़कर आकाशरूपी शूचकी चोटीपर बैठकर जो अपनी धजल
बौंधते उसे झकझोरा, उससे जो उसके पङ्क दूटकर छितरा
गए, वे ही तारोंके रूपमें चमक रहे हैं ॥ ५ ॥

चन्द्रमाके उदय होनेका वर्णन : निकलता हुआ
चन्द्रमा ऐसा जान पड़ता है मानों वह, सङ्कुचे हुए
कमलरूपी झॉझोंवाली रात्रिरूपी मादिकाके अन्धकाररूपी
केश-समूहका अपनी किरण रूपी उँगलियोंसे समेटकर
उसका मुँह घूम रहा हो ॥ १ ॥ जो, अब विदेश
गए हुए जागोंकी खियोंका जो जलानेवाला, कुमुदिनियोंकी
जगानेके लिये दूनका काम करनेवाला और चककेको
सम्भाप देनेवाला चन्द्रमा धीरे-धीरे निकल आया ॥ २ ॥
पूर्व दिशामें कामदेवकी विजयसेनाके चलनेसे उड़ी हुई
भूलके समान यह उदय होता हुआ चन्द्रमा धँधेरेके लिये
जुड़ापा बनकर, चकोरका भोजन बनकर और प्यभिचारिणी
न्त्रियोंके आनन्दवनके लिये आगकी छपट बनकर एक
विचित्र ज्योतिके रूपमें फूट पड़ा है ॥ ३ ॥ लक्ष्मण
(कलक) से युक्त और झूच (तारे, भाखू) के समूहसे घिरे
हुए रामचन्द्र (सुन्दर चन्द्रमा) से समुद्र पार करके
(समुद्रसे निकलकर) अन्धकार रूपी राक्षस-समूहको नष्ट
कर दिया ॥ ४ ॥ उदय होता हुआ चन्द्रमा ऐसा जान
पड़ता है मानों वह इस बातपर काबिल हो गया हो
कि 'मुझे चिन्कार है कि मेरे उदय होनेपर भी स्तनरूपी
पर्वतोंके दुर्गम किलेके समान युवतियोंके हृदयोंमें उनका रूठना
बना रहना चाहता है !' इसलिये नवेजियोंका मानभंग करनेके
लिये दूरतक अपने किरणरूपी हाथ फैलानेवाला यह चन्द्रमा

अन्तिकान्तिकगतेन्दुविस्पृष्टे जिह्मतां जहति दीधिति-
जाले । निःसृतस्तिमिरभारनिरोधादुच्छ्वसन्निव रराज
दिगन्तः ॥ ६ ॥ अन्धकारगरलं यतो जगम्भोहकारि
भृशमन्ति नित्यशः । उज्ज्वलं जठरमोषधीपतेरअनाभ-
मभयन्ततः प्रिये ॥ ७ ॥ अमलान्मसु प्रतिफलन्तमित-
स्तरणीकपोलफलकेषु मुहुः । विससार सान्द्रतरमि-
न्दुरुचामधिकावभासितदिशां निकरः ॥ ८ ॥ अमुष्मि-
न्पञ्चैषांलिभुवर्नाजगोपोस्सहचरं मुखं रात्रेरन्तस्तनु-
भुवि रहस्सुम्यति सति । ज्वलन्तीप्यारोपोदयमयतये-
षोपधिलताः पतद्भृङ्गीभङ्गवा दधति कुमुदिम्यः कलु-
पताम् ॥ ९ ॥ अमृतद्रवैर्विधधद्-जहशामपमार्गमोषधि-
पति स्म करैः । पारता विसर्पि पारतापि भृशं वपु-
षोऽधतरयति मार्गधपम् ॥ १० ॥ अयं नेत्राद्वेरजनि
रजनीयज्ञभ इति भ्रमः कोऽयं प्रहपरिचयपराधीनम-

इसी वण लिले हुए कुमुदकी कलीरूपी ग्यानसे निकलते हुए
भौरांकी पतैरूपी ललवार लीच रहा है ॥ ६ ॥ ज्यों-ज्यों पास
चन्द्रमा आता जा रहा था त्यों-त्यों उसकी किरणें अपना
तिरछापन छाँड़कर सीधी होती जा रही थीं और ऐसा जान
पड़ रहा था मानो घने चौंधेरेके घेरेसे मुक्त होकर दिशाई
सन्तोषकी लम्बी साँस ले रही हों ॥ ७ ॥ हे प्यारी ! यह
चन्द्रमा प्रतिदिन संसारका मूर्च्छित कर देनेवाला (अन्धकारमें
डालनेवाला) चौंधेरारूपी विष खाता रहता है इसीलिये
इस औषधियोंके पति चन्द्रमाका चमकदार पेट काजलके
समान काला हो गया है ॥ ८ ॥ नवेलियोंके अत्यन्त सुन्दर
और चिकने गालोंपर प्रतबिम्बित होकर नीचेका फैलकर
सब दिशाओंकी ओर भी अधिक चमकता हुआ वह
चन्द्रमाका प्रकाश धीरे-धीरे घना होकर चारों ओर फैल गया
॥ ९ ॥ सीनों लोकोंकी जीतनेकी इच्छावाले कामदेवके साथ
बलनेवाला यह अग्नि ऋषिका पुत्र चन्द्रमा जो एकान्तमें
रात्रिरूपी नायिकाका मुख चूम रहा है, इसीसे लब्धित होकर
हाहके सारे मानो औषधियाँ (जड़ी-बूटियाँ) तो चमक उठी हैं
और कुमुदिनियोंका मुख भी उनके ऊपर बैठती हुई भौरांकी
पतैके रूपमें काला पड़ गया है ॥ १० ॥ चन्द्रमाने भ्रमृतके घोलके
समान अपनी शीतल किरणोंसे कमलके समान नेत्रवाली स्त्री
हुई नायिकाओंके सारे शरीरमें फैला हुआ और जलानेवाला
मानरूपी विष बुर करके उन्हें ठीक मार्गपर ला दिया
॥ १० ॥ बुद्धिके चक्करमें पड़े हुए जोगोंका यह बड़ा भारी

मलाम् । सुधानामाधारः स खलु रतिविम्बाधरसुधा-
रसालेकस्त्रिधादजनि नयनात्पुष्पधनुषः ॥ ११ ॥ अय-
मुदयति चन्द्रश्चास्त्रिकार्धोतविम्बः परिणतविमलसि-
व्योसि कर्पूरगौरः । ऋजुरजतशलाकास्पर्धिमिर्यस्य
पादैर्जगदमलमृणालीपञ्जरस्थं विभाति ॥ १२ ॥ अय-
मुदयति चन्द्रो वारिधेरम्बुगर्भादमृतकणकरालैरंशुभि-
र्दोष्यमानः । भुजगशयनघटोद्द्वयदेशे ललन्त्या वक्त्र-
मिव यदृच्छोत्सामितं विम्बमातुः ॥ १३ ॥ अविभाशि-
तेष्विषयः प्रथमं मदनोऽपि नूनमभवत्तमसा । उदिते
दिशः प्रकटयन्त्यमुना यदधर्मधासि घनुराचकुरे
॥ १४ ॥ आकाशवापीसितपुण्डरीकं शालोपलं
ममथसायकानाम् । पश्योदितं शारदम्बुजाणि
सम्भ्याङ्गनाकन्दुकमिन्दुविम्बम् ॥ १५ ॥ आदा-
यामृतपूणेमर्कचक्रं शोणारविम्बमभे पाणाविन्दु-

भ्रम है कि रात्रिरूपी नायिकाका मेरी यह चन्द्रमा मर्दपि
अग्निके नेत्रोंसे उत्पन्न हुआ है । सच पूछिए तो चमकते
भरा हुआ यह चन्द्रमा रतिके विम्बाकल जैसे घोड़ोंके अमृत-
रससे चिचकर मतवाले बने हुए कामदेवके चिकने नेत्रोंसे
उत्पन्न हुआ है ॥ ११ ॥ कपूरके समान रजका चन्द्रमा संसारको
अपनी चाँदनीसे धोता हुआ निर्मल आकाशमें चढ़ आया है
और रुपहली, लम्बी तथा सीधी ललाइयोंसे होड़ करनेवाली
उसकी किरणोंकी गोदमें सोया हुआ संसार ऐसा जान पड़ता
है मानो स्वर्ण कमलनालके पिंजरेमें वह रक्ता हो ॥ १२ ॥
समुद्रके जलके भीतरसे निकलता हुआ और अपनी अमृतसे
भरी किरणोंसे चमकता हुआ चन्द्रमा ऐसा जान पड़ता है मानो
भगवान् विष्णुके वस्त्रधररूपी शयनागारमें खेटी हुई जगदम्बा
लक्ष्मी अपने-आप अपना मुँह ऊपर उठका रही हों ॥ १३ ॥
चन्द्रमाका उदय होनेसे पहले कामदेवको चौंधेरेमें अपने
बायाका लचर नहीं दिखाई पड़ रहा था किन्तु जब ठपकी
किरणोंवाला चन्द्रमा उदय हो आया और चारों ओर चाँदनी
फैल गई तब कामदेवने भी अपना बाय निकालकर लचर साथ
लिया ॥ १४ ॥ हे कमलनयनी ! देख तो यह शरदके चन्द्रमाका
विम्ब ऐसा जान पड़ता है मानो आकाशरूपी सरोवरमें खेत
कमल खिले हों या कामदेवके बालोंको पैना करनेके लिये
सानका पत्थर हो अथवा सायंकालरूपी नायिकाके लेजनेका
गेंद हो ॥ १५ ॥ इन्द्राणीने अपने जाल कमलके तमान
सुन्दर इश्योंमें अमृतसे भरे हुए जिस सूर्यरूपी प्यालेमें

वधूर्विलोक्य च पुनस्तस्मिन्मभःश्यामिकाम् । खिले-
पोपरि कोपतः परिजनेऽसंशोधय दत्ता सुधेत्यनंतं
शशिनं प्रशंसति जनस्तन्पाणिमुकार्जुनम् ॥ १६ ॥
आननानि हरिणीनयनानामद्भुतानि च समीक्ष्य जग-
न्ताम् । लज्जयैव घनमण्डलसीमो मन्दमन्दमहहेन्दुरु-
द्रेति ॥ १७ ॥ आनन्दं कुमुदादीनामिन्दुः कन्दलय-
न्त्यम् । लङ्घयत्यम्वराभोगं हनुमानिष सागरम् ॥ १८ ॥
आनीलां करपल्लवैरपनयन्नच्छां तमःकञ्चुकीमाशां
सम्प्रति वासधीमनुसरन्नक्षीणरागः शशी । अस्यास्य
स्तनसङ्क्रिमीमिव घहन्नङ्गेन कस्तूरिकामालिङ्ग्य-
यमादरेण रजनीमर्धोऽभ्यपसारकाम् ॥ १९ ॥ इदमा-
भाति गगने भिन्दानं सप्ततं तमः । अमन्दनयनानन्द-
करं मण्डलमैन्दवम् ॥ २० ॥ हनुरिन्दुरिति किं दुरा-
शया चिन्दुरेव पयसां विलोक्यते । नन्विदं विजयते
मृगीदृशः श्यामकोमलकपोलमाननम् ॥ २१ ॥ उज्ज-

म्भने कुमुदिनीसुकुनं भृगाङ्गो विष्वग्विकीर्णपरिपाट
हरिश्चन्द्रदण्डः । अस्तविद्रुमकुलो जलधेस्तरङ्गादुन्मि-
ल्यमाण इव कश्चन राजकम्बुः ॥ २२ ॥ उज्ज्वली शुचमि-
वाशु तमिस्रामन्तिकं यजानं तारकगजे । दिक्प्रसाद-
गुणमण्डनमूढं रश्मिदासविशदं मुखमन्त्री ॥ २३ ॥
उदमाज्ज कैटभजितः शयनादर्पानद्रपाण्डुरसरोज-
हवा । प्रथमप्रवृज्जनवराजसुतावदेनन्दनेय तुहिन-
धुतिना ॥ २४ ॥ उदयतटान्नांरतमियं प्राची सूचयति
दिङ्निशानाधम् । परिपाण्डुना मुखेन प्रियामिष
हृदयस्थितं रमणी ॥ २५ ॥ उदयति कलमन्द्रः कण्ठना-
लैरलीनां कुमुदमुकुलकेषु व्यज्यन्नङ्गहारान् । मन्दमुख-
रचकोरीनायकमन्तिकोऽयं तुहिनरुचिरधामा दक्षिणं
लोकचक्षुः ॥ २६ ॥ उद्वेतेन्दुमर्याभक्षतामिस्रां पश्यति स्म
रजनीमर्धवृत्तः । व्यंशुकस्फुटमुखीमातजिह्वां मीडया
नववधूमिष लोकः ॥ २७ ॥ उद्वेतेन्दुमर्याभक्षतामिस्रां पश्यति स्म

आकाशकी कालिकाका प्रतिबिम्ब देखकर उसे अपने सेवकोंपर
यह कहते हुए दे मारा कि 'तुम लोग बिना भोजन और
बिना भली प्रकार देखे ही मुझे प्रभूत दे देते हो।' यह
फेंका हुआ न्याया ही यह सुन्दर चन्द्रमा है जिसकी
लोग इतनी प्रशंसा करते हैं ॥ १५ ॥ देखो, संसारमें
भृगुनयनी नायिकाओंके सुन्दर मुख देखकर जो चन्द्रमा
सज्जकर बादलमें छिप गया था वही अब धीरे-धीरे फिर
निकल रहा है ॥ १७ ॥ जैसे हनुमान्जीने कुमुद आदि वस्त्रोंको
आनन्द देते हुए सागर पार कर लिया था वैसे ही कुमुद
आदिको आनन्द देता हुआ चन्द्रमा भी इस लम्बे-चौड़े
आकाशको पार कर रहा है ॥ १८ ॥ उदय होता हुआ
चन्द्रमा ऐसा लगता है मानो अपने पल्लोंके-से रङ्गवाली खाक-
काळ किरणोंके हाथोंसे पूर्व दिशाकपी नायिकाकी अन्धकार-
रूपी सुन्दर नीली चोलीको हटाता हुआ और उसके स्तनपर
सगी हुई कस्तूरीको (स्पर्शके कारण) अपने अङ्गोंपर धारण
करता हुआ पूर्ण अजरागसे भरकर अवशिष्टी तारिका (तारा,
पुतली) वाली शत्रुरूपी नायिकाको गले लगा रहा हो
॥ १९ ॥ देखो, आकाशमें चारों ओर फैले हुए अँधेरेको दूर
करनेवाले धीरे धीरेके अत्यन्त सुहावने जगनेवाले चन्द्रमाका
बिम्ब चमकने लगा है ॥ २० ॥ यह आप लोग भूलसे चन्द्रमा-
चन्द्रमा किते कहते जा रहे हैं ? यह तो जलकी वह रूँद है
जो अपनी शोभासे भृगुनयनी नायिकाके सौन्दर्य और कोमल

गालवाले मुल्लको हरा रहा है ॥ २१ ॥ अपने चारों ओर फैला
हुई सुन्दर किरणोंकी वृद्धिवाला और मूँगेके वंश (समुद्र)
में उभरने चन्द्रमा उदय होता हुआ ऐसा सुहावना जान पड़ता
है मानो समुद्रकी तरङ्गोंसे बाहर फेंका हुआ सुन्दर शंख हो या
कुमुदिनीका पुण्य हो ॥ २२ ॥ तारोंके स्वामी चन्द्रमाके पास
आते ही पूर्व दिशामें अन्धकाररूपी शंख छोंड़ दिया, दिशाएँ
स्वच्छ होकर खिल उठीं और किरणोंके प्रकाशके रूपमें हैंसने
लगीं ॥ २३ ॥ खिले हुए श्वेत कमलके समान उजला चन्द्रमा
विष्णुके शयनस्थान समुद्रसे ऐसे निकला जैसे पहले-पहल
समुद्रसे लक्ष्मीका मुखचन्द्र निकला था ॥ २४ ॥ पूर्व दिशामें
निकलते हुए चन्द्रमाका पोछापन ऐसा जान पड़ता है मानो
पूर्व दिशा सूचित कर रही हो कि मेरे हृदयमें निवास
करनेवाला प्रियतम चन्द्रमा अभी उदयाचलमें छिपा है ॥ २५ ॥
मदसे यहचहाती हुई चकोरीके रुदनको समाप्त करनेवाला
और शीतल तथा रुचिकर किरणोंवाला यह संसारके दाहिन
नेत्रके समान चन्द्रमा उदय हो रहा है जो भीतर मूँजनेवाले
भीरोंके अस्पृष्ट, मधुर और गम्भीर शब्दोंके साथ हिलती-मटकती
हुई कुमुदकी कलियोंको नचाए ढाल रहा है ॥ २६ ॥ जिस प्रकार
बूँद सरक जानेसे मुँह मोड़कर लजानेवाली नई बहूका लोग
धूर-धूरकर देखते हैं उसी प्रकार कुल-अँधेरेसे भरी हुई और
एवमें निकले हुए चन्द्रमावाली रातको लोग अवृत्त होकर आँख
गड़ाकर देखते हैं ॥ २७ ॥ पतिके हाथसे मसले हुए गर्मबत्ती हुआ

भुभ्रोन्नतस्तननिवेशनिभं द्विभांशोः । विम्बं कठोरविस-
काण्डकडारमेतद्रम्भापद्मं प्रथममग्रकरैर्व्यनक्ति ॥ २८ ॥
उम्मतावनतभागवत्तया चन्द्रिका सतिमिरा गिरेरि-
यम् । भक्तिभिर्यहुविधाभिरर्पिता भाति भूतिरिष-
मसदस्तिनः ॥ २९ ॥ उन्नतेषु शशिनः प्रभा स्थिता
निम्नसंश्रयपरं निशातमः । नूनमात्मसदृशी प्रकल्पिता
बंधसैव गुणक्षोभयोगतिः ॥ ३० ॥ उपगूढचेलमलधूमि-
भुजैः सरितामचुचुभदधीशमपि । रजनीकरः किमिव
विश्रमहो यदुरागिणां गणमनललघुम् ॥ ३१ ॥ उप-
जीघति स्म सततं दधतः परिमुग्धतां वर्णिगिवोडु-
पतेः । घनवीथिवीथिमवतीर्णवतां निर्धरम्भसामुप-
याय कलाः ॥ ३२ ॥ उपादरागेण विलोलतारकं तथा
गृहीतं शशिना निशामुजम् । यथा समस्तं तिमिरांशुकं
तथा पुरोऽपि रागाद्वलितं न ललितम् ॥ ३३ ॥ एकिकेष
निजचुन्दमध्यगाऽप्युचुक्कृतं सभयं सितच्छदी । वन्त-

पुवतीके गिरछे तथा बड़े-बड़े स्तनोंके समान दिखाई
देनेवाला यह चन्द्रमाका विम्ब अपनी पहली किरणोंसे कठोर
कमलनालके तन्तुके पंजरका चमकाकर रम्भा (अप्सरा,
केला) बनाए दे रहा है ॥ २८ ॥ पहाड़पर फैली हुई
यह शीर्षा उसके ऊँचे-नीचे भागमें पड़नेसे कहीं-कहीं
झँधरी हाँकर ऐसी जान पड़ रही है मानो मतवाले हाथियोंकी
पीठपर बैठके दृढ़से धूल लगी हुई हो ॥ २९ ॥ ऊँची-
ऊँची घन्तुघाँवर चन्द्रमाकी किरणें फैली हुई हैं और नीची-
नीची घन्तुघाँवर रातका झँधरा भरा हुआ है । सचमुच
जगामे गुण और शोभाका स्थान ठीक उनके अनुरूप ही
बना दिया है ॥ ३० ॥ जिस समुद्रने अपनी बड़ी-बड़ी लहर-
रूपी बाहोंसे अपनी तट घाम रक्ता या उसे भी जब
चन्द्रमाने विचलित कर दिया तब यदि उसने कामदेवके हाथों
छोटे किए हुए प्रेमियोंको विचलित कर दिया हो तो वाश्चर्य
ही क्या है ॥ ३१ ॥ जैसे आपन्न भोले-भाले लोगोंकी ठगकर
बलिया निरन्तर मोटा होता जाता है वैसे ही आकाश-मार्गमें
उतरे हुए चन्द्रमाकी कलाएँ लूट-लूटकर समुद्र भी बहुत फूलता
जा रहा है ॥ ३२ ॥ लाल-लाल आभावाला (प्रेमसे भरा हुआ),
चञ्चल तारोंवाला (चञ्चल शीलोंकी पुतलीवाला) रात्रिरूपी
मायिकाका मुख जब चन्द्रमाने स्पर्श किया तब वह प्रेममें हतनी
मतवाली हो गई कि सामने सुन्नकर गिरते हुए अपने अन्धकार-
रूपी वस्त्रको भी नहीं वैभान पाई ॥ ३३ ॥ चन्द्रमाको निकलते

मूलमसकृच्च संशयाशममर्श करिणः करणुका ॥ ३४ ॥
एतत्कोककुटुम्बिनीजनमनः शल्यञ्चकोराङ्गनाचञ्चुको-
टिकपाटयोर्घटितयोरुद्धाटिनी कुञ्चिका । दग्धस्यापि
नवाङ्कुरः स्मरनरोराद्रांगसां मेघसीमानोहामगजाङ्कुशो
विजयते मुग्धं सुधांशोर्वपुः ॥ ३५ ॥ एतदुच्छ्रितपीत-
मैन्दवं सोदुमलममिव प्रभारसम् । मुक्तपदपदविराय-
मञ्जसा भिद्यते कुमुदमा नियग्धमान् ॥ ३६ ॥ एतद्वि-
भाति चरमाचलचूडचुम्बिडिण्डीरपिण्डरुचिशीतम-
रीचिविम्यम् । उज्ज्वालितस्य रजनीं मदनालस्य
धूमं दधन्मकटलाञ्छनकैतवेन ॥ ३७ ॥ एतस्य कला-
मेकाममृतमयूखस्य पार्श्वनीरमणः । वर्णावलिमिव
बहति प्रतिमासं घट्टयमानस्य ॥ ३८ ॥ एष स्वर्ग-
तरङ्गिणीजलमिलदिग्दन्तिवस्तपुतिर्भक्ष्यद्राजतकुम्भ-
विश्रमधरः शीतांशुरभ्युद्यतः । हंसीयन्मलाम्बुजो-
र्यात लसद्दिण्डीरपिण्डीर्यात स्फारस्फाटिककुण्डली-

देखकर अपने कुण्डमें बैठी हुई भी वह हंसिनी जकेली डरके
मारे चिल्ला उठी (कि यह मेरा प्यारा हंस ही तो उड़कर
आकाशमें नहीं चला गया) और इधिनी भी आपन्न संशयसे
प्यारे हाथोंका दाँत बार-बार टटोलने लगी (कि मेरे प्यारे
हाथोंका दाँत तो टूटकर ऊपर नहीं चला गया है) ॥ ३४ ॥
चक्रेके परिवारके मनमें बिधते हुए कौटुके समान, चकोरीके
चाँचरूपी बन्द द्वारका खोलनेकी कुञ्चिके समान, जले
कामदेवरूपी वृक्षमें निकले हुए गले शत्रुके समान और नया
अपराध करनेवाले प्रेमीकी प्रेमिकाके मानरूपी विगड़ेस हाथीके
लिये शत्रुके समान यह दूजका चौद आपन्न सुन्दर होकर
चमक रहा है ॥ ३५ ॥ लिलते हुए कुमुदोंमेंसे निकलनेवाले
भारे ऐसे जान पड़ते हैं मानो कुमुदोंने जो चन्द्रमाका काम्तिरूपी
रस पिपा या उसे न पचा सकनेके कारण वे भीरीके गुजाररूपी
शब्दके साथ ठगटी करके बाहर निकल रहे हों ॥ ३६ ॥
अस्ताचलके शिखरको चूमनेवाले फेनके पिंडसे चमकते हुए
चन्द्रमामें कलंक ऐसा दिखाई पड़ता है मानो रात्रिको जलानेके
लिये इसने जलते हुए कामदेवरूपी अग्निका धुआँ धारण
कर रक्खा हा ॥ ३७ ॥ प्रत्येक मासमें निरन्तर घटते हुए इस
अमृतमयी किरणवाले चन्द्रमाकी केवल एक कलाको शिकजी
इस प्रकार धारण किए रहते हैं मानो वह उनकी कीर्तिकी रेखा
हो ॥ ३८ ॥ देखो, यह निकला हुआ चन्द्रमा ऐसा जान पड़ता है
मानो आकाश-गगनके बलमें खींच करनेवाले दिग्गजोंके दाँतोंके

यति दिशामानन्दकन्द्रीयति ॥ ३१ ॥ ॐकारो मदनहि-
जस्य गगनकोडैकदंष्ट्राङ्गस्तारामौक्तिकशुक्तिरन्धतम-
सस्तम्भेरमस्याङ्गुशः । शृङ्गारामेलकुञ्जिका विरहि-
णीमर्मच्छिदा कर्तरी सन्ध्यावारवधूनखलतिरियं
चान्द्री कला राजते ॥ ४० ॥ ओजसापि सलु नूनम-
नूनं नासहायमपयाति जयधोः । यद्विभुः शशिमयूख-
सलः सन्नाद्वे विजयि चापमनङ्गः ॥ ४१ ॥ ककुभां
मुखानि सहस्रोजप्रलयस्यन्दधराकुलत्वमधिकं रतये ।
अविदीपदिन्दुरपरो दहनः कुसुमेपुमञ्जिनयनप्रभवः
॥ ४२ ॥ कपाले मार्जारः पय इति कर्णोद्धेदि शशिनस्त-
रुच्छिद्रप्रोतान्विसमिति करी सङ्कलयति । रतान्ते
तत्पस्थान्हरति वनिताप्यंशुकमिति प्रभामसम्भद्रो
जगद्विदमहो विस्रयति ॥ ४३ ॥ कमितुरभिसुत्तरीणां
गौराङ्गीणामिहेन्दुधवलसु । उड्यमानानामिय रज-

समान चमकते और गिरते हुए चाँदीके घड़ेका अम उग्न
करता हो, हँस हो, स्वप्न कमल हो, सुन्दर स्फटिका सौँप हो
और दिशाओंके आनन्दका फल हो ॥ ३१ ॥ चन्द्रमाकी यह कला
कामदेवरूपी आकाशके जयके ओंकारके समान, आकाशरूपी
बराहके शँतके समान, ताररूपी मोतियोंकी सौपीके समान, घने
अन्धकाररूपी हार्थीके शङ्कुशके समान, शृङ्गाररूपी फाटककी
कुञ्जीके समान, विरहिनियोंके हृदयको काटनेवाली कैबाके
समान और साथहालरूपी बेरवाके हृदयपर सने हुए नखपतके
समान चमकती है ॥ ४० ॥ यदि शक्तिशाली कामदेवने चन्द्रमाके
किरणरूपी मित्रोंको साथ लेकर अपना मित्रयी धनुष उठाया है
तो ठीक ही है क्योंकि विजयश्री जिस शक्तिशाली व्यक्तिको भय
वेषा चाहती है उसके लिये सहायक भी ला जुटाती है ॥ ४१ ॥
महर्षि अत्रिके सपनोंसे उग्न चन्द्रमाने दूसरी अग्निके समान
दिशाओंके मुखोंको अचानक चमकते हुए और सारे संसारको
रतिके लिये म्याकुल करते हुए सबके हृदयमें कामदेव अग्रा दिश
है ॥ ४२ ॥ अपनी चमकते मतवाला चन्द्रमा सारे संसारको इस
प्रकार धोलेमें डाले दे रहा है कि खोपड़ीपर पड़ी हुई चन्द्रमाकी
किरणोंको बूध समझकर बिल्ली चाटनेका प्रयत्न कर रही है,
घृत्तके पत्तोंसे छन-छनकर आनेवाली किरणोंको कमलकी डण्डस
समझकर उन्हें खानेके लिये हाथी भवत रहे हैं और बिजुनेपर
पड़ी हुई किरणोंको बछ समझकर कियौ रतिके अन्तमें
बार-बार उठा रही है ॥ ४३ ॥ चन्द्रमाके प्रकाशसे उजली
रातोंमें अपने-अपने प्रियतमसे मिलनेके लिये आसुर होकर चली

निपु परमीष्यते छाया ॥ ४४ ॥ कामुदयमहीधरस्त-
नाग्रे गलिततमः पटलाङ्गुके निषेय्य । विकसितकुमुदे-
क्षणं विद्युन्मन्ययममगेशदिशो मुखं सुधाङ्गुः ॥ ४५ ॥
कलथा तुषारकिरणस्य पुरः परिमन्दाभिर्धनार्निमराध-
जटम् । क्षणमभ्यपद्यत जनैर्न मृषा गगनं गगाधिपति-
मृतिरिति ॥ ४६ ॥ कलानिधिरयं रवेः समुपलभ्य
रूपं स्वयं दिनान्तसमयेऽस्पृशन्सर्पादि पश्चिनां राग
वान् । धवान्यकस्त्रमान्मुकुलितेति पूर्वाकृति
समीक्ष्य जहसुः प्रिया धवमभूदतः पाण्डुरः ॥ ४७ ॥
कलितमभ्यरमाकलयन्करैर्मृदितपङ्कजकोशपयोधरः ।
धिकसदुत्पलनेत्रयिलोकितः सखि निशां सरसीकुक्षते
विधुः ॥ ४८ ॥ कलोललितपङ्कजिपुङ्गवशिरःस्वःकाव-
न्तीमृणालं कर्पूरक्षोदजालं कुसुमशरवधूत्सीधुभृङ्गार-
नालम् । एतदुध्याधिधर्मधोर्गगनकमलिनीपत्रपानीय-

आती हुई गोरी-गोरी नवेलियोंकी छाया ऐसी प्रतीत होती
है मानो वे उड़ी चली जा रही हों ॥ ४४ ॥ अन्धकाररूपी
बछसे रहित तथा मिले हुए कुमुदरूपी नेत्रोंवाली पूर्व
दिशाकी नायिकाके उदयाचलरूपी स्तनोंपर हाथ रखकर
चन्द्रमा उसका मुख धूमने लगा है ॥ ४५ ॥ ठपड़ी
किरणोंवाले चन्द्रमाकी कलासे धीरे-धीरे दूर हटने हुए अन्धकार
रूपी जटावाले आकाशको जब लोगोंने देखा तो धाँकी देरके
लिये वे लोग उसे सचमुच गणेशजीकी मूर्ति समझ बैठे ॥ ४६ ॥
सूर्यास्तके समय इस चन्द्रमाने सूर्यसे अपना रूप पाकर अत्यन्त
अनुरागसे कमलिनीका स्पर्श किया किन्तु दूसरे पुरुषके हाथका
स्पर्श होते ही कमलिनी मुँह गई और चन्द्रमा लजाकर फिर
अपने रूपको प्राक्ष हो गया अथाश्च रवेत पड़ गया । इसपर
उसकी प्यारी कुमुदिनियों हँस पड़ीं, अतः चन्द्रमा लजाकर
पीसा पड़ गया ॥ ४७ ॥ हे सखी ! देखो, यह चन्द्रमा अपने
कंधों (किरणों, हाथों) से रात्रिरूपी नायिकाके सुन्दर बछ
(आकाश) हटाता हुआ (छूता हुआ), कमलके कोपरूपी
स्तनोंको मसलता हुआ और उसके लिये हुए कुमुदरूपी नेत्रोंसे
देखा जाता हुआ रात्रिरूपी नायिकाको अत्यन्त रसीली बना
रहा है ॥ ४८ ॥ शङ्करजीके सिरपर बहती हुई गङ्गाजीमें कीड़ासे
पँके हुए और कीचड़से लिपटे हुए कमलके नालके समान,
कपूरके चूर्णके समान, कामदेवकी पत्नीके प्यालेके हथके समान,
और आकाशकी कमलिनीके पत्तेपर पड़ी हुई जलके बूँदके
समान यह संसारको सुशोभित करनेवाला औरसागरका प्यारा

विन्दोरन्तस्तोयं न केषां किसलयति जगन्मण्डनं
अण्डमिन्दोः ॥ ४६ ॥ कुमुदेष्वाधिकं भान्ति पतितरश्मि-
न्द्ररश्मयः । अतिप्रकृष्टशीलेषु कुलेष्विव समृद्धयः
॥ ४७ ॥ कैलासायितमद्रिभिर्विदपिभिः श्वेतातपत्रायितं
मृत्पट्टेन वर्धयितं जलनिधौ दुग्धायितं वारिभिः ।
मुक्ताहारलतायितं व्रतनिभिः शङ्खायितं धौफलैः
श्वेतद्रोपजनायितं जनपदैर्जाते शशाङ्कोदये ॥ ४८ ॥
कोकानाकुलरश्मिकोरनरुणीवैकल्यमुन्मूल्यश्रम्भोजानि
निमीलयन्कुमुदिनीरन्मीलयन्सर्वतः । पान्थानाकुलतां
नयन्कुलवधूचेतः समुज्जासयन्सन्तं याति दिवापतिः
समुद्रं यात्येव दोषापतिः ॥ ४९ ॥ कामदेवकद्रि-
त्रिप्रभृतिपङ्कपाट्या प्रकटयन्कलाः स्वैरं स्वैरं
नयनलिनकन्दारुहम् । पुरन्धीणां प्रयोविहदह्नो-
हीपितदशां कटाक्षेभ्यो यिभ्यन्निभुन इव चन्द्रोऽभ्यु-
द्यति ॥ ५० ॥ कैतन्मार्तण्डविम्बं सरसि सरसिज-

श्रेणिहास्यं क यानं कैते याता रथाङ्गाः सपदि गत-
द्वियः क प्रविष्टा मरालाः । सन्ध्यारागाङ्गाङ्गः कुपित
इव पतिः प्रोद्यतोऽयं हिमांशुर्मन्थे हर्षादिवेयं हसति
कुमुदिनी जाग्रतोवालिनादैः ॥ ५१ ॥ क्षीराब्धेर्लहरीषु
फेनधवलरश्मिन्द्रोपलेषु स्रग्धन्वाधःसीकरिणो विकासि-
कुमुदकोटि रजःपिञ्जराः । उन्मीलन्ति चकोरचञ्चु-
गहने क्षिन्नप्ररुदाश्रमकुर्वन्तः प्रियविप्रयुक्तरमणी-
गात्रे सुधांशोः कराः ॥ ५२ ॥ क्वाता वयं समधुपा
मधुकोशवन्ध्रश्चन्द्रः प्रसारितकरो द्विजराज पयः ।
अस्मत्समागमकृतोऽस्य पुनर्हितीयो मा भून्कलङ्क इति
सङ्कुचिता नलिन्यः ॥ ५३ ॥ गगनविपिनसिंहः काम-
भूपातपत्रं निखिलदिग्बलानां कन्दुकं प्रीडनाय ।
मणिरिव रतिभर्तुः कामंषु पार्यणोऽयं जयति कुमुद-
वन्धुर्वन्धुरश्चन्द्रविम्बः ॥ ५४ ॥ चन्द्रपादजनितप्र-
त्तिभिश्चन्द्रकान्तजलविन्दुभिर्गिरिः । मेखलातलसु

चन्द्रमा किसके मनमें मस्ती नहीं भर रहा है ॥ ४६ ॥
जैसे शुद्ध आचरणवाले परिवारमें सम्पत्ति वर्धनी है वैसे
ही कुमुदिनियोंपर पड़ी हुई चन्द्रमाकी किरणें भी बहुत अधिक
बलवत् रही हैं ॥ ४७ ॥ चन्द्रमाके उदय होनेपर पहाड़ों में कैलासके
समान, वृक्ष भी रवेण दुनरीके समान, कीचड़ भी र्दोंके
समान, समुद्रका जल भी दूधके समान, लताएँ भी मोतीके
हारकी लड़ियोंके समान, बेलके फल भी शङ्खके समान और
नग-नारी भी रवेण द्रोप (याराप) के लंगोके समान जान पड़ते
हैं ॥ ४८ ॥ एक ओर तो चक्रवर्त्तिकावियोंको व्याकुल करता हुआ,
कमलोंको मूर्च्छना हुआ और पथिकोंका आधीर करना हुआ मूर्ध
अस्तावलको ओर जा रहा है और दूसरी ओर चक्रवर्त्तियोंको
प्रसन्न करता हुआ, कुमुदोंको खिलाना हुआ और अच्छे
कुलोंकी नई बहनोंके मनमें ह्लास बढ़ाना हुआ यह चन्द्रमा
उदय हो रहा है ॥ ४९ ॥ नये कमलका जड़ोंके मूँड़के समान
कान्तिवाली अपनी एक-एक किरण चारों-चारीसे फैलाता
हुआ चन्द्रमा ऐसा लगता है मानो सदाचारिणी नवेलियोंके
प्रियतमकी त्रियोगाग्निसे दहकते हुए नेत्रोंकी निरङ्ग चितवनसे
करता हुआ धीरे-धीरे चुपचाप उदय हो रहा है ॥ ५० ॥
सायङ्काल होते ही मूर्यका विम्ब कहाँ चला गया ? तालाबोंके
कमलोंकी सुन्दर हैसी कहाँ छिप गई ? आचानक चक्रवर्त्तियों
उठ गये और लाज छोड़कर सब इस भी कहाँ छिप गए ? मैं
समझता हूँ कि सन्ध्याकी लालीसे लाज भङ्गवाले चन्द्रमाकी

क्रोधसे मास होकर उदय होते देखकर ये सब लो भाग गए हैं
और अपने पतिके आगमनसे प्रसन्न होकर भीलोंकी गुआरसे
जागती हुई-सी कुमुदिनियों हैंसने लगी हैं ॥ ५१ ॥ क्षीरसागरकी
लहरोंपर उठे हुए फेनको चमकानी हुई, चन्द्रकान्त मणियोंसे
जलकी बूँदें पहाती हुई, खिली हुई कुमुदिनियोंकी गोदका
पराग पीला करती हुई और चकोरकी चोंचके वनमें कटकर फिर
उठा हुई-सी ये चन्द्रमाकी किरणें अपने प्यारोंसे बिलुड़ी हुई
बुलियोंके भालोंपर घडलेलियाँ करती चारों ओर फैल रही हैं
॥ ५२ ॥ चन्द्रमाके उदय होनेपर मुरझाई हुई कमलिनियों
मानो इस तरहसे सङ्कुचित हो गई हैं कि 'हम लोगोंसे समागम
करनेपर कहीं इस बेचारे चन्द्रमाको एक दूसरा कलङ्क न लग
जाय क्योंकि यह चन्द्रमा द्विजराज (माधवोंका राजा) है और
इस सब मधुप (शराबी, मीरे) रुपी विदों (भूतों, भैरवों)
तथा मधुकोष (मदिरापात्र, मधुके भण्डार) से युक्त
है ॥ ५३ ॥ आकाशरुपी वनके सिंहके समान, कामदेवरुपी
राजाके छत्रके समान, संपूर्ण दिशरुपी नाविकाओंके खेलाकी
तौड़के समान, कामदेवके मणिके समान और कुमुदके हिलीपीके
समान यह सुन्दर भाग्यशाली पृथ्वीमाका चन्द्रमा बलवत् रहा है
॥ ५४ ॥ अपनी तलहटीके वृक्षोंपर सोए हुए मोरोंपर चन्द्रमाकी
किरणोंसे चन्द्रकान्तमणियों निकली हुई जलकी बूँदें बरसा-
बरसाकर पहाड़ उन्हें आचानक अगाए दे रहा है ॥ ५५ ॥ अपनी
किरण-रुपी जराएँ फैलाए, हाथमें कलंकरुपी लड़ावकी माता

निद्रितानमून्बोधयन्त्यसमये शिखरिणः ॥५८॥ जटा-
भाभिर्भाभिः करधृतकलङ्काक्षयलयो वियोगिण्यापत्ते-
रिष कलितवैराग्यविशदः । परिप्रेक्ष्यतारापरिकरकपा-
लाङ्किततले शशी भस्मापाण्डः पितृधन इव व्योम्नि
चरति ॥ ५९ ॥ जाते यौवनपीनधास्त्रि शशिनि भ्राम्य-
न्तमारादपि भ्रान्त्या ध्वेतपतन्त्रिणं सहचरं कोकाग्रना
मुञ्चति । कुर्वन्नस्तमितोपलम्भविधुरो हंसः प्रियान्वे-
षणं हृषोत्सङ्गितमानसः पुनरिन्मामालोक्य सञ्जायते
॥ ६० ॥ उषोत्क्रान्तयः पयःपूरस्तारकाः कैरवाणि च ।
राजति द्योमकासारराजहंसः सुधाकरः ॥ ६१ ॥
ततः कुमुदनाथेन कामिनीगण्डपाण्डुना । नेत्रानन्देन
चन्द्रेण माहेन्द्री दिगलङ्कृता ॥ ६२ ॥ तथा पौरस्त्या-
यां विशि कुमुदकेशरकलिकाकयाटम्रीमिन्दुः किरण-
लहरीमुल्लसयति । समन्तादुन्मीलद्दलजलस्यिन्दुस्त-
वकिनो यथा पुष्पायन्ते प्रतिगुडकमेणाङ्गमणयः ॥ ६३ ॥

ताराक्षताप्रतिकिरन्कलकरुनादान्मन्त्राक्षराणि निग-
दन्कुसुमेपुरेणः । लाभाय वासरमणेर्मुपितस्य सायं
सञ्चारयन्त्यमृतदोधितिकौस्यपात्रम् ॥ ६४ ॥ तैः सर्व-
शीभवदभिसृतानेत्रसिद्धाञ्जनेया नौरन्ध्रैयां त्रिभुवनद-
शामन्धपट्टैस्तमोभिः । व्याप्तं पृथ्वीवल्लयमखिलं चाल-
यन्मुञ्चलद्विज्यात्काजालैर्यमुदयते शर्वरीसार्वभौमः
॥ ६५ ॥ त्रिनयनचूडारत्नं मित्रं सिन्धोः कुमुदनीद-
यितः । अयमुदयति घुस्त्रणारुणरमणीयदनापमश्चन्द्रः
॥ ६६ ॥ त्रिनयनजटाध्वजोपुष्पं निशाचदनस्मितं ग्रह-
किसलयं सन्धानारोपितम्यनस्रजतिः । तिमिरभिदुरं
व्योम्नः शृङ्गं मनोभवकार्मुकं प्रतिपदि नवस्येन्दोर्यिभ्यं
सुखोदयमस्तु नः ॥ ६७ ॥ वर्णोद्रेकः कुसुमधनुषो
जीयितं कैरवाणां जीवजीयप्रणयगरिमा भाग्यराशिनि-
शायाः । शृङ्गारश्रीललितहसितं पानपात्रं सुराणां
पौरस्त्याद्रेर्जयति शिखरं किं तमः स्थातुमीष्टं ॥ ६८ ॥

क्षिप, वियोगी लोगोंकी क्षिपि देखकर वैराग्य धारण किए
और भस्म धारण करनेसे अत्यन्त उजला दिखाई देता हुआ
चन्द्रमा भस्मकले हुए तारोंके समूह रूपी कपालोंसे भरे हुए
आकाशरूपी रममाणमें घूम रहा है ॥ ५९ ॥ रात्रिमें जब
चन्द्रमामें जौवन आ गया अर्थात् उसमें पुरा प्रकाश आ गया
तो उसकी उजली भस्मकले चकटोंको प्रातःकाल होनेका भ्रम हो
गया अतः यद्यपि वह अपनी प्रिया (चक्री) के आस-पास
चक्कर लगाता रहा किन्तु चक्रीने उसे छोड़ ही दिया । इसी
प्रकार हंस भी अत्यन्त प्रसन्नतासे अपनी प्रिया (हंसिनी) को
हँस रहा था, जब उसने चक्रीको देखा तो उसे भी स्मरण हो
आया कि अभी यह चन्द्रमा अस्त नहीं हुआ, मुझे भ्रम हो
गया है ॥ ६० ॥ किरणोंके समूहरूपी जलसे भरे हुए तथा
ताररूपी कुमुदोंसे लिले हुए आकाशरूपी सरोवरमें यह
चन्द्रमा राजहंसके समान शोभा पा रहा है ॥ ६१ ॥ इसी बीच
विरहिणीके गालके समान पीले, कुमुदिनीके स्वामी और
आँखोंको सुख देनेवाले चन्द्रमाने पूर्व दिशाको सुरांगित कर
दिया ॥ ६२ ॥ ज्यों-ज्यों चन्द्रमा पूर्व दिशामें कुमुदकी
क्यारियोंके मुँह खोलनेवाली किरणोंकी लहरें बढ़ा रहे हैं त्यों-त्यों
प्रत्येक गुहियाके सिरपर टँकी हुई चन्द्रकाण्ठमणियोंके ऊपर
हँसोंके मुन्हे सज रहे हैं ॥ ६३ ॥ इस चन्द्रमाको देखकर
पेसा जान पड़ता है मानो चोरी गए हुए दिनके मणि
(सूर्य) का चोर पकड़नेके लिये कामदेवने ताररूपी अचल
विष्कर, कोयलकी कूँके मंत्र पढ़कर, अमृतरूपी किरणोंसे

भरा हुआ वह कौसेका करोरा चला दिया हो ॥ ६४ ॥ उदय
होते हुए चन्द्रमाको देखकर पेसा जान पड़ता है मानो अपने ही
प्रकाशसे सब कुछ देखनेवाला यह रात्रिका राजा चन्द्रमा,
आँखोंमें सिद्धाञ्जन लगाकर सब कुछ जान लेनेवालेके समान
सर्वज्ञ होकर, इस त्रिभुवनकी आँखोंको अन्धा करनेवाली पट्टीके
समान पीले हुए चने चँधरेसे भरे हुए पृथ्वीरूपी कङ्कणको
अपनी भस्मकली हुई किरणोंसे धोता हुआ निकल रहा हो
॥ ६५ ॥ शङ्करजीके जटाजूटका रत्न, समुद्रका मित्र और
कुमुदिनियोंका स्वामी चन्द्रमा किसी सुन्दरी नायिकाके मुखके
समान लाल-लाल-सा उदय हो रहा है ॥ ६६ ॥ शङ्करजीकी
जटारूपी लताके कुल्लके समान, सदा मुस्कुराती रहने-
वाली रात्रि-रूपी नायिकाके मुखकी मुस्कानके समान,
नक्षत्रोंकी कर्जाके समान, सन्धारूपी धुवतीके नितम्बपर बने
हुए नक्षत्रिणके समान, चँधेरा नष्ट करनेवाले आकाशके
शिखरके समान तथा कामदेवके धनुषके समान इस
प्रतिपदा तिथिमें उदय होनेवाले चन्द्रमाका बिम्ब हमारे
लिये सुखदाई हो ॥ ६७ ॥ जब आकाशमें कामदेवका
जुबकता हुआ अभिमान, कुमुदोंका प्राण, संसारके प्राणियोंके
प्रेमका महत्त्व, रात्रिका भाग्य, शृङ्गारकी लक्ष्मीका सुन्दर
हास्य और देवताओंके अमृत पीनेका पात्र यह चन्द्रमा
उदयाचलके शिखरपर आ उपस्थित हुआ है तब भी क्या
कहीं अन्धकार उठर सकता है । ॥ ६८ ॥ यह कुमुदिनीका प्रेमी
चन्द्रमा इस समय निकला हुआ पेसा जान पड़ता है मानो

विष्णुलाकरकन्दुकः स्मरवधूत्सोमन्तमुक्तामणिः काम-
क्षोणिपतेविहारचलभीनिभ्युहपारायतः । हृद्योस्त्रि
विकीर्णतारकमणिः श्यामा वणिकसुभ्रवः स्फारः
स्फाटिकसम्पुटः कुमुदिनीकान्तोऽयमुन्मीलति ॥ ६६ ॥
विग्यन्त्रितस्तिमिरचूर्णविशेषपूर्णादुद्गन्धरोडुमयरञ्जक-
विस्फुलिङ्गात् । कालेन पूर्वगिरिदुर्गजुषा प्रयुक्तो
वृत्तोपलो विधुमिषान्पधिकान्दिनस्ति ॥ ७० ॥ दिवसं
भृशोष्णरुचिपादहतां रुदतीमिवानवरतालिरुतैः । मुहु-
रासृशन् मृगधरोऽग्रकरैरुदशिवसन्कुमुदिनीवनिताम्
॥ ७१ ॥ वीपयन्त्रय नभः किरणैः कुङ्कुमारुख-
पयोधरगौरः । हेमकुम्भ इव पूर्यपयोधेरुन्ममज्ज शनकै-
स्तुहिनांशुः ॥ ७२ ॥ दूरमंशुप्रभाजालं प्रसारयति
चन्द्रमाः । रात्रौ नवययाः कामो मनोरथमिवाधनः
॥ ७३ ॥ यां निरुन्धदतिनीलघनाभं ध्वान्तमुद्यतकरेण

पुरस्तात् । क्षिप्यमाणमस्तितेतरभासा शम्भुनेव करि-
चर्म चकासे ॥ ७४ ॥ ध्वान्तोद्ये शितिकण्ठकण्ठमहसि
प्राप्ते प्रतीचीमुखं प्राचीमश्नति किञ्च दुग्धलहरीमुग्धे
विधोर्धामनि । एतत्कोकचकोरशोकरभसम्लानमसज्जो-
लसदृक्पतातोर्मिकदम्बचुम्बितमिष त्रैलोक्यमाभासते
॥ ७५ ॥ न प्रसादमुचितं गमिता द्यौर्गोक्षतं तिमिरम-
न्त्रिबन्धैः । दिङ्मुखेषु न च धाम विकीर्णं भूपितैश्च
रजनी हिमभासा ॥ ७६ ॥ नभोलताकुञ्जमुपागतायाः
प्रमोदपर्याकुलतारकायाः । निशाङ्गनायाः स्फुरता
करेण शशी तमःकञ्चुकमुन्मुमोच ॥ ७७ ॥ नयनानन्द-
दायीन्दोर्विष्यमेतत्प्रसौदति । अधुना विनिरुद्धांशं
प्रविशीर्णमिदं तमः ॥ ७८ ॥ नवकुङ्कुमवर्चिका रजन्या
गगनाशोकतरोः प्रवालपङ्क्तिः । मणिकुन्तलता स्मरस्य
मन्ये शशिनः प्राथमिकी मयूखलेखा ॥ ७९ ॥ नवचन्द्रि-

वितारूपी बालिकाके हाथकी गेंद हो, कामदेवकी पत्नीके केशोंका
मुक्तामणि हो, कामदेवरूपी राजाके विहार-भवनके गोलेमें
बैठा हुआ शान्त कधुनर हो, आकाशरूपी द्वारमें फैलाए
हुए तारोंका मणि हो, रात्रिरूपी वीर्य-पत्नीकी देवी भीलोंकी
सधुर चितवन तथा स्फटिक मणिले बनी दिङ्गिणा हो
॥ ६१ ॥ पूर्वके पर्वतरूपी दुर्गमें रहनेवाले कालने अंधेरेरूपी
बालूसे जलाकर तारेरूपी चमकीली चिनगारियोंके साथ जो
वह दिशारूपी तोपसे पत्थरका गोला चलाया है वही चन्द्रमा
बनकर पथिकोंको मारे डाल रहा है ॥ ७० ॥ चन्द्रमाने अपनी
कुमुदिनीरूपी उस नायिकाको सदासाथे और समझाते हुए वहा
धीरज वैधाया जो दिन-भर सूर्यकी बहुत तपी हुई किरणोंकी
लातें खाकर भीरोंके गुञ्जनके स्वरोंमें रो रही थी ॥ ७१ ॥ कुङ्कुमसे
रंगे हुए गोरे-गोरे स्तनोंके समान सुन्दर चन्द्रमा अपनी
किरणोंसे आकाशको भली-भाँति चमकाता हुआ पूर्व समुद्रमेंसे
सोनेके घड़ेके समान धीरे-धीरे निकल आया ॥ ७२ ॥ रात
होते ही चन्द्रमा उसी प्रकार अपनी किरणों दूर-दूरतक फैलाने
लगा जैसे कोई चढ़ती हुई जबानीवाला कद्दाव कामी मनोरथोंके
नये-नये पुल धँधता है ॥ ७३ ॥ उजली किरणोंवाले चन्द्रमाकी
चढ़ती हुई किरणोंसे ऊपर उठकर आकाशमें घिरनेवाले अत्यन्त
काले-काले बादलोंके समान दिखाई पड़नेवाला अंधेरा ऐसा
जान पड़ता है मानो भगवान् शङ्करने हाथीकी खाल ऊपर
थोढ़ ली हो ॥ ७४ ॥ शिवजीके कण्ठके समान नीले अंधेरेने
जब पश्चिम दिशाकी घेर लिया और दूधकी जहरोंके समान

उजली चन्द्रमाकी किरणें पूर्व दिशामें जा गईं, उस समय
वह त्रिलोक ऐसा जान पड़ा मानो एक और अचानक चक्रेकी
शोकसे मुरझाई आँलोंकी पलककपी लहरें उसे (त्रिलोकको)
चूमने लगी हों और दूसरी ओर प्रसन्नतासे खिली हुई
चकोरकी आँलोंकी पलककपी लहरें चूमने लगी हों ॥ ७५ ॥
अभी आकाश पूरा स्वच्छ भी नहीं हो पाया था, पहाड़ी
जङ्गलोंसे अभी पूरा-पूरा अंधेरा भी नहीं छूट पाया था और
दिशाओंके मुखपर अभी किरणें भी ठीक-ठीक नहीं पहुँच पाईं
थीं कि चन्द्रमाकी शीतल कामिमात्रसे ■ रात खिल उठी
॥ ७६ ॥ चन्द्रमाकी खिलती हुई किरणों ऐसी जान पड़ती हैं
मानो चन्द्रमाने अपने किरणरूपी हाथ फैलाकर, आकाशरूपी
जलमयवहमें तारिकारूपी सखियोंके साथ अटलेखियाँ करती
हुई रात्रिरूपी नायिकाकी अम्बुकाररूपी खोली उधाड़ दी हो
॥ ७७ ॥ आँलोंको लुप्त देनेवाले चन्द्रमाका वह विम्ब अब खिल
उठा है और दिशाओं (आशाओं) को नष्ट करनेवाला
अंधेरा छूट चला है ॥ ७८ ॥ चन्द्रमाकी किरणोंकी पहली-
पहली रेखाएँ ऐसी जान पड़ रही हैं मानो रात्रिरूपी नायिकाकी
कानीपर नये कुङ्कुमकी ईदें हों या आकाशरूपी भशोक
वृक्षके पत्तोंकी बन्दनवार हो या कामदेवके मणिले बने हुए
आँलोंकी पॉत हो ॥ ७९ ॥ चन्द्रमाकी किरणोंको देखकर
लोगोंने समझा कि नई चँदनीके फूलों (तारों) से सजी हुई
अम्बुकाररूपी केशवाली, इन्द्रकी प्यारी पूर्व दिशारूपी
नायिकाके मुखपर वह मलय चन्दनका लेप लगा हुआ है

काकुसुमकीर्णतमः कवरीभृतो मलयजाद्रमिव । दृशे
ललाटतटद्वारि हरेर्हरितो मुखे तुहिनरश्मिदलम् ॥८०॥
माशयन्तो घनध्वान्तं तापयन्तो धियोगिनः । पतन्ति
शशिनः पादा भासयन्तः क्षमातलम् ॥ ८१ ॥ नीलनीर-
जनिभे हिमगौरं शैलरुद्धवपुषः स्तिरश्मेः । खे रराज
निपतत्करजालं वारिधेः पर्यसि गाङ्गमिधाम्भः ॥८२॥
पश्चिन्वा दयितेऽनुधावति रुपा स्वं पश्चिनीद्रोहिणं
भ्रान्त्वा भोतमना दिगन्तमखिलं चन्द्रो जगादऽम्बु-
धिम् । गाढे तत्र च तत्र विह्वलममुं कर्पन्ति ताराः
पति सोऽयं तच्छुम्भवारिकुङ्कुमरसैः सिक्ताऽरुणो
दृश्यते ॥ ८३ ॥ पश्य पङ्कफलिनीफलन्धिषा यिम्बला-
म्बितधियस्तराम्भसा । विमलपृष्ठविवरं हिमांशुना
वक्रवाकमिधुनं विह्वल्यते ॥ ८४ ॥ पर्योदेति धियो-
गिनीविनमणिः शृङ्गाररक्षामणिस्तारामार्त्तिकहृत्तरनाय-
कमणिश्चरदण्डोश्चूडामणिः । मीढानकभुजङ्गमस्तकमणिः

कन्दर्पसीमन्तिनीकाञ्जोमध्यमणिश्चकोरपरिपश्चिन्ताम-
णिश्चन्द्रमाः ॥ ८५ ॥ पिनप्रीव तरङ्गाग्रैः समुद्रः फेन-
चन्दनम् । तदादाय करैरिन्दुलिम्पनीष दिगङ्गनाः
॥ ८६ ॥ पोथ्याश्रयणं जगत्त्रयदशमालानलेखालवो
विश्वोन्माथहृताशनस्य ककुभामुदयादिनी कुञ्जिका ।
वीरेषु प्रथमा च पुष्पधनुषां रेखा मृगाक्षीमुखश्रोणां
च प्रतिराजयीजमाधिकानन्दी नवश्चन्द्रमाः ॥ ८७ ॥
पुण्यश्लोकमणैर्जगन्त्रयपरिक्लेशप्रशान्तेः कृते सद्य-
न्तस्य पयोदशमनुपमासम्भारिणः श्रीपतेः । एलांको
भोदयतेऽसकां कुवलयं या श्यामतास्मिन्पुनः प्राप्तेतुं
स्वतर्दीयतापरिचयं न त्वन्यथात्वं स्थिता ॥ ८८ ॥
प्रतिकामिनीति ददगुञ्जकिताः स्मरजन्मधर्मपयसोप-
चिताम् । सुदशाऽभिभर्तृशाशरश्मिगलजलविन्दुमिन्दु-
मणिदादधयूम् ॥ ८९ ॥ प्रथमं कलाभवदधार्थमधां
हिमदीर्घांतमहदभूदुदितः । दधति ध्रुवं कमश एष न

॥ ८० ॥ घना चौंधेरा मिटाती हुई, वियोगियोंके हृदयमें दाह
उपजाती हुई और सारी पृथ्वीकी चमकाती हुई चन्द्रमाकी
किरणें चारों ओर फैल रही हैं ॥ ८१ ॥ नीलकमलके समान
वने मीले आकाशमें पर्वतोंसे भरे शरीरवाले चन्द्रमाकी किरणों
समुद्रके जलपर स्वच्छ हिमके समान पड़ती हुई ऐसी जान
पड़ती थीं मानो गङ्गाजीके जलकी धाराएँ गिर रही हों ॥ ८२ ॥
रातमें अपने द्वारा कट पाई हुई कमलिनीके प्यारे सूर्यका
लोभसे आकाशमें दौड़े आते देखकर डरके मारे जिस चन्द्रमाने
चारों दिशाओंमें भां कहीं शरण न पाकर समुद्रमें डूबकी
झगा ली थी उसी अपने विह्वल पति (चन्द्रमा) को
सूर्यास्तके पश्चात् समुद्रके अगाध अलमेंसे तारिकार्ये हुए-
उपरसे लींचकर उठा रही हैं और वह उनके पसानेसे
बड़े कुङ्कुमके रससे भींगकर लाल-लाल दिखाई पड़ रहा
है ॥ ८३ ॥ देखो ! पकी हुई फलिनीके मियंगु फलके
समान लाल बिम्बबाजा यह चन्द्रमा आकाशमें और सरोवरके
जलकी परछाहींमें रातके समय झलक होकर दूर-दूर फैले हुए
चक्रेके जाँदके समान दिखाई पड़ता है ॥ ८४ ॥ देखो !
यह चन्द्रमा बिरहियोंके लिये सूर्य, शृङ्गारके लिये सुन्दर
रक्षामणि, तारेरूपी मांतिनोंको मालाका प्रधान चमकाला मणि,
शृङ्गरीकी सिरका मणि, तरुण कामदेवरूपी सर्पके मस्तकका
मणि, कामदेवकी पत्नीकी करवनीका मणि और चक्र परकी
सभाके लिये चिन्तामणि बनकर उदय हो रहा है ॥ ८५ ॥

समुद्रपर पड़ती हुई चौरनी इस समय ऐसी जान पड़ती है
माणो समुद्र अपनी तरङ्गरूपी उंगलियोंसे फेनरूपी चन्दन
बिस रहा हों और चन्द्रमा अपने किरणरूपी हाथोंसे उठा-
उठाकर दिशाक्यों नायिकाओंके शरीरपर उसका लेप कर रहा
हो ॥ ८६ ॥ संसारकी चौखोंका समूहके समान सुख देनेवाला,
संसारकी मथनेवाली कामाक्षिके लिये लेंडका टुकड़ा, दिशाओंको
खोजनेकी कुञ्जी, चारोंकी गिनतामें कामदेवकी पहला यत्नाने-
वाली रेखा तथा मृगनयनी नवेलियोंके लिये शम्भुताका बाँज
वह अश्वन्त आनन्द देनेवाला चन्द्रमा उदय हो रहा है ॥ ८७ ॥
चन्द्रमामें जिसे आप कलङ्क समझते हैं वह कलङ्क नहीं बरन्
विष्णुकी देहका सौवलापन है क्योंकि तीनों लोकोंका सन्ताप
दूर करनेके लिये, मेघोंकी-सां परम सुन्दर कान्तिवाले परम पवित्र
विष्णु भगवान् ही तो बहुत बनठनकर चन्द्रमाके रूपमें उदय
हुए हैं । यही सौवलापन उनकी पहचान है जिसे देखकर कुमुद-
समूह (पृथ्वी-मंडल) खिल उठता है ॥ ८८ ॥ अपने पतियोंके
साथ बैठे हुई जिन सुन्दर नेत्रवाली पुत्रतियोंकी देहपर कामसे
उत्पन्न स्वेदजल (पसीने) की बूँदें निकल रही थीं उनके
सामने जब चन्द्रकान्त मखिले बनी पुत्रलियोंपर चन्द्रमाकी
किरण पड़नेसे जलकी बूँदें छू गईं तो उन पुत्रतियोंको
देखकर स्त्रियोंकी बड़ा आश्चर्य हुआ कि ये हमारी सौतें कहाँसे
निकल आईं ॥ ८९ ॥ चन्द्रमा पहले एक कला लेकर उदय हुआ,
फिर आधा दिखाई दिया और इसके पश्चात् वह पूरा गोल

तु युतिशालिनोऽपि सहस्रोपचयम् ॥ ६० ॥ प्रथममङ्ग-
णच्छायस्तावत्ततः कनकप्रभस्तवनु विरहोत्ताम्यत्त-
न्वीकपोलतलयुतिः । उदयति ततो ध्वान्तध्वंसलमः
क्षणदामुखे सरसविशिनीकन्दच्छेदच्छविर्मृगलाञ्छनः
॥ ६१ ॥ प्रसारणपरैः करैः प्रकटितानुरागोदये सुधा-
किरणकामुके त्वरितमम्बरात्मिनी । तदा विगलितो-
लसस्तिमिरजालनीलांशुका पुरन्दरदिगङ्गना पुलकितैव
तारागणैः ॥ ६२ ॥ प्राचीनाचलचुम्बिचन्द्रमणिभिनि-
र्व्यूढपाद्यं निजैर्निर्वासैरुडभिर्निजेन वपुषा दत्तार्थला-
जाङ्गलि । अन्तःप्राङ्कलङ्कतुच्छमभितः साम्द्रं परिस्ती-
र्यते विम्यादङ्कुरभङ्गनैशिकतमः सन्दोहमिन्दोर्महः ॥ ६३ ॥
प्राचीभागे सरागे घरणविरहिणीकान्तवक्त्रे समुद्रे
निद्रालां नीरजालां धिकसति कुमुदे निधिकारे चकारे ।
आकाशे सावकाशे तमसि शममिते नागलीके सशोके
कन्दर्पे मन्दर्पे धितरति किरणाञ्छर्परीसार्वभौमः ॥ ६४ ॥

हो गया । ठीक है, तेजस्वी लोग भी अचानक बहुत बड़े
गर्जन हो जाते, उनकी भी उछलित धीरे-धीरे हो होती है ॥ ६० ॥
अन्धकारका नाश करनेवाला और रसमयी कमलिनीकी अङ्कुर-
कुण्डके समान उजला चन्द्रमा रातके पहले पहरमें कुछ-कुछ
जाल, फिर सुनहरा और उसके परचात् विरहियाँके गालके
समान हलका पीलापन लेकर उदय हो रहा है ॥ ६१ ॥
चन्द्रमाक्षी कामीने अपने किरणरूपी हाथ चलाकर लज्जाहं-
रूपी प्रेम प्रकट करके अब शीघ्रतासे अम्बर (आकाश, ब्रह्म)
एकदकर खींचा उस समय इन्द्रकी ध्वारी पूर्व दिशाक्षी
नायिकाके शरीरसे चमकीले चँधेरेरूपी काँचे बरस जिससे गंध
और वह ऐसी प्रसीत हुई मानों तारोंके रूपमें उसके रोप
उठ खड़े हुए हों ॥ ६२ ॥ उदयाचलको चूमनेवाली चन्द्रकान्त
मणियाँ (चाँदनी पड़नेसे रिसनेवाले अपने जलसे) जिसे
पैर धोनेको जल दे रही हैं, निकलकर चारों ओर छिटके हुए
तारे भी धानकी खीलों बनकर जिसे अर्घ्य दे रहे हैं और जिसकी
किरणों रातके चँधेरेको पूरा मिटा चुकी हैं वह चन्द्रमाकी चाँदनी
उस चन्द्रमण्डलसे निकलकर चारों ओर फैल रही है जिसके
भीतरकी कालिमा ऐसी लगती है मानो वह बीचसे खोलका
हो ॥ ६३ ॥ जिसके आगे ही पूर्व दिशाक्षी नायिका रागयुक्त
(लाल, प्रेमपूर्ण) हा गई, विरहियाँ पृथ्वीके दुःखसे समुद्रके
मुखपर झुर्रियाँ (लहरें) पड़ गईं, कमल सो गए,
कुमुदिनियों खिल गईं, चक्रोर प्रसन्न हो गए, आकाश स्वच्छ

प्राणायामोपदेशा सरसिरुहमुनेर्यौवनोन्मादलीलागो-
ष्ठीनां पीठमर्दस्त्रिभुवनचनितानेत्रयोः यातराशः ।
कामायुष्टोमयज्वा शमितकुमुदिनीमौनमुद्रानुरागः
शृङ्गाराद्वैतवादी प्रभवति भगवानेषु पीयूषभाजुः
॥ ६४ ॥ प्रेरितः शशधरेण करौघः संहतान्यपि नूनोद-
तमांसि । क्षीरसिन्धुरिच मन्दरभिधः काननान्यविर-
लोचतकणि ॥ ६६ ॥ प्लुष्टानां सखि खण्डांशुदुःसहो-
दीप्तदीप्तिभिः । सुधांशुजगतां दाहं निराकर्तुमुपस्थितः
॥ ६७ ॥ भवनोदरेषु परिमन्दतया शयितोऽलसः
स्फटिकयष्टिरुचः । अवलम्ब्य जालकमुखोपगतानुद-
तिष्ठद्विन्दुकिरणाम्बुनः ॥ ६८ ॥ भानावभ्युदिते तथा
मयि गते किं स्यान्मम प्रेयसी हा हेरयस्तमितः शशी
रसवशाद्दिग्दीवरिण्याः स्मरन् । सौऽयं सम्प्रति
नीलिमाङ्किततनुस्तस्माद्दीदृश्यते ये वै यत्किल संस्म-
रन्ति चरमे तद्रूपमेध्यान्ति ते ॥ ६९ ॥ भूयस्तराणि

हो गया, अन्धकार गढ़ हो गया, सर्प आकुल हो गए और
कामदेवका घमंड टूट गया वह रात्रिका स्वामी सत्ताई चन्द्रमा
अपनी किरणों चारों ओर फैलाने लगा ॥ ६४ ॥ कमलरूपी
मुनिको प्राणायामका उपदेश देनेवाले (मुरझानेवाले)
पीवनके मदकी लीलाओंके सहायक, तीनों कोकोंकी युवतियोंके
नेत्रोंके कलेश, कामायुष्टोम (काम उत्पन्न करनेवाला)
यज्ञ करनेवाले, शास्त्र कुमुदिनीकी मौन मुद्राके अनुराग,
शृङ्गारके साथ अद्वैत माननेवाले (पुल-मिलकर रहनेवाले)
और अमृतमयी किरणोंवाले भगवान् चन्द्रमा उदय हो रहे
हैं ॥ ६५ ॥ चन्द्रमाकी किरणोंने घने चँधेरेको इसी प्रकार
मिट्टा दिया है जैसे मन्दराचलसे मधकर ढिखोड़े जाते समय
और-समुद्रने बड़े-बड़े घने वृक्षोंवाले वनोंको उजाड़ दिया
था ॥ ६६ ॥ हे सखी ! सूर्यकी प्रसाहनीय किरणोंके तापसे
जले हुए संसारका दाह दूर करनेके लिये ही यह अमृतमयी
किरणोंवाला चन्द्रमा आ पहुँचा है ॥ ६७ ॥ भवनोंके भीतर
चँधेरा पाकर वहाँ सोया हुआ और आँखस्यसे भरा हुआ
कामदेव, सिद्धियोंमेंसे होकर भीतर पड़ती हुई स्फटिककी
सुदियोंके समान कमकती हुई चन्द्रमाकी किरणोंका सहारा
लेकर उठ खड़ा हुआ ॥ ६८ ॥ चन्द्रमा यही स्मरण करता हुआ
अस्य हुआ था कि 'सूर्यके उदय होनेपर और मेरे खले जानेपर
मेरी प्रेयसी नीली कमलिनीका क्या होगा !' इसीलिये उसका
हृदय काला पड़ गया है क्योंकि अन्तिम समय जो जिसे

यदमुनि तमस्विनीषु ज्योत्स्नीषु च प्रविरलानि ततः
प्रतीमः । सन्ध्यान्लेन भृशमम्बरमृषिकायामावर्तिनैरु-
डभिरेव कृतोऽयमिन्दुः ॥ १०० ॥ मनोजराजस्य
सितातपत्रं श्रीखण्डचित्रं हरिद्वजनायाः । विराजति
न्योमसरःसरोजं कर्पूरपूरप्रभमिन्दुविभवम् ॥ १०१ ॥
मयूखनखरत्रुटितिमिरकुम्भिकुम्भस्थलोककुलत्तरलता-
रकागणविकीर्णमुकागणः । पुरन्दरहरिहरीकुहरगर्भ-
सुतोत्थितस्तुपारकरकेसरी गगनकाननं गाहते ॥ १०२ ॥
मानिनीजनविलोचनपातात्रुण्णवाप्यकलुषाःप्रतिगृह्णन् ।
मन्वमन्दमुदितः प्रययां खं भीतभीत इव शीतमयूखः
॥ १०३ ॥ मृगराजकरजभङ्गुरकिंशुककुसुमावर्तसकाः
सुदृशः । भयसङ्कुचदङ्कमृगं यद्वलज्ज्वलमिन्दुमीचलते
॥ १०४ ॥ मृगाङ्कोऽयं धत्ते गगनजलतः फेनतुलनां
सितच्छाफारां मदननृपतेर्विश्वजयिनः । त्रियामारा-
मायां मलयजविशेषप्रतिहृतिं जगद्ग्रीवेभ्यः मणिमु-

कुटलचमीञ्च विमलाम् ॥ १०५ ॥ यं प्राक्प्रत्यगवागु-
दञ्चि ककुभां नामानि सन्निभ्रतं ज्योत्स्नाजालभलज्म-
लाभिरमिनो लुम्पन्तमन्धं तमः । प्राचीनादचलादित-
स्त्रिजगनामालोकवीजाद्द्विनिर्गन्तं हरिणाङ्गमदुर-
मिय द्रष्टुं जनो जीवति ॥ १०६ ॥ यः कालागरुपत्र-
भङ्गरचनावासैकसारायते गंगाङ्गीकृचकुम्भभूरिसुभ-
गभोगे सुधाधामनि । विच्छेदानलदीपितां क्यनिता-
चेतोऽधिवासोद्भवं सन्तापं घनिनीपुरेण वितन्तरङ्गेन-
ताङ्गि स्मरः ॥ १०७ ॥ यः श्रीखण्डतमालपत्रति दिशः
प्राच्या स्मरदमापतेः पाण्डुच्छत्रति दन्तपत्रति घियल-
चमीकुरङ्गीदृशः । केलिध्वेनसद्वस्त्रपत्रति रतेः किञ्च
लुपायोपिनः क्रीडाराजतसीधुपात्रति शशी सोऽयं
जगन्नेत्रति ॥ १०८ ॥ यन्पीयूषमयूखमालिनि तमः स्तो-
माधलीढायुषां नेत्राणामपमृत्युहारिणि पुरः सूर्याद
पवातिधा । अम्भोजानि पराञ्च तन्निजमघं दस्थैव

स्मरण करता है, अगले जन्ममें उसे वैसा रूप मिल जाता
है ॥ १०१ ॥ छिटीकी हुई चाँदनीवाली रातोंमें जो ये छिट-फुट तारे
दिखाई पड़ते हैं इससे हमारी समझमें यही आता है कि सन्ध्या-
रूपी अग्निने डेरसे तारोंको आकाशरूपी आँखोंमें टाककर ही यह
चन्द्रमा बना डाला है ॥ १०० ॥ कामदेवके उजले छत्रके
समान, दिशाक्षरूपी नायिकाके स्तनोंपर मलय चन्द्रनसे घने हुए
चित्रके समान, आकाशरूपी सरोवरके कमलके समान और
कपूरके डेरके समान उजला चन्द्र-विषय चमक रहा है ॥ १०१ ॥
हृदयकी धारी पूर्व दिशाक्षरूपी कन्दराके भीतर सोकर उठा
हुआ, अपने किरणरूपी नखोंसे अन्धकाररूपी हाथीका मस्तक
काटकर उससे निकले हुए चञ्चल ताररूपी मोती बिखेरता
हुआ यह भीतल किरणोंकी अयाबोंवाला चन्द्रमारूपी सिंह
आकाशरूपी वनमें विचरण कर रहा है ॥ १०२ ॥ यह ठयकी
किरणोंवाला चन्द्रमा कहीं हुई नायिकायाँकी आँखोंसे उसे
हुए कुछ-कुछ गरम आँखरूपी पापोंके बोझसे डरे हुएके समान
धीरे-धीरे आकाशमें उड़्य हुआ ॥ १०३ ॥ मृगराज (सिंह) के
नखोंके समान दिखाई पड़नेवाले टेपूके फुलोंसे सजी हुई
सुनयनी नवेलियाँ उस अत्यन्त उजले चन्द्रमाको देख रही हैं
जिसकी गोदमें मृग डरके मारे सिकुड़ा जा रहा है ॥ १०४ ॥
यह चन्द्रमा आकाशरूपी जलके फेनके समान, सारे संसारपर
विजय पाए हुए कामदेवरूपी राजाके उजले छत्रके समान, रात्रि-
रूपी नायिकाकी छातीपर चन्द्रनके लेपके समान और पृथ्वीरूपी

देवीके स्वयं मुकुटी मणिके समान सुन्दर प्रतीत हो रहा है
॥ १०५ ॥ जो चन्द्रमा दिशाक्षोंके पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण नाम
धारण करता है, चाँदनी बिखेरता है, किरणोंसे चारों ओर घिरे
हुए आँधरेको मट करता है तथा प्रकाशके बीजरूपी उदयाचलसे
निकलते हुए चक्रके समान लगता है उसे देखनेके लिये ही
मानो सारा संसार जो रहा है ॥ १०६ ॥ हे भुके हुए अज्ञोंवाली !
आले अगारकी चित्रकारीमें निवास करनेवाला यह कामदेव, गोरी-
गोरी नवेलियोंके चढ़ाँ जैसे अत्यन्त सुन्दर स्तनोंके समान तथा
अमृतमय प्रकाशवाले चन्द्रमामें भी, अपने हाथ (किरण) फैला-
फैलाकर वियोगाग्निसे कट पाती हुई नवेलियोंके भी जलानेवाली
आग भरे दे रहा है ॥ १०७ ॥ पूर्व दिशाके मलय चन्द्रन
और तमालके पत्तोंके समान, कामदेवरूपी राजाके पोले छत्रके
समान, हिरनके समान आँखोंवाली आकाशकी खचमीके दन्त-
पत्र (कर्णफूल) के समान, रतिके हाथोंमें खेजके लिये लिए
हुए श्वेत कमलके समान और रात्रिरूपी नायिकाकी आँखोंमें
चाँदीके मधुपान्नके समान प्रतीत होनेवाला यह चन्द्रमा आज
संसारका नेत्र बन रहा है ॥ १०८ ॥ सूर्यने जो अमृतमयी
किरणोंवाला तथा घने आँधरेके कारण दम घुटकर मरनेवाले
नेत्रोंको अकाल मौतसे बचानेवाला अतिथि बुलाया उसके
आगेपर हन कमलोंने आँखें मूँदकर जो उसका अनादर किया
उसके कारण चन्द्रमाने अपना पाप कमलोंको दे दिया और
उनके पुण्य लेकर यह यज्ञोंका स्वामी चन्द्रमा गोरी

तेभ्यस्ततो गौराङ्गीवदनोपमासुकृतमादसे पतिर्यज्व-
नाम् ॥ १०६ ॥ यथा ताराचक्रं चरति परितः शोकर-
निभं कलङ्कव्याजेन स्फुरति यदयं धूमनिचहः । तथा
मन्ये चण्डीपतिनयनचण्डाग्निवशागच्छकारास्मिन्मन्त्राणां
हिमकरतटाके मनसिजः ॥ ११० ॥ यातस्यास्तमनन्तरं
दिनकृतो वेपथे रागाम्बितः स्वैरं शीतकरः करं कम-
लिनीमालिङ्गितुं योजयन् । शीतस्पर्शमुपेत्य सम्प्रति
तया रुद्धे मुखाम्भोरुद्धे हासेनेव कुमुदतोवनितया वैल-
ज्यपाण्डुरकृतः ॥ १११ ॥ युगपद्विकासमुदयाद्रमिते
शशिनः शिलीमुखमणोऽलभत । द्रुतमेत्य पुष्पधनुषो
धनुषः कुमुदेऽङ्गनामनासि चावसरम् ॥ ११२ ॥ ये पूर्वं
यवसूचिसूत्रसुहृदो ये केतकाग्रच्छुद्धच्छायासाम्यभृता
मृणाललतिकालावलयभाजोऽत्र ये । ये धाराम्बुधि-
उन्मिथः क्षणमथो ये तारहारभिवस्तेऽभी स्फाटिकद-
ण्डदम्बरजितो जाताः सुधांशोः कराः ॥ ११३ ॥

रक्तभावमपहाय चन्द्रमा जात एव परिशुद्धमण्डलः ।
विक्रिया न खलु कालदोषजा निर्मलप्रकृतिर् स्थिरो-
दया ॥ ११४ ॥ रक्तोऽयं क्षणप्राप्यः समुदितो व्योम
प्रपद्याभितो विभवं वीक्ष्य च पद्मिनीमुखरसं लुब्धः
प्रपातुं चिरम् । निद्राणां बहुधा करैः परिमृशन्स्वा-
यत्ततामस्रमो नेतुं पाण्डुरतां दधत्कुमुदिनीमाराधयन्स-
क्षलः ॥ ११५ ॥ रजनीमवाव्य रुचमाप शशी सपदि
व्यभूष्यदसावपि ताम् । अखिलम्बितकममहो महता-
मितरेतरोपकृतिमञ्जरितम् ॥ ११६ ॥ वज्रनिर्गमनमा-
दिनक्षयात्पूर्वदृष्टतनुचन्द्रिकास्मितम् । पततुन्निरति
रात्रिचोदिता दिग्गहस्थमिव चन्द्रमण्डलम् ॥ ११७ ॥
लक्ष्मीक्रीडातडागो रतिधवलगृहं दर्पणो दिग्बधूनां
पुष्पं श्यामालतावास्त्रिभुवनजयिनो मन्मथस्यातपत्रम् ।
पिण्डीभूतं हरस्य स्थितममरसरित्पुण्डरीकं मृगाङ्गो
ज्योत्स्नापीयूषवापी जयति सितवृषस्तारकागोकुलस्य

नवेलियोंके मुँहकी बराबरी पानेका पुष्प भोग रहा है
॥ १०६ ॥ मेरी समझमें तो यह थाता है कि चण्डीपति
भगवान् राक्षसके तीसरे नेत्रकी चमिले जब कामदेव जल
ठठा तब वह इस चन्द्रमाकृपी ललाचमें कूद पड़ा, उसका
धुआँ ही इसमें कलङ्क पन गया है और कामदेवके कूदनेसे
उड़ी हुई धूँ में आज भी इसके चारों ओर तारोंके रूपमें छिटी
हुई हैं ॥ ११० ॥ सूर्यके अस्त हो जानेपर उसका रूप धरकर
अनुराग-भरे (लाल) चन्द्रमाने बड़ी चाहते कमलिनीका
आलिङ्गन करनेके लिये उहाँ हाथ बढ़ाया त्योंही उसके
ऊपे हाथों (किरणों) का स्पर्श पाकर कमलिनीकृपी नायिकाका
कुन्दर मुख सङ्कुचित हो गया । यह देखकर चन्द्रमाकी
कुमुदिनीकृपी पत्नी हैस पड़ी और उस हैसिके कारण चन्द्रमा
लजाकर पीला पड़ गया ॥ १११ ॥ चन्द्रमाके उदय होनेपर
कामदेवके धनुषका कुमुद और युवतियोंके मन दोनों एक साथ
विकसित हुए और इन दोनोंपर भटपट भँरे और बाँधने
पहुँचकर अपना स्थान और अपने लक्ष्य साध लिए ॥ ११२ ॥
जो किरणें पहले जौकी नाकके समान, फिर केशकीके तुकाजे
सिंदूरके समान, उसके परचाह कमलकी नाकके समान, सब
जलकी धाराके समान और अन्तमें पद्मज हारके समान बड़ीं
वे ही चन्द्रमाकी किरणें अब स्फटिकके डबड़ेकी शोभा जातने-
वाली हो गई हैं ॥ ११३ ॥ अब चन्द्रमा अपनी खाकी छोड़कर
स्वच्छ हो गया है । सत्य ही है शुद्ध स्वभाववालांमें जो

समयके दोपसे विकार उत्पन्न हो जाते हैं वे बहुत दिनोंतक
नहीं ठहर पाते ॥ ११४ ॥ रातके प्रियतम चन्द्रमाने (प्रेमसे
भरकर, लाल होकर), उदय होकर, आकाशमें चारों ओर
धूमकर सारे संसारका सोता देखकर कमलिनीके प्रथकोंका रस
देरतक पीनेके लिये लज्जाकर अपनी किरणों (हाथों) से
उसे अपने वक्षमें छानेका बड़ा उपाय करनेपर भी सफलता
नहीं पाई तब वह उदास (पीला) पड़ गया और तुरन्त ही
कुमुदिनीकी मनाने लगा ॥ ११५ ॥ रात्रिके कारण चन्द्रमाने चमक
आ गई अतः उस चमकीले चन्द्रमाने भी रात्रिकृपी नायिकाको
सजा दिया । ठीक भी है, बड़े लोग शीघ्र ही एक दूसरेके उप-
कारका बदला चुका देते हैं ॥ ११६ ॥ दिन दूबनेतक जो निकल
नहीं पा रहा था और पहलेसे ही जिसकी थोड़ी-सी चाँदीकृपी
मुस्कराहट दिखाई दे रही थी ऐसे चन्द्रमण्डलको रात्रिकी प्रेरणा
पाकर पूर्ण दिशामें ऐसे बाहर निकाला मानो कोई रहस्य खोज
रही हो ॥ ११७ ॥ लक्ष्मीकी क्रीडाका सरोवर, कामदेवकी पत्नीका
स्वच्छ घर, दिशात्पी नायिकाओंका दर्पण, श्यामा नामकी
लताका फूल, तीनों लोक जीत लेनेवाले कामदेवका छत्र,
शिवजीकी मुसकानका इकट्ठा किया हुआ पिण्ड, देवताओंकी
नदीका कमल, किरणरूपी अमृतकी भावड़ी और सारेरूपी
गौओंके समूहका उज्जला सौंदर्यरूपी चन्द्रमा चारों ओर विजय
पा रहा है ॥ ११८ ॥ जिस प्रकार वाराहावतारमें विष्णुने
अपने सोनेके टङ्के समान सुनहरे वृत्तांसे पृथ्वी-मंडलकी

॥११८॥ लेखया विमलविद्रुमभासा सन्ततं तिमिरमि-
न्दुवदासे । वृष्ट्या कनकटङ्कपिशङ्गया मण्डलं भुव-
इषादिवराहः ॥ ११६ ॥ लोचनैर्न कुमुदं स्म पीयते
चन्द्रिकासपतिरोदितच्छदम् । प्रादुरास परमुत्पि-
श्रुतिः सौरभं निरवलम्बमभ्युनि ॥ १२० ॥ वसुधान्त-
निःसृतमिवाहिपतेः पटलं फणामणिसद्वचरुचाम् ।
स्फुरदंशुजालमथ शीतलम्बः ककुभं समस्फुरत माघ-
वनीम् ॥ १२१ ॥ विद्यापीठं स्मरस्य त्रिपुरहरजटाव-
ल्लितसन्तानवानप्रस्थो मानद्रुमाणमुपशमपरशुः पांसु-
लावम्दिकारः । नेत्राणां वन्धुरन्धर्गगनमरुभुवः कोक-
लोकप्रणयस्वाध्यायाध्यापकोऽयं विलसति कुलटा-
कालपाशो हिमांशुः ॥ १२२ ॥ विशदप्रभापरिगतं
विवभाशुदयाचलव्यवहितेन्दुवपुः । मुखमप्रकाशदर्शनं
शनैः सविलासहासमिव शक्रदिशः ॥ १२३ ॥ धीधीय
धीधीयुविलासिनीनां मुक्तानी संवीक्ष्य शुचिस्मितानि ।
जालेषु जालेषु करं प्रसार्य लावण्यमिषामदतीय चन्द्रः

ऊपर उठा लिया था उसी प्रकार चन्द्रमाने कमलके हुए मूँगोंकी
कात्तिवाली किरणोंसे धँधेश दूर कर दिया ॥ ११६ ॥ यद्यपि पूरी
चौंदीभी न पड़नेसे मूँगे हुए कुमुदोंका शोभा देखनेमें नहीं आ
रही थी किन्तु उनकी गन्ध पीता हुआ भीरा बिना सहारे ही
जलके ऊपर सँवराने लगा ॥ १२० ॥ शेषनागके सहस्रों फणोंकी
मणियोंकी कमल लेकर, पृथ्वीको फाँदकर निकले हुए काम्तिपुत्रके
समान चन्द्रमाकी किरणोंने पूर्व दिशाकी शोभा बढ़ाई ॥ १२१ ॥
कामदेवका विद्यालय, शिवजीकी जटाघाँमें बानप्रस्थ आश्रम
बितानेवाला, नवेलियोंके मानरूपी वृक्षोंको काटनेका करसा,
व्यभिचारिणी स्त्रियोंका कारागार, नेत्रोंका हिनेपी, आकाशरूपी
महत्पत्रका मसीरा, चक्रे चक्रियोंकी बोलना सिखानेवाला
अभ्यापक तथा कुलटा स्त्रियोंका कालपाश चन्द्रमा बड़ी शोभा
पा रहा है ॥ १२२ ॥ सुन्दर कमल-दमकके साथ उदयाचलमें
छिपे हुए चन्द्रमाका शरीर ऐसा प्रतीत होता है मानो
इन्द्रकी प्यारी पूर्व दिशाका वह हाव-भावसे भरी मुसकानसे
सजा हुआ मुख हो जिसमें दौँत न दिखाई देते हों ॥ १२३ ॥
चन्द्रमाकी फेनी हुई किरणें (हाथ) ऐसी जान पड़ती हैं
मानो वह गली-गलीमें रमणियोंके पवित्र मुसकान-भरे मुख
देखकर उनकी सिद्धाकियोंके घागे अपने हाथ (किरण) फैला-
फैलाकर उनसे सौन्दर्यकी भिन्न मँग रहा हो ॥ १२४ ॥
केवड़ेके फूलके परागके समान पोली तथा दूरतक फैली हुई
चन्द्रमाकी किरणें ऐसी जान पड़ती हैं मानो इन्द्रकी प्यारी पूर्व

॥ १२४ ॥ व्यानशे शशधरेण विमुक्तः केतकीकुसुमके-
सरपाण्डुः । चूर्णमुष्टिरिव लम्बितकान्तिर्वासवस्य
विशमंशुसमूहः ॥ १२५ ॥ शङ्करार्धतनुवद्धपार्वतीकुङ्कु-
माककुचफोरकाकृतिः । स्रज्यते कमलिनीभिरुन्नम-
त्पद्मकोशकरलीलया शशां ॥ १२६ ॥ शारनां गमितया
शशिपादैश्छायया विटपिनां प्रनिपदे । न्यस्तशुक्लवलि-
चित्रतलाभिस्तुल्यता वसतिवेशममहीभिः ॥ १२७ ॥
शीतांशुस्फटिकालवालचलयद्रागुल्लसत्कौमुदीवल्लीन् ।
तनपल्लवाञ्चितमिव प्राप्य क्षणं तान्त्रताम् । चञ्चल-
सचकोरयश्चघटनाच्छिन्नाप्रकाण्डसुतशीरस्यन्दिनर-
न्तराक्षुनमिव भूतं धियद्वासते ॥ १२८ ॥ शुचीनां
हंसानां हरति मलिनानां मधुलिहां मनो वेश्यादेश्या
द्रविणप्रखिलं या कमलिनो । तमस्येवाद्रव्यं भवति
विमुक्ती तच्छ्रियमसां कलाधानादसे प्रथममनुरागप्र-
कटनैः ॥ १२९ ॥ श्वेतेऽद्यापि न पश्चिमो कुमुदिनी
सान्तःस्मिता वर्तते रागात्किञ्चन किञ्चिदेव गण-

दिशाकी कमलकी धीरे अधिक कमलानेके लिये चन्द्रमाने
मुहोंमें भरकर सूर्य कँक दिया हो ॥ १२५ ॥ चर्चनारीश्वर
भगवान् शङ्करजीके आधे शरीरमें पार्वतीजीके कुङ्कुम - पुते
स्तनके समान कर्जोंके आकारवाले चन्द्रमाकी चौर कमलकी
गालें अपने कमलके कोपकूपी हाथ उठा-उठाकर दिखा रही हैं
॥ १२६ ॥ वृक्षोंकी शाखाओंमेंसे छनकर आती हुई चन्द्रमाकी
किरणें पृथ्वीपर पड़ी हुई ऐसी जान पड़ती हैं मानो अनेक रत्नोंसे
चाँदी हुई भवनोंके भीतरकी भूमि हो ॥ १२७ ॥ चन्द्रमाकूपी
स्फटिकके धाँवलेकी गालाँमें निकली नई चौंदीकूपी ललाके
नये पत्तोंके समान जो यह आकाश धाँकी देरके लिये तौँबके
रङ्गका (लाल) हो गया है उससे ऐसा जान पड़ता है मानो
चन्द्रमाकूपी धाँवलेमें उगी हुई चौंदीकूपी ललाकी कोंपलोंमें
चकोरकी बाँच लग जानेसे जो दूध बहा है उसीसे आकाश
स्वच्छ दिखाई दे रहा है ॥ १२८ ॥ जो कमलिनी-रूपी बेरया
पवित्र हंसोंका मन और दुष्ट भीरोंका सारा धन लूटे बैठी थी,
वह जब मम (अन्धकार, लुहारे) के कारण विमुक्ती (मुक्त) हुई,
कुरुपा) हो गई और उसे धन भी मिलना बन्द हो गया
तब कलावान् (चन्द्रमा, चंद-धूर्त) उससे अनुराग (जलार्द्र, प्रेम)
दिखा-दिखाकर उसकी सारी बटोरी हुई ओ (शोभा, संपत्ति) लूटे
ले रहा है ॥ १२९ ॥ अभी कमलिनीचौँ सोई नहीं थी, कुमुदिनी
भी भीतर ही भीतर मुसकरा रही थी कि इसी बीच चन्द्रमाको
जाळ होकर (प्रेमपूर्वक) धीरे-धीरे अपनी कमलनाल-सी कोमल

यत्प्रेष स्पृशत्यम्बरम् । इत्युद्भिन्नमृणालकोमलकरे
शीतघृतौ तत्तृणाद्यामिव्या नवयोपितेव शमितो
दीप्तास्त्वयामीश्वरः ॥ १३० ॥ श्लिष्यतः म्रिय-
वधूरुपकण्ठं तारकास्ततकरस्य हिमांशोः । उद्ध-
मभ्रभिरराज समन्तादङ्गराग इव लोहित-
रागः ॥ १३१ ॥ संरम्भोद्विक्तनक्तसमयदशमु-
ल्लोचनएडदोर्दण्डहेलाकैलासः सप्तलोकीजयमुदितम-
नोजन्मवादिप्रशङ्कः । लोलालीगण्डपालीलघणिमज-
लघेरुद्रतः फेनपिण्डः पश्य व्योमावकाशं विशति
विरहिणां दसशङ्कः शशाङ्कः ॥ १३२ ॥ संविधातुभ-
भिपेकमुदासे मन्मथस्य लसदंशुजलौघः । यामिनीव-
नितया ततचिह्नः सोमपलो रजतकुम्भ इवेन्दुः ॥ १३३ ॥
सद्यश्चन्दनपङ्कपिच्छिलमिव व्योमाङ्गलं कल्पयन्पश्यै-
रावतकान्तवस्तुसलच्छेदोपमेयाकृतिः । उद्गच्छत्य-
यमच्छमौक्तिकलतामालम्बलम्बैः करैर्मुग्धानां स्मर-
लोकवाचनकलाकेलिप्रदीपः शशी ॥ १३४ ॥ समुम्भी-

लत्पूर्वावलशिखरदूर्वाधनमृगीपरीरम्भक्रीडारसपुलकि-
तोत्सङ्गहरिणः । पुलिन्दीकन्दर्पकलममपनयशंशुपटलैः
पतिर्नञ्जराणां अहह भगवानभ्युदयते ॥ १३५ ॥
स थीकण्ठकिरीटकुट्टिमपरिष्कारमदीपाङ्कुरो देवः
कैरवयन्धुरन्धतमसप्राग्भारकुत्तिम्भरिः । सँस्कृता
निजकान्तिमौक्तिकमणिधरणीभिरणीदृशां भीर्वाणाधि-
पतेः सुधारसयतीपारोगधः प्रोदमात् ॥ १३६ ॥
सार्यं नायमुदेति वासरमणिश्चन्द्रो नु चण्डधुति-
र्दाघाभिः कयमम्बरे किमशनिः स्वाकृष्टान्तरिक्षे
कुतः । हस्तेदं निरणायि पान्थरमणीप्राणानिलाश-
शया धावद्घोरविभायरोविषधरीभोगस्य भोमो मणिः
॥ १३७ ॥ सुधयेव हरत्येव सन्तापं गृहिणां सवा ।
तदेव द्विजराजेति मथिताऽस्वामिधाऽभियः ॥ १३८ ॥
सुधारश्मिः सद्यस्तिमिरनिकरान्तं विरचयन्मलि-
न्देभ्यः स्यन्दं शशिमणिसमुत्थं च वितरन् । उदेत्यादौ
रक्ताम्बुजसमकचिः कैरवचने प्रमोदं तन्वानो मधुप-

किरयों (हाथ) कैलाकर अम्बर (आकाश, वज्र) धृते देवकर
रात्रिरूपी नायिकाने तत्काल लेजम्बी सूर्यरूपी दीपक हुआ
दिवा ॥ १३० ॥ चन्द्रमाके निकलनेपर चारों ओर छाई हुई
लताई ऐसी जान पड़ती है मानां अपनी प्यारी तारिकाकृपी
बहुओंको गले लगानेको जब चन्द्रमाने राग (लताई, प्रेम) से
अपने कर (किरण) फैलाए तो उससे चारों ओर रांगराग (कुम्भ)
बिखर गया हो ॥ १३१ ॥ देखो, रातके समय विरहीजनोंको
प्राप्त देनेवाला यह चन्द्रमा रावणके प्रचण्ड हाथोंसे खेल-खेलमें
अचानक उछाले हुए कैलासके समान, सानों लोकोंकी विजयसे
प्रसन्न कामदेवके शत्रुके समान तथा चंचल आँखोंवाली नायिकाके
गालरूपी खारी समुद्रसे निकले हुए फेनके गालेके समान
दिखाई देता हुआ आकाशरूपी विस्मृत चंद्रमें प्रवेश कर रहा है
॥ १३२ ॥ कामदेवके राग्याभिपेकके लिये सुन्दर किरणरूपी
जलसे भरे हुए, रात्रिरूपी नायिकाके हाथोंसे चीत-चीतकर
सजाए हुए और सुँहपर कमल रखे हुए चाँदीके घड़ेके
समान यह चन्द्रमा कदा शोभा दे रहा है ॥ १३३ ॥
देखो, चन्द्रनके जोड़ेसे आकाशरूपी आँगनमें फिसलन भरता
हुआ, घेरारत हाथीके सुन्दर दाँतरूपी मूलके टुकड़ेके समान
दिखाई देनेवाला और कामदेवके लेख पढ़नेकी कलाके लिये क्रीडा-
दीपरूपी यह चन्द्रमा स्वर्ण मोनियोंकी लड़ीके समान दिखाई
पढ़नेवाले अपने घुटनोंपर लम्बे किरणरूपी हाथोंसे सहारा

लेकर ऊपर आकाशमें चढ़ रहा है ॥ १३४ ॥ चाँदीनीले लिले
उदयाचलकी चोटीके वृक्षके वनमें लड़ी हुई भूरीका आसिद्धन
करनेके ध्यानसे जिन चन्द्रमाकी गोदमें बैठा हरिण पुष्पकित
हो रहा है वे वृक्षोंके स्वामी चन्द्रमा अपनी किरणोंसे नवेसी
भीलनीकी कामकीदाकी धकावट मिटाते हुए उदय हो रहे हैं
॥ १३५ ॥ शिवजीके मुकुटमें जड़े रत्नको चमकानेवाले दोरेकी
कौ, कुमुदोंको भिलानेवाला, कंधरेकी रीतों कोख भरनेवाला,
अपनी चमकीली मोती और मणिकी पल्लोंके समान किरणोंसे
मृगनयनी नवेलियोंका शृङ्गार करनेवाला तथा देवराज इन्द्रके
अमृतके रसोईघरका स्वामी चन्द्रमा उदय हो गया ॥ १३६ ॥
किसी पथिककी प्रियाने चन्द्रमाको देखकर अपने मनमें सोचा
कि 'सार्यकाल सूर्य उदय नहीं होता, चन्द्रमाकी किरणें गरम
नहीं होती, जंगलकी अग्नि आकाशमें उड़ती नहीं और वज्र भी
स्वर्ण आकाशमें नहीं होता' अतः जीवन रहनेकी आशा बनाए
रखनेके लिये उसने यही निश्चय किया कि हो न हो, यह दीवली
हुई रात्रिरूपी नायिकके फणक पड़ा-सा मणि ही होगा ॥ १३७ ॥
यह चन्द्रमा अपने अमृतसे सदा गृहस्थोंका सन्ताप हरता
रहता है इसीलिये मानो सब लोग इसे 'द्विजराज' (आकाशमें
श्रेष्ठ) कहने लगे । यह ठीक ही है ॥ १३८ ॥ चणभरमें
अन्धकारके समूहको मिटाता हुआ, चारों ओर चन्द्रकान्त
मन्त्रिसे विसती हुई अलकी हैं विद्युक्ता हुआ, कुसुमके

वनितागीतिमधुरम् ॥ १३६ ॥ स्वर्गामाभृतपानधार-
वचकं किं कामदेवाङ्गनाकीडाकन्दुक एष किं सुरनदी-
खिरडीरपिण्डः किमु । किं छत्रं स्मरभूपतेः किमु
यशः पुञ्जं पुरस्तादिदं चेतःसंशयकारकं समुदितं
शीतघुतेर्मण्डलम् ॥ १४० ॥ स्वैरं कैरवकोरकान्विद-
लयन्यूनं मनो दोलयन्मोक्षानि निमीलयन्मृगदृशां
मानं समुन्मूलयन् । ज्योत्स्नां कन्दलयन्दिशो धवल-
यन्मोक्षमुद्वेलयन्कोकानाकुलैस्तमः कवलयन्निन्दुः
समुज्जम्भते ॥ १४१ ॥ हंसो यथा राजति पञ्जरस्थः सिंहो
यथा मन्दरकन्दरस्थः । वीरो यथा दर्पितकुञ्जरस्थ-
श्चन्द्रोऽपि वधाम तथाम्बरस्थः ॥ १४२ ॥

सकलकृष्णवर्णनम्—अहं केऽपि शशङ्किरे जल-
निधेः पङ्क परे मेनिरे सारङ्गं कतिचिच्च सञ्जगदिरे
भूच्छायमैच्छन्परे । इन्दोर्यद्वलितेन्द्रनीलशकलश्यामं
वरीदप्यते तत्सान्द्रं निशि पीतमधतमसं कुचिस्थ-

माचक्ष्महे ॥ १ ॥ अचक्षुप्रकाशयति चन्द्रमसि
प्रियेऽस्मिन्नाह्लादकारिणि सुधावति पूर्णविन्दे । धाना
विचिन्त्य मनसाखिलदृष्टिपानं हतुं चकार किमु
कञ्जलविन्दुयोगम् ॥ २ ॥ अग्रान्तरं च कुलटाकुल-
वन्मपातसञ्जातपातक इव स्फुटलाञ्छनश्रोः । वृन्दा-
वनान्तरमदीपयद्दशजालैर्दिक्सुन्दरीयदनचन्दनविन्दु-
रिन्दुः ॥ ३ ॥ अयं पुरः पार्वणशर्वरीशः किं दर्पणोऽयं
रजनीरमण्याः । यतस्तदीयं प्रतिचिम्बमस्मिन्संज्ञयते
साञ्छनकतचन ॥ ४ ॥ अवातः प्रागल्भ्यं परिणतदचः
शैलतनये कलङ्को नैवायं विलसति शशाङ्कस्य वपुषि ।
अमुष्येयं मन्ये विमलदमृतस्यन्दशिशिरे रनिश्रान्ता
शेते रजनिरमणी गान्धमुरसि ॥ ५ ॥ अस्तं गतवति
सचितरि पायसपिण्डं सुधाकरं प्राची । विरचयव-
म्बरकुशभुवि चरति कलङ्कस्तदन्तरे काकः ॥ ६ ॥
आयताप्रसितरश्मिनियतं साञ्छनकलवि-मपीरसवि-

जगोंमें भीरियोंके गीतोंका सुमधुर रस फैलाता हुआ और
निकलते समय काल कमलके समान दिखाई देनेवाला चन्द्रमा
अब ऊपर उठता जा रहा है ॥ १३६ ॥ देवनेवालोंके मनमें यह
सन्देह उत्पन्न करते हुए चन्द्रमा उदय हुआ कि 'यह आकाश-
गङ्गाका अमृत पीनेके लिये सुन्दर प्याला है, या कामदेवकी
पत्नीकी लेखनेकी गेंद है, या गङ्गाके फेनका गोला है या
कामदेवकी राजाकी कीर्तिका डेर है' ॥ १४० ॥ मनमाने ढङ्गसे
कुमुदकी कजियाँ खिजाता हुआ, युवकोंके मन छुजाता हुआ,
कमलोंको मुरकाता हुआ, हरिणके समान नेत्रोंवाली युवतियोंका
मान नष्ट करता हुआ, चाँदनी बहाता हुआ, दिशाओंको
स्पर्श करता हुआ, समुद्रको लहराता हुआ और चक्रेको
प्याकुल करता हुआ यह चन्द्रमा खिला पड़ रहा है (शोभा
दे रहा है) ॥ १४१ ॥ जैसे पिंजड़ेमें बन्द हंस, पर्वतकी
गुफामें बैठा हुआ सिंह और मतवाले हाथीपर बैठा हुआ
वीर शोभा देता है वैसे ही आकाशमें निकला हुआ चन्द्रमा
भी शोभाके साथ घूमने लगा है ॥ १४२ ॥

कलङ्कधाते चन्द्रमाका वर्णन : चन्द्रमाके भीतर जो
हृन्मनील-मणिकी कान्तिको भी नीचा दिखानेवाला साँवलापन है
उसे देखकर कुछ जोगोंने समझा कि यह चिह्न खग गया है,
कुछ जोगोंने मान लिया कि यह समुद्रका कीपड़ है (यह
समुद्रका पुत्र है अतः पिताके कीपड़का अंश इसमें भी था
क्या है), कुछने कहा कि यह युग है और कुछने सोचा कि यह

धरतीकी छाया है, पर हम तो समझते हैं कि चन्द्रमाने
अभी जो घना धँधरा पो डाला है, वही इसकी काँचमें रक्खा
भस्मक रहा है ॥ १ ॥ उजली चाँदनीवाले, चापन्त प्यारे, मन
प्रसन्न करनेवाले और अमृतसे भरे-पूरे गोले चन्द्रमामें
जोगोंकी कुडीठ बचानेके लिये ही तो गह्वाने यह काजलका
बिठौना नहीं लगा दिया है ? ॥ २ ॥ दिशाकूपी सुन्दरियोंके माथेपर
कने हुए चन्द्रके टीकेके समान उस गोले चन्द्रमाने अपनी
किरणोंकी चाँदनीसे वृन्दावनको नहला दिया, जिसने अपनी
खासीपर कुलटाओंके पापसे उत्पन्न काले कलङ्कके समान कालिमा
धारण कर रखी थी ॥ ३ ॥ पड़ जो सामने पृथिवीका चन्द्रमा है
वह क्या रात्रिकूपी नाविकाका दर्पण है जिसमें उस नवेलीका
प्रतिबिम्ब कलङ्कके रूपमें दिखाई पड़ रहा है ॥ ४ ॥ चन्द्रमाके
शरीरमें यह जो साँवलापन डीठ होकर चमक रहा है उसे
कलङ्क न समझो, वरन् यह तो रतिले धकी हुई रात्रिकूपी नवेली
है जो चन्द्रमाकी अमृतके झरनेसे शीतल बनी हुई छातीपर पड़ी
गहरी नींद ले रही है ॥ ५ ॥ चन्द्रमामें कलङ्क ऐसा जान पड़ता
है मानो सूर्यके अस्त होनेपर उसकी प्यारी पूर्व दिशाकूपी
नाविकाने चावल और दूधसे बनी खीरके पिण्डके समान
दिखाई देनेवाले चन्द्रमाको आकाशकूपी कुशासनपर रख दिया
हो और उसके बीचमें यह कलङ्करूपी कौवा उसे बैठा खा
रहा हो ॥ ६ ॥ चन्द्रमाके कलङ्कको देखकर कवि कहता है कि
'यह कामदेवका पुत्र तो नहीं है जो लम्बी, उजली किरण-

धम् । चन्द्रकैतवमरुपटवकं क्रीडयोन्युजति किं स्मरवालः ॥ ७ ॥ इन्दोरेककलाया रुद्रेणोद्धृत्य मूर्धनि धृतायाः । स्थानमिष तुच्छमेतन्कलरूपेण परिणमति ॥ ८ ॥ कलाधिनाथानयनाय सायं कुमुदनीमेषित एष भृङ्गः । किमिन्दुनालिङ्ग्य सराममङ्गे कृतः कलङ्कधम-मातनोति ॥ ९ ॥ काश्मोरेण दिहानमम्बरतलं वामभ्रु-वामाननद्वैराज्यं विदधानमिन्दुरपदां भिन्दानमम्भः-सिराः । प्रत्युद्यत्पुरुषतपस्तनवधूदत्तार्द्धर्वाङ्कुरसीषो-रत्नङ्कुरङ्गमैन्दवमिदं विभ्यं समुज्जम्भते ॥ १० ॥ कृष्णवर्णहृदयं सितदीप्तिं दुर्धियः किल कलाङ्गिन-माहुः । कृष्णवर्णसमुदीर्यमाणमात्रादेव यद्वलति दृश्य-कलङ्कः ॥ ११ ॥ तरुणतमालकोमलमहोमसमेतवयं कलयति चन्द्रमाः किल कलङ्कमिति व्रथते । तद्वृत-मेव निर्दयविध्वन्तुदवन्तपद्मवर्णविधरोपदशितामदं हि विभाति नभः ॥ १२ ॥ वृष्टे जगद्गुणि कालभुजङ्गमेन

तत्रान्धकारमिषमाविरभूद्विषं यत् । सञ्जातलक्ष्मणि तदिन्दुमणौ निपात्य ज्योत्स्नामये पयसि तन्निपति स्म धाता ॥ १३ ॥ दापागमनमाशङ्क्य रविरेष तिर-हितः । कथमिन्दुः समायाति कुतः शङ्का कलाङ्गिनः ॥ १४ ॥ नेदं नभोमण्डलमम्बुराशिर्नैताश्च तारा नव-फेनभङ्गाः । नायं शशो कुरडलितः फणीन्द्रो नासौ कलङ्कः शयितो भुरारिः ॥ १५ ॥ मद्योषमातङ्गमनङ्ग-देवस्तुङ्गं समारुह्य समागतोऽयम् । सिन्दूरिते तस्य सुधांशुकुम्भे किमङ्कुशो लक्ष्ममिवेण दत्तः ॥ १६ ॥ मधुवतांधः कुपितः स्वकीयमधुमपापमभिभीलनेन । विभ्यं समाकम्य बलान्सुधांशोः कलङ्कमङ्गे धुवमात-नोति ॥ १७ ॥ मन्थानभूमिधरमूलशिलासहस्रसङ्घटन-मणिकणः स्फुरतीन्दुमध्ये । छाया सृगः शशक इव-तिपाभराकिस्तेषां कथञ्चिदपि तत्र हि न प्रसाक्तः ॥ १८ ॥ मम मिथां कैरविणां करेण सन्तापयामास

रूपी डोरमें जैसे हुए तथा काली स्थाहीने पीले हुए पत्रको ही चन्द्रमा बनाकर उड़ा रहा है ।' ॥ ७ ॥ कलङ्कसहित चन्द्रमाको देखकर ऐसा लगता है कि शङ्करजीने चन्द्रमामेंसे उसकी जो एक कला निकालकर अपने सिरपर धारण कर ली उसीका स्थान रीता हो जानेसे वह काला दिखाई पड़ने लगा ॥ ८ ॥ चन्द्रमाका कलङ्क ऐसा जान पड़ता है मानो चन्द्रमाकी प्यारी कुसुदिनियोंमें चन्द्रमाको बुलानेके लिये जो भीरा भेजा उसे चन्द्रमाने वड़े प्रेमसे गले लगाकर अपनी गोदीमें धर लिया हो ॥ ९ ॥ केशरसे आकारको रंगता हुआ, तिरछी चितचनवाली नवेलियोंके मुँहोंपर चमककर अपना दूसरा राजप स्थापित करता हुआ तथा चन्द्रकान्त मणियोंके भीतरकी जलधाराएँ बहाता हुआ चन्द्रमाका वह विभ्र लक्षिता हुआ उदय हो रहा है जिसे अमरावतीकी अप्सराएँ वह अर्घ्य दे रही हैं जिसमें तूबके अङ्कुर देखकर चन्द्रमाकी गोदमें बैठे सृगके मुँहमें पानी आ रहा है और वह मस्त हो रहा है ॥ १० ॥ उजली किरणवाले चन्द्रमाको मूर्ख लोग काला हृदयवाला कहते हैं इसीलिये मानों यह चन्द्रमा कृप्य पक्षमें अपना कलङ्क बराबर गलाया करता है ॥ ११ ॥ जो लोग सोचते हैं कि चन्द्रमामें यह बड़े-बड़े तमाल-पत्रोंकी हल्की-सी कालिमाके समान दिखाई देनेवाला कलङ्क है उन्हें चन्द्रमा उचर देता है कि 'यह बात झूठ है । निन्दुर राहुने जो अपने पिने दाँत गढ़ाएँ उन्हींके छेदसे यह आरपार आकाश दिखाई दे रहा

है' ॥ १२ ॥ यह कलङ्क चन्द्रमा ऐसा जान पड़ता है मानों जब समयरुपों सर्वने संसारका इस लिया ताँ उससे कंधेके रूपमें जाँ विप प्रकट हुआ उसे ब्रह्माजने पड़े तो चन्द्रमारूपी मणिकुम्भे बुकाया किन्तु उसमें चिह्न लगा देखकर चाँदनीरूपी सृग्में वे उसे भाँप डाल रहे हैं ॥ १३ ॥ दोषा (रात्रि, पाप) के आनेकी सम्भावना जानकर जब पूर्व भी अस्ताचलकी चला गया, तब यह चन्द्रमा क्यों निकला चला आ रहा है ? हाँ, ठीक है, कलङ्कीकी तो इसी समय चाँदी है ॥ १४ ॥ कलङ्कसहित चन्द्रमाको देखकर कवि कहता है—'यह आकाशका मण्डल नहीं बरन् समुद्र है, ये तारे नहीं बरन् फेनके छोटे-छोटे डुक्के हैं, यह चन्द्रमा नहीं बरन् कुचड़की मारे हुए शेषनाग है और यह कलङ्क नहीं बरन् शेषनागपर सोए हुए विष्णु है' ॥ १५ ॥ यह कामदेव ही तो जैसे प्रदोष (रात्रिके प्रारम्भ) रूपी हाथीपर चढ़कर नहीं आ रहा है जिसके सिन्दूर-भरे चन्द्रमारूपी माथेपर यह कलङ्कके रूपमें अङ्कुश दिखाई दे रहा है ॥ १६ ॥ जब भीतोंके मधुकी पागशाला अथात् कमल सिङ्क गये तब उन्होंने हठपूर्वक चन्द्रमाके बिम्बपर आक्रमण कर दिया । वही भीतोंका भुयङ्क कलङ्क-सा दिखाई पड़ रहा है ॥ १७ ॥ चन्द्रमाकी छातीपर मन्दराचलकी पेंदीके पत्थरोंकी राक्षसे घाव हो जानेके कारण जो चिह्न पड़ गए हैं उन्हींको मूर्ख लोग छाया, हरिय और खरगोश कहा करते हैं, पर इन वस्तुओंकी पहुँच भला चन्द्रमातक हो ही कैसे सकती है ॥ १८ ॥ चन्द्रमामें कलङ्क ऐसा जान पड़ता है मानो

दिनाधिनाथः । इतीव दुःखैधिकलः कलावान्पयो
विषं लक्ष्ममिषेण सद्यः ॥ १६ ॥ यत्नं विरहिणं कञ्चि-
त्प्राप्तयामास तेजसा । यत्न एव विलोमेन सैल्लघोऽभू-
द्विधौ तयः ॥ २० ॥ रङ्गावङ्गगते त्रिविष्टपवनोत्तेलकु-
रङ्गीगणैः साकं क्रीडनकौतुकेन रभसादुन्मन्य याते
विषम् । तच्छायायानुगतान्ममूर्तिरधुना धर्तुं तमेनं
शरी मन्दं व्यायतरश्मिजालकलितः स्थाप्यं समानेहति
॥ २१ ॥ क्वचिभिरभितष्टङ्कोत्कीर्णैरिव वसरेणुभिर्यद-
ङ्गभिरपि कञ्चैवैः स्थूलैरिव भ्रियते नभः । प्रकृतिम-
लिनो भास्वद्विभ्योऽमृतजाकृतकर्मणस्तदयमपि हि त्वष्टुः
कुम्भे भविष्यति चन्द्रमाः ॥ २२ ॥ शम्भरारिरमृतं
विषमर्मे चन्द्रविष्यकपटात्प्रयुक्ति । यद्वहिः सिन्ध-
मधासितमन्तः प्रोषितान्दहति दर्शनमाश्रान् ॥ २३ ॥
शिवभालानलोत्थेन धूमयोगेन कालिमा । विधौ
शुक्लतरे किं वा इति मग्मानसाशयः ॥ २४ ॥ समय-
शबरो ध्योमारण्ये सुधाशनमक्षिकासुविहितसुधावि-

म्यत्तौद्रस्फुरत्पटलं प्रति । कलयति कलङ्काक्ष्यं धूमं
निपीड्य पुनश्च तत्किरति मधुरज्योत्स्नात्तौद्रं मही-
तलभाजने ॥ २५ ॥

चन्द्रभलाशयम्—अकलङ्कचन्द्रकलया कलिता सा
भाति वादली तरुणी । भालस्थलीष शम्भोः
सन्ध्याध्यानोपविष्टस्य ॥ १ ॥ नेदं व्याम यतो न तत्र
सुशकं गन्तुं जनैर्मनन् किल स्थानं पुण्यकृतामनध
न विधुर्वापाकरोऽसां यतः । किं त्वम्भोऽधुरयश्च
तस्य सलिलोद्धाराय मित्राङ्गनाक्षितो रश्मिभिरञ्ज-
लैरनुगतः कुम्भा महान् राजतः ॥ २ ॥

ज्योत्स्नाशयम्—अपि पियत चकोराः कृत्स्नमु-
ग्राम्य कण्ठं क्रमकयलनचञ्चलञ्चञ्चलमिन्द्रिकाग्रः ।
विरहविधुरितानां जीविनप्राणहेतोर्भवति हरिणलक्ष्मा-
येन तेजोद्विद्धः ॥ १ ॥ आलोफ्य चन्द्रमसमभ्युदितं
समन्ताद्ब्रह्मदूमिचिचलत्कलशाभ्युराशेः । विष्यग्वि-
सारिपत्माणुपरम्परैव ज्योत्स्नात्मना जगदिदं धव-

उत्तने इस दुःखसे व्याकुल होकर तत्काल कलङ्क रूपी विष पी लिया
हो कि सूर्यने अपने किरणरूपी हाथसे मेरी प्यारी कुमुरिनीको
बहुत मक्कभोर डाला ॥ १६ ॥ चन्द्रमाने अपने तेजसे किसी विरही
पक्षीको कष्ट दिया होगा वही अब अपना नाम उलटकर
(अर्थात् चम बनकर) चन्द्रमाको लग गया है ॥ २० ॥ चन्दन
वनमें चौकड़ी भरती हुई मृगियोंके साथ खेलनेकी इच्छासे जब
चन्द्रमाकी गोदमें बैठा मृग बेगसे कुर्छाँगें भरता चला तो
चन्द्रमा उसे पकड़नेके लिये उसीकी छायाके पीछे-पीछे हाथमें
अपना किरणरूपी जाल लेकर स्वयं आकाशमें चला आ
रहा है ॥ २१ ॥ सूर्यके गोलेकी शाश्वर चढ़ाकर चमकानेवाले
विषकर्मने चन्द्रमाके गोलेमें जो टॉकी लगाई, उससे जो बड़े-
बड़े टुकड़े टूटकर गिरे वे तारोंके रूपमें तथा जो सूक्ष्म कण गिरे
वे किरणोंके रूपमें आकाशमें भर गए हैं अतः जान पड़ता है
कि अब यह स्वभावसे मखिन चन्द्रमा भी विरवकर्मके शाश्वर
चढ़ाया जानेवाला है ॥ २२ ॥ यह चन्द्रमा नहीं है, यह तो
चन्द्रमाके रूपमें विष-भरा अमृत है जिसी कामदेव परदेसियोंको
जलानेके लिये काममें ला रहा है । यह बाहरसे उज्जला और भीतर
काष्ठा है और इसे देखते ही जोग जल जाते हैं ॥ २३ ॥ मुझे ऐसा
लगता है कि 'शङ्करजीके माथेकी आगसे निकला हुआ धुआँ
लगनेसे ही तो स्वच्छ चन्द्रमामें यह कालिमा नहीं लग गई
॥ २४ ॥ कलङ्कसहित चन्द्रमा ऐसा जान पड़ता है मानो

कालरूपी भीखने आकाशरूपी वनमें अमृत पीनेवाली
मधुमन्त्रियों-द्वारा बनाए हुए अमृत-मिख (चन्द्रमा) रूपी
मधुके लोको कलङ्करूपी धुआँ दिलाकर उसमेंसे चाँदनी-
रूपी मधु निकालकर दृष्टीरूपी पात्रमें भरना प्रारम्भ कर दिया
हो ॥ २५ ॥

चन्द्रमाकी कला : कलङ्क-रहित चन्द्रमाकी कलासे सजी
हुई परिचय दिशाकृपा युवती ऐसी सुशोभित हो रही है जैसे
सन्ध्या समय प्यानमें रेंडे हुए शङ्करजीका सजावट हो ॥ १ ॥
चन्द्रमाको देखकर कवि कहता है 'यह आकाश नहीं है क्योंकि
यहाँ तो किसीकी पहुँच ही नहीं है तथा पुण्यधामोंका स्थान
भी नहीं है क्योंकि यहाँ तो दोषोंका भयकार (राशि करनेवाला)
चन्द्रमा बैठा हुआ है किन्तु यह जलसे भरा हुआ वह कुर्छाँ है
जिसका जल लींचनेके लिये ऊपरसे सिद्धोंकी पत्नियोंने
किरणरूपी रस्सियोंमें फँस कर चाँदीका बिणाल घड़ा लटकाया
है' ॥ २ ॥

चाँदनी : कुत्तर-कुत्तरकर खानेके लिये अपनी चञ्चल
होर चलावनेवाले हे चकारो ! अपना सिर उठाकर चाँदनीरूपी
जल भरपेट पी जो क्योंकि विरहसे दुखी खोंगोंके जीवनकी
रक्षाकी चिन्तामें चन्द्रमा अपनी किरणोंसे रहित हो रहा है
(निस्तेज हो रहा है) ॥ ३ ॥ चन्द्रमाको उदय हुआ देखकर
चारों ओरसे उड़ते हुए समुद्रकी खहरोंकी फुहारें ही चारों ओर

लीकरोति ॥ २ ॥ इन्दोरस्य त्रियामायुवतिकुचतटी-
चन्दनस्थालकस्य व्योमश्रीचामरस्य त्रिपुरद्वरजटाव-
ल्लरीकोरकस्य । कन्दर्पक्षोणिपालस्फटिकमणिगृहस्यै-
तदाखण्डलाशानासामुक्ताफलस्य स्थगयति जगतीं
कोऽपि भासां विलासः ॥ ३ ॥ उन्मीलन्ति मृणाल-
कोमलदधो राजीवसंवर्तिकासंवर्तव्रतवृक्षयः कतिपये
पीयूषभानोः कराः । अभ्युर्ध्ववल्लीभवस्तु गिरिषु
जुधोऽयमुन्मज्जता विश्वेनेव तमोमयो निधिरपामङ्गाय
फेनायते ॥ ४ ॥ एतत्तर्क्य कैरवक्लमहरे शृङ्गारदीक्षा-
शुरी दिक्कान्तामुकुरे चकोरस्तुट्टदि मां दे तुषारत्विधि ।
कर्पूरैः किमपूरि किं मलयजैरालेपि किं पारवैरक्षालि
स्फटिकोपलैः किमघटि घाघापृथिव्योर्यपुः ॥ ५ ॥ किं
तु ध्वान्तपयोधिरेव कसकक्षादैरिवन्दोः करैरत्य-
च्छोऽयमधश्च पङ्कपटलं छायापदंशदभूत् । किं वा

बाँदनीके रूपमें उड़कर संसारको उजला बना रही हैं ॥ २ ॥
शतरूपी नवेलीके स्तनोंपर पुते चन्दनपर जमकर बैठे हुए तथा
आकाशरूपी लक्ष्मीके चँवरके समान, शङ्करजीकी जटाओंकी
लताओंके गूदेके समान, कामदेवरूपी राजाके स्फटिक पाथरसे
बने घरके समान और पूर्व दिशाकी नायिकाके नाकमें मोतीके
घेसरके समान दिखाई देनेवाले चन्द्रमाकी किरणोंका फैलाव
सारे संसारको बाँधे डाल रहा है ॥ ३ ॥ अमृतमयी किरणोंवाले
चन्द्रमाकी कमलनालके कोमल तन्तुओंकी सी कान्तिवाली ये कुछ
किरणें जमक रही हैं जिन्होंने कमलकी गई-गई पंखुधियोंपर
प्रलय ढानेकी ठान ली है । उन किरणोंके पड़ते ही अब पर्वतकी
छोटियाँ जमजमाने लगती हैं तो ऐसा जान पड़ता है मानो
सारा संसार लुप्ट होकर चँधेरेके समुद्रमें डूबकर दिनके लिये
छुटपटा रहा हो और उससे तत्काल उस समुद्रमें फेंक डालने
लगता हो ॥ ४ ॥ कुमुदिनियोंकी धकावट दूर करनेवाले, शृङ्गार
रसकी शिखा देनेवाले, दिशारूपी नायिकाके दर्पण, चकोर
पंखोंके मित्र और ठपसी किरणोंवाले तरुण चन्द्रमाके सम्बन्धमें
यह तो जाकर समझो कि उसने क्या आकाश और पृथ्वीका
शरीर कपूरसे भर दिया है या मलय चन्दनसे ढोल दिया है या
पारसे धो डाला है या सङ्गरमरमसे सजाकर नया कर दिया है
॥ ५ ॥ आकाशपर छिटकी हुई स्वच्छ चाँदनीको देखकर कवि
सोचता है कि 'यह निर्मलीके बीजके चूर्णरूपी चन्द्र-किरणोंसे
निधारकर निर्मल किए हुए अन्धकारके समुद्रके नीचे छायाके
रूपमें जमा हुआ कीचड़का ढेर है या चन्द्रमाकी किरणरूपी

तत्करकर्तरीभिरभितो निस्तक्षणादुज्ज्वलं ध्योमैवेव-
मितस्ततश्च पतिताश्चायाञ्छलेन त्वचः ॥ ६ ॥ दल-
विततिभृतां तले तरुणामिह तिलतण्डुलितं मृगाङ्क-
रोधिः । मद्वचपलचकोरचञ्चुकोटीकवलनतुच्छमिषा-
न्तरातन्त्राभूत् ॥ ७ ॥ नैवायं भगवानुदञ्चति शशी गन्धू-
तिमात्रीमपि घामघापि तमस्तु कैरवकुलश्रीघादुकाराः
कराः । मथनन्ति स्थलसीमं शैलमहानोत्सङ्केषु संद-
न्धते जीवप्राङ्मिव कचित्कश्चिदपि छद्यासु गृह्णन्ति
च ॥ ८ ॥ पालोमीकुचकुम्भकुङ्कुमरजस्सम्पर्कदूरी-
ज्जताः शीतांशोद्युतयः पुरन्दरपुरीसीमामुपस्कृष्येते ।
एताभिलिङ्गतीभिरन्धतमसान्युद्धन्तीभिर्विशः क्षोपी-
मास्तृणतीभिरन्तरतमं ध्योमेवमोजायते ॥ ९ ॥
भास्वत् ककंशशाण्डककपणैराकाशकालायसाद्यपूर्णं
निदिष्टं निपत्य तम इत्याण्यां जगत्यामगात् ।

कैचीसे झिले हुए उजले आकाशके चारों ओर बिखरा हुआ
उसका छिटा हुआ मैल ॥ छाया बनकर फैल गयाई' ॥ ६ ॥ बने
पत्तोंवाले पृथ्वीसे चुनकर धरतीपर पड़ी हुई छायाके साथ मिलकर
चाबल और तिल मिले ॥ ढेरके समान दिखाई देनेवाली
चन्द्रमाकी किरणें ऐसी जान पड़ती हैं मानो मदसे चञ्चल चकोरने
अपनी ठोरोसे किरणें चुन ली हों और बीच-बीचमें स्थान शेष
बच गया हो ॥ ७ ॥ भगवान् चन्द्रमा अभी आकाश-मार्गमें ही
कोस भी नहीं चल पाए थे कि कुमुदिनियोंके समूहकी शोभाका
गुण गानेवालों किरणोंने धरतीकी सीमापर छापा हुआ अन्धकार
भट कर दिया, पहाड़की भवावली गोदमें कहीं-कहीं छिपे हुए
चँधेरेको ढेर लिया और कहीं-कहीं अन्धकारको इस प्रकार
पकड़ लिया जैसे कोई प्राणी किसी दूसरे प्राणीको पकड़ रहा
॥ ८ ॥ चाँदनीको देखकर हम समझते हैं कि कलशके समान
बड़े-बड़े इन्द्राणीके स्तनोंपर कुङ्कुमकी धूलसे मिलकर जो
चन्द्रमाकी किरणें गर्वसे फुली नहीं समा रही थीं वे इन्द्रकी
नगरी (पूर्व दिशा) की सीमापर चढ़ती हुई, चँधेरेको चाटती
हुई, दिशाओंको बाँधती हुई और पृथ्वीको खिलती हुई
आकाशको जमकाए दे रही हैं ॥ ९ ॥ कठोर शायके चमकते
हुए चक्के (चन्द्रमा) की रगड़से आकाशरूपी लोहेका
जो डुरादा (चूर) चारों ओर गिरा वह तो चँधेरा
कड़वापा और जो सिद्ध पारेकी बड़ी-बड़ी चञ्चल बूँदोंके समान
चन्द्रमाके सामने पड़कर चाँदीके घूरेके समान स्वच्छ हो
गया, उसे ही हम लोग चाँदनी कह रहे हैं ॥ १० ॥ पूरे लिये

यद्येवोऽलसिद्धपारदमहाविन्दोः समायोगतो जातं
रूप्यरजोमयं धयमिदं ज्योत्स्नां समाचक्षते ॥ १० ॥
मुग्धा दुग्धधिया गवां विदधते कुम्भानधो बल्लावाः
कर्णे कैरवशङ्कया कुचलयं कुर्वन्ति कान्ता अपि ।
कर्कम्धूपलमुच्चिनोति शयरी मुक्ताफलाकाङ्क्षया
सान्द्रा चन्द्रमसो न कस्य कुरुते चित्तभ्रमं चन्द्रिका
॥ ११ ॥ यन्त्रद्रावितकेतकोदरदलकोतशिथ्यं विभ्रती
येयं मौक्तिकदामशुम्भनविधां योग्यच्छयिः प्रागभूत् ।
उत्सेह्या कलशोभिरञ्जलिपुटेप्रांक्षा मृणालाङ्कुरैः
पातय्या च शशिन्यमुग्धविभवे सा चन्द्रिका वर्तते ॥ १२ ॥
सह कुमुदकदम्बैः काममुल्लासयन्तः सह घनतिमिरांघ्रै-
र्धैर्यमुत्सारयन्तः । सह सरसिजखण्डैः स्वास्तमासील-
यन्तः प्रतिविशममृतांशोरंशयः सञ्चरन्ति ॥ १३ ॥ सित-
किरणकपोलीमालिमालोकयन्ती तिमिरविहतापय्या-
कुलां व्योमलक्ष्मीम् । रजनिरमलताराशीकरैः सिक्त-
मस्याः परिमलयति गात्रं चन्द्रिकाचन्द्रेण ॥ १४ ॥

चन्द्रास्तवर्णनम्--अदृशकिरणजालैरन्तरिक्षे गतर्क्षे
चलति शिशिरवाते मन्दमन्दं प्रभाते । युवति-
जनकदम्बे नाथमुक्तांष्टयिष्ये चरममिग्नितम्ये चन्द्र-
विष्यं ललम्बे ॥ १ ॥ अस्मां हि दत्त्या तिमिराचकाश-
मस्तं व्रजत्युन्नतकोटिरिन्दुः । जलावगाढस्य घनद्वि-
पस्य तीक्ष्णं विधाणाग्रमिवावशिष्टम् ॥ २ ॥ उदयमु-
दितदीप्तिर्याति यः सङ्गती मे पतति न वरमिन्दुः
सोऽपरांमेव गत्वा । स्मितरुचिरिद्य सद्यः साभ्यस्यं
प्रमेति स्फुरति विशदमेवा पूर्वकाष्टाङ्गनायाः ॥ ३ ॥
कलङ्कशो गगनाम्बुराशौ प्रसार्य चन्द्रातपतन्तु-
जालम् । लघोऽङ्गुलीनां जघु सञ्जिघृक्षुश्चन्द्रस्य स्थधरमा-
धिमेति ॥ ४ ॥ चरममिग्निकुरङ्गीष्टकण्डयनम
स्वपिति सुखमिदानीमन्तरिन्दुः कुरङ्गः । परिणत-
रविगर्भव्याकुला पौरुड्वती दिगपि घनकपोतोदुङ्कृतैः
कुप्यतीव ॥ ५ ॥ जरठ इव मरालां जर्जराग्रैर्मयूखैः
स्कलति शिशिरभानुः पश्चिमाम्भोधिपारे । श्लथ-

हुए चन्द्रमाकी किरणों किसको धोकेमें नहीं डाल रही है क्योंकि
एक भोली-भाली नवेली उन्हें दूधकी भार समझकर गीलोंके
घनोंके नीचे पड़ा से जाकर रक्त रही है, दूसरी नवेली उन्हें
कुमुदिनी समझकर कानोंपर रखनेके लिये हाथ बढ़ा रही है और
एक भीसनी उन किरणोंसे चमक उठनेवाले बरोंको मोती
समझकर बटोरे ले रही है ॥ ११ ॥ जो चाँदनी पहले यन्त्रसे दबाकर
निचोड़े जाते हुए केशवके फूलके कांशसे भरते हुए उसके समान
तथा गूँधी जाती हुई मोतीकी मालाके समान सुन्दर जग रही
थी वही अब कितने हुए चन्द्रमामें भरकर कलसियोंमें भर-भर
सींचने योग्य, अञ्जलिमें रक्त लेने योग्य तथा कमलनाखसे पीने
योग्य हो रही है ॥ १२ ॥ कुमुदके फूलोंको सिलानेके साथ-
साथ कामदेवकी भी जगाती हुई, चँधेरा नष्ट करनेके साथ
वियोगियोंका भीरज भी तोड़ती हुई तथा कमलोंको सङ्कुचित
करनेके साथ सब लोगोंके हृदय भी दूसरे विषयोंसे हटाकर
कामक्रीडामें लगाती हुई चन्द्रमाकी किरणें सब दिशाओंमें फैल
रही हैं ॥ १३ ॥ अन्धकाररूपी विरहके तापसे व्याकुल आकाशरूपी
कक्ष्मीभी देख-भास करती हुई रात्रि ताररूपी धूँहाँसे सींके
हुए उसके शरीरपर चन्दनका लेप कर रही है ॥ १४ ॥

चन्द्रके अस्त होनेका वर्णन : जब मानेवाकी सूर्यकी
किरणोंने तारोंको भगा दिया, प्रातःकाळका वायु धीरे-धीरे
बहने लगा, प्रेमियोंने अपनी प्यारियोंके ओठ चूमना बन्द कर

दिया, उस समय चन्द्रमा भी पश्चिमापलकी ओर बढ़ गये ॥ १ ॥
चँधेरेको चारों ओर फैलनेका जबसर देकर डूबते हुए चन्द्रमाकी
एक कला भर दिखाई पड़ रही है उस समय ऐसा जान पड़ता
है मानो कोई ऐसा जंगली हाथी पानीमें डूब गया हो जिसके
पैने दाँतकी ओर भर बाहर बची रह गई हो ॥ २ ॥ पूर्व दिशा
रूपी नायिकाके मुखपर आई हुई चमक पेसी जान पड़ती है
मानो वह दाहसे प्रसन्न होकर कह रही हो कि 'जिस
चन्द्रमाका प्रकाश मेरे साथ रहनेसे बढ़ता था और उसकी
उन्नति होती थी वही चन्द्रमा दूसरी नायिका (पश्चिम
दिशा) के सम्पर्कमें जाकर पतित हो रहा है (डूब रहा है)'
॥ ३ ॥ चँधेरे-रूपी मधुवेने आकाश-रूपी समुद्रमें चाँदनी-रूपी
जाज बिछाकर तारे-रूपी मछलियों कँसाई और अब उन्हें
बटोरनेके लिये चन्द्रमा-रूपी छोटी डोंगीपर चढ़कर पश्चिम-
समुद्रकी ओर चला जा रहा है ॥ ४ ॥ पश्चिमापलपर
रहनेवाली हरियोंने अपने सींगसे चन्द्रमाके कलङ्करूपी
सृगको जो सुजलाया तो उस आनन्दमें मस्त होकर वह
अब भी चन्द्रमाकी गोदमें सुखकी नींद ले रहा है । उसे
सोते देखकर कवूतरियोंके गलेके गुटरगूँसे पूर्व दिशा उस सोते
हुए सृगको डौंट रही है क्योंकि उसके गर्भसे सूर्य निकलने
॥ चले हैं ॥ ५ ॥ चन्द्रमाकी किरणें धुँधली पड़ गई हैं और
वह अब दूरे इसके समान पश्चिम-समुद्रके पार जा रहा है ।

गरुत इवाभूत्तत्र तत्रान्तरिक्षे विरलविरलभासः किञ्च
तारा लुडन्ति ॥६॥ नक्षत्रक्षितिनायकोऽथमधुना रुद्रः
प्रभातागमे सप्ताश्वेन बलीयसातिमहसा रोषारुणज्यो-
तिषा । अश्वद्वान्तशिरोरुहां प्रविगलत्तारालिहारा-
बलीमादाय क्षणदां प्रियां क्षितिधरं पाश्चात्यमारोहति
॥ ७ ॥ नवकुमुदवनश्रीहासकेलिप्रसङ्गादधिकरुचिरशे-
षामप्युषां जागरित्वा । अयमपरदिशोऽहं मुञ्चति
क्षस्तहस्तः शिशयिपुत्रिष पाण्डुम्लानमात्मानमिन्दुः
॥ ८ ॥ प्रफटमलिनलक्ष्मा मृष्टपत्रावलीकैरधिगत-
रतिशोभैः प्रत्युषःप्रोषितधीः । उपहसित इवासौ
चन्द्रमाः कामिनीनां परिणतशरकाण्डापाण्डुभिर्गण्ड-
भागैः ॥ ९ ॥ मन्दमग्निमधुर्यमोपला दशितभ्रवयधु
सामभवत्तमः । दृष्टयस्तिमिरजं सिपेचिरे दोषमोषधिप-
तेरसिद्धिर्धौ ॥ १० ॥ धिकसितमुखी रागासङ्गाद्वल-

चिमिरावृति दिनकरकरस्पृष्टामैन्द्रीं निरीक्ष्य विशं
पुरः । जरठलवलोपाण्डुच्छायो भृशं कलुषान्तरः
अयति हरितं हन्त प्राचेतसौ तुहिनद्युतिः ॥ ११ ॥
वृन्देन तारावलितपङ्कलानामङ्गेन च श्रीफलपङ्कथेन ।
अभ्यर्च्य जागेश्वरमिन्दुविभ्यं विसर्जयत्येष नभो-
मुनीन्द्रः ॥ १२ ॥ संश्लिष्टा सानुरागं स्वकरपरिचय-
माप्तभूरिमसादा या पूर्वा भुक्तपूर्वा रविकरकलितं
तामुदीक्ष्यामृतांशुः । निस्तेजाः पश्चिमाध्वी प्रविशति
हि सतां दुःसहो मानभङ्गः किं वक्तव्यं सितांशोः स
तु सकलसतां मण्डलस्यापि नेता ॥ १३ ॥ सपवि
कुमुदिनीभिर्मिलितं ह्य सपापि जयमगमप्येतास्तार-
कास्ताः समस्ताः । इति दयितकलप्रक्षिप्तयन्मङ्गमि-
न्दुर्यहति कशमशेषं अहशोभं शुषेव ॥ १४ ॥

कोकदशावस्थं-अपि तेजोमिधिर्हन्त पतितो

आकाशमें जं छिटफुट तारे टिमटिमा रहे हैं वे ऐसे जान
पड़ते हैं मानो आकाशमें जहाँ-तहाँ उसके पङ्क्तु बिकरे हुए
हों ॥ ६ ॥ जब प्रातःकाल सात घोड़ोंवाले अत्यन्त तेजस्वी
और गोधसे लाल-लाल चमकवाले सूर्यने नक्षत्रोंके राजा
चन्द्रमाको शोक दिया तब वह अपनी उस रात्रिरूपी प्यारीको
शेकर परिचमाचलकी घोर आ रहा है जिसके अन्धकार-रूपी
केश बिखर गए हैं और तारेरूपी हार टूट-टूटकर गिर पड़े
हैं ॥ ७ ॥ खिले कुमुदोंकी शोभारूपी नायिकाके साथ
भगवत् करता हुआ वह चन्द्रमा मस्त होकर रातभर जागा है
अतः अब सोनेके विचारसे अपने किरणरूपी हाथ डोले
करके अपने उजले तथा धुँधले शरीरको परिचम दिशा
रूपी नायिकाकी गोदमें डाल रहा है ॥ ८ ॥ प्रातःकाल
कामिनीयोंके पके हुए सरकपड़ेके समान उजले-उजले गाक
मानो चन्द्रमाकी खिल्ली उड़ा रहे थे क्योंकि चन्द्रमामें कलंक
दिखाई दे रहा था और उनके गालोंपरके सब बेल-बूटे
मिट गए थे; चन्द्रमाकी शोभा फीकी पड़ गई थी और
उनके गालोंमें सुरतसे चमक आ गई थी ॥ ९ ॥ जैसे वैद्यके
न रहनेपर किसीकी मन्दाग्नि, किसीको सूजन और किसीकी
अँखोंमें धुन्ध आ जाता है इसी प्रकार ओषधियोंके स्वास्ती
चन्द्रमाके न रहनेपर सूर्यकांत-मणिमें उजाला आने लगी,
संसारमें अँधेरा फैलने लगा और सबकी अँखोंके सामने अँधेरा
छा गया ॥ १० ॥ जैसे कोई युवक जब देखता है कि कोई दूसरा
युवक किसी हँसती हुई और शरीरसे नख गिराती हुई

नायिकाको लू रहा है तब वह हृदयमें कुदकर और चिन्तासे
पीछा पड़कर किसी दूसरी नायिकासे भाता जोड़ लेता है वैसे
ही जिसका आगेका भाग ललाईसे खिल गया है, जिससे
अँधेरा इट रहा है, ऐसी पूर्व दिशाको सूर्यकी किरणोंसे भिखते
देखकर पुरानी हरकारेवहीकी जड़के समान उजला तथा कलंक-
वाला चन्द्रमा दुखी होकर पश्चिम दिशामें आ रहा है ॥ ११ ॥
वह आकाशरूपी श्रेष्ठ मुनि, तारेरूपी अक्षतोंसे तथा कलंक-
रूपी बेलके पत्तोंसे चन्द्रमा-रूपी शंकरकी पूजा करके मानो
उसका विसर्जन कर रहा है ॥ १२ ॥ जब चन्द्रमाने देखा कि
जिस पूर्व दिशाका मैंने अनुराग-पूर्वक (लाल होकर, प्रेमेके
साथ) आखिजन किया था, अपने कर (किरण, हाथ) से
लूकर जिसपर कृपा की थी और जिसका उपभोग किया था उसे
सूर्यके कर (किरणों, हाथ) पकड़े हुए हैं तो वह उदास होकर
पश्चिम समुद्रमें डूबनेकी तैयारी कर रहा है । ठीक भी है, क्योंकि
जब साधारण सज्जन भी अपनी मानि-हानि नहीं सह सकते
तब सभी द्विजों (नक्षत्रों, आकाशियों) के राजा चन्द्रमाका तो
कहना ही क्या है ॥ १३ ॥ यह प्रेमी चन्द्रमा खल्लो इसी
चिन्ता और शोकमें अपना दुखला और धुँधला अस्ती हो
रहा है कि 'हाय ! कुमुदिनीने अँखें मूँद ली, रात भी वल
गई और मेरी सारी प्यारी तारिकाएँ भी नी-हो-ग्यारह
हुई' ॥ १४ ॥

चक्रवेकी दशाका वर्णन : सम्भवा समय चक्रा-चक्रवी
मानो इसी वैराग्यके कारण ही अलग हो जाते हैं कि जब

यदि जायते । सुरतं किमिवास्माकमिति कोकैर्वि-
शुज्यते ॥ १ ॥ आतपे धृतिमता सह वध्वा यामिनी-
विरहिणा विहगेन । लेहिरे न किरणा हिमरश्मेर्दुःखिते
मनासि सर्वमसहाम् ॥ २ ॥ आयाति याति पुनरेव
जलं प्रयाति पद्माङ्कुरस्य विचिनोनि धुनोति पक्षम् ।
उन्मत्तवद्भ्रमति कूजति मुक्तकण्ठः कान्तावियोग-
विधुरो निशि चक्रवाकः ॥ ३ ॥ इच्छतां सह वधूभिरेभं
यामिनीविरहिणां विहगानाम् । आपुरेव मिथुनानि
वियोगं लङ्घयते न खलु कालनियोगः ॥ ४ ॥ एकेना-
णा प्रविततकपा वीक्षते लम्बमानं भानोर्विम्यं जल-
विलुलितेनापरेण स्वकान्तम् । अकशेदे दयिताविर-
हाशङ्किनी चक्रवाको द्वौ सङ्कोर्णौ रक्षयति रसां नर्तकीव
प्रगल्भा ॥ ५ ॥ गम्यतामुपगते नयनानां लोहितायति
सहस्रमरीची । आससाद् विरहस्य धरित्रीं चक्रवाक-
हृदयान्यभितापः ॥ ६ ॥ अकाङ्क्षो विरही हतोऽपि

हृदये शालेन न त्यक्ताग्रगण्यमाणसमासमागमसुख-
ध्यानैकतानश्चिरम् । स्यां ह्यायामवलोक्य वागिणि
मलद्रक्तामवेच्य मिथां भ्रान्तस्तद्गणवदनापरिगतः
कष्टं मृतः साम्प्रतम् ॥ ७ ॥ तीरात्तारमुपैति रति
कलणं चिन्तां समालभ्यते किञ्चिद्व्यापति निश्चलेन
मनसा योगोद्युक्तक्षणः । स्यां ह्यायामवलोक्य
कूजति पुनः कान्तेति मुग्धः खगो धन्यास्ते भुवि ये
निवृत्तमनसो धिग्दुःखितान्काकिनः ॥ ८ ॥ दृष्टताम-
रसकेसरभ्यजोः क्रन्दतोर्विपरिवृत्तकण्ठयोः । निद्रयोः
सरसि चक्रवाकयोरुपमन्तरमनल्पतां भवम् ॥ ९ ॥
भङ्गुन्मत्ता भोक्तुं न भुङ्क्ते फुटिलयिसलताकोटिमि-
श्र्योर्धितर्कात्ताराकारास्तृणतः पिबति न पयसां विमृषः
पत्रसंस्थाः । ह्यायामम्भोऽह्नाणामलिकुलसवलां वसति
सन्ध्यामसन्ध्यां कान्ताविरलेपभीरुर्दिनमपि रजनीं
मन्यते चक्रवाकः ॥ १० ॥ मित्रे कापि गते सरोरुहवने

हृत्ते बड़े तेजस्वी सूर्यका पतन हो गया तब हम लोग क्या
रति करेंगे ॥ १ ॥ जो चक्रवा दिनेमें अपनी चक्रवाके साथ
रहनेके कारण रूप में भी प्रसन्न था वही रातमें चक्रवासे अलग
होनेपर चन्द्रमाकी ठंडी किरणें भी न सह सका क्योंकि जब
चित्त दुखी रहता है तब कोई भी वस्तु अच्छी नहीं लगती
॥ २ ॥ रातमें चक्रवाके वियोगसे दुखी होकर चक्रवा इधर-
उधर भटकता हुआ कभी जलके पास पहुँचता है, कभी
कमलके अङ्कुर पहुँचता है, कभी पंख फड़फड़ाता है, कभी
पागल-सा घूमता है और कभी गला फाड़-फाड़कर चिल्लाता
है ॥ ३ ॥ न चाहते हुए भी जो चक्रवा-चक्रवाके अलग
रहना ही पड़ता है, उसका कारण यह है कि होनहारको कोई
मेठ नहीं सकता ॥ ४ ॥ सन्ध्या समय अपने प्यारेसे बिलुङ्गनेके
बदले चक्रवा क्रोध-भरी एक आँखसे तो दूबते हुए सूर्यको देख
रही है और दूसरी ओर आँसु-भरी आँखोंसे अपने प्यारे
चक्रवाके देख रही है । उस समय ऐसा जान पड़ता है मानो
वह अत्यन्त बड़ी नदीके समान रौद्र तथा क्रूर रसका एक
साय अभिमन्य कर रही हो ॥ ५ ॥ सन्ध्या-समय जब सूर्य
छाड़ हो गया और उसका तेज मन्द पड़ जानेसे उसपर
जोगीकी आँखें भी ठहरने लगीं उस समय सारा ताप पृथ्वीको
छोड़कर चक्रवाके हृदयमें जा बसा ॥ ६ ॥ कामके बाणोंसे
हृदयके बिंदु जानेपर भी वियोगी चक्रवाके अपनी प्यारी चक्रवासे
मिलनेके सुखका प्यास करके तो अपने प्राण नहीं छोड़े, पर

जलमें पड़ी हुई अपनी परछाईको लपिरमें दूबी हुई अपनी
चक्रवा समझकर जब उसके पावकी कल्पना की तो वह दुखी
होकर मर गया ॥ ७ ॥ अपनी चक्रवासे बिछुड़ा हुआ चक्रवा
नदी-तीरेके एक छोरसे दूसरे छोर तक जाता है, दुःखसे रोता है,
चिन्ता करता है, सोचता रहता है, सब छोरसे दृष्टि हटाकर
स्थिर चित्तसे योगीके समान कुछ ध्यान किया करता है
और जलमें पड़ी हुई अपनी परछाईको चक्रवा समझकर
पागल हो-होकर उसे बुलाता है । कवि कहता है कि 'इन
दुखी कामियोंको बिकार है ! धन्य तो वे हैं लोग हैं जिनका
मन सब छोरसे हट चुका है ॥ ८ ॥ दुर्भाग्यसे ताकावके छार-
पार बैठे हुए चक्रवा-चक्रवाके बीचमें पद्यपि अन्तर बहुत कम था
पर उत्तना ही उन्हें बहुत बड़ा जान पड़ता था और वे मुखमें
छिपे हुए कमलके केशरको गिराकर हतना चिल्ला रहे थे कि
चिल्लाते-चिल्लाते उनके गले बैठ गए थे ॥ ९ ॥ अपनी प्यारीके
बिछोड़से डरा हुआ चक्रवा दिनको भी रात समझे बैठा है
क्योंकि खानेके लिये तोड़े हुए देड़े कमलनालको चन्द्रमा समझ-
कर वह खा नहीं रहा है, प्यासा होनेपर भी कमलके पत्तोंपर
पड़ी हुई जलकी नैर्ऋती तारे समझकर, पी नहीं रहा है और
माँतोंके कालेपनसे मिली हुई कमलोंकी ललाईको बिना
सन्ध्याके ही सन्ध्या समझ रहा है ॥ १० ॥ जब सूर्य छिप
गए, कमलोंका समूह मुँह चककर उदास हो गया, भीरे बेसहारे
होकर चिल्लाने लगे उस समय सारस पक्षीकी अपनी

ब्रह्माने ताम्यति कम्बत्सु भ्रमरेषु वीक्ष्य द्यिताश्लिष्टं
पुरः सारसम् । चक्राह्नेन वियोगिना विसलता
मास्वादिता नोज्झिता धक्ते केवलमर्गलेव निहिता
जीवस्य निर्गच्छतः ॥ ११ ॥ यच्छ्रुति प्रतिमुखं दयि-
तायै वाचमन्तिकगतेऽपि शकुन्तो । नीयते स्म नति-
मुज्झितहर्षं पङ्कजं मुखमिवाम्बुरुहिया ॥ १२ ॥
घापीतोयं तदरुहघनं पद्मिनीपत्रशय्या चन्द्रालोको
धिकचकुसुमामोदहृद्यः समीरः । यत्रैतेऽपि प्रियविर-
हिणो वाहिनश्चकनास्त्रस्तत्रोपायः क इव भवतु प्राल-
स्यधारणो यः ॥ १३ ॥ सधितैव समाराध्यः कर्मसाक्षी
प्रबोधकः । न त्वन्तर्मलिनश्चन्द्र इति कोकास्तप-
स्विनः ॥ १४ ॥

वह्निवर्णनम्

वसन्तवर्णनम् :—अग्ने ओनक्षपाटलं कुरवकं श्यामं
द्वयोर्भागयोर्बालाशोकमुपोदरागस्तुभगं भेदोन्मुखं
तिष्ठति । ईषद्वन्द्वरजः कणाग्रकपिशा चूते नद्या मञ्जरी

सारसभीके साथ सामने देखकर विरहिणी चकवेकी यह दया
हुई कि मुझमें रखे हुए कमलनालके टुकड़ोंकी न तो वह वा
ही पाया, न छोड़ ही पाया, मानो उसने बाहर निकलते हुए
अपने प्राणोंको रोकनेके लिये गलेमें उसका श्वाँद लगा लिया
हो ॥ ११ ॥ जब सामने चित्तानेवाला चकवा अपने दुःखभरे
शब्दोंमें चकवीकी दुःखभरी चित्ताहटका उत्तर दे रहा था
उसे देखकर ही कमलकी नालका कमल-रूपी मुग्ध उदास हो
गया और दुःखसे मुक गया ॥ १२ ॥ जब बिलुहे चकवेके
सामने सावड़ीका जल, तटका उपवन, कमलके पत्तेका बिलौना,
चन्द्रमाका प्रकाश और तिले हुए कमलकी सुगन्धमें बसा हुआ
पवन ये सभी वस्तुएँ दुःख देनेके लिये उपस्थित हैं ही तो
उसके जीनेका उपाय ही क्या रह जाता है ॥ १३ ॥ सन्ध्या
समय बिलुहे हुए चकवा-चकवी मानो यही सोचकर तपस्या
करने लगे हैं कि लोगोंके अश्वे-जुरे कामोंके साक्षी और सबको
ज्ञान देनेवाले (जगानेवाले) सूर्य ही उपासना करने योग्य हैं,
यह काले हृदयवाला चन्द्रमा नहीं ॥ १४ ॥

छहों ऋतुओंका वर्णन

वसन्तकी रँगरेलियाँ : सामने तो नवयुवतीके नखोंके
समान लाल फूलवाला कटसरैया फूल रहा है, हृष-उधर
दे छोटे से सुन्दर, लाल-लाल तथा अभी सिल उठनेवाले
आशोकके वृक्ष लड़े हैं और उधर आमके वृक्षमें थोड़ेसे

मुग्धत्वस्य च वौवनस्य च सखे मध्ये मधुभीरिव ॥ १ ॥
अङ्गानि निद्रालसविभ्राणि वाक्यानि किञ्चिन्मदि-
रालसानि । भ्रूक्षेपजिह्वानि च वीक्षितानि चकार
कामः प्रमदाजनानाम् ॥ २ ॥ अनुभवन्नववोलमृत्-
त्सवं पटुरपि प्रियरुण्डजिघृक्षया । अनयदासनरज्जु-
परिग्रहे भुजलतां जलतामवलाजनः ॥ ३ ॥ अपतुषार-
तया विशदप्रभैः सुरनसङ्गपरिभ्रमनोदिभिः । कुसुम-
चापमतेजयदंशुभिर्हिमकरो मकरोजितकेतनम् ॥ ४ ॥
अभिनयान्परिचेतुमिवोचता मलयमारुतकम्पितप-
ङ्कवा । अमद्यत्सहकारलता मनः सकलिका कलिका-
मजितामपि ॥ ५ ॥ अमद्यन्मधुगन्धसनाथया किस-
लयाधरसस्ततया मनः । कुसुमसम्भृतया नवमल्लिका
स्मितवचा तरुचारुविलासिनी ॥ ६ ॥ अरुणरागनि-
र्बन्धभिरंशुकैः अवणलब्धपदैश्च यवाङ्कुरैः । परधृतावि-
रतैश्च विलासिनः स्मरपल्लवरलैकरसाः कृताः ॥ ७ ॥
अरुणिताखिलशैलवना मुहुर्विदधती पथिकान्परिता-

परागकल्लोंसे मटमैले रङ्गके वीर छा गए हैं अतः मित्र । इस
समय वसन्तकी शोभा ऐसी जान पड़ती है जैसे वह बचपन
और जवानाके बीच लड़ी हुई हो ॥ १ ॥ इस वसन्त ऋतुमें
किथी कामसे घलसा जाती हैं, मद्के कारण उनका बलमा-
बोझना भी कठिन हो जाता है और देवी भीलोंके कारण उनकी
चितवन कड़ी कटीली लगने लगती है ॥ २ ॥ जो चतुर
स्त्रियाँ वसन्तमें झूला झूल रही थीं उन्होंने अपने पतिके
गलेसे लगनेकी इच्छासे झूलेकी रस्सी धामनेवाली अपनी बाँहें
ठीकी कर दीं ॥ ३ ॥ जाड़ा बीत जानेपर वसन्तमें जिस
चन्द्रमाकी किरणोंकी चमक बढ़ गई थी और जो सुरतकी
धकावट दूर कर रही थीं उन किरणोंसे चन्द्रमाने प्रतापी
कामदेवको और भी अधिक उस्ताहित कर दिया ॥ ४ ॥
वसन्तमें दक्षिणके वायुसे नाचते हुए पत्तोंमें बीरी हुई
जामकी हालने उन मुनियोंका मन भी मतवाला कर दिया
जिन्होंने कलियुगके प्रभाव तथा कामदेवपर विजय पा ली थी
॥ ५ ॥ पेड़ोंपर लिपटी हुई नवमल्लिकाकी मनोहर लताके
तिले हुए फूलोंकी मधु (मकरन्द, मदिरा) की गन्ध से
गमकती हुई और कोमल पत्ते-रूपी चाँडोंपर कैसी हुई
मुसकानने जोगोंका मन मतवाला कर दिया ॥ ६ ॥ सूर्यकी
किरणोंसे भी अधिक लाल वस्त्रोंने, कानपर सखे हुए जीके आङुरां
(जरई) और कोयलकी कूकने, कामदेवके सैनिक वनकर

पितः । विकचकिंशुकसंहतिरुच्चकैरुद्वहद्वहव्यवह-
श्रियम् ॥ ८ ॥ अलिभिरञ्जनविन्दुमनोहरैः कुसुमपङ्क्ति-
निपातिभिरङ्कितः । न कलु शोभयति स्म धनस्थलीं
न तिलकं तिलकः प्रमदामिव ॥ ९ ॥ अखिरलकमलधि-
कासः सकलालिमदश्च कोकिलानन्दः । रम्योऽयमेति
सम्प्रति लोकोत्कराकारः कालः ॥ १० ॥ अस्त सद्यः
कुसुमान्यशोकः स्कन्धाग्रभृन्नेय सपल्लवानि । पदेन
नापेक्षत सुन्दरीणां सम्पर्कमासिञ्जितनूपुरेण ॥ ११ ॥
असौ मदच्छुभितच्चाहकेसरः प्रसन्नतराधिपमण्ड-
लाग्रणीः । विद्युक्तरामातुरदृष्टिवीक्षितो वसन्तकालो
हनुमानिषागतः ॥ १२ ॥ अस्मिन्वसन्ते न नराः सहन्ते
वधूविषोऽत्र वल्लासरोगम् । कुरङ्गनाभिद्रवलेप-
भाभिर्भजन्तु हृताः प्रमदाः प्रलिप्ताः ॥ १३ ॥
आकम्पयन्कुसुमिताः सहकारशाखा विस्तारयन्पर-
भृतस्य वचांसि दिशु । वायुर्विधात हृदयानि हरस-

राणां नीहारपातविगमास्तुभगो वसन्ते ॥ १४ ॥
आकम्पितानि हृदयानि मनस्विनीनां वातैः प्रफुल्ल-
सहकारकृताधिवासैः । उत्कृजितैः परभृतस्य मदाकु-
लस्य श्रोत्रप्रियैर्मधुकरस्य च गीतनादैः ॥ १५ ॥ आशां
ममध्वक्कर्वत्तिनृपतेराश्रय निःशङ्कधीर्भ्रात्र्यद्भुङ्गम-
हाजनान्पिकगिरा साकृतमाकारयन् । कुआटं व्युत्-
पन्नसंस्तरवति श्रीमान्वसन्ताभिधो व्यापारी सुमनो-
मग्नद्वसुभिर्वाणिज्यमालम्ब्यते ॥ १६ ॥ आताम्राः
किरला रतेनवदलत्वक्फलवाः पादपाः बल्ल्यस्तारक-
तुल्यकान्तिमुमनस्सारभ्यसम्भाविताः । धान्यस्मिन्म-
धुमत्तपट्टपदपदव्याधूतचूतद्रुमप्रभारप्रपतत्परागपट-
लामोदी मरुदाक्षिणः ॥ १७ ॥ आदीप्तवर्हिसदृशैर्म-
हतावधूतैः सर्वत्र किंशुकधनैः कुसुमायनम्रैः । सद्यो
वसन्तसमयेन समाचितेयं रक्तांशुका नववधूरिव
भाति भूमिः ॥ १८ ॥ आमूलतो विद्रुमरागताम्रं सप-

कामियोंका चित्त केवल एक नखेलीमें छगा दिया ॥१०॥ वसन्तमें
सारे पहाड़ और धनको लाल-लाल बना देनेवाली, वियोगियोंको
निरन्तर तपानेवाली और लिले हुए देहोंमें से लदी पलासकी
झलियाँ आग जैसी जग रही हैं ॥ ८ ॥ जैसे काजा तिलक
माथेपर जगकर जियोंको सुन्दर बना देता है उसी प्रकार अजिजके
विष्णुके समान दिखाई देनेवाले भीरोंसे घिरा हुआ तिलकका
हृत् भी वनस्पतीको सुन्दर बना रहा है ॥ ९ ॥ संसारको
स्त्रियोंसे प्रेम करानेवाला यह सुन्दर वसन्त आ रहा है जिसमें
निरन्तर कमल खिल रहे हैं, भँदरे मतवाले हो रहे हैं और
कोकिल अत्यन्त प्रसन्न होकर कूक रहा है ॥ १० ॥ वसन्तमें
अशोकका हृत् भीचेसे ऊपरतक फूल-पत्तियोंसे इतने बेगसे
झड़ चला है कि उसने सुन्दरियोंके अजरे हुए पायलोंवाले
चरणोंके प्रहारकी भी प्रतीक्षा न की ॥ ११ ॥ जिसमें वायुसे
सुन्दर नागकेसर हिल रहे हैं (वायुसे जिसके कन्धेके बाल
हिल रहे हैं), स्वप्न चन्द्रमन्दल जिसके आगे है (चार
भामका प्रसन्न चन्द्र जिनकी सेनाके आगे-आगे चला रहा है)
ऐसा वियोगिनी स्त्रियोंकी दुःखभरी आँखों (वियोगी रामकी
दुःखभरी आँखों) से देखा जाता हुआ वसन्त यहाँ हनुमान्के
समान आ पहुँचा है ॥ १२ ॥ इस वसन्तमें जो मनुष्य न तो
अपनी प्रियतमाओंका वियोग सह सकते, न कफके प्रकोपसे
अपन्न रोग ही सह सकते, उन्हें तो कस्तूरीके जेपसे खरी
हुई मतवाली नखेलियोंका ही सेवन करना चाहिए ॥ १३ ॥

वसन्त ऋतु में पाला तो पड़ता नहीं है, इसलिये आजकल
मञ्जरियोंसे लदी आमकी झलियाँ हिलानेवाला और कोयलके
सन्देश चारों ओर फैलानेवाला सुन्दर वसन्ती पवन जोंगोंका
मन हरता हुआ बह रहा है ॥ १४ ॥ और हुए आमके पेड़ोंमें
बसे हुए पवनसे, मदमस्त होनेवाले कोकिलकी कूकसे और
भीरोंकी मनभावनी गुआरोंसे मनस्विनी स्त्रियोंके मन भी झिग
जाते हैं ॥ १५ ॥ अकवर्ता सच्चा कामदेवकी आज्ञा लेकर
वह धनवान् (शोभायुक्त) वसन्त-रूपी व्यापारी निहर होकर
मँडराते हुए भीरों-रूपी महाजनोंसे कोयलकी कूकके रूपमें
हँसी पिटवाता हुआ पतकवसे बिले हुए पत्तोंके बिलूनेवाली
कुआँमें पुष्प और परागरूपी सम्पत्तिका व्यापार कर रहा है
॥ १६ ॥ वसन्त आते ही सूर्यकी किरणें कुछ लाल-लाल हो
चली हैं, वृक्षोंमें नये-नये फूल, झाल और पत्ते निकल आए
हैं, लताओंपर तारोंके समान चमकीले फूलोंकी सुगन्ध लदी
आ रही है, मधु पीकर मतवाले और आमके वृक्षोंपर बैठकर
अपनी टँगियोंसे और हिला रहे हैं और दक्षिणा पवन उस
वृक्षके पुराने पत्ते गिराता हुआ मञ्जरियोंका सुगन्धित पराग
झोता हुआ मस्तीसे बह रहा है ॥ १७ ॥ वसन्तके दिनोंमें पवनके
झोंकोंसे हिलती हुई जिन पलासके वृक्षोंकी फूली हुई शाखाएँ
जलती हुई आगकी जपटोंके समान दिखाई देती हैं, उन
पलासके जंगलोंसे बकी हुई पृथ्वी ऐसी जग रही है मानो लाख
खरबी पड़ने हुए कोई नई दुखहिन हो ॥ १८ ॥ अशोकके जिन

दलवाः पुष्पत्रयं दधानाः । कुर्वन्त्यशोका हृदयं सशोकं
मिरीच्यमाणा नयनौघनानाम् ॥ १६ ॥ आम्नी मञ्जु-
मञ्जरी वरशरः सन्किशुकं यद्धनुर्ज्या यस्यालिकुलं कल-
ङ्करहितं छत्रं सितांशुः सितम् । मत्तेभो मलयानिलः
परभृता यद्वन्दिनो लोकजित्सोऽयं धो चितरीतरतीतु
चितनुर्भद्रं वसस्ताम्बितः ॥ २० ॥ आम्ने पल्लविते
स्थित्वा कोकिला मधुरस्वरम् । चुकूज कामिनां चित्त-
माकर्षन्तीव वृत्तिका ॥ २१ ॥ आयाता मधुरजनी
मधुरजनीगोतिहृषेयम् । अङ्कुरितः स्मरविटपो स्मर
विट पीनस्तनीमयलाम् ॥ २२ ॥ आरुहो मलयानिल-
द्विपवरं युक्तो विलासानुगैः पीतः पुष्पविलोचनैर्नयल-
तापीराङ्गनानां गणैः । अश्राम्यद्वनपत्तने मधुमहीपाल-
स्ततः कोकिलालीलालापमिलङ्गमञ्जरिकाभाहारभे-
रीरवैः ॥ २३ ॥ आलम्ब्यहेमरसनाः स्तनसकहाराः
कन्दर्पदर्पशिथिलीकृतगात्रयष्टपः । मासे मर्धा मधुर-
कोकिलभृङ्गनादैर्नायां हरन्ति हृदयं प्रसभं नराणाम्

॥ २४ ॥ आस्वादितं स्वापुमरन्दविन्दुस्वच्छन्दमिन्द्री-
वरसुन्दरीभिः । माकन्दपुष्पं प्रमदाजनस्य प्रमोदमा-
मोदभरैरकाशौत् ॥ २५ ॥ इह मधुपवधूनां पीतमल्ली-
मधूनां विलसति कमनीयः काकलीसम्प्रदायः । इह
नटति सलीलं मञ्जरी वज्रुलस्य प्रतिपदमुपदिष्टा दक्षि-
लेनानिलेन ॥ २६ ॥ इह हि नयनसन्ते मञ्जरीरेणु-
पुञ्जचतुरणधवलदेहा वद्धेलं सरन्ति । तरलमलिसमूहा
हारिदुङ्गारिकण्ठा बहलपरिमलालोसुन्दरं सिन्दुवारम्
॥ २७ ॥ ईपलुचारैः कृतशीतहृष्यैः सुषासितं वाच
शिरश्च सम्पकैः । कुर्वन्ति नायांऽपि वसन्तकाले स्तनं
सहारं कुसुमैर्मनोहरैः ॥ २८ ॥ उच्छ्वासयन्त्यः श्लथ-
बन्धनानि गात्राणि कन्दर्पसमाकुलानि । समीपवर्ति-
ष्वधुना प्रियेषु समुत्सुका एव भवन्ति नायाः ॥ २९ ॥
उत्कुलपङ्कजनिपकलसद्विरेफः किञ्चिद्विनिद्रकुमुदो-
त्करसम्भृताः । आमूलनर्द्धावधिधातुतमाख्यमाल-
म्बितं न कस्य तनुते ललितस्तमालः ॥ ३० ॥ उत्सृष्ट-

बूझोंमें कोंपलों फूट निकली हैं और जिनमें नूँगे-जैसे लाल-लाल
फूल नीचेसे ऊपरतक खिल आए हैं, उन्हें देखते ही नयनव-
लियोंके हृदयमें शोक होने लगता है ॥ १६ ॥ आमके
बीर जिसके बाण हैं, टेढ़े ही धनुष हैं, भीरोंकी पाँत ही
छोरी है, मलयपर्वतसे आया हुआ पवन ही मतवाला हाथी
है, कोयल गायक है और शरीर न रहते हुए भी जिसने
संसारको जीत लिया है, वह वसन्तके सहित कामदेव सदा
आपका कल्याण करे ॥ २० ॥ बीरे हुए आमके पंखपर बैठी हुई
कोयल कामियोंके मनको खींचनेवाली वृत्तिके समान अत्यन्त
मधुर शब्दोंमें कूकने लगी है ॥ २१ ॥ स्त्रियोंके सुन्दर गीतोंसे
सबका मन हरनेवाली यह वसन्तकी रान आ गई जिससे काम-
रूपी वृषमें अङ्कुर निकल आए हैं, इसलिये हे कामी ! न बदे-
बड़े स्तनोंवाली नायिकाको स्मरण कर ॥ २२ ॥ दक्षिणके वायु-
रूपी मतवाले हाथीपर खड़ा हुआ, हाव-भावसे युक्त पुष्प-
रूपी हाथोंवाली गई छताओंके समान नगरकी स्त्रियोंके समूहमें
धूमता हुआ और उनसे सप्रेम देखा जाना हुआ वह वसन्त-रूपी
राजा घन-रूपी नगरमें अमण कर रहा है जिसके चारों ओर
कोयलकी मधुर ध्वनिले मिले हुए, मँडराते हुए भीतोंके गुञ्जन-
रूपी नगाड़ेके शब्द हो रहे थे ॥ २३ ॥ चैतमें जब कोयल
कूकने लगता है, बीरे गूँजने लगते हैं, उस समय कमरमें
सोनेकी करधनी लीचे, स्तनोंपर भीतोंके हार जटकाए और

कामकी उल्लेखनासे बीके शरीरवाली स्त्रियों वसपूर्वक कोगोंका
मन अपनी ओर खींचे लेती हैं ॥ २४ ॥ कमलके समान कोमल
स्त्रियोंने जी भरकर स्वादिष्ट फूलके रसोंको बूँदें पी लीं और
आमकी बीरोंने अपनी तीली सुगन्धसे उन स्त्रियोंको मतवाला
कर दिया ॥ २५ ॥ एक ओर वसन्तमें मलिकका रस पीनेवाली
भीरियोंकी मीठी गुञ्जार निरन्तर सुनाई पव रही है, दूसरी
ओर दक्षिणके वायुरूपी गुहसे मृन्मकला लीलाकर आमकी मञ्जरी
बार-बार प्रेमसे कूम-कूमकर नाच रही है ॥ २६ ॥ इस नये-नये
वसन्तके समयमें जिनका शरीर मञ्जरीकी भूँसे उन्नता हो
गया है और जिनके गलेसे मनोहर गुञ्जार निकल रही है, वे भीरे
अत्यन्त गन्धसे भरे हुए निर्गुणकी पेड़की ओर बड़े प्रेमसे उबे
चले जा रहे हैं ॥ २७ ॥ वसन्तमें चारोंकी वृत्तोंपर उबरी जोस
जा गई है, चम्पेके फूलोंसे सबके गूदे महकने लगे हैं और
स्त्रियाँ भी अपने स्तनोंपर मनोहर फूलोंकी माझाई पहनने
लगी हैं ॥ २८ ॥ कामवासनासे पीड़ित स्त्रियाँ अपने प्रेमियोंके
सामने अपने अङ्ग उघाड़ती हुई उन्हें लज्जा भी रही हैं और
अपनी अधीरता भी दिखा रही हैं ॥ २९ ॥ खिले हुए कमलों-
पर बैठे भीरे गूँज रहे हैं, रातमें कुछ खिले हुए कुमुद शोभासे
भर उठे हैं और तमालके वृक्ष तो नीचेसे ऊपरतक रङ्ग-विरङ्गा
मालाओंसे जड़ गए हैं । वसन्तकी यह शोभा कितने प्रचुरजमें
नहीं डाल देती ॥ ३० ॥ आमके पेड़ोंपर उबते भीरे और

मधुजटशमिव मानरत्नमादाय पटपदतिलान्मधुवा-
रिपूरान् । पुँस्कोकिलस्य कलकृजिनकैतवेन सङ्कल्प-
वाक्यमथमातनुते रत्नालः ॥ ३१ ॥ उद्यद्भिद्रुमका-
न्तिभिः किसलयैस्ताम्रां न्यप विधृतो मृङ्गालीविप्लवः
कलैरविशद्व्याहारलीलाभृतः । भ्राम्यन्तो मलयानि-
लाहतिचलैः शाखासदसैर्मुहुर्भान्ति प्राप्य मधुप्रसङ्ग-
मधुना मत्ता इधामां द्रुमाः ॥ ३२ ॥ उपचितावयवा
शुचिभिः कलैरलिकदम्यकयोगमुपेयुषी । सदृशकान्ति-
रलक्ष्यत मञ्जरी तिलकजालकजालकमांकिवैः ॥ ३३ ॥
उपययौ तनुतां मधुखण्डिता हिमकरोदयपाण्डुमुख-
कलुषिः । सदृशमिष्टसमागमनिर्देशेति यमिनयानितया
रजनीधधुः ॥ ३४ ॥ उपहितं शिशिरापणमधिया मुकुल-
जालमशोभत किशुकैः । प्रणयिनीय नखक्षतमण्डनं प्रम-
दया मध्यापितलज्जया ॥ ३५ ॥ कनककमलकान्तर-
ममैः पाण्डुगण्डेस्पर्शनिहितहारैश्चन्दनार्द्रैः स्तनान्तैः ।
मद-जनित-विलासैर्दृष्टपातैर्मुनोन्मत्तान्तरनभरनतनार्यः

कामयन्ति प्रशान्तान् ॥ ३६ ॥ कमलिनी मलिनी दयितं
विना न सहते सह तेन निधेवितुम् । तमधुना मधुना
निहितं हृदि स्मरति सा रतिसारमहर्निशम् ॥ ३७ ॥
कलेंपु योयं नचकणिकारं चलेषु नीलेष्वलकेष्वशोकम् ।
पुष्पञ्च फुल्लं नवमालिकायाः प्रयान्ति कान्ति प्रमदा-
जनानाम् ॥ ३८ ॥ कान्तामुखद्युतिजुषामचिरोद्गतानां
शोभां परां कुरवकद्रुममञ्जरीणाम् । दृष्ट्वा प्रियं सहव-
यस्य भवेन्न कस्य कन्दर्पवाणपतनव्यथितं हि चेतः
॥ ३९ ॥ किं किशुकैः शुक्लमुखच्छाधिभिर्न भिन्नं किं कणि-
कारकुसुमैर्न कृतं नु दग्धम् । यत्कोकिलः पुनरयं मधु-
रैर्वनोभयूनां मनः सुवदनानिहितं निहन्ति ॥ ४० ॥
किशुककलकान्तगर्गतमिन्दुकलारूपधिकेसरं भाति ।
रक्तनिचोलकपिहितं धनुरिष जतुमुद्रितं वितनोः
॥ ४१ ॥ किशुकस्तितिरुहां विलसन्तः कुड्मलाः
कुटिलतां कलयन्तः । पान्धवारणविदारणताम्राः
कामकंसारनसा इव रेजुः ॥ ४२ ॥ किशुकसुमवक्र-

कुकुते हुप कोकिलको देखकर ऐसा जान पड़ता है मानो वह वृक्ष
मकरन्द-रूपी जलके साथ भीरे-कपी तिल केकर स्त्रियोंका
क्रोध-रूपी रत्न किसीकी दाग देनेके लिये कोयलकी मधुर
कुकुके स्वरोंमें सङ्कल्प पड़ रहा हो ॥ ३१ ॥ वसंतका संयोग
वाकर ये वृक्ष मतवालीसे दिखाई दे रहे हैं क्योंकि मृगोंके समान
चमकवाली कोंपलोंसे ये लाक हो चके हैं, सुन्दर भीरोंकी
गुआरसे छटपट काज रहे हैं और मलयके वायुसे हिलती हुई
अकनिमत झलियोंके रूपमें मानो ये सब दगमगाकर चल रहे हैं
॥ ३२ ॥ तिलकके वृक्षकी जिस मञ्जरीपर ओसकी बूँदें झलक
आई थीं और भीरे बैठे हुए थे वह ऐसी जान पड़ती थी मानो
मोतीसे गुँथी हुई काली-काली अलकें हों ॥ ३३ ॥ चन्द्रमाके
उदय होनेपर जिसका प्रभातरूपी मुख फीका पड़ गया है वह
वसंतकी शशिकुपी सुन्दरी अपने पतिके मिलनका सुख न
पाई हुई नवेलीके समान दुबली पड़ने लगी है ॥ ३४ ॥
वसंतकी शोभाकूपी नवेलीने पलासके वृक्षोंमें जो कलियाँ
लगाई वे ऐसी सुन्दर जान पड़ती थी मानो किसी मतवाली
कीने मदके कारण लज्जा झोड़कर अपने प्रियतमके शरीरपर
मलोंके सुन्दर चिह्न बना दिए हों ॥ ३५ ॥ स्तनोंके भारसे
सुकी हुई नवेलियों अपने सोनेके कमलके समान गालोंवाले
मुँहसे, गीठे चन्दनसे पुते और मोतियोंके हार पड़े
हुए स्तनोंसे तथा मतवाली चञ्चल चित्तवन्से शान्त

चित्तवाले तपस्वियोंका भी मन बिगाड़ रही हैं ॥ ३६ ॥ वसंतके
समय जो भीरी गुँज रही है वह इस समय अपने मनमें
प्यारे भीरेका ही स्मरण कर रही है क्योंकि वह अपने भीरेके
बिना कमलके पास जाना चाहता नहीं समझती और चाहती
है कि दिन-रात उसीके साथ रमण करती रहे ॥ ३७ ॥
नवेलियोंके कानोंमें लटके हुए सर्जाले कनेरके फूल बड़े
सुहावने दिखाई पड़ रहे हैं और उनकी चञ्चल, काली घुँघराळी
लटोंमें अशोकके फूल और नई मल्लिकाकी 'खिली' हुई
कलियों बड़ी सुहावनी लगने लगी हैं ॥ ३८ ॥ हे प्यारी !
अभी खिले हुए और खियोंके मुखके समान सुन्दर लगनेवाले
कुरवकके फूलोंकी मनोसो शोभा देखकर किस रसिकका मन
कामदेवके बाणसे घायल नहीं हो जाता ? ॥ ३९ ॥ अपनी
प्रियाओंके मुखदोंपर सीमे हुए प्रेमियोंके हृदयको सुगंधकी
ठोरके समान झाल देवके फूलोंने ही कुछ कम टुक-टुक कर
रक्सा या या कनेरके फूलोंने ही कुछ कम अला रक्सा
था कि वह कोयल भी अपनी मीठी कूक सुना-सुनाकर
उन्हें और मार डालनेपर उतार हो रही है ॥ ४० ॥ पलासकी
कलियों कीतर दूजके चन्द्रमाके समान देवा केसर ऐसा सुन्दर
दिखाई पड़ रहा है मानो लाख रत्नके धैलेमें कामदेवका धनुष
रखकर उसपर लाखकी मुहर मार दी गई हो ॥ ४१ ॥ वसंतके
समय लाख-लाक चमकती हुई देवी-देवी पलासकी कलियों

नखो मदनप्रह्लादपक्षपातपदः । मानवतीमानवि-
तिजमिच्छति हन्तुं वसन्तनरसिंहः ॥ ४३ ॥ कुन्दैः
सविभ्रमवधूहसितायदातैरुधोतितान्युपवनानि मनो-
हराणि । चित्तं भुनेरपि हरन्ति निवृत्तरागं प्रागेव
रागमलिनानि मनांसि यूनाम् ॥ ४४ ॥ कुपितापि
मनःपतिना सह का सहकारविलोकनजातरसा ।
तरसा रमते स्म न हा रमणी रमणीयतनुः सुननुः
सुरभा ॥ ४५ ॥ कुचेरगुप्तां विशमुष्णरश्मौ गन्तुं प्रवृत्ते
समयं विलङ्घय । विन्दक्षिणा गन्धध्वं मुखेन व्यली-
कनिःश्वासमिवोत्ससर्ज ॥ ४६ ॥ कुसुमकार्मुककार्मुक-
संहितद्रुतशिलीमुखस्रष्टवप्रहाः । मरणमप्यपराः
प्रतिपेदिरे किमु मुहुर्मुहुर्गतभर्तृकाः ॥ ४७ ॥ कुसु-
मजन्म ततो नवपल्लवास्तदनु पट्पदकोकिलकूजितम् ।
इति यथाक्रममाविरभून्मधुर्दुर्गमवतीमवतीर्य वनस्थ-
लीम् ॥ ४८ ॥ कुसुमगवगान्युपेतुकामा किसलयिनी-

भवलम्ब्य चूतयष्टिम् । कणवलिकुलनूपुरा निरासे
मलिनवनेषु पदं वसन्तलक्ष्मीः ॥ ४९ ॥ कुसुममेव न
केवलमार्तवं नयमशोकतरोः स्मरवीपनम् । किसलय-
प्रसवोऽपि विलासिनां मदयिता दयिसाध्वणार्पितः
॥ ५० ॥ कुसुम्भरागारुणितैर्दुकूलैर्नितम्बविम्बानि
विलासिनीनाम् । तन्वंशुकैः कुङ्कुमरागगौरैरलङ्क्यिष्यन्ते
स्तनमण्डलानि ॥ ५१ ॥ कूजितानि कलयन्वनप्रियो न
प्रियो विरहिणामजायत । मन्मथाशिरपि भस्मना द्रं
सादरं मुनिमनोऽम्बुजं व्यधात् ॥ ५२ ॥ कोकिलकृत-
शिक्षरे मञ्जरीरेणुपिञ्जरः । गदितैर्व्यक्ततामेति कुलो-
नखोदितैरिव ॥ ५३ ॥ गर्भप्रन्धिषु वीरुधां सुमनसो
मध्येऽङ्कुरं पल्लवा धाञ्छामात्रपरिग्रहः पिकवधूकण्डो-
दरे पञ्चमः । किञ्च त्रीणि जगन्ति जिष्णु-दिवसेर्द्वित्रै-
र्मनोजन्मनो देवस्यापि विरोजितं यदि भवेदध्यास-
वर्यं धनुः ॥ ५४ ॥ गीतान्तरेषु अमवारिलेखैः

देसी जान पड़ती हैं मानो वियोगी पुरुष-रूपी हाथीको फाड़नेवाले
कामदेव-रूपी सिंहके रक्तसे रंगे साज-साज नख ॥ ४२ ॥
देसके फूल-रूपी देहे नखोंवाले तथा कामदेवरूपी प्रह्लादका
पक्ष लेनेवाले वसन्तरूपी मृत्सिंह इस समय रुठी हुई नखेलिपोंके
मानरूपी दैत्य (विरहयकशिपु) को मारनेपर उठाक हो गए
हैं ॥ ४३ ॥ कामिनियोंकी मस्ती-भरी हँसीके समान उनके
कुन्दके फूलोंसे बमकते हुए मनोहर उपवन जब मोह-मायासे
दूर रहनेवाले मुनिपोंका भी मन हर लेते हैं तब नखपुवकोंके
प्रेमी हृदयकी तो बात ही क्या ! ॥ ४४ ॥ वसन्तके दिनोंमें
ऐसी कोई सुन्दरी न दिखाई दी जो रुठी होनेपर भी और
हुए आमको देखकर प्रेमसे न भर गई हो और उतावली
होकर अपने प्रियतमके साथ क्रीड़ा न करने लगी हो ॥ ४५ ॥
वसन्तके आते ही जब सूर्य असमयमें ही दक्षिणापनसे
उत्तरायण होने लगे उस समय दक्षिणसे आता हुआ मलयका
वायु ऐसा जान पड़ता था मानो अपने पति सूर्यके चले
आनेपर दक्षिण दिशा दुखी होकर खम्बी-खम्बी साँसें जोड़
रही हो ॥ ४६ ॥ कामदेवके भनुपपर चढ़कर छूटे हुए औरि-
रूपी बाणोंसे जिनका शरीर बिंध गया था ऐसी ऊँझ वियोगिनी
खिपों तो चल बसी, किन्तु जो बची रह गई वे यदि बार-
बार मूर्च्छित हो रही हों तो आश्चर्य क्या है ॥ ४७ ॥ वनके
पुष्पोंमें वसन्त क्रमशः ऐसे पैठा कि पहले उनमें फूल निकले,
फिर नखे पक्षे निकले, फिर औरि गूँजने लगे और फिर

कोयलकी फूट सुनाई पड़ने लगी ॥ ४८ ॥ नई-नई कोंपलोंवाले
आमके पेड़के सहारे वनके धन्य लिले पेड़ोंपर पहुँचनेकी
चाहसे वसन्तकी रोमाने जो कमलके बनोंपर अपना पैर
रक्का उस समय गुनगुनाते हुए औरि देसी जान पड़े मानो
उसकी पायल कम-कुन कर रही हो ॥ ४९ ॥ वसन्त चतुर्में
केवल अशोकके फूलें हुए नये-नये फूल ही कामकी नहीं
लगा रहे थे वरन् सुन्दरियोंने अपने कामोंपर जो आमकी
मञ्जरियाँ टँग ली थीं वे भी कामोंको मतवाला बनाए ढाक
रही थीं ॥ ५० ॥ कामिनियोंने अपने गोल-गोल मितम्योंपर
कुसुमके साज फूलोंसे रंगी देसी साड़ी पहन ली है और
स्तनोंपर केसरमें रंगी हुई महीन कपड़ेकी चोली बाँध ली
है ॥ ५१ ॥ वसन्तमें कोयलकी फूट एक तो पों ही वियोगियोंको
नहीं आ रही थी, उसपर कामदेवकी आगने छटपट मुनियोंके
मनरूपी कमलको भी भस्मी-भस्मी जलाकर राख कर ढाका
॥ ५२ ॥ आमकी हाजीपर बैठा हुआ कोकिल औरके परागसे
ऐसा रंग गया है कि वह केवल अपनी रुकते ही पहचान
पड़ता है । ठीक भी है, किसी व्यक्तिकी कुलीनताका ज्ञान
उसके व्यवहारोंसे ही होता है ॥ ५३ ॥ वसन्तमें लताओं-
पर फूल लिल आम, कोंपलोंसे पक्षे फूट आम, कोयलके
गलेमें उसके चाहने-भरसे ही पञ्चम स्वर गूँज उठा । और वो
क्या, यदि कामदेव भी आजकल बहुत दिनोंसे छोड़े हुए भनुप-
को पलानेका अभ्यास कर ले तो हो ही तीन दिनोंमें तीनों

किञ्चित्समुच्छ्वासितपत्रलेखम् । पुष्पासवाधूषितने-
त्रशोभि म्रियामुखं किम्पुरुषश्चुम्बे ॥ ५५ ॥ गुरुणि
घासांसि विहाय तूष्णे तनूनि ह्यल्लारसरञ्जितानि ।
सुगन्धिकालागुरुधूपितानि घत्ते जनः काममदाल-
साङ्गः ॥ ५६ ॥ चूताङ्कुरास्वादकपायकण्ठः पुँस्कोकिलो
यन्मधुरं चुकूज । मनस्विनीमानविघातदक्षं तदेव
जातं वचनं स्मरस्य ॥ ५७ ॥ चूतानां चिरनिर्गतापि
कलिका घमाति न स्वं रजः सप्रखं यदपि स्थितं
कुरधकं तत्कोरकावस्थया । कण्ठेषु स्खलितं गतेऽपि
शिशिरे पुँस्कोकिलानां कृतं शङ्के संहरति स्मरोऽपि
शक्तिस्तृणार्धकृष्टं शरम् ॥ ५८ ॥ छायां जनः सम-
भिवाञ्छति पादपानां नक्तं तथेच्छति पुनः किरणं
सुधांशोः । हृष्यं प्रयाति शयितुं सुखशोतलञ्च
काम्ताञ्च नाड्युपगृह्णति शोतलन्धाम् ॥ ५९ ॥ जगां
विवाहावसरे वनस्थलीवसन्तयोः कामकुताशलाक्षि ।

पिकद्विजः प्रीतमना मनोरमं मुहुर्मुहुर्मङ्गलमन्त्रमा-
दरात् ॥ ६० ॥ तनूनि पारङ्गानि मदालसानि मुहुर्मुहु-
र्जृम्भणलत्पराणि । अङ्गान्यनङ्गः प्रमदाजनस्य करोति
लावण्यससम्भ्रमाणि ॥ ६१ ॥ ताम्रप्रवालस्तवकावन-
चाश्चूतद्रुमाः पुष्पितचारुशाखाः । कुर्वन्ति कामं पव-
नायधूताः पथ्यन्सुकं मानसमङ्गनानाम् ॥ ६२ ॥ त्यजत
मानमलं यत विग्रहेर्न पुनरेति गतं चतुरं वयः । पर-
मृताभिरितीव निवन्धिते स्मरमते रमते स्म वधूजनः
॥ ६३ ॥ दत्ते जनोऽसां खलु विद्यमानमविद्यमानं तु
न कोऽपि तावत् । वियोगिनां पुष्पनमग्नशोकः शोक-
प्रदोऽभूदतिविश्रमेतत् ॥ ६४ ॥ वदी रसात्पङ्कजरे-
णुगन्धि गज्जाय गण्डपञ्जलं करेणुः । अर्धापभुक्तेन
चिसेन जायां सम्भावयामास रथाङ्गनामा ॥ ६५ ॥
द्रुमाः सपुष्पाः सलिलं सपद्मं क्षिप्यः सकामाः पवनः
सुगन्धिः । सुखाः प्रदोषाः दिवसाश्च रम्याः सर्वे

लोक जीत ले ॥ ५४ ॥ वसन्तमें जिस किन्नरीके मुकपर
गानेके परिश्रमसे झलकी हुई पसीनेकी ईदोंमें गालकी
किन्नकारी मिटा दी थी और जिसके नेत्र फूलोंकी मदिरासे
मतवाले होनेके कारण सुन्दर दिखाई दे रहे थे उसे किन्नर
चूमने लगा ॥ ५५ ॥ इन दिनों कामदेवके मदमें झलसाई
हुई नर्वेलियों अपने मोटे बक उतारकर महाबलसे रेंगे हुए
और कालागुरुके धुरैले सुगन्धित किए हुए काने वस्त्र पहनने
लगी हैं ॥ ५६ ॥ जिस कोयलका स्वर आमकी बौरें खानेसे
हसीला हो गया था उसकी कूकने लड़ी हुई छियोंका मान इस
प्रकार बुर कर दिया मानो अपनी कूकने स्वरमें उसने कामदेवकी
आज्ञा सा सुनाई हो ॥ ५७ ॥ वसन्तके प्रारम्भमें अभी कुछ ही दिन
पहले निकली हुई आमकी बौरेंमें पराग नहीं आ पाया है, हरी-
भरी फटसरीयामें अभी कलियों ज्योंकी त्यों बंधी हुई हैं तथा
ठण्डक बीत जानेपर भी कोयलकी कूक अभी गलेके भीतर ही
गूँज रही है, इससे जान पड़ता है कि अभी कामदेवने भी
अपना तपीरसे आधा निकाला हुआ बाण चबराकर रोक
लिया है ॥ ५८ ॥ इन दिनों लोग दिनमें तो वृक्षोंकी
शीतल छाया चाहते हैं, रातमें चन्द्रमाकी किरणोंका आनन्द
लेना चाहते हैं, सोनेके लिये सुहावनी ठण्डी अटारियों पर
पहुँच जाते हैं और थोड़ी-थोड़ी ठण्डक पढ़नेके कारण अपनी
प्रियतमाओंको कसकर ज़ातीले लिपटाप रहते हैं ॥ ५९ ॥
वसन्तमें कोयलकी कूक ऐसी जान पड़ती है मानो कामदेव-

कपी आगिको साड़ी बनाकर जब वनकी भूमि तथा वसन्तका
विवाह हो रहा हो उस अवसरपर कोयल-कपी द्विज (पक्षी,
माछण) प्रसन्न होकर अत्यन्त आदरसे बार-बार सुन्दर मङ्गल
मन्त्र पढ़ रहा हो ॥ ६० ॥ इन दिनों छियोंमें इतनी काम-
वासना भर आती है कि उनके भ्रष्ट हुबले और पीले पड़ आते
हैं, वे मद से झलसाई-सी हो जाती हैं, बार-बार जैभाह्वी
लेती हैं और उनके सारे शरीरमें कुछ अनोका ही रसीलापन
आ जाता है ॥ ६१ ॥ लाल-लाल कोंपलोंके गुच्छोंसे भुके
और सुन्दर मञ्जरियोंसे लदी हुई शल्लभाधोखाले आमके
पेड़ जब पवनके झोंकेसे हिलने लगते हैं तब उन्हें देख-देखकर
छियोंके मन उछलने लगते हैं ॥ ६२ ॥ जैसे ही कोयलने अपनी
कूकमें यह कह सुनाया कि 'क्रोध छोड़ दो, जड़ाई-मगावा करना
ठीक नहीं है और यह बीती हुई जवानी फिर नहीं खीटती,'
वैसे ही स्त्रियाँ कामदेवकी आज्ञा पालन करने लगीं ॥ ६३ ॥
संसारका नियम है कि जो वस्तु जिसके पास होती है वही देता है,
जो नहीं होती उसे नहीं देता, किन्तु आश्चर्य तो यह है कि
फूलों से लदा हुआ अशोक (जिसके पास शोक नहीं है) भी
वियोगियोंको शोक देने लगा ॥ ६४ ॥ हथिनीने वसन्तमें बड़े
प्रेमके साथ अपने प्यारे हाथोंको अपनी सूँड़से कमलके
परागकी गन्धमें बसा हुआ जल दिया और चकवेने आधा खाया
हुआ कमलनाज अपनी चकवीको देखकर उसपर प्यार दिखाया
॥ ६५ ॥ देखो प्यारी ! वसन्तके आते ही सब वृक्ष फूलोंसे खूब

प्रिये चारुतरं वसन्ते ॥ ६६ ॥ धुन्वन्मयमृनि मदमू-
र्च्छदलिध्वनीनि धृताध्वनीनहृदयानि मधोर्दिनानि ।
निस्तन्द्रचन्द्रवदनावदनारविन्दसौरभ्यसाहसगर्वस-
मीरणानि ॥ ६७ ॥ ध्वजपटं मदनस्य धनुर्धृतशङ्खवि-
करं मुखचूर्णमृतुधियः । कुसुमकेसररेणुमणिमजाः
सपवनोपवनोन्वितमन्धयुः ॥ ६८ ॥ न तज्जलं यज्ञ
सुचारुपङ्कजं न पङ्कजं तद्यदलोनपट्पदम् । न षट्प-
दोऽस्मां कलशुजितो न यो न गुञ्जितं तप्त जहार
धन्मनः ॥ ६९ ॥ नयगुलोपचितामिव भूपतेः सदुप-
कारफलां धियमर्धिनः । अभिययुः सरसो मधुसम्भृतां
कमलिनीमलिनीरपतत्रिणः ॥ ७० ॥ नवपलाशपलाश-
धनं पुरः स्फुटपरागपरागतपङ्कजम् । मृदुलतान्तल-
तान्तमलोकयस्स सुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः ॥ ७१ ॥
नानामनोहकुसुमद्रुमभूषितास्तान्दृष्टान्यपुष्टनिनदाकु-
लसानुवेशान् । शैलेयजालपरिणद्धशिलातलास्तान्दृष्ट्वा

गए हैं, जलमें कमल खिल गए हैं, स्त्रियों मतवाली हो
बली हैं, वायुमें सुगन्ध आने लगी है, साँमें सुहावनी हो बली
हैं और दिन लुभावने हो गए हैं । सचमुच सुन्दर वसन्तमें
सब कुछ सुहावना हो लगने लगता है ॥ ६६ ॥ वसन्तके जिन
दिनोंमें मतवाली और गूँज-गूँजकर बियोगियोंका मन बहजाते
रहते हैं और जिन दिनों पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखवाली
स्त्रियोंके सुलकमनकी सुगन्ध पाकर वायु भी फूले नहीं
समाते इन दिनोंमें रसिकोंका हृदय बाँसों उलझ रहा है ॥ ६७ ॥
वसन्तके दिनोंमें और उड़-उड़कर फूलोंके केसरके उस पराग-
पर मैहराने लगे जो धनुर्धर कामदेवकी कबलीका वस्त्र तथा
वसन्तकी शोभा-रूपी नवेलीके मुखकी चमक बढ़ानेवाला
पूर्ण बनकर वायुसे हिलते हुए उपवनके ऊपर उड़ रहा था
॥ ६८ ॥ वसन्तके दिनोंमें ऐसा कहीं जल नहीं था जिसमें सुन्दर
कमल न खिले हों, ऐसा कोई कमल नहीं था जिसपर
औरे न बैठे हों, ऐसा कोई भाँगा नहीं था जो मधुर गुञ्जर न
कर रहा हो और ऐसा गूँजना भी नहीं था जिसने मन न हर
लिया हो ॥ ६९ ॥ जैसे भिगमने जोग अत्यन्त नज्जराते
गुणानुवाद करते हुए राजाके पास उसकी उपकारकी भावनासे
भरी हुई संपत्ति माँगनेके लिये आते हैं वैसे ही और भी
सरोवरमें मधुसे भरी हुई कमलिनीके पास गुनगुनाते हुए जा
पहुँचे ॥ ७० ॥ सामने दिखाई देता हुआ वसन्त नई काँपलोंसे
जड़े हुए पलासके वनों, खिले हुए और परागसे भरे हुए

जगः शितभृतो मुदमेति सखेः ॥ ७२ ॥ मिर्धाणा-
ङ्गारसङ्केरिष मधुपकुलैः कालिमानं वहग्निर्भस्त्रावातै-
रिवोद्यन्मलयगिरिगुह्याभिर्गतैस्तैर्मरुद्भिः । उद्दीप्यो-
हाममन्तर्विरहदुतभुजं निर्मिमीतेऽत्र पौष्पान्वाणान-
क्षुण्णधारान्मधुरयमधुना लोहकारः स्मरस्य ॥ ७३ ॥
नेत्रे निमीलयति रोदिति याति शोकं प्राणं करेण
विहणति विरोति खोद्यैः । कान्ताधियोगपरिखेदित-
चित्तवृत्तिर्दृष्ट्वाऽध्वगः कुसुमिनान्सहकारवृक्षान् ॥ ७४ ॥
नेत्रेषु लोलो मदिरालसेषु गण्डेषु पाण्डः कठिनः
स्तनेषु । मध्येषु निम्नो जघनेषु पीनः स्त्रीणामनक्तो
बहुधा स्थितोऽथ ॥ ७५ ॥ पतङ्गपाकसमये पतङ्गपति-
विक्रमाः । पतङ्गस्योदये नेत्रुः पतङ्गा इव धानराः
॥ ७६ ॥ पथि पथि शुकचञ्चुचाकरामाह्वराणां दिशि
दिशि पवमानो वीरधां लासकश्च । नरि नरि किरति
प्राकसायकान्पुष्पजम्बा पुरि पुरि विनिवृत्ता भगिनी-

कमलों और सुगन्धित फूलोंसे जड़ी हुई कोमल पतली जलानोंसे
बढ़ा भला दिखाई पड़ रहा है ॥ ७२ ॥ जिन पर्वतोंकी चोटियोंके
ओर-ओरपर सुन्दर फूलोंके बिरबे खड़े हैं, जिनपर कोयलोंकी
झुक और भाँरीकी गूँज सुनाई दे रही है और जिनपर जहाँ-तहाँ
परधर कीड़े हुए हैं, उन पहाड़ोंको देख-देखकर सबको आनन्द
मिलता है ॥ ७३ ॥ कामदेवका वसन्तरूपी सोहार काले-काले
औरे रूपी बुन्दे हुए चक्रोंको मलयाचलकी गुफा-रूपी भीकनीसे
पीककर प्राणियोंके हृदयकी प्रथमद विरहाभि जगाकर तीली
धारवाले ये फूलके धाँव बनाता जा रहा है ॥ ७४ ॥ अपनी
स्त्रियोंसे दूर रहनेके कारण जिनका जी बेचैन हो रहा
है वे यात्री जब मजरियोंसे जड़े हुए आमके पेड़ देखते हैं
तो अपनी आँख बन्द करके रोते हैं, पसताते हैं, अपनी नाक
बन्द कर लेते हैं कि कहीं मजरियोंकी भीनी-भीनी महक नाकमें
पहुँचकर प्यासीकी याद न दिखा दे और फिर फूट-फूटकर रोने
लगते हैं ॥ ७५ ॥ इन दिनों कामदेव भी स्त्रियोंकी मदमाती
आँखोंमें चञ्चलता बनकर, उनके गालोंमें पीलापन बनकर,
स्तनोंमें कठोरता बनकर, कमरमें गहरापन बनकर और नितम्बोंमें
भारीपन बनकर आ बटा है ॥ ७६ ॥ वसन्तके दिनोंमें सब
पक्षीके समय प्रातःकाल सूर्यके उदय होनेपर टिड्डियोंके
समान बीड़नेवाले धानरोंका पराक्रम गहड़के वेगके समान
दिखाई पड़ रहा था ॥ ७७ ॥ वसन्तमें मार्ग-मार्गमें
सुनोकी ओरके समान सुन्दर झुर निकल आए, चारों ओर

मानचर्चा ॥ ७७ ॥ परभृतकलगीतेर्द्वादिभिः सहचांसि
स्मितदशनमयुखान्कुन्दपुष्पप्रभाभिः । करकिसलय-
कान्ति पल्लवैर्युग्माभैरुपहसति वसन्तः कामिनीनामि-
दानीम् ॥ ७८ ॥ परिचुम्बति संश्लिष्य भ्रमरश्रुतम-
क्षरीम् । नवसङ्गमसंहृष्टः कामी प्रणयिनीमिव ॥ ७९ ॥
पर्याप्तपुष्पस्तवकस्तनाभ्यः स्फुरन्प्रधालोष्टमनोद-
राभ्यः । लतावधूभ्यस्तरवोऽप्यवापुर्विनम्रशालाभुज-
बन्धनानि ॥ ८० ॥ पुँस्कोकिलश्रुतरसासवेन मत्तः
प्रियां चुम्बति रागदृष्टः । कूजद्विरेफोऽप्ययमश्रु-
जस्थः प्रियं प्रियायाः प्रकरोति छाट्टु ॥ ८१ ॥ पुँस्को-
किलैः कलघबोभिरुपासहर्षैः कूजद्विरेफमदकलानि
वर्चांसि भृङ्गैः । लज्जान्वितं सविनयं हृदयं लणेन पर्या-
कुलं पुलक्येऽपि कृतं वधूनाम् ॥ ८२ ॥ पुष्पाणि प्रथमं
ततः प्रकटिताः स्वास्तोत्सवाः पल्लवाः पञ्चादुन्मद-
कोकिलासिललनाकोलाहलः कोमलः । इत्थं प्रादुरभू-

दुपेन्य परितः प्राज्यप्रमोदप्रदः प्रोक्षामद्रुमराजिगजि-
तवनलोणीमृतुच्चापनिः ॥ ८३ ॥ प्रथममन्यभृताभि-
रुदीरिताः प्रधिरला इव मुग्धवधूकथाः । सुरभिग-
न्धिपुश्रुचिरे मित्रः कुसुमिताम् मिना वनराजिपु
॥ ८४ ॥ प्रकुलचूनाङ्कुरतीक्ष्णसायको द्विरेफमालावि-
ससङ्गुर्गुणः । मनांसि भेत्तुं सुरतप्रसङ्गिनां वसन्त-
योद्धा समुपागतः प्रिये ॥ ८५ ॥ प्रसह्य चम्पकी भृङ्गा-
न्निष्कासयति दूरतः । स्वमुद्रनां द्वि संसर्गं मधुपैः
कोऽभिनन्दति ॥ ८६ ॥ प्रसूनकलिकाकुलैः किसलयैः
करस्पर्धाभिः स्फुरन्मधुमदभ्रमङ्गमरकाकिलाकुजितैः ।
इति कमसमुद्रनैरुपघनायलीमण्डलीमण्डयद्विप्रिया-
मृतुवसुन्धरायल्लभः ॥ ८७ ॥ प्रसूनशृङ्गैर्मकरन्दनायं
सलोलमादाय यसन्नकामी । यनस्थलीवामण्डशां
मुक्तानि सिञ्चन्त्यस्ता मन्दमरुत्करेण ॥ ८८ ॥ प्रस्फुरन्प्र-
सुरयालपल्लवा वीरध्वज तरलाभकाशिर । कीडिता

बहनेवाला पवन लताओंको नचाने लगा, प्रत्येक मनुष्यको
लाक-ठाकका कामदेव बाण झाँपने लगा और प्रत्येक नगरसे
श्रव स्त्रियोंके रुठनेकी चर्चा जाती रही ॥ ७७ ॥ इस समय
जी हुलसानेवाला कोयलका गीत सुना सुनाकर यह वसन्त
कुन्दरियोंकी रसभरी बातोंकी खिस्की उड़ा रहा है, अपने
कुन्दके फूलोंकी चमक दिखाकर नवेलियोंकी मुसकान-
पर धमक उठनेवाले दाँतोंकी दमककी हँसी उड़ा रहा है और
भूँगे जैसी लाल-लाल काँयल पत्तोंकी ललवाई दिखाकर उन
कामिनीयोंकी कोंपलों-जैसी कोमल और लाल हथेलियोंको हरा
रहा है ॥ ७८ ॥ जैसे अपनी प्यारीसे पहले पहल मिलनेपर
कामी खोम ठले खिपट-खिपटकर चूमते हैं उसी प्रकार औरा भी
वसन्तमें आमकी औरसे खिपट-खिपटकर उसे चूम रहा है ॥ ७९ ॥
फूलोंके गुच्छे ही जिनके बड़े-बड़े स्तन थे और चमकती हुई नई
कोंपलें ही जिनके सुन्दर ओठ थे, उन लता-रूपी नवेलियोंने
अपनी भुकी हुई शाखा-रूपी भुजाओंसे वृक्षोंको गले लगा लिया
॥ ८० ॥ देखो ! यह नर-कोयल आमकी मञ्जरियोंके रसमें मद-
मस्त होकर बड़े प्रेमसे प्रसन्न होकर अपनी प्यारीको चूम रहा है
और कमलपर बैठकर गुनगुनाता हुआ यह औरा भी प्यारीका
मनचाहा कर रहा है ॥ ८१ ॥ मगन होकर मंटे स्वरमें कूकनेवाले
नर-कोयलोंने और मस्तीसे गँजते हुए औरोंने सती स्त्रियोंके खाल
और मर्पादा-भरे हृदयोंको भी थोड़ी देरके लिये अधीर कर दिया
है ॥ ८२ ॥ वसन्तमें पहले फूल खिले, फिर मन प्रसन्न करने-

वाले पत्ते फूट निकले, तब मतवाले कोयलकी कूक उठी और
फिर औरोंकी मधुर गुञ्जार चारों ओर दौ गई । इस प्रकार
आनन्द देनेवाली वसन्त फलु हरे-भरे वृक्षोंसे सुशोभित वन-
भूमिमें पहुँचकर चारों ओरसे फूट पड़ी ॥ ८३ ॥ जैसे भोली-
भाली नवेलियाँ कभी-कभी कुछ-कुछ अपने प्रेमकी चर्चा कर
दिया करती हैं वेसे ही फूलोंसे लरी हुई सुगन्धित वनकी
हाथियोंमें कहीं-कहीं पहले-पहल कोयलकी कूक सुनाई देने
लगी ॥ ८४ ॥ जो प्यारा ! फूले हुए आमकी मञ्जरियोंके पने
बाण लेकर और अपने धनुषपर औरोंकी पोंतोंकी डोरी चढ़ाकर
और वसन्त संभोग करनेवाले रसिकोंका कंधेन घा पहुँचा है
॥ ८५ ॥ वसन्तमें चरपने औरोंको अपने पाससे खदेड़ दिया ।
ठीक भी है, कोई भी भला चादमी मधुपों (औरों, मधुपों)
से मेल-जोल रखना ठीक नहीं समझता ॥ ८६ ॥ भूतलके
प्यारे वसन्त-रूपी छैलेने फूलोंकी कलियोंके साथ निकली हुई
और हाथके समान दिखाई देनेवाली लाल-लाल कोंपलोंसे,
अधिक मकरन्द पीकर मतवाले औरोंसे और कोयलकी मधुर
ध्वनिले वनस्थली-रूपी नवेलीको भर्त्ता-भर्त्ता सजा दिया ॥ ८७ ॥
यह कामी वसन्त अपनी फूल-रूपी पिचकारीसे फूलोंके रस
रूपी जलको प्रेमसे लेकर वन-भूमि रूपी नवेलियोंके मुखपर
मन्द वायु-रूपी हाथोंसे छोड़ रहा है ॥ ८८ ॥ जिन चञ्चल
लताओंमें वसन्तमें नई-नई कोंपलें फूट आई थीं वे ऐसी
दिखाई पड़ रही थीं मानो वसन्तके आनेपर उन्होंने केसरके

इव कुसुम्भचारिभिः काममित्रसमये समागते ॥ ८६ ॥
 प्रियङ्गुकालोयककुङ्कुमाकंस्तनेषु गौरिषु विलासिनीभिः ।
 आलप्यते चन्दनमङ्गनाभिर्मण्डालसाभिर्मृगनाभियुक्तम् ॥ ८७ ॥
 प्रियसखीसदृशं प्रतियोधिताः किमपि काम्य-
 गिरा परपुष्टया । प्रियतमाय वपुर्गुरुमत्सरच्छिदुरया-
 दुरयाचितमङ्गनाः ॥ ८८ ॥ सकलकुलामिलमिलिन्दमा-
 लामदकलकोकिलकूजितोदयेन । अहह नियमिनोऽपि
 तत्त्वचिन्ताच्युतमतथो मतयाधितो यभूषुः ॥ ८९ ॥
 बाणानङ्कुरयन्ति पुष्पधनुषो धीरस्य चूतद्रुमाः वास-
 न्तीमुलानि सम्प्रति मुखैर्भिन्दन्ति भृङ्गाङ्गनाः ।
 गणद्वयं प्रतिपालयन्ति सुरेशां पुष्पोद्गमे केसरस्तासां
 च स्तनमण्डलैः कुरवका गाढं सदालिङ्गनम् ॥ ९० ॥
 बालेन्दुषकायविकासभावाद्भुः पलाशान्यतिलोहि-
 तानि । सद्यो वसन्तेन समागतानां नखक्षतानीष वन-
 ह्यलीनाम् ॥ ९१ ॥ मत्तद्विरेफपरिचुम्बितधारपुष्पा

मन्दानिलाकुलितमन्त्रमृदुमवालाः । कुर्वन्ति कामि-
 मनसां सहस्रोत्सुकत्वं बालातिमुक्तलतिकाः समवेक्ष्य-
 माणाः ॥ ९२ ॥ मधुकरैरपवादकरैरिव स्मृतिभुवः
 पथिका हरिणा इव । कलतया वचसः परिवादिनी-
 स्वरजिता रजिता वशमाययुः ॥ ९३ ॥ मधु द्विरेफः
 कुसुमैकपात्रे पथौ प्रियां स्वामनुवर्त्तमानः । भृङ्गेण
 च स्पर्शनिमीलितार्द्धौ मृगीमकरद्वयत कृष्णसारः ॥ ९४ ॥
 मधुपराजिपराजितमानिनीजनममःसुमनःसुर-
 भिधियम् । अभूत वारितवारिजविद्धं स्फुटितताम्र-
 तताम्रवनं जगत् ॥ ९५ ॥ मधुरया मधुवोधितमाधवी-
 मधुसमृद्धिसमेधितमेधया । मधुकराङ्गनया मुहुश्चम्प-
 दध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे ॥ ९६ ॥ मधुसुरभि
 मुक्ताङ्गं लोचने लोभताम्रे गवकुरवकपूर्वः केशपाशो
 मनोहः । गुरुतरकुचयुग्मं धोणिचिम्बं तदैव न भवति
 किमिदानीं योषितां मम्यधाय ॥ १०० ॥ मन्वोऽयं

पानीसे होखी खेती हो ॥ ८६ ॥ मन्त्रसे अक्षसाई हुई रसीली
 स्त्रियों प्रियङ्गु, काकीपक और केसरके घोलमें कस्तूरी मिलाकर
 अपने गोरे-गोरे स्तनोंपर चन्दनका लेप कर रही हैं ॥ ८७ ॥
 माभिनिर्वाका गहरा रंग दूर करनेवाले और मनोहर कूक
 सुनानेवाले कोकिलने जब अपनी कूकमें प्यारी सखीके समान
 कुङ्कुम समझा दिया तो गवेलियोंने अपने प्रेमियोंकी प्रार्थनाके
 बिना ही अपना शरीर उन्हें समर्पित कर दिया ॥ ८८ ॥ जब
 वसन्तमें मौलसिरीके नीचे बैठे हुए मैंने गूँज उठे और मत-
 वाला कोकिल कूक उठा उस समय आश्चर्य तो यह हुआ कि
 इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले सुनियोंकी बुद्धि भी आमचिन्तनसे
 हटकर स्त्री-चिन्तनमें लग गई ॥ ८९ ॥ वसन्त ऋतुमें कामके
 वृक्षोंने बीरके रूपमें पुष्पके धनुषवाले धीर कामदेवके बाणोंके
 अङ्कुर निकालना आरम्भ कर दिया, औरियों वासन्ताकी
 कक्षियोंकी चूम-चूमकर सिलाने लगीं, कटसरैया इस आशामें
 लकी हो गई कि सुनयनी नवेक्षियों मुखपर मदिराके कूस्ले करेगी
 और केसर (पुष्पोंका पराग) उनके स्तनोंपर छिपटकर उन्हें
 छातीसे लगानेको मचल उठा ॥ ९० ॥ द्वितीयके चन्द्रमाके
 समान डेढ़े और अत्यन्त लाल-लाल अबसिले पकासके फूल
 ऐसे जान पड़ते थे मानो वसन्तने वनस्थलियोंके साथ विहार
 करके उनपर नखके चिह्न लगा दिए हों ॥ ९१ ॥ जिन छोटी-
 छोटी अतिमुक्त जताओंके फूलोंकी मतवाले भीरे चूम रहे हैं
 और जिनके नये कोमल पत्ते मन्द-मन्द पवनमें गूँज रहे हैं,

उन्हें देख-देखकर कामिभियोंका मन अचानक डोंबाडोख हो
 जाता है ॥ ९२ ॥ वसन्तमें गूँजते हुए भीरे मानो अधिक-
 कपी हरियोंको मोहक राजा बजाकर फैसानेवाले कामके दास
 हैं कि उनकी धोणाकी स्वरसे भी अधिक मधुर गुआरसे हरियोंके
 समान वियोगी उत्तपर लहट्ट होकर कामके फन्देमें आ पँते
 ॥ ९३ ॥ वसन्तमें इधर भीरा तो अपनी प्यारी भीरीके साथ-
 साथ एक ही फूलपर बैठकर मकरन्द पीने लगा, उधर हरिय
 भी अपनी उस प्यारी हरिणीको सींगसे सुजलाने लगा जिसने
 अपने प्यारे हरिणके स्पर्शके आनन्दसे जालें खँद लीं ॥ ९४ ॥
 वसन्त आते ही संसारकी हठी हुई स्त्रियाँ भीरोंकी गुआर
 सुनकर कठना भूलकर खिल उठी हैं, कमलोंका सारा का
 (पाला) जाता रहा और चारों ओर आमके वृक्ष लाल-लाल
 दिखाई देने लगे ॥ ९५ ॥ वसन्तमें खिली हुई माधुरी
 जलाके फूलोंके रसका स्वाद खेनेसे जिस भीरीकी बुद्धि बह
 गई है वह मधुर और मतवाली ध्वनिमें गूँजनेवाली
 भीरी बार-बार धीरे-धीरे गुनगुनाने लगी ॥ ९६ ॥ आसवसे
 महकता हुआ छियोंका कमलके समान मुख, लोभ मैली
 उनकी लाल-लाल जालें, नये कुरवके फूलोंसे सजे हुए
 उनके सुन्दर जूड़े, बड़े-बड़े गोल-गोल उनके स्तन और वैसे ही
 बड़े-बड़े गोल-गोल मितम्ब क्या लोगोंके मनमें कामदेवको
 नहीं जगा रहे हैं ॥ १०० ॥ सुषकोंकी पंखों इन्द्रियोंकी एक
 साथ बाँध लेनेके लिये वसन्तने मन्द-मन्द चलनेवाला मलयका

मलयानिलः किसलयं चूतद्रुमाणां नवं माद्यत्कोकिल-
कूजितं विचकिलामोदः पुराणं मधु । यातानिन्युपरो-
करोति सुरभिः पञ्चैव पञ्चैव यूनानिन्द्रियपञ्चकस्य
युगपत्सम्मोहसम्पादितः ॥ १०१ ॥ मलयपवनविद्धः
कोकिलालापद्वयः सुरभिर्मधुनिषेकाल्लब्धगन्धप्रबन्धः ।
विविधमधुपयूषैर्वैष्णवमानः समन्ताद्भवतु तव वसन्तः
धेष्टकालः सुखाय ॥ १०२ ॥ मलयानिलमिलनोत्कट-
मवकलकलकण्टकलकलापः । मधुरमधुविधुरमधुपो
मधुरयमधुना धिनोति धराम् ॥ १०३ ॥ माकन्दक्युन-
पुष्परेणुपटलीकल्लालालोदरे मन्दस्यन्दिमरन्दपूर-
भरिते घातोत्थपुष्पस्रवैः । खेलन्तो ललितं मधोर्गुण-
गणान्नायन्ति पुष्पन्धवाः कान्तानामधरे घयन्ति मधुरं
लकं मधूलोरसम् ॥ १०४ ॥ माकन्देषु न यद्यपि प्रति-
दिनं गर्भाङ्कुरप्रन्धयो भिद्यन्ते न यद्यपि प्रतनुते
पुष्पाण्यशोकद्रुमः । धत्ते नान्यभूतस्य यद्यपि कलः
कण्ठे पद् पञ्चमो भ्रातः पश्य तथाप्ययं हृतमधुञ्जेतः

करोत्युत्सुकम् ॥ १०५ ॥ मानग्रन्थिकदर्थनाय कथिता-
स्सर्वत्र पुंस्कोकिलाः श्रोत्राकर्मणि दाक्षिणान्यमरुता-
मध्यक्षभावोऽपि नः । पुष्पास्त्रय जगन्त्रयेऽपि विर-
हिप्रत्यहदेवाकिनः सन्नद्धोऽयमसाध्यसाधनविधौ
साम्राज्यमन्त्री मधुः ॥ १०६ ॥ मालनीविरहाक्रान्ताः
पश्य भृङ्गा मुमूर्षवः । आन्मानं प्रतिपन्तीव किङ्क-
प्रभवानसे ॥ १०७ ॥ मुहुरनुपनता विधूयमानं विर-
चिनसंहति दक्षिणानिलेन । अलिकलमलकाकृतिं प्रपेदे
नलिनमुखान्तविसर्पिपङ्कजिन्याः ॥ १०८ ॥ मृगाः
प्रियालद्रुममञ्जरीणां रजःकणैर्विघ्नितदृष्टिपाताः । मद्यो-
द्धताः प्रत्यनिलं विचेर्यनस्थलीर्मर्मरपञ्चमांसाः ॥ १०९ ॥
यन्प्रारम्भविजृम्भितो रतिपतिः शृङ्गारसञ्जीवनीं धत्ते
हृद्यविशृङ्खलां विभुवनप्रकोभणीं प्रक्रियाम् । उत्सर्पन्स-
हकारपुष्पमधुगमोदप्रपञ्चाञ्जिते तस्मिन्सन्तु घसन्त
पद् सुलभस्थानाः कथीनां गिरः ॥ ११० ॥ याचकाय
मधवे तरुदानी दत्तवान् किसलयान्पञ्चलानि । तेन

वायु, आमकी गई कोंपलें, मतवाले कोकिलकी कूक, अशोक
वृक्षकी सुगन्ध और अत्यन्त डेर-सी मकरन्द कामदेवके
बाणोंको भेंट कर दिया ॥ १०१ ॥ मलयका वायु बहानेवाला,
कोकिलकी कूकसे जो लुभानेवाला, सदा सुगन्धित मधु
बरसानेवाला और चारों ओर भीरांसे घिरा हुआ वसन्त आपकी
सुखी और प्रसन्न रहके ॥ १०२ ॥ जिस वसन्तमें मलयवृक्षके
वायुसे मतवाले और मधुर ध्वनि करनेवाले कोकिलकी सुन्दर
कूक सुनाई दे रही है और जिसमें मीठे फूलोंका रस पीकर
भीरे मतवाले हो गये हैं वह वसन्त पृथ्वीको अत्यन्त आनन्दित
कर रहा है ॥ १०३ ॥ जिन आमके वृक्षोंमें धीरे-धीरे फूलोंके
रसकी धाराएँ टपक रही हैं, उनसे ऊँड़कर गिरे हुए परागोंसे
जो नीचे धावते बन गए हैं उनमें वायुसे दिसनेवाले फूलोंके
साथ खेलते हुए भीरे अत्यन्त मधुर स्वरोंमें वसन्तके गुल
भी गाते जा रहे हैं और नवेलियोंके ओठोंमें भरा हुआ मधुर
मकरन्द भी पीते जा रहे हैं ॥ १०४ ॥ देखो भाई ! यद्यपि
अभी आमोंमें नित-नई बीरकी गोंठें भी नहीं फूट पाई हैं, न
अशोक वृक्ष ही अभी फूल पाया है, न कोयलेके कण्ठमें सुन्दर
पञ्चम स्वर ही भर पाया है फिर भी यह निगोढ़ा वसन्त
मनमें रह-रहकर गुदगुदी उठाए ही दे रहा है ॥ १०५ ॥ सब
लोग मानते हैं कि रुटी हुई सुवर्तियोंका मान केवल कोयल ही
कूक-कूककर नष्ट करते हैं और बनाव-शृंगारके कामोंका प्रधान

मुलिया दक्षिणका पवन ही है । इस प्रकार तीनों लोकोंके
वियोगियोंका सारा कष्ट दूर करनेवाले और फूलके बागवाले
कामदेवके सभी भगवाने काम श्रृङ्गार-भरमें पूरे कर देनेके
लिये यह कामदेवके राज्यका मन्त्री वसन्त आ पहुँचा है
॥ १०६ ॥ देखो टेम्के फूलोंपर मँडराते हुए भीरे ऐसे लग
रहे हैं मानो मालवीके फूलका वियोग न सह सकनेके कारण
वे आगइत्या करनेके लिये टेम्के फूल-रूपी अङ्गारोंमें कूँदकर
मारा दे रहे हों ॥ १०७ ॥ जो भीरे दक्षिणके वायुके साथ
बार-बार एक पंक्तिमें मूलते हुए कमलपर उड़ रहे थे वे ऐसे
जान पड़ते थे मानो कमलके पीछेपर खिले हुए कमल-रूपी
मुलके चारों ओर लहराते हुए बाल हों ॥ १०८ ॥ पियार
अपान् चिरंजीके वृक्षकी मंजरियोंकी भूल छाँछोंमें पड़ जानेसे
ठोक-ठोक देन न सकनेवाले हरिण, वायुके सामने उन वनस्थ-
जियोंमें दौड़ रहे थे जहाँ परमर करते हुए पत्ते वसन्तकी
पतझड़में नाचे बिछ गए थे ॥ १०९ ॥ जिसके आते ही
कामदेव भंगड़ाई लेकर शृङ्गार रसको जिलानेवाली तथा तीनों
लोकोंको मधु डालनेवाली कोई निराली कला दिसाने लगता
है और आमके वृक्षोंमें फूटती हुई बीरांकी सुगन्ध चारों ओर
जा जाती है ऐसे निराजे वसन्तकी प्रशंसा करते कवि लोग
अघाते नहीं ॥ ११० ॥ भिषुक वसन्तको दानी दृष्टने सब
पत्ते दे बाले, किन्तु तत्काल उसमें डेर-सी नई-नई कोंपलें

नूतनदलैः सहितोऽभून्निष्कलं भवति जातु न दत्तम्
॥ १११ ॥ रक्ताशोकविकल्पिताधरमधुर्मत्तद्विरेफस्वनः
कुन्दापीडविशुद्धदन्तनिकरः प्रोःकुलपद्माननः चूता-
मोदसुगन्धिमन्दपवनः शृङ्गारदीक्षागुरुः कल्पान्तं
मदनप्रियो विशतु वः पुष्पागमो महलम् ॥ ११२ ॥
रणत्कङ्कणानां भ्रूणपुष्पाणां खलत्कण्डलानां कण्टिक-
ह्विणीनाम् वधूनां मुक्ताम्भोरुहं द्रष्टुकामो रथं मन्थरं
चक्रवन्धुश्चकार ॥ ११३ ॥ रतिपतिप्रहितेव कृतक्रुधः
प्रियतमेव वधूरनुनायिका । वकुलपुष्परसासवपेशल-
ध्वनिरगाशिरगान्मधुपायलिः ॥ ११४ ॥ रधस्थिनानां
परिधर्तनाय पुरातनानामिष वाहनानाम् । उत्पत्ति-
भूमौ तुरगोत्तमानां दिशि प्रतस्थे रचिठसरस्याम्
॥ ११५ ॥ रम्यः प्रदोषसमयः स्फुटचन्द्रभासः पुँस्को-
किलस्य विरुतं पवनः सुगन्धिः । मत्तालियूथविरुतं
निशि सोधुपानं सर्वं रसायनमिदं कुसुमायुधस्य

॥ ११६ ॥ रुचिरकनककान्तीन्मुञ्चतः पुष्पराशीन्मृदुपव-
नविधूतान्पुष्पितान्मृत्पृष्ठान् । अभिमुखमभिधीक्ष्य
सामदेहोऽपि मार्गं मदनशरनिघातेर्मोहमेति प्रधास्यी
॥ ११७ ॥ लल्लद्विरेफाञ्जनभक्तिचित्रं मुखे मधुभीस्ति-
लकं प्रकाश्य । रागेण बालारुणकोमलेन चूतप्रवालोलु-
मलञ्चकार ॥ ११८ ॥ ललितविभ्रमधन्धविचक्षणं
सुरभिगन्धपराजितकेसरम् । पतिपु निविधिशुर्मधु-
मङ्गनाः स्मरसखं रसलण्डनवर्जितम् ॥ ११९ ॥ वदन-
सारभलोभपरिभ्रमद्भ्रमरसम्भृतसम्भृतशोभया । खलि-
तया विदधे कलमेखलाफलकलोऽलकलोलदृशान्यया
॥ १२० ॥ वर्णप्रकर्षं सति कर्णिकारं हुनोति निर्गन्ध-
तया स्म खेतः । मायेष सामग्र्यविधर्षा गुणानां परा-
ङ्मखी विभ्वसृजः प्रवृत्तिः ॥ १२१ ॥ वापीजलानां
मणिमेखलानां शशाङ्कभासां प्रमदाजमानाम् । वृत्तहु-
माणां कुसुमान्वितानां ददाति सौभाग्यमयं वसन्तः

फूट आई । ठीक है, दिवा हुआ दान कभी निष्कल नहीं
होता ॥ १११ ॥ वसन्त-भरे अधरोंके समान लाख धरांफसे,
मतवाले भीरोंकी गूँजसे, दौंतीकी चमकती हुई पौतों-झैले उगले
कुन्दके धारोंसे, भली-भाँति लिले हुए कमलके समान मुक्तासे
और घामके बौरोंकी सुगन्धमें बसे हुए मन्द-मन्द पवनसे यह
शृङ्गारकी शिखा देनेवाला और कामका मित्र वसन्त आप
लोगोंको सदा प्रसन्न रखे ॥ ११२ ॥ बजते हुए कंगनोवाली,
कनकमाले हुए पायलोंवाली, कूकते हुए कुण्डलोंवाली और
रुन-झुन करती हुई किङ्किणियोंवाली नई सज्जनाओंके मुक-
कमल देखनेकी लालकसे धुँवने भी अपना रथ भीमा कर दिवा
आधां वसन्तमें दिन बड़े होने लगे ॥ ११३ ॥ मौलसिरीके
फूलोंके रसरूपी मदिरा पीनेसे जिन भीरोंकी गुनगुनाहट और
भी मधुर हो गई थी उनकी पौतों पेड़ोंसे ऐसे निकल पड़ीं
मानो रुठी हुई नवेलियोंकी मनानेके लिये कामदेवकी मेजरी
हुई वृत्तियाँ हैं ॥ ११४ ॥ वसन्तमें उत्तरकी ओर घूमे हुए
सूर्यको देखकर ऐसा जान पड़ता है मानो अपने रथमें जुते
हुए पुराने घोड़ोंको बदलकर नये घोड़े लेनेके लिये सूर्य उत्तम
लोढ़े टापड़ करनेवाली उत्तर दिशाकी ओर चल पड़े हैं ॥ ११५ ॥
लुभावनी सौंफें, छिटकी हुई चाँदनी, कोयलकी कूक, सुगन्धित
पवन, मतवाले भीरोंकी गुंजार और रातमें पीनेके लिये आसब,
ये सब कामदेवकी जगाए रखनेवाले रसायन ही हैं ॥ ११६ ॥
परदेसमें पड़ा हुआ यात्री एक तो यों ही बिड़ोहसे दुःखी

हुआ रहता है तिसपर जब वह मन्द-मन्द बहनेवाले पवनके
झोंकेसे दिकते हुए और सुन्दर सुनहले और गिरानेवाले बीरे
हुए घामके कूक अपने सामने मार्गमें देखता है तो
कामदेवके बाघोंकी चोट खाकर मूर्च्छित होकर गिर पड़ता है
॥ ११७ ॥ तिलक कूकके फूलोंपर बैठे हुए भीरों और घामकी
लाक कोपलोंको देखकर ऐसा जान पड़ता था मानो वसन्तकी
शोभा-रूपी नायिकाने अपने माथेपर धौंजनका तिलक लगा
लिया हो और उगते हुए सौंगकी सुन्दर लाकोंके समान लाक-
लाक घामकी कोपलोंके रूपमें अपने घोड़ें रँग लिए ॥ ११८ ॥
वसन्तमें नवेलियाँ अपने पतिपोंके साथ वह मदिरा पीने
लगीं जो उनमें मनोहर हाव-भाव भरता जा रहा था, अपनी
सुन्दर गन्धसे मौलसिरीकी गन्धकी भी पराल कर रहा था और
प्रेम बढ़ानेमें किसीसे कम न था ॥ ११९ ॥ जब वसन्तमें उस
नवेलीके मुलकी सुगन्धके खोमले चारों ओर भीरे
मँडराकर उसकी शोभा बढ़ाने लगे उस समय अपनी बिलरी
हुई अलकोंमें अपनी पल्लव बाँसों उलकाती हुई वह ऐसे खली
कि उसकी कमरमें बैठी हुई करचनी मधुर रुनझुनके साथ
बज उठी ॥ १२० ॥ वसन्तमें फूले हुए कनैरके फूल देखनेमें
तो बड़े मजे लगते थे पर सुगन्ध न होनेसे वे मनकी सज्जक
भी नहीं भा रहे थे । प्रायः देखा गया है कि कदा किसी भी
वस्तुमें दो गुण कभी नहीं भरता ॥ १२१ ॥ वसन्तके आनेसे
बावदियोंके मज, नवियोंसे नयी करपनियाँ, चाँदनी, तिलियाँ

॥ १२२ ॥ वारस्त्रीव घनस्थली नवनवां शोभां वभारा-
न्वहं पान्थान्पीडयति स्म तस्कर इव क्रूरैः शरैर्म-
न्मथः । शृङ्गारः सगुणः क्षमापतिरिव प्राप्तः प्रणिष्ठां
पतां रात्रिः स्वीकुरुते स्म मुग्धललनालज्जैव काश्यं
कमात् ॥ १२३ ॥ विकसति सहकारं स्फारसारभ्यसारं
वहति ध्रुतपटीरे मन्दमन्दं समीरे । कलयति कलघाचं
कोकिलोकोऽपि रुष्टः क्षणमपि न मृगाच्या वल्लभो
दुर्लभोऽभूत् ॥ १२४ ॥ विकसितकुसुमाधरं हसन्तीं
कुरवकराजिवधूं विलोकयन्तम् । ददशुरिव सुराहना
निषण्णं सशरमनङ्गमशोकपल्लवेपु ॥ १२५ ॥ विकसित-
सहकारभारहारिपरिमलपुञ्जितगुञ्जितहिरैफः । नच-
किसलयचावहचामरधीर्हरति मुनेरपि मानसं यसन्तः
॥ १२६ ॥ विरचितता मधुमोषघनश्रियामभिनवा इव
पत्रविशेषकाः । मधुसिन्हा मधुदानविशारदाः कुरवका

रवकारणनां ययुः ॥ १२७ ॥ विलासिभिरिवोन्मदै-
रचिनरम्यगुञ्जारवैः प्रमत्नसुरभीकृतविगलितप्रपा-
स्तापसाः । अशोकशिखरन्धिनेः सुनयनान्वितैः
पट्टपदैर्निरन्तरनिर्घेवितामिनमधौ मधौ रेमिरे ॥ १२८ ॥
व्यनीनकलये शिशिरैकवाले सङ्कल्पपुष्पोद्भवमन्ध-
राङ्गी । इयं लवङ्गी युवभृङ्गसङ्गादुच्छन्नमुच्छन्न-
निकेव भानि ॥ १२९ ॥ ब्रह्मगुरुप्रमदाधरदुः-
सहं जघननिषिष्योक्तमेखलम् । न खलु तावदशेष-
मपोहितुं रविरलं विरलं कृतवान्हिमम् ॥ १३० ॥ शुशु-
भिरे स्मितचारुतगननाः स्त्रिय इव श्लथशिशिनम-
खलाः । शिकचतामरसा गृहदीधिका मद्कलौदकलौ-
लविहङ्गमाः ॥ १३१ ॥ श्रान्तमुखभ्रमरस्थनगीतयः
कुसुमकोमलदन्तरुचा ययुः । उपवनान्तलताः पयना-
हृतैः किसलयैः सलयैरिव पाणिभिः ॥ १३२ ॥ भवसन-

धीर मञ्जरीसे लगी आमोंकी हाथें सब और भी सुझावनी लगने
लगी हैं ॥ १२२ ॥ वसन्तके दिनोंमें वेश्याके समान बनकी
भूमि प्रति दिन नई-नई शोभा पाने लगी, कामदेव भी
कोरके समान अपने निर्दय पाणोंसे बियोगियोंपर प्रहार करने
लगा, शृङ्गारमें गुणवान् राजाके समान बड़ा सम्मान पाया
और रात्रि भी भाँखी-भाँखी नारीकी लज्जाके समान धीरे-धीरे
हीन होने लगी ॥ १२३ ॥ कैलती हुई सुगन्धके साथ जब
आमका वृक्ष और गया, चन्दनके वृक्षोंको हिलानेवाला वायु
धीरे-धीरे बहने लगा और कोयल भी जब मधुर स्वरोंमें कूक
उठी, उस समय रुझा हुआ मायक भी नायिकाको पल-भरके
लिये भी दुर्लभ नहीं हुआ अर्थात् तत्काल प्राप्त हो गया
॥ १२४ ॥ खिले हुए फूलोंके आठोंसे हैंसती हुई फटसरैयाकी
पंक्तिरूपी नायिकायोंसे निहार जावेवाला तथा अशोकके पत्तोंमें
आया छेकर बैठे हुआ कामदेव ऐसा सुन्दर जान पड़ता था
मानो देवियों उसे देख रही हों ॥ १२५ ॥ जिस वसन्तमें
बौरी हुई आमकी हाथियोंका भार कम करनेवाले (हाथियोंसे
फटे हुए) परागमें लोट-पोटकर भौरे गुनगुना रहे हैं और नई-
नई सुन्दर कोंपलों जिसके सिरपर चैवर-सी जान पड़ती हैं वह
वसन्त आकर मुनियोंका भी मन हर रहा है ॥ १२६ ॥
फटसरैयाके जो पीछे उपवनकी शोभारूपी नायिकाके शरीरमें
वसन्तरूपी घेलेके हाथ रही हुई चित्रकारीके समान दिखाई
पड़ते थे उनके फूलोंमें भरे हुए रसपर ऊड़ू होकर भौरे गूँझने
लगे ॥ १२७ ॥ वसन्तके जिन दिनोंमें विलासियोंके समान

मनवाने, मधुर गुञ्जार करनेवाले, फूलोंकी सुगन्धमें लिपटे हुए
तथा अपनी आँखोंके साथ अशोकके पेड़पर बैठे हुए, भौरे जो
भरकर फूलोंका रस पी रहे थे, उस समय तपस्वी भी लज्जा
छोड़कर झीझमें लग गए ॥ १२८ ॥ जिस लवङ्ग लताके खिले
हुए फूलके गुच्छे ही उसके स्नान हैं, शिशिर फूलमें जिसका
सदृक्पन यौना है तथा जिसमें मनवाहे फूलखिल आए हैं (फूलके
निकलनेसे जिसके धरा सुन्दर हो गए हैं) वह लवङ्गलता तरुण
भौरेका सङ्ग पाकर और भी सुन्दर दिखाने पड़ने लगी ॥ १२९ ॥
जिस ठण्डकको पत्तियोंके श्मशानसे फूँके हुए, नवेलीके आँठ नहीं
सह सकते थे और जिसके कारण कमरपरसे लगदी खाल हो
गई थी उस ठण्डकको यद्यपि वसन्तके सूर्यने भली भौति दूर तो
नहीं किया था किन्तु कम अवश्य कर दिया ॥ १३० ॥ खिले
हुए लाख कमलोंसे भरे हुए और चञ्चल जल-पत्तियोंसे गूँजती
हुई घरकी वावड़ियाँ ठन स्त्रियोंकी भौति सनाहर दिखाई
पड़ रही हैं जिनके सुन्दर मुखोंपर हैंसी छाई हुई है और
जिनकी डीली करधनियाँ बज रही हैं ॥ १३१ ॥ उपवनकी
वे क्षताएँ वसन्तमें सुन्दर दिखाई देने लगी थीं जिनपर
भौरीकी मधुर गुञ्जार गात-सी सुनाई पड़ती थी, जिनके कामल
फूल दाँतके समान सुन्दर दिखाई पड़ते थे और वायुके
फकोरोंसे हिलता हुई जिनको कोंपलों अभिनय करती हुई
भुआओंके समान हिल रही थीं ॥ १३२ ॥ वृक्षकी लता-रूपी
उस नवेलीके फूल-रूपी मुखको भौरा चूमने लगा जिसके
वायुरूपी सोंससे हिलते हुए पत्ते ही आँठ थे, जिसमें मधु

चलितपल्लवाधरोष्ठे नवमिहितेर्धमिवावधूयन्तो ।
मधुसुरभिणि पदपदेन पुष्पे मुख इव शाललतावधूष-
चुम्बे ॥ १३३ ॥ सद्यः प्रवालोल्लसच्छास्यं नीते समाप्तिं
नवचूतयाणे । निवेशयामास मधुद्विरेफाभामाक्षराणीष
मनोभवस्य ॥ १३४ ॥ सन्तु द्रुमाः किसलयोत्तरपुष्प-
भाराः प्राप्ते वसन्तसमये कथमित्यमेव । न्यासैर्नव-
द्युतिमतोः पदयोस्तवेयं भूः पुष्पिता सुतनु पल्लवितेव
भाति ॥ १३५ ॥ सपन्नलेखेषु विलासिनीनां वक्त्रेषु
हेमाम्बुदहोपमेधु । रम्भान्तरे मौक्तिकसङ्करम्यः स्वेदा-
गमो विस्तरतामुपैति ॥ १३६ ॥ सपदि सखीभिर्निभूतं
विरहवतोस्त्रातुमत्र भज्यन्ते । सहकारमञ्जरीणां शिखी-
द्रमग्रन्धयः प्रथमे ॥ १३७ ॥ समदमधुकराणां कोकि-
लानाञ्च नादैः कुसुमितसहकारैः कणिकारैश्च रम्यः ।
इषुभिरिव सुतीक्ष्णैर्मनसं मानिनीनां तुदति कुसुम-
मासो मम्मथादीपनाय ॥ १३८ ॥ समाभिसृत्य रसाद-

वलम्बितः प्रमदया कुसुमावचिचीयया । अविनमस-
रराञ्च वृथोषकैरनृतया नृतया वनपादपः ॥ १३९ ॥ सह-
कारकुसुमकेसरनिकरभरामोदमूच्छितदिगन्ते । मधु-
रमधुविधुरमधुपे मधौ भवेत्कस्य नोत्कण्ठा ॥ १४० ॥
साम्यं सम्पति सेवते विचकिलं धारमासिकैर्मौक्तिकै-
वाङ्गीकी दशनमणारुणतरैः पञ्चैरशोकश्चितः । धृङ्ग-
सङ्घितकोटि किंशुकमिदं किञ्चिद्विद्वन्तायते मास्त्रि-
स्तवकैश्च पाटलितरोरम्यैश्च काचिन्निपिः ॥ १४१ ॥
सुभगे कोटिसंख्यन्त्यमुपेत्य मदनाशुगैः । वसन्ते पञ्चता-
त्यका पञ्चतासीद्वियोगिनाम् ॥ १४२ ॥ सुवदनावदना-
सवसम्भूतस्तदनुवादिशुणः कुसुमोद्गमः । मधुकरैरक-
रोम्भधूलोलुपैर्यकुलमाकुलमायतपङ्क्तिभिः ॥ १४३ ॥ सुह-
दस्तदणीनखसुतानां प्रतिपन्नाः पथिकाङ्गनाजनानाम् ।
दहनद्युतिदस्यवः समन्ताद्विपिनं किंशुककुञ्जला-
विरेजुः ॥ १४४ ॥ स्तनेषु हाराः सितचन्दनाग्रा भुजेषु

(मकरन्द, मदिरा) की सुगन्ध थी और जो मासो उसी समय
कठकर अपना शरीर दिखा रहा भी ॥ १३३ ॥ सुन्दर वसन्तने
मई कोपलोंके पङ्क्त लगाकर आमकी उम मञ्जरियोंको बाण बना
दिया जिनपर बैठाप हुए और ऐसे जान पड़ते थे मासो उम
बाणोंपर कामदेवके नामके अक्षर लिख दिए गए हों ॥ १३४ ॥
हे सुन्दरी ! वसन्त पानु आमपर केवल वृक्ष ही फूल-पत्तोंसे
नहीं सजे गए हैं वरन् रङ्ग-मई रांभावाले गुहारे चरण धू-तुकर
वह भरसा भी फूल-पत्तोंसे सजा हुआ-सी जान पड़ रहा है
॥ १३५ ॥ सुन्दर कमलके समान सुहावने और बेलबूटे
वाले हुए लियोंके सुखोंपर फैली हुई पत्तियोंकी रङ्ग ऐसी
दिखाई पड़ती है मानो अनेक प्रकारके रत्नोंके बीच बहुतसे
मोती जड़ दिए गए हों ॥ १३६ ॥ त्रियोगिनी स्त्रियोंकी
रचाके लिये इस वसन्तमें उनकी सखियाँ कटपट आमके
बीरोंके ऊपरकी पड़की फूटी हुई गाँठें धीरे-धीरे तोड़ ले
रही हैं ॥ १३७ ॥ कोपल और मदमाते औरोंके स्वरोंसे
गूँजते हुए तथा और हुए आमके पैदोंसे भरा हुआ वह
वसन्त मनोहर कर्नरके फूलोंवाले अपने पंने बाणोंसे
मानिनी स्त्रियोंके मन इसलिये बाँध रहा है कि उनमें प्रेम
जग जाय ॥ १३८ ॥ फूल तोड़नेकी चाहसे एक नवेलीने बड़े
प्रेमसे आगे बढ़कर एक पृथकी थाम लिया फिर भी वह कुका
नहीं इसलिये उसका पुरुषत्व भूटा और स्पर्श जान पड़ा
क्योंकि पुरुष होता तो स्त्रीके सम्मुख अवश्य ही मुक जाता

॥ १३९ ॥ जिस वसन्तमें आमके बीरकी मड़कसे सारी
दिशाएँ गमक उठी थी और मीठे फूलोंके रसोंसे और मल
होकर कम रहे थे उस समय कौन ऐसा अभाग था जो
अपनी प्यारीके लिये मचल न उठा हो ॥ १४० ॥ मदन
वृक्षका फूल वसन्तके दिनोंमें वृक्ष महीनेके मोतीके समान
बढ़ा-बढ़ा दिखाई पड़ने लगा, अशोकका वृक्ष बलकली
स्त्रियोंके दन्तवृत्तके समान जाल-जाल पत्तोंसे भर गया, देव
पर औरोंके बैठ जानेसे उनकी टेंपियाँ ढीली पड़ गई और
जाल-जाल गुच्छोंसे पाटल वृक्षकी शोभा कुछ और विशिष्ट बन
गई ॥ १४१ ॥ हे सुन्दरी ! वसन्तमें कामके बाणोंने अपनी
पाँचकी संख्या बदलकर करोंकी संख्या महय कर ली और
उनकी पञ्चता (पाँचकी संख्या, मृत्यु) का वियोगियोंके पास
पत्नी गई ॥ १४२ ॥ मौलीसिरीके वे पैद फूल उठे जिन्हें सुन्दरी
वायिकाने अपने मुखकी मदिराले सींचा था, फूलोंके साथ ही
उनमें मदिराकी गन्ध भी आ गई और इसीलिये फूलके रसके
लोभी औरोंने कुछ बाँधकर उसे घेर लिया है ॥ १४३ ॥ वे
पलासकी जाल-जाल कलियों जङ्गलमें चारों ओर फूल उठी हैं
जो नवेलियोंके शरीरपर नखचिह्नके समान देखी और
त्रियोगिनीकी जलानेवाली आगसे भी अधिक चमकीली दिखाई
दे रही हैं ॥ १४४ ॥ अपने प्रेमीसे सम्भोग करनेकी उतावली
नारियोंने अपने स्तनोंपर धीमे चन्दनसे भीगे हुए मोतीके हार
पहन लिए हैं, हाथोंमें सुजम्ब और कलन डाल लिए हैं

सङ्गं घलयाद्दधानि । प्रयान्त्यनङ्गातुर्मानसानां नित-
म्बिनीनाञ्जघनेषु काञ्चक्यः ॥ १४४ ॥ स्तोत्रं चैत्रगुणो-
दयस्य विरहिमाणप्रयाणानकष्टः । स्मरकामुकस्य
सुदृशां शृङ्गारशिक्षागुरुः । दोलाकेलिकलासु मङ्गल-
पदं वन्द्यं घनान्तश्रियां नादोऽयं कलकण्ठकण्ठ-
कुहरमेङ्गोलितः श्रूयते ॥ १४५ ॥ स्थलकमल-
तरुणां कामिनोलोचनेषु क्षिपति मुकुलमुद्रया
धूलिजालं विशालम् । तदनु हरति हन्त स्वान्तस-
र्वस्वमासामयमनयविदग्धो धूर्तवन्मीनकेतुः ॥ १४६ ॥
स्थाने स्थाने मलयमदतः पूरयन्त्यङ्गपालां पुष्पांशुषु
स्मरगजरजःकानयोग्याः परागाः । जातं श्रूते मधुमधुक-
रमेपसोजानुद्वेगं निधिघ्नत्वं सपदि भवते रागराज्या-
भिवेकः ॥ १४७ ॥ स्फुटमिषोज्ज्वलकाञ्चनकान्तिभिर्गु-
तमशोकमशोभत अस्पृकेः । विरहिणां हृदयस्य भिदा-
भूतः कपिशितं पिशितं मदनाग्निना ॥ १४८ ॥ स्मरदु-
ताशनमुर्मुरच्छूर्णतां दधुरियाभ्रवणस्य रजःकणाः ।
निपतितः परितः पथिकमजानुपरिते परितेपुरतो

भृशम् ॥ १४९ ॥ हिमव्यपायाद्विशदाधराणामापाण्डु-
रीभूतमुखच्छवीनाम् । स्वेदोद्गमः किम्पुरुषाङ्गनानां
चके पदं पञ्चविशेषकेषु ॥ १५० ॥ हुनहुताशनदीति
घनश्रियः प्रतिनिधिः कनकाभरणस्य यन् । युवतयः
कुसुमं दधराहितं तदलके दलकेसरपेशलम् ॥ १५१ ॥

मदनपूजा—कुसुमसुकुमारमूर्तिर्दधनी नियमन
तनुतरं मध्यम् । आभाति मकरकंठः पार्श्वस्था
षापयतिरिध ॥ १ ॥

कुसुमावयवः—अताडयत्पल्लवपाणिनं पुष्पाच्चयं
राजवधूरशोकम् । तच्छेददंतोरलिपङ्क्तिभङ्ग्या विक्र-
न्तिता चाललता स्मरेण ॥ १ ॥ अनुभवत युवत्यो
भाग्ययन्यो नितान्तं कुसुमयलयवेलासङ्गवेलासुखानि ।
मम तु मधुकराणां वाटपाटधराणां सपदि पतति भाटी
पुष्पवाटीनिवेशे ॥ २ ॥ अन्यत्र यूयं कुसुमावसायं
कुरुष्वमत्रास्मि करोमि सख्यः । नाहं हि दूरं भ्रमितुं
समर्था प्रसादतायं रचितोऽञ्जलिर्यः ॥ ३ ॥ अस्तङ्ग्य-
पुष्पोऽपि मनोभवस्य पञ्चैव धारणार्थमयं ददाति । पथं

और अपने भित्तियोंपर करघनी बाँध ली है ॥ १४४ ॥ वसन्तमें
वनकी शोभाकी प्रशंसा करनेवाले कोयलके गलेसे निकली हुई
झूक ऐसी जान पड़ती है मानो चैत्रके सुन्दर गुच्छोंका स्तोत्र
हो, विरहियोंके प्राण लेनेवाले कामके धनुषकी टङ्कार हो,
स्त्रियोंको शृङ्गार सिखानेका पाठ हो और भूला भूलनेकी
कलाका मङ्गल-गान हो ॥ १४५ ॥ कुंदरे कामदेवने पहले स्थल-
कमल तथा वृक्षोंकी कलीरूपी मुट्टीमें परागरूपी धूल लेकर
स्त्रियोंकी आँखोंमें मोंक दिया और तब टगकी भोंति उनका
हृदयरूपी रत्न छूट लिया ॥ १४६ ॥ प्रेमरूपी राजाके
राज्याभिवेकमें अब कोई कमी नहीं रह गई क्योंकि कामदेवरूपी
हाथीकी धूलसे स्नान करानेके लिये फूलोंका पर्याप्त पराग इस
समय चारों ओर मलयके वायुकी गोद भर रहा है और
आमके बीरमें भीरोंके घुटने-घुटने-भर रस भर गया है
॥ १४७ ॥ सुन्दर सुनहरे जम्पेके फूलोंके साथ अशोकके फूल
ऐसे जान पड़ते थे मानो विरहियोंके फटे हुए हृदयका मांस
कामकी अग्निसे भुजकर पीला हो गया हो ॥ १४८ ॥ आमके
वनमें बीरके पराग ऐसे जान पड़ते थे मानो कामरूपी आगसे
जले हुए भूसीके कण हों इसीलिये वे नियोंगियोंके ऊपर
चारों ओरसे भड़क उठें तपाए जा रहे थे ॥ १४९ ॥ जाड़ा
बीतनेसे जिनके ओठ चिकने और गाल चमकीले हो गए हैं

उन किम्बरियोंके मुखपर बनी हुई चित्रकारीपर वसन्तमें
पसंनेकी चूँच भूजक चार्ह है ॥ १५० ॥ हविले प्रयत्नित अग्निकी
जमकसे भरी हुई वनकी शोभा-रूपी नायिकाके सुनहरे गहनोंका
प्रतिनिधित्व करनेवाली कोमल कोंपलें नवेलियोंने अपने जूझोंमें
खोस लीं ॥ १५१ ॥

कामदेवकी पूजा : फूलके समान कोमल और पतली
कमरवाली नवेली कामदेवकी मूर्तिके पास खड़ी हुई उसके
धनुषके समान दिगई पड़ रही है ॥ १ ॥

फूल सुनना : किसी रानीने फूल तोड़ते समय अपने
कोमल हाथसे किसी अशोककी टहनिकां भकभोर दिया,
इसका बदला लेनेके लिये कामदेवने भीरोंका सुगंध
भेजकर कोमल खतापर धावा बुलवाकर उसे बड़ा तक्र
किया अर्थात् अशोकके दुःखसे कामदेवको दुःख हुआ और
खताको पीड़ित देखकर रानीको फट हुआ ॥ १ ॥ फूल
कहता है 'हे नवेलियो ! तुम बड़ी भाग्यशालिनी हो, इसलिये
वसन्तकी अठलेलियोंका जी-भरकर आनन्द ले लो । मुझे
तो यह सुख मिलनेवाला नहीं है क्योंकि ये डाकू भैंरे
फूलोंके उपवनमें एकाएक घुसकर भँवराने लगे हैं' ॥ २ ॥ एक
नवेलीने अपने श्रियको उपवनमें बुलाया है, उसकी प्रतीक्षा
करती हुई वह अपनी सखियोंसे कहती है—'हे सखियो !

कदर्यत्वमियावधार्य सर्वस्वमग्राहि मधोर्वधूमिः ॥ ४ ॥
इदमिदमिति भूखदां प्रसन्नैर्मुहुरतिलोभयता पुरः
पुरोऽन्या । अनुरहसमनायि नायकेन त्वरयति रन्तु-
महो जनं मनोभूः ॥ ५ ॥ उच्चिन्य प्रथममवस्थितं
मृगाक्षी पुष्पोद्यं श्रितविटपं ग्रहोतुकामा । आरोहुं
पद्मदधादशोकयष्टावामूलं पुनरपि तेन पुष्पिता सा
॥ ६ ॥ उपरिजतकृजानि याचमानां कुशलतया परिग्भ-
लोलुपोऽन्यः । प्रथितपृथुपयोधरां गृह्णाण स्वयमिति
मुग्धघधुमुदास दोर्भ्याम् ॥ ७ ॥ निजनयनप्रतिचिम्बैर-
म्युनि बहुशः प्रतारिता कापि । नीलोत्पलेऽपि विमृ-
शति करमर्पयितुं कुसुमलावी ॥ ८ ॥ पार्णी पद्मधिया
मधूककुसुमध्रान्या तथा गण्डयोगीशेभ्यदीवरशङ्कया
नयनयोर्यन्धूकयुद्धयाधरे । लीयन्ते कयरीभरे निजकु-
लप्यामोहजातस्पृहा दुर्बारा मधुपाः कियन्ति तरुणि

स्थाननि रक्षिष्यसि ॥ ९ ॥ पूर्वं द्विरेफपरिभूतिभया-
द्भवत्या यत्केशपुष्पभरणं हरिणाति मुक्तम् । व्यर्थं
तद्वच पुनरप्यलकेषु भृङ्गाः पुञ्जीभवन्निजकुलध्रमतः
पतन्ति ॥ १० ॥ मुखकमलकमुग्धमग्ध यूना यदभिनवो-
दवधूर्वलादचुम्बि । तदपि न किल बालपक्ष्मवाग्रहप-
रया विविदे धिदग्धसख्या ॥ ११ ॥ मृदुषरणतलाग्रदुः-
स्थितत्वादसहतरा कुचकुम्भयोर्भरस्य । उपरि निरव-
लम्भनं प्रियस्य न्यपतदधोच्चतरोच्चिचीययान्या ॥ १२ ॥
सललितमवलम्ब्य पाणिनांसे सहचरमुच्छ्रितगुच्छवा-
ङ्कयान्या । सकलकलभकुम्भध्विभ्रमाभ्यामुत्सि रसा-
द्वसस्तरे स्तनाभ्याम् ॥ १३ ॥

वसन्तवापव — अतिमन्दचन्दनमहोदधरघातं स्तवका-
भिरामलसिकातरुजातम् । अपि तापसानुपवनं मद्
नातान्मदमज्जुञ्जदलिपुञ्जमकार्षीत् ॥ १ ॥ आसिङ्गन्ते

आप लोग कहीं और जाकर फूल चुन, मैं तो यहीं चुनूंगी
क्योंकि मुझसे दूर जाया नहीं जाता, इसलिये हाथ जोड़ती हूँ
मुझपर कृपा करो' ॥ १ ॥ अपने पास अनगिनत फूल होते
हुए भी वह निगोढ़ा वसन्त वाण बनानेके लिये कामदेवको
कुल पाँच ही फूल देता है, उसकी मह सुदृता देखकर ही
नवेलीयोंने सब फूल उतार लिए हैं ॥ २ ॥ नायकने अपनी
प्यारीको इस प्रकार ललचा-ललचाकर कि 'इसका फूल
अच्छा है, उसका फूल अच्छा है' आगे बढ़ाया और एकान्तमें
बैठ गया, सचमुच इस लेनेके लिये कामदेव लोगोंको उतावला
बना ही देता है ॥ ३ ॥ उस मृगनयनीने आशोकके नीचेकी
टहनियोंमें लगे हुए फूल तोड़कर जैसे ही ऊपरके फूल
तोड़नेके लिये वालीपर पैर रक्खा त्यों ही वह आशोकका बूझ
फिर जड़तक फूलोंसे ढक गया ॥ ४ ॥ जब नवेलीने ऊपरके
फूल तोड़नेके लिये अपने प्रियसे प्रार्थना की तब उस चतुर
नायकने गले लगानेके छेभमें नायिकासे कहा कि 'तुम स्वयं
क्यों नहीं तोड़ लेती' और यह कहकर उसने अपनी बड़े-बड़े
स्तनोंवाली भोली-भाली नायिकाको अपनी बाँहोंमें बसकर
ऊपर उठा दिया ॥ ५ ॥ एक नवेली जलमें पड़ी हुई अपनी
आँखोंकी परछाईको बार-बार नीला कमल समझकर उसे
तोड़नेके प्रयत्नमें जब बहुत बार भोला सा चुकी तो वह
सचमुच नीले कमलपर भी हाथ लगानेमें सोच-विचार करने
लगी कि वह कमल है भी या नहीं ॥ ६ ॥ एक और किसी
नवेलीको तह कर रहा है, उसपर कवि कहता है कि 'हे

नवेली ! ये भीरे कमलके धोलेमें तुम्हारे हाथोंपर, महुके
फूलके धोलेमें गालोंपर, नीले कमल समझकर आँखोंपर,
जपाकुसुमके धोलेमें आँखोंपर और दूसरे भीरेके धोलेमें उनसे
मिलनेको चाहते बालोंपर आ-आकर बैठ रहे हैं, ऐसी दृश्यमें
तुम कहाँतक इनसे अपनेको बचा पाओगी' ॥ ७ ॥ है
मृगनयनी ! तुमने भीरेके डरसे ही जो अपने बालोंमें फूल नहीं
गँधे वह निरर्थक ही सिद्ध हुआ क्योंकि ये भीरे तुम्हारे बालोंको
ही भीरोंका झुगड़ समझकर हकड़े हो-होकर तुमपर मैहरा
रहे हैं ॥ १० ॥ किसी रँगिलेने बलपूर्वक नई तुलसिका
मुखकमल ऊपर उठाकर इस प्रकार चूम लिया कि कोमल
पत्ते तोड़नेमें लगी हुई चतुर सखी भी यह बात नहीं भीँप
सकी ॥ ११ ॥ ऊपरके फूलोंको तोड़नेके लिये जब वह नवेली
अपने बड़े-बड़े स्तनोंके भारीपनके कारण अपने कोमल पैरोंके
पञ्जोंपर खड़ी न रह पाई तब कोई सहारा न होनेसे वह पासमें
खड़े हुए अपने प्रियके ऊपर ही भहरा पड़ी ॥ १२ ॥ लड़के
ऊपर खिले हुए फूलोंके गुच्छे तोड़नेके लिये किसी नवेलीने
अपने हाथसे नायकके कन्धेका बड़े प्रेमसे सहारा लिया किन्तु
हाथीके मस्तकके समान बड़े-बड़े स्तनोंका बोझ न सँभाल
वानेसे वह बड़े रसके साथ अपने प्रियतमकी छातीपर ही भहरा
पड़ी ॥ १३ ॥

वसन्तके पवन : वसन्तके समय जिन उपवनोंमें मन्द-
मन्द मलयका वायु बह रहा था, वृक्ष और अताप फूलोंके
सुन्दर गुच्छोंसे ढक गई थी और जिनमें अतयासे मैरे मनोहर

मलयजतरुनास्वजन्ते वनान्तानांपुरुल्लन्ते चिरपरिचि-
तान्मालयाभिर्भरौघान् । अथ स्थित्वा द्रविडमहिला-
भ्यन्तरे भवः प्रभाते प्रस्थातारो मलयमरुतः कर्षते
सन्निधानम् ॥ २ ॥ उदञ्चत्कावेरोलहरिषु परिष्वङ्गरङ्गे
मदन्तः कङ्कणार्णवोरघोरयलवचासितप्रोषितेभाः ।
अमी चैवे मैत्रावरुणितरुणीकैलिकङ्कलिमल्लीचलहल्ली-
हल्लीसकसुरभयभण्डि चञ्चन्ति याताः ॥ ३ ॥ उपवन-
तरुन्त्याध्यापने लब्धयशो विरचितजलकेलिः पद्मिनो-
कामिनीभिः । पियसुहृदसमेपोराययौ यांगियोगस्थि-
तिविश्लयदक्षो दक्षिणो गन्धवाहः ॥ ४ ॥ कावेरीतीर-
भूमीरुहभुजगयधुभुक्तमुक्तार्णशिशुः कर्णाटीचीनपीनस्त-
मघसनपशान्दालनस्पन्दमन्दः । लालल्लाटीललाटालक-
ललितललातालस्यलीलाचिलोलः कष्टं भो दाक्षिणात्यः
प्रसरति पवनः पान्धकान्ताकृतान्तः ॥ ५ ॥ कृतप्रकोपाः
पयनाशनानां निवासप्रानादिषु पञ्चगानाम् । विनियेयु-

श्चन्दनशैलकञ्जादाशामुदीचीं प्रति गन्धवाहाः ॥ ६ ॥
तन्वानप्रशीतलव्यं जलधितटचनोत्तालतालासवानां
दोलाव्यालोलचालीगुरुमणमरोत्फालहेलासहायः ।
वायुर्यात्येष दन्तव्रणमधरदले लालयन् केरलीना-
मुन्मीलल्लन्यशिक्षाभ्रमकुसुमधनुर्दक्षिणो दाक्षिणा-
त्यः ॥ ७ ॥ पथि पथि लतालोलाक्षीभिः श्रवन्मधु-
सीकरं कुसुमनिकरं वर्षन्तोभिः सहर्षमिवाचितः ।
मधुकरवधूर्गीतासक्तं कुरङ्गकमास्थितः प्रसरति वने
मन्दं मन्दं वसन्तसमीरणः ॥ ८ ॥ पानीयं नारिकेलीफ-
लकहरकुहृत्कारि कल्लालयन्तः कावेरीतीरतालद्रुमभरि-
तसुराभाण्डभाङ्गारचण्डाः । एते तन्वास्ति घलायन-
ललितललाताण्डयं द्राविडलोकर्पूरापाण्डुगण्डस्थल-
लुडितरया वायव्यो दाक्षिणात्याः ॥ ९ ॥ प्रातः प्राज्य-
मिव श्रमं जलजिनोसारभ्यभारं वहन्नुहामस्तयकान-
मज्जवलतासकामोमवालोकायन् । स्वोक्थेन्मदमन्थरानिव

गुजार कर रहे थे वे तपस्वियोंको भी कामसे पीड़ित बनाए
जात रहे थे ॥ १ ॥ मलय पर्वतके वे पवन जो वहाँके चन्दनके
वृक्षोंको गले लगाते हैं, हरे-भरे वनोंके छोरोंको छूते चलते
हैं, अपने साथी मलय पर्वतके भरमोंसे रमरमी करते चलते हैं
और जो आज कुछ धेरतक द्रविड-नवेलियोंके बीच थोड़ी देर
ठहरकर प्रातःकाल ही चल पड़े हैं, वे पास आ पहुँचे हैं ॥ २ ॥
हे रुदनेवाली नवेली ! चैत्रके महीनेमें वे पवन चारों ओर बह
चले हैं जो उच्छ्वसती हुई कावेरीकी लहरोंको गले लगा-लगाकर
गाय रहे हैं, कायलकी कूकरूपी सिंह-गर्जनसे जिन्होंने वियोगी-
रूपी हाथियोंको दहका दिया है, जिनमें उस अशोककी
सुगन्ध है जिसके साथ भगस्यकी भी खोपासुद्धा क्रीड़ा
करती थी और जिनमें हिलती और नाचती हुई अमेलीकी गन्ध
बसी हुई है ॥ ३ ॥ वनके वृक्षोंको नाचना सिलानेवाला,
कमलिनी-रूपी नायिकाओंके साथ जलकीड़ा करनेवाला तथा
योगियोंका मन योगसे हटानेवाला यह कामदेवका मित्र
दक्षिणका वायु अब आ पहुँचा है ॥ ४ ॥ कावेरी नदीके तीरके
वृक्षोंपर लिपटी हुई साँपियोंके पीनेसे बचा हुआ, कर्णाटकी
नवेलियोंके बड़े-बड़े स्तम्भोंपर ठके हुए रेशमी वस्त्रोंको धीरे-धीरे
जिसकाता हुआ, लाट देशकी नवेलियोंके माथेपर खहराते हुए
केशरूपी जलारोंको झुलाता हुआ और वियोगियोंकी पत्नियोंकी
हत्या करता हुआ यह दक्षिणका वायु बढ़ता चला आ रहा है
॥ ५ ॥ चन्दनके वनोंके कुओंको झाँककर वे पवन उत्तरकी

ओर मानो इसलिये भागे चले जा रहे हैं कि उस वनके वायु-
भण्ड्य करनेवाले साँपोंको अपने कुओंमें आश्रय दिया है
॥ ६ ॥ समुद्रके किनारेके वनोंमें जो बड़े-बड़े ताड़ हैं उनके
रसको शीतल करता हुआ, झूला झूलती हुई नवेलियोंकी
खोली दिखाकर उनके पति-सहस्रके उत्साहमें सहायता
पहुँचाता हुआ, केरल देशकी तरुणियोंके छाँटाँपर लगे दाँतके
चिह्न (घावों) को सहजाता हुआ तथा कामदेवके धनुषको
लचप साधनेकी शिक्षा देता हुआ दक्षिणका पवन बह रहा है
॥ ७ ॥ वसन्तका यह पवन धीरे-धीरे वनमें फैल रहा है
जिसकी मार्ग-मार्गमें वन लतारूपी नायिकाओंने प्रसन्नता-पूर्वक
पूजा की है जिनमेंसे मकरन्दकी सूँद्रे टपकानेवाले फूलोंकी
वर्षा होती रहती है और जो पवन वन हिरण्योंसे मिलता चल
रहा है जो ध्यान-पूर्वक भौरियोंकी गुनगुनाहट सुननेमें मग्न
है ॥ ८ ॥ नारियलके फलोंके भीतरके जलको उछाजते हुए,
कावेरीके तीरपर ताड़के पेड़ोंमें लटकी हुई ताड़ीसे भरी लभनियों
(ताड़ीके घड़ों) में भौं-भौं करते हुए तथा द्रविड
नवेलियोंके कपूरके समान उजले गालोंपर लगनेसे कम वेग-
वाले दक्षिणके पवन समुद्र-तटके वनोंकी सुन्दर लताओंकी
नशा रहे हैं ॥ ९ ॥ कमलिनीकी सुगन्धके बोझसे घका हुआ,
बड़े-बड़े गुन्धोंसे झुकी हुई नई लताओंकी शोभा निहारता हुआ
तथा नवेलियोंके समान धीरे-धीरे चलता हुआ वसन्तका वायु
चन्दनके वनसे धीरे-धीरे चला आ रहा है ॥ १० ॥ सिंह

गतेर्धामभ्रुवां विभ्रमात्मन्द् मन्दमुपाजगाम पवनः
पाटीरघाटीतटात् ॥१०॥ मलयगिरिसमीराः सिंहलद्वी-
पकान्ता मुखपरिचयलम्घस्फारकर्पूरवासाः । द्रविड-
युधतिदोलाकेलिलोलन्नितम्बस्थलशिथिलितवेगास्ते -
व्यतामाप्नुवन्ति ॥ ११ ॥ मलयशिखरादाकैलासं मनो
भवशासनाद्भयनवलयं जेतुं वाञ्छन्वसन्नसमीरणः ।
धिहितवसति कैलासाग्रे भुजङ्गधरं हरं मनसि विमृश-
न्मीतः शङ्के प्रयाति शनैः शनैः ॥ १२ ॥ ये दोलाकेलि-
काराः किमपि मृगदृशां मानतन्तुच्छिदो ये सधः
शृङ्गारदीप्ताव्यतिकरगुरधो ये च लोकत्रयेऽपि । ते
करटे लोटवन्तः परभृतवयसां पञ्चमं रागराजं वाप्ति
स्वैरं समोराः स्मरयिजयमहासाक्षिणो दाक्षिणात्याः
॥१३॥ घिलुलितालकसंहतिरामृशन्मृगदृशां ध्रुमधारि
कलाटजम् । तनुतरङ्गतति सरसां दलत्कुवलयं वलयन्मह-
दावयो ॥१४॥ हेमाम्मारुहपक्ष्मे परिमलस्तेयी वसन्ता-
मिलस्तत्रनैरिव यामिकैमधुकरैरारब्धकोलाहलः ।

हीनकी सुन्दरियोंके मुँहोंसे पू जानेसे जिनमें उल्टा करकी-
सी गन्ध बसी है और द्रविड देशकी भूलता हुई नवेलियोंके
चित्तोंमें जगनेसे जिनका बेग कम हो गया है ऐसे मलय
वनके पवन सेवन करने योग्य हो रहे हैं ॥ ११ ॥ कामदेवकी
आशा पाकर मलयाचलकी चोटीसे छेकर कैलास पर्वतकके
सारे पृथ्वी-मण्डलको जीतनेकी इच्छासे चले हुए वसन्तके
पवनने जब कैलास पर्वतपर रहनेवाले सर्पधारी शङ्करका स्मरण
किया तो वह डरके मारे भीमा पड़ गया और इसीछिये मानों
अब वह धीरे-धीरे बह रहा है ॥ १२ ॥ दक्षिणके जो वायु
झूला झूलनेको उकसा रहे हैं, नवेलियोंके मानकी धुन सोड़
रहे हैं, तीनों लोकोंको शृङ्गारका उपदेश दे रहे हैं वे संसारपर
कामदेवकी विजयके प्रत्यक्षदर्शी वायु कोयलके गलेमें पक्षम स्वर
भरते हुए धीरे-धीरे बह रहे हैं ॥ १३ ॥ नवेलियोंके बालोंको
सहाराता हुआ, उनके माथेका पसीमा पोंछता हुआ, कमलोंको
खिलाता हुआ और तालाबोंमें हल्की-हल्की जहर उठाता हुआ
वसन्तका पवन बहने लगा ॥ १४ ॥ वसन्तका पवन लिये
हुए कमलरूपी नगरसे जब गन्ध पुराने लगा तो वहाँके
रखवाले भैरोंने हल्ता मचाकर उसे घेर लिया । अतः वह
वहाँसे शीघ्रतापूर्वक निकलकर भागा तो सही किन्तु केरल
देशकी जलनाओंके उन स्तनोंपर किसलकर गिर पड़ा जिनमें
चन्दनका गीढ़ा लेप लगा हुआ था, इसीछिये वह जंगदाकर

निर्यातस्वरया मज्जिपतितः श्रीचण्डपट्टद्वैलितो
केरलकामिनीकुचतटे स्रजः शनैर्गच्छति ॥ १५ ॥

वसन्तपथि — अर्धव्यस्य वधूर्वियोगविधुरा भर्तुः
स्मरन्ती यदि प्राणानुज्झति कस्य तत्खलु महत्स्रज-
यते पातकम् । यावन्नो कृतमध्वनेन हृदये तावत्तरो-
र्मूर्धनि प्रोद्घुष्टं परपृथ्वा तव तवेत्युच्यैर्ध्वोऽनेकशः ।
॥ १ ॥ अर्धव्यनैर्मकरन्दशीकरसुरामसकण्ठकोकिले
मार्गे मार्गेनिरोधिनी परिहृता शङ्केऽशुभाशङ्कया ।
पान्थस्त्रोवधपातकादुपगतं खण्डालचिह्नं मधोरेषा
लिङ्गिलिकेव पटपदमयो भाङ्गारिण संहतिः ॥ २ ॥
अमो हेलोन्मेषव्यसनिषु पलाशेषु परितः पियमि
स्वच्छन्दं मधु मधुलिहो मापति जनः । अयं च
प्रत्यग्रं दशति सहकारं परभृतो यद्वैर्भ्रमार्गविदलति
क एव व्यतिकरः ॥ ३ ॥ अस्थिसोदवतीव कन्दमुकुलैः
कुल्लैः पलाशद्रुमैः साङ्गारमकरेय धूमकलुषेषोत्पा-
तिभिः पटपदैः । रक्ताकपुतिभिस्त्रयोपदहमाशातेव

चल रहा है यथान् जहराता हुआ धीरे-धीरे चल रहा है ॥ १५ ॥

वसन्तके पथिक : परदेसमें गए हुए अपने पतिके
वियोगमें दुखी और उन्हें स्मरण करती हुई नवेलियों यदि
अपने प्राण निकालती हैं तो इसका महापाप कितने जगता है ?
इस बातपर परदेसमें गया हुआ अनुप्य सोच ही रहा था कि
इतनेमें बूचकी चोटीपरसे कोयलने बार-बार ऊँचे स्वरसे 'तुर्गै-
तुर्गै' कहकर चूक दिया ॥ १ ॥ जिस मार्गमें फूलोंके रसकी
मदिरा पीकर मतवाला कोकिल चूक रहा था उसमें सामने
दिसाई पड़ते हुए भैरोंके भुयङ्गको अशुभ समझकर राही
उससे बचकर चला क्योंकि वह भौंर्य-भौंर्य बजनेवाली पायवाज
बीया यो जो विचोतियोंकी छियोंको मारनेका पाप करनेके
कारण कामदेवको पायवाजका चिह्न बनाकर दे दी गई थी
॥ २ ॥ सदा सहज ही लिज उठनेवाले टेसूके फूलोंका रस
तो स्वच्छन्द होकर भैरे पी रहे हैं किन्तु उससे मतवाले हो
रहे हैं मनुष्य ! इधर ग्रामके नये-नये औरको धूमता तो
कोयल है किन्तु हृदय फटा जा रहा है हमारा ! यह क्या
उन्नी बात हो रही है ? ॥ ३ ॥ पथिकने वनभूमिको चारों
ओरसे देखा तो उन्हें वह ऐसी दिसाई दी मानो कुन्दकी
कलियोंके रूपमें उसकी हरिद्वर्णों बिखर रही हों, लिये हुए
टेसूके वृक्ष ही उसकी चिताके पङ्कार हों, मँडराते हुए भैरोंके
रूपमें वसपर चुर्छा मँडरा रहा हो तथा रक्ताकपुति की

पुँसकोकिलैर्दृष्टा प्राणसमाचितेव पथिकैराराद्धनान्त-
स्थली ॥ ४ ॥ उन्मीलन्मधुगन्धलुघमधुपन्याधृतचू-
साङ्कुरकीडकोकिलकाकलीकलकलैरुह्यैर्कण्ठज्वराः ।
नोयन्ते पथिकैः कथं कथमपि ध्यानावधानसुखमाप्त-
प्राणसमासमागमरसोह्लासैरमी वासराः ॥ ५ ॥ एत-
स्मिन्दक्षिणाशानिलचलितसतालीनमत्तालिमालापक्ष-
सोभायधृतच्युतवहलरजोह्लादिदृष्टे वसन्ते । प्रमस्वेदा-
र्द्रयादुःश्लथवलयलसत्प्रौढसीमन्तिनीनां मन्दः कण्ठ-
ग्रहोऽपि ग्लपयति धृदयं किं पुनर्विप्रयोगः ॥ ६ ॥
वधिरितचतुराशा मीतहारीतनादैर्वहलयकुलपुष्पै-
रन्ध्रपुष्पन्धयाऽसौ । निधुयनयिधिमोहान्मूककोका
वनधीः कथमिव पथिकानां मेघ वैकल्यहेतुः ॥ ७ ॥ रे
पान्थाः स्वगृहाणि गच्छत सुखं सेवाश्रुणो मुच्यतां मानं
मानिनि मुञ्च वल्लभजने कोपानुवन्धेन किम् । आयातः
कुसुमाकरः क्लपयति प्राणान्वियोगातुरं पितृत्येवं परपु-

एनादपटहो वकीव कामाक्ष्या ॥ ८ ॥ वक्रेण शिरसि
पतता नित्यं रुधिराग्नेन दुर्योगः । मत्तद्विष इव
पथिकः किंशुककुसुमाकुशेन भृतः ॥ ९ ॥ वसन्तप्रारम्भे
चिरविरहस्त्रिभा सहचरी यदि प्राणान्मुञ्चेत्तद्विह वध-
भागी भवति कः । वयो वा खेदो वा कुसुमविशिस्रो-
षेति विमृशैस्तुहीति प्रव्यक्तं पिकानिफरभादारमभृ-
षोत् ॥ १० ॥ समघलोक्य विलासयनस्थलीं न पथिकैः
पथि कैः पतितं भुवि । मलयजद्रुमसौरभमंदुरांदरस-
मौरसमौरितवल्लरीम् ॥ ११ ॥ सव्याधेः रुशता रुतस्य
रुधिरं दृष्ट्य लालास्रुतिः किञ्च ज्ञेयविहास्ति तत्कथ-
मसौ पान्धस्तपस्वो मृतः । आ ज्ञातं मधुलम्पटैर्मधुक-
रैरारब्धकोलाहले नूनं सादृशिकेन चूतमुकुले दृष्टिः
समारोपिता ॥ १२ ॥ सा तन्योति घनस्तनीति विकसन्नी-
लाभनेप्राति च स्वैरं सञ्चरतीति वाक् मधुरां वाचं
विधिप्रामपि । इत्थं विद्रुमपाटलाधरपुटं सीमन्तिनीं

अधजली लक्ष्मिणीं हीं किन्तु केवल नरकोकिलोंकी कूकसे ही
वह ऐसी जान पड़ रही थी कि उसमें प्राण बच रहे हों ॥ ४ ॥
जिन दिनोंमें उठती हुई मकरन्दकी गन्धके लोभी भौरे कूम-
कूमकर आमकी बीर हिला रहे थे और उन बीरोंपर कुदकते हुए
कोकिलकी मनोहर कूक लोंगोंके कानोंमें पड़कर ताप उत्पन्न कर
रही थी ऐसे दिनोंको राही लोग अपनी प्रियाके समागमका मन
ही मनमें ध्यान करके ही भग्न होकर किसी-किसी प्रकार बिता
लेते थे ॥ ५ ॥ दक्षिण दिशाके बायुसे हिलती हुई लतापर बैठे हुए
मत्तवाले भौरोंके पंखोंसे गिराए हुए परागकी ढेरके कारण सुन्दर
दिल्लवाई देनेवाले और चित्त प्रसन्न करनेवाले वसन्तके समयमें
जब तक नवेलियोंके आसिगमकी शिथिलता भी मन दुखी
कर देती है जिनकी बाहोंके कल्लन प्रेमके पसीनेके कारण ही
खींचे पड़ जाते हैं तब उनके वियोगमें मनकी दशाका तो
कहना ही क्या है ॥ ६ ॥ वनकी वह शोभा राहियोंकी क्यों न
प्राकृत करे जिसने मद्भाते जङ्गली कबूतरोंकी विस्फाटसे सब
दिशाएँ बहरी कर दी हैं, मौलसिरीके ढेरसे फूलोंके परागसे
जिसने सबको अन्धा बना रक्खा है तथा जिसमें चकवे-चकवी
शुष्पी साधकर सम्भोगकी लीलासे मस्त है ॥ ७ ॥
कोयलकी कूक ऐसी जान पड़ती है मानो कामदेवकी आज्ञासे
वह अपनी कूकसे लगावेसे अलंकारकर कह रहा हो कि 'हे
परदेसियो ! देखो, यह वियोगियोंके प्राण हरनेवाला वसन्त आ
पहुँचा है इसलिये तुम लोग आनन्दसे अपने घर जाओ,

दूसरोंकी सेवाका काम छोड़ दो तथा हे रुठनेवालिओ ! अपना
रुठना छोड़ दो । कहीं अपने प्रियतमसे भी रुठा जाता है ।'
॥ ८ ॥ जैसे मुँह हुए और रखते लाल रङ्गुला लगनेपर भी
मत्तवाला हाथी रोके नहीं रुकता वैसे ही रुधिरके समान
खाल, डेढ़े और निरव सिरपर कदते हुए पलासके फूलोंसे
घिरा हुआ वियोगी भी रोका नहीं जा सका ॥ ९ ॥ वसन्तके
प्रारम्भमें ही बहुत दिनोंका चिड़ोहा नायक यह सांच ही रहा
था कि 'बहुत दिनोंके वियोगसे दुखी होकर मेरी प्यारी यदि प्राण
छोड़ दे तो इसकी हत्याका दोष वियोगकी अवस्थाको खेनेगा या
कामको या खेदको' कि कोयलने कूककर स्पष्ट रूपसे कह दिया
'तुमको, तुमको, तुमको' ॥ १० ॥ क्रीड़ाकी वनभूमिके जिस
मार्गमें चन्दनके वृक्षकी सुगन्धसे भरे हुए वायु मञ्जरियों
दिला रहे हैं उस वनभूमिकी देखकर ऐसा कीन राही होगा
जो मूर्च्छित होकर धरतीपर गिर न पड़े ॥ ११ ॥ किसी मरे
हुए प्रवासीको देखकर कोई कह रहा है कि 'रोगसे मरनेवाला
मनुष्य दुबला दिलाई पड़ता है, पाचसे मरा हो तो सतीमें रुधिर
दिलाई देता है और सर्प आदिके काटनेपर मरा हो तो मुँहसे
रक्त निकलता है पर इस प्रवासीमें तो ऐसे कोई चिह्न ही
नहीं दिलाई पड़ रहे हैं तब यह बेचारा कैसे मर गया ?
अच्छा, अब समझमें आया, इसने साहस करके उन आमकी
बीरोंको भर भौंलों अवश्य देख लिया होगा, जिनपर मकरन्दके
लोभी भौरे मँडराते हुए गुणगुना रहे हैं' ॥ १२ ॥ परदेसमें

ध्यायतो रोमाञ्चो रुदितं स्मितं प्रलपितं पान्थस्य
सम्जायते ॥ १३ ॥

कोकिलालापः यः श्रोत्रासृतनिर्भरैकवसति निर्व्या-
जमारुढवान् यस्यस्त्वजीवनमन्त्रितां त्रिणयनप्लुष्टस्य
चेतोभुवः । धीणावन्मसृणो ध्वनिश्चतसृणां पात्रं ध्रुती-
नामभूत्सोऽयं कोकिलकण्ठवेणुविचरध्यापारितः पञ्चमः
॥ १ ॥ यश्चूताङ्कुरकन्दलीकवलनात्कर्णामृतप्रामली
कक्षायामाश्रपरिग्रहोऽपि जगृहे पञ्चेषु जैत्रेषुताम् ।
ताम्यत्तालुषिटङ्कसङ्कटवटीसञ्चारितः पञ्चमः सोऽयं
कोकिलकामिनीगलबिलादामूलमुन्मीलति ॥ २ ॥

सहकारः—किं द्वारि वैवहृतिके सहकारकेषु सम्ब-
धितेन विषयवृत्तक एष पापः । यस्मिन्मनागपि विकास-
धिकारभाजि घोरा भवन्ति मदनज्वरसञ्चिपाताः
॥१॥ नेयश्चूतलता विराजति धनुर्लेखा स्थितेयं पुरो
नासौ गुञ्जति धृक्पद्मतिरियं मौर्वी दण्टकारिणी । नैते

बैठे हुए नायकने अपनी मूर्तेके समान खाल ओठोंवाली
पत्नीका जब इस प्रकार ध्यान किया कि 'वह दुबली है,
मड़े-मड़े हाथोंवाली है, जिससे हुए कमलके समान उसके नेत्र
हैं, वह धीरे-धीरे चलती है और बड़ी भीठी तथा प्यारी वाणी
बोलती है, तब उसके शरीरमें रोंगटे उठ कड़े हुए, वह रोने
लगता, हँसने लगता और प्रक्षाप करने लगता ॥ १३ ॥

कोयलकी धुक : कानोंमें प्रसृत-सी स्वरजहरी उपजाने-
वाले तथा शिवजीके तीसरे नेत्रसे जलने हुए कामदेवको
जिजानेवाले मन्त्रोंके समान कोयलके कण्ठरूपी बंशीके
छेदोंसे गूँजकर निकलता हुआ पञ्चम स्वर बीणाके स्वरके
समान मधुर तथा चारों वेदोंके तत्त्वसे भरकर गूँज रहा
है ॥ १ ॥ आसका बीर सा खेनेसे जो पञ्चम स्वर कानोंके बिचे
सुन्दर प्रसृत हो गया है, जो बिना शरीरके ही कामदेवकी
विजय बना जा रहा है वह कोयलकी कामिनीके गलेके छिद्रसे
नीचे नाभितक उमड़कर उसके फड़कते हुए तालुरूपी दड़के
सँकरे मार्गसे चल पड़ा है ॥ २ ॥

आमका वृक्ष : अरी अभागिन ! द्वारपर आमका वृक्ष
लगाकर पाऊनेसे क्या लाभ है क्योंकि यह पापी भी तो विपका
ही बिरवा है क्योंकि इसके योद्धा-सा बीरते ही कामज्वरका
पागलपन और भी भयङ्कर होकर बढ़ जाता है ॥ १ ॥ वह
सामने आमकी डाल नहीं है, यह तो कामदेवका चतुष है,
जिसे तू भौरोंकी गुन्धार समझ रही है वह उस चतुषकी

नूतनपल्लवाः स्मरभटस्यामी स्फुटं पत्रिणः शोणास्त-
त्क्षणभिन्नपान्थदृश्यप्रस्यन्दिभिश्शोणितैः ॥ २ ॥ पुष्पे-
षोरल्लकोशः शुक्पठनमठः स्वस्तिवासः पिकानामाश्रः
साभ्राज्यलज्जोमनुभवनुतमामश्र कान्ते वसन्ते ।
पाकप्राप्तिप्रकर्षारुणगुणगुरुणा यत्कलानां रसेन भीसौ-
भाग्येन जिग्ये मरकतकुतुपकोडजाम्बूनदाम्बु ॥ ३ ॥
मदमधुरविलासानरूपभृङ्गाभिरामा ललितमुकुललीलो-
ज्जिह्वदस्ताङ्कुरभीः । मलयपवनवेल्लत्पर्णकर्णाभ्रभागा
लसति बत वसन्ते मञ्जरी कुक्षरीव ॥ ४ ॥ सृष्टा वयं
यदि ततः किमियं मृगाक्षी सेयं वयं यदि ततः किमयं
वसन्तः । सोऽप्यस्तु नाम जगतः प्रतिपद्यभूतवृक्ष-
दुमः किमिति निर्मित एष घात्रा ॥ ५ ॥

प्रीत्यवर्णनम्—अहं चन्दनपाण्ड पल्लवमृदुस्ताम्बु-
लताम्रोऽधरो धारायन्त्रजलाभिषेककलुषे धौताक्षने
लोचने । अन्तः पुष्पसुगन्धिरार्द्रकवरी सर्वाङ्गसाम्बरं

कोरीकी टह्णार है और इसमें जिन्हें दू लाख लाख कोंपलों
समके बैठी है वे भी बीर कामदेवके लुके बाण हैं जो
परदेसियोंके हृदय काटकर उनसे बड़े हुए साहसे लथपथ होकर
लाज-झाल दिखाई दे रहे हैं ॥ २ ॥ वसन्तरूपी प्रियतमके
आते ही कामदेवके बाणोंका तरकस, तोतेकी पाठशाला,
और कोकिलोंका कमयावकरी झट्टा बना हुआ यह आश
राजलक्ष्मी पावे जिसके पके कलोंकी खाल-खाल रसकली
शोभा (सम्पत्ति) इस समय नीलमकी कुप्पीमें भरे हुए
सुनहरे जलकी शोभाकी भी जीत रही है ॥३॥ देखो, वसन्तमें
मक्की गन्धसे मतवाले भौरोंके बड़े हुए कुपड़ोंसे सुन्दर
लगनेवाली, नुकीले बीररूपी दाँतोंवाली तथा मलयाचलके
पर्वणोंसे दिखते हुए पत्तेरूपी कानोंवाली आमकी मञ्जरी
हथिनीके समान दिखाई पड़ रही है ॥ ४ ॥ यदि ब्रह्माने हम
जोगोंको बनाया तो ठीक या पर यह सुगनयनी नवेकी बनानेकी
क्या आवश्यकता थी ? यदि हमें और नवेजियोंको बना
भी दिया तो वह वसन्त क्यों गया ? खलो वह भी सही
पर हम पूछते हैं कि सारे संसारका बैरी बना हुआ यह आमका
वृक्ष क्यों प्रजाने बना दिया ॥ ५ ॥

गर्मीके दिनोंका वर्णन : गर्मीमें सौम्यके समय चन्दन
लगानेसे उज्जले-उज्जले अहं, कोंपलोंके समान कोमल और
पानकी जालीसे रँगे हुए खाल जोड़, कुहारेके जलसे स्नान
करनेके कारण अजिन चुकी हुई खाल-खाल कोंपल, फूलकी

रामाणां रमणीयतां विदधति ग्रीष्मापराहागमे ॥ १ ॥
अकारैः सखितेव भूविषयदपि ज्वालाकरालं करैस्ति-
ग्मांशोः किरतीव तीव्रमभितो वायुः कुक्कुलानलम् ।
अप्यम्भांसि नक्षत्रपचानि सरितामाशा ज्वलन्तीष च
ग्रीष्मेऽस्मिन्नवर्जिदीपितमिवाशेषं जगद्वर्तते ॥ २ ॥
अत्यच्छुं सितमंशुकं शुचिं मधुस्वामोदमच्छं रजः कार्पूरं
विधृताद्रेचन्दनकुक्षद्वन्दाः कुरङ्गोदशः । धारावेशम
सपाटलं विचकिलस्रग्दाम चन्द्रत्वियो घातः सृष्टिरियं
वृधैव तव न ग्रीष्मोऽभविष्यद्यदि ॥ ३ ॥ अत्युल्लसद्भि-
सरहस्ययुजा भुजेन वक्त्रेण शारदसुधांशुसरोदहेण ।
पीयूषपीयसुभगेन च भाषितेन त्वं चेत्प्रसोदसि मृगालि
कुतो निदाघः ॥ ४ ॥ अपि तरुवनाभ्युष्मायन्ते तप-
स्यपि यामिनी दहति सरसीवातोऽज्येय ज्वलन्ति जला-
भ्यपि । इति समधिकं ग्रीष्मे भीष्मे न पुण्यवतां भयं
मलयजरसैर्दिग्धं लब्ध्वा बधूस्तनमण्डलम् ॥ ५ ॥

अपि शिशिरस्तरोपचारयोग्यं द्वितयमिदं युगपन्त
सहमेव । जरडितरविदीधितिश्च कालो दयितजनेन
समं च विप्रयोगः ॥ ६ ॥ असहयातोद्धतरेणुमण्डला
प्रचण्डसूर्यातपतापिता मही । न शक्यते द्रष्टुमपि
प्रवासिभिः प्रियाधियोगानलदग्धमानसैः ॥ ७ ॥ अस्म-
द्रिपूणामनिलाशनानां दत्तो निवासः खलु चन्दतेन ।
इतीव रोयाद्यजनस्य वायुर्व्यशोपयच्चन्दनमङ्गलसंस्थम्
॥ ८ ॥ अस्वाध्यायः पिकानां मदनमखसमारम्भणभ्या-
धिमासो निद्राया जन्मलघ्नं किमपि मधुलिहां कोऽपि
दुर्मिश्रकालः । विष्टिर्यात्रोत्सुकानां मलयजमरुतां
पान्थकान्ताकृतान्तः प्रालेयोन्मूलमूलं समजनि
समयः कश्चिदात्पातिकोऽयम् ॥ ९ ॥ उत्तसोऽथमुर-
ङ्गमः शिखितलच्छायां समालम्बते वैरं साहजिकं
विहाय च शिलां मूलं तरोगंकुक्षति । याचन्ते च जलं
निकुञ्जभवने सुष्णातुराः सारिकास्तसे वारिणि पङ्क-

सुगन्धसे भरी भीगी बोरी और सारे शरीरपर चिपका हुआ
भीला बख सिरोंको सुन्दर बनाए दे रहा है ॥ १ ॥ सारी
पृथ्वी मानो जलते हुए अकारोंसे भरी हुई है, आकाश भी
सूर्यकी किरणोंसे मिलकर मानो आगकी लपटोंसे भर गया है,
गरम-गरम वायु भी मानो आरों और भसीकी आग बिलेर
रहे हैं, नदियोंके जलमें भी हाथ डालें तो नल एक उठते हैं
और सारी दिसाएँ जल-सी रही हैं, यहाँतक कि इस गर्मीमें
सारा संसार धधकती हुई आगसे घिरा जान पड़ता है ॥ २ ॥
हे मृगानो ! यदि गर्मीकी ज्यु न होती तो अत्यन्त स्वच्छ
और उजला बक, बहिया डली हुई मदिरा, सुगन्धित स्वच्छ
कपूरका घृता, अपने स्तनोंपर घिसा हुआ चन्दन लगाए हुए
मृगमयनी, फुहारोंका स्नानागार, गुलाबके फूलोंसे मिली हुई
मदन वृक्षके फूलोंकी माला और चम्पूमाकी निर्मल चाँदनी
आदि आपकी यह सारी सृष्टि व्यर्थ हो जाती ॥ ३ ॥ हे मृग-
मयनी ! सुन्दर तथा कोमल कमलनालके समान बोंहोंसे,
शरदूके चन्दमाके समान मुखकमलसे तथा अमृतके समान
मधुर और मनोहर बोलीसे यदि तुम मुझपर कृपा कर दो
अर्थात् यदि तुम मेरा आशिर्जन कर जो, अधरासृत पी लेने दो
तथा प्यारी बोल बोल दो तो यह ग्रीष्म मेरा क्या बिगाड़ सकता
है ॥ ४ ॥ गर्मीके दिनोंमें वनके वृक्षोंमें भी ताप भर जाता है,
रात्रि भी चपमे लगती है, तालाबोंका वायु भी जलने-सा लगता
है और जब भी खोलता-सा रहता है । किन्तु गर्मीके इन

अवसर दिनोंमें भी इन पुष्पाग्रासोंका तनिक भी भय नहीं
होता जिन्हें नई नवेलाके चन्दमसे पुते स्तन प्राप्त हैं ॥ ५ ॥
जिन दो अवरधाओंमें ठंढी-ठंढी वस्तुओंका उपयोग आवश्यक है
वे यदि एक साथ आ पड़ें तो घसड़ा हो जाती हैं, इनमेंसे एक
तो है गरमीका समय, जिसमें सूर्यकी किरणें अत्यन्त प्रचण्ड
हो जाती हैं और दूसरा ॥ अपने प्रियतमका विज्ञाह ॥ ६ ॥
परदेसमें गए हुए जिन प्रेमियोंका हृदय अपनी प्रेमिकाओंके
बिछोहकी तपनसे झुलस गया है, वे जब आँधीके झोंकोंसे उठी
हुई धूलके वणवणोंवाली और कड़ी धूपकी लपटोंसे तपी हुई
धरतीकी ओर देखते हैं तो उनसे देखा नहीं जाता ॥ ७ ॥
पङ्केके बापुने गर्मीके दिनोंमें शरीरमें लगा हुआ चन्दन मानो
इस कोपसे सुखा डाला कि यह चन्दन हमारे वैरी वायु पीने-
वाले साँपोंको रहनेके लिये स्थान देता है ॥ ८ ॥ सदाँको जड़से
उड़ा देनेवाला और उथल-पुथल मचानेवाला यह अनोखा ही
समय आ गया है जिसमें कोयलकी कूक बन्द हो गई, जो
घर करनेवालोंके लिये मलमासके समान है, नींदका जन्म-
लग्न है, भौंरोंके लिये अकाल है, यात्राके लिये चलनेवाले
दक्षिण वायुके लिये मद्दा है और विरहिणी स्त्रियोंके लिये
साक्षात् यम है ॥ ९ ॥ गर्मीसे सताया हुआ साँप मोरके पंखोंके
तले छाया ले रहा है, अपना स्वाभाविक वैर छोड़कर मोर भी
पेड़के तले जा बैठा है, प्यासी मैना आशियोंमें बैठकर पानीके
लिये खटपटा रही है और तपे हुए जलमें कमलोंको अकेला

जानि मधुपास्त्यक्त्वा श्रयन्ते क्षताः ॥ १० ॥ उद्धूय
धूलार्धवला रसातलाद्वात्या सगन्ती गगने व्यवर्तत ।
फूत्कारयन्त्येष भुवोद्धूता भुजा निदाघनापाकुलया
तपात्यये ॥ ११ ॥ उष्णालुः शिशिरे निर्वादति तरोर्मू-
लालवाले शिखी निर्भिद्योपरिकण्टिकारकुसुमान्पाशेरते
पट्टपदाः । तप्तं वारि विहाय तीरनलिनीं कारण्डवः
सेवते क्रीडावेशमनिर्वाशपञ्जरशुकः क्लान्तो जलं याचते
॥ १२ ॥ एष सूर्योऽश्वसन्तप्तो मृगः कुतश्चमाश्रितः ।
साधुर्भाग्यपरिच्छीणो नीचं प्राप्येष सीवति ॥ १३ ॥
कथमिव तव सम्मतिर्भविषी सममृतुभिर्मुनिनावधी-
रितस्य । इति विरचितमज्ञिकाविकासः स्मयत इव
स्म मधुं निदाघकालः ॥ १४ ॥ कमलवनचित्राम्बुः
पाटलामोदरम्यः सुखसलिलनिपेकः सेव्यचन्द्रांशुहारः ।
प्रजनु तव निदाघः कामिनीभिः समेतो निशि सुलसि-
तगीते हर्षपृष्ठे सुखेन ॥ १५ ॥ कानि स्थानानि दग्धा-
न्यतिशयगह्वराः सन्ति के वा प्रवेशाः किं वा शेषं

वनस्य स्थितमिति एवमासङ्गविस्पष्टतेजाः । अण्ड-
ज्वालावलीदस्फुटिततनुलताग्रन्यमुकादृष्टासो दाधा-
ग्निः शुष्कवृत्ते शिखरिणि गह्वरेऽधिष्ठितः पश्य-
तीव ॥ १६ ॥ काश्मर्याः कृतमालमुद्रतदलं कोयष्टिकष्टो-
क्ते तीराश्मन्तकशिम्बिशुम्बितमुखा धायन्यपः
पूणिक्काः । दात्युद्दैस्तिनिशस्य कोटरवति इकन्दे
निलीय स्थितं वीरुन्नीडकपोतकूजितमनुकम्बन्त्यधः
कुक्कुटाः ॥ १७ ॥ कापि कापि दिगन्ते कशधवलः
कोऽपि कोऽपि वनलेशः । तिग्मद्युतिदग्धानां ताराणां
भस्मघ्नताति ॥ १८ ॥ गजगवयमृगेन्द्रा वक्षिस्तप्तदेहा
सुहृद इव समेता इन्द्रभावं विहाय । हुतवहपरिकेदा-
वाशु निर्गत्य कक्षाद्विपुलपुलिनदेशां निजगां संवि-
शुति ॥ १९ ॥ क्षाया वियोगिवनितेष गता कशत्वं
तप्तं पयः पिशुनमानसवद्भूव । केनाधुना वत मनाग-
वलोकनीयः कुक्षोत्तमर्शमुखमण्डलवन्ततनूः ॥ २० ॥ जहा
र्वाः शम्पाणां विसक्तिसलयैः केलिवलयाः शिरीषैरुसंसा

छोड़कर मैरे भी जलाशयोंमें जा छिपे हैं ॥ १० ॥ पृथ्वीसे
उढ़कर वायुके सहारे आकाशतक पहुँची हुई धूल ऐसी जान
पड़ती है मानो गर्मीके तापकी अधिकतासे पृथ्वी अपने हाथ
(उठाकर) हँक रही हो ॥ ११ ॥ गर्मीसे तपा हुआ मोर
ठण्डे धाँवलेमें जा बैठा है, मैरे कमरके कुलमें घुसकर सो रहे
हैं, कारणवच नामका जलपरी तपे हुए जलको छोड़कर तीरपर
खिली हुई कमलिनीके नीचे छाया ले रहा है और घरमें
रहने हुए पिंजरेमें बँठा हुआ तोता ज़्यादा होकर पानी माँग
रहा है ॥ १२ ॥ सूर्यकी किरणोंसे तपा हुआ हरिश्च विना
हाल-पातवाले पेड़के नीचे लड़ा हुआ उसी प्रकार दुखी हो
रहा है जैसे कोई भाग्यहीन सज्जन किसी नीचके पास जाकर
दुखी हो रहा हो ॥ १३ ॥ गर्मीके दिनोंमें खिले हुए पेड़के
फूल ऐसे जान पड़ते हैं मानो मोघा ऋतु उन फूलोंके वहाने
वसन्तकी हँसी उड़ा रहा हो कि तुम्हें तो मुनियोंने अपमानित
कर रक्खा है, तुम क्या दूसरी ऋतुओंकी करावरी करोगे ।
॥ १४ ॥ जिस गर्मीकी ऋतुमें कमलोंसे भरे हुए और खिले
हुए गुलाबकी गन्धमें बसे हुए जलमें स्नान करना बहुत
सुहाता है और जिन दिनों चन्द्रमाकी चाँदनी और मोतीके
हार बहुत सुख देते हैं, वह ऋतु आपकी ऐसी बीते कि रातको
आप अपने घरकी छतपर छेदे हों, सुन्दरियाँ आपको घेरे बैठी
हों और मनोहर सज्जित बिदा हुआ हो ॥ १५ ॥ मच्छपट

वायुके चक्करसे जो जंगलकी भाग जायन्त सीम हो गई है
और जो अपनी भयङ्कर ज्वालाओंसे पतली-पतली जलाशयोंकी
गाँठें चटका-चटकाकर बहहास कर रही है वह सूखे पेड़ोंवाले
ऊँचे जंगलमें बैठकर मानो यह देख रही है कि इस जंगलका
कितना भाग जल गया है, कितना घना भाग बच गया है और
अभी वनका कितना भाग जलाना शेष है ॥ १६ ॥ टिटिहिरि भी
कम्भारीके घने-घने उगे हुए पत्तोंमें घुसी जा रही है, नासा-
क्षिप्पी चिड़िया अलके तटपर पथरफोड़के बीचमें निकले हुए
आकुरपर अपनी चोंच चला रही है, पपीहे भी पीड़की मोटी-मोटी
शाखाओंके खोलखोंमें जा छिपे हैं और मुर्गे जलाशयोंके दूधोंके
नीचे बैठकर कबूतरके समान गुटरगुं कर रहे हैं ॥ १७ ॥ दूर
आकाशमें कहीं-कहीं बादलोंके छोटे-छोटे उज्जके ठुक्के ऐसे
चमकते हैं मानो सूर्यसे जलाए हुए तारोंकी रास हों ॥ १८ ॥
आगसे धवराए हुए और कुलसे हुए हाथी, बैल और सिंह,
आम मित्र बनकर साथ-साथ इकट्ठे होकर वासके जंगलसे
छटपट निकल आए हैं और नदीके चौड़े और बज्रु तीरपर
आकर विश्राम कर रहे हैं ॥ १९ ॥ वियोगीकी छाँके समान
क्षाया दुखी हो गई है, नीचोंके हृदयके समान पानी लप
गया है और ऋष देवेवाले कोभी महाजनके मुलके समान सूर्य-
मन्दल भी इतना तेजस्वी हो गया है कि उससे कोई धौंस नहीं
मिठा सकता ॥ २० ॥ कमलकी नाख और कोंपलोंके साथ

विचकिलमयी हाररचना । शुचावेणाक्षीणां मलयजर-
सार्द्राश्च तनयो विना तन्त्रं मन्त्रं रतिरमणमृत्युञ्जय-
विधिः ॥ २१ ॥ ज्वलति पवनवृद्धः पर्वतानां वरीषु
स्फुटति पटुनिनादः शुष्कवंशस्थलीषु । प्रसरति वृक्ष-
मध्ये लब्धवृद्धिः क्षणेन ग्लपयति मृगवर्गं प्रान्तलम्बो
द्वग्निः ॥ २२ ॥ ततः प्राविरभूद्भीष्मस्तपन्वसुमतीमि-
माम् । सपिण्डः कालकूटस्य सप्तजिह्वस्य सोदरः
॥ २३ ॥ तदात्वक्षातानां वरदलितमल्लीमुकुलिताः
क्षजो विभ्राणानां मलयजरसार्द्राद्रवपुषाम् । निदाघा-
न्निमोषग्लपितमभिसार्य मृगदृशां परिप्यङ्कोऽनङ्गं पुन-
रपि शनैरङ्कुरयति ॥ २४ ॥ तपनं विभ्रदाकाशो जग-
त्काथविभ्रङ्गलम् । स्फुरल्ललाटनयनं हरं नाटयति
स्फुटम् ॥ २५ ॥ तदा मही विरहिणामिव चित्तवृत्ति-
स्तृप्ताध्वगेषु रूपोष्पिष्व वृद्धिमेति । सूर्यः करैर्दहति
दुर्बलैः क्षतो लु क्षाया सतीव न विमुञ्चति पादमूलम्

॥ २६ ॥ तरुणतरुलितैः पुञ्जसन्नसदेहः पतति जग-
त्क्षङ्गः पल्लवे पङ्कलेहः । हरिरपि सलिलार्थो शङ्कया
तस्य नीरं न पिबति न च याति क्लिश्यति प्राप्य तीरम्
॥ २७ ॥ तापावसन्नशयिनं सरणीं तरुमुल्लङ्घ्य
घाघति मृगे मृगदृष्टिकायै । तन्कोपितो मुखमुदञ्जि-
तमेव घर्ममोगात्रसन्नयनमस्य तथैव शेते ॥ २८ ॥ सृषा
महत्या हतधिक्रमोद्यमः श्वसन्मुहुर्दूरिदरिताननः ।
न हन्यदूरेऽपि गजान्मृगेश्वरो विलोलाजिह्वश्चलि-
ताग्रकेसरः ॥ २९ ॥ दुःप्रेक्ष्यमुच्चैर्गगनं निदाघ
कोपाकुलस्येव मुखं नृपस्य । हरः शयानस्य मृणा-
लयुद्धया कर्षन्ति पुच्छं करिणः करेण ॥ ३० ॥
देशे देशे जडिमकुरङ्गास्तेजोभल्लैर्दिनकरभिल्ले । धावं
धावं प्रहरति राक्षां धारामहं शरणमथापुः ॥ ३१ ॥
निजां कायच्छायां शयति महिषः कर्दमधिया क्युतं
शुभापुञ्जं दधिरमिति काकः कलयति । समुत्सर्पन्सर्पः

हरी घास मिखाकर पीले हुए जलसे भीगे कज्जल, सिरसके
फूलोंसे बने हुए चूड़ामणि, मदनके फूलोंसे बने हार और
चन्दनके रससे पुता हुआ मृगमयमीका शरीर, ये सभी वस्तुएँ
बिना तन्त्र-मन्त्रके ही गरमीके दिनोंमें कामदेवको मिखानेके
लिये मृत्युञ्जयके जपका काम करने लगीं ॥ २१ ॥ वनके
बाड़ेसे उठी हुई और वायुसे और भी भड़की हुई अग्निकी
शपट, पहाड़की घाटियोंमें फैलती हुई सभी पशुओंको जलाय
काज रही है, तुल्ले बँसोंमें चटचटा रही है और चब भरमें
झागे बढ़कर घास पकव ले रही है ॥ २२ ॥ तदनन्तर काज-
कूट नामके भयङ्कर विष और अग्निके सगे भाई अरयन्त भयङ्कर
सूर्य धृष्णीको तापाते हुए उदय हुए ॥ २३ ॥ गरमीके दिनोंमें
स्नान करके कुछ-कुछ सिले हुए बेलेकी कलियोंकी माला पहने
हुए और चन्दनके रससे भीगे हुए शरीरोंवाली नवेलियोंके
आलिङ्गनसे मीमरूपी आगमें जले हुए कामदेवमें फिर धीरे-
धीरे अङ्कुर निकल रहे हैं ॥ २४ ॥ अपने तापसे सारे संसारका
कावा बनाकर बेचैन हुए सूर्यको धारण करता हुआ आकाश
ऐसा रोमिष्ठ हो रहा है मानो प्रत्यक्ष मस्तकपर तीसरा
नेत्र धारण किए शिवजी हों ॥ २५ ॥ गरमीके दिनोंमें
विषागियोंके हृदयोंके समान भरती तपी जा रही है, कज्जलोंके
जोभके समान परदेसियोंका प्रेम बढ़ता जा रहा है, सूर्य भी
अपनी किरणोंसे उसी प्रकार सबको जला रहा है जैसे नीच
जोग अपने छोटे बच्चोंसे जलाया करते हैं और कावा भी

पतिव्रता कींके समान पैड़की जड़ नहीं छोड़ रही है ॥ २६ ॥
गर्मीके दिनोंमें सूर्यकी प्रचण्ड गर्मीसे तपे हुए शरीरवाला
एक सूँढ़ मीठा कीचड़ चाटता हुआ तालाबमें घुस रहा है,
एक छोड़ा भी वहाँ पानी पीनेके लिये पहुँचकर उस मीठेके भयसे
डरा हुआ न तो पानी ही पी रहा है न वहाँसे हट ही रहा
है ॥ २७ ॥ मार्गमें सोए हुए नीलेको लोंघकर मृग गर्मीमें
श्याकुल होकर बालूकी भ्रमसे जल समझकर दौड़ा जा रहा
था, इससे नीलेको क्रोध तो आया और उसने मुँह भी उठाया
किन्तु कड़ी धूपके डरसे उसने फिर अपना मुँह लटका लिया
और जहाँका तहाँ सो गया ॥ २८ ॥ देखो ! हाथियोंके पास
होनेपर भी यह सिंह उन्हें मार नहीं रहा है क्योंकि गर्मी
हतनी बढ़ रही है कि तीव्र प्यासके मारे इसका सब साहस
ठण्डा पड़ गया है, अपना पूरा मुँह खोलकर यह बार-बार हाँफ
रहा है, अपनी जीभसे अपने घोंठ चाटता जा रहा है और
हाँफनेसे इसके कन्धेके बाल हिलते जा रहे हैं ॥ २९ ॥ गरमीके
दिनोंमें कोधी राजाके मुखके समान तपे हुए आकाशकी ओर
कोई भौल नहीं उठा सकता और सब जीव हतने निस्तेज हो
गए हैं कि सिंहकी पैड़की कमलकी नाज समझकर हाथी उसे
अपनी सूँड़से खींच रहा है ॥ ३० ॥ गरमीके दिनोंमें जब सूर्यरूपी
भीज दौड़-दौड़कर अपने किर्यरूपी बाघोंसे चारों ओर प्रहार
करने लगा उस समय ठण्डकरूपी हरियोंकी राजाओंके
फुहारोंके घरोंमें घुसनेपर ही शरण मिली ॥ ३१ ॥ गरमीके

सुधिरविचरं तापविचशः सचीत्काराधृतं प्रविशति करं
कुञ्जरपतेः ॥ ३२ ॥ नितम्बविचयैः सदुकूलमेकलैः स्तनैः
सहाराभरणैः सचन्दनैः । शिरोरुहैः स्नानकपायवा-
सितैः स्त्रियो निदार्घं शमयन्ति कामिनाम् ॥ ३३ ॥
नितान्तलात्तारसरागरञ्जितैर्नितम्बिनीनां चरुणैः सन्-
पुरैः । पदे पदे हंसरुतानुकारिभिर्जनस्य चित्तं क्रियते
समन्मथम् ॥ ३४ ॥ निदधिरे दयितोरसि तत्तल्लक्षण-
नवारितुषारभृतस्तनाः । सरसचन्दनरेणुरनुक्षणं विच-
करे च करेण घोरोसभिः ॥ ३५ ॥ निशाः शशाङ्कसतनी-
लराजयः कधिद्विचित्रं जलयन्त्रमन्दिरम् । मणिप्र-
काराः सरसम्बन्धनं शुचौ प्रिये यान्ति जनस्य
सेव्यताम् ॥ ३६ ॥ पश्यन्ते स्थलधारिणः क्षितिर्जस्य-
ङ्गारभूयङ्गते कथ्यन्ते जलजन्तवः प्रतिनन्दं तपोल्लस्यै-
र्घारिभिः । भर्ज्यन्ते खचराः खरातपशुजापुञ्जे तदेभि-
विर्जैर्मांस्पाकः क्रियते दिनेऽथ नियमाद्वैद्यस्वताय ध्रुवम्

॥ ३७ ॥ पटुतरदवदाहोच्छुष्कसस्यप्ररोहाः परुषपवन-
वेगोत्तिष्ठसंशुष्कपर्णाः । दिनकरपरितापक्षीणतोयाः
समन्ताद्विदधति भयमुच्चैर्घोष्यमाणा वनान्ताः ॥ ३८ ॥
पञ्चच्छायासु हंसा मुकुलितनयना दीर्घिकापक्षिनीनां
लौघान्यत्ययतापाह्वलभिपरिधयद्वेषिपारावतानि ।
विन्दुत्तेषान्पिपासुः परिसरति शिखी भ्रान्तिमद्वादि-
यन्त्रं सर्वैरुसैः समग्रस्त्वमिष नृपगुणैर्दोष्यते सप्तसतिः
॥ ३९ ॥ पयोधराश्चन्दनपङ्कजवितास्तुषारगौरार्पितहा-
रशेखराः । नितम्बदेशाश्च सहेममेखलाः प्रकुर्वते कस्य
मनो न सोत्पुङ्गम् ॥ ४० ॥ पान्थानां प्रमदा इव प्रति-
दिनं दैन्यं हृदिन्यो ययुर्हर्यन्ते स्म दिगम्बरा इव वने
पत्रोज्झिताः पादपाः । निःश्वासा इव दुःसहा विर-
हिणां वाता बहुः सर्वतः पार्थ पायमिष प्रियाधरत्नं
पायः पपुः प्राणिनः ॥ ४१ ॥ पाश्चात्यैर्मरुमादतैश्चि-
जगतान्मुमूलयन्मार्द्रतां दावाभिर्ज्वलितैरपारगहना-

दिनमें मैसा अपनी परछाईको ही कीचड़ समझकर उसमें
झोटा जा रहा है, पक्षी हुई बुँदोंको कौआ रक्तकी हूँ
समझ रहा है, तथा गर्मसे ठुली साँप हाथीकी सूँदको
बिल समझकर उसमें घुस रहा है और हाथी उसे देखकर
खिन्नाहले हुए सूँद फटकार रहा है ॥ ३२ ॥ इन दिनों
सब प्रेमिकाएँ अपने गर्मसे सताए हुए प्रेमियोंकी तपन
मिटानेके लिये उन्हें अपने उस नितम्बोंपर छिटाती हैं जिनपर
रेशमी बख और करघनी पड़ी होती है, अपने उन चन्दन
पुते हुए उगड़े स्तनोंसे लिपटाती हैं जिनपर हार और अन्य
गहने पड़े होते हैं और अपने उन जूँदोंकी गन्ध सुँघाती हैं
जो उन्होंने स्नानके समय सुगन्धित कुत्तेजोंमें बसा लिए थे
॥ ३३ ॥ आजकल स्त्रियोंके उन महावरसे रंगे पिरोंकी देखकर
लोगोंका जो मन्थल उठता है जिनमें हँसोंके समान हनकुन
करनेवाले बिछुए बजा करते हैं ॥ ३४ ॥ गर्मके दिनोंमें स्त्रियोंने
तत्काल स्नान करके जलकी बूँदोंसे भरे हुए स्तन अपने
पतियोंके वक्षस्थलपर लगा दिए और चिसे हुए चन्दनका जोड़ा
शेकर अपने हाथसे हृष्ट-उष्टर मल दिया ॥ ३५ ॥ देखो
प्यारी ! आजकल तो लोग यह चाहते हैं कि चारों ओर लिये
हुए चन्द्रमाकी चाँदनी छिटकी हुई हो, रङ्ग-बिरङ्गे फ्रम्वारोंके
तले हम लोग बैठे हुए हों, हृष्ट-उष्टर दङ्ग-दङ्गके रगन बिसरे
पड़े हों और सुगन्धित चन्दन चारों ओर छिड़का हुआ हो
॥ ३६ ॥ धरतीकी धूँ जब अङ्गारोंके समान धक्कने लगती

है तो उसमें धरतीपर रहनेवाले सब मापी जलने (पकने)
लगते हैं, अङ्गारोंके सौंजते पानीमें जलघरोंका काड़ा
बनने लगता है तथा आगकी जपटोंके समान कड़ी धूपमें
आकाशचारी जुनने लगते हैं । यह सब देखकर ऐसा जान
पड़ता है कि सूर्यके लिये प्रतिदिन ये नियमसे मौसमा
भोजन तैयार किया करते हैं ॥ ३७ ॥ आजकल वन तो और भी
हरावने लगने लगे हैं क्योंकि वहाँ जङ्गलकी आगकी बड़ी-बड़ी
जपटोंसे सब वृक्षोंकी टहनियाँ फुलस गई हैं, अन्धकर्म पककर
सुले पसे ऊपर उड़े जा रहे हैं और सूर्यकी गर्मसे चारों
ओरका जल सूख गया है ॥ ३८ ॥ हे राजा ! गर्मकी दुपहरीमें
हम आँस भूँदकर बावड़ीके कमलोंके पत्तोंकी छायामें आ रहे
हैं, बड़ी हुई गर्मके मारे कङ्कुर घरका ऊपरी भाग झोबकर
नीचेके तल्लोंमें आ बैठे हैं, कुहारोंसे त्रिक्लती हुई बूँद पीनेके
लिये ओर घूमता-घामता कुहारोंके पास जा रहा है और जैसे
आप सभी राजगुणोंसे युक्त हैं वैसे ही यह सूर्य भी अपनी
पूरी किरणोंसे भरकर धमक रहा है ॥ ३९ ॥ इन दिनों हिमके
समान उनको और अन्धे हारते सजे हुए स्त्रियोंके चन्दन-पुते
स्तन देखकर और सुनहरी करघनीसे बँधे हुए नितम्ब देखकर
अज्ञा किसका मन नहीं जलज उठेगा ॥ ४० ॥ गर्मके दिनोंमें
परदेसियोंकी स्त्रियोंके समान बावड़ी भी दिन-दिन सूखती जा
रही है, वनके दूँठ मङ्गसे दिखाई पड़ते हैं, बियोगियोंकी गरम
साँसके समान वायु चारों ओर बह रहे हैं और लोग

न्यप्यानयन्भस्मताम् । धात्याभिस्तुलपत्रधूलिनिकरा-
भ्युन्वन्विहायःस्थले ग्रीष्मः शुष्यदपुच्छपल्वललुठ-
न्मत्स्यः समभ्यागतः ॥ ४२ ॥ प्रचण्डसूर्यः स्पृहणोय-
चन्द्रमाः सदावगाह्यतचारिसञ्चयः । दिनान्तर-
म्योऽभ्युपशान्तमन्मथो निदाधकालोऽयमुपागतः प्रिये
॥ ४३ ॥ प्रतिगतमर्धिजनानां विचित्रभ्राशं समूहमव-
लोक्य । स्फुटितमपयसस्तापादिव हृदयमलं तडागस्य
॥ ४४ ॥ प्रायश्चित्त्वा वसुधामशेषां क्षायासु विधश्य
ततस्तकणाम् । प्रौढि गते सम्पति तिग्मभानां शैत्यं शनै-
रस्तरपामयासीत् ॥ ४५ ॥ बलवदपि यलं मिथोविरोधि
प्रभवति नैव विपक्षनिर्जयाय । भुवनपरिभवो न यत्त-
वानीं तमृगुणः क्षणमुष्मनीचकार ॥ ४६ ॥ बहुतर
इव जातः शालमलीनां बनेषु स्फुरति कनकगौरः कोट-
रेषु हुमाणाम् । परिणतवलशास्त्रानुरपतन् प्रांशुवृक्षा-
भ्रमसि पवनधूतः सर्वतोऽभिर्वनान्ते ॥ ४७ ॥ बाले

परेकियोंके अपरके समान बार-बार जख पी रहे हैं ॥ ४१ ॥
वह ग्रीष्म ऋतु था पृथ्वी है जो पश्चिमके मरुस्थलसे आता
हुई सूखे क्षिप्रवर्गकी नमी सुखा रही है, अग्नि की छपटोंसे
बड़े-बड़े जह्नोंको जलाकर राख कर रही है, बबलर उठाकर
भास-पत्तों और धूलको आकाशमें उड़ा रही है और क्षिप्रके
साक्षात्में पड़ी मल्लिकार्जुन जिसके कारण तड़फड़ा रही हैं
॥ ४२ ॥ हे प्रिये ! जो, यह गरमीका ऐसा समय आ गया
जिसमें सूर्य तपने लगा है, अग्निमा सुहावना लगने लगा है,
पानी देखकर यह इच्छा होने लगी है कि बस सदा इसीमें पड़ा
रहा जाय, सन्ध्या बड़ी सुहावनी होने लगी है और कामका
प्रभाव भी बहुत शीघ्र पड़ गया है ॥ ४३ ॥ गरमीमें सूखे
हुए साक्षात्कोका फटा हुआ पेड़ा ऐसा लगता है मानो वह
देखकर दुःखसे उसका हृदय फट गया हो कि 'पानीकी आशासे
जो प्यासे खोग मेरे पास आए उनकी आशापर पानी फिर
गया' ॥ ४४ ॥ हेमन्तमें जिस ठण्डकने सारी भरतीपर
चकर लगाया था, जिसने वसन्तमें धूलोंकी धावामें विश्राम
किया था वही ठण्डक अब गर्मीके दिनोंमें जब सूर्य बहुत
तपने लगा तो धीरे-धीरे पानीमें आ घुसी ॥ ४५ ॥ जिस
सेनामें आपसमें फूट होती है वह अत्यन्त शक्तिसाली होते
हुए भी शत्रुको नहीं जीत सकती क्योंकि गर्मीके दिनोंमें जो
सब ऋतुएँ आपसमें जड़ रही थीं वे ग्रीष्म ऋतुका बाजतक
म बाँका कर सकीं ॥ ४६ ॥ पवनसे भड़काई हुई और

मालेयमुच्चैर्न भवति गगनभ्यापिनो नीरदानां किं त्वं
पश्वान्तवान्तेर्मलिनयसि मुधा वक्रमधुप्रवाहेः । एषा
प्रोद्वृत्तमत्तद्विपकटकपणलुणविन्ध्यापलानां दावाग्नेः
सम्प्रवृद्धा मलिनयति दिशां मण्डलं धूमलेखा ॥ ४८ ॥
भानोः पादैर्दहनपदपेदं ह्यमानान्तराणामुत्क्रामन्तः किल
विटपिनां प्राणपिण्डा इवामी । गाढोद्व्याकुलिनम-
मसो भिन्नचञ्चुपुटान्ताः कोकयन्ते विहगाशिशवः
कोटराणां मुखेष ॥ ४९ ॥ भ्रमन्त्यः परितयद्वायाः
पततां भ्राम्यतां दिवि । विभ्रान्ति धर्मततोवांस्पर्शजा-
तव्यथा इव ॥ ५० ॥ माकन्दद्रुममञ्जरीपुचसतिस्तत्प-
ञ्चवैर्वर्तनं सा नो मञ्जुलता पचःसु मधुना सव सह
प्रस्थितम् । पतत्तिष्ठतु दुःधवं मृदुहृदो निःस्वामिन-
स्तत्सखं प्रोन्मीलन्करुणा द्विजोऽयमिति हि त्वं ग्रीष्म
मुष्णाहि नः ॥ ५१ ॥ मुखकृतयिसखएडअडमार्तरड-
तापात्सितजलजतलरधो राजते राजहंसः । रजतघट

सेमरके वृक्षांके कुशोंमें फैली हुई आग वृषके खोजकोंमें
अपना सुगन्ध पाँखा प्रकारा चमकाता हुई और उन ऊँचे
वृक्षांपर उछलती हुई पनमे चारों ओर घूम रही है जिनकी
हाथियोंके पत्ते बहुत गर्मी पड़नेसे एक-एककर भड़क जा रहे
हैं ॥ ४० ॥ हे भोंकों-भाली ! जिससे तुम आकाशमें फैला हुई
बादलोंका घटा समझ रहा हो वह घटा नहीं है इसलिये
अपनी धौनियोंसे बहते आँसुआँसे तुम व्यर्थ क्यों अपना
मुख मजिन कर रही हो, यह तो जह्नोंकी अत्यन्त प्रचण्ड
आगके धुँएँका अन्वार है जो उन दिशाओंका काँखा करता
जा रहा है जिनमें अत्यन्त मतवाले हाथियोंके सिर झुजलानेसे
विन्ध्याचलकी चट्टानें चूर हुई पड़ी हैं ॥ ४८ ॥ गर्मीके दिनोंमें
आगके समान तपती हुई सूर्यका किरणोंसे जिन पेंडोंका
भीतरी भाग भी झुलस गया था उनके मानां प्राण निकल-से
रहे हैं और चिड़ियोंके बच्चे अत्यन्त प्यासे चबराकर अपनी
जोंचें खोजकर खोजकोंके मुँहपर घंठें चूँ-चूँ कर रहे हैं ॥ ४९ ॥
भरतीपर बैठते तथा फिर उड़ते हुए पक्षियोंकी घूमती हुई
झायाएँ देखकर जान पड़ता है मानां घामसे तपा पृथ्वीको
सूखे ही गर्मीके मारे ही वे पुनः उड़ जाते हैं ॥ ५० ॥
कोकिल कह रही है - 'आमके वृक्षोंकी मञ्जरियोंपर बसेरा,
आमके पत्तोंके साथ उठना-बैठना और हमारी मोलीकी
मिठास ये सारी बातें वसन्तके साथ-साथ चली गईं । अस्तु,
दवाबुजोंके बिये असहनीय यह बात जाने दो किन्तु हे मित्र

हवायं विदुमावद्धधाराविषरविगलदम्बुः कम्बुकलिष्ठ
प्रतीहि ॥ ५२ ॥ मूलं बालकवीरुधां सुरभयो जातीत-
रूणां न्वचः सारश्चन्दनशास्त्रिणां किल्लयान्याद्राण्य-
शोकस्य च । शैरीषो कुसुमोन्मतिः परिणमम्बोवच्च
सोऽयं गणो श्रोत्रेणोष्महरः पुरा किल ददे दग्धाय
पञ्चैपवे ॥ ५३ ॥ मृगाः प्रचारङ्गातपतापिता भृशं तृषा
महत्या परिशुष्कतालवः । वनान्तरे तोयमिति प्रघा-
षिता निरीक्ष्य भिन्नाञ्जनसन्निभं नभः ॥ ५४ ॥ रज-
निचरमयामेष्वादिशन्ती रतेच्छां किमपि कठिनयन्ती
नालिकेरीफलाम्भः । अपि परिणमयित्री राजरम्भा-
फलानां विनपरिणतिभोग्या वर्तते ग्रीष्मलक्ष्मीः ॥ ५५ ॥
रश्मिचतुरङ्गसन्नुहस्तुल्यतां दधति यत्र शिरीषरजो रुचः ।
उपययौ विदधन्मयमङ्गिकाः शुचिरसौ चिरसौरभ-
सम्पदः ॥ ५६ ॥ रश्मिभोर्द्भिन्नशिरोमणिप्रभो विलो-
लजिह्वाद्भयलोढमाकृतः । विपाशिसुर्यातपतापितः

ग्रीष्म ! दया करके तुझे द्विज (पक्षी, माछा) समझकर तुम
शुभ्र अशरणको संसारसे बिदा कर दो ॥ ५१ ॥ कोई राजहंस
चोंचमें कमलनालका टुकड़ा लेकर खेत कमलके नीचे बैठा है
जिसके ऊपर सूर्यकी प्रशयद किरणें पड़ रही हैं । उसे इस दशमें
देखकर कोई अपनी प्रेयसांसे कह रहा है कि 'हे शत्रुके समान
गलेवाली ! ऐसा जाल पड़ता है मानो वह कोई चाँदीका बड़ा
हो जिसकी मैंगीसे बनी टाँटीसे जल निकल रहा हो' ॥ ५२ ॥
कीमल जलपत्रोंकी जड़, चमेलाके सुगन्धित त्रिकुके, चन्दनका
रस, अशोककी नई-नई कोंपलें, सिरसके फूल और पका
हुआ केला, ये सब गर्मी दूर करनेवाली वस्तुएँ ग्रीष्मने पहले ही
जले हुए कामदेवको दे डाली थीं ॥ ५३ ॥ जलते हुए सूर्यकी
किरणोंसे झुलते हुए जिन जङ्गली पशुओंका जीभ प्याससे बहुत
सूख गई है वे छोलेमें उन जंगलोंकी ओर दौड़े जा रहे हैं जहाँके
आँजनके समान नीले आकाशका ही वे पानी समझ बैठे हैं
॥ ५४ ॥ रात्रिके अन्तिम प्रहरमें सम्भोगकी इच्छा जगानेवाली,
शारियलका जल सुखानेवाली, बेल्लेके फलोंको पकानेवाली
और संध्या समय सुख देनेवाली यह ग्रीष्मकी शोभा फैल
रही है ॥ ५५ ॥ वह ग्रीष्म ऋतु आ गई जिसमें सिरसके
फूलका पराग सूर्यके हरे धोंदोंके बालोंके समान दिखाई पड़ता
है और जिसमें नवमल्लिकाकी जल गहरी सुगन्धसे भर गई
है ॥ ५६ ॥ जिस प्यासे साँपकी मणि सूर्यकी चमकसे और
भी चमक उठी है वह अपनी जपजपाती हुई दोनों जीमोंसे

फली न हन्ति मण्डककुलं तृपाकुलः ॥ ५७ ॥ रवेर्मयू-
क्षैरभितापितो भृशं विदह्यमानः पथि तप्तपांसुभिः ।
अवाकफणो जिह्मगतिः श्वसन्मुहुः फली मयूरस्य तले
निषेदति ॥ ५८ ॥ रवेस्समस्तक्षितिमध्यगं रसं निपीय
पीनत्वमतीव विधतः । भरेण वाजिष्विव मन्दगामिषु
क्रमेण दैर्घ्यं दिवसाः प्रपेदिरे ॥ ५९ ॥ रिक्तेषु वारिक-
थया विपिनोदरेषु मध्याह्नज्जम्भितमहातपतापतप्ताः ।
स्कन्धान्तरोत्थितपवाग्निशिखाच्छुलेन जिह्वां प्रसार्य
तरवो जलमर्थयन्ते ॥ ६० ॥ रेजे पुष्पैर्ग्रीष्ममासाथ
मङ्गी मङ्गी सद्यः संधयस्ते स्म भृङ्गाः । भृङ्गैस्तत्रारम्भि
हर्षेण गानं गाने सौख्यं लेभिरे योगिनोऽपि ॥ ६१ ॥
वर्षत्युग्निकणानिषोष्णकिरणः काष्ठास्तु दावानलज्वा-
लाजालजटालभूधरमिलदूम्याग्धकाराविलाः । वृष्टा
जीर्णविशीर्णवर्णपटलाः शुष्यन्ताल्लिङ्गिता नयस्तत-
करीन्द्रकोलकलुषा ग्रीष्मे मदसैर्भूतः ॥ ६२ ॥ बह्व-

पवन पीता आ रहा है और धूपकी छपटों और छपने बिचकी
आरसे जलनेके कारण मेढकोंको नहीं मार रहा है ॥ ५७ ॥
देखो, भूजले आत्यधिक तप हुआ और पैदेकी गरम धूलसे
झुलसा हुआ यह सर्प अपनी मुँह नीचे बिपाकर बार-बार
कुफकारता हुआ मोरकी छायामें कुपटल मारे बैठा हुआ है पर
मोर भी गर्मीके मारे उसे कुछ कह नहीं रहा है ॥ ५८ ॥ सारी
पुष्पीपर फैला हुआ सूर्यका रस (घाम) पी-पीकर दिन
क्रमशः मोटे होते जाते हैं और उनका भार बढ़नेके कारण थोड़े
क्रमशः धीरे-धीरे चलने लगते हैं ॥ ५९ ॥ जङ्गली शाकाओंमें
जब पानीका नाम नहीं रह गया उस समय भरी गुपहरीमें
प्रचण्ड छूपसे झुकते हुए पेड़ मानो अपनी बालियोंकी रगड़से
उठी हुई आगकी छपटोंके रूपमें जीभ निकाल-निकाळकर पानी
मँग रहे हैं ॥ ६० ॥ गर्मीके दिनोंमें बेल्लेकी जलपट्टें फूलोंसे
झिल उठी, फूलोंपर भीरे आ बैठे, बैठकर वे मस्तीमें गुणगुनाने
लगे और उनकी गुनगुनाहट सुनकर योगियोंका चित्त भी
विचलित होने लगा ॥ ६१ ॥ गर्मीके इन दिनोंमें सूर्यकी
धूप इतनी कड़ी है मानो वह अग्नारे बरसा रहा हो, वनोंमें
जगी आगकी छपटोंकी जटा पहने हुए पर्वतपर भँडराते हुए
पुर्वरूपी बौधेसे जकड़ियाँ भर गई हैं, वृक्षोंके सब पत्ते सूख-
सूख कर झड़ गए हैं और उनमें सूखी-सूखी जलपट्टें छिपटी
हैं, नदियाँ धूपसे तपे हुए हाथियोंके दिखोड़नेसे गँदनी हो
गई हैं और नैर्ऋत्य दिशासे राक्षसकी भीति पवन बह रहा है

हलमासुतप्रसरवग्निमखण्डैरिव स्फुरद्दृग्मणिमण्डलधु-
तिवितानकैस्तापिता । विसारि वपुरान्मनः सपदि
वासरश्रीरियं चलन्मरुतोविकासिचयपल्लवेनाञ्जति
॥ ६३ ॥ विकचनवकुसुम्भस्यच्छसिन्दूरभासा प्रयल-
पवमधेगोद्भूतयेगेन तूर्णम् । तटविटपलनाप्रालिङ्गन-
व्याकुलेन दिशि दिशि परिदग्धा भूमयः पावकेन
॥ ६४ ॥ विषस्वता तीक्ष्णतण्डुमासिना सपद्मतोया-
स्सरसोऽभितापिता । उत्प्लुत्य भेकस्तृपितस्य भोगिनः
फणातपत्रस्य तले निगीरति ॥ ६५ ॥ विशन्तोनां
स्नातुं जघनपरिवेष्टैर्मृगदशां यदम्भः सम्प्राप्तं प्रमद्वन-
द्याप्यास्तटभुषम् । गभीरे तन्नाभीकुहरपरिणादाध्वनि
रस्तकुङ्कुहारस्फारं रञ्जयति निनादं नयति च ॥ ६६ ॥
विशुष्ककण्ठोद्गतसीकराम्भसो गभस्तिभिर्भानुम-
तोऽनुनापिताः । प्रवृद्धतृणोपहता जलाधिनां न
दग्निनः केसरिलोऽपि विभ्यति ॥ ६७ ॥ विशुष्यतो-

यान्तश्शयिनमद्रिपद्मालकुहरं प्रतिश्यायक्रिन्नं विशनि
शफरन्नापविवशः । अनिच्छन्ता धर्मकथनपरुषं
धारि सरितां लिहन्ति म्वाङ्गानि धमजनकणाद्राणि
हरिणाः ॥ ६८ ॥ ध्वसिति चिह्नगवर्गः शीर्णपण्डुमस्थः
कपिकुलमुपयाति फलान्तमद्रिनिकुञ्जम् । धमनि गव-
ययूयः सर्वतन्तोयमिच्छन्शुभकुलमजिप्तं प्राञ्जल्यभ्यु-
कृपान् ॥ ६९ ॥ सचन्दनाभ्युपगतोद्भवानिलैः सत्तार-
यष्टिस्तनमण्डलार्पणैः । सबलकीकाकलिगाननिध-
नैर्विरोध्यते सुप्त इवाद्य मन्मथः ॥ ७० ॥ सञ्ज्ञानपत्रम-
कगन्धितानि समुद्रहन्ति स्फुटपाटलत्वम् । विकम्ब-
राण्यर्ककराभिप्रर्शाद्दिनानि पद्मानि च वृद्धिमोयुः
॥ ७१ ॥ सफेनलाभा नृनचक्रसम्पुः चिनिःस्नानोद्दि-
तजिह्वमुन्मुखम् । नृपाकुलं निःसृतमद्रिमण्डगादंवल-
माणं महियोकुलं जलम् ॥ ७२ ॥ सभद्रमुष्णं परिशुष्क-
कर्मं सरः खनन्नायतपोत्रमण्डलैः । रथमयूखैरभिता-

॥ ६१ ॥ चलते हुए बायुके कारण धक्कने हुए चहारेके
समान चमकते हुए सूर्यमण्डलकी किरणोंसे तपी हुई यह
दिनकी शोभा अपने विशाल शरीरका तपे हुए बालू-रूपी
आँखले एकाएक ढके ले रही है ॥ ६३ ॥ पूरे सिले हुए मधे
कुसुमोंके फूलके समान और स्वच्छ सिन्दूरके समान लाल-
काल चमकनेवाली, आँधीसे और भी धक्क उठनेवाली और
तीरपर खड़े हुए वृक्षों और जताघोंकी फुलगियोंकी धूमती
जानेवाली जङ्गलकी आगसे जहाँ-तहाँ धरतीं झुलस गई है
॥ ६४ ॥ गँदले जलवाले पोखरेसे बाहर निकल-निकलकर
धूपसे तपे हुए मेंढक, प्यासे सर्पोंके फनकी छतरीके बीच आ-
आकर बैठ रहे हैं ॥ ६५ ॥ गर्मके दिनोंमें पासके उपवनकी
बावड़ोंमें जम खिर्यो स्नान करनेके लिये घुसीं तब उनके चौड़े-
चौड़े जवनके धक्केसे पानी तटकी ओर जाने लगा और फिर
बीचमें ही उनकी विशाल तथा गहरी नाभिमें ठसठकर वह
जल डब-डब करता हुआ आगे बढ़ रहा है ॥ ६६ ॥ जो हाथी
धूप और प्याससे बेचैन होकर अपने छले मुँहसे आग फेंकते
हुए पानीकी खोजमें दूधर-दूधर घूम रहे हैं वे इस समय
सिंहसे भी नहीं डर रहे हैं ॥ ६७ ॥ पानीके लिये तदफ़दाती
हुई शफरी (पोड़ी) मछली विषा होकर सूखे हुए जलारायके
कीचड़में सोए हुए मेंढके कफसे भरे नधुनोंमें घुस रही है और
हरिय भी कड़ी धूपसे तपे हुए काढ़ेके समान गरम नदियोंका
जल न पीकर, दौड़कर धक्केसे बड़े हुए पसीनेसे तर अपने

आँखोंकी ही आटे हाज रहे हैं ॥ ६८ ॥ पत्रहीन वृक्षोंके हँसोंपर
बैठी हुई सभी चिड़ियाँ हाँक रही हैं, उदास चन्दोंके झुण्ड
पहाड़का गुफाघोंमें घुसे जा रहे हैं, पशुघोंके झुण्ड चारों ओर
पानीके लिये विललाते घूम रहे हैं और घाट पैरोंवाले गरमोंका
झुण्ड एक कुँसे गटागट पानी पीता जा रहा है ॥ ६९ ॥
आजकल रसगिर्यो अपने सोए हुए प्रेमियोंको चन्दनमें घसे हुए
ठरडे जलसे भाँगे हुए पट्टाकी ठण्डाँ बघार भत्तकर या
मोनिगोंके हारोंकी लटकती हुई झालराँसे सजे हुए अपने
गोल-गोल स्नन उनकी छातीपर रखकर या बीणाके साथ
अपने माँडे गलेसे गीत गा-गाकर ऐसे जगती रहती हैं मानों
कामदेवकी जगा रही हों ॥ ७० ॥ गर्मके जिन दिनोंमें पेड़ोंपर
हरे-भरे पत्ते लद गए थे, गुलाबके फूल खिल गए थे और जो
सूर्यकी किरणोंके कारण चमक रहे थे, एक ओर तो वे बड़े दिन
होने चले जा रहे थे, उधर दूसरी ओर बहुत-सी पल्लवियोंवाले,
लाल रहवाले और सूर्यकी किरणोंसे खिले हुए कमल
भी ढेरके ढेर फूल उठे ॥ ७१ ॥ जुगलों करनेसे जिन भैंसोंके
मुँहसे आग निकल रही है और लार बह रही है वे अपना मुँह
खोलकर अपनी खाल-लाज जीभें बाहर निकाले हुए प्यासके मारे
मुँह उठाए पहाड़की गुफासे निकल-निकलकर जलकी ओर लपकी
चली जा रही हैं ॥ ७२ ॥ धूपसे एकदम झुलसा हुआ यह जङ्गली
सूँघरोंका झुण्ड अपने लम्बे-लम्बे धूयनोंसे नागरमोथेसे भरे
हुए बिना कीचड़वाले तानाबकी खोदता हुआ ऐसा लगता है

पितो भृशं वराहयूथो विशतीव भूतलम् ॥ ७३ ॥ समु-
द्रतस्वेदशिताङ्गसन्ध्यो विमुच्य वासांसि गुरुणि
साम्प्रतम् । स्तनेषु तन्वशकमुन्नतस्तना निवेशयन्ति
प्रमदाः सयौवनाः ॥ ७४ ॥ समुद्धृताशेषमृणालजाल-
कं विपन्नमीनं द्रुतभीतसारसम् । परस्परोत्पीडनसं-
हृतेर्गजैः कृतं सरः सान्द्रविमर्दकर्मम् ॥ ७५ ॥ सवि-
धमैः सस्मितजिस्रवीक्षितैर्विलासवत्यो मनसि प्रवा-
सिनाम् । अन्नहसन्दीपनमाशु कुर्वन्ते यथा प्रदोषाः
शशिचारुभूषणाः ॥ ७६ ॥ सितेषु हर्म्येषु निशासु
योनितां सुखप्रसुप्तानि मुलानि चन्द्रमाः । विलोक्य
ज्वनं भृशमुत्सुकश्चिरं निशाकले याति ह्रियेष पारकु-
ताम् ॥ ७७ ॥ सुभगसलिलावगाहाः पाटलसंसर्गसुर-
भियनघाताः । प्रकृष्टायसुलभनिद्राः दिवसाः परिणाम-
रमणीयाः ॥ ७८ ॥ सुधासितं हर्म्यतलं मनोहरं प्रिया-
मुज्जोच्छ्वासयिकम्पितं मधु । सुतन्मिगीतं मदनस्य

दोषनं शुचौ निशीथेऽनुभवन्ति कामिनः ॥ ७९ ॥ स्क-
न्धान्सिन्धुरयूयगण्डकणव्यासकतदानोदकान्सेषन्ते
मधुपा महीरुहशिरः पुष्पाणि हित्वा भृशम् । लोयन्ते
वलभीकुलायकुहरे निस्पन्दमेते जगा जिह्वालीढयधू-
मुखो मृगगणवृक्षायासु विश्राम्यसि ॥ ८० ॥ स्पृशति
तिग्मरुचौ ककुभः करैर्दयितयेव विजृम्भिततापया ।
अतनुमानपरिग्रहया स्थितं रुचिरया चिरयायिदिन-
श्रिया ॥ ८१ ॥ स्फोटं शीतं गतं क क शिशिराकरणः
कास्ति हेमन्तमासः कंते पानीयपूर्णा मलिनजलधराः
काद्य विद्युत्प्रमोदः । इत्युच्चैर्जल्पमानैरिव मुखरमुखै-
र्भिस्त्रिदूनेरुपेतो वासौघभागतोऽसौ प्रकटितविजयस्त-
म्भचिह्नैर्निदाघः ॥ ८२ ॥ हरन्ति इदयानि यच्छूषण-
शोतसा वेणवो तदर्दति करम्बिता शिशिरपाथुना
वाहणी । भवन्ति च हिमोपमाः स्तनभयो यदेयीदृशो
रुचैरुपरि संस्थितो रतितपतेः प्रसादो शुभः ॥ ८३ ॥

मानो भरतीमें घुसा जा रहा हों ॥ ७३ ॥ ऊँचे-ऊँचे स्तनोंवाली
जिन युवतियोंके छात्रोंके जोड़-जोड़से गर्मोंके मारे पसीना
कूटा करता है वे इस गर्मोंमें अपने मोटे-मोटे वस्त्र उतारकर
पतले-पतले वस्त्र पहनने लगी हैं ॥ ७४ ॥ यह देखो, यहाँपर
हाथियोंमें इकट्ठे होकर आपसमें लड़-भिड़कर इस तालके सब
कमल उल्लाड़ डाले, मल्लिकार्जुन डाली और सब सारसोंको
हराकर भगा दिया है ॥ ७५ ॥ चन्द्रमाके समान उनके
चन्द्रहार आदि आभूषणोंसे सजकर बड़ी प्यारी जगनेवाली
सुन्दरियाँ बड़ी चटक-मटक और मुस्कड़ाइके साथ अपनी
चितवन चलाकर परदेसियोंके मनमें झटसे उसी प्रकार
काम जगा रही हैं जैसे चमकते हुए चन्द्रमावाली सन्ध्या
॥ ७६ ॥ रातके समय उनके भवनमें सुखसे सोई हुई
युवतीका मुख निहातनेको उतावला रहनेवाला चन्द्रमा जब
बहुत देरतक उनका मुँह देख चुकता है तो मानो जालके मारे ही
वह रातके पिछले पहरमें उदास हो जाता है ॥ ७७ ॥ गर्मोंके
दिनोंकी सौंमें बड़ी सुड़ावनी दिखाई देती है क्योंकि उस
समय जलमें घेरे रहना बड़ा भला लगता है, वनके पवन
गुलाबसे मिलकर सुगन्धित हो जाते हैं और छायामें पड़ते ही
नींद आ जाती है ॥ ७८ ॥ प्रेमी लोग भी इन दिनों आधी
रातके समय ऐसी-ऐसी कामकों उभारनेवाली वस्तुओंका आनन्द
लेते हैं जैसे सुन्दर सुगन्धित जलसे धुला हुआ भवनका तब,
प्यारीके मुँहकी भापसे उफनती हुई मदिरा और सुन्दर

बीचाके साथ गाए हुए गीत ॥ ७९ ॥ भीरे ऊपरके छतोंको
छोड़कर पेड़के उन मोटे तनोंपर जा बैठे हैं जिनपर हाथियोंका
सिर रगड़नेसे मदनका छिपट गया है, उधर पक्षी भी वनोंके
ऊपर बने हुए घोंसलोंमें चुपचाप जाकर घुस रहे हैं और हरिय
भी अपनी भीमसे हरिजीका मुक्क खाते हुए छायामें विश्राम
कर रहे हैं ॥ ८० ॥ जैसे अपने पतिको किसी अन्य स्त्रीका
स्पर्श करते देखकर कोई स्त्री दुखी होती है वैसे ही जब सूर्य
भी दिशाक्षपी नायिकाओंका स्पर्श करने लगा तब दिनकी
शोभाएसी उसकी सुन्दर परमी मानो प्रबल ओषधमें आकर
जल्पन्त जलने लगी और उसीसे हतनी गर्मी हो गई ॥ ८१ ॥
यह प्रीतिमका समय अपने उन परमकृपी मोल-दूतोंके साथ
आ पहुँचा जो उड़ते हुए तिनकों और धूलके विजयस्तम्भका
चिह्न छिपे हुए वे और जो हरहराकर मानो ऊँचे स्वरसे
ललकार रहे वे कि 'कहाँ गया वह बड़ा हुँचा शीत ? कहाँ गया
चन्द्रमा ? कहाँ गए हेमन्तके दिन ? कहाँ गए जलसे भरे हुए
काळे-काळे बादल और कहाँ गई वह विजयीकी तट्ट ?' ॥ ८२ ॥
गर्मोंके दिनोंमें यदि मन हरनेवाली और कानोंकी भङ्गी
जगनेवाली धंशीकी तान सुनाई पड़ जाय, शीतल पवनसे
मिली हुई मदिरा भिड़ जाय, मृगनयनीके पाखंडे समान
शीतल स्तन भिड़ जायें तो यही कहेंगे कि कामदेवने हमारी
इच्छासे कहीं अधिक कृपा कर दी है ॥ ८३ ॥ हवनकी प्रभिके
समान जलते हुए सूर्यकी किरणोंसे जिन मोरोंके तन और

हुताग्निकल्पैः सधितुर्गमस्तिभिः कलापिनः क्लान्तशरीरचेतसः । न भोगिनं म्रन्ति समोपवर्तिनं कलापन-
क्रेषु निवेशिताननम् ॥ ८४ ॥

मध्याह्नवर्णनम्—आदौ मानपरिग्रहेण गुरुणा दूरं
समुत्सारितां पश्चात्तापभरेण तामनिकृशां नीनां परं
लाघवम् । उत्सङ्गान्तरवर्तिनीमनुगतां सम्पीडिताङ्गी-
मिमां सर्वाङ्गप्रणयप्रियाभिष तदुच्छ्वासां समालम्ब्यते
॥ १ ॥ उद्दामद्युमण्डितव्यतिकरप्रक्रीडकांपलज्या-
लाजालजटालजाङ्गलतटीनिष्कृजकोयष्टयः । भ्रामोभ-
ग्रधमानसूर्यकिरणः क्रूरप्रकाशा दशमायुः कर्म समा-
पयन्ति धिगमूर्मप्याकृश्या दिशः ॥ २ ॥ किरति
मिहिरे विष्वद्रीछः करानतिवामनी स्थलकमठवहं ह-
च्छाया जनस्य विचेष्टते । गजपतिमुखोद्गोर्णराव्यैरथ
असरेणुभिः शिशिरमधुरामेणाः कच्छस्थलामधिशरते
॥ ३ ॥ छाया संश्रयते तलं विटपिनां भ्रान्तेय पान्थैः
समं मूलं याति सरो जलस्य जडता ग्लानेय मोनैः

सह । आचामन्यहिमांशुवोधितिरपस्नसेव लोकैः समं
निद्रा गर्भगृहं सह प्रविशति क्लान्तेय कान्ताजनैः
॥ ४ ॥ दुःसहसन्तापभयान्सम्प्रति मध्यस्थिते दिवस-
नाथे । छायाभिष वाञ्छन्ती छायापि गता तरुतलानि
॥ ५ ॥ धत्ते पल्लतादलेप्सुरपरि स्वं कर्णतालं द्विपः
शृण्वस्तम्बरसाश्रियच्छाति शिखी मधुपशिवण्डं शिरः ।
मिथ्या लोटि मृणालकाटिरभसादप्राङ्गुरं शूकरा
मध्याह्नं महिषश्च वाञ्छति निजच्छायामहाकर्दमम्
॥ ६ ॥ मध्याह्नं चलतालवृन्तमनिलः सर्वाङ्गमना सेवते
वारि स्वेदमिषेण शीतरुचध्रुवलोजमालम्ब्यते । निद्रा
नेत्रमुपैति पद्मद्युगलच्छायाधितादेहिनी पान्थानामथ
पादयानिपतति छायापि मा यान्तिवति ॥ ७ ॥ मध्याह्नं
नूनमापोऽपि तिग्मतापोपशान्तये । द्युः कर्मलिनीप-
त्रमानपत्रमियोपरि ॥ ८ ॥ मध्याह्नं हरितां हुताशन-
मुचः कामोऽपि घामभ्रुवां पाटोरद्रवचचित्तां स्तनन-
टीमासाद्य निद्रायते । पलाः केसरिणांऽपि केसरसटा-

मन दोनों सुस्त पड़ गए हैं, वे अपने पास कुपड़ल मारकर
हुए सौंनोंकी भी नहीं मारते बरन् उठते धूपसे अपने मुँह
बचातेके लिये अपना गला उनकी दूँलकी कुपड़लमें डाले सुप-
चाप पड़े हुए हैं ॥ ८४ ॥

प्रीत्यङ्गी दुपहरी : गर्मोंके दिनोंमें दोपहरके समय
बूचके नीचे उससे सटी हुई छाया देखकर ऐसा जान पड़ता है कि
बूचके मानके कारण जिते पहले अपनेसे दूर कर दिया था और
जितसे वह पड़ताही हुई दुबली पड़ गई थी उसी छायामें अब
मान छोड़ दिया हो और बूच भी अब उस प्रायश्चारांकी
गोदमें बैठकर मानो उसे कसकर छातीसे लगा रहा हो ॥ १ ॥
गर्मोंमें दोपहरके समय सूनी-सूनी दिशाएँ ज्यों चौधिया रही
हैं और प्राय सुखाए बाल रही हैं, प्रचण्ड सूर्यके तापके कारण
सूर्यकान्तमणिले छपटें निकल रही हैं, तपे हुए जङ्गलमें टिटि
हिरिवाँ गर्मोंके मारे चिल्ला रही हैं और सूर्यकी किरणें मानों
घरालीकी गर्मोंमें तैर-सी रही हैं ॥ २ ॥ गर्मोंकी दुपहरोंमें चारों
ओर सूर्यकी किरणें फैल रही हैं, लोगोंके शरीरकी नगईं-सी
परछाईं भरतीपर बैठे हुए कछुपके समान हिज रही है और
जलके पासकी जो घासों हाथीकी सूँदसे बिड़की हुई पानोंकी
फुहारोंसे ठण्डी और मीठी हो गई है उनपर हरिण नींद ले रहे हैं
॥ ३ ॥ गर्मोंकी दुपहरोंमें पेड़ोंकी छाया भी मानो धककर यात्रियोंके
साथ-साथ पेड़ोंके तले आ बैठी है, ताखाके जलकी उपलव

धी मानों मछलियोंके साथ-साथ दुखी होकर नीचे गहरे पानीमें
चली गई है, सूर्यका किरणें भी तपे हुए लोगोंके साथ-साथ पानों
पी रही हैं और नींद भी भालसमें भरकर छियोंके साथ मानों
घरके भीतर चली जा रही हैं ॥ ४ ॥ गर्मोंकी दुपहरोंमें जय
सूर्य ठाँक सिरपर आ गए हैं उस समय छाया भी मानों अलछ
गर्मोंके डरसे हाँ पेड़ों के नीचे आ पीठी है ॥ ५ ॥ दोपहरके समय
हाथी अपने कानोंको कमलका पत्ता समझकर छायाके लिये
ऊपरको उठाए हुए हैं, मोर अपना पूँवको ही घास समझकर
उसमें अपना सिर धँसाए डाल रहा है, जंगली सुघर अपने
दातोंको ही कमलकी जड़ समझकर चाटे जा रहा है और भैंसा
अपनी परछाईंको ही काँच समझकर उसमें लोंटा जा रहा है
॥ ६ ॥ गर्मोंकी दुपहरोंमें बाघने पूर्ण रूपसे पहेँका ही सहारा
ले लिया, जलमें भी बहते हुए पर्सियोंके रूपमें छियोंके ठण्डे
स्तनोंका सहारा ले लिया, नींद भी बरौनियाँकी छाया
देखकर आँखोंके पास आ पहुँची है और यात्रियोंकी परछाईं
भी उन्हें घर से निकलनेको रोकनेके लिये ही मानों उनके पैर
पकड़े पड़ी है ॥ ७ ॥ गर्मोंकी दुपहरोंमें सूर्यको भयकर गर्मोंसे
बचनेके लिये ही मानों जलमें अपने ऊपर कमलके पत्तेका छाता
लगा लिया है ॥ ८ ॥ गर्मोंकी दुपहरोंमें चारों ओरसे
आग बरस रही है, स्त्रियोंके चन्दन पुते हुए स्तनोंपर
कामदेव भी नींद ले रहा है, हरिण भी सिंहके भयालकी

पान्तधिताः शेरते छायामङ्गतां न मुञ्चति तरुवोदा
मधोदामिव ॥ ६ ॥ सप्तस्तारिणि वारिशीतलले
विन्यस्तपुष्पोत्करे नीरन्त्रे कदलीवने गुरुदलच्छायाह-
तार्वाविधि । कर्पूरागरुपङ्कपिच्छिलघनोत्तुङ्गस्तनालि-
ङ्गिभिः कान्ताकेलिरतैरहो सुकृतिभिर्मध्यन्दिनक्रीयते
॥ १० ॥ सौद्विन्यस्तिमितैरुदञ्जलसग्रीवाभिगमं मुहु-
र्मध्यङ्गे स्फुरदकर्मकशरुचिमान्तस्थलीवतिभिः । दत्ताः
सिन्धुषु माहिषैः क्रमकशस्रोतस्तु पङ्कोदरे निद्रामो-
लितपद्मपङ्कतिपरिव्यकादृणाः दृष्टयः ॥ ११ ॥ स्वे
स्वे कर्मणि सांश्रयोज्य सुहृदो भूमोसुरान्मन्त्रिणश्चक्रं
निर्भयमारचय्य भगवान्सम्प्राप्तगोदयः । स्वालोकस-
शकार्द्विदशोकमधुनोत्खानं विचिन्त्यपिथ ध्वान्तं कापि
निर्लीनमभ्यर्चयन्निर्व्यामाप्रमाराहति ॥ १२ ॥

जयक्रोडा—अञ्जला जलमधीरलोचना लोचनप्रति-
शीरलाङ्घितम् । आशमासमपि कान्तमुक्षितुं कातरा

घोद लेकर नीचे ले रहे हैं और यह व्याही नवेलीके दूधके
समान दूध भी अपनी छाया नहीं छोड़ रहे हैं ॥ ६ ॥
गमोंके दिनोंमें पुण्यवान् लोग पानी खींचकर छपेटे किए हुए
पूजा विशेषकर, बिना भस्मांशाले केलेके वनमें घने पत्तोंकी
साक-सुधरा छायामें, अपनी प्रियतमाओंके कपूर और अगरके
लेपले सजे हुए ऊँचे तथा मोटे स्तनोंका चालिङ्गन करके
रसिकीड़ाका आनन्द लेते हुए दुपहरा बिताते हैं ॥ १० ॥
दुपहराके समय चिलचिलाता हुआ धूपवाले मैदानमें सन्तापके
साथ स्थिर खड़े तथा ऊँचे हुए भँसे आलससे सिर घुमाकर
धीरे-धीरे सूखे हुए सांतीवाले तालावोंके कांचदर्क आर बार-
बार अपनी अधसुती लाल-लाल आँखें दीक्षा रहे हैं ॥ ११ ॥
भगवान् सूर्यने पहले अपने मित्र कमलोंका खिलारा (विकसित
किया) फिर मन्त्र पढ़नेवाले ब्राह्मणोंको अपने काममें लगाया
अर्थात् वे पूजा-पाठमें जुट गए, फिर देशसे अन्धकार भगाया
और अब अधिक राग (लालिमा, क्रोध) से मुक्त होकर
भागो हुए, उल्लाहे हुए और इधर-उधर घिरे हुए आँधरेको
दूँदनेके लिये ही माना वे आकाशके बीचमें रब लेकर आ पहुँचे
हैं ॥ १२ ॥

जलक्रीड़ा : कोई पञ्जल आँखोंवाली नवेली प्रतिपर
उल्लासनेके लिये बार-बार अपनी अञ्जलिमें पानी उठा रही थी
किन्तु उसमें पड़ी हुई अपनी आँखोंकी परछाईको मजली
समझ-समझकर डरकर गिरा देती थी ॥ १३ ॥ मञ्जुलिङ्गोंकी चपेटसे

शफरशङ्किनी जहो ॥ १४ ॥ अथ स्फुरन्मोनविधूतपङ्कजा
विपङ्कतीरस्सलितोर्मिसंहतिः । पयोऽवगाहुं कलहंस-
नादिनी समाजुहावेव वधूः सुरापगा ॥ १५ ॥ अम्यूनं
गुणममृतस्य धारयन्ती सम्फुल्लस्फुरितसरोरहाव-
तंसा । प्रेयोभिः सह सरसी निषेव्यमाणा रक्तव-
न्यधित वधूदृशां सुरेश ॥ १६ ॥ अमी शिरीषमसवाव-
तंसाः प्रभंशिनो वारिविहारिणीनाम् । पारिमवाः
स्रोतसि निम्नगायाः शैवाललोलाश्चलन्त्यन्ति मीनाम्
॥ १७ ॥ अधिरलमिदमम्भः स्वेच्छुयोच्छालयन्त्या विक-
धकमलशोभोत्तानहस्तद्वयेन । परिकलित इवार्धः
कामवाणातिधिभ्यः सलिलमिव वितीर्णं बालसीला-
सुखेभ्यः ॥ १८ ॥ असंशयं न्यस्तमुपास्तरकतां यदेष
रोद्धुं रमणीभिरञ्जनम् । इतेऽपि तस्मिन्सलिलेन
शुक्लतां निरास रागो नयनेषु न श्रियम् ॥ १९ ॥
आकटः पतित इति स्वसम्भयोऽपि स्वच्छानां परि-

पानीमें कमल हिल रहे थे, उससे उठा हुई जहों सूखे तौरपर
झर-झरकर लीट रही थी और हँसोंका हन-कुनका कूजन
सुनाई दे रहा था जिसे सुनकर ऐसा जान पड़ता था माना
वधू अपने जलमें प्रवेश करनेके लिये खियोंको बुला रही है
॥ १४ ॥ जिस तालावमें खियों अपने पनियोंके साथ जलक्रीड़ा
कर रही थी उस तालावमें उन खियोंकी आँखें ऐसी लाल कर दीं
मानो वे मदिरा पीकर आई हों क्योंकि मदिरामें अमृतका गुण
होता है और खिले हुए कमलोंका सत डाला जाता है इसी प्रकार
तालावमें भी स्वच्छ जल होता है और कमल खिले हुए होते
हैं ॥ १५ ॥ जलक्रीड़ा करनेवालों स्त्रियोंके कानोंपर सजे हुए
शिरीषके जो फूल नदीकी धारामें गिरकर सैरने लगे उन्हें
गञ्जलियों सेवारके धोखेमें खींच ले जाना चाहती हैं ॥ १६ ॥
खिले हुए कमलके समान सुन्दर अपने दोनों हाथ फैलाकर
बिना राक-टोकके निरन्तर जल उछाड़ती हुई नायिका ऐसी जान
पड़ती है मानो बालक्रीड़ा करनेवाले (पञ्जल) कामदेवके
बायरूपी प्रतिधिको जलका अर्पण दे रही हो ॥ १७ ॥ आँखोंकी
लाकी रोक रसनेके लिये स्त्रियोंने जो अञ्जन आँखोंमें लगा
लिया था उसके पुल जानेपर भी वह लाकी बनी रही,
जिससे आँखोंका उज्ज्वापन तो जाता रहा पर सुन्दरता न
मिट पाई ॥ १८ ॥ स्त्रियोंके कानोंसे गिरे हुए नीचे कमलकी
जहरीले तारकी ओर उछाड़कर यह सङ्केत किया कि यदि
अपना पुत्र भी नीचे गिर पड़े तो सम्मनोंको बाह्य कि उसे

हरणीयतामुपैति । कर्णेभ्यश्च्युतमसितोन्मलं यधूनां
वीचीभिस्तटमनु यजिरासुरापः ॥ ७ ॥ आघर्तशोभा
नतनाभिकान्तेर्भङ्गयो भ्रुवां ह्रन्दधराः स्तनानाम् ।
जातानि रूपावयवोपमानान्यदूरवर्तीनि यिलासिनीनाम्
॥ ८ ॥ आसां जलास्फालनतन्पराणां मुक्ताफलस्पधिषु
शीकरेषु । पयोधरोत्सर्पिषु शौर्यमाणः सैल्लदयते न
क्षिद्रुतोऽपि हारः ॥ ९ ॥ आश्माको युधतिदशामसौ
तनोति च्छायैव ध्रियमनपायिनीं किमेभिः । मन्वेवं
स्वगुणविधानसाध्यस्यैः पानीयैरिति विदधाचरेऽज-
नानि ॥ १० ॥ उदस्य धैर्यं दयितेन सादरं प्रसादितायाः
करधारिवारितम् । मुखं निमीलघ्रयनं ननभ्रुयः ध्रियं
सपत्नीद्वन्द्वनादिवाददे ॥ ११ ॥ उद्धमधकेशश्च्युतपत्र-
लेकां शिरलेपिमुक्ताफलपत्रयेष्टः । मनोह्र एव प्रमदामु-
खानामभ्याविहाराकुलितोऽपि वेषः ॥ १२ ॥ उन्मृष्ट-

पत्राः कलितालकान्ताः करेष्टेषु लश्रा जघनं स्पृशन्तः ।
स्तनस्थलेष्वाहतिमादधाना गता यधूनां प्रियतां
जलांघाः ॥ १३ ॥ एतस्याः करिकुम्भसन्निभकुचप्रा-
भारपृष्ठं लुटद्गुह्यमभयजेन्द्रमौक्तिकसरश्रेणीमनोहा-
रिणी । दूरादेव्य तरङ्ग एव पातितो वेमाद्विलीनः कथं
को यान्याऽपि विलीयते न सरसः सोमन्तिनीसङ्गमे
॥ १४ ॥ एताः करोत्पोडितचारिधारा वर्षात्सखीभि-
र्वन्दनेषु सिक्ताः । धक्तराग्रैरलकैस्तद्वयदचूर्णरूपा-
न्वारिलयान्वहन्ति ॥ १५ ॥ एता गुरुश्राणपयाधर-
त्यादान्मानमुद्गादुमशक्त्यन्तः । गाढाङ्गवैद्याहुभिरप्सु
याताः क्लेशात्तरं रामवशात्प्रयन्ते ॥ १६ ॥ करो
धुनाना नयपल्लवारुती पयस्यमाधे किल जातस-
म्भ्रमा । सखीषु निर्वाह्यमधाप्यर्थापतं प्रियाङ्गसंश्ले-
षमवाप माननी ॥ १७ ॥ कस्याश्चिन्मुखमनु घातपञ्च-

अपने पाससे हटा दें ॥ ७ ॥ जलक्रीड़ा करनेवाली स्त्रियोंके
आँखोंके समान बभ्रुएँ वहीं आस-पास दिखाई दे रहीं थीं क्योंकि
जलमें पड़ी हुई भँवर उनकी गहरा नाभिके समान थी, लहरें
भीड़ोंके समान और चकनी-चकवे स्तनोंके समान थे ॥ ८ ॥
जलक्रीड़ा बरती हुई स्त्रियाँ जप हाथसे पानी धपधपाने लगीं
और मोतीके समान जलकी बूँदें उनके स्तनोंपर उबलने
लगीं तो उनके हार टूटकर बिखर गए पर उन पानीकी
बूँदोंके धोलेमें हारका टूटना और मोतियोंका बिखरना किसीकी
दिखाई न पड़ा ॥ ९ ॥ अपनेसे उपजाई हुई निर्मलताको दधानेवाले
छाँत्रसे डाह करके ही जानो जलमे जलक्रीड़ा करनेवाली
नवेलियोंकी आँखोंमें लगे हुए आँजनको यह समझकर था
हाला कि जब हमारी वी हुई शोभासे ही स्त्रियोंकी आँखोंमें
सुन्दरता भरी हुई है तब आँजनकी आवश्यकता ही क्या
है ॥ १० ॥ रुठी हुई प्रियतमाको देखकर प्रियतमाका धीरज
छूट गया और उसने बड़े आदरके साथ अपने हाथोंसे प्रियतमाके
मुखपर पानी उछालकर उसे प्रसन्न कर लिया, उस समय
पानीके छीटे पड़नेसे उसकी आँखें सुँरी जा रहीं थीं अतः
बाँकी भौंहोंवाली उस सुन्दरीका मुख सहसा ऐसा सुन्दर जान
पड़ा मानो सौतेले मुखोंकी सारी सुन्दरता उसके हाँ मुखपर
भरा छाई हो ॥ ११ ॥ जलक्रीड़ा करते समय स्त्रियोंके बूँदें मुख
जानेसे उनमें गुप्ते हुए फूल-पल्लं नीचे बिखर गए और मोती
आकृग आ गिरे इस प्रकार उनका वेश तो पहने-सा नहीं रह
गया फिर भी उनका मुख उमोंका र्यों सुन्दर बना रहा ॥ १२ ॥

जलक्रीड़ा करते समय जलके प्रवाह भी स्त्रियोंके प्रिय (पति)
यन गए क्योंकि उन्होंने स्त्रियोंके शरीरको रगड़कर उसपर
बने हुए बेल-बूँदें धो दिए, उनकी लटकती हुई चाँदियों धाम
लीं, उनके गलेसे लिपट गए उनके जघन-भागका छू दिया
और स्तन भी धपधपा दिए ॥ १३ ॥ जलक्रीड़ा करते समय
स्त्रियोंकी छातीपर हाथोंके मस्नकके समान उठे हुए तथा
घुँघरीके रङ्गकी गजमुक्ताओंकी हिलती हुई मात्तासे लगे
हुए बड़े-बड़े स्तनोंपर एक लहर वृत्तसे घाकर उनसे टकरा
कर तत्काल बिखर गईं । ठीक ही है, कौन ऐसा रसिक है जो
सखी-वस्त्री नवेलीका समागम पाकर अपनेका उसपर म्यौझावर
न कर दे ॥ १४ ॥ जलक्रीड़ा करते समय नवेलियों हाथसे पानी
उछाल-उछालकर बड़े गर्वके साथ अपनी जिन सखियोंके
मुखपर फेंक रही हैं उनकी भीगी और सोधी लटकती हुई
चाँदीके बालोंमें लगे हुए लाल-लाल चूर्णसे मिलकर जलकी
बूँदें लाल-लाल होकर टपक रहीं हैं ॥ १५ ॥ जो लड़कियाँ
बड़े-बड़े नितम्ब और स्तनोंके कारण चल-फिर भी नहीं सकतीं
थीं वे तैरनेके चावसे अपनी भुजबन्दसे कसी हुई बाँहें बड़ी
कठिनाईसे फेंक-फेंककर पानीमें नैर रही हैं ॥ १६ ॥ एक
रुठी हुई नवेली गहरे पानीमें घुसकर ऐसे हाथ हिलाने लगीं
मानो पवरा गई हो और वह भट अपने पतिके शरीरसे ऐसे
लिपट गई मानो हवनेके दरसे उसे पकड़ लिया हो । ऐसी
दशामें न तो सखियोंके बीच उसकी ईंसी ही उड़ाई गई कि
वह रुठने चली थी और न बिछाईका ही दोष लगा कि यह

लेखं व्यातेने सलिलभरावसम्बिनीभिः । किञ्चलकव्य-
तिकरपिञ्जरान्तराभिश्चित्रधीरलमलकाप्रवल्लगोभिः ॥ १८ ॥ किं तावत्सरसि सरोजमेतद्वारादाहोस्विन्मु-
खमवभासते तरुण्याः । संशय्य क्षणमिति निश्चिकाय
कश्चिद्विव्योर्कैर्यकसद्व्यासिनां परोक्षैः ॥ १९ ॥ गतैः
सद्भावैः कलहं सविक्रमं कलत्रभारैः पुलिनं मितम्बिभिः ।
मुखैः सरोजानि च दीर्घलोचनैस्तुरखियस्साम्यगुणा-
क्षिरासिरे ॥ २० ॥ जलधिलुलितवस्त्रव्यक्तनिम्नोन्न-
ताभिः परिगततटभूमिस्नानमात्रोन्मिताभिः । कमक-
ठचिरकुम्भश्रीमदाभोगतुङ्गस्तनयिनिहितहस्तस्वस्ति-
काभिर्यधूभिः ॥ २१ ॥ तथा न पूर्वं कृतभूषणादरः
प्रियानुरागेण विलासिनीजनः । यथा जलाद्रौ नय-
मण्डनधिया दवाह दृष्टीय विपक्षपोषिताम् ॥ २२ ॥
तिरोहितान्तानि नितामन्तमाकुलैरपां विगाढादलकैः

प्रसारिभिः । ययुर्वधूनां वदनानि तुल्यतां द्विरेफवृन्दा-
न्तरितैः सरोकहैः ॥ २३ ॥ तीरस्थलीवर्द्धिभिरुत्क-
लापैः प्रस्निग्धकैरभिनन्द्यमानम् । ओम्नेषु सम्मूर्च्छति
रक्तमासां गीतानुगं धारिमृदङ्गवाद्यम् ॥ २४ ॥ दन्ता
नामधरमयावकं पदानि प्रत्यग्रास्तनुमधिलेषनां
नलाङ्गाः । आगिन्युः श्रियमधितोयमङ्गनानां शोभायै
विपदि सदाश्रिता भवन्ति ॥ २५ ॥ द्युतिं वहन्तो वनि-
तावतंसका हताः प्रलोभादिव वेगिभिर्जलैः । उपक्लु-
तास्तत्तुल्यशोचनीयतां व्युत्ताधिकाराः सखिवा इवा-
ययुः ॥ २६ ॥ नारीभिर्गुरुजघनस्थलाहतानामास्यधी-
विजितविकासिवारिजानाम् । लोलत्वादपहरतां तद-
ङ्गरागं सज्जते सकलुष आशयो जलानाम् ॥ २७ ॥
निजप्रियमुखभ्रान्त्या हर्षेणाधुम्यवम्युजम् । बद्धाधरा
तु हृद्रेण लीत्कारमकरोन्मुहु ॥ २८ ॥ निमीलदाकैकर-

जलकीदा के समन भ्रमने पतिते लिपट गई ॥ १० ॥ जलकीदा के
समन किसी नवेलीके मुखपर चोती हुई चित्रकारी तो धुल
गई पर पानीके बोझसे सीधा खटकी हुई और फूलका केशर
छगनेसे पीली बनी हुई चोटाले उसके मुखकी शोभा और भी बढ़
गई ॥ १८ ॥ कमलसे भरे हुए जलाशयमें महती हुई नवेलीका
मुख देखकर किसीको यह समझ हुआ कि यह कमल है या किसी
नवेलीका मुख, पर जब उसने देखा कि बगलोंके साथ रहनेवाले
कमलमें यह शोभा कहाँ आ सकती है तब उसकी समझमें
आया कि यह सचमुच नवेलीका मुख ही है ॥ १९ ॥ नदीमें
स्नान करनेवाली नवेलियोंने अपनी चटक-मटक-भरी चालसे
हंसोंकी चालको, अपने भारी कँसे हुए जितम्बसे नदीके
तटकी और अपनी बड़ी-बड़ी आँखोंवाले मुखसे कमलोंकी हरा
कर दिखा दिया कि तुम हमारी क्या बराबरी करोगे ॥ २० ॥
स्नान करनेके पश्चात् जिस नवेलियोंके जलसे भीगे हुए वस्त्र
शरीरमें लिपट जानेसे उनके सय ऊँचे-नीचे भाग स्पष्ट दिखाई
दे रहे हैं वे सोनेके सुन्दर घड़ेके समान अपने सुन्दर तथा
ऊँचे स्तनोंकी दोनों भुजाओंसे स्वस्मिक बनाकर उकती हुई
तटकी और चली आ रही हैं ॥ २१ ॥ पतिते प्रेमके कारण
गहनोंसे सदी हुई नवेलियोंको देखकर उनकी सीतोंको उतना
दुःख नहीं होता था जितना कि नहानेपर दिखाई देनेवाले
नलके चिह्न उनकी आँखोंमें मटकते थे ॥ २२ ॥ जलमें डुबकी
लगानेसे स्त्रियोंके चिह्नरे हुए चालोंसे उका हुआ उनका मुख
ऐसा जान पड़ा मानो भीतोंमें घिरा हुआ कमल हो ॥ २३ ॥

जलकीदा करते समय गाली हुई स्त्रियोंकी तानसे ताक मिलाकर
बोझता हुआ जलका सुदृढ़-जैसा शब्द इतना भला जान
पड़ता है कि तीरपर बैठकर सधुर बोली बोलनेवाले और पटु
उठा-उठाकर उसका अभिनन्दन कर रहे हैं ॥ २४ ॥ सध पोनेवाली
स्त्रियोंके चोटोंकी मदकी छाँटा तो जल-कीदासे छूट गई
पर दौतोंके चिह्नोंसे ही वे सुन्दर दिखाई देने लगे ।
इसी प्रकार शरीरपर पुता हुआ चट्टन तो छूट गया पर
नलोंके चिह्नोंसे उनकी शोभा बनी ही रही । ठीक ही है,
सज्जनोंके सहारे रहनेवाले लोगोंकी शोभा विपक्षमें भी बनी
रहती है ॥ २५ ॥ जलकीदाके समय उसजसे जलने मानो
शोभसे स्त्रियोंके कानपर रखे हुए जो फूल सींच लिए वे
पानीपर तैरते हुए उस मन्थ्रीके समान दयनीय दिखाई देने
लगे जो अपने अधिकारसे गिरा दिया गया हो ॥ २६ ॥ जो
जल स्त्रियोंके चौड़े जघनसे टकरा रहे थे, जिसमें सिले हुए
कमल नवेलियोंके मुखकी शोभासे हार खा रहे थे और जो
अपनी चञ्चलतासे स्त्रियोंके शरीरपर लगे हुए केसरके रङ्गमें
रेंगे जा रहे थे, ऐसे जलों (जहाँ, मूर्खों) का आशय (स्वाध,
मन) चर्चात् जलाशय, क्लृप (चञ्चल, काला) हो गया
॥ २७ ॥ जलकीदाके समय एक नापिका कमलको अपने
प्रियका मुख जानकर जब प्रसन्नतासे चूमने लगी और उसमें
बैठे हुए मीरेने उसका जोठ काट लिया तब वह उसे अपने
प्रियका दन्तकत समझकर ही धीरे-धीरे सी-सी करने लगी
॥ २८ ॥ जलमें अपने पतिके साथ डुबकी लगा-छगाकर

लोलचक्षुषां प्रियोपकरदं कृतगात्रवेपथुः । निमज्जतीनां
भ्रसितोद्धतस्तनः श्रमो नु तासां मदमो नु पमथे
॥ २६ ॥ निमज्जनाभिकुक्षरेषु यदम्भः स्थायितं चलदशां
सहरीभिः । तद्भवैः कुक्षुक्तैः सुरनार्यः स्मारिताः
सुरतकण्ठहतानाम् ॥ ३० ॥ निरञ्जने सार्चयित्वा कितं
हृद्यवयाधकं वेपथुरोष्ठपङ्कजम् । नतभ्रुवो मण्डयति
स्म धिग्रहे वलिक्रिया चातिलकं तदास्पदम् ॥ ३१ ॥
मिरीक्ष्य वेलीप्रतिधिम्यमेणीदृशो भुजङ्गभ्रममावहन्त्यः ।
पतङ्गकुलं धृतयादुमूलं भ्रम्पाप्रकम्पाकुलिताः प्रचेलुः
॥ ३२ ॥ निर्धीते सति हरिचन्द्रे जलाघैरापाण्डोर्गत-
परभागपाङ्गनायाः । अक्राय स्तनकलशद्वयादुदये
विच्छेदः सहृदययेव हारयष्टयः ॥ ३३ ॥ परिस्फुरन्मी-
नविघटितोरवः सुराङ्गनास्त्रासिधिलोलदृष्टयः । उपा-
ययुः कम्पितपाण्णपल्लवाः सज्जोजनस्यापि विलोकनी-

यताम् ॥ ३४ ॥ पर्यच्छे सरसि हर्षेऽगुके पयोभिलो-
लाले सुगन्धगुरावपत्रपिण्डोः । सुधोण्या दलवसनेन
वीचिहस्तन्यस्तेन द्रुतमकृताग्निनीसन्निध्यम् ॥ ३५ ॥
प्रध्रष्टैः सगन्धसमम्भसोऽवगाहकाडाभिर्विदलितयूथि-
कापिशङ्गैः । आकल्पैः सर्गसि हिरण्यमयैर्वधूनामार्था-
ग्निधुनिशकलैरिव व्यराजि ॥ ३६ ॥ प्रशान्तघर्माभिभवः
शर्नैविवान्वितार्तिनीधयः परिमृष्टपङ्कजः । ददा भुजा-
लम्बमिवात्तशीकरस्तरङ्गमालान्नरगोचरोऽनिलः ॥ ३७ ॥
प्रियेण सङ्गृह्य विपत्तसन्निधायुपाहितां वत्ससि पीथर-
स्तेन । स्रजं न काचिद्विजहं जलाविलां वसन्ति हि
मेघिण गुणान् पशुति ॥ ३८ ॥ प्रियेण सित्का चरमं
विपत्ततश्चुकाप काचिन्न तुतोप सान्ध्यनैः । जनस्य
कदप्रणयस्य खनसः किमन्यमयोऽनुनय भृशायते
॥ ३९ ॥ प्रियैः सलोलं करधारिवारितः प्रवृज्जनिःश्वास-

नहानेवाली और कुल किपी हुई तथा चञ्चल आँखोंवाली
स्त्रियोंके शरीरको ओ कँपा रहा था और वही हुई सौंससे
उनके स्तनोंको उछाती दे रहा था वह परिश्रम या या कामदेव,
या यह समझमें नहीं आया ॥ २६ ॥ स्नान करते समय
चञ्चल नयनोंवाली स्त्रियोंकी गहरी नाभिपर टकरानेवाली
सहरीसे जो शब्द निकला उसे सुनकर देवियोंको सुरतके
समय अपने गलेसे निकलनेवाली ध्वनिका स्मरण हो आया
॥ ३० ॥ स्नानके पश्चात् आँजन पुली हुई आँखोंको
तिरछी चितवनने, महावर छूटे हुए घोटको कम्पनने
और छूटे हुए तिलकबाजे जख्माटको सिङ्कनने निकलकर
उस नवेलीके पूरे शरीरको सुन्दर बना दिया ॥ ३१ ॥
नदीमें स्नान करती हुई मृगनयनी स्त्रियोंने जलमें पड़ी हुई
अपनी चोटीकी परछाईको सौंप समझ लिया और इस
धोखेमें डरकर बाँहें फैलती हुई, कँपती हुई, धबराकर कूदती-
फँदती इस वेगसे जलसे बाहर निकल आई कि उन्होंने
जिसफर गिरते हुए अपने वस्त्रोंकी भी चिन्ता नहीं की ॥ ३२ ॥
जलके प्रवाहसे हमलीके शरीरपर जगे हुए जाज चन्दनके
छूटनेसे उनका स्तन ऐसा उज्जला हो गया कि उसपर जलके
हुए उनसे डारकी सारी शोभा जाती रही, इसीजिसे मानो वह
हार, आन-भूषण ही तुरन्त टूटकर छितरा गया ॥ ३३ ॥
जलमें उछलती हुई मछलियोंकी उसक अपनी आँखोंपर जगनेसे
धबराकर जिनकी आँखें चञ्चल हो गई थीं और जिनके हाथ
कँप रहे थे, वे नवेलियों अपनी सखियोंको भी उस समय वही

सुन्दर जैव रही थीं ॥ ३४ ॥ निर्मल जलवाली नदीमें जलके बहावसे
जब नायिकाके वस्त्र छूटकर गिर गए तब उसे देखनेके लिये उसके
नायककी आँखें मचल उठीं । वह देखकर सुन्दर नितम्बवाली
नायिका लजित हो गई और उस समय कमलने अपने तरङ्ग
रूपी हाथसे अपने पनेरूपी वस्त्र देकर उस नवेलीके साथ
अपना सर्वापन निभा दिया ॥ ३५ ॥ निर्मल जलमें डुबकी
जगते समय स्त्रियोंके लिङ्गो हुई नूँईके समान पीले-पीले
सोनेके गहने अचानक सुल-सुलकर जो पार्श्वमें जा पड़े वे
उसमें बहवानलकी लपटोंकी आँकोंके समान दिखाई दे रहे थे
॥ ३६ ॥ धूपकी तपन कम करनेवाला, कमलोंसे घटलेखियाँ
करनेवाला, कुहारोंसे भरा हुआ तथा लहरोंके बीच घुसकर
धीरे-धीरे बहता हुआ पवन ऐसा जान पड़ता है मानो
जलकीड़ा करती हुई स्त्रियोंको हाथका सहारा दे रहा हो
॥ ३७ ॥ अपनी नवेलीकी सौतको देखते ही पतिने एक माछा
गुँथकर अपनी नवेलीके मोटे-मोटे स्तनोंवाली छातीपर पहना
दी, यद्यपि वह माछा पानीसे भागकर फीकी पड़ गई थी फिर
भी नायिकाने उसे नहीं उतारा क्योंकि गुण तो प्रेममें रहते हैं,
वस्तुमें नहीं ॥ ३८ ॥ जलकीड़ा करते समय नायकने अपनी नवेलीकी
सौतपर पहले जल उछाला और उसके पश्चात् उस नवेलीपर
उछाला इससे वह नवेली हतनी रूठ गई कि मनानेसे भी न
मानी क्योंकि जब अत्यन्त प्रेमसे भरे हुए किसीके मनमें क्रोध
भर आता है तो वह मनानेपर और भी बढ़ जाता है ॥ ३९ ॥
जिन नवेलियोंको उनके पतिवोंने बड़े प्रेमसे पानी उछालकर

विकम्पितस्तनः । सविभ्रमाधूतकराग्रपल्लवो यथार्थ-
तामाप विलासिनीजनः ॥ ४० ॥ भयादिवाशिलप्य
भवाहतेऽम्भसि प्रियं मुदानन्दयति स्म मानिनी ।
अकृत्रिममेभरसाहितैर्मनो हरन्ति रामाः कृतकैरपी-
हितैः ॥ ४१ ॥ योग्यस्य चिनयनलोचनानलाचिनिर्दग्ध-
स्मरपूतनाधिराज्यलक्ष्याः । कान्तायाः करकलशो-
द्यतैः पयोर्भयकत्रेन्दोरकृत महाभिपेक्षेकः ॥ ४२ ॥
ललितमुरसा तरन्तो तरलतरङ्गाद्यचालितनितम्बा ।
विपरीतरसासक्ता किमदृश्यत सरसि या सख्या
॥ ४३ ॥ विगाढमात्रे रमणाभिरम्भसि प्रयत्नसम्बाहि-
तपीषरोरुभिः । विभिद्यमाना विससार सारसानुदस्य
तीरेषु तरङ्गसंहतिः ॥ ४४ ॥ विधूतकेशाः परिलालित-
रजः सुराङ्गनानां प्रविलुप्तचन्दनाः । अतिप्रसङ्गाद्भि-
हितागसो मुहुः प्रकम्पमीयुः सभया इधोर्मयः ॥ ४५ ॥

विपलचित्तोन्मथना नखदण्डास्मिरोहिता विभ्रमम-
ण्डनेन ये । हनस्य शेषानिय कुङ्कुमस्य तान्विकथ-
नीयान्धुरन्यथा स्त्रियः ॥ ४६ ॥ विपललेखा निरल-
ककाधरा निरञ्जनाक्षोरपि विभ्रतीः श्रियम् । निरीक्ष्य
रामा वुवुधे नभश्चरैरलङ्कृतं तद्वपुषैव महद्वनम् ॥ ४७ ॥
विभिन्नपर्यन्तगमीनपङ्क्तयः पुरो विगाढाः सखिभिर्म-
दन्वतः । कथञ्चिदापः सुरसुन्दरोजगैः सखीतिभिस्त-
त्प्रथमं प्रेक्षिते ॥ ४८ ॥ विदुस्य पाणौ विधूते धृता-
म्भसि प्रियेण वध्वा मदनार्द्रचेतसः । सखीय काञ्ची
पयसा घनोक्तता वभार घीतोदयबन्धमंशुकम् ॥ ४९ ॥
शिलाघनैर्नाकसदामुरःस्थलेषुहन्निवेशैश्च वधूपयोधरैः ।
तटाभिनीतेन विभिन्नधीचिन्ता रूपेय भेजे कलुषव्यम-
म्भसा ॥ ५० ॥ शुभाननाः साम्बुदेषु भीरवो विलो-
लहाराश्चलफेनपाङ्क्तयः । नितान्तगायां वृत्तकुङ्कुमेष्वलं

रोका, जिनकी बड़ी हुई साँससे उनके स्तन हिल रहे थे, जो
आयन्त हाव-भावके साथ अपने हाथ कँपा रही थीं उन
स्त्रियोंका विलासिनी (घटलेलिपाँसे भरी) नाम सच्चा ॥
गया ॥ ४० ॥ जलमें पहुँचनेपर जैसे ही रुठी हुई नायिकाके
शरीरमें कोई मछली घू गई वैसे ही उसने डरका वहाना लेकर
कट अपने पनसे लिपटकर उसे प्रलस कर लिया । सच्चे
प्रेमसे भरी हुई स्त्रियोंका वनाबटी व्यवहार भी वही सुभावना
होता है ॥ ४१ ॥ किसी नायकने अपने हाथरुपों कलशसे
ढाए हुए जलसे नायिकाके मुखरुपी चन्द्रमाका यह समझकर
भलीभाँति अभिपेक्ष किया कि शत्रुके नेत्रोंकी चमकीली लपटसे
जले हुए कामदेवकी सेनाका सेनापति बनने योग्य यही
(मुख) है ॥ ४२ ॥ जिस समय वह नवेली पानीमें अत्यन्त
मस्तीके साथ छातीके बल तैर रही थी और खलल लहरोंमें
उसका गिलम्ब हिल रहा था, उसे देखकर उसकी सखीकी
पेसा प्रतीत हुआ मानो वह विपरीत रतिमें लगी हुई हो
॥ ४३ ॥ जब नवेलियाँ अपनी मोटी जाँघें उठा-उठाकर बड़ी
कठिनाईसे जलमें धुसीं उस समय जलमें उठी हुई लहरें
सारस पक्षियोंकी बहाकर तीरकी ओर हटा ले गईं ॥ ४४ ॥
जलकीड़ा करते समय कौपती हुई लहरोंको देखकर पेसा जान
पड़ता था मानो पहले तो उन्होंने नवेलियोंके बाल हिलाए,
फिर उनके गलेकी मालाएँ हिला दीं और फिर उनके शरीरपर
पुता हुआ चन्दन धो दिया । इस प्रकार बार-बार अपराध
करनेसे ही वे डर गईं ॥ ४५ ॥ केसरकी छातीमें विप्रे

हृत् जिन नख-चिह्नोंको देखकर मन जल उठते थे, वे केसरके
धुल जानेपर ऐसे जान पड़ते थे मानो केसरका कुङ्कुम नहीं
धुल पाया । यद्यपि वे उस समय उतने सुन्दर नहीं थे फिर
भी ऐसे जुबानले लग रहे थे कि कहा नहीं जाया ॥ ४६ ॥
जलमें स्नान करनेसे जो नवेलियाँ शरीरपर बनी हुई सारी
चित्रकारीके धुल जाने, छोटाका महादर छूट जाने और
छाँलोंका छाँजन धुल जानेपर भी पहलेकी-सी ही सुन्दर
जान पड़ती थीं उन्हें देखकर देवताओंने सोचा कि इनका
तो सारा शरीर ही छाभूषणोंका काम कर रहा है ॥ ४७ ॥
इन्द्रकी प्यारी अप्सराएँ जैसे ही जलमें घुसनेकी चलीं वैसे ही
जलासयमें उल्लस-बल्लसर भागती हुई सारी मछलियोंको
देखकर वे ऐसी डर गईं कि बड़ी कठिनातासे किसी-किसी
प्रकार वे जलमें घुस पाईं ॥ ४८ ॥ जलकीड़ाके समय जब
प्रियतुमने ईसकर पानी उछालती हुई नायिकाका हाथ पकड़
लिया, तब उसका मन कामके वेगसे मचल उठा, जिससे
उसकी साड़ीकी गाँठ खुल तो गई पर पानीमें भीगनेके कारण कहीं
बड़ी हुई करघनीने सखी बनकर उस साड़ीको खिसकनेसे बचा
लिया ॥ ४९ ॥ चटानके समान कठोर देवताओंकी क्षातीसे तथा
स्त्रियोंके विशाल स्तनोंसे टकराकर पानीकी लहरें तीरपर
पहुँचकर टूट गईं इसीलिसे मानो क्रोधित होकर जल कलुषित
(चुब्ध, गन्दवा) हो गया ॥ ५० ॥ जलकी चञ्चल लहरोंमें
कीड़ा करती हुई नवेलियाँ उन लहरोंसे किसी प्रकार घटकर
नहीं थीं क्योंकि बलकी तरङ्गोंमें जैसे किसे हुए कमल हिल

न लेभिरे ताः परभागमूर्मिषु ॥ ५१ ॥ श्रिया हसद्भिः
कमलानि सस्मितैरलङ्कृताम्बुः प्रतिभायतेमूर्मिः ।
कृतानुकूल्या सुरराजयोपितां प्रसादसाफल्यमवाप
जाह्नवी ॥ ५२ ॥ पयसि पुनर्महोभकुम्भार्थीभाजा कुच-
युगलेन नीयमाने । विश्लेषं युगमगमद्रथाङ्गनाम्नोह-
वृत्तः क इव सुखावहः परेषाम् ॥ ५३ ॥ सन्दृष्ट-
लोषवलानितम्येध्विन्दुप्रकाशान्तरितोडनुल्याः । अमी
जलापरितसूत्रमार्गा मानं भजन्ते रशनाकलापाः
॥ ५४ ॥ सौमन्यं वधवपि काममङ्गनानां दूरत्वाद्गतम-
हमान्नोपमानम् । नेदीयो जितमिति लज्जयेव तासा-
मालोले पयसि महोत्पलं ममज्ज ॥ ५५ ॥ छान्नीनां
बृहदमलोदयिन्दुचिभ्रौ रेजाते रुधिरदशामुरोजकुम्भौ ।
हाराणां मणिभिरुपाश्रिता समन्तादुत्सृज्युणवदुपप्रका-
शयेव ॥ ५६ ॥ इतोऽङ्गरागस्तिलकं विमृष्टं लम्प्यास्त-

रैरेभिर्तीय मत्वा । सुसंहितेनेति तदा जलानामदायि
मध्यं न कुचद्वयेन ॥ ५७ ॥ इदाम्भसि व्यस्तवधूकरा-
हते एवं मृदङ्गध्वनिधीरमुज्झति । मुहुः स्तनैस्ताल-
समं समाददे मनोरमं नृत्यमिव प्रवेपितम् ॥ ५८ ॥

प्रपापालिका—अकुल्यधनिरोधतस्तनुनरां धारा-
मियं कुर्वती कर्कर्या नितरां पयानिपुणिका दातुं
प्रपापालिका । विश्लेषाङ्गुलिना करेण दशतापीडं
शनेः पान्थ हे निस्पन्दोर्ध्वधिलोचनस्वमणि द्वा
जानासि पातुं पयः ॥ १ ॥ कस्येयं तदणि प्रपा पथिक
नः किं पोयतेऽस्यां पयो धेनूनामथ माह्वं पथिक रे
घारः कथं मङ्गलः । सोमो वाथ शनैश्चरोऽमृतमिदं
तसेऽधरे दृश्यते भो भोः पान्थ यिलासतुन्दर सखे
यद्गोचते तन्पिय ॥ २ ॥ गन्तुं सन्यस्मीहसे यदि
पुनर्ध्यालोलेखेलीलतां प्रष्टुं वा स्वकुटुम्बिनीमनुदिनं

रहे थे बीसे ही इनके बारे हुए सुन्दर मुख भी थे, लहरांमे
उज्जका केन लहरा रहा था तो इनकी दातां पर उज्जले-उज्जले
हार दित रहे थे और उधर लहरें उज्जली थीं तो स्वभावसे
ही गोरी ये नवेलियाँ केशर धुल जानेसे और भी अधिक
गोरी निकल आई थी ॥ २१ ॥ यदि गंगाजीने देवराज
इन्द्रकी देवियोंको अपनी स्पर्श जल भेंट करके उनपर
कृपा की तो उन्होंने भी अपने मुस्कराहटसे भरे तथा
करनी शोभासे कमलांकी हँसी उड़ानेवाले मुखोंकी परछाईं
गङ्गाजीके जलमें डालकर उस अलकी शोभा बढ़ाकर उसका
बढ़ता चुका दिया ॥ २२ ॥ विशाल हाथीके मस्तककी शोभा
धारण करनेवाले नवेलियोंके स्तनोंमे जब पानीको चँपोककर
खिंच कर दिया उस समय पास-पास सटकर बैठे हुए चकवी-
चकवे भी अलग-अलग हो गए क्योंकि अहङ्कारियोंसे किसीकी
मुख नहीं मिलता ॥ २३ ॥ स्नान करनेसे नवेलियोंके
नितम्बोंपर वस्त्र चिपक गए हैं । नितम्बपर पड़ी हुई
करभनी के सुँपुखोंका सुँह पानीसे भर जानेके कारण उनमें
रनभुन नहीं हो रही है, अतः उस समय ये ऐसे दिखाई
दे रहे हैं मानो चन्द्रमाकी चाँदनीसे ढके हुए तारे ॥ २४ ॥
पञ्चजल जलमें डूबे हुए कमलको देखकर ऐसा प्रतीत होता है
मानो वह इस खज्वासे डूब गया हो कि जबतक मैं दूर था
तबतक अपनी सुगन्धके कारण मैं खियोंके मुखका उपमान
बना हुआ था पर उनके पास जानेपर मैं उनके मुखसे दूध
गया हूँ अतः अब क्या अपना सुँह दिखाऊँ ॥ २५ ॥ स्नान

करनी हुई सुनवनी नवेलियोंके बड़े-बड़े स्तनोंपर पड़ी हुई
पानीकी पड़ी-पड़ी चूँचूँ पेसी जान पड़नी थी मानो दोरा
टूट जानेपर भी सुन्दर स्थान पानेके लोभसे डारके मणि
चातों और लिपटे पड़े हों ॥ २६ ॥ नवेलीके आपसमें अन्योन्य
सटे हुए दाँभों स्तनोंने जलको मानो इस क्रांथसे बाँधमें
आनेका अवसर नहीं दिया कि इसने अबसर पाक शरारमें
लगी हुई केशरकी लाली पाँद डाली और मिलक भाँ भाँ
बढ़ाया ॥ २७ ॥ जल-क्रोड़ा करनेवाला नवेलियोंके हाथसे
पथपथाए जानेपर जलाशयके जलमें मृदङ्गकी-सा धमक उठ
रही थी । उस समय हिलते हुए स्तन ऐसे जान पड़ते थे मानो
ताकके साथ-साथ नाचने लगे हों ॥ २८ ॥

प्याऊवाली : यह प्याऊवाली नवेली पानी पिलानेमें
बड़ी चतुर है इसलिये अपनी उँगलियोंसे गबुएकी टेंटी
रोककर पतली धारसे पानी पिला रही है पर हे पथिक !
तुम भी कम चतुर नहीं हो, तुम भी हाथकी उँगलियों चौड़ाकर,
दौत दवाकर और पकटक ऊपर देखते हुए धीरे-धीरे पानी
पीना जानते हो ॥ १ ॥ यात्री और प्याऊवालीमें बात-चीत
हो रही है । यात्री : कहे नवेली ! यह किसका प्याऊ है ?
नवेली : मेरा है यात्री । यात्री : यहाँ क्या पिजाया जाता
है ? नवेली : पय (पानी, दूध) । यात्री : गायका या भैंसका ?
नवेली : अरे यात्री ! घार (जब, सोमवार आदि दिन) ।
यात्री : मङ्गल, सोम या शनिवार ? नवेली : वह अमृत
(जब, अमृत) है । यात्री : वह तो तुम्हारे अधरोंमें है ।

कान्तां समुत्कण्ठते । तत्सुष्यन्नपि मुग्धमन्धरवलम्बे-
त्रान्तरुद्धाध्वगामेतां दूरत एव हे परिहर भ्रानः
प्रपापालिकाम् ॥ ३ ॥ दूरादेव कृतोऽल्लिर्न तु पुनः
पानीयपानोचितो रूपा लोकनर्कानुकां प्रचलितो मूर्धा
न शान्त्या तृषः । रोमाञ्चोऽपि निरन्तरं प्रकटितः
प्रीत्या न शैत्यादपामकुण्ठो विधिरध्वगेन विहितो
वीक्ष्य प्रपापालिकाम् ॥ ४ ॥ दशं प्रपापालिकया प्रका-
शिते निवेशयन्कुम्भधिया कुचद्वये । धिचेद पान्थः
कलशान्परिच्युतां न वारिधारां मुञ्जसङ्गिनोमपि ॥ ५ ॥
पिबन्नम्भः प्रपापालीमनुरक्तं विलोकयन् । अगस्त्यं
चिन्तयामास चतुरस्सापि सागरान् ॥ ६ ॥ मध्याह्नं गमय
त्यज भ्रमजलं स्थित्वा पयः पीयतां मा शन्येति विमुञ्च
पान्थ त्रियशः शोतः प्रपामण्डपः । तामेव स्मर वस्म-
रस्मरशरवस्तां निजप्रेयसीं त्वच्चित्तं ॥ न रञ्जयन्ति

नवेली : हे कीड़ामें कुशल मित्र यात्री ! तुम्हें जो अप्पका
लगे नहीं पीना ॥ ३ ॥ हे भाई ! यदि शीघ्र घर पहुँचना
चाहो और अपनी उस प्यारीको प्रतिदिन देखना चाहो जिसकी
खोटी विधोयमें सुखी पड़ी है तो प्याऊपर बैठो हुई उस
नवेलीको बुरसे ही नमस्कार कर जो जिससे तुम सम्बुद्ध भी हो
और जिसने अपनी सुन्दर चिनवन पलाकर आँखोंके डोरोंमें धीरे-
धीरे सब यात्रियोंको बाँध लिया है ॥ ३ ॥ प्याऊवालीको
देखकर यात्रीने जो उसे प्रसन्न करनेके लिये बुरसे ही अजब
बाँध ली, वह जल पीनेकी इच्छामें नहीं वरन् उसकी सुन्दरता
देखकर ; पानी पीकर उसने जो सिर झिझाया, वह प्यासकी
शान्तिमें नहीं वरन् आश्चर्यमें पड़कर और उसके शरीरमें जो
रोंगटे उठे वे भी पानीकी शीतलतामें नहीं वरन् प्यारसे उठ खड़े
हुए ॥ ४ ॥ कोई पीसरेपर पानी पिलानेवाली अपने दोनों
स्तन उठाकर उन्हींके पास हाथ ले आकर यात्रीको पानी
पिलाने लगी, उन दोनों स्तनोंपर उस यात्रीकी दृष्टि पड़ी
गई कि उसके पाससे हाँ निकलकर मुँहमें पड़ती
हुई जलकी धाराका भी उसे भान न हुआ ॥ ५ ॥ पानी पीते
हुए किसी क्षण यात्रीने अपने ऊपर रीझी हुई प्याऊवालीको
देखते हुए अगस्त्य मुनिका ध्यान किया कि सब पानी सोख
जाओ और उस प्याऊवालीने भी समुद्रोंको स्मरण किया
कि यह धारा कभी टूटे ही नहीं ॥ ६ ॥ प्याऊवाली किसी
यात्रीसे कहती है — हे यात्री ! इस ठगले पीसरेमें खोटी देर
दुपहरी बिताकर, पसीना सुखाकर और थोड़ा उदरकर पानी

पथिक प्रायः प्रपापालिकाः ॥ ७ ॥ मध्याह्नेऽतिक्षरे
निदाघसमये तापोऽध्वनो वर्तते शीते कुञ्जगटे विवि-
त्रविटपे भोः पान्थ विधम्यताम् । एकाकी च भवा-
नहृच्च तरुणी शन्या प्रपा वर्तते लज्जेऽहं प्रवती स्वयं
च चतुरो जानासि कालोचितम् ॥ ८ ॥ यथोर्वाक्षः
पिबन्त्यभु पथिको धिरलाकुलिः । तथा प्रपापालि-
कापि धारां वितनुते तनुम् ॥ ९ ॥

मीमांसकः — आध्यात्मोद्धतदाघवकिमुद्धः कीर्णो-
ष्णरेणुकराः सन्तप्ताध्वगमुक्तखेदविषमभासोष्णसंवा-
दिनः । तृष्णात्ताजगरायतास्यकुहरक्षिप्रप्रेषोत्कटा
भ्रमङ्गैरिव तर्जयन्ति पवना दग्धस्थलीकज्जलैः ॥ १ ॥
कार्जुनी कुञ्जयन्तो निजजरठरवम्यजितावीरकोशानु-
त्पाकान्दृष्टानां पृथुसुपिरगताश्चिन्मिकाप्याह-
यन्तः । भिक्षुकाभङ्गरीणां यधिरितककुम्भं भङ्गृतं चै

पीना, क्योंकि तुम थके हुए हो । मुझे अकेली समझकर यहाँसे
हरकर भागो मत, पर हाँ, कामके तीले माँहेंते दरी हुई
अपनी उस प्यारीको मत भूलना क्योंकि मैं समझती हूँ, कि
प्रायः प्याऊवाली जियाँ तुम्हारा मन नहीं सुभा पा सकती
॥ ७ ॥ प्याऊवाली कह रही है — 'हे यात्री ! गर्मके दिन हैं,
कड़ी दुपहरीका समय है, मार्ग भी तप रहा है इसलिये
बलो, हरे-भरे पेड़ोंकी टण्की छाँहमें थकावट मिटा लो, क्योंकि
तुम भी अकेले हो, मैं भी सुवती हूँ, प्याऊ भी सूना है,
मुझे भी कुछ कहते हुए जज्जा आ रही है, तुम स्वयं समझ-
दार हो और समझते हो कि इस समय क्या करना चाहिए'
॥ ८ ॥ कोई रसिक यात्री उषो-अशो अपनी उँगलियाँ पैसाकर
प्याऊवालीकी ओर ऊपर बाँध उठाए हुए धीरे-धीरे पानी पी
रहा है त्यों-त्यों रसीली प्याऊवाली भी पानीकी धार पतली
करके देरतक उसे पानी पिलाती जा रही है ॥ ९ ॥

गर्मीके पचन : धूप करती हुई भागकी लपटोंके समान
गरम-गरम भूत चिलेरनेवाली तथा तपे हुए यात्रियोंकी दुःख-
भरी भयङ्कर गरम साँसके समान जो लू, प्यासे भजगरके लुके
हुए मुखमें घुसनेसे और भी अधिक असह्य हो उठी है वह मानो
जलकर काली पड़ी हुई भरतीरूपी काजलवाली टेढ़ी भीड़
तरेकर जोंगोंको ढँट रही है ॥ १ ॥ करजकी खताकी उलाह
हालनेवाली, अपने भयङ्कर शब्दसे भावीरकी कलियाँ खिला देने-
वाली, सुखे हुए विशाल मैदानमें पड़ी हुई धुँधकी कलियोंको
चटका देनेवाली, अपनी गूँजसे दिसाओंको बहरा कर देनेवाली,

क्षिप्तः सिञ्जानाभ्यन्तरपत्रप्रकरभक्तभक्ताराचिणो
वान्ति वाताः ॥२॥ दलितकोमलपाटलकुडमलेति जयधं-
भक्षितानुविधाधिनि । मरुति वाति विलासिभिरु-
न्मदभ्रमदलौ मदलौल्यमुपाददे ॥ ३ ॥ व्योमदयालो-
लमुक्ताफलधवलगलद्विन्दुसन्धोदगर्भान्तमोदान्भर्त्स-
यित्वा दिशिदिशि भुवने भीतिमुद्रायन्तः । एते
रक्षोभृगाक्षीगतलुलितमदलौभसरम्भरुता यानाः
पातालकुक्षिस्थितमपि सलिलं तन्मृणालस्यम् ॥४॥

ग्रीष्मपथिकाः—ग्रीष्मोष्मोपशुष्यन्पयसि वक्रभयो-
क्तास्तपाडीनभाजि प्रायः पङ्क्तमात्रं गतवति सरसि
स्वलपतोये लुडित्या । कृत्वा कृत्वा जलाद्राकृतमुरसि
जरत्कर्षटार्थं मपायां तोयं जग्ध्यापि पान्धः पथि वहति
हृहा हेति कुर्षन्पिपासुः ॥ १ ॥ आश्रयोन्कारचक्र-
मभरितघटीयन्त्रचक्रप्रमुक्तकोतःपूर्णप्रणालीपथसरणि-
शिरासारि सीत्कारि वारि । कौपं पान्धाः प्रकामं

शितमणिमुसलाकारविस्फारधारं विलिप्तजुगणमुक्ता-
कणनिकरनिभासाग्पातं पिबन्ति ॥ २ ॥ वाताकीर्ण-
विशीर्णवीर्यनृणश्चेणोभक्त्यन्कारिणि ग्रीष्मे सौष्मणि
चण्डसूर्यकिरणप्रक्याध्यमानाम्भसि । चित्तातोपित-
कामिनीमुखशशिज्योत्स्नाद्वनकान्तया मध्याह्नेऽपि सुखं
प्रयान्ति पथिकाः स्वदेशमुत्कण्ठिताः ॥ ३ ॥ सर्वाशा-
रुधि दग्धवीरुधि सदा सारङ्गवज्रकुधि ताम्रमारुहि
मन्दमुन्मथुलिहि स्वच्छन्दकुन्दद्रुहि । शुष्यन्वातसि
तप्तभूमिरजसि ज्वालायमानार्णसि ग्रीष्मे मासि
ततार्कतेजसि कथं पान्ध व्रजज्जीवसि ॥ ४ ॥

वर्षावर्णनम्—अतिशयितकदम्बोऽयं मोदकदम्बा-
निलो वहति । विषदम्बुदमेदुरितं मे दुरितं पश्य
नागतो दयितः ॥ १ ॥ अन्यन्तकामाकुलसर्वशमा
लोकस्य लक्ष्म्याघृतपूरभक्षया । पया सखि श्रावणजा
चिमिश्चा हर्षयिमिश्चा भुवमद्विज्ञोया ॥ २ ॥ अथ

भीमुरक्षी वक्रकी भंकारको आकाशमें फैला देनेवाला और
पीपलके लवणदाते हुए सूखे पत्तोंमें भन-भन करके चलनेवाली
लू वेगसे बह रही है ॥ २ ॥ गुलाबकी कोमल कलियाँ बिजा देनेवाले
तथा अपनी गारियोंकी सोंसके समान सुगन्धित और मन्द-मन्द
चलनेवाले जिस बायुकी ओर मतवाले भीर दौड़े जा रहे हैं
उसके पहले ही विलासी पुरुष मस्त हो गए ॥ ३ ॥ चञ्चल
मोतियोंके समान उजली जलकी हुई धारण किए हुए जो
बादल आकाशमें छाए हुए थे उन्हें फटकारनी हुई, संसाराके
कोने-कोनेको छरती हुई तथा गर्मीसे जिनका प्रबल मद् शान्त
हो गया है ऐसी राक्षसियोंके कोपसे मिलकर लली बनी हुई
लू इस समय पातालके जलको भी तत्काल सुखाए डाल
रही है ॥ ४ ॥

गर्मीके यात्री : जिस घोड़े जलवाले ताजापमें गर्मीकी
जलमसे पानी सूख गया है, जिसमें बगुलेके भयसे मझलियाँ
हृष-उधर भाग रही हैं और जिसमें केवल कीचड़-भर रह गया
है, उसमें जाकर पहले तो यात्री लोटकर नहाया, फिर अपने फटे-
पुराने वस्त्रका आधा भाग भित्तीकर उसने अपनी दातीपर रखवा
तथा प्याऊपर जाकर पानी पिबा फिर भी उसकी प्यास नहीं
गई और अब भी वह प्यासके मारे हाय-हाय कर रहा है ॥ १ ॥
धूम-धूमकर चीं-चीं करते हुए और चक्केके समान चलते
हुए रइटके भरे हुए घड़ेसे निकला हुआ जो कुर्छा पानी
नालियोंमें भरकर हरहराता हुआ उजले मखिके मूतलके

समान लम्बी धारामें बहता हुआ, पीसकर बिखरे हुए मोताके
चूरेके समान उजला दिखाई पड़ता है उस जलको यात्री
भरपेट पी रहे हैं ॥ २ ॥ बायुके भांकेसे बिखरे हुए खसमेंसे
बहकर भन-भन करता हुआ पानी भी जय प्रचण्ड सूर्यकी
किरणोंसे उग्रला-सा जा रहा है उस तथा हुई गर्मीका दुपहरामें
भी मनमें दसी हुई नवेलोंके सुकरुपां चन्द्रमाकी चाँदनाले
जिमकी धकाघट दूर हो रही है वे उरकाघटत यात्री सुखसे अपने
घर लौट रहे हैं ॥ ३ ॥ हे पथिक ! गर्मीके इन दिनोंमें
यात्रा करते हुए तुम कैसे जी रहे हो जब कि चारों ओर फैले
हुए और खिले हुए कुन्दके फूलोंसे घेर करनेवाले सूर्यके
प्रचण्ड तापसे सारा दिखाई वज्रद सां रहा है, लम्बा-लम्बी
जलापें जल गई हैं, हरिया काष्ठसे खाँक रहे हैं, पेड़-पौधे
कुलस रहे हैं, भँतोंकी प्रसन्नता भट्ट हो रहा है, भरने सूख
रहे हैं, धरतांकी भूल तप रही है और पानी तां हतना गरम है
मानो खोल रहा हो ॥ ४ ॥

घरसातका वर्णन : हे सखी ! देखो कदम्बकी खिलानेवाला
और मस्त कर देनेवाला घरसातका पवन यहने लगा और
आकाशमें बादल भी धिर धिरकर घाने लगे पर मेरा दुभाग्य तो
देखो कि अभीतक भी मेरे प्रियतम नहीं लौट रहे हैं ॥ १ ॥ श्रावणकी
धूप-छोह मिली वर्षा निश्चित रूपसे आनास्वी होती है जिसमें
सब स्त्रियों कामसे व्याकुल हो जाती हैं और सब लोग अपनी-
अपनी गृहव्ययियोंके हाथसे बनाए घेवर खा-खाकर मस्त

तभसि निरीक्ष्य व्यासदिक्चक्रवालं सजलजलदजालं
प्राप्तहर्षप्रकर्षः । विहितविपुलवर्हाडम्बरो नीलकण्ठो
मदसृदुकलकण्ठो नाट्यमङ्गोचकार ॥ ३ ॥ अथ मन-
सिजदिग्जयाभिर्शंसी जलधरदुन्दुभिराततान शब्दम् ।
तदनु तदनुजीविभिः कदम्बैः कचचितमुन्मदपट्पद-
च्छलेन ॥ ४ ॥ अनुययौ विविधोपलकुण्डलपुलितिता-
मकसंवलितान्शुकम् । धृतधनुर्वलयस्य पयोमुचः शव-
लिमा वलिमानमुपौ वपुः ॥ ५ ॥ अन्योन्यवारिघटितौ
घनवारिपाताद्रीनौ भृशं मृगवधमृगयूथपञ्च ।
चित्तकृतया घटनया कृतसौख्यमोहौ नैवाम्बुवाहजल-
शोकपानपीडाम् ॥ ६ ॥ अभिनवयवसथीशालिनि
धमातलेऽस्मिन्नतिशयपरभागं भेजिरे जिष्णुगोपाः ।
कुवलयशयनीये मुग्धमुग्धेक्षणाया मणय इव विमुक्ताः
कामफेलाप्रिसङ्गान् ॥ ७ ॥ अभिभवति मनः कदम्बवार्यौ
मदमधुरे च शिक्षादिनां निनादे । जन इव न धृतेभ्य-

वाल जिष्णुर्न हि महतां सुकरः समाधिभक्तः ॥ ८ ॥
अभोत्तमुच्चैर्ध्वनता पयोमुचा घनान्धकारीकृतशर्वरी-
ध्वपि । तद्विष्मभादर्शितमार्गभूमयः प्रयान्ति रागा-
दभिसारिकाः स्त्रियः ॥ ९ ॥ अभ्योदस्तमितं निशम्य
करिणां वृहेति रंजोयुतस्सद्यस्त्यक्तमहीध्रकन्दरगृहः
कौतुहली निर्गतः । एतस्मिन्क्षणे एव चण्डमश्वनेरा-
कार्यं शब्दं क्रुधा सं प्रत्युत्पतति स्वगर्जितजितं धीरो
मृगाणां पतिः ॥ १० ॥ अर्धेन जलदश्याममर्धेनातपधि-
कृतम् । अर्धनारीश्वराकारं न को मन्येत वासरम्
॥ ११ ॥ अस्थिरमनेकरागं गुणरहितं नित्यदुष्प्रापम् ।
प्रावृषि सुरेन्द्रचापं विभाव्यते शुबतिविस्तमिष ॥ १२ ॥
आकर्ण्य स्मरयौवराज्यपटहं जीमूतधीरध्वनिं मृत्य-
स्तेकिकुटुम्बकस्य वधतं मन्दां मृदङ्गक्रियाम् । उष्मी-
लम्नयनीलकन्दलदलव्याजेन रोमाञ्जिता हर्षेणैव समु-
रिधता वक्षुमती दध्ने शिलीगन्धजातम् ॥ १३ ॥ आकाशे

रहते हैं ॥ १ ॥ सावनके महीनेमें चारों ओर आकाशमें घिरे जलसे
भरे हुए बादलोंकी घटा देखकर वह मोर अत्यन्त हर्षसे अपने पङ्क-
कीलाकर कोमल मतवाली कूक कूकता हुआ नाचने लगा है
॥ २ ॥ कामदेवके द्विविजयकी घोषणा करनेवाले मेघरूपी
नगादेने जैसे ही गर्जना की वैसे ही उस शब्दके अनुसार
चलनेवाले कदम्बरूपी सैनिकोंने मैदराते हुए भीरोंके कवच
पहन लिए ॥ ३ ॥ इन्द्र-धनुषसे सजे हुए रत्न-चिरङ्गे बादलने
राजा बलिका भइङ्कार चूर-चूर करनेवाले भगवान् विष्णुके
उस शरीरकी शोभा पा ली है जिनके पीताम्बरपर रत्न-
चिरङ्गे रत्नोंसे जड़े कुण्डलकी आभा चमक रही है ॥ ४ ॥
भूसलाधार वर्षासे बरे हुए बड़े मृग और भृगी दोनों एक
छोटी-सी गुफामें अत्यन्त सटकर खड़े हुए थे और इस
करानेवाली घटनासे जिन्हें सुख और मोह प्राप्त हो गया था
उन्हें फिर बादलोंकी अलवपासे तनिक भी खेद नहीं हुआ ॥ ५ ॥
नई-नई घासकी हरिपालीसे सुहावनी खगनेवाली धरतीपर
बीरवहूटियाँ ऐसी सुन्दर जान पड़ती हैं मानो कमलके
पत्तोंके बिछौनेपर कामकीड़ाके समय किसी अत्यन्त सुन्दर
नेत्रोंवाली नवेलीके थिलरे हुए लाल मणि हों ॥ ६ ॥
कदम्बके फूलोंकी गन्धमें बसा हुआ वायु जिस समय मन
हरे ले रहा था और मधुसे मस्त भीरोंकी गुनगुनाहट चारों ओर
मस्ती भर रही थी उस समय अर्जुनका धैर्य साधारण
मनुष्योंके समान बिगा नहीं क्योंकि महापुरुषोंकी समाधि

तोड़ना कोई हँसो-उड़ा नहीं है ॥ ८ ॥ देखो, गरमते
बादलोंसे घिरी हुई इस रातकी घनी चँबियारीमें भी अपने
प्यारेके पास प्रेमसे चुक-छिपकर जानेवाली कामिनिर्षी
विजलीकी चमकके सहारे ही आगेका मार्ग ढटोछती चली जा
रही है ॥ ९ ॥ मेघोंकी गद्गदाहट सुनकर उसे हाथियोंकी
चिंगाड़ समझकर मृगोंका स्वामी लिलाड़ी सिंह, बेगसे पर्वतकी
गुफा छोड़कर निकला और फिर अपनी गर्जनासे भी बढ़कर
कड़कनेवाली विजलीकी तड़प सुनकर वह भीर सिंह कोधसे ऊपर
उछल रहा है ॥ १० ॥ एक साथ ही काळे-काळे बादल और
भूरे रत्नकी धूप बाढ़ रहेसे ये वर्षाके दिन किसे अर्धनारीश्वरके
समान नहीं जान पड़ते ॥ ११ ॥ थोड़ी देर रहनेवाला
(अस्थिर), रत्न-चिरङ्गा (बहुतोंसे प्रेम रखनेवाला), बिना
कोरीबाधा (गुणकी परख न करनेवाला) और सदा न दिलाई
देनेवाला (दुर्लभ) इन्द्रधनुष परसातके दिनोंमें नवेलीके
मनके समान जान पड़ता था ॥ १२ ॥ वर्षाके दिनोंमें बादलकी
जो गद्गदाहट कामदेवके रासधाभिषेकके समयका नगाड़ा
और नाचते हुए भीरोंके किये मृदङ्गकी गम्भीर ध्वनि
वनी हुई थी, उसे सुनकर वह धरती लिये हुए नवे
कन्दलीके पत्तोंके रूपमें रोमाञ्जित होकर हर्षसे फूटकर
कुटुरमुत्तोंके रूपमें ध्वजा धारण किए हुए थी ॥ १३ ॥ देखो !
आकाशमें ये काळी-काळी बादलकी घटाई नहीं उमड़ रही हैं,
वे तो बारूदसे भरी पिटावियाँ हैं ; उनके ऊपर वे इन्द्र-

पश्य मेमा निविडघनघटाः सम्भूताग्नेयचूर्णा मञ्जूषा
भान्ति तासामुपरि सुरधनुः केतवात्केतयोऽमी ।
विद्युन्नो नालयन्भ्रुतिमुखनिपतहीतवर्त्तिप्रकाशः
सैन्यं मारस्य मध्ये स्फुरति विमधितुं मानिनीमानदु-
गम् ॥ १४ ॥ आच्छन्ने क्षितितेजसी मनसिजव्यापार-
मेयं मनः स्वात्मा च ह्यमेतदस्ति दशमं द्रव्यं परेषां
तमः । कालाकाशदिशां निरस्तमधुना नामापि वर्षा-
गमे द्रव्यं धारि गुणश्च धारिदरवः कर्मापि धारिक्रिया
॥ १५ ॥ आयाताः सखि वर्षा वर्षादपि यासु वासतो
दीर्घः । विशि विशि नीर तरङ्गो नीरत-रङ्गो ममापि
हृदयेऽः ॥ १६ ॥ आसारेण न हर्म्यतः प्रियतमैर्यातुं
बहिः शक्यसे शीतोत्कम्पनिमिक्तमायतदशा गाढं
समालिङ्गयसे । जालैः शीकरशीतलैश्च मक्तो रम्यन्त-
लोच्छिद्यो धम्यानां घत दुर्दिनं सुदिनतां याति प्रिया-
सक्त्रमे ॥ १७ ॥ आस्वाद्य निविशेयं विरहिवधूनां

मृदूनि मांसानि । करकामिणेण मन्ये निष्ठोषति नीर-
दोऽस्थोनि ॥ १८ ॥ उत्कण्ठयति मेघानां माला वर्गं
कलापिनाम् । यूनाञ्चोत्कण्ठयत्यय मानसं मकरध्वजः
॥ १९ ॥ उत्फुल्लार्जुनसर्जवांसिनवहृत्पारस्यभ्रम्भा
निलमेङ्गलान्स्त्रलितेन्द्रनीलशकलस्निग्धाम्बुदधंणयः ।
धारासिक्तवसुन्धरासुरभयः प्राप्तास्त पचाधुना घर्मा-
म्भोविगमागमव्यतिकरार्थोवाहिनो वासराः ॥ २० ॥
उद्योगः क्षयमेति हन्त सहसा जाड्यं समुज्जृम्भते मित्र-
स्यापि च दर्शनं भवति नो किं वान्यदाचक्ष्मणे । यज्ञो-
कस्पृहणीयतां गतमभूत्तर्ज्जीवनं व्यर्थतां प्राप्तयेन दुनोति
तन्मम मनो दुर्दिवदुर्दिनम् ॥ २१ ॥ उन्निद्रकम्बलदला-
न्तरलभ्यमानगुञ्जन्मदाधमधुपे घनमेघ जाले । स्वप्नेऽपि
यः प्रवसति प्रविद्धाय कान्तां तस्मै विषाणरहिताय
नमो वृषाय ॥ २२ ॥ उपैति घनमण्डली नदति नीलक-
ण्ठावली तडिलसति सर्वतो बहति केतकीमादतः ।

धनुष नहीं बरन् पताकाएँ चमक रही हैं और यह विजयी नहीं
है, यह तो बन्दूकके छेदमें जगाई जानेवाली जलती हुई बत्तीका
प्रकाश है, इस प्रकार मैं तो संमक्ता हूँ । यह कामदेवकी
सेना है जो रुठी । नवेलियोंके मानरूपी दुर्गको ध्वस्त
कर हावनेके लिये मचल रही है ॥ १४ ॥ बरसात आ जानेपर
धरती और सूर्य दोनों ठक गए, मन और आत्मामें कामका विकार
समा गया, आकाश, समय और दिशाओंकी कांई पहचान न
बच रही, केवल दसवीं द्रव्य (अन्धकार-मात्र) तो दिखाई दे रहा
है और शेष द्रव्योंमें जल, गुलोंमें मेघका शब्द और कर्मोंमें
जलकी वृष्टि कुल हूतने ही बच रहे हैं ॥ १५ ॥ हे सखी !
बरसात आ गई, जिसमें एक-एक दिन भी एक-एक वर्षसे
बड़े लगने लगे हैं, चारों ओर जलकी जहरें ही जहरें दिखाई
दे रही हैं किन्तु मेरे प्राणनाथ तो सब रागरङ्ग छोड़कर न जाने
कहाँ बैठे हैं ॥ १६ ॥ घनी बरसातके कारण छेले अपने घरोंके
बाहर नहीं निकल रहे हैं, ठण्डकसे कौपतो हुई उनकी
नवेलियाँ कसकर उनसे छिपदी पड़ी हैं और जलकी बूँदोंसे
ठण्डाई हुई स्निग्धियोंसे होकर आता हुआ पवन उनके
सम्भोगकी यकावट रहा है । सच है, प्रियतमाओंके साथ
रहनेवाले भाग्यवानोंके लिये दुर्दिन (बरसातके दिन) भी सुदिन
ही होते हैं ॥ १७ ॥ बादलोंसे ऋतुते हुए ओले ऐसे जान
पड़ते हैं मानो बिना दौतवाले बादलोंने जो पहले वियोगिनी
धियोंका इन्दी-सहित मांस खा लिया था उसमेंसे मांस

साकर इन ओलोंके रूपमें इन्दीके टुकड़े धूँ-धूँकर फेंक
रहे हों ॥ १८ ॥ एक ओर घिरी हुई बदली तो मोरोंको
ऊपर सिर उठानेका आदेश दे रही है दूसरी ओर कामदेव
भी तरुणोंका मन नवेलियोंको पानेके लिये लालायित कर
रहा है ॥ १९ ॥ ओ, बरसातके वे दिन आ पहुँचे जिनमें
लिये हुए अर्जुन और रालकी सुगन्धमें बसे हुए पुरवैयाके
सहारे उड़ते हुए और इन्द्रनीलमणिके टुकड़ोंके समान चिकने
काले बादल ऊपर-ऊपर घूम रहे हैं, जिनमें पहली बरसातसे
सींची हुई धरतीकी सीधी-सीधी गन्ध आ रही है और जिनमें
पसीना निकलने और सूखनेसे कुछ और ही शोभा बढ़
जाती है ॥ २० ॥ वे दुर्भाग्यके समान बरसातके दिन (दुर्दिन)
हमारे मनकी दुखी किए डाल रहे हैं क्योंकि इनमें सब उद्योग
(व्यवसाय) निष्फल हो जाते हैं, एकाएक ठण्डक (सूखता)
बढ़ जाती है, मित्र (सूर्य, मित्र) के भी दर्शन नहीं होते,
और अधिक क्या कहें जिस जीवन (प्राण, जल) को सारा
संसार चाहता है वह भी व्यर्थ (निरर्थक, मैला) हो जाता
है ॥ २१ ॥ बरसातके दिन दिनोंमें लिये हुए कन्दलीके
पत्तोंके बीच बैठकर मतवाले भीरे गुनगुनाते हैं, उन दिनों जो
स्वप्नमें भी अपनी प्यारीको छोड़कर परदेश जानेकी बात
सोचता है उस बिना सींगवाले बैल (मूर्ख) को दूरसे नमस्कार
है ॥ २२ ॥ ओ ! बादल घिर आए हैं, मोर बोलने लगे हैं,
विजयी काँध रही है, चारों ओर केवड़ेमें बसा हुआ वायु

इतोऽपि यदि नागतः प्रियतमो नु मन्येऽधुना दधाति
मकरध्वजस्तुटितशिखिनीकं धनुः ॥ २३ ॥ कदम्बसर्ज-
जुनकेनकीचनं चिकम्पयैस्तन्कुसुमाधिवासितः । ससौ-
कराभोधरसङ्गशीतलः समीरणः कं न करांति सोऽसु-
कम् ॥ २४ ॥ का तारैर्मम गजिनैरुपरता धाराम्बुभिः
का हता का मोहं गमिता धियोगविधुरा का वा कद-
म्बानिलैः । मीता का च विलोलतां मदकलैः केकारवै-
र्बहिणामित्थं पान्धगृहेषु पश्यति धनो विद्युःप्रदीपैरिव
॥ २५ ॥ काव्यङ्ग्यो रङ्गपट्याऽरुणयति रमणो भूपणै-
र्भाति काश्चिद्वायव्यन्या पराऽपि प्रलसति लहरीलक्ष्म
घासो घसाना । यत्राभ्या स्नेहपूरान्वितरति च मुव-
याति दोलाभिरभ्या सा शृङ्गारद्वितीया रचयति न
मनः कस्य शृङ्गारमग्नम् ॥ २६ ॥ कामेन कामं प्रहिता
जवेन प्रावृद्ध सच्चाल त्रिजगद्विजेतुम् । किं चन्द्रबिम्बं
वधि भक्षयन्ती सन्धारयन्ती हरितः शुभाय ॥ २७ ॥

बहने लगा है, ऐसे समयमें भी यदि प्रियतम न आए तो मैं
समझ लूँगी कि कामदेवके धनुषकी डोरी टूट गई है ॥ २३ ॥
कदम्ब, सर्ज, चतुर्न घीर केनकीसे भरे हुए जङ्गलका केंपता
हुआ, उन वृक्षोंके फूलोंकी सुगन्धमें घसा हुआ और चन्द्रमार्की
किरणों तथा बादलोंका छूकर ठण्डा होकर बहनेवाला वायु
कैसे मर ! नहीं कर देता ॥ २४ ॥ वर्षा-आगुमें विजलीरूपी
दीपक लेकर बादल मानों परदेसियोंके घरोंमें यह देखता-
किरता ॥ कि मेरी घोर गर्जनासे कौन ठपकी पड़ गई, कौन
पार्श्वकी भारावोंसे भर गई, कौन विद्यांगिनी कदम्बके पवनके
भोंकोंसे मूर्च्छित हो गई तथा मदमाते मोंकोंकी झूकसे कौन
नवेली चञ्चल हो उठी ! ॥ २५ ॥ यह श्रावण शुक्ल द्वितीया
(शृङ्गार-दांघज) किस पुरुषके मनको शृङ्गार रसमें मग्न
नहीं कर देती जिसमें कोई नवेली तो मेंहदासे अपने पोंव
रेंग रही है, कोई गहने पहनकर चमक रही है, कोई लहरिया
धारीवाले वस्त्र पहनकर हडला रही है, कोई अपने स्नेहियोंको
आनन्द दे रही है और कोई झूला झूल रही है ॥ २६ ॥
कामदेवके द्वारा भेजी हुई वर्षा जब लोगों जोकोंकी जीतनेके
लिये बड़े वेगसे चलने लगी उस समय उसने शुभ शकुन
समझकर दिशाओंकी हरियालीको दूयका झुर बनाकर
हाथमें ले लिया और चन्द्रमार्की दही पी लिया ॥ २७ ॥ जिन
कामिनियोंके अङ्गोंपर भगर मिला हुआ चन्दन पुता हुआ है
और जिनके बाल फूलोंके गुच्छोंसे महक रहे हैं, वे बादलोंकी

कालागुरुप्रधुरचन्दनवर्चिताङ्ग्यः पुष्पायतंससुरभी-
कृतकेशपाशाः । श्रुत्वा ध्वनिं जलमुचां त्वरितं प्रदोषे
शय्यागृहं गुरुगृहात्प्रविशन्ति नार्यः ॥ २८ ॥ काले
नीलबलाहके सतडिति प्रीतिप्रदे बहिणामाभ्यर्थ्य कथ-
यामि वः शृणुत भो यद्वृत्तमस्मद्गृहे । सौभाग्यव्यय-
शङ्कयैकशयने कान्ताप्रियाभ्यामहो मानिभ्यां वत
रात्रिमेव सकलां जीर्णं प्रवासित्रतम् ॥ २९ ॥ किञ्चि-
न्मुद्रितपांसवः शिखिकुलैरुत्कण्ठमालोकिता जीर्णोवा-
सरुदहरिद्रगृहिणीभ्यासानिलैर्जर्जराः । एते ते निप-
तन्ति नूननयनाभ्यावृद्धभारारम्भणो विद्वद्वायोक्तवि-
प्रयुक्तयनिताघफनेन्दवो विन्दवः ॥ ३० ॥ कुवलयवत्-
नीलैकशयनेस्तोयनम्रैर्मृदुपवनविधूतैर्मन्दमन्दं चलन्निः ।
अपहृतमिव चेतस्तोयदैः सेन्द्रचापैः पथिकजनवधूनां
तद्वियोगाकुलानाम् ॥ ३१ ॥ तपां लामीकृत्य प्रसभम-
पहस्याम्यु सरितां प्रताप्योर्षी कृत्वां तदगहनमुच्छोष्य

गद्गदाहट सुनकर षट अपने चरके बड़े-बूढ़ोंके पाससे उठकर
सही-सोंक ही अपने शयन-घरमें चुप जाती है ॥ २८ ॥ हे
भाई ! आप लोग सुनिप ! वर्षाके जिन दिनोंमें काले बादलोंकी
घटा उठती है, बिजली चमकती है, और मोर हँसे नाचते हैं
उन दिनों हमारे घरमें एक पेसी बड़ी अचरज-भरी घटती
हुई कि मानवानिके घरसे एक ही बिलौनेपर पीठे एक
दूसरेसे कूटे नायक-नायिकाने सारी रात परदेसीके निपमका
पालन किया ॥ २९ ॥ नये-नये बादलोंसे पेसी चूँचें बरस रही
हैं जिन्होंने भूल तथा ही है, जिन्हें मोर बड़े नाचसे देख
रहे हैं, जो हटी घासीके तले रोती हुई किसी दरिद्र स्त्रीकी
सोंसोंसे टूट-टूटकर बिलर रही हैं, जो बरसात प्रारम्भ
कर रही हैं और जिन्होंने विद्यांगिनी नारियोंके मुखभ्र
सुरमा दिए हैं ॥ ३० ॥ कमलके पत्तोंके समान काले पानीके
ओभसे नुक जानेके कारण बहुत थोड़ी ऊँचाईपर घाए हुए
और धीमे-धीमे पवनके सहारे धीरे-धीरे चलनेवाले जिन
बादलोंमें इन्द्रधनुष निकल आया है, उन्होंने परदेशमें गए हुए
लोगोंकी उन दुखहिनोंकी सब सुध-पुध हर ली है जो अपने
प्यारोंके बिलोहमें धाकुल हुई बैठी हैं ॥ ३१ ॥ बरसानके
दिनोंमें बादलोंमें चमकती हुई बिजली पेसी जान पड़ती है
मानो बादल अपने विजलीरूपी दीपकके प्रकाशमें सूर्यको
हँवते हुए चारों ओर यह कह-कहकर जलकारते हुए घूम रहे हों
कि 'वह सूर्य कहाँ जा बिपा है जिसने रातें खोटी कर दीं,

सकलम् । कथं सम्प्रत्युक्तांशुर्गते इति तदन्वेष्टव्यपरा-
स्तडिहोपालोका दिशि दिशि चरन्ती च जलदाः ॥ ३२ ॥
गजकदम्बकमेवकमुच्चकैर्नभसि योक्ष्य नवाग्रमुदमग्नये ।
अभितसार न बलभमङ्गना न चकमे च कमकरसं
रहः ॥ ३३ ॥ गर्भोरोद्गर्जितेन त्रिभुवनविषरं व्याप्य
भूकम्पदेन प्राचीमाक्रम्य विश्वं परिपियति पयोमेदुरे
कालमेवे । इष्टा धाराकदम्बस्तयकधर्वालिताः प्रोपिते-
रुम्पयूरा मूर्च्छाश्यामायमाना यममहिषकुलाकृष्यमाणा
इवाशाः ॥ ३४ ॥ गर्जति वारिदपटले वर्षति नयनार-
विन्दमयलयाः । भुजघल्लिमूलसेके विरहलता पल्लवं
सूते ॥ ३५ ॥ गोकर्णे गाह्यमानाः पृथुनरपृथतग्राहिणः
शम्भरोघानाकर्षन्तो दिगन्तानपि च विदधन्ः कन्दलो-
सुप्रचारान् । एते धावन्ति वार्धश्रयसमुदधनुर्धारयन्तः
समन्तादापूरयन्तोऽध्रसोधिं यममिष शयनभ्रान्तिभा-
जोऽप्युवाहाः ॥ ३६ ॥ घनतरघनपून्दच्छादिते व्योम्नि
लोके सविनुरथ हिमांशोः सङ्घथैव व्यरंसीत् । रजनि-

दिवसभेदं मन्दवाताः शशंसुः कुमुदकमलयन्धानाह-
रन्तः क्रमेण ॥ ३७ ॥ घनतरघनपून्दच्छादिते व्योम्नि
लोके सविनुरथ हिमांशोः सङ्घथैव व्यरंसीत् । विरह-
मनुभवन्ती सङ्घमञ्त्रापि भर्त्रा रजनिदिवसभेदं चक्र-
वाकी शशंस ॥ ३८ ॥ घनसमयमहीभृत्पतनम्याम्यरस्य
त्रिभुवनपतिचापं गोपुरत्वं प्रपदे । अपि विरस्यचांभिः
प्रासङ्गाभिषेकाः कुकचय इव भेकाः गन्दयन्ति स्म
लोकान् ॥ ३९ ॥ घनोद्यमे गाढनमेऽन्धकारे न कोऽपि
निर्लेनुमहः शशाक । स्पृशन्मुहुः किन्तु कंठेन नाभोस-
रोजमाभीरकुलाधिनाथः ॥ ४० ॥ चञ्चलपुल्लया
त्रिचिन्तघनकृत्तिपात्रजलनेका । प्राचङ्गजकी परितः
प्रक्षालनमम्यरस्य विदधाति ॥ ४१ ॥ चन्द्रयिम्बरत्रि-
म्यतारकामण्डलानि घनमेघडम्बरैः । भलितानि जल-
क्षोदरेषु तद्गोदनध्वनिरिवैव गर्जितम् ॥ ४२ ॥ चलद्व-
लाकादशनाभिरामः परित्यज्यद्धारिमदाभ्युधारः । आह-
न्यमानस्तडिदकुशेन स्मरस्य दध्वान घनमिपेन्द्रः

जो बल-पूर्वक नदियोंका जल उठा ले गया और जिसने सारी
धरतीको तथाकर सब पैद भी सुखा दिए' ॥ ३२ ॥
सावनके महीनेमें हाथीके भुपटके समान काले-काले बादल
आकाशमें घिरे देखकर ऐसी कौन नवेला है जो अपने पलिके
पास स्वयं न चली गई हो और प्रेमके साथ एकाम्रमें उससे
रह न गई हो ॥ ३३ ॥ जिस समय पानी-भरे काले-काले
बादल धरतीको कैसा दमेवाली गर्जना करते हुए, पूर्व दिशापर
कपटकर शैलोकपमें घुसकर मानो सारे विश्वको घिरे जा रहे
थे उस समय पानीकी गिरती हुई धाराओंसे उजली-
उजली और मोरोंसे सजी हुई दिशाओंको परदेसियोंने इस
रूपमें देखा मानो एमराजके भैसे उन दिशाओंको घसीटे ले
जा रहे हों और वे मूर्च्छित हो-होकर काली पड़ रही हों
॥ ३४ ॥ बादल अभी गरजे ही थे कि नायिकाके नेत्र-
कमल बरसने लगे, आदुरूपी खताकी जड़ (कन्धा) सींची
जाने लगी और विरहरूपी खतामें पत्ते निकल आए ॥ ३५ ॥
गोकर्ण-क्षेत्रको घेरे हुए, बड़ी-बड़ी नदोंसे भरे हुए, सब ओर
जलकी वाद लानेवाले, चारों ओर कन्दलीकी हरियाली
फैलानेवाले, हन्द्रधनुषकी छाप धारण किए हुए और चारों
ओरसे आकाशको घेरकर फैले हुए बादल वनमें दौड़ते हुए
भीलोंके समान दिखाई पड़ रहे हैं ॥ ३६ ॥ बरसातके दिनोंमें
जब आकाशमें घने बादलोंकी घटा छा गई और सूर्य-चन्द्रमाकी

बरचा ही मानी रही, उस समय वायुमें बारी-बारीसे कुमुद
और कमलकी सुगन्धि सँपकर ही लोंग दिन और रातकी
पहचान कर पाते थे ॥ ३७ ॥ जब काले-काले घने बादलोंसे
आकाश घिर गया और सूर्य तथा चन्द्रमा दोनोंका कोई
ठिकाना न रहा, उस समय चकवे-चकवेके मिलने और अलग
होनेको देखकर ही रात और दिनकी पहचान होती थी
॥ ३८ ॥ बरसातरूपी राजाके आकाशरूपी नगरमें हन्द्रधनुष
ही उसका बड़ा-सा फटक जान पड़ता है और कीचड़में
दर्-दर् करते हुए मँडक मूँस कविके कविता-पाठके समान
लोगोंके कान फोड़े डाल रहे हैं ॥ ३९ ॥ घटाई घिर आनेपर
जब चारों ओर धमा धँधेरा छा जानेके कारण दिन-रातकी पहचान
असम्भव हो गई तब गोपोंके स्वामी भगवान् विष्णु अपनी
नाभिपर उठे हुए कमलको ही टटोलकर जान लेते थे कि
दिन है या रात ॥ ४० ॥ चमकती हुई बिजलीका कज्जन
पहने हुए वह बरसातरूपी धोविन बड़े-बड़े बादलरूपी चमड़ेके
खोल (मशक) से जल डाल-डालकर चारों ओरसे अम्बर
(आकाश, वरु) को धोए डाल रही है ॥ ४१ ॥ बरसातके
दिनोंमें घिरे हुए बादलोंने जो चन्द्रमा, सूर्य और तारोंको हड़प
कर लिया, वही उनके रोनेकी ध्वनि मानो इस गर्जनके
रूपमें सुनाई दे रही है ॥ ४२ ॥ वह बादल नहीं गरज
रहा है वरन् कामदेवका हाथी चिंगाड़ मार रहा है, जिसमें

॥ ४३ ॥ जलदपङ्क्तिरनर्तयदुन्मदं कलविलापि कलापि-
कदम्बकम् । कृतसमार्जनमदलमण्डलध्वनिजया
मिजया स्वनसम्पदा ॥ ४४ ॥ जलधरस्य तटे तडितो
यभुर्ग्रहगणप्रसनानि चितन्वतः । उदरमाशु विभिद्य
प्रनिर्भनारचिकरा इव काञ्चनरोचिषः ॥ ४५ ॥ जलभ-
रमप्रितानामाश्रयोऽस्माकमुच्चैरयमिति जलसेकैस्तोय-
दास्तोयनम्राः । अतिशयपरुषाभिर्ग्रीष्मवहेः शिक्षाभिः
समुपजनिततापं ह्लाश्यन्तोय विन्ध्यम् ॥ ४६ ॥ जीमूत-
मालाप्रथितैकजाला विद्युद्विशालाः स्मरमसवालाः ।
हंसप्रघर्षाः कृतलोकहर्षाः सस्तापघर्षाः सखि भ्रान्ति
घर्षाः ॥ ४७ ॥ तडितुल्कामुखा मेघाश्चवितानां वियो-
गिनाम् । उद्गमन्यस्थिरण्डानि करकाश्मच्छलादमी
॥ ४८ ॥ तडितलताशक्रधनुर्विभूषिताः पयोधरास्तोय-
भरावलिम्बिनः । स्त्रियश्च काञ्चीमणिकुरण्डलोज्ज्वला

हरन्ति चेतो युगपरप्रवासिनाम् ॥ ४९ ॥ तृणोत्करैरु-
द्गतकोमलाङ्कुरैश्चितानि नीलैर्हरिणोमुखतैः । घनाभि
वैन्ध्यानि हरन्ति मानसं विभूषितान्युद्गतपल्लवैर्दुमैः
॥ ५० ॥ तृषाकुलैश्चातकपक्षिणां कुलैः प्रयाचितास्तोय-
भरावलम्बिनः । प्रयाप्ति मन्दं बहुधारवर्षिणो घला-
हकाः श्रोत्रमनोहरस्वनाः ॥ ५१ ॥ दधति वरकुषाग्नेर-
ज्जलैर्हारयष्टिं प्रतनुसितदुकूलाम्बायतैः श्रोणिविम्बैः ।
नवजलकणसेकादुद्गतां रोमराजीं ललितवलिविभङ्गैर्म-
ध्यदेशैश्च नायैः ॥ ५२ ॥ दलितमौक्तिकचूर्णविपाण्डवः
स्फुरितनिर्भरशीकरचारवः । कुटजपुष्पपरागकणाः
स्फुटं विदधिरे दधिरेणुविडम्बनाम् ॥ ५३ ॥ दिङ्मा-
रीकवरीभरभ्रमकराः प्रावृद्धवधूटीनटीनीलोरकपटाः
प्रसूनधनुषः कार्णायसाः कङ्कटाः । अपोमोचालतमाल-
मांसलदलरयामायमाना घनाः प्रोन्मीलाम्बितसैलकञ्ज-

उड़ते हुए बगुने ही उस हाथीके सुन्दर दाँत हैं, बरसात
हुआ जल ही मदका धारा है और बिजली ही उसपर
बार-बार कलाया जाता हुआ झकुरा है ॥ ४३ ॥ बादलोंकी
जिस घटाने भलीभाँति मिले हुए सृष्टिकी ध्वनि जीत
ली है, उसने अपने गर्जनसे सुन्दर बोलनेवाले मतवाले
भोरोंको नचा दिया है ॥ ४४ ॥ बादलोंके किनारे-किनारे
चमककर तारा-मण्डप आदिको निगलती हुई-सी विजलियाँ
ऐसी जान पड़ती हैं मानो सुनहली कान्तिवाले सूर्यकी निरखें
ही बादलोंका पेट काटकर निकल आई हों ॥ ४५ ॥ गर्मीकी
आगकी अति भयङ्कर लपटोंसे कुलसे हुए विन्ध्याचलको
लपनको पानीके बोकसे कुले हुए बादल अपने उबड़े उलकी
फुहारोंसे मानो यही समझकर चुका रहे हैं कि जब इस
पानीके बोकसे लड़े घाते हैं उस समय यही ऊँचा होकर
हमें सहारा देता है ॥ ४६ ॥ हे सखी ! अब वर्षा आतुके
वे सुन्दर दिन आ गए जिनमें बादलोंकी घटाओंसे
भरा आकाश जाल-सा लग रहा है, उनमें रह-रहकर
बिजलियाँ चमकने लगी हैं, नवेलियों कामकी मस्तीसे मतवाली
हो रही हैं, हंस भाग गए हैं, संसार प्रसन्न हो उठा है
और गर्मीका सारा ताप मिट गया है ॥ ४७ ॥ बिजली और
उल्कासे भरे बादल ऐसे जान पड़ते हैं मानो उन्होंने जिन
वियोगियोंको चबा डाला है उन्हींकी हड्डियोंको ओखोंके
रूपमें उगल रहे हों ॥ ४८ ॥ एक ओर तो हन्धधनुष और
बिजलीके चमकते हुए पतके बोरोंसे सजी हुई तथा पानीके

भारसे झुकी हुई काली-काली घटाएँ और दूसरी ओर करवनी
तथा रत्न-जड़े कुण्डलोंसे सजी हुई खिरौं, दोनों ही परदेसमें
हुए लोगोंका मन एक साथ हरे ले रही हैं ॥ ४९ ॥
हरियियोंके मुँहसे फुटती हुई हरी-हरी घासों और नई-नई
कोंपलोंवाले वृक्षोंसे घाए हुए विन्ध्याचलके जङ्गल बरसातमें
किसका मन नहीं लुभा लेते ॥ ५० ॥ देखो, पानीके बोकसे नीचे
कुले हुए, भुँवधारा पानी बरसानेवाले वे बादल कामोंको
भली खगनेवाली गद्गद्गाहट करते हुए धीरे-धीरे धिरे चले
आ रहे हैं जिनसे पपोहे 'पीठ-पीठ' करके पानी मॉग
रहे हैं ॥ ५१ ॥ बरसातके दिनोंमें जब नवेलियाँ अपने बड़े-
बड़े गोल-गोल उठे हुए सुन्दर स्तनोंपर मोतियोंकी मालाएँ
और अपने भारी-भारी गोल-गोल नितम्बोंपर महीन
उज्जकी रेशमी सादियाँ पहन लेती हैं, उस समय उनके
पेटपर दिखाई पड़नेवाली सुन्दर तिहरी सिक्कड़नोंपर जब
वर्षाकी नई फुहार पड़ती है तो वहाँ के नन्हें-नन्हें रोएँ बढ
काढ़े होते हैं ॥ ५२ ॥ पैसे हुए मोतीके चूके समान उलके
तथा फुदकती हुई मङ्गलियोंसे उछाले हुए जलकी बूँदोंके
समान सुन्दर नन्हें-नन्हें कुरैयाके फूलोंके पराग पैसे दिखाई
देते वे मानो वहीके छूँटे पड़े हों ॥ ५३ ॥ तेज मिले हुए
काजल और स्वाहीके कीचड़के ढेरकी-सी कान्तिवाले बरसातके
वे बादल, जो दिशास्त्री नायिकाओंके भारी जूड़ेके समान
दिखाई पड़ते हैं ऐसे जान पड़ते हैं मानो, वर्षारूपी नाचती
हुई बहूके नीले-नीले बच्चे हों, कामदेवके काले मोहसे बने

समयोजम्यालजालत्विषः ॥५४॥ दिग्भस्त्रामुखमुच्यमा-
नपवनमेक्षुलनार्वात्तितज्ज्वालाजालजटालवैद्युतशिक्षि-
प्रद्योतमानात्मभिः । नोरन्ध्रं रसमभिर्नैरकलुषव्योमार्क-
चन्द्राम्बुहुः कालोऽयं धमतीव तोयदमहामूषालहलै-
र्विधि ॥ ५५ ॥ द्विरद्वन्तवल्लमलक्ष्यत स्फुरितभ्रङ्गमृ-
गकृषिकेतकम् । घनघनौघविघट्टनया दिवः कशशिक्षं
शशिलण्डमिव व्युतम् ॥ ५६ ॥ दिशां हाराकाराः
शमितशमभाराः शमवतामसूचीसञ्चाराः कृतमदधि-
काराश्च शिक्षिताम् । हताध्यव्यापारास्तुहिनकणसारा
विरहिलीमनःकीर्णकाराः किरति जलधारा जलधरः
॥५७॥ द्रुतसमीरचलैः क्षलक्षितव्यवहिता घटपैरिव
मञ्जरी । भवतमालनिभस्य नभस्तरोरन्त्रिरोधिररोषत
धारिदैः ॥ ५८ ॥ दृष्टादम्बरमम्यरे घनहृतं सांदाभिनी-
नर्तकीनृत्यारम्भसुदहमङ्गलरवं श्रुत्वा घ तद्गजितम् ।

पुष्पान्पुष्पभरानताङ्गलतस्सकन्धावसद्वायसक्वाणाक-
र्णसोत्सवप्रियतमं पान्था ययुर्मन्दिरम् ॥ ५९ ॥
देवे कुर्वति दुर्दिनव्यतिकरं नास्त्येव तन्मन्दिरं यत्रा-
हारगवेपणाय यदुशो नासीद्गता वायसी । किन्तु माप
न किञ्चन क्वचिदपि प्रस्थापहेनास्तथाऽप्युद्दिन्नाभ-
कचञ्चुपु ध्रमयति स्वं रिक्तचञ्चुपुटम् ॥ ६० ॥ देवं
वर्षन्त्यशनपवनव्यापृता वक्रिहेनोर्गद्गात्रे हंफलकनिविनैः
सेतुभिः पङ्कभीताः । नोध्रप्रान्तानधिरलजलान्पाणि-
भिस्ताडयित्वा शूर्पञ्चुत्रस्थगिनशिरसो योषितः सञ्च-
रन्ति ॥ ६१ ॥ धृतविसवलयवलिर्वहन्तो कुमुदवर्नक-
दुकलमासवाणः । शरदमलतलेसरोजपाणौ घनसमयेन
बधूरिवालसम्ये ॥ ६२ ॥ नन्दयति कस्य न मनश्चपलै-
र्वनधूलिधूसरच्छायेः । आक्रम्य पुत्रकैरिव मलिनांक-
तमम्यरं जलदैः ॥ ६३ ॥ नवकदम्बरजोहणितान्वरैर-

कच हीं चधवा आकाशके बड़े ऊँचे तमाल हूँके मोटे-मोटे
काले पत्ते हैं ॥५४॥ वर्षाकालके आकाशको देखकर ऐसा जान
पड़ता है मानो कालने स्वच्छ आकाश, सूर्य और चन्द्रमाको
रस (जल, धी) से जबाबदारी भरी हुई सहस्रों बादलरूपी
बबी-बबी उन कदाहूँमें डालकर स्वच्छ करनेके लिये आकाशको
धीकना प्रारम्भ किया हो जो दिशारूपी धीकनीके पवनके वेगसे
निकलती हुई बिजलीरूपी चिमनारियोंसे घिरकर धधक रही हैं
॥५५॥ हाथीके दाँतके समान उजले केबड़ेपर भीरोंका मैदराना
देखकर ऐसा लगता था मानो बादलोंके धनकेसे चन्द्रमाका
कोई टुकड़ा टूटकर अपने कलकके साथ-साथ आकाशसे गिर
पड़ा हो ॥ ५६ ॥ बादलोंसे ऐसी जलकी धारा बरस रही है
जो दिशाओंकी हार-सी लगती है, जिसने तपस्वियोंकी शान्ति
भङ्ग कर बाखी है, जिसमें सुईतक नहीं घुस पा सकती,
जिसने मोरोंको मतवाला बना दिया है, जोगोंका धाना-जाना
बन्द कर दिया है, जिसमेंसे नन्हीं-नन्हीं उरबी फुहारें छूट
रही हैं और जो वियोगिनी नारियोंके मनपर झगरे बरसा
रही है ॥ ५७ ॥ बादलोंमें लुकती-चमकती हुई बिजली हरे-
भरे तमालके समान नीले आकाशरूपी वृक्षमें ऐसी शोभा
पा रही थी मानो आँधीसे हिजली हुई राजियोंमें कभी
दिखाई देती और कभी छिपती हुई मंजरी हो ॥ ५८ ॥ अधिकने
ज्योंही आकाशमें घिरे हुए बादलोंको देखकर उसमें बिजली-
रूपी नर्तकीके नाचके प्रारम्भमें धजनेवाले सुदहकी मङ्गलध्वनिके
समान उसका गर्जन सुना त्योंही ज्योंमें सिले हुए फूलोंके

भारसे झुके हुए पेड़पर बैठे हुए कीपकी कोंव-कोंवले गूँजले हुए
अपने उस प्यारे घरमें जा पहुँचा जहाँ उसकी परती उसे बुलानेके
जिधे कीपोंको यक़ि दे रही थी ॥ ५९ ॥ बादलोंसे घिरे हुए
बरसातके दिनोंमें ऐसा एक भी घर न बचा जहाँ कौबी जुगा
हुँदने न पहुँची हो किन्तु उसे कहींपर भी इतना-तक न मिल
पाया जिसे साकर वह नींदभर सो रहे, फिर भी अब उसके वक्ष
ऊपर उठा-उठाकर अपनी चोंच फैलाते हैं तो वह अपनी राँती
चोंच ही उनकी चोंचोंमें काँधकर उड़ें फुसलाती रहती है ॥ ६० ॥
पानी बरसते समय छियाँ रसोईके लिये इतनी उतावली थीं
कि सुप्परकी धोरीसे गिरते हुए जलको हाथसे बचाती हुई,
सिरपर छप रसकर कीचड़के डरसे काँठके पट्टेपरसे चलती हुई
आग लेनेके लिये एक घरसे दूसरे घर जा रही थीं ॥ ६१ ॥
शरदरूपी जो नायिका कमलनालका कलन और कुमुदकी
साथी पहने हुए थी, उस नीली कटसरैयाके फूलके रूपमें
बाण लोंसी हुई दुलहिनका कमलरूपी हाथ वर्षा-रूपी छैलेने
पकड़कर उसके साथ विवाह कर लिया ॥ ६२ ॥ जैसे भूल सने
हुए बच्चोंसे मैले किए हुए वस्त्र देखकर सबका जी खिल
उठता है वैसे ही भूलके समान भटमैले काले बादलोंसे घिरे
हुए आकाशको देखकर किसका मन हर्षसे नहीं नाच उठता
॥ ६३ ॥ कदम्बके नये-नये फूलोंके परागसे आकाशको लाल
कर देनेवाले तथा कुकरमुलेकी गन्धसे भरे हुए वनके धायुने
कामियोंके मनमें छियोंके प्रति नया-नया प्रेम उपजा दिया
॥ ६४ ॥ वर्षाके नये-नये सलकी फुहारोंसे उरका बना हुआ

धिपुरन्धि शिलीन्धसुगन्धिभिः । मनसि रागवताम-
नुरागिता नवनवा वनवायुभिरादधे ॥ ६४ ॥ नवजल-
कणसङ्काच्छीततामादधानः कुसुमभरनतानां लासकः
पादपानाम् । जनितरुचिरगन्धः केतकीनां रजोभिः
परिहरति नभस्वान्प्रोषितानां मनांसि ॥ ६५ ॥ नवपयः-
कणकोमलमालतीकुसुमसन्ततिसन्ततसङ्गिभिः । प्रच-
लितोदुनिभैः परिपाण्डिमा शुभरजोभरजोऽलिभिरादधे
॥ ६६ ॥ निजरजः पटवासमिधाकिरद् धृतपटोपमवारि-
मुखां दिशाम् । म्रियवियुक्त्वधूजनचेतसामनवनी नव-
नीपवनावलिः ॥ ६७ ॥ नितान्तनीलोत्पलपत्रकान्तिभिः
कर्वाचरप्रभिष्ठाजमराशिसाभ्रभिः । कर्वाचरसगर्भप्रम-
दास्तनप्रभैः समाचितं व्योमयनैः समन्ततः ॥ ६८ ॥
निद्रितस्य वत शम्भरद्विपो जागराय किमु वारिवा-
हकः । ऊर्जितं दधदतीव गर्जितं सम्भ्रमभ्रभसि सम्भ्र-
माघर्या ॥ ६९ ॥ निपातयन्त्यः परितस्तदनुमानप्रवृज-
वेगैः सलिलैरनिर्मलैः । स्त्रियः सुदुष्टा इव जातविभ्रमाः

पवन फूलोंके मोमसे झुके हुए पेड़ोंको मचा रहा है, केतकीके
फूलोंका पराग लेकर चारों ओर मन-भावनी सुगन्ध फैला रहा
है और परदेस गए हुए प्रेमियोंके मन चुराए ले रहा है ॥ ६४ ॥
नये-नये जलकी बूँदें पड़नेसे जो मालतीके फूल लिल गए हैं,
उनपर बैठे हुए और परागसे ढलने होकर उड़ते हुए ऐसे
जान पड़ते हैं मानो तारोंके मुण्ड उड़े चले जा रहे हों ॥ ६५ ॥
वियोगिनी नवेलियोंका मन मकभोर देनेवाले फूलोंके
शुशोभे बादलरूपी साही पढ़नी हुई दिशाओंपर पटवास
(कपड़ोंको सुगन्धित करनेवाले थूका) के समान अपना पराग
छिड़क दिया ॥ ६६ ॥ कहीं तो अत्यन्त नीले कमलकी
पङ्कड़ी जैसे नीले, कहीं गर्भियोंके स्तनोंके समान पीले
और कहीं झुटे हुए अजिबकी पिरहीके समान काले-काले
बादल आकाशमें हथर-ठथर फैल रहे हैं ॥ ६७ ॥ गद्गदाइत
मन्त्राता और आकाशमें चक्कर लगाता हुआ बादल क्या
सोए हुए कामदेवको जगानेके लिये एकएक आ धमका
है ॥ ६८ ॥ जैसे कुलटा स्त्रियों प्रेममें अन्धी होकर बिना
साँचे-बिचारे अपनेको खो बैठती हैं वैसे ही ये नदियाँ
भी अपने मटमैले पानीकी नादसे जहाँ-तहाँ तीरके घुँघोंको
उड़ाती हुई वेगसे समुद्रकी ओर दौड़ी चली जा रही
हैं ॥ ६९ ॥ बादलका गर्जन ऐसा जान पड़ता है मानो
बादलने अपनी बिजलीरूपी आँखोंसे रातको अभिसारिकाओंका

प्रयान्ति नद्यस्त्वरितं पयोनिधिम् ॥ ७० ॥ मिरीच्य
विद्युन्नयनैः पयोदो मुखं निशायामभिसारिकायाः ।
धारानिपातैः सङ्गं किं नु वान्तध्वन्द्रोऽयमिदमार्ततरं
ररास ॥ ७१ ॥ नृपतेरहो महोभिः मायः पीतामि
नाकनोराणि । नो चेन्मज्जल जलदाः प्रागिव वर्षासु
किं नु वर्षन्ति ॥ ७२ ॥ नेमाः सीमन्तिन्यः सोदामिन्यः
पयोदमालायाः । निर्गत्य सौधलया विलसन्ति महे
नभस्तृतीयायाः ॥ ७३ ॥ नैतद्वारिद्वर्जितं रतिपति-
प्रस्थानदकारवो नैते वारिधराः खनमज्जलास्तस्ति-
न्धुराः प्रोद्धराः । नैवा विद्युदियं विभाति रुचिरा
तन्ध्वहासप्रभा मन्ये मानिनि मानदुर्गमधुना जेतुं
किमायात्यसां ॥ ७४ ॥ पञ्चोर्जयघोषणा गुणनि-
धिर्ध्रुवलोकाचिच्छातधिर्दूर्य ताण्डवसम्बिधासु
शिखिनां हंसप्रवासानकः । सृतिस्वस्त्ययनं विहरषष्ठ-
धारलाङ्कुरायामयं गम्भीरस्तमितध्वनिर्जलमुखां रोदो-
युहं गाहते ॥ ७५ ॥ पटलमम्बुमुखां पथिकाङ्गना सपदि

मुख देलकर और समझकर कि जलधाराके साथ-साथ अग्नि
ही धरतीपर गिर गया है, अत्यन्त दुःखके साथ चित्का-
चिच्छाकर रोमा प्रारम्भ कर दिया हो ॥ ७० ॥ हमारे महाराजके
तेजसे ही आकाशका जल सूख गया है, नहीं तो तुम्हीं
बताओ, आजकल बरसातमें पड़ले जैसा पानी क्यों नहीं
बरसता ॥ ७१ ॥ मिन्हें तुम बादलोंकी बिजली समझ रहे हैं
ये वास्तवमें वे सुहागिन नवेलियाँ हैं जो आरव्य शुकल तृतीया
(सिंगार-तीज) के उत्सवमें निकल-निकलकर अपनी-अपनी
बत्तोंपर खड़ी ईगोखियाँ कर रही हैं ॥ ७२ ॥ यह बादलोंकी
गद्गदाइत नहीं है बल्कि कामदेवकी यात्राके गगादेकी ठम-ठम
है, ये बादल भी नहीं हैं बल्कि मद बरसाते हुए नये-नये हाथी
हैं और यह बिजली भी नहीं है बल्कि सुन्दर तलवारोंकी चमक
है अतः हे रुदनेवाली ! कहीं तुम्हारे मानकी दुर्गको जीतनेके
लिये कामदेवने बढ़ाई तो नहीं कर दी है ॥ ७३ ॥ आकाश-
पालाखको रँधिए ढालनेवाले बादलोंकी प्रचण्ड गद्गदाइत ऐसी
जान पड़ती है मानो कामदेवके जीतकी झुग्री हो, सद्गुणोंसे भरा
होनेके कारण तीनों ओरोंमें रहनेवाले प्राणियोंके चित्का अतिथि
हो, मोरोंका ताण्डव नृत्य प्रारम्भ करानेवाली तुरही हो, हंसोंको
भगानेका गगादा हो तथा पृथ्वीपर वैदूर्य मणि जैसे इरे-इरे
अकुरकपी तलोंके जन्म समरका स्वस्ति-वाचन हो ॥ ७४ ॥
अपनी सखियोंकी ढकढवाई हुई आँखें देखनेसे चकराकर जब

जीवितसंशयमेष्यती । सनयनाम्बुसजीवनसम्भ्रमाद्वि-
धुरयन्धुरवन्धुरमैक्षत ॥७६॥ पतत्यविरतं वारि नृत्यन्ति
च कलापिनः । अद्य कान्तः कृतान्तो वा दुःखस्यान्तं
करिष्यति ॥ ७७ ॥ पयोधरैर्भोगभीरनिस्वनेस्तडिङ्गि-
रुद्वेजितचेतसो भृशम् । कृतापाग्धानपि योषितः
प्रियाम्परिष्वजन्ते शयने निरन्तरम् ॥ ७८ ॥ परिसुर-
पतिसुनुधाम सद्यः समुपदधन्मुकुलानि मालतीनाम् ।
विरलमपजहार वक्ष्यिन्दुः सरजसतामवनेरपां निपातः
॥ ७९ ॥ पापं केऽपि जगुर्निदाममनिलं प्रादुः परे नैर्ऋतं
नक्षत्रं कतिचिज्जलपुरितरे दुर्देवमूर्खुर्नृणाम् । यत्तु
प्रादृषि वैपरोत्यमधुना लोके समुद्भूयते तत्सुप्ते जग-
दोम्भरे जलमुचामन्याय उक्षीयते ॥ ८० ॥ प्रणयकोपभृ-
तोऽपि पराङ्मुखाः सपदि वारिधरारवभीरवः । प्रल-
यिनः परिरम्धुमधाङ्गना वर्षालिरे यल्लिरेचितमध्यमाः
॥ ८१ ॥ प्रतिदिशमभिमच्छताभिनृष्टः ककुभषिकास-
सृगन्धिनानिलेन । नव इष विषभौ स चित्तजन्मा गत-

घृतिराकुलितश्च जीवलोकः ॥ ८२ ॥ प्रभिन्नधैर्य-
र्यनिभैस्तृणाङ्कुरैः समाचिना मोन्धितकन्दलीदलैः ।
विभानि शुक्लेतररत्नभूषिता वगाङ्गेन च चित्तिरिन्दु-
गोपकैः ॥ ८३ ॥ प्रौढमौक्तिकरुचः पयोमुखां विन्दयः
कुटजपुष्पवन्धवः । विद्युतां नभसि नाट्यमगडले
कुर्वते स्म कुसुमाञ्जलिश्रियम् ॥ ८४ ॥ बहुगुण-
मणीयः कामिनीचित्तहारी तरुविटपलतानां बान्धवो
निर्विकारः । जलदसमय पप प्राणिनां प्राण-
भूतो दिशतु तय द्वितानि प्रायशो वाञ्छितानि-
॥ ८५ ॥ मन्दं मुद्रितपांसवः परिपतन्मङ्गलानिभ्रम-
मरुद्वेगध्वस्तकुटीरकाग्रनिपतच्छिद्रेषु लब्धान्तराः ।
कर्मदयप्रकुटुम्बिनीकुचभरस्वेदच्छिदः प्रादृषः प्रारम्भे
मदयन्ति कन्दलदलोल्लासाः पयोविन्दयः ॥ ८६ ॥ मलिन-
हुतभुग्भूमश्यामदिशो मलिना घनैरविरलतृणश्यामा
भूमिर्नवोद्गतकन्दलैः । स्रुतसुभगो नूनं कालः स एव
समागतो मरणशरणा यस्मिन्नेते भवन्ति धियोमिनः

उसने दुखी होकर बादलोंकी ओर देखा तो उस वियोगिनीका
जीवन तत्काश सङ्कटमें पड़ गया ॥७६॥ ऐसे बरसातके दिनोंमें
जब धुआँधार पानी बरस रहा है और मॉर भाष रहे हैं तब
या तो पति ही मेरा दुःख हर्गेंगे या यमराज ही ॥ ७७ ॥
बादलोंकी भयङ्कर गद्गद्वाहट और बिजलीकी तड़पनसे चीकी
हुई स्त्रियाँ सोते समय अपने अपराधी पतियोंसे भी छिपट
ही जाती हैं ॥ ७८ ॥ माछतीकी बेलमें कलियाँ खिलाते हुए
और आकाशमें चारों ओरसे बूँदें बरसाते हुए पानोंमें धरतीपर
उबसी हुई सारी धूल भरपट दबा डाली है ॥ ७९ ॥
बरसातके दिनोंमें आँखी, पानी, बबलडर आदि जो दिखाई
पड़ते हैं उसका शोष पवनको, राक्षस नैऋतको, नक्षत्रको तथा
मनुष्योंके दुर्भाग्यको लोग देते हैं किन्तु सच तो यह है कि
जगदीश्वर भगवान् बिम्बुके सोप रहनेके कारण ही बादल वह
सब उत्पन्न करनेपर उतारू होते हैं ॥ ८० ॥ स्त्रियाँ अपने
प्रियतमोंसे रुठकर क्रोधमें भरी, मुख चरे बैठी थीं कि इतनेमें
अचानक बादलकी गद्गद्वाहट सुनकर वे ऐसी डर गईं कि
उन्होंने जो अपनी कमर घुमाई उससे उनके पेटकी सिक्कड़न
मिट गई और वे अपने प्रियतमोंसे छिपट जानेके लिये
मचल उठीं ॥ ८१ ॥ चारों ओर पहाड़ी चमेरीके फूलोंको
धू-धूकर जो सुगन्धित वायु बह रहा था उसका स्पर्श पाकर
कामदेव कुछ ऐसा गया-सा हो गया कि संसारके सभी प्राणी

सहसा घबरा उठे ॥ ८२ ॥ द्वितराई हुई वैदूर्य मणिके
समान हरी घासके कोमल चूँकुओंमें भरी हुई, ऊपर निकले
हुए कन्दलीके पत्तोंसे रेंगी हुई और पारवहृदियोंसे छाई हुई
धरती उस नयेजी ऐसी दिखाई दे रही है जो उजले रत्नके
चित्रित शय्य सभी रत्नोंके रत्नोंवाले आभूषणोंसे सजी हुई हो
॥ ८३ ॥ बड़े-बड़े मोतियोंके दानों तथा कुटजके फूलोंके समान
दिखाई देनेवाली चमकीली बादलोंकी बूँदें ऐसी जान पड़ती
थी मानों आकाश-रूपी रत्नमञ्चपर बिजली-रूपी नदियोंमें
पुष्पाञ्जलियाँ छुड़ी हों ॥ ८४ ॥ अपने अनेक सुन्दर गुणोंके
कारण सुहावनी लगनेवाली, स्त्रियोंका जी चुरानेवाली, पेड़ोंकी
टहनियों और बेलोंकी सच्ची सखी तथा सभी जीवोंका प्राण
बनी हुई वह वषांजगु आपके मनको सब साधें पूरी करे ॥ ८५ ॥
बरसातके प्रारम्भमें उड़नेवाली धूल बैठती हुई, हरहराते हुए
बरसाती पवनके वेगसे टूटी हुई मर्दवाके चेहोंसे टपकती हुई,
सम्भोगमें मग्न स्त्रियोंके स्तनोंका पसीना सुखाती हुई और
कन्दलीके पत्तोंको खिलाती हुई जलकी बूँदें बरस रही हैं
॥ ८६ ॥ धुँधुआती हुई आगके धुँपेंके समान काले-काले बादलोंसे
सारी दिशाएँ घिर गई हैं, घनी घासकी हरियालीसे धरती
हरी हो उठी है और उसमें नये-नये गड्ढर निकल रहे हैं अतः
सम्भोगके लिये निश्चित ही यह जगु बड़ी सुहावनी है । ऐसे
समय भी जो अपनी प्यारीसे बिछुड़े रहते हैं उनके लिये

॥ ८७ ॥ महीमण्डलोमण्डपीभूतपाथोधरारण्यदुर्वासु
वर्षासु सद्यः । कदम्बे प्रसूनं प्रसूने मरन्दो मरन्दे मिलिन्दो
मिलिन्दे मदोऽभूत् ॥ ८८ ॥ मालाः कदम्बनवकेसर-
केतकीभिरायोजिताः शिरसि विभ्रति योपितोऽथ ।
कर्णान्तरेषु ककुभद्रुममञ्जरीभिरिच्छानुकूलचित्तानव-
संसर्काश्च ॥ ८९ ॥ मुकुलितमतिशय्य यन्धुजीवं धृतज-
लमिन्दुषु शाद्वलस्थलीषु । अधिरत्नवपुषः सुरेन्द्रगोपा
धिकचपलाशव्यधियं समीयुः ॥ ९० ॥ मुदित इव कद-
म्बैर्जातपुष्पैः समन्तारपवनचलितशाकैः शास्त्रिभिर्नृम्य
तीव्र । हस्तिमिव विधत्ते सूचिभिः केतकीनां नवसलि-
लमिपकाच्छिन्नतापो वनान्तः ॥ ९१ ॥ मेघकृष्णजिनधरा
धारायज्ञोपधीतिनः । मारुतापूरितगुहाः प्राधीता इव
पर्वताः ॥ ९२ ॥ मेघाटोपैः स्तनितसुभगं धीव्य खं
हस्तिदन्तैः कृष्ण भिस्तीनुपरिसदनं कामरैरुखाद-
यित्या । कर्पूरैस्ता सुगमदरसैर्भूमिमालिष्य शेते सैन्धे

मरना जोड़कर और रह गया जाता है ॥ ८७ ॥ जिस वर्षा में
धरती के चूँचों के बने हुए बादल मरती से मूमते दिखाई देते हैं,
उसके कारण कदम्ब के फूल में फूल, फूलों में रस, रस पर भीरा और
भीरे में मरती अट या समाई है ॥ ८८ ॥ इन दिनों नई केशर,
केतकी और कदम्ब के नये फूलों की मालाई गुँथकर कर्णों
अपने शूँच सँवारती हैं और ककुभ के फूलों के मगचाई वज्र से
बनाए हुए कर्णफूल अपने कानों में पहनती हैं ॥ ८९ ॥
हुपहरिया के फूलों की कलियों से भी अधिक छाक तथा जल की
चूँचों से छाई हुई हरी घासवाली धरती पर धनी बिछी हुई-सी
और-बहूटियों ऐसी दिखाई पड़ रही थी मानो पलास के फूल
खिले हुए हों ॥ ९० ॥ वन में चारों ओर खिले हुए कदम्ब के
फूल ऐसे खग रहे हैं मानो वर्षा के नये जल से गर्मा दूर हो जाने के
कारण जल्लल मगन हो उठा हो, पवन से मूमती हुई शाखाएँ
ऐसी लगती हैं मानो पूरा जल्लल हाथ मटका-मटकाकर नाच
रहा हो और केतकी की उजली कलियाँ ऐसी लगती हैं मानो
सारा जल्लल खिल-खिलाकर हँस रहा हो ॥ ९१ ॥ काले बादलों के
काले मृगचर्म धारण किए हुए, पानी की धाररूपी जनेऊ पहने
हुए तथा गुफाओं में भरे पवन से प्राणायाम करते-से वे पर्वत
महाचारियों के समान दिखाई दे रहे हैं ॥ ९२ ॥ गिरे हुए
बादलों की गड़गड़ाहट से सुहावने दिखाई पड़नेवाले आकाश को
देखते ही कोई जल्लली भील हाथी-दोंतों की धूनी गाँवकर, ऊपर
पंख से छाँडकर, कपूर और कस्तूरी से धरती जीपकर और

चर्मशयुरसि दयिताबाहुकटः पुलिन्दः ॥ ९३ ॥ या
कामिनी सा यदि मानिनी स्यात्समरस्य राहो ह्यपरा-
धिनी स्यात् । इतीव दण्डैः किमु ताड्यतेऽसौ काद-
म्बिनी कामनृपस्य दक्षा ॥ ९४ ॥ यो गात्रापरमध्यमं
निविशते मेघाम्बुधाराभयाघ्रातुं पोतमवञ्चलैव करिणी
तं वत्सला भ्राम्यति । तत्कुम्भस्थलपातिनं परिहरन्ना-
सारमम्भोजिनीपत्रच्छत्रमुदस्य गर्जति मुहुः कुप्यन्
घनेभ्यो गजः ॥ ९५ ॥ रटतु जलधरः पतन्तु धाराः
स्फुरतु तडिन्मरुतोऽपि धाम्नु शीताः । इयमुरसि महौ-
षधीष कान्ता निखिलभयप्रतिघातिनी स्थिता मे
॥ ९६ ॥ वज्रेण विजगत्पतेर्धूलिपोरच्छिन्नपक्षाः पुरा
ये भीता निममज्जुरग्निधजठरे ताल्लूनपक्षान्गिरीन् ।
आश्यास्य मण्डुःखजां शमयितुं तेषामुदग्रव्ययामुक्ष-
स्थुर्जलवच्छलेन जलधेरुष्णैः स्मरसः पर्वतारः ॥ ९७ ॥
वनविपानां मवचारिदृश्चनैर्मदान्यतानां धवनतां मुहु-

सिंह की खाक बिछाकर अपनी नवेली की नई अपनी छाती पर
रखकर बड़ी मरती से पीद ले रहा है ॥ ९३ ॥ ये गरजते हुए बादल
व्या विजज्जोरूपी दण्ड से महाराज कामदेव का गगादा बजा-
वजाकर वही बोधवा कर रहे हैं कि इन दिनों जो कामिनी मरती
है वह राजा कामदेव का बड़ा अपराध करती है इसलिये
देखे समय किसीको नहीं रुटना चाहिए ॥ ९४ ॥ मूसलाधार
वर्षा से बचने के लिये हाथी का पंखा हथिनी की देह में घुसा जा
रहा है और हथिनी भी स्थिर होकर प्यार से उसे दुबकाए ले रही
है, फिर भी उसके मस्तक पर पड़ती हुई जलधारा को रोकने का
प्रयत्न करता हुआ हाथी उसे छाता ओढ़ाने के लिये कमजिनी का
पत्ता तोड़ता है और उन बादलों पर क्रोध करके बार-बार
चिन्घाड़ता है ॥ ९५ ॥ भले ही बादल गरजें, मूसलाधार
पानी बरसे, बिजली तड़पे और ठण्डा वायु भी चले, पर
जबतक सब प्रकार का भय दूर करनेवाली सुन्दर औपमिके
समान मेरी प्यारी मेरी छाती से जगी हुई है तबतक मुझे
किसी की चिन्ता नहीं है ॥ ९६ ॥ त्रिभुवन के स्वामी इन्द्र के
वज्र से जिनके पङ्क नहीं कट पाए थे और जो इन्द्र के डर से
समुद्र में जा छिपे थे वे पर्वत, बाहर पड़े हुए पङ्क के पर्वतों को
खाँस रूथाने के लिये और उनके पावकी कसक मिटाने के लिये
ही मानो समुद्र के जल से बादलों के रूप में निकल-निकलकर उठे
आ रहे हैं ॥ ९७ ॥ नये-नये बादलों के गरजने से जब जल्लली
हाथी मस्त हो जाते हैं और उनके माथे से बहते मवप और

सुन्दः । कपोलदेशा विमलोत्पलप्रभाः सभृङ्गयूयैर्मदवा-
रिभिश्चिताः ॥ ६८ ॥ वर्षासु जाता मय्यायनधीराशा-
घधूः प्रौढपयोधराभूत् । पुष्पोद्गमोऽजायत माल-
तीनां बभूवुरस्पृश्यतमास्तटिन्यः ॥ ६९ ॥ घला-
हकाश्वाशनिशब्दमर्दलाः सुरेन्द्रचापं दधतस्तडिदु-
णम् । सुतोष्णधारापतनीप्रसायकैस्तुदन्ति चेतः
प्रसभं प्रवासिनाम् ॥ १०० ॥ वसन्तधिरलेपम-
पारयन्त्या भुवो निदाघस्मरतापशान्त्यै । आशावय-
स्याभिरुवाङ्घ्रियन्ते पयोदनीलोत्पलपञ्चयानि ॥ १०१ ॥
वहन्ति वर्षन्ति नदन्ति भ्रान्ति व्यथयन्ति नृत्यन्ति
समाश्रयन्ति । मद्यो घना मत्तगजा वनान्ताः प्रियावि-
होमाः शिक्षिनः प्लवङ्गाः ॥ १०२ ॥ विगतरागगुणोऽपि
जनो न कञ्चलति याति पयोदनमस्थति । अभिहि-
तेऽस्तिभिरेवमिवोच्चकेरननृते ननृते नचपल्लवैः ॥ १०३ ॥
विद्युत्पङ्कजपण्डपपटली ज्योमस्थलीशाङ्गलः केदारः

कलमाङ्कुरप्रतिभुषां धारातलानामयम् । शैवालाचलिर-
द्रिमृभि सरितां सूर्येन्दुकागार्द्वं कन्दपोत्सववैजयन्ति
भवतु प्रीत्यै तवाम्भोधरः ॥ १०४ ॥ विपत्रपुष्पां नलिनीं
समुत्सुका विहाय भृङ्गाः श्रुतिहारिनिस्वनाः । पतन्ति
मूढाः शिक्षिनां प्रनृत्यतां कलापचक्रेषु नवोत्पलाशया
॥ १०५ ॥ विपाण्डुरं कीटरजस्तृणान्वितं भुजङ्गवद्वक्त्र-
गतिप्रसङ्गितम् । ससाध्वसैर्भक्तकुलैर्निरीक्षितं प्रयाति
निस्त्राभिमुखं नवोदकम् ॥ १०६ ॥ विलोचनंन्दीधरवा-
रिचिन्दुभिर्निपिकविश्वधरचारुपल्लवाः । निरस्तमा-
ल्याभरणानुलेपनाः स्थिता निराशाः प्रमदाः प्रवासि-
नाम् ॥ १०७ ॥ विलोलनेत्रोत्पलशोभिताननैर्मृगैः सम-
न्तादुपजातसाध्यसैः । समाचिता सैकतिनी वनस्थली
समुत्सुकत्वं प्रकरोति चेतसः ॥ १०८ ॥ व्यथितमपि
भृशं मनो हरन्ती परिणतजम्बुकलोपभोगदृष्टा । पर-
सुतयुवतिः स्वनं धितेने नवनवयांजितकण्ठरागरम्यम्

आकर लिपट जाते हैं उस समय उन हाथियोंके आये सुन्दर
स्वरूप नीले कमलों जैसे दिखाई देने लगते हैं ॥ ६८ ॥ वर्षामें
विराल पयोधरों (बावलों, स्तनों) वाली दिशाक्षी नायिकामें
नई जवानों का गई, मालतीकी बेझमे पुष्प (पूज, कृतधर्म)
दिखाई देने लगा और नदियाँ अरवूरया (गैदकी,
रजस्वला) हो गई ॥ ६९ ॥ सृष्टिके समान गवगडाते हुए
और बिजलीकी डोरीवाला इन्द्रधनुष बढ़ाए हुए वे बादल
कपनी देने आए बरसा-बरसाकर परदेशमें पहुँचे हुए लोगोंका
मन कसमसा रहे हैं ॥ १०० ॥ वसन्तरूपी नायकका विज्ञोह
न सह सकनेके कारण भरती गर्मीरूपी कामसे तप गई थी
इसीलिये उसकी तपन बुझानेके लिये दिशाक्षी सखियाँ
मानो उसे बादलरूपी नीलकमलके पत्ते दे रही हैं ॥ १०१ ॥
बरसातमें नदियाँ मस्तीसे बहती हैं, बादल बरसते हैं, मतवाले
हाथी चिन्धाहते हैं, जङ्गल हरे-भरे हो जाते हैं, अपने प्यारोंसे
बिछुड़ी हुई नरैलियाँ रोती-कलपती हैं, भोर नाचते हैं और
बन्दर चुप मारकर गुफाओंमें जा बैठते हैं ॥ १०२ ॥ जब
भीरे ऊँचे स्वर्से गुनगुनाकर यह घोषणा करने लगे कि
'बरसाती पवन चलनेपर किस विरक्त मनुष्यका मन नहीं
दिग जाता !' तब नये पत्ते भी भूम-भूमकर नाच उठे ॥ १०३ ॥
हे कामदेवके उत्सवकी पताका (सर्वाङ्ग-सुन्दरी) ! बिजली-
रूपी कमलको उत्पन्न करनेवाले कीचड़का डेर, आकाशरूपी
प्यारीकी हरिपाली, धानसे खहलहाते हुए धरतीके लेतका

जोड़ीदार, पहाड़की चोटीपर बहनेवाली नदियोंपर झाई हुई
लेवार और चन्द्र-सूर्यको बन्दी रखनेवाला कारागार बना हुआ
यह बरसातका बादल तुम्हारे मगमें मस्ती भरे ॥ १०४ ॥
कानोंको सुहाबेवाली मीठी तानें भरकर गूँजते हुए भीरे उस
कमलको छोटकर चले जा रहे हैं जिसके पत्ते और कूल झड़
गए हैं और इस इन्द्रवदीमें भूलसे वे नाचते हुए मोंरोंके
कुले पल्लोंकी नये कमल समझकर उम्हींपर टूटे पड़ रहे हैं
॥ १०५ ॥ छोंटे-छोंटे कीड़े, भूलके कण और घास बढ़ाता
हुआ मटमैका बरसाती पानी जो देवा-मेवा धूमता हुआ
हरकले बहा जा रहा है उसे सोंप समझकर बेचारे मेंढक
डरे जा रहे हैं ॥ १०६ ॥ परदेशमें गए हुए लोगोंकी
खियाँ अपने बिम्बाके फल-जैसेलाल और नई कोंपलों जैसे
कोमल ओठोंपर अपने कमल-जैसे नेत्रोंसे आँखें बरसाती
हुई माझा, आभूषण, लेख, कुलेख, उबटन आदि सब
कुछ छोड़कर गाँवोंपर हाथ भरे बैठी हैं ॥ १०७ ॥
कमलके समान सुहावनी चञ्चल आँखोंसे सजे सुन्दर मुखवाला
तथा डरे हुए हरिणोंसे भरा हुआ रेतोला जङ्गल मनको बरबस
सींचे खे रहा है ॥ १०८ ॥ पके हुए जामुनके फल खाकर
मस्त कोकिल अपने गलेमें नया राग भर-भरकर गूँजता हुआ
विद्योतिषोंके दुस्ती मनको भी अपनी ओर सींचे खे रहा है
॥ १०९ ॥ वर्षा ऋतुमें इन्द्र-नीलमणिके टुकड़ोंकी-सी कान्ति-
वाले तथा बिजली चमकाते हुए बड़े-बड़े बने मेघोंसे और

॥ १०६ ॥ व्याप्तं भिक्षेन्द्रनीलद्युतिभिरिव धनैर्मेषजालै-
विशालैर्यद्विद्युद्विलासैः सुरधनुरनुगैर्व्याम वेल्लङ्ग-
लाकैः । उर्वीं शुर्वीं शिलीन्द्रार्जुनकुटजटण्डुलैर्भाति सस्यैः
प्रशस्यैः कादम्ब्यामोदवाही जलधरसमये वारुणो वाति
घातः ॥ ११० ॥ शमयति जलधरधारः चातकयूनां
तृषं चिरोपनताम् । क्षपयति च बधूलोचनजलधारा
कामिनां प्रवासकचिम् ॥ १११ ॥ शमिततापमपोदमही-
रजः प्रथमशिरदुभिरम्यमुचोऽम्भसाम । प्रविरलैरचला-
कममङ्गनाजमसुगन्त सुगन्धि न वकिरे ॥ ११२ ॥ शिरसि
वकुलमालां मालतीभिः समेतां विकसितनवपुष्पैर्यु-
धिकाकुड्मलैश्च । विकचनयकदम्बैः कर्णपूरं यधूनां रच-
यति जलदौघः कान्तघरकाल एव ॥ ११३ ॥ शिरारुहैः
भोग्णितटायलम्बिभिः कृतायनसैः कुसुमैः सुग-
न्धिभिः । स्तनैः सहारैर्यदनैः ससोधुभिः स्त्रियो रतिं
सञ्जयन्ति कामिनाम् ॥ ११४ ॥ शीतलादिषु सन्प्रस्तं
प्रावृषेयान्नभस्यतः । नभो यभार मोरन्ध्रं जीमूतकुल-

कम्बलम् ॥ ११५ ॥ सजलजलधरं नभो विरेजे विवृति-
मियाय रुचिस्तडिल्लतानाम् । व्यवहितरतिविप्रद्वैवि-
तेने जलशुरुभिः स्तनितैर्दिगन्तरेषु ॥ ११६ ॥ सदा
मनोह्रं स्वनदुत्सवोत्सुकं धिकीर्णविस्तीर्णकलापशोभि-
तम् । ससम्भ्रमालिङ्गनचुम्बनाकुलं प्रवृत्तनृत्यं कुलमध-
वर्हिणाम् ॥ ११७ ॥ सद्यन्येव निरन्तरं निवसतिमि-
त्राद्यनालोकनं पन्थाः पङ्कसमाकुलः कलुषतां वारां
सदा दुर्दिनम् । एवं यद्यपि दूषणानि तदपि स्वमूर्ज-
नोज्जासकृत्सस्योत्पत्तिनिमित्ततैकगुणतः प्रावृट् प्रपेदे
यशः ॥ ११८ ॥ समदशिक्षिरुतानि हंसनादैः कुमुद-
वनानि कदम्बपुष्पवृष्ट्या । धियमतिशयिनीं समेत्य
जगमुगुणमहतां महते गुणाय योगः ॥ ११९ ॥ सरज-
समपहाय केतकीनां प्रसवमुपान्तिकनीपरेणुकीर्णम् ।
प्रियमधुरस्रवानि वटपदाली मलिनयति स्म विनील-
वन्धनानि ॥ १२० ॥ सरसाशया सतडिदुगुणगौरा
परिवेष्टिताम्बरोत्कर्षा । उद्गतपयोधरधीर्मुग्धवधूरिव

आकाश-गङ्गाके आसपास मैदराते हुए बगुनोंसे आकाश भर
गया है, शिलीन्द्र, अर्जुन, कुटज और उत्तम धानोंके सुन्दर
झकुनोंसे धरतीका कलेवर फूल उठा है तथा ईसोंको आनन्दित
करनेवाला परिचमका पवन बहने लगा है ॥ ११० ॥
बादलोंसे निकली हुई जलकी धारा पपीहोंकी बहुत दिनोंकी
प्यास बुझा रही है और नवेलियोंकी आँखोंसे निकली हुई
जलकी धारा कामियोंकी यात्राका दुःसास ठववा कर रही है
॥ १११ ॥ बादलोंकी कहीं-कहीं पड़ती हुई पड़ती बूँदोंने
तपन बुझा दी है, उड़ती हुई धूल दबा दी है और
पहाड़ी धरतीको सौधी करके उसे नवेलियोंके चलनेके लिये
सुगम बना दिया है ॥ ११२ ॥ जैसे कोई प्रेमी अपनी प्यारीके
लिये उड़-उड़के फूलोंके आभूषण बनाता है वैसे ही वर्षा-
काल भी मानो अपनी प्रेमिकाके लिये जूहीकी नई-नई
कलियों तथा माखली और मौलसिरीके फूलोंका माला गूँथ
रहा है और खिले हुए नये कदम्बके फूलोंके कर्णफूल बना
रहा है ॥ ११३ ॥ आलकल स्त्रियों अपने भारी-भारी नितम्बोंपर
घोटियों लटकाकर, अपने कानोंमें सुगन्धित फूलोंके कमफूल
पहनकर, अपनी छातियोंपर माखीएँ डालकर और मदिश पीकर
अपने प्रेमियोंके मनमें प्रेम उकसा रही हैं ॥ ११४ ॥ वर्षाके
ठपठे पवनसे डरकर ही मानो इस आकाशने यह घना बादल-
रूपी मोटा कम्बल ओढ़ लिया है ॥ ११५ ॥ आकाशमें जलसे

भरे बादल का गढ़, चारों ओर बिजलीका प्रकाश फैलने लगा
और रतिके समय छियोंका रुटना रोکنेवाले तथा जलसे भरे हुए
गम्भीर बादलोंकी गर्जन चारों ओर सुनाई पड़ने लगी ॥ ११६ ॥
देखो, सदा मीठी बोलीं बोझनेवाले, गरजते हुए बादलोंकी
शोभापर रीझकर मगन हो उड़नेवाले और अपने पङ्क लोचकर
कैलानेसे सुहावने लगनेवाले वे मोरोंके कुएब कटपट अपनी
प्यारी मोरिनियोंको गले लगाते और चूमते हुए नाच उठे
हैं ॥ ११७ ॥ यद्यपि बरसातमें यह दोष है कि सबको सदा
घरमें ही बँधे रहना पड़ता है, मित्र (सूर्य, मित्र) दिसाई
नहीं पड़ते, मागोंमें कीचड़ भरा रहता है, पानी गँदला
हो जाता है और सदा दुर्दिन (घोंघी-पानी, बुरा दिन)
छाया रहता है फिर भी वर्षाका यश इसी गुणके कारण फैला
हुआ है कि वह देवताओं तथा मनुष्योंको प्रसन्न करनेवाली
क्षेत्रीको जलदाता देता है ॥ ११८ ॥ मतवाले मोरोंकी फूजनसे,
ईसोंकी रुनकुनसे और कुमुदके वनमें कदम्बके फूलोंकी वर्षासे
एक निराजी ही शोभा आ गई है क्योंकि गुणधानोंका सम्मन्व
सदा सुन्दर ही होता है ॥ ११९ ॥ परागसे भरे हुए केमड़ेके
फूलपर पासके कदम्बका पराग ही झड़ रहा था इसलिये मीरे
उसे छोड़कर प्रिय और मधुर रसवाले तथा नीली रँपीवाले
असनाके फूलोंपर जा बैठे ॥ १२० ॥ अपने भीतर पानी
भरी हुई (रसीके भावोंवाली), बिजली चमकनेसे डबकी

विभाति घनवेला ॥१२१॥ सर्वत्रोद्गतकन्दः । वसुमती
वृद्धिर्जलानां परा जातं निष्कमलं जगत्सु मलिनैर्लब्धा
घनैरुन्मतिः । सर्पन्ति प्रतिमन्दिरं द्विरसनाः संत्यक्त-
मागौ जगो घर्षाणां च कलेश्च सम्प्रति जयन्त्यैव
राज्यस्थितिः ॥ १२२ ॥ ससीकराम्भोधरमत्तकुञ्जरस्त-
द्विपताकोऽशनिशब्दमर्दलः । समागतो राजवदुद्धत-
द्युतिर्धनागमः कामिजनप्रियः प्रिये ॥ १२३ ॥ सितोन्प-
लाभाशुद्धसुम्पितोपलाः समाचिताः प्रस्रवणैः सम-
न्ततः । प्रवृत्तनृत्यैः शिखिभिः समाकुलाः समुत्सुकन्धं
जनयन्ति भूधराः ॥ १२४ ॥ स्कन्धं तरोर्धनदलस्थ-
गितोर्ध्वभागमध्यास्य गाढकलितशिशुवज्रभाभ्याम् ।
अम्भो यतः पतति मूभिर्निजे कपिस्तन्पत्रं विलोक-
यति दुर्लुहतिपूषलौल्यः ॥ १२५ ॥ स्फुरदधीरतडिन्म-
यना मुहुः प्रियामिवागलितोदपयोधरा । जलधरावलि-

रप्रतिपालिनस्वसमयासमयाजगतीधरम् ॥ १२६ ॥
स्फुरद्ग्रीवामाभोगस्तनकणमद्रिपम्बकन्धमलिनो ललदिद्यु-
ज्जिहः कृतकटकटध्वाननिन्दः । दिशन्नुद्यथापभ्रुकु-
टिघटनाभिः प्रतिभयं घनर्तुः प्रारम्भे त्रसितुमिव
विश्वं व्यवसितः ॥ १२७ ॥ स्फुरन्तः पिङ्गलाभासो
धरत्यामिन्द्रगोपकाः । सरत्तवान्नपान्धस्त्रीजीवा इव
चकाशिर ॥ १२८ ॥

दोलाकेलिः—उन्नम्य दृष्टं मुहुर्गनमन्यः कान्ताः
श्लथीभूतनिर्मययिष्याः । दोलादिलासेन जितश्रम-
स्थानप्रकर्षमापुः पुरुषायितेषु ॥ १ ॥ प्रत्यासन्नमुखी
कराभुजयुगप्रेङ्खालितां प्रोङ्खकामारुहोयमुदस्तहारल-
तिकाव्यावृत्ततुङ्गस्तनां । दृष्टादृष्टमुखी मनागतघशा-
दासोलमानांशुका तन्वङ्गी गगने करोति पुरतः शान-
ह्वं विध्रमम् ॥ २ ॥ प्रसार्य पादा विहितस्थितानां

दिलाई पक्षी हुई (बिजलीकपी डोरेसे गोरी खगनेवाली),
आकाशकी ऊँचाईकी डकती हुई (मूल्यवान् वस्त्रोंसे घिरी
हुई) तथा ठमठसे हुए बादलोंवाली (उठे हुए स्तनोंवाली)
यह काली घटा गई दुलहिन-सी दिलाई देती है ॥ १२१ ॥
वर्षाके दिनोंमें बरसात और कजियुग दोनोंका राज्य एक-सा
जान पड़ता है क्योंकि धरतीपर चारों ओर कमल (निरर्थक
लोग) उत्पन्न हो गए हैं, जल (पानी, मूखों) की बाढ़ है,
सारा संसार निष्कमल (कमलसे रहित, निर्धन) हो गया है,
मूखों (काले बादलों, अशक्त भीषों) की उन्नति हो गई, बर-
बर त्रिजिह (सर्प, चुगलखोर) घूम रहे हैं और लोगोंने मार्ग,
(धर्मका मार्ग, चलनेका मार्ग) खोइ दिया ॥ १२२ ॥ देखो प्यारी !
जलकी फुहारोंसे भरे हुए बादलोंके मतवाले हाथीपर चढ़ा
हुआ, चमकती हुई बिजलियोंकी अग्निदिव्यो कहराता हुआ
और बादलोंकी गरजके नगाड़े बजाता हुआ यह कामिनीयोंका
प्यारा पावस, राजाओंका-सा डाट-काट बनाकर आ पहुँचा
॥ १२३ ॥ थोड़े कमलके समान उजले बादल जिन पहाड़ी
चट्टानोंकी चूमते चखते हैं और जिनपर मोर नाच रहे हैं
उनपरसे बहनेवाले सैकड़ों झरनोंको देखकर प्रेमियोंके मनमें
हलचल-सी मच जाती है ॥ १२४ ॥ दूर-से नवे पर्वतोंसे जिसका
ऊपरी भाग ढका हुआ या ऐसे बृहत्के समेपर कोई बन्दर अपनी
पत्नी और बच्चे सहित बैठा था, पानी बरसनेपर अब पत्तेसे
होकर उसके सिरपर भी पानी पड़ने लगा तो वह खों-खों
करके पड़ते उस पत्तेकी ओर ही झेवित होकर देखने लगा अर्थात्

उसे पानीपर नहीं, पत्तेपर ■ फाँव आया ॥ १२५ ॥ बार-बार
चमकती हुई बिजली ही जिसकी आँखें हैं और बादल ही
जिसके ऊँचे-ऊँचे स्तन हैं ऐसी वर्षा अबसरकी प्रतीक्षा न
करके ही अपने पनि पर्वतके पास आ पहुँची है ॥ १२६ ॥
भवद्वरताओंसे भरा हुआ यह वर्षाकाल जो मतवाले
भैंसोंके कन्धोंके कालेपनसे ढका मलिन दिलाई पड़ रहा है,
जपलपाती हुई बिजली ही जिसकी आँखें हैं और बादलोंकी
गड़गड़ाहटके स्वरमें ही जो दहाड़ रहा है वह मानो अपने प्रारम्भ
कालमें ही संसारको निगल जानेका तैयार है ॥ १२७ ॥ धरतीपर
रेंगती हुई खाल-खाल बीरबट्टियों ऐसी जान पड़ती हैं
मानो वियोगियोंकी नवेलियोंके वसन किए गए रुधिरसे लिपटे
हुए उनके प्राण हों ॥ १२८ ॥

झूला : झूलेकी पैगोंपर ऊँचे उठने और नीचे आनेसे
जिनके नितम्ब धीले पड़ गए हैं और जिन्होंने झूला झूलनेकी
थकावट सह ली है वे नवेलियों इतनी सरास हो गई कि
सुरतमें पुरुषके समान व्यवहार कर सकती थीं ॥ १ ॥ अपने
दोनों करकमलोंसे झूलेकी डोरियों पकड़कर वह झूलेपर
मुस्कराती हुई बैठी है, झूलेकी पैगोंके कारण उसके ऊँचे-ऊँचे
स्तनोंपर डार उसल रहे हैं, झोंकेके कारण कभी तो उसका
मुख दिलाई पड़ जाता है कभी नहीं और उसकी साड़ी भी
हिल-हिलकर चमक रही है । इस प्रकार झूलती हुई वह नवेली
सामने आकाशमें बिजली-सी चमक रही है ॥ २ ॥ झूला
झूलते समय पैर पसारकर बैठी हुई और साड़ियोंके पल्ले

दोलासु लोलांशुकपल्लवानाम् । मनोरथानामपि यत्र
गम्यं तद्वृष्टुमापुः सुदृशां युवानः ॥ ३ ॥ सौन्दर्यमि-
न्द्रीवरलोचनानां दोलासु लोलासु यदुल्लासः । यदि
प्रसादाल्लभते कथित्वं जानाति तद्वर्णयितुं मनोभूः ॥ ४ ॥

वर्षावायवः—आमोदेन कदम्बकन्दलभुवा लिम्पन्न-
शेषं नभः प्रीतिस्फीतमयूस्वन्दनटनमस्तायनापाण्डितः ।
अम्भोदप्रथमोदविन्दुरचनानिर्मुण्डघर्मश्शनैर्वायुर्वाति
भयङ्करः प्रवसतां मेघकूराडम्बरः ॥ १ ॥ एते केतक-
सूचिसौरभजुषः पारप्रगल्भाङ्गनाभ्यालोलालकवल्लरो-
चिलुलनभ्याजोपभुक्ताननाः । किञ्चोच्चिद्रकदम्बकुङ्कुम-
लकुटीधूलिलुङ्गपट्टपदव्यूहव्याहृतिहारिणः विरहिणः
कर्पन्ति वर्षानिलाः ॥ २ ॥ एते ते दुरतिक्रमकममिल-
हृद्यमोमिमर्मचिह्नदः कादम्बेन रजोभरेण ककुभो
रुन्धन्ति भ्रूभक्तानिलाः । गाढारम्भनिगूढनीरद्वयटास-
हृदनीलीभवद्योममोडकटाहपातुकपयोधेयीकणग्राहिणः

दिलाती हुई नवेलियोंकी वह सुन्दरता नवयुवकोंने देखा जहाँ
मन भी नहीं पहुँच सकता था ॥ ३ ॥ झूलते हुए हिंडोलेपर
कमलनयनी नवेलियोंकी जो सुन्दरता उमड़ रही थी उसका
वर्णन कामदेव भी नहीं कर सकता है जब वह प्रसन्न मनसे
कविता करने बैठ जाय ॥ ४ ॥

पुरवैया : बादलोंको उभा।नेवाला तथा परदेसियोंको
मनभीत करनेवाला वह पवन बह रहा है जिसने कदम्ब और
कन्दलीकी मनोहर गन्धसे सारे आकाशको भर दिया है, जो
प्रेमसे मतवाले मोरोंका नाचनेके लिये ठकसानेमें बड़ा चतुर
है और जिसने बादलोंकी पड़ती बूँदोंसे ही धीरे-धीरे तपन
मिटा दी है ॥ १ ॥ विरहियोंका मन इतने हुए वे वे बरसाती
पवन बह रहे हैं जो केवड़ेकी सुगन्धसे भरे हैं, जो गाँवोंकी
इठलाती हुई नवेलियोंके चञ्चल बाल बिलेरनेके बहाने
उनके मुलका चुम्बन कर रहे हैं और जो सिले हुए कदम्बके
भीतरके परागमें लोट-पोटकर गानेवाले भीरोंकी गुआर घुरा-
घुराकर भागे जा रहे हैं ॥ २ ॥ बरसातकी जो चौलाई बहता हुआ
पसीना सुखा रहा थी, चारों ओर घिरे हुए बादलोंसे छेँचिवाले
आकाशको कड़ाहेसे बरसाती हुई जलधाराकी बूँदोंसे भरे
हुए थे, वे कदम्बके फूलका पराग लेकर सब दिशाओंको भर
रहे थे ॥ ३ ॥ जो बरसाती पवन जलधारासे धुलकर,
चन्द्रमाके समान उजले केवड़ेके फूलके केसर हिलाकर, कैलास
पर्वतकी किन्नरियोंकी झूमती हुई लताओंके समान नाचकर, रुंठी

॥ ३ ॥ धाराधौत धुनानाः शशधरधवलं केसरं केत-
कीनां कैलासे किन्नरोणां चलदलकलतालास्यलीलां
दधानाः । आमूलं माभिनीनां मनसि विनिहितं मान-
मुन्मूलयन्तो वान्द्येते वारिवाहव्यतिकरशिशिराः
प्रावृषेय्याः समोराः ॥ ४ ॥ प्रवसतः सुतरामुदकम्पय
द्विदलकन्दलकम्पनलालितः । नमयति स्म वनानि
मनस्विनीजनमनोनमनो घनमाकृतः ॥ ५ ॥

वर्षापथकः—उपरि घनं घनपटलं तिर्यगिरयोऽपि
नर्तितमयूराः । क्षितिरपि कन्दलधवला दृष्टि पथिकः
क पातयतु ॥ १ ॥ उपरि पयोधरमाला दूरे दृष्टिता
किमेतदापतितम् । हिमवति दिभ्योपभयः कोपाविष्टः
फणो शिरसि ॥ २ ॥ किं गतेन यदि सा न जीवति
प्राणिति प्रियतमा तथापि किम् । इत्युदीक्ष्य नवमेघ-
मालिकां न प्रयाति पथिकः स्वमन्दिरम् ॥ ३ ॥
ग्रामेऽस्मिन्पथिकाय पान्थ वसतिर्नैवाधुना दीयते

हुई नवेलियोंके मनमें जैसे हुए कोवड़े जइसे उस।कर तथा
बादलोंसे जिसकर दृष्टे हो गए थे वे इर-हराकर बह रहे हैं
॥ ४ ॥ जिसकी हुई कन्दलीको छेँचानेवाले और रुंठी हुई
नवेलियोंका मन डीला करनेवाले बरसाती पवनने परदेसियोंको
भीचेसे ऊपरतक छेँपा दिया और सारे वनको झुका
दिया ॥ ५ ॥

बरसातके पथिक : ऊपर घने बादल हैं, आसपास
चारों ओर पहाड़ हैं जिनपर मोर नाच रहे हैं और चारों
ओरकी धरती उगे हुए कन्दलसे उजली हुई पड़ी है, ऐसी दशमें
बेचारा प्रवासी दृष्टि डाले भी तो किसपर डाले ॥ १ ॥ हाव
राम ! यह कैसी विषदा या पड़ी कि ऊपर बादल मेंढरा रहे हैं
और प्यारी दूर बैठी है ! यह तो ऐसा ही हुआ ■ चौपथियों
हिमालयमें हों और फुरकास्ता हुआ साँप सिरपर या चढ़ा
हो ॥ २ ॥ आकाशमें उमड़े हुए नये-नये बादलोंको देखकर
बेचारा परदेसी यही सोचता हुआ अपने घर नहीं लौट रहा
है कि बरसातमें यदि उस प्रियाने अपने प्राण दे दिए तो घर
जानेसे लाभ क्या ! और इतना बड़ा विज्ञोह होनेपर यदि वह
जी रही है तब भी जाना मर्यादा है (क्योंकि उसका प्रेम कम हो
गया होगा ॥ ३ ॥ हे परदेसी ! बरसातके दिनोंमें हम लोग इस
गाँवमें किसी परदेसीकी नहीं टिकने देते क्योंकि कल रात पासके
उपवनमें पड़े हुए एक दुष्ट युवक परदेसीने बादलकी गरज
सुनकर अपनी प्यारीका स्मरण कर करके गाते हुए ऐसा

रात्रावत्र विहारमण्डपतले पान्थः प्रसुप्तो युवा ।
तेनोद्गीय खलेन गर्जति घने स्मृत्या प्रियां तत्कृतं येन-
द्यापि करद्वन्द्वपतनाशङ्की जनस्तिष्ठति ॥ ४ ॥ धीरं
वारिधरस्य वारि किरतः श्रुत्वा निशीथे ध्वनिं दीर्घो-
च्छ्वासमुद्भूणा विरहिणीं वालां चिरं ध्यायता । अध्व-
न्येन विमुक्तकण्ठकण्ठं रात्रौ तथा क्रम्वितं त्रामीणैः
पुनरध्वगस्य वसतिर्ग्रामे निषिद्धा यथा ॥ ५ ॥ निशीथे
लीनानां भट्टिति तडितां वीक्ष्य विषयं घनानामाभोगं
रसिकपथिकेनोन्मुखदृशा । न गीतं सौत्करं न च
रवितमुक्तकण्ठरत्नं न मुक्ता निःश्वासाः स्फुरदनुमत्तं
किं तु हृदयम् ॥ ६ ॥ नृत्यमन्त्रकिणि कलम्भधुलिहि
श्यामायमानक्षितौ धीरध्वानपयोमुचि प्रविलसत्सौ-
क्ष्मिनीदामनि । धाराम्भःकण्ठवाहिशोतमदति प्राणा-
न्ययोदागमे हा हा हास्यति मुग्धिका नवधूरित्य-
पगः क्रम्वति ॥ ७ ॥ वहीं रौति वका रटन्ति तडितो

धाम्यन्त्यतिव्याकुला विक्रोशन्ति घना घना च विल-
पत्युच्चैर्वालाकवलिः । आन्मानं मरुतः क्षिपन्ति सलि-
लासारः पतत्यग्रतो मुक्त्वा प्रावृषि साहसैकरसिके
याति प्रियामध्वगे ॥ ८ ॥ भद्रात्र ग्रामके त्वं वससि
परिचयस्तेऽस्ति जानासि वार्तामस्मिन्नध्वन्यजाया
जलधररसितोक्ता न काचिद्विपश्ना । इत्थं पान्थः
प्रवासावधिदिनविगमापायशङ्की प्रियायाः पृच्छन्वृ-
त्तान्तमारात्स्थितनिजभवनोऽप्याकुलो ॥ ९ ॥ प्रयाति
॥ ६ ॥ भ्रातः पान्थ कुतो भवाग्रगरतो वार्ता नवा
वर्तते, वादं ग्रहि युवा पयोदसमये त्यक्त्वा प्रियां
जीवति । सत्यं जीवति जीवतीति कथिता वात्ता
मयापि धृता, विस्तीर्णा पृथिवी जनोऽपि विविधः
किं किं न सम्भाष्यते ॥ १० ॥ भ्रातः पान्थ प्रसीद
प्रतिविरम समुत्सृज्य वालामकारणै, गन्तुं वाप्याम्युपूर-
प्लुतनयनमुक्तां प्रेयसीं ते न युक्तम् । वृत्तं ग्रामेऽतिकथं

उपश्रव कर दिया कि आज भी मैं डर बना हुआ हूँ कि कहीं
लोगोंके हाथोंसे बरतन-भाँडे न छूट पड़ें अर्थात् उसके विद्रोह-
भरे गानेको सुनकर लोग मुर्झित हो-होकर गिर न पड़ें ॥ ४ ॥
जगत्सार बरसते हुए बादलकी गरज सुनकर आधीरातमें अपनी
विमोक्षिणी स्त्रीका स्मरण करके सुनक-सुनककर रोते हैं
परदेसीने गला फाड़-फाड़कर पेसी चिस्काइत मचाई कि तभीसे
गाँववालोंने इस गाँवमें परदेसियोंको ठिकाना बन्द कर दिया ॥ ५ ॥
जब बरसातकी आधी रातको रसिक परदेसीने बादलोंमें कौंधती
हुई बिजली देखकर ऊपर भाँसे उठाई उस समय न तो
उसने प्रेमका राग अछापा, न गला फाड़-फाड़कर रोया, न उसने
कम्प-कम्पी साँस ही ली, बरन् सुपचाप अपना हृदय टटोकने
लगा कि हृदयकी धड़कन तो बन्द नहीं हो गई ॥ ६ ॥
जब बरसातके समय मोर नाचने लगे, भँरे गूँजने लगे,
घरती हरी हो गई, बादल गरजने लगे, बिजली चमकने लगी
और पानीकी फुहारोंने लहा शीतल पवन बहने लगा, उस
समय बेचारा प्रवासी यही सोच-सोचकर रोने लगा कि
'हाव-हाव ! मेरी भोखी-भाखी नई बहू हूँ उनकठे हुए
बादलोंको देखकर अब जीती नहीं बचेगी' ॥ ७ ॥ वहाँ
पहुँचें ज्यों ही एक मनुष्य बड़ा साहस करके अपनी प्यारीको
झोड़कर कहा त्यों ॥ मार्गमें मोरनी रोने लगी, सारस कु-
कुराने लगे, बिजली व्याकुल होकर जपजपाने लगी, बादल
चिस्का-चिस्काकर रोने लगे, बगलोंकी पाँत बिजलने लगी,

पवन हरहराकर बहने लगे और तत्काल मूसलाधार पानी बरसने
लगा ॥ ८ ॥ परदेससे लौटनेके लिये परदेसीने अपनी पत्नीको
जो अर्वाधि दी थी उसके बीत जानेपर जब वह गाँवमें लौटा
तो घर पास होते हुए भी वह इस घबराइतके मारे घर नहीं
आ रहा है कि कहीं मेरी स्त्री अर्वाधि बीत जानेके कारण
चल न बसी हो । इसलिये वह दूसरे व्यक्तिसे पूछ रहा
है—'हे सम्जन ! आप तो इस गाँवमें रहते हैं, इसलिये
आप सभीको जानते भी होंगे और यहाँका कुराक-समाचार
भी आपसे क्षिप्रा न होगा । अतः, यह बतलाइए कि इस गाँवमें
बादलकी गरजसे घबराकर किसी प्रवासीकी नवेलीने प्राण तो
नहीं दे डाले है ?' ॥ ९ ॥ कोई पुरुष एक परदेसीसे इस
प्रकार बातें कर रहा है—पुरुष—क्यों भाई राही ! आप कहें
कबसे आ रहे हैं ? राही—नगरसे । पुरुष—क्या कोई नया
समाचार है ? राही—हाँ । पुरुष—कहिए ! राही—एक
नवयुवक बरसातके दिनोंमें अपनी प्यारीको छोड़कर भी अभी
तक जी रहा है ! पुरुष—क्या सचमुच जी रहा है ? राही—हाँ,
उसके जीनेकी जो चर्चा वार्ता हो रही थी, वही मैं भी
सुनकर आ रहा हूँ । पुरुष—हाँ भाई ! पृथ्वी इतनी लम्बी-
चौड़ी है और उसमें लोग भी बड़े विचित्र-विचित्र प्रकारके रहते
हैं, इसलिये वहाँ जो हो जाय सब थोड़ा है ॥ १० ॥ हे परदेस
जानेवाले भाई ! अब भी मान जाओ और परदेस जानेका विचार
छोड़ दो क्योंकि तुम्हारी जिस प्यारीका मुख और आँखें

यदिह गृहपतेः प्रोषितस्य प्रियाया, मुक्ताकन्दौस्तदेता-
मलिलचितरणे निर्गताम्पश्य बन्धून् ॥ ११ ॥ यथा
रन्ध्रं व्योम्नश्चलजलधूमः स्थगयति स्फुल्लिङ्गानां रूपं
दधति च यथा कीटमणयः । यथा विद्युज्ज्वालोल्लसि-
तपरिपिक्काश्च ककुभस्तथा मन्ये लग्नः पथिकतरुखण्डे
स्मरद्वयः ॥ १२ ॥ रसति तरुणीकेशश्यामे पयोधृति
निभेरं स्फुटति चपले वारंवारं क्षणद्युतितेजसि । उप-
गुहजनं मन्ये दैन्यात्पराङ्मुखसुमया निवृत्तनिवृत्तं
मन्दोच्छ्वासं तया धत रुचते ॥ १३ ॥ राश्री वारिभरा-
लसाम्युदरवोद्विग्नेन जाताभ्रुणा पान्थेनात्मविद्योगदुः-
खपिशुर्न गीतं तथोत्कण्ठया । आस्तां जीवितहारिणः
प्रवसनालापस्य सङ्कीर्तनं मानस्यापि जलाञ्जलिः सर-
भसं लोकेन दत्तो यथा ॥ १४ ॥ शिखिनि कूजति
गर्जति तोयदे स्फुटति जातिलताकुसुमाकरे । अहह
पान्थ न जीयति ते प्रिया नभसि भासि न यासि गृहं

यदि ॥ १५ ॥ भ्रुत्वा बालमृगीविलोलनयना शब्दं
घनानां पुरा भीत्या वक्षसि संश्रितापि निविडं भूयः
समालिङ्गति । या वक्त्रादपहृत्य रोषितवती कण्ठे
ममैवाननं सा द्रक्ष्यत्यधुना कथं नु विरहे वाला पयो-
दावलीम् ॥ १६ ॥

वर्षापथिकामिनी—अहम्पूर्वमस्माभिर्यदेतद्द्रष्टव्य-
तेऽधुना । विषं विषघरैः पीतं मूर्च्छितताः पथिकाङ्गताः
॥ १ ॥ अस्मोबाहुरद्विषो निवसनं ध्वान्ताद्विद्विष्य-
वधी कन्दर्पस्य विलासचम्पकधनुर्वर्षालतामञ्जरी ।
लेखा व्योमकपोपले विरचिता धामीकरस्य स्फुर-
द्भासः पान्थविलासिनीजनमनःकम्पाय शम्पाभवत्
॥ २ ॥ आकण्ठितानि रसितानि यथा प्रसर्पन्प्रधुस्तरा-
जरयनि-स्वनसोदराणि । उच्चै रणध्वरणनूपुरया
पुरन्ध्या क्षिप्रं प्रियं कुपितयापि तयाभिसखे ॥ ३ ॥
आवासेऽस्मिन् बिदग्धाः कश्चिदपि न विमो नापि

आँसुओंसे तर हैं उसे ऐसे समयमें छोड़कर जाना ठीक नहीं
है । देखो, अभी गाँवमें एक ऐसी दुर्घटना हो चुकी है कि
एक गृहस्थ अपनी पत्नीको छोड़कर चला गया और वह
बेचारी विछोड़में पल बसी, उसीको जलाञ्जलि देनेके लिये
लोग रोते-कलपते हुए उसे कंधेपर उठाए ले जा रहे हैं
॥ ११ ॥ जब चञ्चल बादल-रूपी धुआँ आकाशको ढके हुए हो,
जमकते हुए जुगुन् आगकी उड़ती हुई चिनगारियोंके समान
दिखाई दे रहे हों और सभी दिशाएँ बिजलीकी जमकसे सुन्दर
और पाली हो रही हों उस समय ज्ञान पड़ता है मानो प्रवासी-
रूपी घृष्ट काम-रूपी आगसे जल उठा हो ॥ १२ ॥ जिस समय
काले-काले बादल गरज रहे हैं और बार-बार बिजलीकी भयक
होश रही है ऐसे समयमें मैं समझता हूँ कि वह बेचारी
बढ़ोंके सामनेसे हटकर चुपचाप छेदी हुई, दुखी होकर
लम्बी-लम्बी साँस लेती हुई सिसक-सिसककर रो रही होगी
॥ १३ ॥ रातमें पनियल बादलोंकी गरजसे धबकाकर रोते हुए
परदेसीने विछोड़के दुःखसे भरा हुआ गाना गाकर ऐसी कलकके
साथ अलाप भरी कि उस समय माखवाली प्रवासकी
चर्चा तो दूर रही, प्रेमी-प्रेमिकाओंने आपसमें रुठनेको भी
तिखाञ्जलि दे दी ॥ १४ ॥ हे प्रवासी ! सावनके जिस महीनेमें
मोर बोल रहे हैं, बादल गरज रहे हैं और माखतीके फूल
खिल रहे हैं उस समय भी यदि तुम घर नहीं लौट रहे हो
तो समझ लो कि तुम्हारी प्रिया जीती न बचेगी ॥ १५ ॥

यहीं-सो इरिणीके समान चञ्चल नेत्रोंवाली जो बाला पहले
बादलकी गरज सुनकर मेरी छातीपर पड़ी हुई थी उसके सारे
कसकर लिपट जाती थी और अपना मुँह मेरे मुँहपरसे
हटाकर डरके सारे मेरे गलेमें डाल देती थी वह इस समय
मेरे विछोड़में भला बादलोंकी घटा कैसे देख पावेगी ! ॥ १६ ॥

वर्षाश्रुतुके परदेसीकी नवेसी ! क्या बताऊँ ! इस
समय जो जांचत्र बात देखनेमें आ रही है वैसी तो मैंने पहले
कभी देखी ही नहीं क्योंकि, देखो ! विष (जल) तो पिया है
बादलोंने और मूर्च्छित हुई पड़ी है परदेसीकी खी ॥ १ ॥
जो बिजली, बरसातके दिनोंमें बादल-रूपी कृप्यकी पीछी
कड़ौटी बनी हुई थी, आंधकार-रूपी पहाड़की जमकती हुई बूटी
थी, चम्पके फूलसे कनी हुई कामदेवकी धनुहीकी वर्षा-रूपी लताकी
मञ्जरी थी तथा आकाश-रूपी कसीटीपर लिपी हुई जमकते
हुए सोनेकी रेखा थी, उसने वियोगिनी स्त्रियोंका मन भङ्गकरकर
कैसा डाला ॥ २ ॥ जिस बादलका गर्जन राजा कामदेवके रथके
शब्दके समान हो रहा था, उसे सुनकर रुठी हुई नवेसी
भी अपने पैरके पायल बजाती अपने प्रियतमके पास पहुँचनेके
लिये स्वयं चल पड़ी ॥ ३ ॥ कोई बटोही रात रहनेके लिये
बिस्तीके घर पहुँचा, वहाँ कोई स्त्री उससे कहने लगी—'हे
महाराज ! इस घरमें मैं ही एक वियोगिनी हूँ । इस शब्दके
अतिरिक्त कहीं भी नींद लेने योग्य विद्यावन नहीं है, सामने
जो बिजली जमकती थी वह भी अब क्षुप्त हो गई और वे बादल

निद्रोपभोगयोग्यत्वं अस्तरास्था विलयमुपगता
सम्मुखे विधुदेष्टा । प्रोक्ष्यमाणं पयोभृत्तदिति यदि
दक्षिणैश्वरासे तदास्वेत्युक्तः पान्थः सुदन्त्या हतमद-
मभयस्तत्र मुग्धोऽतिमुग्धः ॥ ४ ॥ एष्यन्त्यवश्यम-
धुना हृदयाधिनाथा मुग्धा मुग्धा कुर्वत मा विविधं
विलापम् । इत्थं शशंसुरिव गजितकैतवेन पाथोधराः
पथिकपङ्कजलोचनाभ्यः ॥ ५ ॥ नभसि जलदलदर्मी
साक्षया धीस्य दृष्ट्या प्रवससि यदि कान्तेत्यर्धमुपन्वा
कथञ्चित् । मम पटमवलम्ब्य प्रोक्षिष्यस्ती धरित्रीं
तदनु कृतवती सा यत्र वाचो निवृत्ताः ॥ ६ ॥ प्रणति-
भिरपि पत्युः प्रार्थनाभिन्न सख्याः क्षणमपि न मनस्तो
माविनी मानमौर्जस्त । तमसमशरशस्त्रीभूतगामप्रकारः
क्षणमिव शिखण्डी किम्न खण्डीचकार ॥ ७ ॥ प्रस-
रदलकाकीर्णं कर्णे न केकिदंतं भृतं भवसितध्वजितो
वातो घातो न वा कुटजोत्कटः । न च परिचितासा-
वासम्पत्सुताभुणि लोचनं तदपि किमपि प्रावृट्श्यामा

धुनोति वियोगिनीः ॥ ८ ॥ मेघैर्व्योम नवाम्बुभिर्वसु-
मती विद्युज्जताभिर्दिशो धाराभिर्गगनं वनानि कुटजैः
पूरैर्वृता निम्नगाः । एकां घातयितुं वियांगविधुरां
दीनां वराकीं स्त्रियं प्रावृट्काल हनाश वर्णय कृतं
मिथ्या किमाद्वयम् ॥ ९ ॥ वाता घान्तु कदम्बैरगु-
णवला नृत्यन्तु सर्पद्विपः सोन्साहा नववारिगर्भगुरवो
मुञ्चन्तु नादं घनाः । मग्नां कान्तवियांगशोकजलधा
मां दीप्य दोनाननां विद्युन्कि स्फुरसि त्वमव्यकहणं
स्तीत्ये समाने सति ॥ १० ॥ विरमत घना किं वो
वृष्ट्या मुधेय विसृष्ट्या, व्रजत ककुभं कामध्वन्यां
मनोरुधिरामतः । न तदिह घनं नासां मार्गो न तच्छ
धरातलं विरहगलितैस्तन्त्या यत्र प्लुतं नयनाम्बुभिः
॥ ११ ॥ शिशिरसीकरद्याहिनि माहते चरनि शीतभ-
यादिव सन्धरः । मर्नासजः प्रविचेश वियांगिनांहृदय-
माहितशोककुताशनम् ॥ १२ ॥ श्रुत्या तन्व्या निशीथे
नवघनरसितं विश्लेषाङ्गं पतित्वा शय्यायां भूमिपृष्ठे

भी तुमह रहे हैं, अतः यदि रात काटनी हो तो ठहर जाओ'
यह सुनते ही उसका सारा कामदेवका डर छूट गया और
वह प्रसन्न होकर वहीं रह गया ॥ ४ ॥ बादल अपने गर्जनेसे
मानो प्रवासियोंकी कमलनयनी नवेलियोंको यह कादस रेंवा
रहे हैं कि 'हे भोली-भाली नवेलियो ! ऐसे बरसातके समय
तुम्हारे प्राणप्यारे अवश्य आवेंगे, तुम व्यर्थ रोना-रुलपना
न करो' ॥ ५ ॥ परदेस जानेवाला कोई व्यक्ति कह रहा है
कि 'मेरी प्रियाने अपनी आँसु-भरी आँखोंसे आकाशमें बादलकी
शीभा देखकर मुझसे किसी-किसी प्रकार यह आधी-सी बात
कही कि 'हे प्यारे ! यदि घाप चले जायेंगे...' और फिर मेरा
बस्त्र पकड़कर पैरोंसे भरती कुरेदने लगी । इस प्रकार उसने कुछ
देखा किया कि मुझसे कुछ कहते ही नहीं बन पड़ा ॥ ६ ॥
रूठी हुई नवेलीका जो क्रोध पतिके बार-बार हाथ जोड़ने
और सखियोंके समझाने-बुझानेपर भी कुछ भरके खिचे
॥ ७ ॥ नहीं हुआ, उसी क्रोधको, कामदेवकी लक्ष्मणके समान की
कचोटनेवाले किसी विद्योहीके गीतने, इस प्रकार टुकड़े-टुकड़े
कर दिए जैसे साँपको मोर टुकड़े-टुकड़े कर देता है ॥ ८ ॥
वद्यपि खटके हुए बाजोंसे वके हुए कानोंमें मोरकी हूँ भी
नहीं पड़ी, उसकी जम्बी-जम्बी साँसोंसे कुरैयाके फुत्तकी सीली
गन्ध भी डार मानकर उसकी नाकतक नहीं पहुँची और उसकी
आँसुभरी आँखोंके सामने परिचित सुन्दर वस्तुएँ भी नहीं आईं

किर भी बादलोंसे बँधियाली तथा जगु वियोगिनियोंको सताए
॥ ९ ॥ डाल रही है ॥ १० ॥ हे नाच वर्षाकाल ! विद्योहसे दुधती और
दुधती बेचारी एक नवेलीका प्राण लेनेके लिये यह तुमने क्या
व्यर्थका पसारा फैलाया है कि बादलोंसे आकाश भर दिया,
नये जलसे भरती भर दी, विजलीकी लताओंसे दिशाएँ पूर
दीं, जल-धाराओंसे सारा आकाश धा दिया, कुरैयासे मज्जल
भर दिए और बादसे नदियाँ भर दीं ॥ ११ ॥ प्रियतमके
वियोगरूपी दुःखसागरमें डूबी हुई मुक्त दीन वियोगिनीको
देखकर कदम्बके परागसे जड़े से पवन बहना चाहें तो भले ही
कहें, मोर भी बड़े बाबूके साथ भावना चाहें तो भले ही नाचें और
जलसे भरे हुए गम्भीर बादल गरजना चाहें तो भले ही गरजें
पर अभी निदुर विजली ! तू तो स्त्री है, तू क्यों चमके जा
रही है ! मैं भी तो तेरी ही जैसी स्त्री हूँ ॥ १२ ॥ हे बादलो !
अपना बरसना बन्द कर दो, तुम्हारी व्यर्थकी वर्षासे यहाँ
कोई लाभ नहीं है । तुम जहाँ चाहो, किसी दूसरी दिशामें चले
जाओ क्योंकि यहाँ ऐसा कोई वन, मार्ग या भरतीका क्षण
नहीं बचा है जो विरहिकी नवेलियोंके आँसुओंसे भर न
गया हो ॥ १३ ॥ जिस समय ठण्डे जलकी फुहारें छिपे हुए
शीतल पवन बहने लगा उस समय उसकी शीतलताके डरसे
शोकरूपी आगकी सुलगती हुई भट्टीवाले वियोगिनीके हृदयमें
कामदेव मानो अत्यन्त शीघ्रताके साथ प्रवेश कर गया

करतलधृतया दुःखितालीजनेन । सौत्करणं मुक्तकण्ठं
कठिनकुचतटाधातशीर्णाश्रुबिन्दु स्मृत्वा स्मृत्वा
प्रियस्य स्खलितमृदुवचो रुचते पान्थवध्वा ॥ १३ ॥
सखि हे पश्य रसमयं जलधररसमयं समुज्ज्वलम् । विल-
सति कापि बलाका कापि बलाका मुदं घञ्जे ॥ १४ ॥

अधोतः—प्राचीमहीधरशिलाविनिवेशितस्य धारा-
धरस्फुरदयोधनताडितस्य । तप्तायसस्य तपनस्य
कणा विकीर्णाः खद्योतपोतसुपमां स्फुटमावहन्ति ॥ १५ ॥

हंसः—तटमुपगतं पद्मे पद्मे निवेशितमाननं प्रति-
पुटकिनीपञ्चच्छायां मुहुर्मुहुरासितम् । मुहुरुपगतैरक्षैः
कोष्णीकृता जलवीचयो जलदमलिनां हंसेनाशां
विलोभ्य पिपासता ॥ १ ॥ हन्तेयं परितः प्रसारित-
तमःपुञ्जा पयोदाबली गर्जन्ती पुरतः पिशाच-
दयिताकाराऽऽगता दृश्यते । तस्मान्नात्र सुखाय
हन्त वसतिः स्यादित्यतिव्याकुलो हंसो याति

॥ १२ ॥ आधी रातके समय बादलकी गरज सुनकर वियोगिनी
नायिकाके हाथ-पैर फूल गए और वह बबराहटके मारे धरतीपर
बिड़े बिछावनपर गिर पड़ी, उस समय उसकी सलियोंने
हुली होकर उसे हाथका सहारा देकर सँभाल लिया और
तब वह अपने कठोर स्तनोंपर आँसूकी हँई गिराती हुई
प्रियतमकी पुरानी प्रेम-भरी बातोंका स्मरण कर-करके धाड़
मार-मारकर रोने लगी ॥ १३ ॥ हे सखी ! इस (जल, मंगार)
से भरी हुई इस बर्षाको तो देखो, जिसमें कहीं बगुनी तो
आँसूखियों कर रही हैं और कहीं बगुनी हँपसे नाच रही हैं ॥ १४ ॥

जुगुनु : उदयाचलकी चट्टानपर बादल-रूपी कोढ़के बगले
जो यह तप हुए कोढ़के समान जाल सूर्य पीटा गया उसीकी
उड़ी हुई चिनगारियों जुगुनु बनकर चमक रही हैं ॥ १ ॥

हंस : प्यासे हंसने देखा कि सब दिशाएँ बादलोंसे छाई
हुई हैं, अतः उसने जलाशयके तीरपर आकर वहाँ प्रत्येक
कमलपर अपनी चोंच लगाई, बार-बार एक-एक कमलकीकी
छाँहमें बैठा और जब वहाँ भी उसे चैन न मिली तो उसने
बार-बार बहते हुए आँसुओंसे वह सारा जलका प्रवाह गरम
कर दिया ॥ १ ॥ 'आह ! चोर अन्धकार फैजाती हुई वह
मेघोंकी घटा पिशाचिनीकी भौंति गढ़गढ़ाती हुई चली आ
रही है अतः अब यहाँ रहनेमें सुख नहीं है !' यही सोचकर
मानो हंस अपना सारा पुरुषार्थ छोड़कर ब्याकुल होकर अपने
मानसरोवरको उड़ गया ॥ २ ॥

विहाय सर्वकरलोचोगं मिजं मानसम् ॥ २ ॥

शरद्गर्जनम्—अतिशयशालम्बिपयोधरेयं शुभीम-
वत्काशविकासिकेशा । अतीतलावण्यजलप्रवाहा
प्रावृट् जरां प्राप शरच्छलेन ॥ १ ॥ अथ प्रसन्नेन्दुमुखी
सिताम्भरा समाययाधुत्पलपद्मलोचना । सपङ्का
श्रीरिष गां निषेवितुं सहस्रबालव्यज्जना शरद्वधूः ॥ २ ॥
अथोपगूढे शरदा शशाङ्के प्रावृत्त्ययौ शाश्वतविक-
टाक्ष्ण । कासां न सौभाग्यगुणोऽङ्गनानां नष्टः परिभ्रष्ट-
पयोधराणाम् ॥ ३ ॥ अनुवनं वनराजिवधूमुखे बह-
रागजवाधरसाक्षौ । विकचबासुदलावल्लवोऽधिकं
रुचिरे रुचिरेक्षयविभ्रमाः ॥ ४ ॥ अपाकृत्याशेषा-
रूपि च घनजालानि परितस्तमोऽधूमस्तोमोऽधूमसि-
निमानं च तवन्तु । शरच्चन्द्रः शिरपी रतिपतिमुदेऽसौ
निजकरैः सुधासन्धोद्गर्द्भुवनभवनं पाण्डुरयति ॥ ५ ॥
अपामुहृत्तानां निजमुपदिशन्त्या स्थितिपदं ददत्या

शरद्का वर्णन : बोले होकर लटके हुए बादलरूपी
स्तनोंवाली, उबले होकर लिङ्गते हुए कँसरूपी केटीवाली तथा
जलप्रवाहरूपी सौन्दर्यसे रहित वह वर्षा अब शरद् ऋतुके
आगमनके रूपमें हुई हो रही है ॥ १ ॥ कमलके साथ होनेसे
लक्ष्मी-सी जान पड़नेवाली, निर्मल चन्द्रमा-रूपी मुखवाली,
निर्मल आकाश-रूपी बर्षावाली तथा कमलकी पङ्क्तिवर्ती-सी
कौंक्रीवाकी शरदरूपी नवेली अपने हँसरूपी चँवरोंके साथ
पृथ्वीपर बसनेके लिये आ पहुँची है ॥ २ ॥ शरदरूपी नायिकाके
जब चन्द्रमाको गले लगाया तब वर्षारूपी नायिकाकी दिखली-
रूपी चितवन टण्डी पड़ गई क्योंकि गिरे पयोधर (स्तन,
बादल) वाली किन स्त्रियोंकी शोभा नष्ट नहीं हो जाती
॥ ३ ॥ वनमें गहरे जाल रङ्गके जपाकुसुम ही जिसके सुन्दर
ओठ थे, उस वादिका रूपी नायिकाके मुखमें खिले हुए क-
सरैयाके फूलोंमें गूँजते हुए और ही सुन्दर कौंक्रीके समान मन
भुजा रहे थे ॥ ४ ॥ शरद्के चन्द्रमा-रूपी चतुर कारीगरने कामदेवकी
प्रसन्न करनेके लिये पहले तो चारों ओर घाए हुए बादलरूपी
आँक इलाए, फिर चँधरे-रूपी धुँवका कालापन मिटाया और
फिर अपने सुधा (अमृत, प्यूनकी चारा) से भीगे कों
(किरकों, हावों) से त्रिभुवन-रूपी घरको उज्जला कर दिया है
॥ ५ ॥ शरद् ऋतुने उज्जलकर बहते जलको स्थिर होकर
बहना सिखाया, धानके पीधोंमें बाँसें आ जानेपर उन्हें मुँके
रहना सिखाया तथा ओरींका मदरूपी बिच भर दिया । इस

शालीनामवनमिमुदारे सति फले । मयूरानामुग्रं विष-
मिष हरन्त्या मदमहो कृतः कृत्स्नस्यायं विनय
इव लोकस्य शरदा ॥ ६ ॥ अपीतहीवकादम्बमसंख-
मलाम्बरम् । अप्रसादितसूक्ष्मायु जगदासीन्मनोरमम्
॥ ७ ॥ अमी पृथुस्तम्यभृतः पिशङ्गतां गता विपाकेन
फलस्य शालयः । विकासि वप्राम्भसि गन्धसूचितं
नमन्ति निघ्रातुमिवास्थतोत्पलम् ॥ ८ ॥ अमो समुद्धूत-
सरोजरेणुना हता इतासारकणेन वायुना । उष-
गमे दुधरिता इषापदां गतिं न निश्चेतुमलं शिलीमुखाः
॥ ९ ॥ अर्धं सुप्तो निशायाः सरभससुरतायाससन्-
दृशयाङ्गः प्रोद्भूतासहृदृषो मधुमदचिरती इर्ध्वपृष्ठे
प्रभुजः । सम्भोगकान्तकान्ताशिधिलभुजलतार्वजितं
कर्करीतो ज्योत्स्नाभिन्नाङ्गुधारं न पिबति सलिलं
शारदं मन्दपुण्यः ॥ १० ॥ असाधनास्थापरपावधीरितः
सरोरुहिण्या शिरसा नमन्निपि । उपैति शुष्यन्कलभः

प्रकार अपने सारे संसारको मानो नष्टताका पाठ पढ़ा दिया
है ॥ ६ ॥ शरद के आते हैं बिना मदिरा के ही मतवाले
हो गए, आकाश भी बिना ओष ही निर्मल हो गया और
पानी भी बिना जाने ही स्वच्छ हो गया ॥ ७ ॥ मोटे-मोटे
हृदयोंवाले तथा पककर पीले पड़े हुए ये भान, प्यारियों के
जल में किले हुए सुगन्ध-भरे नीले कमल को सूँघने के लिये ही
माने लगे जा रहे हैं ॥ ८ ॥ कमल के पराग में बसे और
ओस की बूँदों से भरे हुए वायु की ओर खिंचे हुए और इस
प्रकार अपने मार्ग का निर्धारण नहीं कर पा रहे हैं जैसे बिपति
पड़ने पर दुश्चरित्र व्यक्ति का कहीं ठौर-ठिकाना नहीं जगता
॥ ९ ॥ सम्भोग की अत्यन्त यकावट से डीले शरीरवाला वह
मनुष्य अत्यन्त घमाता है जो अभी रात तक नींद लेने के
परचाए मदिरा का मद डतर जाने पर छत पर प्यास के मारे
जागकर सम्भोग से चकी हुई नायिका के कोमल-कोमल हाथों से
गह्रुए से उकसा हुआ और चाँदनी की धार से मिला हुआ
शरद ऋतु का जल पीने को नहीं पाता ॥ १० ॥ मुकी हुई
काल की बालों के प्रयाग करने पर भी जब गुमान-भरी कमलिनी-
ने उसकी ओर से आँखें फेर लीं तो वे भान की बालें जल के
साथ-साथ सूख-सूखकर काम से तपे हुए व्यक्ति के समान
पीची पड़ गई हैं ॥ ११ ॥ परदेस में गए हुए जोग जब नीचे
कमलों में अपनी प्यारी की काली-काली आँखों की कलक पाते
हैं, मतवाले इंसानों के कुजन में अपनी प्यारियों की सुनहली

सहाम्भसा मनोभुषा तप्त इवाभिपारुताम् ॥ ११ ॥
असितनयनलक्ष्मीं लक्ष्मिन्वोत्पलेषु कश्चितकनककाञ्चीं
मसहंसस्वनेषु । अधररुचिरशोभां बन्धुजीवे प्रियाणां
पथिकजन इदानीं रोदिति भ्रान्तचित्तः ॥ १२ ॥ अहो
वाणस्य सन्धानं शरदि स्मरभूपतेः । अपि सोऽयं
त्वियामोशः कन्याराशिमुपागतः ॥ १३ ॥ आकम्प्य-
न्फलभरानतशालिजालान्धान्तर्ध्वंस्तरुधरान्कुसुमावन-
न्वान् । उन्फुलपङ्कजघनां नलिनां विधुन्वन्पूनां मनश्च-
लयति प्रसभं नभस्थान् ॥ १४ ॥ आसादितप्रकटनिर्म-
लचन्द्रहासः प्राप्तः शरत्समय एव विशुद्धकान्तः ।
उत्साय गाढतमसं घनकालमुग्रं रामो दशस्थमिष
सम्भृतयन्धुजोयः ॥ १५ ॥ इतश्चन्द्रस्तान्द्रः स्मरमय-
व्यस्तसन्धिमधुरः स्फुरन्मुग्धाकेलिस्मितमिध मयूखैः
सुखयति । खकोराणाञ्चकं कुमुदसमुदायाऽपि च
शरत्शारम्भेऽमुष्मिन् समसमयमस्त्यधिकसति ॥ १६ ॥

करबनी की लक्ष्मी की आनक पाते हैं और रुपहरिया के फूलों में
उनके निचले आँखों की रसभरी चमक पाते हैं तब तो वे देवारे
अपनी सब सुध-धुध भूलकर हाव मारकर रंगे लगते हैं ॥ १२ ॥
शरद ऋतु में महाराज कामदेव और कंसदेवों के फूलरसों बाणों का
कैसा अच्छा मेल है कि उस बाण के लगते ही तेजस्वी सूर्य
भी कम्पा राशि (कम्पाओं का कुण्ड, कम्पा राशि) में जा
पड़ते हैं ॥ १३ ॥ शान से भरी हुई बालियों के भार से झुके हुए
भान के पीछों को कपाता हुआ, फूलों से लदे हुए सुन्दर बूँदों को
नचाता हुआ और कमलों से भरे हुए तालों की कमलिनीयों को
हिलाता हुआ शीतल वायु वसपूर्वक युवकों का मन भकभोरे डाल
रहा है ॥ १४ ॥ चमकती हुई तलवार धारण करने से अत्यन्त
सुन्दर जगनेवाले और अपने बन्धुओं के जीवन की रक्षा करनेवाले
रामने जैसे अत्यन्त अभिमानि रावण का नाश किया था उसी
प्रकार निर्मल चन्द्रमा के प्रकाश से युक्त तथा अत्यन्त सुन्दर
रुपहरिया के फूलों को खिलानेवाला यह शरत्काल, अन्धकार से
भरे हुए मयूर चर्पाकाल का नाश करके आ पहुँचा ॥ १५ ॥
शरद ऋतु की रात्रि प्रारम्भ होते ही बचपन और यौवन के
बीच की कामभरी अवस्था के समान तथा हठलाकर क्रीड़ा करती
हुई नवेली की मुस्कान के समान मनोहर चन्द्रमा जैसे ही अपनी
आँखों से सुख देने लगा वैसे ही चकोर और कुमुदों के समूह
भीतर-ही-भीतर खिल उठे ॥ १६ ॥ भान पककर सुहावने
दिखाई देने लगे हैं, नदियों का पानी उतर गया है और अब

उपैति सस्यं परिणामरम्यतां नदीरनौद्धत्यमपङ्कता
महीम् । नवैर्गुणैः सम्प्रति संस्तवस्थिरं तिरोहितं प्रेम
घनागमधियः ॥ १७ ॥ एकेन चुलुकेनाधिनिपीतः
कुम्भजेन यत् । तस्योदयेऽन्तःकालुष्यं त्यजन्त्यापो
भयादिव ॥ १८ ॥ येन्द्रं धनुः पाण्डुपयोधरेण शरदधा-
गार्द्रनखतताभम् । प्रमोदयन्ती सकलकृमिन्दुं तापं
रवेरभ्यधिकञ्चकार ॥ १९ ॥ कदा नु कन्यागमनप्रधादं
भक्षालयेयञ्जगति प्रकटम् । इतीव भास्वान्परिवृद्ध-
तापस्तुलां विशुद्धचर्यामिवाकरोह ॥ २० ॥ कनकभङ्ग-
पिशङ्गदलैर्वधे सरजसारुणकेसरचारुभिः । प्रियवि-
मानितमानवतीरुपां निरसनै रसनैरवृथार्थता ॥ २१ ॥
करकमलमनोहाः कान्तसंस्तकहस्ता वदमविजित-
चन्द्राः काञ्चिदम्यास्तकुर्याः । रजितकुसुमगन्धि
प्रायशो यान्ति वेश्म प्रयत्नमदनहेतोस्त्यक्तसङ्गीतरागाः
॥ २२ ॥ कङ्कारपद्मकुमुदाभि मुहुर्बिधुन्वस्तत्सङ्गमाद-

धिकशीतलतामुपेतः । उत्कण्ठयत्यतितरां पवनः
प्रभाते पत्रान्तलशतुद्दिनाम्बुविधूयमानः ॥ २३ ॥ कार-
एडवाननविघटितवोचिमालाः कादम्बसारसकुसाकु-
लतीरदेशाः । कुर्वन्ति हंसविरुतैः परितो जनस्य प्रीतिं
सरोरुहरजोरुणितास्तटिन्यः ॥ २४ ॥ काशांशुका
विकचपद्ममनोमयफत्रा सोन्मादहंसरचनूपुरनावरम्या ।
आपकशालिरुचिरानतगात्रयष्टिः प्राप्ता शरन्ववधूरिव
रूपरम्या ॥ २५ ॥ काशाः क्षीरनिफाशा वधिसरवर्णानि
सप्तपर्णानि । नवमीतनिभश्चन्द्रः शरदि च तद्रूपमा
ज्योत्स्ना ॥ २६ ॥ काशैर्महो शिशिरक्षीधितिना रजस्यो
हंसैर्जलानि सरितां कुमुदैः सरांसि । सप्तकृदेः कुसु-
मभारनतैर्वनास्ताः शुक्लीकृतान्युपवनानि च माल-
तीभिः ॥ २७ ॥ कृतमदं निगदन्त इवाकुलीकृतजगद्-
यमूर्जमतकजम् । घबुरयुक्त्वदशुक्लसुगन्धयः सतत-
गास्ततगानगिरोऽलिभिः ॥ २८ ॥ कृताधधानं जितन-

शरद्वे के नये गुल देलकर जोगोंका मन भी वषांकी शोभासे उज्ज्वल
गया है ॥ १७ ॥ शरद्वेमें अगस्त्यके उदय होने ही जलने मागो
इसी वरसे अपने भीतरकी मज्जिता छाँड़ दी कि इस अगस्त्यने
एक ही चुल्लूसे सारा समुद्र सोख लिया था ॥ १८ ॥
जैसे किसी नवेलीके स्तनोंपर किसी दूसरेके हाथसे जगे
नखतक के देखकर व्यभिचारी तो प्रसन्न होता है किन्तु उसका
पति दुःखी होता है, उसी प्रकार जलने पयोधर (बादल,
स्तन) पर तत्काल जगे हुए नखतक के समान दिखाई देनेवाले
इन्द्रधनुषकी छाप लिए हुए शरद्वेने कलहो चन्द्रमाको प्रसन्न
(स्वच्छ) कर दिया और सूर्यका ताप बड़ा दिया अर्थात्
शरद्वेमें चन्द्रमा निर्मल हो गए और सूर्यकी किरणोंमें तीव्रता
आ गई ॥ १९ ॥ 'कन्या (कन्या, कन्यारारि) से संयोग
करनेका जो मेरा अपवाद संसारमें फैला है, इसे मैं कर मिटा
दालूँ !' इसी चिन्ता में तपता हुआ सूर्य मागो अपनी
शुद्धिके लिये तुला (तुला शशि, तराजू) पर चढ़ गया
॥ २० ॥ सोने के टुकड़े के समान पीछी पंखुवियोंवाले तथा
परागसे भरे हुए बाल केसरवाले असनाके वृक्ष, प्रियतमोंसे
डुकराई जानेके कारण रुठी हुई चिन्तोंका कोष दूर करते हुए
अपना नाम सार्थक कर रहे थे ॥ २१ ॥ चन्द्रमासे भी अधिक
सुन्दर मुखवाली नवेलियों शरद्वे ऋतुमें अपना सब गाना-
बजाना छोड़कर अत्यन्त कामातुर होकर अपने प्रेमियोंके
हाथोंमें अपने कमल जैसे हाथ डालकर फूलोंकी सेजवाले

घरोंमें पैठो चली आ रही हैं ॥ २२ ॥ प्रातःकाल पक्षीपर
पक्षी हुई घोसकी वृद्ध टपकता हुआ, श्वेत और लाल कमलों
तथा कुमुदोंके बार-बार हिला-हिलाकर उनसे छू जानेके कारण
अधिक शीतल होकर धीसे-धीसे बढ़ता हुआ पवन अत्यधिक
मस्त बना देता है ॥ २३ ॥ जिन नदियोंका जल कमलके
परागसे लाल हो गया है, जिनपर हंस कूज रहे हैं, जिनकी
सहारे जल-पक्षियोंकी चोंचोंसे टकरा रही हैं और जिनके
तीरपर कदम्ब और सारस पक्षियोंके फुल्ल घूम रहे हैं वे नदियाँ
शरद्वे ऋतुमें बड़ी सुहावनी लगती हैं ॥ २४ ॥ फूले हुए कौंसके
कपड़े पहने, सस्त हंसांकी बोलीके सुहावने पावज बाँधे, पके
हुए धानसे अधिक मनोहर शरीरवाली और लिले हुए
कमल के समान सुन्दर मुखवाली शरद्वे ऋतु अब नई म्याही
हुई रूपवती दुबहिलके समान आ पहुँची ॥ २५ ॥ शरद्वे ऋतुमें
कौंसके फूल तो दूधके समान, चितवनके फूल दहीकी मलाईके
समान, चन्द्रमा मक्खनके समान और चोंदनी मड़ेके समान
दिखाई देने लगी ॥ २६ ॥ कौंसकी आदिपौने भरतीकी,
चन्द्रमाने रातोंको, हंसोंने नदियोंके जलको, कमलोंने
तालावोंको, फूलोंके कोमले फुले हुए क्षतिवगके बिरबोंने
अज्ञको और माछतीके फूलोंने फुल्लवारियोंका उज्जता कर
दाला है ॥ २७ ॥ शरद्वेके जिस पवनमें चितवनके फूलोंके
गुच्छोंकी सुगन्ध भरी थी और जो औरोंके स्वरोंमें गीत गाता
चल रहा था वह मागो त्रिभुवनको आकुल कर देनेवाले

हृद्यध्वनौ सुरकगोपीजनगीतनिःस्वने । इदं जिघत्सा-
मपहाय भूयसीं न सस्यमभ्येति मृगीकदम्बकम् ॥२६॥
केदार पद्म कलमाः परिणामनम्राः प्राचीनमामलक-
मृध्यति बालनीलम् । उर्वारकं स्फुटति निर्गत-
गर्भगन्धमल्लीभवन्ति च जरत्रपुलीफलानि ॥ ३० ॥
केशान्नितान्तघननीलधिकुञ्जिताग्रानाधूरयन्ति वनिता
नवमालतीभिः । कर्णेषु च प्रवरकाञ्चनकुण्ड-
लेषु भीलोत्पलानि विविधानि निवेशयन्ति ॥ ३१ ॥
कापि कापि तिरोहृतं भुवि भयादम्भोमुचामा-
गतैर्ज्योत्स्नासञ्चयमिन्दुना गतघनास्कन्दाय तस्मै
पुनः । पृथ्वी सधर्मदीदृशस्तमिव प्रक्षीयमाणा-
म्भसा सिन्धूनां पुलिनच्छलेन कुमुदप्रस्ताररूपेण च ॥ ३२ ॥
शुण्णर्माक्तकपरागपाण्डुरः शोभते स्म दिवि
चन्द्रिकाभरः । मेघबन्धनधमुक्तमोक्षितुं क्षोरनीरधि-

रिचिन्दुमागतः ॥ ३३ ॥ गोधूमसर्पिर्वमुद्गधान्यं रक्त-
स्वती रेचनमस्ति मान्यम् । हंसोदकं निककगायमिष्टं
घनान्तकाले लघु दुग्धमिष्टम् ॥ ३४ ॥ चञ्चन्कादम्बप-
क्षप्रचलितकुमुदस्नोमसारभ्यलुभ्यङ्गभ्यङ्गप्रसङ्गप्रक-
टितयुगपत्कोमुदीध्वान्तपूरः । कासारं लालिताङ्गः
शुचिसिचयहिमंशोरकर्पूरमुक्तामालाशाली प्रदोषे
शरदि शशिकरानाश्रयसाधपृष्ठे ॥ ३५ ॥ चञ्चन्मनो-
लक्षणीरसनाकलापाः पर्यन्तसंस्थितसिताण्डजपङ्क्ति-
हारः । नद्यो विशालपुलिनान्तनितम्बयिभ्या मन्वं
प्रयान्ति समदाः प्रमदा इवाच ॥ ३६ ॥ चन्द्रायते शुक्ल-
रुचापि हंसो हंसायते चादगतंन कान्ता । कान्तायते
स्पर्शसुखेन वारि वारीयते स्यञ्चनया विहायः ॥ ३७ ॥
खेतः कर्षन्ति सप्तच्छदकुसुमरसासारसारभ्यलुभ्यङ्ग-
ङ्गीसङ्गीतभङ्गधुतिमुभगादिशो वासराः शारदीनाः ।

मत्तवाले कार्तिकरूपी हाथीके जानेकी सूचना दे रहा था
॥ २८ ॥ बड़े भीड़े गलेवाली गोपियोंके जिस गीतकी ध्वनियोंने
मोरकी मधुर कृजको भी हरा दिया है उन्हें प्यान देकर सुनता
हुआ यह हरिणियोंका भुण्ड खेती भरनेकी प्रवृत्ति हृष्टाको
रोककर खेतोंकी ओर न जाकर गीतोंमें कान लगाए खड़ा है
॥ २९ ॥ साठी धानकी बाले खेतोंमें ही पककर झुक गई हैं ।
खेतकी बाड़ोंमें आँवलेके छोटे-छोटे नीले-नीले चौधे शोभा पा
रहे हैं, कचरी अपने भीतरसे गन्ध फैकता हुआ फर रहा
है और खीरेके फल पककर खड़े हो रहे हैं ॥ ३० ॥
शरदमें खिर्वाँ अपनी अपनी घुँघराकी काकी खेतोंमें नये
माकलीके फूल गूँथ रही हैं और अपने जिन कानोंमें वे सोनेके
बविया कुण्डल पहना करती थीं उनमें अनेक प्रकारके नीले
कमल लटका रही हैं ॥ ३१ ॥ बावलोंके आ जानेसे दरके मारे
पृथ्वीपर कहीं-कहीं चाँदनीका जो ढेर छिप गया था उसे ही
मेघोंका ढर बीत जानेपर चन्द्रमाने मानो सूखे हुए जल, समुद्रका
तट और खिखे हुए कुमुदोंके फैलावके बहाने (उस चाँदनीको)
सारी विस्तृत पृथ्वीके दर्शन करा दिए ॥ ३२ ॥ शरद
ऋतुमें पिसे हुए मोतियोंके चूँके समान उजली चाँदनी-
वाला चन्द्रमा आकाशमें ऐसा सुन्दर दिखाई दे रहा था
मानो मेघोंके बन्धनसे छूटे हुए अपने पुत्र चन्द्रमाको देखनेके
खिने खीरसागर (द्वका समुद्र) का पहुँचा हो ॥ ३३ ॥
शरद ऋतुमें गेहूँ, धी, जौ, मूँग आदि अन्न और रक्तुति तो
उत्तम रेषक (छद्म शौच जानेवाले) माने गए हैं तथा

ठंडा जल, कड़वा, कसैला, मोठा रस तथा थोड़ा दूध हितकारी
माना गया है ॥ ३४ ॥ जिस तालाबमें उड़ते हुए हंसोंके पंखोंसे
खिलते हुए कुमुदोंपर सुगन्धके सांभसे आकर गूटे हुए भीरे ऐसे
जान पड़ते हैं मानो एक साथ चाँदनी और खीरेस फैल
रहा हो उस तालाबमें स्नान करके पवित्र वस्त्र और पाखेके
समान उजले शीतल लस, कपूर और मोतियोंकी माला
पहने कोई पुरुष शरद ऋतुकी रातके प्रथम पहरमें खेतपर
जाकर चाँदनीका आनन्द लेने लगा ॥ ३५ ॥ उजलती
हुई सुन्दर मखलियाँ ही जिनकी करबनी हैं, तीरपर
बैठी हुई उजली खिखियोंकी पातें ही जिनकी माछाएँ हैं और
ऊँचे-ऊँचे रेतीले टीले ही जिनके बड़े-बड़े गोख नितम्ब हैं, वे
मदियाँ, शरद ऋतुमें उसी प्रकार धीरे-धीरे बढ़ रही हैं जैसे
बड़े-बड़े नितम्बोंवाली मदमाती नवेली कामिनियाँ कर अपनी
और माछा पहने हुए धीरे-धीरे चली जा रही हों ॥ ३६ ॥ शरदमें
अपने उजलेपनसे हंस भी चन्द्रमासा दिखाई पड़ता है, नवेली
भी अपनी सुन्दर पाखसे हंसकी बराबरी कर रही हैं, छूनेमें ठण्डा
लगनेवाला जल खीके समान शीतल लग रहा है और स्वच्छ
हो जानेके कारण आकाश भी जलके समान ही हो गया है
॥ ३७ ॥ शरद ऋतुमें खितवनके फूलकी रसधाराओंके सुगन्धकी
ओभी भौरियोंकी गानेकी ध्वनिसे सब दिराएँ गूँज रही हैं
और तबूब सूर्य भी खिखे हुए कमलके मुखवाली, तथा उड़ते
हुए भौरोंकी छोटीवाली कमलिनीके साथ चटखेलियाँ करने
लगा है ॥ ३८ ॥ खूबने अपनी किरणोंके संसारमें फैले

किञ्च व्याकोशपङ्केरुहमध्वरमुखीं सञ्चरन्वञ्चरीकभ्रे-
लीवेणीसनाथां रमयति तरुणः पक्षिनीमंशुमाली ॥ ३८ ॥
जगति नैशमशीतकरः करैर्विधति वारिद्वन्द्वमयं
तमः । जलजराजिपु नैद्रमदिद्रवन्न महतामहताः क्व
च मारयः ॥ ३९ ॥ जगत्प्रसूतिर्जगदेकपावनी व्रजोप-
कण्ठं तनयैरुपेयुषी । घृति समश्रां समितिर्गवामसावु-
पैति मन्त्रैरिव संहिताहुतिः ॥ ४० ॥ जीमूतेषु महत्सु
लोकमपरं थासेषु तद्धान्ययाः केचिद्धारिमुद्यः कृशाः
प्रघलतस्तन्नाशशोकाद्रिव । मौनस्था इव शान्तगर्जित-
तया भस्मान्नुलिता इव श्वेताः प्राप्य तपोमयीमिव
दशमाशान्तभाजोऽभवन् ॥ ४१ ॥ तनुरुहाणि पुरोवि-
जितध्वनेर्ध्वलपक्षिहृद्गमकृजितैः । जगत्पुत्रसमयेव
शिक्षयिञ्चनः परिभयोऽरिभयो हि सुदुःसहः ॥ ४२ ॥
तारगणप्रवरभूषणमुद्वहन्ती मेघाघरोद्यपरिमुक्तशश-
ङ्गवक्त्रा । ज्योत्स्नादुकूलममलं रजनी दधाना वृद्धिं
प्रयात्यनुदिनं प्रमदेव बाला ॥ ४३ ॥ सीकणं रविस्तपति

हुए रात्रिके अन्धकार, आकाशमें जाए हुए बादलकपी
अन्धकार और कमलोंमें बसे हुए नीचेके अन्धकारको भगा
दिया । प्रतापी खोंकोंके शत्रु भगा कहीं नहीं मार काते हैं
॥ ३९ ॥ शरद् ऋतुमें संसारकी माता, संसारको पवित्र
करनेवाली और अपने वज्रोंके साथ गोठमें पहुँची वह
गाथोंकी टोली ऐसी सुन्दर दिखाई पड़ रही है मानो मन्त्रोंके
साथ ही हुई आहुतिर्याँ हों ॥ ४० ॥ शरद् ऋतुमें आकाशमें
झिड़फुट दिखाई देनेवाले बादल ऐसे जान पड़ते हैं मानो
उनके जो वर्षाजलके बड़े-बड़े बादल भाई दूसरे खोंकोंको चले
गए हैं उनके नियोगके दुःखमें ये दुबले पड़ गए हों, अपनी
गद्गदाहट बन्द करके मौन हो गए हों, बैराग्यके कारण भस्म
पोतकर उजले हो गए हों तथा इस प्रकार तपस्वी जैसा वेप
बनाकर धरतीके क्षीरपर जा बसे हों ॥ ४१ ॥ शरद्में मोरोंके
पङ्क्त मानो इस जलनसे गिर गए कि उनसे पङ्क्तवाले हंसोंकी
कूजनसे हमारी बोली हार गई है । सचमुच शत्रुसे किया हुआ
अपमान क्या असह्य होता है ॥ ४२ ॥ तारोंके सुहावने गहने
पहने हुए और चाँदनीकी उजली साड़ी सपेंटे हुए अलबेली
नवेलीके समान शरद्के दिनोंमें बादल हटे हुए चन्द्रमाके
सुँहवाली रात, दिन-दिन बढ़ती चली जा रही है ॥ ४३ ॥
शरद् ऋतुमें भीषण नये घनीके समान सूर्य अत्यन्त तपने
लगे हैं, जैसे उपकार न माननेवाला अनुपम अपने मित्रको

नीच इवाचिराज्यः शृङ्गं रुक्स्त्यजति मित्रमिवा-
कृतज्ञः । तोयं प्रसीदति मुनेरिव चित्तवृत्तिः कामं
दरिद्र इव शोषमुपैति पङ्क्तः ॥ ४४ ॥ ददतमन्तरिता-
हिमदीर्घिति खगकुलाय कुलायनिलायिताम् । जलद-
कालमयोधकृतं दिशामपरधाप रथाधयवायुधः ॥ ४५ ॥
दर्शयन्ति शरभयः पुत्तिनामि शनैः शनैः । नवसङ्गम-
समोडा जघनाभीव योषितः ॥ ४६ ॥ दिवसकरमयूक-
बोधमानं प्रभाते वरयुवतिमुत्तामं पङ्क्तं जृम्भतेऽद्य ।
कुमुदमपि गतेऽस्तं लीयते चन्द्रधिव्ये हसितमिव
वधूनां प्रोषितेषु प्रियेषु ॥ ४७ ॥ दूरं तोयधरान्धकार-
करिणां यूथेषु नष्टेष्वितो निष्कामस्तुदयाद्रिकम्हर-
भुवः कृत्वीकमह्ये मृगम् । तन्मोदकतजैरिवारुणकर-
प्राप्तप्रकटोदयः पश्यापं शरदिन्दुरद्य कुरुते शार्दूलवि-
क्रीडितम् ॥ ४८ ॥ इयमिदमत्यन्तसमं नीचे प्रभवि-
ष्णुता शरभेयम् । क्षेत्रेभ्यः प्राप्य फलं क्लेषु निशि-
ष्यते यस्याम् ॥ ४९ ॥ अन्ध्याः शरदि सेवन्ते प्रोजस-

कोड़ देता है वैसे ही एक युग भी अपनी क्षीर्णों गिरा रहा
है, मुनियोंके मनके समान अन्न निर्मल हो रहा है और
दरिद्रके समान कीचड़ अत्यन्त सूखता जा रहा है ॥ ४४ ॥
जिस वषाणें सूर्यको छिपा दिया था, चिदियोंको धोंसकोंमें ही
कद रहनेका आदेश दे दिया था और जिसमें दिशाओंका
ज्ञान नहीं हो पा रहा था उस वषाणें चक्रभारी कृष्णने
शरद्के रूपमें पाया ॥ ४५ ॥ शरद्के दिनोंमें नदियाँ अपने
धनों तटोंको इस प्रकार धीरे-धीरे छोड़ती हैं जैसे अपने
पत्तिके नये-नये समागमसे खगाती हुई छियाँ अपना जवन
धीरे-धीरे खोजती हैं ॥ ४६ ॥ शरद्में प्रातःकाळ जब सूर्य
अपने करों (किरणों) से कमलको जगाता है तब वह कमल
सुन्दरी युवतीके मुखके समान खिल उठता है और जैसे
त्रियके परदेस चले जानेपर छियाँकी मुक्कदाहट जाती रहती
है वैसे ही चन्द्रमाके छिप जानेपर कोई रुझा जाती है
॥ ४७ ॥ देखो, पनियल बादलोंके अन्धकारकपी हाथियोंके
सन्तुर्कोंके दूर भाग चुकनेपर, अपनी गोदमें एक युग लेकर
उस युगके रखते जवपथ करो (किरणों) की पैजाए हुए
अत्यधिक शोभित होता हुआ यह शरद् ऋतुका चन्द्रमा ठीक
सिंह जैसा आचरक करता हुआ उदयाचककी मुकासे निकल
रहा है ॥ ४८ ॥ नीचोंकी प्रसुवा और शरद् ऋतु दोनों एक-ही
दिखाई देती हैं, क्योंकि दोनोंमें ही क्षेत्र (सत्याग्र, क्षेत्र) से

चित्रशालिकान् । प्रासादौखीसखाः पौराः केदारौश्च
 कृषीवलाः ॥ ५० ॥ नद्यो यद्वन्ति कुटिलकमयुक्तिशुक्ति-
 रेखाङ्गुलपुलिनोदरसुप्तकुर्माः । एतास्तरङ्गितनुनोय-
 पलायमानमीनानुसारियकदसकरालफालाः ॥ ५१ ॥
 नमिताः फलभारेण नमिताः शालमञ्जरीः । केदारेषु
 हि पश्यन्तः केदारेषु विनिःस्पृहाः ॥ ५२ ॥ नष्टं धनु-
 र्वल्लभितो जलदोदरेषु सौदामिनी स्फुरति नाद्य विय-
 त्पताका । धुन्वन्ति पक्षपवनैर्न नभो यस्ताकाः पश्यन्ति
 मोक्षतमुखा गगनं मयूराः ॥ ५३ ॥ नारीनयननिगू-
 तमभ्युजमभसि निमज्जति त्रपया । मधुलुब्धाः पुनर-
 लयः करुणं कन्दन्ति गुञ्जितव्याजान् ॥ ५४ ॥ नौलनी-
 रवमिच्छोलकोज्ज्वले व्यामर्दयन्तले शरद्वधूः । चन्द्रमा-
 नममिष व्यसोकयस्तन्तुणोन्मिषितकंरवेक्षणाः ॥ ५५ ॥
 नृश्यप्रयोगरहिताग्निश्लिखो विहाय हंसावुपैति मदनो
 मधुत्परीताम् । मुक्त्वा कदम्बकुटजाञ्जुनसर्जनीपाम्भ-

जल (धन, धनज) लेकर खल (नाव, खलिदान) में रकवा
 जाता है ॥ ५६ ॥ वे पुरवासी धन्य हैं जो शरदमें रङ्ग-विराजे
 चिर्जीसे सजाई हुई अशरियोंमें अपनी नवेलियोंके साथ
 आनन्द लेते हैं और वे किसान धन्य हैं जो अपनी खियोंको
 साथ लेकर जड़कहाते हुए धानोबाली बगारियोंका आनन्द
 लेते हैं ॥ ५७ ॥ शरदकालमें वे नदियाँ टेढ़ी-मेढ़ी बह रही हैं
 जिनके सीपीसे चमकते हुए तटोंमें कतुप सो रहे हैं तथा
 जिनके लहराते हुए घोड़ेसे जलमें भागती हुई मछलियोंको
 पकड़नेके लिये बगुले भयङ्कर भयङ्क मार रहे हैं ॥ ५८ ॥
 बगारियोंमें अनाजके बोझसे झुकी हुई धनगिमत धानकी
 बालियोंको देखकर कीन ऐसे लोग हैं जो नवेलियोंका रस लेनेकी
 इच्छा न करने लगते हैं ॥ ५९ ॥ शरदके बादलोंमें न तो
 इन्द्रधनुष रह गए हैं, न बगुले ही अपने दिवा-दिलाकर
 आकाशको पङ्का भल रहे हैं और न मोरोंके कुण्ड ही अपनी
 चोंचें उठा-उठाकर आकाशकी ओर निहार रहे हैं ॥ ६० ॥ नवेलीके
 नेत्रोंसे अपमानित होकर खानके कारण कमल पानीमें डूब मरा
 है और परागके लोभी भीरे उसके बिलोहमें अपनी गुआरके स्वरसे
 बिजल-बिजलकर रो रहे हैं ॥ ६१ ॥ नीला बादलरूपी परदा
 हटते ही आकाशरूपी दर्पणमें सिले हुए कुसुदरूपी नेत्रोवाली
 शरद-रूपी बहु अपभा धन्यमुख देखने लगी ॥ ६२ ॥ शरदके
 कारण जिन मोरोंने आकाश बन्द कर दिया है उन्हें छोड़कर
 अब कामदेव बड़ी मीठी बोलीमें हन-भुन करनेवाले हंखोंके

मञ्जुदानुपगता कुसुमोद्गमधीः ॥ ६६ ॥ नेत्रोत्सवो
 हृदयहारिमरीचिभालः प्रह्लादकः शिशिरसीकरवारि-
 वर्षा । पन्युर्वियोगयियदिन्धशरत्तनानां चन्द्रो ददन्त्यति-
 तरां तनुमद्गतानाम् ॥ ६७ ॥ पतन्ति नास्मिन्विशदाः
 पतन्निशो धृतेन्द्रचापा न पयोदण्डयः । तथापि
 पुष्पानि नभः श्रियं परां न रम्यमाहार्यमण्डले गुणम्
 ॥ ६८ ॥ पयोदकेशेषु विरुध्य रोपास्त्रिकारप सा
 कोकनदायताली । वर्णवधूं र्वा श्रियमुद्ययन्ती प्रांढा
 सपत्नीय शरच्चकोशे ॥ ६९ ॥ पाथोदजालजटिलं
 मलिनं शरद्वहना । अन्यरं धावयामास चन्द्रिकाचय-
 वारिभिः ॥ ७० ॥ पूर्वं चारिधरप्रसङ्गसमयेनापूरितैः
 कुक्षिभिर्या गभिर्य इवातिभारगुरवा निरन्तरव्यतामा-
 गताः । एतास्सर्मान ता विभान्यकलुषाः क्षामाभि-
 रामाङ्गिकाः कृजन्सारसपोतपीनपयसां नद्यः प्रसृता
 इव ॥ ७१ ॥ भिक्षाञ्जनप्रजयकान्ति नभो मनोहं यधू-

वास पहुँच गया है और फूलोंकी सुन्दरता भी कदम्ब, कुटज,
 चर्मन, सजं और अशोकके वृक्षोंको छाँड़कर खतिवनके चिरवाँ-
 पर जा बसी है ॥ ६६ ॥ सबकी चोंचोंको सुहानेवाले जिस
 चन्द्रमाकी किरणें बरबस अपनी ओर मन खींच लेती हैं वही
 सुहावना और ठपटी किरणें बरसानेवाला चन्द्रमा शरदके
 दिनोंमें ठन नवेलियोंके अङ्ग भूने डाल रहा है जो अपने
 पतियोंके बिलोहके विप-बुझे बाणोंसे घायल होकर अपने
 घरोंमें पड़ी कलप रही हैं ॥ ६७ ॥ शरदके आकाशमें यद्यपि
 उजाले हंस नहीं उड़ रहे हैं और बादलोंमें इन्द्रधनुष भी नहीं
 निकला है फिर भी आकाशकी शोभा देखते ही बनती है
 क्योंकि जो वस्तुएँ स्वभावसे ही सुन्दर होती हैं उनमें बनावटी
 सुन्दरता लानेकी आवश्यकता नहीं होती ॥ ६८ ॥ कमल ही
 जिसके बड़े-बड़े नेत्र थे उस नई-नई धाढ़कर आई हुई शरद
 कतु-रूपी सौतने क्रोधपूर्वक बर्णरूपी नवेलीके बादलरूपी
 बाल पकड़कर उसे बाहर निकाल दिया और अपना अधिकार
 जमाकर प्रस्तन्न दिखाई देने लगी ॥ ६९ ॥ शरदरूपी नवेलीने
 बादलोंकी मीजसे भरे हुए आकाशको चँदनीके जलसे भी
 दिया है ॥ ७० ॥ पहले बादलोंके संयोगसे जिनकी कोलें भर
 गई थीं और जो गर्मियोंकी भाँति अधिक भारवालो हो
 जानेसे उपभोग करने-योग्य नहीं रह गई थीं वे ही नदियाँ
 अब स्वच्छ, दुबली-पतली और सुन्दर शरीरवाली हो गई हैं
 तथा उनमें सारसके बच्चे जो कूज-कूजकर पानी पी रहे हैं

कपुष्परजसाऽरुणिता च भूमिः । वषाश्च पककलमा-
वृतभूमिभागाः प्रोत्करन्त्यन्ति न मनो भुवि कस्य यूनः
॥६२॥ मधुभाविताशयानां सन्त्यपमानेऽपि नैव निर्वेदः ।
जीवनरुचि पश्याज्जं न्यक्कृतमपि नागरीनयनैः ॥६३॥
मधुमधुरिमभङ्गी भोजिरे हंसनादास्तुहिनपटललीलां
लेभिरे वारिवाहाः । क्षितिर्भवदपङ्का किञ्च रोलम्ब-
वालाघलिकलितनलिन्यः शैवलिन्यस्तदासन् ॥६४॥
मन्दानिलाकुलितचारुतराग्रशालः पुष्पोद्गममखको-
मलपल्लवाग्रः । मस्तद्विरेफपरिधीतमधुमसेकश्चिच्छं
चिदाग्नयति कस्य न कोविदारः ॥६५॥ मयूखैरेकद्वैः
कलभदशनच्छेदयिशदैल्लिखद्भिर्मैघान्ते तिमिरमुरसा
प्रेर्यमधुना । हरिस्माहेन्द्रीयं नवनिकपनिर्यङ्गरजतस्कृ-
रह्मणोघर्षैः कषयति निशाभतुङ्गदयम् ॥६६॥ मुखस-
रोजरुचं मदपाटलामनुचकार चकोरदृशां यतः । धृत-
मधातपमुत्सुकतामतो न कमलं कमलम्भयदम्भासि

उससे देखा जान पड़ता है मानो जब उन्होंने बच्चे जन
दिए हों ॥ ६१ ॥ घुटे हुए सर्जिनकी पियड़ीके समान गीला
सुन्दर आकाश, दुपहरिषाके फूलोंसे सजी हुई छात्र-लाव
घरती और पके हुए सुन्दर लेन इस संसारमें किस पुष्पका मन
होवाहोल नहीं कर देते ॥६२॥ जो मधु (मधिरा) पीकर मस्त
पड़े रहते हैं उन्हें अपमान होनेपर भी दुःख नहीं होता । इस
कमलको हाँ देखो, मधेलीके नयनोंसे अपमानित होकर भी
वह प्रसन्नतापूर्णक जिय जा रहा है ॥ ६३ ॥ शरद् ऋतुके कारवा
हंसोंकी कूतमें बड़ी मिठास आ गई, बादल भी जमे हुए हिमके
समान उजले दिखाई देने लगे, धरतीपर कोचद नहीं रह
गया और नदियोंकी कमलिनियोंपर औरोंके भुपड मँडराने
लगे ॥ ६४ ॥ जिस कोविदारके वृक्षकी टहनियोंकी नन्ही-नन्हीं
कुनगियोंको घीमा-घीमा पवन झुलाए ढाख रहा है, जिसपर
शेरकंठेर फूल खिले हुए हैं, जिसकी पत्तियाँ बड़ी कोमल हैं
और जिसमेंसे बहने हुए मधुकी धारको मस्त और चिरे-चिरे
चूस रहे हैं वह शरद् ऋतुमें किसका हृदय टुकड़े-टुकड़े नहीं कर
देता ॥६५॥ नई कसौटीपर उजली हुई चाँदीकी चमकीली रेशाके
समान रहवाली, हाथीके बच्चेके दाँतके टुकड़ोंके समान उजली
तथा यादलोंके बीच-बीच भरे हुए घने ओंधेरेपर कुछ खिलती
हुई-सी एक-दो किरणोंसे इस समय इन्द्रकी दिशा (पूर्व)
रातके स्वामी चन्द्रमाका उदय होना सूचित कर रही है ॥६६॥
बलमें खिचा हुआ और नई धूपके चमककर चकोरके समान

॥ ६७ ॥ मुखैरसौ विद्रुममङ्गलोदितैः शिखाः पिशङ्गीः
कलमस्य विभ्रतो । शुकावलिव्यर्कशरीरकोमला धनुः-
श्रियं गोत्रभिदोऽनुगच्छति ॥ ६८ ॥ यशसो वर्धमा-
नस्य जयतामिव भूभुजाम् । अवकाशाय वैपुल्यं प्रापु-
र्वातयना दिशः ॥ ६९ ॥ रम्यं हर्म्यतलं मघाः सुनयना
शुभ्रद्विरेफा लताः प्रोम्भोलन्नवमालतीसुरभयो वाताः
सचन्द्राः क्षपाः । यद्येतानि जयन्ति हस्त परितः
शलाह्यमोघानि मे तद्गोः कीदृगसी विवेकविभवः
कीदृकप्रदोघोदयः ॥ ७० ॥ राजीवमिव राजीवं जलं
जलमिवाजनि । अम्ब्रश्चन्द्र इषातन्मः शरत्समुदयोद्यमे
॥ ७१ ॥ यधूनयननिजितं मधुपकैतघाक्षीरजं शिवाक्ष-
वलयं दधन्मुष्करितं तदुद्वृक्षितैः । विधाय तपसि
स्थिति वननिवासि पोतातपज्जयाय जपति भुवं कमपि
मन्दमन्दं मनुम् ॥ ७२ ॥ विकचकमलवक्त्रा फुल्लनी-
सोत्पलाक्षी विकसितनयकाशब्धेतघासो वसाना ।

चाँसोवाली छियोंके मरसे काज मुल-कमलकी-सी कान्तिवाला
कमल शरद्में किसके हृदयमें हलचल नहीं मचा देता ॥ ६७ ॥
मूँगेके टुकड़ेके समान काज ठोरोंमें धानकी भूरी-भूरी बाखें
फिए हुए सिरसके फूलके समान कोमल सुगोंकी पार्त
आकाशमें इन्द्रधनुष-सी शोभा दे रही हैं ॥ ६८ ॥ दिखाई
मानो हसीलिये बादलोंको हटाकर विस्तृत हो गई कि
विजय करनेवाले महाराजोंके बढ़ते हुए यशको फैलानेके
लिये स्थान मिल सके ॥ ६९ ॥ कामदेव कहता है कि 'सुन्दर
अंतरियोंवाली कुतें, नई नवेजियाँ, मूँजते हुए भीरोंसे भरी
वेतें, माखतीकी सुगन्धसे भरा हुआ पवन और चाँदनी रात
आदि सदा डीक चोट पहुँचानेवाले ये हमारे शस्त्र जब चारों
ओर फैले ही हुए हैं तो हमारे सामने किसीका डींग मारना
और ज्ञान खँटना दोनों व्यर्थ ही हैं' ॥ ७० ॥ शरद् ऋतुके
आते ही कमल कथार्थमें कमलके समान, जल लक्षके समान और
चन्द्रमा चन्द्रमाके समान सुन्दर हो गया ॥ ७१ ॥ नवेजियोंके
नेत्रोंसे हारा हुआ कमल औरोंकी पार्तोंके रूपमें कदाचकी
माखा धारवा करके उनको गुझारके स्वरमें कुछ पाठ करता
हुआ, वन (पानी, वन) में स्थित होकर, धूप पीता हुआ
तथा चिरे-चिरे कोई विजयमन्त्र जपता हुआ निश्चय ही उन्हें
जीतनेके लिये तपस्या कर रहा है ॥७२॥ भगवान् करें, वह खिले
हुए उजले कमलके मुलवाली, फूले हुए गीले कमलकी चाँसोवाली,
सुन्दर कोईके शरीरवाली और फूले हुए कोंसकी लापी

कुमुदरुचिरकान्तिः कामिनीबोन्मदेयं प्रतिदिशतु शर-
द्वश्चेतसः प्रीतिमग्रधाम् ॥ ७३ ॥ विगतसस्यजिघत्स-
मघट्टयन्कलमगोपवधूर्नं मृगमजम् । श्रुततदीरितकोम-
लगोतकध्वनिमिपेऽनिमिपेक्षणमग्रतः ॥ ७४ ॥ विद्युद्-
द्विशिखावलीविलसितं निर्वाप्य सर्वाङ्गना भित्वा
कञ्जलकालिकाप्रणयिनीमम्भोदमूषामपि । उन्मीलन-
चन्द्रमण्डलमिपात्सङ्क्रान्तरागोज्ज्वलधीभाजं रस-
पिण्डमेव सहसा वर्णान्त्ययः कर्षति ॥ ७५ ॥ विधु-
वदनावदनजितं प्रयोधितमपि प्रसह्य मित्रेण । विचि-
नोति कवलनार्थं पद्ममलिच्छुभ्रतो गरलम् ॥ ७६ ॥
विपाण्डुभिर्म्लानतया पयोधरेश्वर्युताचिराभा गुणहे-
मदामभिः । इयं कदम्बानिलभर्तुरन्त्यये न दिग्बधूनां
कुशला न राजते ॥ ७७ ॥ विहाय धाम्बुमुदिते मदान्य-
यादरककण्डस्य रुते शिखरिह्नः । भ्रुतिः भ्रयन्पुन्म-
वहंसनिःस्वर्णं गुणाः प्रियत्वेऽधिकृता न संस्तवः

॥ ७८ ॥ विहारभूमेरभिघोषमुन्मुकाः शरीरजेभ्यश्च्यु-
तयुधपङ्क्तयः । असक्तमूर्धांसि पयः क्षरन्त्यमृकपायना-
नीध नयन्ति घेनवः ॥ ७९ ॥ वृडाहनेन विजडां सखि-
दुडनन्वं वेदान्तिनामिव मनः जन्वि नोग्मासीत् ।
चन्द्रे प्रभा युधनिवक्त्र इवाद्भुताभृद्विडङ्कयिन्वमिव
केकिहृतं न रेजे ॥ ८० ॥ व्योम कञ्चिद्रजनशहूमृगाल-
गौरैस्त्यक्ताम्बुभिर्लघुनया शतशः प्रयानैः । सञ्चन्यते
पवनवेगचलैः पयोदै रज्ज्वेव चामरशून्यरूपवीज्यमानः
॥ ८१ ॥ व्योमि विभ्रान्तजोमृते नारकाः प्रवकाशिरः ।
प्रलिधानहृतध्वान्ते चेनसीय चितिप्रभा ॥ ८२ ॥
शरदि कुमुदसहस्राढायवो चान्ति शोना विगतजलद-
कुन्दा दिग्विमाना मनोघ्रा । विगतकलुषमस्मः प्रधान-
पङ्का धारित्री विमलकिरणचन्द्रं व्योम नार्गाचञ्चिमम्
॥ ८३ ॥ शरसामर्थ्यं शरदि स्मरवीर्योर्जितं पश्य ।
अप्याजगाम सोऽयं कन्यां भाक्तुं त्रिषां नाथः ॥ ८४ ॥

पहलेवाली कामिनी बनकर जो मस्त शरद् ऋतु आई है वह
चाप जोगोंके मनमें नई-नई उमड़ें भरे ॥ ७३ ॥ जगहमके
महीनेमें धानकी रसवाली खरनेवाली नहेलीके गलेसे उड़ी
हुई मद भरे गीतकी तान सुनकर उसकी चोर कान लगाकर
एकटक बैठते हुए जो हरिण लेनी खरनेकी इच्छा रोंके लगे
ये उम्हें उस नहेली पालिनकी हँकनेकी आवरणकता हो नहीं
पड़ी ॥ ७४ ॥ वर्षाका अन्तिम समय विजली-रूपी धमिकी चमकनी
हुई जपटोंकी जुझाकर तथा काजलकी कालिमावाली बादलों-
रूपी परिपाकी सजावरकी भली-भाँति फोड़कर अब उदय होते
हुए नये चन्द्रमण्डलके रूपमें अत्यन्त प्रेम और उमङ्गी
शोभासे भरे रसके घड़ेकी सहसा सीढ़ने लगा है ॥ ७५ ॥
चन्द्रमुखीके मुँहने जब कमलकी जीत लिया तो उसके मित्र
(सूर्य) ने उसे यद्यपि बहुत समझाया-बुझाया फिर भी
वह मरनेके लिये भीरोंके रूपमें विष बरौर ही रहा है ॥ ७६ ॥
कदम्बकी गन्धसे भरे हुए अपने वायुरूपी पतिके चले जाने-
पर दिशात्पी नायिकाओंके पयोधर (बादल, स्तन) उनकी
दुर्बलताके कारण उमड़े पड़ गए हैं और उनकी विजलीरूपी
लगाड़ी भी सिसककर गिर पड़ी है, फिर भी उनकी दुर्बलता
झीलोंकी भली लगती ही है ॥ ७७ ॥ मद न रहनेके कारण
जिन मोरोंके गलेकी मिठास खली गई थी उनकी बोली
सुननेकी इच्छा छोड़कर अब जोगोंके कान मतवाले हँसोंके
शब्दोंका सहारा लेने लगे क्योंकि सच पूछिए तो प्यारोंके

गुण प्यारे होते हैं, उनकी कोरी प्रशंसा नहीं ॥ ७८ ॥ खरकर
घरकी चोर जानेकी उतावलीमें जो गौरों अपने भुएहकी उपेक्षा
करके भागी खली जा रही हैं वे अपने निरन्तर बढ़ानेवाले
दूधसे भरे धन अपने घट्टीके लिये मानो वनसे उपहारके रूपमें
ले जा रही हैं ॥ ७९ ॥ शरदमें बूढ़ी स्त्रियोंके समान नदिपोंका
उत्कलना बन्द हो गया है, वेदान्तियोंके मनके समान जल
स्वच्छ हो गया है, तर्कियोंके भुक्तके समान चन्द्रमामें एक
अनोन्नी चमक आ गई है और किसी विद्वान्की कठोर
कविताके समान मोरकी बोली अब सुहासी नहीं ॥ ८० ॥
आई, शहू और कमलके समान उमड़े जो सहस्रों बादल
पानी बरसाकर हलके हो जातेसे पवनके सहारे हथर-उधर
मल रहे हैं उनसे भरा हुआ शरद्का आकाश कहीं-कहीं
ऐसा लगने लगा है मानो किसी राजापर सैकड़ों रथर एक
साथ दुलाए जा रहे हों ॥ ८१ ॥ बादलोंके समाप्त हो चुकनेपर
आकाशमें तारे उसी प्रकार चमकने लगे जैसे मायापामके
द्वारा पापन्पी रथेरा मट होते ही विषमें शानका प्रकाश
चमकने लगा है ॥ ८२ ॥ शरदमें कमलोंकी छूता हुआ गीतल
पवन वह रहा है, बादलोंके उड़ जानेसे चारों ओर सब दिशाएँ
सुहावनी दिखाई पड़ रही हैं, पानीका गैदलापन दूर हो चला
है, धरतीपर सारा काँचद सूख गया है और आकाशमें स्वच्छ
किरणवाला चन्द्रमा और तारे छिटक आए हैं ॥ ८३ ॥
शरद् ऋतुमें कामदेवके चोरोंके बाथोंका सामर्थ्य तो देखो कि

शुभ्राभ्रं व्योम सोमः स्फुरदमलकलः पिकलस्तिम्भरो-
चिर्मधव्यूहव्यपायाल्लसदसिसदृशः साधकाशा इयाशाः।
कासाराः स्वच्छनीराः कमलवनमिलद्भृङ्गवज्रान्ध-
काराः मेघान्ते यान्ति सप्तच्छवकुसुमरजोवाहिनी
गन्धवाहाः ॥ ८५ ॥ शेफालिकाकुसुमगन्धमनोहराणि
स्वस्थास्थिताएडजकुलप्रतिनादितानि । पर्यन्तसंस्थि-
तमृगोनयनोत्पलानि प्रोत्कण्ठयन्त्युपवनानि मनांसि
पुंसाम् ॥ ८६ ॥ शोणैः परिवृतः पथैर्हंसो हव्यवहैरिव ।
श्वरन्निव तपो भाति लब्धुं श्रवधूगतिम् ॥ ८७ ॥
श्यामा लताः कुसुमभारजतप्रवालाः स्त्रीणां हरन्ति
धृतभूषणयाहुकान्तिम् । वन्तायभासयिशदस्मितचन्द्र-
कान्ति कङ्कुलिपुष्पसचिरा नवमालती च ॥ ८८ ॥ समं
पाथैः कान्तैर्धनसमयसङ्केतघटितैश्चिरोत्कण्ठापैः
पुनिकरतनिव्यूढमनसाम् । करैः पीयूषाद्रैशरदि
शरद्वडपुतिहरैर्मृगाक्षीणां क्षीणां तनुमुपचरत्योषधि-

पतिः ॥ ८९ ॥ समय एव करोति वलाचलं प्रणिगदन्त
इतीव शरीरिणाम् । शरदि हंसरवाः परपीकृतस्वरम-
यूरमयूरमण्यताम् ॥ ९० ॥ समुल्लसत्पङ्कजलोचनेन
चिनोदयन्ती तरुणानशेषान् । शुद्धाम्बरा गुप्तपयोध-
रक्षीः शरन्नबोदेव समाजगाम ॥ ९१ ॥ सम्पन्नशक्ति-
निष्कयावृतभूतलानि स्वस्थास्थितप्रचुरगोकुलशोभि-
तानि । हंसैः ससारसकुलैः प्रतिनादितानि सीमान्त-
राणि जनयन्ति नृणां प्रमोदम् ॥ ९२ ॥ स विकचोत्प-
लचक्षुषमैलत छितिभूतोऽङ्गगतां दयितामिव । शरद-
मच्छगलसदनोपमाक्षमघनासघनाशनकीर्तनः ॥ ९३ ॥
सुरतरसचिलासाः सत्सखीभिः समेता असमशरनि-
बोदं सूचयन्ति प्रकामम् । अनुपममुखरागा रात्रिभये
विनोदं शरदि तरुणकाम्ताः सूचयन्ति प्रमोदान् ॥ ९४ ॥
लोमादहंसमिधुनैरुपशोभितानि स्वच्छप्रफुल्लकमलो-
न्मलभूषितानि । मन्दप्रभातपवनोद्गतबीजिमालाम्युक्त-

परम तेजस्वी सूर्य भी कन्या (कन्याराशि) का उपभोग करने
या पहुँचे हैं ॥ ८४ ॥ शरद् ऋतुमें आकाशमें उजले-उजले
बादल चमक रहे हैं, चन्द्रमाकी कला उजली होकर चमक रही
है, सूर्य भूरा-भूरा दिखाई दे रहा है, बादलोंकी घटाएँ हट
जानेसे उधड़ी हुई निर्मल दिखाएँ तलवारों-सा चमक रही हैं,
तालाबोंका जल स्वच्छ हो गया है, कमलके बनोंमें मैहराले
हुए मीराँसे औंधरा-सा छा गया है और क्षतिकनके फूलोंका पराग
होकर सुगन्धित पवन पहले लगे हैं ॥ ८५ ॥ जिन उपबनोंमें
शेफालिकाके फूलोंकी ममभावनी सुगन्ध फैली हुई है, जिनमें
किरिचिन्त बँधी हुई चिड़ियोंका चहचहाहट चारों ओर गूँज रही
है और जिनमें कमल जैसी झल्लोंवाली हरिखियों जहाँतहाँ
बँधी पगुरा रही हैं, उन्हें देख-देखकर लोगोंके मन हाथसे निकले
पड़ रहे हैं ॥ ८६ ॥ अक्षरोंके समान लाल-लाल कमलोंसे
घिरा इस पेसा जान पड़ता है मानो वह थोड़ा नवेलीकी यति
पानेके लिये तपस्या कर रहा हो (प्रशंसि ताप रहा हो) ॥ ८७ ॥
फूलोंके बाँझमे सुकी हुई हरी लताओंकी टहनियोंकी सुन्दरताने
स्त्रियोंकी गहनोंसे सजी हुई बोंहोंकी सुन्दरता जीव जी है
और दोनोंका चमकसे खिल उठनेवाली नवेलियोंकी मुस्कराहटकी
चमकको अशोक तथा नई माखताके सुन्दर फूलोंने लजा
दिया है ॥ ८८ ॥ शरद् ऋतुमें आपधियोंके स्वामी चन्द्रमाकी
देखकर ऐसा जान पड़ता है मानो वह सरकचटके कान्तिकों
भीचा दिखानेवाली तथा अमृतसे भरी अपनी सुन्दर

किशोरीसे लीज जानेकी शपथ काकर परदेश गए हुए बड़ोदियोंके
साथ-साथ उन मृगानवनी नवेलियोंकी देहकी भी चिकित्सा
कर रहा हो जो अपने पतिधोंसे मिलनेकी ललकसे बार-बार
हड़बड़ा रही हैं ॥ ८९ ॥ शरद्में हंसके मधुर शब्द और मीराँकी
रुखी ध्वनि मानो लोगोंको यह समझा रही थी कि समय ही
लोगोंकी बलवान् और दुर्बल बनावा करता है ॥ ९० ॥ नई प्याही
हुई नवेलीके समान वह शरद् ऋतु था गई जो अपने खिले
हुए कमल-रूपी नेत्रसे सभी युवकोंका मन हरण कर रही थी,
जो निर्मल आकाशका वस्त्र पहने हुए थी और जो अपने
पयोधर (बादल, स्तन) की शोभा बिपाए थी ॥ ९१ ॥
शरद्में वे स्थान लोगोंको बड़े अच्छे लगते हैं जहाँ क्षेत्रमें
भरपूर धानके पीछे खइजहा रहे हों, चासके मैदानोंमें बहुत-सी
गौएँ चर रही हों और जहाँ सारसी तथा हंसोंके जोड़े मीठी
बोली बोळ रहे हों ॥ ९२ ॥ जिनका नाम केनेसे सब पाप
नष्ट हो जाते हैं उन कृप्य भगवान्ने शरद्को ऐसा पाना
मानो खिले हुए कमलकी झल्लोंवाली और सरकते हुए उजले
बादलरूपी चक्षोंवाली कोई नवेली पर्वतरूपी पतिकी गोदीमें बँधी
हो ॥ ९३ ॥ शरद्में सम्भोगका रस सेनेवाली और अमृते
प्रकारसे अपने मुँह पीतनेवाली नवेलियोंका जब अपनी सखियोंके
साथ बैठती हैं तो आपसमें एक दूसरीका सब बातें बता
बातती हैं कि रातमें कैसे-कैसे धानन्द लूटा गया ॥ ९४ ॥
जिन तालाबोंके तीरपर मस्त हंसोंके जोड़े घूम रहे हैं, जिनमें

एतदयन्ति सहसा हृदयं सरांसि ॥ ६५ ॥ स्त्रीणां विहाय
वदनेषु शशाङ्कलक्ष्मीं काम्यं च हंसवचनं मणि-
पुरेषु । वन्धूककान्तिमधरेषु मनोहरेषु क्वापि प्रयाति
सुभगा शरदागमधीः ॥ ६६ ॥ स्त्रीमुखकमलेन यत्नाद्वि-
कुलितकमलं सखे कमलम् । अथूणि मुञ्चति रयादमन्द-
मकरन्दकैतवतः ॥ ६७ ॥ स्फुटं स्फुटपलाशवत्सुभग-
भासितवच्चुपुटे विपाककपिशोऽकृताः कलममञ्जरीर्वि-
भ्रती । यभां द्विषि शुकावलिः कुसलयच्छविर्जङ्गमा
स्वभावहृदयकृमा विबुधधापलक्ष्मीरिव ॥ ६८ ॥
स्फुटकुमुदचितानां राजहंसाधितानां मरकतमणि-
भासा वारिणा भूषितानाम् । धियमतिशयरूपां व्योम
तोयाशयानां वहति विगतमेघं चन्द्रतारवकीर्णम्
॥ ६९ ॥ हंसभङ्ग इवाभाति जलं व्योमतलं यथा ।
विमलाः कुमुदानीव तारकाः शरदागमे ॥ ७० ॥

स्वच्छ लिले हुए उजले और नीले कमल शोभा दे रहे हैं
और जिनमें प्रातःकालके भीमे-भीमे पवनसे लहरें उठ रही हैं
वे ताजाव अचानक हृदयका मस्त बनाए डाल रहे हैं ॥ ६५ ॥
शरदकी मनोहर शोभा कहीं तो चन्द्रमाका कमकका छाँदकर
छिपाके मुखपर जा पहुँची, कहीं हंसाका मोठा घाली छाँदकर
उनकी रन-जदी पावलामें चला गई और कहीं दुपहरियाके
फूलोकी छाँदो छाँदकर उनके निचले घाँटोमें जा पहुँचा
॥ ६६ ॥ हे मित्र ! सुन्दरीके मुख-कमलसे बलपूर्वक भली-भाँति
भीता हुआ कमल वेगसे डेर-सा पराग गिरानेके वहाने माना
झौंझ रहा है ॥ ६७ ॥ लिले हुए टेसूके फूलके समान अपनी
कल्पित खाल घाँटोमें पकी हुई पीछो-पानो धामका वालियों किए
हुए जो नीले कमलकी कान्तिवाला सुगंधोकी धोंलें उड़ रही थीं
वे स्वभावसे ही सुन्दर इन्द्रधनुषके समान दिखाई दे रही थीं
॥ ६८ ॥ लिले हुए चन्द्रमा और बिटके हुए तारोंसे भरा
हुआ शरदका आकाश उन ताजावोंके समान दिखाई पड़
रहा है जिनमें नीलकण्ठके समान कमकका हुआ जल भरा हो,
जिनमें एक-एक रामहंस तैर रहा हो और जिनमें यहाँ-वहाँ
बहुतसे कुमुद लिले हों ॥ ६९ ॥ शरदके आनेपर आकाशके
समान स्वच्छ जलमें तैरता हुआ हंस तो चन्द्रमाके समान और
उसमें लिले हुए उजले कुमुद तारोंके समान मनोहर दिखाई
देने लगे ॥ ७० ॥ शरदमें हंसांने सुन्दरी नवेजियोंकी मनभावनी
चाँद, कमलिनियोंने उनके चन्द्रमुखकी चमक, नीले कमलोंने
उनकी मदभरी धोंलें और छोटी जहरियोंने उनकी भीहोंकी

हंसेजिता सुललिता गतिरङ्गनानामम्भोहृद्वैधिकसितै-
मुखचन्द्रकान्तिः । नीलोत्पलैर्मदकलानि विलोचनानि
भ्रूविभ्रमाश्च दक्षिरास्तनुभिस्तरङ्गैः ॥ १०१ ॥ हारैः
सचन्दनरसैः स्तनमण्डलानि श्रौणीतटं सुविपुलं
रसनङ्कलापैः । पादाम्बुजानि कलनपुरशेखरेश्च
नार्यः प्रहृष्टमनसोऽथ विभूषयन्ति ॥ १०२ ॥

अलकेलि — करी धनाना नवपल्लवाकृती वृथा कृथा
मानिनि मा परिश्रमम् । उपेयुषो कल्पलताभिश्चकृष्या कथं
नितलस्यति पट्टपदावलिः ॥ १ ॥ चेलाञ्जलेन चलहार-
लताप्रकाण्डैर्वेणीगुणेन च चलद्वलप्राकृतेन । इलाहित-
अमरकभ्रममण्डलीमिरलुञ्जयं रचयतीव चिरन्तनम्
॥ २ ॥ परिश्रमस्या अमरीषिनां नितम्बविम्पाङ्गि-
लङ्कूलम् । विलोक्य कस्याश्चन कामलाङ्गयाः पुष्पा-
चमन्याः सुदृशो वषाभ्युः ॥ ३ ॥ अमान्मकीर्णं भ्रम-

सुन्दर चटक-मटकका हरा दिया है ॥ १०१ ॥ शरदमें खियों
कहीं उमड़से धपने स्तनांवर मोतियोंके हार बाँझती और
चन्दन पातली हैं, अपने बड़े-बड़े नितम्बोंपर लगदियों बाँझती हैं
और अपने कमल जैसे कामल सुन्दर पैरोंमें कम-कम बजनेवाले
पावल पहनती हैं ॥ १०२ ॥

भौरोंकी अठखेलियाँ : भरा लठनेवाली ! इन
मैदराते हुए भीरांका इटानेके लिये तुम अपने गदे पत्तोंके
समान कामल हाथ हिला-झुलाकर स्वर्ध क्यो परिश्रम
कर रही हो ? क्योंकि जब ये भीरे तुम्हें कल्पलता समझे बैठे
हैं तब तुमसे डरेंगे क्यों ॥ १ ॥ सुगन्धके कारण नापिकापर
जो भीरांके फुरड मैदराते लगे, उन्हें उड़ानेके लिये उसने जो
अपना झोंकल उठाया उस समय उसकी चाँटी भी उछलकर
गोल हो गई और उसके गलेमें झूलती हुई हारोंकी लदियों
भी ऊपर उठकर ऐसी जाह पड़ने लगी माना उसके ऊपर तीन
छतरियाँ लग गई हों—एक तो भीरांका, दूसरा चाँटीका और
तीसरी हारका लदियोंकी ॥ २ ॥ औरियोंसे बिरकर
पवराई हुई और इधर-उधर भागती हुई किसी कामल
मल्लवाली नवेजोके नितम्बसे सरकते हुए वस्त्रको देखकर
दूसरी नवेजियोंके मनमें भी यह खजक डडी कि
हाव ! इस समय मैं पुरुष न हुई, नहीं तो इसका उपभोग
करके फुटार्य हो जाती ॥ ३ ॥ जिस समय अपने ऊपर उड़ती
हुई औरियोंसे स्वरत्कर यह नवेजी अपनी पछल धोंलें
चलाकर अपने झोंकले उन्हें उड़ा रही थी उस समय

रीषु किञ्चिच्छेलाञ्चले चञ्चललोचनायाः । कुबो कदा-
विज्जघनं शुवानो विलोक्य साफल्यमवापुरदलोः ॥४॥
मुक्ते काञ्चनकुण्डले निपतिते माणिक्यभूषामणौ कीर्त्त-
केलिसरोरुद्वे विगलिते मुक्ताकलापे सति । निःश्वस्या-
म्बुजलोचनाभ्रमरिकानृत्यावसाने पुनः प्राणेशच्युति-
शङ्कयेव हृदये हस्तारविन्दं ददौ ॥ ५ ॥ यतो यतः
पद्मचरणोऽभिवर्तते ततस्ततः प्रेरितलोललोचना ।
विचर्तितभूरियमद्य शिकते भयादकामापि हि दृष्टिवि-
भ्रमम् ॥ ६ ॥

शरद्वनिलाः—कुर्वाणाः कैरवाणां मधुकणहरणं
कूजितं रञ्जयन्ती हंसालीकण्डनालीध्वविकलकलमा-
मोदमैत्रीपवित्राः । शेफालीफुल्लपालीपरिमलमिलना-
कचुम्बिताश्चञ्चरीकैः कण्ठरागादकाराः कुचलयसुह-
दशशरदा वान्ति घाताः ॥ १ ॥ गतो यो वर्षासु क-
वनिशिलां केतकवनीमिदानीं सञ्ज्वलं वधदिव समा-
लम्ब्य निभृतम् । करान्पीयूषांशोः किमपि पवनः

तर्पणं कभी उसके स्नान और कभी उसका जवन देकर
अपनी-अपनी ओंखें सफल कर लीं ॥ ४ ॥ भीँसे
घिर जानेसे घबराई हुई नवेलीका सोनेका कुण्डल जब कानसे
निकल गया, गहनोंके भणि बिखर गए और खेतका कमल
भी नीचे जा पड़ा उस समय भीँसेके हट जानेपर जब उसने
अपना यह ऋटपटा वेप देखा तो उसे यह धोखा हो गया कि
मैं अपने पतिले बिछुड़ी हुई हूँ और यह सांभकर उसने
छम्बी साँस खींचकर 'हाय !' करके अपनी छातीपर हाथ
रख लिया ॥ ५ ॥ भीँसे घिरी हुई नवेली अपनी भीँसे चलाती
हुई अपनी चञ्चल ओंखें डरके मारे उधर-उधर घुमा रही
है जिधर-जिधर भीँरा जाता है । उस समय वह ऐसी आभ पड़ी
माधो कामदेवकी प्रेरणाके बिना ही केवल भयके कारण वह
चितवन चलानेका उल्लास रही हो ॥ ६ ॥

शरद्वे पवन : कुमुदोंसे पराग उड़ता हुआ, हंसोंके
गलेमें कूजन भरता हुआ, धानकी सुन्दर धालियोंकी सुगन्ध
लेकर पवित्र होता हुआ, साजकमलोंको खिजाता हुआ और
कुमुदोंका मित्र वह शरद्वे ऋतुका पवन वह रहा है जिसमें
निर्गुणहीके फूलोंकी गन्ध बरी रहनेके कारण और उसे बार-बार
घूम रहे हैं ॥ १ ॥ वर्षा ऋतुमें आरेके समान पैने केवड़ेके वनमें
आनेसे जो पवन मानो खँगा हो गया था वह अब शरद्वे
ऋतुकी रात प्रारम्भ होते ही अमृतमयी किरणोंवाले चन्द्रमाकी

शरद्वनिशामुखेऽमुष्मिन् सप्तच्छदसृष्टुलमार्गे विलसति
॥ २ ॥ रतिभ्रमं दूरतरं नयन्तः प्रामोदसम्भारमुवा-
हरन्तः । सीत्कारशिखां परिवर्धयन्तः प्रवान्ति नद्याः
पवनाः समन्तात् ॥ ३ ॥ वान्ति कङ्कारसुभगाः सप्त-
च्छदसुगन्धयः । वाता नवरतस्तानवधूगमनमन्धराः
॥ ४ ॥ वान्ति रात्रौ रतिक्लान्तकामिनीसुहृदोऽनिलाः ।
खलनालोलधम्मिलमल्लिकामोदवासिताः ॥ ५ ॥ हस्ति-
तकमलगन्धाकर्षिणो वासरेषु स्फुटितकुमुदगर्भामो-
दवन्तः क्षपासु । जगद्भिरमयन्तः शरदा वान्ति
सद्यस्फुटितयुवतिमानप्रन्धयो गन्धवाहाः ॥ ६ ॥

शरत्पान्थः—इह निष्कुलनिकुञ्जे वंशसम्भारभाजि
स्वपिबि यदि मुहूर्तं पश्यति क्षेपमेतत् । इति पथिकम-
कस्मान्मार्गं पथोपविष्टं वदति तदणकान्तं गोपिका
साङ्गभङ्गम् ॥ १ ॥ पङ्कानुषङ्गं पथि विस्मरन्तः कथाव-
शेषे च पथोदधृन्दे । मार्गेषु चन्द्रातपपिच्छिलेषु पदे
पदे चस्सलुरध्वनीनाः ॥ २ ॥

किरवोंका सहारा लेकर चुपचाप कृतिवनके कोमल मार्गमें
टहल रहा है ॥ २ ॥ रतिकी भकावट दूर करते हुए, घनी
सुगन्ध फैलाते तथा सी-सी करना सिकारते हुए पवन
नदीके आस-पास बह रहे हैं ॥ ३ ॥ कमल और चितवनकी
सुगन्धसे भरे तथा नये सम्भोगसे थकी हुई नवेलीके
समान धीरे-धीरे चलनेवाले शरद्वे वायु मन्द-मन्द बह
रहे हैं ॥ ४ ॥ नवेलीके जहराले हुए बालोंमें गुथे हुए
खेलेके फूलकी गन्धमें बसे हुए तथा सम्भोगसे थकी हुई
नवेलीकी सुल देनेवाले पवन शरद्वकी रातमें धीरे-धीरे बह
रहे हैं ॥ ५ ॥ दिनमें खिले हुए कमलोंकी गन्ध खींचनेवाले
तथा रातमें खिले कुमुदोंके भीतरकी सुगन्ध खींचनेवाले
वे शरद्वे ऋतुके पवन संसारको प्रसन्न करते हुए बह रहे हैं
जिन्होंने तत्काज स्त्री हुई नवेलियोंका मान छुड़ा दिया है ॥ ६ ॥

शरद्वे रात्री : खँगाई खेती हुई कोई खाशिन
मार्गमें बैठे हुए किसी जवान लीलेसे बिना पूछे ही कह
रही है कि 'बैसवारेसे घिरी हुई इस वेनकी कुञ्जमें है
राही । यदि तुम चलकर छोट लगे तो तुम्हें इस स्थानका
पूरा आनन्द मिल आयगा' ॥ १ ॥ बारूक न रहनेपर
भी यात्री यह श्रृंखल गए थे कि अब मार्गमें कीचड़ नहीं है
इसलिये चँदनीसे चमकते हुए मार्गमें वे जग-जगपर किसल-
किसलकर गिर रहे हैं ॥ २ ॥

कलमखण्डनी- गीतं पान्थमनोहरं घट शरत्काले
वितन्वत्यलं सोनकण्डस्तनभारवन्धुरमलत्पुष्पयतिव्या-
हृतिः । शालिं ग्रामवधूर्ननूतुसमपि ध्यालोक-
यन्ती दृशा सद्यः कोकनदच्छदच्छविजुषा नोन्कण्डनं
मुञ्चति ॥ १ ॥ विलासमसृणोलसन्मुसललोलदाःकन्द-
लोपरस्परपरिस्त्रलद्वलयनिस्वनोद्गन्धुरा । लसन्ति
कलधुङ्कृतिप्रसभकम्पितोरस्थलपुटप्रमकसङ्कुलाः कल-
मखण्डनीगीतयः ॥ २ ॥

हेमन्तवर्णनम्- अद्य शीतं घरीवर्ति सरीसर्पिः सर्मा-
रणः । अपञ्जीको मरीमर्ति नरीनर्ति कुञ्जोष्मवान् ॥ १ ॥
अस्या प्रकाशसुरतभ्रमस्त्रिदेहा रात्रिप्रजागरविषाट-
लनेत्रपथा । अस्तांसदेशलुलितापुलकेशपाशा निद्रां
प्रयाति मृदुसूर्यकराभितप्ता ॥ २ ॥ अस्या प्रियेण
परिभुक्तमयस्य गात्रं हर्षाम्बिता धिरचिताधरचाद-
शोभा । कूर्पासकं परिदधाति मञ्जुलताङ्गा उपालम्बि-

लौनिहारिम (धान काटनेवाली) : देखो तां, चाहते
भरी हुई जिस गाँवकी नवेलीके स्तनोंके भारसे ऊँचे-नाचे गलेकी
सुन्दरता देखकर सुनियोंका भी जप-तप (ध्यान) टूट जाता
है वह शरद् ऋतुमें जो खोजकर बटोहियोंका सग हरनेवाले गीत
गा रही है तथा लाल कमलकी पल्लुकीकी कान्तिके समान
कान्तिवाले नेत्रसे भूखी घूरे हुए धानका चमकाती जा रही है
किन्तु धान काटना बन्द नहीं करती ॥ १ ॥ धान काटनेवालीके
से सुन्दर गीत बड़े भले लग रहे हैं जो बिकने तथा चमकीके
मूलसको हाव-भावके साथ बजानेसे पञ्चस बाहुकपी कोमल
झातेका धापसमें हिलनेसे बजते हुए कल्लोंकी ध्वनिसे अधिक
सुन्दर लग रहे हैं तथा वह जो हुँकारी भर रही है उससे
झातीके काँप उठनेसे टूटी हुई गमकसे मिके हुए हैं ॥ २ ॥

हेमन्तका वर्णन : आन बड़ा ही कड़ाकेका जाड़ा पड़ रहा
है और सनसनाटा हुआ ठंढा पवन चल रहा है । ऐसे समय
जिलेका पास स्त्री नहीं है वह तो ठिठुरकर मरा जा रहा है
और जिले नवेलीके स्तनोंकी गर्मी मिला रही है वह भस्तीसे
नाच रहा है ॥ १ ॥ जो नवेली अत्यन्त सम्भोगसे थक
जानेके कारण अलसाई हुई है, जिसकी कमल जैसी छाँसे
रात भरके जागरणसे जाल हो रही हैं, ऊँचे डीले पड़ गए हैं
और बास इधर-उधर बिखर गए हैं वह प्रातःकालके सूर्यकी
कोमल किरणोंमें धूप खाती हुई सो रही है ॥ २ ॥ धियतमके
नखोंके धावोंसे भरे हुए जलोंवाली और खडकती हुई

नीलललितालककुञ्जिताली ॥ ३ ॥ अन्याश्चिरं सुरत-
केलिपरिश्रमेण सैवं गताः प्रशिथिलीकृतगात्रयण्डयः ।
संहृष्यमाणपुलकौरुपयोधमन्ता अभ्यञ्जनं विदधति
प्रमदाः सुशोभा ॥ ४ ॥ अन्ये हि दुःखमृतवः प्रथ-
यन्त्यहोभिः सूर्याशुभुतनिमिरैरभिसारिकाणाम् ।
हेमन्त एव हिमकञ्जमन्त्रयामा कामं करोति दिवसे-
ष्वपि शर्म तासाम् ॥ ५ ॥ अपि दिनमणिग्य क्लेशिनः
शीतसङ्गैश्च निशि निजभायां गाढमालिङ्ग्य
दोर्भासाम् । स्वर्पति पुनरुदेतुं सालसाङ्गस्तु तस्मान्किमु
न भवतु दीर्घा हेमनी यामिनीयम् ॥ ६ ॥ अभयभङ्ग-
तोष्माणः शोभयते जगज्जये । स्तनोन्सङ्गा मृगाक्षीणां
स्थानं ममथतेजसः ॥ ७ ॥ अश्वरामय रमयै यामिभ्यै
वासरः प्रेयान् । अधिकं दूर्वा निजाङ्गादथ सङ्कुचितः
स्वयं तस्यां ॥ ८ ॥ अलं हिमानीपरिदर्शनाग्रः समा-
पितः कालगुनसङ्गमेन । अन्यस्तमाकाङ्क्षितकृष्णवर्मा

सुन्दर अलकोंसे उकां हुई चालीवाली एक नवेली,
प्यारेसे उपभोग किए हुए अपने शरीरको देख-देखकर बड़ी
मगन होती हुई अपने अवरोंका फिर पड़नेकी भाँति सुन्दर
बनाकर खोली पहन रही है ॥ १ ॥ बहुत देरतक
सम्भोग करते-करते जो सुनियोंका थक गई है, जिनके कोमल
अवकीले शरीर डीले पड़ गए हैं और जिनकी जाँघों और
स्तनोंपर रोमाञ्च हो आया है वे धूपमें घेठी अपने शरीरपर
तेज मलबा रहे हैं ॥ २ ॥ जिन दिनोंमें सूर्यकी किरणोंसे
जैसेरा मट हो जाता है उन दिनोंके द्वारा अग्न्य ऋतुएँ तो
अभिसारिकाओंका कष्ट हो बढ़ाती हैं किन्तु हेमन्त ऋतु ही
ऐसी है जो अपने पालेसे सूर्यको रोककर दिनके समय भी
उन्हें पूरा सुख पहुँचाती है ॥ ३ ॥ हेमन्तमें सूर्यको भी इतनी
ठण्डक खरी कि रातमें अपनी दोनों बाँहोंमें अपनी परनोंको
लिपटाकर वे ऐसे सोए कि उन्हें उठनेमें आलस करते-करते
इतनी देर हो गई । तब भला हेमन्तकी रातें इतनी बड़ी क्यों
न हों ? ॥ ४ ॥ जब तीनों लोकोंमें ठण्डक भर जाती है उस
समय सृजनयंत्रियोंके कामदेवके तेजसे भरे हुए स्तनोंमें एक
विचित्र ही प्रकारकी गर्मी भर जाती है ॥ ५ ॥ हेमन्तमें दिन-
रूपी नायकने राजिरूपी नायिकाको अपने शरीरका अधिक
अम्बर (आकार, वस्त्र) दे डाला इसीलिये वह स्वयं ठण्डकसे
ठिठुरा जा रहा है ॥ ६ ॥ माचका महोना महात्मा भीष्मके ही
समान है क्योंकि जैसे वे बड़े ही गर्वीले और प्रतिहावाले थे,

भोष्मो महान्माजनि माघतुल्यः ॥ ६ ॥ अविरलफलि-
नोद्यनप्रसूनः कुसुमितकुन्दसुगन्धिगन्धवाहः । गुणम-
समयजं चिराय लेभे धिरलतुषारकणस्तुषारकालः
॥ १० ॥ अद्युत्पन्नस्वभावानां नारीणामिव साम्प्रतम् ।
लीत्काराचार्यकं कर्तुमयं प्राप्नो हिमागमः ॥ ११ ॥
अहो कथमसीमेद् हिमनाम विज्ञप्ते । चरत्येव सह-
क्षांशौ धवलं निमिरान्तरम् ॥ १२ ॥ आसत्यलोकादा-
भूमेः स्वैरचाराकृतधमाः । तेनुरिन्दुकराः स्वेदं द्रुतनी-
हारभूमिकम् ॥ १३ ॥ इदमयुक्तमहो महदेव यद्वरतनोः
स्मरयन्त्यनिलोऽन्यथा स्मृतसर्पाघनसोष्मपयोधरांस्स-
नुहिनस्तु हिनस्तु त्रियोगिनः ॥ १४ ॥ कन्याप्रसूतस्य
धनुःप्रसङ्गादङ्गाधिकास्तादित्तिकमस्य । धनजयाधी-
नपराकमस्य हिमस्य कर्णस्य च को विशेषः ॥ १५ ॥
कम्पन्ते कपयो भृशं कृतजडं गोजालकं स्लायति भ्रा

अर्जुनके साथ युद्ध करनेसे उनका शरीर बाबांसे छिद्र गया
था और वे सदा भगवान्की वाट जोइते रहने पे वैसे ही
मावका महीना भी अपनी ठपकसे छाँगोंकी देह काड़े डाल
रहा है, कागुन जानेपर वह समाप्त हो जाता है और इस
महीनेमें आग तापनेकी बड़ी आबरपकना पड़ जाती है ॥ ६ ॥
जिन दिनों पर्वतपर अर्जुन तपस्या कर रहे थे उन दिनों बहुत
दिनोंतक बिना समयके ही जाड़ेके लच्छल दिखाई देने लगे
क्योंकि प्रियङ्गु जला घने कुलोसे ढक गई, बापु भी लिले हुए
कुन्पके कुलोंकी सुगन्धसे भरकर चलने लगे और कहीं-कहीं
ओसकी बूँदें भी दिखाई देने लगी ॥ १० ॥ जिन स्त्रियोंका
स्वभाव कोई समझ नहीं पा सकता, उन्हें 'सी-सी' करना
सिक्कालेके सिधे ही मानो यह हेमन्त ऋतु था पहुँची है
॥ ११ ॥ ओहो !! यह पाप्मा कैसा निःसीम होकर फैल
रहा है ! जान पड़ता ॥ सइखों क्रियाँवाले मूर्खों कोई
उज्जला झँधेरा घेरे हुए हो ॥ १२ ॥ इन चन्द्रमाकी किरकोंने
वर्षपरिभ्रम करके सग्य लोकसे लेकर धरतीतक यह अपना सब
पाका बिलेर रक्ता है ॥ १३ ॥ यह बहुत ही भरी बात है
कि दूसरे समयमें भी पवन सुन्दरी नवेलियोंकी सुधि दिखाने
लगता है ! हाँ, जिन्होंने अपनी प्यारोंके जवानोंसे गरम
स्तनोंका स्मरण किया है उन वियोगियोंको हेमन्त मार डाले
तो अनुचित नहीं है ॥ १४ ॥ जादा और रखा कर्ण दोनों
एकसे हैं । कर्ण तो कुमारी कुन्तीसे उरपड़ हुए थे और जाका
कन्या राशि (आश्विनके महीने) से उत्पन्न हुआ है । कर्णने

सुकीकुहरोदरं लक्ष्मपि प्राप्तोऽपि नैवोत्कृतिः । शीता-
र्तिव्यसनातुरः पुनरयं दोनो जनः कूर्मवत्स्वाम्यङ्गानि
शरीर एव हि निजे निहोतुमाकाङ्क्षति ॥ १६ ॥ कावि-
द्विभूषयति दर्पणसक्तहस्ता घालातपेषु चनिता वदना-
रविन्दम् । दन्तच्छब्दं प्रियतमेन निपीतसारं दन्ताम-
भिन्नमवकृष्य निरीक्षते च ॥ १७ ॥ काञ्चीगुणैः काञ्च-
नरञ्जचित्रैर्नो भूषयन्ति प्रमदा नितम्बान् । न नृपुरेह-
सकतं भजद्भिः पादाम्बुजान्यम्बुजकान्तिभाजि ॥ १८ ॥
कामिनो हन्त हेमन्तनिशि शीतज्वरातुराः । जीवन्ति
हरिणादीणां वस्रोजाश्लेषरक्षिताः ॥ १९ ॥ गजपति-
द्वयसोरपि हेमन्तस्तुहिनयन्सरितः पृथताम्पतिः । सलि-
लसन्ततिमध्वगयोपितामस्तनुतातनुतापकृतं दहाम्
॥ २० ॥ गात्राणि कास्तीयकचञ्चितानि सपत्रलेकानि
मुक्ताम्बुजानि । शिरांसि काक्षाभुदधूपितानि कुर्वन्ति

अनुविद्याकी जेह सिक्का पाकर वह देखपर अधिकार जमाया
और जाड़ेने धनु राशिपर मूर्खके घानेसे अपना प्रभाव बढ़ाया ।
कर्णके पराक्रमको अर्जुनने दबाया और जाड़ेकी तीव्रताको
कामिने ॥ १२ ॥ जाड़ेके दिनोंमें बन्दर आश्वधिक काँप रहे हैं ।
गौरे ठिठुरकर मलिन पड़ गई हैं । कुत्ता कुत्तेका भीतरी भाग
पाकर कतुपकी भँति उसे एक कणको भी नहीं जोड़ता
और ठपकसे कठ परता हुआ निर्धन मनुष्य सारे जग
अपनी देहमें ही डाल लेता चाहता है ॥ १३ ॥ देखो, एक
नवेली अपने हाथमें दर्पण लिए हुए प्रातःकाळकी पूषमें
बैठी अपने कमल जैसे मुँहका आज़ार कर रही है और उसके
जिन ओठोंका रस पीकर उसके प्यारेने उनपर अपने दाँतोंके
घाम बना दिए हैं उन ओठोंको जीब-जीबकर देख रही है
॥ १४ ॥ हेमन्तमें नवेलियाँ न तो अपने नितम्बोंपर रत्नोंसे
बड़ी हुई सोनेकी तगदियाँ पहनती हैं न अपने कमल जैसे
सुन्दर पैरोंमें इसके समान ध्वनि करनेवाले पायज ही
हाजती हैं ॥ १८ ॥ हेमन्तकी रातमें जाड़ेकूपी उबरसे पीकित
कासी जोग सुगनयनी नवेलियोंके गरम स्तनोंसे क्षिपकण
सुरक्षित हुए जाते रहते हैं ॥ १९ ॥ हेमन्तके पवनने हाथी-
हुवाय पानीवाकी गहरी नदियोंका भी ठपका कर दिया और
मलकी पेसा कर दिया जिससे वियोगिनियोंकी आँखें भरपन्त
तपने लगी ॥ २० ॥ हेमन्तमें अपने पतिसे सम्भोग करनेकी
तैयारीमें नवेलियाँ अपने शरीरपर बन्दन मज रही हैं, अपने
कमल जैसे मुँहपर जेवक प्रकारके नेल-बूँदे चील रही हैं और

नार्यः सुरतोत्सवाय ॥ २१ ॥ गीरन्ति ननु कल्पान्ते
जलानास्त्रिधयो जगत् । कल्पमध्ये गिरत्येष कथमन्यो
महार्णवः ॥ २२ ॥ स्रजे खण्डरुचा समं रणमसौ हेम-
न्तपृथ्वीपतिये ये तत्र जिता विवाकरकरास्ते तेऽमुना
तत्क्षणात् । कान्तानां कुचभूधरे निर्धारे मन्येऽहमेवं
तदा नो चेन्मन्दकरः कथं दिनकरस्ततश्च तन्वीस्तनः
॥ २३ ॥ जङ्घात्माऽपि स्वकालोत्थः क्रिन्नाति वलि-
नोऽप्यरीन् । आकामति सहस्रांशुं हिमो हेमन्तजृ-
म्भितः ॥ २४ ॥ जरीजृम्भप्रौढद्युमणिकरसन्दोहसद-
शस्फुरद्दीप्तिघातप्रगुणतरताक्षयसुभगाम् । हसन्तीं
हेमन्ते परिजनयुतां वा सुवदनां हसन्तीं सेवस्ते परि-
णतमहाभाग्यनिधयाः ॥ २५ ॥ दन्तच्छदैः समलवन्त-
विहैः स्तनैश्च पाण्यग्रकृताभिलेखैः । संसृज्यते निर्दय-
मङ्गलानां रतोपभोगो नवयाधनानाम् ॥ २६ ॥ दुराशेष
हरिद्रस्य, दृग्गेष कृपणस्य च । अहो न विरमत्येष

हस्त हेमन्तयामिनी ॥ २७ ॥ द्विभिमुचु कुन्दमुकुलशि-
चतुरकुसुमक्रमेण लवलोपु । पञ्चपफालिनोकलिको
जयति हिमर्तुर्नवावतरः ॥ २८ ॥ न प्रस्तापस्त-
पनमहसान्नानलस्यापकाशो नैव तेमं किमपि च
घनैः कम्बलैः कञ्चुकेषां । नैवान्यान्त्यं प्रभवति
जलो वीक्षितुं वीतसीमा हिमः पूरा हरति भुवन-
व्यक्तिमाः किन्तु कुर्मः ॥ २९ ॥ न यादु-
युग्मेपु विलासिनोनां प्रयान्ति सङ्गं वलयाद्भवानि ।
नितम्बविम्बेषु नवं दुकूलं तन्वशुकं पीनपयोधरेषु
॥ ३० ॥ नवमवालोलूमसस्यरम्यः प्रकुललोभः परि-
पक्वशालिः । विलीनपद्मः प्रपतत्तुषागो हेमन्तकालः
समुपागतोऽयम् ॥ ३१ ॥ निर्माल्यशाम परिभुक्तमनो-
गन्धं मूर्ध्नाऽपनीय घननोर्लाशरोरुहान्ताः । पीनो-
न्नतस्तनभरानतगात्रयष्ट्यः कुर्वन्ति केशरचनामप-
रास्तद्वयः ॥ ३२ ॥ पाकं व्रजन्ती हिमजात-

काले शगरकी धूप देकर अपने बाल सुगन्धित कर रही हैं ॥ २१ ॥
कल्पान्त (महाप्रलय) के समय संसारको समुद्र निगलने
लगते हैं किन्तु कल्पके बीचमें यह निराला समुद्र (पासा)
संसारको निगलने कहाँसे जा पहुँचा ॥ २२ ॥ राधा
हेमन्तने सूर्यके साथ युद्ध करते समय उस युद्धमें हारी हुई
सूर्यकी किरणोंको चिबोंके स्तनरूपी पर्वतमें बन्दी कर
दिया । यदि यह बात न होती तो हेमन्तमें सूर्यकी किरणें
हतभी मन्द क्यों पड़तीं और नायिकाके स्तन हतने गरम
क्यों होते ॥ २३ ॥ मूर्त्त प्राची भी समय पाकर अपने
शत्रुओंको कष्ट देता ही है । हेमन्त ऋतुको पाकर पासा
भी सूर्यको हचने लगा ॥ २४ ॥ उगते हुए सूर्यकी
किरणोंके समान चमकती हुई कान्तिसे जिसकी तरङ्गाई
रमक रही है और जो अपनी सलियोंके साथ बुझ-मिलकर
खिल-खिला रही है ऐसी सुन्दर मुखवाली नवेलीका उपभोग
हेमन्तमें कोई भयवशाकी ही पाते हैं ॥ २५ ॥ नवेलियोंके
घोड़ोंपर बने हुए दाँतके घाव और उनके स्तनोंपर बने हुए
मखोंके चिह्न यह सूचना दे रहे हैं कि इनके प्यारे इनका
जी-जानसे उपभोग कर रहे हैं ॥ २६ ॥ ओह ! यह हेमन्तकी
रात हरिद्रकी निष्कल आभा और कञ्चुसके खोभके समान
भील नहीं पा रही है, बदती ही जा रही है ॥ २७ ॥ मुचुकुन्दमें
दो-तीन कविर्षी जग रही हैं, हरकारेवकीकी छतमें कमलः तीन-
चार फूल निकल रहे हैं और कविर्षीमें भी पाँच-सात कविर्षी

जग रही हैं । इस प्रकार नया अवतार लेकर आनेवाली
हेमन्त ऋतुकी जय हो ॥ २८ ॥ ऐसी कदाकेकी ठण्डक
पड़ रही है कि उसे दूर करनेमें न तो सूर्यकी गर्मीका
बस चखता, न आगका ही सामर्थ्य है और न मोटे
कम्बल या बरही-बिरजई आदि पड़नेसे ही प्रायः बचते ।
यह जसीम कुहरा भी ऐसा घमा स्याया है कि मनुष्य एक
दूसरेकी देख भी नहीं पा सकते और यही नहीं जान पड़ता कि
संसार है भी या नहीं । ओह ! अब क्या किया जाय ॥ २९ ॥
हेमन्तमें ये कामिनिर्षी न तो अपनी दोनों भुजाओंपर कलन
और भुजबन्द ही बाँधती हैं, न अपने गोला-गोळ नितम्बोंपर
नवे देशमी बस्त्र ही खपेटती हैं और न अपने भोंटे-भोंटे स्तनोंपर
महीन बोलियाँ ही कसती हैं ॥ ३० ॥ देखो, पासा गिराती
हुई वह हेमन्त ऋतु जा पहुँची है जिसमें गेहूँ, जौ आदिके
नवे-नवे अङ्गुरोंसे चारों ओरकी धरती हरी-भरी हो गई है,
खोभके वेड़ फूल उठे हैं, धान पक चला है और कमल
सुरक्षा पझे हैं ॥ ३१ ॥ खन्ने, काले और घने केशोंवाली जिन
नवेलियोंके शरीर उनके भोंटे और उठे हुए स्तनोंके कारण
सुक गए हैं, वे जिन माझाओंकी मधुर सुगन्धका आनन्द
रातमें ले चुकी हैं, उन सुरकाई हुई माझाओंको सिरसे
उतारकर फिरसे अपने बाल सँवार रही हैं ॥ ३२ ॥ हे
प्यारी ! पासेसे भरे उगड़े पवनसे हिलती हुई यह पकी
हुई मियबुकी सता वैसी ही पीकी पड़ गई है जैसे अपने

शीतैराध्यमाना सततं मरुद्भिः । प्रिये प्रियङ्गुः
प्रियविप्रयुक्ता विपासुता याति विलासिनोव
॥ ३३ ॥ पीनस्तनोरःस्थलभागशोभामासाद्य तस्पी-
डनजातखेदः । तृणाग्रलघ्नैस्तुहिनैः पतद्भिराक-
न्दतीक्ष्णोपसि शीतकालः ॥ ३४ ॥ पुष्पासधामोद-
सुसन्धिवक्त्रो निःश्वासयातैः सुरभीकृताङ्गः ।
परस्पराङ्गन्यतिपङ्कशाधी शीते जनः कामरसानुविद्धः
॥ ३५ ॥ प्रफुल्लनीलोत्पलशोभितानि सोन्मादकादम्ब-
धिभूषितानि । प्रसन्नतोषानि सुशीतलानि सरांसि
चेतांसि हरन्ति पुंसाम् ॥ ३६ ॥ प्रभृतशालिप्रसवैष्णि-
तानि भृगाङ्गनायूधधिभूषितानि । मनोहरकाञ्चिना-
वितानि सोमान्तराण्युत्सुक्यन्ति चेतः ॥ ३७ ॥
मांशुः प्रालेयपूरः प्रसरति गगने प्राकृताशार्कचन्द्र-
स्तोषाधाराः सधाष्पास्तुहिनघनघटालीनमोनद्वि-
जांघाः । दशास्तसीभकालकङ्कगलयलिभुजः कुन्वपुष्पा-
गलोभाः प्रोत्कुङ्गाः शीतकाले हिमकण्ठगणवृद्धान्युदी-

पतिते विपुद्गी हुईं धुवती पौली पड़ जाती है ॥ ३३ ॥
प्रातःकाल घासपर फैली हुई घासकी बूँदें देखकर
पेसा लगता है मानो युवतियोंकी धातियाँपर मोटे-मोटे स्तन
देखकर सुख पानेवाला हेमन्त प्रेमियोंके हाथों उन स्तनोंको
मले जाते देखकर दुःखले आँसू बहा रहा हो ॥ ३४ ॥
हेमन्तमें फूलोंके आसबकी भीनी और मीठी सुगन्धवाले
मुँहसे मुँह सटाकर और सोंसोंसे सुगन्धित घाँसोंसे अङ्ग
मिलाकर सब स्त्री-पुरुष एक दूसरेसे लिपटकर हेमन्तमें सम्भोग
करते हुए सोंते हैं ॥ ३५ ॥ जिन तालावोंमें लिये हुए नीले कमल
भरे हुए हैं, मस्त कलहंस इधर-उधर तैर रहे हैं और ठण्डा
निर्मल जल भरा हुआ है उन्हें देखकर जगोंका जी लिला
पड़ता है ॥ ३६ ॥ गाँवके बाहर जिन खेतोंमें भरपूर घान
लहरा रहा है, हरिशियोंके झुण्डके झुण्ड चौकड़ियाँ भर रहे
हैं उन्हें देख-देखकर मन हाथसे निकला जाता है ॥ ३७ ॥ जाड़ेके
दिनोंमें आकाशमें इतना अधिक पाला फीज रहा है कि दिशाएँ
और सूर्य-चन्द्र भी लुप्त हो गए हैं, जलाशयोंसे भाफ उठ रही
है, कुहरोंकी घनी घटामें मञ्जुलियाँ और पत्ती घुसे पड़े हैं,
घोड़े, हाथी, सूअर, बकरे तथा कौए मतवाले हो रहे हैं, कुन्ड,
जायफल और खोचमें फूल खिल रहे हैं और पालेके
कणोंसे भरा उत्तरी पवन सनसनाता बह रहा है ॥ ३८ ॥
हेमन्तकी यह ऋतु या गर्द जिसमें हिमालयकी चोटीसे

व्यस्तमीरः ॥ ३८ ॥ प्रालेयशैलशिखरानिलसम्प्रयोगः
प्रोत्कुलकुन्दमकरन्दहतालिकृन्दः । कालोऽयमातपति
कुङ्कुमपङ्कपिङ्गप्रोत्तुङ्गरमणीकुचसङ्गयोग्यः ॥ ३९ ॥
प्रियतमेन यया सहसा स्थितं न सहसा सहसा परि-
रम्य तम् । श्लथयितुं क्षणमक्षमताङ्गना न सहसा
सहसा कृतवेपथुः ॥ ४० ॥ प्रोद्यद्ग्रीढारविन्दधुतिभूति
विदलकुन्दमाद्यद्विरेके काले प्रालेयवातप्रयलविक-
सितोद्दाममन्दारदासि । येषां नो करणलम्बा क्षणमपि
तुहिनक्षोदवक्षः मृगाक्षी तेषामायाभियामा यमसदन-
समा यामिनी याति नूनम् ॥ ४१ ॥ बहुगुणरमणीयो
योषितां चित्तहारो परिणतबहुशालिव्याकुलप्राम-
सोमा । विनिपतिततुषारः क्रीडनादोपगोतः प्रविशतु
हिमयुक्तस्त्रेप कालः सुखं वः ॥ ४२ ॥ भृशमद्वयत
याऽधरपल्लवक्षतिरनावरणा हिममाकृतैः । दशनरश्मि-
पटेन च सौत्कृतैर्निवसितेन सितेन सुनिर्वर्षी ॥ ४३ ॥
अमति हिमानोलैर्न्ये विमुक्तवैर्न्ये जिगीषया जगतः ।

आनेवाला पवन बहाता है, खिले कुन्डके फूलका रस भीतोंको
अपनी ओर खींचता है और जिसमें खैले जंग धूपमें सुन्दरी
नवेलीके केसरसे रंगे हुए मोटे तथा सुन्दर स्तनोंसे लिपटे पड़े
रहते हैं ॥ ३९ ॥ जो नवेली झुंझकर अपने पतिके साथ नहीं
रहना चाहती भी उसने भी जगइनके महीनेमें जाड़ेसे काँपकर
हँसते तुरन्त ही अपने पतिके बाँहोंमें ऐसा कसकर अपने
लिया कि फिर बाँह ढीली करनेका नामतक नहीं किया
॥ ४० ॥ जिस हेमन्त ऋतुमें खिले हुए कमलोंकी शोभा बढ़
जाती है, खिले हुए कुन्डपर मतवाले भीरे मेंहराने लगते हैं
और शीतल पवनसे पारिजातके फूल खिल उठते हैं उस
समय सारी ठण्डक दूर करनेवाली सुगन्धनी लक्ष्मण भी
जिसके गले नहीं जगी उसके लिये हेमन्तकी खन्वी-चौड़ी रात
साक्षात् यमपुरी ही समझिए ॥ ४१ ॥ भगवान् करे, अपने
अनेक गुणोंसे मन खुभासेवाली यह हेमन्त ऋतु आपको सुख दे
जो स्त्रियोंका चित्त पुराती है, जिसमें गाँवोंके आस-पास पके
हुए धानोंके खेत खड़खड़ाते हैं, पाला पड़ता है और सारस
कूजते हैं ॥ ४२ ॥ अपने ओठपर प्रियतमके दाँतोंसे बने हुए
घावोंपर ठण्डा पवन जगनेसे बहुत पीड़ा होनेपर नवेलीने जब
सी-सी किया उस समय उसके उजले दाँतोंके किरणरूपी वस्त्रसे
ही उस पावकी मानो ऐसी मरहम-पट्टी हो गई कि उसकी सारी
पीड़ा जाती रही ॥ ४३ ॥ जब पावकी सेना सारे संसारको जीतनेकी

भयविह्वलमौक्ष्यमिदं तरुणीस्तनदुर्गमाश्रयति ॥ ४४ ॥
महैरिणः कठोरांशोरियं प्रणयभूरिति । रोपादिषु तुपा-
रेण चर्चभूयत पद्मिनी ॥ ४५ ॥ मनोहरैश्चन्दनरागगो-
रैस्तुषारकुन्देन्दुनिभैश्च हारैः । विलासिनीनां स्तनशा-
लिनीनां नालङ्क्रियन्ते स्तनमण्डलानि ॥ ४६ ॥ मार्गं
समीक्ष्यातिनिरस्तनीरं प्रवासस्त्रिभुजं पतिमुद्वहन्त्यः ।
अवेक्ष्यमाणा हरिणेशशाक्यः प्रबोधयन्तीव मनोरथानि
॥ ४७ ॥ यो धातुमश्नाति सकृद्विमर्ता तन्नैव शीतं
व्यथते कदाऽपि । गृह्णन्ति याः प्रत्यहमेव धातुं स्त्रीणां
कुतः स्याद्वत शीतबाधा ॥ ४८ ॥ रतिश्रमक्षामविपा-
एवधपत्राः सम्प्राप्तहर्षाभ्युदयास्तदणयः । हसन्ति
मोक्षैर्देशनाभिभ्राम्प्रपीड्यमानानधरानवेक्ष्य ॥ ४९ ॥
तद्युनि दणकुटीरे क्षेत्रकोणे यथानां मयकलमपलास-
कस्तरे सोपधाने । परिहरति सुपुंसं हालिकद्वन्द्वमा-
रात्कुलकलशमदोष्माकन्दरेखस्तुषारः ॥ ५० ॥ सखा

प्रौढमृशीदृशामिव नवस्त्रीणां स्नेच्छा इव स्वैरिग्या
नियमा इव स्मितरुचः कुल्याङ्गनानामिव । दम्पत्योः
कलहा इव प्रणयिना वागाङ्गनानामिव प्रादुर्भूय तिरो-
भवन्ति सहसा हेमन्तिका वासराः ॥ ५१ ॥ विकसति
सूर्ये विकसति मुकुलति चास्तं गते नस्मिन् । शिशोर-
निःस्वकुटुम्बः पङ्कजलीलां समुद्वहति ॥ ५२ ॥ यण-
भृता सुतनोः कलसीकृतम्फुरितदन्तमरीचिमयं वध-
स्फुटमिवावरणं हिममार्कनैर्मृदुनया दुनयाधरलेखया
॥ ५३ ॥ शम्कालातपक्लान्तकान्ताचक्रैर्दुवल्लभः ।
आजगामाथ हेमन्तः सामन्तस्मरभूभुजः ॥ ५४ ॥
शीतांशोरिव नूतनस्य रुचयो विद्या इयामेधसां विप्रा-
तिममिणां विभूतय इव क्षीयस्य बाधा इव । भायैः
सम्पलिता इव प्रियतमे दम्भकयः सुभ्रूयां प्रादुर्भूय
तिरोभवान्ति सहसा हेमन्तिका वासराः ॥ ५५ ॥
शुकहरितयवानां सोप्ति नोहारभासः सपदि विगत-

हृत्वासे संसारपर का गई तो गरमो भी भयसे बबरकर युवतीके
स्तनकपी हुगें आ दिपी ॥ ४४ ॥ पाकैने मानो हमी कोधसे
कमलवनको मट कर जाला कि 'यह मेरे शत्रु सूर्यकी प्रेमस्थली
है' ॥ ४५ ॥ हेमन्तके दिनोंमें फलकेली नवेखियाँ अपने बड़े-बड़े
गोल-गोल स्तनोंपर हिम, कोई और चन्द्रमाके समान ठण्डके
और कुकुमके रङ्गमें रेंगे हुए हार नहीं पहनती ॥ ४६ ॥ जिन
शृगमयनी स्त्रियोंके पति परदेस चले गए हैं वे सूखे हुए
मार्ग देखकर परदेसमें पड़े हुए अपने दुखी पतियोंके जानेकी
बाद जोहती हुई यह सोचती हैं कि 'जब हमारे पति आवेंगे
तब हम यों मिलेंगी, यों बातें करेंगी और यों रुठेंगी' ॥ ४७ ॥
ठण्डके दिनोंमें जो एक बार भी रसायन खा खेता है उसे ठण्डक
तक नहीं सतासी, फिर जो प्रतिदिन नवेखियोंका धातु ग्रहण
किया करता है उसे ठण्डक क्या कष्ट दे सकेगी ? ॥ ४८ ॥
सम्भोगकी थकावटसे पीछे और सुरक्षाए हुए सुल्लाखी
नवेखियाँ हँसीकी बातपर भी यह समझकर मुँह खोकर नहीं
हँसती कि कहीं प्यारेके पैने दाँतोंसे काटे हुए थोडा दुखने
न करें ॥ ४९ ॥ हेमन्तके दिनोंमें ओके सेतके कोनेमें डाली
हुई फूसकी छोटीसी मईयामें जागके पुष्पाखके बिजुबे
और लकिएपर अपनी नवेखीके साथ सोते हुए इसयादेकी
सारी ठण्डक उस नवेखीके स्तनकी गर्मीसे दूर हटकर एक

रेखाके रूपमें तो दिखाई दे रही है पर उसके पास नहीं आती
॥ ५० ॥ तरुणी नायिकाकी लजाके समान, नई नवेजीकी सम्भोगकी
हृत्वाके समान, न्यभिचारियोंके नियमोंके समान, कुलाङ्गनाओंकी
हँसीके समान, पति-पानोंके भगवेंके समान और देशयात्रोंके
प्रेमके समान हेमन्तके दिनोंका निकलते और दिपते
देर कुछ नहीं जगती ॥ ५१ ॥ हेमन्तके पालेमें दरिद्र
परिवारकी दशा कमलके समान हो जाती है, दोनों ही सूर्यके
निकलनेपर खिल उठते हैं और सूर्यके अस्त होनेपर सिक्का
साते (ठिठुरने लगते) हैं ॥ ५२ ॥ जब उस नवेखीने
अपने कामल छोटीपर बने हुए प्यारेके दाँतोंके घावमें हेमन्तके
ठण्डके पवनसे पीड़ा होनेके कारण सी-सी करनेके लिये मुँह
खोला तो उसके दाँतोंकी चमकने उसके थोडका गरमाहट
देकर उसे कुछ शान्ति दी ॥ ५३ ॥ शरद ऋतुकी कड़ी धूपसे
प्रियाके मुखपाए हुए मुखचन्द्रका प्यारा तथा महाराज कामदेवका
सामन्त हेमन्त काज या पहुँचा है ॥ ५४ ॥ हेमन्तके दिन
उसी प्रकार आयन्त शीघ्रतासे निकलते और घीतते जाते हैं
जैसे दूजके चन्द्रमाका प्रकाश, मूर्खकी विद्या, प्राणियोंका
अपमान करनेवालोंकी सम्पत्ति, पागलका ज्ञान और पतिपर
पक्षी हुई नायिकाओंकी भावभरी तिरछी चितवन ॥ ५५ ॥
रात भीतनेपर सोतेके रङ्गके समान हरे-हरे ओके सेतोंमें खोकर

निद्राः कौञ्चकान्ताः क्षपान्ते । विदधति कमनीय-
वधाणमुद्यत्कारं सरलितगलनालं जर्जरस्फाररेफम् ॥ ५६ ॥ समक्षमपि सूर्यस्य पर्यभूयत पथिनो । तेज-
स्विनोऽपि कुर्वन्ति किं कालवशमागताः ॥ ५७ ॥
हसन्तीं वा हसन्तीं वा हसन्तीं वामलोचनाम् । हेमन्ते
ये न सेवन्ते ते नूनं दैवधञ्जिताः ॥ ५८ ॥ हिमश्रुता-
धपि ताः स्म भृशस्विदो युवतयः सुतरामुपकारिणि ।
प्रकटयत्यनुरागमकृत्रिमं स्मरमयं रमयन्ति विलासिनः
॥ ५९ ॥ हिमधवलदन्तकेशी मन्दद्युतितारका वृहत्ति-
मिरा । द्विगुणीभूता रजनो वृद्धेव शनैः शनैर्याति
॥ ६० ॥ हेमन्तकालेऽत्र वियोगिकाले शीतस्य वक्
पश्य न तस्य यस्य । अह्ने हसन्ती दयिता हसन्ती
पार्श्वे हसन्ती वसनानि सन्ति ॥ ६१ ॥ हेमन्तहिमनि-
रुपन्दमवलोक्य मनोभवम् । अहर्तुं सुभ्रुवां चेतो रवि-

द्वेषो धनुर्वधौ ॥ ६२ ॥ हेमन्ते दधिदुग्धसर्पिरशना
माश्लिष्टवासोभूतः काश्मीरद्वलितचावधपुषः शिवा
विचित्रे रतैः । वृत्तोदस्तनकामिनीजनकृताश्लेषा
शृङ्गाभ्यन्तरे ताम्बूलीदलपूगपूरितमुखा धम्याः सुखं
शेरते ॥ ६३ ॥ हेमन्ते वहुदोषाण्ये द्वौ गुणौ सर्वस-
म्भती । अथत्नशीतलं वारि सुरतं स्वेदवर्जितम् ॥ ६४ ॥
हे हेमन्त स्मरिष्यामि त्वम्यतोते गुणद्वयम् । अयत्न-
शीतलं वारि निशाञ्च सुरतक्षमाः ॥ ६५ ॥

कन्दुककीटा— अमन्दमणिनू पुरकणवधारिकमं
भक्तजम्भितमेधलास्त्रलिततारहारचन्द्रम् । इदं तरल-
कङ्कणावलिविशेषवाचालितं मनो हरति सुभ्रुवः
किमपि कन्दुककीटजम् ॥ १ ॥ अस्याः स्वेदाम्बुविन्दु-
व्युत्ततिलकतयः व्यक्तवक्त्रेणुकास्तेर्वारंवारं वेगम-
हणजगणनाकेक्षिवाचालितायाः । तत्प्रातोऽध्यामतात्क-

उठी हुई कौञ्चकी ओसकी भाँति चमककर अपना गला सीधा
करके घरघराती हुई कँकँ शब्द कर रही है ॥ २५ ॥
हेमन्त ऋतुमें सूर्यके सामने ही कमखिनीकी यह दुर्दशा हो
गई । ठीक है, बड़े-बड़े कालके बरा हो चुकनेपर तेजस्वीके किए भी
क्या हो सकता है ॥ २६ ॥ जिन्होंने हेमन्तमें इर्ष्ये ईसरी
हुई तिरछी चितवनवाली नवेली, बौंगीठी तथा रुईसे भरी
बगदीके उपभोगका आनन्द नहीं उठाया वह निरक्षय ॥
आस्यहीन है ॥ २८ ॥ इस अत्यन्त उपकारी और बिना
परिश्रम ही सम्भोगकी रुचि उत्पन्न करनेवाले हेमन्तके आते
ही नवेलियोंकी देह पसीमेसे भर गई और वे अपने-अपने
बिलासी साजनोंको सम्भोगसे सुख पहुँचाने लगी ॥ २९ ॥
हेमन्तकी दुगुनी बड़ी हुई रात उस मोटी बुद्धियाके समान
धीरे-धीरे आ रही है जिसके जिधे पाखा ही उज्जले दौत और
बाक हों, जिसकी तारोंकपी पुतलियोंका प्रकाश मन्द हो गया
हो और जिसके नेत्रमें छँचेरा-कपी रतींधी बढ़ गई हो ॥ ३० ॥
देखो, वियोगियोंके जिधे कालरूप इस हेमन्त-ऋतुमें उन्हींको
जाड़ा नहीं सताता जिसकी गोदमें ईसती हुई नवेली हो,
पासमें सिगड़ी हों और रुई-भरे वस्त्र हों ॥ ३१ ॥ हेमन्त-
ऋतुमें कामदेवको जाड़ेसे ठिठुरते हुए देखकर भगवान् सूर्यने
ही नवेलियोंके मनपर प्रहार करनेके जिधे स्वयं धनुष
बड़ा लिया (धनु-राशिपर चले गए) ॥ ३२ ॥ वे लोग

जन्म हैं जो हेमन्तमें वही, दूध और घी खाते हैं, साब वस्त्र
पहनते हैं, शरीरपर केसरका लेप लगाते हैं, अनेक प्रकारसे
रति कर-करके धके रहते हैं, अपनी देहसे छिपटी हुई बड़े-
बड़े स्तनोंवाली नवेलियोंको गले लगाए रहते हैं और अपने-
अपने भवनोंके भीतर मुँहमें पानके बीड़े जमाए सुखसे सीते
हैं ॥ ३३ ॥ अनेक दोषोंसे भरे हुए इस हेमन्तमें दो गुण
ऐसे हैं जिसका जोड़ा सब लोग मानते हैं, एक तो बिना प्रयत्नके
उपड़ा पावी और दूसरे बिना पसीनेका सम्भोग ॥ ३४ ॥
हे हेमन्त ! तुम्हारे भीत जानेपर तुम्हारी दो बातें सदा स्मर्य
जाती रहेंगी, एक तो स्वभावसे ही उपड़ा जल और दूसरी
सम्भोगके योग्य रातें ॥ ३५ ॥

गोंदका खेल : हेमन्तके दिनोंमें नवेलीका यह गोंदका विविध
खेल मन मोह रहा है जिसमें मणिकी पावकोंकी कमकुलके
साथ वह अपने सुन्दर पैर चला रही है, उसकी तगड़ी मल-
कना रही है, उज्जले हावकी चमक चारों ओर फैल रही है
और हिलते हुए कज्जल खनखना रहे हैं ॥ १ ॥ हेमन्तमें
शुक्लका आनन्द देनेवाला यह नवेलीका गोंद खेलना जब-
जबपर हमारा मन खींचे ले रहा है जिसके कारण पसीनेकी
ईदोंसे मिटे हुए तिलकवाला उसका मुख कन्दमाके समान
स्पष्ट चमकने लगा है, जो वेगसे गोंदका गढ़ा मिलते हुए
हल्का मचा रही है और जो गोंद मिलते तथा उठते समय

मनमितदशस्ताण्डयोद्यालतालीलासित्याहोभिताः स्म
प्रतिकलममुना कन्दुकक्रीडितेन ॥ २ ॥ चञ्चलेलाञ्ज-
लानि प्रतिसरणिचलव्यस्तवेणीनि बाहोर्वित्तेपादसि-
णस्य प्रचलितचलयस्फारकोलाहलानि । आसथुद्व-
र्वासि द्रुतमितरकरोत्क्षेपलोलालकानि अस्तस्रजि
प्रमोदं दधति मृगदृशां कन्दुकक्रीडितानि ॥ ३ ॥
पयोधराकारधरो हि कन्दुकः करेण रोषादिव ताडयते
मुहुः । इतीव नेत्राकृतिभीतमुत्पलं तस्याः प्रसादाय
पपात पादयोः ॥ ४ ॥ ध्रमधरणपद्मचक्रवर्णदमन्दमञ्जी-
रकं परित्स्नलदुरोदहस्तयककम्पमानांशुकम् । रणक-
नकमेखलं करसरोरुहाभ्यां पुरः पतन्तमपरादवे कुसु-
मकन्दुकं सुन्दरी ॥ ५ ॥ वक्रध्रीजितसञ्चितेन्दुमलिनं
कृत्वा करे कन्दुकं व्रीडाकौतुकमिभ्रभावमनया तिर्यग्-
हृन्मननम् । भृङ्गाग्रग्रहकृष्णकेतकदलस्पर्धावतीनां
दृशां दीर्घापाकृतरङ्गैकसुहृदां कोऽप्येष पामोक्तः

॥ ६ ॥ वनिताकरतामरसाभिहतः पतितः पतितः पुन-
रुत्पतसि । विदितं खलु कन्दुकं ते हृदयं वनिताधर-
सङ्गमलुब्धमिव ॥ ७ ॥ व्यावहान्कुचभारमाकुलकचं
व्यालोलहारावलि प्रेङ्खन्कुरडलशोभिमरडगुगलं प्रस्व-
दिवज्जाम्बुजम् । शब्दं तकरप्रहारमधिकश्वासं रसा-
देतया यस्मात्कन्दुकं सादरं सुभगया संसङ्ग्यं
तत्कृती ॥ ८ ॥ सानन्दकन्दुकचिह्नारविधां वधूनां
वासायमानमणिकङ्कणानिक्वणं । उद्गाथितेषु शुर्वाच-
त्तविहङ्गमेषु श्येना इव स्मृतिभुजो विशिखा विलग्नाः
॥ ९ ॥ स्मरशरधिनिकाशं कर्णपाशं कृताङ्गी रयविग-
लिततालीपत्रताटङ्गमेकम् । वहति हृदयधोरं कुङ्कुम-
म्यासगारं वलयितमिव नालं सांख्येनदीवरस्य ॥ १० ॥
हेमन्तवायः— अन्तर्गृहं नयति वर्धितरामहर्ष
स्पर्शेन सीत्करणगर्भमुखीः करोति । किञ्चाधरवण-
वतीः कुर्वते पुरन्धीः किं वल्लभः किमुत हेमन्त एव

उसीके साथ-साथ अपनी चाँकी नीचे-ऊपर चला रही है ॥ १२ ॥
उस भ्रमणवलीका यह गेंद खेलना सबका आ कुभा रहा है
जिसमें उसके झलक उड़े जा रहे हैं, डग-डगपर लहराते
हुए बाल बिखरे पड़ रहे हैं, बार-बार दाहिनी बाँह उठानेसे
दिलते हुए कङ्कन खनखना रहे हैं, साँस बढ़ जानेसे
चोकना एक गया है, बाँहें हाथसे अपने लटकते हुए बाज
ऊपर उठा रही हैं और जिसमें सिरमें गँधी हुई माछाँहें
गिर-गिर पड़ रही हैं ॥ १३ ॥ स्तनोंकी समानता करनेवाली
गेंदकी यह नवेली कोंधसे बार-बार पीठ रही है इसीझिये
मानो नेत्रकी स्पर्शा करनेके कारण डरा हुआ नीलकमल उसे
प्रसन्न करनेके लिये उसके कानसे लिसऊकर उसके पैरोंपर
आ पड़ा ॥ १४ ॥ जिस समय उस नवेलीने अपने सामने
आती हुई फूलकी गेंद अपने हाथरूपी कमलोंसे पकड़ ली
उस समय उसके चकते हुए पैरोंमें पावल बज उठे, दिलते
हुए स्तनोंका वस्त्र उड़ चला और सोनेकी तगड़ी भी झनझना
उठी ॥ १५ ॥ जिस समय उस नवेलीने उसके मुखकी कान्तिसे
हारकर अभिमत चम्प्रमाके समान मलिन गेंद अपने हाथमें
ली उस समय खेलनेके चाबसे उसका मुख कुछ तिरछा
हो गया और वह अपने उन कजरारे नवनोंकी चितवनसे
कई प्रेमसे गेंदकी देखने लगी जो ऐसे जान पड़ते थे मानो केवड़ेके
पचोंपर और बैठे हों ॥ १६ ॥ हे गेंद ! हम सादृ गये कि नायिकाके
हाथरूपी कमलसे जोड़ काकर तुम बार-बार गिर-गिरकर

भी फिर-फिर इसझिये उल्लास रहे हों कि तुम उसके फाँद
चूमना चाहते हो ॥ १७ ॥ हे गेंद ! तुम सबमुच बढ़े भ्रमण-
वाली हो कि यह सोभाग्यवती नवेली अत्यन्त प्रेम और
आदरके साथ तुम्हारी टहल करनेमें इतनी व्यस्त हो रही है
कि उनके स्तन हिल रहे हैं, बाज बिखरे जा रहे हैं, हार
कूट रहे हैं, कानके हाँमें फुलटकोंके दिलनेसे दोनों गाल
सुन्दर लगने लगे हैं, मुखकमलपर पसीना झळक आया
है, निरन्तर हाथ चलाती जा रहा है और उसका साँस फूँका
जा रहा है ॥ १८ ॥ जिस समय नवेलियों मस्त हाकर गेंद खेल
रही थीं उस समय उनके मणि-जड़े कङ्कनोंकी खनखनाहटसे
सरुणोंके मनरूपी पपी आ उड़े तब उनपर बाजके समान
कामदेवके बाण आ दूटे ॥ १९ ॥ वह दुबली-पतली नवेली
अपने कानमें गेंद खेलते समय ऐसा एक कनवासा पढ़ने
हुए है जिसकी बलियाँ गिर गई हैं और जो कामदेवके तरकसके
समान जग रहा है । उसे देखकर लोगोंका मन मुग्ध हो
जाता है और ऐसा जान पड़ता है कि केसरके रङ्गसे रँगा
हुआ गोक-गोक चाँस-रूपी नीले कमलका नाश हो ॥ २० ॥

हेमन्तके पवन : हेमन्त ऋतुका यह वायु नवेलियोंके
साथ डीक उनके पतियोंके समान धक्का-धक्का करता है क्योंकि
यह उबकी देहमें रोमाञ्च उत्पन्न करता हुआ घरके भीतर
जे जाता है, जैसे ही वह उन्हें छूता है तो वे सी-सी
कर उठती हैं और उनके जोड़ोंमें जगकर वह उनमें बाढ़ भी

वातः ॥ १ ॥ आग्नेयीमेति शीतादिव दिशमकणो वास-
रास्सकुचन्तीवासंस्पशंऽपि तोयाद्ब्रह्मति तनुशिकी
शीतपीडां प्रमाष्टि । तद्वेऽनल्पप्रकोपप्रविदलित-
ददालिङ्गनग्रन्थिघन्धे लब्ध्वा सन्धानरन्ध्रं निविडयति
जडो दम्पती मातरिश्वा ॥ २ ॥ गौरीविभ्रमधूपधूम
पटलश्यामायमानोदराः कण्ठहोदभयान्नये कयलिताः
धीकण्ठकण्ठोरजैः । स्फारोन्मोलितशारदागृहचूड-
द्वाराप्रघण्टारवास्ते श्लाघामलभन्त सन्ततममी
कैलासशैलानिलाः ॥ ३ ॥ दधत्यधरबुभ्यनं नयनपङ्कजं
मुद्रयत्यमन्दपुलकं भनागमलमङ्गमालिङ्गते । विचाल-
यति चालकं चपललोचनानां हठासनोत्थविनयं मरु-
त्प्रिय इवैव हैमन्तिकः ॥ ४ ॥ धृततुषारकणस्य
नभस्थलस्तकलताकुलितजर्नविध्रमाः । पृथुनिरन्तर-
मिष्टभुजान्तरं यानितयानितया न विरोहिरे ॥ ५ ॥
निखयिनि लघलीलतायिकासे जनयति लोभसमीरणे

कर देता है ॥ १ ॥ शीतके दिनोंमें ऐसा जान पड़ता है मानो
ठण्डकके मारे ही सूर्य, चन्द्रिका दिशा (पूर्व और दक्षिणके
बीचकी आग्नेय दिशा) को चला जाता है (दक्षिणायन हो
जाता है), दिन भी मानो शीतके कारण ही सिकुड़ते जाते (छोटे
हो जाते) हैं, जलका स्पर्श न होनेपर भी आग शीतसे ठिठुरती
हुई औरोंकी ठण्डक दूर कर देती है तथा जिस पलंगपर पति-
पत्नी मोचके कारण रुठकर एक दूसरेसे अलग पड़े हुए हैं उसके
बेचसे घुसकर पालेसे ठिठुरा हुआ (मूर्ख) पवन उन्हें वेगपूर्वक
एक दूसरेसे छिपटा देता है ॥ २ ॥ सरस्वतीजीके घरके द्वारपर दैत्य
हुए वड़े भारी धपटेकी टनटनाहटसे भरे हुए उन कैलास पर्वतके
ऊपरे पर्वतोंकी इस समय प्रशंसा हो रही है जो पार्वतीजीके
बाजोंको सुगन्धित करनेवाले घने धुँएँसे काळे-काळे हो रहे
हैं तथा महादेवजीके गलेमें पड़े सर्पोंने जिन्हें इस डरसे
नहीं पिया कि कहीं (ठण्डकके मारे) गल्ला न फट जाय
॥ ३ ॥ वह हैमन्तका पवन हठी धैलेके समान थञ्जल नेत्रों-
वाली नवेलियोंके साथ बड़ा बलाकार कर रहा है क्योंकि
वह हठ करके उनके छोठ चूमता है, उनके कमलनयन मँदता
है, उनके रोमाञ्चित निर्मल आङ्गोंका धीरेसे आलिङ्गन करता है
और उनके बाल सहारा देता है ॥ ४ ॥ ओसकी बूंदोंसे जदा
हुआ पवन पेड़ों और जताओंकी नन्हीं-नन्हीं टहनियोंको ऐसे
झुला रहा था मानो ढँगकी उठा-उठाकर फटकार रहा हो । उन
फटकारोंको केवल के ही स्त्रियाँ सह पाईं जो अपने साजनोंकी

धर्पम् । विहृतिमुपययौ न पारद्वन्द्वलति
नयान्न जिगीषतां हि चेतः ॥ ६ ॥ मीत्वोच्चैर्विधिपन्तः
कृततुहिनकणासारसङ्गान्परागाङ्गौन्दानानन्दितालो-
नतितरसुरभीभूरिशो विह्वलेषु । एते ते कुङ्कुमाक-
स्तनकलशभरास्फालनातुच्छलन्तः पीत्वा सीत्कारि-
वक्त्रं शिशुहरिणदृशां हैमना वान्ति वाताः ॥ ७ ॥
हृलीसीमन्तमुद्रां सपदि तरलयन्कीरकास्ताकुचान्तः
स्वच्छन्दस्तस्तव (?) ली चलचपलतया लोलयन्धार-
ल्लीम् । प्रालेयावासपृथ्वीधरशिररचलच्चारुवारि-
प्रवाहप्रक्षोभप्रातिभम्भीः प्रसरति परितो हैमनो गन्ध-
वाहः ॥ ८ ॥

हैमन्तपथिकः - अस्योम्याहतिदन्तनादमुखरं वक्रं
मुखं कुर्वता नेत्रे साश्रुकणे निमील्य पुलकव्यासक्ति
करद्वयसः । हाहाहेति सुनिष्ठुरं विधदता बाहू प्रसार्य
तर्णं पुण्याग्निः पथिकेन पीयत इव ज्वालाहतरमभुजा

मोटी-मोटी मुजाओंमें कसी छिपटी नहीं पड़ी थी ॥ २ ॥
हरफरेककी जताको खिलानेवाला और खिले लोभमें बसा
हुआ मन्द-मन्द पवन जब हैमन्तमें लोगोंको प्रसन्न कर रहा
था उस समय अर्जुनका मन तनिक भी दिगा नहीं क्योंकि
जो लोग विजय चाहते हैं उनका मन अपने गिरवयसे नहीं
दिग पाता ॥ ३ ॥ ओसके कणोंसे लदे हुए, अत्यन्त सुगन्धित
तथा भीरोंकी मस्त कर देनेवाले कुन्दके फूलके परागको ऊपर
उठाकर हैमन्तके पवन आरों ओर बिखेर रहे हैं, केसरसे छिपे
हुए स्तनोंपर टकरा-टकराकर उड़ल रहे हैं और मृगनयनी
नवेलियोंके सी-सी करते हुए जोड़ोंको चूम-चूमकर बह रहे
हैं ॥ ४ ॥ हैमन्तके जिस पवनकी रोभा हिमाञ्चकी चोटियोंपर
बहते हुए जलकी धारा धू लेनेसे बहुत बढ़ गई है वह पवन
हुआ देशकी नवेलियोंकी माँगकी सजावट बिगाड़ता हुआ,
कीर देशकी नवेलियोंके स्तनोंपर स्वच्छन्द चूमता हुआ तथा तत्सव
देशकी सुन्दरियोंके हारोंको कुजाला हुआ आरों ओर फैल रहा
है ॥ ८ ॥

हैमन्तके यात्री : जादेके कारण जिसके दाँव बज रहे हैं
तथा जो अपनी आँसू-भरी आँखें मँदकर अपने उठे हुए रोंगटेवाले
शरीरको झुजला रहा है, वह परदेसी जब ऊँचे स्तरसे 'हाय-
हाय !' कहता हुआ धौं धौं पैलाकर जलती हुई आगके आगे
झूँह बढ़ाकर ऐसे आग तापने लगा मानो आगकी पिप खाज
रहा हो, उस समय आगकी जपटोंसे उसकी दाढ़ीके बाज नज

॥ १ ॥ आहतोऽपि सहायैरेमोत्पुक्त्वा विमुक्तनि-
द्रोऽपि । गन्तुमना अपि पथिकः सङ्कोचं नैव शिथि-
लयति ॥ २ ॥ हे पान्थ प्रियविप्रयागहुतभुग्ञ्जालान-
भिहोऽसि किं किंवा नास्ति तव प्रिया मतघृणः किंवा
विहीनो धिया । येनास्मिन्नवकुङ्कुमारुणचिन्तासङ्क-
घर्मोचिते कुम्भानन्दितमस्तपट्पदकुले काले गृहान्नि-
र्गतः ॥ ३ ॥ हेमन्ते पथिकजनाः प्रियाविमुक्ता लोकानां
गृहपरिहरेण शयानाः । कन्दर्पाकुलमनसां निशामु-
त्तेषां शीतं किं लगति जगत्प्रकम्पकारि ॥ ४ ॥ हेमन्ते
हिमकरविश्वसाकमुष्या । रामाया मृदुभुजपञ्चरे
शयानाः । ये कालं परमसुखं नयन्ति तेषां शीतं किं
लगति जगत्प्रकम्पकारि ॥ ५ ॥ शीतार्तिप्रसर-
स्तथाकुलपदभ्यासैः समुत्कम्पिभिः पान्थैर्निर्दय-
तुच्छगोधननद्वहापारयैः सूचिताः । प्राप्यन्ते
हिमपीडितानि निभृतप्रोद्घाटधूमा घनस्तांकाः-

वडे ॥ १ ॥ किसी हेमन्तके यात्रीको उसके साथियोंमें चलनेके
लिये पुकारा, उसकी आँख भी खुल गई और उसने उत्तर
भी दिया कि 'मैं आ रहा हूँ' किन्तु जाना चाहते हुए भी वह
आँखसमें लिपटा करबैठे बरस रहा है ॥ २ ॥ हे यात्री !
अपनी प्यारीकी वियोगकी आगकी छपटोंसे तुम अभी घनजान
हो क्या ? या क्या तुम्हारी कोई प्यारी है ही नहीं ? या हे
निर्दयी ! क्या तुम्हें तमिळ भी बुझि नहीं है ? क्योंकि जिस हेमन्तमें
नये केसरके समान लाल-लाल किरणोंवाली धूप निकलती
हो और जिसमें कुन्दके फूलोंपर भीरे प्रसन्न और मस्त होकर
मँडरा रहे हों उस समय तुम्हें घरसे निकलनेकी सूझी है ?
॥ ३ ॥ हेमन्तमें अपनी नवेलियोंसे बिछुड़े हुए परदेसी रातको
किसीके घरके बाहर आँगनमें सोए हुए थे फिर भी उन्हें
संसारको ठिठुरा देनेवाली ठण्डक इसलिये नहीं लग पाई कि
उनके हृदयमें कामाग्निकी ज्वालाई धधक रही थी ॥ ४ ॥
जो लोग हेमन्तकी रातोंमें चन्द्रमाके समान सुन्दर मुखवाली
नवेलीकी कोमल मुजाओंके बन्धनमें लिपटकर सुखसे समय
बिताते हैं उनका यह संसारको ठिठुरा देनेवाली ठण्डक क्या
बिगाड़ सकती है ॥ ५ ॥ कड़कड़ाते आँसे ठिठुरते और जड़सुड़ाते
हुए परदेसियोंको देखकर और दरिद्रोंकी दुबली गायोंका
रँभाभा सुनकर यह समझा जा सकता है कि ठण्डक कितनी
बढ़ गई है, साथ ही पास-पास बसे हुए जिन पहाड़ों गॉनोंमें
धीरे-धीरे धुआँ निकल रहा है उनसे घिरी होमेके कारण कु-

लकुटोरकाः कथमपि प्राप्ता विरिग्रामकाः ॥ ६ ॥

शिशिरवर्णनम्—अंशुर्कामिव शीतभयान्संस्त्यानन्व-
च्छलेन हिमधवलम् । अम्भोभिर्गपि गृहीतं पश्यत
शिशिरस्य माहान्ध्रम् ॥ १ ॥ अगुरुसुग्मिभूपामोदितं
केशपाशं गलितकुसुममालं कुञ्जिताग्रं वहन्ती ।
त्यजति गुरुनितम् । निस्तनाभिः सुमध्या उपसि
शयनमन्या कामिनी साहसाभा ॥ २ ॥ अङ्गारहासिषु
विलासगृहोदेषु तल्पेषु तूलपट्कलिपतवर्णेषु ।
उष्णेषु च प्रणयिनीकुचमण्डलेषु शास्ति जगाम
शिशिरस्य तुषारवर्गः ॥ ३ ॥ अधिलघुदममी रजसा-
धिकं मलिनितामुमनोदलतालिनः । स्फुटमिति प्रसंयन
पुरो हसन्सपदि कुन्दलता दलनालिनः ॥ ४ ॥ अपगत-
मदरागा योपिद्रका प्रभासे कृतनिविडकुचाग्रा पत्युरा-
लिङ्गेन । प्रियतमपरिभुक्तं वीक्षमाणा स्वदेहं व्रजति
शयनघाताद्वासमभ्यं हसन्ती ॥ ५ ॥ अभिनिर्णयिषुं भुव-

कुल दिखाई देनेवाली आपदिर्धों भी पाँकेले दबी जान पड़ती
है ॥ ६ ॥

शिशिरका वर्णन—देखो ! जल भी शिशिरके प्रभावके
कारण ऐसा ठण्डा हो चला है कि उसपर उजला-उजला पाला
फैल गया है जिससे जमकर वह बिड़े हुए बिल्लीके सरान दिखाई
दे रहा है ॥ १ ॥ भारी नितम्बोंवाली, गहरी नाभिवाली,
लचकदार कमरवाली और मनभावनी मुन्दरनावाली एक
नवेली अगरके धुँएँमें बसी हुई मालाओंसे दिना मुँधी हुई घनी
मुँचराकी लटोंको घामे प्रातःकाल पकेंग छोड़कर उठ रही
है ॥ २ ॥ अपनी गर्मसे आँखोंकी हैसी उड़ानेवाले विलास-
घरोंके भीतर रुँके गहोंसे ढके हुए पलंगों तथा प्राणप्यारीके
गरम-गरम स्तनोंतक पहुँचकर शिशिर काकुका प्रभाव ही लुप्त
हो जाता है ॥ ३ ॥ जैसे किसी पुरुषके वस्त्रोंमें किसी रजस्वलाका
रक्त लगा देखकर दूसरी स्त्री उसकी हैसी उड़ाती है उसी
प्रकार लौंगकी लताके परागसे लिपटे हुए और लौंगके फूलपर
ही बैठे हुए भौरोंको देखकर कुन्द-लता मानो अपने लिले हुए
फूलोंसे उसकी हैसी उड़ा रही है ॥ ४ ॥ देखो, प्रातःकाल होनेपर
जो नवेली प्रियतमसे उपभोग किए हुए अपने शरीरको देखती हुई
अपने शयन-घरसे दूसरे घरको जा रही है उसके मुखपरसे
मदकी लाली जाती रही है और पतिकी छातीसे लगे
रहनेके कारण उसके स्तनोंकी धुँडियों भी कधी पक गई हैं
॥ ५ ॥ पकती हुई सेनाकी भूके समान मरमेजा कोषका

नामि यः स्मरमिवाक्यत लोभरजश्चयः । लुमितसैम्य-
परागविपाहदुरद्युतिरयं तिर्यन्नुदभृदिशः ॥ ६ ॥
आचुम्य बिम्बाधरमङ्गवल्लीमालिङ्ग्य संस्पृश्य कपो-
लपालिम् ॥ श्रीलण्डमादाय करेण कान्तः सन्वासया-
मास सरोरुहाक्षीम् ॥ ७ ॥ उपचितेषु परेष्वसमर्थां
मज्जति कालवशाद्दलवानपि । तपसि मन्दगभस्तिर-
भीषुमाग्रहि महाहिमहानिकरोऽभवत् ॥ ८ ॥ एते
समुल्लसद्भासो राजन्ते कुन्दकोरकाः । शीतभीता
लताकुन्दमश्रिता इव तारकाः ॥ ९ ॥ कतिपयसह-
कारपुष्परम्यस्तनुतुहिनोऽर्पधनिद्रसिन्दुवारः । सुर-
भिमुखहिमागमास्तशंसी समुपययौ शिशिरः स्मरैक-
वन्धुः ॥ १० ॥ कमलकमलकान्तैश्चाकृताभ्राधरोष्ठैः
अवणतटनिषक्तैः पाटलोपान्तनेत्रैः उर्ध्वसि वदनबिम्बै-
रंससंसक्तकेशैः श्रिय इव गृहमध्ये संस्थिता योषि-
तोऽद्य ॥ ११ ॥ कारणोत्पन्नकोपोऽपि साध्वतं ममदा-

पराग शिशिरमें चारों ओर दिशाओंको डकता और
कीलता हुआ मानो इस बातकी सूचना दे रहा है कि राजा
कामदेव जब संसारपर चढ़ाई करने ही वाले हैं ॥ ६ ॥
शिशिरमें एक छेलेने अपनी नवेलीके काज-काज जोड़
रूमे, उसे छातीसे लगाया, उसके गाज मसले और जब
अपने हाथसे घिसा हुआ चन्दन लेकर उस कमलनयनीको
धमका रहा है कि 'यह तुम्हारे शरीरमें पोंतने ही वाला हूँ' ॥ ७ ॥
जब शत्रु प्रवृत्त हो जाता है तब उस विपक्षिके समय दखवान्
भी अपना कष्ट दूर करनेमें असमर्थ हो जाता है । देखो, माघ
मासमें तेजस्वी सूर्यकी किरणें इतनी कीकी पड़ गईं कि वह
प्रवृत्त हिमको दूर नहीं कर पा रहा है ॥ ८ ॥ कुन्दकी
चमकती हुई किरणें पृष्ठोंपर ऐसी सुन्दर दिखाई पड़
रही हैं मानो ठण्डकसे डरकर तारोंने कुन्दके बिरबेर बसेरा
हाल दिया हो ॥ ९ ॥ कुछ खिले हुए आमके बीरोंसे सुन्दर
कागनेवाली, थोड़ी ठण्डकवाली और कुछ खिले हुए सिन्दुवारों-
वाली शिशिर बहुत सुगन्धसे लदी हुई हेमन्त ऋतुका अन्य
सूचित करती तथा कामकी उषेजित करती हुई आ पहुँची
है ॥ १० ॥ इन दिनों प्रातःकाल स्त्रियोंके सुन्दर
काज-काज चोंडोंवाले, छाल कोरोंसे सजी हुई बड़ी-बड़ी
आँखोंवाले, कन्धेपर फैले हुए मालोंवाले और सुनइले कमलके
समान चमकनेवाले गोख-गोख मुकोंको देखकर ऐसा लगता
है मानो घर-घरमें लक्ष्मी आ बसी हों ॥ ११ ॥ जो स्त्रियाँ

जनः । निशि शीतापदेशेन गाढमालिङ्गति प्रियम्
॥ १२ ॥ कृतापराधाम्बुशोऽभितर्जितान्स्वेपथून्साध्व-
सलुप्तचेतसः । निरीक्ष्य भर्तृन्सुरतामिलापिलः
स्त्रियोऽपराधान्समदा विसस्मदः ॥ १३ ॥ गृहीतताम्बू-
लविलेपनस्रजः पुष्पासवामोदितवक्त्रपङ्कजाः । मका-
मकालागुरुषूपवासितं विशन्ति शय्यागृहमुत्सुकाः
स्त्रियः ॥ १४ ॥ लुप्तोसीमनि गोरसाद्रमशनं भुक्त्वा
परीत्याऽर्भकैरभ्याशे स्वकृषीणुयन्त्रनिनदं हर्षात्समाक-
र्षयन् । शेते संहतगोगणोष्मणि गृहे अस्ताम्भरां गेहि-
नीमालिङ्ग्यागणयजिशासु तुहिनं मोहामरः पामरः
॥ १५ ॥ तपनस्तपति स्म मन्दमन्दं ज्वलनोऽपि ज्वलति
स्म किञ्चिदेव । शरणं शिशिरेऽथ किम्ब यूनां युधतीनां
स्तनयुग्ममात्रमासीत् ॥ १६ ॥ तुषारसङ्घातनिपात-
शीतलाः शशाङ्कमाभिः शिशिरीकृताः पुनः । विपाह-
तारागणचारुभूषणा जनस्य सेव्या न भवन्ति राजव्यः

किसी कारण अपने प्यारोंसे रुठ गई थीं वे भी शिशिरकी
रातमें ठण्डकका बहाना लेकर अपने पतिवोंसे छिपरी जा
रही हैं ॥ १२ ॥ मदमाती नवेलियोंने अपने जिन पतिवोंको
अपराध करनेपर डाँटा-फटकारा था, वे जब कोपसे हुए और
डाँसे चबराप शिशिर ऋतुमें उनके पास आते हैं तो
उन्हें देखते ही वे नवेलियों जगका सब अपराध भूलकर उनसे
सम्भोग करने लग जाती हैं ॥ १३ ॥ कुलोंका आसव पीनेसे
जिनका मुलकमल सुगन्धित हो गया है वे स्त्रियाँ पल
चबाकर, कुलेज लगाकर और मासार्ह पहनकर, कासे अगरकै
धुँसे महकनेवाले अपने शयन-घरोंमें बड़े चावसे पड़ी
जा रही हैं ॥ १४ ॥ अपने काज-बच्चोंके साथ चूल्हेके पास
बैठकर, दूधमें रोटी साजकर, आ-पीकर अपने लेतकी हँसके
कोधूकी चर-मर सुनता हुआ पास ही बैठी हुई गायोंकी
गर्माँसे गरम मद्देयमें जाड़ेकी चिन्ता न करता हुआ कोई
ग्रामीण रातमें अपनी नही खीसे छिपटा हुआ मस्त होकर
सो रहा है ॥ १५ ॥ शिशिरमें सूर्य धीरे-धीरे तप रहे हैं
और आग भी भीमी ही जल रही है इसलिये इस कड़ाकेकी
शीतमें ठण्डकोंकी रफाके बिन्ने नवेलियोंके दोनों स्तन ही केवल
रह गए हैं ॥ १६ ॥ इन दिनों घने पाखसे कड़कवाते
जाड़ोंवाली, चन्द्रमाकी किरणोंसे और भी ठण्डी बनी
और पीछे-पीछे धुँधले तारोंवाली रातोंमें कोई भी भया आदमी
बाहर नहीं निकलता ॥ १७ ॥ शिशिर ऋतुमें खीनेवाले

॥ १७ ॥ द्वारं गृहस्य पिहितं शयनस्य पाशं बहिर्ज्वल-
त्युपरि त्वष्टो गरीयान् । अक्रान्तुकूलमनुरागवशं
कलत्रमिदं करोति किमसौ स्वपतस्तुषारः ॥ १८ ॥
नक्षपद्वितभागांस्वीक्षमाणाः स्तनान्तानघरकिसल-
याग्रं दन्तभिन्नं स्पृशन्त्यः । अभिमतस्त्वेषं नन्दयन्त्य-
स्तकण्यः सवितुरुदयकाले भूषयन्त्याननानि ॥ १९ ॥
न चन्दनं चन्द्रमरीचिशीतलं न हर्म्यपृष्ठं शरदिन्दुनि-
र्मलम् । न वायवः सान्द्रतुषारशीतला जमस्य चित्तं
रमयन्ति साम्प्रतम् ॥ २० ॥ निरुद्धघातायनमन्दिरो-
द्गं हुताशने भानुमतो गमस्तयः । गुरुणि घासांस्व-
बलाः सयौवनाः प्रयान्ति कालेऽत्र जनस्य सेव्यताम्
॥ २१ ॥ पयोधरैः कुङ्कुमगणपिञ्जरैः सुखोपसेव्यैर्नव-
यौवनोष्मभिः । विलासिनीभिः परिपोडितोरसः
स्वपन्ति शीतं परिभूय कामिनः ॥ २२ ॥ परमप्रमदा
प्रमदा भ्रमरी भ्रमरीतिकोविदा विपिने । पवनो
विभाति जवनो मदनः शिशिरे वियोगिनां कदनः ॥ २३ ॥

जोगोंके किये इतनी वस्तुएँ इकट्ठी हो जाती हैं—घरका द्वार
बन्द हो जाता है, बिल्लीके पास खींगठी जलाई जाने लगती है,
पल्लंगपर भारी रजाई पड़ी रहती है और प्रेम-भरी नवेली भी
अपने मनके अनुकूल हो जाती है ॥ १८ ॥ प्रियतमके नखोंके
बावोंसे भरे अपने स्तन देखती हुई, प्रियतमके दाँतोंसे कटे
हुए कोंपलोंके समान अपने कोमल ओठ चूती हुई और इस
प्रकार अपने मनचाहे सम्भोगके देशपर खिलखिलाती हुई
नवेलियाँ प्रातःकाल अपने मुँह समा रही हैं ॥ १९ ॥
इन दिनों न किसीको चन्द्रमाकी किरणोंसे ठपकाया हुआ
चन्दन ही झुहाता है, न शरद्वृक्षे चन्द्रमाके समान निर्मल
सुतें ही अच्छी लगती हैं और न घनी ओससे ठपका बना
हुआ वायु ही मनको भाता है ॥ २० ॥ आजकल लोग
अपने घरोंके भीतर सिद्धियाँ बन्द करके, तपती सापकर,
धूप लाकर, मोटे-मोटे वस्त्र पहनकर और युवती नवेलियोंसे
छिपटकर दिन बिताते हैं ॥ २१ ॥ इन दिनों प्रेमी लोग
केसरसे रंगे लाल स्तनोंवाली और सुखसे लूटी जानेवाली
जवाबीकी गरमीसे भरी हुई कामिनीयोंको कसकर छातीसे
छिपटाए हुए आदा भगाकर सोते हैं ॥ २२ ॥ शिशिर ऋतुमें
नवेलियाँ उन्मत्त हो जाती हैं, औरियाँ भी वनमें भली-भाँति
मँबराना सीख जाती हैं, पवन वेगसे बढ़ने लगता है और
कामदेव भी वियोगियोंके प्राण हरे लेता है ॥ २३ ॥ यदि

पीनोत्प्लवपयोधराः परिलसन्सम्पूर्णचन्द्राननाः कान्ता
नैव गृहे गृहे न च दृढं जात्यं न काश्मीरजम् ।
ताम्बूलं न च तूलिका न च पट्टी तैलं न गन्धाविलं
सद्यो गोघृतपाजिता न घटकाः शीतं कथं गम्यते
॥ २४ ॥ पृथुजवनभरार्ताः किञ्चिदानम्रमध्याः स्तनभ-
रपरिसेदान्मन्दमन्दं मज्जन्यः । सुरतसमयवेषं नैश-
माशु प्रहाय दधनि दिवसयोग्यं घेयमन्यास्तकण्यः
॥ २५ ॥ प्रकामकामैर्युवभिः सुनिर्वयं निशासु दीर्घा-
स्वभिरामिताश्चिरम् । भ्रमन्ति मन्दं श्रमखेदितोरसः
लपावसाने नवयौवनाः स्त्रियः ॥ २६ ॥ प्रचुरगुडवि-
कारः स्वादुशालीलुग्म्यः प्रयत्नसुरतकेलिर्जनकन्दर्प-
वर्षः । प्रियजनरहितानां चित्तसन्तापहेतुः शिशिर-
समय एष धेयसे घोऽस्तु नित्यम् ॥ २७ ॥ प्ररुदशाली-
लुब्धयावृत्तवृत्ति क्वचिन्स्थितकौञ्चनिनादगाजितम् ।
प्रकामकामं प्रमदाजनप्रियं घरोद कालं शिशिराहर्ष
भृशम् ॥ २८ ॥ प्राघातैरकारैर्गर्भगृहेः स्तनतटैश्च दयि-

घर-घर बन्दे-बन्दे ठके हुए स्तनोंवाली तथा चमकते हुए पूर्ण
चन्द्रमाके समान मुखवाली नवेलियाँ हैं, वनमेंकी मोटी
माछा, केसर, शान, रजाई (सौंद) और सुगन्धित तेल
तथा गीके घोंमें पकाए हुए बड़े न हों तो शिशिरका जाड़ा
बिताए न बीते ॥ २४ ॥ नवेलियाँ प्रातःकाल मोटी-मोटी
जॉयें करते हैं। आज्ञा के हुए तथा स्तनोंका भार अधिक होनेसे
धीरे-धीरे कुछ कमर कुकाए हुए चल रही हैं । कुछ
दूसरी नवयुवतियाँ रातके रति-समयका वेश उतार-उतार दिनके
योग्य वेश धारण कर रही हैं ॥ २५ ॥ जिन नवयुवतियोंमें
युवकोंके साथ शिशिरकी लम्बी रातोंमें बहुत देरतक जी भरकर
और कसकर सम्भोगका आनन्द लूटा है, वे नवेलियाँ रातकी
थकावटसे दुखती हुई जॉयोंके कारण प्रातःकाल बड़े धीरे-धीरे
चल रही हैं ॥ २६ ॥ जिस शिशिर ऋतुमें बहुतायतसे मिठाईयाँ
मिलती हैं, चारों ओर स्वादिष्ट चावल और ईसकी भरमार होती है
लोग भुज्जोधार सम्भोग करते हैं, कामदेव भी पूरे वेगसे बढ़
चलता है और प्यारोंके बिना अकेले दिन काटनेवाले लोग मन
मसोसकर रह जाते हैं, वह शिशिर ऋतु सदा आप जोगोंका
भगा करे ॥ २७ ॥ हे सुन्दर जॉयोंवाली ! सुनो ! जिस ऋतुमें धान
और ईसके खेत जलजहा उठते हैं, कभी-कभी सारसकी बोली
भी गूँज जाती है और कामदा वेग भी बहुत बढ़ जाता है, वह
नवेलियोंकी प्यारी शिशिर ऋतु का पट्टी है ॥ २८ ॥ जिन

तानाम् । सन्तर्जितमाख्यानां विपतति शीतं दरिद्रेषु
॥ २६ ॥ मनोहृत्कर्पासकपीडितस्तनाः सरागकोशेयक-
भूषितोरवः । निवेशितान्तःकुसुमैः शिरोरुहैर्विभूष्य-
न्तीव हिमागमं स्त्रियः ॥ ३० ॥ मानिन्या ननु मानः
शीतभयाद् दूरगो भवेच्छिशिरे । नेदं हन्त सुचित्रं किं
तूष्णाश्लेषताऽप्येवम् ॥ ३१ ॥ वद्रेः शक्तिर्जलमिव गता
दर्शनाद्वाहवृत्तेनित्योद्गन्धे नयमरुचके वर्तते पुष्पकार्यम्
शीतप्रासं बध्नादिव रक्षिर्याति सिन्धोः कृशानुः शीतै-
र्भाता इव च दिवसाः साम्प्रतं सङ्कुचन्ति ॥ ३२ ॥
धिरतस्तु कृतपाका चान्दनी हन्त सर्वा भवति परतनूनां
दूर पथ स्तनेभ्यः । उपमतफलपुण्यस्तेषु लब्धप्रतिष्ठो
मव्यति युषलोकं कुङ्कुमालेप एव ॥ ३३ ॥ शिशिरमा-
समपास्य गुणोऽस्य नः क इव शीतहरस्य कुक्षो-
ष्मणः । इति धियास्तदपः परिरेभिरे घनमतो नम-
तोऽनुमतान्मियाः ॥ ३४ ॥ सुगन्धिनिःश्वासविक-

खोगीने गरम बर्फ, बिना धुँकी आग, बन्द घर और
मियतमाँचोंके स्तनोंसे ठण्डक भगा दी है उनकी ठण्डक भागकर
हरिद्वीके घर जा पहुँची है ॥ २६ ॥ सुन्दर चोलियोंसे अपने
स्तन कसे हुए, जाँघोंपर रेशमी बख बाँधे हुए और बालोंमें
कुँज गुँथे हुए नवेलियों ऐसी खग रही हैं मानो जाड़ेके
स्वागतका उत्सव मनानेके लिये वे भ्रमर कर रही हों ॥ ३० ॥
शिशिर ऋतुमें कठनेवाली नवेलियोंका कठना तो जाड़ेसे डरकर
घुटता ही जाता है किन्तु यह तो जाड़े अनर्थकी बात है कि सूर्यकी
गर्मी भी जाड़ेके डरसे सूर्यकी छोड़े दे रही है ॥ ३१ ॥ शिशिरमें
जल भी जलाने-सा खगता है, इससे जान पड़ता है मानो
आगकी शक्ति जलमें बली गई, ठण्डक गन्धवाली गई गन्धनुसरीके
फूलमें ही सब फूल जा समाए हैं, सूर्य भी मानो ठण्डकके
सारे बड़काभ्रके पास जा रहे हैं और दिन भी मानो
ठण्डकके डरसे सिङ्कड़कर छोटे हो गए हैं ॥ ३२ ॥ इस
शिशिर ऋतुमें जिसके सारे पुष्प नष्ट हो चुके हैं ऐसे चन्द्रिका
प्राप्तक भी कोई स्तनोंपर लगानेके लिये नहीं लेता । अब तो
कुङ्कुमका ही पुण्य भोगनेका समय है अतः उसीका लेप
नवेलियोंके स्तनोंपर लगकर युवकोंको मस्त करता रहता है
॥ ३३ ॥ नवेलियोंने शिशिर ऋतुमें अपना सब शोध छोड़कर
अपने सामने हाथ जोड़े खड़े हुए पतियोंको यह समझकर कसकर
छातीसे लगा लिया कि शिशिरके बीत जानेपर इन ठण्डक दूर
करनेवाले स्तनोंका फिर उपबोग ही क्या होगा ? ॥ ३४ ॥

मिथितोत्पलं मनोहरं कामरतिप्रबोधकम् । निशासु
दृष्टा सह कामिभिः स्त्रियः पिबन्ति मयं मन्वीय-
मुत्तमम् ॥ ३५ ॥

हृद्मलिनकीड़ा — न पाणिप्रच्छाद्यं नयनयुगमत्या-
यतमिदं नितम्बस्यौदार्यास्वरितगतियोगोऽप्यसुलभः ।
अतिस्वलपौ पाणी स्तनभरनिरोधाच्च मिलितौ निमीक्ष-
कीडायां कलुषयसि मुग्धे किमिति नः ॥ १ ॥ नैतस्याः
प्रसूतिद्वयेन सरले शक्ये पिघातुं दृष्टौ सर्वत्रैव विलो-
क्यते मुखशशिन्योत्खाचितानैरियम् । इत्थं बालतया
सखीभिरसकृद्दुःखमोलनाकेलिषु व्याविष्टा रजनीमुखे
च नयने स्वे गर्हते कन्यका ॥ २ ॥

शिशिरवायव — कुसुमयन्कलिनीरलिनीरवैर्मद्विका-
सिभिरहितदुःकृतिः । उपवनं निरभत्यंत प्रियाभि-
युवतोर्युवतीः शिशिरानिलः ॥ १ ॥ केशानाकुलयन्मृदौ
मुकुलयन्वासो बलादालिप्यतन्मपुलकोद्भवं प्रकट-

इन दिनों नवेलियों मस्त कर देनेवाली और कामवासना
जगानेवाली वह बड़िया स्वादिष्ट मदिरा बड़े हर्षसे अपने
प्रेमियोंके साथ रातकी पीती हैं जिसमें पड़े कमल वन
कामियोंकी सुगन्धित साँसे बराबर दिकते रहते हैं ॥ ३५ ॥

आँख-मिचौनीका खेल : हे सखी ! आँख-मिचौनी
खेलनेके लिये तुम मुझे क्यों लज्ज कर रही हो । देखो, न तो
मेरी बड़ी-बड़ी आँखें हो कोई अपने हाथोंसे टक पाती है, न
मैं अपने नितम्बोंके भारीपनके कारण वेगसे दीव सकती हूँ
और स्तन भी इतने ऊँचे हो गए हैं कि मैं किसीको पकड़ने
भी नहीं तो हाथ आपसमें मिक नहीं पाते और पोर पकड़नेमें
नहीं आ पाता ॥ १ ॥ सखियों किसी नवेलीके विषयमें कह
रही हैं—‘इस नवेलीकी दोनों आँखें दोनों हथेलियोंसे ठकी नहीं
आ पाती, इसके मुखरूपी चन्द्रमाका प्रकाश ऐसा झिलझिला
है कि वह कहीं भी छुके किन्तु विलाई पड़ जाती है, इसलिये
इसे आँख-मिचौनीके खेलमें नहीं लेना चाहिए ।’ इस प्रकार जिस
नवेलीको सखियोंने आँख-मिचौनीके खेलसे हटा दिया है वह
सम्भ्या समय बेठी अपनी बड़ी-बड़ी आँखोंको कोस रही है ॥ २ ॥

शिशिरके पवन : मियहु जताके फूल लिजानेवाला
शिशिर ऋतुका पवन उन कुँजोंपर बैठकर गुजार करती
भीरियोंकी गुजारके स्वरमें ‘हू-हू-हू’ करता हुआ ऐसा जान
पड़ता है मानो मियतमाँसे बिछुड़ी हुई नवेलियोंको डाँटे जा रहा
हो ॥ १ ॥ शिशिरका पवन इस समय नवेलियोंके बाव

यन्नावेगकम्पं गतेः । वारंवारमुदारसीकृतभरैर्दन्त-
च्छदं पीडयन्नायः शैशिर एव सम्प्रति मरुत्कान्तासु
कान्तायते ॥ २ ॥ चुम्बन्तो गण्डभिर्त्तीरलकवति मुखे
सीकृतान्याधाना वल्लःसूक्तञ्चुकेषु स्तनभरपुलको-
द्भेदमापादयन्तः । ऊरुनाकम्पयन्तः पृथुजघनतटास्त्रं-
सयन्तोऽशुकानि व्यक्तं कान्ताजनानां घटचरितभृतः
शैशिरा वान्ति वाताः ॥ ३ ॥ स्पृष्टाः स्तोकं वितस्ता-
तदनुहिनकणैः पिरुडयन्तः पयोप्णीं चञ्चन्तश्चन्द्रभा-
गालहरिषु यमुनावीचिमैत्रीपवित्राः । धून्वानास्सिद्ध-
स्त्रिधोरुभयतटगतां देवदारुद्रुमालि लोकमोक्षे बभू-
वुस्तुहिनगिरितटीकेलिकारास्समीराः ॥ ४ ॥

शैशिरपान्थः - आरात्कारोपयक्षैर्विरचितसुतुणप्रस्त-
रास्तनियणैः संशीर्णग्रन्थिकन्धाविपरयशविशच्छात-
वाताभिभूतैः । नीताः कृच्छ्रेण पान्थैः श्वाभिरव-
नियिडं आनुसङ्गोचकुजैरन्तर्दुर्वारदुःखद्विगुणतरु-
तायामयामास्त्रियामाः ॥ १ ॥ पुण्यानां पूर्णचन्द्रः प्रथम-

विज्ञाता हुआ, उनकी छाँलें भूँदता हुआ, दृढपर्वक उनके
बस लीचता हुआ, उनके रोंगटे सिलाता हुआ, उनकी चालमें
कम्पन उपजाता हुआ तथा बार-बार सी-सी करनेवाले उनके
छोट दबाता हुआ, उनके साथ पतिका-सा व्यवहार कर रहा
है ॥ १ ॥ छटकते हुए बालोंसे सजे हुए मुखोंवाली नवेलियोंके
गाल चूमते हुए, उनसे सी-सी कराते हुए, उठी हुई
खोलीवाले धातीके स्तनोंपर रोंगटे लदे करते हुए, उनकी
जॉयें रँगते हुए और उनके नितम्बोंसे साथी सरकाते
वे शिशिरके पवन नवेलियोंके साथ बिलासी नायकके-से
व्यवहार करते हुए बह रहे हैं ॥ २ ॥ बितस्ता नदीके
तटके पालके कलोंके स्पर्श-मात्रसे पयोप्णी नदीका जल जमाते
हुए, अश्वभागा नदीकी आँधरें छलकाते हुए, यमुनाकी लहरोंकी
मिश्रतासे पवित्र हुए, तथा सिद्ध-समुद्रके दोनों तटोंपरके
देवदारके वृक्षोंकी पतियोंकी कलभोरते हुए हिमालयकी तलहटीपर
अटखेलियाँ करनेवाले पवन संसारको मस्त करते हुए बह
रहे हैं ॥ ४ ॥

शिशिरके यात्री : कश्चेकी आगके पास पासके
बिड़ौनेपर बैठे हुए, फटी हुई गुदरीके छेदमेंसे घुसते हुए
ढवड़े पवनसे ठिठुरते हुए और अपने घुटने मोढ़े हुए यात्रियोंके
कुलोंके समान बड़ी कठिनाईसे वे जम्बी-जम्बी रातें बिताईं
जो हुलहाईं विभोगके दुःखसे पूरी आप पक रही थीं ॥ १ ॥

मगणितसोपदोषः प्रदोषे पान्थः सुप्त्वा यथेच्छं तदनु-
तनुतुणे धामनि ग्रामदेव्याः । उत्कम्पी कर्पटार्धं जरति
परिजडे छिद्रिणि च्छिन्ननिद्रे वाते वानि प्रकामं हिम-
कणिनि फवलन्कोणतः कोणमेति ॥ २ ॥ पृष्टारोपित-
कर्पटस्य विसम्प्राप्याभ्युसितकान्तनः कुञ्जीभूतननो-
र्निविष्टवदनस्थाभ्यन्तरे जानुनोः । निस्सर्हं भुजयुग्म-
पीडनवशाच्छ्रयन्कक्षोष्णो रसः पान्थस्यातनवक्रिरा-
शिनिचये याति क्षपा शैशरी ॥ ३ ॥ सम्प्रिष्टो ग्राम-
देव्याः कुटघटितकुटीकुड्यकोणैकदेशे शाते सम्यानि
वायां हिमकणिनि रणहन्तर्पाङ्कज्याप्रः । पान्थः कन्थां
निशाथे परिकुशितजरत्तन्तुसन्तानगुर्वी ग्रीवापादाप्र-
जानुप्रहणखटचटकर्पटां प्रावृणोति ॥ ४ ॥

संयोग-शृङ्गारः

नायकदर्शनम् - काचिन्निवारितवह्निर्मना जनन्या
द्रष्टुं प्रियं भवनजालकमाससाह । तस्या विलोचनम-
दश्यत दाशदत्तयन्त्रोपकृष्टशफरंपमितं लणन ॥ १ ॥

शिशिरकी कतुमें बाहर गया हुआ यात्री जलनेकी चिन्ता न
करके भी सौँकको जलती हुई आग तापकर गाँवकी देवीके
मन्दिरमें पासके बिड़ौनेपर जमकर सो रहा किन्तु ठण्डा
पवन चलते ही उसकी नींद टूट गई और वह ठिठुरता
हुआ अपने पुराने, ढवड़े, फटे बच्चोंमें लिपटकर वायुसे
लाप हुए ओसके कणोंसे भीगे हुए, कोनेसे दृढ़कर दूसरे कोनेमें
जा दुपका ॥ १ ॥ कोई यात्री पीठपर कपरी लादे, फैले हुए
कुदरेके जलसे भीगा, फूँद निकालकर घुटनोंके भीचमें सिर
ढाले तथा उदासीन भावसे अपने दोनों कोखोंमें मुट्ठी
दाबकर गरमाता हुआ, जलती आगके पास बैठा-बैठा ही
शिशिरकी रात बिताए डाल रहा है ॥ ३ ॥ पैदाँसे घिरे हुए
किसी ग्रामदेवीके मन्दिरके भीतके एक कोनेमें कोई यात्री
शिशिरकी रातमें सो तो गया पर जब ओसकी बूँदोंसे लदा
हुआ ठण्डा पवन चलने लगा तो उसके दाँत बजने लगे ।
उस समय आधी रातको उसने पुराने डोरोंसे तांगी हुई बड़
भारी गुदरी छोड़ ली जिसका पुराना बस, सिर, पैरके पंजे और
घुटनोंमें अड़-अड़कर चरचराकर फटा जा रहा था ॥ ४ ॥

संयोग-शृङ्गार

नायकसे भेंट : जिस नाविकाको उसकी माँने बाहर
निकलनेसे रोक दिया था वह जब अपने प्यारेको देखनेके लिये
घरकी आलीदार सिद्धीपर आँलें लगाकर लड़ी हुई, उस

किञ्चित्कुञ्चितहारयष्टि सरलभूषणि साविस्मृतं
 भ्रान्तभ्रान्तविलोचनपुति भुजापयस्तकर्णोत्पलम् ।
 अङ्गुल्या स्फुरदङ्गुलीयकदवा कर्णस्य करद्वयनं
 कुर्वाणा नृपकन्यका सुकृतिर्न सव्याजमालोके ॥ २ ॥
 कच्छेण कापि गुरुलैव जने निरोधमुल्लङ्घय नायकस-
 मीपभुवं प्रतस्थे । हा हन्त शोभगमनप्रतिरोधहेतु-
 स्तस्याः पुनः स्तनभरोऽपि गुरुर्बभूव ॥ ३ ॥ नान्तः-
 प्रवेशमकण्ठमुखी न चासीदावष्ट दोषपट्टयाणि न
 चाक्षराणि । सा केवलं सरलपद्मभिरक्षिपातैः कामं
 विलोकितवती जगन्निर्धिशेषम् ॥ ४ ॥ यां यां प्रियः
 प्रेक्षत कातराक्षी सा सा हिया नम्रमुखी बभूव ।
 निःशङ्कमन्याः सममाहितेर्ष्यास्तत्रान्तरे जघनुरमुं
 कटाक्षैः ॥ ५ ॥

नायिकादर्शनम् — अचिच्छन्नामृतविन्दुवृष्टिसदृशीं
 प्रीतिं दद्यात् दृशां पाताया विगलत्पयोधरभराद्भृष्ट-

समय उसके नेत्र ऐसे जान पड़े मानो किसी मनुष्यके आँखमें
 दो मखलियाँ कैसी एक ही हों ॥ १ ॥ जिसके गल्ले लटके हुए
 हारका लहें उलझ गई थी, भीहें साँधी थी, जो तिरबे मुस्करा
 रहा थी, इधर-उधर चितवन चला रहा थी और जिसके
 कानपर धर हुए कमल बोटक लटक आये थे, वह राजकुमारी
 अपना चमकता हुआ भोगूहावाला वैगडासे कनपटो सुप्रसारी
 हुई (किसी भाग्यवान्‌की देख रहा है ॥ २ ॥ कोई नवेला अपने
 गुरुजनों (घरके बड़े-बुढ़ा) का कहना न मानकर अपने
 प्यारके पास जानेके लिये चला ता, पर वहाँ भी गुरुजाने
 पिपड़ न छाड़ा क्योंकि वहाँ भी रीझतासे चलनेमें रुकावट
 डालनेवाला स्तनका शोभ ही गुरु (भारी) हो गया ॥ ३ ॥
 उस नवेलाने न तो अपने प्यारका घरके भीतर आनेमें
 रुकावट डाली, न मुँह हो करा, न उसे अपराधा ही बताया
 बरन् आश्रय साधारण ढङ्गसे उसकी ओर ऐसे देखती रही
 जैसे थी ही अकारण किसीका आर देख रहा हो ॥ ४ ॥ उस
 प्रियने अपनी जिस-जिस चञ्चलनवनी प्रियाका ओर देखा
 उस-उसका मुख तो लज्जासे नाचे मुक गया और जिस-
 जिसकी ओर नहीं देखा वे उसी समय बड़ करती हुई एक
 साथ प्रियकी ओर टेढ़ी चितवनसे धूर-धूरकर देखने लगी ॥ ५ ॥

नायिकासे भेंट : वह आश्चर्यका बात है कि निरन्तर
 होनेवाली अमृतवर्षाके समान आँखोंको सुख देनेवाली, बदली
 न होनेसे स्पष्ट प्रतीत होनेवाली, छोटे-छोटे स्तनोंवाली और

ज्यतां कामपि । अस्याश्चन्द्रमसस्तनोरिव करस्पर्शा-
 स्पदत्वं गता नैते यस्मुकुलीभवन्ति सहसा पचास्तदे-
 वाद्भुतम् ॥ १ ॥ अन्यत्तन्मधुरं स्मितं नयनयोः
 सञ्चारणञ्चेतरत्सञ्चारः पदयोः स मम्भितरस्त-
 स्याश्च भाषाऽपरा । किं द्रव्यां प्रिय तादृशी चितितले
 नान्येति लोकान्तरेऽप्यन्या नास्ति न वा भवि-
 ष्यति न वा काचिद्वताभूत् क्वचित् ॥ २ ॥ अमृतम-
 मृतं चन्द्रश्चन्द्रस्तथाभ्युज्जमभ्युजं रतिरपि रतिः कामः ।
 कामो मधूनि मधून्यपि । इति न भजते वस्तु प्रायः
 परस्परसङ्गरं तदियमबला धत्ते लक्ष्मीं कुतः सकला-
 त्तिकाम् ॥ ३ ॥ अमृतममृतं चन्द्रं चन्द्रं रति रति
 तथा प्रथितमतयः कामं द्रव्यमधूनि मधून्यपि । यदि
 न सुभगास्पर्शमोहं विना प्रमुदे ततः सकलमकलं
 तेषां व्यूहं प्रवीमि पुनः प्रिये ॥ ४ ॥ अये केयं लीला-
 धवलगृहवातायनतले तुलाकोटिक्वाणैः कुक्षुमविशिषं

साक्षात् चन्द्रमाके समान दिखाई देनेवाली उस नवेलीके कर
 (किरण, हाथ) से छू जानेपर भी कमल (नेत्र) मुँह नहीं रहे हैं
 ॥ १ ॥ हे प्यार ! उसकी मधुर मुस्कान, नेत्रोंकी चितवन, पैरोंकी
 घीमा-धामी चाल तथा बोली सब निराक्षी ही है । और क्या
 कहूँ ? न तो देखी काँई दूसरी सुन्दरी इस धरतीकी पीठपर ही
 है, न दूसरे जाँकामें है न आगे कभी होगी और न पछे
 कभी कहीं हुई ही है ॥ २ ॥ अमृत भी अमृत ही है, चन्द्रमा
 भी चन्द्रमा ही है, कमल भी कमल ही है, रति भी रति ही
 है, काम भी काम ही है और मधु भी मधु ही है । वे सब
 वस्तुएँ कहीं एक साथ मिलती भी नहीं, तब ये सब
 इस नायिकामें एक साथ कैसे दिखाई पड़ रही हैं ? (अर्थात्
 इसके अघरामें अमृत, मुखमें चन्द्रमा, हाथ-पैरमें कमल, प्रेममें
 रात, इच्छा न काम और चितवनमें मधु है) ॥ ३ ॥ हे प्रिये !
 बड़े-बड़े बुद्धिमान् जाग अमृतका अमृत, चन्द्रमाको चन्द्रमा,
 रतिकी रात तथा मधु (राहु) का मधु भवें ही माना करें
 किन्तु मुझं तो जबतक उस नवेलीका गले लगाकर मुखी होनेका
 आनन्द नहीं मिळ पाता तबतक मैं इन वस्तुवाके समूहको
 स्वर्थ ही समझता रहूँगा ॥ ४ ॥ अरे ! अपनी दानों आँखोंसे
 भुति (कान, वेद) का जाँचनेवाला अर्थात् कानतक कैसे
 हुए नेत्रोंवाली यह कौन है जो अपने सुहावने कोड़ापरके
 करोखेपर पापखकी कनकारसे कामदेवको जगाए दे रही है ? भला
 अब यह मुस्कराता हुआ कामदेव तीनों ओकोंको क्यों नहीं

जागरयति । अहो नेत्रद्वन्द्वं विकसति विलम्ब्य श्रुति-
महो कथं न प्रैलोप्यं जयति मदनः स्मेरवदनः ॥ ५ ॥
अर्कच्छायं तिरयति सुधासिक्तविधुन्मत्तली चक्रमस्यं
महति सुषमाग्रदले दूरमगम । रक्तादर्शप्रतिफलमिव
श्रीसदङ्गं वहन्ती दृष्टा काचित्तरलनयना देवतेव
स्मेरस्य ॥ ६ ॥ अर्धस्मितेन विनिमन्य दशार्धधाण-
मर्धं विधूय वसनाञ्जलमर्धमार्गे । अर्धेन नेत्रविशिखेन
निवृत्य सार्धमर्धार्धमेव तरुणी तरुणञ्जकार ॥ ७ ॥
अस्यां नेत्रपथं मन्ये गतायां लोलचक्षुषि । भवन्ति
पञ्चबाणस्य स्वबाणा एव वैरिणः ॥ ८ ॥ अस्या धाम
सरोवरे भुजपिसे वकारदिन्दे भ्रमनेत्रध्रुवमरे सुयो-
षणजले कस्तूरिकापङ्क्तिरे । वसोजप्रतिकुम्भिकुम्भ-
दलनकोधादुपेत्य द्रुतं मग्नश्चित्तमतङ्गजः कथमसाधु-
त्थाय निर्यास्यति ॥ ९ ॥ आभाय कोमलकराम्युजके-
लिनालीमालीसमाजमधिकुरय समालपस्तो । मन्द-

स्मितेन मयि साञ्जिविलोकितेन चेतश्चकोरनयना
चुलुकीचकार ॥ १० ॥ आनन्दोर्मिव्यनिकरदस्मेर-
संस्तपन्मधोमोहप्रवणमखण्डितचित्तनिग्धतारम् ।
अन्तश्चिन्ताभरणचित्राकुञ्चितधूलतान्तं चक्षुश्चेतो
हरति हरिणीलोचनायास्तदेनत् ॥ ११ ॥ इदमसौ
तरलायतलोचना गुरुसमुद्यतपीनपयोधरा । पृथुनित-
म्बभरालसगामिनी प्रियतमा मम जीवितहारिणी
॥ १२ ॥ इयं भुजगिनीश्रिता लसद्नेकपुष्पान्विता
द्विरेफततिसेविता प्रमदस्त्रुनालंकृता । फलद्वयभरा-
नता विलसिता नयैः पल्लवैधिलोचनपथं गता भवति
कापि हैमी लता ॥ १३ ॥ इयं सुस्तनी मस्तकन्यस्त-
कुम्भा कुसुम्भारुणं चाह यासौ वसना । समस्तस्य
लोकस्य चेतःप्रवृत्तिं गृहीत्वा घटे म्यस्य यातोष भाति
॥ १४ ॥ उचुकस्तनशैलदुस्तरमुरो निस्त्रातिनाभिस्थली
भीमं देहवनं स्फुरद्भुजलतं रोमांजिजालाकुलम् ।

जीत लेगा ? ॥ २ ॥ अपने विशाल घेरेमें जड़े हुए पड़िपूके
समान काम्तिहीन सूर्यकी चमककी वह अद्यतने भरी हुई
विजली (नवेली) छुपक बना रही है जो इस समय सात
शीशोंमें पड़े हुए अपने प्रतिविम्बके समान शोभासे सग्वन्म
अज्ञांवाली, तथा चञ्चल नेत्रांवाली कामदेवकी देवी रतिके समान
दिखाई दे रही है ॥ १ ॥ वह युवती अपनी मन्द मुस्कानके
साथ-साथ अपनी साड़ीका आधा पकलू नया हिला रही है मानों
कामदेवको बुला रही है और फिर पीचसे ही घूमकर अपने
ऊँचे हुए नेत्रोंके धाँयाँसे उस नवयुवकके दो डुकड़े किए ढाक
रही है ॥ ३ ॥ यदि कामदेवकी भी कहीं इस चञ्चल मनवांवाली
नवेलीकी झलक मिल जाय तो उसके पाँचों बाण स्वयं उसे
ही बेध डालें ॥ ४ ॥ इस नायिकाका शरीर क्या है एक
साकाब है जिसमें इसकी दोनों बाँहें ही कमलनाक हैं, मुँह
ही कमल है, चञ्चल आँखें और भीहें ही भीरे हैं, यौवन ही
जल है तथा शरीरपर कस्तूरीका लेप ही कीचड़ है अब उसमें
स्तन-रूपी हाथीके मस्तकका मर्दन करनेके लिये कोपसे
रसिकोंका मन-रूपी जो हाथो आ घुसा है वह भधा कैसे उठ-
कर निकल सकता है ॥ ५ ॥ चकोरके समान नेत्रांवाली जो
नवेली अपनी सहेलियोंके साथ बैठी बातें करती हुई अपने
कोमल करकमल नचा रही थी, उसने अपनी बाँहरूपी नखीसे
मन्द मुस्कान-भरी तिरछी चितवन पल्लाकर मेरा मन पो
बांधा ॥ १० ॥ इस सुगनयनी नवेलीकी वह चितवन मेरा

मन हरे के रही है जिसमें प्यारेसे मिलनेकी चिन्ताके बोझसे
भीहें सिकुड़ गई हैं, आनन्दके कारण आँखें झलक आनेके
करके जिसमें उसकी पलकें बरबस झिंके रहनेका प्रयत्न कर
रही हैं और जिसमें भीतरसे प्रेम ऐसा झलका पड़ रहा है कि
रसभरी पुतलियाँ भी नाचने लगती हैं ॥ ११ ॥ यह चञ्चल
और बड़ी-बड़ी आँखोंवाली, बड़े-बड़े ऊँचे और मोटे-मोटे
स्तनोंवाली और अपने बाँह-बाँहें नितम्बोंके बोझसे धँरे-धँरे
चलनेवाली प्यारी मेरा प्राण ही आँखें ढाक रही है ॥ १२ ॥
यह (नवेली) एक अनोखी सानेकी कता-मिसां दिखाई दे
रही है जिसमें सौंघिन (पांटी) भी है, जो झिंके हुए अनेक
पुष्पों (नेत्र, छोड़ आदि) से लड़ी भी है, जिसपर भीराँके
झुबड़ (पुतली धादि) भी सँझरा रहे हैं, जिसपर मतवाले सज्जन
(नेत्र) भी बैठे हुए हैं, जिसमें दो फल (स्तन) भी लटक
रहे हैं और नये-नये पत्ते (उँगलियाँ) भी झूज रहे हैं ॥ १३ ॥
केसरिया और लाल रङ्गके वस्त्र पहने हुए तथा सिरपर घड़ा
रक्खे हुए जो यह सुन्दर स्तनोंवाली नवेली जा रही है, उसे
देखकर ऐसा जान पड़ता है मानो वह सारे संसारके मनकी
गति घड़ेमें भरकर जिपू चली जा रही हो ॥ १४ ॥ ऊँचे स्तन-
रूपी पर्वतोंसे दुर्गम ज्ञातीवाली, नाभि-रूपी गहरी खाईवाली,
बाँहरूपी जलाशयवाली तथा रोमावली-रूपी घासवाली नवेलीके
शरीररूपी वनमें बैठा हुआ कामरूपी सहेलिया अब तिरछी
चितवनरूपी बाण लगातार छोड़े जा रहा है तब हे मेरे मन-

व्याधः पञ्चशरः किरत्यतितरौस्तीक्ष्णाम्बुजाशुगौ-
स्तम्भे ब्रूहि मनःकुरङ्ग शरसं कं साम्प्रतं यास्यसि
॥ १५ ॥ उपमाकाराद्यं ग्रहिणु नयने तर्कय मनागना-
काशे कोऽयं गलितहरिणश्शीतकिरणः । सुचायद्वप्रा-
सैरुपवनचकोरैरनुसृतां किरञ्ज्योत्कामकृत्वां नवलव-
लिपाकप्रणयिनीम् ॥ १६ ॥ उभौ रम्भास्तम्भाभुपरि
विपरीतौ कमलयोस्तदूर्ध्वं रत्नमस्थलमथ दुरुहं
किमपि तत् । ततः कुम्भौ पञ्चाद्विसकिसलये कन्दल-
मथो तद्विन्द्याविम्बोघरमधुकराः किं पुनरिदम्
॥ १७ ॥ कर्पूरधूलिधवलघुतिपूरधातदिङ्मण्डले
शिशिररोषिणि तस्य युगः । लीलाशिरोऽयुक्तनिवेशवि-
शेषकृत्सिन्धुस्तनोभ्रतिरभून्नयनावर्णा सा ॥ १८ ॥
काचिद्विद्वत्य किल कन्दुककेलिरङ्गाङ्गुरेषुभूषिततनु-
निरगाम्भृताली । उत्फुल्लपद्मजवने सुचिरं विद्वत्य
किञ्चलकरेषुपरिभूसरितेव लक्ष्मीः ॥ १९ ॥ कच्छ्रेणो-
दयुगं विलङ्घ्य सुचिरं भ्राम्ना नितम्बस्थले

मध्येऽस्याखिवसीतरङ्गविषमे निधम्वतामागता ।
मद्वद्विस्तृषितेव सम्प्रति शनैराकृष्टा तुक्नो स्तनी
साकाङ्क्षं मुदुरोक्षते जललवप्रस्यन्दिनी लोचने ॥ २० ॥
केयं प्रयामोपलधिरचितोह्लेखहेमैकरेखालग्नैरङ्गैः कनक-
कदलीकन्दलीगर्भगौरैः । हारिद्राम्युद्रवसहचरं कामि-
पूरं वहद्भिः कामक्रीडाभवनवलभोदीपिकेवाधिरस्ति
॥ २१ ॥ कैस्सुरैः केन शैलेन कुतोऽध्वेमंयनावियम् ।
अजायत नवा लक्ष्मोरमृतेन्दुकलामयो ॥ २२ ॥ क्षीर-
सागरकङ्गोलोललोचनयानया । असारोऽपि हि
संसारः सारवानिष लक्ष्यते ॥ २३ ॥ खेत्तत्त्वज्ञनेभया
परिलसत्स्वर्णारविन्दस्यया पोमोचुर्गुनिरन्तरस्त-
नरव्यालोलसन्मध्यया । स्फीतस्फीतनितम्बया कृष्ण-
मपि व्यालोकितश्चानया किं न स्याद्वशिर्मा वरः स्मर-
हरः स्मारैः शरैर्जर्जरः ॥ २४ ॥ गच्छति न दृष्टिमेत-
त्सुललितमस्याः समापिवद्रूपम् । नयनयुगं मम नूनं
सम्प्रति समुपैति सफलताञ्चैवम् ॥ २५ ॥ जानीम-

कपी हरिण ! तूम कहाँ बचकर निकल पाओगे ? ॥ १५ ॥ ऊपर
मुँहरेपर जहाँ उठाकर देखो तो सही कि यह धरतीपर बिना
हरिणका कौन-सा चन्द्रमा निकल आया है जो नई पकी हुई
हरफारेवाड़ीको खिल्ला देनेवाली ऐसी निर्मल चाँदनी फैला रहा
है जिसे उपवनमें बैठे चकोर, चमृत समककर पीते जा रहे
हैं ॥ १६ ॥ यह क्या है जिसमें दो कमलों (वर्यों) के ऊपर
दो केलेके लम्भे (टँगों) उलटे लगे हुए हैं, उसपर कोई
दुर्गम रत्न-जड़े परधरांवाली धरती (करघनी) दिखाई दे रही
है, उसपर दो घड़े (स्तन) रखे हैं, उसके साथ कमलकी ऐसी
माली (मुकाई) लगी है जिसमें दो मधे चक्र (उँगलियाँ)
फूटे हुए हैं और उसपर एक चन्द्रमा (मुख) है जिसमें दँके
हुए नीले कमलों (नेत्रों) पर भीरे (पुतलियाँ) बैठे हुए हैं
॥ १७ ॥ जिस समय कपूरकी जौति उजली चन्द्रमाकी किरणें
आपनी चमकसे दिशाओंको चमका रही थीं, उसी समय मेरी
जाँकोंके सामने वह नवेली आ पड़ी जिसके स्तनोंकी ऊँचाई
धूँध लँभाछते समय स्पष्ट दिखाई दे गई थी ॥ १८ ॥ पूछते
भरी देहवाली कोई भृगमयनी, गेँद खेचकर खीटती हुई ऐसी
दिखाई दी मानो खिले हुए कमलोंके वनमें बड़ी देरतक विहार
करके कमलोंके परागसे भूसरित लक्ष्मी निकली चली आ रही
हों ॥ १९ ॥ मेरी प्यासी दृष्टि किसी-किसी प्रकार बड़ी
कठिनाईसे उस नवेलीकी दोनों जाँचें पार कर पाई, फिर उसके

नितम्बोंपर देरतक धूमकर तीन सलवटोंवाली लहरोंके कारण
ऊँचे-नीचे पेदपर जाकर अमी रही, वहाँसे चक्कर धीरे-धीरे
उसके ऊँचे स्तनोंपर चढ़कर उसके जन नेत्रोंको बार-बार
खलचाकर देखने लगी जिनमेंसे थोड़ा-थोड़ा पानी भर रहा
था ॥ २० ॥ कामदेवके कीड़ागुहकी भटारीपर बनी हुई
कोठरीके भीतरके दीपकके समान यह कौन नवेली चमक रही
है जिसके सब ब्राह्म कसौटीपर खिंची हुई सोनेकी रेखाके समान
चमक रहे हैं और सोनेके केलेकी जड़के गुहकी भाँति गोरे
और हल्दी-पुले पानोंके समान सुनहरे लग रहे हैं ॥ २१ ॥ किन
देवताओंने किस पर्वतकी मधानी बनाकर किस समुद्रको मधा
कि जिससे वह अमृतमय चन्द्रमाकी कलाओंसे भरी कोई
नई लक्ष्मी (नवेली) उत्पन्न हो गई ॥ २२ ॥ यद्यपि संसारमें
सार तो कुछ भी नहीं है फिर भी बूढ़की लहरके समान चञ्चल
नेत्रोंवाली इस नवेलीने ही इस संसारको सारमय बना दिया
है ॥ २३ ॥ लज्जनके समान चञ्चल नेत्रोंवाली, सोनेके कमलोंके
समान सजोने मुखवाली, मोटे, ऊँचे, आपसमें सटे
स्तनोंके भारसे मुकी हुई सुन्दर कमरवाली और भारी
नितम्बवाली यह नवेली यदि इन्द्रियोंको वशमें रखेवाली
और कामदेवको भस्म करनेवाले शिवजीकी ओर तनिक-सा
भी ताक दे तो क्या वे कामके बापोंसे बिना पावत हुए बच
पावेंगे ? ॥ २४ ॥ यद्यपि इस नवेलीकी आयत्त मनोहर सुन्दरता

हेऽस्याः जलु सारसास्या विराजतेऽन्तः प्रियवक्त्र-
चन्द्रः । तत्कान्तिजालैः प्रसूनैस्तद्वेष्वापागुडता
कुङ्कुमलताक्षिपके ॥ २६ ॥ तडिल्लेखा नयं विलसति
परं सौचशिखरे वसन्त्याः कस्याश्चित्कनकरुचिरा
गात्रलतिका । अपीवं नोन्मज्जत्कुवलययनं मीनतरलं
परं तस्या एव स्फुरति नयनालोकललितम् ॥ २७ ॥
तापकाडिन्य चलतापरिप्लानीरकल्पयत् । दीपरजत-
डित्पुण्येष्वस्याः प्रव्यक्तये र्थिधिः ॥ २८ ॥ न त्वरा
भ्येसे पुंसां किमद्य क्रियतां हरिः । इमामजानन्ने-
ष्यन्ती जग्राह सहसा श्रियम् ॥ २९ ॥ मेवं नागाविला-
सिनी न दिविपत्कान्ताऽपि काचिद्यतो नास्या लीज-
निमेषता न च शशिभ्रीरक्ष सत्कलमया । ना वा
हेममयी यताऽपरितरत्सारभ्यभाराऽपि ना तन्मन्यं
विधित्वा ध्यधाधि सुहृदाम्भादाय काचिन्कला ॥ ३० ॥
मेवं विद्युदुधमधिगता काञ्चनी नापि चञ्ची मन्दं मन्दं

पाकर भी मेरे दोनों नेत्र प्रयास तो नहीं रहे हैं फिर भी आँखोंका
जन्म तो सकल हो हो रहा है ॥ २६ ॥ जान पड़ता है इस
कमल-नयनोंके हृदयमें उसके प्रियतमका मुखचन्द्र निवास
करता है इसीलिये तो उस चन्द्रमाकी फेजी हुई किरणोंसे
उसका शरीर पीला-सा पड़ गया है और नेत्ररूपी कमल भी
जा रहे हैं ॥ २७ ॥ काँटेपर कँधनेवाली जिस कमलको आप
बिजली समझ बैठे हैं वह बिजली नहीं है, वह तो वहाँ बैठो हुई
किसी नवेलीका सुन्दर सुनहरा शरीर है और उधर जिसे आप
सरोवरकी मछलियोंसे दिखाया हुआ नीला कमल समझ रहे
हैं वह उसी नवेलीकी आँखोंकी चञ्चल चितवन है ॥ २८ ॥
मझाने दीपकमें ताप, रत्नोंमें कठोरता, बिजलीमें चञ्चलता और
फूलोंमें कुम्हलानेका दुर्गुण हसिलिये भर दिया कि यह नवेली
उन सबसे यशमें प्रागे बढ़ी रहे ॥ २९ ॥ हृदयही करनेवालेका
कभी कोई काम ठीक नहीं होता । देखो, बिप्पुने यह नहीं
ध्यान दिया कि ऐसी सुन्दर नवेली भी मेरे सामने आ सकती
है । वस, हृदयहीमें उन्होंने जपसीकी ही प्रशंसा कर लिया, पर
अब पक्ष्ताप होत का ! ॥ ३० ॥ यह नवेली न तो कोई नाग-
कन्या ही है न देवी ही है क्योंकि इसके पक्षक भी गिरते-
उठते हैं, यह चन्द्रमाके समान भी नहीं है क्योंकि इसमें
कण्डू नहीं है, वह स्वर्णमयी भी नहीं है क्योंकि चञ्चल-फिर
रही है और वह सुगन्धकी वेर भी नहीं है (क्योंकि दिखाई
दे रही है) अतः जान पड़ता है कि मझाने सज्जनोंके मनो-

प्रचलति यतो नापि वा पन्नगस्य । चूडारत्नस्फुरदुद-
शिखा क्वापि धत्ते सरोजं का वा तर्हि मरुतिसुभगा
तत्सखे न प्रतीमः ॥ ३१ ॥ पातालाद्भुवनायलोकनपरा
किं नागकन्योन्धिता मिथ्या तत्स्वन्नु दृष्टमेव हि मया
तस्मिन्कुतोऽस्तीदृशी । मूर्ता स्यादित्थं कामुवी न घटते
तस्या दिवा दर्शनं कथं हस्ततलस्थितेन कमलेना-
लोप्यते श्रीरिव ॥ ३२ ॥ पुरः स्थित्या किञ्चिद्वलित-
मुखमालोक्य सखे सखेदाः स्थास्यन्ति ध्रुवमिदमदृष्ट्वा
तव दृशः । इतश्चञ्चत्काञ्चीरणिनमुखरान्साधशिशिरा-
दराकायां कोऽयं कवलर्याति चान्द्रेण महसा ॥ ३३ ॥
प्रियादर्शनमेषास्तु किमन्यदर्शनान्तरैः । प्राप्यते येन
निर्वाणं सरागेणापि चेतसा ॥ ३४ ॥ भाषा पीयूषभूषा
हृदयमकरुणं वायकान्तिश्च काचिन्सम्पत्तिश्चक्रतायाः
सकलजनमनोहारिणी चैव दृष्टिः । आस्यं शीतांशुरक्षा
निभृताविषभराऽपाङ्गसम्पातशैली पार्वा रक्ता नञानां

रञ्जनके लिये कोई नहीं कहा बना छोड़ी है ॥ ३० ॥
किसी नवेलीका देखकर कवि कहता है कि 'यह धरतीपर है
इसलिये बिजली नहीं हो सकती, न यह सरोजकी नागवल्ली
ही है क्योंकि यह धीरे-धीरे चल रही है । यह कमल भी नहीं
है क्योंकि कमलके ऊपर क्या चूडामणिकी उपाति दुष्सा करती है ।
अतः मित्र ! यह समझमें ही नहीं आ रहा है कि यह स्वभावसे
सुन्दर है कौन ?' ॥ ३१ ॥ किसी नवेलीका देखकर कवि कह
रहा है कि 'यह कहीं नागकन्या तो नहीं है जो भूजोक देखनेकी
इच्छासे पातालसे चली आई हो किन्तु यह नागकन्या भी नहीं है
क्योंकि मैं उन्हें देख चुका हूँ, वहाँ ऐसी कन्यार्थ कहाँसे आई ?
यह देह धारण किए चौदनी भी नहीं हो सकती क्योंकि चौदनी
दिनमें नहीं दिखाई देती । आँहो ! अब समझमें आया ! यह
तो साक्षात् जपसी है, इसके हाथमें कमल नहीं देखते !' ॥ ३२ ॥
हे मित्र ! सामने खड़े होकर चिर घुमाकर तनिक देख तो लो
नहीं तो तुम्हारे नेत्र पक्ष्ताप्येगे । देखो, इधर करधनीकी मधुर
कुम्हलसे भरे चरकी छतपर बिना पूर्णिमाके ही कौन
चौदनी कैसा रहा है ? ॥ ३३ ॥ यदि देखना ही हो तो अपनी
प्रेमसोंकी ही देखना चाहिए, दूसरी वस्तुएँ देखनेसे क्या
लाभ, क्योंकि प्राक्प्यारीका दर्शन करनेसे मनमें आसक्ति
रहनेपर भी निर्वाण (सुख, मोक्ष) मिल जाता है ॥ ३४ ॥
यह विशय ही कोई विचित्र जोजा है क्योंकि इसकी बोली
असुतेसे भरी है, हृदय बड़ा कठोर है, देखकी कान्ति

जयति कुटिलता तत्किलेयं विचित्रा ॥ ३५ ॥ मदन-
मपि गुणैर्विशेषयन्ती रतिरिव मूर्तिमती विभाति
येयम् । मम हृदयमनङ्गप्रकृतसं भृशमिव चन्दनशीतलं
करोति ॥ ३६ ॥ मन्ये पार्षणचन्द्रमध्यशकलेनासुत्रिनेषा
चिरादङ्गैरद्भुतभङ्गिभिः परिणतव्युत्पत्तिना वेधसा ।
योषित्सर्गविलसणाकृतिरियं यद् दृश्यते भाति च
क्षिप्रद्वारविलोप्यमानगमनेषाद्यापि चाग्नी तनुः
॥ ३७ ॥ यन्निष्पीड्य विरिञ्चेन स्यन्दितैषा मधुसूतिः ।
मन्ये तत्सोद्वपटलं त्यक्तं तेनेन्दुमण्डलम् ॥ ३८ ॥
रुद्रं पादतले नखेषु विलुडत्संसकमूर्खोयुगे मिथ्यान्तं
जघनस्थले निपतितं नाभीसरोमण्डले । शून्यं मध्यम-
वेक्ष्य रोमलतिकामालम्बमानं कमादाकटं स्तनयोः
प्लुप्तं नयनयोर्लीनं मनः कैशिके ॥ ३९ ॥ लावण्यसिन्धु-
रपरैव हि केयमत्र यत्रोत्पलानि शशिना सह सम्म-
न्ते । उन्मज्जति हिरण्यकुम्भतटी च यत्र यत्रापरे

सुन्दरताका भावहार है, हरि सब लोगोंके मनको हरे के रही
है, मुख भी चन्द्रमा ही है, बिपसे भरी तिरछी चितवन धीरे-
धीरे पद रही है, पैर काक हैं तथा नख टेढ़े हैं ! इस प्रकार
इसकी सारी वस्तुएँ विजयी ही हो रही हैं ॥ ३५ ॥
अपने सुन्दरता कादि गुणोंसे कामको उत्तेजित करनेवाली जो
यह साधारण रतिके समान नखेली दिखाई दे रही है वह
कामाग्निसे जले हुए मेरे हृदयको मानो चन्दनसे शीतल कर
रही हो ॥ ३६ ॥ मैं तो समझता हूँ कि नखेलियोंकी छटिमें
जो यह मनोसे रूपवाली सुन्दरी दिखाई पड़ रही है, इसे कुसल
महाने चन्द्रमाके बीचके भागसे बहुत दिनोंमें अङ्ग-प्रत्यङ्ग-
सहित बनाया है । इसीजिये आज भी चन्द्रमाके बीचके क्षेत्रसे
जस पारका आकाश (कलाङ्क) स्पष्ट झलक रहा है ॥ ३७ ॥
मैं समझता हूँ कि महाने अमृतकी ईल घेरकर, अमृत-रससे
तो यह नखेली बना बाकी और बची हुई कोई इस
चन्द्रमचक्रके रूपमें बाहर फेक दी ॥ ३८ ॥ किसी नखेलीको
देखकर कवि कहता है—'मेरा मन पहले तो उस नखेलीके
पैरोंमें जा टिका, फिर उसके पैरके नखोंमें खोदने लगा, फिर
दोनों जोंघोंका सहारा लेकर उसके जघनमें पहुँचकर विश्राम
करने लगा, आगे चलकर नाभिरूपी ताकावमें जा दूबा और
कटिको पसखा और सूना देखकर रोमावलीका सहारा लेकर
धीरेसे स्तनपर चढ़ गया और फिर तो उसके नेत्रोंपर उचककर
उसके केशमें जा समाया ॥ ३९ ॥ यह कौन-सा नवा

कमलकाण्डमृणालदण्डाः ॥ ४० ॥ लीलावधूतपद्मा
कथयन्ती पक्षपातमधिकं नः । मामसमुपैति केयं चित्र-
गता राजद्वसीव ॥ ४१ ॥ वक्रभ्रीजितजर्जरैन्दुमलिनं
कृत्वा करे कन्दुकं कीडाकौतुकमिथभावमनया तात्र
बहन्त्याननम् । भृङ्गाग्रग्रहकृष्णकेतकदलस्पर्धावतीनां
दशां दीर्घापाङ्गतरङ्गितैकसुहृदामेषोऽस्मि पात्रीकृतः
॥ ४२ ॥ वक्रोपान्तं नयनयुगलं सर्वतो निक्षिपन्ती
ओष्णीभाराच्छिथिलशिथिलम्यस्तपादारविम्बदा । आरा-
दास्तीकरकिसलये वस्तुहस्तावलम्ब्या काचित्काम्या
धिकसितमहीचक्रमायाति तन्वी ॥ ४३ ॥ ओष्णीभार-
भरालसा दरगलम्बाल्यापवृत्तिच्छलाङ्गीलोम्भितभु-
जोपदर्शितकुखोम्भीलन्नसाङ्गावलिः । नीलेन्दीवरदाम-
दीर्घतरया दृष्ट्या धयन्ती मनो दूरान्दोलनलोलकङ्क-
णकण्टकारोत्तरं सर्पति ॥ ४४ ॥ सखे सायं क्वात्वा
कनककविकांसुम्भवसनं वसनायातिस्तिर्यग्बलितचिकुर-

सुन्दरताका समुद्र (नखेली) है जिसमें चन्द्रमा (मुख) के
साथ कमल (नेत्र) उचक रहे हैं, जिसमें हाथीका मस्तर
(स्तन) निकला हुआ है तथा जहाँ और भी अनेक कमलोंके
नाख आदि (भुजाएँ आदि) दिखाई दे रहे हैं ॥ ४० ॥ यह
कौन लीला-कमल नचती हुई (कमलोंको दिखाती हुई) वेगसे
पक्षपात करती हुई (पक्ष लोकाती हुई), विचित्र चालवाली
(चित्रमें बनी) हंसिनीकी भाँति मन (मामसरोवर, मन) में
पैरी चली आ रही है ॥ ४१ ॥ मुँहकी रोभासे हराए हुए मखिन
चन्द्रमाके समान मैली गेंद हाथमें लेकर, लेजनेके चारों ओर
हुई लाज-लाज मुखवाली नखेलीने अपने नेत्रकी कोरीसे मुग्धपर
बार-बार अपनी बड़ तिरछी चितवन चलाई जो भीरोंसे लची
हुई केवड़ेकी पंखुवियोंसे होड़ कर रही थी ॥ ४२ ॥ चारों ओर
अपने दोनों नेत्र घुमाती हुई, नितम्बके भारसे धीरे-धीरे
धरतीपर चरण-कमल रखती हुई, पासमें लड़ी सखीके हाथका
सहारा लेती हुई तथा अपनी सुन्दरतासे सारे भूमण्डलको
तोषित करती हुई यह कोई दुबली-पतली नखेली इधर चली
आ रही है ॥ ४३ ॥ नितम्बके भारसे धीरे-धीरे चलनेवाली,
नीलकमलके समान बड़े-बड़े नेत्रोंसे मनको पी जानेवाली यह
नखेली अपने जोड़े कहन कलकलाती हुई चली जा रही है
जो हटो हुई माकाको सँभालनेके लिये जब हाथ उठाती है
तो उसके सुखे हुए स्तनोंपर अनेक हुए नख-चिह्न स्पष्ट दिखाई
दे जाते हैं ॥ ४४ ॥ हे मित्र ! आज सायंकाळ भालवरा

स्यन्दिसलिलम् । दिशन्त्या दृष्टेयं कुसुमशरकोदण्डल-
लिकामकस्मादस्माकं मृगशिशुदृशो दर्शनमभूत् ॥४५॥
सरस्यामेतस्यामुदरवलिबीचीविलुलितं यथा लाव-
ण्याम्भो जघनपुलिनोल्लङ्घनपरम् । यथा लक्ष्यध्यायं
खलनयनमीनव्यतिकरस्तथा मन्ये मयः प्रकटकुचकुम्भः
स्मरगजः ॥ ४६ ॥ सायन्वन्दकलामृतोदयगिरिस्पर्धो
दधानः स्तनस्पर्शोत्तुङ्गतरौ नखाङ्गदक्षिणः शोणाम्बरा-
भ्यस्तरे । अस्याः कं न विलोकनोत्कमकरोत्सीत्सुः
कटाक्षः कणं भुक्ताकृष्टगिरिष्ठकेतकदलध्रान्ति वहन्-
प्ययम् ॥ ४७ ॥ सेयं ममाङ्गेषु सुधारसञ्चुटा सुपूर-
कर्पूरशलाकिका दृशोः । मनोरथश्रीर्मनसः शरीरिणी
प्राणेश्वरी लोचनगोचरं गता ॥ ४८ ॥ सेयं सीधुमयी
वा सुधामयी वा हलाहलमयी वा । दृग्भ्यां निधीत-

मात्रा मद्यनि मोदयति मूर्च्छयति ॥ ४९ ॥ स्कन्धे
विन्यस्य सख्या भुजमपरकरस्यार्धचन्द्रेण मध्यं
विभ्राणा धृयमानस्तननटवसना गन्धवाहेन मन्दम् ।
पन्थानं दृग्विलासेरिष नलिनदलैः कोमलैरास्तृणन्ती
सौधात्रे कस्य साक्षान्परिणमति तपःसिद्धिरेया सुयेया
॥ ५० ॥ स्वैरं सस्मिन्मीलते क्षणमलं व्याजृम्भते वेपते
रोमाञ्चं तनुते मुहुः स्तननटे व्यालम्बते नाभ्यरम् ।
आलिङ्ग्यपरां तनोति चिकुरं प्रत्युत्तरं याचते केयं
कामकलाविलासघसतिर्लोलेक्षणा भाविनी ॥ ५१ ॥
परापरदर्शनम्—आघातं कमलं प्रियेण सुदृशा
स्मिन्वापनीतं मुखं दत्तं विभ्रमकन्दुके नखपदं सौकुन्य
गूढं स्तनौ । दत्ता चम्पकमालिकोरसि भुजानिर्भिन्न-
रोमाञ्चया मीलङ्गाखमया स्थितं प्रणयिनोद्वेष्टि पूणौ

सहसा एक ऐसी भृगुनयनीका दर्शन हुआ जो रतन करके
सोनेके समान केसरिया रङ्गकी साड़ी पहन रही थी और
जिसके बिल्लरे हुए केशोंसे जखकी टपक रही थी । उसके
केशोंको देखकर ऐसा लग रहा था मानो वह अपने पुंवराजे
बालोंके रूपमें कामदेवके धनुष भुजा रही हो ॥ ४५ ॥ इसके
पेटपरकी सिङ्गुदनकपी कहकरें चञ्चल हो रही हैं, सुन्दरताकपी
जख नितम्बकपी टटको भी काँचे जा रहा है तथा चञ्चल
नेत्रकपी मञ्जुवर्षा कक्षफटा-सी रही हैं । अतः जान पड़ता है
कि प्रत्यक्ष दिखाई देनेवाले स्तनकपी मस्तकवाला कामदेवकपी
हाथी इस नवेलीकी देहकपी तालाबमें घुसा हुआ है ॥ ४६ ॥
पलिके हाथोंसे छू जानेके कारण ऊँचे-ऊँचे तथा नलोंके गोख
चिह्नोंसे सुन्दर लगनेवाले इस नवेलीके स्तन ऐसे जान पड़ते
हैं मानो सायङ्काखके उस उदवाचलसे होड़ कर रहे हों जिसपर
देवा चन्द्रमा उदय हो रहा हो । खाल बलोंसे उका हुआ
इसका वह स्तन तथा भीरोंसे जिप्पी हुई केयदेकी पंखुदोका
जम उदपन्न कर देनेवाली तिरछी चितवन किसे अपनी ओर
देखनेके जिये बरबस टासुक नहीं कर देती ॥ ४७ ॥ मेरे आँखोंपर
बहनेवाली अमृतकी धारा, आँखोंके जिये कपूरकी मोटी सजाई
तथा मेरे मनके सफल मनोरथोंकी साक्षात् शोभाके रूपवाली यह
प्राणप्यारी मेरी आँखोंके आगे आ पहुँची ॥ ४८ ॥ समझमें नहीं
आता कि मेरी यह प्राणप्यारी मदिरामयी है या अमृतमयी
या विषमयी; क्योंकि जैसे ही मेरे नेत्र इसकी शोभा पीने
लगते हैं वैसे ही वह भतबाजा बना देती है, जिजा देती है

तथा मूर्च्छित कर देती है ॥ ४९ ॥ यह मुँदेपर सजधरकर
जहाँ हुई नवेली किसकी तपस्याका फल है जो एक हाथ
अपनी सखीके कन्धेपर धरे है दूसरा हाथ प्राधे चन्द्रमाके
आकारका बनाकर कमरपर रखे हुए है, पवन जिसके स्तनपरले
भीरे-भीरे बल हटा रहा है और जो मार्गकी ओर ऐसी देख रही
है मानो कमलिनीकी पंखुवियोंके समान अपने कोमल नेत्रोंकी
चितवन मार्गपर बिछाए डाल रही हो ॥ ५० ॥ कामदेवकी
कक्षाओंसे भरी, चञ्चल नेत्रवाली तथा कुछ सोचती हुई-सी
यह कौन नवेली है जो स्वच्छन्द होकर मुस्कराती हुई चितवन
पला रही है, बार-बार नैभाई ले रही है, काँप रही है, जिसके
स्तनोंपर बार-बार रोमाञ्च हो रहा है, जो बल नहीं सँभाल
पा रही है, जो दूसरी नवयुवतीकी गले लगा रही है, बाल
सँवार रही है तथा अपनी बातोंका उत्तर चाह रही है ॥ ५१ ॥

खार आँखें करना : नायकने प्रेमपूर्वक नायिकाको
देखकर उसे दिखाते हुए कमल सूँवा । इससे पुम्बनका सङ्केत
पाकर उस सुनयनीने मुस्कराकर मुँह मोड़ लिया । नायकने
गँदपर हाथ रखकर नख गड़ाए । इससे नायिकाने स्तनोंपर
हाथ लगानेका सङ्केत पाकर सी-सी करके स्तन लिए ।
नायकने चम्पेकी माझा हृदयसे लगाई तो अलिङ्गनका सङ्केत
पाकर नायिकाकी भुजाओंमें रोमाञ्च हो आया और उसने
जानन्दसे आँखें मूँद लीं । इस प्रकार एक दूसरेसे बुर रहनेपर
भी दोनोंने अपना-अपना प्रेम-रस पूरा कर लिया ॥ १ ॥
मनकी कल्पनाके कारण कई बार स्वप्नमें होनेवाले कूटे

रसः ॥१॥ स्मरतोरभिलाषकल्पितान्वहुशः स्वप्नभुवः-
समागमान् । अपि दृष्टिपथं प्रपन्नयोर्निविशश्वास
चिरं मनस्तयोः ॥ २ ॥

देशान्तगोपगतो नायकः—दिदृक्षमाणः क्षणमायतास्या
मुष्णाम्बुजं मञ्जुलमध्वनीनः । मुहूर्तमात्रं सुमुहूर्तकालं
सधर्षकालं कलयाश्चकार ॥ १ ॥ निशम्य केलीभवनो-
पकण्ठे मञ्जीरमञ्जुध्वनिमध्वनीनः । यथा तथा दद-
कथावशेषं समापयामास समं सुहृद्भिः ॥ २ ॥ मुक्तं
प्रियायाः समुदीक्षमाणः कान्तो दिनस्यान्तमपेक्ष-
माणः । मुहुमुहुर्व्योमनि तिम्रभानो निवेशयामास
विलोचने स्वे ॥ ३ ॥

विरह - समानकुलशैलयोः सुखयसोः परायत्तयोः
परस्परविलोकनाकुलितचेतसोः प्रेयसोः । तनुस्वम-
नुविन्दतोर्यदुविधां व्यथां विन्दतोरशक्यमिनिवेदना
विरहचेदना वर्धते ॥ १ ॥

समागमका स्मरण करके नायक-नायिकाको साक्षात् होनेवाले
सपने समागमपर भी विरवास न हो पाया ॥ २ ॥

घर लौटा हुआ परदेसी : अपनी ओर एकदक
निहारती हुई बड़े-बड़े नेत्रोंवाली प्रियतमाका सुन्दर मुख-
कमल देखकर परदेससे लौटे नायकने वियोगमें भीते हुए एक
बरसको भी एक पणके समान समझा ॥ १ ॥ जैसे ही परदेससे
लौटे नायकने अपने कीड़ा-भवनके पास पहुँचकर मँजीरेकी मधुर
ध्वनि सुनी वैसे उसने अपने मित्रोंसे बसती हुई बात
बदलकर भटपट जैसे-तैसे बातें समाप्त कर दीं ॥ २ ॥ परदेससे
लौटकर अपनी प्रियतमाका मुँह देखता हुआ नायक वही
सोचता है कि 'कब रात हो जाय !' और हर्षान्विते वह बार-
बार आकाशमें सूर्यको देखता है कि अभी कहाँ पहुँचा है ॥ ३ ॥

बिछोड़ : समान कुलमें पैदा हुए, एक जैसे स्वभाववाले,
मई अक्षय्यावाले, माता-पिताके कधीन रहनेवाले, एक
दूसरेको देखनेके लिये छुटपटानेवाले तथा दुबले होकर अनेक
प्रकारके कष्ट पानेवाले नायक और नायिकाके हृदयमें वियोगके
कारण जो खलवली मची हुई है उसका वर्णन नहीं किया जा
सकता ॥ १ ॥

वियोगिनीकी दशाका वर्णन : वह नवेकी अपने
पतिके वियोगमें अपने सुन्दर घरमें बिना चन्द्रकलावाले
शिवजीका चित्र बनाती है (जिससे उँदे चन्द्रमाको देखकर
प्रियतमके नखचिह्नोंका स्मरण हो आवे), ऊरोखोपर सॉपके

वियोगिन्यवस्थावर्णनम्—अगारेऽस्मिन्कान्ते गिरिश-
मनिशानाथशकलं भुजङ्गावुत्तुक्कान्सकलमपि धाताय-
नपथे । निकुञ्जेषु श्येनानधिगृह्णति राहुवलयं लिख-
स्या नोयन्ते शिव शिव तयार हस्त विवलाः ॥ १ ॥
अङ्गासङ्गिमृणालकारजमयसे भुङ्गावलीनां रुचं नासा-
मौक्तिकमिन्द्रनीलसरणिं श्वासानिलाद्राहते । क्षिता सा
हिमवालुकापि कुचयोर्धत्ते क्षणं दीपतां तत्तायःपतिता-
म्बुक्तरतले धाराम्बु सँलीयते ॥ २ ॥ अधिदेहलि
हन्त हेमघङ्गी शरदिन्दुः सरसीरुहे शयानः । उपजङ्ग-
नचञ्चु मौक्तिकाली फलितं कस्य सुजन्ममस्तपोभिः
॥ ३ ॥ अन्तस्तारं तरलतरलाः स्तोकमुत्पीडभाजः
पश्चात्प्रेषु प्रथितपूपतः कीर्णधाराः क्रमेण । विसातहं
मिजगरिमतः सम्यगासूत्रयन्तो निर्यान्त्यस्याः कुवत्-
यदशो वाष्पधारां प्रवाहाः ॥ ४ ॥ अपसारय घनसारं
कुद हारं दूर एव किं कमलैः । अलमलमालि मुणालै-

चित्र बनाती है जिससे वायु न आ सके (क्योंकि सॉप वायु
पी जाते हैं), कादियोंमें बाजका चित्र टाँग देती है (जिससे
कोयल न चूकने पावे) तथा कुतपर शकुका चित्र बना देती
है (जिससे चन्द्रमा यहाँसे उरकर भाग जाय) । सचमुच
बड़े दुःखकी बात है कि उस बेचारीको इतने कष्टसे दिन
बिताने पड़ रहे हैं ॥ १ ॥ उस वियोगिनीके भ्रमोंसे भरो हुए
कमलनाभके ठुके ठुके मारे भीतरोंके समान काँसे पड़ जाते हैं,
तपी हुई सॉसके कारण बेसरका माती नीलम वन-वन जाता है,
स्तनोपर खगाया हुआ कपूरका धूर्य तत्काल तपने लगता है
और हाथोंपर छोड़ी हुई पानीकी धार तपे हुए छोड़ेपर पड़ी
हुई पानीकी बूँदकी भीति कमलनाभर सूख जाती है ॥ २ ॥ वह
देहलीपर क्या कोई लोनेकी लता फैली (नवेकी लकी) हुई
है ? या शरदका चन्द्रमा कमलपर तो रहा है (कोई नवेकी
हथेलीपर तिर धरे तो रही है) ? या लज्जनकी ठोर
(मासिका) के पास मोतीकी माला (दाँतोंकी पॉत) खोमिल
हो रही है ? वह सब किस पुण्यात्माकी तपस्याका फल है ?
॥ ३ ॥ उस कमलमयनीके आँसू पड़के तो आँसूके भीतर ही
उनके-उनके कमलजाले हुए दिसाई दिए, फिर कुछ बाहर
निकलकर बरोनियाँमें बूँदके रूपमें दिसाई देकर धारा बन
गए । इस प्रकार बहते हुए उन बड़े-बड़े आँसूधोंको देखकर
देखनेवालेके मनमें घबराहट होने लगी ॥ ४ ॥ वह वियोगिनी
रात-दिन वही अरुथी रहती है कि 'कपूरको दूर करो, हार

चित्ति वदति विवानिशं बाला ॥ ५ ॥ अपि मरलमुपैति
सा मृगाद्दे विलसति कैव कथा रसान्तरस्य । अपि
कथमधुना दधातु शान्ति विषमशरज्वरतीव्रदेहदाहः
॥ ६ ॥ अबला नितराम्मुग्धा बाला हन्त द्विया
जिता । हन्यते द्विजराजायैरशरस्यं ततो जगन् ॥ ७ ॥
अस्तमितविषयसङ्गा मुकुलितनयनोत्पला मुहुः
श्वसिता । प्यायति किमप्यलस्य बाला योगाभिधु-
क्तेव ॥ ८ ॥ अलं विमुच्य सकलं प्रथमप्रयोगे भूयोऽपि
हन्तुमयलां विहितोद्यमस्य । पुष्पायुधस्य वपुरेष
तदीयमेकं ललञ्ज हन्त शरधिञ्च तदा यभूव ॥ ९ ॥
अस्मिन्वर्षमहे न वर्तत इदं यत्कामदेवान्त्वमे स्थेयं
पुत्रि निरञ्जया तदधुना किञ्चिन्मुखे दीयताम् । हन्युक्ते
जरतीर्जनेन कथमप्यध्वन्यवध्या ततः पर्यस्तेऽहनि
कल्पितञ्च कवला धौतञ्च घाराभभिः ॥ १० ॥ अस्या-
स्तनी धिरहृताण्डवरङ्गभूमौ स्वेदाब्धिन्दुकुसुमाञ्जलि-

माविकीर्य । नान्दी पण्ड पृथुवेपथुवेपमानकाञ्जलि-
ताकलरवेः स्मरस्त्रधारः ॥ ११ ॥ आदातुं सखदीलि-
तेऽपि कुसुमे हस्ताग्रमालोहितं लालारञ्जनवार्तयापि
सहसा रक्तं तलं पादयोः । अङ्गानामनुलेपनस्मरणम-
प्यन्यन्तस्वेदावहं हन्ताधीरदशः किमन्यदलकामोदाऽपि
भारगते ॥ १२ ॥ आलीचालितपार्श्वनादलनलन्सर्वा-
ङ्गमङ्गीकृतस्वाङ्गालिङ्गनमर्मरौकननवाम्भोजालिशय्या
चिरान् । चैतन्यं कथमप्युपेत्य शनकैरुन्मील्य नेत्राञ्जलं
बाला केवलमेव शन्यहृदया शन्यं जगत्पश्यति ॥ १३ ॥
इतो विद्युद्बलीविलसितमिनः केतकरजः स्फुरद्गन्धं
प्रोचञ्जलदनिनदस्फूर्जितमिनः । इतः केकिप्रीडाकल-
कलभरः पद्मलदशां कथं वास्यन्यते धिरहृदियसाः
सम्भ्रमरसाः ॥ १४ ॥ उद्धूयेति तनूलतेति
विसिनीपत्रेण नो धीभ्यते स्फोटः स्यादिति
नाङ्गकं मलयजलोदाम्भसा सिध्यते । स्याद-

इरावो, ये सब कमजोर और मैं क्या कहूँगी ? हे सखी ! हम
कमजोरोंको भी उधर ही रहने दो' ॥५॥ जिस वियोगिनीकी
यह दशा हो गई है कि चन्द्रमाके उदय होते ही प्रायः वे
शालेगी उसके आगे गङ्गा, हास्य इत्यादि रसोंकी चका की
ही कैसे जा सकती है ? इस समय तो यही साँचना है कि कामके
बाणोंसे उपन्न भयङ्कर अरका सन्ताप शान्त कैसे हो ? ॥ ६ ॥
जब भोजी-भाजी नवेलीको जाजने जोत किया तो चन्द्रमा
आदि भी कहीं भी शरण न पानेवाले संसारके प्राणियोंको मारने
लगे ॥७॥ संसारके विषयोंसे मन हटाकर, आँखें अश्रुपूर्णा करके,
बार-बार साँस साँचकर वह नवेली वियोगिनीके समान बिना
किसी लक्ष्यके ही न जाने किसका ध्यान कर रही है ॥८॥ उस
अवस्थाके प्रायः लेनेके लिये कामदेवने सारे अस्त्र-शस्त्र एक ही
बार चला दिए । अतः उसे जब उसने फिर दुबारा मारना
चाहा तो उस नवेलीकी देह ही कामदेवका लक्ष्य भाँ बनी
और बाण भी बर्बाद ॥ ९ ॥ किसी परदेस गए हुएका पत्रोंको
जब बर्बाद-बर्बाद कियोंने कहा कि 'बेटी ! इस वर्ष कामदेवके
उत्सवके समय जो तू अन्न खाँदे, यही है, यह ठाँक नहा है ।
कुछ मुँहमें डाल के', तब किसी-किसी प्रकार दिन बालत-
बातते वह मुँहसक प्राप्त ले ताँ गई पर वह पूरा प्राप्त आधुनास
भीग गया ॥ १० ॥ इस वियोगिनीके शरीरमें कामदेवकी
धूलिधारने विरह-रूपी गटके अभिनयके लिये रङ्गभञ्ज-रूपी
नायिकाके देहमें पसीनेकी बिन्दुरूपी फूल बिखेरकर शरीरके

कॉपनेसे हिलनी हुई करधनीके सुन्दर शब्दसे माको नान्दीपाठ
कर डाला ॥११॥ हाए ! वह नवेली प्रियतमके वियोगमें हतनी
दुखली हो गई है कि ज्यों ही फूल उतारनेके विचारसे देखती
है त्यों ही उसकी जँगलियाँ धकावट होनेके डरसे लाल हो
उठती हैं, ज्योंही कोई महावरसे उसके पैर रचनेकी चर्चा चलता
है त्योंही भारके भयसे उसके पैर लाल हो उठते हैं तथा यहाँमें
चन्दन आदिका लेप लगाए जानेका स्मरण करते ही वह अस्थम
दुखी हो जाती है । अधिक क्या कहें, उसके बालोंमें बसी हुई
सुगन्ध भी उसे भारी जान पड़ रही है ॥ १२ ॥ उस मूर्च्छित
वियोगिनीकी दयदक पहुँचानेके लिये सखियों जब कमलके
पत्ते छुजाती हैं तो उसका शरीर हिलने लगता है और उसके
शरीरसे लगकर कमलोंका बिलौना सूख जाता है । वह
वियोगिनी किसी प्रकार जगी और उसने आँखें भी खोलीं परन्तु
उसका हृदय सूना था इसलिए उसे सारा संसार सूना दिखाई
पड़ने लगा ॥ १३ ॥ उधर विजली चमक रही है, उधर
केवदेका सुगन्धित पराग उड़ रहा है, बादल गड़गड़ा रहे हैं
तथा मोर कूक-कूककर नाच रहे हैं, ऐसे घबराहट उपन्न
करनेवाले समयमें वियोगिनी नवेलीकाँके दिन कैसे बाल पावेगे
॥ १४ ॥ इस वियोगिनीका दुबला-पतला शरीर उड़ न जाय
इस डरसे कमलके पत्तोंसे बनाया हुआ पट्टा नहीं छुलाया
जा सकता, पानीकी छोटसे इसके भङ्ग न टूट जायँ इस डरसे
चन्दन मित्रा हुआ जब भी नहीं साँचा जा सकता और इसकी

स्यातिभरात्पराभव इति आसात्र वा पल्लवारोपो
 वल्लसि तत्कथं वरतनोराधिः समाधीयताम् ॥ १५ ॥
 एतस्या विरहज्वरः करतलस्पर्शः परीक्ष्यो न यः
 स्निग्धेनापि सखीजनेन भयतः प्रस्थम्पद्यः पाथसाम् ।
 मिश्रशक्तीकृतचन्दनौषधिविधो तस्मिंस्तडत्कारिणो
 लाजस्फोटमभी स्फुटन्ति मणयो विभ्वेऽपि हारस्त्रजः
 ॥ १६ ॥ कण्ठे मौक्तिकमालिकाः स्तनतटे कार्पूरमण्डलं
 रजः सान्द्रं चन्दनमङ्गुके वलयिताः पाण्डू मृणाली-
 लताः । तन्वी नक्तमिथं वकास्ति तनुनी जीर्णांशुके
 विभ्रती शीतांशोरधिदेवसेव गलिता ज्योमाग्रमारोहतः
 ॥ १७ ॥ कथमपि कृतप्रत्यावृत्ती प्रिये स्खलितोत्तरे
 विरहहृशया कृत्वा व्याजं प्रकल्पितमभुतम् । असहन-
 सखीधोत्रप्राप्तिप्रमादसम्भ्रमं प्रचलितदृशा शून्ये
 गेहे समुच्चलितं पुनः ॥ १८ ॥ कपोलफलकावस्थाः कष्टं

छातीपर नवेनये कोमल पक्षे भी इस दरसे नहीं रखे जा
 सकते कि उनके भारसे कहीं यह दब न जाय । तब बसाइए भखा,
 इस सुन्दरी विरहियोकी तपन बुझाई कैसे जाय ॥ १५ ॥
 इस विरहियाँ नवेनीकाँ प्रियतमके बिछोहका ताप इतना तीव्र
 है कि प्रेममयी सखियाँ उसके मारे झुककर उसका ताप नहीं
 परख सकतीं बरन् दूरसे जो पानीका छीटा मारती हैं वह
 तत्काल सूख जाता है । उसपर चन्दन तथा श्रीपधियोंका भी
 कोई बस नहीं चलता तथा असर्क देहपर पड़े हुई हार और
 मालाओंकी मणियाँ तड़-तड़ करके ऐसी चटक रही हैं मानो
 धामकी खीलों फूट रही हों ॥ १६ ॥ गलेमें मोतियोंकी माका पहने,
 स्तनोंपर कपूरका धूर्य मखे, शरीरपर चन्दनका गाढ़ा लेप किए,
 हाथोंमें कमलतन्तुके कज्जन पहने तथा उज्जले, पल्लवे रेशमी बक
 पहने हुए वह नवेनी रातके समय ऐसी जान पड़ती है मानो
 आकाशपर चढ़ते हुए चन्द्रमाकी अभिष्टात्री देवी पृथ्वीपर टपक
 पड़ी हो ॥ १७ ॥ बड़ी कठिनताके परचाह प्रियतम परदेससे लौट
 भी तो उन्होंने दूसरीका नाम लेकर प्रियतमको बुझाया, इस
 बातसे बिह्वर विरहसे दुबली-पतली उस नवेनीने न सुननेका
 बहाना करके अनधुना कर दिया । किन्तु प्रियतमके बुझानेका
 शब्द सखीके कानमें पड़ ही गया । अतः उससे यह सब न
 सहा गया और वह धवराकर आँखें तरेरती हुई सूने घरमें
 जाकर लम्बी-लम्बी साँसें लेने लगी ॥ १८ ॥ इस नवेनीके
 गाल आत्यधिक बढ़ तो गए किन्तु एक दूसरेको न देख
 सकनेके कारण ही मानो वे दोनों दुबले पड़ गए ॥ १९ ॥

भूत्वा तथाविधौ । अपश्यन्ताविधान्योन्यमोदतां क्षामतां
 गतौ ॥ १९ ॥ कपोले पाण्डुत्वं किमपि जलधारं नयन-
 योस्तनौ काश्यं दैन्यं वल्लसि इदि दावानलशिखाम् ।
 अवकां प्राणेषु प्रकृतिषु विपर्यासमधुना किमन्यद्वै-
 राग्यं सकलविषयेष्वाकलयते ॥ २० ॥ कमले निधाय
 कमलं कलयन्ती कमलवासिनं कमले । कमलयुगादु-
 द्भूतं कमलं कमलेन धारयति ॥ २१ ॥ कर्पूराम्बुमिधे-
 कभाजि सरसैरम्भोजिनीनां वल्लैरास्तीर्णैऽपि विवर्त-
 मानवपुषः अस्तस्त्रजि अस्तरे । मन्वोन्मेषदृशा किम-
 न्यदभयत्सा काप्यवस्था तदा यस्याश्चन्दनचन्द्रमण-
 दलभ्रेण्यादि वक्ष्यते ॥ २२ ॥ किसलयमिध मुग्धं
 बन्धनाद्विप्रलूनं हृदयकुसुमशोषी दादयो दीर्घशोकः ।
 ग्लपयति परिपाण्डुक्षाममस्याः शरीरं शरदिज इव
 धर्मः केतकीगर्भपत्रम् ॥ २३ ॥ कुसुमितलताभिरहता-

उस वियोगिनी नवेनीके गाल पीले पड़ गए हैं, आँखेंसे
 पाराई बहती रहती है, शरीर दुबला हो गया है, बोलीमें
 मीनता आ गई है, हृदयमें दावाभिकी आकाई भर गई
 है, प्राणोंका कोई मोह नहीं रह गया तथा स्वभाव भी
 बदल गया । अधिक क्या कहें, उसे संसारके सभी विषयोंसे
 वैराग्य हो गया है ॥ २० ॥ कमलके समान कोमल और
 शाख हाथपर मुल-कमल रखकर हृदय-कमलमें हृदयेशका
 ध्यान करती हुई वह वियोगिनी दोनों नेत्र-कमलोंसे बहता
 हुआ आँसूरूपी जल दूसरे कमल-जैसे हाथसे पीछे रहीं
 है ॥ २१ ॥ कपूरके जलसे सींचे हुए, कमलके गीले पत्तोंसे
 ढके हुए तथा मालाओंसे भरे हुए बिछोनेपर भी जिसका
 शरीर सुटपटा रहा है तथा जो बड़ी कठिनाईसे आँखें खोल पा
 रही है उस वियोगिनीकी अब यह दया हो बखी है कि चन्दन,
 चन्द्रमा, चम्पाके फूलकी पंखुदियाँ आदि सभी वस्तुएँ
 उसके खिचे आग बनी आ रही हैं ॥ २२ ॥ हृदय-रूपी फूलको
 सुखा डालनेवाला भयंकर वियोगका दुःख उस वियोगिनीके
 कंठसे सोढ़े हुए कोमल किसलयके समान दुबली-पतली पीले
 शरीरको ऐसे सुखाए डाल रहा है जैसे शरद् ऋतुकी बड़ी
 भूष केवदेकी कोमल पंखुदियोंको सुखा डालती है ॥ २३ ॥
 उस वियोगिनीकी ऐसी दया हो गई है कि फूली हुई
 क्षताओंका धक्का न लगनेपर भी उसे पीड़ा होती है, और
 उसे काटते भी नहीं फिर भी वह घूम जाता है और बावलीकी
 लहरें तनिक-सा घूँभर गई कि वह उबकी ओर घूँ-घूँकर

व्यधत्त कजमलिकुलैरदृष्टापि । परिवर्तते स्म नल्लिनी
सहस्रीभिलोलिताप्यधूर्णत सा ॥ २४ ॥ केयूरः कोम-
लमालिकामपि चिरं या विभ्रती सिञ्चते या गात्रेषु
घर्मं विलेपनमपि न्यस्तन्न घोडुं क्षमा । दीप-
स्यापि शिक्षां न चापि भवने स्वप्नेऽपि या
धीक्षितुं तार्यं सा विरहानलस्य महतः सोडुं कथं
शक्यते ॥ २५ ॥ कामक्षामकपोलमाननमुरः काठिन्य-
मुक्तस्तनं मध्यः क्लान्ततरः प्रकामचिन्तायंसौ क्षुविः
पाण्डुरा । शोभ्या च प्रियदर्शना च मदनग्लानेयमाल-
स्यते पद्माणामिव शोषणेन मरुता स्पृष्टा लता माधवी
॥ २६ ॥ क्षयिष्ठता मा भवन्त्येताः कदाऽपीत्यनुक-
म्पया । नदीर्निनीपतीवाग्धि साऽधुपूरैर्निरन्तरैः
॥ २७ ॥ गण्डे पाण्डो कलयति पुनश्चान्दनान्पत्रभङ्गा-
क्षिप्रालाभे स्वयमरुणदृष्टपुच्छति त्वां निदानम् ।
प्रत्यासत्ते मधुरलापते गृह्यके कीरशावे कण्ठे धत्ते

देखने लगती है ॥ २४ ॥ लजी हुई कामल कुलकी भासा
केशोंमें घेरतक रखनेसे जो धक जाता है, या शरीरमें
लगे हुए चन्दन आदिके घने लेपका भार नहीं सह सकती
तथा जो घरमें जलते हुए दीवोंकी जो तककी स्थितिमें भी नहीं
देख सकती वह विभागकी अक्षिका भयंकर ताप कैसे सह
पावेगी ॥ २५ ॥ पत्तेकी सुलानेवाली बायुके वृत्तानेसे माधवी
क्षताकी जैसी दशा हो जाती है वैसे ही देखनेमें भली
लगनेवाली तथा शोचनीय दशावाली इस विभागिनीकी
कामसे पीड़ित होनेके कारण ऐसी दशा हो गई है कि
इसके मुँहमें दोनों गाँव खूब गए हैं, वचःस्थलपर दोनों
स्नान पिचक हो गए हैं, कमर खचक गई है, कण्ठे झुक गए
हैं तथा देहका रंग उजला-सा हो गया है ॥ २६ ॥
वह विभागिनी अपने सदा बहनेवाले आँसुओंकी सहायतासे
नदियोंको समुद्रतक माना इस दयाके कारण जे जाती है
कि मेरी भाँति वे कभी क्षयिष्ठता (विरहिणी, सुखी
धारावाली) न होने पावें ॥ २७ ॥ वह विभागिनी अपने विरहके
तापसे उजले गाँवोंपर चन्दनसे बेज-भूटे बनायी है, चित्राके
कारण भी वह न जानेसे जो जलें फाँल हो आई हैं उनका
धुमसे कारण पृथ्वी है (अपनी विरह-ध्वधाको क्षिपानेके
क्रिये) तथा मधुर बोलनेवाला पाण्डु सुभोका बरवा जब
पाण्डु आकर बोखने लगता है तब उसे चुप करानेके क्रिये
वह कमलनयनी अपने गलेमें नीलमका डार पहन खेती

कमलनयना चारु वैदूर्यहारम् ॥ २८ ॥ घनोऽयश्चेद-
द्भुपरि विकिरंश्चन्दनरसानुदारात्रैहारी सरिदुरसि
हारीभवति वा । समन्तात्प्राणाली चिरमुपवनाली
मिस्रति वा तदप्यस्यास्तापः प्रियधिरहजः किं विर-
मति ॥ २९ ॥ चन्द्रो वर्द्धिर्मलयपवनो भांगिफुत्कारपात-
स्तिग्माऽन्तर्निपतनमहो मालतिः पुष्पशय्या । कस्तू-
र्यादेर्मधुरसुरभेऽचन्दनस्य प्रलेपो ज्वाला तन्व्या इति
वत कथं जीवनं भो विभाव्यम् ॥ ३० ॥ जीवनं तुलितं
प्रेम सखि मूढेन वेधसा । लघुजीवो ययौ कण्ठं गुरु-
धम इति स्थितम् ॥ ३१ ॥ तन्वक्रया गुरुसन्निधौ
नयनजं यद्धारि संस्तम्भितं तेनान्तर्गलितं प्रन्मथ-
शिक्षो सितो वियोगोद्भवः । मन्यं तस्य निरस्यमान-
किरणस्यैषा मुखनोद्गता भ्रातायाससमागतालिसर-
णिभ्याजेन धूमावली ॥ ३२ ॥ तस्याः स्तनान्तरे न्यस्तं
चन्दनं तापशोषितम् । मनोभयाग्निदग्धस्य बभौ भस्मेव

है जिससे रात जानकर खींचेमें वह ताँतेका बरवा
न बाँधे ॥ २८ ॥ नखे ही बाँझ ऊपरसे चन्दनके रसकी
बपा करें, शिशिर जलकी ठंडी नदी क्षतीपर हार बनकर
कटक आप धीरे इस विभागिनीके प्राय चारों ओरके हरे-भरे
वनमें मिश्र जावे फिर भी क्या प्रियतमके वियोगसे उपज
इसका ताप शान्त हो पावेगा ? ॥ २९ ॥ इस विभागिनीका
जब चन्द्रमा अक्षिके समान, दृश्यका पवन साँपोंका
फुफ्फुकारके समान, मालतीके फूलोंका बिजौना बिड़े हुए
चंगारोंके समान तथा कस्तूरी आदि मधुर सुगंधित वस्तुएँ
धीरे चन्दनका लेप लपटाके समान ठंडे जान पड़ते
हैं तब इसके बचनेकी कैसे धारा की जाय ? ॥ ३० ॥
हे सखी ! भूल मराने प्रेमकी बराबरी प्रायोंके साथ की
किन्तु प्राय ता लघु (हल्के, पुष्ट) हातें हैं अतः वे गल्लेतक
आ पहुँचे किन्तु प्रेम गुरु (भारी, भेद) है अतः वह हृदयमें हो
जमा रहा ॥ ३१ ॥ बड़ोंके सामने लड़ो हुई विभागिनीके
रोके हुए आँसुओंमें जब भीतरकी आँर मुड़कर वियोगसे उत्पन्न
कामाग्नि बुझा दो तो उसका धुआँ ही मानो मुखकी सुगन्धित
साँसके कारण उड़ते हुए आँसोंके रूपमें दिखाई पड़ रहा है
॥ ३२ ॥ उस विभागिनीके स्तनोंपर लगा हुआ चन्दनका
लेप जो तापके कारण सूख गया है वह ऐसा जान पड़ता
है मानो कामाग्निसे जले हुए उस विभागिनीके चित्तकी राख
हो ॥ ३३ ॥ कुकी हुई भीड़ोंवाली विभागिनीके तापको

चेतसः ॥ ३३ ॥ तापापनोददक्षाणि मृणालानि नत-
भ्रुवः । नाभूवन्दीर्घसूत्रेभ्यो वाञ्छितं प्राप्यते कुतः
॥ ३४ ॥ दूरललितहरिद्राग्रन्धिगौरे शरीरे स्फुरति
विरहजन्मा कोऽप्ययं पारुभाषः । वलति सति हि
यस्मिन्सार्धमावर्त्य देहा रजतमिव मृगाक्ष्याः कल्पिता-
न्यङ्गकानि ॥ ३५ ॥ दृश्यमानेऽपि हृदये मृगाक्ष्या
मन्मथाग्निना । स्नेहस्तथैव यत्तस्थौ तदाश्रयेमिवाभवत्
॥ ३६ ॥ दुःखं दीर्घतरं वहत्यपि सखीवर्गाय नो भाषते
शेषालैः शयनं सृजत्यपि पुनः शेते न वा लज्जया ।
कण्ठे गह्वरधाचमञ्चति दृशा घृष्टे न बाष्पोदकं सन्तपं
सहते यदभ्युज्जुषी तद्वेद चेतोभयः ॥ ३७ ॥ दुःखानि
सन्विशन्त्यास्तस्यारः कण्ठं मुहुर्मुहुर्वाष्पः । स्वल्पाव-
शेषजीवितनिर्वाणभियेष निरुणद्धि ॥ ३८ ॥ न कीडास्तु
कुतूहलं वितनुते भालङ्कृता सादर नाहारेऽपि न
सस्पृहा न गणयत्यालापलोलां सखीम् । बाला केवल-

कमलनाल आदि भी शान्त न कर सके। ठीक ही है, दीर्घसूत्रियों
(आकाशियों, कन्धे-कन्धे सूत्रवालों) से क्या किलीकी इच्छा
पूरी हो पाई है ? ॥ ३४ ॥ पिसी हृद्दीके रङ्गके समान
देहवाली भृगनयनी वियोगिनीके विरह-वेदनासे उजले पड़ते
हुए अङ्ग ऐसे जाग पड़ते हैं मानो वे सांभके साथ आँदा
मिलाकर गढ़े गए हों ॥ ३५ ॥ यह बड़े अचरजकी बात है कि
अथपि उस भृगनयनीका हृदय कामाग्निले जल रहा था फिर भी
उसमें स्नेह (चीन्हेज, प्रेम) उधोंका त्यों बचा रह गया ॥ ३६ ॥
यह कमलमुखी वियोगिनी जो थोर कष्ट सहते हुए भी सखियोंसे
नहीं कहती, सेवारका दिखौना बिछाकर भी कामके कारण
उसपर छोटती नहीं तथा गला भर आनेपर स्पष्ट बोझ न
पानेपर भी आँखोंमें आँसू नहीं आने देती, उसका सब
सन्ताप केवल कामदेव ही जानता है ॥ ३७ ॥ जब यह नवेली
अपना दुःख दूसरोंको बतलाने लगती है उस समय इस तरहसे
ही मानो आँसू उसका गला रोकने लगते हैं कि उसका
बचा हुआ थोड़ा-सा जीवन भी समाप्त न हो जाय ॥ ३८ ॥
यह विरहिणी न तो खेलना चाहती, न चावसे अपना श्रृङ्गार
करती, न भोजनकी इच्छा करती और न बातचीत करनेवाली
अपनी सखीको ही कुछ समझती है, घरन् प्रतिपन्न दुबले हाँसे
हुए अङ्गोंवाली वह बाधा केवल हृदयमें किसीका ध्यान करती
हुई सदा एकान्तमें गुमसुम बैठो रहती है ॥ ३९ ॥ उस
वियोगिनी भृगनयनीके प्रियतमने उसके पास जो कमलका

मङ्गकैरनुकलनामैर्बिचिकस्थले ध्यायन्ती किल किञ्चि-
दन्तरधृता निस्पन्दमास्ते सदा ॥ ३९ ॥ न नीतमुप-
नासिकं परिमलव्ययाशङ्कया न हन्त विमिवेशितं
विरहवह्निकुण्डे हृदि । दशोर्बहिरिति धृतो न निहितं
प्रियप्रेषितं करे कमलमर्पितं मृगदृशा दृशा पीयते
॥ ४० ॥ नयनोत्पलचलधारां दृष्ट्वा धारात्रिचिन्तान्त्या ।
वडवानल इव भगधाम्बलति तनौ कृतानोस्तापः
॥ ४१ ॥ नवकिसलयतरुणं कल्पितं तापशान्त्यै करसर-
सिजसङ्गात्केवलं म्लापयन्त्याः । कुसुमशरकुशानुप्रा-
पिताङ्गारतायाः शिवशिव परितापं को वदेत्कोम-
लाङ्गवाः ॥ ४२ ॥ नलिनीदलमाहितं सञ्जोभिः परिता-
पोपशमाय यद्यदङ्गे । अकृतप्रतिकारलज्जयेव परितो
म्लानिमुपैति तत्तदस्याः ॥ ४३ ॥ निःश्वासानलविज-
दन्तवसना नेत्राभ्युसिक्तस्तनी हस्तम्यस्तकपोलवीन-
वदना हारैकभूषणवती । विभ्राणांसपदेन तुङ्गजघना

कुल भेजा है उसे वह नाकसे इसलिये नहीं लगाती कि उसका
सारा पराग साँसके बेगसे उड़ जाता, हृदयसे इसलिये नहीं
लगाती कि जलती हुई वियोगाग्निके कुण्ड बने हुए हृदयमें
कमल कुलस जायगा और कानोंपर इसलिये नहीं रखता कि
नेत्रोंसे आँकड़ हो जायगा, अतः वह अपने हाथमें किप
हुए प्रेमभरी आँखोंसे उसे घिरे जा रही है ॥ ४० ॥ वियोगिनीके
कमलनयनोंसे आँखोंकी धार यहती देखकर बड़े भारी सन्तापने-
उसकी देहको समुद्र समझकर वडवानलके समान उस बेचारीके
दुबले-पतले शरीरमें ही डेरा जमा लिया है ॥ ४१ ॥ अपना
सन्ताप दूर करनेके लिये नहीं-नहीं कोपखोंसे बने हुए बिद्योनेको
केवल करकमलसे छूकर कुण्डला देनेवाली तथा कामाग्निके
अङ्गार-सी जलती हुई कोमलाङ्गीके सन्तापका बर्णन भला कौन
कर सकता है ॥ ४२ ॥ विरहकी तपन तुलानेके लिये उस
वियोगिनीके अङ्गोंपर सखियों जो कमलिनीके पत्ते रखती हैं
वे मानो इसी कामके कारण चारों ओरसे कुण्डलाने लगते हैं
कि 'हम इस बेचारीका ताप नहीं दूर कर पाए' ॥ ४३ ॥ किसी
विरहिणीकी दशाका बर्णन कवि करता है—'इस विरहिणीके
थोड़ गरम साँससे कुलस गए हैं, स्तन आँखोंसे भीग गए
हैं, चोटी कन्धेपर फैल गई है तथा मुँह सूख गया है और
थव यह उजले, सुन्दर, बीजे अङ्गोंवाली तथा मोटे नितम्बवाली
विरहिणी हथेलीपर गाढ़ रखे, केवल एक हार पहने दिव्यात्
कुण्डसनपर पड़ी रहती है' ॥ ४४ ॥ कामाग्निके सन्तापने इव

विशंसिनीं वेष्टिकामास्ते स्थण्डिल एव पादद्वयधुर-
क्षामालसैरङ्गकैः ॥ ४४ ॥ निकामं क्षामाङ्गी सरसकद-
लीगर्भसुभगा कलाशेषा मूर्तिः शशिन इव नेत्रोत्सव-
करी । अश्वस्थामापन्ना मदनदहनोदाहविधुरामियं
नः कल्याणी रमयति मनः कम्पयति च ॥ ४५ ॥
निक्षिप्य काऽपि शयने विवशं शरीरं संविश्य तत्र
भट्टिति स्वयमेव यत्नात् । उत्थाय सौधमाधिरुहा
गवाक्षरम्भैः पत्युर्विलोक्य पदवीं भजति प्रमोदम्
॥ ४६ ॥ निविशते यदि शुकशिला पदे सृजति सा
कियतोमिव न व्यवधाम् । मृदुतनोर्वितनोतु कथं न
तामवनिभूतु निविश्य हृदि स्थितः ॥ ४७ ॥ नीवीव-
न्धोऽङ्गुसनमधरस्पन्दनं दोर्विपादः स्वेदध्वजुर्मसृणम-
धुराकेकरस्निग्धमुग्धम् । गात्रस्तम्भः स्तनमुकुलयो-
रुत्तमयन्धः प्रकम्पो गण्डाभोगे पुलकपटलं मूर्च्छना
चेतना च ॥ ४८ ॥ परिमुदितमृणालीम्भानमङ्गं प्रवृत्तिः

कथमपि परिवारप्रार्थनाभिः क्रियासु । कलयति च
हिमांशोर्निष्कलङ्कस्य लक्ष्मीमभिनवकरिदन्तच्छेद-
कान्तः कपोलः ॥ ४९ ॥ परिम्भानं पीनस्तनजघनस-
क्तादुभयतस्तनोर्मध्यस्यान्तःपरिमिलनमप्राप्य हरि-
तम् । इदं व्यस्तन्यासं श्लथभुजलनाक्षेपवलनैः
कृशाङ्गयाः सन्नायं वदति विशिनीपन्नशयनम् ॥ ५० ॥
पातयति हृदयदेशे प्रियजनगर्भे पुनः पुनर्मुग्धा । वरि-
तमदमातङ्गा वाप्यवतीं भावमन्थरां दृष्टिम् ॥ ५१ ॥
पीनोत्तुङ्गस्तनकलशयोस्तारहारं न घत्ते हस्तेनापि
स्पृशति सहसा नैव कर्पूरचोटीम् । मञ्जं नापि धयति
शयितुं हंसतुलास्तराङ्गं तादृक्तन्वी गुहजनभयाद्रोपु-
कामा स्वतापम् ॥ ५२ ॥ प्रयतेऽस्तं भानां श्रितशकु-
निनोडेपु तदपु स्फुरत्सन्ध्यारागे शशिनि शनकैरुल-
सति च । प्रियप्रत्याख्यानाद्विगुणविरहोत्काण्डितदृशा
तदारब्धं तन्वया मरणमपि यत्रोत्सवपदम् ॥ ५३ ॥

बियोगिनीकी यह दया कर ही है । केलेके लग्नेके भीतरके
गुदेकी भीति यह कोमल तथा उज्जकी हो गई है तथा शयन
बुलकी होकर एक क्षामात्र बचे हुए चन्द्रमाके समान नेत्रोंको
सुख पहुँचा रही है । इस प्रकार यह सुन्दरी मनको प्रसन्न भी
कर रही है तथा कैलाश भी डाल रही है ॥ ४५ ॥ कोई
विरहिणी विवश होकर अपनी देह बिछीनेपर डालकर पड़
रहती है, फिर शीघ्र ही प्रयाण करके उठती है, सुतपर जाती
और वहाँ करोड़ोंसे उस मार्गकी ओर देखती हुई मूर्च्छित
हो जाती है जिससे उसका पति जानेवाला है ॥ ४६ ॥ धानकी
बाखका हँदतक देरमें गड़कर बड़ा कट देता है ! फिर इस
कोमलाङ्गीके हृदयमें तो बिछोहरूपी पद्माक्ष (राजा) घुसा पड़ा
है । तब इसे क्यों न असह्य पीड़ा हो ! ॥ ४७ ॥ उस विरहिणीकी
धोतीकी गाँठ ढीली पड़ गई है, नीचेका ओठ फटकर रहा है,
भुजाएँ निधिल पड़ गई हैं, पसीना छूट रहा है, आँखें कोमल,
मधुर, भावपूर्ण, चिकनी तथा भोली हो गई हैं, देह मकड़-सी
गई है, लठे हुए स्तन फटकर रहे हैं, कपोल काँप रहे हैं,
कभी वह मूर्च्छित हो जाती है और कभी चेतमें आ जाती
है ॥ ४८ ॥ इस विरहिणीके भ्रम मसके हुए सृणाङ्गकी भीति
मखिन हो गए हैं, सखियोंके विशेष आग्रह करनेपर वह किसी-
किसी प्रकार काम-काजमें हाथ भी लगाती है, लो लफ्फाज काटे
हुए हाथी-दौतके टुकड़ेकी कान्तिके समान उसका गोरा-गोरा
गात्र बिना फलज्वाले चन्द्रमाकी-सी रोभा देने लगता है ॥ ४९ ॥

कमलके पत्तोंके बिछीनेका छोर तो बियोगिनीके मोटे-मोटे
स्तन तथा नितम्बोंकी रगड़ खाकर कुम्हला गया है, पेटके दुबले
होमे और रगड़ न लगनेसे उसका बाँचका भाग हरा-भरा है
तथा निधिल भुजाओंके ऊपर-उपर फटनेसे कुछ भाग उखट-
पखट गया है । इस प्रकार बिछीनेको देखकर ही जान पड़ता
है कि उस दुबली-पतली विरहिणीको कितना अधिक कष्ट है
॥ ५० ॥ कामदेवने उस भोली-भाली सुन्दरीको जो कष्ट दिए
हैं उनका बर्णन करती हुई वह अपने उस हृदयपर आँसु-भरी
तथा भाव-भरी चितवन खजा रही है जिसके भीतर प्रियतम
विराजमान हैं ॥ ५१ ॥ वह दुबली-पतली सुन्दरी मोटे तथा
ऊँचे चढ़ोंके समान स्तनोंपर मोतियोंका उज्जला हार नहीं
पहनती, कपूर डाले हुए पानके बाँदे हाथसे धूतीतक नहीं,
हंसके समान उज्जली रुईके गद्दे-बिड़े परलँगपर सोनेके लिये बैठती
भी नहीं और ऐसी दृशमें भी बच्चोंके डरसे अपने बियोगका
कष्ट क्षिपान चाहती है ॥ ५२ ॥ जब सूर्य अस्ताचलकी ओर जा
रहे थे, पक्षियोंके घोंसलोंवाले वृक्षोंकी चोटियोंपर साँझकी जलाई
झा रही थी, चन्द्रदेव धीरे-से निकले आ रहे थे, ऐसे समय
प्रियतमको फटकार देनेसे दुगुनी बढ़ी हुई विरह, वेदनावाली-
प्रियतमको देखनेके लिये जालायित दृष्टिवाली तथा दुबले
अङ्गोंवाली सुन्दरीको उस समय प्राण देना भी सुलकर प्रतीत
हुआ ॥ ५३ ॥ मतवाले कोकिलके गलेकी सुन्दर कूकसे जिम
दिनों दिराई मयङ्कर जग रही है तथा चमेलीका घना

मद-कल-कलकण्ठ-कण्ठनादव्यतिकरभैरवदिङ्मुखानि
तन्वी । कथमिष गमयेद्विदग्धमल्लीपरिमलकञ्चुकि-
तानि वासराणि ॥ ५४ ॥ मदनदहनशुष्यक्रान्तकान्ता-
कुचान्तर्धनमलयजपङ्के गाढवद्धाखिलाङ्घ्रिः । उपरि-
क्षिततपहो लक्ष्यतेऽलिनिर्मग्नः शर इव कुसुमेपोरेष
पुङ्खावशेषः ॥ ५५ ॥ मरालध्रेणीभिर्नियतमुपनीतं सफ-
लतां गतिस्पर्धावैरं मृदुकलरधैरम्बुजदशः । यदेताञ्छृ-
ण्वत्याः प्रियविरहवत्याः कशतनोरगादस्याः स्तम्भा-
वह्व गतिसम्भायनमपि ॥ ५६ ॥ मुक्त्वा नक्तः कुसुम-
विशिक्षाम्पञ्च कुण्डीकृताग्रान्मन्ये मुग्धां प्रहरति हठा-
स्पन्निना वाक्येन । वारां पूरः कथमपरथा स्फारनेत्र-
मणालीवक्रोद्गन्तास्त्रिषल्लिखिपिने सारणीसाम्यमेति
॥ ५७ ॥ मुग्धा स्वप्नसमागते प्रियतमे तत्पाणिसंस्पर्-
शनं रोमाञ्छाश्रितया शरीरलतया सम्भाव्य कोपा-

पराग चारों ओर उन दिनोंके अङ्गोंमें चोखीकी भाँति बसा
जा रहा है अर्थात् छाया हुआ है, ऐसे वियोगके दिन वह दुबकी-
पतकी नायिका कैसे काट पावेगी ? ॥ ५४ ॥ दुबके अङ्गोंवाली
वियोगिनी सुन्दरीके स्तनोंपर लगा हुआ जो चन्दनका गाढ़ा
लेप तापके कारण सूखा जा रहा है उसकी सुगन्धसे लिपकर
उसपर बैठे जिस भीरेके पैर उस गाढ़े लेपमें धँस गए हैं और
जो उड़नेके लिये अपने पङ्खोंकी ओर फड़फड़ा रहा है वह
ऐसा दिखाई पड़ रहा है मानो कामदेवका सारा बाण उस
नवेलीके स्तनमें घुस गया हो और उस बाणकी ईश्वर बाहर
निकली रह गई हो ॥ ५५ ॥ हँसोंकी पाँतें और कमलनयनी
नवेलीकी मधुर प्यनिवाली बालमें जब होद हाने लगी तो हँसोंकी
पाँतें जीत गईं क्योंकि उस प्रियतमके बिछोहमें दुबके अङ्गों-
वाली नवेलीने जैसे ही हँसोंकी रणभुन सुनी तो वह जकड़-सी
गई अतः उससे सुन्दर बालकी आशा भी नहीं की जा सकी
॥ ५६ ॥ जान पड़ता है कामदेवके पाँच धूँकोंके बाणोंकी चार
टूट हो गई हैं अतः वह उन्हें छोड़कर वायु (जलमय) बाणसे
उस मोली-भाली नवेलीको बंध रहा है, नहीं तो उसके पीछे
हुए नेत्ररूपी नालीसे निकलता हुआ जल पेटकी सिकुड़न-रूपी
ग्रन्थक पहुँचकर नदीका रूप क्यों धारण कर लेता ॥ ५७ ॥
किसी भोखी सुन्दरीने स्वप्नमें प्रियतमका अपनी देह छूते देखा
तो उसकी सारी देह रोमांचित हो उठी और वह बार-बार बड़बड़ाने
लगी कि 'प्रिय ! मुझे मत छूओ ।' उसकी यह दशा देखकर
उसकी सखी प्रसन्न नहीं हुई वरन् बार-बार चिन्तित होकर

त्क्रिस्त । मा धा वल्लभ संस्पृशेति सहसा शून्यं वदन्ती
मुहुः सख्या नो हसिता सचिन्तमसकृत्संशोचिता
प्रत्युत ॥ ५८ ॥ यावन्म्रियतमसङ्गः प्रमदा प्रमदा
निरुच्यतां तावत् । असति पुनर्धत तस्मिन्नवला ह्य-
सेति किञ्चिन्नम् ॥ ५९ ॥ लतामूले लीनो हरिणपरि-
होनो हिमकरः स्खलन्मुकाकारा गलति जलधारा
कुचलयात् । धुनोते बन्धूकं तिलकुसुमजम्भा हि पवनो
गृहद्वारे पुण्यं परिणमति कस्यापि कृतिनः ॥ ६० ॥
लिखति न गणयति रेखा निर्भरवाष्पाम्बुधौतगण्ड-
तटा । अश्वधिदिवसावसानं मा भूदिति शङ्किता बाला
॥ ६१ ॥ लीनानसून्सरोरुहदृष्टेरन्वेष्टुमेव कुसुमेषु ।
अमति द्वाग्यपुरस्तः सन्तापं दीपमादाय ॥ ६२ ॥
लीलावलीभवमकुहरे पत्ररग्भाचकोरीचञ्चुसस्तं
शशिकरकणं वीक्ष्य मूढार्कमुपैति । लीलारामातिपकमु-

दुकी होने लगी (कि जागनेपर अपने विषसे स्वप्नमें
निकलनेकी बातका स्मरण कर-करके न जाने इसकी क्या
दशा हो जाय) ॥ ५८ ॥ जबतक सुन्दरी पतिके साथ रहती है
तभीतक वह मतवाली रहती है, पतिका बिछोह हो जानेपर
तो वह अचका (बिना बलवाली) हो जाती है, यह कैसी
विचित्र माया है ॥ ५९ ॥ कोई सुन्दरी हथेलीपर गाढ़ रक्ते
आँखोंसे आँख बहाती हुई देहलीपर बैठी है, उसके ओठ
सौंसेके वेगसे हिल रहे हैं । ऐसी अवस्थाका वर्णन कवि करता
है—जला (मुजा) की जड़ (हथेली) पर बिना हरिण (कलंक)
का चन्द्रभा (मुक) विराजमान है, कमल (नेत्र) से भरते
हुए मोतियोंके समान जलधारा (आँखोंकी धार) वह रही है
तथा तिल के फूल (माक) का पवन जपाकुसुम (ओठ)
को हिला रहा है । जान पड़ता है किसी पुष्पात्माके द्वारपर
उसके पुष्पका फल प्रकट हो आया है ॥ ६० ॥ अरनेकी
भाँति वहते हुए आँखोंसे धुके हुए गालोंवाली कोई नवेली
वियोगके दिनोंकी गिनती रखनेके लिये प्रतिदिन रेखाएँ तो
बनाती चलती है किन्तु उन्हें इस शंकासे नहीं गिनती कि इन
रेखाओंकी गिनती अर्वाचके दिनोंसे कहीं अधिक न हो गई हो
॥ ६१ ॥ कमलनयनी वियोगिनीकी देहमें छिपे हुए उसके प्राणोंको
हँदनेके लिये कामदेव सब सन्ताप-रूपी दीपक लेकर उसकी देहके
भीतर वेगसे चक्कर लगा रहा है ॥ ६२ ॥ लेखके लिये बने हुए
लताभवनके भीतर चकोरीकी चौंथसे बंधी हुई और पत्तोंके बीचसे
जमकर होकर जाती हुई चन्द्रमाकी किरण देकर जो पञ्च

स्वरितात्का कथा सा विभेति स्वालापेभ्यश्चकितनयना
यत्कुङ्कुमलेभ्यः ॥ ६३ ॥ वक्त्रे यां मृगनाभिपङ्कचरुचनो
क्षिप्नेव धत्ते परं यस्यास्सान्द्रमुरःस्थले निपतितं
भारायते चन्दनम् । आङ्गान्यप्यतिलालसा वहति या
क्लेशेन तस्यामपि न्यस्तश्लोकभरोऽपरः कथमहो
निस्त्रिंशता वेधसः ॥ ६४ ॥ घल्लभोत्सङ्गसङ्गेन विना
हरिणचक्षुषः । राकाविभावरीजानिर्विपज्वालाकु-
लोऽभयत् ॥ ६५ ॥ विवृद्धतापोपशमार्थमङ्गे न्यस्तं
यदिन्दीवरदाम तस्याः । मुक्तपुष्पा पञ्चशरेण भाति
व्यापारितं धौतमिवासिपत्रम् ॥ ६६ ॥ विश्रम्य विश्रम्य
वन्नुमाणां छायासु तन्वी विषचार काञ्चिन् । तनूत-
रीयेण करोद्धतेन निवारयन्ती शशिनो मयूकान् ॥ ६७ ॥
विभ्रान्तो दिवसः प्रपञ्चितकर्तृर्वाचलितः कोकिलैः
सक्यस्सम्प्रति निर्भयाऽस्मि जहत प्राणेषु मे संशयम् ।
इत्यन्ते दिवसस्य हन्त विगतत्रासाभिषाभापिणी

मेझोंवाली विरहिणी मूर्च्छित हो जाती है वह यदि कोयलकी
कूकसे भरे लैलके उपवनकी देखकर करे तो डाँक ही है पर वह
तो कोयलकी कूकसे समान मनोहर अपनी कोलीतकसे बरी
जा रही है ॥ ६३ ॥ जो वियोगिनी मुसपर कस्तूरीकी चित्रकारी
धारण करनेसकमें धकी जा रही है, जिसकी छातीपर चन्दनका खेप
भी भारी जान पड़ता है और जो अपने आलस-भरे अङ्गोंकी भी
कहसे हो रही है उसपर महाने यह श्लोकका भार कहाँसे
जा पड़ता है । जान पड़ता है मझा इन विरहिणियोंकी
झरनेके लिये हाथमें नङ्गी तलवार लिए खड़ा है ॥ ६४ ॥
मिथतमकी गोदसे बिछुड़ी हुई मृगनयनी नखेलियोंको पुष्पिकाका
चन्द्रमा विपैकी लपटोंसे घिरा-सा जान पड़ता है ॥ ६५ ॥
वियोगके कारण बड़े हुए तापको दूर करनेके लिये उस
विरहिणीको जो नीले कमलकी माला पहना दी गई है वह ऐसी
दिखाई दे रही है मानो कामदेवने उसपर नङ्गी तलवार चला
दी हो ॥ ६६ ॥ कोई दुबले अङ्गोंवाली विरहिणी वृक्षोंकी छायामें
रुक रुककर चलती हुई वनमें घूम रही है और हाथसे चाँचक
ठठा-ठठाकर चन्द्रमाकी आती हुई किरणें नचा रही है ॥ ६७ ॥
'हे सखियो ! जो दिन कोयलोंके स्वरोंमें बहुत बोल रहा था
वह अब वीणाकी अङ्गारोंसे विभ्राम कर रहा है । अतः अब
मुझे कोई डर नहीं है, तुम मेरे मरनेकी गङ्गा छोड़ दो' । दिन
बहते समय निहर होकर कोई विरहिणी ऐसा कह ही रही थी
कि खिली हुई चाँदनी और कोईवाला सायङ्काक उसे फिर

ज्योत्स्नाकैरवभैरवो नयति तां मोहं प्रदोषो हतः ॥ ६८ ॥
विषयविधुग दृष्टिः श्वासानिला ग्लपिनाधरास्तनुरपि
भृशं म्लाना लनेव पल्लवमञ्जरी । अपि च लवलीपाको-
द्वेदाभिरामवदावदः स्फुरति कुचगोमूले गण्डे च
कश्चन पाण्डिता ॥ ६९ ॥ वीणामङ्गे कथमपि सखीप्रा-
र्यनाभिर्विधाय स्वैरं रत्यां सरसिजदृशा गानुमारब्ध-
मेव । तन्त्रोचुक्ष्वा किमपि विरहकीर्णदीनाङ्गवल्लीमेना-
मेव स्फुरति घृशो मूर्च्छना विचमेतत् ॥ ७० ॥
व्यजनमदनः श्वासश्रेणीमिमांमुपनिन्वितं मलयजरसो
धारावाप्यं प्रपञ्चयितुं प्रभुः । कुसुमशयनं कामाख्याणां
करोति सहायतां द्विगुणगरिमा कामोन्मादः कथं तु
विरैस्यति ॥ ७१ ॥ शय्या पुष्पमयी परागमयतामङ्गा-
पैलादभ्रते ताम्यन्त्यभितकतालवृन्तनलनीपत्राणि दाहो-
ष्मणा । न्यस्तञ्च स्तनमण्डले मलयजं शोणान्तरं
दृश्यते काधादाशु भवन्ति केनिलमुखा भूपामृणाला-

मूर्च्छित करने लगा ॥ ६८ ॥ उस वियोगिनीकी आँखें
सम्भोगके लिये तरस-सी रही हैं, सौंसके पवनसे घोंट फीका पड़
रहा है, देह कटी हुई कामल पत्तोंवाली फुनगीकी भाँति सुरभा
रही है, खलकी (हरफारेबड़ा) के पके और तोड़े हुए फलकी
भाँति स्तनोंके नीचेका भाग और कपोल उजले रहके हो रहे
हैं ॥ ६९ ॥ सखियोंके प्रार्थना करनेपर किसी-किसी प्रकार उस
विरहिणी कमलनयनाने वीणा गोदमें रखी और प्रेमपूर्वक
गाना भी आरम्भ किया किन्तु अचरजकी बात तो यह है कि
मूर्च्छना (स्वरों के उभार-चढ़ाव, मूर्च्छा) उस विरहिणीको
ही दुबली-पतली होनेके कारण वीणा समझकर बार-बार छूने
लगी (अर्थात् वह गाते-गाते बार-बार मूर्च्छित होने लगी है)
॥ ७० ॥ जब पङ्केकी बयारसे भी इस विरहिणीकी सौंस
फूलने लगती है, चन्दनके रससे आँखें और अधिक बहने लगते
हैं और बिछौनेमें बिले फूल कामदेवके बाण जैसे खुभने लगते हैं
तब इसका दुगुना बढ़ा हुआ कामका वेग कैसे शान्त हो सकता
है ॥ ७१ ॥ इस विरहिणीकी देहसे छू जानेके कारण फूलोंका
बिछौना (सुखकर) चूर-चूर हो गया, उसके तापसे पासमें
हुलाया जाता हुआ कमलिनीके पत्तोंका पङ्का सुरका गया,
स्तनोंपर लगाया हुआ चन्दनका खेप फटा आ रहा है और
देहपर सजाए हुए कमलनाकके गहने ऐसे उबले जा रहे हैं कि
उनपर आग छाने लग गई है ॥ ७२ ॥ इस विरहिणीकी देह-
रूपी खिली हुई चम्पाकी चमकीली मालाके कोमल किसलय

कुराः ॥ ७२ ॥ शशभ्रमवपलये शशाङ्गे मकरन्दकुति-
वारिणी सरोजे । अपि चास्य मरुद्गणान्प्रसूते तिलकु-
सुमं स्फुटचम्पकौघदासि ॥ ७३ ॥ शीघ्रं भूमिशृङ्गे
गृहाण वसतिं प्राणैः किमु क्रीडसि प्राप्तां पश्यसि
किं न दैववृत्तिकां ज्योत्स्नां गवाक्षोदरे । इत्थं मन्मथ-
तीव्रसञ्चरञ्जुयो गेहेषु वामभ्रुवामुद्रच्छन्ति कुरङ्गला-
म्बुनभयाहीनाः सखीनां गिरः ॥ ७४ ॥ श्रुत्वा वहिः
कचन कञ्चन काऽपि शब्दं मत्वा निवर्तनमहो दयि-
तस्य मुग्धा । तत्पादुवीय च नियम्य च पार्श्वशब्दान्
धत्ते ततः श्रुतिमनल्पकुतूहलाक्षी ॥ ७५ ॥ श्लिष्यति
पश्यति क्षुब्धति पुनः पुनः पुलकमुकुलितैरङ्गैः । प्रियस-
ङ्गाय स्फुरितां धियोगिनी वामयादुलताम् ॥ ७६ ॥
सन्ध्यां कोपं तत उपगतां हस्त राशिं कृपाणीं चम्प-
कं विरहविधुरा तारकापङ्क्तिमुग्राम् । तूणीरान्तर्ग-
तशरसतिं मञ्जवत्पुङ्खभागां सञ्जज्ञात्वं कलयति पुनर्म-

न्मथं राससेन्द्रम् ॥ ७७ ॥ सा तोरणान्तिकमुपेत्य
विशोऽवलोक्य निःश्वस्य दीर्घमुपधाय करं कपोले ।
मत्वा च तं पुरत एव ससम्भ्रमत्वाज्ज्ञात्वाऽऽस मोह-
लिखितेव न किं किमासीत् ॥ ७८ ॥ सोन्मेषो न सखी-
जगः परिजनः प्रागल्भ्यभूमिर्न वा वात्सल्यादविभा-
वितस्फुटवयोऽवस्थाविशेषो गुरुः । आयाता नवम-
ल्लिकापरिमलकूराः शरद्वारसराः कस्याख्यातु मित-
म्बिनी पितृगृहावस्थानदुःस्थं जनुः ॥ ७९ ॥ स्तनम्य-
स्तोशीरं प्रशिथिलमृणालैकचलयं प्रियायाः साबाधं
तदपि कमनीयं वपुरिदम् । समस्तापः कामं मनसिज-
निदाघप्रसरयोर्न तु ग्रीष्मस्यैवं सुभगमपरार्द्धं युवतिषु
॥ ८० ॥ स्थगयति नयनाक्षं क्षुब्धना धूमधूम्नं प्रथयति
अ नितान्तं काश्यमङ्गमकृत्या । अहह विरहवार्धा
छाद्यत्यम्बुजाक्षी तदपि वदति साक्षी पाण्डुरो गरु-
देशः ॥ ८१ ॥ स्थितमुरसि विशालं पश्चिमीपत्रमेतद्

(हथेली) में चन्द्रमा (चँद) रक्ता हुआ है, उस चन्द्रमा
(चँद) में दो कमल (नेत्र) टँके हैं जिनमेंसे फूलका रसकपी
जक (जाँसू) बह रहा है तथा तिलका फूल (नाक)
मरुद्गणों (पवन, देवता) को जन्म दे रहा है ॥ ७३ ॥
घरके भीतर निरखी वितवनवाली सखियाँ किसी विरहिणीको
कामज्वरके बेगसे भरी हुई तथा चन्द्रमाके भयसे दीन
बोलीमें कह रही हैं कि 'भरे, तुम शीघ्र ही घरली-झोड़
(तहसलानेमें) में जाकर छिप रहो, प्राणोंसे क्यों खेल रही हो ?
क्या करोसेसे जाती हुई इस अमार्गी जाँदनीको नहीं देख रही
हो ?' ॥ ७४ ॥ जैसे ही किसी विरहिणीका बाहर कहीं कोई आदर
लगी हो उस भोलीने समझ लिया कि प्रियतम आ गए हैं ।
अतः, वह पलंगसे उठकर आसपासका कोकाहन शान्त करके
कुतूहल-भरे नेत्रोंसे बाहर ही कान लगाए बैठी है ॥ ७५ ॥
कोई विरहिणी प्रियतमके समागमके लिये फड़कती हुई
अपनी बाईं भुजाको गले लगाती है, उसे देखती है और
गद्गद् होकर पुलकित होती हुई बार-बार घूमती है ॥ ७६ ॥
किसी विरहिणीने कामदेवको ऐसे अञ्ज-शब्दोंसे सजे हुए
राजसराजके रूपमें देखा जिसका सबसे पहले सन्ध्याकूपी
कोश (म्यान) घमका, जिससे रात्रिरूपी तलवार निकल
आई, जो चन्द्रमारूपी चक्र धारण किए हुए है तथा जिसके
तूणीर (तरकस) में रक्ते वार्शोंकी पँखें ही सारोंके रूपमें
जमक रही हैं ॥ ७७ ॥ वह विरहिणी प्रियसे मिशनेकी आग्रासे

घरके द्वारतक गई, वसने वहाँ जाते और दृष्टि दीक्षाई और
जम्बी साँस लींचकर मायेपर हाथ रख दिया । फिर बबराहमें
उसे लगा मानो प्रियतम सामने खड़े हों और फिर बबराह
दूर हुई तो (अपनी दया देखकर) वह मोहके कारण ठक
रह गई । इस प्रकार उसकी क्या-क्या दशा नहीं हुई ! ॥ ७८ ॥
पिण्डके घरमें पड़ी हुई वह भारी नितम्बोंवाली गधेजी अपने
दुःखका वर्णन किससे करे ? क्योंकि न तो वहाँ नयनोंका सङ्केत
समझनेवाली सखियाँ ही हैं, न अत्यन्त डीठ सेवक-सेविकाएँ
ही हैं, और न बड़ोंको प्यारके कारण उसकी बदती अवस्थाका
ही बोध है तिसपर नई मल्लिकाके परागसे भरे शरद् जलुके
कठोर दिन भी सिरपर आ पहुँचे हैं ॥ ७९ ॥ उस विरहिणीके
स्तनोंपर लगा हुआ उशीर (खस) का खेप सूख गया है और
हाथपर पहनाया हुआ मृणालका कलन डीला पड़ गया
है किन्तु इस प्रकार कपटमें पड़ी होनेपर भी उसकी देह सुन्दर
दिलवाई पड़ रही है । यद्यपि गर्मीकी जलु और कामदेवका ताप
दोनों बराबर ही होते हैं फिर भी गर्मीकी जलु नवेजियोंपर ऐसी
चोट नहीं करती जैसी कामदेवका ताप करता है ॥ ८० ॥ यद्यपि वह
कमलनयनी विरहिणी बिछोड़के कइसे निकलते हुए जाँसुओंको
छिपानेके लिये धुन्नों अंगनेका बहाना करती है तथा बुझने
होते हुए अङ्गोंके लिये अपने शरीरकी प्रकृतिको दोष देती
है, फिर भी उसके उजले-उजले गाँव साक्षीके समान विरहके
सन्तापका ज्ञान करा देते हैं ॥ ८१ ॥ उस विरहिणीके कपड़ोंमें

कथयति न तथास्तर्मन्मथोत्थामवस्थाम् । अतिशय-
परितापम्लापिताभ्यां यथाऽस्याः स्तनयुगपरिणाहं
मण्डलाभ्यां ब्रवीति ॥ ८२ ॥ स्विष्टौ गरुडौ स्फुरित-
मधरं स्पन्दितं चूचुकाग्रं सती वाहू मसृणमुकुले
लोचने भ्रमस्तैव । अक्लादक्लादजनि पुलकश्रेणिहृ-
सकम्पौ किं च भ्रासास्तरलितदुकूलाञ्जलाञ्ज-
लाद्याः ॥ ८३ ॥

वियोगिनीविप्रलापः—अजनि प्रतिदिनमेव कर्म-
शेषा मदङ्गसङ्गेन । प्रतिनिशमपूरि पम्पा दक्षिणसम्पा-
तिभिः सलिलैः ॥ १ ॥ अनलस्तम्भनघिघां सुभग
भवाभियतमेव जानाति । मन्मथशराग्नितप्ते हृदि मे
कथमन्यथा वससि ॥ २ ॥ अन्तर्गता मदनवाक्किशिका-
वली या सा बाधते किमिह चन्दनचचितेन । यः
कुम्भकारभवनोपरि पङ्कलेपस्तापाय केवलमलौ न च
तापशान्त्यै ॥ ३ ॥ अबलावनपर एको भुवनचितयेऽपि

चेतदा भर्ता । कथमन्यथा सुधाकरचन्दनमुख्यामि-
यत्वं स्यात् ॥ ४ ॥ अरुतिरियमुपैति नापि निद्रा
मलयति तस्य गुणान्मनो न दोगात् । विगलति रजनी
न सः माशा व्रजति तनुस्तनुनां न चानुगमः ॥ ५ ॥
अवधिदिवसः प्राप्तथायं तनोविग्रहस्य वा रविगयमु-
पैत्यस्तं सख्यो ममापि च जीवितम् । तदलमफलैरा-
शायन्धैः प्रसोद नमोऽस्तु ते हृदय सहसा पाकोन्पीडं
विडम्बय दाडिमम् ॥ ६ ॥ अहमिह स्थितवत्यपि
तावकी त्वमपि तत्र वसन्नपि मामकः । न तनुसङ्गम
एव सुसङ्गमो हृदयसङ्गम एव सुसङ्गमः ॥ ७ ॥ आर्द्रा
हालाहलदुनभुजा दलहस्तावलम्बो वाल्ये शम्भोर्निटि-
लमहसा यद्गमैर्गोनिहृदः । मादो राहोरपि मुखविधे-
शान्तरङ्गीकृतो यः सोऽयं चन्द्रस्तपति किरणैर्मामिति
मातमेतन् ॥ ८ ॥ आयाता मधुयामिनी यदि पुनर्ना-
यात एव प्रभुः प्राणा यान्तु विभावसा यदि पुनर्जन्म-

रसक कमलिनीके बड़े-बड़े पत्ते उसके हृदयकी कामपीदाको
उतना नहीं बता रहे हैं जिसना कि अत्यधिक तापसे मुरझाए
हुए इसके दोनों स्तनोंका घेरा बता रहा है ॥ ८२ ॥ उस
बच्चल मयनवाली वियोगिनीके गाल पसीमेले भीगे हैं,
घोड़ काँप रहे हैं, स्तनकी घुबिहरी फट्टक रही हैं, भुजाएँ
धीधी-धीधी हैं, जॉलेँ चिकनी तथा सिफुदी-सी हैं, भीहँ
बच्चल हैं प्रत्येक पङ्कमें रोमाञ्च हो रहा है, जॉधें काँप रही
हैं तथा उसकी सॉस आँखको हिजा रही है ॥ ८३ ॥

विरहिणियोंका विलाप : यह पम्पा-सरोवर दिनके
समय मेरे अङ्गोंसे छूते ही इतना सूख जाता है कि उसमें
कीचड़ भर बह रहता है और रातके समय नेत्रोंसे गिरे
आँसुओंसे प्रति दिन प्रातःकालतक भर जाता है ॥ १ ॥
हे सुन्दर प्रियतम ! तुम निरचय ही कोई आग बाँधनेको
बिधा जानते हो, नहीं तो कामदेवके बाणोंकी आगसे तपे
हुए मेरे हृदयमें आकर तुम कैसे निवास करते ॥ २ ॥ हृदयमें
जो कामाग्निकी जलपट्टें उठ रही हैं वे क्या स्तनोंपर चन्दन
खगानेसे शांत हो सकती हैं ? कुन्हारके आँखेपर जो
मिट्टी ज़ीपी जाती है उससे उसके भीतरका ताप बढ़ता
ही है, घटता नहीं ॥ ३ ॥ हम अबलाओंकी रक्षा करनेनाला
कोई एक भी स्वामी यदि लोगों लोगों होता तो अमृतके
मयद्वार बने हुए चन्द्रमा-जैसी श्रेष्ठ वस्तु भी हमें क्यों अग्रिय
जगती ! ॥ ४ ॥ ओ तो घबरा रहा है, नींद आ नहीं रही

है, मन प्रियतमके गुणोंको ही सोचना रहता है, दुर्गुणोंको
नहीं, रात बीती जा रही है, मिलनेकी कोई आशा नहीं
दिखाई देती तथा शरीर भी दुबला हुआ जा रहा है किन्तु
इस विज्ञाहसे प्रेममें तनिक भी कमी नहीं आ रही है ॥ २ ॥
॥ सलियों ! प्रियतमके बिरहका तथा मेरे शरीरका अन्त
आ गया है । यह सूर्य तथा मेरा जीवन दोनों अब अस्त
होना चाहते हैं । अतः, हे हृदय ! अर्थकी निष्फल आशाएँ
करनेसे क्या लाभ है ! मैं तुम्हें प्रणाम करती हूँ, प्रसन्न
हो जाओ और अब सहसा पककर फटे हुए अनारकी बराबरी
कर जो अर्धांग फट जाओ ॥ ६ ॥ हे प्रियतम ! यहाँ रहती
हुई भी मैं आपकी हूँ और मुझसे दूर रहते हुए भी आप
मेरे हैं । हम दोनोंके शरीरका समागम होना समागम नहीं
है, यथार्थमें हृदयका समागम हो समागम है ॥ ७ ॥ जो
चन्द्रमा जन्मके समय बिपके मेल-जोड़में था, फिर जिससे
वचपनमें शङ्करके मापेकी आगसे मित्रता हो गई और
युवावस्थामें जिसका राहुके मुँहके बिपले संयोग हो गया
वह यदि अपनी किरणोंसे मुझे सन्तुष्ट करता हो तो डीक
ही है ॥ ८ ॥ बसन्त ऋतुकी रात्रि तो आ गई पर प्राणनाथ
नहीं आए, ऐसी स्थितिमें यदि मेरे प्राण अग्निमें जलने लगें
तो मैं अगले जन्मके लिये यह प्रार्थना करती हूँ कि बैरिन
कोवजको कँसानेके लिये मुझे बहेजिएका जन्म मिले,
चन्द्रमाको प्रसनेके लिये मैं राहु चर्नूँ, कामदेवका नाश करनेके

ग्रहं प्राथये । व्याधः कोकिलवन्धने हिमकरध्वंसे च
राहुग्रहः कन्दर्पे हरनेत्रदीधितिरहं प्राणेश्वरे मन्मथः
॥ ६ ॥ अलि वालिशतया बलिरस्मै दीयतां बलिभुजे
न कदापि । केवलं हि कलकण्ठशिखनामेव एव कुश-
लेषु निदानम् ॥ १० ॥ इदानीं तीव्राभिर्दहन इव भाभिः
परिवृतो ममाश्रये सूर्यः किमु सखि रजन्यामुदयति ।
अयं मुग्धे चन्द्रः किमिति मयि तापं प्रकटयत्यना-
धानां चाले किमिव विपरीतं न भवति ॥ ११ ॥ एतानि
निःसहतनोरसमञ्जसानि शून्यं मनः पिशुनयन्ति गता-
गतानि । एते च तीरतरवः प्रधयन्ति तापमालम्बितो-
न्मिक्ततरुग्लपितैः प्रवालैः ॥ १२ ॥ कति न सन्ति
जना जगतीतले तदपि तद्विरहाकुलितं मनः । कति
न सन्ति निशाकरतारकाः कमलिनी मलिनी रविणा
धिना ॥ १३ ॥ कलयति मम चेतस्तरुपमङ्गारकल्पं
उषलयति मम गात्रं चन्दनं चन्द्रकक्ष । तिरयति मम

नेत्रे मोहजन्मान्धकारो विकृतवहुविकारं मन्मथो मां
दुनोति ॥ १४ ॥ कालं पुरा गरलमभ्युनिधेः कदस्था-
दयेन्दुनाम धवलं विषमभ्युदेति । अद्यादिदं ॥
गिरिशो यदि हस्त इत्यात्काण्यं स्वकण्ठनिहितं
सखि मद्भयञ्च ॥ १५ ॥ किं ते न सन्ति गिरयश्शिखरेषु
येषामुत्सङ्गलोलतडितो विहरन्ति मेघाः । किं तस्य
वर्मनि न सन्ति वनानि तानि प्रस्थानसाहसरसैक-
परायणस्य ॥ १६ ॥ शोणीभृत्कटकप्रमाणसमये प्रेमा-
कला प्रेयसी हस्तम्यस्तविश्रुततण्डलकणान् वातुं
सिरस्यागता । संस्वेदाद्विरहानलात्करयुगे जातं
च पकोदनं तं दृष्ट्वा गुरुसन्निधौ कृतवती मीराजनं
लज्जया ॥ १७ ॥ गतोऽस्तं घर्मोऽशुभं ज सहचरीनीडम-
धुना सुखं सुप्या भ्रातः स्वजनचरितं वायस कृतम् ।
मयि स्नेहाद्वाप्यस्थगितनयनायां गतचूणो ददभ्यां
थो यातस्थयि स विलपम्येष्यति कथम् ॥ १८ ॥

लिये शहरजीके तीसरे नेत्रकी भाग बन् तपा प्राणनाथको
भी विपोगके तापका अनुभव करानेके लिये कामदेव बन्
॥ ६ ॥ हे सखी ! इस कौपको बलि (भोजन) देनेकी मूर्खता
कभी न कर बैठना क्योंकि कूक-कूककर सतानेवाली कौपलके
बधांको यही पाल-पोसकर बढ़ा करता है ॥ १० ॥ किसी
विपोगिनी और उसकी सखीमें बातें हो रही हैं । विरहिणी :
हे सखी ! मुझे यह अचरज हो रहा है कि इस समय रातमें
आगकी बड़ी-बड़ी लपटें लेकर यह सूर्य क्यों निकला आ रहा है ?
सखी : थरी पगली ! यह तो चन्द्रमा है । विरहिणी :
तो यह मुझे तपा क्यों रहा है ? सखी : अरी भोजी ! अनाथों
(विरहिणियों, असहायों) के लिये सभी वस्तुएँ उखटा
काम करती हैं ॥ ११ ॥ मेरी देह मेरे लिये बोक बन रही
है, व्यर्थ इधर-उधर घूमने-वामनेसे लोग मेरे मनको बिना
लाभका (उड़ा हुआ) समझते हैं तथा ये तीरके लटके
दुप कूक अपने नये-नये किसलय गिरा-गिराकर मेरे मनका
सन्ताप और अधिक बढ़ा रहे हैं ॥ १२ ॥ यद्यपि संसारमें
बहुतसे अनुप्य हैं फिर भी उस एकही प्रियतमके विपोगमें मेरा
मन दुखी हो रहा है क्योंकि यद्यपि आकाशमें अनेक चन्द्रमा तथा
तारे हैं फिर भी कमलिनी तो बिना सूर्यके ही दुखी रहती है
॥ १३ ॥ बिलौना मुझे अङ्गरोंके समान लग रहा है, चन्द्रमा
तथा चन्द्रमा मेरा हृदय जलाए बाज रहे हैं और मनमें छाया
हुआ धँधेरा आँखोंमें समाया जा रहा है । इस प्रकार अनेक

प्रकारके उपद्रव उनके कामदेव मुझे सन्तप्त कर रहा है ॥ १४ ॥
हे सखी ! बहुत समय पहले जो विष समुद्रमें फेंक दिया
गया था वही विष आज उजले-उजले चन्द्रमाके रूपमें समुद्रसे
निकल रहा है । हाय ! यदि शिवजी इस चन्द्रमाकरी
विषको का बाकते तो उनके गलेका साँबलापन और मेरा
अप दोनों दूर हो जाते ॥ १५ ॥ अत्यन्त साहसपूर्वक परदेसके
लिये प्रस्थान करनेवाले मेरे प्रियतमके मार्गमें क्या ऐसे पर्वत
था बन नहीं हैं जिनकी चोटियोंपर लपकपाती हुई बिजलीसे
भरे बादल उमड़ रहे हों ॥ १६ ॥ महाराज जब सेना-सहित
प्रस्थान करने लगे तो उनकी प्रियतमा प्रेमसे व्याकुल होकर
हाथमें शुद्ध चावल (अन्न) लेकर उनके मस्तकपर
निलक करनेके लिये आई । किन्तु विरहरूपी अग्निके ताप
और हाथोंमें निकले पसीनेसे उन चावलके दानोंको पककर
भात बने देखकर बड़ोंके सामने लाजके कारण उसने केवल
आरती भर कर दी ॥ १७ ॥ हे भाई कौप ! तुमने आत्मीय
होनेके नाते मेरा बड़ा साथ दिया (अजी-भौति अपनापन
निभाया) किन्तु अब सूर्य अस्त हो गए हैं अतः अपनी जीवन-
सक्तीके घोंसलेमें जाकर सुलझे सोओ, क्योंकि जब प्रेमके
आरे मेरे नेत्र आँसुओंसे डबडबा रहे थे और मैं रो रही थी
उस समय भी जो (प्रियतम) निद्रु होकर चले गए, वे
तुम्हारे बिलख-बिलखकर रोने-बिखलानेसे कैसे झोट आँखों !
॥ १८ ॥ विपके बूझकी अड़के समान चन्द्रमा चमकने लगा

गरलद्रुमकन्दमिन्दुविम्बं कदलाचारिजवारणो वसन्तः ।
रजनी स्मरभूपतेः कृपाणी करणीयं किमतः परं
विधातः ॥ १६ ॥ गुञ्जन्ति प्रतिगुञ्जमम्बुजदलद्रोणोप
भृङ्गाङ्गनाः फुल्लत्पुष्परसालवीथिशिखरे कूजन्ति माघ-
त्पिकाः । कामः काममयं करोति विशिखैर्दन्तं मुहुर्दु-
र्धिनं का सा तन्मलयानिलस्य सखि मे भीतिस्त्वयो-
ऽस्माक्यते ॥ २० ॥ ज्वलतु गगने रात्रौ रात्रावलखडकलः
शशी दहतु मदनः किं वा मृत्योः परेण विधास्यति ।
मम तु दयितः श्लाघ्यस्तातो जनन्यमलान्वया कुल-
ममलिनं न स्वेवायं जनो न च जीवितम् ॥ २१ ॥
ज्योत्स्नां पियेयुः कियतीं खकोराः किं नात्र धात्रा
करिणो नियुक्ताः । शीघ्रं यदेवांकरपूरणेन जायेन चन्द्रः
प्रभया विहीनः ॥ २२ ॥ तरुणीनां कृते प्रेयाम् यदि
स्याद्भवनप्रये । तदा प्रेयः परिष्वङ्गः केवलः सखि
मेतरः ॥ २३ ॥ दहनजा न पृथुर्दधुर्धया विरहजैव

यथा यदि नेदृशम् । दहनमाशु विशन्ति कथं स्त्रियः
प्रियमपासुमुपासितुमुद्धराः ॥ २४ ॥ दाक्षिण्यं मलया-
निलस्य विदितं शैव्यं सुधादीधितेर्धानामेव न गोचरे
मलयजस्यापि स्फुटं सौष्ठवम् । विश्लेषे तय के न मे
परिचिताः प्रालेश तत्तत्कथाविष्कारे पुनरप्रमाणयति
मामध्याहृत्यं तनुः ॥ २५ ॥ दुर्वागाः स्मरमार्गणाः
प्रियतमो दूरे मनोऽन्युत्सुकं गाढं प्रेम नयं दयोऽति-
कठिनाः प्राणाः कुलं निर्मलम् । स्त्रीत्वं धैर्यविरोधि
मन्मथसुहृत्कालः कृतान्तोऽक्षमी नो सख्यभ्रतुराः
कथं तु विरहः सोढव्य इत्थं मया ॥ २६ ॥ निश्वासैस्त्वह
साम्प्रतं सखिगता वृद्धिं भूय रात्रयस्सार्धं लोचन-
वारिणा विगलितं तन्प्राक्तनं मे सुखम् । प्राणाशा
तनुनामुपैति च मुहुर्नूनं तनुस्पर्द्धया कन्दर्पः परमेक
एव विजयी यातेऽत्र कास्ते स्थिनः ॥ २७ ॥ पञ्चत्वं
तनुरेति भूतनिवहाः स्वांशैर्मिलन्तु भूयं धातारं

है, कदवाली कमलकी नट करनेके लिये हाथीके समान वसन्त
या पहुँचा है तथा महाताम्र कामदेवकी कटारके समान यह रात
भी छा पहुँची है ! हे अज्ञा ! अब और तुझे क्या करना है ? ॥ १६ ॥
प्रत्येक कुञ्जमें कमलकी पंखुदियोंपर भीरियों गुञ्जार कर रही
हैं, सिले हुए धामके झीरोंपर मतवाला कोकिल कूक रहा है
और कामदेव भी बड़े वेगसे बार-बार मुझे भारनेके लिये
अपने बाण बरसा रहा है । हे सखी ! इतना सब दुःख अब
मैं भोग चुकी हूँ तब तुम मलयपर्वतके पवनका मुझे क्या डर
दिखा रही हो ॥ २० ॥ आकाशमें प्रत्येक रात्रिको भले ही यह ६०
चन्द्रमा जका करे तथा कामदेव भी भले ही मुझे जलाता रहे ।
अब मुझे मार बालनेके सिवा और कर ही क्या सकता है ! मेरे
प्राणनाथ बड़ाई करने योग्य हैं, पिताजी भी प्रशंसाके योग्य
हैं, निर्मल वंशमें उत्पन्न हुई माता भी प्रशंसाके योग्य हैं
और मेरा वंश भी निर्मल तथा प्रशंसाके योग्य है, एक मैं
और मेरा जीवन ही प्रशंसाके योग्य नहीं है, अतः इनका
नष्ट हो जाना ही अच्छा है ॥ २१ ॥ वे चकोर भला कितनी
चाँदनी पिये ! मझाने चाँदनी पीनेके लिये हाथियोंको क्यों
नहीं भिक्षा दिया जिससे उनके सूँढ़में भर-भरकर पीनेसे
शोथ ही चन्द्रमाकी सारी चाँदनी सुख जाती ॥ २२ ॥ हे सखी !
गधेलियोंका प्रियतम तीनों लोकोंमें कहीं भी हो पर वे केवल
उसीका आलिंगन करना चाहेंगी, दूसरेका नहीं ॥ २३ ॥
अग्निले जलमें डतनी पीड़ा नहीं होती जितनी विरहके

तापमें जलनेसे होती है । यदि ऐसा न होता तो विरहके
तापको अक्षय जानकर पतिव्रता स्त्रियों अपने पतिघोंके
मर जानेपर उनसे मिलनेके लिये सुखपूर्वक आगमें क्यों कूद
पड़तीं ! ॥ २४ ॥ मलयपर्वतसे बड़े हुए पवनकी चतुराई
प्रसिद्ध है, चन्द्रमाकी टपटक भी प्रसिद्ध है तथा चन्द्रमाकी
सुन्दरताका भी वर्णन नहीं किया जा सकता । इनमेंसे मैं
किसे नहीं जानती ! किन्तु हे प्राणनाथ ! आपके विरहमें जब
इनकी बात चलती है तो मेरी देह मेरे इस अनुभवको नहीं
मानती अर्थात् इन सभी वस्तुघोंका भुक्त्वर विपरीत प्रभाव
पढ़ने लगता है ॥ २५ ॥ कामके बाणोंको कोई रोक नहीं
सकता, प्राणनाथ दूर हैं, मन आश्रय्त ठामुक है, प्रेम बढ़
रहा है, अवस्था नहीं है, प्राण बड़े कठोर हैं, वंशमें कोई
कलह नहीं है, स्त्रियोंमें धोरत्र होता ही नहीं, वसन्तका समय
कामदेवको बढ़ानेवाला है, यमराज कभी समा नहीं कर सकते
तथा चतुर सखियों भी पास नहीं हैं । अब ऐसी दशामें मैं यह
विरह सही भी तो कैसे सहूँ ॥ २६ ॥ हे सखी ! मेरे प्रियतमके
चले जानेपर इस समय मेरी लम्बी साँसोंके साथ रातें भी
लम्बी हो पड़ी हैं, जँसुघोंके साथ मेरा पहलेका सारा सुख भी
बह गया और जीवनकी आशा भी क्षीण हो गई । इस प्रकार
सब तो चले गए किन्तु मेरी देहके साथ होइ करके यह एक
कामदेव सबको जीतकर यहाँ बटा खड़ा है ॥ २७ ॥ अब
मेरे शरीरका अन्त होनेवाला है । मेरे शरीरमें रहनेवाले पृथ्वी,

प्रणिपत्य हस्त शिरसा तथापि याचे धरम् । तद्वापीपु
पयस्तदीयमुकुरे ज्योतिस्तदीयाङ्गनव्योसि व्योम तदो-
यवर्मनि धरा तत्तालवृन्तेऽनिलः ॥ २८ ॥ पिकाली
वाचालीभवति बहुधाऽलीकवचने मृणाली व्यालीव
व्यथयतितरामङ्गमनिशम् । विपत्वालाजालं सखि
किरति पीयूषकिरणो जगन्प्राणः प्राणानपहरति केयं
परिणतिः ॥ २९ ॥ प्रसर शिशिरामोदं मन्दं समीर
समीरय प्रकटय शशिप्राशाः कामं मनोभव जृम्भताम् ।
अवधिदिवसः पूर्णस्सद्यो विमुञ्चत तत्कथां हृदय-
मधुना किञ्चन्कर्तुं ममान्यदिहेच्छति ॥ ३० ॥ प्रिय-
सखि न तथा पटोरपट्वी न ख नलिनादत्तमादतोऽपि
शीतः । शमयति मम देहदाहमस्तः सर्पादि कथा हि
यथा नरेन्द्रसुनोः ॥ ३१ ॥ प्रियाश्लेषं विना हस्त
भारायन्तेऽस्योऽपि यत् । तत्कथं धिरहे तस्य विन्देयं
स्वस्थतां सखि ॥ ३२ ॥ बहुलमासिकयापि मया न

सा तनुरभूयि तदन्तरभीरुणा । तदधुना विधिना
कृतमावयोर्गिरिदरीनगरोशतमन्तरम् ॥ ३३ ॥ वत
सखि कियदेतत्पश्य वैरं स्मरस्य प्रियशिरहृच्छेऽस्मि-
न्यागिलोके तथा हि । उपवनसहकारोद्गासिसृ-
क्ककुलेन प्रतिविशिशमनेनोद्भूतं कालकूटम् ॥ ३४ ॥
विभेमि सखि संवांस्य भ्रमरोभूतकौटकम् । यज्ञा-
नादागते पुंस्त्वे तेन सार्धं रतिः कथम् ॥ ३५ ॥
भस्मीभूतः कुसुमविशिलः शम्भुनेत्राग्निनाभूज्ज्वाला-
दायी तदनु मनसि प्राप्तजम्मा बभूव । भूयस्तस्मि-
न्विरहदहनैर्दाहितोऽसौ मयैवं कुशोत्पन्नो व्यथयति
पुनर्भामहो तत्र धेनु ॥ ३६ ॥ मदकलकृतान्तकाक्षर-
खुरपुटनिधूतधूलिसद्दाशम् । केतकरजो निषाय सखि
यदि कार्यं मम प्राणैः ॥ ३७ ॥ मनारागस्तीक्ष्णं विप-
मिव विसर्पत्यविरतं प्रमाथी निधूमं ज्वलति विधुतः
पावक इव । हिमस्ति प्रत्यङ्गं उदर इव गरीयानसि

जल, अग्नि, वायु तथा आकाश अपने-अपने भागोंमें मिल जायें
इसकी मुझे चिन्ता नहीं है किन्तु मैं ईश्वरको मस्तक नवाकर
प्रणाम करके यहाँ बरदान माँगता हूँ कि मेरे शरीरके जलका
भाग प्रियतमकी बावर्झमें, अग्निका भाग प्रियतमके दर्पणमें,
आकाशका भाग प्रियतमके आँगनके सुले स्थानमें, पृथ्वीका
भाग प्रियतमके मार्गमें तथा वायुका भाग प्रियतमके पङ्क्तुमें
जा मिले ॥ २८ ॥ अरी कूट कोलनेवाली ! यह काँपल बहुत बड़-
बड़ा रही है, यह कमलकाज नागिनके समान निरन्तर शरीरको
कट रहे रही है, हे सखी ! चन्द्रमा भी अपनी लपटें विलेने डाल
रहा है तथा सारे संसारका प्राण (पवन) भी मेरे प्राण हर रहा
है । यह सब क्या हो रहा है ? ॥ २९ ॥ हे शीतल और सुगन्धिन
पवन ! तुम धीरे-धीरे बहो । हे चन्द्रमा ! तुम दिशाओंको
चमकाओ तथा हे कामदेव ! तुम भी जी लोखकर पेटो क्योंकि
प्रियतमके आनेका दिन भी बीत गया । सखियो ! अब तुम भी
उसकी बात न सुनो, मेरा मन तो अब कुछ और हो करनेको
उत्तान हो चला है ॥ ३० ॥ हे प्यारी सखी ! बिसे हुए चन्दन
तथा कमलके पत्तोंके ठण्डे-ठण्डे पवनसे मेरे हृदयके भीतरका
सन्ताप दटना शान्त नहीं होता जितना उस राजपुत्रकी
चर्चासे शीघ्र शान्त हो जाता है ॥ ३१ ॥ हाय सखी ! जिस
प्रियतमके गले लगे—विना प्राण भी मारी हो रहे हैं
उसके बिछोहमें मैं कैसे स्वस्थ रह सकती हूँ ॥ ३२ ॥
पलिते सम्मोग करते समय बीचमें बाधा पड़नेके डरसे मैंने

अपने शरीरको मौलसिरीकी माँझसे भी नहीं लगाया किन्तु
आम दुभाग्यने हम दोनोंके बीचमें पर्वत, गुफाओं तथा
सैकड़ों नगरोंका अन्तर डाल दिया ॥ ३३ ॥ हे सखी ! देखो
तो, प्रियतमके बिछोहमें दुबले हुए प्रेमियोंके साथ कामदेव
कैसी शत्रुता करता है कि हमराममें आमकी बीरोंपर मैंडराते
भीरोंके रूपमें उसने प्रत्येक बाणमें कालकूट विष लगा
रखा है ॥ ३४ ॥ भुङ्गी कीड़ा गुनगुनाकर दूसरे कीड़ोंको भी
मृता बना लेते हैं । उनको यह जिया देखकर कोई विरहिणी
कह रही है—‘हे सखी ! कीड़ेको भी मृङ्गी बनते देखकर मुझे
यह डर लग रहा है कि सदा प्रियतमका ध्यान करते-करते
यदि मैं भी पुरुष बन गई तो उनके साथ मेरी कामकीड़ा कैसे
होगी !’ ॥ ३५ ॥ सबको जलानेवाले कामदेवको पहले तो
शङ्करजीके तीसरे नेत्रकी अग्निने भस्म कर डाला । इसके परभाव
उसने मनमें जन्म लिया किन्तु उस मनमें भी मैंने विरहकी
आग जलाकर उसे जला डाला । अब फिर वह कहाँसे उत्पन्न
होकर मुझे उजाए डाल रहा है, यह मेरी समझमें नहीं
आ रहा है ॥ ३६ ॥ हे सखी ! यदि तुम्हें मेरे प्राण बचाये
हों तो यमराजके मतवाले मैंसेके सुरसे रकी हुई धूलके
समान इस केवदंके फूलका पराग रूपरत यहाँसे दूर हटाओ
॥ ३७ ॥ मनका प्रेम भयंकर विषके समान सारे शरीरमें
फैला जा रहा है तथा शरीरको मथ देनेवाला बही प्रेम बिना
धुरंधरी आगके समान भीतर ही भीतर सुखग रहा है और

इतो न मां ब्रानुं ततः प्रभवति न चाभ्या न भवती ॥ ३८ ॥ यदोययलमालोक्य गतः प्रेयाग्वियुज्यते । आलोकये कथं सख्यस्तस्य चन्द्रमसो मुखम् ॥ ३९ ॥ याः पश्यन्ति प्रियं स्वप्ने धन्यास्ताः सखि योषितः । अस्माकं तु गते कान्ते गता निद्रापि वैरिणी ॥ ४० ॥ यात्रामङ्गलसंविधानरचनाव्यग्रे सखीनां जने वाष्पा-
म्भःपिहितेक्षणे गुरुजने तद्वत्सुहृन्मण्डले । प्राणेशस्य महीक्षणापितदृशः कृच्छ्रादपि कामतः किं बोडाह-
तया मया भुजलतापाशा न कण्ठेऽर्पितः ॥ ४१ ॥ यास्यामीति समुद्यतस्य मदितं विध्वंसमाकर्णितं गच्छन्मुरमुपेक्षितो मुहुरसी व्यावृत्य सिष्ठन्नपि । तच्छून्ये पुनरागतास्मि भवने प्राणास्त एते दृढाः सख्यस्तित्थन जीवितव्यसनिनी दम्भादहं रोदिमि ॥ ४२ ॥ रात्रिर्मे दिवसायते हिमकचिन्नदण्डांशुलला-
यते तारापङ्क्तिरपि प्रदीप्तवडवाधकिस्फुल्लिकायते ।

अर्धकर ज्वरके समान प्रत्येक अङ्गको मरोड़े डाल रहा है । ऐसी स्थितिमें न तो पिता मेरी रक्षा कर सकते, न मेरी माता और न चाप (सखी) ही ॥ ३८ ॥ यात्रामें चन्द्रमाका बक देखा जाता है । इसीपर कोई विरहिणी कह रही है कि 'हे सखियों ! जिस चन्द्रमाका बक देखकर मेरे प्रियतम मुझसे दूर हो गए, उस चन्द्रमाका मुँह मैं कैसे देखूँ !' ॥ ३९ ॥ हे सखी ! वे स्त्रियाँ धन्य हैं जो स्वप्नमें ही अपने प्रियतमका दर्शन पा लेती हैं पर प्रियतमके चले जानेपर तो मेरी वैरिनी मीढ़ भी जाती रही ॥ ४० ॥ कोई विरहिणी इस प्रकार चिन्ता करती हुई पड़ती रही है ■ 'प्रियतमको यात्राके समय जब सखियाँ मङ्गलाचार करनेमें लगी थीं, परके बड़े-बूढ़ों तथा मित्रोंकी आँखें झँझुझँसे डबडबा रही थीं और प्राणनाथ जब भीथे झँझुँ किए हुए बड़े कण्ठसे निकले जा रहे थे उस समय मुझे लज्जा क्यों लगी, मैंने उनकी भुजाएँ लेकर अपने गलेमें क्यों नहीं डाल लीं !' ॥ ४१ ॥ हे सखियों ! जब प्रियतमने कहा कि 'मैं जाऊँगा' तो उनकी इस बातको मैंने सावधान होकर सुन लिया । जब वे दूर चले गए और बार-बार धूम-धूमकर सड़े होने लगे तब भी मैंने कोई ध्यान नहीं दिया और प्रियतमसे रहित सुने घरमें मैं फिर आ गई और मेरे प्राण जैसे ही कठोर बने हुए हैं । इससे जान पड़ता है कि मैं जीना चाकसी ही हूँ और यह मेरा रोना-धोना केवल दिखावा-मात्र है ॥ ४२ ॥ प्राणनाथके विक्रोहमें रात्रि मुझे दिनके समान गमन लगती

धीरो दक्षिणमासतोऽपि दहनज्वालावलीढायते हा हा चन्दनविन्दुरय जलचन्सआगिरङ्गायते ॥ ४३ ॥ रिपु-
रिव सखीसंवासोऽयं शिखीव हिमानिलो विषमिव सुधाशिमर्यस्मिन्दनोनि मनोगते । हृदयमदये तस्मि-
न्नेवं पुनर्वसते वल्लान्कुधलयदृशां वामः कामो निकाम-
निरकुशः ॥ ४४ ॥ रोलम्बाः परिपूरयन्तु हृदि तो भङ्गारकोलाहलैर्मन्दं मन्दमुपेतु चन्दनचनीजानो नभ-
स्वानपि । माघन्नः कलयन्तु चूतशिखरे केलोपिकाः पञ्चमं प्राणाः सन्धरमश्मसारकठिना गच्छन्तु गच्छ-
न्वमी ॥ ४५ ॥ रोलम्बा मधुपः पिकस्तु परभृद्रन्धा-
नुसारी मरुदंसाः केवलपक्षपातनिरताश्चन्द्रोऽपि दोषाकरः । चेतो नैन शुकास्वहैकपठिताख्यायी पयोदो जडः कं बाहं प्रहिणोमि हन्त कठिनस्थान्ताय कान्ताय मे ॥ ४६ ॥ वरमसी दिवसो न पुनर्निशा ननु निशैव घटं न पुनर्दिनम् । उभयमेनदुपेक्षयथा क्षयं

है, चन्द्रमा जालों मूर्खोंके समान तप रहा है, तारोंकी पौतें जलते हुए बदवानलकी चिनगारियों-सी जान पड़ती हैं और धीरे-धीरे चलनेवाला दक्षिणका पवन आगकी लपटोंसे घिरा-सा जान पड़ता है । हाय ! हाय !! ये चन्दनकी बूँदें भी इस समय गरम जलके समान कण्ठमें लग रही हैं ॥ ४३ ॥ जब प्रियतमका स्मरण आता है तब सखियाँ वैरिनीके समान, शरितक वायु अग्निके समान तथा चन्द्रमा विषके समान जान पड़ता है और जब उस प्रियतमकी निन्दुरताका स्मरण आता है तो कमलनभनी मवेक्षियोंके हृदयपर वह क्रूर कामदेव बिना रोक-टोकके बलपूर्वक आक्रमण करने लगता है ॥ ४४ ॥ भले ■ भीरे अपनी गुआरसे दिशाओंको भर दें, चन्दनके वनसे निकला हुआ पवन धीरे-धीरे बहता रहे, मतवाला पाखण्ड कोकिल आसके वृक्षोंपर पञ्चम स्वरसे कूकता रहे तथा पश्वरके समान कठोर वे मेरे प्राण भी शीघ्र निकल जायें पर मुझे कोई चिन्ता नहीं ॥ ४५ ॥ भीरा मधुप (फूलोंका रस, मदिरा पीनेवाला) है, कोवल परभृत् (दूसरोंसे पाकी हुई, इसी नामवाली) है, पवन रन्धानुसारी (दोष ढूँढनेवाला, सिद्धोंमें घुसने वाला) है, हंस केवल पक्षपाती (पक्षपात करने वाले, पक्षोंसे उड़नेवाले) हैं, चन्द्रमा भी दोषाकर (दोषोंका घर, रात्रि बनानेवाले) हैं, चित्त लौटनेका माम नहीं ले रहा है, सुग्गा केवल सीसी-पड़ी बातको ही दुहराता है तथा बादल जड़ (मूर्ख, शीतल) हैं । हाय ! ऐसी दशामें निन्दुर

प्रियजनेन न यत्र समागमः ॥ ४७ ॥ चार्यन्तां मन्दमन्दं
मधुकरनिकरम्रीदभ्रहारधाराः क्षिप्यन्तां यत्र कुत्र
प्रतिदिशमधुना भूरिभाराश्च हाराः । दक्षन्तां सर्वं
एते कमलदलपुताः किञ्च हा पुष्पभारास्तारा नारा-
चधारा विकिरति हृदये मन्मथोऽयं हताशः ॥ ४८ ॥
धिरमत धिरमत सण्णो नलिनीदलनालवृन्तपवनेन ।
हृदयगतोऽयं वहिर्भाटिति कदाचिज्ज्वलन्त्येव ॥ ४९ ॥
शंखतत्त्वविद्योधवन्कुसुमवत्पीयूषवन्मित्रवदान्यासम्भ-
जति प्रिये मृगदृशोऽथ प्रस्थिते तत्क्षणम् । गेहं तन्मु-
कुरं तदेव वलयं तन्मन्दनं सा निशा कारावत्करवाल-
वत्ककचवत्काकोलवत्कालवत् ॥ ५० ॥ शल्यानि मर्म-
एयपि कोलितानि गलन्त्ययस्कान्तमणेः प्रभावात् ।
हृदि प्रविष्टस्य पुनर्जनस्य न लभ्यते निर्गमनाभ्युपायः
॥ ५१ ॥ श्रुत्वा नामापि यस्य स्फुटधनपुलकं जायतेऽहं
समस्तादृष्ट्वा यस्याननेन्दुं भवति वपुरिदं चन्द्रकान्ता-

नुकारि । तस्मिन्नागत्य कण्ठप्रहणसरभसस्थाधिनि
प्राणनाथे भग्ना मानस्य विन्ता भवति मम पुनर्वच-
मन्याः कदा नु ॥ ५२ ॥ श्वसो वाष्पतरङ्गितस्सकसणा
मार्गे च नेत्रापणा केनेदं न कृतं प्रियस्य विरहे कस्या-
स्यो निर्गताः । सख्येवं यदि तेन नास्मि कथिता
पाम्थः कथं प्रोषितः प्राणास्सम्प्रति मे कलङ्कमलिना-
स्तिष्ठन्तु वा यान्तु वा ॥ ५३ ॥ स्वमेनाद्य मया पुरः
प्रियतमो दृष्टधिरादागतो यत्नेनाप्यनुकूल्यन्नपि मया
मानाद्य सम्भावितः । पश्चादावदुपैमि मन्मथपथा-
दवा तमालिङ्गितुं तावन्मे सहसैव मृत्युसदृशः प्राप्तः
प्रयोधोदयः ॥ ५४ ॥ स्वयमज्ञातदुःखो यः स दुनोति
न विस्मयः । त्वं स्मर प्राप्तदाहोऽपि दहतीति किमु-
च्यते ॥ ५५ ॥ हस्तालि सन्तापनिवृत्तयेऽस्याः किं
तालवृन्तं तरलीकरोषि । उन्ताप एषोऽन्तरदाहहेतुर्नत-
भ्रुवो न व्यजनापनोद्यः ॥ ५६ ॥ हारो नारोपितः कण्ठे

चित्तवाले प्रियतमके पास भेजें भी तो कित्ते भेजें ॥ ४७ ॥
कोई विरहिणी बेचैन होकर सोच रही है 'किं दिनका
समय छपड़ा है, रातका नहीं । नहीं-नहीं रात छपड़ी है,
दिनका समय नहीं । नहीं, इन दोनोंका ही नारा हो जाय
क्योंकि प्रियका समागम न तो रातमें हो रहा है न दिनमें'
॥ ४७ ॥ ये भीरोंकी बेगमरी गुंजारें रोक दो, ये द्वार इस
समय भार हो रहे हैं अतः इन्हें यहाँ-वहाँ चारों ओर किलेर
दो, कमलके पत्तोंके साथ फूलोंको भी जका दो क्योंकि यह
भीच कामदेव मेरे हृदयपर सारे-रूपी तीखे बाण छोड़नेकी
तैयारीमें है । ये सब वस्तुएँ कामके साथी हैं अतः इनके न
रहनेपर वह मुझे नहीं देख पावेगा ॥ ४८ ॥ हे सलियो ! ठहरो,
ठहरो ! कमलके पत्तोंका पट्टा चकाना बन्द कर दो । ऐसा न हो
कि हृदयमें घुसी हुई आग पवन लगनेसे और भी बेगसे जल
उठे ॥ ४९ ॥ प्राणनाथके पास रहते समय जो घर आनन्ददायी
था, वही उनके चले जानेपर कारागार-सा हो रहा है । जो दर्पण
उस समय तत्त्वज्ञानके समान ज्ञान पड़ता था वह अब
तलवारके समान चमक रहा है । जो कङ्कन फूलके समान ये ये
आव आरके समान सुभ रहे हैं । जो चन्दन अमृतके समान
लगता था वह विष-सा लग रहा है और जो रात सखीके
समान ज्ञान पड़ती थी वही आज मेरा काल बनी हुई है ॥ ५० ॥
देहके कोमल भागमें गढ़ाई हुई कीलें भी जौहकान्तमयिके
प्रभावसे गल जाती हैं किन्तु हृदयमें घुसे हुए मनुष्यको

निकामकेका कोई उपाय ही नहीं मिल रहा है ॥ ५१ ॥ जिस
प्रियतमका नाम-मात्र सुन लेनेपर शरीर सब ओरसे रोमाञ्चित
हो उठता है और जिसका चन्द्रमुख देखकर शरीर चन्द्रकान्त-
मणिके समान चमकने लगता है वही प्रियतम जब जाकर गलेमें
हाथ डालकर लड़ा हो जाता है उस समय सारा मान दूढ़ जाया
है पर मुझ दल्लके हृदयवालीका ऐसा भाग्य कहाँ कि यह समय
देखनेको मिले ! ॥ ५२ ॥ हे सखी ! यदि मेरे प्रियतमने मुझसे
ऐसी बात न कही होती कि 'प्रियके विछोहमें किसीकी सौतेली
आँसुओंके साथ नहीं भर उठती ? कौन चिन्तित होकर मार्गमें
आँसों नहीं बिछाए रहती ? किन्तु आजतक क्या कोई मरी
है ?' तो मैं उसे क्यों परदेस जाने दैती ? अब मेरे ये कलङ्की
प्राण रहें या आर्य मुझे विन्ता नहीं ॥ ५३ ॥ आज स्वप्नमें
मैंने देखा कि बहुत दिनोंके परचाए प्रियतम आए और मुझे
अनानेका प्रयत्न करने लगे किन्तु मैं रुकी बैठी रही और मानके
कारण मैंने उनका सनिक भी स्वागत-सत्कार नहीं किया । फिर
कामदेवके वशमें होकर मैं जैसे ही उनके गले लगनेको लगी
वैसे ही मृत्युके समान मेरी नींद सुख गई ॥ ५४ ॥ जिसने
पीड़ा न जानी हो वह यदि किसीको कष्ट दे तो अचरज नहीं
किन्तु हे कामदेव ! तुम तो एक बार जब तुम्हें हो, फिर भी
मुझे जकाते हो ! अतः तुम्हें क्या कहा जाय ॥ ५५ ॥ हे
सखी ! इस विरहिणीका ताप दूर करनेके लिये पट्टा क्यों
डुका रही हो ? इस रुकी हुई भीहवाजी नवेजीको जो ताप

मया विश्लेषभीरुणा । इदानीमन्तरे जाताः पर्यताः
सरितो द्रुमाः ॥ ५७ ॥

दूतीगुण — मिथः विद्युक्तं मिथुनं समानं माधुर्य-
सोलाससुभक्तिभिर्या । सा याग्मिना-नर्म-कला-मना-
कलासुकौशलेयोजनीह दूती ॥ १ ॥

स्वर्यदूती—स्फुरयसि कथमधरं एवं लक्षयसि तप्तो
हि पान्थ रसलुब्धः । घनरससर इह लब्ध्वा कथमव-
गाहनसंसुखाय नोत्सहसे ॥ १ ॥

दूती प्रति स्थावस्थाकथनम्—अकस्मादेकस्मिन्पथि
सखि मयामुं वनतटं व्रजन्त्या दृष्टो यो नवजलधरस्था-
मलतनुः । स दम्भकृष्या किं वाकुरुत नहि जाने तत
इदं मनो मे क्यालोत्तं पथचन गृहकृत्ये न वसते ॥ १ ॥
अद्विस्वीक्षणं चक्षुरद्विस्मालनं मनः । अद्विस्पर्शनः
पाणिश्च मे किं करिष्यति ॥ २ ॥ कान्तः कृतान्तच-
रितः कुटिला तदम्या यज्ञापमानि यवनानि च दुर्ज-

नानाम् । प्रत्यङ्गमन्तरननोः प्रहरन्ति वाणाः प्राणाः
पुनस्ससि वर्धनं खलु प्रयान्ति ॥ ३ ॥ कालो मधुः
कुपित एव च पुष्पधन्या धीरा वदन्ति रतिगन्दहराः
समीराः । केलीयनायमपि चञ्चुलकृत्रमञ्जुदूरे यतिः
कथय किं करणीयमय ॥ ४ ॥ किं स्वप्नः किमु जागरः
किमथवा रात्रिः किमासीद्दिनं माहावस्थितया मया
न किमपि ज्ञानं किमेतन्सखि । यन्नामश्रयणादनन्तर-
मिदं वृत्तं तमेव प्रियञ्जना तुल्यभरणयाम्बलकलव्या-
पारमा गच्छति ॥ ५ ॥ मते प्रेतावन्धे प्रणयवद्गुमानं
यिगलिते निवृत्ते सङ्काचे प्रणयिनि जने गच्छति पुरः ।
सदुप्रेक्षयाम्बेय प्रियसखि गतांस्तीक्ष्णं दिवनाश्र जने
को हेतुदंजलि शनधा यत्र हृदयम् ॥ ६ ॥ तुष्यन्तु मे
क्षिद्रमयाऽप्य शत्रयः करोतु मे शान्तिभरं गृहेध्वरः ।
मणिस्तु यत्नोऽहमध्यभूयतां ममान्तु सौन्दर्यनिकेतनं
प्रियः ॥ ७ ॥ नि कंहः पतिकृष्णता करुणया ध्वश्रु-

भीतर ही भीतर जला रहा है वह पहेले दूर नहीं होगा, वह
तो नये प्रियतमसे समागमसे दूर होगा ॥ ५६ ॥ प्रियतमसे
सम्भोग करते समय उनसे अन्तर होनेके डरसे मैं गलेमें डार
भी नहीं पहना करती थी पर इस समय तो हम दोनोंके
बीचमें कितने ही पहार, नदियों तथा वृक्षोंका अन्तर हो
गया ॥ ५७ ॥

दूतीके गुण : जो प्रेमी और प्रेमिका मधुरता, उल्लास
और परस्पर प्रेममें एक-से होनेपर भी आपसमें विद्युद् जाते
हैं उन्हें अपनी मीठी-मीठी बातें, चटक मटक, नञ्जता तथा
चतुरतासे जो मिला देता है, वही सच्ची दूती है ॥ १ ॥

स्वर्य दूतीका काम करनेवाली : हे रसाले राही !
तुम सन्तस (व्यासे, कामके तापसे तपे हुए) दिखाई दे रहे
हो अतः अपना ओठ क्यों कड़कड़ा रहे हो ? यहाँ अत्यन्त
स्वादिरस (जल) का भयङ्कार (तात्काव, मुझे) पाकर
भी उसमें क्यों नहीं डुबकी लगा लेते (मेरा आनन्द क्यों
नहीं ले लेते) ! ॥ १ ॥

दूतीसे अपनी दशा कहना : हे सखी ! इस वनके
पाससे जब मैं जा रही थी उस समय संयोगसे जलभरे मेघके
समान साँवले रङ्गका एक बैरा मुझे दिखाई पड़ा, उसने
अपनी चितवनसे क्या क्या किया, यह तो मैं नहीं जानती
किन्तु उसी समयसे मेरा मन न जाने कैसा हो गया है कि घरके
किसी काममें मेरा मन ही नहीं लग रहा है ॥ १ ॥ उस प्रियतमके

न रहनेपर आज देखना है कि दूसरेको न देखनेकी प्रतिज्ञा
करनेवाली साँव, दूसरेमें न लगनेवाला मन तथा दूसरेको न
पूनेवाले ये हाथ कैसे रहते हैं ॥ २ ॥ हे सखी ! प्रियतमका
व्यवहार यमराजके व्यवहारके समान कठोर है, उनकी माता
बड़े बड़े स्वभावकी हैं, दुष्टोंकी बातें बच्चेके समान लगती हैं और
शरीरके प्रायेक अङ्गपर कामदेव बाण सुभाए डाल रहा है, फिर
भी प्राण बाहर नहीं निकल पा रहे हैं ॥ ३ ॥ हे सखी ! बसन्तका
समय है, कामदेव माना कोपित हो रहा है, सुरनकी धराशय
दूर करनेवाला वायु मन्द-मन्द बह रहा है, यह कीड़ाका
उपवन भी बेतकी आदियोंसे सुन्दर दिखाई दे रहा है किन्तु
पनिदेव बहुत दूर हैं । कहां, ऐसी दशामें क्या करना चाहिए ?
॥ ४ ॥ हे सखी ! मैं ऐसी माँहमें पड़ी कि यही नहीं समझ
पाई कि यह स्वप्न है या जागरण, रात है अथवा दिन, क्योंकि
त्रिसका नाम सुननेके पश्चात् मेरी यह दशा हो गई उस न
प्राप्त होनेवाले प्रियतमको भी मेरा मन सब काम छोड़कर
चाहने लगा है ॥ ५ ॥ हे सखी ! प्रेमके बन्धन टूट
जानेपर, प्रेममें हो रुटना समाप्त हो जानेपर तथा प्रेम-लीला
समाप्त हो जानेपर अब प्रियतम सामनेसे चले गए तब उन
बीती बातोंको सोच-सोचकर भी मेरी समझमें नहीं आ रहा
है कि हृदय टुक-टुक क्यों नहीं हो जाता ॥ ६ ॥ अबसर
पाकर भले ही मेरे शत्रु प्रसन्न हों पर मेरे मनमें यही
अभिलाषा रहती है कि वही सुन्दरताका भयङ्कार प्रियतम

जस्यं वृथा वाग्धाणैर्हृदयं भिनसि कलहोत्तालाः पुन-
र्यातरः । नित्यं निन्दति नैव नन्दति कदाप्येषा नना-
न्दापि तन्मातः कं शरणं व्रजामि तरुणी दीनाद्वमेका-
किनी ॥ ८ ॥ स्वामी कुप्यतु कुप्यतां परिजना निन्दन्तु
मामन्यवर्तिक तावत्प्रथतामयन्तु जगति माढो ममोप-
द्रवः । आशारयं पुनरेतदेव यदिदञ्चक्षुश्चिरं वर्धतां
येनेदं परिचीयते सुरारिपोः सौन्दर्यसारं वधुः ॥ ९ ॥
हन्त कान्तमपि तं दिदक्षते मानसं मम न साधु
यत्पते । हन्दुरिन्दुमुखि मन्दमारुतश्चन्दनञ्च वितनोति
वेदनाम् ॥ १० ॥

नायिका प्रति सखीवचनम्—अधिकरतलतहपं कल्पि-
तस्वापलीलापरिमिलननिमीलपाण्डिमा गण्डपाली ।
सुतनु कथय कस्य व्यञ्जयस्यञ्जसैव स्मरनरपतिलीला-
यापराज्याभिषेकम् ॥ १ ॥ अनुदिनमधिकं ते कम्पते
काययल्ली शिष शिष नयनाम्तकाभुधारा जहाति ।

कथय कथय कोऽयं यत्कृते कोमलाङ्गि त्यजति न परि-
खण्डं पाण्डिमानं कपोलः ॥ २ ॥ अभ्यस्तेऽपि नितम्ब-
भारफलके खेवालसेयं गतिः किञ्चित्संवलितार्धपदम-
धिरलालोका दृशोऽन्तर्गताः । तन्मन्ये निभृतं त्वयाऽद्य
हृदये कश्चिद्धृतं वल्लभो निश्वासाः कथमन्यथा द्विगुण-
तामेते तवैव गताः ॥ ३ ॥ अयं विपाको वद कस्य
यूनः कल्याणि कल्याणपरम्पराणाम् । यदक्षिकाण्ण-
वदच्छाधाराद्वारावतारो गुणमन्तरेण ॥ ४ ॥ अलसव-
लितः प्रमादार्द्रमुहुमुकुलीकृतः क्षणमभिमुखैर्लज्जालो-
सैर्निमेषपराङ्मुखैः । हृदयनिहतं भावाकृतं धमङ्गिरि-
वेक्षणैः कथय सुकृती कोऽयं मुग्धे स्वयद्य विलोक्यते
॥ ५ ॥ आसन्नामखलम्य केसरलतामेकेन पुष्पोज्ज्वलां
सख्यं निःसहया नितम्बफलके कृत्वा कराम्भासहम् ।
आमीलनयनान्तधान्तसलिलं रसाप्यस्य निम्घस्य वा
कस्येदं दृढसाहदे प्रतिदिनन्दनं त्वया स्मर्यते ॥ ६ ॥

बरका स्वामी होकर मुझे शान्ति दे और वही मेरे हृदयके
आभूषणका मणि बना रहे ॥ ८ ॥ हे माँ ! पति मुझे चाहते हो
नहीं, सासमें दयाका नाम नहीं, वह सदा व्यर्थ ही बाणके
समान सुभती हुई बातोंसे हृदय वेधा करती हैं, देवराजी-
जैदानी सदा कगड़ती ही रहती हैं, मन्द सदा मेरी निन्दा ही
करती रहती है और कभी सीधे मुँह बात नहीं करती । ऐसी
दशमें मैं असहाय दीन भवेली बताओ, किसकी शरण लूँ ?
॥ ८ ॥ कोई गोपिका कह रही है—‘भले ही स्वामी मुझपर
खड़े रहें, कुटुम्बी लोग क्रोध करते रहें, मेरी पुराई फैलाते रहें,
इससे भी बड़े-बड़े कोई उपद्रव आते हों तब आते रहें, किन्तु
मेरी तो अभिलाषा यही है कि मेरी ये झल्लें और भी बड़ी-बड़ी
हो जायें जिससे श्रीकृष्णजीकी निःसीम सुन्दरताका मुझे दर्शन
तो होता रहे’ ॥ ९ ॥ हे चन्द्रमुखी सखी ! मेरा मन उस
प्रियतमको देखना तो चाहता है पर कोई सच्चा उपाय नहीं
कर रहा तथा चन्द्रमा, मन्द पवन और चन्दन वे सभी मुझे
पीड़ा पहुँचा रहे हैं ॥ १० ॥

नवेलीसे सखीकी बातचीत : कोई नवेली हथेलीपर
अपना गाल रखकर कुछ सोच रही है, ऐसे समय उसकी सखी
उससे कहती है कि ‘हे सुन्दरी ! हथेलीरूपी बिड़ौनेपर सोनेवाले
तुम्हारे जिस गालका उजलापन दक गया है, वह सहसा
किस छैलेके कामक्रीडा-रूपी राज्यमें होनेवाले राज्याभिषेककी
सूचना दे रहा है ?’ ॥ १ ॥ हे कोमल अङ्गवाली ! तुम्हारा

शरीर प्रतिदिन और अधिक कौंपता आ रहा है और जॉन्सोंका
तार बन्द नहीं होता ! कहो तो, वह कीन है जिसके खिंचे
तुम्हारे गाल इतने अधिक उजले पड़ते चले जा रहे हैं ॥ २ ॥
बड़े-बड़े नितम्ब होनेपर भी तुम्हें चकनेका अभ्यास तो था ही
किन्तु आज तुम धकी हुई-सी धीरे-धीरे चक रही हो, तुम्हारी
पल्लकें कँप रही हैं तथा झल्लें भी भीतर ही भीतर चमक रही हैं
अतः जान पड़ता है कि तुमने किसी प्रियतमको चुपकेसे हृदयमें
बसा लिया है, नहीं तो तुम्हारी सौंसें क्यों इस प्रकार हुगुने
वेगसे फूटने लगतीं ! ॥ ३ ॥ हे मङ्गलमयी ! यह किस
नवपुत्रके डर-से पुथ्योंका फल है कि तुम्हारे नेत्रोंके कोनेसे
निकलती हुई जॉन्सोंकी धार बिना डारेका द्वार बन रही
है ॥ ४ ॥ हे सुन्दरी ! तुम अपनी उस चितवनसे किस
भाग्यवान्को देख रही हो जो प्रेमसे रसीली एवं बार-बार
संकुचित हो-होकर मन्द-मन्द चक रही है, जो कभी सामने भी
पड़ जाती है, कभी साजके कारण चकल होती है, जिसमें पल्ल-
क नहीं गिर रही हैं और जिन्हें देखनेसे हृदयका भाव भी स्पष्ट
जान पड़ रहा है ॥ ५ ॥ हे प्रगाढ़ प्रेम करनेवाली ! दाहिने हाथसे
फूलोंसे लदी मौजतिरीकी डाळी पकड़े हुए, बाँवों हाथ
कूल्हेपर जमाए हुए तथा कुछ मुँदी हुई जॉन्सोंसे बाँधे बहाते
हुए तुम प्रतिदिन किस प्रशंसा अथवा निन्दाके योग्य व्यक्ति
लिख्न होकर स्मरण किया करती हो ? ॥ ६ ॥ हे सखी ! यह
तो बताओ कि तुम योगिनी हो वा जियोगिनी, क्योंकि भोजनमें

आहारे विरतिः समग्रविषयग्रामे निवृत्तिः परा ना-
स्तात्रे नयनं यदेतदपरं यच्चैकतानं मनः । मोनञ्चेद-
मिदञ्च शून्यमस्मिन् यद्विभवमाभाति ते तद्वयाः सखि
योगिनी किमस्ति भोः किं वा वियोगिन्यसि ॥ ७ ॥
उज्ज्वलाननमुल्लसत्कुचतटं लोलझमङ्गलतं स्वेदाम्भः
रूपिताङ्गयष्टि विगलद्गीडं सरोमाञ्जया । धम्यः
कोऽपि युवा स यस्य वदने व्यापारिता साम्प्रतम्मुग्धे
गुग्धमहाविधफेनपटलप्रख्याः कटाक्षच्छटाः ॥ ८ ॥
उत्पादयत्यलमिदं मनसो विपादं सीदत्सरोरुहनिभं
वदनं त्वदीयम् । ज्ञात्वा निदानमहमत्र समानदुःखा
प्राणैरपि प्रियतमे भवितुं समीहे ॥ ९ ॥ को धूम्यरसखि
सुस्थितेन मनसा को वेधसा निर्मितः कः प्रेयान्मद-
नस्य कस्य फलितः प्राचीनपुरणद्रुमः । एतद्यस्य कृते
दिशानिशमविधान्तस्त्रलद्वारिभिर्मौनाज्ञोचनगद्गुग्गैः
रूपयसे वक्षोजलिङ्गयम् ॥ १० ॥ कामं गात्रमतीथ

तुम्हारी रुचि नहीं है, संसारके सभी विषयोंसे तुम्हारा मन हट
रहा है, नाककी भोकपर तुम झौंसे गड़ाए रहती हो, तुम्हारा मन
एका ओर लगा हुआ है, तुम मौन भी दिखाई पड़ रही हो और
सारा संसार तुम्हें सूना दिखाई दे रहा है । ये सब बातें तो
योगिनी और वियोगिनी दोनोंमें ही पाई जाती हैं ॥ ७ ॥ हे
सुन्दरी ! तुम्हें बारबार जैभाई आ रही है, स्तन फटक रहे हैं, भीहें
चञ्चल हो रही हैं, शरीर पसीनेसे नहाया जा रहा है, लगजा
भाग गई है और शरीर रोमाञ्जित हो रहा है । ऐसी दशामें
बीरसागरके फेनके समान तुम्हारी चित्तवन जिसपर पड़ रही
है वह अवश्य ही कोई धम्य युवक होगा ॥ ८ ॥ हे प्राण-
प्यारी सखी ! तुम्हारा मुरकाए कमलके समान मुँह देखकर
मेरे मनमें आयत्त स्नेह उत्पन्न हो रहा है । बताओ, तुम्हारे
उदास होनेका क्या कारण है ? क्योंकि कारण जानकर
मैं अपने प्राणनक देकर भी तुम्हारा दुःख बँटाना चाहती हूँ
॥ ९ ॥ हे सखी ! वह कौन भाग्यवान् है, जिसने मझामें अपने
हाथों रखा है, वह कौन कामदेवका प्यारा है तथा किसके
पूर्वजन्मके पुण्यरूपी वृक्षमें फल जग रहे हैं जिसके लिये तुम
अपना चित्त स्थिर करके दिन-रात, मौन होकर अपने नेत्ररूपी
गड्ढोंसे लगातार पानीकी धार बहाती हुई छातीपर स्थित
होनो जिहों (स्तनों) का अभिषेक कर रही हो ? ॥ १० ॥ हे
सखी ! तुम्हारी देह दुर्बल है, मुख उजला है और गाल पिचक
गए हैं । अतः यह बताओ कि वह कौन युवक तुम्हारे मनमें

पाएहुवदनं क्लिष्टा कपोलस्थली कोऽसौ चेत्तसि वर्तते
तव युवा लोकेकमान्याकृतिः । न्यक्त्वा किञ्चिदपग्रपां
कथय मे सिन्ध्यासि किं त्वं वृथा घोरः पञ्चशरो यदि
त्वमवला वक्ष्यामि नातः परम् ॥ ११ ॥ गोपायन्ती
विरहजनितं दुःखमग्रं गुरुणां किं त्वं मुग्धे नयनगलितं
घाष्पपूरं हणन्ति । नक्तं नक्तं नयनसलिलैरेव आर्द्रो-
कृतस्ते शय्योपान्तः कथयति दशामानये शाप्यमाणः
॥ १२ ॥ चिन्ताभिः स्तिमितं मनः करतले लीना
कपोलस्थली प्रत्यूषतण्डुलेशपाण्डुवदनं श्वासैकलि-
प्तोऽधरः । अम्भःशोकरपञ्चनीकिसलयैर्नापैति तापः
शमं कोऽस्याः माधिनदुर्लभाऽस्ति सहते दानां दशामीह-
शीम् ॥ १३ ॥ जानीमस्तव गौरि चेतसि चिरं शम्भुः
समुज्जम्भते तापा नेत्रनूनपादय तना तोयः समु-
म्भोलनि । अरणोरस्वमिपेण गच्छति यद्दिर्गज्ञातरका-
यलिः पारिडम्बः कपटेन चन्द्रकालिकाकान्तिः समु-

बसा है जिसकी सुन्दरताका सब लोग आदर करते हैं ? जान
छोड़कर मुझसे कहो, मर्यादें क्यों कट सह रही हो ! हाँ,
इतना अवश्य कहूँगी कि यदि यह वलवान् कामदेवका दिया
हुआ कट है तब तो तुम प्रबला हो, इससे अधिक कुछ न
कहूँगी अर्थात् तुम्हें बलवती बननेके लिये किसीकी सहायता
लेनी ही पड़ेगी ॥ ११ ॥ हे भोली-भाली ! अपने वक्षोंके
सामने विरहकी वेदना क्षिपानेके लिये झौंसे गिरती हुई
झाँसुकी धारा क्यों रोक रही हो क्योंकि प्रत्येक रात्रिमें तुम्हारे
नेत्रोंसे गिरे हुए झौंसुखोंसे भीगा हुआ तथा फिर धूपमें
सुखाया हुआ तिलौना तां तुम्हारी दशा बता ही देता है ॥ १२ ॥
इस नवेखाका मन चिन्तासे भरा हुआ है, यह हथेलीपर
गाल रखे हुए है, इसका मुख प्रातःकालके चन्द्रमाके
समान कान्तिहीन तथा उजला है, नीचेका घाँठ साँसका
गर्मासे कुम्हला रहा है, शीतल जलकी बूँदों तथा कमलके
नये पत्तासे भी इसका सन्ताप शांत नहीं हो रहा है अतः
प्रार्थना करनेपर भी न प्राप्त होनेवाला वह कौन व्यक्ति है जो
इसकी ऐसी होन दशाको भी सहता जा रहा है ? ॥ १३ ॥ हे
गोरे-गोरे भङ्गोवाली ! ऐसा जान पड़ता है कि बहुत दिनोंसे
शिवजी तुम्हारे मनमें बस रहे हैं क्योंकि उनके नेत्रकी भाँति
समान तुम्हारे शरीरमें सन्ताप उठ रहा है, झौंसुके रूपमें
झौंसेके बाहर गङ्गाकी लहरें छलक रही हैं तथा देहके
उजलेपनके रूपमें चन्द्रकलाकी कान्ति दिखाई पड़ रही है

स्मीलति ॥ १४ ॥ न प्रीतिः पवने रतिर्न रसने प्रेमा न
न पङ्केरुहे न स्नेहः कुसुमे सुखं न शयने यज्ञो न वा
जीवने । चन्द्रे नैव चमत्कृतिर्मृगयते मोदो न मानवते
तेने तेन किर्यास्तपस्तरुणिमा यस्मै तत्रेयं दशा ॥ १५ ॥
नलिनीदलतालोजनं सखि तन्वया विनिवारितं मया ।
तनुयस्त्रिभिभूतिशङ्कया विनिवार्यः श्वसितानिलः
कथम् ॥ १६ ॥ पद्माग्रप्रथिताश्रुविन्दुनिकरेर्मुक्ताफल-
स्पर्धाभिः कुसुम्या हरहालहारि हृदये हारावलोभूष-
णम् । बाले बालमृणालनालबलबालङ्कारकान्ते करं
विन्यस्याननमायतासि सुकृतो कोऽयं त्वया स्मर्यते
॥ १७ ॥ पारङ्मुक्तमं वदनं हृदयं सरसं तवालसम्ब-
धपुः । आघेदयति मितान्तं श्रेयस्यरोगं सखि हृदन्तः
॥ १८ ॥ बाले नैले पयोदास्सुरपतिकरिणो ना वका-
करादशङ्काः सांशमिन्योऽपि नैताः कनकमयमिदम्भहृदं

॥ १४ ॥ हे मीनमत धारण करनेवाली सखी ! पवनसे तुम्हारा
प्रेम नहीं है, जीभके स्वादमें कोई चतुराग नहीं, कमलमें
कोई रुचि नहीं है, फूलोंमें कोई स्नेह नहीं है, सोनेमें कोई
सुख नहीं है, जीनेका कोई उपाय नहीं, चन्द्रमामें कोई चाप
नहीं और कस्तूरसे तुम्हें कोई प्रसन्नता नहीं मिलती । अतः यह
मतझाओ कि तुम्हारे प्रियतमने ऐसी कीद-सा बड़ी तपस्या की है
जिसके फलस्वरूप तुम्हारी यह दशा हो रही है ? ॥ १५ ॥ हे सखी !
इस दुपत्ती नवेलीकी देहपर कमलके पत्तोंका पट्टा खलाना तो
बन्ध कर दिया पर यह शङ्का है कि इसकी गरम सोंसके
पवनसे ही इसकी देह जल न जाय, अतः यह कैसे रोका जाय ?
रह तो समझके बाहरकी बात है ॥ १६ ॥ हे विशाख
मेघावाली ! यरीनियोंमें गुंथा हुई तथा मोतांके समान बड़ी-
बड़ी श्रौतुश्रौंकी घूँदोने अपनी छानापर शिवजीकी हँसीके
समान उजले हारका भूषण बनाती हुई तथा कोमल मृणालके
नालके कलमसे सुन्दर दिखाई देते हुए अपने दाहपर मुँह
रखकर किस भाग्यवान्का स्मरण कर रहा हो ? ॥ १७ ॥ हे
सखी ! तुम्हारा उजला तथा तुबला मुख, प्रेमसे भरा हुआ
हृदय तथा गाली देह ये सब तुम्हारे हृदयमें रहनेवाले ऐसे
रोगकी सूचना दे रहे हैं जिसकी चिकित्सा दूसरे हो जन्ममें हो
सकती है ॥ १८ ॥ अरी नवेली ! ये यादल नहीं हैं, वरन् इन्द्रके
हाथी हैं, ये यगुले नहीं हैं, वरन् उन हाथियोंके गलेमें शङ्खोंकी
मालाएँ लटक रही हैं, ये बिजलियाँ नहीं चमक रहा हैं वरन्
यह उन हाथियोंके माथोंपरकी सोनेकी सजावट है तथा यह

कुम्भपीठे । नैतत्तोयं विकीर्णं पतति मद्जलं श्वासवा-
तावधूतं तन्कि मुग्धे वृथैव मलिनवसि मुखं प्रावृद्धि-
त्यश्रुपातैः ॥ १६ ॥ बाले प्रियेण विरहात्तद्य कश्चिताया
हस्तच्युतं वलयमेतदलघ्वदेशम् । हस्ते पुनः स्थिति-
मगादिदमङ्गुलीयं स्थानच्युतिर्महत एव भवस्यनर्थः
॥ २० ॥ भगिनि मदनः श्रोमानेव त्वया यदि लिख्यते
किमपि सुमुखि वयग्रासीति व्रजामि निजालयम् ।
यद्यपि मकरोऽधस्तात्पोषणं करे च शरासनं तदपि
परितो दृष्टिदंश जनस्सखि नामरः ॥ २१ ॥ मातः कं
हृदये निधाय सुचिरं रोमाञ्चिताङ्गी मुहुर्जम्भां मन्धर-
तारकां सुललितापाङ्गां दधाना दशम् । सुतेशालिखि-
तेव शून्यहृदया लेखाशेषोभयस्वात्मद्रोहिणि किं
क्षिप्य कथय मे गूढां निहन्ति स्मरः ॥ २२ ॥ मुक्ताहारं
न च कुचगिरेः कङ्कणं नैव हस्ताङ्कणस्यर्थाभरणमपि

पानीकी बौझार नहीं है वरन् उन हाथियोंकी सोंसोंके पवनसे
उड़-उड़कर उन्हींके मद्का जल बह रहा है अतः मूठे ही इसे
बरसात समझकर क्यों शौंख बहा-बहाकर मुख मक्षिम किए
डाल रही हो ॥ १६ ॥ हे नवेली ! तुम प्रियतमके बिछोहमें
हजनी दुबली हो गई हो कि तुम्हारे हाथसे गिरा हुआ यह
कङ्कण अब फिर अपने स्थानपर नहीं पहुँच पा रहा है और उसके
स्थानपर यह जौंगूडी कङ्कण बनकर पहुँच गई है । क्योंकि अपने
स्थानसे हटना बड़ा अनर्थ ही समझो ॥ २० ॥ हे सुन्दर
मुखवाली बहन ! तुम सुन्दर कामदेवका चित्र बनानेमें लगी
हो इसलिये मैं अपने घर जा रही हूँ पर हे सखी ! तुमने यद्यपि
इसके नीचे मगर बनाया तथा हाथमें फुलका प्रनुष बनाया है
फिर भी अन्ध सभी बातोंपर ध्यान रखना क्योंकि संसारमें कोई
भी ऐसा कष्टन पीकर नहीं चापा जो इन सब वस्तुओंको देकर
भी जीता रह जाय ॥ २१ ॥ हे सखी ! तुमने कितने अपने मनमें
बहुत समयसे बसा रक्खा है जिससे तुम्हारे अङ्ग रोमाञ्चित
हो रहे हैं, तुम बार-बार जँभाई ले रही हो, तुम्हारे नेत्रोंकी
पुतलियाँ धीरे-धीरे हिल रही हैं और मेजके कोने सुन्दर होते
जा रहे हैं । तुम कोई हुई-सी तथा बिजलिली-सी हो रही हो,
दुबली होती जा रही हो और तुम्हारा मन कहीं नहीं लग रहा
है । अतः हे अपनेसे ही अपना देह करनेवाली ! सज्जासे क्या
जाभ है ? मुझसे सुझकर क्यों नहीं बता देती ? क्या कामदेव
किपे-छिपे घात कर रहा है ? ॥ २२ ॥ हे सखी ! स्वप्नमें
औससिरीकी माका पढ़ने हुए किसी चोरने न तो स्तनपर पड़ा

वा नीतवान्नैव तावत् । अंहो स्वप्ने यकुलकुसुमं भूयान्
सन्दधानः कोऽयञ्चोरो हृदयमहरत्तन्नि तन्न प्रतीमः
॥ २३ ॥ मुखं पारुडच्छाययनयुगलं वाष्पतरलं तनुः
क्षामक्षामा गतमधिशदं धैर्यविगमः । द्वियं मुक्त्वा मूढे
कथयसि न मे सारवचनान्यवस्था येनेयं तव सखि
मुहूर्तेन पतिता ॥ २४ ॥ मुग्धे दोर्लभिकां निधाय न
कृतो द्वारोपरोधस्त्वया लम्बा नो रुदतो यतासि रभ-
सास्तस्योत्तरीयांशुके । कालेऽस्मिन्कुसुमाकरे द्विगु-
णितमेतोत्सवे रागिणां गच्छन्मग्नत एव मूढहृदयं
मुक्तस्त्वया यल्लभः ॥ २५ ॥ मूकीभूताः पिकयुवतयः
किं वसन्तेऽपि तस्मिन्किञ्चातोऽसां मलयमरुतां
दुष्प्रवेशः प्रवेशः । किं वा तस्मिन्नमृतमहसां न
प्लवन्ते मयूखाः यत्रावासं कृततनु तव स्वान्तचोरः
करोति ॥ २६ ॥ यत्कालोदलपाकपाण्डु वदनं यदुर्विनं
मेजयोर्वरमेकूलितकेलिपङ्कजवनाः भ्रासाः प्रसर्पन्ति

च । गौरी कुड्यनु धर्तते यदि न ते नन्कोऽपि चित्ते
शुभा धिग्धिक्त्वां खलु पांसुखेलनसलीलोकेऽपि
यन्निहवः ॥ २७ ॥ यत्सम्भाषणालालमेव कुरुपे यत्केन्दु-
मर्धानतं धन्ते बाहुलतागलान्कुचनटे निष्कान्ति-
भीत्येव यत् । किं वा मन्त्रयते जनोऽयमिति यन्स्वयं
शङ्काकुला तज्ज्ञानं हृदि कोऽपि निष्ठति युवा प्रोदध
गृह्यते ॥ २८ ॥ लाघव्यं सहजं क तन्तनु गतं
पारुड्यमेतन्कुनां हन्तेपा तनुवल्लरी प्रतिदिनं
भूयः कृशन्व गताः । उच्छ्वेने नयने जलं प्रवहतां नम्म-
स्मितं नाधुना तप्तं निःश्वसितं चिरात्तरशनादप्याल-
किम्भयसी ॥ २९ ॥ लाघव्यद्रविणव्ययां न गणितः
कलेशो महानजिनः स्वच्छन्दश्चरतां जनस्य हृदयं
खिस्ताज्यरां निर्मितः । एषापि स्वगुणानुत्तरमणाभा-
वाद्गुराही हता कोऽध्वेतासि वेधसा धिनिहितस्तम्भी-
मियां तन्यता ॥ ३० ॥ वासस्तदेव यधुपां बलयं तदेव

हुआ मोतीका हार पुराया, न हाथमें पड़ने हुए कज्जन पुराए, न
सोनेके कमकुल ही पुराए वरन् वह केवल हृदय ही पुराकर ले
गया । यह चोर कौन था मैं नहीं जान पा रही हूँ ॥ २३ ॥
हे सखी ! तुम्हारा मुख उजला हो रहा है, आँखोंमें आँसू
भर रहे हैं, शरीर दुबला होता जा रहा है, तुम चलनेमें कदम बढ़ा
रही हो, धारम तो तुममें रह ही नहीं गया । पगली ! तुम आज चौंकर सब-सब बताती क्यों नहीं कि
अभी-अभी तुम्हारी ऐसी दशा क्यों हो गई ? ॥ २४ ॥ हे
सुन्दरी ! जिस समय प्रियतम घरसे निकल रहे थे उस समय
तुमने अपनी आँखें सँझाकर द्वार भी नहीं रोक लिया तथा
शीघ्रतापूर्वक उसकी चादर पकड़कर रोती हुई उसके पीछे
भी नहीं खग गई, वरन् प्रेमियोंके प्रेमको तुगुमा बढ़ातेवाले
इस वसन्तके समयमें तुमने अपने सामने ही प्रियतमको चले
जाने दिया । हाय-हाय ! तुम कितनी मूर्ख हो ॥ २५ ॥ हे दुबली-
पतली देहवाली ! जहाँ तुम्हारे हृदयका चोर रहता है वहाँ
क्या वसन्तमें भी कोकिल भौन हो गए होंगे ? क्या मलय
पर्वतके पवन वहाँ नहीं गुस पाते होंगे ? अथवा क्या अमृतसे
भरे प्रकाशमाले चन्द्रमाकी किरणें वहाँ नहीं उज्ज्वली होंगी ?
॥ २६ ॥ हे सखी ! एकें हुए ताड़के फलके रुमान तुम्हारा
मुख पीका हो रहा है, आँखोंसे आँसूओंकी वर्षा हो रही है,
कमलके वनको हिजानेवाली साँसें चल रही हैं अतः जान
पड़ता है कि तुम्हारे मनमें कोई खैजा बस गया है । यदि ऐसा

न हो तो भगवतो मेरा नाश कर दें, किन्तु धिक्कार है तुम्हें,
कि भूल खेलाके समयकी अपनी सहजियोंसे भी अपने मनकी
बातें छिपाती हो ! ॥ २७ ॥ कुछ बोलनेके लिये जहाँ तुम
आकाशित होकर अपनी मुखकमल छाया नवा रही हो, हृदयसे
किसाके निकल आनेके डरसे अपनी भुजारूपी सिकड़ियोंकी
रतनोंपर रखते हुई हो और सब बातोंमें यही शंका करती जातों
हो कि 'जोग क्या काना-पूसा कर रहे हैं ?' इससे जान पड़ता
है तुम्हारे हृदयमें कोई डीठ युवक अवरध छिपा बैठा है ॥ २८ ॥ हे
सखी ! तुम्हारी वह सहज सुन्दरता कहीं चली गई ? तुम्हारी देहमें
यह उजलापन कहींसे धा गया ? हाय ! कलाके समान यह
तुम्हारी देह दिनों-दिन दुबलती होती जा रही है, सूनी आँखोंसे
गाम-गाम पानी बहता रहता है, वह पिलायाङ्क-भरी मुरकान
सारी जाती रही, रात-दिन लम्बी-लम्बी साँसें खेती रहती हो और
भोजनसे भी तुम्हें अत्यन्त विराम हो गया है । ॥ २९ ॥ प्रह्वाने
इस नवेलीकी बनाते समय सौन्दर्यका भयद्वार खुल जानेकी भी कोई
चिन्ता नहीं की और बढ़ाकट भी उठाया, निश्चिन्त रहनेवालोंके
मनमें चिन्तारूपी अर भर दिया और यह बेचारी भी अपने
गुणोंके समान पति न पाकर भानो लुट गई, तब यह नहीं
समझमें आता कि इस नवेलीका बनाते समय प्रह्वाने अपने
मनमें प्रयोजन कौनसा रक्ता था ॥ ३० ॥ हे सखी ! वे जो
पहलेके वक्त हैं, हाथोंका यह कज्जन भी पुराना ही है तथा
नितम्बपर यह रत्नोंकी कश्चनी भी पुरानी ही है पर भीतोंकी

इस्तस्य सैव जघनस्य च रत्नकाञ्ची । वाचालभृङ्गसु-
भगे सुरभौ समस्तमद्याधिकं भवति ते सखि किञ्चिदा-
नम् ॥३१॥ वियोगवह्निकुण्डेऽस्मिन् हृदये ते वियोगिनि ।
प्रियसङ्गः सुखायैव मुक्ताहारस्तपस्यति ॥३२॥ विलुलि-
तमतिपूरैर्बाष्पमानन्दशोकप्रभवमवसृजन्ती तृणयो-
त्तानदोर्घा । क्षपयति हृदयेशं स्नेहनिप्यन्दिनी ते धव-
लबहलमुग्धा दुग्धकुल्येव दृष्टिः ॥ ३३ ॥ विभ्रान्तो
दिवसस्तटीमयमटत्यस्ताचलस्यांशुमान्सम्प्रत्यङ्कुरिता-
न्धकारपटलैर्लम्ब्यालकाधारभूत् । पल्लवविशेषे वेश्मनः
शशिमुखि द्वारस्थलोतो रणस्तम्भालम्बिनयाहुधल्लि-
रुदती किं स्वं पथः पश्यसि ॥३४॥ शोखां कोणा सखि
मयनयोरुद्यतो गोपनाय शङ्खमेव स्फुटयतितरां स्नेह-
शुभ्रचारः । अन्तः प्रेमाङ्कुरपरिकरारम्भकं कन्दमस्याः
किञ्चित्किञ्चित्कथयति पुनः कार्पि दिव्या मुखश्रीः
॥३५॥ आसास्ते सखि सूचयन्त्यविरताः सन्तापयाधां
परं विधास्तत्र न कारणं वयमिति स्वान्तेऽतिचिन्ता-

भरः । किं वा धर्मनिपीडिता तव तनूवल्ली निकामं
प्रिये पुष्पादप्यतिकोमला मलिनतां याता मृणाली
यथा ॥ ३६ ॥ सखि पतिविरहदुःखताशः किमिति प्रसभं
न याति नयनोदः । शृणु कारणं निनम्बिनि
मुञ्चसि नयनोदक-न्तु सस्नेहम् ॥ ३७ ॥ सहचरि-
शयथाः शतं मदीया वद विरहल्लपितां निजा-
मवस्थाम् । सहचरि परिपृच्छ भानुकन्यानयदलिनीन-
लिनीनिकुञ्जशय्याः ॥ ३८ ॥ सहसा हृदये निधाय
चेतो नयनादिभिर्यमुद्रणां विधाय । अयि कण्टकिता-
ङ्गयष्टि सत्यं कथय ध्यायसि किं रहो निवण्णा ॥३९॥
सायं शामप्रथमसमये लग्नया कर्णभूले सख्या मन्द-
स्मितसुभगया सादरं सूच्यमानः । धन्यः कोऽयं
कमलनयने यत्कथायाः पुरस्तादङ्कुल्यश्रं निजमपि
मुहुः सूचिचिह्नं न वेत्ति ॥ ४० ॥ स्फुरति यदिदमुच्चै-
र्लोचनं मुहुर्वागं स्तनतटमपि धत्ते चाय रोमाञ्जमा-

गुन्जारेसे आयुक्त मनोहर जगनेवाले इस वसन्तमें ये सबके सब
अपने-आपसे वड़े क्यों होते जा रहे हैं अपनां डीले क्यों पड़ते
जा रहे हैं ? ॥३१॥ हे वियोगिनी ! विरह-रूपी अग्निके कुण्डरूपी
तुम्हारे हृदयपर तुम्हारे प्रियतमके समागमका सुख पानेके लिये
ही यह उपवास करने वाला मोतीका द्वार मानो उपस्था कर
रहा है ॥ ३२ ॥ वनमें रामसे मिली हुई वियोगिनी जानकीसे
उनकी सखी (वनदेवता) कह रही है कि 'हे सीते ! पतिके
मिलनेके आनन्द तथा विरहके शोक इन दोनोंके कारण
वेगसे तुम्हारे आँसू बह रहे हैं, प्रियतमका दर्शन पानेकी
इच्छासे वे नेत्र ऊपरकी उठ रहे हैं जिनमें प्रेम टपक रहा
है, तुम्हारी चितवन उजली, मनोहर तथा वेगसे बहनेवाली
बस दूधकी धाराके समान है जो प्रियतमको मानो नहला
रही है' ॥३३॥ हे चन्द्रमुखी ! दिन उल रह रहा है' सूर्य अस्ताचलकी
ओर जा रहे हैं, अन्धकार कैशोंके समान आकारमें फैल रहा
है, आशु भीतर चलें, द्वारकी चौखट हाथसे घामधर मार्गकी
ओर क्या ताक रही हो ॥३४॥ हे सखी ! मनमें बसे हुए प्रेमको
छिपानेके कारण इस नवेलीकी आँखोंके कोने जाल हो गए हैं,
फिर भी आनन्दके कारण देहसे निकलता हुआ पर्साना सारी पोख
खोजे दे रहा है और इसके मुँहकी निराली छुश हृदयमें अङ्कुरित
होते हुए प्रेमके जड़की सूचना दे ही रही है ॥३५॥ हे सखी !
निरन्तर खजनेवाली तुम्हारी जम्बी-जम्बी साँसें तुम्हारे भीतरके

सन्तापसे होंनेवाली बीड़ाकी सूचना रही हैं । देसा क्यों हो रहा
है, यह तो मैं नहीं जानती, किन्तु मनमें बड़ी चिन्ता हो रही
है, क्योंकि इधर मैं देख रही हूँ कि कूलसे भी अधिक कोमल
तुम्हारा शरीर कहीं धूपमें पड़े हुए मृणालके समान आपथिक
भस्मिल होता जा रहा है ॥३६॥ हे सखी ! बहते हुए आँसुओंकी
धारासे विरहकी आग इसलिये नहीं बुझ पा रही है क्योंकि
तुम्हारे आँसू सस्नेह (प्री-युक्त, प्रेम-युक्त) हैं ॥ ३७ ॥ कोई
सखी किसी नवेलीसे कहती है कि 'हे सखी ! तुम्हें लौ बार
मेरी शपथ है जो तुम विरहके दुःखसे भरी अपनी दशा मुझसे
कह न डालो ।' नवेली- 'हे सखी ! तुम यमुना नदीके कमलोंके
नये पत्तोंसे बने हुए बिजौमेसे ही मेरी दशा क्यों नहीं पूछ लेती'
॥३८॥ हे रोमाञ्जित अङ्ग-रूपी जतावासी सखी ! सच बताओ
तुम हृदयमें हो अपना चित्त बाँधकर तथा नेत्र आदि इन्द्रियोंको
अपने-अपने कामोंसे ढाकर यहाँ एकान्तमें बैठकर किसका
ध्यान कर रही हो ? ॥३९॥ हे कमलनयनी ! सम्भवा समय जब
तुम मात्रा गूँथ रही थीं, उस समय तुम्हारे कानके पास जगकर
मुस्कराती हुई सखीने जिसका सङ्केत किया था और जिसकी
चर्चा सुनते समय तुम्हें उँगाड़ीमें खुशी हुई हुईका भी ध्यान न
रहा वह कौन भाग्यवान् है ? ॥४०॥ हे सुन्दर भीहोंवाली ! यह
जो तुम्हारी बाईं आँख वेगसे फटक रही है, स्तन रोमाञ्जित
हो रहे हैं और आँखें भीतर ही भीतर काँप रही हैं, वे सब

सम् । कलयति च यदन्तःकम्पितामूककारणं ननु
वदति तदद्य प्रेयसा सङ्गमं ते ॥ ४१ ॥

नायकं प्रीतिं दूतीप्रेयसम्—अपूजितैवास्तु गिरीन्द्र-
कन्या किं पक्षपातेन मनोभवस्य । यद्यस्ति दूती सर-
सोकिदत्ता दासः पतिः पादतले वधूनाम् ॥ १ ॥ अयि
दूति सखी त्वमेव मे मदन्तो हन्ति शितैः शिलोमुखैः ।
द्वयितं तमुपानयाशु तत्पुत्रशको जीवितानिर्गमोऽन्यथा
॥ २ ॥ उल्लङ्घ्यापि सखीवचः समुचितामुल्लङ्घ्य
लज्जामलं भिरवा भीतिभरं निरस्य च भिजं सांभाष्य-
गर्वं मनाक् । आह्वां केवलमेव मम्मद्यशुरोरादाय नूनं
मया त्वं निःशेषविहासिधर्मगणनाचूडामणिः सम्भृतः
॥ ३ ॥ कामं वहन्तु मरुतां मलयवलस्य चन्द्राऽपि
पातयन्तु वा नितरां स्फुल्लिङ्गान् । दूरं प्रियो यिमलवश-
मणिः पतिमं तस्मात्प्रप्तं स्वरितमानय तं कथञ्चित् ॥ ४ ॥
कामः कुप्यति चन्द्रमा अपि यलान्मां वधुमभ्यु-

क्ता रहे है कि आज प्रियतमसे मुझारा समागम अवश्य
होगा ॥ ३ ॥

प्रियतमके पास दूती भेजना : मनोरथ सफल करनेके
लिये न तो पार्वतीकी पूजा करनेकी आवश्यकता है और न
कामदेवकी सहायताकी ही, क्योंकि यदि माँटी-माँटी बातें
बनानेवाली चतुर दूती हो तो सभी प्रियतम अपनी प्रेयसियोंके
पैरोंतले दासके समान लोटने लगें ॥ १ ॥ हे दूती ! तू ही मेरी
सखी है, कामदेव मुझे अपने सीकों बाँझोंसे केषे डाल रहा
है अतः शीघ्र ही प्रियतमको ले आ, नहीं तो वे निकलते
प्रायः किसी उपायसे भी रोकेंगे ॥ २ ॥ कोई नबेली अपने
प्रियतमके पास सन्देश भेज रही है, 'हे प्रियतम ! मैंने सखियोंकी
बातोंपर तनिक भी ध्यान नहीं दिया, कुलवधू होकर भी काम
नहीं की, किसीसे भी तनिक डरी नहीं तथा अपने सोहागपर
हस्ताना भी नहीं छोड़ा और केवल अपने गुरु कामदेवकी आज्ञा
सिरपर धरकर मैंने सभी रसिकोंकी समाजमें आपको सिरमौर
समझा (अब तो आप मुझपर दया कीजिए) ॥ ३ ॥ सखीसे कोई
बिरहियी कह रही है—'मलयवलसके पवन मुझे जी-भर जलाते
रहें और चन्द्रमा भी चिनगारियाँ बरसाता रहे किन्तु निर्मल
कुलका मणि मेश जो प्यारा पति मुझसे दूर है उसे इस
समय शीघ्र ही जैते हो वैसे यहाँ के आ' ॥ ४ ॥ हे
दूती ! कामदेव मुझसे रुठ है, चन्द्रमा भी वधुपूर्वक मुझे
जलानेके लिये उदय हो गया है और मेरे प्रायः हरनेके लिये

घटो वाता वाऽपि समागता यमदिशः प्राणान्निहन्तुं
तथा । रक्ताक्षस्त्वय्यन्ति तान्परभृताः स्वैः कुजने-
द्वृति तन्प्रेयांसं तमुपानयाऽऽश्विनरथा घ्राणं न मे
कुत्रचित् ॥ ५ ॥ जीवामीति वियोगिनी यदि लिखे-
त्रैव वृत्ताः कथा अद्य श्वोऽथ मरिच्यतीति मरणे
कालान्ययः किं कृतः । आगन्तव्यमिहानि सम्प्रति सखे
सम्भावना निष्फला भ्रातस्त्वम्प्रति याहि नास्ति
लिखितं तद्गृहि यत्ते क्षमम् ॥ ६ ॥ तस्य त्वया ककेश-
वादिनोऽपि प्रकाशनीयं मरुणत्वमेव । प्रेम्णोऽस्ति
भग्नस्य न हि प्ररोहः पुष्पस्य वृन्तादिव विद्युत्तस्य
॥ ७ ॥ दिशि दिशि परिहासगूढगर्भाः पिशुनगिरो
गुरुगजानञ्च तादृक् । सहचरि हृदये निवेदनीयं
भवदनुरोधवशादयं विपाकः ॥ ८ ॥ दुर्घारां कसुम-
शरव्यथां वदन्त्या तन्वङ्गया यदभिहितं पुरस्सखीनाम् ।
तद्रूपः शुक्रशिशुसारिकाभिरुक्तं धन्यानां श्रवणपथा-

वे दक्षिण दिशाके पवन भी झाल-झाल घोलें निकाले आ गए हैं
जिनमें कोकिल अपनी कुकले शीघ्रता करनेके लिये उकसा रहा
है, अतः तू शीघ्र ही प्रियतमको ले आ, नहीं तो मेरे प्राण अब
किसी उपायसे भी नहीं बच पावेंगे ॥ ५ ॥ हे मित्र ! यदि वह
वियोगिनी लिखती कि 'मैं जी रही हूँ' तब तो आप निश्चिन्त
हो जाते और सारी कथा ही समाप्त हो जाती, यदि आपको यह
समाचार भेजा जाता कि 'वह आज अथवा कलसे मर जायगी,'
तो आप कहेंगे कि यदि हतना असह्य कष्ट था तो मरनेमें
हतनी देरी क्यों हो रही है । यह भी लिखना व्यर्थ या कि
'आपको आ ही जाना चाहिए' क्योंकि आपके भानेकी उसे कोई
आशा नहीं है । अतः हे भाई ! मेरे पास उसका कोई लेख तो नहीं
है पर आप झटपट उसे जाइए और जो उचित समझ पड़े उसे
कहिए ॥ ६ ॥ उस निष्ठुर बोलनेवालेसे भी मुझे चिकनी-चुपकी
बातें ही करनी चाहिए क्योंकि दूरा हुआ प्रेम फिर उसी प्रकार नहीं
बढ़ता जैसे डण्डसे दूरा हुआ कूज फिर कभी नहीं लिखता ॥ ७ ॥
हे सखी ! चारों ओर नीच लोग हैं-हँसकर मेरी लिखती
उदा रहे हैं, बरके बड़े-बूढ़ोंकी दृष्टि भी मुझपर अक्रुशके समान
गड़ी हुई है अतः उस हृदयके स्वामीको समझा देना कि मुझसे ही
प्रेमके कारण उसकी यह दुर्दशा हो रही है ॥ ८ ॥ वे लोग धन्य हैं
जिनके कानोंमें कामदेवके बाँझोंकी चोटकी पीड़ा सहती हुई
दुबले झट्टोवाली नबेलीकी सखियोंके सामने कही हुई वे बातें
पड़ती हैं जिनमें सुमोके बच्चे और मैनाएँ दुहरा देती

स्थितिव्यमेति ॥ ६ ॥ दूति त्वं तरुणी युवा स चपल-
श्यामास्तमोभिर्दिशस्सन्देशस्स रहस्य एव विपिने
सङ्केतकावासकः । भूयोभूय इमे वसन्तमरुतश्चेतो
नयन्त्यन्यथा गच्छ क्षेमसमागमाय निपुणे रत्नन्तु ते
देवताः ॥ १० ॥ न च मेऽवगच्छति यथा लघुतां
करुणां यथा च कुरुते स मयि । निपुणं तथैनमवगम्य
घट्टैरभिवृतिं काचिदिति सन्दिदिशे ॥ ११ ॥ ननु सन्दि-
शेति सदृशोदितया प्रपया न किञ्चन किलाभिदधे ।
निजमैक्ष मन्दमनिशं निशितं रुशितं शरीरमशरीर-
शरैः ॥ १२ ॥ पत्रं न श्रवणेऽस्ति वाष्पगुरुणोर्मां
नेत्रयोः कज्जलं रागो नाधरपल्लवे धरण्यायुग्मे न
यालककः । घातोंच्छ्वसिपु निघ्नरेति भवता मिथ्यैव
सम्भाष्यते सा लेखं लिखतु द्युतोपकरणा न्यायेन
केनाधुता ॥ १३ ॥ वाक्यं तस्मै सहचरि भवद्भूरिवि-
श्लेषयक्षी स्नेहिरिदं मम वपुरिदं कामहोता जुहोति ।
प्राणानस्मै तदिहमुचितां दक्षिणां दातुमाहं तन्नादेशो

भवतु भवतां यत्स्वमेषामधीशः ॥ १४ ॥ विरक्तमन्य-
प्रमदानुरक्तं विमुक्तदाक्षिण्यलवं शठञ्च । या संवृ-
त्तीते खलु दूतिका सा कोऽस्याः स्वमेष्टिण जने प्रकर्षः
॥ १५ ॥ वृथा गाथाश्लोकैरलमलमलीकां मम रजं
कदाचिद्धतोऽर्सा कविवचनमित्याकलयति । एवं पार्श्वे
तस्य प्रहिणु पण्डितान्जनधयस्त्रयद्वाप्योत्पीडस्थगि-
तलिपि ताडयुगलम् ॥ १६ ॥ सन्देशं मे गृह्येत्वा
कुवलयनयनं कास्तमभ्येऽपि दूति ! वासन्त्योऽमी
त्रियामा मलयजपवनान्दोल्यमानाश्च वज्रयः । उच्चैर्गु-
ञ्जन्ति भृङ्गाः सुममधुरमधुस्वादमेन प्रमत्तास्त्वं कास्ता
च प्रगल्भा तदिति न युवयोर्जातुचित्त्याग्र-
सक्तिः ॥ १७ ॥

नायकं प्रति नायिकसन्देशः—अदृष्टे दर्शनोत्कण्ठा दृष्टे
विश्लेषभीकना । नादृष्टे न च दृष्टेन भवता विद्यते
सुखम् ॥ १ ॥ आलोभिः सह भासितं किमपि तद्ग-
त्मापि संवीक्षितं पञ्चेषुः कुसुमेरपूजि कयमप्याधाय

है ॥ ६ ॥ हे दूती ! तू नवेली है, वह भी चञ्चल है, तू
आरों और कंधेरा दाया हुआ है, सन्देशमें वनमें मिलनेके लिये
सङ्केत है, सन्देशमें गुप्त बात है, ये वसन्तके पवन भी चित्तकी
व्याकुल कर रहे हैं अतः जायाँ, कुशलतापूर्वक तुम दोनोंका
समागम हो, देवता गृहारी रक्षा करें ॥ १० ॥ कोई
नवेली दूतीके द्वारा प्रियतमको यह सन्देश भेज रही है
कि 'हे दूती ! प्रियतमके पास जाकर ऐसी अनुराईसे बात करना
जिससे वह मुझे नीच न समझने लगे और मेरी दशापर
उत्ते तरस आ जाय' ॥ ११ ॥ जब सखीने नवेलीसे पूछा
कि प्रियतमके लिये कुछ सन्देश भी दों तो वह नवेली कुछ भी
बोली नहीं वरन् अपनी उस देवकी आँखोंसे देखने लगी जो
कामदेवके तीक्ष्ण आँखोंसे मुरझाई चली जा रही थी ॥ १२ ॥
'वह बड़ी निष्ठुर होकर बोलती भी है' ऐसा सोचकर आप
उसकी सारी पीड़ाका मूढा हाँ समझ रहे हैं पर न उसके
कानोंमें कनकल है, न कवचवाई आँखोंमें काजल है, न ओठोंमें
लगाई है और न पिराँमें आलसता ही है । वह पत्र लिखे
तो किस आधारेपर लिखे ॥ १३ ॥ हे सखी ! प्रियतमसे
जाकर यह कहना कि हवन करनेवाला कामदेव स्नेह
(प्रेम, धी) से जगी हुई आपकी वियोगाग्निमें उसके
शरीरकी आहुति दे रहा है । अब उस कामदेव - रूपी
पुरोहितकी वह प्राणोंकी दक्षिणा देना चाहती है अतः

आपकी आज्ञा होनी चाहिए क्योंकि प्राणोंके स्वामी तो
आप ही हैं ॥ १४ ॥ विरानी, दूसरी खोले प्रेम करनेवाले तथा
निर्दयी (दुरी) दुष्ट को भी जब दूती वशमें ले आती है तो
प्रेम करनेवाले मनुष्योंपर इसका कैसा जादू चलाता है,
वह भी बताने की बात है । ॥ १५ ॥ हे सखी ! प्रियतमके
पास कविता लिखकर भेजना व्यर्थ है । हो सकता है कि वे उसे
भूलें कविकी वास्तुवित्त समझकर मेरे कटको मूढा मान लें, अतः
उनके पास मेरे कामके दोनों कनकल भेज दों, जिनमें लिखे हुए
अक्षर काजलसे मिले हुए आँखोंके जलसे पुते हुए हों
॥ १६ ॥ तुम आ तो रही हो किन्तु हे दूती ! मेरे कमल-रससे
नेत्रवाले प्रियतमके पास मेश सन्देश भी लेती जाओ किन्तु
वसन्तकी रातें आ गई हैं, मलय पर्वतका पवन जताई दिखा
रहा है, फूलोंका मधुर रस पीकर भँरे मतवाले होकर लँचे
स्वरसे गूँज रहे हैं, तू भी नवेली और डीठ है अतः सावधान
रहना, कहीं अवसर पाकर तुम्ही दोनों न निघटने लगना ॥ १७ ॥

प्रियतमके पास प्रेयसीका सन्देशः कोई नवेली
अपने प्रियतमके पास सन्देश भेजती है कि 'हे प्रियतम ! आपके
देखने तथा न देखने दोनोंमें ही सुख नहीं मिलता क्योंकि न
देखनेपर देखनेकी इच्छा होती है अतः कष्ट होता है और देख
लेनेपर वियोग हो जानेका दुःख बना रहता है' ॥ १ ॥ हे
प्रायनाय ! सखियोंके साथ बातचीत करते हुए भी मैं आपकी

चित्ते मनाक् । तेनापि प्रिय चेत्तथा मयि कृपाकार्पण्य-
मालम्बसे प्राणेश प्रबलं तदत्र निखिलं तन्प्रातिकूल्यं
विधेः ॥ २ ॥ इदं कैरविणीष कोकपटलीवाम्भोजि-
नीवान्धवं मेघं घातकमण्डलीय मधुपश्रेणीष पुष्पाक-
रम् । माकम् पिकसुन्दरीय तरुणी प्राणेश्वरं प्रोषितं
चेतोवृत्तिरियं मम प्रियसत्त्वे त्वां द्रष्टुमुत्कण्ठते ॥ ३ ॥
माथ त्वद्विरहे सुधानिधिरपि स्वेडालयो भाव्यते
शीतो वृत्तिमोहतोऽपि घत हा उवालाऽधलीढायते ।
चेतोहार्म्यपि सौरभं सुमनसां दुर्हन्मसङ्कोपमं किं भूयो
निगदेयमेतदसौऽप्येतेऽद्य भाराय मे ॥ ४ ॥ नित्यं
ब्रह्म यथा स्मरन्ति मुनयो हंसा यथा मानसं सानन्दाः
रुद्रुत्सङ्गकीवनयुतां ध्यायन्ति रेधां गजाः । युष्मदृश-
नकालसाः प्रतिदिनं युष्मान्मरामो वयं धन्यः कोऽपि
स वासरोऽत्र भविता यन्नावयोस्सकृमः ॥ ५ ॥ यथा
कुमुदिनी चन्द्रध्वजवाकी विभाकरम् । ततः प्रभृति
कान्त त्वां चिन्तयामि तथाऽनिशम् ॥ ६ ॥

नायकधामे दृश्यते—अगणितगुणेन सुन्दर कृत्वा
चारित्र्यमप्युदासीनम् । भवनानन्यगतिः सा चिह्निता-
वर्तेन तरणिरिव ॥ १ ॥ अङ्गानि मे दहतु कान्तवियो-
गवन्दिः संरक्षणां प्रियतमो हृदि वर्तते यः । इत्याशया
शशिमुखी गलदध्रुविन्दुधाराभिरुत्पलमभिपिञ्जति हृत्प-
देशम् ॥ २ ॥ अङ्गेऽनङ्गज्वरदुतचहश्चक्षुषि ध्यानमुद्रा
कण्ठे जीवः करकिसलये दीर्घशायी कपोलः । अंसे
वेली कुचपरिसरे नन्दनं घाञ्च मानं तस्यास्सर्वं
स्थितमपि न तु त्वां विना क्वापि चेतः ॥ ३ ॥ अङ्गे-
प्याभरणं करोति बहुशः पत्रेऽपि सञ्चारिणि प्राप्तं त्वां
परिश्रुते चित्तनुते शय्यां चिरं ध्यायति । इत्याकल्प-
चिकल्पतत्परचनासङ्कल्पलीलाशतव्यासकापि विना
त्वया वरतनुर्नया निशां नेष्यति ॥ ४ ॥ अचकमत
सपत्न्यां धरित्रीं मृदुसुरभिं विरहव्य पुष्पशय्याम् ।
श्रुमरतिमवाप्य तत्र कास्यास्तव सुखशीतमुपेतुम-
ङ्गमिच्छा ॥ ५ ॥ अचिह्नं नयानाम्बु यन्धुयु कृतं

मार्ग देखती रहती हूँ तथा किसी-किसी प्रकार फूलांसे कामदेवकी
पूजा करती रहती हूँ । इतनेपर भी यदि आप मुझपर दया
नहीं करते तो पक्षी कहना पड़ेगा । भाग्य ही बलपूर्वक मेरा
विरोध कर रहा है ॥ २ ॥ हे प्रियतम ! जैसे कुमुदिनी चन्द्रमाकी,
चकरी सूर्यकी, पपीहोंकी मन्दहसी बादलकी, भीरोंके समूह
इसतकी, कोकिल आसके बुझोंकी तथा नवेली नारी अपने
पतिको देखनेके लिये उतावली रहती है उसी प्रकार मेरा मन
भी तुम्हें देखनेके लिये भवज रहा है ॥ ३ ॥ हे माथ ! आपके
बिछोड़में घबड़तका समुद्र भी चिपके समुद्र-सा मान पड़ता है,
इच्छिका शीतल पवन भी लपलपाती लपटों-जैसा खगता है
और चित्त धरनेवाली फूलोंकी सुगन्ध भी दुर्गोंके समागमकी मूर्ति
तुलनाई हो रही है । अधिक क्या कहूँ, आज मेरे प्राण भी
मुझे भार जान पड़ रहे हैं ॥ ४ ॥ हे प्रियतम ! जैसे मुनि लोग
प्रतिदिन ब्रह्माका, इस मानसरोवरका और अस्रज हाथी फूली
सलाईके वनसे घिरी नर्मदाका ध्यान करते हैं उसी प्रकार
आपके दूरानकी लालसासे मैं प्रतिदिन आपका ध्यान किया
करती हूँ । वह दिन हमारे लिये कितने पुण्यका होगा जब हम-
तुम दोनों गले मिलेंगे ॥ ५ ॥ हे प्रियतम ! जबसे आप गए हैं
तबसे मैं दिन-रात आपका बैठे ही ध्यान करती रहती हूँ जैसे
कुमुदिनी चन्द्रमाकी और चकरी सूर्यकी बात जोहती रहती
है ॥ ६ ॥

नायकसे वृत्तीकी बात-चीत : हे सुन्दर ! आपने उसके
गुणोंपर कोई ध्यान न देकर बड़ी उदासीनताका व्यवहार किया
और इस प्रकार उस नवेलीकी आपने भैरवमें पड़ी हुई नैयाके
समान बना दिया जिसे आपके सिवाय कोई दूसरा सहारा नहीं
है ॥ १ ॥ वह चन्द्रमुखी अपने नेत्रोंसे बहते हुए आँसुओंकी
धारासे तपे हुए हृदयको वह सोचकर लीचती रहती है कि
प्रियकी विरहाग्नि मेरी देहको भस्म ही जला डाले पर हृदयमें
बसनेवाले प्रियतमकी रक्षा तो करनी ही है ॥ २ ॥ उस
नवेलीके शरीरमें काम-कपी अग्नि, नेत्रोंमें ध्यानका चिह्न, गलेमें
प्राण, हृदयपर देरतक रक्ता हुआ गाल, कंधोंपर बाल,
स्तनोंपर चन्दनका लेप तथा मुखमें मौन है, फिर भी उसका
चित्त तुम्हारे सिवाय और कहीं नहीं जग पाता ॥ ३ ॥ वह
नवेली बार-बार अपने अङ्गोंमें गहने पहनती है, तुम्हारा
पत्र पानेपर तुम्हींको पाया हुआ समझती है तथा बिछौना
बिज्ञाकर देरतक तुम्हारा ध्यान किया करती है । इस प्रकार
बिछौना बिछामे, गहने पहनने तथा सिकड़ों सहस्र-विकल्पमें
कीन वह बेचारी तुम्हारे बिना रात नहीं काट पावेगी ॥ ४ ॥ वह
नवेली कोमल तथा सुगन्धित फूलोंके बिछौनेको छोड़कर धरती-
पर चिढ़े हुए पत्तोंके बिछौनेपर बैठने लगती है । फिर अत्यन्त
आकुल होकर उससे भी ऊब उठती है और आपकी सुख देनेवाली
शीतल गोद पानेके लिये तरसने लगती है ॥ ५ ॥ तुम

तापः सखीष्वाहितो दैन्यं म्यस्तमशेषतः परिजने
चिन्ता गुरुभ्योऽपिता । अयं भवः किल निर्वृतिं
प्रजति सा श्वासैः परं स्थिते विभक्तं भव विप्रयोग-
जनितं दुःखं विभक्तं तथा ॥ ६ ॥ अनयनपथे प्रिये न
व्यथा यथा दृश्य एव दुःप्रापे । म्लानैव केवलं निशि
तपनशिला वासरे ज्वलति ॥ ७ ॥ अनुरागवर्तिना
तव विरहेणोग्रेण सा गृहोत्तापि । त्रिपुररिपुणैव गौरी
वरतनुरर्धावशिष्टे ॥ ८ ॥ अभिनयनलिनीकिसलय-
मृणालचलयादि दयवहनराशिः । सुभग कुरङ्गद-
शोऽस्या विधिवशतस्त्वद्वियोगपविषते ॥ ९ ॥ अभ-
धानैर्मुक्षरितदिशः श्रेण्यस्तोयदानां धारासारैर्धर-
णिषलयं सर्वतः प्रापयन्ति । तेन कोहं वहति विपुलं
मत्सङ्गीयुक्तमेतत्त्वं निःकोहो यदासि तदिदं माय मे
विस्मयाय ॥ १० ॥ अखिलपरिवाहैरभ्रः सारसीनां
स्मरदहनशिलोष्णश्वासपूरैश्च तस्याः । सुभग वत

कुरङ्गदशः स्पर्धयाम्बोन्यमेभिः कियत इव पुरोभूः
पङ्क्तिं पांसुला च ॥ ११ ॥ अस्मिञ्चन्द्रमसि प्रस-
न्नमहसि व्याकोचकुन्दत्विति प्राचीनं समुपेयुषि त्वयि
गते दूरं निजप्रेयसि । श्वासः कैरवकोरकोयति मुखं
तस्यास्सरोजीयति क्षीरोदीयति मन्मथो दृगपि च
द्राक्चन्द्रकान्तीयति ॥ १२ ॥ आदावञ्जनपुञ्जलितव-
पुषां श्वासानिलोष्णसितप्रोत्सर्पद्विरद्वानलेन च ततः
सम्तापितानां दृशाम् । सम्प्रत्येव निपेकमभ्युपयसा
देवस्य चेतोभुवो भङ्गीमामिव पानकमे कुर्वते कामं
कुरङ्गदश ॥ १३ ॥ आद्यः कोपस्तदनु मदनस्त्वद्भि-
योगस्तृतीयः शान्त्यै दूतीवचनमपरः पञ्चमः शीत-
भानुः । इत्थं बाला निरवधि परं त्वां फलं प्रार्थयन्ती
हा हा पञ्चज्वलनमधुना सेवते योगिनीव ॥ १४ ॥
आलम्प्याङ्गुवापिकापरिखरे चूतद्वये मञ्जरीं सर्पस्ता-
न्मपरागसम्पटरणकुङ्गाङ्गनायोभिनीम् । मन्ये स्वां

उसके विषयमें चिन्ता न करो, अब वह आज्ञाक्रममें सुखी हो
जायगी (मर जायगी) क्योंकि उसने अपने दुःखका बटवारा
इस प्रकार कर दिया है । निरन्तर गिरते । जीसू तो उसने
अपने भाई-बन्धुओंको दे दिए, सम्ताप सखियोंको दे बाँटा, सारी
वीनता परिवारको दे दी तथा चिन्ता अपने बड़े-बूढ़ोंको समर्पित
कर दी । अब उसे केवल एक ही कष्ट है कि उसकी साँसें बड़े
वेगसे चलने लगती हैं ॥ ६ ॥ प्रियतमको सामने देखते हुए
भी उनसे न मिल पानेपर जो पीड़ा होती है वह उन्हें न
देखनेमें नहीं होती, जैसे रातमें सूर्यकास्तमयि केवल सज्जन
ही रहती है किन्तु दिनमें तो सामने दिखाई देते । भी
सूर्यसे न मिलनेके कारण जल उठती है ॥ ७ ॥ प्रेमी शङ्करजी
(अर्धनारीश्वर) से जुटी हुई चार्वाकजी जैसे आधी ही
बच रहती हैं उसी प्रकार प्रेमसे भरे हुए तुम्हारे विराज विरहसे
जकड़ी हुई वह सुन्दरी भी आधी रह गई है । अर्थात् दुखी हो
गई है ॥ ८ ॥ हे भाग्यशाली ! उस शृगमयमीके दुर्भाग्यसे
उसपर तुम्हारा विरह-रूपी वज्र गिर पड़ा इसलिये कमलके नये-
नये पत्ते तथा कमलनालसे बने कज्जन आदि शीतल वस्तुएँ भी
उसके लिये दावानलके समान कष्टप्रद हो रही हैं ॥ ९ ॥ अपने
घोर गर्जनसे सारे संसारमें कोलाहल मचा देनेवाले बादल अपनी
मूसलाधार वर्षासे धरतीको सब ओरसे भरे दे रहे हैं, अतः मेरी
सखी भी स्नेह (जल, प्रेम) चार्वाक कर रही हो तो ठीक ही
है, पर हे माध ! मुझे अचरज तो इस बातपर हो रहा है कि

आपमें तनिक भी स्नेह (जल, प्रेम) क्यों नहीं है ॥ १० ॥ हे
कुम्भर ! निरन्तर बहनेवाली आँसुओंकी नदीका प्रवाह तथा
कामाग्नि की जपटोंसे तपे । साँसें के पवनका प्रवाह वे दोनों
परस्पर होकर करके उस दुखी-पतली नवेलीके सामनेकी
धरतीको एक साथ कीचड़वाली तथा भूखवाली बनाए दे रहे
हैं ॥ ११ ॥ हा प्रियतम ! लिये हुए कुन्दकी-सी कान्तिवाला
चन्द्रमा अपनी निर्मल चाँदीनी फैलाता हुआ जिस समय पूर्वके
आकाशपर चढ़ रहा है उस समय तुम यहाँ उससे दूर भा बैठे
हो, इसीलिये उसकी साँस कोईकी कभी हुई जा रही है (फूट
रही है, बूझ रही है), उसका मुँह कमलके समान सङ्कुचित
हो रहा है, कामदेव जीरसागरके समान उमड़ा पड़ रहा है
और आँखें चन्द्रकास्तमयि—जैसी रिस रही हैं ॥ १२ ॥ वह
शृगमयनी पहले तो अपनी आँखोंपर आँजनाका छेप चढ़ाती
है, फिर साँसें के पवनसे जगाई हुई तथा बढ़ती हुई विरहरूपी
आगसे उन्हें तपाती है और फिर आँसुके खलसे उन नेत्रोंको
सींचती है । यह सब ऐसा जान पड़ रहा है मानो वह
कामदेवके बायोपर विषका छेप चढ़ाकर फिर उन्हें आगमें
तपाकर पानीमें डुबो रही हो ॥ १३ ॥ वह नवेली कोध-रूपी
अग्नि, कामरूपी अग्नि, विषाग-रूपी अग्नि, शान्त रहनेके लिये
दूतीके वचन-रूपी अग्नि और चन्द्रमा-रूपी अग्निकी पंचाग्नि तापने-
वाली योगिनी बनकर इस तपस्याके फलके रूपमें केवल तुम्हें
चाह रही है ॥ १४ ॥ रोजेक स्वर रोकनेके कारण जिस नवेलीकी

तनुमुत्तरीयशकलेनाच्छाद्य वाला स्फुरत्कण्ठध्वाननि-
रोधकम्पितकुचध्वासोद्गमा रोदिनि ॥ १५ ॥ आले-
ख्यस्थं कमलनयन त्वां कथञ्चिद्विधाय यावन्नेत्रे
सफलजनुषी सेहते संविधातुम् । तावत्ताभ्यां वहति
विमलो हन्त पूरः सुदीर्घः पाण्डुरेष्टुव्यवहतिरियं
भाग्यवक्रानुसर्षी ॥ १६ ॥ आवासो विपिनायते प्रिय-
सखीमालापि जालायते तापो निःश्वसितेन दावदहन-
ज्वालाकरालायते । सापि त्वद्विरहेण हन्त हरिणीरू-
पायते हा कथं कन्दर्पोऽपि यमायते विरचयश्चादूल-
षिकीक्षितम् ॥ १७ ॥ उदितं प्रियां प्रदि सहादमिति
भदधीयत प्रियतमेन वचः । विदितेक्षिते हि पुर एव
जने समुदीरिताः खलु लगन्ति गिरः ॥ १८ ॥ उद्धूयेत
नतभ्रः पद्मनिपातोद्भवैः पवनैः । इति निर्निमेषमस्या
विरहव्यस्या विलोकते वदनम् ॥ १९ ॥ उन्मीलितमखौ-

र्तुनीहि वहति क्षौमाञ्जलेनाङ्गु क्रीडाकाननमाश्रयन्ति
वलयकवाणैः समुद्रामय । इत्थं वञ्जुलदक्षिणानिलकु-
ट्टकण्ठोपु साङ्केतिकव्याहागः सुभग त्वदांयचिरहे
तस्यास्सखीनां मिथः ॥ २० ॥ उपताप्यमानमलघुणि-
मभिश्श्वसितैस्सितेतरसरोजदृशः । द्रवतां न ननुम-
धरं क्षमते नवनागवर्जितदलरामरसः ॥ २१ ॥ कन्दर्प-
उपरसञ्जगकुलतनोराश्रयमस्याश्वरं चेतश्चन्दनच-
न्द्रमःकमलिनीचिन्तासु सन्ताप्यति । किन्तु सान्ति-
वशेन शान्तननुं त्वामेवमेकं प्रियं ध्यायन्ती रहसि
स्थिता कथमसौ क्षीणा लणं प्राणिति ॥ २२ ॥ काश्यं
श्वेत्प्रतिपन्नकला हिमरुचः स्थूलैव चेत्पाण्डिमा लीमा
एव मृणालिका यदि पुनर्याप्यः कियानम्युधिः ।
सन्तापो यदि शान्तो हुतवहस्तस्याः कियद्वैर्यतां
किं नु न्यस्मृतिमात्रमेव शरणं लाघव्यशेषं यपुः ॥ २३ ॥

साँस फूल रही है और स्तन कौंप रहे हैं वह चारसे अपनी
देह ढककर भ्रॉगनकी बावड़ीके तटपर सगे हुए उस आमकी
हालकी धामे रोती रहती है जिसमें बीरके लीले हुए घने परागमें
झिपटी हुई भौरियाँ गुञ्जार करती हुई शोभित हो रही हैं ॥ १५ ॥
हे कमलके समान नयनोंवाली ! वह किसी-किसी प्रकार तुम्हारा
विष बनाकर बीर जैसे ही उसे देल-देखकर अपने नेत्र सफ़ा
करने लगती है त्यों ही उसके नेत्रमें निर्मल जलकी धनी बाढ़ आ
जाती है । इसी प्रकार भाग्यके फेरके अनुसार वह अपने रसक
और भचकके, दोनोंके बीच पड़ी रहती है ॥ १६ ॥ तुम्हारे वियोगमें
उसे अपने रहनेका स्थान जगहके समान जान पड़ता है, प्यारी
सखियाँ आँखके समान जान पड़ती हैं और उसके भीतरका
सन्ताप साँसके पवनकी सहायतासे दावानलकी भयङ्कर लपटोंके
समान हो रहा है । इस प्रकार वह विरहिणी जगहके दावानलसे
धिरी हुई सृष्टीके समान हो रही है तथा सिंहके समान घूमता
हुआ कामदेव भी उसके लिये यमराज बन रहा है ॥ १७ ॥
अपनी प्यारीके विषयमें दूसीने जो प्रेमपूर्वक बातें कहीं उनपर
प्रियतमने विश्वास कर लिया । ठीक भी है, जो मनुष्य किसीके
हृदयका भाव पहलेसे जानता है उसके विषयमें कहे हुए
बातें भी उसे शीघ्र ही लग जाती हैं ॥ १८ ॥ उस विरहिणीकी
सखी इसलिये बिना पलक गिराए उसका मुँह ताक रही
है कि पत्रकोंकी गिरानेसे निकले हुए पवनके वेगसे कहीं
यह विरहिणी उड़ न जाय ॥ १९ ॥ हे सुन्दर ! तुम्हारे
विद्रोहमें बैठ, दक्षिणके पवन तथा कोयलकी देख-देखकर

उसकी सखियाँ संकेतोंमें बातें करती हैं । वैन उग जानेपर एक
सखी कहती है कि 'उग रहे हैं' तो दूसरी कहती है कि 'नखाँसे
बूँट दो ।' पवनके लिये एक कहती है—'बह रहा है' तो दूसरी
कहती है—'घोंबलसे रोक दो ।' कोयलके लिये एक कहती
है—'बरकी फुलवारीमें घुस रहा है' तो दूसरी कहती है कि
'ईगनोंकी भजनकारसे दूर हो' अर्थात् कोई उसके सामने बैठ,
दक्षिणके पवन तथा कोयलका मामलक नहीं लेता ॥ २० ॥
मौलके कमलके समान नयनोंवाली उस नवेलीका अन्ध
अत्यधिक गरम साँसोंसे ऐसा परेशान गया है कि काए हुए
पानके बीदेका रस भी उसे नहीं भिगा पाता ॥ २१ ॥ यह
अचरजकी बात है कि कामावरके तापसे तपी हुई देहवाली
उस नवेलीका विश्व चन्दन, चन्द्रमा तथा कमलिनाँके
स्मरणसे भी दुखी हो जाता है, किन्तु सहनशीलताके कारण
शीतल शरीरवाले केवल अपने प्रियतमका अर्थात् आपका
ध्यान करती हुई एकान्तमें वह बैठी रहती है । न जाने वह
वह दुबली-पतली जी कैसे रही है ! ॥ २२ ॥ उस नवेलीकी
दुर्बलताके सामने प्रतिपदा तिथिके चन्द्रमाकी कला भी
भोटी जान पड़ता है, उसके उजलेपनके सामने कमलनाल भी
मखिन जान पड़ता है, उसके आँसुओंके सामने समुद्र भी तुच्छ
जान पड़ता है और उसका सन्ताप देखकर चन्द्रमा भी शान्त
जान पड़ता है । अधिक कहाँतक कहें, तुम्हारा चिन्तन ही
उसके लिये एक-मात्र शरण है क्योंकि उसके शरीरमें सुन्दरताके
अतिरिक्त और कुछ भी नहीं बचा है ॥ २३ ॥ उसे पूजकर बना

किं पृष्टेन व्रुततरमितो गम्यतां सा प्रिया ते दृष्टा
मार्गे दिवसमखिलं सास्त्रमेका मयैवम् । पान्थे पान्थे
त्वमिति रमसोद्गोचमालोकयन्तो दृष्टे दृष्टे न भवति
भवानिर्युद्धधुर्वलन्ती ॥ २४ ॥ कितव प्रपञ्चिता सा
भवता मन्दाक्षमन्दसञ्चार । बहुदायैरपि सम्प्रति
पाशकसारीव नायाति ॥ २५ ॥ कुशलं तस्या जीवति
कुशलं पृच्छामि जीवतोत्युक्तम् । पुनरपि तदेव कथ-
यसि मृता न कथयामि वा भवसिति ॥ २६ ॥ कुसुमश-
यनेऽप्यङ्गं ताम्यत्यनङ्गविवर्तनं यदमपवनैश्शयामच्छायो
बभूव सखीजमः । हृदयनिहितः शीतो लेपश्चमोति
रवं करोत्यहह कठिनावस्था तस्यास्त्वयैवमुपेक्षते
॥ २७ ॥ कुसुमादपि स्मितदशः सुतरां सुकुमारमङ्ग-
मिति नापरया । अनिशं निजैरकदणः कदणं कुसुमे-
पुरुषपति यद्विशिखैः ॥ २८ ॥ कोदण्डो विशिखा

मनोनिवसतिः कामस्थ तस्या अपि भवलो नयनाञ्जलं
मनसि ते वासः समुन्मीलति । इत्थं साम्यविधौ तयोः
प्रभवति स्वामिस्तथा क्षिप्रतां तन्वाना तनुतां कमा-
दतनुतां नैया यथा गच्छति ॥ २९ ॥ क्षणं मूर्च्छामेति
भ्रमति परितोऽथ क्षणमपि क्षणं मैति स्तम्भं निरवधि
प्रवक्ष्यान्निरता । क्षणं स्वमे बाला तव सुभग योगं
व लभते क्षणं तेजः शम्भोर्नयनजमथ ध्यायसि यमम्
॥ ३० ॥ क्षणमपि विरहः पुरा न सेहे नयननिमीलन-
क्षिप्रया यथा ते । भवसिति कथमसौ रत्नालशकां
चिरचिरहेण विलोक्य पुष्पिताग्राम् ॥ ३१ ॥ क्षणो दिनं
दिनं मासो मासः संघत्सरं तथा । अयि काम्प
भवत्सङ्गमस्तराऽस्याः प्रतीयते ॥ ३२ ॥ गन्तुं माङ्गल्यतो
वदाति न मुहुःस्तम्भः कुरङ्गोदशः साकृतं स्वरभङ्ग-
विभ्रमकला दृष्टे न वक्तुं कियत् । मार्गे पान्थमवेक्षितुं

करीगे ? कठपट चले जाओ, क्योंकि मार्गमें मैंने तुम्हारी
प्यारीकी इस दशमें देखा है कि वह आपके दिनभर रोती
हुई प्रत्येक राहिकी यह समय-समकक्ष और सिर डेंबा
कर-करके देखती रही कि तुम हो पर जब वह जान
पाती थी कि तुम नहीं हो तो आँखोंमें आँसू भरकर एकाएक
पल्ला उठती थी ॥ २४ ॥ हे भूत ! आजके कारण धीरे-धीरे
चलनेवाली उस नवेलीकी तुमने ऐसा धोखा दिया है कि
इस समय भी-भीतिके लालच देनेपर भी एक बार आजमें
कैसकर छुटी हुई मैनाके समान वह सामने नहीं आ रही है
॥ २५ ॥ नायक और सखीमें बातचीत हो रही है । नायक :
कहो वह कुशलसे तो है ? सखी : (उदासीसे) जी हाँ, जी
रही है । नायक : मैं उसका कुशल पूछ रहा हूँ । सखी :
मैंने तो पहले ही कहा कि जी रहो है । नायक : तुम तो
बार-बार बर्फी बुहरा रही हो । सखी : तो और क्या कहूँ ?
जिसकी साँसें चल रही हैं उसे क्या मरी कह दूँ ! ॥ २६ ॥
फूलोंके विछौनोंपर कामकी पीड़ासे छुटपटाते रहनेके कारण
उसके सब अङ्ग ढीले पड़ गए हैं, उसके मुखकी गरम-गरम
साँसोंसे सखीसक काँडा पड़ गई है तथा छातीमें लगाया
हुआ डगदा लेप भी तापके कारण 'खम-खम' शब्द कर रहा
है । हाय ! उसकी तो यह दयनीय दशा हो रही है और
तुम्हारे कानपर अँतक नहीं रँगते ॥ २७ ॥ यह बात सूँठ
नहीं है कि खिले हुए नेत्रवाली नवेलीका शरीर फूलसे भी
बढ़कर कोमल है, इसीलिये तो निन्दुर कामदेव अपने फूलके

बाकोंसे सदा उसे ऐसा सम्ताप दे रहा है कि देखकर हवा
जाने लगती है ॥ २८ ॥ हे स्वामी ! कामदेवके पास धनुष-
बाण हैं और वह मगमें बसता है । इधर उस नवेलीके पास
भी भीड़ोंका धनुष और चितचनके बाण हैं तथा वह तुम्हारे मनमें
बसती है; इस प्रकार वह नवेली तथा कामदेव दोनों एकसे हैं ।
अतः, उसपर इस वृत्तसे अनुराग कीजिए कि चुबकी होती
हुई वह नवेली कहीं भ्रतनु (कामदेव, बिना शरीरवासी) न
हो जाय अर्थात् भर न जाय ॥ २९ ॥ तुम्हारे वियोगमें
वह नवेली कभी तो मूर्च्छित हो जाती है, कभी चारों ओर
चकर काठने लगती है, कभी सदा तुम्हारा ही ध्यान करती
हुई निष्चेष्ट हो जाती है, कभी स्वप्नमें तुम्हारा समागम पा
जाती है, कभी कामको जलानेवाले शिवजीके तीसरे नेत्रकी
अग्निका ध्यान करने लगती है तथा कभी अपनी मृत्युके लिये
यमराजका ध्यान करने लगती है ॥ ३० ॥ तो क्या भर भी
तुम्हारा बिछोह नहीं सह सकती थी और चुकी होकर आँखें मूँद
लेती थी वह इस जन्मे वियोगमें कीरंसे भरी आगकी डालिवाँ
देखकर भला कैसे जीती रह पावेगी ! ॥ ३१ ॥ हे सुन्दर ! आपका
समागम न मिलनेके कारण उसे एक चय भी दिनके समान,
दिन भी मासके समान और महीना भी वर्षके समान जान
पड़ता है ॥ ३२ ॥ कोई नायक अपनी प्यारीसे इसलिये रुठ
गया है कि मैं जब उसके यहाँसे चलने लगा, उस समय वह
न तो मुझसे मिलने आई, न मुझसे एक शब्द बोली, न
उसने आँखें धुमाकर मेरी ओर देखा और न सेबकों-द्वारा कुंभ

न सहते त्वां वाप्यवारिजस्तस्याः कञ्चुकिनो भयन्ति
सुभग त्वदंशेन सार्विकाः ॥ ३३ ॥ गलत्येका मूर्च्छा
भवति पुनरन्या यदनयोः किमप्यासौग्म्ये सुभग
सकलायामपि निशि । लिखन्त्यास्तस्यः कुसुमशर-
लेखं तव कृते समाप्तिं स्वस्तीति प्रथमपदभागोऽपि
न गतः ॥ ३४ ॥ गायति गोते शंसति वंशे वादयति
सा विपश्चीषु । पाठयति पञ्चरशुकं तव सन्देशाक्षरं
रामा ॥ ३५ ॥ गृहीतं ताम्बूलं परिजनवचोभिः कथ-
मपि स्मरत्यन्तःशून्या सुभग तव मूर्तिप्रतिदिनम् ।
तथैवास्ते हस्तः कलितफणिवज्रोफिसलयस्तथैवासी-
त्तस्याः कमुकफलकालीपरिचितम् ॥ ३६ ॥ गेहादङ्ग-
णमङ्गणादपि बहिर्वाङ्माद्यं पृथ्वीतलं तामाति यदि
वेत्ति त्वेव सुमुखो किञ्चाम्यदाचक्षमहे । पर्यङ्केऽपि

तवाङ्गसङ्गसुभगेः स्वदाम्भसां निर्भरैर्धाराभण्डपताम-
नीयत तथा तस्मिन्मन्दन्या मुहुः ॥ ३७ ॥ चन्द्रश्चन्द्र-
कर्दमेन लिखितं सम्प्रापि दृष्टाधरा कामः पुष्पशरः
फिलेति सुमनोवर्गं लुनीते च यन् । चन्द्रं निन्दति यच्च
मन्मथमसौ भङ्ग्यन्वाग्रहस्ताङ्गुलीस्तन्कामं सुभग
त्वया वरतनुर्वानुसनां लम्बिता ॥ ३८ ॥ चित्राय
त्वयि चिन्तिते स्मृतिभुवा सञ्जीकृतं स्वं धनुर्वति
धर्तुमुपागतेऽङ्गुलियुगे याणां गुणे याजिताः । प्रारब्धे
तव चित्रकर्मणि पुनस्तद्वाणभिन्ना सती भित्ति द्वाग-
वत्सम्यं सिंहलपते सा तत्र चित्रायते ॥ ३९ ॥ चित्रो-
त्कीर्णादपि विपधराङ्गीनिभाजो निशायां किं नु मम-
स्त्वदभिसरणे साहसं नाथ तस्याः । ध्वान्ते यान्त्या
यदतिनिभृतं बालया समकाशत्रासात्पाणिः पथि

सन्देश ही भिजवाया । इसका चतुरतापूर्वक समाधान करती हुई
बूती कहती है—'हे सुन्दर ! जब तुम चलने लगते हो तो उस
झगमगीकी स्तरम साविक भाव उसे आँगनसे आगे नहीं
बढ़ने देता, क्योंकि वह ठक रह जाती है, आगे पैर नहीं बढ़
पाते और तुमसे मिलने तक नहीं आ पाती । उसका स्वरभङ्ग
साविक भाव उसका कण्ठ गद्गद कर देता है अतः वह कुछ
बोल भी नहीं पाती और उसके नेत्रोंमें आँसुओंकी ऐसी
बाव आ जाती है कि वह आते समय तुम्हें देख भी नहीं
सकती । ये स्तरम, स्वरभङ्ग और अश्रु साविक भाव उसमें
इतनी अधिकतासे उमड़ आते हैं कि रनिवासके सेवक भी
उसकी दृष्टा देख-देखकर बैठे ही हुए रहते हैं अतः वे भी
बैचारे क्या सन्देश लावें ?' ॥ ३३ ॥ हे सुन्दर ! रातमें
वह नवेली एक बार मूर्च्छित होकर जगी कि फिर उसे
सुपका आ गई । इन दोनों मूर्च्छाओंके बीचमें जो दुष्सा उसे
सुन लीमिष्ट । उसने आपके लिये कामकी पाँदाके समाचारसे
भरा पत्र लिखना प्रारम्भ किया किन्तु पत्रके प्रारम्भमें
'स्वस्ति' शब्द-शक भी न लिख पाई था कि उसे तुरन्त सुपका
आ गई ॥ ३४ ॥ वह नवेली तुम्हारे सन्देशके शब्दोंके गीत बना
बनाकर चलाया करती है, बाँसुरीके सुरोंमें उसीकी तान बिया
करती है, वीणापर उसी लयसे बजाया करती है तथा पाजल
सुम्नोंको वे ही शब्द पदाया करती है ॥ ३५ ॥ हे भाग्यवान् !
इस नवेलीका मन किसी भी बातमें नहीं जगता । जब सलियाँ
बार-बार आग्रह करती हैं तब वह किसी-किसी प्रकार पानक
पीका ले तो लेती है किन्तु सदा तुम्हारे ही स्वरूपका ध्यान

करते रहनेके कारण हाथमें रखता हुआ पान तथा सुपारीके
टुकड़े उपाँके त्यों धरे रह ताते हैं ॥ ३६ ॥ वह सुन्दर
सुलवाली नवेली घरमें बैठती है तो आँगनकी ओर देखती है,
आँगनमें बैठती है तो बाहरकी ओर आँकती है और बाहर आती
है तो चारों ओर दृष्टि घुमाती है । सचमुच अपनी विपत्ति बड़ी
समझती है । अधिक कहौं तक कहें ? सदा रौंती रहनेवाली उस
नवेलीने सङ्कल्पसे पाए हुए तुम्हारे समागमके सुखसे निकले
हुए पसंनेकी धारसे पपलौंगकी भी बरसातका वैंगला घना
लिया है ॥ ३७ ॥ हे सुन्दर ! तुमने उस सुन्दरीको दूरा
पागल बना डाला है क्योंकि वह तुम्हारे वियोगमें बिसे
हुए चन्द्रमसे बने हुए चन्द्रमाको मिटा डालती है, फूलोंके
कामका बाव समझकर उन्हें तोड़ डालती है तथा दोनों हाथकी
वैंगलियों मटका-मटकाकर प्रशंसा करनेके योग्य कामदेवकी
निन्दा किया करता है ॥ ३८ ॥ हे सिंहल देशके महाराज ! जब
वह सुन्दरी तुम्हारा चित्र बनानेको सोचती है तो उसी समय
कामदेव अपने धनुष सँभाजने लगता है, वह जब दोनों
वैंगलियोंसे तुलिका (कूँची) पकड़ना चाहती है तो
कामदेव अपने धनुषकी डोरीपर बाण चढ़ाने लगता है अर्थात्
जब वह चित्र बनाना प्रारम्भ करती है तबतक कामदेव उसे
अपने बाणोंसे ऐसा बेधता है कि वह भीतसे चिपककर
स्वयं चित्र बन आती है ॥ ३९ ॥ हे नाथ ! जो नवेली
चित्रमें बने हुए सर्पसे भी डरती है, उसने रातमें आपके
पास आते समय जो साहस किया उसका मैं क्या वर्णन
करूँ ! वह आँधरेमें सुपकेसे चली जा रही थी, मार्गमें सर्पके

फणिकणारजरोधी व्यधापि ॥ ४० ॥ चिरमपि कलि-
तान्यपारयन्त्या परिगदितुं परिशुष्यता मुखेन । गत-
घृण गमितानि संसक्तीनां नयनयुगैः सममाद्र्द्रतां
मनांसि ॥ ४१ ॥ चूडारक्षमपाशधिर्यदि भवेच्चेत्कु-
न्तलं गण्डकी कावेरी यदि कङ्कणं यदि पुनर्त्र्येयकं
गौतमी । मुक्ताक्षकसुरनिष्ठगा यदि यदि स्याम्भोजला
नर्मदा कौशेयं यदि कौशिकी कृशतनोस्तापस्तदाप्येति
वा ॥ ४२ ॥ ज्योत्स्ना मौक्तिकदाम चन्दनरसः शीतां-
शुकान्तद्रवः कर्पूरं कदली मृणालवलयाभ्यम्भोजिनी-
पञ्चधा । अन्तर्मानसमास्त्वया प्रभवता तस्याः
स्फुलिङ्गोत्करव्यापाराय भवन्ति हस्त किमनेनोक्तेन
न ब्रूमहे ॥ ४३ ॥ तन्मङ्गलास्त्वमिति प्रस्ताद्विशुद्धं
नास्तोति खेदालसं चक्षुर्द्वारपथावतारिणि जने व्यापा-
रयस्या मुहुः । इषांतिप्रभवाः प्रतिक्षणभुवः स्वेदाम्बु-

कणमें जो मणि चमक रहा था, उसे उसने इस विचारसे
अपने हाथसे ठक दिया कि इसके प्रकाशमें कहीं कोई मुने
देख न ले ॥ ४० ॥ कामदेवके सन्तापसे उसका मुँह
सूख गया था इसलिये वह बहुत देरसे सोची हुई बातोंको
भी वह कह नहीं सकती थी । हे निन्दुर ! उसकी ऐसी दरा
देखकर उसकी सलियोंकी आँखें आँसुओंसे डबडबा आईं
तथा मन दयासे भर आया ॥ ४१ ॥ यदि उस नखेलीके
मस्तकका मणि ही समुद्र, केश ही गण्डकी नदी, कङ्कण
ही कावेरी, गलेकी सिक्की ही गोमती, मोतीकी माला ही
गङ्गा, करधनी ही नर्मदा तथा साड़ी ही कौशिकी नदी
बन जायें तब कहीं उस दुबली-पतली देहवाली नखेलीका
सन्ताप दूर हो सकता है ॥ ४२ ॥ हाय ! आँवनी, मोतीकी
माला, चन्दनका रस, चन्द्रकान्तमणिका जल, कर्पूर, केशा,
कमलनाभ तथा कमलके पत्ते उस विरहियाँके खिये आगकी
चिमगाँरियाँ बने जा रहे हैं क्योंकि उसके मनमें तो तुम
बसे हुए हो । आह ! पर यह सब कहनेसे लाभ क्या !
जब मैं कुछ भी नहीं कहूँगी ॥ ४३ ॥ वह पतले
आँवनीवाली नखेली द्वारपर आनेवाले मनुष्यको देख-देखकर
जब समझती है कि तुम हो तो उसकी आँखें प्रसन्नतासे
खिल उठती हैं, पर जब देखती है कि यह कोई दूसरा है
तब दुखी होकर मुँह जानेवाले नेत्रोंसे प्रतिघ्न्य हर्ष और
खेदनासे निकलते हुए आँसुओंकी बूँदें (मिलनकी आशासे)
पसीजे हुए तथा (वियोगके कष्टके) तापसे भरे हुए उसके

दाहज्वरे नेत्राभ्यःकणिकाः पयोधरतटे पुष्पन्ति
शुष्पन्ति च ॥ ४४ ॥ तव चिरहमसहमाना सा तु
माणान्विमुक्तवती । किन्तु तथाविधमङ्गं न सुलभ-
मिति ते न मुञ्चन्ति ॥ ४५ ॥ तव चिरहे मलयमरु-
वानलः शशिकनोऽपि सोष्माणः । हृदयमरुतमपि
भिन्ते नलिनीदलमपि निदाघरधिरस्याः ॥ ४६ ॥ तव
चिरहे धिधुवदनाभदनाधिक का न सोढन्ति । सीदसि
चिरहे यस्यास्लाघु तपस्याफलं तस्याः ॥ ४७ ॥ तव
चिरहे हरिणाक्षी निरोक्ष्य नभमालिकां दलिताम् ।
हन्त नितान्तमिदानीमाः किं हस्तजल्पितैरथवर ॥ ४८ ॥
तव सा कयासु परिघट्टयति भवणं यदङ्गुलिमुक्तेन
मुहुः । घनतां ध्रुवं नयति तेन भवद्गुणपूगपूरितमनु-
सतया ॥ ४९ ॥ तस्या महाचिरहृद्वक्षिशिखाकलपतसे
स्थितोऽसि हृदये सततं प्रियायाः । प्रासेपशीकरसमे

स्तनोंपर गिरकर खिल भी रही हैं तथा सूख भी रही हैं
॥ ४४ ॥ तुम्हारा बिछोह न सह सकनेके कारण उस
नखेलीने तो अपने प्राण छोड़ दिए किन्तु उसके प्राण ही वह
सोचकर उसे नहीं छोड़ रहे हैं कि ऐसा सुन्दर शरीर संसारमें
कहाँ मिल पावेगा ॥ ४५ ॥ तुम्हारे विरहमें उसके खिये मलय-
पर्वतका धवन दावानल बन गया है, चन्द्रमाकी किरणें भी
उसे गरम जान पड़ती हैं, भीलोंकी गुआर टूटकर उसका हृदय
फटा जाता है तथा कमलके पत्ते भी उसे मीप्स ऋतुके सर्पके
समान उष्ण जान पड़ते हैं ॥ ४६ ॥ हे कामदेवसे भी अधिक
सुन्दरतावाले ! ऐसी कीन चन्द्रमुखी है जो तुम्हारे विरहमें हुकी
न होती होगी, किन्तु तपस्याका फल तो उसीका असीम
समझना चाहिए जिसके बिछोहमें तुम हुकी हो जाते हो
॥ ४७ ॥ हाय ! वह भूगनवनी विरहियाँ तुम्हारे बिछोहमें
खिली हुई नवमखिलकाको देखकर आह !... (भर जावगी)
पर अशुभ वचन कहना उचित नहीं इसीलिये आगे मैं कुछ
नहीं कहती ॥ ४८ ॥ आपकी चर्चा सुनते समय रँगनीसे जान
सुजवाती हुई उस नखेलीको देखकर ऐसा जान पड़ता है
मानो उस चर्चाको सुननेसे न आघाती हुई वह आपके गुणोंसे
भरे हुए उस कानमें आपके और भी गुण हैंस हैंसकर भरना
चाहती हो ॥ ४९ ॥ भयंकर विरहान्तिकी छपट से तपे हुए
उस प्राणप्यारीके हृदयमें तो आप सदा बसे रहते हैं पर हे
कृपावती ! शबरीकी बूँदके समान शीतल अपने हृदयमें आप उस
नखेलीको जब भरके खिये भी नहीं बसाते, वह क्या उचित है !

हृदि सा कृपालो बाला ललं वसति नैव खलु त्वदीये ।
॥ ५० ॥ तस्यास्तापमहं नृशंस कथयाम्येणीष्टशस्ते
कथं पश्चिन्त्यास्तरसं दलं विनिहितं यस्यास्ततापो-
रसि । आदौ शुभ्यति सङ्कुचत्यनु ततश्चूर्णत्वमापद्यते
॥ ५१ ॥ तापोऽम्भःप्रसृतिमपचः प्रचयवान्वाप्यः प्रला-
लोचितः श्वासाः कम्पितदीपवर्तिकलिकाः पारिडम्बि-
मग्नं घणुः । किञ्चान्यत्कथयामि रात्रिमखिलां
त्वन्मार्गवातायने हस्तच्छुन्निरुद्धचन्द्रमहस्तस्याः
स्थितिर्वर्तते ॥ ५२ ॥ तोमः कोऽपि विदूम्भते
वरतनोस्त्वद्विप्रयोगज्वरः किं द्रूमः सुभग त्वया
परिजनः कौतुहलाददृश्यताम् । कण्ठे शेषमर्धे-
गद्गदगिरा कृत्वा सखीनां तया गौराङ्गत्वमनङ्ग-
तापमुददस्सर्वाः परित्याजिताः ॥ ५३ ॥ त्वं विनि-
क्षिप्तमनोभवकपः सा च सुन्दर भवत्यनुरक्ता ।

पञ्चभिर्युगपदेव शरैस्तां नापयत्यनुशयादिव कामः
॥ ५४ ॥ त्वच्छिन्तापरिकल्पितं सुभग सा सम्भाव्य
रोमाञ्जिता शून्यालिङ्गनसञ्चलद्भुजयुगेनान्मानमालि-
ङ्गति । किञ्चान्यद्विरहव्यथाप्रशमनीं सम्प्राप्य मूर्च्छां
चिरान्प्रत्युजीवति कर्णमूलपठिनैस्त्वन्नाममन्त्राचुरैः
॥ ५५ ॥ त्वद्विरहे विस्मारितरजनो जनितेन्दुचन्दन-
द्वेषे । विसिनीव माघमाने विना हुताशन सा दग्धा
॥ ५६ ॥ त्वदेशागतमारुतेन मृदुना सजातरोमाञ्जया
त्वद्रपाङ्गितचारुचित्रफलकेनावजयन्त्या दृशम् । त्वन्ना-
मामृतसिक्ककर्णपुटया त्वन्मार्गवातायने नीचैः पञ्चम-
गीतिगर्भितगिरा नक्तम्विषं स्थाप्यते ॥ ५७ ॥ त्वयि दृष्ट-
एव तस्या निर्याति मनो मनोभवज्वलितम् । आलोके
हि हिमांशोविकसति कुमुदं कुमुदतयाः ॥ ५८ ॥ त्वयि
दृष्टे कुङ्कास्याः कंसते मदनव्यथा । यथा छाव्यभा-
जोम्बू ग्लानिः कुमुदसंहतेः ॥ ५९ ॥ त्वामञ्जनीयति

॥ ५० ॥ हे अत्याचारी ! मैं उस भूगमनीका सन्ताप तुम्हें
क्या बताऊँ ! उसके तपे हुए हृदयपर जो कमलिनीका हरा
पत्ता रक्का जाता है वह पक्षों तो सूखता है, फिर सिकुड़ने
लगता है, फिर चूर हो जाता है तथा फिर उसकी साँसें
पवनसे फुर-फुर उड़कर उस लकीकी ही जलाने लगता है
॥ ५१ ॥ उसकी देहके तापसे चिस्लुभर पानी भी सूख जाता
है, बड़े हुए चीखू नाकीमें बहने योग्य हो जाते हैं, उसकी
साँसोंके वेगसे दीबेकी ली हिलने लगती है और उसका
शरीर भी उजका हो गया है । अधिक क्या कहें, सारी
रात हाथसे चन्द्रमाकी किरणोंकी छोट किए हुए वह
तुम्हारे मार्गकी ओर लुलनेवाले फरोसेपर ही बैठी रहती है
॥ ५२ ॥ हे सुन्दर ! उस सुन्दरीको आपके बिछोहका जो
भयङ्कर सन्ताप है उसे क्या कहें । आप उसके पास
रहनेवालोंकी ही दशा थोड़ा देख लें—उसके तापसे उसके पास
बैठी हुई सहेलियोंकी गौराङ्ग काने-मात्रको रह गई (लुप्त हो
गई) अर्थात् वे उसकी गर्मके कारण काजी पड़ गई अतः
उसने कामदेवके सन्तापमें साथ देनेवाली अपनी उन
सब सहेलियोंकी भी अपीर होकर गद्गद बाजीसे कह-
सुभकर अपने पाससे हटा दिया ॥ ५३ ॥ हे सुन्दर !
तुमने कामदेवकी सुन्दरता जीत ली है और वह नवेली
तुमपर रीझी हुई है । इसी वजहसे मानो कामदेव एक
साथ अपने पाँचों बाजोंसे उसे बेधे बाध रहा है ॥ ५४ ॥

हे सुन्दर ! वह सदा तुम्हारा प्यान करती हुई अपनेको
तुम्हारा ही स्वरूप समझती है, अतः अपनी दोनों
भुजाएँ उठाकर अपनी ही देहको खपेट लेती है और
इसी प्रसन्नतामें रोमाञ्जित भी हो उठती है । अधिक
क्या कहें । तुम्हारे बिछोहके सन्तापको कुछ देर दबाए
रहनेवाली मूर्च्छामें जब वह पड़ी रहती है उस समय उसके
कानमें तुम्हारे नामके अक्षररूपी मंत्र जब सुनाए जाते हैं तो वह
फिर चीककर जाग उठती है ॥ ५५ ॥ तुम्हारे बिछोहमें उस
नवेलीकी रातें बड़ी खम्बी जान पड़ती हैं । वह चन्द्रमा तथा चन्दन
दोनोंसे कुदती है और माघके महीनेमें कमलिनीकी भीति
विना आगके ही जली जा रही है ॥ ५६ ॥ वह विरहिणी
आपके देशसे आते हुए धीमे-धीमे पवनसे रोमाञ्जित होती
हुई, आपके परम सुन्दर चित्रमें दृष्टि उलझाती हुई तथा
आपके नामरूपी अमृतसे अपने कान साँघती हुई आपके
मार्गकी ओरके फरोसेमें ऊँचे स्वरसे बिलसती हुई रात-दिन
घरतीपर पड़ी रहती है ॥ ५७ ॥ तुम्हारा दर्शन हो जानेपर
कामदेवसे जजाया हुआ उसका मन वैसे ही सीतल हो जाता है
जैसे चन्द्रमारूपी शिवतमका दर्शन पाकर कुमुदिनीका कुमुदरूपी
मुख सिध उठता है ॥ ५८ ॥ तुम्हें देखते ही यदि उस
भूगमनीकी कामपीड़ा भाग जाय तो ठीक ही है क्योंकि
चन्द्रमाके उदय होनेपर क्या कुमुदोंमें सङ्कोच (जेद) रह
जाता है ? ॥ ५९ ॥ पूर्व चन्द्रमाके समान मुखवाली

कलासु विलोकयन्ती त्वां भृगवती कुचलयीयति कर्ण-
पूरम् । त्वां पूर्णिमाविधुमुखी हवि भावयन्ती वनोमि-
लीनवनोत्तमशीकरोति ॥ ६० ॥ त्वामन्तः स्थिरभाव-
नापरिणतं मत्वा पुरोऽवस्थितं यावद्दोर्लभं करोति
रभसान्मुग्धा समालिङ्गितुम् । तावत्तां निजमेव देह-
मचिरादालिङ्ग्य याधातुगं दृष्ट्वा वृष्टिजलच्छलेन
हसितं मन्ये पयोदैरपि ॥ ६१ ॥ दत्तोऽस्याः प्रणयस्त्व-
यैव भवता खेयञ्चिरं लालिता दैवाद्य किल त्वमेव
कृतवानस्या मयं विप्रियम् । मन्युर्दुःसह एष यायुष-
शमं नो सान्धवादैः स्फुटं हे निखिश विमुक्तकण्ठक-
रणं तावत्सखो रोदितु ॥ ६२ ॥ दधति स्फुटं रतिपते-
रिपचः शिततां यदुत्पलपलाशदशः । हृदयं निरन्तर-
वृहत्कठिणं स्तनमण्डलाधरणमप्यभिनन् ॥ ६३ ॥ दृष्टे
चन्द्रमसि प्रलम्बतमसि व्योमाङ्गलस्येयसि स्फूर्जभिर्म-

बह नवेली जब अपने शरीर सजाने लगती है तो तुम्हारे
किये आँखें फैलाकर देखती हुईं तुम्हीं ही अपने नेत्रोंका प्रोजन
बना लेती हैं, तुम्हारी चर्चा सुनती हुईं तुम्हीं अपने कानमें
कमलका कमकुल बना लेती हैं और अपने हृदयमें तुम्हारा
ध्यान करती हुईं छातीपर तुम्हीं ही नये नीलमखिका हार बना
लेती हैं ॥ ६० ॥ जब वह विरहिणी जमकर भापका ध्यान
करती है तो उसे ऐसा लगता है कि आए उसके सामने ही
खड़े हैं । उस समय जैसे ही आपका आलिङ्गन करनेके लिये वह
अपनी भुजाएँ ऊटकेसे बढ़ाती है वैसे ही उसकी देह उसकी
भुजाओंमें घा जाती है । मुझे तो ऐसा लगता है कि उसे
आपके विरहमें इस प्रकार कट पाती देखकर वे बादल भी
मानो दुखी होकर वर्षारूपी आँसू बहाकर रो रहे हैं ॥ ६१ ॥
हे हुए ! तुम्हींने उसे प्रेम दिया, तुम्हींने बहुत दिनतक
उसे प्यार किया और दुर्भाग्यवश तुम्हींने आज उसका मये
हाथे अपनाकर किया (उसकी सौतसे प्रेम किया)
इसलिये उसे क्रोध आ गया । ऐसा दुःसह क्रोध बादलोंकी
बातोंसे धाँधे ही शान्त होता है । अतः जबतक तुम उससे
जाकर मिला न लोगे तबतक वह बेचारी गला फाड़-फाड़कर
रोती ही रहेगी ॥ ६२ ॥ निश्चय ही कामके वाश कहे तोके
होते हैं क्योंकि उस कमलमयनीके बड़े-बड़े कठोर स्तनोंसे
सदा ठके रहनेवाले हृदयको भी वे फाँड़े डाल रहे हैं ॥ ६३ ॥
अपने प्रियतम (तुम्हारे) दूर हो जानेपर जब आकाशमें
अन्धकारको नष्ट करनेवाला तथा स्वच्छ चाँदनी मिलनेवाला

सजेजसि त्वयि गते दूरं निजमेवसि । श्वासं कैरवको-
रकीयति मुखं तस्यास्सरोजीयति क्षीरोदीयति मन्मथो
मृगदृशो दृक्चन्द्रकान्तोयति ॥ ६४ ॥ धत्ते दृष्टिम्धौ-
तधिभ्रमसथां सा पुष्पलावीजने चैत्रस्य लणमादरेण
महता मौहृत्तिकान्पृच्छति । श्येनाबुध्यति कोकिल-
ध्वनिरुपा सम्यज्ज सीलाशुकाग्निशोक त्वयि दुर्लभे
किमपरं शक्यं वराक्या तथा ॥ ६५ ॥ धातुः शिल्पा-
तिशयनिकषस्थानमेषा मृगाक्षी रूपे देवोऽप्ययमनुपमो
दत्तापादः स्मरस्य । जातं दैवास्सदृशमनयोः सङ्गतं
यत्तदेतच्छृङ्गारस्योपनतमधुना राज्यमेकातपत्रम् ॥ ६६ ॥
न सवर्णो न च रूपं न संस्क्रिया नैव सा प्रकृतिः ।
बाला त्वद्विरहापवि जातापभ्रंशभावेण ॥ ६७ ॥ न हारं
नाहारं कलयति विहारं विधमिव स्मरन्ती सा रामा
सुभग भवतश्चागमदिनम् । परं क्षीणा क्षीना परम-

चन्द्रमा दिखाई पड़ा उस समय उस सुगमयनीकी सौँसे
कुसुमकी कलियोंके समान लिलाने लगीं अर्थात् बढ़ने
लगीं, मुख भी कमलके समान मखिन होने लगा, काम-
पीड़ा भी चौरसागरके समान बढ़ने लगी तथा आँखें भी
चन्द्रकाण्ठ मणिके समान गीली होने लगीं ॥ ६४ ॥
वह विरहिणी हृदयकीसे भरी आँखोंसे चैतमें फूल तोड़नेवाली
माखिनोंको देखती है, बड़े आदरसे ज्योतिषियोंसे पूछती
है, कोयलकी धुक सुनकर क्रोधित होकर लेकके सुगोंको
खोद देती है और बाजको देखकर प्रसन्न होती है । हे
निर्दयी ! तुम्हारे न मिलनेपर वह बेचारी और कर ही क्या
सकती है ! ॥ ६५ ॥ यह सुगमयनी मझाकी कलाकी कसौटी
है तथा कामदेवको पराजित करनेवाले आप भी सुन्दरतामें
वेजोव हैं, संयोगवश जो आप दोनोंका समागम हो गया है
इससे शृङ्गार रसका इस समय एकद्वय राश्व हो गया
है ॥ ६६ ॥ तुम्हारे विछोह-रूपी विपत्तिमें पड़ी हुई वह
नवेली बिगड़े हुए शब्दोंके समान हो रही है क्योंकि न तो
उसका पहलेका-सा रङ्ग रह गया, न सुन्दरता रह गई, न
शरीरकी सजावट रह गई और न वह पहलेका-सा स्वभाव ही
रह गया तथा अपभ्रंश शब्दोंकी भी कहीं समानता नहीं
मिलती, न तो शुद्ध शब्दोंकी भाँति उनका रूप ही बदला,
न तो सूत्रोंसे उनकी सिद्धि ही होती और न उनका कुल मूल
ही मिलता ॥ ६७ ॥ हे सुन्दर ! वह दुखी, दयनीय, दुखिया,
सुन्दर मुखवाली तथा वखल नेत्रवाली रमणी तुम्हारे

सुखहीना सुवदना कुहपद्मलौवण्यपलनयनाङ्गीकृत-
गतिः ॥ ६८ ॥ मायं सुञ्जति सुध्रुवामपि तनुन्यागे
धियोऽगज्वरस्तेनाहं विदिताञ्जलिर्यदुपते पृच्छामि सन्यं
वद । ताम्बूलं कुसुमं पटीरमुदकं यद्वम्भुभिर्दायते
स्यादत्रैव परत्र तस्मिन्मुचितज्वालावलीदुःसहम् ॥ ६९ ॥
निश्वासा अपि मन्दतां वत गताः को हन्त वाचां
कमस्ते ते वरुणविभ्रमा अपि हताः सञ्चारशैलो क
सा । श्रोतयोर्वा स्तनयोः पृथुत्वमगमत् कुशोदरं तम्
पुनश्चक्ष्पादैकगतेर्दशेयमधुना देवः प्रमाणं पुनः ॥ ७० ॥
नियसति यदि तव हृदये सा बाला सुभग वज्रघटि-
तेऽस्मिन् । तत्कालं कुशलं तस्या मदनशरैस्ताड्यमा-
नायाः ॥ ७१ ॥ मीरागा मृगलाञ्छने मुञ्चमपि स्वं
नेकते दर्पणे अस्ता कोकिलकृजितादपि गिरं नोन्मुद्र-
यान्याममः । शिवं दुःसहदाहदायिनि धृतद्वपापि
पुष्पायुधे सा बाला सुभग प्रति प्रतिपदं मेमाधिकं

पुष्पति ॥ ७२ ॥ नैष्ठुर्यं कलकण्ठकोमलनिर्गं पूर्णस्य
शोतयतेस्तिग्मन्वं वत दक्षिणस्य मकनो दाक्षिण्यहा-
निश्च ताम् । स्मर्तव्याकृतिमेव कर्तुमबलां सञ्जाहमा-
तन्वते तद्विभ्रः कियते तृणादिचलनाद्भूतैस्त्वदासिभ्रमैः
॥ ७३ ॥ परस्मिन्नपि गोष्ठौपु कान्त त्वन्नासि विभ्रते ।
सहसा सज्जकर्णाः सां जायते मृगलाचना ॥ ७४ ॥
पालिनीरयकद्वयः स्तनतटी निष्कम्पमानांशुका दृष्टि-
निश्चलतारका समभवन्निम्नाण्डवं कुण्डलम् । कश्चि-
न्नापितया समं कृतनोर्भेदो भवेन्नो यदि त्वन्नामस्म-
रणेन कोऽपि पुलकारम्भः समुज्जृम्भते ॥ ७५ ॥ पोयू-
वाकरमालतीमलयभृमुष्पा मताः शीतला हन्तामी
अपि तीव्रदाहकतया जाना ममाशास्तये । तन्मन्ये
सुभग त्वमेव शरणं वैद्यस्तवैवं करस्पर्शं भेषजमित्य-
नुग्रहदृश तां साम्प्रतं जीवय ॥ ७६ ॥ प्रभो याचे
मिसां वत नताशरासः वामहर्मिदं न चदस्ति प्रीतिः

आनेके दिन गिनती हुई हार नहीं पहनती, भोजन नहीं
करती तथा लेकर भी पिय समझता है । इस प्रकार वह
अमावास्याके चन्द्रमाके समान समाप्त हुई जा रही है ॥ ६८ ॥
हे यदुर्वरके स्वामी ! सुन्दर भीड़वाली नवेलियोंको वह
वियोगका ताप देह-स्वाग करनेपर भी नहीं छोड़ता इसलिये
मैं हाथ जोड़कर आपसे पृच्छती हूँ । आप सब बताइए कि
पान, कूज, चन्दन तथा अन्न आदि पदार्थ जो भाइयों
भाई-कण्डु दिया करते हैं उसके साथ क्या वह वियोगका
असह्य ताप भी परलोकमें प्राप्त होता है ? ॥ ६९ ॥ एक
मात्र आपके चरणमें शरण पानेवाली उस विरहिणीकी
बोलीकी तो बात क्या, उसका साँस भी धीमी पड़ गई है,
वह चितवनकी सुन्दरता और चमनेका दङ्ग तथा नितम्ब
और स्तनोंकी मोटाई भी न जाने कहाँ चली गई, पेटकी
क्या बात है ! उसकी ऐसी दशा हो गई है, आगे
आप जो उचित समझें ॥ ७० ॥ हे सुन्दर ! कामदेवके
बाण ठले देहे बाझ रहे हैं । अतः यदि आपके इस वज्रसे
बने हृदयमें वह रहने लगे, तभी उसका कल्याण हो
सकता है ॥ ७१ ॥ उस नवेलीको चन्द्रमासे पूजा हो गई
है, अतः वह चन्द्रमाके समान दिखाई देनेवाले दर्पणमें
अपना छिंद नहीं देखती, कोयलकी कूकते डर जानेके कारण
अपने मुखसे भी बेसी बोली नहीं निकालता पर अचरज तो
यह है कि असह्य ताप देनेवाले कामदेवसे विरोध करती हुई

भी वह अपने प्रियतमपर अत्यधिक प्रेम बघाती जा रही है
॥ ७२ ॥ कोयलकी कूकको निदुरता, पूरा चन्द्रमाकी गर्मी,
दक्षिणके पवनकी कड़ोरता, ये सभी उस नवेलीको समाप्त करनेके
लिये कमर कसे हुए हैं, पर निनके-पत्ते आदिके छेदकनेसे जो
उसे आपके आनेका भ्रम हो जाता है वही रसके प्राण देनेमें
बाधक हो जाता है ॥ ७३ ॥ हे प्रियतम ! जहाँ भी कुछ अनुप्य
हृदयमें बैठे रहते हैं और उसमें आपका नाम कोई ले लेता है
तो वह मृगनयनी वहाँ ही अपने कान लगाने लगती है ॥ ७४ ॥
उसके हाथके कंगन बजते नहीं, स्तनोंपर ठका हुआ हस्त भी
नहीं छिन्नता, मेलोंकी पुतलियाँ एकटक रह जाती हैं तथा कुंडल
भी नहीं झोळते । अब यदि तुम्हारे नामके स्मरणसे उसकी
देहमें रोंगटे न उभर आते तो विरहिणी नवेलीमें और उसमें
कोई आभार न रह जाता ॥ ७५ ॥ हे सुन्दर ! मैं जानती हूँ कि
चन्द्रमा, माजनी और चन्दन से बड़े शीतल होते हैं । किन्तु हाय !
उस विरहिणीके सन्तापकी तो ये सब भी अत्यधिक दाहक होनेसे
नहीं शान्त कर पाते । तब तो मैं समझती हूँ कि आप ही उसकी
शरण हैं, आप ही वैद्य हैं तथा आपके हाथका स्पर्श ही उसकी
औषधि है । अतः आपकी कृपाभरी चितवनसे इस समय चञ्चक
उमे जिहा दीजिए ॥ ७६ ॥ हे नाथ ! मैं सिर मवाकर आपसे भीख
मँगती हूँ कि यदि उसपर आपका प्रेम न भी हो तब भी आप
इस समय उसपर दया कंजिए क्योंकि वह भोजे हृदयवाली
आपका नाम अपनी हुई प्राण छोड़ देगी । अतः, हे पुण्यवात्सा !

कुरु तदपि कारुण्यमधुना । जपन्ती त्वां प्रार्थोस्त्यजति
यत सा मुग्धहृदया तदभ्येत्येदानीं वितर नयने
तत्र सुरुतिम् ॥ ७७ ॥ प्राणश्च तव विरहिणो हिम-
करकिरणेषु हर्म्यमिलितेषु । सन्तापनि सदाहो
मुञ्चति निचयं चकाराणाम् ॥ ७८ ॥ प्रादुभूते
नवजलधरे त्वत्पथं द्रष्टुकामाः प्राणाः पङ्केत-
दलदशः कण्ठदेशं प्रयान्ति । अन्यत्किं वा तव
मुखविधुं द्रष्टुमुर्ह्यय गन्तुं यत्नः पक्षं सृजति यिसिनी-
पल्लवस्य चञ्चलेन ॥ ७९ ॥ विभ्राणां हृदये त्वया विनि-
हितं प्रेमाभिधानं नयं शल्यं यद्विदधाति सा विधु-
रिता साधो तदाकर्ण्यताम् । शेते शुष्यति नाभ्यति
प्रलपति प्रमत्तायति प्रह्लाति भ्राम्यत्युल्लुठति प्रणश्यति
गलत्युन्मूल्यतेति श्रुत्यति ॥ ८० ॥ भयता मदना विज-
तस्तेन च निहताऽथला यकान्सुमुख । अथ यदि
शरणं भुवनत्रये भवान्केयलां दापयतः ॥ ८१ ॥ मम
रूपकीर्तिमहरद्भुवि यस्तदनुप्रविष्टहृदयेयमिति । त्वयि

मत्सरादिव निरस्तव्यः सुतरां क्षिणोति अलु तां
मदनः ॥ ८२ ॥ मृगशिशुदशस्तस्यास्नापं कथं कथ-
यामि ते ददनपतिता दृष्टा मूर्तिमेया न हि वैधवी ।
इति तु विवृतं नारीरूपः स लोकदृशां सुधा तव
शठनया शिल्पात्कर्णो विधेर्विघटिष्यते ॥ ८३ ॥ मृण-
लीव क्षामा तदपि तव साक्षात्पविधुरा मुहुः स्मारैर्वा-
सैर्गलनिधुतेस्ताडिततरा । मज्जन्येषा मूर्च्छामथ यदि
न तामेत्य सहसा विदध्यास्तद्रक्षां कथमिव भवित्री
स्मरमनाक् ॥ ८४ ॥ मुहुर्व्यजनवीजनैस्सरसचन्दनासेचनै-
स्सगेज्जलवेष्टनैरपि न वेष्टते सुन्दरी । तथापि तव
नामनि प्रियसखाभिरावेदितं निवेद्यति जीवितं श्रवण-
सीक्षि रामोद्गमः ॥ ८५ ॥ या चन्द्रस्य कलङ्किनो जनयता
स्मेराननेन त्रपां घाघा मन्दिरकीरसुन्दरगरो या
सधेदा निन्दति । जिःष्वासेन तिरस्कराति कमलामो-
दान्विता न्यानिहान्सा तैरेव रहस्त्वया विरहिता
काञ्चिदृशां नोपते ॥ ८६ ॥ या दक्षिणा त्वमस्याम-

अदपद चलकर उसपर अपनी दृष्टि डाल आहू ॥ ७७ ॥ हे प्राण-
माय ! वियोगका सन्ताप न सह सकनेके कारण वह विरहिणी
जनपर पक्षी हुई चन्द्रमाकी किरणोंका समाप्त कर डालनेके
लिये वहाँ चकोरोंका समूह छोड़ देती है ॥ ७८ ॥ नये बादलोंके
विसाई देते ही तुम्हारा मार्ग देखनेके लिये उस कमलवनीके
प्राण गलेतक आ जात हैं । आधर क्या कहूँ ? तुम्हारा मुखचन्द्र
देखनेकी चाहमें उदकर तुम्हारे पास पहुँचनेके लिये उसका
वचःस्थल अपने ऊपर रखले हुए कमलके पत्तोंके रूपमें मानो
पहुँच गया रहा है ॥ ७९ ॥ हे सज्जन ! उसके हृदयमें तुमने जो
प्रेमकी गई कील गढ़ा दी है उसे धारण करती हुई वह क्या
करती है उसे सुनिश्चय ' वह खेततो है, सुखती है, लिख रहती
है, बकती है, अप्रसन्न रहती है, इधर-उधर फिरती रहती है,
चलकर खाती है, छटपटाती है, मरी-सी हो जाती है, गलने-सी
लगती है, मूर्च्छित हो जाती है और इस प्रकार दुबकी जाती
आ रही है ॥ ८० ॥ हे सुन्दर मुखवाले ! आपने जिस
कामदेवकी जीत लिया है वह चन्द्रार्क उस चबलाकी
मारे डाल रहा है, अब यदि तीनों ओरोंमें उसे कोई
बचानेवाला है तो उसके एकमात्र शिष्यम आप हो हैं ॥ ८१ ॥
जिन्दुर कामदेव मानो इसी चाहसे उसे घोर कष्ट देता आ
रहा है कि जिस छेलेने मेरी सुन्दरता तथा कीर्तिको नीचा
दिखाया है उसीसे इस नवेलीका मन जगा है ॥ ८२ ॥ उस

सुगन्धकी सन्तापकी दशाका मैं किस प्रकार क्यों कहूँ
क्योंकि मैंने घागमें पड़ी हुई चन्द्रमाकी मूर्ति देखी ही नहीं,
नहीं तो उसकी समता दे ही डालती । हाँ, इतना अवश्य
जानती हूँ कि लोगोंका चोंचोंके लिये समान वह
महाकी एक प्रति उत्तम कहा जाती हुई नवेली तुम्हारी नाचताके
कारण धूमती चली आ रही है ॥ ८३ ॥ एक तो वह ऐसे ही
कमलनालकी भाँति दुबकी तथा उजली है, दूसरे तुम्हारा
समागम भी उसे नहीं मिला रहा है । तिसरा कामदेव उसे
अपने बिप-बुद्धे बाँधोंसे ऐसा वेध रहा है वह मूर्च्छित हो-ही
आ रही है । अब भी यदि चलकर तुम उसकी रक्षा नहीं करते
तो तुम ही थोड़ा सोचो कि उसकी क्या दशा होगी । ॥ ८४ ॥
उस सुन्दरीकी यह दशा हो गई है कि बार-बार पङ्का डुलाने,
गीले चन्दनका लेप करने और कमलके पत्ते छपेटनेसे भी वह
नहीं हिलती-डुलती । वस जब सत्सिर्पा उसके कानमें तुम्हारा
नाम सुनाती है तो उसके कानके पास उठे हुए रोंगटे देखकर
ही लोग समझते हैं कि वह आवित ॥ ८५ ॥ वह नवेली
अपने निर्मल मुखसे जिस चन्द्रमाको लज्जित किया करती थी,
अपनी मीठी बोलीसे घरके जिस सुनोको मधुर बाणीकी नीचा
दिखाती थी तथा अपनी सुगन्धित साँसोंसे कमलकी सुगन्ध
भरे जिस पवनकी नीचा दिखाती थी, वे ही सब आज तुम्हारे
बिछोड़में उस नवेलीकी दुर्दशा फिर डाल रहे हैं ॥ ८६ ॥ जो

क्षिणो दक्षिणस्तदितरस्याम् । जलधिरिव मध्यसंस्थो
न चेतयोस्सदृशमाचरति ॥ ८७ ॥ यावद्यावद्भवति कल्या
पूर्वकामः शशाङ्कस्तावतावदयुतिमयवपुः क्षीयते
सा मृगाक्षी । मन्ये धाता घटयति विधुं सा मादाय
तस्यास्तस्माद्यावद्य भवति सखे पूर्णिमा तायदेहि
॥ ८८ ॥ राकासुधाकरकरैर्नलिनीदलैश्च नीहागद्गारघ-
नसारभरैः किमेतैः । किं वा भयेन हरिचन्दनपङ्कजेकैर्न
त्वां घिता मृगदृशः पतितापशान्तिः ॥ ८९ ॥ रुष्टे का
परपुष्टे मन्ये का हन्त मारुते खर्चा । स्वयि गतयति
हृदये जौघतदातापि जीवनं हरति ॥ ९० ॥ वर्षमिति
स्तनयितव्यो न सरले धारागृहे वर्तते गर्जन्ति प्रति
कूलवादिनि न ते द्वारि स्थिता दन्तिनः । इत्येवं
गमितो घनव्यतिकरः सा राजपुत्री पुनर्यातां याति
कदम्बपुष्पसुरभी केन प्रतारिष्यते ॥ ९१ ॥ पाचस्ता-
वदेषाते विकयुषा लम्बालकानां श्रियः भृङ्गाली

विरहादि चतुर्कलिका सौभाग्यमाशंसति किञ्चान्यन्क-
श्यामि निर्दय दशा नम्याम्यथा वर्तते निःशासानपि
हन्तुमिच्छति यथा करो वसन्तानिल ॥ ९२ ॥ विद्व-
न्नामि निवेदनं नय पुनं यद्वाचि तन्नाम्यथा दाप-
स्तेन तवापि कः परुषता युक्तैव ते चेतसि । किं त्वेय
प्रकृतैः तीव्र सरला त्वन्यमन्विता यलाऽधीना मुग्ध-
मतिः प्रयानि सुलिलं देयं त्वप्यन्यथार्थते ॥ ९३ ॥
धिपलपलकपालिः स्फीतसौभाग्यमन्तर्जनितजडिम-
काकुल्याकुलं व्यादग्न्ता । नय कितव शिष्यायामन्द-
कन्दर्पचिन्तारसजलनिधिमहा ध्यानलला मृगाक्षी
॥ ९४ ॥ विमुञ्चन्त्या प्राणांश्चिन्तविहृद्खासहनया
तथा मन्दिरं मे वटिनहृदयापश्चिममिदम् । अपन्यं
वालैका मम विधिहतायास्तलिलदा तथा तेथं सेव्या
व्यसनहृदयं दायन इति ॥ ९५ ॥ चिन्तधिपमः कामः
कामं तनुं कुक्ते तनुं दिवसगणनादक्षिणायं व्यपेतघृ-

तुम्हें चाहती है उसे तुम चाहते नहीं किन्तु जो तुम्हें नहीं
चाहती उसे तुम चाहते चित्ते हो । बीचमें रहनेवाला समुद्र जैसे
होना कूलोंसे समान व्यवहार रखता है वैसे तुम क्यों नहीं
करते ॥ ८७ ॥ हे मित्र ! पूर्णिमाके आयेसे पहले ही उसके
आकर मिल जाओ क्योंकि उषो-उषो चन्द्रमा एक-एक कलासे
बढ़ते जाते हैं त्यों-त्यों वह सुन्दर शरीरवाली नवेली दुबली होती
आ रही है । अतः, जान पड़ता है कि प्रकाश उसकी सुन्दरता
के-केसर ही चन्द्रमाको पुष्ट कर रहा है ॥ ८८ ॥ पूर्णिमाके
चन्द्रमाकी किरणों, कमलके पत्तों, पाका, मोतीके द्वार तथा
कपूरके ढेर, और कहनेमें हर किस बातका, यहाँतक कि
मन्दन बनके चन्दनके बने लेपसे भी उस मृगनयनीका सन्ताप
बिना तुम्हारे नहीं शांत हो सकता ॥ ८९ ॥ कांथिन कांयल
तथा भीमे कहनेवाले पवनकी तो बात ही क्या है, तुम्हारे
(प्राणनाथके) चले आनेपर जीवन (जल, प्राण) देनेवाला
(मेघ) भी उसका जीवन हरे ले रहा है ॥ ९० ॥ बरसात होते
समय तो उस राजकुमारीको हमसोम यह कहकर बहका लेती है कि
'हे भोके स्वभाववाली ! यह बादलोंके बरसनेका शब्द नहीं है,
बरनू घरमें फुहारे चल रहे हैं । हे उलटी बात भोलनेवाली !
ये बादल नहीं गरज रहे हैं बरनू द्वारपर हाथी चिंवाड़ रहे हैं ।'
अतः वर्षाका समय तो वह किसी-किसी प्रकार बिता लेती
है किन्तु खिले हुए कदम्बके कूलोंकी सुगन्धसे भरा हुआ जो
वर्षाका पवन इस समय वह रहा है उसके विषयमें उसे क्या

कहकर बहनाया जाय ! ॥ ९१ ॥ युवक कोयल उसकी कोली
क्षीन रहा है, भीरोंकी पीत उसके लम्बे-लम्बे शालोंकी शोभा
क्षीन रही है और चामका बीर उसके मांहागपर ताक लगाए
बैठा है, हे मित्रों ! मैं और कहाँतक उसकी दृशा बनाऊँ !
जब कठोर वसन्तका पवन उसकी भीति भी खिलनेकी मजबूर रहा
है ॥ ९२ ॥ हे विद्वान् ! मैं आपसे सामने क्या निवेदन करूँ ।
जो होगा सो ठीक ही होगा, उसमें आपका दोष भी क्या है ?
आपका चित्त जो कठोर हो गया है वह भी उचित ही है, किन्तु
वह सरल प्रकृतिकी भोली-भाली नवेली आपमें ही चित्त लगाकर
अब प्राण दे देना चाहती है । उसने आपसे यही प्रार्थना की
है कि 'मुझे आप पानी दे दीजिएगा' ॥ ९३ ॥ कामदेवकी
चिन्ताके महासागरमें डूबी हुई वह मृगनयनी जब तुम्हारा
ध्यान करने लगती है उस समय उसका शरीर रोमाञ्चित हो
उठता है, वह आनन्द-विभार होकर सीसी करने लगती है
तथा उसके मुँहसे ठीक-ठाक शब्द भी नहीं निकल पाते ॥ ९४ ॥
हे कठोर हृदयवाले ! बहुत दिनोंके विरहके दुःखको सहनेमें
असमर्थ होकर प्राण छोड़नी हुई उस नवेलीने तुम्हारे लिये
वह अन्तिम सन्देश भेजा है कि 'मेरे मरनेके पश्चात् मुझ
अभागिनकी पार्श्व देनेवाली मेरी सन्तान यही एक लड़की है
अतः इसकी सेवा करते रहना तथा इसे किसी प्रमादीकी न
दे बैठना' ॥ ९५ ॥ इस विरहके समय कामदेव भी प्रसन्न
होकर उसकी देह अत्यन्त दुबली किए बाक रहा है, निष्पूर

खोपमः । त्वमपि वशगो मानव्याधेर्विचिन्तय नाथ हे
 किसलयमृदुर्जीवत्येवं कथं प्रमदाजनः ॥ ६६ ॥ विरहे
 तव तन्वङ्गो कथं सपयतु क्षपाम् । दाहणव्यवसायस्य
 पुरस्ते भणितेन किम् ॥ ६७ ॥ विलासिप्रासीने प्रति-
 वसतिमध्यं त्वयि तदा दशां दातां कृत्वा गृहमनु
 पदान्येत्य कतिचित् । महत्त्वन्तर्वाति द्रुतमिति भवद्-
 शर्नधिया प्रदोषो द्वााराणां शनमिति तूया किस शमितः
 ॥ ६८ ॥ विलिम्प्येतस्मिन्मलयज्वरसद्रोणमहसा दिशां
 क्षकं चन्द्रे सुहृतमथ तस्या मृगरशः । दशोर्वाप्यः
 पाणां वदनमसवः कण्डकुहरे हृदि त्वं हीः पृष्ठे वचसि
 च गुणा एव भवतः ॥ ६९ ॥ विषलां निर्पोषितमपकि-
 यया समुपैति लक्षमिति सत्यमदः । अमृतस्रुताऽपि
 विरहाङ्गवतो यदमुं दहन्ति हिमरश्मिरुचः ॥ ७० ॥
 व्यजनं व्यजनं जलं जलं घनसारो घनसार इत्यापि ।
 अचराधगृहेषु सुभुवां कुररोणाभिष कातरो ध्यायिः

॥ १०१ ॥ शोकोत्पत्तिरशोकतः सुमनसो यद्वैमनस्यो-
 दया वैरस्यश्च रसालतो विकलता तावत्कलानां
 निधेः । किञ्चान्यन्नलदो भवत्यनलदो निर्णीतमुन्तोयते
 वामः केवलमेक एव न भवानस्यामशेषं जगत् ॥ १०२ ॥
 आसान्मुञ्चति भूतले विलुठति त्वन्मागंमालोकते
 दोर्घं रोदिति निक्षिपत्यविरतं क्षामां भुजवङ्गरीम् ।
 किञ्च प्राणसमा न काङ्क्षितवती स्वप्नेऽपि ते लक्ष्मं
 निद्रां धाम्नुति न प्रयच्छति पुनर्दग्धो विधिस्तामपि
 ॥ १०३ ॥ आलेषु प्रथिमा मुखं करतले गरुडस्थले
 पाणिद्वया मुद्रा वाचि विलोचनेऽश्रुपटलं देहे च दाहो-
 दयः । एतावत्कथितं यदस्ति हृदये तस्याः कृशाङ्गयाः
 पुनस्तज्जानासि ननु त्वमेव सुभग श्लाघया स्थिति-
 स्तत्र या ॥ १०४ ॥ आसंस्रुत्पति धांगभिन्नयनयोदृष्ट्या-
 भुभिः क्लाम्यान् स्वेदाभ्मासुषवाहिना करतलेनावजि-
 ता भ्लापति । इत्यालोपय तथा चलद्भनया तिपंकपत-

यमराज भी उसकी मृत्युके दिन गिन रहा है और तुम भी
 उससे लड़ बैठे हो, अतः हे नाथ ! तुम ही साक्षात् कांपलके
 समान कामका यह मर्त्या इस प्रकार कैसे जीवित रह पावेंगी
 ॥ ६६ ॥ यह दुबले शरीरवाली नवेली तुम्हारे बिछोहमें
 कैसे रात बिताये ? पर अरुणत क्षर व्यवहार करनेवाले तुम जैसे
 निदुरके सामने ये बातें कहनेसे क्या लाभ ! ॥ ६७ ॥ हे
 विष्वासा ! तुम्हें देखनेके लिये बड़े उत्साहसे यह हाथमें दीपक
 लेकर, बत्ती उकसाकर कुछ पग चला किन्तु जब उसने देखा
 कि तुम कुछ नवेलीयाके साथ राग-रगमें मस्त हो और
 पथन भा बंधु बेगसे उन सैकड़ों द्वारासे हाकर बह रहा है
 तो आपका दर्शन करनेके लिये क्या उसने मटसे हाथका
 दीपक महा जुझा दिया ? अथवा जुझा ही दिया ॥ ६८ ॥
 चन्दनके रसक समान चांदनी-वा छपसे जब यह चन्द्रमा
 सारा दिशाआके रूपमें इस मृगनवर्मा नवेलीके पुच्छ हो जाये
 डाल रहा था उस समय उसके नेत्रोंमें आँसू, हाथोंमें मुँह,
 गलमें माथ, हृदयमें तुम, पाँडपर जाज और वचनोंमें तुम्हारे
 गुण ही थे ॥ ६९ ॥ यह सच है कि अनुचित रीतिसे उपयोग
 करनेपर सभी वस्तुएँ बिप हो जाती हैं क्योंकि आपके बिछोहमें
 चन्द्रमार्गी ये अमृतकी धार बहानेवाली किरणें भी उसे अजाए
 डाल रही हैं ॥ ७० ॥ 'पट्टा जाओ पट्टा, अल जाओ अल,
 कपूर जाओ कपूर,' इस प्रकार अन्तःपुरमें कुररीके समान
 बिलसती हुई नवेलियोंके दुःख-भरे मन्द गूँज रहे हैं ॥ १०१ ॥

जबकि वृक्षसे उसे शोक होता है, फूलोंसे उसका वैर है,
 आमसे उसे पृथा है, चन्द्रमाको देखकर वह व्याकुल हो जाती
 है । अधिक क्या, उशीर (अक्ष) से भी उसे ताप ही होता
 है । फिर भी, मैंने तो यह निश्चय किया है कि यदि आप
 उसके प्रतिकूल न रहें तो सारा संसार प्रतिकूल होकर भी
 उसका कुछ नहीं बिगाड़ पावेगा ॥ १०२ ॥ हे प्राणधार ।
 वह नायिका लम्बी-लम्बी सर्तों खेती है, धरतीपर खोदती
 है, तुम्हारा मार्ग देखती रहती है, ऊँचे स्वरसे बिचाप करती
 है, अपनी पतली-पतली बाँहें हजर-उभर फैलती रहती है तथा
 स्वप्नमें तुम्हारा समागम पानेकी इच्छासे वह चाहती है कि
 नींद भा जाय । पर उसका दुर्भाग्य उसे नींद भी नहीं आने
 देता ॥ १०३ ॥ हे सुन्दर ! उस विरहिणीकी सर्तों फूल रही
 हैं, वह हथेलीपर गाऊ भरे रहती है, उसके गालोंपर पीलापन
 छा गया है, कोखी बन्द हो गई है और नेत्रोंमें आँसुओंकी बाढ़
 भर रही है । इतना तो मैंने बता दिया, जब उस दुबले
 अज्ञवालाके हृदयमें क्या है और उस हृदयकी क्या सराहनीय
 दशा है, यह तो केवल तुम्हीं जानते हो ॥ १०४ ॥ हे मित्र !
 आपकी कोबाखता उसके आँसुओंके बेगसे दृढ़ने लगती है,
 नेत्रोंके गरम-गरम आँसुओंसे मुरझाने लगती है तथा थोड़ा
 पसीमते हुए हाथ फिरानेसे भी कुम्हजाने लगती है, अतः
 जब उसने यह देखा तो वह उस खताकी ओरसे अपना मुँह
 केरकर, तिरकी चितवनसे उसे देखती हुई, अपने हाथ

क्षेत्रया दुरीत्सारितहस्तया तव खले कीडालता सिन्ध-
ते ॥ १०५ ॥ सखि दयितमिहानयेति सा मां प्रहितवती
कुसुमेषुणाभितप्ता । इदमहदया न नाम पूर्वं भवदु-
पकण्डमुपागतं विवेद ॥ १०६ ॥ सखीभिर्सां याव यत
नतशिरास्त्वामिदमहं न वेदस्ति प्रीतिः कुरु तदपि
कारुण्यकणिकाम् । अवस्था सा तस्याः सुकृतमय-
मस्यां किमपरं प्रमोहो विभ्रामस्त्वमय मरणं वा प्रति-
कृतिः ॥ १०७ ॥ सङ्केतकुञ्जमुषि सा शयनापघा-
नव्यालङ्कृतं सुभग कुर्यादलनं न वेद । तत्कण्डलमय-
मखन्दनगन्धलुब्धस्तत्रैव निश्चलमुवासचिराय साऽपि
॥ १०८ ॥ सम्प्राप्तेऽवधिवासरे कणमसा त्वहर्मवता-
यनं वारम्भारमुपेत्य निष्कपतया निश्चित्य किञ्चिद्वि-
रम् । सम्पत्येव निवेद्य केलिकुररीः साकं सखीभिः
शिरोमार्गव्याससहकारकेण करुणः पाणिप्रहो निमित्तः

॥ १०६ ॥ सा न ज्ञाति न चानुलिम्पति न वा
केशेषु धत्ते स्त्रजं न क्रोडासु मनो दधाति न सखीग-
लोकते चाटुषु । किं तु न्यस्य मुखाम्बुजं करनले
वाष्पाशमार्गेक्षणं निःश्वासग्लपिताधरं च शयने
जगति ते चिन्तया ॥ ११० ॥ सा रोमाञ्चति सोम्क-
रोति विलपन्त्युन्कम्पते ताग्याति ध्यायन्त्युन्मत्त
प्रमीलति पतन्त्युद्याति मूर्च्छत्यपि । एतावत्यतनुञ्चं
धरतनुजीवेन्न किं ते रसान्स्वर्धद्यप्रतिम प्रसीदास
यदि न्यकोऽन्यथा हस्तकः ॥ १११ ॥ सा विरहदहन
दुना मृत्वा मृत्वापि जोयति वराका । सारीय कितव
भवतानुकूलिता पातिताक्षेण ॥ ११२ ॥ सा सयेयं
रका रामं गुञ्ज न तु मुखं वहति । पवनपटोस्तव
रागः केवलमास्ते शुक्रस्यैव ॥ ११३ ॥ सा सुन्दर तय
विरहे सुतनुयिन्मात्रलोचना सपदि । एतावताम-

पूर किए हुए ही उसे सींचती है ॥ १०५ ॥ कामके
बाणोंसे बेबी हुई उस तुम्हारी प्रियतमामे यह कहकर
मुझे तुम्हारे पास भेजा है कि 'हे सखी ! मेरे प्रियतमको वहाँ
ले आओ !' किन्तु उस हृदय-युन्याने यह नहीं समझा कि
पेसा कहनेसे पहले हा उसका हृदय आपके पास पहुँच चुका
॥ १०६ ॥ मैं आपको प्रणाम करके आपसे अपनी सखीके
छिये यह भीक्ष माँग रही हूँ कि यदि आपका उसपर प्रेम
नहीं है तब भी उसपर कुछ तो दया करनी ही चाहिए क्योंकि
इसकी दशा बड़ी शोचनीय है । दूसरा कुछ पुण्य तो उसका
दिखाई नहीं देता, जब वह मूर्च्छित होती है तभी उसे चैन
मिलता है । इस प्रकार उसका दुःख दूर करनेका या तो
मृत्यु ही उपाय है या आप ही ॥ १०७ ॥ हे सुन्दर ! तुमने अपनी
प्यारीसे मिलनेके लिये जिस काड़ीमें सङ्केत किया था वहाँ
जब वह पहुँची तो वहाँ पक्षे हुए सोंपको तकिया समझकर
उसीपर सिर रखकर छेद गई और सर्प भी उसके गलेमें
खरो हुए चन्दनकी सुगन्धके शोभसे बड़ी देरतक बिना हिले-
झुके वहीं पड़ा रह गया ॥ १०८ ॥ हे निधुर ! जब तुम्हारे
आनेका अन्तिम दिन आ गया तो तुम्हारा मार्ग देखनेके लिये
वह बार-बार झरोखेपर गई किन्तु जब तुम दिखाई न दिए
तो बहुत देरतक सोचकर उसने अपने मनमें कुछ निश्चय
किया, इसके पश्चात् अपने साथ खेजनेवाला कुरियाँका
बिधा देकर रोती हुई, सखियोंके साथ जोटी-सी माधवी जताका
आमके वृक्षके साथ विवाह कर दिया, इसलिये कि कहीं मेरे

मरनेके पश्चात् मेरा ठाना हुआ वह काम रह न जाय ॥ १०९ ॥
इस समय वह विरहिणी न तो स्नान करती, न शरीरको चन्दन
आदिके छेपसे सजाती, न बाज़ोंमें माला गँथती, न खेजमें मन
जगाती और न आमाद-प्रमादकी बातोंमें हो सखियोंकी ओर
देखती बरन् हथेलापर अपना मुसकमल रखकर आँखोंमें आँसू
भरकर गरम-गरम साँससे आँखोंको झुकसाती हुई आपका
चिन्तामें बिड़ीनेपर जागती हुई पड़ी रहती है ॥ ११० ॥ हे
अरिक्कीकुमारके समान (सुन्दर तथा बँध) ! उसका शरीर
रोमाञ्चित हो उठता है, वह सी-सी करती है, धिक्कती है,
काँपती है, उदास हो जाती है, आँखें मूँद लेती है, गिरती है,
उठती है तथा मूर्च्छित हो जाती है । इस प्रकारकी काम-वेदनामें
वह सुन्दरी आपसे रस (प्रेम, प्रीति) पाकर ही जी सकती
है । अतः यदि आप उसपर प्रसन्न न होते तो यही कहना
होगा कि आपने अपना हाथ (बल) खो दिया ॥ १११ ॥
हे पूर्ण ! विरहकी अग्निसे तपो हुई वह बेचारी मर-मरकर
खी रही है, तुमने उसपर चितवन बजाकर उसे मैवाके समान
अपने वसमें कर लिया है ॥ ११२ ॥ वह हँसुचोके समान
सारे शरीरमें तो राग (प्रेम, जज़ाई) धारण करती है पर
मुँहपर नहीं और तुम बात बनानेमें बड़े चतुर हो इसलिये
सुमोकी भाँति तुम्हारे केवल मुखमें ही राग (प्रेम, जज़ाई)
है (हृदयमें नहीं) ॥ ११३ ॥ हे सुन्दर ! तुम्हारे बिलोहमें
हसने बड़े नेत्रोंवाली उस सुन्दरीकी सहसा हसने ही दिनोंमें
वह दया हो गई ॥ ११४ ॥ हे भाग्यशाली ! तुम्हारी ध्वजा

वस्थां याता दिवसैरियन्मात्रैः ॥ ११४ ॥ सुभग त्वत्क-
थारम्भे कर्णकरद्वितिलालसा । उज्ज्वलभवदनाम्भोजा
भिनत्याङ्गानि साङ्गना ॥ ११५ ॥ सौधादुद्विजते त्यज-
त्युपवनं द्वेष्टि प्रभामैन्दवीं द्वारात्रस्यति चित्रकेलिस-
वसो वेषं विषं मन्यते । आस्ते केवलमग्निनीकिसलय-
प्रस्तारशम्यातले सङ्कल्पोपनमन्त्वदाकृतिरसायत्नेन वि-
त्तेन सा ॥ ११६ ॥ स्पृशन्त्याः क्षामन्त्यं मदनशरदङ्कव्यति-
करात्कुरङ्गाद्यास्तस्याश्रयं सुभग कौतूहलमिदम् ।
अपूर्वेति आसात्परिहरति तां केलिहरिणी न विरवेऽ-
प्याभ्यासं दधति गृहलीलाशकुनयः ॥ ११७ ॥ स्मरद्वय-
निर्मितं गूढमुनेतुमस्यास्तुभग तव कथायां प्रस्तुतायां
सखीभिः । भवति विततपृष्ठोदस्तपीनस्तनाग्रा ततश्च-
लयितवाहुर्जम्भितस्साङ्गभङ्गः ॥ ११८ ॥ स्मरशरशत-
विधुराया भणामि सख्याः कृते किमपि । लणमिह
विश्राम्य सखे निर्दयहृदयस्य किं वदाम्यथवा ॥ ११९ ॥
हस्ताम्भोजे वदनमलकानायताभ्याहुमूले द्वारि स्वैरं

होते ही वह नवेली काम कुजलाने लगती है, उसका मुखकमल
जैभाई लेने लगता है तथा वह देह तोड़ने लगती है ॥ ११४ ॥
इस समय वह चिरहिणी नवेली महलोंसे घबराती है, उसने
पासका बगीचा भी छोड़ दिया है, वह चन्द्रमासे बाह्र करने
लगती है, द्वारकी आंर देखकर वह डर जाती है तथा चित्रमें
बने हुए क्रीड़ा करनेवाले पुरुषके वेषको विषके समान देखती
है । अब वह केवल कमलके कोमल पत्तोंसे बने बिछौनेपर
पड़ी-पड़ी भ्राममें देखे हुए आपके स्वरूपमें मन लगाए बैठी
रहती है ॥ ११५ ॥ हे सुन्दर । कामदेवके पाणोंका चाटसे
दिन-दिन दुबली होती हुई उस मृगनयनी चिरहिणीकी वह
धरा हा गई है कि खेलकी हरिया। उसे पराई समझकर डरके
मारे बाह्र देती है तथा घरके सब खेलके पक्षी भी उसे देखकर
न पहचाननेके कारण घबरा जाते हैं ॥ ११६ ॥ उसकी छिपी
हुई काम-पांडा उकसानेके लिये जब सखियों तुम्हारा चचा
करने लगती हैं, उस समय वह नवेली जैभाई तथा जैगद्दाई
लेती हुई अपनी सखीकी पीठ अपने स्तनोंसे दबाती है
तथा मुजाई फैलाकर उसे लिपटा लेती है ॥ ११७ ॥ कामदेवके
सैकड़ों बाणोंसे बिधी हुई उस सखीके विषयमें मुझे आपसे कुछ
कहना है । आप थोड़ी देर विश्राम कर लें सब कहूँ । किन्तु हे
मित्र ! निन्दुर हृदयवालेके सामने कुछ कहनेसे लाभ ही क्या
है ! (यतः कुछ नहीं कहती) ॥ ११८ ॥ हथेलीपर मुख, कोखमें

नयनमधरे तर्जनीं सम्निधाय । दीर्घोच्छ्वासं धिरत-
विषया स्वादमुत्कण्ठितोष्णं मुग्धाक्षी त्वां हृदि धिद्व-
धती वाग्धमाविष्करोति ॥ १२० ॥ हारावशेषा ननु
कण्ठनाला त्वन्मात्रशेषा रसना तदीया । लावण्यशेषा
तनुमात्रयष्टिस्त्वङ्गानशेषं परमं तदायुः ॥ १२१ ॥

दूती प्रति नायिकाप्रश्नाः—अथलाशरणं जगन्त्रये पर-
मेको दयितोऽग्निसाक्षिकः । अथ सोऽपि यदा न
सम्मुखो वत किं दूति सुखं ततोऽन्यतः ॥ १ ॥ अल-
मलमघृणस्य तस्य नाम्ना पुनरपि खैव कथा गतस्त-
कालः । कथय कथय वा तथापि दूति प्रतिवचनं
द्विपतोऽपि माननीयम् ॥ २ ॥ उज्ज्वालयन्त्या दयितस्य
दूतीं यथा विभूषाम्ब निवेशयन्त्या । प्रसन्नता कापि
मुखस्य अङ्गे वेषधिया नु प्रियवातंथा नु ॥ ३ ॥ कथय
निपुणे कस्मिन्ऽष्टः कथं नु किर्याचरं किमभिलिखितं
किं तेनोक्तं कदा स इहैष्यति । इति बहुविधप्रेमाला-
पप्रपाञ्चितविस्तराः प्रियतमकथाः स्वल्पेऽप्यर्थे

बिखरे हुए नाक, हारपर आँकें तथा ओढ़पर तर्जनी जैगद्दी
रसकर लम्बी-लम्बी साँसें खींचती हुई, सभी विषयोंसे वैराग्य
करती हुई तथा तुमसे मिलनेकी आरपगत चाहते भरी वह
सुनयनी नवेली, तुम्हारा ही भ्राम करती हुई बाँध बहाली रहती
है ॥ १२० ॥ उसके गलेमें केवल हार, उसकी जीभमें केवल
तुम्हारा नाम और उसकी दुबली-पतली देहमें सुन्दरता-मात्र
रह गई है तथा उसकी आधु तुम्हारे भ्रामके कारण ही बची
हुई है ॥ १२१ ॥

दूतीसे नवेलीके प्रश्न : हे दूती ! तीनों लोकोंमें
बड़ी एक प्रियतम मुख अदलाकें लिये शरण है जिनके साथी
अग्नि हैं और जब वे ही रुठ बैठे हैं तो तुम्हकी आशा कहाँसे
की जाय ! ॥ १ ॥ हे दूती ! उस निर्दयाका नाम भी न लेना,
न लेना ! तुम फिर उसकी चर्चा चलाती हो ! अरे, वह समय
नहीं रहा ! अच्छा, फिर भी बहो, कहो, क्योंकि शत्रुके उच्छरका
भी आदर तो करना ही चाहिए ॥ २ ॥ कोई नवेली पतिकी
मेजी हुई दूतीसे बातें भी करती जाती थी और गद्दने भी पहनती
जाती थी । उस समय उसके मुखपर जो प्रसन्नता नाच रही थी
वह शरीरके सज्जनेसे या प्रियतमकी चर्चा सुननेसे, वह नहीं
समझमें आया ॥ ३ ॥ 'हे उत्तुर दूती ! कहें, तुमने उन्हें
कहाँ, कैसे और कितनी देरतक देखा ? उन्होंने क्या लिका ?
क्या कहा ? वे वहाँ कब आवेंगे ?' इस प्रकार थोड़ा अर्थ

रीयकयणाङ्कान्तासि गत्यागतैर्युक्तं तन्सकलं किमत्र
वद हे दूति तुतस्थाधरे ॥ १५ ॥

पियो'गनोऽवस्थावर्णनम्—अत्राशितं शयितमत्र
निपीतमत्र तोयं तथा सह मया विधिर्वाञ्छितेन ।
इत्यादि हन्त परिचिन्तयता घनान्ते हा तस्य लोचन-
पयोभिरभूत्पयोधिः ॥ १ ॥ कान्ताऽऽश्लेषपराङ्मुखं
यदि दहेद्दोषाकरः कञ्चन स्थाने तदि यतस्त हन्त
विधिना हन्तुं व्यधायीदृशान् । कष्टं यन्पुनरेव चन्दन-
भुषो लब्धप्रभायोऽभितः स्वर्णपायवगाहको मरुदयं
वृद्धं प्रकण्डो ज्वलन् ॥ २ ॥ समनमलसं शून्या दृष्टिः
शरीरमसौष्ठवं श्वलितमधिकं किं न्येतस्यास्किमन्य-
दितोऽथवा । भ्रमति भुषणे कन्दर्पाशा विकारि च
योयनं ललितमधुगस्ते ते भावाः क्षिपन्ति च धीर-
ताम् ॥ ३ ॥ चन्द्रमाश्चन्द्रमास्तायसुरभिः सुरभि-
स्तथा । संयोगो धरर्वाण्यथा वैशरोत्यमतः परम्

नवेली : बाबू क्यों बिचरे हैं ? दूती : पवन बेगमे बह रहा
था । नवेली : देहका केसर कैसे छूट गया ? दूती : यह तो
आँखकी रगड़ खाकर छूट गया है । नवेली : इतनी धक
कैसे गई ? दूती : बार-बार जाने-जानेसे । नवेली : यह तो
सब ठीक है, किन्तु ओठमें लगे घावका क्या उल्लेख है ? ॥ १५ ॥

चियोगीकी वृथाका वर्णन : 'मैं वही अभाग हूँ जिसने
उस प्रियतमाके साथ लाया, पिया तथा निद्रा ली।' जहलमें
हूँ सब बातोंको सोचने हुए उसके नेत्रोंसे जो आँसू बड़े,
उसीसे समुद्र बन गए ॥ १ ॥ अपनी प्रियतमाकी गले
लगानेके सुलसे बिलुदे हुए किसी बिरहोंको चन्द्रमा यदि मजाना
है तो ठीक ही है, क्योंकि मजाने उसे ऐसे लोगोंको जलानेके
लिये हो रहा है । किन्तु कःकी बात तो यह है कि चन्दनके
वनमें घूमकर प्रभावशाली बना हुआ तथा आकाश-गङ्गा
आदि नदियोंमें गोता लगावेवाला यह पवन भी देहकता
हुआ जला रहा है ॥ २ ॥ चाख भीर्मी हो जाय, चितवन
छटपटी हो जाय, शरीर मज्जित हो जाय तथा साँस फूलने
लगे, यही नहीं, इससे भी बढ़कर जों होंना हा, हो जाय, किन्तु
चिन्ता तो इस बातकी है कि संसारमें कामकी आत्मा चलने
लगी है, युवावस्थामें दोष आते चले जा रहे हैं और सुन्दर तथा
आकर्षक वस्तुएँ धीरे-धीरे ढाल रही हैं ॥ ३ ॥ जबतक ओष्ठ
रूपवाली नवेलीसे संयोग रहता है तभीतक चन्द्रमा और सुगन्ध
मथार्थमें चन्द्रमा और सुगन्ध रहते हैं, उससे बिलुह होनेपर

॥ ४ ॥ चन्द्रश्चण्डकणायते मृदुगतिर्धातोऽपि यज्जायते
माल्यं स्विकुलायते मलयजालेषः स्फुल्लिकायते ।
रात्रिः कल्पशतायते विधिवशांम्राणांऽपि भारायते
हा हन्त प्रमदाविशंगसमयः संहारकालायते ॥ ५ ॥
धत्ते चक्षुर्मुकुलिन रणकोकिले बालचूते मार्गे गात्रं
क्षिपति वकुलामादगर्भस्य वायाः । दाहप्रेम्णा सरस-
यिसिनीपत्रमाश्रान्तरायस्ताम्यन्मूर्तिः श्रयति बहुशो
मृत्यवे चन्द्रपादान् ॥ ६ ॥ प्रत्यादिष्टविशेषमण्डनवि-
धिर्वामप्रकोष्ठे श्लथं विभ्रन्काञ्चनमेकमेव बलयं श्वासा-
परक्ताधरः । चिन्ता जागरणप्रतापनयनस्तेजोगुणैरा-
त्मनः संस्कारोस्त्रिखितो महामणिश्चिह्नं लीलाऽपि नाल-
यते ॥ ७ ॥ प्रियाविरहितस्यास्य हृदि चिन्ता समा-
गता । इति मन्था गता निद्रा के कृतप्रमुखासते ॥ ८ ॥
मन्दं मन्दहति गजैति वारिगडा विपुलभा चलनि
मृत्यति नालकण्डः । एतावति व्यतिकरेतदणस्य तस्य

तो ये सभी शत्रु बन जाते हैं ॥ ४ ॥ जिन समय प्रायःपारीसे
बिलुह जाता है उस समय चन्द्रमा मृत्युके समान गरम
तथा पवनका लु जाना बल-सा जान पड़ने लगता है, माला
सुईके समान चुभने लगती है, चन्दनका श्लेष आगकी
चिनगादियोंके समान लगता है, रातें सैकड़ों कल्पोंके समान
धीनती हैं और दुःख-वश प्राय भाँ भारी जान पड़ने लगते
हैं, हाय ! विरहका समय तो प्रलयकाल-सा ही बीतता
है ॥ ५ ॥ प्रायःपारीसे बिलुह हुआ कोई युवक मरनेकी चाहसे
बार-बार चन्द्रमाकी किरणोंका सहारा लेता है, बीरे हुए
आमके उस भये हुएको देखना है जिसमें कोयल कूच रही
है, मौलसिरांकी सुगन्धसे भरे हुए पवनके मार्गमें लोटता है
तथा जलनेके लिये कमलके हरे-हरे पत्ते देहपर रखता
है ॥ ६ ॥ किसी बिरहोंने अपने सब गहने उतारकर केवल बाईं
भुजामें सोनेका एक लाला कङ्कन-भर पहन छोड़ा है, गरम
साँसोंसे उसका थोड़ा झीका पड़ गया है और चिन्ताके कारण
जागते रहनेसे उसकी आँखें लाल हो गई हैं, किन्तु दुबला
हो जानेपर भी वह अपने स्वाभाविक तेजके कारण लारादे हुए
मखिके समान दुबला जल नहीं पड़ता ॥ ७ ॥ प्यारीसे
बिलुदते ही इस बिरहोंके हृदयमें चिन्ता-रूपी नवेली आ
धमकी, यह जानकर नींदरूपी सुन्दरी भी चल दी। ठीक भी है,
कृतज्ञकी सेवा कौन करना चाहता है ? ॥ ८ ॥ पवन धीरे-धीरे
बह रहा है, बादल गरम रहे हैं, बिजली धमक रही है

मूर्च्छंय केवलमभूदवलम्बनाय ॥ ६ ॥ माकन्दाक्षिप
मा मरन्दनिकरं मूको भव त्वं शुक स्फारं कोकिल
कोमलं कलरवं भ्रातः क्षणं संहर । सौमन्ध्यं वह गन्ध-
वाह न मनाकसर्वः क्षणं क्षम्यतां जानीध्वं तरुणस्य
तस्य यदयं कालः करालो महान् ॥ १० ॥ यदिन्दा-
धानन् प्रणयिनि जने वा न भजते व्यनक्त्यन्तस्तापं
तद्व्यमतिधीरोऽपि गहनम् । प्रियङ्गुश्यामाङ्गप्रकृति-
रपि चापाण्डुमधुरं वपुः क्षामं क्षामं वहति रमणीयश्च
भवति ॥ ११ ॥ रम्यं द्वेष्टि यथा पुरा प्रकृतिभिर्न
प्रत्यहं सेव्यते शय्योपान्तविषर्तनैर्विगमयत्युन्निद्र
एष क्षपाः । दाक्षिण्येन ददाति वाचमुचितामन्तः-
पुरेभ्यो यदा गात्रेषु स्थलितस्तदा भवति च व्रीडा-
यनम्रश्चिरम् ॥ १२ ॥ हृषोद्यानमरुत्तराङ्गतसरस्तारे
तरुणमधस्तल्पेऽनल्पसरोजिनीनवदलप्रायेऽपि खिन्ना-
त्मनः । धीरस्यापि मनाकानस्तृणकुटोकोणान्तराले

वलाञ्छशोऽस्येति विभाव्यते परवशैरक्षैरनङ्गानलः
॥ १३ ॥

वियोगिनो विप्रलापाः—अद्यापि तत्प्रचलकुण्डलमृ-
ष्टगण्डं वक्रं स्मरामि विपरीतरताभियोगे । आन्वो-
लनभ्रमजलस्फुटसान्द्रविन्दुमुक्ताफलप्रकरविच्युरितं
प्रियायाः ॥ १ ॥ अद्यापि तां कनकचम्पकदामगौरीं
कुञ्जारविन्दनयनां तनुरोमराजिम् । सुसोत्थितां मदन-
विह्वललालसाङ्गीं विद्यां प्रमादगलितामिव चिन्तयामि
॥ २ ॥ अद्यापि तिष्ठति शशोरिदमुत्तरीयं धर्तुं पुरः
स्तनतटात्पतितं प्रवृत्ता । वाचं निशम्य नयनं नयनं
ममेति किञ्चित्तादा यदकरोस्मिन्तमायताङ्गी ॥ ३ ॥
अद्यापि सा मनःस सम्प्रति वतते मे राश्री मयि क्षुत-
वति क्षितिपालपुङ्गवा । जीवति मङ्गलवचः परिहृत्य
कोपान्कर्णं कृतं कनकपत्रमनालपन्त्या ॥ ४ ॥ अधूत-
परिपतञ्जिबोलवन्धं मुषितनकारमवकडिपिपातम् ।

तथा मोर नाच रहे हैं । ऐसे समय मूर्च्छाने ही उस युवकके
प्राण बचा लिए ॥ ६ ॥ हे काम ! तुम अपने वीरोंका रस मत
बिखेरो । अरे सुयो ! खुप हो जा । हे भाई कोयल ! अपनी
ठोंकी तथा कामख कूक बन्द कर दे । हे पवन ! तुम सुगन्धि
त फैलाओ, आज तुम सभी यह समझकर जमा करो ।
उस युवकके लिये यह बड़ा भयङ्कर समय भीत रहा है ॥ १० ॥
यद्यपि युवक अत्यन्त धीर है किन्तु प्रियतमाके बिछोहमें उसकी
बहु दशा हो गई है कि वह चन्द्रमाको देखकर भी प्रसन्न नहीं
होता, किसी प्रिय मित्रको देखते ही उससे अपने हृदयका
घोर सम्ताप कहने लगता है, मित्रगुणके समान सौवले रत्नकी
उसकी देह पीली पड़ती जा रही है और वह दिनों-दिन
बुढ़का होता जा रहा है, फिर भी वह सुन्दर जग रहा
है ॥ ११ ॥ वह विरही युवक सुन्दर वस्तुओंसे चिढ़ता है,
अपने सेवकोंसे पहले जैसी सेवा कराता था वैसी अब नहीं
कराता, बिछौनेपर करवट बन्द-बन्दकर आगता हुआ रातें
बिताता है और रनिवासका नवेजियोंसे जब सरबतापूर्वक बातें
करने लगता है तो धोलेसे प्यारीका नाम सुनमें आ जानेसे देरतक
लाजके कारण सिर मुकाए पड़ा रहता है ॥ १२ ॥ फुलवारीके
अत्यन्त सुगन्धित पवनसे हिलाई हुई खहरावाले साजावके
किनारे बुझोंकी छायामें कमलिनीके ढेरसे नये-नये पत्तोंसे
बिछाप बिछौनेपर भी दुखी होकर पड़े हुए उस वीर विरहीको
देखकर पेसा जान पड़ता है मानो उसके बगोंको परवश देखकर

उसके मनरूपी तिनकोंकी कुटियाके कोनेमें बसपूर्वक कामाभि
भवक उठी हो ॥ १३ ॥

विरहीका रोना-धोना : कोई विरही बिलाप कर रहा है
कि 'आज भी विपरीत रतिमें जगी हुई प्राणप्यारीका वह मुँह
स्मरण आ रहा है जब उसके गालोंपर कामके चक्कर कुंडल हिल
रहे थे और जो अधिक धक्कोंसे धक जानेके कारण मोतीके
दानेके समान निकली हुई पलानेकी बूँदसे सज रहा था' ॥ १ ॥
आज भी असाधधानांके कारण हाथसे निकली हुई विद्याके समान
उस प्रियतमाकी मैं चिन्ता कर रहा हूँ जो सुनहली चम्पाके समान
गोरी है, जिसकी आँखें खिले हुए कमलोंके समान हैं, जिसकी
रोमावला पतली है और सोकर उठते समय जिसके बग
रतिझोड़ासे चक्कर बीजे पड़ गए थे ॥ २ ॥ वह विशाल नेत्रों-
वाली नवेली उवाँही स्तनसे जिसका दुधा आँखें लँभाऊने
जली खाँही मैंने कहा कि 'मेरे ही नेत्र, नेत्र हैं अर्थात् मेरे
नेत्र सफ़ल हो गए ।' और मेरी इस बातको सुनकर वह जो
मुस्करा उठी थी, वह दरय आज भी मेरे सामने नाच-सा
रहा है ॥ ३ ॥ जब उस राजपुत्रीसे मैं मिलनेके लिये गया
तो रातमें मुझे लौक आ गई । उस समय जान लिया जानेके
करसे उसने 'जीन' यह मङ्गल वचन तो न कहा वरन् उसे क्रीड
आ गया तथा और कुछ न कहकर उसने वह कनकूळ किरसे
पहन लिया जिसे पहले उतार दिया था । वह राजपुत्री आज
भी मेरे चितपर बड़ी है ॥ ४ ॥ गाँवकी नवेलीकी उन कामसे

प्रकटहसितमुखतास्य विम्बं पुरस्तदशः स्मरचेष्टितं
स्मरामि ॥ ५ ॥ अनिशमपि मकरकेतुर्मनसो रुजमाव-
हन्नभिमतो मे । यदि मदिरायतनयनां तामधिकृत्य
प्रहरतीति ॥ ६ ॥ अपसरति न चक्षुषो मृगाक्षी रजनि-
रियं च न याति नैति निद्रा । प्रहरति मदनोऽपि
दुःखितानां घत बहुशोऽभिमुखीभवन्त्यपायाः ॥ ७ ॥
अपूर्वो दृश्यते वक्त्रिः कामिन्याः स्तनमण्डले । दूरतो
दृष्टे गात्रं हृदि लग्नस्तु शीतलः ॥ ८ ॥ अभिमुखे मयि
संहतमीक्षितं हसितमन्यनिमित्ततथोद्दयम् । विनय-
बाधितवृत्तिरतस्तथा न विवृतो मदनो न च संवृतः
॥ ९ ॥ अरविन्दमिदं वीक्ष्य खेलेत्स्वजनमञ्जुलम् ।
स्मरामि वदनं तस्याध्याह्न्य खञ्जललोचनम् ॥ १० ॥
अलसवलितामुग्धस्निग्धनिरुपन्दमन्दैराधिकयिकसदन्त-
र्हिस्मयस्मेरसारैः । हृदयमशरणं मे पद्मलाक्ष्याः कटा-
क्षैरपहृतमपजिह्वं पीतमुम्भूलितम् ॥ ११ ॥ अलस-

भरी चेष्टाओंका स्मरण आ रहा है जिनमें उसने खोजा जाता हुई
चोटीकी गोंठ भी नहीं पायी, जिनमें उसने 'नहीं' भी नहीं की,
वरन् जिनमें वह भोजी-भाजी चितवनसे देखती हुई अपना मुँह
उठाए, सुन्नकर हँसती रही ॥ ५ ॥ जगातार मेरे मनको पीड़ित
करनेवाला कामदेव बड़े-बड़े मतवाले नयनोंवाली उस नवेलीका
सहारा लेकर यदि मुझे मार रहा है तो मुझे स्वाकार है ॥ ६ ॥
ज्योंजैसे सामनेसे वह मृगनयनी हटती नहीं, रात बीतती नहीं,
नींद आती नहीं और कामदेव भी बाण चलानेसे चूकता
नहीं । ठीक ही है, दुखी व्यक्तियोंके ऊपर एक साथ देर-सी
विपत्तिर्षी पड़ जाती है ॥ ७ ॥ इस नवेलीके स्तनोंमें कोई
निहाली ही आग है जो दूरसे तो अल्लाती है किन्तु दृढ़से
जगानेपर ठपकी जाय पड़ती है ॥ ८ ॥ जब वह मेरे सामने
पड़ जाती थी तो भीचे मुन्न करके धीरेसे देख लेती थी और जब
उसे हँसी आती थी तो वह दूसरी बातोंके बहाने हँस देती थी ।
उसके स्वभावमें ऐसी मञ्जता भरी थी कि न तो वह कामदेवका
भोग क्षिपा ही पा रही थी, न सुन्नकर बसा हो पा रही थी ।
॥ ९ ॥ इस खिले हुए कमलपर खेजते हुए सज्जनको देखकर
उस खञ्जल नेत्रोंवाली नवेलीका मुँह स्मरण आने लगा
है ॥ १० ॥ उस सुन्दर खोजवाली नवेलीकी उस चितवनने
मेरे हृदयको असहाय कर दिया, लीपा, बेध दिया, पी
छिया तथा उसाह दिया जो अलसाई हुई, सुन्दर, चिकनी,
जकड़ी हुई-सी, धीरे-धीरे डोल रही थी तथा जिसके भीतर

विलसितानामुल्लसद्भूतानां मन्त्रमुकुलितानां प्रान्त-
विस्तारितानाम् । प्रतिनयननिपाते किञ्चिदाकुञ्चि-
तानां विचयमहमभूवं पात्रमालोकितानाम् ॥ १२ ॥
असुलभा सकलन्दुमुखी च सा किमपि चेदमनङ्गवि-
चेष्टितम् । अभिमुखापिच वाञ्छितार्त्ताङ्गपु मञ्जति
निर्वृतिमेकपदे मनः ॥ १३ ॥ अस्थाने जनसङ्घटे मयि
मनास्काञ्ची समास्कन्दति व्यालाले रशनांशुके
विगलिते नीते च नाभेरधः । धन्योऽयं स करः कुरङ्ग-
कटशा तस्मिन्प्रवस्थान्तरे कम्पानङ्कुरम्यताङ्गलतया
यस्याशकाशः कृतः ॥ १४ ॥ अहा अहं नमा महं यदहं
कीलितोऽनया । यालया अस्तसारङ्गचपलायतनप्रया-
॥ १५ ॥ आः पात्री स्यामकृतकघनप्रमायस्फारितानां
समीडानां सकलकरणानन्दनाड्यन्धमानाम् । तेषां
तेषां हृदयनिहताकृतानप्यान्दनप्रव्यापाराणां पुनरपि
तथा सुभ्रुवां विभ्रमाणाम् ॥ १६ ॥ आक्रन्दाः स्तानि-

अचरमसे भरी पुनर्लिखी विकसित हो रही थीं ॥ ११ ॥
वह नवेली अपने कनखियाँ धार-धार मटका-मटकाकर, भीहं
उत्तका-उत्तकाकर, ज्यों मारती, खोजती, ममसे देखती और
फिर भँवती हुई मुन्नपर धार-धार चितवन चला रही थी
॥ १२ ॥ वह चन्द्रमुखी मिलनेवाली नहीं और मुन्नपर
कामदेवका यह आयाचार हो रहा है किन्तु मन उत्सल पड़ रहा
है । इससे जान पड़ता है कि मनोरथ सिद्ध अवश्य होनेवाला
है नहीं तो मन एकाएक कैसे समुद्र हो जाता ॥ १३ ॥
एक बार बहुतसे लोगोंका भीड़में अवसर न रहते हुए भी मैंने
उस मृगनयनीकी लगदी खींच दी, जिससे करघनाके भाँचेकी
साड़ी खिली पड़ गई और उस साड़ीका मैंने नाभिके नाचेतक
सरका दिया । यद्यपि दरके मारे उसका देहरूपा लता काँपने
लगी थी फिर भी ऐसी दशामें उसने मेरे जिस हाथका अवसर
दे दिया उस हाथका धन्य है ! ॥ १४ ॥ अहा ! मैं धन्य हूँ ।
मुझे नमस्कार है क्योंकि डरे हुए मृगका बड़ा-बड़ा खञ्जल
ज्योंजैसे सामने खोजवाली इस नवेलीके मेरा आर देख
तो दिया ! ॥ १५ ॥ आह ! सुन्दर भाँहावाला नवेलीके
स्वभाविक तथा अत्यधिक प्रेमसे भरे हुए, लजाले, सभी
हृन्निषोंमें आनन्द भर देनेवाले तथा हृदयके भिन्न-भिन्न अभिप्राय
प्रकट करनेवाले हाव-भाव आदिसे भरी चेष्टाएँ क्या मुझे । फिर
देखनेको मिलेंगी ॥ १६ ॥ हे भिन्न बादल । तुम गड़गड़ा रहे
हो तो मैं भी आह मारकर रो रहा हूँ, तुम जगातार जलकों

तैर्विलोचनजलान्यश्रान्तधागम्बुमिस्तद्विच्छेदप्रवास्त्रं
शोकशिखिनन्तुल्यगन्तडिहिश्रमैः । अन्तर्मं दयितामुखं
तव शशां वृत्तिस्तमैवावयोस्तत्किं मामनिशं सखे जल-
धर त्वं वधुमेयोद्यतः ॥ १७ ॥ आनन्दप्रमन्दमिमं
कुवलयदललोचनं ददासि त्वम् । विरहस्त्वयैव जनित-
स्तापयतिनरां शरीर मे ॥ १८ ॥ आसन्नमागमतिलङ्घ्य
नतेन मूर्ध्ना पश्चात्प्रसङ्गवलितेन मुखेन वान्त्वा । आरो-
पिता । कतिपये मयि पङ्कजाद्या साकूतहासमनतिप्रक-
टाः कटाक्षा ॥ १९ ॥ आसानशयितस्स्थितः प्रचलितः
स्वप्नायिता जाग्रतः पश्यन्मीलितलोचनो व्यवहरन्मानं
प्रपन्नाऽथवा । तां प्रमाकुलवोक्षितां स्मितमुखां सखी-
जमन्वागमां विजृम्भन्ता प्रणयाङ्गमुग्धलपितां पश्यामि
नक्तन्दिधम् ॥ २० ॥ आस्तां दूरतया तदीयवदनाम्भो-
जामृतास्पादनं नादंतेष्व ममारथाऽपि हृदये सन्तुष्ट-
माशां प्रति । उत्कण्ठाशिथिलाकृतारुलतिकं वाञ्छेत
मामेकदा सख्यं याद सा सरोजवदना धम्याऽस्म्यहं

धारा बहा रहे हों तो मेरे नेत्रोंसे भी लगातार आँसुओंकी धारा
बह रही है, तुममें बिजली जलजवा रही है तां मेरी देहमें भी
उस नवेलीके बिलोहके दुःखकी अग्निही सपटें उठ रही हैं
तथा तुम्हारे भीतर चन्द्रमा है तो मेरे हृदयमें भी मेरी
प्रियतमाका मुखचन्द्र है । इस प्रकार हम-तुम दोनोंकी दशा
एक ही-सी है फिर भी तुम मुझे क्यों सदा जताए जाननेको
तैयार बैठे रहते हो ? ॥ १७ ॥ हे नीले कमलके समान
आँखोंवाली । तुम ता मुझे बहुत सुख दे रही हो किन्तु
तुम्हींसे उत्पन्न हुआ बिकृष्ट मेरा शरीर जलाए डाल रहा है
॥ १८ ॥ वह कमलनयनी बार-बार मुँह घुमाकर तथा हँसोके
बहाने भयके भाव प्रकट करके मुझपर चितवन चलाती हुई
अपना सिर झुकाए मेरे पाससे निकल गई ॥ १९ ॥ जिसकी
चितवनमें प्रेम भरा है, जिसके मुखमें सुस्काराहट है,
जो लजाती हुई धीरे-धीरे चलती है, गले लगती है तथा प्रेमभरी
बोलीसे मोहन कर देता है, उसे मैं बैठते, सोते, उठते,
चलते, सपना देखते, जागते, देखते, आँखें मूँदते, काम करते
तथा चुप रहते, रात-दिन देखा करता हूँ ॥ २० ॥ उत्कण्ठासे
जिसके अङ्ग शिथिल पड़ गए हैं वह कमलमुखी नवेली
यदि मुझे एक बार भी प्रेमसे देख भर लेतीं तो उतनेसे ही मैं
अपनेको ऐसा धम्य समझता कि उसके मुखकमलके अमृतका
स्वाद पाना तो दूर रहा, उससे मिलनेकी आशाके भी भाव

तावता ॥ २१ ॥ इमशिशिरैरन्तस्तापाद्विषर्षमणीकृतं
निशि निशि भुज्जन्यस्तापाद्विषर्षमिभिरश्रुभिः । अनति-
स्रुलितज्वाघाताङ्गं मुहुमणिवन्धनात्कनकवलयं कस्तं
कस्तं मया प्रनिसार्यते ॥ २२ ॥ ऊरु रम्भा वगपि कमलं
शेवलं केशपाशो वक्रं चन्द्रो लपितममृतं मध्यदेशो
मृणालम् । नाभिः कूपो बलिरपि सरिन्पल्लवः किञ्च
पाणिर्यस्यास्सा चेदुरसि न कथं हन्त नापस्य शान्तिः
॥ २३ ॥ कटाक्षेणापोपलक्षणमपि निरीक्षेत यवि सा
तदानन्दस्त्वानन्दः स्फुरति निहताशेषविषयः । सरोमा-
ज्जोदञ्चकुचकलशनिभिर्भवसनः परोरम्भारम्भः क
हव भवितारम्भोऽहहयः ॥ २४ ॥ कदा काम्तागारे
परिमलमिलत्पुष्पशयने शयानश्चरामायाः कुचयुगमहं
बलसि बहन् । अये स्निग्धे मुग्धे खपलनयने चन्द्रवदने
प्रसीदेत्याकाशत्रिमिषमिष नैष्यामि दिवसान् ॥ २५ ॥
काम्तामुख सुरतकैलियिमर्दजेदलज्वातघर्मकणविक्षु-
रितं रताम्ते । आपादुहं विलसदधनिर्मालिताङ्गं

मनमें न उठते ॥ २१ ॥ रातमें हृदयके तापसे गरम हुई बौहवर
रखके हुए नेत्रके कोनेसे निकलने हुए आँसुओंसे जिसका
मखि मलिन हो गया है, जिसमें प्रणयोंकी रगड़का चिह्न बना
हुआ है, वह सोनेका कङ्कन बार-बार उसकी कलाईसे नीचे
बिसरकर रहता है और मैं उसे ऊपर उठाता रहता हूँ ॥ २२ ॥
जिसकी आँखें केलेके लम्बे, नेत्र कमल, बाल सेवार, मुख
चन्द्रमा, बाँकी अलून, कमर कमलनाक, नाभि कुर्छा, पैरकी
सिङ्गद्वय नदी तथा हाथ नये पत्ते हैं ऐसी नवेली यदि छातीसे
झग जातो तो सम्ताप क्यों न दूर हो जाता ? ॥ २३ ॥ जब उस
नवेलीकी तिरझी चितवनसे जगभर सनिक-सा देख लिए जाने-
भरसे ऐसा बना आनन्द छा जाता है कि सभी विषयोंके आनन्द
उसमें समा जाते हैं, तब कमलनयनीके उस आकिर्णके
आनन्दके तो कहने क्या जिसमें स्तनोंपर उठे रोंगटीसे
बलतक छिद्र जाते हैं ॥ २४ ॥ वह समय कम आवेगा जब
प्राक्प्यारीके घरमें सुगन्धित फूलोंके बिल्लीनेपर पड़ा हुआ, उस
नवेलीके दोनों स्तन अपनी छातीसे लगाए हुए मैं यह कहते हुए
एक चखके समान दिन बिता दूँगा कि 'हे प्रेमसे भरी सुन्दरी !
हे चञ्चल नेत्रवाली ! हे चन्द्रमुखी ! प्रसन्न हो जाओ'
॥ २५ ॥ हे हृदय ! प्यारीके उस मुखकी स्मरण करते हुए
तुम सीकड़ों टुकड़े क्यों नहीं हो जाते जो सुरत-जिवायें धक
जानेसे बिकले हुए पत्तीनेसे भरा था, जो सुरतके अन्तमें

संस्मृत्य हे हृदय किं शनघा न यालि ॥ २६ ॥ किं
तिष्ठामि किमु व्रजामि किमहं जागमि निद्रामि किं किं
जानामि किमु भ्रमामि किमु वा सुखमामि दुःखमामि
वा । किं नाशयस्मि किमन्यनल्पकलिते न कापि
पक्षे स्थितः प्राप्यानिर्वचनीयमेव कमपि कुरं विकारं
सखे ॥ २७ ॥ किं पक्वं सुकृतं किमहं इति मे
नायापि संघेयते तन्व्याश्चेतसि किंस्विदस्मि कलितः
किं नेति नैव स्फुटम् । एतन्किञ्चिद्भूतदा मयि
सकृत्कृत्वा कटाक्षं ततः क्षिप्रव्याकुललाचनं तर-
लया सख्यस्तया वीक्षिताः ॥ २८ ॥ किं मे सद्गुरु-
सेवनेः प्रतिदिनं किं व्योमकेशार्चनं किं स्वादध्य-
यनेन वा सुरपुरप्राप्त्याथवा किं कलम् । एतस्याः
कुञ्जकुम्भनिर्भरपरीरम्भप्रभावाद्भवस्येदाम्भोभिरनङ्गव-
हिरधुना निर्वापिता नो यदि ॥ २९ ॥ कुनः प्रेमल-
वोऽप्यस्ति खले मे हृदये खलु । सुन्दरीं तामनालाक्य
यवहं प्राणिमि प्रिय ॥ ३० ॥ कुम्भं दत्तैर्मधु निगदिनैः

पटुपदं हन्विलासैरेभिर्ज्ञानैर्मृत्नलद्वरीं कुन्तलैरम्बुवा-
हम् । इन्दोर्विभवं वदनशशिना पङ्कजं च स्तनाभ्यां
त्वं जित्वा नान्यससि हृदये तेन मां चिद्विगन्ति ॥ ३१ ॥
कुसुमशयनं न प्रत्यग्रं न चन्द्रमणेचया न च मलयजं
सर्वाङ्गीणं न वा मणियष्टयः । मनसिज्वरजं सा वा
दिव्या ममालमपोकितुं रदसि लघयेदाग्धा या नदा-
श्रयिणी कथा ॥ ३२ ॥ कमसर्गलितकण्ठप्रकमोक्षा-
स्तिनोरभ्रनर्गलितवलिलेखाम्बुसर्वस्वमस्याः । स्थित-
मनिर्विरमुच्चैरग्रादाकुलीभिः करकलितसखोकं मां
दिदृक्षोः स्मरामि ॥ ३३ ॥ क्याकार्यं शशलदमणः कथं
च कुलं भूयोऽपि दृश्येत् सा दोषाणां प्रशमाय नः
श्रनमहो कापेऽपि कामं मुखम् । किं वलन्त्यपकलमयाः
कुतश्चिदः स्वप्नेऽपि सा दुर्लभा चेतः स्वाश्चर्यमुपैहि
कः खलु युवा धन्योऽधरं पास्यात् ॥ ३४ ॥ प्रसति
काऽपि विमोहविधुन्तुवा हृदयचन्द्रमसं मम दारुणः ।
तदपि हस्त तदन्तरशायिनी लगति चिद्वन्मृगीव मृग-

पीला पड़ गया था और जिसमें ज्यों-ज्यों प्रचक्षुर्ला ही रह गई थीं
॥ २६ ॥ हे मित्र ! मुझमें कोई ऐसा भयङ्कर विकार था गया
है जिसका मैं बर्णन नहीं कर सकता और जिसमें मुझे यही
नहीं ज्ञान पड़ना कि मैं लक्ष्मी हूँ या चल रहा हूँ, सोना हूँ
या जागता हूँ, भ्रममें हूँ या सचेत हूँ, सुखी हूँ या दुःखी हूँ
तथा हूँ भी या नहीं । इस प्रकार अनेक तर्क-वितर्क करके भी
मैं कुछ निश्चय नहीं कर पाता ॥ २७ ॥ आज भी मेरी
समझमें नहीं आता कि मेरा पुण्य उदय हुआ है या पाप
तथा वह भी नहीं स्पष्ट हो रहा कि उस दुबली देहवाली
मधेलीके चित्तमें मैं बसा भी हूँ या नहीं ! इनमेंसे कोई एक
बात अवश्य है क्योंकि उसने एक बार तो मुझपर चितवन
जलाई फिर प्रेममें भरकर चिकनी और चमड़ाई हुई रङ्गिसे वह
अपनी सखियोंको देखने लगी ॥ २८ ॥ जब कि इस मधेलीके
घड़ेके सभाग स्तनोंके कसकर आलिङ्गन करनेके प्रभावसे
निकले हुए पसीनेसे मेरी कामानि शान्त नहीं हो पाई तो
सद्गुरुकी सेवा, प्रतिदिन शङ्करकी सेवा या अध्ययन करनेसे
क्या लाभ है तथा स्वर्ग मिल जानेसे ही कौन बड़ा लाभ हो
जायगा ? ॥ २९ ॥ हे प्यारे ! मेरे नीच हृदयमें सखमुच प्रेमका
लेश मात्र नहीं बचा है कि मैं उस सुन्दरीको न देखकर भी त्रिष्टु
आ रहा हूँ ॥ ३० ॥ हे प्यारी ! तुम जो अपने दाँतोंसे कुन्दके फूलको,
बोझीसे मधुको, चितवनसे भीतोंको, हँसीसे शम्भुकी धारको,

केरांसे बादलको, सुलचन्द्रमे चन्द्रमाको तथा स्तनोंसे
कमलोंको ज्ञातकर मेरे हृदयमें बिराजमान हो, इसीसे ये सब
वस्तुएँ मुझसे चाह कर रही हैं ॥ ३१ ॥ तत्काल विद्याया हुआ
कुलाका विद्युतीना, चन्द्रमाका किरणों, सारी देहमें पुता हुआ
चन्द्रनका लेप तथा मणिकों माला ये सब वस्तुएँ कामदेवका
ताप नहीं शान्त कर सकतीं, एकाग्रमें वह शर्गाँव मधेली
अथवा उसकी चचाई ही कामप्रीदाको भला-भरति शान्त
कर सकती है ॥ ३२ ॥ मुझे उस प्यारीकी उस अवस्थाका
स्मरण आ रहा है जब वह पञ्जाके बज लड़ी होकर,
उच्चकर मुझे देख रही थी, उसका गला साँधा हो गया था,
छातों उभर आई थी, पेटकी सिकुहन मिट गई थी और गिरनेके
हरसे वह सखियोंको अपने हाथसे धामे हुए थी ॥ ३३ ॥ किसीके
मनमें ज्ञान और प्रलापका द्वन्द्व चल रहा है—बोध : कहाँ तो
यह मेरा कुकृत्य और कहाँ चन्द्रमाका निर्मल वंश ! प्रलाप : फिर
भी एक बार दिखाई पड़ जाती तो कितना अच्छा होता ! बोध :
चित्तके दोषोंको दूर करनेके लिये ही तो हमारे शास्त्र हैं । प्रलाप :
क्रोधमें भी उसका मुख मनोहर ही लगता है । बोध : पुण्यश्रमा
बुद्धिमान् लोग मेरे इस कुकृत्यपर क्या कहेंगे ! प्रलाप : वह
स्वप्नमें भी नहीं मिल पा रही है । बोध : अरे चित्त ! शान्त
हो जा । प्रलाप : कौन धन्य युवक है जो उसके अधर रसका
पान करेगा ? ॥ ३४ ॥ अथपि मोहरूपी राहु मेरे हृदयरूपी

क्षणा ॥ ३५ ॥ घर्मोश्चर्मगवानस्तु यमुनां ताप्या कृतं
गङ्गाया पथोऽस्याः क्वथितं पुरारिमुकुटे नेत्रानलज्वा-
लया । स्यन्दैश्चन्दनशास्त्रिणां शतमुखैः किम्भीरनीरो-
मयस्तेवायै मलयान्चलेन्द्रसरितस्सम्भूय तिष्ठन्तु मे
॥ ३६ ॥ खलुः प्रीत्या निषण्णं मनसि परिचयाधिन्त्य-
मानेऽभ्युपाये याते रामे विवृद्धिं प्रविसरति गिरां
विस्तरे कृतिकायाः । आस्तां दूरे स तावत्सरभस-
द्वयितालिङ्गनानन्दलाभस्तद्गोहोपान्तरध्याभ्रमणमपि
परां निर्वृतिं सन्तनोति ॥ ३७ ॥ चण्डांशो विरमाशु
मा मयि किराङ्गाताम्करैर्दुःखिते नाहं ते व्यदधां
मनागपि कदाऽप्यागः पुनः कृत्कथम् । त्वञ्चेदद्य
कुहापि शीतकरणं सङ्गोप्य राज्ञो कुतो भीष्मोत्साप-
ण्यप्रवर्षणपरस्त्वं किं कृते प्रोद्यतः ॥ ३८ ॥ धित्रं सा
मम जीवितं क्वचिदितो याता यताहं पुनर्जीवामांस्थ-

चन्द्रमाको मस रहा है फिर भी कलकलपी सृणी-सी वह
सृगनयनी मेरे हृदयमें चिरटी ही बैठी है ॥ ३५ ॥ भगवान् सूर्यने
यमुनाको उत्पन्न तो किया किन्तु उत्पन्न करके उसे गङ्गासे
मिलाकर धातुमाषिक रस बना डाला तथा गङ्गाके जलको
शिवजीके माथेके तीसरे नेत्रकी भागकी लपटोंमें छौटाकर उसका
काढ़ा बना डाला । अतः मेरे सन्तोषके लिये मलयचलसे
निकली हुई वे त्रिदिव्य ही चपली हैं जिनका जल तथा जड़ों
चन्दनके वृक्षोंसे गिरे फूलोंसे रङ्ग-विरङ्गी हो रही हैं ॥ ३६ ॥
उस नवेलीपर पहले चोंचें रीझीं, जिससे उसपर मन लग
गया । इतनी ही पहचानसे मिलनेका उपाय सोचा जाने लगा,
तबतक प्रेम और आगे बढ़ गया और कृतियोंसे बातें चलने
लगीं । ऐसी दशामें प्यारीका कसकर आखिजन करनेका
आमन्द मिलना तो दूरकी बात है, उसके घरके पासकी गलियोंमें
चक्कर लगानेसे भी एक निराखे आमन्दका अनुभव होता
है ॥ ३७ ॥ हे तीव्र किरणोंवाले (चन्द्रमा) ! रात्रि ही थोड़ा रुक
तो जाओ, मुझ दुस्तीपर अपने हाथों (किरणों) से अङ्गार न
बरसाओ ! मैंने तो कभी तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ा, फिर तुम्हें
क्रोध क्यों आ रहा है ? और जब दिनमें तुम अपनी शीतलता
झिपाकर कहीं भी छिपे रहते हो तो रातमें जगातार भवङ्कर
ताप बरसाते हुए तुम कहाँसे क्या करनेके लिये निकल आते
हो ? ॥ ३८ ॥ बड़ा आश्चर्य होता है कि वह मेरा जीवन
(प्राणप्यारी) यहाँसे कहीं चली गई और मैं जी रहा हूँ ?
'मैं उसे प्राणोंसे बढ़कर चाहता हूँ' मेरा यह घमण्ड क्या

भिमानभारविधुरो नाथापि जातोऽकृती । धिग्भस्म-
न्यपि पावकस्वमितिबद्धवर्थं तथामानिनं जीवत्वं क्व
तु जीवनस्य विलये हा हन्त कुत्रासि मे ॥ ३६ ॥
जगति जयिनस्ते ते भावा नवेन्दुकलादयः प्रकृतिम-
धुरास्सन्त्येवाग्ये मनो मद्यमिति ये । मम तु यदियं
याता लोके विलोचनचन्द्रिका नयनविषयं जन्मन्येकः
स एव महोत्सवः ॥ ४० ॥ जाने कोपपराङ्मुखी प्रिय-
तमा स्वप्नेऽद्य दृष्टा मया मा मा संस्पृश पाणिनेति
रुदती गन्तुं प्रवृत्ता पुरः । नो यावत्परिरभ्य चाटुक-
शतैराभ्यासयामि प्रियां भ्रातस्तावद्दहं शठेन विधिना
निद्रादरिद्रीकृतः ॥ ४१ ॥ जाने स्वप्नविधौ ममाद्य
खलुकोत्सेक्यं पुरस्ताद्भूतप्रत्युये परिवेषमण्डलमिष
उपांक्षासपक्षं महः । तस्याभ्यन्तर्गन्निस्तुषीकृतशरच्चन्द्र-
प्रमैरङ्गकैटका काप्यवला बलात्कृतवती सा मम्मथं

अभीतक भी चूर-चूर नहीं हुआ ? मुझे धिक्कार है कि
रासमें आगके भ्रमके समान जो मैं अपनेको धर्य ही उसे
प्रेम करनेवाला समझता रहा ! अरे, जब जीवन (प्राण)
ही मष्ट हो गया तो जीना कैसा ? आह ! बड़ा कष्ट
है, हाथ मेरी प्यारी ! तुम कहाँ हो ? ॥ ३६ ॥ यद्यपि
संसारमें नये चन्द्रमाकी कक्षा आदि एकसे एक बढ़कर
सुन्दर वस्तुएँ हैं तथा और भी ऐसे स्वभावसे ही सुन्दर
पदार्थ हैं जो मनको प्रसन्न कर देते हैं किन्तु लोगोंके नेत्रोंके
लिये चँदनीके समान सुखदायिनी वह नवेली जो मेरे नेत्रोंके
सामने आ पड़ी, वह मेरे जीवनमें ऐसा बड़ा उत्सव हुआ
जैसा पहले कभी नहीं हुआ था ॥ ४० ॥ आज मैंने
स्वप्नमें देखा कि मेरी प्यारी रुदकर मुझ मोढ़े हुए 'मुझे
हाथ न लगाना !' कहकर रोती हुई आगेकी बढ़ी जा रही है ।
मैं उसे गलेसे जगाकर बहुत-सी चिकनी-धुपड़ी बातें करके
उसे मना भी न पाया कि भाई ! इतनेमें ही दुर्भाग्यवरा मेरी
वीर खुल गई ॥ ४१ ॥ आज भ्रातःका स्वप्नमें मेरे सामने
एक ऐसा तेज दिखाई दिया जो मेरी चोंचोंको ऐसी एल
दे रहा था मानो सुस्तुमें पानी भरकर सींच रहा हो, जिसका
वेरा रँधा हुआ था और ओ दूसरी चँदनीके समान था ।
उसके भीतर शरद् फलके बिना कलङ्कके चन्द्रमाके समान
मनोहर अङ्गवाली एक नवेली दिखाई पड़ी जिसने बलपूर्वक
मन्मथ (कामदेव) को मेरे लिये मन्मथ (मनको मथ
काजनेवाला) बना दिया ॥ ४२ ॥ अरे, काले रंगमें डूबी

मन्मथम् ॥ ४२ ॥ अयोक्तां श्यामलिमानमानयत भोः
सान्द्रैर्मयीकूर्चकैर्मन्त्रं तन्त्रमथ प्रयुज्य हरत श्वेतोन्म-
लानां स्मितम् । चन्द्रं चूर्णयत क्षणाश्च कलशः कृत्वा
शिलापट्टके येन द्रष्टुमहं तमे दश दिशस्तद्वक्त्रमुद्रा-
ङ्किताः ॥ ४३ ॥ तद्वक्त्रमपि नाम तत्सद्वक्त्रकान्तिपूरा-
प्लुतं सुवर्णकदलीदलीदलितगर्भगारं पुनः । कठोरम-
द्वन्द्वथापिशुनपारिडमाधिष्ठितप्रथीयकुन्जमण्डलं परि-
रभेय वीक्षेय वा ॥ ४४ ॥ तदा मुग्धं वक्त्रं किसलयसलः
सोऽधरमणिर्विशाले ते नेत्रे स्तनभरनता सा तनुलता ।
सलीलं तदातं जननयनसञ्जीवनसुधा प्रिया सा सा सा
सेत्यजनि हृदयं सन्मयमहो ॥ ४५ ॥ तद्वियोगसमुग्धेन
तच्चिन्ताविपुलाविषा । रात्रिन्दिवं शरीरं मे दृष्टते
मद्वनाग्निना ॥ ४६ ॥ तन्वी सा यदि गायति श्रुतिक-
द्वर्षीणाध्वनिर्जायते यथाविष्कुरुते स्मितानि मलिनै-
वालप्यते चन्द्रिका । आस्ते म्लानमिवात्पलं नवमपि
स्याद्योपुरो नेत्रयोस्तस्याः श्रीरघलाकपते यदि तदि-

हली विचर्षेय सा ॥ ४७ ॥ तसे महाविरहवद्विशिखा-
वलीभिरापाण्डुरस्तननटे हृदये प्रियायाः । मन्मार्गवी-
त्तलनिवेशितदीनदण्डेर्नूनं क्षमच्छुमिति वाष्पकणाः
पतन्ति ॥ ४८ ॥ तथा गान्धं मुक्ता भुवि घनुषि सन्धाय
निशितः कटाक्षेपुर्नान्यैस्सह पदनयोग्यः शरगणैः ।
पतन्नात्रे गात्रे परममृतमास्त्रादिव तदा दयीयानरायं
द्वलरति पुनने वलरति ॥ ४९ ॥ तरत्तारं तावत्प्रथम-
मथ चित्रार्पितमिव कमादेशापाङ्गं सहजमिव लीला-
मुकुलितम् । ततः किञ्चिच्छुभ्रं तदनु घनवाष्पाप्लुल-
हरीपरित्यागं चक्षुः पतन्तु मयि तस्या मृगदशः ॥ ५० ॥
तस्मिन्पञ्चशरे स्मरे भगवता भर्गण भस्मीकृते जाना-
म्यस्यसायकं कमलभूः कामान्तरं निममे । यस्यामी-
भिरितस्तनश्च विशिखैरापुङ्गवमस्मात्प्रभित्तिर्न मे विद-
लत्कदम्बमुकुलस्पष्टोपमानं घपुः ॥ ५१ ॥ तस्यां सुत-
नुसरस्यां वेतो नयनं च निष्पतितम् । वेतो गुरु तु
निमग्नं लघु नयनं सर्वतो धमति ॥ ५२ ॥ तस्याः

हुई वनी बूँचीसे इस चाँदनी रातको कासा कर दो, टोना-
टोका करके उजले कमलोंका खिलना बन्द कर दो और
भटपट चन्द्रमाको चहानपर पटककर चूर-चूर कर दो,
जिससे मैं वसों दिशाई उस नवेछाँके मुखसे हो भरी हुई
देखूँ ॥ ४३ ॥ यदि उस नवेछाँके सहज सुन्दरतासे भरे
हुए सोनेके केलेके रुम्बेके भीतरी भागसे समान गारे चक्र
तथा उजले दिखाई देते हुए, और कामपीड़ाके कारण पीले-
पीले, बड़े-बड़े स्तनोंका आखिन्न या दर्शन हो मिल जाता
तो बड़े भावकी बात होती ॥ ४४ ॥ उस समय उसका मुख
सुन्दर, अधर कोंपलके समान, नेत्र बड़े-बड़े, शरीर स्तनोंके भारसे
झुका हुआ और पाल हाव-भावसे भरी हुई थी । इस प्रकार
जो प्यारी सबकी आँखोंके जिये सजावभी नूटी-सी जान
पड़ती थी उसीके जिये इस समय विश्वमें 'वह-वह' करते
हुए हृदय उसीके रूपका हो गया है ॥ ४५ ॥ उसके
विरहसे उत्पन्न चिन्तारूपी ज्वालासे भरी हुई कमरूपी
अग्निसे रात-दिन मेरा शरीर जला जा रहा है ॥ ४६ ॥
वह दुबली-पतली नवेछी अब गाने लगती है तो बीखाकी
काहुर कच्ची खगने लगती है, उसकी मूखराहटके सामने
चाँदनी पीकी पड़ जाती है, जब वह आँखोंके सामने आ
पड़ती है तो कमल भी मैले दिखाई पड़ते हैं तथा उसकी
शोभा देख लेनेपर बिजली भी मखिन दिखाई देने लगती

है ॥ ४७ ॥ मेरी बाट जोहते समय हीन होकर देखती हुई
प्याराँके विरहाग्निकी ज्वालासे तपते हुए स्तनवाले हृदयपर
आँसुकी बूँदें छम-छम कराती हुई गिर रही हैं ॥ ४८ ॥ उस
समय उस नवेछाँने भीहरपी धनुषपर चढ़ाकर जो चितवनरूपी
बाण वज्रपूर्वक छोड़ा वह शरीरपर पड़ता हुआ अमृत-सा
बरसाता था । उसकी बराबरी दूसरे बाणसे नहीं की जा
सकती । किन्तु यद्यपि वह चितवन आज दूर है फिर भी
हृदयको ऐसा काद रही है कि घाव नहीं हो रहा है ॥ ४९ ॥
[मैं यही चाहता हूँ कि] वह मृगनयनी पहले तो आँखें
तरेरकर, फिर एकटक होकर, फिर क्रमसे नेत्रके कोर सहज
भावसे कुछ मूँदकर, फिर कुछ खोलकर तथा इसके परचाए
आन्धन्त वेगसे निकले आँसुओंसे डबडबाए हुए नेत्रोंसे मुझे
देखती रहे ॥ ५० ॥ उस पाँच बाणवाले कामदेवको जब
भगवान् शङ्करने भस्म कर दिया तब ब्रह्माने एक दूसरा ऐसा
कामदेव बनाया जिसके बाण कभी भी कम न हों । उसीके
बाण मेरी देहमें चारों ओर ऐसे गढ़ गए हैं कि सारा शरीर खिले
हुए कदम्बकी कलियोंके समान रोमाञ्चित हो रहा है ॥ ५१ ॥
उस सुन्दरी-रूपी म्मीलमें जब मेरा मन तथा नेत्र दोनों
बूढ़ पड़े तो गुरु (भारी, श्रेष्ठ) मन तो उसमें डूब गया
किन्तु क्षु (हल्का, सुन्दर) नेत्र ऊपर ही चारों ओर चकर
लगाने लगा ॥ ५२ ॥ अपनी मनोहर मुस्कानकी कांति

किं मुखपङ्कजं स्मितरुचा चन्द्रयूतेनिन्दकं किं वा
नेत्रयुगं कटाक्षचतुरं किं भ्रूलताविभ्रमम् । किं वा
स्निग्धमवेक्षितं मयि पुनर्यान्त्या सखीनां पुरः किं किं
सम्पत्तिं चिन्तयामि हृदये कामेन लक्ष्मीकृते ॥ ५३ ॥
तां हेमचम्पककञ्चि मृगशावकाक्षीं पाश्वे स्थिताञ्च
पुरतः परिचतमानाम् । पश्चात्तथा दशदिशासु परि-
स्फुरन्तीं पश्यामि तन्मयमहो भुवनं किमेतन् ॥ ५४ ॥
तानि स्पर्शसुखानि ते च तरलस्निग्धा दशाविभ्रमा-
स्तद्वक्त्रायुजसौरभं स च सुधास्यम्दा गिरां वक्रिमा
सा विम्बाधर्माधुरीणि विषयालङ्घेऽपि मन्मानसं
तस्यां लक्ष्मणमाधि हन्त विरहव्याधिः कथं वर्तते ॥ ५५ ॥
तामिन्दुसुन्दरमुखीं सुचिरं विभास्य चेन कथं कथ-
मपि व्यपवर्तते मे । लज्जां विजित्य विनयं विनिवार्य
धैर्यमुन्मथ्य मग्धरविशेकमकारुड एव ॥ ५६ ॥ तैस्ते-
भ्यादुभिराक्षया किल तदा कृते रतिव्यत्यये लज्जामन्ध-

रया तथा निवसिते भ्रान्त्या मदीयेऽशुके । तस्य द्वांशु-
कमुद्रहजहमपि स्मिन्वा यदुक्तोऽधुना वेषो युज्यत
एव एव हि तव्येतेतन्न विस्मर्यते ॥ ५७ ॥ वस्था कटा-
क्षमेणाक्षी जग्राह हृदयं मम । मया तु हृदयं दत्त्वा
गृह्यतो मदनञ्चरः ॥ ५८ ॥ दर्शनपथमुपयाता यद्वधि
मदिरायतेक्षणा सहसा । तद्वधि हृदयेनाहं मदनेषु-
भयादिवान्मुक्तः ॥ ५९ ॥ दलति हृदयं गाढोद्वेगं द्विधा
न तु भिद्यते वहति विमलः कायो मोहं न मुञ्चति
चेतनाम् । ज्वलयति तन्मन्तर्दाहः करोति न भस्म-
सान्प्रहरति विधिर्ममच्छेदो न हन्तति जीवितम्
॥ ६० ॥ दिव्यचक्रुरहं जातः सरागेणापि चक्षुषा ।
इक्ष्म्यो येन पश्यामि देशान्तरगतानां प्रियाम् ॥ ६१ ॥
दूरमस्तु वग्धूर्णिनारं शारदेन्दुमुखीक्ष्णमचणोः ।
एतदेव मम पुण्यमगण्यं यत्कृशोदरि दशोरतिधिस्त्वम्
॥ ६२ ॥ दैवादहमत्र तथा जपलायतनेभ्या विमुक्तम् ।

चन्द्रमाक्षी कामिकी जीवा दिशानेवाला उसका मुखकमल, सुन्दर
चितवनसे भरे उसके दोनों नेत्र, उसका भौंहोंका फड़कना,
मार्गमें सखियोंके सामने प्रेममें भरकर मुझे देखना, और
भी अनेक बातें हैं, मैं इस समय अपने हृदयमें किस-किसकी
चिन्ता करूँ, क्योंकि मेरे हृदयको तो कामदेवने अपने पाशोंका
लक्ष्य ही बना डाला है ॥ ५३ ॥ सुनहरी चम्पाके समान कामि-
वाली उस मृगमयनीकी मैं अपने पास ही खड़ी हुई, सामने
आकर घूमती हुई तथा दसों दिशाओंमें चमकती हुई देखता
हूँ । यही नहीं, उसमें रूप जानेपर मुझे सारा संसार ही उसीसे
भरा हुआ क्यों दिखाई देने लगा है ? ॥ ५४ ॥ कोई विरही युवक
पहलेकी बातें सोचना हुआ कहता है—'वह उसे छूनेका
सुख, वे चञ्चल तथा स्नेहपूर्ण चितवनें, वह कमल जैसे मुखकी
सुगंध, वह अमृतकी घषा करनेवाला खोलनेका ढंग तथा
वह कुँदरके समान अधरकी मिठास, इन सबका अनुभव करके
उसके साथ रहनेपर मेरा मन उन्हींमें लीन रहता था । हाय !
अब विरहकी वेदनामें वे बातें कैसे भुलाई जा सकती हैं ?
॥ ५५ ॥ चन्द्रमाके समान सुन्दर मुखवाली नवेलीका बहुत
देरतक देखनेके परचाव मेरा चित लज्जाकी जीतकर, नम्रताको
दूर कर, धीरताको उखाड़ कर तथा अस्मयमें विचारहीन
बनकर किसी-किसी प्रकार वहाँसे खीटा ॥ ५६ ॥ मेरे अनेक
प्रकारकी चिकनी-चुपड़ी बातें करनेके परचाव उसकी आज्ञा
होनेपर जो रति-क्रीड़ा हुई उसके परचाव जानके कारण खोली

पत्रकर उसने धाँसेमें मेरे बख पहन लिए तथा मैंने भी उसके
बख पहन लिए । मुझे इस रूपमें देखकर जो उसने मुस्कराकर
बह कहा कि 'तुम्हें तो पही वेप शोभा देता है' यह आज भी
मुझे नहीं भूल रहा है ॥ ५७ ॥ उस मृगमयनीने अपनी तिरछी
चितवन देकर मेरा मन ले लिया और मैंने अपना मन देकर
पाया काम-उबर । ॥ ५८ ॥ चञ्चल तथा बड़े-बड़े नेत्रोंवाली
वह नवेली वृकाएक जबसे आँखोंके सामने पड़ी तभीसे कामके
बाणोंके बरसे मानो हृदयने मुझे छोड़ दिया ॥ ५९ ॥ हृदय
चकराकर फट तो रहा है किन्तु दो टुकड़े नहीं हो रहा है,
शरीर व्याकुल होकर मोहमें तो पड़ा है किन्तु चेतना नहीं
छोड़ रहा है, भीतरका दाह तपाए तो डाल रहा है किन्तु
शरीरको भस्म नहीं कर दे रहा है तथा मर्मस्थलको छेदनेवाला
दुर्भाग्य मुखपर प्रहार तो कर रहा है पर जीवनको टुकड़े-टुकड़े
नहीं कर रहा है ॥ ६० ॥ जान पड़ता है आँखोंके सराग
(अनुराग सहित जाल) होनेपर भी मैं दिग्ब्रह्म (न दिखाई
देनेवाली वस्तुओंको देखनेवाला) हो गया हूँ, तभी तो यहाँ
रहते हुए भी दूर देशमें पड़ी हुई प्यारीको देख रहा हूँ ॥ ६१ ॥
हे दुबले पंडवाली ! शरद ऋतुके चन्द्रमाके समान तुम्हारे उस
सुँदका दर्शन दूर रहे जिसमें पुतलियाँ घूम रही हैं, हमारी
आँखोंका ता यही बड़ा भारी पुण्य है कि तुम नेत्रोंके सामने
तो आ गई हो ॥ ६२ ॥ उस चञ्चल तथा बड़े-बड़े नेत्रोंवाली
नवेलीसे मैं बिछुड़ा ही था कि दुर्भाग्य-वश मैं बराते हुए घने

अधिरत्नविलोलजलदः कालः समुपागतध्यायम् ॥६३॥
 दृगन्तव्यापारप्रवलनिगडेन स्फुरदुरस्तटोकारागारे
 तव समुचितं बन्धनमिदम् । अरे केनस्यक्त्वा यदिह
 जनमाजन्मसुहृदं क्षणप्राप्तमेवामधरमधुलाभेन भञ्जसे
 ॥ ६४ ॥ धन्या सा गृहदेहली स्पृशति या तत्पादपद्म-
 प्रभां जाता सा सरसी रसाद्विशति सा यस्यां विहा-
 रेच्छया । वन्द्यः कोऽपि स एव यः खलु तया नेत्रेषु
 सम्भाष्यते धिक्प्रियेधसमेधु मां यदनयश्चकं कथञ्चि-
 त्कथम् ॥ ६५ ॥ न वृत्तोलञ्जरो न सरसपराङ्मुख-
 कलना न साम्मुख्ये हासः कश्चिदपि न वाचां व्यति-
 करः । अहो चित्रं चेतः क्षणपरिचितालोकनवशान्मु-
 हुर्यायवाधं व्रजति सुहृदं ना विरमति ॥६६॥ नपुंसक-
 मिति ज्ञात्वा तां प्रति प्रह्वितं मनः । तस्य तत्रैव रमते हनारः
 पाणिनिना वयम् ॥६७॥ न मे दुःखं प्रिया दूरे न मे दुःखं
 हृतेति सा । एतदेवानुशोचामि वयोऽस्या ह्यतिवतसे

॥ ६८ ॥ नयनेन निरोजिता ननाङ्गी हृदये हन्त पत-
 त्रिलः पतन्ति । विषमा विषमायुधव्यासां परिभूयेत
 परः परापराधैः ॥ ६९ ॥ न यत्ताजालेपप्रभृति कुतु-
 कानामयगमा न पांशूपम्वादस्मिन्वलितवचामनु-
 भवः । न चासौन्मे नादृष्टदृष्टिचयः पङ्कजदशः कुनो
 हेनोस्तन्वी क्षणमपि न निर्याति मनसः ॥ ७० ॥ निका-
 रकणिका कृता हस्मिलोचने नो मया मुधैव करसम्पुटे
 मुखविधुः किमावासितः । इतोऽंगति मयादिने तरलि-
 ताङ्गुलोकोदरैर्दिलोक्य विहितस्तया रभसशक्तकण्ठ-
 ग्रहः ॥ ७१ ॥ निद्रार्थमोलिनदशा मद्मन्थगणि नाप्य-
 र्थवन्ति न च नाम निरर्थकानि । अद्यापि मे मृगदशा
 मधुराणि तस्यास्ताभ्यक्षराणि हृदये किमपि ध्वनन्ति
 ॥ ७२ ॥ निद्रं लाचनमुद्रणं विरस्य स्थान त्वमप्याचर
 प्राणाभिन्नतमां चिरात्प्रियतमां मन्थतसां गाचरम् ।
 आतवींथ दृढाङ्गुरोथ न तथा कुर्या यथा प्रियसोमोदा-

बादल छिप-छिप वर्षां जलु भी आ पहुँची ॥ ६३ ॥ हे चित !
 उस नवेलीके सुन्दर वक्षःस्थल रूपां कारागारमें चितवन-रूपी
 बेड़ीसे तुम्हारा बाँधा जाना उचित ही है क्योंकि अपनी जाँब-
 सक्तिनी उस नवेलीकी छोड़कर अधरामृत-रूपी मधुके लोभसे
 जलभरके किये मिली हुई दूसरी सुन्दरीकी तुम चाहने लगे हो
 ॥ ६४ ॥ उस सरसी देखती धन्य है जो उसके चरणकमलकी
 कान्ति पाती रहती है, वह भीत धन्य है जिसमें वह जल-
 कोड़ाके किये जाती है और संसारमें वह पुरुष बन्दगीव है
 जिसका वह अपनी चितवनगोसे सत्कार करती है, किन्तु विश्कार
 है उस लज्जाकी जिसने न जाने क्यों इनमेंसे मुझे एक भी नहीं
 बनाया ॥ ६५ ॥ न तो दूनियों ही आई-गईं, न आइसे ज़िपकर
 बातें ही सुनी गईं, न सामने उसका मुसकराना देखा गया और
 न उससे कहीं बातचीत ही हुई, फिर भी आश्चर्य तो यह है
 कि जल-भरके देखने-मात्रके परिचयसे चित बार-बार दौड़कर
 उस नवेलीके ही पास जा रहा है, उससे उछट नहीं पा रहा
 है ॥ ६६ ॥ पाणिनि मुझे कहनेके अनुसार मैंने तो मनको
 'नपुंसक' समझकर प्यारीके पास भेजा किन्तु वह तो वहीं रम
 गया अतः जान पड़ता है कि वह पुरुष है और पाणिनिने हमें
 धोखा दिया ॥ ६७ ॥ मुझे इसका तनिक भी दुःख नहीं है
 कि प्यारी मुझसे दूर है, इसका भी दुःख नहीं है कि वह दूर
 की गई है, मुझे तो केवल इसी बातका शोक है कि उसका
 जीवन बीता आ रहा है ॥ ६८ ॥ उस मुझे हुए चलोवाली

नवेलीको देखा तो आँखोंसे किन्तु कामके बाण गिर रहे हैं हृदयपर
 और हृदयमें ही भयङ्कर पीड़ा भी हो रही है । हाय ! अपरध किया
 किसी दूसरेने और दृष्ट भोगना पड़ रहा है किसी दूसरेको
 ॥ ६९ ॥ यद्यपि मैंने न तो उस नवेलीके स्तनोंका आलिङ्गन प्रादि
 किया, न मुझे उसकी अमृतमयी मधुर मुस्कानसे भरी बातें ही
 सुननेका अवसर मिला और न उससे मेरा कोई पुराना
 परिचय ही था फिर भी न जाने क्यों वह मृगनयनी जलभर
 भी मनसे हट नहीं पा रही है ? ॥ ७० ॥ अपनी प्यारीको
 अपने हाथोंसे मुँह ढककर बैठी देखकर उषों ही मैंने कहा कि
 'हे मृगनयनी ! मैंने तो तुम्हारा तनिक भी अपमान नहीं
 किया, फिर क्यों तुम धर्य ही अपने हाथोंकी अज्ञानिमें अपना
 चन्द्रमुख बसाए बैठी हो ?' त्यों ही वह अपनी उँगलियों
 खोजकर मेरी ओर खिलखिलाकर हैंसती हुई मेरे गलेसे निपट
 गई ॥ ७१ ॥ नींदसे जिसकी आँखें आधी सुँदी हुई थीं उस
 मृगनयनीके मुखसे मदके कारण जटपटाकर निकले हुए वे मधुर
 अक्षर आज भी हृदयमें गूँज रहे हैं जिनमें कुछ तो अर्थवाले
 थे और कुछ निरर्थक ॥ ७२ ॥ हे नींद ! मेरो आँखें सुँद दो ।
 हे स्वप्न ! बहुत दिनोंसे प्राणोंमें बसी हुई प्यारीको मेरे मनके
 सामने जा दो और हे भाई जागरण ! तुमसे मैं बार-बार
 प्रार्थना करता हूँ कि ऐसा कोई काम न कर बैठना कि मेरी
 प्यारीका गाढ़ा आलिङ्गन सुदा देनेके कारण संसार-भरमें
 सुम्हारा अपवस हो ॥ ७३ ॥ समुद्र तथा नदियोंके जलकी

श्लेषविघट्टनेन भवतः कीडन्ति दुष्कीर्तयः ॥ ७३ ॥
 निष्कासयन्त्यनेके सागरसरिदम्बुपूरपरिपतितम् ।
 हृदयहृदे निमग्नमिन्दुमुखी मा बहिः कुरुताम् ॥ ७४ ॥
 नूनमयं मे पापः कान्ताचिरहो रसायनोभूतः । वर्षस-
 हस्राभ्याधिकाज्जगामि कथमन्यथा दियसान् ॥ ७५ ॥
 पञ्चसायकमहेन्द्रजादिना पाणिपद्मसमुद्भिता
 स्वयम् । मोहनाय मनसः प्रगल्भते पिच्छुक्तेव मम
 अञ्जलेक्षणा ॥ ७६ ॥ परागैः कार्पूरैस्तुहिनसलिलैश्चा-
 न्दनरसैः सुधाभिज्योत्कामिः क्षपितमिव यः प्रागकृत
 माम् । स एवासौ मारः शिव शिव वियोगे मृगदशः
 करासं काकोलं किरति मयि कालानलमपि ॥ ७७ ॥
 पश्यामि तामित इतः पुरतश्च पश्चादन्तर्यामिः परित
 एव विद्यतमानाम् । उद्बुद्धमुग्धकनकाञ्जनिभं बहन्ती-
 भासकतिर्यगपवर्तितहृष्टि वक्त्रम् ॥ ७८ ॥ पादाङ्गुष्ठेन
 भूमिं किसलयवर्धिता सापदेशं लिसन्तो भूयोभूयः

लिपन्ती मयि स्तितशबले लोचने लोलतारे । वक्त्रं
 द्वीनम्रमोपस्फुरदधरपुटं वाक्पद्मार्धं दधामा यन्मां
 नोवाच किञ्चित्स्थितमपि पुरतो मानसं तदुनोति
 ॥ ७६ ॥ पीतो यतः प्रभृति कामपिपासितेन तस्या मया-
 धररसः प्रचुरः प्रियायाः । तृष्णा ततः प्रभृति मे द्विगु-
 णत्वमेति लाघवमस्ति बहु तत्र किमप्यपूर्वम् ॥ ७७ ॥
 पुनरपि मिलनं यदाकदाचित्प्रियतमया कृपया भवेद्वि-
 धातुः । हरिरिव करवै हृदि प्रतिष्ठामिह रमणीं तनवै
 तनोरभिन्नाम् ॥ ७८ ॥ पुरस्ताद्भक्तवन्ती सह सहचरीभिः
 प्रियतमा ममालापं श्रुत्वा सचकितपरावृत्तवदना ।
 किमग्रे व्यासङ्गादहमहं यामीति विनयप्रणालीमालीनां
 यदकृत तदन्तर्द्वयधरति ॥ ७९ ॥ प्रथमविरहलेख्या-
 पिनी यत्र बाला वसति नयनवास्तैरधुभिर्धौतगण्डा ।
 ग्रहतमुरजवृन्धध्वानवज्जिः पयोदैः कथमलिकुलनीलैः
 साऽपि दिक्सन्निवृद्धा ॥ ८० ॥ प्राणाः प्रियतमा हन्त

आयें प्यो हुई बम्पुई नो बहुतेरे लोग निकाल लेते हैं किन्तु
 हृदय-रूपी ताकावमें हुयी हुई उस चन्द्रमुखीको कोई नहीं
 निकाल पा रहा है ॥ ७३ ॥ उस नवेलीका यह पापी बिहोह
 सबमुच मेरे लिये सजीवनी बूटीके समान रसायनका काम
 कर रहा है । यदि यह बात न होती तो सहस्रों वर्षोंके समान
 जान पड़नेवाले ये दिन मैं कैसे बिता रहा हूँ ॥ ७४ ॥ वह
 चञ्चल नेत्रवाली नवेली ऐसी जान पड़ती है मानो मेरे मनको
 मोहमें डालनेके लिये कामदेव-रूपी आदुगदने कमल जैसे
 हाथमें मोरपक्षसे बनी हुई आहु उठा रखी हो ॥ ७५ ॥ जिस
 समय वह भृगनयनी मेरे साथ थी उस समय जो कामदेव
 मानो कपूरके घूरेसे, पालेके जलसे, चन्दनके रससे, अमृतसे
 तथा चाँदनीसे नहला-सा देता था, वही कामदेव अब उसके
 बिछोहमें मुकपर भयङ्कर विष तथा प्रलयकाण्डके जंगारे
 बरसाए दे रहा है ॥ ७६ ॥ जिस नवेलीका मुख लिले हुए
 सोनेके मनोहर कमलके समान है तथा जिसकी प्रेमभरी
 चितवन आँखें-तिरछे पड़ रही हैं, उस नवेलीको मैं आगे-पाँछे,
 बाहर-भीतर, चारों ओर विराजमान देख रहा हूँ ॥ ७७ ॥ मेरे
 मनमें केवल यही बात कसक रही है कि वह नवेली कोंपलके
 समान कान्तिवाले अपने पैरके चँगूठसे किसी बहाने भूँसे
 धरतीपर कुछ लिख रहा थी, बार-बार चञ्चल पुनर्लियाँवाली
 अपनी उजली तथा काली चितवनें मुकपर ढाज रही थी
 तथा जगन्नासे सिर मुकाकर फड़कते हुए अंधरावले अँधमें

भीतर ही भीतर कुछ गुणगुना भी रही थी किन्तु सामने कब
 देखकर भी मुझसे कुछ बाँझा नहीं ॥ ७८ ॥ उस प्यारीमें
 एक ऐसा अजुन कावप (सुन्दरता, आराधन) है कि
 कामागिके तापसे प्यासा होकर मैंने जबसे उसका अधर-रस
 जी भर पिया तभीसे मेरी प्यास हुगुनी बंद गई ॥ ७९ ॥
 भगवान्की कृपासे अब जब भी कभी उस प्यारीसे मिखाप
 होगा तब मैं उसे उसी भाँति हृदयमें धारण कर लूँगा
 जैसे विष्णुने जलमीको हृदयमें धारण कर रक्खा है तथा जैसे
 ही अपने शरीरसे उसे लिपटाए रहूँगा जैसे पार्वतीको
 लिबनी लिपटाए रहते हैं ॥ ८० ॥ अपनी प्यारीकी
 उस दिनवाली बातको स्मरण कर-करके मेरा जो भीतर ही
 भीतर कपोट रहा है कि मेरी प्यारी अपनी सखियोंके साथ
 आगे-आगे जा रही थी, मेरे शब्द सुनकर चकित होकर मेरी
 ओर घूम-घूमकर देखती जा रही थी और सखियोंसे आग्रह
 कर रही थी कि मुझे आगे धक्केमें मत ले चलो ॥ ८१ ॥
 हाय ! मेरे पहले-पहल बिछोहसे दुखी तथा नेत्रोंसे बहते हुए
 आँसुओंसे धुके हुए कपोलवाली मेरी नवेली प्रिया जहाँ
 रहती है उधर भी ये धक्कावट बजते हुए नगादोंके समान
 गद्गद्वाते हुए तथा भीतोंके समूहके समान काँसे बादल घा
 गप ॥ ८२ ॥ हाय ! मेरे अत्यन्त प्यारे प्राण तो दूर (प्रियतमामें)
 जा बसे हैं अतः मेरी दशा क्या चित्र लिले-सी हो गई है
 वा उस रस्ती जैसी नहीं हो गयी है जिसमें जीवित साँपका

दूरे तदपि मे स्थितिः । आलेख्यनिहितस्येव न किं
या रज्जुभौमिवत् ॥ ८४ ॥ प्रालेयाद्रिस्त्वरितमुरसि
क्षिप्यतां शैत्यहेतोरास्तां यद्वा स खलु निखिलः
स्याद्विलीयाश्मशेषः । न्यक्त्वा स्तारं जलधिसलिलं
जाह्नवीतोयपूर्णस्तूर्णं गात्रे मम जलमुचः कञ्चुकत्वं
प्रयान्तु ॥ ८५ ॥ प्रासादे सा दिशि दिशि च सा पृष्ठतः
सा पुरः सा पर्यङ्के सा पथि पथि च सा तद्वियोगानुरस्य ।
हंहो चेतः प्रकृतिरपरा नास्ति मे कापि सा सा सा
सा सा सा जगति सकले कीऽयमद्वैतवादः ॥ ८६ ॥
प्रेमाग्नीः प्रणयस्पृशः परिचयादुद्गाढरागोदयास्तास्ता
मुग्धदृशो निसर्गमधुराश्लेषा भवेयुर्मयि । यास्वन्तः-
करणस्य बाह्यकरणव्यापाररोधो क्षणादाशंसापरिक-
ल्पिताश्चपि भयनानन्दसान्द्रो लयः ॥ ८७ ॥ भूषाप-
वर्णां सुमुखी यावन्मयसि वक्रताम् । तावत्कटाक्षवि-
शिक्षेभिद्यते हृदयं मम ॥ ८८ ॥ मनः प्रकृत्यैव खलं

दुर्लभं च तथापि मे । कामेनैतत्कथं विदं समं सर्वैः
शिलीमुखैः ॥ ८९ ॥ मन्दस्मितेन मधुराधग्नयनेन
कुम्भोन्नमकुचभरणे कृशादरेण । विद्यन्निभाकलतया
च विचिन्त्यमाना जेनो धुनोनि च धिनोनि च चञ्च-
लात्ती ॥ ९० ॥ मन्दादरः कुसुमपत्रिपु पेलघेपु नूनं विभक्तिं
मदनः पयनास्त्रमद्य । हारप्रकाण्डसरलाः कथमन्यथामी
भवासाः प्रनतिनदुकूलदशास्सरन्ति ॥ ९१ ॥ मयि
सकपटं किञ्चिन्मवापि प्रणीतविलोचनं किमपि नयनं
प्राप्तं तिर्यग्विजृम्भितनारकम् । स्थितमुपगतमालीं
दृष्ट्वा सलज्जमयाश्चितं कुचलयदृशः स्मरं स्मरं स्मरामि
तद्दाननम् ॥ ९२ ॥ मुखं तस्याः स्मितस्मेरं किञ्चिद्-
क्षलसंवृतम् । मदालोकनलालाक्षं स्मृत्या मन्ये सुधा
मुधा ॥ ९३ ॥ मुग्धा यद्वन्ति वितथं प्राणप्रियागे न
जीघनं सुवचम् । कथमन्यथा प्रियास्वप्रसङ्गिनोऽयस्य
गच्छते सत्त्वम् ॥ ९४ ॥ मृणालीद्वारोऽयं न भुजगपति-

अम हो जाता है ? ॥ ८४ ॥ मुझे ठण्ठक पट्टेबाजे के लिये
हीन ही मेरी छातीपर पालेका पहाड़ उड़ा दो । किन्तु नहीं !
मेरी छातीके तापसे वह भी गल जायगा और उसमें पथर
भर रह जायेंगे । अतः समुद्रका लारा जल छोड़कर केवल
गङ्गातटको भरे हुए मेघ ■ मुझे भली-भाँति उड़ा दो
॥ ८५ ॥ मेरे चित्तका एक विचित्र-सा स्वभाव बन गया है
कि मुझे कोई दूसरी नवेली दिखाई ही नहीं देती । भवनमें,
दिरागमें, आगे, पीछे, परीं पर और भागोंमें, यहाँतक कि
सारे संसारमें वही-वही दिखाई दे रही है, यह कहाँका नया
अद्वैतवाद है ? ॥ ८६ ॥ मुझे देखकर वह मृगनयनी अपनी
प्रेमसे सभी, अशुभागसे भरी, परिचयके स्नेहमें पगी तथा
स्वभावसे ही मधुर वे चेष्टाएँ करती रहे तो अच्छा ही जिनके
अनुभवका बार-बार चिन्तन करने-मात्रसे हृदय आनन्दसे
पिबला पड़ता है तथा बाहरी इन्द्रियोंका सारा क्रियाएँ सुन्न
हो जाती है ॥ ८७ ॥ सुभर घाँट करनेके लिये वह सुन्दर
मुखवाली नवेली जबतक अपना भीड़रूपी धनुष खींचकर
बाँका करे-करे, उससे पहले ही उसके चितवनरूपी बाणोंसे मेरा
हृदय टूक-टूक हो जाता है ॥ ८८ ॥ एक तो यों ही मन स्वभावसे
अज्ञ होता है, तिसपर दिखाई भी नहीं देता, फिर भी
प्रचरन तो इस बातका है कि कामदेवने अपने सभी बाणोंसे
एक साथ उसे बेध दैसे डाला ! ॥ ८९ ॥ मधुर मुस्कानवाली,
अधररूपी नये-नये मधुर पल्लोवाली, धड़ेके समान जैसे

स्तनोंवाली तथा पल्ले उदरवाली पित्रालीके समान चमकते
हुए शरीरवाली उस चञ्चल नेत्रवाली नवेलीका मैं जब-जब
स्मरण करता हूँ तब-तब हृदय काँप भी जाता है और खिल
भी जाता है ॥ ९० ॥ कामल कुलोंके बाण अब कामदेवको
नहीं सुझाते होंगे इसलिये अब उसने पवनका अन्न धारण
कर लिया है । यदि यह बात न होती तो हारकी लक्ष्मीके
समान साथे वहनेवाले सौंसके पवन आज आँचलका छाँर
दिला-हिलाकर क्या बह रहे हैं ? ॥ ९१ ॥ मैं किसी बहानेसे
कुछ देख रहा था कि एकाएक सुभर उस नवेलीको दृष्टि
आ पड़ा जिसके नेत्रोंका पुनर्लियाँ तिरछी चल रही थीं ।
पर उसी समय सखीके पास आ पहुँचनेसे उस कमलनयनीने
मुख नीचा कर लिया । उस समयका उसका मुस्कराता
हुआ मुखड़ा मुझे इस समय स्मरण आ रहा है ॥ ९२ ॥
मन्द मुस्कानसे खिले हुए, धँपटसे डके हुए तथा मुझे
देखनेके लिये चञ्चल नेत्रोंवाले उसके मुखका जब मैं स्मरण
करने लगता हूँ तब अमृत भाँ पीका जान पड़ने लगता
है ॥ ९३ ॥ मूर्ख लोग जो कहते हैं कि 'प्राणोंसे कितुनएपर
मनुष्य बोलने योग्य नहीं रह जाता' यह बात झूठ है ।
यदि यह बात झूठ न होती तो अपनी प्रियतमासे दूर बैठ
हुआ यह प्राणी स्पष्ट बोल कैसे रहा है ॥ ९४ ॥ अरे
कामदेव ! वह कमलनालका हार है, सोंप नहीं । यह चन्दनका
रस है, भस्म नहीं । गलेमें ये नीले कमलकी पंखुदियाँ हैं, विप

अन्दनरसो न भस्मेदं कण्ठे कुचलयदलाली न गरलम् ।
 सिताम्भोजं पाणौ लसति न कपालं मयि मुधा
 पुरारातिक्रोधात्स्मर किमनभिहः प्रहरसि ॥ ६५ ॥
 यत्र क्षिपामि दशमन्यदिदृक्ष्याहं तत्रागतः स्फुरति
 केयलमेतदेव । तद्वक्रयिष्वमरुणाधरलोभनीयं ते
 लोचने तदलसालसमीक्षितं च ॥ ६६ ॥ यत्राकृतिस्तत्र
 गुणा वसन्ति नैतद्धि सम्यक्विभिः प्रणीतम् । येना-
 तिचार्यङ्गयपि मे हृदिस्था दुनोति गात्रं विरहे
 म्रियासो ॥ ६७ ॥ यत्सारैरिव पङ्कजस्य घटितं यच्च-
 न्द्रगर्भादिव प्रोत्कीर्णं यदनङ्गसायकशिखाभरणेन संघ-
 र्थितम् । यत्संसिद्ध्य सुधारसैरिव रतेरास्थानभूमी-
 कृतं तद्भूयोऽपि कदा सरारुहदृशः पश्यामि तस्या
 मुक्तम् ॥ ६८ ॥ यदि प्रियाविद्यानेऽपि रुचत दीनदीन-
 कम् । तदिदं दग्धमरणमुपयागं क यास्यति ॥ ६९ ॥
 यदि स्मरामि तन्मङ्गलं जायिताशा कुता मम । अथ
 विस्मृत्य जायामि जीवितव्यसनं किम् ॥ ७० ॥

नहीं और मेरे हाथमें यह उमका कमल है, लोपड़ी नहीं है
 सतः वहाँ व्यर्थ है। मुझे भ्रमसे शिवजी समझकर मुझपर
 दौत पास-पासकर प्रहार कर रहे हैं ॥ ६५ ॥ कुत्र भा देवनेके
 जल में जहाँ राख पसारता है कि मेरे सामने काज आठावाला
 उसका सुन्दर मुख, उसके लज तथा उसका सुन्दर भवसाई
 चितवन बजाता है। मर आलाक सामने आ लड़ा जाता है
 ॥ ६६ ॥ कावधान यह ठाक नहा जिला है ॥ 'जहाँ सुन्दर रूप
 है, वहाँ सुन्दर गुण भी निवास करत है' क्योंकि वह अत्यन्त
 सुन्दर शरभवाला प्रियतमा हृदयमें रहनेपर भी अपने
 सिद्धाहसे शरारका कट्ट हा पहुँचा रहा है ॥ ६७ ॥ मैं अपनी
 मृगयनी नखलाका वह मुख पुनः कब देख पाऊँगा आ ऐसा
 जान पड़ता है माना कमलसे साथ निचाइकर बनाया गया है,
 चन्द्रमाके भीतरसे निकाला गया है, कामदेवके नायाँकी नाकसे
 बढ़ाया गया है तथा इनसे रतने अमृतके रससे सींचकर अपना
 निवास-स्थान बनाया है ॥ ६८ ॥ प्राण-प्यारीके सिद्धाहमें
 यदि दीन हाकर राजा है पड़ा तो जोष मृत्यु किस दिन
 काम आयेगा ! ॥ ६९ ॥ जब मैं उस दुबला-पतला नायिकाका
 स्मरण करता हूँ तो ऐसा लगता है कि मैं जा नहीं पाऊँगा,
 और यदि उसे भूलकर मैं जाता भी रहा तो ऐसे जीवन-रूपी
 सङ्कटसे लाभ है क्या है ? ॥ ७० ॥ जयसे उस सुनयनीने मेरे
 हृदयमें बसेरा बना है तबसे कहीं भी, किसी भी सुन्दर वस्तुमें

यदैवारम्भान्तः पदमुपहितं पद्मलदशा तदैवेवं सेतः
 प्वचिदपि न रम्येऽपि रमते । इदञ्चान्यजातं स्मर-
 णपुनरुक्तव्यसनिनस्तदाकारास्सर्वे मम खलु पदार्थाः
 परिणताः ॥ १०१ ॥ यद्विस्मयस्तिमितमस्तमितान्य-
 भावमानन्दमन्दममृतप्रवनादिवाभूत् । तत्सन्निधौ
 तदधुना हृदयं मदीयमङ्गारचुम्बितमिव व्यथमान-
 मास्ते ॥ १०२ ॥ या जयभीर्मनोजस्य यया जगदलङ्क-
 तम् । यामेलाखौ विना प्राणा विफला मे कुतोऽय-
 सा ॥ १०३ ॥ याताः किं न मिलन्ति सुन्दरि पुन-
 श्चिन्ता त्वया मत्कृते नो कार्या नितरां कृशसि कथ-
 यत्येवं सवाप्ये मयि । लज्जामन्धरतारकेण निपतस्पी-
 ताभूला खलुषा हृष्टा मां हसितेन भाधिमरणोत्साह-
 स्तया सूचितः ॥ १०४ ॥ यान्त्याः सरःसलिलकेलि-
 कुतूहलाय व्याजादुपेत्य मयि धर्मनि वर्तमाने ।
 अन्तःस्थितयुतिचमत्कृतदकरद्वैरङ्गीकृतं किमपि
 वामदृशः स्मरामि ॥ १०५ ॥ याम्स्या मुदुर्वलितकन्धर-

मन नहीं लग पाता, बरन् हो यह गया है कि उसका स्मरण
 करते-करते संसारको सारी वस्तुएँ उसीके रूपकी दिखाई देने
 लगी हैं ॥ १०१ ॥ मेरा जो मन उस नखलीके पास रहता
 हुआ सदा अचरजसे भरा रहता था, कभी कोई दूसरी बात
 साक्षात्तक नहीं आ तथा अमृतकुपडमें सैरता हुआ-सा
 मानन्दमें मान रहता था वही हृदय अब उसके बिक्रीहमें अङ्गारोंसे
 घिरा हुआ-सा जला जा रहा है ॥ १०२ ॥ वह मेरी प्यारी
 सुनयनी आज कहाँ है जो कामदेवकी विजय-जयनी है, जो
 सारे संसारको गाँभा है तथा जिसके बिना मेरे प्राण व्यर्थ
 हो रहे हैं ? ॥ १०३ ॥ कोई विरही युवक अपनी परदेश-यात्राके
 समयका स्मरण कर रहा है—'हे सुन्दरी ! क्या परदेश गए हुए
 जांग फिर नहीं मिलते ? मेरे लिये चिन्ता न करना क्योंकि तुम
 बहुत दुबला है', ऐसा कहते-कहते मेरी छाँकोंमें आँसू आ
 गए, उसकी बाँटी-सी पुतली भी जाजसे झुक गई, उसने
 अपने गिरते हुए आँसू रोके, मुझे देखा और ईसक सङ्केतसे
 समझा दिया कि मुझे भी मरनेका सीभाव प्राप्त हो जायगा
 ॥ १०४ ॥ जिस समय वह सुनयनी नखली जल-कोड़ा करनेकी
 हृष्टसे लाजावकी ओर जा रही थी उस समय मुझे मार्गमें लड़ा
 देखकर किसी बहानेसे मेरे पास आकर, भीतरसे चमकती
 हुई आँखोंसे बाँकी चितवन चलाकर उसने जो किसी कार्यके
 लिये स्वीकृति दी वह मुझे आज भी स्मरण आ रहा है

माननं तदावृत्तवृत्तशतपत्रनिभं वहन्त्या । दिग्धोऽमु-
तेन च विषेण च पद्मलावणा गाढं निष्ठात इव मे
हृदये कटाक्षः ॥ १०६ ॥ राकासुधाकरमुखी तरलाय-
ताक्षी सस्मेरयौघनतरङ्गिनविध्रमास्या । तर्त्तिक करोमि
कथमत्र तनोमि मैत्र्या तत्स्वीकृतिव्यतिकरे क इहा-
भ्युपायः ॥ १०७ ॥ राजजलाटफलका कमनीयकूज-
काञ्चोगुणप्रणयिनी धृतकेशपत्ता । हा किं करोमि
मम सा हृदयं प्रविष्टा नाराचयष्टिरिय पुष्पशिली-
मुक्तस्य ॥ १०८ ॥ लज्जोद्योद्यटिता किमत्र कुलिशो-
द्धिना कपाटावली मर्यादैव विलङ्घिता सखि पुनः
केयं कलिन्दात्मजा । आसिषा खलु दष्टिरेव किमियं
व्यालावली वा पुनः प्राणा एव समर्पितास्सखि पुन-
स्तस्मै किमेवा तनुः ॥ १०९ ॥ लावण्यं तदसा कान्ति-
स्तद्रूपं स वक्षःकमः । तदा सुधास्पदमभूरनुना तु
ज्वरो महान् ॥ ११० ॥ लोनेव प्रतियिम्बितेव लिखिते-

वोन्कीर्णस्त्रेव च प्रत्युत्प्लेव च वज्रलेपघटितेवान्तनि-
खातेव च । सा नश्चेतसि कीलितेव विशिवैश्चेतोभुषः
पञ्चभिश्चिन्तासन्तनिनन्तुजालनिविडस्युतंच लग्ना
प्रिया ॥ १११ ॥ लीलाभितेन शुचिना मृदुनोदितेन
व्यालोकितेन लघुना गुरुणा गतेन । व्याजभितेन
जघनेन च दशितेन सा हन्ति तेन गलितं मम जीवि-
तेन ॥ ११२ ॥ चारंवारं तिरयति दशारुद्रं वाष्पपूर-
स्तत्सङ्कल्पापहिनजडिमास्तभमभ्यति गात्रम् । सद्यः
स्विद्यन्नयमविरतोत्कम्पलोलाकुलोकः पाणिलैस्त्रावि-
धिषु नितरां वर्तत किं करोमि ॥ ११३ ॥ विपत्तिस्त्रि-
बन्धुं विगलितजलं नेत्रयुगलं सशकं भूलोकं भुवन-
वलयं खेदनिलयम् । अनङ्गं नीरङ्गं विघटितधनं कांश-
भयनं विधातुं किं धातस्तव हृदि न लज्जा प्रभवति
॥ ११४ ॥ विलोयेन्दुः साक्षादमृतरसवापी यदि भयंक्क-
लहस्तत्रत्यो यदि च विकचेन्द्वारचनम् । ततः

॥ १०६ ॥ देवी कलीवाले कमलके समान मुखवाली उस
सुनयनी नबेलीने मुँह घुमाकर जाते समय मानां बहून तथा
विपत्ते भरी हुई (सुख तथा दुःख देनेवाला) तिरछी
बितबन मेरे हृदयमें गाढ़-सी दी ॥ १०६ ॥ उस नबेलीका मुँह
दृष्टिमाके लिये हुए चन्द्रमाके समान है, भाँकें बड़ा-बड़ा तथा
चञ्चल हैं और उसके मुखपर लिये हुए पीवनकी पुञ्जबुजाइट
भी दिखाई पड़ रहा है । क्या कर्क ? कैसे उसे वशमें कर्क
और यदि उसे मेरी मित्रता स्वीकार न हुई तब क्या किया
जायगा ? ॥ १०७ ॥ हाय ! मैं क्या कर्क ? वह वचनके हुए
मायेवाली, भयुर हनकुन करती हुई तगड़ीवाली तथा हाथसे
अपनी चौटी धामे हुए नबेली मेरे हृदयमें कामदेवका
बाण बनकर जुध गई है ॥ १०८ ॥ कोई बिरही युवक दूतीसे
अपनी दशा बता रहा है—‘हे सखी । जय मैंने खज्जाका हाँ द्वार
कोज दिया, तब कीजोंसे जड़े हुए किवाड़को तो बात ही क्या
है ! जब मैंने कुजकी मर्यादा हो तोड़ दी तो मेरे लिये
यसुना लौंघ जाना कौन बड़ी बात है । जब मैंने अपनी दृष्टि
ही उस और चला दी तो सौंपका क्या डर है ! और जब मैंने
उसे अपने प्राण ही सौंप दिए तब देहका तो कहना ही क्या है
॥ १०९ ॥ उस नबेलीकी सुन्दरता, उसकी चटक-मटक,
उसका सुन्दर रूप तथा उसके बोलनेका ढङ्ग उस समय तो
अधुत जैसा जान पड़ता था किन्तु इस समय भयङ्कर
भरके समान कष्ट दे रहा है ॥ ११० ॥ मुझे ऐसा लगता

है मानां मेरे मनमें उस प्यारीकी छाया-सी पड़ रही हो,
वह मेरे मनमें चुली-सी लिंगी-सी, सुदीसी, जड़ी-सी
वज्रलेपके समान विपत्ती-सी, भीतर खोदकर गाढ़ी हुई-सी,
कामदेवके पाँचों बाणोंसे जड़ी-सी तथा चिन्ता-रूपी डोरे-से
भली-भौंति सदाके लिये सी-सी दी गई हो ॥ १११ ॥
वह नबेली अपना जवन भाग बार-बार दिखा-दिखाकर,
अपनी मन्द मुस्कानसे, पवित्र तथा कोमल बोलोंसे, मनोहर
दर्शनसे, गम्भीर चालसे तथा जैभाईसे मुझे ऐसा मारे डाल
रही है कि मेरे प्राण निकले जा रहे हैं ॥ ११२ ॥ अब मैं क्या
कर्क ? क्योंकि ज्यों जगातार ऐसे निकल रहे हैं कि ज्यों
मुँदा जा रहा है, उसके चिन्तनसे शरीर जकड़ा-सा जा रहा
है और उसका चित्र बनाते समय उँगलियोंमें पसीना-सा
आ जाता है तथा वे कौंपने लगती हैं ॥ ११३ ॥ बिड़ोहके
सन्तापसे मरती हुई नबेलीको देखकर कोई युवक ईश्वरको
उन्माहना दे रहा है—‘हे ईश्वर ! उसके परिवारका विपत्तिमें
हुकांते, नेत्रोंको ज्योतिर्गोले भरते, सारी धरतीको डुबोते, चौदहों
भुवनोंको चिन्तासे भरते, कामदेवको उदास बनाते तथा
निधिके भण्डारको खनहीन बनाते हुए क्या तुम्हारे हृदयको
तनिक भी जाज नहीं आ रहा है ?’ ॥ ११४ ॥ यदि चन्द्रमा
गलकर स्वयं अमृत-रूपी जलकी बावड़ी बन जाता और उसका
कलङ्क यदि लिये हुए नीलकमलका वन हो जाता तो हो सकता
था कि उसमें स्नान कर लेनेसे मेरे अङ्ग शीतल होकर

ज्ञानक्रोडाजनितजडभावैरथयवैः कदाचिन्मुञ्च्यं मद-
नशिखिपोडाव्यतिकरम् ॥ ११५ ॥ विशालादयाः
कटाक्षेण विकृष्टं रश्मिनेव मे । हृदयं किं करिष्यामि
न पुनर्विनिवर्तते ॥ ११६ ॥ मोडायोगान्नतवदनया
सन्निधाने गुरुणां बद्धोत्कम्पस्तनकलशया मन्युम-
स्तर्निगृह्य । तिष्ठेयुक्तं किमिव न तथा यत्समु-
त्सृज्य वाप्यं मध्यासक्तश्चकितहरिणोहारिनेत्रविभागः
॥ ११७ ॥ शरीरं क्षामं स्यादस्मि दृष्टिनालिङ्गनसुखे
भवेत्साक्षं यत्तुः क्षणमपि न सा दृश्यत इति । तथा
सारङ्गाद्या स्वमसि न कदाचिद्विरहिर्न प्रसक्ते निर्वाणे
हृदय परित्यापं यदसि किम् ॥ ११८ ॥ शोभांशुर्विषयो-
दरः फणभृतां लीलास्पदं चन्दनं हारः क्षारपयोभवः
प्रियसुहृत्पङ्केरुहं भास्वतः । इत्येषां किमिवास्तु वस्तु
मद्वज्ज्वालाविघाताय यद्वाह्याकारपरिभ्रमेण तु वयं

तत्स्यत्यजो वञ्चिताः ॥ ११९ ॥ शीतांशोरमृतच्छटा
यदि करास्तस्मान्मनो मे दृशं सम्प्लुध्यन्त्यथ
कालकूटपटलोसंवाससंदूषिताः । किं प्राणान्
हरन्त्युन प्रियतमासञ्चल्पमन्त्राक्षरै रक्षयस्ते किमु मोह-
मेमि हहहा नो वेमि केयं गतिः ॥ १२० ॥ ध्यासा एव
मृगोदशो न गणिताः के नाम भ्रम्भानिलास्तीर्णा
याप्यपरम्परैव सरितां वृन्देषु कः सम्भ्रमः । सोढा
कान्तरदृष्टिरेव कथ्यते वज्राभिघातव्यथा प्रेम्हायमु-
पेक्षितो यदि तवा प्राणेषु कोऽनुग्रहः ॥ १२१ ॥ सङ्ग-
मविरहवितर्कं वरमिह विरहो न सङ्गमस्तस्याः ।
सङ्गे सैव तथैका त्रिभुवनमपि तन्मयं विरहे ॥ १२२ ॥
सम्भूयैव सुखानि खेनसि परं भूमानमातन्वते यत्रा-
सोकपथावतारिणि रतिं प्रस्तांति नेत्रोत्सवः । यद्वाले-
न्दुकलाशयाद्विचिन्तैस्सारैरिदोत्पादितं तत्प्रशयेयमन-

कामाग्निके संतापसे छूट जाते ॥ ११५ ॥ उस बड़े-बड़े नेत्रोंवालों
नवेलीकी निरखी चितवन-रूपी रस्सोंसे बँधकर लिंचा हुआ
मेरा मन लौटनेका नाम नहीं ले रहा है । अब मैं क्या कहूँ ?
॥ ११६ ॥ जिस समय नवेली बड़े-बूढ़ोंके बीचमें पैदा भी और
पुष्पक वहाँ पहुँच गया था उस समयकी उस नवेलीकी दशाका
स्मरण वह पुष्पक कर रहा है—‘बड़े लोगोंके पास रहनेसे
जाजके कारण उस नवेलीका मुख झुक गया, बड़ेके समान
बड़े-बड़े स्तन काँप उठे, जबसर न रहते हुए भी मेरे वहाँ
पहुँच जानेके कारण उसे जो आँख आया उसे भीतर ही भीतर
पीकर उसने मुझे रोका तो नहीं किन्तु आँसू बहाती हुई मुझे
ऐसी चञ्चल चितवनसे देखने लगी जैसे डरी हुई खड़ी देखती
है’ ॥ ११७ ॥ हे हृदय ! जिस प्यारीको गले लगानेका मुख
म पानेपर शरीर दुर्बल हुआ जाता था, जिसे चप-भर भी न
देखनेपर आँसू आ जाते थे और जिस मृगनयनीसे तुम
कभी भी अलग नहीं हुए, आज उसके बिछोहमें सुखदायी
मृत्युके अवसरपर तुम दुखी क्यों हुए जा रहे हो ? ॥ ११८ ॥
चन्द्रमा तो हालाहल विषका भाई है, चन्द्रके वृक्षपर सोंप
लिपटें रहते हैं, हारके मोती समुद्रके खारे जलसे उत्पन्न
होते हैं और कमल सूर्यका प्यारा मित्र है । अतः इनमेंसे एक
भी वस्तु ऐसी नहीं है जो कामाग्निकी ज्वाला शान्त कर
सके । हम लोग तो ऐसे उगे गए कि बाहरी दीमटामके धोखेमें
पड़कर सत्यताको भुजा ही बैठे ॥ ११९ ॥ यदि चन्द्रमाकी
किरणें अमृतमयी हैं तो वे मेरे मन और नेत्रको क्यों सुखाए

रहा रही हैं । अतः जान पड़ता है ऐसा नहीं है । वे काकूट
नामक भयंकर विषके संयोगसे (समुद्रसे चन्द्रमा और विष
दोनों निकले थे) विषमयी हो गई हैं । किन्तु वे मेरे प्राण क्यों
नहीं हर रहा हैं ? या प्रियतमाकी मन्त्र-रुपां बोलीके अक्षर ही
मेरे प्राणोंको बचा रहे हों ? या मैं माहित हो रहा हूँ ? हाय !
समझमें ही नहीं आता कि मेरी दशा क्या हो रही है !
॥ १२० ॥ उस मृगनयनीकी सोंपोंको जब मैंने कुछ नहीं समझा
तो आँधी मेरा क्या कर सकती है ! अब मैंने उसकी
आँसुओंकी धार भी पार कर ली तो नदियाँ पार करना
कौन बड़ी बात है ! अब मैंने उसकी दुःख-भरी चितवन सह
ली तो वज्रकी मारकी पाँदा क्या है तथा जब मैंने उसका
मेम दुकरा दिया तब अपने प्राणोंपर कृपा करनेका प्रभ हो क्यों
उठता है ? ॥ १२१ ॥ अब मैं यह विचार करता हूँ कि उसका
समागम अच्छा है या बिछोह, तब उसका बिछोह ही मुझे अच्छा
लगता है, क्योंकि समागममें तो केवल वह एक स्थानपर
मिलती भी किन्तु बिछोहमें तो मुझे सारा संसार उसीके रूपका
दिलवाई देने लगता है ॥ १२२ ॥ उस नवेलीसे मिलनेकी बात
सोचते ही ऐसा सुख होता है कि चित्तमें एक प्रकार-
का खेल जाता है और उस प्रकारमें एक ऐसी रतिके
समान सुन्दरी दिलाई देने लगती है कि मेरा मन उज्झामें
भरकर उसकी स्तुति करने लगता है । अब ऐसा लगता है
कि वृक्षके चन्द्रमाकी कलाशोंके निचोड़े हुए सार भागसे बनाया
हुआ तथा कामदेवका मङ्गलमवन बनी हुई उस नवेलीका मुख

कमललघुहं भूयोऽपि तस्या मुखम् ॥ १२३ ॥ सनि
प्रक्षोपे सत्यन्तो सन्तु तारारयीन्दुपु । विना मे मृग-
शावाद्या तमोभूतमिदं जगत् ॥ १२४ ॥ स सन्तापः
करः कुसुमसुभगा साऽङ्गलतिका विपत्तात्तत्ताव-
द्भयमतनु लज्जासद्वचरम् । कथं तन्न प्राणानहह
दयिता शान्तमधया शिथं शिल्पाश्चर्यं नियतमिह नि-
ध्यास्यति विधिः ॥ १२५ ॥ सन्तापो हृदय स्मरानल-
कृतः स प्रत्यहं सख्यतां नास्त्येषोपशमाऽस्य सम्प्रति
पुनः किं त्वं मुधा ताभ्यसि । यन्मूढेन मया तथा
कथमपि प्राप्तां गृहीन्वा परं विन्यस्तस्त्वयि सान्द्रच-
न्दनरसस्पर्शो न तस्याः करः ॥ १२६ ॥ समुत्तीर्णं
तन्वया निशितनयनान्तेम मृदिते स्तनद्वन्द्वस्पर्श-
स्मितलवसुधाभिः प्लुतमति । मद्यस्तःकंदार मदनह-
विकारेण जनिता चिरादाशावल्ली किमिति न फलं
हस्त लभते ॥ १२७ ॥ सम्कुलामलनोलकजविलसल्लावय-

लीलानसाश्चञ्चलमञ्जुलकटुविमुषः कन्दर्पदणो-
द्धुराः । पीयूषकणित्वा इवाञ्जुमधुरस्निग्धास्त्रपास-
म्भृता भूयोभात्रवृताः कदा नु मयि ते हविभ्रमा
भाविनः ॥ १२८ ॥ सध्याजं निलकालकान्धिरलवैल्लो-
लाङ्गुलिः संस्पृशन्वारंवारमुदभयंकुचयुगमादञ्जिनी-
लाञ्जलम् । यत्कम्पनराङ्गिनाञ्जितदशा सावधमालो-
किनं तद्व्यादयधोरिनाऽस्मि न पुनः कान्ते कृतार्थो-
क्तः ॥ १२९ ॥ सा याता वयमप्रगल्भमनसः सा स्त्री
वयं कानगास्सा पोनान्नतिमन्ययोधरयुगं धत्ते संवेदा
वयम् । साकान्ता जघनस्थलेन गुरुणा गन्तुं न शक्ता
वयं दापेरन्यजनाश्रयेरपटया जाताः स्म इत्यद्भुतम्
॥ १३० ॥ साभिप्रायं प्रणयसरसं प्रादुर्भाकरुदरागं
पश्यन्ती मां विरचकमलधीमुषा लोचनन । सख्याः
कलं किमपि किमपि व्याहरन्ती हसस्ती मन्दं मन्दं
ललितललितं मन्दित्रं सा जगाम ॥ १३१ ॥ सा मे

मैं कब फिरसे देखूँगा ! ॥ १२३ ॥ दीपक, अग्नि, तारे, सूर्य
तथा चन्द्रमाके रहते हुए भी सारा संसार मुझे उस मृगनयनाके
विना जैसेधरेले भरा दिवाई दे रहा है ॥ १२४ ॥ कोई
बिरही अपनी प्रेयसीके विषयमें सोचना है—‘वह पिछोड़का
सन्ताप बड़ा कठोर है। उसके लता जैसे अङ्ग तो फूलसे
भी कोमल हैं, शत्रुघोले उसे सदा ही लाजसे भिला हुआ दर
बना रहता है, फिर भी वह प्राण क्यों नहीं छोड़ देती ?
किन्तु इस तर्क-वितर्कसे लाभ क्या है ! मझाने अपनी रचनामें
उस मेरी प्यारीके कर्म अचरजमयी सृष्टि जो धात्री है इसके
लिये वे जो कुछ ठीक समझेंगे, वह स्वतः करेंगे ॥ १२५ ॥
हे हृदय ! अब प्रतिदिन कामाग्निका ताप सहते रहो । इस
समय इसके शान्त होनेका कोई उपाय नहीं है, अतः
तुम व्यर्थ ही क्यों छटपटा रहे हो ? क्योंकि झूमेमें सुन्दर
चन्द्रमाके रसके समान शीतल लगभेवाला उस नवेलीका हाथ
मैंने पाया भी तो उसे लेकर तुमपर नहीं रक्ता ! ॥ १२६ ॥
नवेलीकी तीखी चितवन-रूपी हलसे जोती गई, दोनों
स्तनोंसे मसखी हुई (हँगाई हुई) तथा सुसकान-रूपी
अलसे सींची हुई मेरे हृदय-रूपी क्यातीमें कामदेव-रूपी
किसानसे लगाई हुई आश-रूपी लतामें फल क्यों नहीं लग
रहे हैं ! ॥ १२७ ॥ वह दिन कब आवेगा जब सिले हुए
स्वच्छ नीले कमलके समान सुन्दर तथा नटखटपनसे भरे
और अलसाए हुए, कुदकते हुए सज्जनकी सुन्दर शोभा

पुरानेवाले, कामदेवकी मस्ताने मनवाले, अमृतने धोए गएके
समान मन्त्र, मधुर, रसाले, लज्जाले तथा हाव भावसे भरे
हुए नेत्रोंकी वे चिनचने बार-बार मुझपर पड़ेंगी ! ॥ १२८ ॥ कमसे
बिरही नायकका घोषावस्था तथा अक्षोषावस्थाका वर्णन—
हे प्यारा ! यहना करके चञ्चल उँगलियोंसे बार-बार गालोंको
झूते हुए तथा स्तनोंसे दट्टे हुए नाले वल्लकों बार-बार उठाने
हुए जा मुझे तुमने देवी भाँहासे पिराई हुई आँखोंसे मेरा
अवमान करने हुए देखा, इससे मैं जान गया कि तुमने मेरा
मनोरथ तो सफल किया नहीं, उल्टे अहंकारमें आकर मेरा
अनादर किया ॥ १२९ ॥ देखो तो, यह कितने अचरजकी
बान है कि दूसरेके दाँपोंसे हम दाँपी बने हुए हैं, क्योंकि
जल्दी तो वह है किन्तु दबे-दबे-से हम रहते हैं, आँख है किन्तु
कायर हम हो रहे हैं, मोटे तथा कँचे स्तन उसके हैं किन्तु
धके जा रहे हैं हम और बड़े-बड़े नितम्बोंके भारसे तो वह दबी
है किन्तु चल नहीं पाते हम ! ॥ १३० ॥ वह भेममें भरी हुई
नवेली प्रेमके रसके साथ तथा कुछ रहस्यमय उल्लेखे सिले हुए
कमलोंकी शोभा पुरानेवाले नेत्रोंसे मेरी ओर भली-भाँति देखती
हुई, सखीके कानमें धीरे-धीरे कुछ कहती हुई तथा मुस्कराती
हुई सुन्दर बालसे धरकी ओर चली गई ॥ १३१ ॥ भगवान्
कामदेवकी पत्नी (रति) के समान वह सुन्दरी यद्यपि न तो सोते
या जागते ही समय मेरी आँखोंके सामने पड़ी फिर भी उसे
देखी विपत्तिमें पड़ी हुई सुनकर मेरा मन आनन्द, आश्चर्य,

यद्यपि सुन्दरी भगवतो मामेष चेतोभुवो न स्वप्ने न
च जागरे नयनयोः पन्थानमासादिता । तामाकर्ण्य
तथापि तादृशदृष्ट्यावैर्धर्ममासेदुषोमानन्दाद्भुतशोक-
कौतुकमयवीडाकुलं मे मनः ॥ १३२ ॥ सा विद्याधर-
कन्यका किमु भुयं पुण्यैः प्रपन्ना नृणां लाजश्यामृत-
सागराद्विमथिता लक्ष्मीः किमन्योत्थिता । आः ज्ञातं
घनसारचन्दनसुधाज्योत्स्नामृणालादिभिः प्रारब्धा
हृदयं मम भ्रमयितुं पीपेपवी शम्भरी ॥ १३३ ॥ सा
सञ्चारश्चमत्कृतिर्नयनयोः स भ्रूलताविभ्रमस्तद्विभ्या-
धरपादलस्मितयुगस्पास्यस्य सा वैश्वरो । सेयं चङ्क-
मवातुरी चरणयोः सोऽप्यङ्गहारक्रमो दिष्ट्या तन्मम
मेवपात्रमखिलं जायेत जीयामि च ॥ १३४ ॥ सा सान्दर्य-
निधिर्विलासभवनं मीनध्वजस्थरपि या कान्तीनामधि-
देवताधिकरणं माधुर्यसारस्य या । तामुदीक्ष्य सखे
तदादि गतव्याम्सर्वेन्द्रियाणामहं सार्धं तद्वतमानसेन
गलितोत्साहः किलानीशताम् ॥ १३५ ॥ सौमित्रे ननु

सेव्यतां तरुतलं चण्डांशुखल्लम्भते खण्डांशोर्मिशि का
कथा रघुपते चन्द्रोऽप्यमुन्मीलति । वत्सैतद्विदितं कथं
तु भवता घृप्ते कुरङ्गं यनः कवासि प्रेयसि हा
कुरङ्गनयने खम्बानने जानकि ॥ १३६ ॥ सौवर्णी
ननु यल्लरी कुह गता सा यत्र राकापतिर्नित्यं
सन्निहितः पुरा सलिलजद्वन्द्वं गृहीत्वाऽभवत् ।
यस्या दर्शनमात्रतश्च सुमनोवयैरपि प्राधिता भव्यो-
द्रेकपरम्परामनुभवन्धन्यो जनैः कीर्तितः ॥ १३७ ॥
स्खलदंशुकमव्यवस्थतार् स्मितकान्तिस्त्रयिताधर-
प्रवालम् । असमाप्तनकारमाप्तशोभं हरिणाङ्गं हरि-
णीदृशः स्मरामः ॥ १३८ ॥ स्त्रीति भ्रुते गतं धैर्यं सुक-
पेति किमुच्यते । कष्टं सह्यया सा खेतस्सृष्टेत्य-
तिदुस्सहम् ॥ १३९ ॥ स्निग्धं वीक्षितमन्यतोऽपि नयने
वत्प्रेरयन्त्या तथा यातं यच्च नित्ययोरुक्ततया मम
विलासादिषु । मागा इत्यवदद्या यद्यपि सा सासृप-
मुका सखी सर्वं तत्किल भवरायणमहो कामी स्वतां

शोक, अभिलाषा, भय तथा लज्जासे भरा जा रहा है ॥ १३२ ॥
वह नवेली सांगोंके पुण्यसे पृथ्वीपर आई हुई विद्याधरकी
कन्या है या सुन्दरता-कवी अमृतके समुद्रसे मधकर निकली
हुई दूसरी लक्ष्मी है ? हाँ हो, अब मेरी लक्ष्मीमें आया । यह
तो मेरे मनको चक्करमें डालनेके लिये कपूर, चन्दन, अमृत,
चौदनी तथा कमलनाम आदिले बनाई हुई कामदेवकी
वह माया है जिसे कामदेवसे शम्भर देव जीन जाया था
॥ १३३ ॥ वह आँखोंके चलनेका जादू, वे आँहोंके हावभाव,
वह आँठोंपर मुस्कानके साथ बोलना, वह चटक-मटक-भरी चाल
और वह शरीर तथा हारका हिलना यदि आनखसे मेरे नेत्रोंके
सामने आ जाते तो मैं सबमुच जी जाता ॥ १३४ ॥ हे मित्र !
वह नवेली सुन्दरताका भयङ्कर है या कामदेवकी क्रीडाका
घर है या सुन्दरताकी देवी है या सधुरताका निवास-स्थान
है ? क्योंकि जबसे मैंने उसे देखा तभीसे मेरा मन उसमें पेश
रम गया कि मेरा सारा उत्साह भी ठंडा पड़ गया और मेरी
सारी इन्द्रियों भी मेरे हाथसे निकल गई ॥ १३५ ॥ जानकीका
हरण हो जानेके परचाव, रामचन्द्रजी लक्ष्मणसे कहते हैं कि
'हे लक्ष्मण ! देखो वह सूर्य तप रहा है । अतः, 'जबो सूर्यके
पीछे चले चलें । लक्ष्मणने कहा—'हे शत्रुवंशके स्वामी ! रातके
समय सूर्य कहाँ ? यह तो चन्द्रमा निकल रहा है । रामचन्द्रजी
बोले—'कास ! वह तुमने कैसे पहचाना !' इसपर उगड़ी

लक्ष्मणने कहा कि इसकी गोदमें हरिण है क्योंही चन्द्रमा
और हरिणका नाम सुनकर गिरही रामचन्द्र यह कह-कह-
कर बिलखने लगे कि 'हे हरिणके समान नेत्रवाली ! चन्द्रमाके
समान मुखवाली प्यारी जानकी ! तुम कहाँ हो ?' ॥ १३६ ॥
वह सोनेकी लता (प्यारी) कहाँ चली गई जिसमें दो
कमलोंका जोड़ा (नेत्र) लिये हुए पूनोका चन्द्रमा (मुख)
विराजमान था, जिसके लिए देवता भी तरसते हैं और जिसे
देखकर मस्ती-भरे आनन्दका अनुभव करनेवाले एकिकी
लोग धन्य समझते हैं ॥ १३७ ॥ लुगनयनीके उस चन्द्रमुखका
मुख स्मरण आ रहा है जिसपरसे बूँद टूट गया था,
जिसकी आँखोंकी पुतलियाँ चञ्चल थीं, जिसके मूँगेके समान
आँठोंपर मुस्कानकी मलक थी, जिससे 'नहीं-नहीं' शब्द
निकल रहा था तथा जो अत्यन्त शोभायमान था ॥ १३८ ॥ 'वह
खी है' यह सुनते ही धीरज भाग जाता है, 'वह दुन्दुभ है' यह
सुनकर तो प्युना ही क्या है, फिर 'वह सह्यया है' (सुन्दर
हृदयवाली) है यह जानकर तो बड़ा कष्ट होता है तथा वह
मुख चाहती भी है वह जानकर तो इतना कष्ट होता है कि
किसी प्रकार भी सहा नहीं जाता ॥ १३९ ॥ दूसरी ओरसे
आँखें घुमाकर जो उसने प्रेम-भरी चितवन चलाई, नितम्ब
भारी होनेके कारण जो मानो नटखटपनसे धीरे-धीरे चली
तब सखीसे जो उसने गद्गद होकर भीड़ें नचा-नचाकर यह कहाँ

पश्यति ॥ १४० ॥ स्पर्शः स्तननटस्पर्शां चीत्तलं वक्त्र-
वीक्षणम् । तस्याः केलिकथालापसमयः समयः सन्ने
॥ १४१ ॥ स्मेरं विधाय नयनं विकसितमिव नीलमु-
त्पलं मयि सा । कथयामास कृशाङ्गी मनोगतं निखि-
लमाकृतम् ॥ १४२ ॥ स्वप्ने दृष्टा किमपि पिशुनाशङ्कया
नेव पृष्टा स्पृष्टा नीयो न खलु भयनः किङ्किणानिक्-
णानाम् । आश्लेषाय स्पृहयति मयि द्वाभ्यंरंसोद-
सीमा निद्रामुद्रा शिव शिव दशरीदशो दुविपाकः
॥ १४३ ॥ हा धिक्सा किल तामसी शशिमुक्ती दृष्टा
मया यत्र सा तद्विच्छेदरुज्ज्वलकारितमिदं दग्धं दिनं
कल्पितम् । किं कुमोः कुशले सदैव विधुरो धाना न
खेस्तकथं तादृश्यामयतीमयो भवति मे ना जीवलो-
कोऽधुना ॥ १४४ ॥ हा हा देवि स्फुटति हृदयं संसरे
देहयन्धः शून्यं मन्ये अगदधिरतज्जालमन्तर्दलामि ।

कि 'मत जाग्रो,' यह निश्चय ही उसने मेरे लिये ही कहा !
सचमुच कामी पुरुष समझता है कि सच मेरे ही लिये किया
जा रहा है ॥ १४० ॥ हे मित्र ! उसके स्तनोंका स्पर्श ही तो
सच्चा स्पर्श है, उसके मुक्तका दर्शन ही सच्चा दर्शन है तथा
उसके रागद्वन्द्वी चर्चा करनेका समय ही सच्चा समय है
॥ १४१ ॥ खिले हुए कमलके समान मुखकाती चितवन
मुक्कपर चलाकर उस कोमल अङ्गोंवाली नवेलीने अपने मनकी
सारी बातें मुझे बता डाली ॥ १४२ ॥ कोई विरही युवक
यह कहकर भीख रहा है कि 'मैंने उस नवेलीको स्वप्नमें
देखा तो सही किन्तु इस तरह के कारण उससे कुछ नहीं पूछ
पाया कि कोई चुगलखोर न छिपकर सुन रहा हो, मैंने उसकी
साक्षीकी गॉठ भी इस तरह से नहीं हुई कि कहीं करधनीके
पुँछरु न बज उठें । इसलिये ज्योंही मैं उसे गले लगानेके लिये
ललककर आगे बढ़ा ज्योंही मेरी गहरी नींद ही टूट गई ।
हाय ! हाय !! कैसी अभागि निकलीं ये मेरी आँखें ! ॥ १४३ ॥
हाय ! कितने दुःखकी बात है कि जिस समय उस अन्दमुखी
नवेलीको मैंने देखा उस समय मझाने रात आँधरी कर रही
थी । यह भी कितनी खोटी बात हुई कि उस अन्दमुखीके रहते
भी अन्धकार बना रहा । यह और भी बुरा हुआ कि उसके
विछोहके सन्तापवाले समयमें उसने पविनी कैला दी है ।
क्या कहें ? मैं जो बात चाहता हूँ, मझा सदा उससे उल्टा
करता चला आ रहा है । यदि यह बात न होती तो उसने
उसी रातवाला (जिस रात्रिको मैंने उसे स्वप्नमें देखा था)

सौदमन्येनमसि विधुरो भजनीशान्तरात्मा विश्व-
छोहः स्थगयति कथं मन्दभाग्यः करोमि ॥ १४४ ॥
हन्वा पञ्चवनयति प्रियतमेवयं दिनश्रीर्गता रागोऽस्मि-
न्मम चेतसीव सञ्चितुविम्वेऽधिकं लज्यते । चक्रा-
होऽहमिव स्थितः सहचरी ध्यायन्नलिन्यास्तटे
सञ्जानाः सहसा ममैव भुवनस्याप्यन्धकारा दिशः
॥ १४५ ॥ हृदयमिषुभिः कामस्यान्तः सशल्यमदं
सदा कथमुपलभे निद्रां स्वप्ने समागमकाङ्क्षाम् । न
च सुवदनामालेखेऽपि प्रियामसमाप्य तां मम नयन-
योरुद्वाप्यवं सन्ने न भविष्यति ॥ १४६ ॥ हे यामिनीश
जडिमा कतमन्तर्धेय सङ्घर्षमायर्हसि येन मुखेन
तस्याः । त्वं वाङ्मुद्रिरसि तद्विरहे करानि पीयूषयप-
मिह तद्भवता चित्तापि ॥ १४७ ॥

नायिकां प्रातः सन्देहप्रेषणम्— देवान्पश्येजगति विस्तर-

मेरा जीवन क्यों नहीं बना दिया ? ॥ १४४ ॥ हे देवी ! हृदय
कटा जा रहा है, शरीरके जोड़-तोड़ सुले पड़ रहे हैं, संसार
मृना जाम पड़ने लगा है, शरीर धधक रहा है, सारी सुधबुध
मनमारी-सी होकर आँधरेमें डूबी जा रही है और चारों ओरसे
मूच्छा घेरे चली आ रही है । हाय ! हाय !! अब मैं
अभागि क्या कहूँ ! ॥ १४५ ॥ कमलके वनकी सारी शोभा
मिटकर दिनकी शोभा भी मेरी प्यारीके समान चली गई,
मेरे चित्तके समान मूर्धमें भी अधिक राग (अनुराग,
लज्जा) दिवाई देने लगा है, चक्रीका ध्यान करता हुआ
यह चक्का मेरे समान आँखोंके तटपर आ बैठा है तथा सभी
दिशाएँ मेरे समान संसारके लिये एकाएक अन्धकारसे भर-सी
गई हैं ॥ १४६ ॥ हे मित्र ! मेरे हृदयमें कामके बाण घुसे जा
रहे हैं । स्वप्नमें प्यारीको मिलावेलाली नींदका भी क्या
उल्लाहना हूँ ? हे मित्र ! अब मैं उस सुन्दर मुखवाली
प्यारीका चित्र बनाने लगता हूँ उस समय कभी ऐसा नहीं
होता कि उस चित्रके पूरा होनेसे पहले हाँ आँखोंमें आँसू न
उमड़ आवें ॥ १४७ ॥ हे रात्रिके स्वामी (अन्धकार) ! तुम्हारा
यह कैसा पागलपन है कि तुम उस नवेलीके मुखसे होड़
करने चले हो ! क्योंकि तुम तो उसके विरहमें आग उगलते
हो और वह तुम्हारे चित्र भी अमृत बरसाती है । अतः
उसके मुँहसे तुम क्या बराबरो करने चले हो ? ॥ १४८ ॥

नवेलीके पास सन्देश भेजना : हे पवन ! अपने
मनसे संसारमें घूँमते हुए यदि तुम कहीं भाग्यसे मेरी प्यारीको

श्रिच्छ्रया मन्त्रिणा चेदाश्वास्यादौ तदनु कथये-
मर्मिकीनामवस्थाम् । आशानन्तुर्न च कथयतात्यन्त-
मुच्छेदनीयः पाण्डुराणं कथमपि करोत्यायतात्याः स
एकः ॥ १ ॥ सा द्रुति धत्ते यदि रोपणत्वं तद्द्रुपणत्वेन
न शङ्कनीयम् । साधुत्वमायाति रसान्तरेण करम्यता
पुण्ड्रकशर्कराऽपि ॥ २ ॥

नायिकां प्रातः नायकसन्देशः—अद्यापि सुन्दर तवान-
नचन्द्रयिष्यं चन्द्रीकृताम्युजयुगं परिश्रुम्य चेतः ।
त्वत्सङ्गमोद्गच्छसुखं तनुते तथापि धैरं करोति कदवा-
धिकलौ विवेकः ॥ १ ॥ आस्तां तावद्वचनरचनाभाज-
नयं विदूरे दूरे चास्तां तव तनुपरोरम्भसम्भावनापि ।
भूयां भूयः प्रणतिभिरहं किन्तु याचे विधेया स्मारं
स्मारं स्वजनगणेनापि लेखा ममापि ॥ २ ॥ इतो
विद्युत्पुञ्जस्फुरितमसकृद्भाययन् मामितः केकामेका

देखना तो पहले उसे हावस रेंधाना तब कहीं उससे मेरी दशा
कहना और इस इच्छासे उससे बातें चलाना कि वह वधे-वधे
नेर्बोवाली नवेली मेरे मिलनेकी जिस आशासे अपने प्राणोंकी
रक्षा कर रही है वह उसका आनेका एकमात्र सहारा कहीं
सहसा टूट न जाय ! ॥ १ ॥ हे वृन्ती ! यदि मेरा सँदेश सुनकर
उसे (मेरी प्यारीको) क्रोध आ जाय तो तुम उसके प्रेममें
सन्देह न कर बैठना क्योंकि जैसे नीबूका रस हाव देनेसे पीवे
(मोटी ईन्) की चीनी और भी स्वादिष्ट हो जाती है वैसे
ही उसके क्रोध करनेका अर्थ होगा कि उसका प्रेम और भी
अधिक बढ़ रहा है ॥ २ ॥

नवेलीके पास युवकका सन्देश : हे सुन्दरी ! तुम्हारा
ध्यान करते समय आज भी दो कमलोंकी चन्द्री कर रखनेवाले
तुम्हारे मुखरूपी चन्द्रमण्डलका मनमें सुगन्धन करके मेरा धिप
ऐसा सुखी हो जाता है मानो उसे तुम्हारे समागमका सुख
मिल रहा हो किन्तु निष्ठुर विवेक मुझसे दूर करके मेरे इस
किप-कराएपर पानी फेर देता है ॥ १ ॥ अब तुम मुझे मोठी-
मीठी बातें करने योग्य भी नहीं समझती हो तो तुम्हें गले
लगानेकी तो आशा ही कहीं रह जाती है किन्तु मैं बार-बार
हाथ जोड़कर इतनी प्रार्थना करता हूँ कि जब तुम स्मरण
कर-करके अपने आत्मीय जनोंका गिनने लगे तो उनमें
कहीं न कहीं मुझे भी गिन लेना ॥ २ ॥ एक ओर तो
चमकती हुई बिजली मुझे बार-बार दराए दे रही है,
दूसरी ओर मोरोंकी यह निष्ठुर कूक मेरा मन हरे ले रही

हरतु हृदयं निर्वयमिदम् । इतः कामो वामः महर्तु
मुहुः पुङ्गितशरो गतासित्वं दूरं चपलनयने प्राप्स्यसि
कुतः ॥ ३ ॥ उद्वेष्ट्य स्वयमेव लेखमुदितप्रस्वेवकम्पा-
कुलिस्तस्मिन्सेकविलुप्तशेषशिथिलं दृष्ट्वा लिपिप्रक-
मम् । एतन्निष्पन्नं हताऽस्मि सम्प्रति दशा तस्यैवमा-
सीदयं बाष्पो हस्त करस्य कम्पितमिदं क्षन्तेति सा
रोदिति ॥ ४ ॥ एतस्मात्मां कुशलिनमभिज्ञानदाना-
द्विदिष्टा मा कौलीनादस्तितनयने मध्यविश्वसिनी
भूः । स्नेहानाहुः किमपि धिरहे ध्वंसिनस्ते ह्ययोगा-
दिष्टे वस्तुन्युपचितरसाः प्रेमराशौभवन्ति ॥ ५ ॥
एते त्वद्वदनानुकारिकचयो राकासुधांश्चादयो मोत्वा
ते स्मरणं दहन्ति यत मामन्तः स्फुरन्त्यास्तव । त्वं
स्वामिन्यसि तज्जहीहि जहि वा नेदं पुनस्साम्भतं
यत्स्वस्पर्धिभिरेव भर्ष्यसि मामेतैर्जघन्यैः प्रिये ॥ ६ ॥

हे और इधर वह कटिफ कामदेव बाण चला-चलाकर मुझे
बेधे हाव रहा है । हे चञ्चल नेत्रकाजी ! ऐसे संकटमें मुझे
जोड़कर तुम कहीं चली गई हो ! मैं कहीं तुम्हें ढूँँ ! ॥ १ ॥
किसी विरहिणी नवेलीने अपने पताजते और काँपते हुए
हाथोंसे प्रियतमका पत्र उठा लिया किन्तु उसीके पसीनेसे
पत्रकी लिखावट धिप-पुत गई और उसे यह भ्रम हो गया
कि प्रियतमके हाथ इतने अधिक काँपते हैं और इतने अधिक
बहते हैं कि पत्रकी वह धरा हो गई है ! अतः वह वह
कह-कहकर रोने लगी कि 'हाव भगवान् ! क्या मेरे
प्राणनाथकी ऐसी दशा हो रही है ?' ॥ ३ ॥ हे काजी-काजी
चौलीवाली ! इस पहचानसे ही तुम समझ लेना कि मैं
कुगलसे हूँ । लोगोंके कहनेसे तुम मेरे प्रेममें सन्देह न कर
बैठना । न जाने लोग क्यों ऐसा कहते हैं कि विरहमें प्रेम
कम हो जाता है । सच्ची बात तो यह है कि जब
मनचाही वस्तुएँ नहीं मिलती तभी उन्हें पानेके शिवे प्यास
इतनी बढ़ जाती है कि ठेरका-ठेर प्रेम आकर इकट्ठा हो जाता है
॥ ५ ॥ हे प्यारी ! तुम्हारे मुखकी बराबरी करनेवाली ये पृथ्वीके
चन्द्रमाकी किरणें मेरे भीतर चमकती हुई तुम्हारा स्मरण
दिखाकर मुझे जलाया करती हैं । तुम स्वामिनी हो, जो चाहो
करो, तुम्हें अधिकार है किन्तु यह उचित नहीं है कि
अपनेसे होड़ करनेवाली इन नीच किरणोंसे तुम मुझे जलाए
हाव रही हो ॥ ६ ॥ अपने मनकी व्यथा किसे सुनाकर जी
इकठ करूँ ? हम दोनोंके इस गहरे प्रेमकी बात दूसरा

कस्याख्याय व्यक्तिकरमिमं मुक्तदुःखो भवेयं को जानीते निवृत्तमुभयोराधयोः स्नेहसारम् । तानान्येकं शशधरमुखि प्रेमतरङ्गं मनो मे न्यामेवैनच्चिरमनुगतं तन्मये किं करोमि ॥ ७ ॥ फान्से ! हन्त ! मुकोमला घत मता प्राग्व्यर्थमेव ध्रमास्किन्तु न्वं भुवि निष्ठुरा निरुपमा पश्यस्यपोमं न माम् । तस्माद्वत्ससि ते पयो-धरमियाडात्रा निस्त्रायापिनौ शैलेन्द्राविति साध्यतं न हि चिरं सांख्यं परक्लेशितुः ॥ ८ ॥ किमकारि मन्द-मतिना रतिपतिना कामतन्त्रनिपुणेन । स्यूतासि हरि-णमयने हन्त हृदि स्नेहतन्तुना न तर्ता ॥ ९ ॥ कृष्ण ते कचसंहतिरभ्युज्जयने तथाधरः शोणः । न्वं सुरतर-ङ्गिणी कथमभितस्तापी न ते वियोगः स्यात् ॥ १० ॥ गूढालिङ्गनगराश्चुम्बनकुचस्पर्शादिलीलायितं सखं विस्मृतमेव विस्मृतयती वाले खलेभ्यो भयात् । संलापस्त्वधुना सुदुर्घटतमस्तत्रापि नातिव्यथा यस्व-

दर्शनमप्यभूदमूलभं तेनेव दूये भुगम् ॥ ११ ॥ चन्द्रो जादश भास्करा समभवन्तचिर्गुणानां शनं मिष्टं नितकसं विलेपनमहो दोषानन्ता मे तव । विरुद्धेदान्म-लपानिलः मियनमे किं कालकूटः श्रुतौ गीतादिव्य निरेव पञ्चसरशोऽग्रयं विचित्रं गृहम् ॥ १२ ॥ ताम्-नपथमाभ्युशोकचक्षुःशोणः पुरो माहृतः पृथ्वीं प्रोढ-निदाघचण्डकिरणलोपायस्वप्नामिव । तामाश्वासम-लम्भयन्कृशतनुं प्रस्थापितः प्रेयसा सन्देशः परिपो-डितः प्रणतिभिस्तस्यास्सखीनामपि ॥ १३ ॥ तपनि तनुगात्रि मदनस्वामिमिशं मां पुनर्दहन्त्येव । श्लपयति यथा शशाङ्कं न तथा हि कुमुदतीं दिवसः ॥ १४ ॥ न्वं दूरमपि गच्छन्ती हृदयं न अत्रासि मे । दिनाचलाने क्षायेव पुनो मूलं वनस्पतेः ॥ १५ ॥ त्वदास्यथाश्चन्द्र-धरतनु नदारभ्य पसति व्यथातल्लक्ष्माभा मय कच-कुले तत्प्रभृति सा । तथा हृष्टिर्लक्ष्मा न्वयि मम तदा-

जानता कौन है ? हे चन्द्रमाके समान सुखवाली ! मैं मुझे कितना अधिक प्रेम करना हूँ, वह केवल मेरा मन ही जानता था पर वह भी इस समय तुम्हारे पास चला गया है । अब बताओ प्यारी ! मैं कहीं तो क्या कहीं ? ॥ ७ ॥ हे प्यारी ! पहलेके धोखेमें पड़कर मैं मुझे स्वर्ग ही कामुक समझे बैठा था पर हाय ! तुम तो देसी निर्दय निकली कि मेरी आँखें धोखेक ठाकर नहीं देखतीं । जान पड़ता है तुम्हारी कठोरता देखकर ही महामो तुम्हारी छातीपर स्तनोंके रूपमें दो पर्वत साकर खड़े कर दिए हैं । ठीक ही हुआ । जो दूसरोंको कलपाता है वह बहुत दिनोंतक धोखे ही कल पा सकता है ॥ ८ ॥ कामशास्त्रमें चतुर होनेपर भी इस मुझे कामदेवने यह क्या भूल कर दी कि उसने मुझ मृगनयनीको प्रेम-रूपी धोखेसे मेरे हृदयमें ही रखकर सी दिया, शरीरपर नहीं सिया ॥ ९ ॥ हे सुन्दरी ! जब तुम्हारी जड़ें कृष्णा (काली, कृष्ण नदी) हैं, तुम्हारे ओठ शोण (लाल, सोन नदी) हैं और तुम स्वयं सुरसरस्त्रिणी (गङ्गा, सुरत-क्षीदामें रस लेनेवाली) हो तब तुम्हारा वियोग तासी (सन्ताप देनेवाला, तासी नदी) क्यों न हो ? ॥ १० ॥ हे नवेली ! चुगलखोरोंके डरके मारे मैं मुझे गले जगाना, तुम्हारे गाल घूमना तथा तुम्हारे स्तन घूना भी भूल गया और तुमसे चार बातें भी न कर पाया किन्तु इसका मुझे डरना कष्ट नहीं है जितना इस बातका कि अब मुझे तुम्हारा दर्शनतक दुर्लभ हो गया है ॥ ११ ॥

हे प्यारी ! तुम्हारे बिछोड़में यह चन्द्रमा मुझे बारही मूर्खोंके समान नवाना रहता है, एक-एक रात सी-सी युगोंके समान खीनती है, मांडी पम्पुर् तौनी लगती है, चन्दन घादिका लेप आगकी जपटके समान जलाना है, दलियाका पवन हलहल दिपके समान सन्ताप देना है, गाँवकी तान बरसके समान कान फोड़े हालती है और भवता सजा-सजाया सुन्दर घर भी जललके समान लगने लगा है ॥ १२ ॥ बादलोंका गर्ह-नई कुहरों वगैरे इगडा और पृथ्वीके ऊपर यदना दुआ पवन ऐसा जान पड़ता है मानो वह गर्मोंके भयङ्कर मूर्खके तापसे मूर्खी हुई और दुखी देहवाली धरती-रुपी विरहयाँके प्रियनमके द्वारा भेजा हुआ धाकर उसे तापसे वैधा रहा हो किन्तु सखियोंको प्रार्थना और सिद्धिदाहरके फेरमें वह सन्देश ही भूल बैठा हो ॥ १३ ॥ हे दुखने शरीरवाली ! मुझे तो कामदेव निरन्तर सन्ताप ही देता रहता है किन्तु मुझे तो वह जलाए डाल रहा है । देखो न, दिनचो वियोगका समय आनेपर जितना मलिन चन्द्रमा हो जाता है उतनी मलिन उसकी प्यारी कुमुदिनी नहीं होती अर्थात् कामदेव तुमसे अधिक मुझे तपा रहा है ॥ १४ ॥ हे प्यारी ! जैसे सन्ध्या समय दूर जाती हुई वेदकी जाया भी जड़को नहीं छोड़नी वैसे ही तुम दूर जानेपर भी मेरे हृदयसे दूर नहीं होती ॥ १५ ॥ हे सुन्दरी ! जबसे तुम्हारे मुँहको शोभा चन्द्रमामें जा बसी तबसे उसके कलङ्ककी चमक तुम्हारे आँखोंमें आ बसी और हे नवेली ! जबसे मेरी

रभ्य तरुणि स्मरेपूणां ज्वाला मयि तव कटाक्षाननु-
गता ॥ १६ ॥ त्वदीयमुखपङ्कजं यदि विधोरलं वार्तया
तवाधरसुधा यदा भवति किं सुधा नो मुधा । त्वद-
ङ्गपरिरम्भणं भण कृतं सुधागाहनैस्त्वदोदयदगनुग्रह-
स्तदपि धिग्धिगैर्द्र पद्मम् ॥ १७ ॥ त्वद्रूपासृतपानदु-
र्ललितया दृष्ट्वा क विभ्रम्यतां त्वद्वक्त्रध्वनिभिर्यो-
गपरयोः श्रव्यं कुतः श्रोत्रयोः । एभिस्त्यत्परिरम्भ-
मिर्भरररैरङ्गैः कथं स्थीयतां कष्टं त्वद्विरहेण सम्प्रति
धयं कष्टमवस्थां गताः ॥ १८ ॥ त्वया मम समेतस्य
कल्पा अपि समासमाः । भवत्या विप्रयुक्तस्य कल्प-
कल्पः क्षणोऽपि मे ॥ १९ ॥ त्वामालिख्य प्रणयकुपितां
धातुरागैः शिलायामात्मानं ते चरणपतितं यावदि-
च्छामि कर्तुम् । अस्मैस्तावन्मुहुर्पचितदृष्टिरालुप्यते
मे क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते सङ्गमं नो कृतान्तः ॥ २० ॥
दूरं मुक्तालतया विससितया विप्रलाभ्यमानो मे ।

जॉर्जें तुमसे जगीं तभीसे कामदेवके बाणोंकी लपटें तुम्हारी
तिरछीं चित्तबलके साथ लगकर मुझमें समा गई ॥ १६ ॥
तुम्हारे मुखकमलके रहित चन्द्रमाकी बात करनातक अर्थ है,
तुम्हारे अधरामृतक रहित अमृतका नाम लेना भी अर्थ है,
तुम्हारे शरीरके आलङ्कारक आगे अमृतकुण्डमें डुबकी लगामेंका
बात करनातक है और बाद तुम एक बार इधर देखन-मात्रका
रूपा कर वा ता में इन्द्रासनका भी बात मार दूँ ॥ १७ ॥
हे भवका ! यह कहते तुझका बात है कि तुम्हारे विद्याभ्रमे
मरा इतना दुःखित हुई जा रहा है, क्योंकि तुम्हारा सुन्दरताका
अमृत या लेनेसे हमारी दृष्टि ऐसा ललच गई है कि वह कहीं
दूसरी और दूरता ही नहीं, तुम्हारा बातें सुननेवाले से
काम अब दूसरी काँह बात सुनना ही नहीं चाहते और तुम्हीं
बताओ कि तुम्हारे शरीरके आलङ्कारका स्वाद को चुकनेवाले
मेरे अङ्ग भी अब कैसे वशमें रह सकते हैं ? ॥ १८ ॥ जब मैं
तुम्हारे साथ रहता हूँ उस समय एक कल्प भी एक पक्षके
समान बीत जाता है और जब मैं तुमसे अलग रहता हूँ तो
एक-एक क्षण भी एक-एक कल्प बन जाता है ॥ १९ ॥ जब मैं
गेरूके रङ्गसे ऐसा चित्र बनाना चाहता हूँ कि तुम प्रेमसे रुठकर
बैठी हुई हो और मैं तुम्हारे पैरों पदकर तुम्हें मना रहा हूँ
उस समय बार-बार जॉर्जें भर आती हैं और निर्दोष यमराज
चित्रमें भी हम लोगोंका मिश्रण नहीं सह सकता ॥ २० ॥
तुमने अपने गलेमें कमलकी जड़के समान उग्रसे मोतियोंकी

हंस इव दर्शिताशो मानसजन्मा त्वया नीतः ॥ २१ ॥
धन्यस्तन्वि स एव पारिडमवरश्चुभ्यङ्गपोलस्थलं
धन्यं तन्वि तदेव काश्यपिह यत्प्रत्यङ्गमालिङ्गति ।
धन्योऽयं विरहानलस्तथ मनो यस्यानुवृत्तेः पदं दूरे
हन्त तथा तु पातकितया मादृज्जनः सौदति ॥ २२ ॥
न खानं न च भोजनं न पठनं नान्यत्र सौख्यं धृतिर्ना-
न्यल्लो जनसेवनं न च कथानिद्राधिलासोद्यमः । किन्तु
त्वां परिचिन्तयामि सततं ध्यानेन चेतःस्थितां स्वप्ना-
लोकनकामकेलिविधिना जीवामि कान्ते तव ॥ २३ ॥
नित्यं त्वद्गुणकीर्तनेन निबिडं रोमाञ्चितैरङ्गकैस्त्व-
द्वक्त्रेन्दुविलोकनैकमनसः कान्ते सुखेनास्महे । किन्तु
त्वद्विरहोत्थितोऽरशिखिज्वालावृताङ्गे मयि प्रस्थाप्यः
कृपया निजाङ्गधिकमलादन्ताम्बुदः शाश्वतये ॥ २४ ॥
वाष्पस्तस्य न जायते किमु न किं लेखं करः कम्पसे
जानीपे किमु साम्प्रतं त्वयि तथा निद्रं तदीयं मनः ।

मालासे हमारे हंसके समान कामदेवकां लड़वा-खलवाकर
अपने पास बुला लिया है ॥ २१ ॥ हे सुन्दरी ! वह गोरापन
भाग्यवान् है जो तुम्हारे गाल चूम रहा है, वह दुबलापन
पुण्यशाला है जो तुम्हारे सारे शरीरसे लिपटा हुआ है और
वह विछोड़की आग भी धन्य है जिसे तुम्हारा मन साँचटा
रहता है । वस, एक मैं ही ऐसा पापी बच रहा हूँ जो तुमसे
दूर रहनेकी सौंसत सह रहा हूँ ॥ २२ ॥ हे प्यारी ! इस समय
मैं नहाना, खाना, पढ़ना, विभ्राम करना, भीरता, दूसरी
नवेलीके साथ राग-रङ्ग, बातचीत, नींद, शरीरके बनाव-
भङ्गारके प्रयत्न आदि सब काम छोड़कर केवल तुम्हारा ध्यान
करके तुम्हें अपने चित्तमें बँठाकर सदा तुम्हारी ही विम्सा किया
करता हूँ और स्वप्नमें तुम्हें देखकर तुम्हारे साथ कामकीड़ा
करते हुए किसी-किसी प्रकार दिन काट रहा हूँ ॥ २३ ॥
हे सुन्दरी ! जब भी मैं तुम्हारे गुणोंकी चर्चा करने लगता
हूँ तभी मेरे शरीरमें कंपकंपी उठ खड़ी होती है । इस
प्रकार मैं अपने मनमें तुम्हारा मुखचन्द्र देखनेकी ललक लिए
हुए सुकसे दिन बिता रहा हूँ । फिर भी तुम्हारे विरहसे उठी
हुई प्रचण्ड आगिकी लपटें रह-रहकर मेरा शरीर जलाए ढाख
रही हैं बातः उन्हें शान्त करनेके लिये तुम कृपा करके अपने
चरकोंके समाचारसे भरे हुए धाँदेसे बादल भेज देना ॥ २४ ॥
एक ठाँठ सखीने एक नवेलीके हाथसे यह कहकर उसके
प्रियतमका पत्र छटक लिया कि 'क्या उसके आँसु नहीं बहते

इत्थं नामभिधाय तत्करतलादाशाय पत्रं सखी काचि-
द्वान्वयति प्रगल्भवचना कौतूहलेऽपि कमान् ॥ २५ ॥
भवतु विदितं व्यर्थासापेक्षं प्रिय गम्यतां तनुराप
न ते कोपोऽस्माकं विधिस्तु पराङ्मुखः । नव यदि
तथाभूतं प्रेम प्रपन्नमिमां दशां प्रवृत्तिनगले का नः
पीडा गते हतजीविते ॥ २६ ॥ भवन्त्यः विश्लेषे गुरु-
हृदयवेदेन तनुतां तनुतिनयं धनं सदृशमिति मत्तभ-
गनेन । इदं तावच्चित्रं कमलमुखि सर्वव्ययैः सुरूपा
त्वं लोके नियतमलुरुपा भवसि नः ॥ २७ ॥ भित्त्वा
सद्यः किसलयपुटान्देवदारुद्रुमाणां येनत्तीरधुनिसुर-
भयो दक्षिणेन प्रवृत्ताः । आलिङ्गयन्ते गुणयति मया
ते तुषाराद्रिघाताः पूर्वं स्पृष्टं यदि किल भवेदङ्गमभि-
स्तयति ॥ २८ ॥ मामाकाशप्राणहितभुजं निर्दयाश्ले-
षहेतोलम्बायास्ते कथमपि मया स्वप्नसम्दर्शनेषु ।
पश्यन्तीनां न खलु यद्गुणा न स्थलीदेवतानां मुक्ता-

स्थूलस्पर्शकिसलयेष्वश्लेषाः पतन्ति ॥ २९ ॥ मार्गे
मे निष्पायतां परिगतिं कार्यस्य भद्रात्तरां धन्या
लेखद्वानतान्मम पणवृत्तिं च नेदीयसीम । स्वस्थै-
चास्य तव क्रमे मम दशा या पूर्वमुक्ता मया भूयस्म-
स्मर तां च मानिनि पणं साभृद्द्विगमुत्सवः ॥ ३० ॥
यनःप्रभृति ते कान्तं मुक्तामालां कितं मया । कामः
कामं ममाङ्गानि दृश्ययन्मभिनयशरैः ॥ ३१ ॥ यस्वन्न-
वसमानकान्ति मलिले ममं तदिन्द्रीयारं मेघैरन्तरितः
प्रियं तव मुखच्छायायानुकारो शशी । येषि न्यद्रमना-
नुकारिगतयस्ते राजहंसं गतास्वन्सादृश्यधिनाद-
माद्यमपि मे देवेन न क्षम्यते ॥ ३२ ॥ यदिन्दोर्लक्ष्मीस्ते
यदनङ्गमले चासमकरात्तमःस्नातमध्यमा तव तरुणि
धम्मिल्लमभजन् । अनुमाता हारायलिमपि च ताराय-
लिकविः शरण्यायाः कस्ते मम शरणदानं परिभवः
॥ ३३ ॥ यदि प्राणा एव मण्यपरिणाहः कथमयं

या लिखते समय उसका हाथ नहीं कीपता ? तुम क्या
समझोगी कि तुम्हारे लिये उसका जो कैसा तदप रहा
है । ' और उसका कुनहल होनेपर भी वह बहुत धीरे-धीरे
पत्र पढ़ने लगी ॥ २५ ॥ अच्छा जाने शीघ्र, शर्धका
भातांसे क्या लाभ है ! हे प्रिय ! जाहूँ, आपका इसमें
कोई दोष नहीं, इस समय तो हमारा भगवत है। हमसे
कहा हुआ है । जब आपके अटल प्रेमकी यह दशा हो रही
है तब हमारे इस स्वभावसे ही अस्थिर मुख जीवनके चले
जानेपर हमें क्यों दुःख होगा ? ॥ २६ ॥ हे मनवाले हाथीके
समान चालवाली ! तुम्हारे किरागसे धवराए हुए मनकी
धकावटसे हमारे शरीरका नियत दुबला होता जाना डोक हो
है । पर कमलमुखी ! यह तो पताचो कि तुम अपने सभी
अङ्गोंसे सुरूपा होते हुए भी हमारे लिये असुरूपा , असुन्दर,
प्राणरूप) क्यों हो रही हो ? ॥ २७ ॥ हे सुन्दर गुणोवाली !
देवदारके नये पत्ते तोड़कर उससे निकले हुए दूधके साथ
लगनेसे सुगन्धित होकर दक्षिण दिशाकी ओर बहनेवाले
हिमालयके वायुका हम इसलिये स्वागत करते हैं कि सम्भव है
कि वह तुम्हारे शरीरका स्पर्श करके इधर चला आ रहा हो
॥ २८ ॥ हे प्यारी ! जब मैं स्वप्नमें किसी-किसी प्रकार तुम्हें
गाकर तुम्हें छातीसे लगानेके लिये अपने हाथ ऊपर उठाता हूँ
तब मेरी इस अवस्थाको बार-बार देखनेवाले वनदेवता
अपने मोतीके समान बड़ी-बड़ी आँसुकी बूँदें पेटोंके पत्तों-

पर टुलकावा करते हैं ॥ २९ ॥ हे प्यारी ! मेरा सारा काम
बड़े अच्छे उद्देश्ये मार्गमें हो बन गया और मैं अब शीघ्र ही
लौट आऊँगा यह बात तुम पत्रवाइकले सुन ही लोगी
किन्तु तबतक स्वस्थ हो रहना, घबड़ाया नहीं, क्योंकि
तुम्हारी पत्राहत सुनकर मेरो जो दशा हो जाती है वह मैं
तुम्हें पडले ही क्या चुका हूँ । उसे ही फिर स्मरण
करके हे मानिनि ! ऐसे उद्देश्ये रहना जिससे हमारे
प्रेरियोंको ईसनेका अवसर न मिल पावे ॥ ३० ॥ जिस
समयसे मैंने तुम्हारा सुन्दर मुँह देखा है उसी समयसे
कामदेव अपने बाण लेकर ऐसा पीछे पड़ा है कि हमारे
अङ्ग चारों ओरसे वेड़े डाल रहा है ॥ ३१ ॥ हे प्यारी !
तुम्हारी आँखोंके समान सुन्दर नीलकमल पानीमें डूब गए,
तुम्हारे मुँहका परछाईके समान दिखाई देनेवाला चन्द्रमा
बादलोंमें जा छिपा और तुम्हारा चालका अनुकरण करने-
वाले राजहंस भी मानसरोवरका उड़ गए इसलिये तुम्हारे
समान जिन वस्तुओंको देख-देखकर मैं मन बहलाया करता
था, दुर्भाग्यसे वे सभी एक-एक करके मिटी जा रहे
हैं ॥ ३२ ॥ हे नवेली ! जब कि तुम्हारे मुखकमलने चन्द्रमाकी
शोभामें स्थान पा लिया, जब अन्धकारने तुम्हारे केशोंमें
अपना डेरा आ जमाया और तारोंकी चमकने तुम्हारे हारमें
स्थान पा लिया तब शरणा देनेमें इतनी प्रसिद्धि पा चुकनेपर
भी तुम मुझे शरण देनेमें इतनी कञ्जूसी क्यों कर रही

विभिन्ना तेभ्यश्चेत्कथमियमभेदव्यवसितिः । न भिन्ना
नाभिन्ना यदि भवसि किं नाम तदपि त्वमेकासि त्वं
मे कुत्रलयदलश्रोणनयने ॥ ३४ ॥ यदेकः कासारं रच-
यति तथा कूपमथवा तदाकाङ्क्षा देवो वितरतितरां
श्रीपतिरपि । मया तु त्वद्धेतोः कमलमुखि सान्द्राश्रु-
सलिलैः कृताः पाराधारास्तदपि गणना ते न हृदये
॥ ३५ ॥ रात्रिः कालयुगोपमा मलयजो गन्धानिलः
किं विषं सोमः सूर्य इवाभवन्मलयजालेपः स्फुल्लिको-
पमः । तिलः सुस्यरगीतवाद्यपरभृन्पारावतादिध्वान-
र्षजस्याहतिरेव कर्णयुगले विच्छेदतो मे तव ॥ ३६ ॥
वज्रोजाग्रां कनककलशां रम्यरोमावलीयं रत्नवशा
रज्जुर्लसति सरसो नाभिकूपो गभोरः । प्रोढा तृष्णा
मम नयनयोनीरजाक्षि प्रशाम्येदेषामेषा सिचयरचिता
नैव गुप्तिर्यदा स्यात् ॥ ३७ ॥ वल्लभकक्षानि वल्लभांस-
हमध्यमानि कण्ठोदयकलकतानि गलत्कुक्षानि ।

आस्थादिताधरदलान्यलसेक्षणानि नाम्येष तन्वि
सुरतानि तव स्मरामि ॥ ३८ ॥ वेणीवन्धनशेषितैर्विलु-
लितैरुत्तंसितः कुन्तलैश्चिन्त्यस्तः कुचकुम्भयोरशिशि-
रैर्योष्पाभ्युभिस्तस्योः । अक्षयोस्सन्ततरोदनादकणयो-
राश्लेषितश्लाघितो लेखः किं तदकारि यत्र सदृशं
प्रेम्णोऽतिसीमस्तया ॥ ३९ ॥ श्यामास्थङ्गं
चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातं यत्कच्छायां शशिनि
शिखिनां वर्हभारेषु केशान् । उत्पश्यामि प्रतनुषु
नदीवोचिषु भ्रूलिलासान्दन्तैकस्मिन्कचिदपि न ते
चरिड सादृश्यमस्ति ॥ ४० ॥ सङ्क्षिप्येत तण इव
कथं दीर्घयामा त्रियामा सर्वावस्थास्वहरपि कथं
मन्दमन्दानपं स्यात् । इत्थं चेतश्चट्टलनयने दुर्लभमा-
र्थनं मे गाढोष्माभिः कृतमशरणं त्वद्वियोगव्यधाभिः
॥ ४१ ॥ सुमध्ये वाग्भङ्गैर्धवनविधिमङ्गीकुच न वा
स्मितज्योत्स्नाकास्तं कुच वदनमेतन्मयि न वा । विस्मो-

हो ! ॥ ३३ ॥ हे नीले कमलके समान फूलवाली ! यदि
तुम सचमुच मेरे प्राण हो तब यह प्रेमका भ्रमेका कैसा
क्योंकि प्रेम तो तब होता है जब दो हों । यदि तुम प्राणोंमे
अलग हो तब तुम्हें यह एक होनेका ज्ञान कैसे हो रहा
है ? इसलिये न तो तुम अलग हो, न एक हो । तब बताओ,
तुम हो क्या ! मुझे तो ज्ञान पड़ता है कि तुम मेरे लिये
इन दोनोंसे कोई निराशा ही वस्तु हो ॥ ३४ ॥ जब कोई
अपचित ताजा या कुर्छा खरबाता है तो भगवान् लक्ष्मी-
पति उसके सब मनोरथ पूरे कर देते हैं पर हे कमलके
समान मुखवाली प्यारी ! मैंने तो तुम्हारे लिये अपने
आँसुओंसे न जाने कितने समुद्र बना डाले, फिर भी तुम्हारा
हृदय न पसीजा, न पसीजा, न पसीजा ॥ ३५ ॥ हे प्यारी !
तुम्हारे बिलोहमें यह रात मलयकी रातके समान रही
है, मलय पर्वतसे आनेवाला वायु बिप बिलेरता-सा जान
पड़ता है, चन्द्रमा भी सूर्यके समान तपने लगा है, चन्द्रनका
शेष भी चिनगारी बनकर जला रहा है और ममाहर
कूकनेवाले कोयल और कबूतर आदिकी मधुर ध्वनि भी वज्रके
समान मेरे काम फोड़े डाल रही है ॥ ३६ ॥ हे कमलनयनी !
तुम्हारे दोनों स्तन सोनेके घड़े हैं, सुन्दर रोमावली बदिषा रस्सी
है और नाभि स्वादिष्ट जलसे भरा गहरा कुर्छा है । यदि उस
कुर्छेके आसपास यह वज्रोंकी चहारदीवारी न होती तो मेरे
दोनों नेत्रोंकी यह गहरी प्यास बुझ जाती ॥ ३७ ॥ हे दुबले

शरीरवाली ! तुम्हारी इन कामकीवालोंका मुझे सदा स्मरण
होता रहता है जिनमें तुम्हारे बाल लहराते थे, तुम्हारी
कमर हिल-डुल नहीं पाली थी, गलेसे कुछ मीठी-मीठी
ध्वनि निकला करती थी, स्तन कुछ डीले पड़ जाते थे,
घोंठ चूमे जाते रहने थे और फाँले' फलसाईं-सी
रहती थी ॥ ३८ ॥ मेरी प्यारीने जो बिना छोटी किए हुए
बिसरे हुए बालोंसे इस लेखको सजाया, गरम-गरम
आँसुओंसे तबे हुए दोनों स्तनोंपर इसे रक्खा और सदा
रोते रहनेके कारण जाल-जाल धाँसले लगाकर इसे सराहा
यह क्या उसने वैसा नहीं किया जैसा सीमाका लौंके
हुए प्रेममें किया जाता है ? ॥ ३९ ॥ हे प्यारी !
यद्यपि मैं श्यामा जतामैं तुम्हारे चट्टकी समानता, डरी हुई
हरिणीकी चितवनमें तुम्हारी चितवन, चन्द्रमामें तुम्हारे
मुखकी शोभा, मोरोंकी पूँवमें तुम्हारे बालोंकी समता और
नदीकी नग्नी-नग्नी लहराते तुम्हारी भाँहाँका चट्टकन प
जेता हूँ फिर भी हे रुठनेवाली ! दुःख यही है कि तुम्हारे
सब अङ्गोंकी समानता मुझे कहीं हकदी नहीं मिल पाती
॥ ४० ॥ हे चञ्चल नेत्रवाली ! अश्रवन्त सन्ताप देनेवाले तुम्हारे
बिड़ोहकी पोड़ाके कारण मेरे मनको कहीं ठिकाना नहीं
मिल रहा है और वह दिन-रात यहाँ तुल्य प्रार्थना किया
करता है कि 'यह जन्मे-जन्मे पहरवाली रात किसी प्रकार
वज्र-भरके समान ज़ोटा हो जाय और यह दिनकी धूप भी

कीमूर्धन्या यदि विविधपुण्याधिकतया मया दृष्टासि
त्वं तदिह सकलं मेऽजति जनुः ॥४२॥ स्थानाजिर्गन्ध
दूरं वजति मयि चिरं मुक्तकण्ठं वदिन्वा पश्चादुन्मृज्य
नेत्रे प्रणतिमुपगता वेषमानाङ्ग्याष्टः । कान्ते यन्माम-
घोचः प्रलयघनघटाटोपवह्नान्धकारं काले कापालि-
कोऽपि प्रवसति न गृहात्तन्मनां मे दुनोति ॥ ४३ ॥
स्मर्तव्योऽहं त्वया कान्ते न स्मरिष्याम्यहं तव । स्मरणं
चेत्तसो धर्मस्तद्योनो भयदाहृतम् ॥ ४४ ॥ स्वप्नेऽपि
देवि तमसं न मया घिता त्वं स्वागे त्वया चिरहितां
मृत्यवङ्गवामि । दूरोकृतासि विधिवुर्ललितैस्नधापि
जीवत्येहि मन इत्यसया दुरन्ताः ॥ ४५ ॥ स्निग्धमा-
लप सुकृतमेव वा स्थत्कथैव सखि मे रसायनम् ।

सब अवस्थामें मर्दी पद जाय' ॥ ४३ ॥ हे सुन्दर
कमरवाली । मेरा नियोजन दुकराकर तुम मेरी बात मानो
या न मानो, अपनी मुस्कान तपा चौदोसों तिलों दुआ
अपना मुखवा मेरी और फेरो या म फेरो पर मेरा जन्म
तो इसीसे सकल हो गया कि मैंने अपने प्ये जन्मोंके
पुण्योंके प्रभावसे तुम्हारे रूपमें तानों लोंकोंमें सबसे बढ़कर
सुन्दरीके दर्शन कर लिए ॥ ४३ ॥ हे प्यारी ! जिस समय
प्रलयद्वार बाइजोंसे चारों ओर ऐसा भयानक कंपेरा हुआ
हुआ था कि अघोरी भी घरसे बाहर नहीं निकलता था,
ऐसे समय मैं जब तुम्हें दूर खड़ा गया तब तुम घरसे निकलकर
देरतक फुहवा फाड़-फाड़कर रोती रही और फिर अपने आँखों
पोंछकर कोंपते हुए तुमने मुझे प्रणाम किया । उसीका
स्मरण कर-करके आज मेरा हृदय फटा जा रहा है ॥ ४३ ॥
हे प्यारी ! तुम मेरा स्मरण करती जाना किन्तु मैं तुम्हारा
स्मरण नहीं कर पाउँगा क्योंकि जिस मनसे स्मरण किया
जाता है वह मन तो तुम अपने पास खींच ले गई
हो ॥ ४४ ॥ हे देवि ! स्वप्नमें भी हमारा-तुम्हारा भेंट नहीं
होती इसलिये न तो तुम्हें सुख मिल पाता है और न
मुझे हा । इसीलिये मैं तुम्हारे बिना मरा-सा रहता
हूँ । आज दुर्दैवने तुम्हें मुझसे दूर कर दिया है, फिर भी प्राण
इसलिये नहीं निकलते कि मन तो तुम्हींमें लगा हुआ
है ॥ ४५ ॥ हे सखी ! तुम मोठी बातें करो या कल्लो,
तुम्हारी सब प्रकारकी बातें मुझे रसायन जान पड़ती हैं
क्योंकि पानी चाहे उबड़ा हो या गरम, पर वह आगको तो
तुम्हा ही राजता है ॥ ४६ ॥ हे सुन्दर मुखवाली ! तुम्हारे

शीतलं ललितमुष्णमेव वा पाचकं हि शमयेदसंशयम्
॥ ४६ ॥ हिमांशुश्चगङ्गांश्चैव जलधरो दायदहनः सखि-
हीनो वातः कुपितफणिनिः श्वासपवनः । तवा मल्ली
भल्ली कुचलयचनं कुन्तगहनं मम त्वद्विश्लेषान्मुमुक्षि
विपरीतं जगदिदम् ॥ ४७ ॥

नायिकां प्रति नायकाः प्रथमम्-- पदशब्दलीनहृदयो
रुपासहारभावनानिपुणः । कश्चिच्च सचिन्तितमुद्रस्त-
रुति त्वार्थं परं स युवा ॥ १ ॥ परिहरति रतिं मतिं
तुनीते स्मलतिनरां परिहरति च भूयः । इति तव
विषमा दशम्य देहे परिभवति प्रसभं किमत्र कुर्मः
॥ २ ॥ पूर्वं यत्र समं त्वया रतिपतेरासादिताः सिद्ध-
यस्तस्मिन्नेव निकृज्जमन्मथमहाताथं पुनमाधयः ।

बिहोहमें यह सारा संसार मुझे ऐसा उलटा दिखाई पड़ता
है कि चन्द्रमा तो सूर्य-सा जान पड़ता है, नये यादल आगकीं
लपटोंके समान लगते हैं, नदियोंकी लहरोंसे मिलकर बहता
हुआ पवन कोधमें भरे सौँवकी फुफ्फुसोंके समान लगता है,
नये बेलका फूल बाँधके समान येवला है और नाला कमल तो
भाँजा बनकर शरीरमें दुसता-सा जान पड़ रहा है ॥ ४७ ॥

मवेलोंके आगे नायककी दशाका वर्णन : हे
नवेली ! तुम्हारे लिये तो वह युवक आज काय बन गया है,
पल-पल उसका कान तुम्हारा पगध्यानमें लगा हुआ है । कहीं
तुम आ न रहा हो, वह दिनरात तुम्हारा सुन्दरता और
तुम्हारी सजावटके गाँत गाता रहता है और उस दरा तो
ऐसा जान पड़ता है मानो तुम्हारी चन्तामें घुसा जा रहा हो,
अधात जैसे कवि पद तथा शब्द जाड़नेमें लगा रहता है,
शब्दके रूप अलङ्कार तथा अनुकूल क्रियाओंका मेल घँटाता
रहता है और अपनी रचनाका सुन्दर बनानेके लिये सदा
चिन्ता किया करता है जैसे हाँ वह युवक भी तुम्हारी पगधनि,
तुम्हारा रूप, तुम्हारे अलङ्कार और तुम्हारा क्रियाओंका
चिन्तन करता रहता है ॥ १ ॥ किसी बातमें उसका मन
नहीं लगता, उसका बुद्धि भट-सी हो गई है, वह बार-बार
हममगाकर चलता है, तुम्हारी यह कठारता देखकर उसकी
देहकी जो दशा हो गई है वह मैं क्या बताऊँ ! हमारे किए तो
कुछ नहीं हो रहा है ॥ २ ॥ कामदेवके बड़े भारी तीर्थ-
रूपी जिस कुत्रमें उसने तुम्हारे साथ कामदेवकी सिद्धियों
प्राप्त की थीं, उसी कुत्रमें वह माधव धव तुम्हारा स्मरण
करता और तुम्हारी बातचीत-रूपी मन्त्रके अक्षर जपता

ध्यायैस्त्वामनिशं अपन्नपि तवैवालापमन्त्रावलीर्भूय-
स्त्वत्कुचकुम्भनिर्भरपरोरम्भामृतं वाञ्छन्ति ॥ ३ ॥
यिकिरति मुहुः श्वासाश्वासां पुगे मुहुरीक्षते प्रविशति
मुहुः कुआन्कुअं मुहुर्वह ताप्यति । रन्ध्रयति मुहुः
शब्दां पर्याकुलं मुहुरीक्षते मदनकदनकान्तः कान्ते
प्रियस्तव वर्तते ॥ ४ ॥ सा मां द्रक्ष्यति वक्ष्यति स्मर-
कथां प्रत्यङ्गमालिङ्गनैः प्रीतिं यास्यति रंस्यते सखि
समागन्थेति चिन्ताकुलः । मार्गं पश्यति चेपते पुल-
कयन्त्यानन्दति स्विद्यति प्रन्युद्वलति मूर्च्छति स्थिर-
तमःपुञ्जे निधुःप्रियः ॥ ५ ॥ हा कान्ते स परिष्वङ्गो
भूयोऽपि घत हीयताम् । इत्येष विपलम्राग्नि कान्त-
श्चेऽपनयत्यहो ॥ ६ ॥

नायकं प्रति नायिकेक्य-एतस्मिन्सहसा वसन्तसमये
प्राणेश देशान्तरं गन्तुं त्वं यतसे तथापि न भयं तापा-
म्पद्येऽधुना । यस्मात्कैरवसारसारभमुपा साकं सरो-

वायुना चान्द्री दिक्षु विजृम्भते रज्जुनिषु स्वच्छा
मयूखदलुटा ॥ १ ॥ गच्छ गच्छसि चेत्कान्त पन्थानः
सन्तु ते शिवाः । ममापि जन्म तत्रैव भूयाद्यत्र गतो
भवान् ॥ २ ॥ न चिरं मम तापाय तव यात्रा भवि-
ष्यति । यदि यास्यसि यातव्यमलमाशङ्कयापि ते
॥ ३ ॥ भाभ्वाश्चूततरुर्गुरुर्मनसिजः कोऽप्येष भृङ्ग-
स्तमो मन्दो गन्धवहः सितो मलयजो दोषाकरो
माधवः । अङ्कारो नषपल्लवः परभृतो विज्ञो गुरोरा-
क्षया मिर्यातोऽसि विचारिताः कथममी करा प्रहा
न न्यया ॥ ४ ॥ मा याहीत्यपमङ्गलं ब्रज किल छेदेन
शून्यं यच्चस्तिष्ठेति प्रभुता यथारुचि कुरुष्वैवाप्युदा-
त्तमिता । ना जीवामि विना न्येति यच्चनं सम्भाव्यते
वा न वा तस्मां शिष्य नय यन्तमुचितं यक्तुं त्वयि
प्रस्थिते ॥ ५ ॥ लोसैलौचनवारिभिश्च शपथैः पाद-
प्रणामैः परैरन्यास्ता विनिवारयन्ति कृपणाः प्राणेश्वरं

हुआ मुहारे घटस्तमोका कसकर आलिङ्गन करमेका अमृत-असा
सुख पाका चाह रहा है ॥ ३ ॥ हे सुन्दरी ! तुम्हारा प्रियतम
कामदेवके उपद्रवोंसे इतना मुर्छा हो गया है और उसकी ऐसी
दशा हो गई है कि वह बार-बार ज़ाँबी-ज़ाँबी साँसें लीँधता
रहता है, सामनेकी ओर पकड़क देखा करता है, बार-बार उठ-
उठकर इस काँड़ीसे उस काँड़ीमें आता-जाता है, बार-बार मन
मसोसकर बैठ जाता है, बार-बार बिल्लीना सजाता है और
बार-बार घबराकर धुधर-धुधर देखता है ॥ ४ ॥ सखी ! वह
बेचारा युवक इस चिन्तामें घबराया रहता है कि वह प्यारी मुँके
देखेगी, कुछ प्रेमकी बातें करेगी, गले लगेगी, खिल उठेगी
और मेरे साथ खेलेगी । इसी चिन्तामें वह काँड़ीमें घुसकर
रहनेवाले भयङ्कर छँधरेमें बैठा तुम्हारी याद आँदता है, कोपता
है, रोमांचित होता है, प्रसन्न होता है, पसीनेसे तर हो
जाता है, तुम्हारी अगवान्की छिमे बढ़ता ॥ और फिर मूर्च्छित
होकर गिर पड़ता है ॥ ५ ॥ हे सुन्दरी ! तुम्हारा पति यही
कह-कहकर बिलस-बिलसकर रात बिता देता है कि 'हे प्यारी !
फिर भी तो एक बार वैसे ही गले लग जाओ ?' ॥ ६ ॥

नायकसे नायिका का कथन : हे प्रणयनाय ! इन
वसन्तके दिनोंमें जो तुम अचानक विदेश जानेकी बात चला
रहे हो, इस बातसे उतना कष्ट नहीं है किन्तु कष्ट इस बातका
अधिक है कि कुसुमकी तीव्र सुगन्धिसे भरे हुए सरोवरोंकी
बहारके साथ निर्मल चन्द्रमाकी किरणों स्वतन्त्र होकर

चारों ओर फैल रही हैं ॥ १ ॥ हे प्रियतम ! यदि आप
जा रहे हैं तो अवश्य जाइए, आपका मार्ग महत्त्वमय हो ।
मेरी बस एक ही अभिलाषा है कि जहाँ आप जायें वहाँ
मेरा जन्म हो (अर्थात् आपके जानेपर मैं जीवित नहीं रह
पाउँगी) ॥ २ ॥ हे प्रियतम ! यदि आप जाना ही चाहते
■ तो अवश्य जाइए, उसमें तनिक भी सोच-विचार न कीजिए
क्योंकि आपकी यह यात्रा मुझे डेरतक दुःख नहीं देगी (अर्थात्
आपके जानेके पक्षान् मैं शीघ्र ही प्राण छोड़ दूँगी) ॥ ३ ॥
हे प्रियतम ! वीरा हुआ आमका कुछ ही सूर्य है, प्रतापी
कामदेव ही बृहस्पति है, भीरा ही राहु है, मन्द पवन ही
शमैरवर है, चेत चन्द्रम ही शुक है, अँधेरी रातोंवाला
वसन्त ही चन्द्रमा है, जाल रंगका नया पत्ता ही मंगल है
और खदुर कोयल ही बुध ॥ तथा माता-पिताकी आशसे
आप विदेश जा रहे हैं । क्या आपने यात्राके समय इन सब कुर
प्रहोंका तनिक भी विचार नहीं किया ? ॥ ४ ॥ हे प्रियतम ! यदि
कहूँ कि 'आप न जाइए' तो यह अमहल तथा प्रेमसे शून्य बात
होगी । यदि कहूँ कि 'रुक जाइए' तो जग पड़ेगा कि मैं आपपर
अधिकार जना रही हूँ । यदि कहूँ कि 'जो आपके मनमें हो वही
कीजिए' तो इससे उदासीनता कलङ्कती है और यदि कहूँ कि
'आपके बिना मैं जीवित न रहूँगी' तो आप यह सोचने लगेंगे कि
यह सम्भव है या नहीं । इसलिये हे प्रिय ! अब आप ही मुझे
कहाइए कि आपकी इस यात्राके समय मुझे क्या कहना चाहिए

प्रस्थितम् । पुण्याहं ब्रज मङ्गलं सुदिवसः प्रातः प्रया-
तस्य यत्त्वत्कोहोचितमीहितं प्रिय मया त्वं निर्गतः
श्रोष्यसि ॥ ६ ॥ सहिष्ये विरहं नाथ देहादृश्याञ्जनं
मम । यदकनेत्रां कन्दः प्रहर्तुं मां न शक्यति ॥ ७ ॥

नायकं प्रति सखीवाक्यम् — उद्यद्द्विषि दुर्दरारवपुषि
प्रक्षीणपाश्यायुषि शक्योतद्विप्रुषि चन्द्ररुदमुषि सखे
हंलाद्विषि प्रावृषि । मा मुञ्चाश्च कुचान्तसन्ततगलदा-
प्याकुलां बालिकां काले कालकरालनीलजलदव्यालुत-
भास्वस्विषि ॥ १ ॥ किमिति सखे परदेशे गमयसि
दिवसाभ्यगाशया लुब्धः । वर्षति मौक्तिकनिकरं नय
भवनहारि काञ्चनो बङ्गी ॥ २ ॥ मा गच्छ प्रमदाप्रिय
प्रियशुतैरभ्यर्धितस्थं मया याला प्राक्कणमागतेन
भयता प्रामोत्यवस्थां पराम् । किं चास्याः कुचभार-
नि-सहतरैरङ्गरनङ्गाकुलैस्तुष्टपत्कम्बुकजालकैरनुदिनं

निःसृज्यमस्मद्गृहम् ॥ ३ ॥ या विम्वौष्ठरुचिः क्व
चिद्रुममलिः स्वप्नेऽपि तां लब्धवान् हासश्रीसदृशोऽस्त-
पोभिरपि किं मुक्ताफलैर्भुज्यते । नन्कान्तिः शतशोऽपि
वर्त्तिपननैर्हंसः कुतः सेन्यति न्यक्त्वा रत्नमयीं
प्रयासि दयितां कस्मै धनायाध्वग ॥ ४ ॥

सखी प्रति नायकावाक्यम् — आयाता जलादायली सर-
भसं विद्यत्समालिङ्गित शैलानां परितः सशब्दमहिमु-
क्थेली नगानृत्यति । एवं सत्यपि हन्त सम्पति पति-
देशान्तरं प्रस्थितस्तदुःखं विनिवेद्यतां सखि कथं
कस्याधुनाग्रे मया ॥ १ ॥ कान्तो याम्यनि दूरदेशमिति
मे छिन्ता परं जायते लाकानन्दकरो हि चन्द्रयदने
वैरायते चन्द्रमाः । किं चायं घितनारि काकिलकला-
लापो विलापोदयं प्राणानेघ हरान्तं हन्त नितराभारा-
भमन्दानिलाः ॥ २ ॥ ययो मयं स्थान्तं विषयतरलं

॥ ५ ॥ ॥ प्रियतम ! हे छियों कोई और ही होगी जो आपका
गिरगिराकर अपने विदेश जाते हुए प्रियको छोड़ वहाते हुए,
सौगन्ध देते हुए और पैरोंपर गिर-गिरकर रोकती है । पर मैं तो
बढ़ी भावशास्त्रिणी हूँ । आप अवरय जाइए, आपका मङ्गल
हो । इस यात्राके समय आपका सुप्रभात ॥ । आपके प्रेमके
योग्य बननेके लिये जो कुछ मैंने करनेका विचार किया है उसे
आप विदेशमें जाकर सुन ही लेंगे (अर्थात् मैं प्राण छोड़ दूँगी)
॥ १ ॥ हे प्रियतम ! मुझे वह अँजन होजिए जिससे मैं
अवरय हो जाऊँ, तब मैं आपका विरह अवरय सह लूँगी
क्योंकि उस अँजनको आँखमें लगा लेनेपर न तो कामदेव
मुझे देख पावेगा न सुकर प्रहार ही कर पावेगा ॥ २ ॥

युधकसे सखीकी बातें : हे मित्र ! जिस कपाँकासमें
कुल कट-कटकर निकल रहे हैं, सेंकक ररां रहे हैं, विरही
प्राण दे रहे हैं, ईदें बरस रही हैं, चन्द्रमा उदास हो
गया है, हंस उड़ गए हैं और कालके समान भयानक भाँसे
बादलोंमें सूर्यका प्रकाश कुस-सा हो रहा है, ऐसे कपाँकालमें
तुम विशाल स्तनोंके बीच निरन्तर गिरते हुए आँसुआँसे
भरी हुई उस नवेलीकी मत छोड़ो ॥ १ ॥ हे मित्र ! तुम
धन के लोभसे परदेशमें क्यों दिन बिता रहे हो ? तुम्हारे
घरके द्वारपर तो वीं ही सोनेकी छता (नवेली दिन-रात मोती
बरसा रही है अर्थात् रो रही है ॥ २ ॥ हे नवेलियोंके प्यारे
मित्र ! घर छोड़कर मत जाओ, मैंने सैकड़ों बार प्रेम-भरी
बातोंसे आपसे प्रार्थना की है कि आप आँगनतक भी निकलकर

जाते हैं तो उस नवेलीकी बढ़ी कितनी दगा हो जाती है । यहाँ-
तक कि उस नवेलीके अपने ही भागमें दबे हुए स्तनोंपरकी
कोखीके बन्द कामकी पीटाके कारण पेने टूटने दें कि हमारे
छाये तो आम-मात्रको भी मन नहीं बच पाना ॥ ३ ॥ हे
विदेश जानेकी तैयारी करनेवाले ! तुम उस रगोंमें बनी प्रियाको
छोड़कर किस धनकी आशामें बाहर जा रहे हो जिसके छोड़की
चमककी मृगा स्वप्नमें भी नहीं पा सकता, जिसकी हँसीकी
लोभाकी बगवरी मोती नपस्या करके भी नहीं पा सकता और
आगमें सैकड़ों बार नपानेपर भी सोना जिसकी सुन्दरताकी
याद नहीं पा सकता ॥ ४ ॥

सखीसे नवेलीकी बातें : हे सखी ! एकाएक विजलीसे
भरे हुए बाटल बेगसे घुमइ आए, पर्वताके चारों ओर मारके
भुगड़ कूक-कूककर नाचने लगे, हाय ! यह सब होनेपर भी
पतिदेव विदेश जानेको तैयार है, अब मैं किसके आगे
कैसे अपना दुखड़ा रोऊँ ! ॥ १ ॥ प्रियतम बहुत दूर विदेशको
जा रहें हैं, इस बातसे बढ़ी चिन्ता हां रही है, क्योंकि सारे
संसारको आनन्द देनेवाला चन्द्रमा चन्द्रमुखी नवेलियोंका बैरी
बन जाता है, कोकिल अपनी मधुर कूकके स्वरमें बिलखने
लगता है और उपवनोंके धामे पवन तो प्राण ही हर लेते हैं
॥ २ ॥ हाय ! नई अवस्था है, भांगकी अभिलाषासे सदा ही
मन चञ्चल रहता है, पति विदेशमें है, पिताके यहाँ पहुँचना भी
अत्यन्त कठिन है और यहाँके जाग भी अत्यन्त दुष्ट है । इस
प्रकार जब अनर्थकी सारी सामग्री उपस्थित है तब हे सखी !

हस्त सततं प्रियो दूरे देशे जनकमगरं दुर्लभतरम् ।
जनश्चायं दुष्टो भृशमिदमनर्थाय सततं कथङ्कारं पारं
कथय सखि यामोऽस्य वयसः ॥ ३ ॥

सखायं प्रति नाथकोक्ति - श्रेते शीतफरोऽम्बुजे कुव-
लयद्वन्द्वद्विनिर्गच्छति स्वच्छा मांत्तिकसंहतिर्धव-
लिमा हैमां लतामश्नति । स्पर्शात्पङ्कजकोशयोरभिनवा
यान्ति स्रजः क्लान्ततामैषोन्पातपरम्परा मम सखे
यात्रास्पृहां कुन्तति ॥ १ ॥

नाथिकां प्रत सखायवयम् - चारं चारमुदधु लोचन-
युगं पर्याकुलं जायते निःश्वासा विरमन्ति न क्षणममी
ध्याक्लिष्टदन्तच्छदाः । प्रस्थानश्रवणादपि प्रियतम-
स्याहो तवेयं स्थितिर्नो जाने निलयं गते तु दयिते
कीदृशशामाप्स्यसि ॥ १ ॥

मदनं प्रयुक्तय - अद्यापि नूनं हरकोपवह्निस्त्वयि
ज्वलत्योर्व हवाम्बुराशौ । त्वमन्यथा मन्मथ मद्भिधानां

तुम्हीं बनाओ कि यह नई अवस्था मैं कैसे बिताऊँ ॥ ३ ॥

मित्रसे नायकके ध्वनन : हे मित्र ! कमल (इधेली)
पर चन्द्रमा (मुख) पड़ा है, दोनों कीसे कमलों (नेत्रों) से
उजले-उजले मोती (आँसू) मुलक रहे हैं, सुनहरी लता
(देह) उजली हो रही है और कमलके कोशों (स्तनों)
से लग-लगकर मये फूलकी मालाएँ कुहवा रही हैं । इस प्रकार
ये निरन्तर हानेवाले अपराकुण मेरी यात्राकी इच्छामें बाधा
ही डालते जा रहे हैं ॥ १ ॥

मयेसीसे सखीके खखम : परकीया नायिकासे कोई
उसकी सखी कह रहा है—‘हे सखी ! आँसूसे बार-बार आँसू
बह रहे हैं और आँसू चञ्चल हैं, ये बड़ी दुई साँसों चबभर भी
नहीं रुक पा रही हैं और आँसूको मखिन बनाए दे रही हैं । अतः
समझमें नहीं आता कि जब प्रियतमकी यात्राकी बात सुनते
ही तुम्हारी यह दशा हो रही है तब उनके खले जानेपर तो
तुम्हारी न जाने क्या दशा हो जायगी ॥ १ ॥

कामदेवके प्रति उक्तिर्या : हे कामदेव ! जान पड़ता
है आज भी शंकरकी कोधाग्नि तुममें वैसी ही धधक रही
है जैसे समुद्रमें बड़बानल जलता रहता है । यदि यह बात
न होती तो भस्म होकर भी तुम हमें इतने दाहक क्यों
जान पड़ते ? ॥ १ ॥ हे कामदेव ! अत्यन्त प्रसिद्ध पतिमता
रति तुम्हारे भस्म होनेपर तुम्हारे साथ ही क्यों नहीं सती
हो गई ? इसका यह कारण तो नहीं है कि अनाथ

भस्मावशेषः कथमेवमुष्णः ॥ १ ॥ अनुममार न मार
कथं नु सा रतिरतिप्रथितापि पतिमता । अयमनाथ-
वधूवधपातकी दयितयापि तयासि किमुज्झिताः
॥ २ ॥ अपि विधिः कुसुमानि तवाशुगाँस्पर विधाय
स निर्वृतिमाप्तवान् । अदित पञ्च द्वि ते स नियम्य
ताँस्तदपि तैर्वत जर्जरितञ्जगत् ॥ ३ ॥ अस्माकमारम-
भूर्भूत्या हन्तास्मानेव हंसि यत् । रे रे कन्दर्प तन्नित्य-
मनङ्गत्वं सदाऽस्तु ते ॥ ४ ॥ आपुङ्गाग्रममी शरा
मनसि मे मश्राः समं पञ्च ते निर्दग्धं विरहाग्निना वपु-
रिवं तैरेव सार्धं मम । तत्कन्दर्पे निरायुधोऽसि भवता
जेतुं न शकः परो दुःखी स्यामहमेक एव सकलौ लोकः
सुखं जीषतु ॥ ५ ॥ काममेकाकिनो हन्याः प्रियाश्लेष-
विवर्जितान् । यदि ते विक्रमः कश्चिन्न किं हंसि तव-
म्यथा ॥ ६ ॥ क रज्ज्वा हृदयप्रमाथिनी क्व च ते विभ्र-
सनीयमायुधम् । श्रुतीक्ष्णतरं यदुच्यते तदिवं मग्मथ

नवेलियोंको मारनेवाला पापी समझकर इस रतिने भी तुम्हें
खोद दिया ? ॥ २ ॥ हे कामदेव ! तुम्हारे लिये बेगले
खसनेवाले कुकोंके बाख बनाकर मझाने तुम्हें केवल पाँच
ही बाखोंके प्रयोगका अधिकार दिया किन्तु हाथ ! उतने ही
बाखोंसे यह संसार विध्वंस करवाती हो गया है ॥ ३ ॥ अरे
कामदेव ! कितने खेद की बात है कि तू हमारे अन्तःकरणोंमें
उत्पन्न होकर हमें ही मारे डालता है अतः भगवान् करे तू
सदा बिना अङ्गका ही क्या रह ॥ ४ ॥ हे कामदेव ! तुम्हारे
पाँचों बाख ऐसे सखे वज्रसे मेरे हृदयमें भिद गए तथा मेरा
शरीर उन बाखोंके साथ-साथ विरहकी आगसे जल भी गया
कि तुम अक्षहीन हो गए ॥ और अब तुम दूसरोंकी जीत
नहीं सकते । अच्छा हुआ कि केवल एक मेरे दुखिया बने
रहनेसे सारा संसार तो सुखकी नींद सोयगा ॥ ५ ॥ हे
कामदेव ! प्यारीके गलेसे मैं लगे हुए एक-एक प्राणीकी
अलग-अलग मारनेमें क्या पुरुषार्थ है ! तुम्हारा सामर्थ्य
है तो हम तब समझें जब तुम प्रियतमाके गलेसे छिपे हुए
प्राणियोंपर आकर प्रहार करो ॥ ६ ॥ कहीं तो हृदयोंको
फाड़ देनेवाली पीड़ा और कहीं विधास उपजानेवाला तुम्हारा
फूलका अक्ष ! दोनोंमें कितना अन्तर है ! इसीलिये हे
कामदेव ! ‘ओ कोमल होता है वह बड़ा लोका होता है’ यह
कहावत तुमपर बहुत सटीक घट रही है ॥ ७ ॥ हे कामदेव !
तुम्हें थोलेसे शिवजी समझकर तू मुझे क्यों सताए डाल रहा है ?

दृश्यते त्वयि ॥ ७ ॥ जटा नेत्रं वेलीकृतकच-
कलापो न गरलं गले कस्तूरीयं शिरसि शशिलेखा
न कुसुमम् । इयं भूतिर्नाङ्गे प्रियविरटजन्मा
धवलमा पुरारतिभ्रान्त्या कुसुमशर किं मां
दृश्ययसि ॥ ८ ॥ तद्विच्छेदकशस्य कण्ठलुठितमा-
खस्य मे निर्दयं क्रूरः पञ्चशरः शरैरतिशितभिन्दन्मनो
निर्भरम् । शम्भोभूतकृपाधिधेयमनसः प्रोदामनेवानल-
ज्वालाजालकरालितः पुनरसावास्तां समस्तान्मना
॥ ९ ॥ तच्च कुसुमशरस्त्वं शीतरश्मित्वमिन्द्राद्वयमिदम्-
यथार्थं दृश्यते मद्भिषेपु । विसृजति हिमगर्भराश्रमि-
न्दुर्मयूखैस्त्वमपि कुसुमवाणान्वज्रसारीकराणि ॥ १० ॥
त्वमुचितं नयनाखिपि शम्भुना भुवनशान्तिकहोमहविः
कृतः । तच्च यद्यस्यमपास्य मधुं मधुं हतवता हरिणा
वत किं कृतम् ॥ ११ ॥ वग्धारमपि जित्वाऽहं पुरा-
रतिं पिनाकिनम् । कृताघोर्ऽस्मि रतिं प्राप्त इति

हसो निर्हसि माम् ॥ १२ ॥ पञ्चत्वं यास्तु वाणाः
समयपरिणतस्ते विदीर्णोऽस्तु चापः क्रूरः क्रूराहि-
वक्त्रं विशतु तच्च रथो मा भव त्वं शरीरो ।
किं ते शापेन मादम्युधनिवधमहापातकिन्मीनकेनो
शप्यः पाथोजयोनिः स खलु रचितवान्पापिनो
दीर्घमायुः ॥ १३ ॥ पाणो मा कुच चूतसायकमभुं
मा चापमारोपय क्रीडानिजितविध मूर्च्छितजनाघा-
तेन किं पौरुषम् । तस्या एव मृगोदशा मनसिजमह्वन्क-
टाक्षानलध्रुवीजर्जरितं मनामपि मनो नाद्यापि सन्धु-
क्षते ॥ १४ ॥ वाणाः पञ्च मनाभवस्य नियतास्तेषाम-
सङ्ख्या जनः प्रायोऽस्मद्विध एव स्रव्य इति यज्ञोक्ते
प्रसिद्धिं गतम् । दृष्टं तत्त्वयि विप्रनीपमधुना यस्माद-
सङ्ख्यैरयं विद्वः कामिजनः शरैरशरणा नीतस्त्वया
पञ्चताम् ॥ १५ ॥ वाणाग्रिमन्मकदन्ता विकिरन्ममार्कं
प्रायो न चेन्मि विप्रमास्त्रवर स्वर्पाडाम् । सन्ताप एव

मेरे सिरपर यह जटा नहीं है, ये तो बिना कंधों किए हुए
बाण हैं, यह गलेमें बिप नहीं वरन् कस्तूरी है, माथेपर
चन्द्रमाकी कला नहीं वरन् कुल है और यह शरीर भी भस्म
लगनेसे उजला नहीं हुआ है वरन् प्रियतमके चिथोमले ऐसा
हो गया है ॥ ८ ॥ उस नवेलीके बिरहमें मेरे इस दुबले
मनको निन्दुर कामदेव अपने तीखे बाणोंसे निर्दयतापूर्वक
भली-भाँति बेधे डाल रहा है, जब कि प्राण गलेतक आ गए
हैं । अतः मैं तो यह चाहता हूँ कि प्राणियोंपर कृपा करनेवाले
शिवजीके तीसरे नेत्रकी भयङ्कर अग्निकी जपटोंसे यदि वह
दूसरी बार भी भली-भाँति जल जाता तो बड़ा अच्छा होता
॥ ९ ॥ हे कामदेव ! तुम्हारा बाण फूटनेका है और चन्द्रमाकी
किरणें शीतल हैं । वे दोनों बातें हम विजोहियोंकी समझमें कूड़ी
जान पड़ती हैं क्योंकि चन्द्रमा तो अपनी शीतल किरणोंसे
आग बिलेर रहा है और तुम भी अपने फूलके बाणोंमें वज्रका-
सी फड़ोरता भर लाए हो ॥ १० ॥ संसारमें शान्तिकी स्थापना
करनेके लिये शिवजीने जो अपने तीसरे नेत्रकी अग्निकी
ज्वालासे तुम्हारी धादुति दे डाली, यह उचित ही किया किन्तु
तुम्हारे मित्र मधु (वसन्त ऋतु) को छोड़कर मधु नामक दैत्यको
मारकर भी विष्णुने क्या किया ? अर्थात् कुछ नहीं ॥ ११ ॥
'सारे संसारको जलामेवाले, पुर राक्षसके शत्रु तथा पिनाक
धनुष धारण करनेवाले शिवजीपर विजय पाकर भी मैं रतिको
पुनः प्राप्त करके कृतकृत्य हो गया' क्या इसी घमटमें पूर

होकर तुम मुझे मारे डाल रहे हो ? ॥ १२ ॥ मेरी जैसा दूसरा
नवेलियोंको मारनेका पाप डोनेवाले तथा मक्खलीकी सवारो
करनेवाले अरे कामदेव ! तरे बाणोंका नाश हो जाय, तेरा पुराना
धनुष टुक-टुक हो जाय, तेरी निन्दुर सखाय (मक्खली सौंपके
भयङ्कर मुँहमें पड़े और तुझे फिर कभी शरीर न मिले ! पर
तुझे शाप देनेसे लाभ क्या है, शाप तो उस निगोदे मक्खलीकी हाँ
देना चाहिए जिसने तुफ जैले पापियोंका हतभी अम्भी आयु
बना दी है ॥ १३ ॥ खेल-खेलमें ही सारे संसारको जीत
लेनेवाले अरे कामदेव ! कामके और-रूपी पाण हाथसे
मत डडा तथा धनुष भी न सँभाल । धावलको मारनेमें
भला क्या खोरता की बात है ? अरे कामदेव ! उस मृगनयनीकी
चञ्चल कोंको चितवनरूपी अग्निकी ज्वालासे जला हुआ मेरा
मन आजतक तनिक-सा भी तो नहीं पमप पा रहा है ॥ १४ ॥
हे कामदेव ! संसारमें वात प्रसिद्ध है कि कामदेवके
पास गिने-गिनाए कुल पाँच ही बाण हैं और प्रायः हमारे जैसे
असंख्य लोग हो उन-उन बाणोंके लक्ष्य हैं । यह बात मुझे
उलझी ही दिखाई दे रही है क्योंकि तुमने अनगिनत बाणोंसे
मार-मारकर असहाय विजोहियोंके पास पञ्चता (मृत्यु, पाँचकी
संख्या) पहुँचा दी है ॥ १५ ॥ हे कामदेव ! ऐसा जान पड़ता
है कि जब तुम निर्दय होकर मेरे शरीरपर बाणरूपी अग्नि
बिलेरने लगते हो तब तुम्हें अपनी पीड़ाका स्मरण नहीं
आता होगा । शिवजीके भस्मकी नेत्राग्निमें पड़कर क्या तुमने

भवता किमु नान्वभाषि चण्डीपतेरलिकलौचनगोच-
रेण ॥ १६ ॥ याणान्संहार मुञ्च कार्मुकलतां लक्ष्यं तव
त्र्यम्बकः के नामात्र वयं शिरोपकलिकाकल्पं यदीयं
मनः । तत्कारुण्यपरिग्रहात्कुर्व दयामस्मिन्विधेये अने
स्वामिन्मन्मथ तादृशं पुनरपि स्वप्राप्नुतं दर्शय ॥ १७ ॥
भवनेत्रमयो बहिरद्यापि त्वयि मन्मथ । ज्वलतोवा-
न्यथा किं ते विशिखान्तकला इव ॥ १८ ॥ भुवनमोह-
नजेन किमेनसा तव परेत यभुव पिशाचता । यदधुना
धिरहार्धमलामसामभिभवन्ध्रमसि स्मर मद्भिधाम्
॥ १९ ॥ माधवाब्जव्यजन्माऽहं नास्ति रुद्रस्य साधव-
सम् । इति किं धृतवर्षस्त्वं व्यापादयसि मां घत ॥ २० ॥
रे रे निर्दय दुर्निवार मदन मान्कुलपङ्कजं यत्वं संवृणु
संवृणु त्यज धनुः किं पारुष्यं मां प्रति । कान्तासङ्ग-
वियोगदुःखदहनज्वालाबलीढं यपुः शूराणां मृतमारुणे
न हि परां धर्मः प्रयुक्तो धुषेः ॥ २१ ॥ रे रे यद्यपि
दग्धा ते तनुर्हन्त पुरारिणा । तथाऽपि परमर्मास्त-

कारिता न व्यलीयत ॥ २२ ॥ विधिरजंशममेघमवेक्ष्य
ते जनमनः खलु लक्ष्यमकल्पयत् । अपि स वक्षमदा-
स्यत चेत्तदा त्वदिपुभिर्व्यदलिष्यदसावपि ॥ २३ ॥
वृथैव सङ्कल्पशतैरजस्रमनङ्ग नीतोऽसि मयातिवृद्धिम् ।
आकृष्य चापं अवलोपकण्ठे मध्येव युक्तस्तव वाक्-
मोक्षः ॥ २४ ॥ सह तथा स्मर भस्म भदित्यभूः पशु-
पतिं प्रति यामिपुमग्रहीः । भुवमभूदधुना वितनोः
शरस्तव कटुस्वर एव स पञ्चमः ॥ २५ ॥ स्मर नृशंस-
तमस्त्वमता विधिः सुमनसः कृतवन्भवदायुधम् ।
यदि दृढं धनुरायसमाशुगं तव सृजेज्जिजगत्प्रलयं भजेत्
॥ २६ ॥ इदमभाष्यसे यदि मामकं ज्वलतयसीत्य-
मनङ्ग तदेति कम् । स्वयमपि क्षणदग्धमिजेन्धनः क
भवितासि हताश हुताश्वत् ॥ २७ ॥

चन्द्रं प्रत्युक्तयः—अभिलषसि यद्विन्दो वक्रलक्ष्मीं
मृगाक्ष्याः पुनरपि सकृदग्धौ मज्ज सङ्कालयाहम् ।
सुविमलमथ बिम्बं पारिजातस्य गन्धैः सुरभयव

सन्तापका अनुभव नहीं किया था ? ॥ १५ ॥ हे प्रभु कामदेव !
बाणोंको लौटा लो, धनुष हाथसे छोड़ दो, तुम्हारे कण्ठ से तो
शङ्करजी हैं, भला उनके सामने मेरा क्या गिनती ? मेरा मन
तो सिरसका कलाके समान कोमल है, और फिर मैं तो सदा
तुम्हारी आज्ञा मानता रहा हूँ, इस लिये मुझपर दया करो और
फिर दैसा ही सपना-सा कथरज दिखाना ॥ १७ ॥ हे कामदेव !
जान पड़ता है कि शिवजीके नेत्रकी आगि आज भी तुममें जल
रही है, यदि ऐसा बात न होती तो तुम्हारे बाण चिनगारियोंके
समान क्यों लगते ॥ १८ ॥ हे अरे हुए कामदेव ! तुम जो
संसारको मोहमें डाल देते हो, क्या इसा पापसे तुम पिशाच
हो गए हो ! क्योंकि वियोगकी व्याधसे तुम्हीं हमारी जैसा
मधेलियोंको कट देत हुए तुम दिनरात चक्कर लगाते रहते हो
॥ १९ ॥ हे कामदेव ! क्या तुम इसा घमयदमे चूर होकर मुझे अरे
डाल रहे हो कि मैं कुप्यका पुत्र हूँ अतः शिवजीसे मुझे क्या
कर है ? ॥ २० ॥ हे निर्दया और इठी कामदेव ! अपने लिये
हुए कमलके बाण उतार लो, धनुष नाचे रख दो । अम्हा मुझपर
क्या वारता दिखा रहे हो ? मेरा शरीर तो आशके बिछाहसे
उत्पन्न हुई आगिकी लपटोंमें यों ही भुन गया है । पाँचवतोंने
कीशोंके लिये अरे हुएको मारना कहा उचित नहीं बतलाया है
॥ २१ ॥ अरे कामदेव ! यद्यपि शिवजीने तरे शरीरकी रक्षा
कर दिया फिर भी दूसरोंके इदय देनेवाली तैरी शक्ति नष्ट

नहीं हुई ॥ २२ ॥ न तो मगने टुकड़े हो सकते न वह काँदा
ही आ सकता, यही समझकर मझाने मनको ही तुम्हारे
बाणोंका कण्ठ बनाया । यदि उन्होंने तुम्हारे बाणोंका अक्षय
कज्जको बनाया होता तो वह तो कभीका चूर-चूर हो चुका
होता ॥ २३ ॥ हे कामदेव ! मैंने जगातार सैकड़ों सङ्कल्प कर-
कके व्यर्थ ही तुम्हें वदाया । भला तुम्हीं बताओ कि कानतक
धनुष खींचकर मुझपर ही बाण बरसाना क्या तुम्हें शोभा
देता है ? ॥ २४ ॥ हे कामदेव ! शिवजीपर छोड़नेके लिये
तुमने जो बाण किया या उसके साथ ही तुम भस्म ॥ गए ।
इस समय जान पड़ता है ॥ अब बिना शरीरके हो जानेके
कारण कोयलकी कूक ही तुम्हारा पाँचवों बाण बन गई है ॥ २५ ॥
हे कामदेव ! तुम्हारी हतनी कठोरता देखकर ही मझाने तुम्हारे
अक्ष फूजके बना दिए हैं । यदि उन्होंने तुम्हारा धनुष कठोर
तथा बाण जोड़ेके बना दिए होते तब तो अवतक तीनों ओकोंका
बिनाश हो गया होता ॥ २६ ॥ अरे कामदेव ! यदि तुम हमारे
इदयमें रहते ही हो तो उसे इस प्रकार जलाए क्यों डाल रहे
हो ? अरे मूर्ख ! स्वयं अपने ही धनको जला डालनेवाले अग्निके
समान फिर तुम कहाँ जाकर रहोगे ? ॥ २७ ॥

चन्द्रमाके प्रति उक्तिर्याः : हे चन्द्रमा ! यदि तुम उस
सुगनयनाके मुसकी सुन्दरता पाना चाहते हो तो एक बार
फिर समुद्रमें डूबकी जगाओ और अपना कसड़ धो डालो,

नो चेत्त्वं क्व तस्या मुखं क्व ॥ १ ॥ किं रे विधो मृग-
दृशां मुखमद्वितीयं राजीव दृष्यसि दृग्भुजमन्यदेव ।
भङ्गारमावहसि भृङ्गतनुर्न तादृक्कर्माणि धिङ् न पुन-
रीदृशमीक्षणीयम् ॥ २ ॥ चण्डीशचूडाभरण चन्द्र-
लोकतमोपह । विरहिप्राणहरण कदर्यं न मां वृथा
॥ ३ ॥ तारापते कुमुदिनीमनुकूलकान्तां पादेन पाङ्क-
यसि कम्पयसि द्विजातीन् । चिद्वेषमाचरसि किं च
वियोगिलोके नक्तञ्जरस्य भवतः कङ्कला कुतः स्यात्
॥ ४ ॥ द्विजराज इति ध्रान्त्या पादस्पर्शं तव व्यधाम् ।
हतोऽस्मि वत चाण्डालप्रसङ्गादिव सर्वथा ॥ ५ ॥
प्रियविरहमहोष्माभर्मरामकलेखामपि हतक हिमांशो
मा स्पृश क्रीडयापि । हृदि तव लुठन्तः श्लोपपोडां
भजन्ते इरजरठमृणालीकाण्डमुग्धा मयूखाः ॥ ६ ॥
मुग्धस्य ते वद विधुन्तुद किं वदामि किं त्यक्तवानसि
मुखे पतितं शशाङ्कम् । अस्वार्द्रयिम्बगलितेन मुग्धा-

फिर अपने निर्मल रूपमें पारिजातके फूलोंकी गन्ध बसाओ ।
यदि इतना न करोगे तो तुम्हीं बताना कि कहीं उसका छुँद
घौर कहीं तुम ? ॥ १ ॥ अरे चन्द्रमा ! मृगनयनी नवेलियोंका
मुख कुछ निराशा ही होता है । अरे कमल ! वे कमलनयन
कुछ घौर ही होते हैं, अरे भैंरे ! तू गुहार अवरण करता है
पर तेरा शरीर वैसा कहीं है ! धिक्कार है तुम समके फायोंको !
यह सब तो देखना भी नहीं चाहिए ॥ २ ॥ हे शङ्करके मस्तकके
भूषण ! संसारका भँसेरा दूर करनेवाले तथा वियोगियोंके
प्राण इरनेवाले चन्द्रमा ! मुझे स्पर्श ही क्यों सता रहे हो ॥ ३ ॥
हे तारोंके स्वामी चन्द्रमा ! तुम अपने वशमें रहनेवालों प्यारा
कुमुदिनीपर पाद (किरण, पैर) प्रहार करके उसे कट दे रहे हो,
द्विजातियों (पक्षियों, माछियों) को कैपाए डाल रहे हो और
वियोगियोंसे डाह रखते हो । ठीक है, तुम नक्तञ्जर (रात्रिमें
चलनेवाले, राक्षस) ठहरे, तुममें भला क्या कहीं ! ॥ ४ ॥
हे चन्द्रमा ! तुम द्विजराज (माछण) हो इस भोलेमें मैंने
तुम्हारा पाद (पैर, किरण) स्पर्श कर लिया किन्तु वह जो
देसा कटदायी हो गया मानो किसी चायहालसे संयोग हो
गया हो ? ॥ ५ ॥ हे नीच चन्द्रमा ! प्रियतमके विरहरूपी भागके
सापसे सूखे हुए इस शरीरको लेजके पहाने भी न सूना ।
देखते नहीं, इस शरीरमें जोटते हुए अब पके कमल-नालके
दुकड़ोंकी भाँति सुन्दर तुम्हारी किरणें भी झुबसी जा रही हैं
॥ ६ ॥ हे राहु ! तुम बड़े मूर्ख हो । मैं तुमसे क्या कहूँ । मुझमें

रसेन सन्धानमेति नव किं न जरत्कवन्धः ॥ ७ ॥
यत्त्वं हन्त कलङ्कितो मलिनतापात्रं प्रदोषे तथा रक्तः
श्वेडसहोदरः शिवाशिनोषायोऽपि वक्रो विधो । तद्दो-
षाकरनोजितैव भवतो युक्तं च मादृग्वधोयोगिन्यं
वत किन्तु हा द्विजपतिन्यं केवलं दुःमदम् ॥ ८ ॥
सन्तापय चिरं चन्द्र न तत्र प्रतिपिध्यसे । निवारय
करस्पर्शं रामस्याहं परिग्रहः ॥ ९ ॥ सृतिदुग्धस-
मुदतो भगवतः श्रीकान्तुभां सादरी साहाद कुमु-
दाकरेषु किरणाः पीयूषधाराकिरः । स्पर्धां ते वदना-
भ्युज्जैर्मृगदृशां तत्स्थाणुचूडामणे हंहो चन्द्र कथं नु
सिञ्चसि मयि ज्वालामुखी रात्रिपः ॥ १० ॥

रोहिणी प्रत्युक्ति — भो राहिणी त्वमसि रात्रिचरस्य
भार्याधैनशिवारय पति सखि दुर्निवारम् । जालान्त-
रेण मम सन्धानि सन्निविष्टः श्राणानटं स्पृशति किं कुल-
धर्म एषः ॥ १ ॥

आपड़े हुए इस चन्द्रमाको भला तुमने क्यों क्यों दिया ? इसके
गोले शरीरसे टपकते हुए अमृतसे क्या तुम्हारा भद तुमसे न
जुट जाता ? ॥ ७ ॥ हे चन्द्रमा ! तुम जो कलङ्की हो सो ठीक
ही है क्योंकि तुम मलिनताके भण्डार हो । प्रदोष (बड़े-बड़े
दोषों, रात्रिके प्रथम प्रहर) में रक्त (अनुरक्त, लाल) हो वह
भी ठीक है क्योंकि तुम विषके सगे भाई हो । शिवजीने तुम्हें
सिरपर धारण कर लिया फिर भी तुम टेंदे हो । अतः तुम्हारा
दोषाकर (दोषोंका भण्डार, रात्रिका बनानेवाला) होना और
मुख जैसे जोगोंको मारनेका उपाय करना भी ठीक ही है
किन्तु हाय ! केवल यही नहीं सहा जाता कि तुम द्विजपति
(माछण) बने हुए हो ॥ ८ ॥ रामचन्द्रजीके वियागमें साता
चन्द्रमासे कह रहा है ' हे चन्द्र ! तू भली भाँति मुझे तपा
डाल, मैं तुझे शकती नहीं, किन्तु अपने कर (किरण, हाथ)
से मुझे सूना मत, क्योंकि मैं रामका पत्नी हूँ अर्थात्
पतिव्रता हूँ ' ॥ ९ ॥ हे चन्द्रमा ! तुम चौरसागरसे तो
जन्मे हो, लक्ष्मी तथा कौस्तुभमणिके भाई हो, कुमुदीके मित्र
हो, तुम्हारी किरणें अमृतकी धार बरसानेवाली हैं, मृगनयनी
नवेलियोंके मुखकमलसे तुम्हारी बराबरी की जाती है और तुम
शिवजीके मस्तकके भूषण हो फिर कैसे इन धक्कती हुई
किरणोंसे मुझे जलाए डाल रहे हो ? ॥ १० ॥

रोहिणीके प्रति उक्ति : हे सखी रोहिणी ! तुम
रात्रिचर (राक्षस, चन्द्रमा) की पत्नी हो इसलिये अपने

पवनं प्रत्युक्तयः—उन्मीलितमुकुलकरालकुन्दकोशप्र-
च्योतद्घनमकरन्दगन्धवन्धो । ताम्रोषत्प्रचलविलोचनां
नताङ्गीमालिकङ्कपवन मम स्पृशाङ्गमङ्गम् ॥ १ ॥ व्याधूय
यह्मवनमम्बुजलोचनाया वज्रोजयोः कनककुम्भविला-
सभाजोः । आलिङ्गसि प्रसभमङ्गमशेषमस्या घम्यस्त्व-
मेव मलयचलगन्धवाह ॥ २ ॥

मेघं प्रत्युक्तयः—मलयमदतां माता याता विकासि-
तमल्लिका परिमलभरो भग्नो ग्रीष्मस्त्वमुत्सहसे यदि ।
घन घटयितुं तं निःश्रेष्ठं य एव निवर्तने प्रभवति गवां
किं नरिष्वथं स एव घनजयः ॥ १ ॥ भो मेघ गम्भीर-
तरं नद त्वं तव प्रसादात्स्मरणीकितं मे । संस्पर्शरोमा-
ञ्जितजातरागं कदम्बपुष्पत्वमुपेतु गात्रम् ॥ २ ॥
भ्रमय जलदानम्भोगर्भाभ्रमोहय चातकान्कलय
शिक्षिणः केकोत्कण्ठाङ्कठोरय केतकान् । विरहिति

आत्मन्त वीठ पतिको समझा दो कि यह करोकोसे हमारे घरमें
पुसकर हमारे नितम्ब न छूया करे । तुम्हीं बताओ, क्या कैसे
कुलवालोंकी यही करनी होती है ? ॥ १ ॥

पवनके प्रति उक्तियाँ : हे पवन ! किसी हुई
कलियोंसे भरे हुए कुन्दके गुप्तीसे निकलते हुए घने रसकी
सुगन्ध लेकर पहुँचे तनिक चञ्चल नेत्रवाली तथा मुझे
अङ्गवाली उस नखेलीको छूकर फिर हमारे अङ्गोंको छू तो जाओ
॥ १ ॥ हे मलयचलसे आए पवन ! उस कमलनयनी
नखेलीके सोनेके धड़ोंके समान स्तनोंपरसे बस इटाकर तुम
जो उसके सारे शरीरका आच्छिन्न कर रहे हो इसलिये तुम्हीं
धन्य हो ॥ २ ॥

मेघके प्रति उक्तियाँ : हे बादल ! मल्लिकाकी
खिलानेवाले मलय पर्वतके पवन और फूलोंकी गन्धसे भरी
गरमी, ये सब समाप्त हो गए । ऐसे समयमें उस स्नेहहीन
प्रियतमकी मुक्तसे तुम्हीं भिला सकते हो । मैं तुम्हें ही सबसे
बड़ा सहायक मानूँगी क्योंकि विराट नगरमें इरी हुई गौओंको
जो डौटा जावे, वही भर्जुन है । इसमें मेरी हानि क्या होती है
॥ १ ॥ हे बादल ! तुम भरपेट गरजो जिससे कामदेवसे
प्रीति पाया हुआ मेरा शरीर तुम्हारी कृपासे नखेलीके स्पर्शसे
रोमाञ्जित होकर राग (जलार्द्र, अनुराग) से भरकर कदम्बका
फूल बन जाय ॥ २ ॥ हे मेघ ! जलसे भरे हुए अपने
कुटुम्भी बादलोंको चारों ओर घेर लो, चातकोंकी प्रसन्न कर
दो, मोरोंको बोकनेके लिये उकसा दो तथा केवड़ेको खिला

जने मूच्छर्षि लब्ध्वा विनोदयति अथामकदण पुनः
संज्ञाव्याधि विधाय किमोहसे ॥ ३ ॥

अशोकं प्रत्युक्तयः—रक्तस्त्वनवपल्लवैरहमपि श्लाघ्यैः
प्रियाया गुणैस्त्वामायान्ति शिलीमुखा स्मरधनुमुक्ता-
स्तथा मामपि । कान्तापादतलाहतिस्तथ मुदे तद्वन्ध-
माप्यावयोस्सर्वं तुल्यमशोक केवलमहं धात्रा सशोकः
कृतः ॥ १ ॥ रक्ताशोक कृशोदरी क नु गता त्यक्त्वा-
नुरक्तं जगं नो दृष्टेति मुधैव चालयसि किं धातावधूतं
शिरः । उत्कण्ठाघटमानवद्वपदघटासहृददृष्टदृष्टदस्त-
त्पादाहतिमस्तरेण भवतः पुष्पोद्गमोऽयं कृतः ॥ २ ॥

तमालं प्रत्युक्ति—धम्यस्त्वमसि तमाल स्पृष्ट-
स्त्वन्या लतावदनया यत् । अद्य स्थावरजन्मा जात-
स्त्वं जङ्गमावधिकः ॥ १ ॥

मृणालहारं प्रत्युक्तिः—परिधुतस्तःकुचकुम्भम-

को, इसमें मेरी हानि नहीं किन्तु विरही लोग जब मूर्च्छित
होकर अपनी विरह-वेदनाका समय बिता रहे हों ऐसे समयमें
हे निर्दयी ! तुम उन्हें अपनी गर्जनासे जगा-जगाकर उनकी क्या
दशा करना चाहते हो ? ॥ १ ॥

अशोकके प्रति उक्तियाँ : हे अशोक ! तुम नये-नये
पत्तोंसे रक्त (लाल) हो, मैं भी बढ़ाई करने योग्य प्यारीके
गुप्तीमें रक्त (रीका हुआ) हूँ, तुमपर शिलीमुख (भौरे)
मँडरा रहे हैं, मुझपर भी कामदेवके भनुपसे निकले हुए शिलीमुख
(बाबू) बरस रहे हैं, नखेलीके पैरकी चोटसे तुम्हें भी
प्रसन्नता होती है, मुझे भी । अतः, हम तुम सब प्रकारसे
समान हैं । किन्तु भेद इतना ही है कि तुम अशोक
(शोकरहित) हो तथा मुझे मञ्जाने सशोक (शोकरहित)
बना रक्सा है ॥ १ ॥ हे लाल अशोक ! मुझे प्रेममें भरा खोदकर
बढ़ तुम्हें शरीरवाली प्यारी कहाँ चली गई ? वायुके सहारे
अर्थहीन अपना सिर हिला-हिलाकर क्या कह रहे हो कि मैंने नहीं
देखा । यदि वही बात है तो बताओ किना उसकी जात
आए तुममें ये फूल कैसे निकल आए, जिसपर बड़े प्रेमसे मैंने
आ-जाकर मँडरा रहे हैं ? ॥ २ ॥

तमालके प्रति उक्ति : हे तमाल वृक्ष ! तुम धन्य
हो क्योंकि लताके समान उस नखेलीने तुम्हें छू तो
लिखा । आज स्थावर (जड़) होते हुए भी तुम जङ्गम
(चलने फिरनेवाले, चायहाल) से भी बड़ गए ॥ १ ॥

कमलकी डण्डलके द्वारके प्रति उक्ति : हे मृणालके

ध्यात्किं शोभमायासि मृणालहार । न सद्मतन्तोरपि
तावकस्य तत्रावकाशो भवतः किमु स्यात् ॥ १ ॥

मधुकरं प्रत्युक्तयः—उन्मूलजयनान्तकान्तिलहरीनि-
ष्पीतयोः केवलादामोदादधधारणीयवपुषोः कान्तासखे
॥ छलम् । यत्कर्णोन्पलयोः स्थितेन भवता किञ्चित्स-
मुद्गुञ्जितं भ्रातस्तिष्ठति कुत्र तत्कथम मे कान्तं
प्रियाया मुखम् ॥ १ ॥ चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि यदृशो
वेषधुमतीं रहस्याख्यायीव स्थनासि मृदु कर्णाम्बिक-
खरः । कर्णं व्याधुन्यस्याः पियसि रतिसर्वस्वमधरं
वयं तस्यान्वेषान्मधुकर हतास्त्वं खलु कृती ॥ २ ॥
भ्रातस्तिरेकं भवता भ्रमता समस्ताम्नाधिका प्रिय-
तमा मम वीक्षिता किम् । प्रुवे किमोमिति सखे कथ-
याशु तस्मै किं किं व्यधस्यसि कुतोऽस्ति न कीदृशीयम्
॥ ३ ॥ यवन्मिश्रं न सरोजं नयने नेन्द्रीवरं ह्येते । इह
सन्निधे मुग्धदृशो मधुकर न मुघा परिधाम्य ॥ ४ ॥

हार । उस नवेलीके स्तनोंके बीचसे गिरकर सूखे क्यों जा रहे हो ?
तुम्हारे पतले-पतले रेशोंके लिये भी वहाँ स्थान नहीं मिल
सकता, तुम्हारी तो बात ही क्या है ! ॥ १ ॥

भैंरेके प्रति उक्तिर्याः तिरछी चितवन चलाते हुए,
नयनोंकी काली कान्तिकी तरङ्गोंसे ढके हुए, सुगन्धिमात्रसे
निवासस्थानका निश्चय करानेवाले, उस नवेलीके कानोंपर
पड़ने हुए कमलोंपर घसनेवाले तथा उस प्यारीका साथ
न छोड़नेवाले हे भैंरे ! तुम्हारे गुणगुनानेसे जान पड़ता
है कि तुम उसका समाचार जानते हो । अतः हे भाई ! तनिक
बताओ तो सही कि मेरी प्यारीका सुन्दर मुखका कहीं है ॥ १ ॥
हे भैंरे ! तुम सचमुच बड़े भाग्यवान् हो, क्योंकि इस
चञ्चल तथा कँपाती हुई चितवनवाली नवेलीको बार-बार
छूते जा रहे हो, उसके कानोंके पास जाकर धीरे-धीरे ऐसे
गुनगुना रहे हो भागो उसे कोई बड़ी भेद-भरी बात
सुनाना चाहते हो और बार-बार उसके हावोंके थपेड़े
लाकर भी तुम उसके रसीले अधर पीते जा रहे हो । हम
तो तबकी खोज करते रह गए अर्थात् न हमें तब-बोध ही
हुआ और न सुन्दरी नवेलीका उपभोग ही मिल
पाया ॥ २ ॥ हे भाई भैंरे ! चारों ओर घूमते समय
आपने कहीं मेरी प्राग्प्यारीको देखा है ? क्या आप गुन-
गुनाकर 'हाँ' कह रहे हैं ? तो मित्र ! मुझे शीघ्र बताइए
कि वह कहीं है, क्या कर रही है और कैसे है ? ॥ ३ ॥

हंसं प्रत्युक्ति—हंस प्रयच्छ मे कान्तां गतिरस्या-
स्त्वया हुता । विभावितैकदेशेन देयं यद्भिषु-
ज्यते ॥ १ ॥

चकोरं प्रत्युक्तिः—चुलुकयासि चन्द्रदीधितिमविरल-
मशनासि नूनमहारात् । अधिकरणमुष्णमनयोः
किमिह चकोरावधान्यासि ॥ १ ॥

कृष्णवारे प्रत्युक्तिः—स्नेहं स्वीकुह कृष्णसारं कथय
यवागान्मम प्रेयसी नो जानासि यदाययोः समजनि
व्यापारतो मित्रता । स्फीते यन्किल मण्डले हिमरुचे-
जातं स्वया लाञ्छनं भव्ये भास्करमण्डले तदधुना
वृत्तः कलङ्को मया ॥ १ ॥

सारङ्गं प्रत्युक्तिः—रे सारङ्गा वनवसतयस्तत्स्थमा-
ख्यात यूयं कुत्राघोतं त्रिभुवनमनोहारि चाञ्चल्य-
मण्डलोः । आं जानीमो गमनसमये हन्त कान्तारसीम-
न्येकाकिन्याः कुचलयदृशो लुण्ठिता यौवनध्रीः ॥ १ ॥

हे भैंरे ! वह नवेलीका मुँह है, कमल नहीं और वे नेत्र
हैं, नीले कमल नहीं हैं अतः इस सुनपनोंके पास-पास
क्यों व्यर्थ चक्कर लगाए जा रहे हो ! ॥ १ ॥

हंसके प्रति उक्ति : हे हंस ! तुम्हारी चालसे स्पष्ट है कि
तुमने उस नवेलीकी चाल पुराई है, इससे जान पड़ता है कि
उसे भी तुम्हींने पुराया होगा । उसकी छोरीका अपराध तुम्हींपर
लगाया गया है इसलिये मुझे मेरी प्यारी कौदा दो ॥ १ ॥

चकोरके प्रति उक्ति : हे चकोर ! तुम अज्ञारे भी
सा जाते हो और चण्डमाका किरणें भी पी जाते हो तो
क्या तुमने यही समझ लिया है कि दोनोंके आभार उभय
हैं ॥ १ ॥

काले हरिकृके प्रति उक्ति : सीताके बिड़ोहसे दुखी
सूर्यवंशी रामचन्द्र कहते हैं—'हे काले मृग ! तुम मेरा प्रेम
स्वीकार करके यह बताओ कि मेरी प्यारी कहीं गई ? तुम
यह नहीं जानते कि मेरे-तुम्हारे व्यवहार एक-से हैं अतः हम
दोनों मित्र हैं । विराजल चन्द्रमण्डलमें तुमने कलङ्क लगाया
और निर्मल सूर्यमण्डल (सूर्यवंश) में मैंने' ॥ १ ॥

मृगके प्रति उक्ति : वनमें रहनेवाले हे हरिण ! सब
कहो कि तीनों लोकोंके मन हरनेवाली यह मेघोंकी
चञ्चलता तुमने कहीं पाई ? हाँ, जब समझमें आया कि
जब वह कमलनयनी जङ्गलमें अकेली भटक रही थी तभी
तुम लोगोंने उसके यौवनकी सुन्दरता लूटी होगी ॥ १ ॥

मयुरप्रिययकोक्तिः—मृदुपवनविभिन्नो मत्प्रियाया
चिनाशाद्यनरुचिरकलापो निःसपत्नोऽद्य जातः । रति-
विगलितबन्धे केशपाशे सुकेश्याः सति कुसुमसनाथे
किं हरेदेव बहः ॥ १ ॥

मुक्ताकलापं प्रत्युक्तिः—सूचीमुखेन सकृदेव कृतप्र-
णम्भं मुक्ताकलापं लुठसि स्तनयोः प्रियायाः । बालैः
स्मरस्य शतशो विभिक्षसमर्मा स्वप्नेऽपि तां कथमहं न
विलोकयामि ॥ १ ॥

अभिसारिकामञ्चारकथनम्—अग्रे धनुश्शरकरः स्वय-
मस्ति कामः पश्चात्स्वरा शशधरोदयसंशयोन्धा ।
ध्वान्तं दिनान्तविकसद्भिर्भवं समन्तार्किकं केवला
पथि बधूर्दयिताभिसारे ॥ १ ॥ अधियामिनि गजगा-
मिनि कामिनि सांदामिनीय यं मजसि । जलदेनेव न
जाने कति कति सुकृतानि तेन विहितानि ॥ २ ॥
अभिसारणरसः कृशाङ्गयष्टेरयमपरमं न वीक्षितः

मोरके विषयमें उक्ति : आज प्यारीके न रहनेपर
धीमे पवनमे हिलते हुए मोरके घने सुन्दर बालों (पूँछ)
का कोई घेरी नहीं रह गया, पहले रतिके समय जब उस
सुन्दर केशबालोंके बाज लुलकार बिखर जाते थे और
उनमें फूट साँस दिए जाते थे उस समय यह मोर
कितने भाता था ? ॥ १ ॥

मोतीकी मालाके प्रति उक्ति : अरे मोती ! तुमकी
सूईसे जो तुम एक धार बंधे गए थे उसकी पीड़ा शान्त
करनेके लिये तो तुम प्यारीके स्तनोंपर लोटते रहते हो, भला
बताओ कि कामदेवके बाणोंसे सिकड़ों बार बेधा हुआ मैं
स्वप्नमें भी प्यारीको कैसे न देखूँ ? ॥ १ ॥

प्रियतमसे गुपचुप मिलनेका चर्यन : जाने तो
हाथमें धनुष-बाण लेकर स्वयं कामदेव लड़ा हुआ है, पीछेसे
शीघ्र ही चन्द्रमाके उदय हो जानेकी शङ्काके कारण उतावली
मची हुई है और दिमका अन्त हो जानेसे चारों ओर घने
अन्धकारका सा आश्रय है । ऐसे समय यह क्या कोई नहीं कह
है जो प्रियतमसे मिलने जा रही है ? ॥ १ ॥ हे हाथोंके समान
चाखवाली कामिनी ! रातमें बिजलीके समान चमकती हुई
तुम जिस बादलके समान प्यारेके पास जा रही हो,
उसेमे पिछले जन्ममें न जाने क्या-क्या पुण्य कर्म किए
होंगे ॥ २ ॥ इस दुबले अङ्गोंवाली नवेलीका पतिले गुपचुप
मिलनेमें जैसा चाव है वैसा न तो कहीं देखा गया, न

श्रुतो वा । अहिमपि यदियं निरासनाङ्घ्रेर्निविष्टि-
तनूपुरमात्मनीनयुद्धा ॥ ३ ॥ उत्तंसः केकिपिच्छैर्मर-
कतवल्लयैश्शमामले दोःप्रकारेण हारः सान्द्रेन्द्रनीलै-
र्भृङ्गमदरक्षितो वक्रपत्रपञ्चः । नोलाभ्यैः शेखरश्रीर-
सितवसनता चेत्यभीकाभिसारे सम्प्रत्येक्षणां
तिमिरभरसखी वर्तते वेषलीला ॥ ४ ॥ क्व प्रस्थितासि
करभोरु घने निशोघे प्राणाधिपो वसति यत्र मनःप्रियो
मे । एकाकिनी यद् कथं न विभेषि बाले नन्वस्ति
पुङ्खितशरो मदनः सहायः ॥ ५ ॥ गर्जं वा वर्षं वा मेघ
मुञ्च वा शतशोऽशनिम् । न शक्या हि स्त्रियो रोद्धुं
प्रस्थिता दयितं प्रति ॥ ६ ॥ चन्द्रोदये चन्द्रमङ्गकेषु
विहस्य विम्वस्य विनिर्गतायाः । मनो निहन्तुं मद्-
नोऽपि बाणाङ्करेण कान्दाम्बिभराम्बभूव ॥ ७ ॥
अनो दुर्धम्भयोऽयं कुलममसितं वर्यं विधमं पतिरि-
हान्नेषो प्रणयिचक्ष्णं दुष्परिहरम् । अतः काचित्स्थी

सुना ही गया क्योंकि नूपुरमें छिपटे हुए साँवको भी इसने
चपना नूपुर ही समझकर पैरसे भटक दिया ॥ ३ ॥
प्रियतमसे गुपचुप मिलनेको चली हुई मृगमयनी नवेलियोंके
मोरपङ्कके कुचकल, मरकत मणि जैसे कङ्कणोंमें साँवली भुजाएँ,
इन्द्रनील मशिका हार, सुँदर कस्तूरीकी चिचकारी, नीले
पंखोंसे सजा मुकुट तथा काली ओती यह सब उनका वेष
मानो चौधेरी सखी बन रहा है ॥ ४ ॥ हे हाथोंकी सूईके
समान उलुची चौधवाली ! इस चौधेरी आधी रातमें तुम कहाँ
चली ? नवेली : जहाँ हमारे प्रिय प्राणनाथ रहने हैं । सखी !
हे बाले ! कहे तो, तुम अकेली डरती नहीं ? नवेली : धनुषपर
बाण चढ़ाए हुए कामदेव हमारे साथ ही हैं, फिर डर
कैसा ? ॥ ५ ॥ हे बादल ! तुम चाहे गरजो चाहे बरसो चाहे
सिकड़ों बज्र जोड़ो किन्तु अपने प्रियतमसे मिलनेको चली हुई
नवेलियोंको कोई नहीं रोक सकता ॥ ६ ॥ चन्द्रमाका उदय
होनेपर अभिसारिका जब हँसकर अपने शरीरमें चन्द्रम पोंतकर
निकली उस समय कामदेवने भी उसका मन बेधनेके लिये
अपने हाथोंमें लिखे हुए कुन्दके फूल-रूपी बाण धारण कर
लिए ॥ ७ ॥ गुपचुप अपने प्रेमीसे रति करनेके लिये सज्जत
किए हुए स्थानपर जानेके लिये कोई पतले चमकवाली नवेली
चली तो सही, किन्तु यही सोच-सोचकर वह बार-बार
घरसे निकलती और घुस जाती थी कि घरके लोगोंको
चकमा देकर निकल जाना देवी खीर है, मार्ग बड़ा कठिन,

रतिविहितसङ्केतगन्धे गृहाद्वारं धारं निरसग्दध
प्रविशद्दध ॥ १० ॥ जलधर निर्लज्जस्त्वं यन्मां दयितव्य
वेश्म गच्छन्तीम् । स्नानितेन भीषयित्वा धाराहर्म्यः
पराभृशसि ॥ ११ ॥ जाताः प्रासादपालीकनकवलभिका-
न्यस्तमाणिपयदीपच्छायाविचञ्चदतुच्छीकृतयिरलतमा
ये निशीथान्धकाराः । तेऽमी स्फारीक्रियन्ते प्रतिवि-
शिलमिनः कास्तसङ्केतधापहामभ्रमुक्तनेत्रोत्पलनरल-
तरसारकामेक्षकिन्ना ॥ १२ ॥ तमः शान्तं शाभ्यग्वय-
मुदित पवेन्दुरुदियान्मया गम्यं तत्र प्रियससि स
यत्र प्रियतमः । गृहप्राप्तोत्सङ्गे शनमिव युगानां वन-
महो निशा चेदेवं स्यादयि कथय को मृत्युरपरः
॥ १३ ॥ न जल्प दशनन्विषा भयति ते तमिच्छति-
स्तरङ्गय इगञ्जलं भवतु तेन गाढं तमः । अपोह ससि
साध्यसं पथि जहाहि भिक्षोऽस्ते स्मरं समर्द्धसन्धुरं
समधिकृष्ट निर्गच्छसि ॥ १४ ॥ नयस्व पारं पुलिनद्व-
यानुगां तरङ्गदोलामधिरप्य मामिनः । प्रसीद यावद्य

निशा प्रदीर्यते यशांसि ते गायतु शम्भुलाजतः ॥ १५ ॥
प्राणेशमभिसरन्तो पथि स्खलन्तो मुपिच्छिले मुख्या ।
अवलम्बनाय वारां धारासु करं प्रसारयन्ति ॥ १६ ॥
मन्दं तिष्ठेहि चरणां पथिष्ठेहि चासां नीलं पथिष्ठेहि
चलयावन्मिञ्जलेन । मा जल्प सादृशानि शारदचन्द्र-
कान्तदन्तांशयस्तव तमांसि समापयन्ति ॥ १७ ॥
मलयजसधिलितननयो नवहाग्नताविभूषिताः सित-
तरदन्तपञ्चकृतचक्रकलां रुचिराभलांशुकाः । शशभृति
धिनतधाम्नि धयलयनि चरामविभाव्यतां गताः प्रिय-
वसन्ति प्रयान्ति सुखमेव निरन्तरमभिशोऽभिसारिकाः
॥ १८ ॥ मल्लिकाञ्चनधाम्निभाशशाकचन्दनचरिताः ।
अविभाज्याः सुखं यान्ति चन्द्रिकान्यभिसारिकाः
॥ १९ ॥ मल्लिकामाल्यभारिण्याः सर्वाङ्गोणाद्र्यन्दनाः ।
सामयन्त्यो न लक्ष्यन्ते श्यान्कायामभिसारिका ॥ २० ॥
मुक्तं मोक्तककाम हेमवलयध्रुवी समुत्सारिता दासां
नीलमुरीकृतं नियमितो मञ्जीरकोलाहलः । गच्छन्त्या-

देवा-मेवा और कौशले भरा है, पति सदा 'मान-मेख
निकला करते हैं और धारेकी बात भी छोड़ी नहीं जाती'
॥ ८ ॥ ॥ बाहल ! तुम कहे ही निर्लज्ज हो क्योंकि प्रियतमके
घर जाती हुई मुझे अपने गर्जनसे बरा-बराकर जलधारारूपी
हाथसे छू रहे हो ॥ ९ ॥ घरके छतपर धनी हुई सोनेकी कौठरीमें
रखे हुए मल्लिकी दीपकोंका फैलती हुई चमकसे आधी रातके
समय जो जँधेरा हलका-सा जान पड़ रहा था वही इस समय
एनिले मिलनेके लिये गली-गलीमें दौड़ती हुई नवेलियोंकी
छाँकोंकी काली पुतलियोंकी चमकसे गहरा होता जा रहा है
॥ १० ॥ जँधेरा मिट रहा हो तो मिटे, चन्द्रमा निकल आया हो
तो निकल आये किन्तु हे प्यारी सखी ! मैं तो बहाँ अवरण जाऊँगी
जहाँ प्यारे बैठे हैं क्योंकि घररूपी चदियालकी गोदमें बैठे-बैठे
यह रात सैकड़ों युगोंके समान लम्बी बीत रही है । यदि ऐसा
ही होता रहा तो कहे, मृत्यु नामकी वूसरी क्या वस्तु है ?
अर्थात् इस प्रकार तो मृत्युसे भी अधिक कष्ट हो रहा है ॥ ११ ॥
॥ सखी ! बोलो मत, क्योंकि तुम्हारे दाँतोंकी चमकसे जँधेरा
हट रहा है, तनिक अपनी काली पुतलीको मटका दो तो
इससे जँधेरा घना हो जाय और जँधे-नीचे मार्गमें गिरनेका
भय यहाँ छोड़ दो क्योंकि तुम तो कामदेवरूपी मतवाले
हाथीपर बैठकर चले रही हो न ॥ १२ ॥ हे भाई ! प्रसन्न हो जा,
रात बीतनेसे पहले ही मुझे इस सहररूपी कोठेपर बैठकर

उस पार पहुँचा दे, अभिसारियों नवेलियों तैरा बहुत गुण
गाँवगी ॥ १३ ॥ अपने प्राणनाथके पास जानी हुई भोली-भाली
अभिसारिका किसलन-भरे मार्गमें जय किसलकर गिरने लगी सो
सहारा पानेके लिये गिरती हुई जलकी धाराकी शोर हाथ पदा
रही है ॥ १४ ॥ हे साहस करनेवाली ! धीरे-धीरे पैर रगड़ो, नीले
रङ्गकी साड़ी पहन लो, चोचलसे चूड़ियों टकलाने तथा घोलो मत,
क्योंकि शरद ऋतुके चन्द्रमाकी भाँति सुन्दर तुम्हारे दाँतोंकी
किरणें अन्धकारको मिटाए उल्लस रही हैं ॥ १५ ॥ जब चन्द्रमा
अपनी चाँदनी घिरेकर सारे भूमण्डलको उजला किए दे
रहा था उस समय अपनी देहमें चन्द्रनका लेप किए, मोनोंके
हारोंसे शरीर सजाए, कपोलोंपर हाथोंदाँतके घने कनफूल
लटकए तथा उजली साड़ियों पहने हुए अभिसारिकाएँ
किसीको न दिखाई देनेके कारण सुखसे अपने-अपने प्रियतमोंके
घर चली जा रही हैं ॥ १६ ॥ अपने शरीरमें चन्द्रनका लेप
किए हुए अभिसारिकाएँ कालोंको बेलेके फूलोंसे सजाकर
चाँदनी रातोंमें भी किसीको न दिखाई देती हुई खेखटे चली
जा रही हैं ॥ १७ ॥ बेलेकी मात्ता पहने हुए, सारे शरीरमें
चन्द्रनका लेप किए हुए तथा उजले रेशमी वस्त्र पहने हुए
अभिसारिकाएँ चाँदनीमें भी दिखाई नहीं पड़ती ॥ १८ ॥ हे
दुबले शरीरवाली ! तुमने मोलीकां मात्ता उतार द्या, साँजेके
कहे हाथसे निकाल दिए, नीली साड़ी पहन ली तथा

स्तथ साहसं न सहते तन्वक्त्रि सङ्कोपनं धम्मिल्लच्छृ-
तमल्लिकापरिमलप्रौढो निशीथानिलः ॥ १६ ॥ मूढे
निरन्तरपयोधरथा मयैव कान्तः सहाभिरमते यदि
किं तवात्र । मां गजितैरिति मुहुयिनिवारयन्ती मार्गं
कणश्चि कुपितेव निशा सपत्नी ॥ २० ॥ भूर्तिनीलदुष्क-
लिनी मृगमदैः प्रत्यङ्गपत्रक्रिया बाहू मंचकरत्नकङ्कु-
भृतां कण्ठेऽम्बुसाराधली । व्यालम्बालकमञ्जरीकम-
लिकं कान्ताभिसारासवे यत्सत्यं तमसा मृगासि
यिहितं वेपे तवाचार्यकम् ॥ २१ ॥ मेघा वर्षन्तु गर्जन्तु
मुञ्चन्थशनिमेव वा । गणयन्ति न शीतोष्णं रमणाभि-
मुखाः स्त्रियः ॥ २२ ॥ यदि गर्जति वारिधरो गर्जन्तु
तथापि निपटुराः पुरुषाः । अयि विद्युःप्रमदानां त्वमापि
च दुःखं न जानासि ॥ २३ ॥ यद्बद्धव्याहेतामृपा
वदसि शक्र गातमांऽस्मीति । तद्वन्ममापि दुःखं निर-
येत्य निवार्यतां जलदः ॥ २४ ॥ रभसादभिसर्तुमुच-

तानां धनितानां सखि वारिदो विवस्वान् । रजनी
दिवसोऽन्धकारमखिविपिनं वेश्म विमार्ग एव मार्गः
॥ २५ ॥ वातोद्धृतमुखी प्रनष्टतिलका सोयाद्र्लीनां-
शुका मेघानां निनदेन भीतहृदया गत्वा प्रियस्याल-
यम् । द्वारं नेच्छति सज्जया प्रलपितुं देहीति वर्षाहता
पार्श्वी नूपुरकदम्बप्रतिहता संशययन्ती स्थिता ॥ २६ ॥
सञ्चरन्ति मृगनाभिचर्चिता मेघकाभ्यरुक्तावगु-
हदनाः । प्राणनाथमभिसर्तुमुच्यताः सुभ्रुवस्तिमिरदेवता
इव ॥ २७ ॥ स्फुरदुरसिजभारभङ्गुराङ्गी किसलयकोम-
लकाभितना पदेन । अथ कथय कथं सहेत गन्तुं यदि
न निशासु मनोरथो रथः स्यात् ॥ २८ ॥ इदमे दयि-
तेन हृते वपुषि सवेपथुनि पथि निरालम्बे । अयि
कथय कथमनङ्ग प्रियशृङ्गमभिसारिकां नयसि ॥ २९ ॥

नायकागमनावस्थावर्णनम् - अभ्युन्नतस्तनयुगा तर-
सायताङ्गी द्वारि स्थिता तदुपयानमहोत्सवाय ।

पापलोंकी हम-भुन भी बन्द कर दी, इस प्रकार साहस करके
प्रियसे मिलनेके लिये मुझ जा तो रही हो किन्तु तुम्हारे बाकोंसे
गिरे हुए येलेके फूलोंकी प्रबल गन्धमें बसा हुआ यह आर्था
रातका पवन तुम्हारा सारा भेद खोले दे रहा है ॥ १६ ॥ 'हे
मूर्ख ! मुझ उमड़े हुए बादलवाली (उठे स्तनवाली) से ही
यदि यह नायक सम्भोग करता है तो इससे तुम्हें क्या ?'
ऐसी गर्जनासे मुझे बार-बार रोक्ता हुई कोपित सौतेके समान
यह रात मेरा मार्ग रोक रही है ॥ २० ॥ तुमने सारी देहमें
काफ़ी बन्धन पहन लिया है, भङ्ग-भङ्गपर कस्तूरीसे शिग्रकारी
कर ली है, हाथमें सौंठके रङ्गके रत्न-जड़े पहन लिए
हैं, गलेमें नीलमर्का माला धारण कर ली है तथा अत्यधिक
लम्बे यालोंमें मञ्जरियों खोस ली हैं । इस प्रकार हे मृगनयनो !
प्रियतमसे गुपचुप मिलनेकी तुम्हारी इस वेप-रचनाका कत्ता-धत्ता
अन्धकार ही है, यह बात सत्य जान पड़ती है ॥ २१ ॥ बादल
चाहे गरजें, बरसें या बरझ गिरावें, किन्तु जब नवेखियों अपने
प्रियतमसे मिलनेको कमर कस लेती हैं तब वे सर्दी-गर्मी
कुछ नहीं समझती ॥ २२ ॥ यदि बादल गरजते हैं तो ठीक है,
क्योंकि पुरुष तो निपटुर होते ही हैं किन्तु धरी बिजली ! क्या
नू भी स्त्रियोंका दुःख नहीं समझती ? ॥ २३ ॥ हे इन्द्र ! जैसे
अद्विष्टासे मिलनेके लिये तुमने गूठ ही कद दिया या कि 'मैं
ही तुम्हारा पति गौतम हूँ' उसी प्रकार मेरे दुःख देखकर
भी बादलोंकी बरसने-गरजनेसे रोक दीजिए ॥ २४ ॥ हे सखी !

शामनासे पतिके पास जानेको तत्पर नवेखियोंके लिये मेघ ही
सूर्य है, रात ही दिन है, अन्धकार ही प्रकाश है, जङ्गल ही
घर है तथा जहाँ मार्ग न हो वही मार्ग भी है ॥ २५ ॥
बरसती पवनसे तिलक मिट जानेके कारण क्लेश हुईवाली,
जलसे भीगे वस्त्रोंवाली तथा बादलोंकी गदगदाहटसे डरे हुए
हृदयवाली नवेखी जब प्रियतमके घर पहुँची तो लज्जेके कारण
यह जो न बोली कि 'द्वार खोलिए' बरन् बरसते हुए पानीमें
ही खड़ी-खड़ी कीचड़से भरे पापलोंवाले पैर पटक-पटककर
छाइट लगी ॥ २६ ॥ अँधेरी रातमें शरीरमें कस्तूरीका
लेप लगाकर तथा काले वस्त्रोंसे शरीर ढककर प्राणनाथके
पास जाती हुई सुन्दर भीड़ोंवाली नवेखियाँ अन्धकारकी
देवता-सी जान पड़ती हैं ॥ २७ ॥ बड़े-बड़े स्तनोंके बोझसे
रकी हुई तथा नये पत्तोंके समान कोमल पैरोंवाली उस
नवेखीके पास यदि प्रियतमसे मिलनेकी उत्कट इच्छाका
रथ न होता तो मला यह कैसे चढ़ पाती ! ॥ २८ ॥
हे कामदेव ! जिस नवेखीका हृदय प्रियतमने चुरा लिया है
और जिसकी देह काँप रही है, उस प्रियतमसे गुपचुप
मिलनेवाली नवेखीको तुम सुनसान मार्गसे कैसे लिए चले जा
रहे हो ? ॥ २९ ॥

प्रियतमके आनेके समयका वर्णन : बड़े-बड़े स्निग्ध
मेजोंवाली तथा ऊँचे-ऊँचे दोनों स्तनोंवाली नवेखी पतिके
स्वागतरूपी उत्सवके लिये द्वारपर खड़ी होकर बिना परित्रमके ही

सा पूर्णकुम्भनवनीरजतोरणकसम्भारमङ्गलमयस्रकृतं विधत्ते ॥ १ ॥ आगच्छन्सूचिनी येन येनानीनो गृहं प्रति । प्रथमं सखि कः पूज्यः किं काकः किं कमेलकः ॥ २ ॥ आयतो दयितस्तवेति सहसा न ग्रहये भाषितं सद्यः सम्मुखतां गतेऽपि सुमुषी भ्रान्तिं निज्जां मन्यते । कण्ठाश्लेषिभुजेऽपि शून्यहृदया स्वप्नान्तरं शङ्कते प्रत्यावृत्तिमयं प्रियस्य कियमा प्रयेतु शानोदरी ॥ ३ ॥ द्वारोपान्तनिरन्तरे मयि तथा सौन्दर्यसारश्रिया प्रोक्षास्योरुयुगं पङ्कपरसमासक्तं समासादिनम् । आनीतं पुरतः शिरोशुकमधः क्षिते खले लोचने वाचस्तथा निश्चारितं प्रसरणं सङ्कोचिते दोलने ॥ ४ ॥ श्रुत्वायान्तं बहिः कान्तमसमासविभूषया । भालेऽङ्गनं दशोर्लाक्षा कपोले तिलकः कृतः ॥ ५ ॥ सज्जितसकल शरीरा क्षणे क्षणे मनसि किमपि गलयन्ती । उन्सवमिष तं दिवसं मनुते मुग्धा प्रियागमने ॥ ६ ॥

नायकागमने नायिका प्रति समीक्षणम्—अपाङ्गसं-सर्गि तरङ्गितं दशोर्ध्वोररात्तान्तविकासि वेहलनम् ।

मङ्गल-कलश, नये कमलकी बन्दनवार और कमलके फूलोंकी मालाकी शोभा बढ़ाए दे रही है ॥ १ ॥ हे सखी ! जिस कीपने पतिके आनेकी सूचना दी वह पहले पूजाके योग्य है; या कैर जो उन्हें घर ले आया ? ॥ २ ॥ 'तुम्हारा पति आ गया' यह सुनकर भी वह सुन्दर मुलवाली नवेली एकाएक विरवास नहीं कर रही है, पतिके सामने आनेपर भी उसे भ्रम ही समझ रही है, गलेमें आलिङ्गनके लिये हाथ पड़नेपर भी वह शून्य हृदयवाली उसे नया सपना ही समझ रही है । बताइए वह पतनी कमरवाली नवेली प्रियतमके आनेकी वानपर भरोसा करे तो कैसे करे ? ॥ ३ ॥ जैसे ही मैं द्वारके पास पहुँचा वेसे ही सुन्दरनाकी सार-जैसी वह सुन्दरी भी आगसमें सटी हुई और खिली हुई अपनी जँधें हिलानी वहीं आ गई । उसने घूँघट काढ़ लिया, चञ्चल नेत्र नीचे कर लिए, बायीं रोक ली और अपने जता जैसे कोमल हाथ भी सिकोंद लिए ॥ ४ ॥ कोई नवेली अपना शङ्कर अभी पूरा न कर पाई थी कि उसने सुना बाहर प्रियतम आ गए हैं वस उसे पेसी इष्टवदी पड़ी कि उसने माथेपर अँगूठन, नेत्रोंमें महावर तथा गालपर तिजक लगा बाळा ॥ ५ ॥ सज्जधरकर बैठो हुई तथा मनमें कुछ सोचती-बिचारती हुई कोई भोजी-भाखी नवेली प्रियतमके आनेके दिनको उत्सवके समान मान रही है ॥ ६ ॥

विस्तारि रोमाञ्चितकञ्चुकंतनोस्तनोनि योऽसौ सुभगे तवागतः ॥ १ ॥ आयातं सखि दयितं चिराम्प्रया सान्त्वामाङ्गं नय विग्नहानलेन तप्तम् । सद्योऽमुं निज-सृदुलाङ्गसङ्गदानान्सन्तृप्तिं नय भव सम्मुखां किमे यम् ॥ २ ॥ कलय वलयं धम्मिल्लेऽग्निमग्निवेशय मल्लिकां रचय सितयं मुक्ताहारं विभूषय सन्वरम् । मृगमदमपीपत्रालेपं कुरुध कपोलयोः सहचरि समा-यानः प्रातः स न हृदयप्रियः ॥ ३ ॥ धेयेमाधाय लज्जां च व्यपनीय धिलासिनम् । सम्भावयसि किं ननं दिष्ट्या स्वयमुपस्थितम् ॥ ४ ॥ नित्यं मनोरथ-स्यापि सखि दुर्गम एव यः । अमयत्साभ्यस्तं कामं प्रत्यक्षेण विभानि सः ॥ ५ ॥

नायकातिशयवर्णनम्—अभूभिः पाद्यमाफलप्य प्रणीय हृदयासनम् । उपेतं दयितं कान्ता परिप्वङ्गमुपानयन् ॥ १ ॥ आयाते दयितं मरुस्थलभुवामुन्मेषन दुर्लङ्घयतां गेहिन्या परितोपवाप्यफलामासज्य दृष्टिं मुखं । इत्था पीलुशमीकरीरकवलं खलाञ्जलेनादरादुभृष्टं

प्रियतमके आनेपर नवेलीसे सखीकी धातें : हे सुन्दरी ! काननक फँला हुई तुम्हारी आँखोंका झलकानेवाला, दूरनक फँली हुई आँहोंकी विकसित करनेवाला और तुम्हारे शरीरके रोमाञ्चने युक्त चोंलियोंकी फँलानेवाला तुम्हारा प्रियतम आ गया है ॥ १ ॥ हे सखी ! बहुत दिनोंपर परदेसमें लौटे हुए अपने उस प्रियतमके पास जाकर तत्काल अपने कामल आङ्गोंका स्पर्श कराकर उसकी तपन मिटाओ जो तुम्हारे विवोग-कपी अग्निले तपकर दुबला हो गया है । क्यों, कीक है न ? ॥ २ ॥ हे सखी ! हाथोंमें कलन पहन लो, नूदेंमें बेलेके फूल गूँथ लो, अपने वस्त्र सँभालकर पहन लो, मोतीका हार झटपट गलेमें डाल लो और कस्तूरीके घोलसे गालोंपर चित्रकारी कर लो क्योंकि तुम्हारे हृदयका प्रियतम आज प्रातःकाल आ गया है ॥ ३ ॥ थरां ! धीरज धरकर तथा खाज छोड़कर अपने प्रियतमका सरकार क्यों नहीं करती जो भाग्यवश स्वयं ही यहाँ खला आया है ? ॥ ४ ॥ हे सखी ! सदा मनते रहनेपर भी जिसका आना कठिन था वह इस समय आँखोंके आगे आ पहुँचा है ॥ ५ ॥

प्रियतमके स्वागत-सत्कारका वर्णन : प्रियतमके आनेपर सुन्दरीने अपने आँखोंसे उनके पैर धोए, उन्हें हृदयासनपर बैठाया और तत्परचाह उन्हें गले लगाया ॥ १ ॥ पतिके आनेपर मरुस्थलकी कठिनाइयाँ सोचकर पड़ने लो

करभस्य केसरसटाभाराभ्रलसं रजः ॥ २ ॥ किञ्चित्कम्पितपाणिकदृग्गवैः पृष्टं ननु स्वागतं व्रीडानम्रमुखा-
ब्जया चरणोर्न्यस्ते च नेत्रोत्पले । द्वाग्स्थस्तनयुग्मम-
ङ्गलघटे दत्तः प्रवेशो हृदि स्वामिन्कि भवनोऽनियेः
समुचितं सख्यानयानुष्ठितम् ॥ ३ ॥ दोषा वन्दनमा-
लिका विरचिता दृष्ट्यैव नेन्नीघरेः पुष्पाणां प्रकरः
स्मितेन रञ्जितो नो कुन्दजात्यादिभिः । दत्तः स्वेद-
मुचा पयोधरभरेशाच्यां न कुम्भाम्भसा स्वैरेवावयवैः
प्रियस्य विशतस्तन्या कृतं मङ्गलम् ॥ ४ ॥ वाला
धन्दनमालिकाकिसलयग्रन्थीनधः कुर्वतः श्रुत्वा यज्ञ-
भवाहमस्य रटितं दासेरकस्याङ्गने । आक्रन्दान्सुहृदो
घनाद्गुरुजनं नासाप्रसङ्गादसन्काम्तं स्वीयधपातका-
स्मरमसन्कोतैः परायतयत् ॥ ५ ॥

नायकां प्रातः नायकस्य प्रश्नः—अङ्गनामलितानध

गृहिणीने उसके सुखपर भाँसुस भरी सन्तानपकी रटि वाली
फिर ऊँटकी पालू, शर्मा और करीलकी पलियोंका चारा
हालकर वह अपने चञ्चल भाँचलके छोरसे ऊँटके गलकेशोंपर
झाई हुई पूल भावने लगी ॥ २ ॥ हे स्वामी ! आप जैसे ही पधार
ईसे ही कोपत हुए हाथोंके कङ्गनाका भनकारके स्वरमें उसने
कुशल पूछा, लजाकर नीचे झुँह करके आपके चरखोंपर अपने
नेत्ररूपी कमल चढ़ाए और हृदय-द्वारपर सजे हुए दो स्तनकपी
सङ्कल फलशब्दोंके हृदय-मन्दिरमें आपका ला बैठाया । यह
क्या स्थाने आपका कम उचित सन्कार किया है ? ॥ ३ ॥
घरमें प्रवेश करते हुए अपने प्रियतमका मङ्गलाचार अपने
आँखोंसे ही करनेके लिये सुन्दरीने कमलके फूलोंके बदले अपनी
[चितवनकी ही लम्बी वन्दनवार बनाई । कुन्द और चमेलाके बदले
अपनी मन्द सुसकलके ही फूल बरसाए और घड़ेके जलके
बदले अपने स्तनोंके पसलिके जलसे ही आर्घ्य दिया ॥ ४ ॥
नवेखाने आँगनमें वन्दनधारका मालाके पत्ताका गाँठ खालसे
समय जा अपने प्रियतमका सवारा (ऊँट) का शब्द सुना
ता उसने मित्रोंका रानेसे, गुरुजनोंका बनसे, प्राणाका
नाकके छारसे, प्रियतमका स्त्री-वधके पापसे और कामदेवको
मिन्दाके चचा [दिया ॥ ५ ॥

नवेखाने नायकके प्रश्न : 'हे भोली-भाकी ! तुम
इतनी दुबली क्यों पड़ गई हो ? इतनी कौप क्यों रही हो ?
और तुम्हारे गाल और मुख पीले क्यों पड़ गए हैं ?' इस
प्रकार प्राणनाथने पूछा तो सुन्दरीने कहा—'यह सब मैं ही

कथमिदं कम्पश्च कस्मात्कुतो मुग्धे पाण्डुकपोलमानन-
मिति प्राणेश्वरे पृच्छति । तन्व्या सर्वमिदं स्वभावज-
मिति श्याहृत्य पद्मान्तरव्यापी चाभ्यभरस्तया धलि-
तया निःश्वस्य मुक्तोऽभ्यतः ॥ १ ॥ कृशा केनासि त्वं
प्रकृतिरियमङ्गस्य ननु मे मलाधून्ना कस्माद्गुरुजनगृहे
पाचकतया । स्मरस्यस्मान्कञ्चिन्नहि नहि नहीत्येवम-
वदच्चिरःकम्पं वाला मम इति निधत्य प्रवृत्ता
॥ २ ॥ कृशासोत्पालीना मलिनवसनासौत्यवनता
विराद्दृष्टासीति स्तनकलशकम्पं प्रवृत्ता । परि-
श्वक्ता यावत्प्रणयपदवीं कामपि गता ततः सारङ्गाद्या
हृदयसदने लीनमभवत् ॥ ३ ॥

प्रणयकलहं नायिकानुनयः—अङ्गानि खेदयसि कि
शिरीषकुसुमपरिपेलवानि मुधा । अयमोहितकुसुमार्गा
सम्पादयितार तवास्ति दासजनः ॥ १ ॥ अनिर्दोष-

हो गया है' और फिर वह लम्बी सोलें कीचकर उठीं ही
जलनेको हुई कि भाँखोंके कोनोंतक भरे हुए भाँसु लँभाक न
सकी और भाँसु ललककर दुलक ॥ पड़े ॥ १ ॥ जैसे
ही मैंने अपनी परनीसे पूछा—तुम इतनी दुबली क्यों
गई हो ? तो उसने उत्तर दिया—मेरे रँग तो पैसे हैं
ही । मैं : तुम धुँवेंके रंगके समान सौंखली क्यों पड़ गई हो ?
वह : घड़े-बुढ़ोंके लिये भोजन बनाते-बनाते मेरा रँग धुँवेंका-
सा हो गया है । मैं : क्या मुझे भी कभी स्मरण करती थी ? ऐसा
पूछते ही वह नवेली सिर हिला-हिलाकर 'नहीं-नहीं' करती हुई
मेरी छातीपर सिर रखकर राने लगी ॥ २ ॥ जब मैंने उस
प्यारीसे पूछा कि तुम बहुत दुबली हो गई हो तो वह
लजा गई । जब मैंने कहा कि तुम्हारे बस बहुत मैले हो
गए हैं तो उसने सिर झुका किया । फिर जब मैंने कहा कि
बहुत दिनोंमें विलाई पड़ी हो तो उसके घड़ेके समान
ऊँचे-ऊँचे स्तन कौप उठे और रोकर मेरे गले
लगकर जबतक प्रेमकी पदवीतक पहुँचे-पहुँचे तबतक तो वह
हरिकके समान भाँखोंवाली नवेली मेरे हृदय-रूपी मन्दिरमें
जीन हो गई ॥ ३ ॥

खेलमें रुठनेपर नवेलीको मनाया : सिरसके फूलके
समान कोमल अङ्गोंको व्यर्थ ही क्यों धकाए हाल रही हो ?
तुम्हारे मनचाहे फूल खानेवाका यह सेवक तो उपस्थित हो
है ॥ १ ॥ कहाँ तुम्हारा रूप इतना मनोहर और कोमल । फिर
वह तुम्हारा चित सिरसके डण्डके समान क्यों इतना कठोर

भोगस्य रूपस्य मृदुनः कथम् । कठिनं सलु ते चेतः
शिरीषस्येव बन्धनम् ॥ २ ॥ अपराधी नूनमहं प्रसीद
रम्भोरु विरम संरम्भात् । सेव्यो जनश्च कुपितः कथं
तु शसो निरपराधः ॥ ३ ॥ अपराधो मया कान्ते
कृतो यदि त्वया मतः । निपात्य गिरिशृङ्गोष्णं कुक्षो
किञ्च निपीड्यते ॥ ४ ॥ अस्तं याति शशी शशाङ्कवदने
मानं विमुञ्चाधुना किं मानेन मुधा नतश्च गमनाङ्क-
श्यन्त्यमूस्तारकाः । इत्थं त्वामनुशिष्यन् चितितलातु-
ग्राम्य पादं शनैः क्षीणं वीक्ष्य निशां निसर्गसुभगं
गायत्यसौ कुक्कुटः ॥ ५ ॥ आताम्रतामपनयामि
विलस्य एव लाक्षाकृतां खरणयोस्तव देवि मूर्ध्ना ।
कोपोपरागजनितां तु मुखेन्दुविभ्ये हर्तुं क्षमा यदि परं
कक्षणा मयि स्यात् ॥ ६ ॥ इदं दूर्वाकाण्डयुतिमुषि
कपोले कतिपयैः भ्रामाम्भोभिः कीण सहजवकुलामोद-
सुभगम् । समाकाङ्क्षं ताम्राधरमनुमनुष्य प्रियतमे
मनोहं ते पातुं मुक्कमलमाप्राप्तुमधवा ॥ ७ ॥ इन्द्रीव-

हो गया है ? ॥ २ ॥ हे केलेके सम्भेके समान मौनोंवाली ! मान
जाओ, कोष न करो । मैं सबकुछ अपराधी हूँ । यदि स्वामी
क्रोधित हो ही जायें तो यह कैसे माना जा सकता है कि सेवक
निरपराध है ॥ ३ ॥ हे सुन्दरा ! यदि तुम समझता हो
कि अपराध मेरा है तो पयसका आटाके समान ऊँचे-ऊँचे
हम दोनों स्तनोंसे मुझे चपेट क्यों नहीं डालता ॥ ४ ॥ हे चन्द्र-
वदनी ! रात बीतता जानकर यह मुगा भरतासे एक पर भारसे
उठाकर सहज सुन्दर स्वरम गाकर तुम्हें यह साक्ष दे रहा है
कि चन्द्रमा अब दूब रहा है, अतः इस समय कठना ठाक
नहीं है । हे बाँका भाँहवाला ! क्या कठिनस क्या काम है ?
देखा, ये तारे भी आकाशसे गिरत लगे जा रहे हैं ॥ ५ ॥ हे देवि !
यह अजित अभारा महावरसे रँगो हुए तुम्हारे लाल चरखाका
जलाशोको अपने सिरसे पंजु रहा है । यदि इस दासपर तुम्हारा
रूपा हो जाय तो चन्द्रमाके समान मुख-मधुहजपर कोषसे जो
खजाई जल्पन हो गई है उसे भी दूर करनेमें यह सेवक समर्थ
है ॥ ६ ॥ हे अत्यधिक प्यारी ! दूबकी शोभाकी नाँवा
दिखानेवाले, पत्तानेकी बूँदोंसे सजे हुए गाँवोंवाले और
मौसिरीके फूलोंकी स्वाभाविक सुगन्धमें बसे हुए लाल-
लाल छोटीवाले तुम्हारे सुन्दर मुखरूपी कमलको सर पीने
या उसे सूँघनेके लिये मैं तरस रहा हूँ अतः तुम मुझे आज्ञा
दे दो ॥ ७ ॥ हे सुन्दरी ! जिस नयाने नीले कमलसे तुम्हारी

रेल नयनं मुखमभ्युजेन कुन्देन दन्तमधरं तवपल्लवेन ।
अङ्गानि चम्पकदलैः स विधाय वेधाः कान्ते कथं
घटितवानुपलेन चेतः ॥ ८ ॥ उत्तरङ्ग्य कुरङ्गलोचने
लोचने कमलगर्वमोचने । अस्तु सुन्दरि कलिङ्गनन्दि-
नीधोचिदम्बरगभोरमम्बरम् ॥ ९ ॥ उदञ्च्य दृगञ्जलं
चलतु चञ्चरीकोषयः प्रपञ्च्य वचःसुधा अथगुपालि-
मालिङ्गतु । भ्रुवं नटय नागरि त्यजतु मन्मथः कामुकं
मुखं च कुरु सम्मुखं व्रजतु लाघवं चन्द्रमाः ॥ १० ॥
कठिनहृदये मुञ्च भ्रान्ति व्यलीककथाश्रितां पिशुनय-
चनैर्दुःखं नेतुं न युक्तमिमं जनम् । किमिदमथवा सत्यं
मुग्धे त्वया हि विनिश्चितं यदभिरुचितं तन्मे कृत्वा
प्रियं सुखमास्यताम् ॥ ११ ॥ कपोले पत्राली करतल-
निरोधेन मृदिता निपातो निःश्वासेरयममृतहृद्याऽध-
ररसः । मुहुः कण्ठे लग्नस्तरलयनि याप्यः स्तनतटं
प्रियो मन्युजातस्तव निरनुरोधे न तु वयम् ॥ १२ ॥
कल्याणाङ्कुरानुरक्तमनसा त्वं येन सम्प्राप्यते

पॉले, लाल कमलसे मुख, कुंदकी कलियाँसे दाँत, नये कामक
पत्रोंसे आँठ और चम्पकों पैसुदियाँसे तुम्हारे दूसरे अङ्ग बनाए,
उसने तुम्हारा दिल कैसे पधरसे बना डाला ? ॥ ८ ॥ हे
सुगन्धपना ! कमलोंका घमण्ड पूर करनेवाले अपने नेत्र ता लाल
वाँ निससे यह नाँवा आकाश बड़ा-बड़ा सहारावाला यमुनाके
अलके समान जान पड़ने लगे ॥ ९ ॥ हे चतुर नवेली ! तनिक
अपनी आँखें तो उठाओ, जिससे जान पड़े कि भार डाल रहे हैं ।
अपने मुँहसे बाँकी ता निकालो, जिससे जान पड़े कि कानांमे असुत
बरस रहा है । अपना भाँहें ता चलाओ जिससे कामदेवके हाथका
धनुष चूट पड़े और अपना मुख तो तनिक इधर घुमाओ जिससे
यह चन्द्रमा भी तुम्हारे सामने पाना भर ॥ १० ॥ हे
कठोर हृदयवाला ! झूठा-झूठा बातें सुनकर मुझपर सन्देह न
करा, सुगन्धसारोंका वातपर विश्वास करके मुझे सोसत
दा । हे सुन्दरा ! यदि तुमने निश्चय हो कर लिया है कि
वे बातें सत्य हैं तो तुम्हें जो दुष्ट उचित जान पड़े
वही मुझे देकर सुखो हो जाओ ॥ ११ ॥ हे मार्थना न
माननेवाली ! तुमने हथेलीकी रगड़से गाँवोंपरके बेल-बूटे हटा
दिए, अमृतके समान तुम्हारे मधुर अधरको तुम्हारी साँसें
मजिन किए डाल रही हैं, बार-बार गलेमें लगकर बहते हुए
आँसु तुम्हारा स्तन छू रहे हैं अतः जान पड़ता है कि तुम्हें
मे ही (आँसु) प्यारे हैं, हम नहीं ॥ १२ ॥ हे सुन्दर मुखवाली !

यस्यार्थं सुमुखि त्वया पुनरसुप्त्यानेऽपि ससह्यते ।
 सोऽयं सुन्दरि पञ्चवाणविशिखधालाढदोरन्तरस्वैरो-
 र्पीडितपीडरस्तनतटस्त्वहोर्लतापञ्जरे ॥ १३ ॥ किं
 कण्ठे शिथिलीकृतो भुजलतापाशः प्रमादान्मया निद्रा-
 च्छेदयितं नेत्रभिमुखी नाद्यापि सम्भाविता । अन्यस्त्रो-
 जनसङ्कथालघुरहं स्वप्ने त्वया ललितो दोषं पश्यसि
 किं प्रिये परिजनोपालम्भयोग्ये मयि ॥ १४ ॥ किं ते
 निसर्गरुचिरं चरणं कराभ्यां संवाहयामि नयने च
 तवाङ्गनेन । किं रञ्जयामि किमु ते स्तनयोविचित्रां
 पद्मावलीं विरचयाम्यखिरेण तन्त्रि ॥ १५ ॥ किं त्वां
 भणामि विच्छेददारुणायासकारिणि । कामं कुरु वरा-
 रोहे देहि मे परिरम्भणम् ॥ १६ ॥ किं मुक्तमासनमलं
 मयि सम्भ्रमेण नोन्थातुमिच्छामुन्नितं मम तन्तुमध्ये ।
 इष्टिप्रसादविधिमात्रहतो जमाऽयमन्यादरेण किमिति
 क्रियते विलसतः ॥ १७ ॥ किं शंकरेः क्लमविमदिभिरा-

तुम्हारे अङ्गोंको सुन्दरतापर मन ही मन लहूँ होकर जिसने
 तुम्हारा विभती की, जिसके लिये तुम प्राण देनेको भी तय्यार
 रहती हो, वही कामके कारणोंसे बिधे हुए हृदयवाला और
 तुम्हारे धँसे-बड़े स्तनोंको दयानेवाला तुम्हारा प्यारा तुम्हारी
 भुजाओं-रुपी लताओंसे बँधा हुआ है ॥ १३ ॥ मैंने भूलसे
 गलेमें पड़ी हुई पादुरूपी लताको काँटा क्यों कर दी, मीठेमें
 करवट लेने समय मैंने अपनी ओर मुख किए हुए तुम्हारा
 आदर भी नहीं किया और तुमने स्वप्नमें दूसरी काँके विषयमें
 बोलनेसे मुझे तुच्छ समझ लिया । हे प्रिये ! तुमने मुझमें
 ऐसे कीन-कीनसे दोष देखे जो सब लोगोंसे मुझे उलाहना
 दिलावा रही हैं ॥ १४ ॥ हे सुन्दरी ! कहाँ तो अपने दोनों
 हाथोंसे तुम्हारे सहज सुन्दर दोनों चरण दबाऊँ, कहाँ तुम्हारे
 नयनोंमें काजल आँज दूँ अथवा कहाँ तो तुम्हारे स्तनोंपर शीघ्र
 ही विशिष्ट पेलघूटे रच डालूँ ॥ १५ ॥ विछाड़के समय भयङ्कर
 सौंसत देनेवाला हे सुन्दरी ! मैं तुमसे क्या कहूँ । तुम जो चाहो
 सो करो किन्तु एक बार मेरे गले अवरण लग जाय ॥ १६ ॥
 हे डोरेके समान पतली कमरवाली ! मेरे आँते ही घबराकर
 इस प्रकार पल्लंग छांदभा और उठ खड़े होना दोनों ही डीक नहीं
 है । क्योंकि जिसपर चितवन पलाकर तुमने कृपा करके उसे
 अपनी लिया है उसे इतना अधिक आदर दिखाने क्यों लगियत
 किए डाल रही हो ॥ १७ ॥ हाथोंका सूँदके समान जोंबांवाली
 हे नवेली ! कुहाँसे भरे हुए तथा थकावट मिटानेवाले

देवानं सञ्जालयामि नलिनीदलतालवृक्षम् । अङ्गे
 विधाय चरणानुत पञ्चताम्रां संवाहयामि करभोरु
 यथासुखं ते ॥ १८ ॥ किमपि किमपि शङ्के मङ्गलेभ्यो
 यदन्यद्विरमतु परिहासश्चरिडं पर्युत्सुकोऽस्मि ।
 कलयसि कलितोऽहं घटलभे देहि वार्धं ध्रमति हृदय-
 मन्तर्विह्वलं निर्दयासि ॥ १९ ॥ कृतेऽप्याज्ञामङ्गे कथ-
 मिव मया ते प्रणतयो धृताः स्मिन्वा हस्ते विसृजसि
 कथं सुभ्रु बहुशः । प्रकोपः कोऽप्यन्यः पुनरयमसोमाद्य
 गुणितो वृथा यत्र क्षिप्रधाः प्रियसहचरीणामपि
 गिरः ॥ २० ॥ कृनो हृदादेव स्मितमधुरमभ्युहमविधिः
 शिरस्याज्ञा न्यस्या प्रतिवचनमुद्यैः प्रणमितम् । न
 दृष्टेः शौधित्यं मिलत इति चेतो दहनि मे निगूढान्तः-
 कोपा कठिनहृदये संकृतिरियम् ॥ २१ ॥ कोऽयं कोप-
 विधिः प्रयच्छ कुरुणार्थं वक्षो जायतां पीयूषद्रवदी-
 धिकापरिमलैरामोदिनी मेदिनी । कास्तां या स्पृहयालु

कमलिनोके पतेके पङ्केमे शीतल पवन हुलाऊँ या तुम्हें गोरीमें
 बिठाकर आनन्दपूर्वक तुम्हारे कमलके समान लाल-लाल पैर
 दबाऊँ ? ॥ १८ ॥ हे क्रोध करनेवाली ! मुझे पड़ी शङ्का हो रही
 है कि कहीं कुछ धनित न हो जाय, इसलिये अब यह हैसी बन्ध
 कर दो । अब मैं बहुत घबरा उठा हूँ । यतः मेरे लग्नोपके लिये
 अब कुछ बोलना दो क्योंकि मेरा हृदय अब विह्वल होकर चला
 खाने लगा है । छोड़ ! तुम लक्ष्मण वही निर्दय हो ॥ १९ ॥
 हे सुन्दर भोंदांवाली ! मैंने तुम्हारा आज्ञाओंका इतना उल्लङ्घन
 किया जिसपर भी तुम तो प्रणाम करना जा रही हो और बात-बार
 हाथ पकड़नेपर भी मुस्कारकर क्रोध छिपाए जा रही हो, वह
 तुम्हारा असीम क्रोध बड़ा अनाया ही जान पड़ रहा है कि
 सखियोंकी मधुर वाणियोंका भी तुमपर कोई प्रभाव नहीं पड़
 रहा है ॥ २० ॥ हे कठार हृदयवाली ! मेरे आँते ही तुमने भी
 दूरसे ही मधुर मुस्कारके साथ मेरी अगवान् की, सिर झुकाकर
 मेरी आज्ञाएँ पालन कीं, बात-बातमें नम्रता दिखाई, देखते
 समय आँखें नहीं फेरीं और मुझसे निजनेपर भी जो तुमने
 अपना क्रोध भीतर ही भीतर छिपाकर इस प्रकारका व्यवहार
 किया वह मेरे मनको जलाए डाल रहा है ॥ २१ ॥ हे सुन्दरी !
 यह क्रोध करनेका तुम्हारा कीन-सा ढङ्ग है ! मुँहसे कुछ कृपा-
 भरे वचन तो कहो कि यह धरती अमृतकी बावड़ीसे निकलते
 हुए गन्धसे सुगन्धित-सी हो जाय । अच्छा, रहने दो, बावले
 भी चितवन फेरकर तुम जिसपर क्रोध करती हो उसकी

लोचनमिदं व्यावर्तयन्तो मुहुर्यस्मै कुप्यसि तम्य
सुन्दरि तपोवृन्दानि वन्दामहे ॥२२॥ लोणः लोणाऽपि
शशी भूयो भूयोऽभिवर्धने नित्यम् । विरम प्रसाद
सुन्दरि योचनमनिवर्ति यातं तु ॥ २३ ॥ लोणां तुः
शशलाञ्छनः खलि पुनः लोणा न मानस्तव स्मेरं पञ्च-
घनं मनामपि न ते स्मेरं मुक्ताम्भारुहम् । पोतं श्रोत्र-
युगेन षट्पददत्तं पोतं न तं जलितं रक्ता शकादिग-
ङ्गा रविकरैर्नाद्यापि रक्तासि किम् ॥ २४ ॥ गतमाया
रात्रिः कृततनु शशी सोदत इव प्रदोषोऽयं निद्रायश-
मुपगतो घूर्णत इव । प्रणामान्ता मानस्यजसि न
तथापि कुधमहो कुचप्रत्यासत्या हृदयमपि न अरिह
कठिनम् ॥ २५ ॥ चतुर्जाड्यमपेतु मानिनि मुखं सन्द-
र्शय श्रावयोः पीयूषश्रुतिसाख्यमस्तु मधुरां वाचं प्रिये
व्याहर । तापः शाम्यतु मे प्रसादशिशिरं दृष्टि शनैः
पातय त्यक्त्वा दीर्घमभूतपूयमर्षिराद्रापं सखादापजम्

॥ २६ ॥ चरणकमलदासस्त्वेव सङ्कल्पसङ्गे सुमुखि
यदभिधत्से त्वं वल्गाकारधूर्तम् । प्रसर्गविधृततपः
पीडयाम्यान्मनैव हिरद इव मराजं पाणिमापाटलं ते
॥ २७ ॥ जाते केलिकलाकृते कमितरि व्यर्थानुनीता
चिरान्माने म्लायति मन्मथे विकसति क्षीणे क्षपाने-
हसि । स्वप्रव्याजमुपेय नम्रिपुण्या निद्रान्धमाचे-
ष्टितं मानम्लानिग्भूज येन च नचाप्यासीद्ब्रह्म-
खण्डनम् ॥ २८ ॥ तरङ्गय दशाऽङ्गने रचय यन्ध्यामिन्दी-
वरं क्षलं वपुर्गावृणु स्पृशतु काञ्चनं कालिमा ।
स्फुटीकुरु रदच्छुदं व्रजतु विद्रुमः श्वेततामुदञ्चय मुखं
मनाग्भवतु लज्जितश्चन्द्रमाः ॥ २९ ॥ त्वयि निवदरतेः
प्रियवादिनः प्रणयभङ्गपगाङ्मुलक्षेत्रतः । कमपराध-
लघं मयि पश्यसि न्यजसि मानिनि दासजनं यतः
॥ ३० ॥ त्वामथमावहाञ्जलि दासजनस्तमिममर्थमर्थ-
यते । स्वर्पाह मया सह सुरतव्यतिकरक्षिभ्य मा

तपस्वाभाको ही मैं प्रणाम करना हूँ ॥ २२ ॥ हे सुन्दरी !
चन्द्रमा तू पूरा चाँया होकर फिर सदा यद जाया करती
हे किन्तु बीता हुआ योचन फिर हाथ नहीं आता इसलिये
मान जाओ, क्रोध न करो ॥ २३ ॥ सखी ! चन्द्रमाको
किरों चली गई पर तुम्हारा क्रोध न गया, कमलके बग
खिल गए पर तुम्हारा मुखकमल खिलकर न हँसा, कानोंमें
भीलोंकी गुञ्जार सुनाई पड़ गई पर तुम्हारी पींजी न सुनाई
पड़ी और सूर्यकी किरणोंसे पूर्व दिशा भी काल हो उठी किन्तु
तुम्हारे मुखपर प्रसन्नताकी खाली न छाई ॥ २४ ॥ हे
चन्द्रमाके समान मुखवाली ! रात बीती जा रही है,
चन्द्रमा मखिन पड़ गए, यह दीपक भी मानो नींदके बरा होकर
जैय रहा है । क्रोधकी अन्तिम अवधि तुम्हें प्रणाम
है (अर्थात् मैंने तुम्हारे पैर भी पड़े, फिर भी तुम क्रोध
नहीं छोड़ रही हो) अतः हे रुठनेवाली ! जान पड़ता है कि
कठोर स्तनोंके साथ रहते-रहते तुम्हारा हृदय भी कठोर
हो गया है ॥ २५ ॥ हे रुठनेवाली ! तनिक अपना मुखदो
तो दिला दो, जिससे हमारी आँखें शीतल हो जायें । हे
प्रिये ! अपनी मधुर वाणी तो तनिक सुना दो जिससे कानोंको
अमृत पीनेका सुख प्राप्त हो, मुँहपर प्रसन्नतासे शीतल
अपनी ये चिल्लवर्ने धीरे-धीरे चला दो जिससे मेरे मनका
सन्ताप दूर हो और सखियोंकी जुगलीसे मनमें पड़ा हुआ
यह विषाद क्रोध तो छोड़ दो जो पहले तुममें कभी भी नहीं

देखा गया ॥ २६ ॥ हे सुन्दर मुखवाली ! तुम्हारे चाहने
मात्रसे तुम्हारा साथ देनेवाला तुम्हारे चरणकमलका यह दास,
जिसे तुम वल्गाकार करनेवाला धूर्त कहती हो, अत्यधिक
सन्तप्त होता हुआ तुम्हारे गुलाबों हाथको उली प्रहार अपने
आप दबा रहा है जैसे हाथी कमलको पकड़ लेता है ॥ २७ ॥
रतिकी इच्छा करनेवाले प्रियतमके मना-मनाकर हार चुकनेपर
पङ्क्त देरके पश्चात् जब नवेलीका मान कुछ कम हुआ,
कामदेवका वेग बढ़ने लगा और रातका विधाता चन्द्रमा पीया
हो चला, उस समय उस अनुर नवेलीने स्वप्नका बहाना
करके बिछीनेपर इस प्रकार नींदकी बेसुधीमें प्रियतमकी ओर
करब बढ़ ली कि न तो सच्ची बात ही सुन पाई और न
उसका मान ही टूट पाया ॥ २८ ॥ हे प्रिये ! तनिक धितवन
चलाओ जिससे वे आँगनमें खिले हुए भीले कमलसी जान पड़ें,
ओठोंपर तनिक मुस्कराइट-सी ले आओ जिससे वे उजले
मूँगेके समान जान पड़ें, अपना शरीर तनिक उधाड़ दो जिससे
तुम्हारे सामने सोना भी मखिन जान पड़े और तनिक अपना
मुख उठा दो जिससे आकाश दो चन्द्रमावाला बन जाय
॥ २९ ॥ हे रुठनेवाली ! एकमात्र तुम्हींसे प्रेम करनेवाले, प्रिय
बोलनेवाले और स्नेह टूट जानेके भयसे भयभीत मनवाले
अपने इस सेवकमें क्या तुम अपराध देख रही हो जो इसे
छोड़े दे रही हो ? ॥ ३० ॥ हाथ जोड़कर यह दास केवल
इसीलिये तुम्हारी प्रार्थना कर रहा है कि सम्भोगके कारण यकी

मैवम् ॥ ३१ ॥ इयिते कठिनं चेत इत्युरोजौ तवेदशौ ।
अथ लज्जयसे किं नु शिरीषमृदुलां तनुम् ॥ ३२ ॥
शक्तिर्यं नाम विम्बोष्ठि नायकानां कुलजनम् । तन्मे
दीर्घाक्षि ये प्राणास्ते त्वदाशानिवन्धनाः ॥ ३३ ॥ घृष्टः
किं पुरतोऽधरुष्य विहसन्मृदाभि कण्ठे प्रियां किं वा
चादुशतप्रचण्डरचनाप्रीतां करिष्यामि ताम् । किं
तिष्ठामि कृपाञ्जलिर्निपतितस्तस्याः पुरः पादयोः सस्यं
सन्धमहो न घेदम्यनुनयस्तस्याः कथं स्यादिति ॥ ३४ ॥
परिलुटति ललाटे भङ्गुरा भ्रूलता किं मदनजयपताका-
विभ्रमं विभ्रतोयम् । स्फुरति च किमकारण्डे चरिण
विम्बाधराऽयं मृदुपवनविधूतोऽग्निद्रव्यन्धूकयन्धुः ॥ ३५ ॥
परिहर कृतातङ्गे शङ्कां स्वया सततं घनस्तनप्रघनया-
क्रान्ते स्यान्ते परानयकाशिनि । विशति वितनोरन्यो
घन्यो न कोऽपि प्रमान्तरं स्तनभरपरीरम्भारभ्ये
विधेहि विधेयताम् ॥ ३६ ॥ पादासक्तं सुचिरमिह ते

वामता कैव कान्ते सन्मार्गस्थे प्रणयिनि जने कोपने
कोऽपराधः । इत्थं तस्याः परिजनकथा कोपवेगोप-
शान्तो बाष्पोद्भेदैस्तदनु सहसा न स्थितं न प्रयातम्
॥ ३७ ॥ पुरादिगनुरागिणी तदपि नानुरागोदयः
कृशोदरि निशा कृशा तदपि ते न मानः कृशः । प्रस-
न्नमिदमम्बरं तदपि न प्रसन्नं मनो ननाद चरणायुध-
स्तदपि मोनमालम्बसे ॥ ३८ ॥ प्रसादे वर्तस्व प्रकटय मुदं
सन्तज्ज हयं प्रिये शुष्यम्यङ्गान्वमृतमिष ते सिञ्चतु
वचः । निधानं लोचनानां क्षणमभिमुखं स्थापय मुखं
न मुग्धे प्रत्येतुं प्रभवति गतः कालहरिणः ॥ ३९ ॥
प्रसीदेति म्यामिदमसति कोपेन घटते करिष्याम्येवं नो
पुनरिति भवेदभ्युपगमः । न मे दोषोऽस्तीति त्वमिद-
मपि हि सास्यसि मृषा किमेतस्मिन्वक्तुं क्षममिति न
वेष्टि प्रियतमे ॥ ४० ॥ ग्रहियु रमणि मानं मोनमुमुक्षु
साञ्जीवितशिरसि ममास्मिन्नर्पयस्वाङ्गमियुगम् ।

हुई तुम मेरे साथ ही सोचो और ऐसा न करो, न करो, न करो
॥ ३१ ॥ हे प्रिये ! तुम्हारा चित्त अत्यन्त कठोर है इसीलिये
तुम्हारे स्तन भी पेमे हैं । बातः इन्हें लगाकर तुम सिरसके
समान अपनी देहको क्यों जला रहा हो ? ॥ ३२ ॥ हे कुँदरूके
समान झोठवाली ! प्रेमियोंकी सज्जयता हो उनके कुलका
मत है इसलिये हे बड़े बड़े नेत्रोंवाली ! मेरे प्राण तुम्हारी ही
आशाके सहारे टिके हुए हैं ॥ ३३ ॥ क्या मैं सामने दिठाईसे
मुस्कराकर जाना हुँ अपनी प्यारीकी गलबहियों देकर रोंक लूँ या
चिकनी-चुपड़ी बातें करके उसे प्रसन्न कर लूँ या हाथ जोड़कर
उसके चरणोंपर गिर पडूँ ! सक्षमुच मुझे मूक नहीं पद रहा है
कि उसे मनार्क तो कैसे मनार्क ! ॥ ३४ ॥ हे क्रोध करनेवाली !
तुम्हारे माथेपर जो बाँकी भीह-रूपी जला दिखाई दे रही है वह
क्या कामदेवकी विजय-पताका बनकर शोभा दे रही है और इस
असमयमें ही कुँदरूके समान तुम्हारा जो आँठ फरकरा रहा है वह
क्या मन्द पवनके झोंकेसे तिलो हुए बन्धूक (दोपहरिया कुल) का
बन्धु सूर्य है ? ॥ ३५ ॥ हे मनमें भय उत्पन्न करनेवाली !
शङ्का मत करो । बड़े-बड़े स्तन तथा भारी जघन (पेड़) वाली !
तुम जब हमारे मनमें बैठी हो तो वहाँ दूसरेको स्थान कैसे
मिल सकता है ! कामदेवके अतिरिक्त ऐसा कौन अन्य व्यक्ति
है जो हमारे हृदयमें प्रवेश पा सके । इसलिये अब ऐसा
उपाय करो जिसमें मैं तुम्हारे स्तन अपनी छातीसे लगा सकूँ
॥ ३६ ॥ किसी नवेलीकी सखियों समझा रही है : 'हे सुन्दरी !

जब तुम्हारे प्रियतम इतनी देरसे तुम्हारे पैरोंपर जोर रहे हैं
तब भी तुममें वह देवापन कैसा ? हे क्रोध करनेवाली ! जब
प्रियतम अपने मार्गसे चल रहे हैं तब उनका अपराध ही क्या
है ?' अर्थात् सखियोंने इतना कहा कि उस नवेलीके नेत्रोंमें भरे
हुए आँसू न तो रुक ही सके, न गिर ही सके ॥ ३७ ॥ हे
दुबले शरीरवाली ! पूर्व दिशा जाल हो गई किन्तु तुममें अभी
प्रेमकी लाली न मलकी । रात समाप्त हुई जा रही है किन्तु
तुम्हारा क्रोध अभी शान्त नहीं हुआ । आकाश तो स्वच्छ हो
गया किन्तु तुम्हारा मन प्रसन्न न हुआ और मुर्गा
भी बोलने लगा किन्तु तुम अभी चुप्पी साधे बैठी हो ॥ ३८ ॥
हे प्यारी ! मनसे सन्देह दूर करो, मान जाओ, क्रोध छोड़ दो,
तुम्हारे क्रोधके कारण मेरे अङ्ग-अङ्ग सूखे जा रहे हैं । अब ऐसा
करो कि उनपर तुम्हारी अमृतके समान बातें पड़ें, अपने मुँहके
अभयार मुखको कुछ देर इधर घुमाओ । चरी पगली ! बीता
हुआ समयरूपी हरिण फिर लौटकर नहीं आनेवाला है ॥ ३९ ॥
प्यारी ! मुझे मूक नहीं पद रहा है कि इस समय क्या कहूँ
क्या न कहूँ क्योंकि यदि यह कहता हूँ कि 'प्रसन्न हो जाओ'
तो बिना क्रोधके ऐसा कहना उचित नहीं जान पड़ता । यह कहूँ
कि 'फिर ऐसा न कहूँगा' तो इसका अर्थ यह है कि मैंने अपनी
मूल स्वीकार कर ली और यदि कहूँ कि 'मेरा कोई दोष नहीं'
तो इसे तुम मूक मानोगी ॥ ४० ॥ हे सुन्दरी ! अपना मीन
तोड़कर रुठना छोड़ दो और मेरे भुके हुए सिरपर अपनी दोनों

अथ सुमुखि मयूखाः पश्य पांयूपभानोर्वरुणमरुता-
रीनेत्रपात्रोभवन्ति ॥ ४१ ॥ भुशालकं स्मिन्तपराजित-
चन्द्रलेखं दृग्लीलया कुचलयश्रियमादवानम् । पत-
न्मुखं द्विषिपदामपि दुर्निरोदयं तन्वाङ्गं मामिष मुधा
किमधःकरोषि ॥ ४२ ॥ भूभङ्गं न करोषि रोदिपि
मुहुर्मुग्धेक्षणे केवलं नातिमस्फुरिताधरानवरतं निःश्वा-
समेधोऽभक्षि । धावन् नापि ददासि तिष्ठसि परं प्रच्या-
तनघ्नानना कोपस्ते स्तिमितोऽतिपोडयति मां गृहप्र-
हारोपमः ॥ ४३ ॥ भूभङ्गैः क्रियते ललाटशशिनः
कस्मात्कलङ्को मुधा घाताकम्पितवन्धुपुष्पसमतां
नीतोऽधरः किं स्फुरन् । मध्यभाधिककम्पितस्तनभरे-
तायं पुनः खिद्यते कोपं मुञ्च तवैव चित्तहरणायैत-
न्मया कीदृशम् ॥ ४४ ॥ मधुघारेव न मुञ्चसि मानिनि
रुचापि माधुरीं सहजाम् । कृतमुक्तभङ्गापि रसं ददासि
मम निक्षणा यथाभ्योधेः ॥ ४५ ॥ मयि ते पादपतिते

किङ्करन्वमुपागते । प्रिये कामातुरः कोपं कान्ते
कोऽन्योऽपनेप्यति ॥ ४६ ॥ माणिक्यैर्दशनश्रियं घट-
यता विभवाधरं त्रिद्रुममुक्ताभिः स्मितमिन्द्रनीलशक-
लक्षार्दश्च केशोक्तयान् । इत्थं रत्नमयं विधातुमखिलं
द्रुमैधमा वेधमा तेनैवाचननाङ्गवर्जि विहितं यज्जग-
न्नेतस्तव ॥ ४७ ॥ मानं मानिनि मुञ्च देवि दयिते
मिथ्यैव चः ध्रुयते किं कोपो नित्रमेवके यदि चचः
सन्त्यं न्यया गृह्यते । दोषार्थं घन्धनमाशु दन्तदलनं पीन-
म्भनास्फालनं दोषश्चन्मम तं कटाक्षविशिष्टैः शस्त्रैः
प्रहारं कुरु ॥ ४८ ॥ मा मा स्वसाध्वसमोपहि विलाल-
नेत्रे शाने जने किमिति सम्भ्रमकानरासि । किं गुज्यते
वत मया चित्काङ्क्षितम्य मध्ये वगाङ्ग परिगम्भसु-
खस्य भङ्गः ॥ ४९ ॥ मुल्लमिन्द्रुर्ध्वा पाणिः पल्लवेन
समः प्रिये । यावः सुधा इयोष्ठस्ते विभ्यनुल्लो
मनोऽश्मवन् ॥ ५० ॥ मुग्धे मानिनि कोपरोतिरियती

लाते' जमा हो क्योंकि हे सुमुखि ! देखो, चन्द्रमाकी असूतमयी
किररों अब पश्चिमकी ओर उल्टी जा रही है जहाँ उनपर
बहुतके नगरकी महेलियोंकी चितवनमें पड़ेगा ॥ ४१ ॥
हे कुचकी पतली देहवाली तथा शिल्परे हुए शालावाली ! मन्द
मुखराहटसे चन्द्रमाको जीतनेवाला, चञ्चल चितवनसे कोईकी
शोभाको नीचा दिखानेवाला और देवताओंकी भी देखनेको न
मिल सकनेवाला अपना यह मुख मेरे ही लिये क्यों व्यर्थमें
नीचे किए हुई हो ! ॥ ४२ ॥ हे सुनयनी ! तुम अपना बाँकी
चितवननें चलातेके बदले उल्टे बार-बार रोए जा रही हो, थोड़ा
कड़कानेके बदले तुम केवल लगी-लाठीमार्गमें छोड़ रही हो, कुछ
खोजने-चाहनेके बदले अपना मुख-कमल फुलाए; और मुकाए
पेटी हो । इस प्रकार तुम्हारा यह विषा हुआ क्रोध भीतर
चोटके समान मुझे कषांटे डाल रहा है ॥ ४३ ॥ तुम्हारी बाँकी
भीहिं तुम्हारे मस्तकरूपी चन्द्रमामें क्यों व्यर्थ ही कलङ्क बन रही
है ! इस कड़कते हुए थोटकी वचनसे हिलता हुआ जपाकुसुम
क्यों पनाए डाल रही हो ? देखो, हिलते हुए स्तनोंके बोकले
तुम्हारी कमर दबी जा रही है । अतः क्रोध छोड़ दो । मैंने तो
तुम्हारा मन बहलानेके लिये ही यह सब खिलवाड़ किया था
॥ ४४ ॥ हे मान करनेवाली ! क्रोधकी दशामें भी तुम अपनी
स्वाभाविक मधुरता नहीं छोड़ती क्योंकि अपना मुँह घुमाकर
भी तुम मुझे वैसे ही रस दे रही हो जैसे नदियाँ समुद्रको देती हैं
॥ ४५ ॥ हे सुन्दरी ! अब कि मैं कामान्न होकर तुम्हारे पैरोंपर

मथा टेके ■ तुम्हारा दास बना पड़ा हूँ तब हे प्यारी ! और
दूसरा कौन तुम्हारा क्रोध दूर करेगा ? (अर्थात् मेरे अनिरिक्त
कोई और दूसरा तुम्हें नहीं मनावेगा) इसलिये प्रसन्न हो जाओ
॥ ४६ ॥ हे लचीले घाँववाली ! जिस घाँवने तुम्हारे दाँतोंकी
शोभा माणिक्यसे, कुँदरुके समान अधरको मूँगेसे, भुस्फानकों
मोनियोंसे और पालोंकी इन्द्रनीलमणिके चूर्णसे बनाया उसी
मूर्त्तने तुम्हें समझया बनानेके क्रममें तुम्हारा धिग भी पड़ा
(हीरे) का बना दिया ॥ ४७ ॥ हे कंधा करनेवाली ! क्रोध
छोड़ दो । हे प्रिये ! तुमने त्रिनतां जाते सुनीं हे सब मूढ़ी है ।
अपने मेककपर भी कहीं क्रोध किया जाता है ? फिर भी यदि
तुम सुनी हुई बातोंको सच ही मानती हो तथा मुझे अपराधी
ही समझ रही हो तो मुझे दंड देनेके मुझे अपनी
बाँहोंसे जकड़ लो, दाँतोंसे काट लो, मोटे स्तनोंसे मसल
डालो तथा अपनी चितवन-रूपी बाणोंसे मुझे बेध
डालो ॥ ४८ ॥ हे चञ्चल नयनोंवाली ! मुझसे डरकर मुझे
छोड़ो मत । मुझे देखकर इतना अधिक क्यों घबराई जा रही
हो । हे सुन्दरी ! तुम्हें गले लगानेके जिस सुखके लिये मैं बहुत
देरसे तरस रहा हूँ उसे बीचमें ही मटककर तोड़ डालना कहींतक
उचित है ? ॥ ४९ ॥ हे प्यारी ! तुम्हारा मुख भी चन्द्रमाके समान,
हाथ भी कोमल किसलयके समान, बाँकी भी असूतके समान, थोड़ा
भी बिम्बा फलके समान है किन्तु चित्त पथरके समान है ॥ ५० ॥
हे भोली भाकी और क्रोध करनेवाली ! कठ बैठनेका तुम्हारा यह वज्र

युक्ता न तथ्यः त्विदं कान्ते किं त्वदुपेक्षिता मम तनुः
शोभेत नेहाद्भुतम् । अन्यायो भवति च्छलस्य करणे
दत्ते जनेऽन्यादृशं काहेति प्रतिरुद्धवागकरवं वाक्स्त-
म्भनं शुभ्वनैः ॥ ५१ ॥ मुग्धे विधेहि मयि निर्दयदन्त-
दंशं दोषहितयन्धनिप्रिदन्तनपीडनानि । नहिद
त्वमेव मुदमञ्जय पञ्चयाणनण्डालकाण्डदलनादसवः
प्रयान्ति ॥ ५२ ॥ मुहुर्मुहुर्वेक्षालं सरसमञ्जसा संस्तवः
समुच्चलतरङ्गिणि प्रचुरमर्ममर्मस्पृहा । मुहुर्निविड-
मम्रता परिजनव्यपेक्षापि नो कुतः सुमुखि शिञ्जिता
कथय कोपरीतिस्वया ॥ ५३ ॥ मोहान्मया सुमनु
पूर्वमुपेक्षितस्ते यो वाण्यविन्दुरधरं परिधाधमानः ।
तं तावदाकुटिलपद्मविलग्नमद्य कान्ते प्रमृज्य विगता-
नुशयो भवामि ॥ ५४ ॥ यदिदमगणयिन्वा दुर्वहं
शोणिभारं मदभिसरणलोभान्प्रस्थितं पद्मताम्रम् ।
अयमहमभिधाञ्छाम्यप्रमृज्यैव पांसुं सुमुखि पदतलं ते

ठीक नहीं है । हे प्यारी ! सब तो यह है कि यदि तुम दुकरा
दोगी तो मेरे शरीरकी शोभाका क्या मूल्य रह जायगा । इसमें
कुछ धारचर्य न समझो । इसलिये यह सब दल जान लो दे ।
ये तुमसे डरती-सीधी बातें वहाँ किसने ? मैं तो यह
सुनकर स्तब्ध रह गया था । किन्तु लो, जब चुम्बनसे
तुम्हारी भी वाणी बन्द किए दे रहा हूँ ॥ ५१ ॥ हे भोजी
भाजी ! चाहे मुझे निर्दयतापूर्वक अपने दौलतोंसे काट डालो, चाहे
हाथ-कपी लताके बन्धनमें मुझे कसकर स्तम्भोंसे मसल डालो ।
हे क्रोध करनेवाली ! चाहे कुछ भी करो किन्तु अब शक्ति ही प्रसन्न
हो जायगी क्योंकि चाण्डाल कामदेवके तीसे बाणोंकी चोटसे
मेरे प्राण निकलते जा रहे हैं ॥ ५२ ॥ हे चञ्चल भित्तबनवाली
सुमुखी ! बार-बार रसीली चितवनमें चलाता, चटपट पावभगत
करने लगता, अरपन्त रसीली बातें चलातेका डौल हँसना,
बार-बार हलवी अधिक मन्नता दिखाते रहना और सखियोंकी
भी कोई बात न सुनना, यह सब क्रोध करनेका निराका
वक्र तुमने सीख कहाँसे लिया है ? ॥ ५३ ॥ हे
सुन्दरी ! तुम्हारे ओठोंका कष्ट पहुँचानेवाली जो चाँसुकी
बूँदें मैंने भूल्यताके कारण दुकरा दी थीं, आज वहाँ
बरीनियाँमें उलझी हुई वे चाँसुकी बूँदें पोंछकर उस पापका
प्रापरिषत् किए डाल रहा हूँ ॥ ५४ ॥ हे सुन्दर मुखवाली !
मैं चाहता हूँ कि नितम्बके भारकी उपेक्षा करके मेरे पास
सम्भोगके लोभसे आप हुए जो तुम्हारे पैर कमलके समान

चूड़ितं शुम्भितं च ॥ ५५ ॥ यदि प्रिये वेत्ति तव प्रभुं
मामनन्यमाधारणदासमङ्गुल्यः । तदद्य वल्लो मम
पात्रमस्तु स्वयंग्रहाश्लेषमहोत्सवानाम् ॥ ५६ ॥ यद्गम्यं
गुरुगौरवस्य सुहृदो यस्मिन्लभन्तेऽन्तरं यदाक्षिरव-
वशात्प्रसह्य सहते नमोपचारानपि । यल्लज्जा निरुणद्धि
यत्र शपथैरुत्पाद्यते प्रत्ययस्तत्किं प्रेम स उच्यते परि-
चयस्तत्रापि कोपेन किम् ॥ ५७ ॥ लावण्यकान्ति-
परिपूरितदिव्यमुखे स्मिन्स्मरेऽधुना इव मुखे तरलाय-
ताक्षि । लोभं यदेति न मनामपि तेन मध्ये सुव्यक्त-
मेव जलरशिरयं पयोधिः ॥ ५८ ॥ विकिर धवलदी-
र्घापाङ्गसंसर्पि चक्षुः परिजनपथवर्तिम्यत्र किं सर-
भेन । स्मितमधुरमुदरं देवि मामालपोषैः प्रभवति
मम पाण्योरञ्जलिः सेवितुं त्वाम् ॥ ५९ ॥ वितरय
कुक्षयोस्त्वदर्शनोपकमाणां मदमशरदजानां शान्तये
मामकीनाम् । सकृदपिपरिरम्भं सुभ्रु वीमूलकूलक-

काज हो गए हैं उन्हें बिना पोंछे ही धूलसहित अपने
मस्तकपर चढ़ा लूँ और चूम लूँ ॥ ५५ ॥ हे प्यारी ! वह जो
मैं तभी समझूँ कि तुम मुझे अपने चरणोंका चसापात्र
रस समझती हो जब आज अपने चाण्डालके महोत्सवका
आधार तुम मेरी छातीको बना लो ॥ ५६ ॥ जहाँ प्रेमी एक
दूसरेसे अधिक सम्मान पानेके पेरमें रहते हैं, जहाँ मित्रोंको
भी समझाने-बुझानेकी आवश्यकता पड़ जाती हो, जहाँ हँसीकी
बातमें भी यह कहा जाता हो कि 'मैंने अपनी सज्जनतासे इसे
सहन कर लिया', जहाँ लाजकी स्कावट आती रहती है और जहाँ
शपथ दिलाकर बिरास करवाया जाता है वह भी क्या देम
कहा जाता है ? नहीं, वह तो परिचय-भ्रात्र होता है । ऐसे
परिचयमें व्यर्थ कौन लाज करनेसे क्या काम ? ॥ ५७ ॥ हे
बकी-बकी रसीली चाँसोवाली ! सखीनेपन और चमकते भरे
हुए इस पूर्व दिशाके समान मुखको देखकर भी जो वे पयोधि
(स्तन, समुद्र) तनिक भी नहीं उलझ रहे हैं, इससे तो मैं
यही समझने लगा हूँ कि ये स्पष्ट ही जड़ (मूर्ख, पानीसे भरे)
हैं ॥ ५८ ॥ हे देवी ! मैं तो तुम्हारा सेवक हूँ, मुझसे क्या
प्रवराए जा रही हो, अपनी रसीली, अपनीवार और
कानतक पैड़ी हुई कौन तनिक हथर फेरकर मन्द
मुस्कानसे भरी अपनी मधुर और उदार बातें तनिक
हीसे स्वरसे तो कहो, यह मेरे दोनों हाथोंकी चञ्चल
तुम्हारी सेवा करनेके लिये प्रस्तुत है ॥ ५९ ॥ हे सुन्दर भौंहों-

वचनपरिणाहक्यातयोरेतयोस्ते ॥ ६० ॥ विराममेवा-
मलयातितोषात्तथापि रोषाकणितेय दृष्टिः । निशा-
पतिः श्लिष्यति पश्चिमाशामये किमाशां चिकलीक-
रोषि ॥ ६१ ॥ विसृज सुन्दरि सङ्गमसाध्वसं ननु
विरामप्रभृति प्रणयोन्मुखं । परिगृहाण गते सहका-
रतां स्वमतिमुक्तताचरितं मयि ॥ ६२ ॥ विहाय पूर्वा-
मधुना वतायं निशापतिः श्लिष्यति पश्चिमाशाम् ।
अहं तु कान्ते भवधोनौवस्तथाऽपि किं तऽकणित-
होषा ॥ ६३ ॥ व्यथयति वृथा मानं तन्वि प्रपञ्चय
पञ्चमं तरुणि मधुरालापैस्तापं विनोदय दृष्टिभिः ।
सुमुखि विमुक्षीमायं नादद्विमुञ्ज न वञ्चय स्वय-
मतिशयलिङ्गो मुग्धे मियोऽहमुपस्थितः ॥ ६४ ॥
व्याकृतं जलु सर्वतो विषघतस्त्यग्नेव लीनं
मनो नित्यं च त्वदधोनमेव नियतं मञ्जीघनं
मानिनि । मत्वेवं मयि नूनमभ्यविषया शङ्का भव्या

न्यज्यतां किमान्यत्र निशाकरोऽभिरमते मुक्त्वा लणं
कौमुदोम् ॥ ६५ ॥ शशिमुखि तव भानि भङ्गभङ्ग-
वञ्जनमाहकगलकालसर्पः । यदुदिनभयभङ्गनाय यूनां
न्यदघ्नसोधुसुधैव सिद्धमन्त्रः ॥ ६६ ॥ शीतांगुर्मुख-
मुत्पले तव दर्शा पद्मानुकागं करो रम्भागर्भनिभं
मचोरयुगलं याह मृणालोपमां । इत्याह्लादकराशि-
लाङ्गि रभसान्निःशङ्कमालिङ्गय मामङ्गानि न्यमनङ्गता-
पविधुराण्येहोहि निर्घापय ॥ ६७ ॥ सक्तद्वय समर्प्य
याले मम हस्ते मदनधमेतस्य । अपहरसे कुच-
कुम्भं त्वणितकरादमृतकुम्भमिव ॥ ६८ ॥ सन्न्येयात्र
गृहे गृहे युवतयस्ताः पृच्छ गन्वाधुना प्रयासः प्रण-
मन्ति किं तव पुनर्दासां यथा वर्तते । आन्मद्रोहिणि
दुर्जनप्रलपितं कर्णे वृथा मा कथाश्चिन्तयन्तेहरसा
भवन्ति पुरुषा दुःखानुयन्त्या यतः ॥ ६९ ॥ सगले
साहसरागं परिहर रम्भोरु मुञ्च संरम्भम् । विरसं

वाली ! तुम्हारे दर्शन पानेके लिये अपने ऊपर करनेवाले और
अपने कामदेवके बाणोंसे बिधे हुए मुक्त प्रेमीकी तपन कुम्भनेके
लिये उन दोनों स्तनोंका आकिर्णन एक बार मुझे दे दासो
जिनका चेरा कन्धोंतक पहुँच रहा है और जो कठोरता और
विश्राकटाके लिये प्रसिद्ध है ॥ ६० ॥ यद्यपि तुम वन्दे स्तनोपकी
साँसें ले रही हो तथापि तुम्हारी दृष्टि कोधसे कात है, ऐश्वर्य
चन्द्रमा परिचय दिशाको ज्ञातीसे लिपटा रहा है, अतः हे
सुन्दरी ! अब तुम्हीं क्यों मेरी आशा ककमोरे डाल रही हो !
॥ ६१ ॥ हे सुन्दरी ! बहुत देरसे मुझ प्रेमीसे पहले-पहल मिल
रही हो इसकी निमित्त जोड़कर मुझसे वैले ही आ लिपटा जैसे
आमके बूँदसे अतिमुक्ता नामकी जल लिपट जाती है ॥ ६२ ॥
देखो प्यारी ! यह रातका स्वामी चन्द्रमा पूर्वको छोड़कर
अब परिचय दिशाकपी नवेलीको गले लगा रहा है, अतः
जिसका जीवन ही तुम्हारे हाथमें है उसपर यह तुम्हारी
चितवन क्यों देवी हुई जा रही है ! ॥ ६३ ॥ हे तुम्हारे
शरीरवाली ! तुम्हारी यह सुष्म न्यर्थ सताए बाध रही है । हे
तक्षणी ! कोयल जैसी अपनी रसीली वाणी सुनाकर और
मेरी ओर अपनी साँसें फेरकर मेरी तपन कुम्भो ! हे सुन्दर
मुक्तवाली ! यों मुँह न मोड़ो । हे सुन्दरी ! मैं अत्यन्त
मेमाकुल होकर तुम्हारे सामने आया हूँ, मुझे धोखा न
दो ॥ ६४ ॥ हे कोष करनेवाली ! मेरा मन सभी विषयोंसे
इतरकर तुममें जीन हो गया है और अब यही समझो

कि मेरा जीवन भी सब प्रकारसे तब तुम्हारे ही हाथमें
है । यह समझकर मेरे विषयमें किसी प्रकारकी कोई शङ्का
मन करो । भला चन्द्रमाका मन क्या चाँदनीको छोड़कर
किसी दूसरेमें लग सकता है ॥ ६५ ॥ हे चन्द्रमुखी ! तुम्हारी
जो सुन्दर भाँहें युवकोंको इसनेके लिये भयङ्कर काले
साँप हैं उनसे उत्पन्न हुए भयकी दूर करनेके लिये तुम्हारा
अधर-रसकपी अमृत ही उनके लिये सिद्ध मन्त्र है
॥ ६६ ॥ तुम्हारा मुख चन्द्रमा है, साँसें कमल हैं, हाथ
जाल कमल हैं, तुम्हारी स्तनों जँघे केलेके खाभेकी गुर्दाके
समान हैं और भुजायें कमलताकके समान हैं । इस
प्रकार हे स-पूर्व सुखदाक अङ्गोंवाली ! तुम शीघ्र ही बल्लटके
कामके सन्तापसे जले हुए मेरे अङ्गोंसे लिपट जाओ । आओ,
आओ, मेरी तपन मिटाओ ! ॥ ६७ ॥ हे बाले । कामदेवके
तापसे तबें हुए मेरे हाथोंमें अपने स्तन-रूपी घड़े एक
बार सौंपकर अब व्यासेके हाथसे अमृतका घड़ा ले लेनेके समान
उम्हें क्यों छीने ले रही हो ! ॥ ६८ ॥ यहाँ घर-घर नवेलियाँ हैं ।
उनसे जाकर पूछ लो कि क्या किसीका प्रियतम ऐसे प्रणाम
कर-करके मनाता है जैसा मैं तुम्हारा दास मना रहा
हूँ ? मैं अपनी ही पुराई करनेवाली ! खबारोंकी झूठी
बातोंपर मत काम किया करो क्योंकि प्रेमरूपी रस मङ्ग
हो जानेपर पुरुष बड़ी कठिनाईसे सुखजन्ते हैं (पुरुषोंको
एक बार भङ्काकर देना उन्हें अन्दरमें खाना बड़ा कठिन है)

विरहायासं बोहुं न च चित्तमसहं मे ॥ ७० ॥ सुतनु
जहिहि मीनं मुञ्च याचो जहत्वं प्रणयिनि मयि कोपं
किङ्करे किं करोषि । अथ यदि तव चित्ते सापरा-
धोऽस्मि बाले निजभुजयुगवल्लीवन्धनं मां विधेहि
॥ ७१ ॥ सुतनु हृदयान्प्रन्यादेशयलीकमपैतु ते किमपि
मनसः सम्मोहो मे तदा यत्नवानभूत् । प्रवलतमसा-
मेवमायाः शुभेषु हि वृत्तयः सज्जमपि शिरस्यन्धः
क्षिप्तं धुनोन्त्यद्दिशद्भया ॥ ७२ ॥ सुभ्रुत्वं कुपितेत्य-
पास्तमशनं त्यक्ताः कथा योपितां दूरादेव मयो-
ज्जिह्वाः सुरभयः स्रगन्धधूपादयः । रागं रागिणि
मुञ्च मय्यवनते दृष्टे प्रसीदाधुना सद्यस्त्वद्विरहे
भयन्ति सुभगे सर्वा ममान्धा दिशः ॥ ७३ ॥ सुभ्रुत्वं
नवनीतकल्पहृदया केनापि दुर्मन्त्रिणा मिथ्यैव प्रिय-
कारिणा मधुमुखेनास्मासु घण्टीकृताः । किञ्चेतद्दि-
शुश क्षणं प्रणयिनामेणाक्षि कस्ते हितः किं धात्री-

॥ ६९ ॥ हे भोजी-भाजी । केलेके सन्नेके समान जों-
वाली ! यह सगहस और हड़बड़ी सब छुड़ दो क्योंकि मेरा
बिल तुम्हारा बिछाई जानेका नारस परिश्रम नहीं कर सकता
॥ ७० ॥ हे सुन्दर देहवाली ! अपनी मौन भङ्ग करके अपनी
दोड़ी दुई बाणीतों लांछो । मुझ प्रेमी दासपर क्यों इतना क्रु-
गई हो ? हे नखेली ! यदि मैं तुम्हारा समझमें सचमुच अपराधी
हूँ तो मुझे अपनी भुजा-कपी जताके बन्धनोंसे कस क्यों
नहीं लेता हो ॥ ७१ ॥ हे सुन्दर शरीरवाली ! मैंने भूलसे तो
तुम्हारा निरादर कर दिया था, उस बातको हृदयसे निकाल
हालो । उस समय मेरे मनमें अनजाने हो कुछ नासमझी आ
गई-थी । जिनसे तमागुण अधिक होता है (जिन्हें कोई बात
सूझ नहीं पड़ता) वे अच्छे कामोंमें प्रायः ऐसे ही व्यवहार
किया करते हैं क्योंकि अच्छा पुरुष सिरपर पड़ा हुई माकाका
भी सोंप समझकर दूर फेंक देता है ॥ ७२ ॥ हे सुन्दर
भोंहोंवाली ! तुमने काध किया तो मैंने भी भोजन छुड़
दिया, क्षियोंका चचा छुड़ दी, सुगन्धित माका, चन्दन,
भूप आदि सब छुड़ दिया । हे राग (क्रोध, जलाई)
रखनेवाला ! राग (भाव, जलाई) छुड़ दो, मुझ सेवक-
पर शीघ्र ही प्रसन्न हो जाओ । हे प्यारी ! आज तुम्हारे
बिलोहमें मेरे लिये सारी दिशाएँ अन्धकारसे भरी आन पड़
रही हैं ॥ ७३ ॥ हे सुन्दर भोंहोंवाली ! तुम्हारा हृदय मयस्वनके
समान कोमल है पर भूडे ही द्वितीय बननेवाले तथा मीठी-

तनया वयं किमु सखी किं वा किमस्मत्सुहृत् ॥ ७४ ॥
सूर्येऽस्ताचलमालिमालिनि गृहे दीपावलीशालिनि
प्राणस्वामिनि मानिनि प्रतिपदं सत्कारमातन्वति ।
यन्मानं न जहाति कोपकलनादालोहितस्तत्क्षणा-
दिन्दुः सुन्दरि पूषेपर्वतशिरः सीमानमारोहति ॥ ७५ ॥
सोदुमलमस्मि नाहं सुन्दरि मन्दागमाद्विस्मयं ते ।
पञ्चशराखहतं मां सखीवय चारुगात्रि परिरम्भेः
॥ ७६ ॥ जिह्वं यद्यपि वीक्षितं नयनयोस्ताप्रा
तथापि घृतिर्माधुर्यापि सती स्खलत्यनुपदं ते गगना
वागियम् । निःश्वासा जियता अपि स्तनभरोक्त-
म्येन संलक्षिताः कोपस्ते प्रकटं प्रयत्नविधुतोऽप्येव
स्कुटं लक्ष्यते ॥ ७७ ॥

सत्यनुनयः — अकुल्यधनकेन वाष्पसलिलं निक्षिप्य
निक्षिप्य किं तुष्णीं रोदिषि कोपने यदुतरं फूत्कृत्य रोदि-
ष्यसि । यस्यास्ते पिशुनोपदेशवचनैर्मानेऽतिभूमि गते

मीठी बातें करनेवाले किसी उलटी सम्मति देनेवालेने तुम्हें
मुझपर कोधित कर दिया है । किन्तु हे सृगनयनी !
तुम स्वयं भी तो सोच-विचार कर देल जो कि तुम्हारा
सच्चा द्वितीय कीन है—आपके लड़के, या सखियाँ, या
मेरे मित्र या मैं ॥ ७४ ॥ हे क्रोध करनेवाली ! जब
कि सूर्य अस्ताचलकी चोटीपर चले गए, पर्वतों कीने जलने
लगे और प्राचनाथ बार-बार तुम्हें मना रहे हैं तब भी जो तुम
क्रोध नहीं छोड़ रही हो इसीलिये वह पन्ध्रमा मानो क्रोधसे
खाल होकर तुरन्त उदयाचलकी चोटीपर चढ़ा आ रहा
है ॥ ७५ ॥ हे सुन्दरी ! तुम्हारे भीरे-धीरे जानेका विजम्भ
मुझसे नहीं सहा जा रहा है इसलिये हे सुन्दर शरीरवाली !
कामदेवके बाणसे बिंधे हुए मुझ वीरको गले जगकर झिझा जा
॥ ७६ ॥ यद्यपि तुम्हारी चितवन रसीली है पर शीलोंमें
जलाई मजक रही है, यद्यपि तुम्हारी गद्गद वाक्कीमें मधुरता
है फिर भी वह लड़कदाकर निकल रही है और यद्यपि तुम
सौंस रोके आ रही हो फिर भी स्तनोंके दिखनेसे वे स्पष्ट
दिलवाई दे रही हैं । इस प्रकार बड़े प्रयत्नसे दबाया हुआ
तुम्हारा क्रोध भी स्पष्ट दिखाई पड़ रहा है ॥ ७७ ॥

सखीको प्रार्थना : हे क्रोध करनेवाली ! अपनी
उँगलियोंके नखोंसे शीघ्र छिड़क-छिड़ककर क्यों सिसक रही
हो ? जवारोंके बहकानेपर जब तुम्हारा क्रोध अत्यधिक
बढ़ जावगा तब दुखी होकर तुम्हारा प्रियतम तुम्हें मनावा

निर्विण्णोऽनुनयं प्रति प्रियतमो मध्यस्थतामेष्यति ॥१॥
अञ्जति रजनिरुदञ्जति निमिरमिदञ्चञ्जति मनोभूः ।
उक्तं न त्यज युक्तं विरचय रक्तं मनस्तस्मिन् ॥ २ ॥
अनालोच्य प्रेम्णः परिणतिमनाहत्य सुहृदस्त्वया-
काण्डे मानः किमिति सरले सम्प्रति कृतः । समा-
कृष्टाद्येते प्रलयदहनोद्भासुरशिक्षाः स्वहस्तेनङ्गागस्त-
द्वलमधुनारण्यकदितैः ॥ ३ ॥ अयेऽस्तमयते शशो नहि
कृशीभवत्याग्रहो विनश्यति तमो हटं किमणुमव्य-
पास्ते मनः । सखि प्रकटितोऽरुणो न कण्ठोदयस्ते
मनाःप्रयाति कलु यामिनी न विमनीकृष्टा नायकम्
॥ ४ ॥ अरुणो च तरुणि नयमे तव मलिनं च प्रियस्य
मुखम् । मुखमानतश्च सखि ते ज्वलितध्यास्यान्तरे
स्मरज्यत्ननः ॥ ५ ॥ असङ्गतो नायं न च कलु गुणै-
रेव रहितः प्रियो, मुक्ताहारस्तव चरणमूले निपतितः ।
गुहाणैर्न मुग्धे यजतु निजकण्ठप्रणयितामुपायो
नास्त्यम्यस्तव हृदयसन्तापशमने ॥ ६ ॥ आयातः

कुमुदेभ्वरो विजयते सर्वेभ्वरो मानवो भूः स्फूर्जति
भैरवो न निकटं प्राणेभ्वरो मञ्जनि । गते सिद्धरसाः
प्रसूनविशिखो वैद्योऽनवद्योऽस्यो मानव्याधिरयं
कशोदरि कथं त्वत्त्वेनसि स्थास्यति ॥ ७ ॥ कुपि-
तासि यदा तन्वि निधाय करजत्नम् । यथान भुज-
पाशाभ्यां कण्ठमस्य ददं तदा ॥ ८ ॥ जपलहृदये किं
स्वातन्त्र्यान्त्यं गृहमागतश्चरणपतितः प्रेमाद्राद्रिः
प्रियः समुपेतितः । तदिदमधुना यावज्जीवं निरस्त-
सुखोदया रुदितशरणा दुर्जातानां सहस्य कथां फलम्
॥ ९ ॥ जहीहि कोपं दयितोऽनुगम्यतां पुराऽनुशते
तव चञ्चलं मनः । इति प्रियं काञ्चिदुपैतुमिच्छतां
पुरानुनिन्ये निपुणः सखीजनः ॥ १० ॥ त्वां विसंत-
चिरं वहन्त्यमतिभ्रान्ता भृशं तापितः कन्दर्पणं च
पातुमिच्छति सुधासंयादि विम्याधरम् । अस्याहं
तदलङ्कृतं क्षणमिह भ्रष्टेपलकीलवक्त्रांते दासजनोऽपि
सेवितपदाम्भोजे कुतः सम्भ्रमः ॥ ११ ॥ नो तरणं

भी छोड़ देगा और तब तुम्हें फुट-फुटकर रोना ही हाथ जगेगा
॥ १ ॥ हे प्यारी ! रात हो चली है, चौपेरा । चला है, कामदेव
भी तुम्हें सताए डाल रहा है । ऐसी दरामें यही चपला ॥
कि तुम अपनी बातपर अड़ी रहो और उसीमें रमी रहो
॥ २ ॥ हे सरल स्वभाववाली ! प्रेमका परिणाम न सोचकर
और सखियोंकी बात सुनी-जनसुनी करके यह तुमने
कहाँसे असमयमें ही कोप दान किया है ? ऐसा करके
मानो तुम अपने हाथसे प्रलय कावकी जपलपाती हुई अग्निके
अग्नारे लींच रही हो । अब तुमसे कुछ भी कहना बैसे ही
व्यर्थ है जैसे जङ्गलमें रोना ॥ ३ ॥ देखा ! चन्द्रमा
अस्त हो रहा है पर तुम्हारा दुरामह नहीं कम हं पा रहा
है । चौपेरा मिटा जा रहा है किन्तु तुम्हारे मनका तनिक
भी नहीं मिट रहा है । हे प्यारी ! जानी जा गई
किन्तु तुमपर तनिक भी कहना न खाई ! इधर रात भी बीती
जा रही है, इसलिये अब तो प्रियतमकी न सताओ ॥ ४ ॥
हे तरुणी ! तुम्हारी आँखें जाल हुईं कि प्रियतमका मुल फीका
पड़ा और ज्योंही तुम्हारा मुल झुका कि तत्काज उसके
मनमें कामाग्नि धधकी ॥ ५ ॥ तुम्हारा यह मोतीका हार और
भूला पति दोनों न तो दुराचारी ही है, न गुब्ब (सूत,
सुन्दरता आदि) से रहित ही हैं तिसपर भी वे दोनों
तुम्हारे चरणोंमें पड़े हैं । अतः हे पगली ! इन्हें उठाकर गले

झगा जो क्योंकि तुम्हारे हृदयका ताप शान्त होनेका दूसरा
कोई उपाय नहीं है ॥ ६ ॥ हे दुबली-पतली ! कुसुमोंके
स्वामी चन्द्रमा आ पहुँचे हैं, सबका स्वामी पवन बहने लगा
है, सज्जकर गूँजनेकाजा भीरा पास ही उड़ रहा है और
प्राणनाथ भी पासमें ही हैं । अब ये सब सज्जावनी औपधियाँ
और सिद्धहस्त वैद्यराज कामदेव तुम्हारे पास ही उपस्थित हैं
तब बताओ तुम्हारा कोधकरा राग तुम्हारे चित्तमें टिक कैसे
पावेगा ? ॥ ७ ॥ हे दुबले शरीरवाली ! यदि प्रियतमपर तुम्हें
कोप है तो इसके शरीरपर अपने नख चला-चलाकर अपनी
सुजाके बन्धनसे इसका गला कसकर जकड़ लो ॥ ८ ॥ हे
चञ्चल हृदयवाली ! स्वयं वरमें आए हुए चरणोंपर पड़े हुए
और प्रेमसे भरे हुए प्रियतमकी भजा तुमने पेटमें घाकर क्यों
उपेक्षा की ? अब जीवन भर दुखी होकर केवल आँसु बहाते
हुए अपने निरर्थक कोधका फल भोगो ॥ ९ ॥ पतिके पास
जानेकी चाहसे भरी किसी नबेलीकी उसकी चतुर सखियाँ
यह कहकर पहल्लेसे ही मना रही हैं कि 'कोध छोड़ दो, पतिको
अनुकूल बना लो नहीं तो तुम्हारे चञ्चल मनमें अन्तमें पड़तावा
ही पड़तावा रह जायगा' ॥ १० ॥ हे सखी ! मनमें तुम्हें बसानेवाले
इस प्रियतमकी बहुत दुःख है तथा कामदेवने इसे अत्यधिक
तपाया है इसलिये अब यह तुम्हारा अधरासृत पाना चाहता
है तो कुछ देरतक इसकी गोदमें तो जा बैठो । तनिक-सी

भजसे न जल्पसि सुधाधारानुकारा गिरो हृक्पातं
 कुरुपे न वा परिजने कोपप्रकाशच्छलान् । इत्थं केत-
 कगर्भगारि दयिते कोपस्य सङ्गोपनं तत्स्यादेव न
 चेत्पुनः सहचरी कुर्वीत साचिस्मितम् ॥ १२ ॥ पादा-
 मते प्रणयपेशलवाचि कान्ते त्यक्तस्त्वया यदति-
 कोपनया न मन्युः । तीव्रानुतापमलितः स्वय-
 मेष मन्ये निर्याति ते तदयमभ्रजलच्छलेन ॥ १३ ॥
 पुरश्चक्षुरागस्तदनु मनसाऽनन्यपरता तनोर्मलानियंस्य
 स्वयि समभवद्यत्र च तव । युवा सोऽयं प्रेयानिह
 सुषवने मुञ्च जडतां विधातुर्द्वन्द्वं घिलसतु सका-
 मोऽस्तु मदनः ॥ १४ ॥ प्रकारो मानस्य प्रियसखि
 यवीहृक्कचिदपि भृता वा दृष्टो वा कथयतु तदाऽयं
 परिजनः । प्रियं पादमान्तप्रणतमयधूय त्वमधुना
 वृत्तिच्छिद्रैः पश्यन्त्यपसर हांसध्वन्त्यसुहृदः
 ॥ १५ ॥ मानं मानिनि मुञ्च मानसभुवः साम्राज्यमु-

ज्जम्भतां हा हा गच्छति यामिनी न समयो यातः
 पुनः प्राप्यते । अत्यल्पागसि कल्पिताधिकमये कान्ते
 पदान्तानते कोऽयं कोकिलवाणि केलिसमये कोपस्त्व-
 यालम्बितः ॥ १६ ॥ मुग्धे किं नक्षरैः त्रिपश्यधिरतं
 नेत्रास्तु मानोन्नते पश्येनं चरणप्रनम्रशिरसं स्वं
 कान्तमात्ताञ्जलिम् । अप्रदं तव चेतसि प्रणयिनि
 प्राप्तेऽतिनिर्विण्णतामन्यासकमनस्युपेक्षितगता फूटकृत्य
 रोदिष्यति ॥ १७ ॥ मुग्धे मानं न ते कर्तुं युक्तं
 प्राणाधिके प्रिये । धत्से मत्स्वी कियत्कालं जीवितं
 जीवनं विना ॥ १८ ॥ मुग्धे मुग्धतयैव नेतुमखिलः कालः
 किमारभ्यते मानं धत्स्व भृतिं वधानं शृङ्खलां दूरी-
 कुरु प्रयासि । सख्यैश्च प्रतियोधिता प्रतियवस्तामाह
 भीतानना नीलैः शंस हृदि स्थितो हि ननु मे प्राणै-
 श्वरः श्रोष्यति ॥ १९ ॥ यत्पादं प्रणतः प्रियः पदवया
 वाचा स निर्मादितो यत्सक्या न कृतं बन्धो जडतया

भीहों बला देनेपर ही वरमैं आ जानेवाले तथा चरककमलकी
 सेवामें लगे हुए ऐसे सेवकपर भी यह कांथ कैसा ? ॥ ११ ॥
 हे केवलेकी कांसल पहुँचके समान गोरी ! कांधका बहाना
 लेकर जो तुम बिछीनेकी ओर नहीं पद रहो हो, मुझसे
 अमृतधाराके समान बातें नहीं निकाल रही हो और अपनी
 सखियोंसे भाँलें नहीं मिला रही हो, यह तुम्हारा बनावटी
 क्रोध भी क्षिप जाना यदि तुम्हारी सखी भुँद फेरकर
 हँस न पड़ती ॥ १२ ॥ तुम्हारे पैरोंपर पदकर प्रेमसे चिकना-
 चुपड़ी बातें करनेवाले प्रियतमपर भी जो तुमने अत्यधिक
 क्रोधी होनेके कारण क्रोध नहीं छोड़ा, वही क्रोध मेरी समझमें
 अत्यधिक तापसे गलकर आँसुओंके रूपमें स्वयं बाहर आ
 रहा है ॥ १३ ॥ हे सुन्दर मुखवाली ! तुम्हारे स्निग्धे पहले
 जिसकी भाँलें जाल हो उठती हैं, फिर एकमात्र तुममें जिसका
 मन लीन होकर शरीर मलिन हो जाता है और जिसे देखकर
 तुम्हारी भी ऐसी ही दशा हो जाती है वही तुम्हारा प्यारा
 युवक यह आ पहुँचा है अतः अब तुम खिल उठो, मझाकी
 चतुराई फले-फूले और कामदेव भी सन्तुष्ट हो जाय ॥ १४ ॥
 हे प्यारी सखी ! ये तुम्हारे आस-पास बैठ हुए लोग हो मझा
 बता तो दें कि ऐसा रुठना भी कहीं किसीने देखा या सुना
 है कि प्रियतम तो तुम्हारे पैरोंपर गिरकर तुम्हें मनाते रहें और
 तुम उन्हें ठुकरा दो ! अब मटपट सरक जाओ यहाँसे, नहीं तो
 द्वारके मरौखोंसे घेरी देखेंगे और हँसेंगे ॥ १५ ॥ हे क्रोध

करनेवाली ! रुठना छोड़ दो, कामदेवकी आज्ञा सिर-माथे
 चढ़ाओ, हाय ! हाय !! रात बीती जा रही है । बीता हुआ
 समय फिर हाथ नहीं आता, हे कीयलके सभाज बोलनेवाली ।
 पतिके तनिकसे अपराधको भी अत्यधिक समझकर अब पैर
 पड़नेवाले प्रियतमपर भी संभोगके समय तुममें यह क्रोध कहाँसे
 आ गया ! ॥ १६ ॥ हे भोजी-भाजी सखी ! बार-बार अपने
 नखोंसे क्याँ आँसु छिड़के जा रही हो ? हे रुठनेवाली ! हाथ
 जोड़कर तुम्हारे पैरोंपर सिर झुकाए हुए प्रियतमको देखो । अब
 भी यदि तुम्हारा मन न पसीजा तो ऐसी दशामें खिन्न होकर
 यदि यह किसी दूसरी नवेलीपर रोझकर तुमसे मुझ मोह
 खेगा तब तुम्हें जनमभर केवल फूट-फूटकर रोना ही हाथ
 लगेगा ॥ १७ ॥ चरों पगली ! प्राणोंसे भी अधिक प्यारे
 पतिपर क्रोध करना उचित नहीं है । भला, जलके बिना मछली
 किसना देर जीवित रह सकती है ? ॥ १८ ॥ 'हे भोजी-भाजी !
 अपनी सिंघाईमें हो सारा समय व्यर्थ क्याँ बिताए ढाक रही
 हो ? कुछ रुठो, कुछ मनमें धीरज बाँधो और पतिपर ऐसा
 सरलताका व्यवहार जादू दो ।' जैसे ही सखीने इस प्रकार
 समझाया, वैसे ही नवेलीके मुखमें भयके बिड़क दिखाई देने
 लगे और उसने इतना ही उत्तर दिया कि 'बरी धीरे कह ।
 नहीं तो मेरे मनमें बसे हुए प्राणनाथ सब बात सुन लेंगे'
 ॥ १९ ॥ पैरों पदकर मनावेवाले प्रियतमको भी जो इसने कठोर
 स्वरसे पत्रकार दिया, मुखताके कारण सखीकी बातें भी जो

यन्मम्युरेको धृतः । पापस्यास्य फलं नदेनदधुना
यच्चन्दनेन्दुयुतिप्रालेयाम्बुसमीरपद्मजविसैर्गात्रं मृदु-
दहते ॥ २० ॥ यदि कुप्यसि नास्ति रतिः कोपेन
विनाऽथवा कुतः कामः । कुप्य च कोपय च त्वं
प्रसीद च त्वं प्रसादय च कान्तम् ॥ २१ ॥ रमणे चर-
णमान्ते प्रणतिप्रवणेऽधुना । वदामि सखि ते तत्त्वं
कदाचिन्नोचिताः कथं ॥ २२ ॥ लिखन्नास्ते भूमि
वहिरवनतः प्राणदयितो निराहाराः सख्यः सनतरु-
दितोऽहृन्मयनाः । परित्यक्तं सर्वं हसितपटितं पञ्चर-
दुकैस्तथावस्था चेयं विरज्य कटिने मानमधुना ॥ २३ ॥
विमृशामुं मानं सफलं यच्चस्साधु सुहृदां मुधा
सन्तापेन ग्लपयसि किमङ्गं स्मरभुषा । प्रियं पाद-
प्राप्तप्रणतमधुना मानय भूशेन मुग्धे प्रन्यतुं प्रभवति
गतः कालहरिणः ॥ २४ ॥ वियदस्मिन्मलिनाम्बुगर्भ-
मेघं मधुकरकोकिलकुजितैर्दिशां श्रीः । धरणिर्भिन-

वाङ्मयाद्भुता प्रणतिपणे दयिते प्रसीद मुग्धे ॥ २५ ॥
समयनक्तिनं विन्यस्यन्तीं दशं निमिरे पथि प्रनितरु
मृदुः स्थिग्या मन्दं पदानि वितन्यतीम् । कथमपि
गृहःप्राप्तमङ्गनङ्गनरङ्गिभिः सुमुखि सुभगः स त्वां
पश्यन्नुपेतु रुतार्थताम् ॥ २६ ॥ स्निग्धे यत्परयासि
यत्प्रणमति स्तब्धासि यद्वागिणि हेमस्थासि यदुन्मुखे
विमुखनां यातासि तस्मिन्प्रिये । तन्मुग्धे विपरोतका-
रिणि नव श्रीग्वण्डचन्दां विपं शीनांशुस्नपनो द्विमं
हुतवहः प्रोडामुदो याननाः ॥ २७ ॥ स्मेरराजीवनयने
नयने किं निमोलिते । पश्य निजिनकन्दर्पे कन्दर्पशर्मा
प्रियम् ॥ २८ ॥

कलहान्तरिताप्रलापारव्यानम्— अकराः किमु नेत्रशो-
णिमानं किमकापीः करपदलवावरोधम् । कलहं
किमधाः कथा रसज्ञं हितमर्थं न विदन्ति दैवदृष्टाः
॥ १ ॥ अचारभ्य यदि प्रिये पुनरहं मानस्य खान्यस्य

हृत्मे नहीं मानी और इठ करके जो यह क्रोध ही किए रही उसी
पापका यह फल है कि चन्दन, चोंदनी, पासेका जल, पवन,
कमल और कमलमाकसे भी इसका शरीर सदा धुनता रहता है
॥ २० ॥ हे सखी ! यदि क्रोध कर रही हो तो फिर प्रेम कहीं और
विना क्रोधके काम कैसे ! इसलिये तुम खय भी क्रोध करो
तथा अपने पतिदेवसे भी क्रोध कराओ और फिर स्वयं प्रसन्न
होकर उन्हें भी प्रसन्न करो ॥ २१ ॥ हे सखी ! मैं तुमसे यह
तखकी बात बताए देती हूँ कि जब प्रियतम प्रणाम करनेके लिये
चारोंपर पड़े उस समय क्रोध भुला देना चाहिए ॥ २२ ॥
हे कठोर हृदयवाली ! तुम्हारे प्रियतम बाहर सिर झुकाए
हुए धरती तुरेद रहे हैं, सदा रोते रहनेसे कृष्ण आँखोंवाली
सखियाँ उपवास कर रही हैं और पिजड़ेमें पड़े हुए सुभाने
हँसना-बोलना छोड़ दिया है, फिर भी तुम्हारा यह दशा
है ! अरे अब तो क्रोध छोड़ दो ॥ २३ ॥ अरी पगली ! यह
रुटना छोड़ो और सखियोंकी बातें मान लो । व्यर्थ हो
कामके सन्तापसे क्यों अपने चङ्ग सुलाए बाल रही हो !
अब मरते पैरोंपर पड़कर मनाते हुए प्रियतमकी भलीभाँति
मना को क्योंकि गया हुआ समयरूपी हरिण फिर हाथ नहीं
आता ॥ २४ ॥ अरी पगली ! काले-काले भौरोंके समान
हृत् जलसे भरे हुए बादलोंसे आकाश घिरा हुआ है, भीरे
तथा कोयलकी ध्वनिते दिशाएँ मनभावना हो रही हैं और
निकलते नये आँसुओंसे धरती हरी हो गई है, इसलिये

प्रणाम करते हुए प्रियतमपर प्रसन्न हो जाओ ॥ २५ ॥ हे
सुन्दर मुखवाली ! धँधरेमें दूरके कारण घबराहटसे भरी हुई
आँखें इधर-उधर मचानेवाली और मार्गमें कुत्तोंके सामने
बार-बार खड़ी होकर धीरे-धीरे घेर खड़ेवाली तुम नवेलीकी
किसी प्रकार पक्षात्तमें पावर अपने कामसे तपे हुए आँसुओंसे तुम्हें
झिपटाना हुआ तेरा प्रियतम कृतार्थ हो जाय ॥ २६ ॥ तुम
जो उस उम्र में प्रियतमपर बटोरता दिखा रही हो, उसके प्रणाम
करनेपर भी पसीज नहीं रही हो, उसके अनुशास करनेपर भी
उसपर तुनकती जा रही हो और उसके सम्मुख होते ही मुख
फेरकर उछटा काम कर रही हो इसलिये यदि तुम्हारे लिये
चन्दनकालेप भी विपके समान हो जाय, चन्द्रमा भी सूर्य बन
जाय, पाला आग बन जाय और खेलकी प्रसन्नता भी विपलि
बन जाय तो उचित ही है ॥ २७ ॥ हे सखी ! तुमने क्यों मूँद रक्खी है ? अपने उस
प्रियतमकी देखो जो कामको जीतकर भी इस समय कामके
वशमें हो रहा है ॥ २८ ॥

लङ्कर वैठी हुई नवेलीका रोना-कलपना :
हे सखी ! उस समय क्रोध करके पतिसे लड़कर तुमने
अपनी आँखें क्यों खाल कर लीं और जब वे तुम्हें खू
रहे थे उस समय उनके हाथ क्यों रोक लिए थे ?
हे प्रेमका ईग जाननेवाली ! सचमुच आभाये लोग अपने
द्विपकी बातें सनिक नहीं समझते ॥ १ ॥ हे सखी ! तुम्हारे

वा शृङ्गीयां शठ दुर्नयेन मनसा नामापि संक्षोभतः ।
तत्तेनैव विना शशाङ्ककिरणस्पष्टादृहासा निशा एको
वा दियसः पयोदमलिनो भूयान्मम प्रावृषि ॥ २ ॥ इदं
कृष्णं कृष्णं प्रियतम ननु श्वेतमथ किं शमिष्यामो यामो
भवतु गमनेनाथ भवतु । पुरा येनैवं मे चिरमनुसृता
चित्तपद्मो स एवान्यो जातः सखि परिचिताः कस्य
पुरुषा ॥ ३ ॥ उपचारानुनयास्ते कितवस्योपेक्षिताः
सखीवधसा । अधुना निष्ठुरमपि यदि स वदति
कलिकैतवाद्यामि ॥ ४ ॥ एषा दोषा यथाऽर्था प्रियतम
भवतो हन्त जाता द्वियोगे स्त्रीहत्यापातकोति प्रधि-
निमुपगते लाञ्छनाति त्रिलोफ्याम् । नैवं भूयाऽपराधं
वत दयित कदाऽप्याचरिष्यामि सत्यं स्वत्यक्तां मां
सुतिर्मर्मसिजशमनः सायकैर्हन्तुमुक्तः ॥ ५ ॥ कथ-
मपि सखि श्रीडाकोपाद्भजेति मयोदिते कठिनहृदय-
स्त्वयस्या शस्यां यत्नाद्गत एव सः । इति सरभसभ्य-
स्तप्रेमिण्यप्येतपृष्ठे स्पृहं पुनरपि हतमीडं चेतः

करोति करोमि किम् ॥ ६ ॥ केकाभिः कलयन्तु केकि-
निवहाः सम्भूय कर्णज्वरं विचुङ्क्तिः सह भीषयन्तु
परितः सद्योधराणां घटाः । पञ्चोर्वधरीकरोतु ककुभः
सधाः शराणां रवैर्नाहं वग्धदुरन्तजीवनकृते कस्यापि
वश्या सखि ॥ ७ ॥ जीवितनाथेन तदा यदुशोऽनुमयो
व्यधायि हा हस्त । रोषविमृष्टा सशपथमथाप्यहं तं
निराकार्यम् ॥ ८ ॥ तद्वक्त्राभिमुखं मुखं विनमितं
हृष्टिः कृता पादयोस्तस्यालापकुतूहलाकुलतरे धोत्रे
निकृष्टे मया । पाणिभ्यां च तिरस्कृतः सपुलकः स्वेदो-
द्गमो भगव्योः सख्यः किं करवाणि यास्ति शतशो
यत्कञ्चुके सन्धयः ॥ ९ ॥ पदोषान्ते कान्ते लुठति
तमनारत्य भवनान्मया निष्कामन्या सखि किमपि
नालोचितमभूत् । अयं शोणीभारः स्तनयुगमिमो
निर्भरशुक तदानीमेताभ्यां कथमिव बिलम्बो न
विहितः ॥ १० ॥ प्रयाहि तत्रैव ययानुरज्यसे किमत्र
निस्त्रिंश तव प्रयोजनम् । न कञ्चुकप्रस्थिमपाकुदप्य

सामने मैं यह कह रही हूँ कि मुख्यता तथा मनकी चञ्चलताके
कारण यदि मैं आजसे अपने प्रियतमके विषयमें क्रोध वा
इस प्रकारकी दूसरी बातोंका नाम भी लूँ तो मेरी यह दशा हो
कि चन्द्रमाकी किरणोंके प्रकाशसे उजली रातें तथा वर्षामें घिरे
हुए बादलोंके घग्घकारसे भरे हुए दिन उनके बिना ही बीतें
॥ १ ॥ पहले जब मैं कहती थी—‘उजला है’ तो वे बे कहते
थे—‘हाँ’ । मैं कहती थी—‘जाऊँगी’ तो वे कहते थे—‘चल
रहा हूँ’ । मैं कहती थी—‘क्या कामिएगा चलकर’ तो वे कहते
थे—‘ठीक है जाने दो’ इस प्रकार जो पहले मेरे कहनेमें चकलता वा
आज वही पराधा बन गया । हे सखी ! पुरुष कभी किसीसे सच्चा
प्रेम नहीं करते ॥ २ ॥ सखियोंकी बातपर और उस धूर्त प्रियके
बलावटी अनुनय-विनयपर उस समय मैंने ध्यान नहीं दिया
किन्तु इस समय यदि वह कभी बातें भी करे तो भी कगड़ा
करनेके ही बहाने मैं वहाँ चली जाऊँगी ॥ ३ ॥ हे प्रियतम ! जब
कि तीनों कोकोंमें आपके वियोगका यह अपवश फैल रहा है कि
‘यह खीकी हत्या करनेवाला पापी है और दोषी है’ उस
समय यह शोषा (रात, दोषोंसे भरी) भी अपने सखे अर्थवाली
हो गई है । हे प्रियतम ! मैं सत्य कहती हूँ कि अब
ऐसा अपराध कभी भी नहीं करूँगी क्योंकि जब आप मुझे
छोड़ देते हैं तो कामदेव मुझे अपने तीखे बालोंसे बेधनेके
लिए मट आ डटता है ॥ ४ ॥ हे सखी ! लेखमें क्रोधसे अब मैंने

कहा ‘जाओ’ तो वह कठोर हृदयवाला बिल्लीना झोड़कर हट
करके चला गया । उसका सारा प्रेम जाता रहा, उसमें तनिक
भी दया नहीं रह गई, फिर भी वह निगोड़ा मन उसीके पीछे
पागल रहता है बताओ क्या कहें ? ॥ ५ ॥ हे सखी ! पापे
संसारके सारे मोर हूढ़े होकर अपनी बोली बोझ-बोझकर
मेरे काम काट डालें, चाहे बादलके फुहारके कुपक धिर-धिरकर
बिजली चमका-चमकाकर मुझे डरावें और चाहे कामदेव अपने
बाणोंकी गूँमसे सब दिशायें बहरी कर दे, पर मैं इस पुत्र तथा
चञ्चल जीवनके लिये किसीके आगे माथा नहीं रगडूँगी
॥ ६ ॥ हाय ! कैसे दुःखकी बात है कि प्रायनाथने तो सीगन्ध
ला-लाकर अनेक प्रकारसे मुझे मगथा किन्तु क्रोधमें मेरी बुद्धि
ऐसी मर हो गई कि हस्तनेपर भी मैंने उन्हें फटकार दिया ॥ ७ ॥
हे सखियों ! ज्यों ही वे मेरे सामने आए मैंने अपना सिर भुका
लिया, आँखें पैरों गड़ा लीं, उसकी बातें सुननेको उठावसे
कान डक लिए और उठे हुए रोंगटोंके साथ गाँवोंपर जाया
हुआ पसीना भी हाथसे पोंछ लिया, पर मेरी खोलीमें जो वे
सीकड़ों जेब हुए जा रहे हैं इनका मैं क्या उपाय कहूँ ? ॥ ८ ॥
हे सखी ! जिस समय प्रियतम पैरोंपर जोट रहे थे उस
समय उनका अनादर करके घरसे बाहर निकलते समय मुझे
कुल भी नहीं दिखाई दिया और ये हस्तने भारी नितम्ब तथा
मोटे-मोटे स्तनोंने भी उस समय तनिक-सी काया न पहुँचाई

मे कथं हृदि ग्रन्थिमपाकरित्यसि ॥ ११ ॥ भर्तृयस्य
कृते गुह्यगुरभूशोषी कनिष्ठीकृता धैर्यं कोपधनं गतं
सहचरी नीतिः कृता दूरतः । निर्मुक्ता तृणवज्रपा परि-
चिता क्रोतस्थिनी विन्दुवत्स काधादवधोरितो हत-
धिया मातर्वलीयान्विधिः ॥ १२ ॥ भया नावहोत्रस्त-
हितहतकोपान्तरितया न रुद्धो निगच्छप्रयमनिधि-
लक्षः प्रियतमः । अयं त्याकृतलः परिणतिपराभर्षकु-
शलः सखीलोकोऽप्यासीन्नखित एव चित्रेण किमिदम्
॥ १३ ॥ मानव्याधिनिपीडिताहमधुना शक्नामि तस्या-
न्तिकं तो गन्तुं न सखीजनोऽपि चतुरो यो मां यत्ना-
क्षेप्यति । मानी सोऽपि जनो न साधयभयादभंगति
मातः स्वयं कालो याति खलं च जोयितमिदं जुगुणं
मनश्चिन्तया ॥ १४ ॥ मानोज्ञतेत्यसदनेत्यतिपरिउतेनि
मन्येष धिक्कृतिरनेकमुक्तो सखीनाम् । दाक्षिण्यमात्र-
मक्षणेन धिक्चेष्टेन धूर्तस्य तस्य हि गुणानुपधर्षयन्ति

॥ १० ॥ हे निर्दयी ! जिसे तुम चाहते हो उम्मीके पास
जाओ न ! यहाँ तुम्हारा क्या काम है ? तुम मेरी पोलोकी
गाँठ भले ही खोल दो किन्तु मेरे हृदयमें पड़ी हुई गाँठ
कैसे खोल पाओगे ? ॥ ११ ॥ जिस प्रेमीके लिये मैंने अपने
घरके बड़े-बूढ़ोंकी बात न मानी, समाजकी भी कुछ नहीं
समझा, अपना धीरज-रूपी धन भी खो दिया, सखियोंकी यातें
भी सुनी-अनसुनी कर दीं, लाज भी लिनकेके समान दूर फेंक
झाकी और नदियोंकी भी झुँके समान कुछ न समझकर लौट
आया उस प्रियतमकी भी मैंने अपना मूर्खतासे कट कर दिया ।
सबशुभ मैं ! सब बातोंमें भाग्य ही यही प्रयत्न होता है ॥ १२ ॥
प्रियतमने क्यों ही दूसरा नवेज्जिका नाम लिया था ही मुझे तो
इतना क्रोध आ गया कि मैं रुठकर चले जाते हुए अति सुन्दर
प्रियतमकी न लौटा पाई किन्तु मेरे मनकी बात समझनेवालों
तथा समझाने-बुझानेमें चतुर सखियों क्यों विश्व लिखी-सी
कड़ी ताकती रह गई ॥ १३ ॥ हे माता ! मैं इस समय कांधरुपी
रागसे इतनी जली हुई हूँ कि उसके पास नहीं जा सकता । मेरी
सखियों भी कोई ऐसा चतुर नहीं हैं कि जो मुझे हठ करके लाँचकर
उसके पास ले जा पहुँचावें । यह अभिमानी भी अपनी खुदताके
करसे स्वयं यहाँ आवेगा नहीं । समय भी बीतता आ रहा है ।
जीवनका कोई ठिकाना नहीं । यही सब सोच-सोचकर मैं
चिन्तासे घुसी जा रही हूँ ॥ १४ ॥ ये सखियाँ मेरा ही दोष
बता-बताकर मुझे कहती हैं कि मैं दिन-रात रुझती ही रहती

॥ १५ ॥ यत्पट्टेहलक्ष्म पाणिकमलं भाग्यालये यद्गु-
हर्न्यन्तं वा मम यत्तलाटफलके भाग्यालये च धना ।
तत्सर्वं सखि यो यथार्थमकरोत्तस्मिन्प्रकोपः कृता
धिष्ठां धिक्कृतं जीविनं धिगतनुं धिक्चेष्टितं
धिग्वयः ॥ १६ ॥ मृगुर्गम वाहृलने किमनर्थकं त्वमपि
लोचनभायमहो गता । तमहमागतमप्यपराधिनं न परि-
रुध्यमलं न च योचितुम् ॥ १७ ॥ हन्त पुरा यो निहन्तः
न पुनः सुभगः कथं समायायान् । कुमुदिन्यां ननु
सुलभा दुर्लभा एकः सुधासिन्धुः ॥ १८ ॥

नायकानृतयः - धनधनमपि दृष्टं व्योम वाता मरु-
त्वाच्छिविकुलकन्यायां श्रात्रमासीन्निवासः । असु-
खम न मृताहं स्वर्ग्यांगेऽपि जाते तत्र धनपरिग्रह-
प्रार्थनाशब्देन ॥ १ ॥ त्वं नायक हवस्वभा नचयुवा
कान्तः मुखो निर्घृणो नो जानासि परव्यथां शटमने
नैवासि दुःखो यतः । किं त्वन्याः परिपृच्छ मन्मथ-

हूँ, किसीकी एक वान नहीं सहनी और अपनेको यही बुद्धिमान
समझती हूँ, उधर वह धूर्त ऐसा चतुराईकी वान करता है कि ये
सखियाँ उसे ही अपना समझकर उसीके गुन बखाना करती
हैं ॥ १२ ॥ हे सखा ! जिसने मेरे हाथमें बनी हुई कमलकी
रेखा, भाग्यके स्थानमें घेरे हुए पृथ्वी और मन्मथके
लिये हुए विधनाके खेलका सपना कर दिखाया उस प्यारेकी
भी जब मैंने कट कर दिया तो मुझे, मेरे जीवनकी,
कामदेवकी, मेरी करनीकी और मेरी इस अवस्थाकी सौसी पार-
धिका है ॥ १३ ॥ हे मेरी सखी ! मैं भी मेरी सखी
आँखके समान प्यथ क्यों फड़क रही है ! मैं क्या देती हूँ
कि यदि वह अपना ही प्रियतम भी गया तो न मैं उसे
गले लगाऊँगी और न मैं उसकी ओर आँख उठाकर देखूँगी
॥ १४ ॥ हाय ! जो पहले रुठकर चले गए थे वे प्रियतम
फिर कैसे बुलाए जायें ! कोई तो ढेर-सी मिला सकती है,
किन्तु प्रयत्नका समुद्र कहाँ मिलता है ॥ १८ ॥

प्रियतमसे प्रार्थना : हे प्राणप्यारे ! मैंने बाइलासे घिरे
हुए आकाशकी देखा, बहते हुए पवनका स्पर्श किया और
कानोंसे भाँरोंकी मधुर कूक सुनी, पर इतना सब होनेपर भी मैंने
तुम्हारे वियोगमें इसी आशसे प्राण नहीं छोड़े कि किसी न
किसी दिन तो तुम्हें गलेसे लगा ही पाऊँगी ॥ १ ॥ अरे धूर्त
प्रियतम ! मैं जानती हूँ कि तुमपर बहुत-सी नवेजियाँ प्राण देती
हैं, अभी तुम्हारी नई जवानि है, तुम सुन्दर हो, सुखी हो, पर हो

शरैः पीडामसह्यामिमां ज्ञाता नो भव येन सज्जनजनैः
कापालिको नोच्यते ॥२॥ मयि मलयसमीरो वर्धतीव
स्फुल्लिकानहह हिमकरो मामग्निना सिञ्चतोव ।
किमिति मकरकेतोः किं नु वक्ष्ये कठोरे कथमपि तदहं
हे नाथ नोपेक्षणीया ॥ ३ ॥ मुक्तो मानपरिश्रहः सह
सखीसार्थेन तन्मन्त्रिणा शक्तः त्वधरणप्रसादरहिता
नाहं क्षणं प्राणितुम् । पश्य त्वं सुकृशं शरीरकमिदं
यां यामवस्थां गतं सैयाहं तव पादयोर्निर्पातता नाथ
प्रसीदाधुना ॥ ४ ॥

नायकशेरुक्तप्रत्युक्तयः -- अकरवमधिमोः लपादपथा-
वपनय भानिनि भानितामकारण्डे । यदि पररमणीं
गतस्तदाऽथ स्तनयुगलिकयुगं स्पृशामि तम्यि ॥ १ ॥
अज्ञानेन पराङ्मुखीं परिभवादाश्लिष्य मां दुःखितां
किं लब्धं शत्रुल त्वयेह नयता साभाग्यमेतां दशाम् ।
पश्यैतद्विज्ञातकुचव्यातिकरोन्मृष्टाङ्गरागाकणं वक्षस्ते

मलतैलपङ्कशवलैर्वेणीपदैरङ्कितम् ॥ २ ॥ अघोंसे भय-
मागतोऽसि किमिदं कण्ठश्च किं गङ्गवद्धाटोरस्य न व
खलोऽयमनुपक्षितेयमास्तां कथा । ब्रह्मि प्रस्तुतमस्तु
सम्प्रति महत्कर्णं सखीनां मुखैस्तुतिर्निर्भरमेभिरत्तर-
पदैः प्रागेव मे सम्भृता ॥ ३ ॥ एवं यथाह भवती मम
सर्वदोषाः कः स्वामिना कुचलयाति सहानुबन्धः ।
एषोऽञ्जलिर्विरचितः कुच निग्रहं मे दासेऽपराधवति
कोऽवसरः क्षमायाः ॥ ४ ॥ कामस्यापि शराहतिर्न
गणिता त्वं जीवनं संस्मृता नो दग्धो विरहागलेन
भटिति त्वत्सङ्गमाशामृतैः । नीतोऽयं दिवसो विचित्र-
लिखितैस्सङ्करपरुषैर्मया किञ्चाम्यन्मनसि स्थिताऽस्ति
भवती तत्र स्वयं साक्षिणी ॥ ५ ॥ किं पादाम्ने
पतसि विममाः स्वामिनो हि स्वतन्त्राः कञ्चित्कालं
कञ्चिदभिरतस्तेन कस्तेऽपराधः । आगस्कारिण्यह-
मिह यया जीवितं त्वद्वियोगे भर्तुः प्राणालिय इति

बदे निर्दयी । इसलिये मैं तो तुम दूसरोंकी पीर ही समझते हो
मैं स्वयं तुम्हें किसी बातकी पीर होती है । फिर भी दूसरी
खिंचोले ही पूछ तो देखो कि कामके बाणोंसे कितनी पीड़ा होती
है । अब तुम मुझे वधा लो जिससे तुम्हें सज्जन लोग मसान
जगानेवाला अघोरी मैं कहने लगे ॥ २ ॥ हे प्यारे ! तुमने जो
अपना दिया पथरका बना रक्ता है, इसीलिये यह मलयाचकका
पवन मुझपर चिनगारियाँ बरसा रहा है । यह देखो, चन्द्रमा
भी आग बरसाए जा रहा है और कामकी तो पूछो मत कि वह
क्या चाहता है । इसलिये जो भी समझो, तुम्हें आकर
मुझे उधार ही लेना चाहिए ॥ ३ ॥ हे प्यारे ! सखियोंके
कहने-सुननेपर मैंने अपने मनसे क्रोध निकाल फेंका । अब मैं
आपके चरणोंकी कृपाके बिना क्याभर भी जी नहीं सकती ।
मेरे इस दुर्बल शरीरको तो देखो कि यह कैसा दुखा जा रहा
है ! इसलिये हे नाथ ! मैं आपके पैरों पड़ती हूँ, मुझपर प्रसन्न
हो जाइए ॥ ४ ॥

नायक-नायिकाकी आपसकी बातचीत : हे कठने-
वाली ! मैंने तुम्हारे दोनों पैर अपने माथेपर लगा लिए हैं,
अब तो यह कुसमयका रुठना छोड़ दो । तुम्हारे दोनों
स्तनोंसे अपनी छाती तथा तुम्हारी योनिसे अपना लिङ्ग छूकर
शपथ खाता हूँ जो आजसे कभी किसी दूसरी स्त्रीके
पास जाऊँ ! ॥ १ ॥ हे धूर्त ! अनजाने ही स्वमावसे मुझ
फेरकर मैंने तुम्हें मुझ दुखियाको बलपूर्वक गलेसे लगाकर और

मेरे मुहागको इस इलाकक पहुँचाकर बताया तुम्हारे हाथ क्या
जगा ? देखो, यह तुम्हारा बचपन जो तुम्हारी किसी
दूसरी प्यारोंके स्तनपर लगे हुए केसरले ताक ॥ उसपर
उसकी मैका तथा लेखभरी चोटीके चिह्न भी बने हुए हैं ॥ २ ॥
'तुम आ गए !' यह वाक्य पूरा करनेसे पहले ही तुम इतना
बबराए क्यों जा रहे हो ? और तुम्हारा गला क्यों अभीले
भरापा जा रहा है ? अब वह सब इधर-उधरकी वे तिर-पैरकी
बातें छोड़ो । भले आदमी । तुम्हें जो कुछ कहना हो वह सीधे-
सीधे कह क्यों नहीं बोलते ? वे सब बातें तो सखियोंके मुँहसे
मैं इतना सुन चुकी हूँ कि सुनते-सुनते मेरे काम एक गए
हैं ॥ ३ ॥ हे कमलनयनी ! तुम जो कह रही हो वही ठीक है ।
सारा दोष मेरा ॥ ४ ॥ स्वामीके साथ भला क्या बराबरी ।
मैं हाथ जोड़ रहा हूँ, तुम मुझे दण्ड दो । अपराधी सेवकपर
जमाकी बात ही क्या ॥ ५ ॥ तुम्हारा स्मरण करते ॥ मैंने
कामके बाणोंकी चोटको कुछ नहीं समझा, तुम्हारे मित्रनेकी
कारणसे ही मैं विरहकी आगमें भस्मसे जल उठनेसे बच गया
और अनेक प्रकारके लैकड़ों विचित्र सङ्कल्प कर-करके मैंने इतने
दिन बिता दिए । अधिक क्या कहूँ, मेरे मनमें तो तुम ही
यसी हो और इस बातको स्वयं तुम जानती भी हो ॥२॥ तुम
इतने उदास होकर क्यों मेरे पैर पड़ रहे हो ? स्वामी तो स्वतन्त्र
होते हैं । यदि कुछ देर कहीं रम ही गए तो तुमने कौन क्या
अपराध कर दिया ! अपराध तो मैंने किया है जो तुम्हारे

तनु त्वं मयैवाजुनेयः ॥६॥ किं किं वक्ष्यमुपेत्य चुम्बसि
बलाभिलषज लज्जा क ते यत्नान्तं शठ मुञ्च मुञ्च
शुपथैः किं धूर्तं वाग्यन्धनैः । खिन्नाहं तव रात्रिजागर-
वशात्तामेष याहि प्रियां निर्माल्योज्ज्वलपुष्पदामनिकरे
कः पट्टपदानां रतिः ॥ ७ ॥ कृतं मिथ्यावादैर्विरम
विदितः कामुक खिरान्प्रियां तामवोच्चैरभिसर यदी-
दैनैर्षपदैः । विलासैश्च प्राप्तं तव हृदि पदं रागशुल-
भया किं ते कृत्यं ध्रुवमकुटिलाचारपरया ॥ ८ ॥ कृत-
कृतकैर्मायाशास्त्रैस्त्ययाप्यतिघर्षितं निभृतनिभृतैः
कार्यालापैर्मायाप्युपलक्षितम् । भवतु विदितं नेष्टा
तेऽहं वृथा परिक्षिपते अहमसहना त्वं निःस्नेहः समेन
समं गतम् ॥ ९ ॥ तथाऽभूदस्माकं प्रथममविभक्ता
तनुरियं ततो नु त्वं प्रेयाम्बयमपि हताशाः प्रिय-
तमाः । इदानीं मायस्त्वं वयमपि कलत्रं किमपरं
मयासं प्राणानां कुलशकटिनानां फलमिदम् ॥ १० ॥

तवेदं पश्यन्त्याः प्रसरदमुरागं वहिर्निव प्रियापादाल-
कच्छुग्निमरुणयोनिहृदयम् । ममाग्र प्रस्थानप्रणय-
भरभङ्गेन कितव्यं नृदालोकः शोकादपि किमपि लज्जां
जनयति ॥११॥ हृदि कया क्षिपसि भामिनि यद्यपीमां
स्निग्धे यमेप्यति तथापि न रुद्धभावम् । न्यक्त्वा न्वरां
व्रज तवस्मलितैरयं नु त्वेदं कागप्यति शुक्रनियतं
नितम्बः ॥१२॥ मान निराधारस्त्वं गच्छाम्भु शिवम्भु
पन्धास्ते । अमुना वडाञ्जलिना हृदयमशेषं निपीतं
मे ॥ १३ ॥ यत्रार्कयितमिन्दुना सगमिजैर्द्वारपुत्रा-
यितं कृडायां मयि नाथ ते कदलिकाखण्डैरलानायि-
तम् । कालोऽयं खलु कोऽपि सोऽमृतमयो जातो
विपाक्तोऽधुना धिक्प्राणानिति निर्यदध्रुग्वला मोहं
वदन्ती गता ॥ १४ ॥ यदा त्वं चन्द्रोऽभूः शिशरकर-
सम्पर्ककनिरस्तदाहज्जना द्राक्शशधरमणीनां प्रति-
कृतिः । इदानीमर्कस्त्वं खरुखिसमुत्सारितरसः

विशोडमें भी जीती रही। अब तो मुझे चाहिए कि मैं तुम्हें मनाऊँ
क्योंकि लोग कहते हैं कि चिर्या ही पुरुषोंकी प्राप्ति होती है ॥९॥
हे निर्लज्ज ! मेरे मुँहके पास जाग जागकर चुम्बनेके लिये क्या
हुँव बड़ा रहे हो, तुम्हें लज्जा नहीं आती ? छोड़ो-छोड़ो, धूर्त !
मेरे कौचलका छोर छोड़ो ! धरे कपटी ! मैं तुम्हारे इस सौगन्ध
कामे और डलही-सीधी बातोंमें आनेवाली नहीं हूँ । देख रही
हूँ, रातभर तुम्हें नींद नहीं आई । मुझे बड़ा तरस आता है
तुमपर ! जाओ, अपनी उसी प्यारीके पास चले जाओ जहाँ
सारी रात बिताई है ? कहीं बदाब्बर डतारी हुई कुलकी माका-
पर भीरे थोड़े ही मँडराते हैं ॥ ७ ॥ हे कामी ! बहुत अटपट
बातें न बजाओ, मैं बहुत पहलेसे ही सब समझ चुकी हूँ । अब
कटपट अपनी उसी प्यारीके पास जा पहुँचो जिसके नकां, पैरों
और हाव-भावोंने अत्यधिक प्रेमपूर्वक तुम्हारे हृदयमें घर कर
लिया है । मुझ सीधी-सादी प्रेम करनेवालीको तुम क्या
करोगे ? ॥ ८ ॥ तुमने छल-कपट करके अपनी बात खिपानी
तो बहुत चाही पर मैं भी तुम्हारा सारा कच्चा चिट्ठा ताड़ गई
हूँ । मैं जान गई कि तुम मुझे सनिक भी नहीं प्यार करते
हो । यह झूठमूठ पक़तावा दिखाना मुझे तनिक नहीं आता ।
तुम्हारे प्रेमहीन मनसे इसका मेला अच्छा बैठ गया है
॥ ९ ॥ एक समय यह था कि हम दोनोंका शरीर एक था,
उसके पश्चात् तुम चाहनेवाले हो गए और मैं अभागिनी
तुम्हारी प्यारी हो गई, और अब तो आप स्वामी हैं और

मैं पानी हूँ, और क्या कहूँ, मैंने अपने वज्रके समान
कठोर प्राणोंका फल पा लिया ॥ १० ॥ तुम्हारा दूसरी
प्रेयसीके पैरोंकी महाबलसे रेंगा हुआ तुम्हारा वक्षस्थल
पेसा जान पड़ रहा है मानो तुम्हारा प्रेम हृदयके बाहरतक
छलका पड़ रहा हो । धरे धूर्त ! तुम्हारे इस दिखानेकी प्रेमसे
भरे हुए रूपको देखकर बड़ी चिन्ता और लज्जा हो रही है
॥ ११ ॥ हे प्यारी ! यद्यपि तुम क्रोध कर-करके अपनी चितवन
चला रही हो किन्तु यह चितवन स्वभावसे ही हृत्तनी रसाली
है कि यह कभी नहीं पड़ सकती । अतः अब हृदयकी सोड़कर
धीरे-धीरे चलो नहीं तो ये भारी नितम्ब हिल-हिलकर निश्चय
ही तुम्हें थका डालेंगे ॥ १२ ॥ हे मान ! अब तुम यहाँसे
भागो, तुम्हारा मार्ग कल्याणकारी हो, क्योंकि हाथ जाँड़कर
खड़े हुए इस (विपत्तम) ने मेरा सारा हृदय ही पी डाला है
॥ १३ ॥ 'हे नाथ ! जो समय पहले ऐसा अमृतमय था कि
मेरे कोधित हो जानेपर आपके लिये चन्द्रमा भी सूर्य बन जाता
था, कमल भी आगारे और केलेके खम्भे भी जलती हुई लूक बन
आते थे, वही अब विपत्तम हो गया है । धिक्कार है प्राणोंको !'
इस प्रकार कहती हुई तथा आँसू बहाती हुई एक अबला
मूर्च्छित होकर गिर गई ॥ १४ ॥ कोई समय था जब तुम वह
चन्द्रमा थे जिसके कर (किरण, हाथ) का स्पर्श अत्यन्त शीतल
होता था, वह चित्त चुराए लेता था और मैं भी उस चन्द्रमाके
लिये चन्द्रकान्त-मन्त्रिकी पुतली बनी उसे देख-देखकर

किरन्तो कोपाग्नीनहमपि रविप्रावघटिता ॥ १५ ॥
 यद्वाचः प्रचुरोपचारचतुराः यन्ताग्रहं दूरतः प्रभ्यु-
 न्धानमिदं स्वहस्तनिहितं यद्विभ्रमप्यासनम् । उत्प-
 श्यामि यदेवमेव च मुहुर्दृष्टिस्सखीसम्मुखं तच्छ्लोके
 तव पङ्कजाक्षि बलवान् कोपप्रसादोदयः ॥ १६ ॥ येन
 भ्रोत्ररसायनं मम हठाद्वाचस्तवामीलिताः भग्नं येन
 तव ध्रुवोर्विलसितं नेत्रोन्सवारम्भि मे । मधेतोनिल-
 यच्च यस्म्यधरः श्वासानिलैर्वाध्यते प्रत्यर्थी स मम
 प्रिये कथमयं मानस्वया स्योद्धतः ॥ १७ ॥ रोहन्तां
 प्रथमं ममोरसि तव प्राप्तौ विवृद्धिं स्तनां संलापास्तव
 वाफ्यभङ्गमलिना मोग्ध्यं परं स्थाजिताः । धात्रीकण्ठ-
 मपास्य बाहुलतिके फण्डे तवासाञ्जिते निर्दाक्षित्य
 करोमि किं नु विशिष्याप्येषा न पन्थास्तव ॥ १८ ॥
 यधूनां सूर्यासां खरणहरणैर्दूषितामिदं शिरस्ते स्पर्शाहं
 सहृद्वपि न पादस्य हि मम । प्रहारः पादस्त्वां रमयति

पक्षाजती रहती थी । पर इस समय जब तुम अपने कंधे पर
 सापसे रस (जल, मेम) सुला डालनेवाले सूर्य वन गए
 हो तो मैं भी कांध-वां घाम उगलनेवाली सूर्यकान्तमणिका
 प्रतिमा बन गई हूँ ॥ १५ ॥ हे कमलनयनी ! यह जो तुम
 बहुत बन-बनकर बोल रही हो, दूरसे बड़ी भावभंगत करके
 लपुंगी हो रही हो, अपने हाथसे ही मेरा आसन अलग लगा
 रही हो तथा बार-बार सखीका मुँह देख रही हो इससे मुझे
 तो यह शङ्का हो चली है कि तुमपर भयङ्कर कांधका कृपा
 हो गई है ॥ १६ ॥ हे प्यारी ! मेरे कानोंको आरयन्त रसोंको
 लगनेवाली तुम्हारी बालों जिसने रोक रक्खी है, मेरे नेत्रोंको
 उरसवके समान सुल देनेवाली तुम्हारे भाँहाँका नवाना जिसने
 गह कर दिया है और मेरे हृदयमें बसनेवाले तुम्हारे अधरकों जो
 साँसोंके पवनसे सुखाए ठाक रहा है उस मेरे चिरांघा मानकों
 तुमने स्वाकार कैसे कर लिया ? ॥ १७ ॥ पहले तो ये स्तन मेरे
 वक्षस्थलमें ठठकर तुम्हारे वक्षस्थलको आर बदे । तुमने इस
 वक्षसे चिकना-चुपड़ा बाँधे की कि मेरे बोझनेका सीधा बझ भी
 बढ़क गया और धायके गलेसे हटाकर मैंने अपनी बाँहें पहले
 पहल तुम्हारे गलेमें डाली । यह सब करनेके पश्चात् अरे निर्दयी !
 तुम्हें इस गलीसे कैसे निकालूँ ? ॥ १८ ॥ हे स्वामी ! तुम्हारा सिर
 इस योग्य नहीं रह गया है कि मेरा पैरोंका स्पर्श पा सकें क्योंकि
 वह बहुत-सी छिपोंके पैरोंसे झू जानेके कारण दूषित हो गया है ।
 ५५-जिये मेरे पैरोंकी जो चपेट तुम्हें प्रसन्न कर देती थी वह

स मत्तो न सुलभस्तदुत्तिष्ठ स्वामिन्भवतु तव
 सौभाग्यमतुलम् ॥ १९ ॥ सत्यं तद्यद्वोचथा मम महान्
 रागस्त्वर्द्यादिनि त्वं प्राप्तोऽसि विभात एव सदनं
 मां द्रष्टुकामो यनः । रामं किं च विभर्षि नाथ हृदये
 काश्मोरपत्रोदितं नेत्रे जागरजं ललाटफलके लाक्षार-
 सापादितम् ॥ २० ॥ साहारं वचनं प्रयच्छसि न मे नो
 वाञ्छितं यच्छसि प्रायः प्राञ्छसिपि द्रुतं द्रुतवद्वा-
 लासमं रात्रिषु । कण्ठाश्लेषपरिग्रहं शिथिलता यथा-
 दराच्चुम्बसे तत्ते धूर्तं हृदि स्थिता प्रियतमा काचि-
 न्ममेवापरा ॥ २१ ॥

नायकाशुभा- अधिराजनि जगाम घाम तस्याः
 प्रियतमयेति कृपा संजावनदः । पदमपि खलितुं युवा
 न संहं किमिष न शक्तिहरं लसाध्यसानाम् ॥ १ ॥
 करजदशनचिह्नं नैशमङ्गेऽन्यनारीजमितमिति सरोवा-
 माप्येषा शङ्कमानाम् । स्मरसि न बलु दत्तं मत्तयैत-

थक नहीं मिलेगी । मतः उठ जाओ । तुम्हारा तो बहुत बड़ा
 सौभाग्य है ॥ १९ ॥ हे नाथ ! तुमने यह सत्य कहा था कि
 तुम्हारी वस्तुओंसे मुझे बड़ा मेम है क्योंकि दिन निकलते ही
 तुम मुझे देखनेके लिये घर चले आए हो, पर यह तो बताओ
 कि छातीपर केशरके बेलगूदेकी यह साप, बाँकोंमें जागनेकी
 कलाई और माथेपर महाचरके रसकी ललाई कहाँसे आ गई ?
 ॥ २० ॥ अरे धूर्त ! यह जो तुम उड़ी-उड़ी-सी बातें कर रहे
 हो, अपने मनका भेद छिपाए जा रहे हो, रातको जकती
 आगकी छपटोंके समान फट-फट साँस खींच रहे हो, गले
 खगते समय कीड़े-कीड़ेसे जान पड़ रहे हो और चुम्बनमें कुछ
 रस नहीं ले रहे हो, इससे जान पड़ता है कि मेरे समान कोई
 दूसरी तुम्हारी प्यारी तुम्हारे मनमें आ बसी ॥ २१ ॥

नायकको स्त्रीका : रात बीतनेपर अब प्रियतम उसके घर
 पहुँचे तो प्राणप्याराने कांधित होकर प्रियतमको माँलासे
 बाँध दिया । उस समय वह युवक एक पग भी आगे न
 बढ़ सका । ठीक है, अरे हुए खोंगाँकी शक्ति अत्यन्त बोझैले
 भी चली जाती है ॥ १ ॥ रातमें दूसरी स्त्रीके नभ और
 दाँतोंसे जगे हुए चिह्न देखकर डाढ़से कांधित होकर
 शङ्का करता हुआ और लजाती हुई अपनी पत्नीको कोई
 विज्ञासी पुरुष यह कहकर फुसका रहा है कि 'तुम्हें नहीं
 स्मरता आ रहा है ? अरे, तुम्होंने तो मदमें पुर होकर ये
 चिह्न लगाए हैं !' ॥ २ ॥ जब मेरी कुछ पास आ गया तो

स्वयैव स्त्रियमनुमयतीत्यं श्रीडमानां विलासी ॥ २ ॥
कोपान्किञ्चिदुपानतोऽपिरभसादाकृष्य केशेभ्यलं नीत्वा
मोहनमन्दिरं दयितया हारेण वध्वा ददम् । भूयो
यास्यति तदगृहानिति मुहुः कण्ठार्धरुद्धाक्षरं
जहपन्त्याः अवशीत्यलेन सुकृती कश्चिद्रहस्ताङ्गते
॥ ३ ॥ पादे मूर्धनि ताम्रतामुपगते कर्णोत्पले चूणिने
क्षिप्ते हारसताशुणे करतले सम्पातजानवणे । अप्राप्त-
म्रियताडनव्यतिकरा हन्तुं पुनः कोपिता वाञ्छन्ती
मुहुरेणशावनयना पर्याकुला रोदिति ॥ ४ ॥ सा यादं
भयतेक्षितेति निषिद्धं संयम्य बाह्वोः स्रजा भूयो
द्रव्यसि तां शङ्केति नितरां सम्भर्त्य सन्तर्ज्य च ।
आशीनां पुर एव निकुतिपरः कोपाद्रसन्तु पुरं मानि-
न्याश्चरणमहारविधिना प्रेयानशोकीकृतः ॥ ५ ॥ साल-
ककं शतदलाधिककान्तिरम्यं रत्नांघ्रामानिकरारुण-
नूपुरम् । क्षिप्तं भृशं कुपितया तरलात्पलायया सांभा-

ग्यचिह्नमिव मूर्ध्नि पदं शिरोजे ॥ ६ ॥ सालककेन नव-
पल्लवकोमलेन पादेन नृपुण्यना मदनालमेन । यस्मा-
ङ्गते दयितया प्रणयापराधान्साङ्गीकृता भगवता
मकरध्वजेन ॥ ७ ॥

नायिकाप्रसाद — आचिर्भूते शशिनि तमसा मुच्य-
मानेव रात्रिर्नैशम्याच्चिद्रुतभुज इव क्षिन्नभूयिष्ठभूमा ।
मोहेनान्तर्धरतनुरियं लक्ष्यते मुक्तकल्पा गङ्गा रोधः-
पतनकलुषा शृङ्गनीष प्रसादम् ॥ १ ॥ कुरङ्गावाङ्मानि
स्तिमितयति गोतध्वनिपु यन्सखा कान्तादन्तं धृत-
मपि पुनः प्रश्नयति यत् । अनिद्रं यश्चान्तः स्वपति
तदहो वेदम्यभिनयां प्रवृत्तोऽस्याः सेक्तुं हृदि मन-
सिजः प्रमलतिकाम ॥ २ ॥ कृष्णस्निग्धकनोतिकं विक-
सतः कर्णान्तदीर्घं दृशाभुङ्कम्पा हृदयस्य रपितकुचा-
भोगः शनैः शाम्यति । धस्त शीतदन्ता विधुन्तुदमुखा-
न्मुक्तस्य लवमामिदं मुग्धाङ्गया विगलद्विमाहतिभरं

नवेलीने हॉट पीसकर फटकेले उसके बाल पकड़ लिए,
अपने कमरेमें बसीट लाई, अपने हारसे उसे कसकर बाँध
दिया और हँसे हुए गलेसे पूछने लगी 'कहाँ ! अब फिर
उसके घर जाओगे ?' इस प्रकार अपनी नवेलीके हाथसे और
कानपर दौंते हुए कमलसे काँई भाग्यशाली । एकान्तमें पिटा
करते हैं ॥ ३ ॥ अब उस नवेलीने कंधोंमें भरकर अपने
मिथतमको हतना मारा कि जात मारते-मारते पैर छटक
हो गए, सिर लाल हो उठा, कानका कमल धूर-धूर हो गया,
हारका डोरा टूट गया और हाथमें फफांले पड़ गए तब
अपने प्रियकी और भी पीटनेकी हृष्टता हाँसेपर भी अब
वसमें साहस न रहा तब वह मृगनयनी बबराकर स्वयं
ही फफक-फफककर रोने लगी ॥ ४ ॥ 'क्यों ! उसे धूरकर
देख रहे थे न !' यह कहकर नवेलीने अपने प्यारेको अपनी
बाहोंमें कस लिया और फिर यह कह-कहकर उसे बहुत डोटा
कि 'पूँत ! फिर तो उसे नहीं देखोगे ?' इस प्रकार उस
कोथमें भरी नवेलीने अपने बजते हुए पायलवाले पीरोंसे मार-
मारकर अपने उस प्रेमीको निश्चिन्त कर दिया जो सखियोंके
सामने सारी बातें छिपा रहा था अर्थात् सात खाते-खाते
उसने सारी बातें खोजकर कह दीं ॥ ५ ॥ उस चञ्चल कमलके
समान आँखोंवाली नवेलीने अब अपने महावरके समान
रँगें हुए, कमलसे भी अधिक सुन्दर, रत्नोंकी किरणोंसे जाल
और बजते हुए पायलवाले पैर अपने मिथतमपर चलाए तो

प्रेमीके सिरपर लगा हुआ पैरका चिह्न ऐसा जान पड़ने लगा
मानो उसके सौभाग्यका चिह्न हो ॥ ६ ॥ जिस प्रेमीके सिरपर
उसकी प्यारी अपने महावरसे रँगें हुए, नये पत्तेके समान
कोमल, बजते हुए पायलोंवाले और कामके भारसे धीमे-धीमे
उठनेवाले पैर चलाना है उसपर समझना चाहिए कि
भगवान् कामदेवकी बड़ी कृपा है ॥ ७ ॥

नवेलीकी कृपा : हृदयसे रांप निकल जानेपर यह
सुन्दरी नवेली चन्द्रमाके उदयके पश्चात् अन्धकारसे छूटा
हुई ऐसी रातके समान हो रही है, जिसका सारा पुष्पों निकल
बुका है ऐसी रातकी अग्निकी उबालाके समान बन रही
है तथा पहले करारके गिर जानेपर मटमैला होकर फिर
निर्मल होती हुई गङ्गाके समान दिखाई दे रही है ॥ १ ॥
यह नवेली मानेकी तान सुनकर ही अपना देहका हरियाँके
समान हिलाती-डुल्लाती रहती है, पतिका समाचार
सुनकर भी सखियोंमें बार-बार वही समाचार पूछती रहती
है तथा बिना नींदके ही घरमें घुसी सोती रहती है, इससे
जान पड़ता है कि कामदेव इसके हृदयमें प्रेम-रूपी गई
कता सींच-सींचकर पड़ा रहे हैं ॥ २ ॥ इस नवेलीकी कानतक
पैली हुई वे बड़ी-बड़ी आँखें खिल रही हैं जिनमें प्रेमसे
भरी हुई काखी-काली पुतलियाँ दिखाई दे रही हैं, सारे
स्तन-मण्डलकी हिला देनेवाला हृदयका कोंपना धीरे-धीरे
शान्त हो रहा है और रोष-रूपी अन्धकार हट जानेपर

वक्त्रं प्रसीदत्कमात् ॥३॥ परिम्लाने माने मुखशशिनितस्याः करधृते मयि लीलोपाये प्रणिपतनभारत्रैकरणे । तया पद्मप्राम्नावजपुटनिरुद्धेन सहसा प्रसादो वाष्पेण स्तनतटविशीर्णेन कथितः ॥ ४ ॥ भवति धिततश्वासोन्माहप्रणुन्नपयोधरं हृदयमपि च स्निग्धं चक्षुर्निजप्रकृतौ स्थितम् । तदनु ध्वनं मूर्च्छां क्वेदात्मसादि विराजते परिगतमिध आरम्भेऽहः श्रिया सरसोरुहम् ॥ ५ ॥ सत्यं भामिनि दुर्जनोऽस्मि दयिते पात्यस्तथाऽपि त्वया तद्गोपशतशो मृगाणि नियतं वीने मयि क्षम्यताम् । इत्थं जल्पति घल्लभे मृगदशा चक्षुर्लसत्सम्भृतं रक्तत्वं विरलीकृतं च घटने दत्तं न किञ्चिद्वचः ॥ ६ ॥

परस्परप्रसादः—अनुदेहमागतवतः प्रतिमां परिणायकस्य गुरुमुद्रहता । मुकुरेण वेपथुभृतोऽतिभरात्कथमप्यपाति न वधूकरतः ॥ १ ॥ अवनम्य वक्षसि

निमग्नकुचद्वितयेन गाढमुपगूढयता । दयितेन तत्पुच्छलद्रशनाकलाकिङ्किणीरवमुदासि वधूः ॥ २ ॥ आगत्य प्रणिपातसान्निवतसखीदत्तान्तरे सागसि स्वैरं कुर्वति तदपपार्धनिभृते धूर्तेऽङ्गसंघाहनम् । ज्ञात्वा स्पर्शवशात्प्रियं किल सखी ज्ञात्वा स्वमङ्गं शनैः खिन्नासौम्यभिधाय मीलितदशा सानन्दमारोपितः ॥ ३ ॥ इह स्फुटं तिष्ठति नाथ कण्टक शनैश्शनैः कर्षं नक्षत्रलीसया । इति च्छलात्काचिदलङ्गकण्टकं पद्मं तदुत्सङ्गतले न्यवेशयत् ॥ ४ ॥ उदितोरुसादमतिवेषधुमस्तुदशोऽभिभर्तुं विधुरं त्रपया । वपुरादरातिशयशंसि पुनः प्रतिपत्तिमूढमपि बाढमभूत् ॥ ५ ॥ उपनेतुमुन्नतिमतेष दिवं कुचयोर्गुणेन तरसा कलिताम् । रभसोन्धितामुपगतः सहसा परिरभ्य कश्चन वधूमरुदभत् ॥ ६ ॥ एकस्मिन्शयने पराङ्मुखतया वीतोत्तरं ताम्यतोरम्योम्यस्य हृदि स्थितेऽप्यनुनये संरक्षतोर्गौ-

कमले प्रसन्न होता हुआ इस सुन्दरीका मुख राहुके मुखसे छूटे हुए चन्द्रमाकी शोभा पा रहा है ॥ ३ ॥ प्रसन्न करनेके लिये सारे उपाय निष्फल हो जानेपर जब मैंने उसे झुककर प्रणाम किया तब इधेर्लापर रखते हुए उसके मुखपर कोपके चिह्न कुछ कम हुए, उमकी बरीजियोंमें उसको हुए आँसू स्तनोंपर दुजक पड़े और इसने अनुमान हो गया कि वह प्रसन्न हो गई है ॥ ४ ॥ जम्मा सौलिके चलनेसे दिखते हुए स्तनवाला वक्षस्थल स्नेहसे भर रहा है, आँसू अपने पहलेके-से रूपमें आ गई हैं, मूर्च्छा मट हो जानेसे मुखपर भी चमक बढ़ आई है । अतः वह मुख पाकर पढ़नेसे पहले शोभासे भरे हुए खिले हुए कमलकी भाँति सुन्दर दिखाई पड़ने लगा है ॥ ५ ॥ 'हे सुन्दर! सचमुच मैं अत्यन्त दुष्ट हूँ फिर भी हे प्यारी ! तुम मुझपर कृपा करो और हे मृगनयनी ! मुझ सैकड़ों अपराधोंसे भरे हुए दीनकी तुम क्षमा कर दो ।' इस प्रकार प्रियतमके कहते ही मृगनयनी नवेलीकी आँखोंमें प्रसन्नता झलकने लगी, मुँहसे आँधकी जलाई निकलने लगी और उसने कोई उत्तर नहीं दिया ॥ ६ ॥

एक दूसरेपर प्रसन्न होना : कोई नवेली हाथमें दर्पण लेकर मुँह देख रहा था, तबतक प्रियतम भी पाँखे आँख लड़े हो गए । उनकी परछाईं पढ़नेसे ही मानो वह दर्पण इतना भारी हो गया कि उस नवेलीका हाथ काँपने लगा किन्तु किसी-किसी प्रकार उस नवेलीने दर्पणको संभाल

लिया और वह धरनीपर गिरने-गिरते बच गया ॥ १ ॥ प्रियतम कुछ ठँके थे अतः जब उन्होंने मुझपर नवेलीको कसकर गले लगाकर ऊपर उठा लिया उस समय प्रियतमके वक्षस्थलसे नवेलीके स्तन दब गए और हिलती हुई करवनीके बुँवहवाँकी मपुर-मपुर ध्वनि होने लगी ॥ २ ॥ अपराधी प्रियतमने पैरों पड़-पड़कर सखियोंको मनाया, फिर सखियोंने जब जबसर दिया तां वह अपनी प्यारीके बिलौनेके पास धीरे-धीरे आया और उसके अङ्ग देखने लगा । उस स्वयंसे ही नवेलीने समझ लिया कि ये पतिदेव हैं, फिर भी सखीका बनावटी भ्रम दिखाती हुई 'अरे तुम धकी जा रही हो' ऐसा कहकर आँसू मुँह ही मुँह प्रेमपूर्वक धीरेसे प्रियतमको अपने बिलौनेपर बैठा किया ॥ ३ ॥ 'हे नाथ ! मेरे पैरों काँटा गड़ गया है, इसे अपने नखसे धीरे-धीरे खींच लीजिए ।' इस प्रकार कहकर काँटा न जगनेपर भी किसी नवेलीने इस बहाने पतिकी गोदमें अपना पैर रख दिया ॥ ४ ॥ पतिके आँखें ही नवेलीकी आँखें जकड़-सी गईं, शरीर काँपने लगा और लज्जासे दब-सा गया । इस प्रकार यद्यपि उसका शरीर सत्कारके कामोंमें नहीं लग रहा था फिर भी प्रियतमपर अधिक प्रेम होनेकी सूचना तो दे ही रहा था ॥ ५ ॥ एकाएक प्रियतमके घर आ जानेसे हड़बड़ाकर उठी हुई नवेलीके स्तन ऐसे उखल पड़े मानो वे उस नवेलीको पकड़कर आकाशमें उड़ा ले जाना चाहते हों । ऐसी वृत्तिमें प्रियतमने तत्काज उसका आखिज

रसम् । दम्पत्योः शनकैरपाङ्गवलनाग्निश्रीभ्रवच्चक्षुषो-
र्भ्रशो मानकलिः सहामरभसव्यासक्तकण्ठग्रहः ॥ ७ ॥
एकस्मिन्शयने सरोरुहदशोविंशाय निद्रां तयोरकां
पल्लवितावगुण्ठनवतीमुत्कन्धरो दृष्टवान् । अन्यस्याः
सविधं समेत्य निभृतव्यालोलहस्ताकुलिव्यापारैर्वस-
नाञ्जलं चपलयन्स्वापच्युतिं क्लृप्तवान् ॥ ८ ॥ कररुद्ध-
नीवि वयितोपगतां गलितं स्वराविर्गहनासनया ।
क्षणदृष्टहाटकशिलासदृशस्फुरदूरुभिस्ति वसनं ववसे
॥ ९ ॥ कान्ते घोरकृतान्तवक्त्रकुहरास्थं पुण्यपुञ्जं मे
मुक्ता कन्त तदर्जमधमभ्रं प्रत्यङ्गमालिङ्गय माम् ।
इत्याकर्ण्य निमीलितार्धनयनं स्मेरं शनैराननं सोल्लासं
ददताम्बुजं मृगदशः स्वैरं बुबुभ्य प्रियः ॥ १० ॥
कृत्वा विग्रहमश्रुपातकलुषं शय्यासनादुन्मिता क्रोधा-
ल्लापि विहाय गर्भभयनद्वारं कृपा प्रस्थिता । दृष्ट्वा
चन्द्रमसं प्रभाधिरहितं प्रत्युषवाताहता हा रात्रिस्थ-

रिता गतेति पतिता कान्ता प्रियस्योरसि ॥ ११ ॥
चक्षुर्लुप्तमयीकणं कवलिनस्ताम्बुलराशोऽधरे विश्रान्ता
कवरी कपोलफलके लुभेव गात्रवर्जितः । जाने सम्पत्ति
मानिनि प्रणयिना केरुपायकर्मभ्रशो मानमहानरु-
स्नहणि ते चेतःस्थलीवर्धितः ॥ १२ ॥ जाना नोत्क-
लिका स्तनां ॥ ललितो गात्रं न रोमाञ्चितं वक्त्रं
स्थेदकलाञ्जितं न लज्जसा यावच्छृङ्खलामुना । दृष्टेनैव
मनो हतं भूतिमुपा प्राणेश्वरेणाद्य मे तन्केनापि निरु-
प्यमाणनिपुणो मानः समाधीयताम् ॥ १३ ॥ तदेवा-
जिह्वाक्षं मुखमविशदन्ता गिर इमाः स पथाङ्गश्लेषो
मयि सरसमारिलिप्यति तनुम् । तदुक्तं प्रयुक्तं यदपटु
शिरःकम्पनपरं प्रिया मानेनयं पुनरपि कृता मे नव-
वधूः ॥ १४ ॥ तस्याः सान्द्रविलेपनस्तनयुगप्रश्लेषमु-
द्राङ्कितं किं यत्तश्चरणानतिव्यतिकरव्याजेन गोपा-
व्यते । इत्युक्ते क तद्विस्तृतीयं सदृसा तन्सम्प्रमाप्यते

करके उसे शीघ्रतासे बचा लिया ॥ ६ ॥ एक ही बिछीनेपर
पति-पत्नी मुँह केरकर चुपचाप पड़े हुए दुःखी हो रहे थे ।
एक दूसरेको मना लेनेकी चाह हृदयमें होते हुए भी दोनों
अपने सम्मानकी रक्षा कर रहे थे किन्तु करवट बढ़ते समप
जैसे ही धीरेसे उनकी आँखें आपसमें मिलीं तो उनकी कोप-
रूपी कली बिखर गई तथा हैसकर वे बेगले एक दूसरेसे
चिपट गए ॥ ७ ॥ एक ही बिछीनेपर दो नवेलिधों सोई हुई
थीं । नायकने अपना सिर उठाकर जैसे ही देखा कि एक नवेली
बक्से मुँह रके सो रही है वैसे ही तत्काल उसने दूसरीके पास
आकर चुपकेसे अपने हाथकी उँगलियोंसे उसके बाल खींचकर
उसे जगा दिया ॥ ८ ॥ पतिके जानेपर नवेली एकाएक अपना
आसन छोड़कर उठ खड़ी हुई । यद्यपि वह साड़ीका नाड़ा धामे
हुए भी फिर भी उसकी साड़ी नीचे सरक गई और जबतक वह
उसे लँभाकर पहने-पहने तबतक तो सोनेकी घटानके समान
चमचमाती हुई उसकी जँधोकी घनी चमकने ही चक्का काम
कर दिया अर्थात् चमककाहटके कारण उसकी कोई जँघी न देख
पाया ॥ ९ ॥ 'हे प्रिये ! तुम हमारे पुत्रियोंसे यमराजके भयङ्कर मुख-
रूपी गड्ढेसे बुरकारा पा गई हो अतः मेरे प्रत्येक अङ्ग आलिङ्गन
करके उस पुत्र्यके सङ्घर्षसे पाई हुई थकावट दूर कर दो ।'
प्रियतमको ऐसा कहते सुनकर नवेलीकी आँखें आधी मुँह गईं,
उसने मुस्कारते हुए अपना प्रसन्न मुख धीरेसे झुका दिया और
प्रियतम उस शृगलपत्नीके मुखका देरतक लुभन करते रहे ॥ १० ॥

जगदा करके रोती हुई नवेली अपने बिछीनेमें उठी और क्रोधसे
घरका भीतरों द्वार खोलकर बाहर निकली, उसने चन्द्रमाको फीका
देखा तथा उसके शरीरमें प्रातःकालका पवन भी लगा घतः
वह सोचने लगी कि 'हाय ! अब तो यह रात शीघ्र ही बीती
जा रही है !' और यह जानकर वह लौटकर अपने प्रियतमकी
गोदमें जा गिरी ॥ ११ ॥ हे क्रोध करनेवाली ! तुम्हारे नेत्रोंमें
काजल नहीं दिखाई देता, मोठसे पानकी ललाई भी मिट गई
है, बाज भी गालोंपर बिखर आए हैं और शरीरकी कान्ति भी
मखिन पड़ गई है, इससे जान पड़ता है कि हे लक्ष्मी ! तुम्हारे
प्रियतमने किन्हीं उपायोंसे तुम्हारे मन्त्ररूपी भूमिपर बड़े हुए
क्रोधरूपी विशाल वृक्षको उखाड़ डाला है ॥ १२ ॥ जबतक मेरे
मनमें उसके क्रिये झलक नहीं थी, तबतक न तो शरीरमें
रोमाञ्च हुआ, न स्तन फटके और न मुखमें पसीना ही आया,
किन्तु तत्काल धीरज तोड़ देनेवाले उस धूर्त प्रियतमको देखते
ही एकाएक मन उसकी घोर ही खींच गया । अब क्रोध करना
उचित भले ही हो किन्तु वह किया कैसे जा सकता है ?
॥ १३ ॥ वह प्यारी नवेली क्रोध करके मानो फिर नई बहू-सी
हो गई है, क्योंकि इसके मुँहपर नई बहूके समान ही सीधी
चितवनवाली आँखें शोभित हो रही हैं, वैसी ही स्पष्ट बातें
हैं तथा मेरे आलिङ्गन करनेपर वैसा ही प्रेममें भरकर गले
लगाना, वैसी ही बातचीत और वैसी ही सिंघाईके साथ सिर
झुकाया आदि भी है ॥ १४ ॥ दूसरी स्त्रीका सहवाह करके खीटे

मया संश्लिष्टा रभसेन तत्सुखवशात्सम्यापि तद्विस्मृतम् ॥ १५ ॥ दृष्टे लोचनधन्मनाङ्मुकुलितं पार्श्वस्थिते वक्रधन्यगभूतं वहिरासितं पुलकधन्स्पर्शं समातन्वति । नीवीवन्धवदागतं शिथिलतां सम्भाषमाणे क्षणान्मानेनापसृतं ह्रियेव सुदृशः पादस्पृशि प्रेषसि ॥ १६ ॥ नापेतोऽनुनयेन यः प्रियसुहृद्वाक्यैर्न यः संवृतो यो दीर्घं दिवसं विषया हृदये यस्मात्कथञ्चिद्वृतः । अन्योन्यस्य हृते मुखे विहितयोस्तिर्यकथाञ्चिद्वृत्तयोः सम्भेदे सपदि स्मितव्यतिकरे मानो विहस्योज्झितः ॥ १७ ॥ निपपात सम्भ्रमभूतः श्रवणादसिन्धुः प्रणदितालिङ्गुलम् । दयिताश्लोकविकसद्यनप्रसरप्रणुजमिषधारिरुहम् ॥ १८ ॥ पदप्रणतमालोफ्य कान्तमेकान्तकातरम् । मुञ्चन्ती वाष्पसन्तानं सुमुखी तेन शुम्बिता ॥ १९ ॥ परिमन्धराभिरलघूदभरादधिवेश्म पत्युरुप-

चारविधौ । स्खलिताभिरप्यनुपदं प्रमदाः प्रणयातिभूमिमगमन्गतिभिः ॥ २० ॥ पश्यामः किमियं प्रपद्यत इति स्थैर्यं मयात्मवित्तं किं मां नालपतीत्ययं खलु शठः कोपस्तयाप्याश्रितः । इत्यन्योन्यविलक्षदष्टिचतुरे तस्मिन्वस्थान्तरे सव्याजं हसितं मया धृतिहरो मुक्तस्तु वाष्पस्तया ॥ २१ ॥ पिदधानमन्वगुणगम्य दृशां ब्रुवते जनार्णवः कोऽयमिति । अभिधातुमप्यवसलां न गिरा पुलकैः प्रियं नवधन्यगदत् ॥ २२ ॥ मधुरोन्नतध्रु ललितं च दृशोः सकरप्रयोगचतुरश्रवचः । प्रकृतिस्थमेव निपुणागमितं स्फुटदृष्ट्यलीलमभवत्सुतनोः ॥ २३ ॥ लीलानामरसाहतोऽन्यवनिताभिः शङ्कदृष्टाधरः कश्चित्केसरदूषितेक्षण इव व्यामील्य नेत्रे स्थितः । मुग्धा कुड्मलिताननेन वधती वायुं स्थिता तस्य सा भ्रान्त्या धूर्ततया च वेपथुमती तेना-

हुए मुझसे जैसे ही मेरी पत्नीने कहा कि 'तुम्हारे जिस बचस्पलपर उस नबेलीके स्तनोंके आलिङ्गनसे चन्दन, केशर आदिके चिह्न लग गए हैं, उसे मेरे चरणोंपर गिरनेके बहाने भुकाकर क्यों छिपा रहे हो ?' जैसे ही 'कहाँ लगा है !' कहकर उसे पोंछनेके लिये मैंने उसका आलिङ्गन किया और वह पतली नबेली भी इसी सुलमें मेरा सारा अपशय भूल गई ॥ १२ ॥ प्रियतमको देखनेपर नेत्रोंके साथ-साथ उस नबेलीका क्रोध लिमट गया, पासमें खड़े होनेपर मुझके साथ-साथ क्रोध भुक गया, स्पर्श करनेपर रोमाञ्चके साथ वह बाहर आ गया, बातचीत करनेपर माँके समान डीला हो गया तथा पैर क्षुणेपर लज्जाके साथ उस सुनयनी नबेलीका क्रोध भाग खड़ा हुआ ॥ १३ ॥ बहुत ममानेपर भी जो क्रोध दूर नहीं हो सका, सखियोंके समझाने-बुझानेपर भी मिट न सका, पति-पत्नी जिसे किसी प्रकार सहन करके हृदयमें रखे हुए थे और जिसके कारण दोनों मुख फेरे बैठे हुए थे वह क्रोध किसी प्रकार दोनोंकी आँखें मिशते ही और ईसते-मुस्कराते ही न जाने कहाँ चला गया ॥ १४ ॥ प्रियतमको देखकर उसके स्वागतके लिये उठते ही नबेलीके कालसे वह कमल गिर पड़ा जिसपर भारी गूँज रहे थे, अतः उसे देखकर ऐसा जान पड़ा मानों आँखोंके विकसित होकर फैलनेपर उन आँखोंका धक्का लग जानेसे ही वह गिर पड़ा हो ॥ १५ ॥ अत्यधिक भयसे वैरपर गिरते हुए प्रियतमको देखकर जब सुन्दर मुखवाली नबेलीने लगातार आँसू बरसाए तो प्रियतमने उसका पुनः

कर लिया ॥ १६ ॥ वरमें आए हुए पतिके सत्कारके लिये यद्यपि नबेलियाँ बड़ी-बड़ी आँखोंके भारसे धीरे-धीरे तथा राग-परागपर लक्ष्मकाती हुई चल रही थीं फिर भी अपनी चाहकी सुन्दरताके कारण वे प्रियतमके प्रगाढ़ प्रेमकी पाश बन ही गईं ॥ २० ॥ मैं इस विचारसे चुप रह गया कि देखें यह क्या करती हैं, और वह इस विचारसे रुठ गई कि यह भूल मुझसे बातेंतक क्यों नहीं कर रहा है । ऐसी अवस्थामें जब कि हम दोनों बिना मनके इधर-उधर देख रहे थे तबतक मैं किसी बहाने ईस पड़ा और वह भी मेरा धीरज तोड़नेवाले आँसू बहाने लगी ॥ २१ ॥ बैठे हुई नबेलीके पीछेले भाकर प्रियतमने उसकी आँखें मूँद लीं और पूछा कि 'बतलाओ कौन है ?' तो नबेलीने इसपर मुँहसे तो कुछ नहीं कहा किन्तु शरीरपर उठे हुए रोमाञ्चसे ही उसने बता दिया कि 'आप प्रियतम हैं' ॥ २२ ॥ मनोहर तथा बौकी भाँहावाली आँखोंका चलाना तथा हाथ मटका-मटकाकर बातें करना यद्यपि ये दोनों ही उस सुन्दरीके स्वाभाविक गुण थे किन्तु वे ही चतुर आचार्य कामदेवके सिलसला देनेपर नृत्यके समान जान पड़ने लगे ॥ २३ ॥ दूसरी नबेलीने किसी नायकके ओठपर दाँतका चिह्न लगा दिया या वह देख उसकी प्रियतमाने उसे कमलसे मारा और कमलका पराग आँखोंमें पड़ जानेका बहाना करके वह आँखें मूँदकर बैठ गया अतः उसकी भोझी-भाझी प्रियतमा इसे सत्य समझकर अपने मुँहसे उसकी आँखें मूँदने लगी और ज़ममें पढ़कर उसकी धूर्तताको न समझनेके कारण भयसे

निशं शुभ्रिता ॥ २४ ॥ लोलांगुलस्य पवनाकुलितांगु-
कान्त त्वदृष्टिहारि मम लोचनबन्धवस्य । अध्या-
सितुं तव चिरं जघनस्थलस्य पर्याप्तमेव करभोरु ममो-
रुयुग्मम् ॥ २५ ॥ घनोवीचोदानं स्फुरदधरपानं विवि-
नयं कशीभूते माने मयि मृगयमाणे मृगदृशः । वभूय
धुभङ्गः समयनतरङ्गः सपद्मियः प्रभुत्वं व्याप्तेने जगदुपरि
तेनेह मदनः ॥ २६ ॥ वाचो वाग्मिनि किं तवाद्य पदयाः
सुधु ध्रुवो विभ्रमोऽप्युद्गान्तः कृत प.प लोलनयने किं
लोहिते लोचने । नास्त्यागो मयि किं मुधैव कुपिते-
भ्युक्ते पुनः प्रेयसा मानिन्या जलविन्दुवन्तुरपटा दृष्टिः
सखीष्वाहिता ॥ २७ ॥ सत्यं दुर्लभ एव सख्यभतरो
रागो ममास्मिन्पुनः कोपोऽस्यातिगुह्यं घातिनि-
पुणाः सख्योऽपि सम्बोधने । सञ्चिन्त्येति मृगीदृशा
प्रियतमे दृष्टे श्लथां मेकलां यध्न्या न गतं स्थितं न
च जलद्वारसोऽधवा संवृतम् ॥ २८ ॥ सा यापन्ति पदा-

न्यलीकवचनैरालोजनैः पाठिता नावन्त्येव कृतागसो
द्रुततरं संलप्य पद्मः पुरः । प्रारेभे पुरतो यथा मन-
सिजस्येच्छा तथा चर्तितुं प्रेम्णा मांग्र्याविभूषणस्य
सहजः कोऽप्येव कान्तः क्रमः ॥ २६ ॥ स तनु जतिहि
मानं पश्य पादानतं मां न खनु तव कदाचित्काप एवं-
विधोऽभूत् । इति निगदति नाथे निर्यागामालिनाद्या
नयनजलमनलपं मुक्तमुक्तं न किञ्चित् ॥ २७ ॥

प्रियचातुक्यः - अतश्चाऽयमनङ्गत्वमद्य निन्दित्यनि
धुयम् । यदनेन न सम्प्राप्तः पाणिस्पृशोत्सवस्तव ॥ २८ ॥
अनधिगतमनोरथस्य पूर्वं शनगुणितेव गता मम
त्रियामा । यदि तु तव समाममे तथैव प्रवर्तति सुधु
ततः कृतो भवेयम् ॥ २९ ॥ अनयारनघद्याङ्गा स्तनयो-
र्जम्भमाणयोः । अवकाशो न पर्याप्तस्तव वाधुलनान्तरं
॥ ३० ॥ अन्तःकूजदुद्वारकण्ठमसकृन्मुञ्चति लोलकणं
मायः स्मेरकपालमूलममृतप्रस्रवन् विम्याधरम् ।

कॉपने लगी । वह सब देखकर नायक बड़ी देरतक उसका
चुरचुर करना रहा ॥ २४ ॥ हे चिकनी जॉपोंवाली ! तुम्हारे
नितम्ब रखनेके लिये मेरी जॉपें ही उचित स्थान हैं क्योंकि जैसे
तुम्हारे जिनगण पर बख हिल रहे हैं वैसे ही मेरी जॉप पर भी
पचनसे बख हिल रहे हैं और जैसे तुम्हारे नितम्ब मेरे नेत्रोंको
प्यारे लगते हैं वैसे ही मेरी जॉपें भी तुम्हारी जॉपोंको प्यारी लग
रही हैं ॥ २५ ॥ मानके धोड़ा कम होते ही वह मृगनयनी एकएक
जो प्रेमसे बोलने लगी, शास्तिपूर्वक छोड़का चुम्बन करने लगी
और प्रेमसे भीड़ें बाँकी करने लगी उससे जाय पड़ता है मानो
कामदेवने संसारपर सास्त्राज्य स्थापित कर लिया ॥ २६ ॥ 'हे
बहुत योजनेवाली ! आज तुम इतनी रुली-रुली क्यों बोल रही
हो ? हे सुन्दर भीहोंवाली ! तुम्हारी भीहें ऐसे भयानक रूपसे
क्यों पकड़ रही हैं ? हे चञ्चल जॉपोंवाली ! तुम्हारी जॉपें
साल क्यों हैं ? बिना अपराधके ही मुझपर क्यों व्यर्थ ही क्रोध
किपू बैठी हो ?' प्रियतमके ऐसा कहनेपर रुठी हुई नवेनीने
जॉपू-भरी जॉपोंसे सखियोंकी ओर देखा ॥ २७ ॥ 'सचमुच
ऐसा प्यारा प्रियतम पाना बड़ा कठिन है । मैं इससे प्रेम भी
बहुत करती हूँ, किन्तु यह क्रोधी है और मेरी सखियाँ
भी समझाने-बुझानेमें कुशल नहीं हैं ।' यह सोचकर वह
मृगनयनी अपने प्रियतमकी देखकर अपनी बीबी करधनी
कसली हुई आगे नहीं बढ़ी, वहीं ठहर गई और उसने अपने
बीबी के भी न सँभाले ॥ २८ ॥ सखियोंने नवेनीको

जितनी कूटी-भूटी बातें सिकाई थीं उतनी ही बातें अपराधी
पतिके सामने शीघ्रनासे कहकर उस नवेनीने कामदेवकी
हृष्टाके अनुसार व्यवहार करना प्रारम्भ कर दिया । सिकाई
ही जिसका भूषण है उस प्रेमका यह एक स्वाभाविक तथा
सुन्दर निराला वह है ॥ २९ ॥ 'हे सुन्दरी ! क्रोध छोड़ दो,
पैर पड़े हुए मुझे देखो, तुम्हारा इस प्रकारका क्रोध तो मैंने
कभी नहीं देखा था ।' ऐसा प्रियतमके कहते ही तनिक
चूमकर नवेनी जॉपें मूँदकर जॉपुओंकी धार बरसाने लगी
किन्तु बोलो कुछ नहीं ॥ ३० ॥

प्रियतमको चिकनी-चुपकी बातें : अतश्च (बिना
अङ्कका, कामदेव) अपनी अनङ्गताकी आज अवश्य निन्दा
करेगा क्योंकि उसने तुम्हारे हाथका स्पर्शरूपी उत्सव नहीं
पाया ॥ ३१ ॥ हे सुन्दर भीहोंवाली ! पहले जब मैं तुम्हारे साथ
नहीं था तो मुझे रात सौगुनी बड़ी जान पड़ती थी । इस
समय तुम्हारे साथ रहनेपर भी यदि पहलेकी ही भाँति
सौगुनी बढ़ जाती तो मैं धन्य हो जाता ॥ ३२ ॥ हे निर्दोष
अहोंवाली ! तुम्हारे ये दोनों स्तन इतने बढ़ गए हैं कि तुम्हारी
दोनों भुजाओंके बीच (वक्षस्थल) मैं उन्होंने तनिक स्थान
नहीं छोड़ा ॥ ३३ ॥ हे सुन्दरी ! वह पुरुष (मैं) धन्य है जिसने
'मुझे छोड़ दो' ऐसे अस्पष्ट शब्द कहनेवाला तुम्हारा वह मुख
चूम लिया जिसकी जॉपें चञ्चल थीं, गाल चिकित्त थे, ओठोंसे
मानो अमृत बूँदों था और जिसमें हिलती हुई रँगजिपोंके

आधूताकुलिपल्लवाग्रमलमित्यामर्तितभ्रूलनं पीतं येन
मुखं त्वदीयमवले सोऽहं हि धन्यो युवा ॥ ४ ॥ अन्ते-
नार्जुनतां दधाति नयनं मध्ये तथा कृष्णनां द्वैरुप्यं
दधताऽमुना विरञ्जिता कलौ न ने विग्रहः । तत्कर्णार्जुन-
कृष्णविग्रहवती साक्षात्कु रक्षेत्रतां यातासि न्यदवाप्ति-
रेव तरुणि श्रेयः परं गण्यते ॥ ५ ॥ अपूर्वं चार्यमभ्यस्तं
त्वया चञ्चललोचने । द्विवैव जाग्रतां पुंसां चेतो हरसि
दूरतः ॥ ६ ॥ अयि मन्मथचूतमञ्जरि भवत्पयतचारु-
लोचने । अपहत्य मनः क यासि तत्किमराजकमञ्ज
राजते ॥ ७ ॥ आकर्ण्य सरोजासि घवनीयमिदं भुवि ।
शशाङ्कस्तत्र वक्त्रेण पामरैरुपमीयते ॥ ८ ॥ आशि-
पन्त्यरविन्दानि मुग्धे तव मुखाभ्रियम् । कोपदण्डसम-
ग्राणां किमेषामस्ति दुष्करम् ॥ ९ ॥ आशिपसि कर्ण-
मण्डलं धलिरपि यद्वस्त्वया त्रिधा मध्ये । इति जितस-
कलवदाम्ये तनुदाने लज्जसे सुतनु ॥ १० ॥ आरुह्य

शैलशिखरं त्वद्वदनापहतकान्तिसर्वस्वः । पूतर्तुमि-
बोध्वंकरः स्थितः पुरस्ताद्विशानाधः ॥ ११ ॥ आयते
एव नाभिस्ते नेत्रे नीलसरोरुहे । तरङ्गा घलयस्तेन त्वं
सावयाम्बुवापिका ॥ १२ ॥ इन्दुः किं क कलङ्कः
सरसिजमेतत्किमम्बु कुञ्ज गतम् । ललितसचिलास-
वचनैर्मुखमिति हरिणासि निश्चितं परतः ॥ १३ ॥
उज्जितं गोपमनयोः कुचयोः कनकाद्रिकान्तितस्क-
रयोः । अथधीरितविधुमण्डलमुखमण्डलगोपनं
किमिति ॥ १४ ॥ उज्जिन्ना कलकण्ठकण्ठकुहरात्
कर्णामृतस्यम्दिनी हृष्टा यद्यपि मादवैकवसतिः सा
काकलोद्भूतिः । अन्यस्तम्बि तथाऽपि ते त्रिणयन-
प्लुप्तस्य जीवार्पणः पञ्चोरोचितप्रपञ्चितरसः पाका-
ञ्जितः पञ्चमः ॥ १५ ॥ उन्मेषं यो मम न सहते जाति-
वैरी निशायामिन्दोरिन्द्वीवरदलदृशा तस्य सौन्दर्य-
दर्पः । नीतः शान्तिं प्रसन्नमनसा वक्त्रकाम्येति

साथ भीहैं श्री नाथ-सी रही थीं ॥ ४ ॥ हे तरुणि ! तुम्हारे नेत्र
धास-पास तो अर्जुन (उज्जले) हैं और बीचमें कृष्ण (काले)
हैं । इस प्रकार दो रूप धारण करनेवाले कर्ण (कान)
ने तुम्हारी देह ऐसी सजा दी है कि तुम कर्ण, अर्जुन और
कृष्णसे युक्त साक्षात् कुरुक्षेत्र हो रही हो । इसप्रिये तुम्हें
पा लेनेसे परम कल्याण मिल जाता है ॥ ५ ॥ हे चञ्चल
छाँछोवाली ! तुमने यह काँड़े निरासे दहकी चोरी साँझी है
कि दिनदहाड़े जागते हुए लोगोंके मनकाँ दूरसे ही लूट
लेती हो ॥ ६ ॥ हे कामदेव-रूपी घामकी मञ्जरी (बीर)
तथा कानोंतक फैले हुए सुन्दर नेत्रोंवाली ! तुम हमारे
मनको घुराकर कहाँ भागी जा रही हो ! क्या यहाँ लूट
मची हुई है ? ॥ ७ ॥ हे कमलके समान छाँछोवाली ! सारे
संसारमें फैली हुई यह निन्दाकी बातको तो सुनो कि मूर्ख
लोग चन्द्रमाको तुम्हारे मुँहके समान बसला रहे हैं ॥ ८ ॥
हे सुन्दरी ! कमल यदि तुम्हारे मुखकी कान्तिकी निन्दा किया
करें तो ठीक है क्योंकि इनके पास तो कोप (सजाना, कमलका
भीतरी भाग) और दण्ड (कमल, सेना) दोनों ही हैं
फिर इनके लिये क्या कठिन रह जाता है ॥ ९ ॥ तुमने अपनी
छाँछोंके पीसावले कर्ण (कान, राजा कर्ण) को दया रक्सा है
और पेटमें तीन बार बलि (सिकुड़न, राजा बलि) को बाँधा
है, इस प्रकार सभी दावाओंको जीतनेवाली हे सुन्दरी ! तुम
मुझे अपना शरीर सौंपनेमें क्यों सकुचा रही हो ? ॥ १० ॥

तुम्हारे मुखमें जिसकी सुन्दरता झीन ली है वह चन्द्रमा
पहाड़की चोटीपर चढ़कर दुःखसे अपने कर (हाथ, किरण)
उठा-उठाकर मराने सामने खड़ा हाहाकार कर रहा है
॥ ११ ॥ जान पड़ता है तुम सुन्दरता-रूपी जलकी बावड़ी
हो क्योंकि तुम्हारी नाभि ही घामर्क (भँवर) है, नेत्र ही
नीले कमल हैं और पेटकी सिकुड़न ही लहरें हैं ॥ १२ ॥ हे
सुगमवर्नी ! तुम्हारा मुख देखकर पहले तो लोग यह तर्क करने
लगे कि 'क्या यह चन्द्रमा है ? यदि हाँ, तो इसका कलङ्क कहाँ
है ? तो क्या यह कमल है ? यदि हाँ, तो इसका पानी कहाँ
चला गया ?' फिर जब सुन्दर हाव-भावसे भरी हुई बातें सुनीं
तब कहीं उन्होंने निश्चय किया कि यह मुख ही है ॥ १३ ॥ सोनेके
पहाड़ (सुमेरु) की शोभा घुरानेवाले इन स्तनोंको विषा
लेना तो उचित है किन्तु अपनी शोभासे चन्द्रमण्डलको विषा
देना कहाँतक उचित है ? ॥ १४ ॥ कोयलके गलेसे
निकलनेवाली तथा अमृत बहाती हुई अत्यन्त कोमल कूक
यद्यपि अत्यन्त मनोहर होती है किन्तु हे बुबली-पतली
देहवाली ! शिवजीके तीसरे नेत्रसे जलकर भस्म हुए कामदेवकी
भी त्रिजा देनेवाली तथा खनोसे रससे भरी हुई तुम्हारी
कोखी कुछ निरासी ही है ॥ १५ ॥ 'अम्भका वैरी यह चन्द्रमा
जो रातमें मेरा खिन्नना नहीं सह सकता उसकी सुन्दरताके
अभिमानको इस कमलनयनी नवेलीने अपने मुखकी सुन्दरतासे
बलपूर्वक चूर-चूर कर टाका ।' इसी प्रसङ्गतासे है

हर्षालंसा मन्ये ललिततनु ते पादयोः पद्मलक्ष्मीः
॥ १६ ॥ यको हि स्वजनवरो नलिनीदलस्थो दृष्टः
करोति चतुरङ्गवलाधिपत्यम् । किंचा करिष्यति भव-
द्वदनारविन्दे जानामि नो नयनसञ्जनयुग्ममेतन्
॥ १७ ॥ कमलाक्षि विलम्ब्यतां क्षणं कमनोये कचभार-
बन्धने । दृढलग्नमिदं दृशोयुगं शनैर्यथा समुद्रगम्य-
हम् ॥ १८ ॥ कमले कमलोत्पत्तिः श्रूयते न च दृश्यते ।
पाले तव मुखाम्भोजे दृष्टमिन्द्रीवरद्वयम् ॥ १९ ॥
कम्बुकण्ठि चरणः शनैश्चरो राहुरेव तव केशकलापः ।
न क्षुत्तं तदपि यावनमेतत्सा पयोधरगुरोर-
नुकम्पा ॥ २० ॥ काश्मीरद्वयगौरि हन्त किमयं
भूयोऽङ्गरागे ग्रहः को वा नीलसरोरुहाक्षि निनरां
नेत्राङ्गणे सम्भ्रमः । रक्ताशोकदलोपमेयचरणे किं
लाक्ष्या दत्तया नो रागाभ्यन्तमोहते निजदवा विभ्रा-
जमानो मणिः ॥ २१ ॥ किं पद्मस्य कश्चि न हन्ति

नयनानन्दं चिन्तते न किं वृद्धि वा भयकेतनस्य
कुरुते नालोकमात्रेण किम् । वक्ष्येन्दो नच सत्ययं
यदपरः शीतांशुरुज्ज्वलते दर्पः स्यादमृतेन चेद्विह
तदप्यस्थेव विम्बाधरे ॥ २२ ॥ कुतः कुशलं कर्णं
करोपि कलभापिणि । किमपाङ्गमपर्याप्तमस्मिन्क-
र्मणि मन्यते ॥ २३ ॥ कुमुदकमलनीलनीरजालिर्नलि-
तविलासजुषादृशो पुरः का । अमृतममृतनरश्मिरभु-
ज्जन्म पानिह्रनमकपदे नयाननस्य ॥ २४ ॥ कृष्णार्जुना-
नुक्तार्पि दृष्टिः कणाधलम्बिनो । याति विभ्रसनी-
यत्वं कस्य ते कलभापिणी ॥ २५ ॥ केशाः संयमिनः
श्रुतेरपि परं पारं गते लोचने हस्तव्यङ्ग्यमपि स्वभाव-
शुचिभिः कोणां द्विजानां गणैः । मुक्तानां ससर्तं
निवासवर्धिरं यत्ताजकुम्भद्वयं चेत्थं तस्मिन् वपुः
प्रशान्तमपि ते रागं करान्येव नः ॥ २६ ॥ कोप-
स्त्वया हृदि कृतो यदि पङ्कजाक्षि सोऽस्तु प्रियस्तव

सुन्दरी ! कमलकी शोभा मानो तुम्हारे पैरोंमें या लिपटी
है ॥ १६ ॥ यदि कमलकी पङ्कजीपर एक ही सञ्जन बैठे देख
लेनेपर तो मनुष्य चतुरङ्गिणी (हाथी, घोड़ा, रथ, पैदल)
सेनाका स्वामी (राजा) बन बैठता है किन्तु यहाँ तुम्हारे मुख-
कमलपर तो दो-दो नेत्र-रूपी सञ्जन दिखाई पड़ रहे हैं ।
देखिए हमें इसका क्या फल मिलता है ! ॥ १७ ॥ हे कमल-
नयनी ! अपने सुन्दर बाज कुक्ष और देरतक रीझती रहो
जिससे उन बातोंमें उलझी हुई दृष्टिको मैं धीरे-धीरे उतार
सकूँ ॥ १८ ॥ हे मधेरी ! यह तो सुना जाता है कि कमलसे
कमल उत्पन्न होता है किन्तु देखा नहीं जाता पर तुम्हारे मुख-
कमलसे तो दो नीले कमल (नेत्र) निकलते प्रत्यक्ष दिखाई दे
रहे हैं ॥ १९ ॥ हे शङ्खके समान कण्ठवाली ! तुम्हारे पैर शर्मरचर
(शनि ग्रह, धीरे चलनेवाले) और केश राहु हैं, फिर भी
विशाल स्तन-रूपी वृहस्पतिकी कृपाके फलसे हां यौवनका
हानि नहीं हो रही है । (जिसकी कुपत्रकीमें वृहस्पति अश्वे
स्थानमें रहता है उसपर नीच ग्रहका कुप्रभाव नहीं पड़ता)
॥ २० ॥ हे केसरके लेपके समान गारे अङ्गुली ! तुम
शरीरमें उबटन लगानेके लिये इत कर्ण कर रही हो ? हे नीले
रम्बलके समान आँखोंवाली ! तुम आँखोंमें आँजन लगानेका
प्रयत्न क्यों कर रही हो ? हे लाल आँसूके पत्तेके समान
परखवाली ! पैरोंमें महावर लगानेसे क्या लाभ होगा ! क्योंकि
अपनी ही कान्तिसे चमकनेवाले मणिको बनाबटी रहकरी

आश्चर्यकता थोड़े ही पड़ती है ? ॥ २१ ॥ तुम्हारा मुखचन्द्र क्या
कमलोंकी कान्ति मलिन नहीं कर देता ? क्या वह आँखोंकी
आनन्द नहीं देता ? क्या वह देखने भरसे कामदेवकी नहीं
ठकसा देता ? फिर इसके रहते दूसरे चन्द्रमाके उदय होनेकी
क्या आश्चर्यकता या पड़ी ? क्योंकि यदि उसे अमृतपर चमक
हो तां वह भी तुम्हारे आँखोंमें भरा ही है ॥ २२ ॥ हे मधुर
बोलनेवाली ! तुमने कानोंपर नीले कमल क्यों लटका रखे
हैं ? क्या तुम्हारी आँखोंके कारण उससे किसी बातमें कम
है ? ॥ २३ ॥ हे सुन्दरी ! चिनको खींचनेवाली ! कियामेंसे
भरी तुम्हारी आँखोंके सामने कोई, कमल और नीले कमलकी
क्या विज्ञात है जब अमृत, चन्द्रमा तथा कमल सभी तुम्हारे
मुखमें एक साथ पराजित हो गए हैं ॥ २४ ॥ हे मधुर बोलने-
वाली ! कृष्ण तथा अर्जुन (सर्विले और उजलेपन) पर
प्रेम रखनेवाली (मे भरी) तुम्हारी चितवन कर्ण (कान)
का सहारा ले रही है (तक फैली हुई है) तब इसपर
कीन विश्वास कर सकता है ! (आँखें उजली, काँखी तथा
साज हैं और कानोंतक फैली हुई हैं) ॥ २५ ॥ हे
सुन्दरी ! तुम्हारे बाल बँधे हुए (नियम-आधारसे रहनेवाले)
हैं, आँखें श्रुति (कान, वेद) के पारतक पहुँची हुई हैं,
तुम्हारे मुखके भीतर जन्मसे ही स्वच्छ दिव्य (दौत,
वाक्य) भरे हुए हैं और तुम्हारे दोनों स्तन मुख (मोतियों,
जीवनशुद्धी) के निवासस्थान हैं । इस प्रकार तुम्हारा परम

किमत्र विधेयमन्यत् । आश्लेषमर्पय मदपितृपूर्वमुखै-
र्दन्तक्षतं मम समर्पय सुम्बनञ्च ॥ २७ ॥ काठिल्यं
कचनिचये करचरणाधरदलेषु रागस्ते । काठिन्यं
कुचयुगले तरलत्वं नयनयोच्यसति ॥ २८ ॥ गात्रं
साक्षादजनि भगवानेप यन्पद्मयोनिः शय्योत्थायं यद-
खिलमहः प्रीणयन्ति द्विरेफान् । एकाग्रं यद्वधति
भगवत्पुष्पभानां च भक्तिं तत्प्रापुस्ते सुतनु यदनाप-
म्यमम्भोरुहाणि ॥ २९ ॥ जघान धारौदशभिर्दशस्य-
शिरांसि सीताहरणं स रामः । त्वदङ्गसङ्गाय सदानु-
रक्तं प्रयातु मे मस्तकमेकमेव ॥ ३० ॥ तन्नि त्वद्वद-
मस्य विभ्रमलवं लाघव्यवारांनिधेरिन्दुः सुन्दरि
दुग्धासन्धुलहरोविन्दुः कथं विन्वतु । उत्कल्लांश-
लोचने क्षणमयं शतांशुरालम्बतामुर्मिलन्नवनीलनी-
रजयनीखेलन्मरालभियम् ॥ ३१ ॥ तल्लोकाऽतिशयो-
क्तिमेव वदतु स्तोत्रं पुनर्मेन्यतां कष्टं त्वां सुभगे
अकार मदनां भूतानि चैतानि यत् । पृथ्वी चम्पक-

पारिजातममृतं पाथो महः शारदः मालेयांशुरथा-
निलो मलयभूयोत्सनावलितं नमः ॥ ३२ ॥ तव
कुचलयांसि धत्तसि फण्डलिता कापि काञ्चनो
कान्तिः । कुसुमेषोर्विजिगीषोर्भवंति च भवतीह
भूयन्ती कण्डः ॥ ३३ ॥ तवातनं सुन्दरि फुल्लपङ्कजं
स्फुटं जपापुष्पमसौ तवाधरः । विनिर्द्रपथं तव
लोचनद्वयं तवाङ्गमन्यत्किल पुष्पसञ्चयः ॥ ३४ ॥
ताम्बूलरागोऽधरलोलुपो यद्यज्जनं लोचनसुम्बनो-
त्सुकम् । हरश्च कण्ठग्रहलालसो यस्त्वर्यः स तेषां
न तु भूषणं ते ॥ ३५ ॥ त्वदङ्गमार्दवे दृष्टे कस्य
चित्तेन भासते । मालतीशशृङ्गेलाकदलीनां कठो-
रता ॥ ३६ ॥ न्यहर्तुलस्थूलसुवर्णकान्ति रम्यस्तन-
धीफलपुष्पमेतत् । इष्ट्वा वने धीफलमाकुलं किं सञ्जा-
भिरालम्बितमेव वृक्षे ॥ ३७ ॥ दलदमलकोमलोत्पल-
पलाशशङ्काकुलोऽयमालपोतः । तव लोचनयोरनयोः
परिसरमनुवेलमनुसरति ॥ ३८ ॥ दलितकुचनका

शान्त शरीर देखकर भी मुझे अनुराग हो रहा है ॥ २६ ॥
हे कमलनयनी ! मनमें जो तुमने जांच किया है यदि वह तुम्हें
प्यारा हो तो ठाक है, मुझे इस विषयमें कुछ नहीं कहना है,
किन्तु इससे पहले जो मैंने तुम्हें गले लगाया, आंठोंपर दन्तक्षत
किए तथा सुम्बन किया वह सब मुझे कीटा दा ॥ २७ ॥ तुम्हारे
बालोंमें शोकापन, हाथ, पैर तथा आंठपर कल्लाई, दोनों
स्तनोंमें कठोरता और शोशामें चञ्चलता बसी हुई है ॥ २८ ॥
हे सुन्दरी ! जिसके वशमें साधारण मर्यादा ही जन्म लिया है,
जो प्रातःकाल जागकर सारा दिन भोराका सुख किया करता
है और सदा एकप्राणित होकर भगवान् सुर्वका भक्ति
करता रहता है उस कमलने अपना सपस्याके वक्षपर ही
तुम्हारे मुखको समता पाई है ॥ २९ ॥ सीताजीका जब
रावण हर ले गया तब रामचन्द्रजाने उसके दर्शन सिर दस
बाणोंसे काट डाले किन्तु तुम्हें पामेकें लिये तो मैं सदा
लज्जवाया रहता हूँ अतः मुझे एक सिर चले जानेकी कोई
चिन्ता नहीं है ॥ ३० ॥ हे दुबले शरीरवाली ! तुम्हारा
मुख तो सुन्दरताका समुद्र है, अतः शरसागरकी एक बूँदके
समान यह चन्द्रमा भला उसकी सुन्दरता कैसे पा सकता
है ! हे चञ्चल नेत्रवाली सुन्दरी ! नांके आकाशमें रहनेवाला
एक चन्द्रमा लिले हुए नीले कमलके वनमें लीड़ा करता हुआ
हंस ही बना रह ॥ ३१ ॥ हे सुन्दरी ! इसे संसार मले ही

बड़ा-बड़ाकर कहीं हुई बात माने किन्तु तुम इसे सच्ची स्तुति
ही समझो कि कामदेवने तुम्हें बनानेके लिये पौषों महाभूतोंसे
इननी वस्तुएँ रख डालीं कि पृथ्वीसे चम्पा और पारिजात,
जलसे चमूत, तेजसे शारदका चन्द्रमा, पवनसे पाळा और चन्द्रन
तथा चाँदनीसे सारा आकाश छा दिया ॥ ३२ ॥ हे कमलनयनी !
तुम्हारी छातीमें कुछ पेसी निराश्री सुन्दरता जमकर बैठी हुई
है कि उसके वक्षपर संसारकी जीतनेके लिये कामदेवका शरीर
सदा सुगलाता ही रहता है ॥ ३३ ॥ हे सुन्दरी ! तुम्हारा
मुख तो खिलता हुआ कमल है, तुम्हारा ओठ जपाकुसुमका
फूल है, तुम्हारी दागों आँखें लिले हुए नीले कमल हैं और
तुम्हारे दूसरे अङ्ग लिले हुए दूसरे-दूसरे फूल हैं ॥ ३४ ॥
हे प्यारी ! पानकी कल्लाई जो तुम्हारे ओठपर लज्जवाली
है, चञ्चल जो आँखोंको चूमनेके लिये लज्जलता रहता है और
हार जो तुम्हारे गलेमें छटके रहनेको तरलता रहता है वह
सब उनका अपना स्वार्थ है, उनसे तुम्हारी कोई शोभा
नहीं होती ॥ ३५ ॥ तुम्हारे अङ्गोंकी कामजता देखकर साकरी,
चन्द्रमाकी कला तथा केला किसे कठोर नहीं जान पड़ते
॥ ३६ ॥ हे प्यारी ! तुम्हारे गोल-गोल, मोटे-मोटे तथा
सोभेके समान पीछे-पीछे स्तनरूपी दोनों बेल देखकर ही क्या
वे बेल दुखी होकर आँखके करव वनमें जाकर पेड़पर छटके
हुए हैं ! ॥ ३७ ॥ यह औरिका बच्चा तुम्हारी आँखोंको लिले

ह्रस्वपालि रचय ममाङ्गमुपेत्य पोषरोरु । अनुह्य
हरिणाति शङ्कराङ्गस्थितहिमशैलसुताधिलासलक्ष्मीम्
॥ ३६ ॥ दासे कृतागसि भवेदुचितः प्रभूणां पादप्रहार
इति मानिनि नास्मि हृये । उद्यत्कठोरपुलकाङ्गनक-
एटकाग्रैर्विद्धिद्यते तव पदं ननु सा व्यथा मे ॥ ३७ ॥ दिन-
करकरामृष्टं विश्रद्भ्यति परिपाटलां दशनकिरलैरुत्स-
पङ्क्तिः स्फुटीकृतकेसरम् । अयि मुखमिदं सुगन्धे सत्यं
समं कमलेन ते मधु मधुकरः किं त्वेनस्मिन्निषवन्
विभाष्यते ॥ ३८ ॥ दृशां तव प्रदालसे वदनमिन्दुम-
न्यान्वितं गतिर्जनमनोरमा विधुतरम्भमूरुद्वयम् ।
रतिस्तव कलावती रुचिरचित्रलेखे भ्रुवाघतां विबुध
यौवनं वहसि तन्वि पृथ्वीगता ॥ ३९ ॥ रतिं देहि
पुनर्वाले कमलायतलोचने । भ्रूयते हि पुरा लोके
विषस्य विषमोपधम् ॥ ४० ॥ द्वेषा विधाय विधु-

मण्डलमाननाङ्गि कर्तुं विधानरि कपोलयुगं प्रवृत्ते ।
तत्त्वण्डयुग्मगलितामृतयिन्दुपङ्क्तिमन्दोदयवत्तव विरा-
जति हार्यलम्बी ॥ ४१ ॥ धत्ते वर्द्धमरे शिखी तव न
किं धम्मिल्लभारार्थं स्मरको भजते न किं तव
दृशोः सौभाग्यमालोकते । मन्त्रेभ्यः शिरःपदे चहति
ते वलोज्ज्वलस्मीं न किं तन्मन्यं तरुणि न्यया यिचू-
गुते साम्भं चनश्रीरियम् ॥ ४२ ॥ न नाशद्विभ्योष्ठः
स्फुरति न च रागोऽयमधरे न नामां ते दन्ताः सुदति
जितकुन्देन्दुमहसः । इमां मन्त्रे मुद्रामननुतरसिन्दूर-
सुभगामिदं मुक्तागलं मदननृपतेमुद्रितमिव ॥ ४३ ॥
नयननिपातेऽङ्गुलिः पल्लवितो यन्त्रासि पुष्पिनीं दसिते ।
फलतु कशाङ्गि तवाङ्गप्रशेन मनोरथाऽस्माकम् ॥ ४४ ॥
नारदं कुक्षपरिग्भणेषु याम्यं वैमुपयं किमपि
न चुम्बनं कदाचिन् । किं नावीसतमवले रुणन्ति

हुप निर्मल कोमल कमलकी पक्ष्मर्षी समझकर बार-बार
उसीपर दृष्टा पक्ष रहा है ॥ ३८ ॥ हे मोटी जीवोंवाली ! मेरी
गोदमें आकर, मलबिहारी सुशोभित अपने स्तनोंसे दबाकर
मुझे लिपटा लो । हे मृगनयनी ! अब तुम शिवजीकी गोदमें
बैठी हुई पार्वतीजीके समान ही सुन्दर व्यवहार करो ॥ ३९ ॥
हे क्रोध करनेवाली ! सेवक यदि अपराध करता है तो उसे
सातसे सारमा स्वामीके लिये उचित ही है, इसमें मुझे
कोई दुःख नहीं है । मुझे दुःख भां इस बातका है कि
मेरे कठोर बालरूपी उठे हुए कोंटाले तुम्हारे पैर बिदे जा
रहे हैं ॥ ४० ॥ हे सुन्दरी ! तुम्हारे जिस मुखकी शोभा
सूर्यकी किरणोंकी चमकले लाल है और जिसमें दोतोंसे
निकलनेवाली किरणें ही केसरके समान दिखाई दे रही हैं
ऐसा तुम्हारा मुख दिखाई तो कमलके समान दे रहा है
किन्तु उसमें रस पीनेवाले भीरे क्यों नहीं दिखाई दे रहे
हैं ? ॥ ४१ ॥ हे दुपली-पतली ! तुम्हारा आँखें यौवनके
मन्त्रसे अलसाई हुई हैं (मण्डलसा नामकी अप्सरा हैं),
तुम्हारा मुख अपनेको चन्द्रमा समझे बैठा है (इन्दुमती
नामकी अप्सरासे युक्त है), तुम्हारी चाल सभी जातोंकी प्यारी
लगती है (मनोरमा है), तुम्हारी जीवोंने अपनेमें केलेके लम्बे
वसा रखे हैं (रम्भा नामकी अप्सरा हैं), तुम्हारे प्रेममें
विचित्र कलाएँ हैं (तुम कलावती हो) और तुम्हारी भीलोंकी
रेखा भीकी तथा सुन्दर है (चित्रलेखा नामकी अप्सरा है),
इस प्रकार तुम रहती तो धरतीपर हो किन्तु अपनी देहमें

स्वर्गकी सारी अप्सराएँ बसाए बैठी हो ॥ ४२ ॥ हे कमलके
समान विशाल नेत्रोंवाली नकेली ! एक बार फिर भी
मेरी ओर देख तो दो । बहुत पहलेसे ही यह बात सुनी
जाती है कि बिपसे ही बिप नष्ट होता है अर्थात् बिदाहका
दुःख भां बिप है और तुम्हारी चितवन भां बिपके समान
ही लोगोंकी मूर्च्छित कर देती है ॥ ४३ ॥ हे भुके हुए
अज्ञोवाली ! तुम्हारी छातीपर लहराती हुई हारकी लक्ष्मियों
ऐसी दिखाई दे रही हैं मानो प्रह्ला जय चन्द्रमण्डलका
बीचसे दो टुकड़े करके तुम्हारे गाल पमाने लगे उस समय उन
दोनों टुकड़ोंसे टपका हुई अमृतका रस है ॥ ४४ ॥ क्या
यह सोच अपनी पूँछमें तुम्हारे बालोंकी चमक नहीं धारण कर
रहा है ? क्या हरिण भी अपनी आँखोंमें तुम्हारी आँखोंकी
कान्ति नहीं धारण कर रहे हैं ? और क्या यह मतवाला
हाथी भी अपने मस्तकपर तुम्हारे स्तनकी शोभा नहीं
धारण कर रहा है ? हे तरुणी ! यह सब देखकर तो ऐसा
आनन्द पड़ रहा है मानो यह वन-लक्ष्मी तुम्हारी चरचरा
करनेका स्वाँग रच रहा हो ॥ ४५ ॥ हे सुन्दर दाँतोंवाली !
तुम्हारे मुँहमें ये आँठ न तो तुम्हारे विषम फलके समान हैं, न
हनमें यह ललाई है और न दाँत ही कुन्द तथा चर्चदनीकी
जातनेवाले हैं । मैं तो समझता हूँ कि यह महाराज
कामदेवकी सिन्दूरसे रची हुई यह मुद्रा है जिसमें उन्होंने
मोती और हवन रखकर सुहर भार दाँ है ॥ ४६ ॥ मेरे
मनोरथ-रूपी बीजपर तुम्हारी चितवन पड़ते हो अक्षुर आ

पाणि विक्रीते करिणि किमकुशे विवादः ॥ ४८ ॥
 निर्णेतुं शक्यमस्तीति न च मध्यं नितम्बिनि । अन्यथा
 नोपपद्येत पयोधरभरस्थितिः ॥ ४९ ॥ नीतानामाकु-
 लीभावं लुब्धेर्भूमिशिलीमुलैः । सदृशे वनवृक्षानां कम-
 लानां त्वदीक्षणे ॥ ५० ॥ पद्मानपधरसिके सरसाह-
 वस्य किं योजमर्पयितुमिच्छति वापिकाशाम् । कालः
 कलिर्जगदिदं न कुनक्षमस्ते स्थित्वा हरिष्यति मुवस्य
 तच्चैव लक्ष्मीम् ॥ ५१ ॥ पातालमिव ते नाभिः स्तनां
 क्षितिधरोपमा । चेलीवृक्षः पुनरयं कालिन्दोपा-
 सन्निभः ॥ ५२ ॥ पादास्त्र एव शशिनः सुखयन्ति
 गात्रं वाणास्त्र एव मदनस्य ममानुकूलाः । संरम्भ-
 रुक्षमिव सुन्दरि यद्यदासोत्पन्नसङ्गमेन मम तत्तद्विधा-
 दुर्नानम् ॥ ५३ ॥ प्रिये सदा पूनतरं मनोहरं ते निष्क-
 लहं मुखचन्द्रमण्डलम् । विलोक्य समोडनया निशा-
 पतिगन्तः प्रतप्ता जलधेर्जलाभारम् ॥ ५४ ॥ वन्धूक-

गए, तुम्हारे बाँकले हाँ पसे जग गए और हैसते हाँ फूल भी
 जग गए । हे दुबले-पतले आँखोंवाली ! अब मैं चाहता हूँ
 कि तुम्हारा शरीरका स्पर्श पाकर उसमें फूल भी जग
 जायें ॥ ४८ ॥ हे सुन्दरी ! तू तो तुमने स्नान-मर्दन करते समय
 हाँ ना-न् किया और तू तो तुमने समय हाँ इधर-उधर
 किया, अब माँकेपर पड़ा हुआ हाथ क्यों रोक रहा हाँ ?
 हाँ, कि तूनेपर आँखोंके लिये आँखा कैसे ? ॥ ४९ ॥
 हे सुन्दर निमग्नवाली ! यदि तुम्हारे कमर न होनी तो ये बड़े-
 बड़े स्तन बिना आधाकर कैसे लटके रहते ! यहाँ इस बातका
 सबसे बड़ा प्रमाण है कि तुम्हारे कमर है ॥ ५० ॥ हे सुन्दरी !
 लालची आँखोंसे घिरे हुए और जलमें बड़े हुए कमलोंके
 समान तुम्हारा आँखें ऐसी हैं जैसी बहेलियोंके बाणसे घबराई
 हुई और जंगलमें पला हुआ हरिकियोंकी आँखें होनी हैं ॥ ५१ ॥
 हे कमलका छत्र चाहनेवाली ! तुम बावड़ोंमें कमलके बीज क्यों
 बोए दे रही हो ! क्यों येसमझ ! यह कलिपुत्र है, आत्मकल
 संसार में कोई उपकार नहीं मानता ! ये कमल इस बावड़ोंमें
 उगकर तुम्हारे हाँ मुखकी शाभा घटाने लगेंगे ॥ ५२ ॥
 तुम्हारी नाभि तो पातालके समान गहरी है, स्तन पहाड़के
 समान ऊँचे हैं और बाल यमुनाके जलके समान काले
 हैं ॥ ५३ ॥ हे सुन्दरी ! वे हाँ चन्द्रमाकी किरणें इस समय
 मुख दे रही हैं और वहाँ कामके बाण इस समय हमें भले
 जग रहे हैं (जो तुम्हारे बिछोहमें बातक थे) । इतना ही

द्युतिवान्धवोऽप्यमघरः खिग्धो मधूकच्छविर्गण्डे
 खरिड चकास्ति नीलनलिनभीमोचनं लोचनम् ।
 नासान्वेति तिलप्रसन्नपदवीं कुम्दाभदन्ति प्रिये प्राय-
 स्स्वन्मुखसेवया विजयते विश्वं स पूष्पायुधः ॥ ५५ ॥
 बाले तवाधरसुधारसपानकाले चेतो मदीयमभिधा-
 ष्कति शेषभावम् । आलिङ्गने न च विरोचनपौष्पा-
 वमाखण्डलत्वमखिलाकुरिरोत्तले ते ॥ ५६ ॥ विमिश्रो-
 एव रागस्ते तन्वि पूर्वमदृश्यत । अधुना हृदयेऽप्येष
 मृगशावाप्ति दृश्यते ॥ ५७ ॥ भवभूते जञ्जनप्र-
 लाहि शिरो मदीयं यदि याति यन्तु । नीतानि नाशं
 जनकात्मजार्थं दशाननेनापि दशाननाभि ॥ ५८ ॥
 भूषाणे निहितः कटालविशिक्षो निर्मातु मर्मव्यथां
 द्यामात्मा कुटिलः करोतु कयरीभारोऽपि मारोच-
 मम् । मोहं तावदयं च तन्वि तनुतां विम्वारो
 रागवान्सङ्गतः स्तनमण्डलस्तव कथं मायैर्मम कीडति

नहीं, तुम्हारे न रहनेपर ओ-ओ बसतुर्न कट दे रही थीं वे
 सब तुम्हारे साथ रहनेपर सुखदायी हो गई हैं ॥ ५५ ॥
 हे प्रिये ! तुम्हारे इस सदा पूर्ण रहनेवाले सुन्दर और कलक-
 रहित मुख-रूपी चन्द्रमण्डलको देखकर यह चन्द्रमा लज्जाले
 दुर्बल होकर समुद्रके जलमें घुसा जा रहा है ॥ ५६ ॥ हे
 प्रिये ! तुम्हारे आँखोंमें जपाकुसुमकी लाक्षी है । तुम्हारे
 बिछने गात्र मनुष्यके फूलके समान सुन्दर हैं, तुम्हारे नेत्र भी
 नीले कमलकी शोभा यदा रहे हैं, तुम्हारा यह नाक भी तिलके
 फूलके समान है और तुम्हारे दाँत भी कुन्दके फूलके समान हैं
 इसलिये केवल तुम्हारे मुखमें हाँ अपनी गारी सामग्री पाकर
 फूलके बाण धारण करनेवाला कामदेव संसारको जीते जा रहा
 है ॥ ५७ ॥ हे बाले ! तुम्हारा अधरासून पीते समय यदि कहीं
 मैं सहस्र आँखोंवाला शोपनाग बन जाता, आलिङ्गनके समय
 सहस्र आँखोंवाला बाणासुर बन जाता और देखते समय सहस्र
 आँखोंवाला इन्द्र बन जाता तो किनना अच्छा होता ! ॥ ५८ ॥
 हे दुबले देहवाली नवेली ! पहने तो तुम्हारे थोड़ा ही बिम्बाके
 समान जाल थे पर हैं मृगनयनी ! इस समय तो तुम्हारे
 हृदयमें ओ राग (प्रेम, लज्जा) दिखाई दे रहा है ॥ ५९ ॥
 हे सज्जनके समान चञ्चल आँखोंवाली ! तुम्हारे लिये यदि
 मेरा सिर भी उतर जाय तो मुझे चिन्ता नहीं । क्या सांताके
 लिये रावणके दसों सिर नष्ट नहीं हो गए थे ? ॥ ६० ॥ हे
 नवेली ! तुम्हारी भीह-रूपी चतुर्धर रखे हुए सिरकी चितवन

॥ ५६ ॥ मालिन्यमञ्जशशिनीर्मधुलिङ्गलङ्का धत्तो
मुखे तु तव दक्षिणकाञ्चनाभाम् । दोषाचिनः कचन
मेलनतो गुणत्वं यत्कुमुदो हि वचसि भ्रमविमलम्भा
॥ ६० ॥ मुग्धे धानुष्कता केयमपूर्वा त्वयि दृश्यते ।
यया विध्यसि चेतांसि गुणैरेव न सायकैः ॥ ६१ ॥
मृदुलकनककान्ति भाससारभ्यरम्यं यद्वनकमलमेत-
न्नेत्रमत्तद्विरेफम् । तव किमु सुसमोदय ग्रीडया पञ्चवृन्दं
सरसि सलिलपूर्णं मर्तुकामं विवेश ॥ ६२ ॥ भ्रान्तस्य
जीवकुसुमस्य विकारासनाति सन्तपेणानि सकलेन्द्रिय-
मोहनानि । एतानि ते सुवचनानि सरोरुहाक्षि कर्णा-
मृतानि मनसश्च रसायनानि ॥ ६३ ॥ यः प्रागासीद-
भिनवधयोधिभ्रमाधासजन्मा चित्तोन्माधी विगतवि-
षयोपलयाणन्दसान्द्रः । वृत्तीरन्तस्तिरयति तवाश्ले-
पजन्मा स कोऽपि प्रौढप्रेमा नय इव पुनर्मांमयो मे
विकारः ॥ ६४ ॥ यत्पद्ममादित्सु तवामनीयां कुरङ्ग-

लक्ष्मा च मृगाक्षि लक्ष्मीम् । एकार्थलिङ्गाकृत एव
मन्ये शशाङ्कपङ्केरुहयाविरोधः ॥ ६५ ॥ यथा वहिः
कण्टाकितं वपुस्तव नितम्बिनि । तथा निष्कण्टकं गङ्ग्यं
वर्ततेऽन्तर्मनाभुवः ॥ ६६ ॥ यन्मध्यदेशादपि ते
सूत्रं लोलाक्षि दृश्यते । मृगालसूत्रमपि ते न
सम्मानि मननान्तरं ॥ ६७ ॥ ये ये स्वजनमेकमेव
कमले पश्यन्ति दैवात्कचिन्ने सर्वे कवयो भवन्ति
सुतरां प्रख्यातभूमीभुजः । गृह्यन्त्याभ्युजनेत्रस्रज-
युगं पश्यन्ति ये ये जनास्ते ते मन्मथयाणजालविकला
मुग्धे किमन्यद्भुतम् ॥ ६८ ॥ राकाविभावरीकान्त-
संक्रान्तयुति ते मुखम् । तपनीयशिलाशोभी कटिश्च
हरते मनः ॥ ६९ ॥ लावण्यपूरपरिपूरितदिङ्-
मुखेऽस्मिन्स्मेरेऽधुना तव मुखं तरलायनाक्षि । क्षीर्भ-
यदेति न मनागपि तेन मन्ये सुव्यक्तमेव जङ्गराशि-
र्यं पयोधिः ॥ ७० ॥ लावण्यमृतवर्षिणि प्रतिदिशं

कपी बाण इदधपर भले ही चोट करें, काले तथा सुँपराके बाल
भले ही मार डालनेका प्रयत्न करें, ये डाढ़ करनेवाले लाल-
जाल चोट भले ही लोगोंको मूर्च्छित कर दें परन्तु ये तुम्हारे
गोल-गोल (सदाचारी) स्तन भला हमारे प्राणोंके साथ क्या
खेलवाइ किए जा रहे हैं ? ॥ २६ ॥ भौंरा तो कमलका
कसमसा देता है और कलङ्क भी चन्द्रमाको कलङ्कित कर देता
है पर ये ही तुम्हारे मुखपर पहुँचकर आँखें, काली बिन्दी और
आँजिन धन जाती हैं । सच है, कहीं-कहीं दोष भी मिलकर
गुण धन जाते हैं जैसे खेलनेवालेकी बाणीमें भूल और भोका
भी गुण सम्भला जाता है ॥ ६० ॥ हे भोखी-भाखी नवेकी !
यह तुमने धनुष चलानेकी नई कला कहाँसे सीख ली है कि
बिना बाण चलाए केवल गुण (धनुषकी डोर, सुन्दरता आदि
गुण) से ही मनको जेब डालती हो ॥ ६१ ॥ कहो ! तुम्हारा
यह कोमल, सोनेके समान चमकीला, रवासकी सुगन्धसे
मनोहर तथा नेत्र-रूपी मतवाले भौंरासे भरा हुआ मुखकमल
देखकर ही तो कमल लज्जाके भरे जलसे भरे हुए तालाबमें
हूँच मरनेकी हन्नासे नहीं घुस गया है ? ॥ ६२ ॥ हे कमलके
समान आँखोंवाली ! मुझमें हुए प्राणरूपी फूलको लिलानेवाले,
एक कर देनेवाले तथा सभी इन्द्रियोंको मोहनेवाले ये तुम्हारे
वचन मेरे कानोंके लिये चमूट और मनके लिये सजीवनी
मूटी हैं ॥ ६३ ॥ तुम्हारी इस नई अवस्थाके हाव-भावसे पहले
जिसका जन्म हुआ और सकल न होनेके कारण जो मनमें

खलबली उभय करती रहा। वही कामका विकार भाज तुम्हारे
उपभोगमें किसी प्रकारकी बाधा न रहनेसे आनन्द दे रहा है,
तुम्हारे आलिङ्गनसे उपलब्ध होकर प्रवल प्रेम बढ़ा रहा है
और नवा-सा होकर बाहरी चेष्टाएँ रोककर चित्तका
एकाग्र बनाए दे रहा है ॥ ६४ ॥ हे मृगनयनी ! कमल तुम्हारे
मुखकी जो काश्मि पाना चाहता है वहाँ चन्द्रमा भी पाता
चाहता है । एक ही चम्पुको पानेको चाह दोनोंमें है इसीलिये
हाइके कारण दोनोंमें घोर विरोध है ॥ ६५ ॥ हे बड़े-बड़े
नितम्बवाकी ! जिस प्रकार तुम्हारा शरीर बाहर रोमांचित
हो रहा है उसी प्रकार भीतर भी कामदेवका एकदृष्ट
सा आनन्द है ॥ ६६ ॥ हे चञ्चल नयनोंवाली ! कमलका जड़के
जो कोरे तुम्हारी कमरसे भी पतले दिखाई दे रहे हैं वे भी
तुम्हारे स्तनोंके बीचमें स्थान नहीं पा रहे हैं ॥ ६७ ॥ जिन
लोगोंने भागधसे कहीं कमलपर एक ही खजान देख लिया
है वे कवि अनायास ही प्रसिद्ध राजा बन बैठते हैं । किन्तु
हे सुन्दरी ! यह कैसी विचित्र बात है कि जिन लोगोंने तुम्हारे
मुखकमलपर दो नेत्र-रूपी खजान देखे हैं वे सभी कामके
बाणोंसे बिचकर मूर्च्छित हो गए हैं ? ॥ ६८ ॥ एहिमाके
चन्द्रमाके समान कान्तिवाला यह तुम्हारा मुख तथा सोनेकी
चट्टानके समान सुन्दर तुम्हारी कमर दोनों ही मनको हरे
ले रही हैं ॥ ६९ ॥ हे रसीली और बड़ी-बड़ी आँखोंवाली !
सुन्दरताकी बावसे भरा हुआ और मुस्कताता हुआ तुम्हारा मुख-

कृष्णामरुश्यामले वर्षाणामिव ते पयोधरभरे तन्वहि
 श्रान्तते । नासावंशमनोक्तकेतकननुभ्रपत्रगर्भोज्ज्व-
 लपुष्पश्रीस्तिलकः सहेलमलकैर्भृङ्गैरियापीयते ॥ ७१ ॥
 वदनेन निजितं नय निलीयते चन्द्रविम्वमम्बुधरे ।
 अरविन्दमपि च सुन्दरि निलीयते पाथसां पुरे
 ॥ ७२ ॥ धिनिश्चेतुं शक्यो न सुखमिति वा दुःख-
 मिति वा प्रमादो निद्रा वा किमु विपचितर्पः किमु
 मदः । नय स्पर्शे स्पर्शे मम हि परिमृदेन्द्रियगणो
 विकान्धैतन्यं भ्रमयति च सम्मीलयति च ॥ ७३ ॥
 विभ्रमैश्चिह्नहृदयैरुच्यं विद्याप्यनवदाया । केनापि हेतुना
 मन्ये प्राप्ता विद्याधरी क्षितिम् ॥ ७४ ॥ वेणीं ते प्रस-
 भीक्ष्य चित्रकुसुमैरुद्धासितां वह्निषो लज्जन्ते निज-
 वर्हधृन्मधिकं भारं विदित्वा प्रिये । निर्याताः शन-
 कैर्गति स्थनिलयाद्दूरे निलीय स्थिताः पश्यैतानपि
 लज्जयेव मधुपाग्वह्नीभिर्हायोद्गतान् ॥ ७५ ॥ शिख-

गिणि क नु नाम कियच्चिरं किमभिधानमलावक-
 रोत्तपः । सुमुखि येन तवाधरपाटलं दृशति विम्व-
 फलं शुकशावकः ॥ ७६ ॥ सत्यं तपः सुगत्यै यत्त-
 त्त्वाम्बुपु रविप्रतीक्षं सत् । अनुभवति सुगतिमज्जं
 त्वत्परजन्मनि समस्तकमनीयम् ॥ ७७ ॥ सदा प्रदोषो
 मम यानि जाग्रतः सदा च मे निःश्वसतो गता
 निशा । त्वया समेतस्य विशाललोचने प्रमाद्य शोका-
 न्नकरः प्रदोषकः ॥ ७८ ॥ साहजिकरूपवत्या भवति
 भवत्या विभूषणं भारः । सर्वाङ्गसोरभिण्या दमन-
 कवल्ल्याः किमालि कुसुमेन ॥ ७९ ॥ स्तुमः कं
 वामाक्षि कृणमपि विना यं न रमसे विलेभे कः
 प्राणान्तरणमखमुखे यं मृगयसे । सुलझे को जातः
 शशिमुखि यमालिङ्गति बलात्तपःधीः कस्यैवा मद-
 नमगरि ध्यायति तु यम् ॥ ८० ॥ स्मितज्योत्स्ना-
 भिस्ते धवलपति विभ्वं शशिमुखि दृशस्ते पीयूषद्रव-

चन्द्र देखकर भी जो यह पयोधि (समुद्र, स्तन) तमिक भी
 नहीं उछल रहा है इसीसे जान पड़ता है कि यह महामूर्ख
 है ॥ ७० ॥ हे दुबले शरीरवाली ! सुन्दरता करी
 जलकी वर्षा करनेवाले तथा काले अंगरके सेपसे सविले
 रहवाले तुम्हारे स्तन-रूपी पादलके उमड़ आनेपर तुम्हारी
 माक बौंसको काँपकके समान तथा तुम्हारी देह केवड़ेकी
 लताके समान झिल रही है और तुम्हारे मग्नकपर भीह-
 रूपी पत्तोंके धाँध पुष्पके समान खिले हुए तिलकको भीरोंके
 समान बाल मानो चारों ओरसे प्रसन्न होकर घेर रहे हैं ॥ ७१ ॥
 हे सुन्दरी ! तुम्हारे मुखमे हारा हुआ यह चन्द्रमा मेघोंके बीचमें
 छिप रहा है और कमल भी मलके गहावमें दूब रहा है ॥ ७२ ॥
 जब-जब तुम्हारा स्पर्श होता है तब-तब मेरी इन्द्रियोंको मोहमें
 डालनेवाला कोई विकार उसी-उसी समय मेरी चेतनाको भ्रममें
 डाल देता तथा दबा लेता है । उस समय यह निर्णय नहीं
 किया जा सकता कि यह सुख है अथवा दुःख, मूर्खों है
 या मीढ़ अथवा छिपका भेग है या मदकी मस्ती ॥ ७३ ॥
 सभीके मन डरनेवाले सुन्दर व्यवहारोंमे, निर्दोष ज्ञानसे और
 न जाने किस-किस कारणसे नम ऐसी जान पड़ती हो मानो
 धरतीपर विद्याधरी (एक देवी) आ उतरों हो ॥ ७४ ॥
 सुन्दर फूलोंसे सुशोभित तुम्हारी चाँदी देखकर अपनी पँडके
 बालोंको भार समझकर ये मोर कजाए-से जा रहे हैं । हे प्यारी !
 इसीखिये ये अपने निवास-स्थानसे धीरेसे हटकर दूर छिप

गए हैं और इन भीरोंको भी देखो जो लाजके मारे लतारें
 फोड़-फोड़कर भागे जा रहे हैं ॥ ७५ ॥ हे सुन्दर मुखवाली !
 यह सुगंधी वरणा (तुम्हारी नाक) किस पहाड़पर, कितने दिन-
 तक, कौन-सा नाम अपकर तपस्या कर प्राया है, जिसके फल-
 स्वरूप तुम्हारे कुँदरुके फलके समान जात-लात ओठका सदा
 स्वाद होता रहता है ! ॥ ७६ ॥ तपस्यासे उत्तम गति मिलती है
 यह बात सच है क्योंकि जलमें तपस्या करता हुआ तथा
 सूर्यको देखता हुआ कमल तुम्हारे घन्यन्त सुन्दर धरणाका
 जन्म पाकर उत्तम गतिका सुख भोग रहा है ॥ ७७ ॥ हे बड़े-
 बड़े नेत्रोंवाली ! पहले तो (जब तुम मुझसे चकरा थी) सदा
 मेरे जागते-जागते शतका पहला पहल बोल जाता था और
 लम्बी साँसें भरते हुए शत भी बीत जाती थी किन्तु आज
 तुम्हारे साथ रहनेसे वही दोष भरा समय मेरे सारे दोष दूर
 किए दे रहा है ॥ ७८ ॥ हे सखी ! तुम्हारी सहज सुन्दरताके
 आगे तुम्हारे आभूषण तो भार हैं क्योंकि जिस मरुपकी
 लताके सभी अङ्ग सुगन्धिसे भरे होते हैं उसे फूलकी कश
 धावरपकना है ॥ ७९ ॥ हे सुन्दर धौलवाली ! यह कौन-सा
 प्रशंसा करने योग्य प्राणी है जिसके बिना तुम्हें क्या भर भी
 चैम नहीं मिल रही है ! रणरूपी यज्ञमें किसने प्राण पाया
 है जिसे तुम हँस रही हो ! हे चन्द्रमुखी । किसने सुन्दर
 खनमें कन्म ग्रहण किया है जिसका तुम आखिजन करती हो !
 और हे कामदेवकी नगरी ! किसने प्रबल तपस्या की है

मिष विमुञ्चन्ति परितः । अपुस्ते लावण्यं किरति
मधुरं दिक्षु नदिदं कुतश्चे पाक्यं सुतनु हृदये-
नाद्य गुणितम् ॥ ८१ ॥ स्मिन्पुष्पोद्गमोऽयं ते दृश्य-
तेऽधरपल्लवे । फलं तु जातं सुगन्धं चक्षुषोर्मम पश्यतः
॥ ८२ ॥ हस्तस्वेदक्षपित इव यश्चन्दनकोदवृष्टैर्गलि-
मोऽङ्गुलिपरिसरः फुल्लकङ्कारहारैः । आराधीन्धं तव
नवकुरङ्गालि षष्ठोजशम्भुः साक्षात्कारं तदपि न दिश-
त्येष किं वा करोमि ॥ ८३ ॥ दुहारैर्दत्ता मया प्रति-
षक्तो यस्मान्मासेषिणं यद्वाचानलदीप्तिभिस्तनुरियं
चन्द्रातपैस्तापिता । ध्यातं यस्सुबहून्यनन्यमनसा
मत्तं दिनानि प्रिये तस्यैतत्तपसः फलं मुक्कमिदं
पश्यामि यत्तेऽधुना ॥ ८४ ॥

नवपुत्रजम् :- असाकृष्टदुकूलया सरभसं गृही
भुजाभ्यां स्तनावाकृष्टे जघनांशुके कृतमघःसंसक्तमू-
लहयम् । नाभीमूलनियतखण्डादि मया मीडानताङ्गया

प्रिये दीपः कृत्कृतिधातवेपिनाशिश्रः कर्णोन्पलेनाहन
॥ १ ॥ अप्यान्सुक्ये महति दयिनप्रार्थनासु प्रतापाः
काङ्क्षन्त्योऽपि व्यतिकरमुखं कातराः स्वाङ्गदाने ।
आयाध्यन्ते न खलु मदनैर्नव लब्धान्तरन्वादाशब्धन्ते
मनसिजमपि क्षितकालाः कुमार्यः ॥ २ ॥ अप्यम्मुखा
लोकनमाभिमुख्यं निषेध पञ्चानुमतिप्रकारः । प्रत्युत्तरं
मुद्रणमेव वाचो नवाङ्गनानां नय एव पन्थाः ॥ ३ ॥
आभाति बालिकेयं पाणिस्पर्शेन पुलकितावयवा ।
अभिनववसन्तसङ्गादाधिर्मुकुलेय बालचूतलता ॥ ४ ॥
इत्थं तत्पतलाधिरोहणमियं पर्णापणप्रक्रिया शय्याया
वसनकमस्य दयिनस्यैव विधागधना । एवं कैलशुद्धी-
पदेहलि यलादानीयमाना मुहुश्चाट्टप्रकरैश्चिरं नव-
वधूरालीभिरध्याप्यते ॥ ५ ॥ कण्ठाप्लेपिणमुन्नतस्त-
नभश्चोणीतटप्राहितं संसक्तोरुगुणं गृहीतजघनमा
कारमप्यस्ततः । द्रागेव श्लथयधमिन्दुवदना गाढा-

जिसका तुम ध्यान किया करती हो ! ॥ ८० ॥ हे चन्द्रमुखी !
तुम्हारा मुख अपनी दरकाव-रूपी चोदनीसे संसारको उजला
यमा रहा है, तुम्हारी आँखें मानो चारों ओर अमृतकी धाराएँ
वाग्ना रही हैं और तुम्हारा शरीर मानो चारों दिशाओंमें मधुर
मनोहरता बिखेर रहा है किन्तु हे सुन्दरी ! यह नहीं समझमें
आता है कि तुम्हारा मन वह कठोरता कहाँसे सीखा आया है ?
॥ ८१ ॥ हे सुनपनी ! तुम्हारे थोड़-रूपी पल्लवर मुक्तान-रूपी
फुल्ल खिल्ला देखते-देखते उसमें वे फल (स्तन) भी लग गए !
॥ ८२ ॥ हे हरियारके छीमेके समान आँखोंवाली ! मैंने तुम्हारे
स्तन-रूपी शङ्करजीको हाथके पसीने रूपी गङ्गाजलसे नहलाया,
चन्दनका लेप लगाया और खिले हुए कमलोंका हार पहनाया ।
इस प्रकार इनकी मैंने सेवा तो की किन्तु वे दिखाई नहीं
दे रहे हैं ! ॥ ८३ ॥ तुम्हारी प्रत्येक जातपर केवल 'हूँ-हूँ'
करके जो मैंने मौन धारण किया, दावानलके समान धधकते
हुए चन्द्रमाके प्रकाशमें जो शरीरको तपाया और बहुत समयतक
एकाग्र चित्त होकर दिनरात ध्यान करता रहा, हे ध्यारी ! यह
उसी तपस्याका फल है कि इस समय मैं तुम्हारा मुख निहार
रहा हूँ ॥ ८४ ॥

नई पत्निसे सम्भोग : जब नायकने नवेलीके कन्धेसे
बल खींच लिया तो नवेलीने शीघ्र ही अपनी आँखोंसे स्तन
ढक लिए, जब उसने कमरपरका बल खींचा तो उसने
अपनी आँखें सदा की, जब नायकने नाभिपर आँखें डालीं

तो कामके मारे धुककर नवेलीने शीपककी ली कूँककर
दिला दी और कानसे कमल उतारकर शीपकपर इसलिये
कंक मारा कि वह चुक आय ॥ १ ॥ पत्निसे मिलनेकी प्रबल
लक्ष्मणता रहनेपर भी नई बहुत ही प्रार्थना नहीं करती और पतिके
शरीरके स्पर्शसे सुख पाना चाहते हुए भी वे अपनी शरीर
उन्हीं अपेक्ष करनेमें करती हैं । इस प्रकार नई क्याही हुई
बहुई कामसे केवल स्वतः ही कष्ट नहीं पाली धरम् ऐसा
दशम दिन कारता हुई कामदेवकी भी दुर्लभा बना
देती हैं क्योंकि वह भी सफल नहीं होने पाता ॥ २ ॥ नई
नवेलियोंका एक मिराला ही मार्ग है, उनका सम्मुख न
देखना ही सामने देखना है, 'नहीं' करना ही 'हाँ' करनेका
उद्गार है और मौन रहना ही उत्तर है ॥ ३ ॥ हाथसे छूनेपर
उस बालिकाकी देहमें रोमाञ्च हो आया भक्तः अब वह ऐसी
दिखाई देने लगी है मानो तत्काल आए हुए वसन्तके
समागमसे नये आमके वृक्षमें मञ्जरियों फूट आई हों ॥ ४ ॥
कीड़ागृहकी देहलीके पास बलपूर्वक नई बहुको लाकर
सलियोंने बड़ी मीठी-मीठी बातें करके बहुत देरतक उसे
सिखाया कि 'बिछौनेपर इस प्रकार चढ़ना चाहिए, प्रियकों
पान इस प्रकार देना चाहिए, सोनेका, धोनेका तथा'
प्रियतमकी अपने अनुकूल करनेका यह उद्गार है' ॥ ५ ॥
बचपि नई बहु लाजसे भरी हुई थी फिर भी जब उसने देखा
कि उसका सुनईका बल प्रबल भौका नहीं सह सकता

यमदीसहं विद्यायात्यजदाशु काञ्चनपटं मोडाकुलापि
 क्षणम् ॥ ६ ॥ काञ्चया गाढतराययज्रवसनप्रान्ता
 किमर्थं पुनर्मुग्धासौ स्वपिनीति तत्परिजनं स्वैरं प्रिये
 पृच्छति । मातः सुप्तिमपीह लुभति ममेन्यारोपित-
 प्रोधया पर्यस्य स्वपनच्छलेन शयने दत्तोऽवकाशस्तया
 ॥ ७ ॥ धाम्ने काञ्चुलिकावलोकितं कलावःया
 नमन्त्या स्थितं तस्मिन्कोमलकाकुभाषिणि तया
 स्पन्दो निवहोऽधरः । उत्थायाथ करस्पृशि प्रियतमे
 यूनोर्नये सङ्गमे काञ्चीकृजितकैतवेन मदनो याःशान्ति-
 मभ्यस्यति ॥ ८ ॥ स्निहति कृणति घेक्षति विचलति
 निमिषति विलोकयति तिर्यक् । अस्तनन्दनि शुभ्रि-
 नुमिच्छति नयपरिण्या यधूः शयने ॥ ९ ॥ चुम्बनेषु
 परिषर्तिताधरं हस्तरोध रसनाविघट्टने । विघ्नितेच्छ-

मपि तस्य सर्वनो मन्मथेन्धनमभूत्तधूरतम् ॥ १० ॥
 चुम्बनेष्वधरदानवर्जिनं सन्नहस्तमदयोपगृह्णे । क्रिपु-
 मन्मथमपि प्रियं सदा दुर्लभप्रतिकृतं वधूरतम् ॥ ११ ॥
 दृढनिविडनव्याजात्काञ्चीलता शकलीकृता प्रियन-
 यनयोर्न्यस्तां हस्तौ तदा तरलाङ्गुली । जघननिहितौ
 रुद्रः पाणिः श्लथं न निवारितः प्रधितमुभयं लज्जारा-
 गागमौ नययोधिता ॥ १२ ॥ निर्वाणतां नयसि किं
 हरिणाति क्षीपमाधिर्भवक्षरतत्रपथा विलोला ।
 अयोत्स्नां वितम्बति सदा तव यफभ्रमन्दो गाराङ्गि
 तर्कय कुतस्तिमिराधकाशः ॥ १३ ॥ नीधीदृढापितकरां
 निविडीकृतोदं म्रीडामतां तत इतो वदनं हरन्तीम् ।
 आरोप्य यक्षसि सुखं परिरब्धुमेनां पालां बलावभिल-
 धामि न पारयामि ॥ १४ ॥ पटालमे पत्या नमयति

तो उसने उसे तत्काज उतार दिया क्योंकि वह पहले गलेमें
 लिपटा था, वहाँसे उठकर उसने स्तनोंका सहारा लिया ।
 जब वहाँ भी टिकाना न लगा तो निःश्वपर आकर उठर
 गया, फिर आँधोंमें जा लिपटा और अन्तमें उसने पट्ट-रुपां
 चारदीवारीकी भी शरय ली । पर अन्तमें जब कोई चारा न रह
 गया तो वह निवरा होकर नीचे गिर गया ॥ ६ ॥ जैसे ही
 प्रियतमने बाहरसे आकर प्रियतमका सोते देनकर सखियोंसे
 पूछा कि 'अरे, वह भोले नयनोंवाली अपने कमरके बन्धोंको
 करधनीसे कसे टुट तो क्यों रही है ?' वैसे ही बनावटी
 क्रोध दिखाकर 'अरी माँ ! ये अब मेरी नींद भी छीने ले
 रहे हैं ।' ऐसा कहकर नवेलीने बनावटी क्रोध दिखाकर
 करघट बदलकर चिड़्डीनेपर प्रियतमको भी सोनेके लिये स्थान
 दे दिया ॥ ७ ॥ अब नायकने चोलीपर दृष्टि डाला तो
 कामकलामें चतुर नवेली झुककर बैठ गई, जब नायक
 दीनमासे भरी मीठी-मीठी बातें सुनाने लगा तो नवेली
 अपना फड़कता हुआ थोडा हाथसे छिपाने लगी । इसके
 पश्चात् जब नायकने उठकर नवेलीका हाथ पकड़ लिया
 और सम्भोग करने लगा तो ऐसा जान पड़ रहा था मानो
 करधनीकी कनकारके रूपमें कामदेव शान्तिपाठका अभ्यास
 कर रहा हो ॥ ८ ॥ नई न्याही हुई वह चिड़्डीनेपर पड़ी है,
 उसके शरीरसे पसीना छूट रहा है, आँखें भीपी जा रही
 हैं, वह इधर-उधर करघटें बदल रही है, आँखें भूँद रही हैं,
 तिरछी चितवन खता रही है, मन ही मन प्रसन्न हो रही
 है तथा प्रियतमको भूम लेना चाहती है ॥ ९ ॥ चुम्बनके

समय जोड इतना और करधन सिसकाते समय हाथकी
 आद देना आदि क्रियाओंसे यद्यपि नायककी इच्छा पूरी
 होनेमें बाधा नहीं फिर भी नवेलीके सुरतके समय चारों
 ओरसे वेही सब बातें नायकके मनमें काम जगानेके लिये ईधन
 बन गई ॥ १० ॥ यद्यपि चुम्बन करते समय नई बहुत
 मुँह घुमा लेती है और आलिंगन करते समय हाथकी आद
 देती है तथापि नई बहुतका ऐसा प्यारा संभोग दुर्लभ हो
 होता है ॥ ११ ॥ जैसे नई बहुतसे प्रियतम संभोग करने
 चला वैसे बलपूर्वक पकड़नेके बहाने उसने अपनी करधनी
 तोड़कर उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिए, प्रियतमके नेत्रोंपर हाथ
 रखते तो सहो किन्तु उँगलियों कीली कर ली और वह
 जघनपरसे प्रियतमका हाथ हटानेको अपना हाथ खेता गई
 किन्तु हाथ डीला पड़ गया और प्रियतमका हाथ न हटा
 पाई । इस प्रकार उसने एक साथ ही कज्जा और प्रेमके
 भाव प्रकट कर दिए ॥ १२ ॥ प्रियतमने पूछा : 'हे
 मृगमयमी ! दीपक क्यों बुझाए दे रही हो ?' पत्नी : 'नई-
 नई रतिमें जाज खगतो है ।' प्रियतमने कहा : 'हे गोरी !
 तुम्हारा मुखचन्द्र तो स्वयं ही चाँदनी बिलेरे दे रहा
 है, तब भला यहाँ कैसे सँधेरा हो पावेगा ।' ॥ १३ ॥
 यद्यपि मैं उस नई नवेलीकी छातीसे लगाकर बलपूर्वक मुँहसे
 उसका आलिंगन करना तो चाहता हूँ पर इसलिये नहीं कर पाता
 कि तत्काल वह अपनी साड़ीका नाड़ा कसकर पकड़ लेती है,
 ज्यों कदी कर लेती है, जानसे झुक जाती है तथा इधर-उधर
 मुँह घुमाने लगती है ॥ १४ ॥ जब पहले पहलके रागरंगमें

मुखं जातविनया हठाश्लेषं चाञ्छत्यपहरति गात्राणि
निभृतम् । न शक्नोत्याख्यातुं स्मितमुखसखादत्तनयना
ह्रिया ताम्यत्यन्तः प्रथमपरिहासे नववधूः ॥ १५ ॥
प्रायो नववधूः कान्तमासिङ्गति शनैः शनैः । चित्ताकु-
रितकम्पकदलीभङ्गशङ्कया ॥ १६ ॥ यत्नाधीना पाश्व-
मुखमभिमुखं नैव कुरुते धुनाना मूर्धानं हरति यदुश-
श्शुभ्यनविधिम् । हृदि न्यस्तं हस्तं क्षिपति गमनारो-
पितमना मवोढा खोढारं सुखर्याति च सन्तापयति च
॥ १७ ॥ भुजपञ्जरे गृहीता नयपरिणीता यंश रटसि
वधूः । तत्कालजालपतिता बालकुरङ्गीव चेपते नित-
राम् ॥ १८ ॥ यावत्करसार्द्रपादप्रहारशोणिकचेन
व्यतिरेक । मुग्धा साध्वसतरला विलाफ्य पङ्क्तिभिरना
सहसा ॥ १९ ॥ विरम नाथ विमुञ्च ममाञ्जलं शमय

दीर्घमिमं समया सखीम् । इति नवाहवधूवचनैर्युवा
मुदमगादधिकां सुरतादपि ॥ २० ॥ शयिता सवि-
धेऽप्यनोश्वरा सफलीकर्तुमशो मनोरथान् । दयिता
दयिताननाम्बुजं द्रमीलत्रयना निर्गच्छते ॥ २१ ॥
समारुपं घासः कथमपि हठान्पश्यति तदा कमादृक्-
हन्तं जगत्शरणां मृगदशः । तथा दृष्टिं दत्त्वा महति
मणिदीपे निपुणया निरुद्धं हस्ताभ्यां भट्टिनि निजने-
त्रोन्मल्युगम ॥ २२ ॥ कुरुरटोमोद्धेदस्तत्तलतरतारा-
कुलदशो भयोऽरुणोत्तुहस्तनयुगभरासङ्गसुभगः ।
अधीराव्या गजन्मगियलयदार्शिल्लरचितः पगोरम्भो
मांश्च जनयति च सम्मोहयति च ॥ २३ ॥ हर्षादुत्पुलकं
विकारिण रभसादुन्नामितं कान्तुकाच्छङ्कारादलसं भया-
त्तरलदृक्नयं च लजाभरात् । आसीत्तद्वयसङ्गमे मृग-

प्रियतम नई व्याही हुई बहुत सी सखीएँ लगते हैं तो वह
मज्जता दिखलाती हुई अपनी मुँह झुका लेती है और तब प्रियतम
वक्त्रपूर्वक आलिंगन करना चाहते हैं तब वह धीरे से अपने अङ्ग
सिकोड़ लेती है । इस प्रकार यद्यपि वह कुछ बोल नहीं पाती
किन्तु मुस्कानों हुई सखियोंपर अपनी आँखें बलाकर वह भीतर
ही भीतर लगती हुई खेद किया करता है ॥ १५ ॥ चित्तमें
उगे हुए कामके कोमल अंकुशके दृट जानेके डरसे ही प्रायः
नई वह अपने प्रियतमका धीरे-धीरे आलिंगन करती
है ॥ १६ ॥ वक्त्रपूर्वक सामने ले आई जानेपर भी वह नवेली
प्रियतमके सामने अपना मुँह नहीं करती, बार-बार ऐसा
सिर हिलाती है कि चुम्बन भी नहीं करने देती और
प्रियतम जब छातीपर हाथ रखते हैं तो वह उनका हाथ
हटाकर धरसे बाहर निकल जाना चाहती है । इस प्रकार
नई व्याही हुई वह अपने प्रियतमको सुख भी देती है
तथा उनका मन भी लिप्त करता है ॥ १७ ॥ नई व्याही
हुई नवेलीको प्रियतमने जब एकान्तमें अपनी दोनों भुजाओंसे
कसकर पकड़ लिया उस समय वह जालमें पड़ा हुई खोटासा
हरिषीके समान अत्यधिक काँपने लगी ॥ १८ ॥ महावरके
रससे नवेलीके जो पैर अभी-अभी दंगे गए थे उन्हें उसने
अपने प्रियतमके सिरपर पेसा बलावा कि उसके बाल झाक
हो गए । तब तो वह सुन्दरी नवेली डरकर घबड़ा उठी
किन्तु उसकी यह दशा देखकर प्रियतमने उसका पूका
एक चुम्बन कर लिया ॥ १९ ॥ 'हे नाथ ! शान्त रहिए, मेरा
आँख छोड़ दीजिए, दीवा चुम्बन दीजिए । देखिए, सखी

पासमें ही लड़ी है ।' नई व्याही हुई बहुत ही इन बातोंमें
सुबक प्रियतमको रतिकाइसे भी अधिक आनन्द आया
॥ २० ॥ विद्वानेपर पड़ा हुई नई व्याही हुई व्याही नवेली
सम्भोगके प्रथम हाथ घँटानेमें असमर्थ होनेके कारण अपने
मनोरथ सफल करनेके लिये डरके कारण आँखें मूँद-मूँद
ही प्रियतमका मुक्कमल देखने लगी ॥ २१ ॥ प्रियतमने
किसी-किसी उपायसे हठपूर्वक नवेलीके वक्त्र खींच लिए और
अब वह पके हुए सरकटके भीति गोरे रङ्गकी उस
मृगनयनीकी आँखें देखने लगा । ऐसी दशामें उस नवेलीने
अप्यन्त घमकने हुए मुखके दाँपकपर दृष्टि तो डाली किन्तु
वह बुझ नहीं सकता था । फिर जब उसे कोई उपाय न
सूझा तब अटपट उसने अपने दोनों कमलनयन हाथोंसे
ढक लिए ॥ २२ ॥ जब चञ्चल आँखवाली नवेली अपने
कहन बजते हुए हाथोंसे कसकर गले लग जाती है तो
प्रियतमका मन अत्यधिक प्रसन्न भी हो जाता है और वह
उसपर रीफ भी उठता है । उस समय नवेलीकी देहमें रोमाञ्च
हो आता है, आँखोंकी पुतलियाँ चञ्चल हो आती हैं और
भयके कारण काँपते हुए ऊँचे-ऊँचे स्तन धू लिए जानेसे
उसे उस समय अत्यधिक सुख मिलता है ॥ २३ ॥
नवे-नवे समागममें प्रियतमका अर्पण कर देनेके लिये उत्पुलक
मृगनयनी नवेलीका सुन्दर मुख हर्षसे रोमाञ्चित हो गया,
वेगसे लिस उठा, खेतवाइसे ऊपर उठा लिया गया, सिङ्गारसे
अलसा गया, उसकी आँखें धरसे शिथिल हो गईं, जानसे
वह झुक गया और सोनेके समान गोरे गोरे गालोंपर कुछ-कुछ

दशः कान्तार्पणायोत्सुकं किञ्चिन्काञ्चनगौरगण्डगलि-
नस्वेदाम्बु रम्यं मुखम् ॥ २४ ॥ हस्तं कम्पयती दृष्ट्वा
रशनाध्यापारलोलाङ्गुलिं हस्तौ स्वी नयति स्तनाधर-
णामालिङ्गयमाना यलात् । पातुं पद्मलचक्षुरुन्नम-
यतः साचीकरोत्याननं व्याजेनाप्यभिलाषपूरणसुखं
निर्वर्तयत्येव मे ॥ २५ ॥

नववधूतङ्गमे सखीवाक्यम्—कण्टकिततनुशरीरा
लज्जामुकुलायमाननयनेयम् । तव कुमुदिनीव वाञ्छति
नृचन्द्र बाला करस्पर्शम् ॥ १ ॥ नार्यस्तन्वि दृढाङ्ग-
रन्ति रमणं तिष्ठन्ति नो वारितास्तत्किं ताम्यसि किं
च रोदिषि मुघा तासां प्रियं मा कथाः । कान्तः केलि-
रुचिर्युवा सहृदयस्तादृक्पतिः कातरे किं नो यथैरक-
र्कशैः प्रियशतैराकम्पयिष्यते ॥ २ ॥ नीरम्भं परि-
रभ्यते प्रियतमो भूयस्तरां चुम्ब्यते तद्वाढं क्रियते
यदस्य सखिरं वाहृत्करैः स्तूयते । सख्या मुग्धवधूरसां

रतविधौ यत्नेन सा शिक्षिता निर्भ्रास्तं गुरुणा पुनः
शनगुणं पञ्चेषुणा कारिता ॥ ३ ॥ बाला तन्वी मृदु-
तनुरियं त्यज्यतामत्र शङ्का दृष्टा कापि भ्रमरभरतो
मञ्जरी भज्यमाना । तस्मादेषा रहसि भवता निर्दयं
पीडनीया मन्दाकान्ता विसृजति रसं नेत्रुयष्टिः सम-
ग्रम् ॥ ४ ॥ मानः कामं पुरस्कार्यः परिष्वङ्गस्तु पृथुतः ।
न बालो न च संरम्भः सुन्दरीणां रतौ हितौ ॥ ५ ॥
मुग्धे नैव भयं धेयं प्रमोदावसरो हायम् । त्वराऽपि
न परिष्वङ्गद्वारे कार्या शुचिस्मिते ॥ ६ ॥ यत्तापयन्ति
शिशिरांशुद्वयो यदेते त्वां मोहयन्ति च विभिन्नसरोज-
वाताः । यन्निघृते तनुरियं च तदेष दोषः सत्यं तवैव
सुतनु प्रचुरप्रपायाः ॥ ७ ॥ रत्नामालिकया याते
वदया किं प्रयोजनम् । अत्रयम्भाभिनावेती कुचग्रह-
कचग्रहा ॥ ८ ॥

सम्भोगावधारणम्—अयमेकोऽहमेकेति ज्ञानं तत्त्व-

पत्नीना भी भा गया ॥ २४ ॥ काँपती हुई नवेलीने करधनीकी
घोर बड़ी हुई मेरे हाथकी उँगलियों धाम लीं और जव मैं
हठपूर्वक आलिङ्गन करने लगा तो उसने अपने हाथोंसे स्तन
हक लिए । ज्योंही मैंने उसकी सुन्दर बरौनावाली आँखें
भूमके लिये उसका सिर उठाना चाहा, उसने मुँह फेर
लिया । इस प्रकारके अपने यमावटी व्यवहारोंसे भी वह मेरी
हृष्टा पूरी होनेका सुख ही मुझे दे रहा है ॥ २५ ॥

नई बहूसे सम्भोग करते समय सखीको बातें :
हे मनुष्योंमें चन्द्रमाके समान सुन्दर ! कोइके समान इस
नवेलीके दुबले-पतले शरीरमें रोमांच हो आया है और साजके
कारण इसके नेत्र मुँदे जा रहे हैं । अब यह आपके हाथरूपी
किर्योंका स्पर्श चाह रही है ॥ १ ॥ हे सुन्दरी ! स्त्रियों तो
अपने-अपने पतियोंको हठ करके रोकती हैं और रोकनेपर भी
रुकती नहीं हैं इसलिये तुम क्यों रो-झील रही हो और
उन्हींका मनचाहा कर रही हो (तुम अपने प्रियको हठ कर
दोगी तो दूसरी स्त्रियाँ उसे फाँस ले जायँगी) क्योंकि तुम्हारा
प्रियतम बड़ा खिलाड़, जवान और रसिक है इसलिये पगली !
ऐसे पातका क्या अन्य स्त्रियाँ आँखोंसे आँखें और चिकनी-
चुपड़ी बातें बनाकर तुम्हारे बिरुद्ध भड़का नहीं देंगी ॥ २ ॥
'पतिका कसकर आलिङ्गन किया जाता है, बार-बार उनका
चुम्बन किया जाता है, प्रियतमको भले जान पड़नेवाले
व्यवहार किए जाते हैं और मीठी-मीठी बातोंसे प्रियतमको
प्रशंसा की जाती है ।' इस प्रकार भोली-भाली नई बहूको

बड़ी ही सावधानीके साथ सखियोंने सुरत-कियाके लिये सिखा
दी । किन्तु इसके पश्चात् तो आचार्य कामदेवने देवदत्ते
उस उपदेशसे भी लौ गुना अधिक सिखा दिया ॥ ३ ॥
हे सुन्दर ! यह शङ्का छोड़ दो कि वह अभी छोटी है,
दुबली तथा कीमल शरीरवाली है । क्या कहीं भीरेके गोमसे
आमकी मञ्जरी टूटा करती है ? इसलिये आप इसे एकान्तमें
ले जाकर जमकर इसका आलिङ्गन कीजिए क्योंकि धीरेसे बर्बाद
हुई ईश्वर सारा रस नहीं छोड़ती । उसे भरपूर बल लगाकर
हवाना पड़ता है ॥ ४ ॥ पहले कुछ मान करना चाहिए
तत्पश्चात् प्रियतमका आलिङ्गन करना चाहिए । सुन्दरियोंकी
रतिक्रीडामें हर और चबराहट दोनों ही बाधक हुआ करती हैं
॥ ५ ॥ हे भोली-भाली ! यह तो आमन्दका समय है अतः इसमें
डरना नहीं चाहिए और हे पवित्र मुस्कानवाली ! आलिङ्गन
करनेमें बहुत शीघ्रता भी नहीं करनी चाहिए ॥ ६ ॥ हे सुन्दरी !
चन्द्रमाकी शीतल किरणों भी जो तुम्हें तपा रही हैं, लिये हुए
कमलोंकी सुगन्धमें बसा हुआ पवन जो तुम्हें मूर्च्छित कर रहा है
और तुम्हारा शरीर जो लिप्त हुआ जा रहा है यह सब तुम्हारी
अत्यधिक कोपका ही दोष है, यह मैं सत्य कह रही हूँ ॥ ७ ॥
हे बाले ! स्तन तथा बालोंकी रसवालीके लिये उनपर मालाएँ
क्यों लपेट रही हो ? इनकी चाहे जितनी रक्षा करो किन्तु ये
पकड़े अवरय ही जायँगे ॥ ८ ॥

सम्भोगकी बातें : प्रियतमसे सम्भोग करते समय मुझे

हृदये न मे । राग एवाधिकस्तत्र हरिद्राचर्शयोरिव
॥ १ ॥ अर्काभिमुख्यसलिलस्थितिसाधनानि रक्ताम्बु-
जस्य कलितान्यधुना तपांसि । यद्भीरु तस्य परिभृति-
करं पदं त्वं लाक्षागसाकुलितरागमिमं करोषि ॥ २ ॥
अहं तेनाहूता किमपि कथयामीति चिजने समीपे
वासीना सरलहृदयत्वादवहिता । ततः कर्णापान्ते
किमपि वदताऽऽघ्राय वदनं गृहीत्वा धम्मिल्ले मम
सखि मिपीतोऽधररसः ॥ ३ ॥ आमुष्मिकैहिकसुखे-
षुभिरर्चनीयं लिङ्गद्वयं पुररिपोरधिनाभितीर्थम् ।
मेघः कराग्ररुहभाषितचन्द्ररेखं मोक्षाय कस्य कृतिना
न चिराय लोके ॥ ४ ॥ उपसि परिवर्तयन्त्या मुक्ता-
दामोपवीततां नातम् । पुरुषायितवैदग्ध्यं लज्जावर्ति
कैर्म कलितं ते ॥ ५ ॥ कास्ते सागसि वापिते प्रियस-
खीक्षेपं विधायगते भ्रान्त्याऽऽलिङ्ग्य मया रहस्यमु

दिनं तत्सङ्गमाकाङ्क्षया । मुग्धे दुष्कर्मनदिन्यतितरा-
मुक्त्वा सहासं यलादालिङ्ग्य दृष्टलिताऽस्मि तेन
कितवेनाद्य प्रदोषागमे ॥ ६ ॥ किमपि कान्तभुजान्त-
रवर्तिनी कृतवती यदियं कलभाषिणी । तदनुकृत्य
गिरा गुरुसन्निधौ हियमनीयन सागिकया वधूः ॥ ७ ॥
गाढाश्लेषयिशोर्लज्जन्दनरजःपुञ्जप्रसागदियं शुभ्या
सम्प्रति कोमलाङ्ग परवेत्यागत्य मां वत्ससि । गाढा-
पुष्टद्वर्चमाकुलतया गाढाप्रसन्दंशकेनाकृत्याम्बरमा-
स्मनो यदुचितं धूर्तेन तत्प्रस्तुतम् ॥ ८ ॥ चन्दनं स्तन-
तटेऽधरविम्बे यावत् घनतरं च सपत्न्याः । प्रातरीष्य
कुपितापि मृगाक्षी सागसि प्रियतमे पङ्क्तिषु ॥ ९ ॥
तस्याः पाटलपाणिजातितमुरां निद्राकषाये दृशां
निधुंताधरशोणमा विलुलितस्नानप्रजो मूधेजाः ।
काञ्चीदाम दग्धशलाखलमिति प्रानर्निस्तान्तैर्दशारभिः

यह ज्ञान ही न रहा कि एक वे ई और एक मैं हूँ । वहाँ तो
हम दोनोंका प्रेम ऐसा एकदँग होकर था गया था जैसे हल्दी और
धूना मिलकर लाल हो जाते हैं ॥ १ ॥ हे भीरु ! सूर्यके सामने
जबमें खड़े होकर तपस्या करनेका फल इस काल कमलका
अव मिल रहा है क्योंकि इसका ऐश्वर्य बढ़ानेवाले धरमें तुम
महाशरके शस्त्रसे काल-काल अक्षुर बना रही ॥ २ ॥ हे
सखी ! उसने मुझे एकान्त स्थानमें यह कहकर बुला लिया
कि 'मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ' और मैं भी बोला
स्वभाव होनेके कारण उसके पास बैठ गई फिर उसने कुछ
कहते हुए मेरे कामके पास मुँह लाकर मेरा मुख मेँघा और
मेरा जूड़ा धामकर मेरा अन्धर-रस भी लिया ॥ ३ ॥ लोक और
परलोकमें सुख चाहनेवालोंको चाहिए कि वे नाभिरूपा तीर्थके
ऊपर स्थित शिखरीके दोनों लिङ्गों (दोनों स्तनों) का पूजा करे ।
भक्ता ब्रह्महृदये, नखोंके चिह्नरूपी चन्द्रकलाका धारण करनेवाले
वे लिङ्ग संसारमें किस पुण्यप्राप्ताको सदा आनन्द नहीं देते
रहेंगे ? ॥ ४ ॥ हे लज्जानेवाली ! जनेऊके समान पहनाई हुई
मोतीकी माँकाको जो तुम प्रातःकाल डाँक करके पहन रही
हो इससे कौन नहीं समझ लेगा कि रातमें तुमने पुरुषके
समान आचरण किया है (अर्थात् विपरीत रति का है) ॥ ५ ॥
उगोही प्रियतम दूसरी नवेलीका आँग करके मेरे पास आए
प्योही मैंने उन्हें निकाल बाहर किया, किंतु वे ऐसे चंद निकले
कि भट मेरी प्यारी सखीका वेप बनाकर चले आए और मैंने
असमं पढ़कर उन्हें अपनी सखी समझकर उनका आलिङ्गन

करके उन्हींसे मिलनेका इच्छाके रहस्यकी बात यह समझकर
कह ॥ कि यह मेरी सखी है । तब मैंने वे बोल उठे
कि 'अरी पगलों ! यह मैं बहुत कठिन है' और यह
कहकर हँसते हुए बलपूर्वक मेरा आलिङ्गन करके आज
सायंकाल उन पुनरागतने मुझे अरुंधा दकाया ॥ ६ ॥ पतिकी
भुजाओंमें जकड़ा हुई तथा मोड़ी बोलनेवाली नवेलीने जो
कुछ बातें की उन्हींकी सुगाने उसके सास-ससुरके सामने
बुझाकर उसे लजित कर दिया ॥ ७ ॥ 'हे कोमल अङ्गवाली !
कसकर आलिङ्गन करनेके कारण गिरा हुई चन्द्रिका की धूलके
कैल जानेसे इस समय यह बिंदीभा रूखा पड़ गया है', ऐसा
कहकर प्रियतमने मुझे अपनी गोदमें बैठा लिया, शीघ्रता-
पूर्वक मेरे आँठका चुम्बन करते हुए पैरकी उँगलियों-रूपा
सँझसीसे मेरी साड़ी खींच ला और इसके पश्चात् उस धूर्तने
अपनी मनमानी करनी प्रारम्भ कर दी ॥ ८ ॥ यद्यपि अपराधी
प्रियतमको देखकर नवेली रुई हुई थी किन्तु वह प्रातःकाल
सौतके स्तनपर चन्दनका लेप तथा आँठोंपर गाढ़ी लाली
देखकर प्रसन्न हो गई क्योंकि उसने समझ लिया कि यदि
प्रियतमने उससे सम्भोग किया होता तो अवश्य ही वह
चन्दन और लाली छूट गई होती ॥ ९ ॥ नखके जाल चिह्नोंसे
युक्त उस नवेलीकी छाती, नाँदसे अलसाई हुई आँखें, ललाई
छूटा हुआ ओठ, फूलोंकी मालासे रहित घाँटी और कुछ दोली
करधनी, ये सभी कामदेवके बाण गये तो प्रियतमकी आँखोंमें
किन्तु आश्चर्य तो यह है कि इससे बिंध गया उसका मन

कामशरैस्तदद्भुतमहो पत्युर्मनः कीलितम् ॥ १० ॥
ताडोदलं काचन कर्णपाशे निवेशयन्ती सुतनुः करा-
भ्याम् । रराज कर्णान्तविसर्पदृष्टिः शरणं ददानेव
कटाक्षवाणान् ॥ ११ ॥ दम्पत्यर्निशं जल्पतांगुहशुके-
माकणितं यद्वचस्तत्प्रातर्गुरुसाम्रधा निगदतस्तस्या-
तिमात्रं वधूः । कर्णालम्बितपञ्चरागशकलं विन्यस्य
चञ्चवाः पुटे ग्रीवार्तां प्रकरोति दाडिमफलव्याजेन
वाग्वन्धनम् ॥ १२ ॥ धन्यास्ताः सखि योषितः प्रिय-
तमे सर्वाङ्गलक्ष्णेऽपि याः प्रागल्भ्यं रचयन्ति मन्मथ-
विधायालम्ब्य धैर्यं महत् । अस्माकं तु तदोयपाणि-
कमलेनोन्मोचयत्यंशुकं काऽर्थं का वयमत्र किं च सुरतं
मैव स्मृतिर्जायते ॥ १३ ॥ नक्षत्रतमुरःस्थलेऽधरदले
रदस्य भ्रमं व्युता वकुलमालिका विगलिता च
मुक्तायली । रताभस्तसमये मया रुक्लमंतदालोकितं
स्मृतिः क्व च रतिः क्व च क्व च तवार्त्तं शिक्षा-

विधिः ॥ १४ ॥ निद्रातुन्दिलशोणलोचनयुगं वत्ताङ्क-
दन्तच्छदं पर्यस्तालकवज्जि घर्मपटलप्राप्तृपत्रावलि ।
अम्भाजृम्भितसीधुसौरभमिलङ्गकीभिरङ्गीकृतस्तोत्रं
शंसति घफत्रमेव रजनीवृत्तान्तमेखीदृशः ॥ १५ ॥ नीचीं
प्रति प्रणिहिते नयनेऽपि तेन पद्माननं दधितेन रहो-
गतेन । शय्याश्रयोऽपि वत दुर्लभतां प्रयासि बुद्धिः
सखी क्वचन लीयत एव सख्यः ॥ १६ ॥ पादन्यासं
कृतवति बहिः श्रोत्रयोरस्मि लीना प्राप्ते दृष्टिप्रसर-
पदवीं दृष्टिरेवाहमासम् । तद्वान्तस्थे हसितपुलकस्वे-
दकम्पाकुलाङ्गी सजाताऽहं तदनु सखि मे विप्रलुप्तो
विवेकः ॥ १७ ॥ प्रभाते पृच्छन्तीरनुरहसद्वृत्तं सहच-
रीर्नबोद्धा न ग्रीवामुकुलितमुखीयं सुखयति । लिख-
न्तीनां पञ्चाङ्कुरमनिशमस्यास्तु कुक्षयोश्चमत्कारो गूढं
करजपदमासां कथयति ॥ १८ ॥ यद्वा जगद् पुरस्ता-
त्तस्य मत्ता किलाहं चकर च किल जादु मौडयोपिद्र-

॥ १० ॥ कोई सुन्दर शरीरवाली नवेली ताड़के पत्तिका कमकुल
बनाकर हाथोंसे जब पकन रही थी उस समय उसके कानोंतक
कैली हुई चितवन ऐसी जान पड़ रही थी माना वह अपने
चितवनरूपी माथोंका लोचन करनेके लिये शान-पर चढ़ा रही
हो ॥ ११ ॥ रात्रिमें परस्पर बातचीत करते हुए पति-पत्नीका
जो बातें पालन सुनोने सुनीं उगईं बातोंका वह प्रातः-
काल गद्-गद्गद्के सामने दुहराने लगा । यह सुनकर नवेली
लजा गई और उसने अपने कानमें लटक के हुए पञ्चराग
(तालमणि) का टुकड़ा उसकी चोंचमें भेंटके रूपमें डाल
दिया जिसे सोतेने अनारका दाना समझा । इस प्रकार
नवेलीने सुनोका बोलनेसे राक दिया ॥ १२ ॥ हे सखी ! मे
सखी धन्य हैं जो रातकीड़ाके समय प्रियतमके द्वारा अपने
सारी देहका आलङ्कन किए जानेपर भी गर्भांश हाकर दिखाई
दिलवाती हैं । मेरी तां यह दृशा है कि जैसे ही मैं ऐसी सुख-उप-
खा बैठती हूँ कि मुझे यही स्मरण नहीं रह जाता कि कहीं
प्रियतम हैं, कहीं मैं हूँ और यह सब क्या हो रहा है
॥ १३ ॥ हे सखी ! छत्रांशपर नखके चिह्न, ओंठपर दाँतके
चिह्न, गिरी हुई मीलसिरी और मोतियोंकी माछा, इन सब
वस्तुओंकी मैंने सुरतके अन्तमें देखा । सुरतके समय तो मुझे
स्मरण ही नहीं रहा कि यह सुरत-आँका हो कैसी रही है और
उस समय तुम्हारी सिखाई हुई बातें भी न जाने कहीं खुस हो

गई थी ॥ १४ ॥ इस नवेलीकी दोनों चोंचों कीटके कारण
अत्यधिक काज हो रही हैं, इसके ओंठपर दाँतके चिह्न लगे
हुए हैं, बाज निकले हुए हैं, देहपर बना हुई चित्रकारी पत्तीनेसे
खुस गई है और मैंभाई कंते समय उसके मुँहसे जो
मदिराकी गन्ध निकलकर चारों ओर फैल रही है उसकी
गन्धके लोभमें चारों ओर भीरे गुँजते हैं । मैंबरा रहे हैं ।
इस प्रकार उस सुगमयनी नवेलीके रातके व्यवहार उसका
मुख ही प्रकट किए दे रहा है ॥ १५ ॥ हे सखी ! एकान्तमें
बैठे हुए कमल-जैसे मुखवाले प्रियतम जैसे ही नादेकी गँठकी
ओर चितवनभर चलाते हैं जैसे ही बिजुनेपर बैठे हुए सखी
तथा बुद्धि से सब न जाने कहीं खुस हो जाती हैं ॥ १६ ॥ हे
सखी ! ज्योंही मुझे बाहर प्रियतमके आनेकी आहट लगी
त्योंही मैं काज लगाकर बैठ गई, फिर जब वे चोंचोंके सामने
आ गए तो मानो मैं स्वयं उन्हें देखनेके लिये दृष्टि ही बन
गई और सब से पलंगपर आ बैठे तो मैं हँसने लगी, मेरे
संगठे खड़े हो गए, मैं कौपने लगी और इसके परचाये तां
मेरा विवेक ही खुस हो गया कि कहीं क्या हो रहा है ॥ १७ ॥
किसी नई ब्याही हुई नवेलीसे उसकी सखियों प्रातःकाल
रातका समाचार पूछने लगी । पर जब उसने जमाकर रापना
तिर नीचे झुका लिया तो सखियोंको संतोष नहीं हुआ ।
इसी बीच वह धमत्कार हुआ कि जब से सखियाँ उस
नवेलीके स्तनोंपर चित्रकारी करने लगीं तो उनपर लगे हुए

वस्य । विदितमिति सखिभ्यो रात्रिवृत्तं विचिन्त्य
व्यपगतमद्याक्षि व्रीडितं मुग्धवक्ष्या ॥ १६ ॥ मुग्धा
स्य सुभगे न वेत्ति मदनव्यापारमध्यापितं नूनं पद्म-
वसैविद्याऽयमलिना दृष्टो न भर्त्राऽधरः । सख्येदं
हसितं वधूं प्रति तदा सानन्दमाविर्भवद्वक्ष्यान्तर्धन-
शोभुगन्धरसिकैर्भृङ्गैर्यदा गुञ्जितम् ॥ २० ॥ यद्रात्रौ
रहसि व्यपेतविनयं वृत्तं रसान्तामिनोरन्योन्यं शयनी-
यमीहितरसायासिप्रवृत्तस्पृहम् । तत्सानन्दमिलदृशोः
कथमपि स्मृत्वा गुरुणा पुरो हासोद्धेदनिरोधमन्धर-
मिलत्तारं कथञ्चिद्विस्थितम् ॥ २१ ॥ यानि द्रवन्ति
विरहे विदलन्ति यानि योगे हरेण सखि किं वलवैः
फलं ते । नैवास्ति वैधिर्वादि सम्पादि व्योपयोगस्तैः
सङ्गमं न खलु पाञ्चुति कोऽपि मय्यः ॥ २२ ॥ रतसि-
क्तनुं प्रातर्लज्जामन्त्रमुष्णीं वधूम् । स्मरन्तीं रात्रि

चरितं दृष्ट्वाप्रोति न को मुदम् ॥ २३ ॥ राजने राज-
गमाया गय विम्याभ्रव्रणः । सुधां पीन्वेव कान्तेन
तल्लेपोऽयं स मुद्रितः ॥ २४ ॥ तात्रां विधातुमश्ल-
श्वितमाश्रमेव सख्याः करेण तरुणाम्बुजजकोमलेन ।
कन्याश्चिदप्रपदमाशु यभूय रक्तं लातागसः पुनरभून्
पुनरुक्तदूष्यः ॥ २५ ॥ वक्षस्ते ददलप्रकर्षशकुचदन्ता-
वधनान्तरं कण्ठः कङ्कणरत्नकोटिकलनामुच्यन्तमुद्रा-
ङ्गिनः । व्यन्यासव्यतिषञ्जितश्च निलकः फाले तवायं
सखे कस्याश्चिदप्रकटीकरोति सुगन्मांदि पगं सुभ्रूयः
॥ २६ ॥ शशपदमणिमालं खन्दरेखाभिरागं ललितपुल-
कजालं सख्ययिन्दुप्रवालम् । यपुरनयममुप्या वक्ति
कस्यापि यूयः सुरतकलहलीलासुरममार्गाभियोगम्
॥ २७ ॥ संवरणाय वधूटीं बहुपरिपाटीं करोतु किं
तेन । सम्प्रति रजनिरहस्यं नयनालस्यं नियदयति

नलके बिछोने हो धीरे-धीरे उसकी सारी पीछ छोड़ दी
॥ १८ ॥ प्रातःकाल मधु उत्तर जागेपर उस नवेलीको
इस बातपर यही लज्जा हुई कि 'रातमें अत्यन्त मतवालेपनमें
मैंने प्रियतमके सामने न जाने क्या-क्या बक डाला, अप्रमत्त
हीठ नवेलीके समान बहुत आपलूसी की और मेरे इस सब
अव्यवहारका सखियोंमें जान लिया है ।' ॥ १९ ॥ आनन्दपूर्वक
वेढी हुई नवेलीके मुखसे निकलता हुई मदिराकी घनी गन्धका
रस लेनेके लिये जब भीरे गूँतने लगे तो सखीने उस बहुमे ऐसी
हँसी की कि 'हे सुन्दरी ! तू यही भोली है, सिखानेपर
भी तू कामका व्यवहार नहीं जान पाई, तभी तो कमलकी
पैलकीके छोनी इस रसिक भीरे-रूपी प्रियतमने तेरे ओठका
सुम्भन नहीं किया' ॥ २० ॥ जिस समय प्रेमी और प्रेमिका
दोनों बड़े-बूढ़ोंके सामने बैठे हुए थे उस समय जब उन
दोनोंकी आनन्दसे भरी हुई आँखें आपसमें मिलीं तो उन्हें
भिर्जन गृहमें निर्लज्जताके साथ और अनुरागसे भरे हुए
रातके व्यवहारोंका और अभिजापा पूरी हो जानेसे अत्यधिक
प्रेम बढ़ानेवाली शय्याका स्मरण हो आया जिससे उनकी फौजी
हुई आँखें रूँप गईं, पुतलियाँ नीची हो गईं और वे लज्जाके
कारण किसी-किसी प्रकार वहाँ उठर सके ॥ २१ ॥ हे सखी !
ओ प्रियतमके बिछोहके दिनोंमें बीजे पड़ जाते हैं और उनके
पास रहनेपर फटने लगते हैं ऐसे कंगनोंसे भला क्या लाभ
है ? सम्प्रति या विपत्तिके समय ओ किसी काम न आये
ऐसीका साथ क्या संसारका कोई मनुष्य चाहता है ? ॥ २२ ॥

रनिके परिश्रमसे धकी हुई, रातके भरित्र स्मरण करती हुई और
आगसे नीचे मुख की हुई बहूको देखकर कौन प्रसन्न नहीं होता
॥ २३ ॥ इस सुन्दर नवेलीके कूँदमरे समान आँदमें जो
दौतका चिह्न लगा है वह ऐसा जान पड़ रहा है मानां
प्रियतमने जिस आधारका अमृत पी लिया है उसकी सीढ़ी वहाँ
पड़ी रह गई हो ॥ २४ ॥ महावर लगानेके लिये सखीने अपने
खिले हुए तरुण कमलके समान कोमल हाथमें नवेलीके पैरका
आगेका भाग छूआ ही था कि पैर मात्र ही उठे । इसके
परचाह ओ महावर लगाया गया वह तो उस शेषके समान
प्रतीत हुआ जैसे एक घार कहीं दई बात फिर दुहरा दी गई हो
॥ २५ ॥ हे मित्र ! तुम्हारी छातीपर अधर-उधर लगे हुए
किसीके स्तनोंके लेपकी छाप, तुम्हारे गलेपर उभड़ा हुआ
किसीके कंगनके रत्नोंकी कोरकी साट और तुम्हारे मस्तकपर
लगी हुई यह उलरी बिन्दी ये सब किसी सुन्दर भौंहवाली
नवेलीकी बीठतासे भरी रसिकीदा प्रकट कर रहे हैं ॥ २६ ॥
माझाकी मण्डि दब जानेसे जिसमें खरहेके पैरके चिह्नके
समान चिह्न दिखाई दे रहे हों, जिसमें चैत्रवे (सिरबन्धी)
के दावका सुन्दर चिह्न बना हुआ हो, जिसमें उठे हुए
रोंगटे शोभा दे रहे हों और जिसमें मूँगेके समान जाल बिन्दी
लगी हुई हो, ऐसे युवकके शरीरको देखकर भौले-भाले लोग
भी यही कहते हैं कि यह रसिकलहकी लीलाओंके सुष्मसे
सुष्म दृक् जाननेवाला है ॥ २७ ॥ यह नहीं बहू अपनी
रातकी बातें छिपानेके लिये कितने भी उपाय क्यों न करे

॥ २८ ॥ सख्यस्तानि वचांसि यानि बहुशोऽधीतानि
युष्मन्मुखाद्वत्सेऽहं बहुशिक्षिता लक्ष्मणि ध्यान्वाऽस्मि
मौनं गता धूर्तनैव च मण्डलीकृतकुचं गाहं परिष्वज्य ।
मां पोतान्येव सहाधरेण सहसा वक्रस्थितान्येव मे
॥ २९ ॥ सुतोऽयं सखि सुप्यतामिति गता । सख्यस्त-
नोऽनन्तरं प्रेमावेशितमा मया नरलया न्यस्तं मुखं
तन्मुखे । हातेऽलीकनिमीलने नयनयोर्धूर्तस्य रोमा-
ञ्जनो लज्जाऽऽसोभ्यत सेन साऽप्यपहृता तत्काल-
योधैः क्रमैः ॥ ३० ॥ हारेण च स्तनयुगं परिवृत्य
पीनमत्यायतं च जघनं रशनागुणेन । मध्यस्य मण्डन-
विधिं न चकार काचिद्विक्तः सनाभिरपि नैव हि मान-
नीयः ॥ ३१ ॥

आलिङ्गनम्—अंशुकं हतधनः तनुवाद्दुस्वस्तिका-
पिहितमुग्धकुखाग्रः । भिन्नशङ्खधलयं परिणेत्रा पर्य-
रम्भि रभसादचिरोदा ॥ १ ॥ उत्तरोयविनयात्रपमाणा

किन्तु इस समय इसके नेत्रोंका आकाश ही रातका सारा मेघ
जैसे दे रहा है ॥ २८ ॥ हे सखियों ! तुम लोगोंके मुखसे
जो बातें मैंने बार-बार सीखी थीं उन्हें रातमें प्रियतमसे कहनेके
लिये मैं जगभर मौन होकर सोच ही रही थी कि इनमेंमें
उस धूर्तने मेरे उठे हुए स्तन पकड़कर, मेरा कसकर आलिङ्गन
करके, मेरे आधरोष्ठके साथ-साथ ही मेरे मुँहमें बसी हुई मे
सारी बातें भी ढाँची ॥ २९ ॥ हे सखी ! मेरे प्रियतमको
सोते देखकर सखियाँ तो यह कहकर चली गईं कि 'हे सखी !
यह तो रहा है अतः इसे सोने दो' और मुझमें ऐसा प्रेम
उमड़ आया कि मैंने उसके मुखपर अपना मुख रख दिया ।
फिर जब उसके शरीरमें रोमाञ्ज दिखाई पड़ा तब मैंने समझा
कि यह धूर्त कूठ-मूठ आँलें मँदे हुए है और मुझे बड़ी
लज्जा आ गई किन्तु उसने उस समयकी अनुकूल क्रियाओंसे
मेरी वह लाज भी छीन ली ॥ ३० ॥ किसी नवेलीने हारसे
तो अपने दोनों स्तन सजा लिए और बड़े-बड़े मोटे नितम्बको
करघनीसे सजा लिया किन्तु नाभिको इसलिये नहीं सजाया
कि यह तो रीति है इसका क्या आदर किया जाय ॥ ३१ ॥

गले लगाना : ज्योंही नायकने नवेलीका बख्ख खींचा
त्योंही नवेलीने अपने दोनों हाथ कन्धोंपर रखकर अपने सुन्दर
स्तन डक लिए और नायकने मूट उसे गले लगा लिया, जिसपर
उस नई बहूने ऐसे हाथ डिलाए कि उसके शंखके पूँछे बग
उठे ॥ १ ॥ ज्योंही नायकने बख्ख खींचे कि नवेली जानसे गढ़

हन्धती किल तदोक्षणमार्गम् । आवरिष्ट विकटेन
विवोदुर्वक्षसैव कुचमण्डलमभ्या ॥ २ ॥ दीपितस्मर-
मुग्धपुपौडं वल्लभे घनमभिष्वजमाने । वक्रतां न
ययतुः कुचकुम्भौ सुभ्रवः कठिनतातिशयेन ॥ ३ ॥
न स्म मानि वपुषः प्रमदानामन्तरिष्टतमसङ्गमजम्भा ।
यदुर्वह्निश्चाप्य विकसं व्यानशे तनुदह्नायपि हर्षः
॥ ४ ॥ पोंडिते पुर उरःप्रतिपेयं भर्तरि स्तनयुगेन
युधत्याः । स्पष्टमेव दलतः प्रतिनार्यास्तन्मयत्वमभव-
दधुदयस्य ॥ ५ ॥ यस्मिन्मयतिकराद्गनितानामङ्गजेन
पुलकेन यभूव । प्रापि तेन भृशमुच्छ्वसिताभिर्नीविभिः
सपदि वग्धनमोक्षः ॥ ६ ॥ सज्जहार सहसा परिण्य-
मेयसीपु विरहस्य विरोधम् । संहितं रतिपतिः
स्मितभिन्नक्रोधमाशु तदणेषु महेषुम् ॥ ७ ॥ सम्प्रवे-
ष्टुमिव योषित ईषुः श्लिष्यतां हृदयमिष्टतमानाम् ।
आत्मनः सततमेव सन्तर्पयति नो न जलु नूनमजानम्

गई और नायककी आँख बचानेके लिये उसने नायकके बिचाख
बक्खलसे अपने स्तन भिदाकर उसके गले जगकर स्तन दिया
लिए ॥ २ ॥ आत्यन्त कामोत्तेजित होकर नायकने नवेलीके
स्तन दबाते हुए जब कसकर उसे छातीसे जगाया तो सुन्दर
भीहोंवाली नवेलीके दोनों स्तन प्रसन्न कठोर हो जानेके कारण
तनिक भी टस-से-मस न हुए ॥ ३ ॥ पतिके गलेसे लगनेके
कारण प्रसन्नचित्त नवेलियोंके शरीरमें जब हर्ष न समा सका
तो उसने बाहर खड़े हुए रोंगटे भी प्रसन्न करके खड़े कर
दिए ॥ ४ ॥ उस नवेलीने अपने स्तनोंसे नायककी छाती
दबाकर उसे गले जगाया तो सौतका हृदय इस प्रकार टूक-
टूक हो गया मानां पतिके चिन्तनसे जो उसका हृदय तन्मय
हो गया था वह सौतके स्तनोंसे दबकर टुकड़े-टुकड़े हो
गया हो ॥ ५ ॥ पतिके गले जगनेसे नवेलियोंके शरीरसे
रोमाञ्ज-रूपी पुत्र उत्पन्न हुआ इसलिये इस प्रसन्नतासे बँदे
हुए भाड़े छुटकारा पा गए क्योंकि जब पुत्र उत्पन्न होता है तो
उस प्रसन्नतामें शत्रु भी बन्धनसे खोल दिए जाते हैं ॥ ६ ॥
पुरुषोंने सब ऋग्वेदा-टम्टा मिटाकर जब नवेलियोंके गलेसे जगाया
तो नम्र मुस्कानसे उन्होंने रुठना छाँड़ दिया और कामदेवने
भी उन लोगोंपर खड़ाए हुए अपने विशाख बाणोंकी भ्यर्थ
समझकर उत्तार दिया ॥ ७ ॥ छातीसे जगाते हुए पतिके
हृदयमें नवेलियाँ मानों घुस जाना चाहती थीं पर वे यह नहीं
जान पाईं कि वे सदा उनके हृदयमें ही निवास करते हैं ॥ ८ ॥

॥ ८ ॥ अंसमानमुपयन्तरि घट्याः श्लिष्टधनुषपसपलि
रसेन । आत्मनैव रुद्धे कृतिनेव स्वेदसङ्कितं वसनं जघ-
नेन ॥ ९ ॥ स्नेहनिर्भरमधत्त वधूनामाद्रेतां वपुःसंशय-
मस्तः । यूनि गाढपरिरम्भिणि वस्त्रकोपमय्यु वधूपे
यवनेन ॥ १० ॥ हीतया गलिततांशि निरस्यन्तरीय-
मवलम्बितकाञ्चि । मण्डलीकनपृथुस्तनभारं सस्वजे
दयितया हृदयेऽशः ॥ ११ ॥

सुम्बनम्—आदता नखपदैः परिरम्भाश्चुम्बि-
तानि घनदन्तनिपातैः । साकुमार्यगुणसम्भृतकीर्तिर्धाम
एव सुरतेष्वपि कामः ॥ १ ॥ केनचिन्मधुरमुल्लङ्घनरगं
वाप्यतममधिकं धिरहेषु । ओष्ठपल्लयमपास्य मुहूर्तं
सुभ्रुवः सरसमलि चुचुम्बे ॥ २ ॥ पल्लयोपमिति
साम्यसपत्नं वष्टयत्यधरयिध्वमभापे । पर्यङ्कजि सरजं
तद्वद्व्यास्तारलोचललेपेन करेण ॥ ३ ॥ लोलदृष्टि यदने

दयितायाश्चुम्ब्यति वियनमे रभमेन । द्योडया सह
विनोधि नितम्बादंशुकं शिथिलतामुपेपदे ॥ ४ ॥
हीमरादवनतम्परिरम्भे रागधानयदृजेष्ववकृष्य ।
अर्पिनोपदलमाननपद्मं योषितो मुकुलिताक्षमधा-
सीन् ॥ ५ ॥

विहारः—अभ्यसं विनयतः प्रियपाण्योषितश्च
करयोः कलहस्य । वारणामिव विधातुमभीक्ष्णं कस्यया
च वलयेश्च शिशिजे ॥ १ ॥ आम्बुशङ्करभिनो वलि-
धीर्चीलोलमानविनताकुलिहस्तैः । सुभ्रुवामनुभवाम्प्र-
तिपदे मुष्टिमेयमिति मध्यमभीष्टैः ॥ २ ॥ आयताह-
लिभृदतिरिक्तः सुभ्रुवां कश्मिशालिनि मध्ये ।
आलिपु प्रियकरः पृथुलासु स्पर्शमाप सकलैत तलेन
॥ ३ ॥ आश्रुनान्यपि निरन्तरमुद्योषितामुरसिजहि-
तयेन । रागिणामित इतां विमृशद्भिः पार्श्वभिर्जगृहरे

नायकने लीतके सामने ही जब बड़े तपाकसे नवेलीकी गले
लगाया तो उसके बच्चा सरकने लगे, वह पसीनेसे नहा
उठी किन्तु वह पंखर ही ऐसे घटक गया मानो समझदार
देवने उसे स्वयं धाम लिया हो ॥ १ ॥ नवेलियोंका शरीर
स्नेह (प्रेम, चिकनाहट) से भरा था और भीतर आर्द्र
(गीला, प्रेमभरा) था क्यों कि उन्होंने पतिने कसकर छातीसे
लगाया त्योंही इतना जक शरीरसे निकल पड़ा कि सब
कपड़े सर हो गए ॥ १० ॥ नायकने उन्होंने नवेलीका बच्चा
लींचा कि उसका नाड़ा सुन गया और वह लजित होकर
अपनी करधन धामे हुए अपने विशाल स्तनोंसे अपने
प्राणप्यारेकी छाती दबाती हुई उसके गलेसे छिपट
गई ॥ ११ ॥

सुम्बनः नकके चिह्नोंने छातीसे जगनेका आदर किया,
दाँतोंके चिह्नोंने सुम्बनका सम्मान किया और सुकुमारताके
छिये बहुत प्रसिद्ध कामदेव भी सुरतके समय बाम
(उल्टा, कुटिल) व्यवहार करने लगा ॥ १ ॥ विरहिणी
नवेलीके ओठ सुन्दर तथा अत्यन्त काल थे । किन्तु इतना
होनेपर भी वे गरम आँखोंसे लप गए थे । इसलिये नायक
उसे छोड़कर बड़े प्रेमसे थोड़ी देरतक उसकी रसीली आँखें
ही चूमता रहा ॥ २ ॥ जिस समय नायक उस नवेलीके
ओठ अपने दाँतोंसे काट रहा था उस समय मानो उसके
हाथ दुखी होकर कङ्कनकी खनखनाहटके बहाने चिस्लाने
लग रहे थे क्योंकि हाथ और ओठ दोनों ही नई कोंचलोंके

समान काल थे इसलिये दोनों एक दूसरेके मित्र थे ॥ ३ ॥
जिस समय नायक उस बच्चल आँखोंवाली नवेलीका
मुँह चूमे जा रहा था उस समय नवेलीका नाड़ा सुना जा
रहा था और लाजके साथ-साथ उसके बच्चा भी नितम्बके नीचे
सरके पड़ रहे थे ॥ ४ ॥ प्रेमी पतिने नवेलीका जूड़ा धामकर
जाग्रसे भुका हुआ उसका वह मुँह चूम लिया जिसके घाँठ
नायकके मुँहके पास पहुँच गए थे और आँखें क्षिप
गई थीं ॥ ५ ॥

विहारः जब पतिने नवेलीकी साड़ी खींची और
नवेलीने अपने हाथसे उसे रोका उस समय उन दोनोंके
हाथोंकी लड़ाई देखकर करधन तथा कङ्कन दोनों भागो
बज-बजकर उन्हें मगड़ेसे रोकने लगे ॥ १ ॥ पेटकी सिकुड़न-
रूपी लहरोंके चारों ओर नायकने पहले अपना हाथ फेरा,
इस हाथपेरमें हाथकी उँगलियाँ बच्चल होकर आगे बढ़ती
जा रही थीं और इस प्रकार पुराने अभ्यासके कारण जब
उसने उसकी कमर मुठोसे नापी तब कहीं वह कमरका
भेद समझ पाया ॥ २ ॥ नवेलीकी कमर इतनी पतली थी
कि नायककी उँगली उसे जपेटकर भी बड़ी पड़ गई अर्थात्
पूरी उँगली भी कमरको न जपेट सकी । पर नितम्बपर
तो पूरी हथेली ही जमकर बैठ गई ॥ ३ ॥ विशाल
स्तनोंसे चारों ओरसे घिरे हुए छियोंके हृदयोंको हृदय-उधर
हूँदनेवाले नायकके हाथोंने उनके हृदय पा लिए अर्थात्
स्पर्शके सुखसे छियाँ प्रसन्न हो उठीं ॥ ४ ॥ नायककी उँगली

हृदयानि ॥ ४ ॥ आशु लङ्घितवतीएकरात्रे नोविमर्ध-
मुकुलीकृतदृष्ट्या । रक्तवैणिकहताधरतन्त्रीमण्डल-
कवणितचारु शुक्ले ॥ ५ ॥ ऊरुमूलचपलचणमग्रन्यैर्व-
नंसकुलुमैः प्रियमेताः । चक्रिरे सपदि तानि यथार्थं
मन्मथस्य कुसुमायुधनाम् ॥ ६ ॥ कामिनः कृतरतो-
त्सवकालक्षेपमाकुलवधूकरसङ्गि । मेखलागुणविलग्न-
मसूयां दीर्घसूत्रमकरोत्परिधानम् ॥ ७ ॥ कामिनामस-
कलानि विभुशैः स्वेववारिमृदुभिः करजाग्रैः । अकि-
यन्त कठिनेषु कथञ्चित्कामिनीकुचतटेषु पदानि ॥ ८ ॥
ग्रन्थिमुद्ग्रथयितुं हृदयेऽशेषाससः स्पृशति मानध-
नायाः । अयुगेण सपदि प्रतिपेदे रोमभिश्च सममेव
विभेदः ॥ ९ ॥ अक्रूरेव ललनोरुषु राज्ञीः स्पर्शलोभ-
शलोलकराणाम् । कामिनामनिभृतान्यपि रम्भास्त-
म्भकोमलतलेषु नखानि ॥ १० ॥ प्राप्य नाभिनन्दमज-
नमाशु प्रस्थितं निवसनग्रहणाय । औपनीयिकमरुन्ध

किल स्त्री यज्ञभस्य करमात्मकराभ्याम् ॥ ११ ॥
लोभमलम्बनशिलाशिलराग्रादात्तघर्मसलिलैरुतरुलाना-
म् । उच्छ्वसन्कमलचारुषु हस्तैर्निस्सनाभिसरसीपु-
निपेते ॥ १२ ॥ हिमलवसदृशः ध्रुमोदविन्दुनपनयता
किल नूतनोदवध्याः । कुचकलशकिशोरको कथञ्चित्त-
रलतया मरुलेन पस्पृशते ॥ १३ ॥

मुरतकेलिकथनम्—अकृत्रिमविलासाङ्कमशिक्षितक-
लाक्रमम् । अविभागाङ्गसुभगं वभूव सुरतं तयोः
॥ १ ॥ अम्यकालपरिहार्यमजस्रं यद्वयेन विदधे ह्य-
मेव । धूयता रहसि भर्तुषु ताभिर्निर्वयत्वमितरैरक-
लासु ॥ २ ॥ अभिनवपुलकालीमण्डिता गण्डपाली
निगदति धिनिगूढानन्दहिन्दोलितचेतः । सुदति वदति
पुरुषैः कस्य धन्यैर्मनोजयसरमसकृदेतच्छापलं लोचनस्य
॥ ३ ॥ अविदितसुखदुःखं निर्गुणं वस्तु किञ्चिज्ज-
मतिरिह कश्चिन्मोक्ष इत्याजस्रसे । मम तु मतमनङ्ग-

जब एकाएक नायिकाके नादेपर पहुँची तब नायिकाकी
आँखें छिप गई और जब नायकने उसके ओठपर दूति लगाया
उस समय उसके गलेसे ऐसा स्वर निकला जैसे बीणा
बज उठी हो ॥ ५ ॥ आँखोंकी जड़ देखनेके लिये नायककी
आँखें चञ्चल हो रही थीं, इसपर छिपोंने अपने कानपर
रखी हुए कून्से जो नायककी मारा वे उसे बाणके समान छगे।
उस समय कामका 'पुष्पकाणधारी' नाम सचमुच सार्थक हो
गया ॥ ६ ॥ जिस समय नायक सम्भोगके लिये तैयार
हुआ उस समय नवेलीके चञ्चल हाथ और करधनमें कैसा
हुआ लम्बे सूतवाला वस्त्र ऐसा प्रतीत हुआ मानो डाह
करके सुरतोत्सवमें बाधा पहुँचा रहा हो ॥ ७ ॥ नायकके
मल पसीनेसे कोमल पड़ गए थे इसलिये नायिकाके कठोर
स्तनोपर छगकर वे ऐसे मुड़ गए कि स्तनोपर बहुत हल्के चिह्न
लग गए ॥ ८ ॥ कठी हुई नवेलीका नाड़ा खोलनेके लिये ज्योंही
नायकने हाथ बढ़ाए कि उस नायिकाकी भौंहें चढ़ गईं और
अनुरागके कारण शरीरके रोंगटे भी खिल उठे ॥ ९ ॥ कामी
पुरुषोंके हाथ नवेलियोंकी आँखें छूनेके लिये इतने मजबूत
रहे थे कि उन्होंने नवेलीके केल्लेके खरभोंके समान चिकनी
आँखोंपर अपने नखोंसे खरोचनेकी रेंसाएँ बना दीं ॥ १० ॥
पहले तो नवेलीके हाथने नायिकाके नाभि-रूपी तालमें डुबकी
लगाई, फिर वस्त्र छेनेके लिये आगे बढ़ा पर अब वह नवेलीके
नाड़ेके पास पहुँचा तब नवेलीने अपने हाथसे मूठ-मूठकी

हकावट डाल दी ॥ ११ ॥ पहले तो पुष्पके हाथ नवेलीके
गरम स्तन-रूपी वट्टानकी ओटीपर पहुँचते-पहुँचते पसीनेसे
तर हो गए और फिर खिले हुए कमलके समान सुन्दर
नवेलियोंके नाभि-रूपी गहरे तालमें फूट पड़े। क्योंकि यों
भी लोग जब पसीनेसे तर हो जाते हैं तब खिले हुए कमलसे
भरे जलाशयमें कूदकर अपनी तपन मिटाते ही हैं ॥ १२ ॥ गई
व्याही कूहकी छातीपर छाई हुई टपटी पसीनेकी धूँ में पड़ते हुए
वह युवक बढ़ी मस्तीसे उसके नन्हें-नन्हें स्तन-रूपी कजरा
मससे डाल रहा था ॥ १३ ॥

रति-क्रोडाका वर्णन : उक्त दोनो प्रेमी-प्रेमिकाओंकी
रतिक्रीड़ा ऐसी हुई कि उसमें स्वाभाविक रूपसे हाव-भाव
हो रहे थे, बिना सीखी-पढ़ी कलाएँ हो रही थीं और पूरे अङ्ग न
दिलाई देनेसे वह और भी सुन्दर लग रही थी ॥ १ ॥ नवेलियोंने
अपने प्रियतमोंके सम्मुख दिखाई की तथा पुरुषोंने नवेलियोंके
साथ आखिजन आदि कामोंमें निर्वयताका व्यवहार किया।
इस प्रकार उन्होंने ये दो ऐसे काम किए जो रतिक्रीड़ाके
अतिरिक्त दूसरे समयमें कभी भी नहीं करना चाहिए ॥ २ ॥
हे सुन्दर दौतोंवाली ! अभी उठे हुए रोमाञ्चसे भरे
तुम्हारे गाछ सूचित कर रहे हैं कि तुम्हारे मनमें आनन्द
छिपा हुआ भरा पड़ा है। और यह तो बताओ कि तुम्हारे
नेत्रोंकी चञ्चलता किसके प्रबल पुरुषसे वह सूचना दे रही है कि
तुमपर कामदेवका प्रभाव भरपूर पड़ गया है ॥ ३ ॥ कुछ सू-

स्मेरताख्यघूर्णन्मदकलमदिराक्षोनीयिमोक्षो हि मोक्षः
॥ ४ ॥ आमीलितालसधिवर्तितनारकाक्षीमुत्कण्ठय-
न्धनदरश्लथयाहुवल्लीम् । प्रस्वेदवारिकणिकान्निग-
ण्डयिम्बां संस्मृत्य तामनिशमेति न शान्तिमन्तः
॥ ५ ॥ आयाते दयिते मनोरथशतेनान्ते कथञ्चिद्दिने
वैदग्ध्यपगमाज्जडे परिजने दीर्या कथां कुर्वन्ति । दष्टा-
स्मीत्यभिधाय सत्वरपदं व्याधूय चीनांशुकं तन्वङ्ग्या
रतिकातरेण मनसा नीतः प्रदीपः शमम् ॥ ६ ॥ आस्तां
दूरेण विहस्येयः प्रियामालिङ्गनो मम । स्वेदः किं नु
सरिन्नाथो रोमाञ्चः किं नु पर्वतः ॥ ७ ॥ आह्वनं कुच-
तटेन तरुण्याः साधु सोढमधुनेति पपात । युक्त्यनः
प्रियतमोरसि हारान्पुष्पज्वाष्टरिष्य मार्जिककृष्टिः ॥ ८ ॥
ईषन्कम्पयोधरं शुद्धकटिमौढप्रहाराद्भुतं स्थिचङ्गाल-

मनेकहास्यसरसं संरम्भमन्दव्यथम् । वारंवारमु-
प्रहारसुभगं सन्दश्यमानाधरं किञ्चिद्वत्तनिनम्यदेशन-
स्वरं धन्यो रत्नं मेवते ॥ ९ ॥ ईदृश्यं भवनः कथमेत-
न्नाधरं मुहुरतोय गतेषु । स्तिसमायतमदर्शयदुष्या
काञ्चिदाम जघनस्य महत्त्वम् ॥ १० ॥ ईषन्मालिनदृष्टि
मुग्धहसितं सौन्दर्यधारावशादव्यक्ताकुलकेलिकाकु-
विकसद्दन्तांशुधौनाधरम् । श्वासोन्कम्पितयोधरांगपरि-
पिण्डद्वान्कुरङ्गोदशो हर्षोत्कर्षयिमुत्तानिःसद्गननां-
धन्यो धयन्याननम् ॥ ११ ॥ उपरुणं कुचद्वन्द्वं हारग-
ङ्गाधरं मय । चन्द्रचूडं करिष्यामि फुल तावद्विगम्य-
रम् ॥ १२ ॥ उद्धनेनिभृतमेकमनेकं शृङ्खलदधन्मृगदशार्मावि-
रामः । भ्रूयते स्म भणितं कलकाक्षीनूपुरध्वनिभिरक्ष-
तमेव ॥ १३ ॥ उराह्वाम्भोहृददर्शनाय विसृजतः

ऐसी वस्तुको मोच कहते हैं जिसमें सुख या दुःखका अनुभव ही
नहीं होता और जिसमें सख, रज, तम गुणोंमेंसे किसी एक
भी गुणका सम्बन्ध नहीं रहता । हमारा समझमें तो कामदेव
तथा विकसित वीर्यसे मतवाली और चञ्चल भौंछावाकी
नवेलीके नाड़ेका मोच (लोतना) ही यथार्थमें मोच है
॥ ७ ॥ मुँदी हुई, आलस्यसे भरी हुई और हिलती हुई
पुतलियोंसे युक्त भौंछावाकी उस नवेलीका स्मरण करके
मेरे मनका किसी भी समय शान्ति नहीं प्राप्त होती
जिसकी भुजाएँ मेरी गला छपेटनेके लिये कुछ शिथिल
थी और पसानेकी दृष्टीसे जिसके गाल भरे हुए थे ॥ ८ ॥
बहुत दिनोंके बिछाहके पश्चात् प्रियतम आप, अनेक प्रकारके
सङ्कल्प करते हुए किसी प्रकार दिन बीता और रात आई
किन्तु सखियों ऐसी मूर्ख थीं कि उन्होंने मूर्खताके कारण बड़ी
सार्थ कहानी खेद दी । इसपर नवेलीने यह कहकर अपना
भौंछल हिलाकर दीपक बुझा दिया कि 'जब मुझे कीड़ने
काट खाया' क्योंकि उसका मन तो रतिकान्हाके लिये
छटपटा रहा था ॥ ९ ॥ नवेलीसे दूर रहकर वियोगी
बने रहना ही अच्छा है क्योंकि प्यारके आलस्यजनक
समय पसीना ही सखुद हो जाता है और उठे हुए
रोंगटे पहाड़ बन जाते हैं ॥ १० ॥ जब नवेलीने कसकर
नाथकका आलस्यजन किया तो उसका हार टूट गया
और बिखरे हुए मोती ऐसे दिखाई देने लगे मानों फूलोंका
वण हो रही हो । यह फूलोंकी वण मानों इस प्रसन्नतामें
हुई कि नवेलीके कठोर स्तनोंके चङ्गे नाथकके वचः-

स्थलने सह लिए थे ॥ ८ ॥ जिसमें धीरे-धीरे स्तन हिल
रहे हों, भारी निजभोंपर बेगसे धकेल जा रहे हों, माथेपर
पसीना छा रहा हो, अनेक प्रकारसे रसाक्षी हों, हाँ रहा हो,
आलस्यसे कुछ-कुछ थकावट हो रहा हो, धार-धार दानोंपर
हाथ करा जा रहा हो, दाँतोंसे आँठ काटे जा रहे हों और
नितम्बोंपर नखोंसे खराबे लग रहे हों ऐसी सुख काई
पुत्रयात्रा हो पाता है ॥ ९ ॥ भरतीपर गिरा हुई लम्बा
करधनीको लड़ नवेलीके नितम्बका चोंड़ाई बतला रहा था
और मानों प्रियतमसे यह भी कह रहा था कि 'हैं सा
आप इतने भारी किन्तु रतिकरत समय इतने हल्के कैसे
हो जाते हैं' ॥ १० ॥ सौंसे फूलजनक कारण कोपत हुए
स्तनोपर हाथ रखनसे आनन्द-विभार होनवाला और
अपना देह काँका कर देनेवाला मृगनयनाक उस सुखका
काई पुत्रयात्रा हो जुगुप्सन कर सकता है जिसमें आँखें
अधसुजा हो, मनाहर ऐसा छुटका हुई हो, सा-सा
शब्द निकल रहे हो और रतिकान्हाक समय टूटो-फूटो
दान बाधा निकलनक कारण जिसके आँठोपर दाँतका
किरक पड़ रहा हो ॥ ११ ॥ तुम्हारे स्तन स्वयं ही उम
(बिछाव, शङ्कर, हैं, वे हररुपा गङ्गाजाकी धारण करके
गङ्गाधर भी बने हुए हैं अतः अब तुम अपने वक्ष इटाकर इन्हें
उठाकर दिगम्बर बना दो और मैं इसपर नखोंसे चङ्क
बनाकर इन्हें चन्द्रचूड बना दूँ ॥ १२ ॥ हिल-हलकर
निरन्तर बज उठनेवाली नवेलीकी करधनी तथा मूपुरकी मधुर
ध्वनिसे धीरे-धीरे उठनेवाला तथा बीचमें टूट-टूट जानेवाला

कञ्चुकवन्धनानि । आनन्दनीराकुललोचनस्य प्रियस्य
जातो विपुलः परिश्रमः ॥ १४ ॥ कचग्रहमनुग्रहं दशन-
खण्डनं मण्डनं दृगञ्जनमवञ्चनं भुस्सरसार्पणं तर्पणम् ।
नखार्दनमतर्दनं निविडपीडनं क्रीडनं करोति रतिस-
ङ्गमे मकरकेतनः कामिनाम् ॥ १५ ॥ कान्तया सपदि
कोऽप्युपगूढः प्रौढपाणिरपनेतुमियेष । संहतस्तनतिर-
स्कृतदृष्टिर्भ्रष्टमेव न दुकूलमपश्यत् ॥ १६ ॥ कान्ते
कलितचोलान्ते क्षीपे वैरिणि दीप्यति । आसीदसित-
पद्माद्याः पक्षो नयनमुद्रणम् ॥ १७ ॥ कोकः स्तोक-
धिसुकमांस्तिकभरो निस्वन्दमिन्दीवरं खापं खापलव-
जितं हिमकरकोडे तमः कोडति । वातः कातरयत्य-
पाकृतरसं बन्धूकमेतावती वाता क्वापि क्वापि
पाणिपिहिता कस्यापि वा तिष्ठति ॥ १८ ॥ गाढालिङ्ग-
नयामनीकृतकुचमोद्भिन्नभरोमोद्गमा सान्द्रकोहरसाति-

गलेका शब्द दबा ही नहीं करम् और भी स्पष्ट सुनाई
देने लगा ॥ १३ ॥ स्तनरूपी कमल देखनेके लिये प्रियतमने
ज्योंही नवेलीकी आँखोंकी गाँठ खोली थीही उनका आँखोंमें
आनन्दका जल भर आया अतः गाँठ खोलनेमें उन्हें बड़ा
कष्ट उठाना पड़ा ॥ १४ ॥ रतिके समय प्रेमी-द्वारा प्रेमिकाके
केस एकदम ही कामदेवकी उमपर कृपा है, दस्तकत करना
ही सुसोभित करना है, आँखें मूँदना ही स्नेह है,
अभिराम्यताका दान ही तृप्ति है, नलकत करना ही रक्षा
करना है और कसकर दबाना ही खेल है ॥ १५ ॥ किसी
नायकने जैसे ही नवेलीका साढ़ा खोजनी चाहा वैसे ही
नवेलीने भट्ट उसका आखिजन कर लिया । अब उसे स्तनक
कारण नायकका हाँठ ऊपर हाँ ऊलभ गइ, अतः वह वह
देख ही नहीं पाया कि साढ़ी पहल ही नाच गिर चुकी है ॥ १६ ॥
मिस समय प्रियतमने आँखल पकवा उस समय भा बरा दीपक
जल ही रहा था । अतः नाच कमलक समान आँखवाला
नवेलीके पास एक उपाय रह गया कि उसन
अपनी आँखें मूँद ली ॥ १७ ॥ चकनेके समान गाँठ स्तनापरसे
मोलाकी मात्रा खिसक गई, नाच कमलके समान नेत्र
निश्चल गए, कामके भजुषके समान भाँहोने चञ्चलता
नहीं रह गई, चन्द्रमारुपी मुखपर नाजरुपी अन्धकार छा
गए और जपाकुसुमके समान ओठका रस सुखाते हुए पवनने
ओठ मज्जिन बना दिया । इतनी चस्तुई क्या कर्मा
कहीं किसीके हाथसे उकी जा सकती है ! ॥ १८ ॥

रेकविगलच्छ्रोमञ्जितभ्याम्बरा । मा मा मानद माति
मामलमिति क्षामाहरोक्षापिनी सुप्ता किं नु मृता नु
किं मनसि मे लीना घिलीना नु किम् ॥ १९ ॥
गाढाश्लेषनिपीडनाभिपतितामालोक्य हारावलीं
स्थातुं हन्त भ्रिया क्षणं निविडया नीक्यापि न व्यापू-
तम् । विश्लेषज्वरवेदनासहनयोः कारुण्यकोर्णान्मना
क्वापि प्रापितयोः समागमसुखं यूनोर्मनोजन्मना
॥ २० ॥ गाढोपगूहनरसालसलोचनानामेणीदृशां
पुलकवन्तुरकुङ्कुमलेषु । मण्डस्थलेषु वदनानि निवेश-
यन्तो धन्याः सुखेन दिवसानतिवाहयन्ति ॥ २१ ॥
आरुण्यपुररणकृतं रते कामिनां हरति मानसं यथा ।
नो तथा मधुरगीतवादितं केकिचातकपिकस्वना अपि
॥ २२ ॥ खिरविरहिणो रत्युत्कण्ठा श्लथीकृतगात्रयो-
र्नयमिव जगज्जातं भूयश्चिराद्भिनन्दतोः । कथमपि

नायकने जब कसकर प्यारीका आखिजन किया तो उसके
स्तन चिपट गए, उसकी देखने रोमाञ्छ हो गया और प्रेमके
आत्यधिक बढ़ जानेके कारण उसके सुन्दर नितम्बसे साढ़ी भी
सरक गई । तबभात् 'हे आत्यधिक आदर करनेवाले प्रियतम !
बस, बस, मुझे अधिक न दबाओ ।' इस प्रकार दूँ-कूँ
अचरोंमें बाँझती हुई वह न जाने लो गई या मर गई या
मेरे मनमें समा गई या सुप्त हो गई ॥ १९ ॥ वियोग-कपी
अवरकी पीड़ा न सह सकनेवाले प्रेमी और प्रेमिकाके
परस्पर मिलनेके सुखकी द्वाष्टी कामदेवने जब आत्यधिक
ऊँचाईपर पहुँचा दिया उस समय कसकर आखिजनके दबावमें
पड़कर हारकी आँखों दूँकर बिलर गई । उनका यह दृशा
देखकर कर्सा दुई नाचा (साढ़ीका गाँठ) ऐसा कर गई कि
वह पणभर भा ठहर न पाई ॥ २० ॥ ये जाग धन्य है जो
कसकर आखिजन करनेके आनन्दस अलसाई हुई आँखवाली
सुगमयनी नवाँजयोके रोमाञ्छित कपालापर अपना
मुँह रखके हुए सुखपूर्वक दिन बितात है ॥ २१ ॥ सुरलक
समय नवेलीके पैरके पायलका अन्धकारने मिस प्रकार
प्रियतमका मन वशमें किया उस प्रकार मधुर गाने-बजाने और
मोर, पपीहे तथा कोयलकी मधु ध्वनि मनकी वशमें नहीं
कर पाई ॥ २२ ॥ बहुत दिनोंसे जो एक दूसरेसे बिजुके हुए थे,
मिलनेकी चिन्तामें जो दुबले हो गए थे, जो परस्पर मिलनेपर
वह कह-कहकर अपनी प्रसन्नता प्रकट कर रहे थे कि 'आज
हमारे लिये यह संसार फिर नया-सा हो गया', किसी-किसी

दिने दीर्घं यासे निशामधिरुहयोः प्रसरति कथा बह्वी
यूनोर्यथा न तथा रतिः ॥ २३ ॥ टङ्कारः स्मरकामु-
कस्य सुरतक्रीडापिकीनां रवो भङ्गारो रतिमञ्जरीमधु-
लिहां केलीचकोरोरुधनः । तन्व्याः कञ्जुलिकापसार-
णभुजात्तेपस्फुरत्कङ्कणस्वाणः प्रेम तनोतु वो नववयो-
लास्याय वेणुध्वनिः ॥ २४ ॥ तव तन्वि तरुणपुण्याद-
म्यरमणिकरसंक्रमो जातः । अधिवेणु भवति नियमः
फलमविलम्बेन भावि कामस्य ॥ २५ ॥ स्तुपितः स्पृशति
प्रेयान्यद्यदङ्गं मृगीदृशः । तत्तत्सङ्कुचति स्वैरं मन्मथः
प्रसरत्यहो ॥ २६ ॥ त्वं मुग्धाक्षि विनैव कञ्जुलिकया
घस्ते मनोहारिणी लक्ष्मीमित्यभिधायिनि प्रियतमे
तर्हीटिकासंपृशिश । शम्भोपाभतनिविष्टसस्मितसखीन-
त्रोत्सवानन्दितो निर्यातः शनैरक्षीकवचनोपन्यास-
मालीजनः ॥ २७ ॥ दुकूलं दोर्मूलान्मर्णायान परार-

प्रकार अनेक प्रकारके विचार कर-करके बड़ी कठिनाईसे जन्म
दिन पितृकर जिन्हींसे रात पाई थी, उन तरुण तथा तरुणीने
आपसमें ऐसी खोजी बातें कहीं कि रातके लिये जितना समय
चाहिए उतना न मिल पाया ॥ २३ ॥ कामदेवके धनुषकी टंकार,
रतिक्रीडा-रूपी शोचकोंका स्वर, रतिरूपी मंजरीका रस लेनेवाले
भीरोंका गुञ्जार, क्रीडा करती हुई चकोरियोंका चूक और
वशोंकी ध्वनिके समान दुःखी-पतली नवेलोंके खोंखों उतारते
समय ऊपर-ऊपर हाथ कंकनेसे बजे हुए कढ़नोंका झनकार
गई जबानीकी कलजाओंमें आपका मन लगावे ॥ २४ ॥ हे दुबले
शरीरवाली ! युवक प्रियतमके भाग्यसे ही तुम्हारा देहपर
बल तथा मणिके आभूषणमें बने हुए मगरकी भी संयोग हो गया
ही और बाल भी सुधरे हुए है इसलिये शीघ्र ही कार्य
सफल होगा जब सूर्यका संक्रान्ति भकर राशिमें जाता है
उस समय जो लोग शिवश्याम स्नान-ध्यान करते हैं उसका
उन्हें शीघ्र फल यह मिलता है कि उनका मनोकामना शान्त पुरा
होती है ॥ २५ ॥ कामातुर होकर प्रियतम मृगनयनी नवेलोंका
जो-जो अङ्ग चूसे है वह-वह तो सिकुड़ जाता है किन्तु कामदेव
स्वच्छन्द होकर फैलता जाता है ॥ २६ ॥ 'हे सुनयनी
नवेली ! बिना खोजा पहने हा तुम मनका लुभानेवाली
सुन्दरता धारण किए हुए हा' ऐसा कहकर जैसे ही नायकने
खालीकी गोंठ सूनेका हाथ बढ़ाया वैसे ही नवेलीके पास बैठी
और मुस्कराती हुई सखीके लिये हुए नेत्रोंका संकेत पाकर
किसी बातका बहाना करके सखियों भीरसे सिसक गई ॥ २७ ॥

भगरसिके हृत्पद्मभोजाक्षी निभृतनिभृतं नम्रवदना ।
प्रियाश्लेषद्वेषितयपसगतु लज्जा मृदुमिति स्मितक्षी-
रेखेव स्तनकलशशोभुं स्रपयति ॥ २८ ॥ दशा सपदि
मीलितं दशनगोचिषा निगनं वरेण परिधेपितं प्रलय-
कैरथाकन्दितम् । प्रियैः समदयापितां ननु विखण्ड्य-
मानेऽधरे पश्यसनकानगाः किमिवकुर्वतां साधवः
॥ २९ ॥ दोष्यो संयमिनः पयोधरभरेणाशोद्धितः
पाणिजैगाविडो दशनैः ललाधरपुटः श्राणानटनाहतः ।
हस्तेनानमिनः करेऽधरसुधास्यन्दनं सम्मोहितः कान्तः
कामपि तृप्तिमाप तदहो कामस्य ग्रामा गतिः ॥ ३० ॥
धम्मिल्लो भङ्गमेतु प्रविशतु तिलकः केशपाशान्धकारं
पत्रालो गरुडपालो यजतु च शिघरं कण्ठयागन्तु-
कामा । वामायाः कान्तदन्तस्तनतानिसहने एक पश्चा-
धरोऽसा वीरः कामाह्वयेऽस्मिन्नाति यदति मुहुर्नूपुरः

आक्षिप्तकी हृत्पद्मे नायकने नवेलोंका कानसे जब आँख
खींचा तो कमलनयनी नवेलोंका मुख धारसे झुक गया और
बह मुस्कराने लगी । उस समय ऐसा जान पड़ा मानों 'पतिके
आलिङ्गनकी धैरिन यह जान दूर हो जाय यह संकल्प लेकर
अपनी दुष्कराहट-रुपी दृष्टिसे वह स्तनरूपा शिवलिङ्गोंका
स्नान करा रही हो ॥ २८ ॥ जब युवक उन कामिनी नवेलियोंके
खोंखोंका सुगंध करने लगे उस समय तत्काल उनका आँखें
फिग गईं, दोनोंका किरण बाहर निकल पड़ी, हाथ कोंपल
लगे और कढ़न चिल्लाते लगे । दूसरोंका विपत्तिसे दुःख
माननेवाले सज्जन इससे अधिक और कर ही क्या सकते हैं
॥ २९ ॥ कामसे मतवालों नवेलीने अपना भुजाआसे नायक-
का बंध लिया, स्तनोंसे दबाया, नखासे खराटा, दोनोंसे काटा
अपने मितियोंसे अत्यधिक धरके लगाए और नवेलीके
हाथोंसे दबाया हुआ अवशस्त पंजर माहित होनेसे उसे एक
निराला घामन्द प्राप्त हुआ । कामदेवकी सचमुच कैसा उच्छा-
सित है ॥ ३० ॥ नवेलीके धरोंका पायल अपनी भनकारक
स्वरमें मानों बार-बार यहां पुकार जा रहें हैं कि 'पाल भले हा खुल
जायें (हार जायें), माथेका तिलक भले हा बालरूपी अन्धकारम
झिप जाय और चेहरे-वृट भी गालोंका छेदकर भले हा कानाक
झिड़में घुस जाना चाहें किन्तु कामके युद्धमें नवेलीका यहां
एक शोडरूपी बोर ही ऐसा है जो पतिके दन्तवत् अटल हाकर
सह सकता है' ॥ ३१ ॥ कामका प्रबल वेग रहनेपर भी
नवेलियों प्रियतमके पास उदास ही रहती थीं, शरीरको

ध्वानभङ्गः ॥ ३१ ॥ धैर्यमुत्पन्नमनोभवभावा वामतां
च वपुरर्पितवत्यः । मोडितं ललितसौरतधाष्ट्यांस्ते-
निरऽमिषचित्तेषु तरुण्यः ॥ ३२ ॥ नैषा वेगं मृदुत-
रतनुस्तावकोनं विसोढुं शक्ता नैनां चपल नितरां
स्वेदयेन्दीवराक्षीम् । रम्यभ्यासं विदधत इति प्राण-
नाथस्य गत्वा कर्णोपान्ते निभृतनिभृतं नूपुरं शंसतीव
॥ ३३ ॥ पत्युः प्रवृत्तस्थ रतां जिगीषावचो निशम्याथ
न किञ्चिद्वचे । कलावती किं तु विद्वस्य तस्य कपो-
लयोः स्वेदमपाचकार ॥ ३४ ॥ पश्यन्तीं परिणामके-
लिपु मुहुर्निःशङ्कमालिङ्ग्य तां प्रोत्कृजत्कलमग्रहोष-
मधरं स्पर्धावता साप्यभूत् । नार्हं वाञ्छ न वांस सा
च धयिता तन्नाययोश्चोष्टं शम्या धेत्ति न धेत्ति वा
स तु कुतः सङ्ग्रामलोलः स्मरः ॥ ३५ ॥ पश्यन्नर्ध-
मिमीलितालिङ्गयुगलं यक्षप्रारविष्टं मुहुः विस्वाष्टामृत-
भापिबन्धुगदशा जिघ्रन्मुखे सारभम् । आलिङ्ग्यति-

निर्भरं स्तनतटं सौत्कारमाकर्णयन्नेवं पञ्चभिरिन्द्रियै-
र्निधुवने प्राप्नोति चम्यो मुदम् ॥ ३६ ॥ पाणिः कम्प-
मवाप काञ्चिरपतद्गुस्ता थपर नूपुरैराकन्दामिषि-
रैवधे विधुरता यन्नातिशीलं ऽधरः । एको वीरतरस्त
कामसमरे वक्षोभवः सुभ्रुवां येनात्याहतिजर्भरेण न
मनाकशैथिल्यमालम्बितम् ॥ ३७ ॥ पाणिपल्लवविधून-
नमन्तः सौत्कृतानि नयनार्धनिमेषाः । थोषितां रक्षसि
गद्गदवाद्यामल्लतामुपययुर्मदनस्य ॥ ३८ ॥ पृष्ठे
कञ्चुकमुक्त्यै सुतनुरसः प्रहिरावति पाणिम् ।
हन्तुमिव विसहृष्टिं यून्स्तृणादिवेषुमादसे ॥ ३९ ॥
प्रयुहः पुलकाङ्कुरेण निविडाश्लेषे निमेषेण च क्रीडा-
कृतविलोकिते ऽधरसुधापाने कथाकेलिभिः । आन-
न्वाधिगमेन मन्मथकलायुजे ऽपि यस्मिन्नभूदुद्भूतः स
तयोर्वभूव सुरतारम्भः प्रियम्भारुहः ॥ ४० ॥ प्राप्यते
स्म गतचित्रकचित्रैश्चित्रमार्द्रनखतप्तम कपोलैः । दधि-

सीप देनेपर भी प्रतिपक्षता दिखाती थी और रतिके समय
विदाई करती हुई भी लज्जा रहा थी ॥ ३१ ॥ रतिक्रियामें
जगें हुए प्रियतमके कानोंके पास आकर नखेलोंके धरेके पापल
धीरे-धीरे सामां यह कह रहे हैं कि 'इस नखेलीका शरीर बहुत
ही सुकुमार है, यह तुम्हारे धनके नहीं सह सकता । अतः हे
पुरुष ! इस कमलनयना नखेलीका बहुत न सताया'
॥ ३२ ॥ रातकाहुकें लगें हुए प्रियतमने जब अपने जातनेका
बात कहा तो वह बहुत नखला मुँहसे ता कुछ कहा बाबा । किन्तु
उसने इसकर प्रियतमके गालपर लाया हुआ पसीना पोंछ
दिया (अर्थात् यह बातका दिया कि जात जाते तो मुँहपर
पसीना क्या आता) ॥ ३३ ॥ रातकाहुकें समय जब वह
नखेली बार-बार मरत बार लाक रहा था उस समय मैंने वेष्टके
उसका आलिङ्गन किया, वह मुँहके भीतर ही भीतर कुछ
गुनगुना रहा था, फिर भी मैंने अपने दाँतोंसे उसका आठ
जकड़ लिया । इसपर भी जब वह हाँक करने लगी तो
उसके परचात् इस दाँताने क्या-क्या किया यह न तो मैं
हूँ समझ पाया न वह जान सका । बिल्लीना जानता है या
नहीं यह नहीं कहा जा सकता । तब भला मुदमें लगा हुआ
काम उसे क्या जानेगा ॥ ३४ ॥ वह पुरुष धन्य है जो अपनी
मृगनयना प्रियतमाका आर्षा मुँहाँ दुई आँखोंवाले मुखकमलको
देखता हुआ, अधरावृत पीता हुआ, उसके मुखकी सुगन्ध
सुँधता हुआ, अत्यन्त कसकर उसके स्तनोंका आलिङ्गन करता

हुआ और उसकी सी-सी सुनता हुआ अपनी पाँचों (नेत्र,
श्रोत्र, नाक, श्रवण, कान) से रतिका सुन पाता ॥ ३५ ॥
काममुद (रति) के समय हाथ कोंपने लगे, करधनी गिर
पड़ी, साज पूर-पूर हो गई, नूपुरोंको चिपकाहटके स्वरोंमें बाज
बिखर गए और अन्धर तो दिक्-भिक् हो गया । ऐसे
समयमें सुन्दर भीलोंवाली नखेलियोंके स्तन ही ऐसे परम
वीर निकले कि अचानक चोट खाकर भी टससे मत
नहीं हुए और अकड़े लड़े रहे ॥ ३६ ॥ मुँहसे दूरी
कृत्यो बातें बोलनेवाली नखेलीके हाथोंका कोंपना, मुँहके
भीतर ही सी-सी करना और अचानक आँखों से लव हो
एकान्तमें कामके बाज बन गए ॥ ३७ ॥ बिल्लीको गौँ
आलनेके लिये नखेलीने जो अपना दाहिना हाथ कंधेपरसे
पाठका आर धुमाया उस समय ऐसा जान पड़ा मानां युवकके
मनका हरिबाज मारनेके लिये वह तरकससे बाण निकाल
रहा है ॥ ३८ ॥ प्रेम और प्रेमिकाको अचानक धारी
रतिकाहु प्रारम्भ होने लगा जिसमें रामाक-रुपा अङ्गुलीसे
कसकर आलिङ्गन करनेसे बाधा पड़ी, प्रेमपूर्वक एक दूसरेका
वेष्टके समय गिरती हुई पलकोंसे बाधा पड़ी, अधरावृत पीतम
अनेक प्रकारका कहानियोंसे कामकाजके मुदमें आलस्य
मिलनेसे बाधा हुई ॥ ३९ ॥ नखेलीके गालपर गेने हुए वेज-
शूटें जूट गए और उनमें केवल गाँसे नल लगानेके चिह्न
दिखाई पड़ने लगे । बाँकोंके फूल गिर गए तो

रेऽथ रभसकृतपुष्पाः स्वेदविन्दुकुसमान्यलकान्ताः ॥ ४१ ॥ प्राप्य मन्मथरसादतिभूमिं दुग्धस्तनभराः सुरतस्य । शशसुः धमजलार्द्रललाटशिलप्लवकेशमसिता- यतकेश्यः ॥ ४२ ॥ बाहुपीडनकक्षप्रहणाभ्यामाहतेन नलदन्तनिपातैः । योधितस्तनुशयस्तकणीनामुन्मिमील विशदं विपमेपुः ॥ ४३ ॥ ब्रह्मानन्दप्रचुरं किमपोदं मेति रतिपु वचनेन । श्रुतिसीमसङ्गताहो मुग्धे सार- ज्जमादिशशि ॥ ४४ ॥ भजन्त्यास्तद्व्यान्तं कृतकपटक- एङ्गतिपिहितस्मितं याते गेहाह्विरवहिनालीपरिजने । प्रियास्यं पश्यन्त्याः स्मरशरसमाकृतसुभगं सलज्जाया लज्जा ध्यगमद्विष कूरं मृगरशः ॥ ४५ ॥ मत्तेभकुम्भप- रिणाहिनि कुङ्कुमाद्रं कास्तापयोधरयुगे रतिस्वेद- सिन्नः । वल्लो मिधाय भुजपञ्जरमध्यवर्ती धन्यः कृपां कृपयति कणलघ्वनिद्रः ॥ ४६ ॥ यद्यदेव रुदधे रुचि- रेभ्यः सुभ्रुयो रक्षसि तत्तदकुर्वन् । आनुकूलिकतया हि मराणामाक्षिपन्ति हृदयानि तरुण्यः ॥ ४७ ॥

कूलके स्थानपर पसीनेकी धँदँ भलक आई ॥ ४१ ॥ बड़े- बड़े स्तनोंवाली नवेलियों कामदेवसे मनवाली होंवर रतिजिवाकी कोटीपर पहुँच गई तथा लग्ने-लग्ने केशवाली वे नारियाँ धक गई इसलिये उनके पसीनेसे भरे हुए माथेपर काँध चिपक गए ॥ ४२ ॥ प्रियतमने हाथोंसे दबाकर, काँध एकद्वार, धक्के देकर, नलसे खरौटकर तथा दाँतोंसे काटकर नवेलियोंके शरीरमें रहनेवाले कामदेवको जगा दिया । इसके पश्चात् तो वह कामदेव सुजे कपमें बेसटके अवनता प्रभाव दिखाने लगा ॥ ४३ ॥ हे सुन्दरी ! कानों-तक अपनी आँखें फैलाकर तुम सुरतके समयकी यह बात पचीको सिखा रही हो कि यह यह सुख क्या प्रह्लाके दर्शनके सुखसे बढ़कर नहीं है ? ॥ ४४ ॥ जब सखियाँ मुख सुजलानेके बहाने अपनी मुस्कान छिपाकर घरसे बाहर निकल गईं उस समय बिक्रीनेपर बैठी हुई नवेलीका अपने पतिकी ओर देखना क्या था मारनों कामका बाधा ही बरस रहा था । फिर तो उस लज्जानेवाली मृगनयनी नवेलीकी लाज भी मानो वहाँसे दूर भाग गई ॥ ४५ ॥ मतवाले हाथीके मस्तकके समान ढँके, चौड़े और केशरके छेपसे सजे हुए नवेलीके दोनों स्तनोंपर रतिकी थकावटके समय अपनी छाती रसकर उसकी भुजाओंसे ढँका हुआ, अपनी छेता हुआ कोई भाग्यवान् पुरुष ही रात बिताता है ॥ ४६ ॥ प्रियतमको ओ-ओ काम करने

रतिरभसनिनान्तध्रान्तकान्ताकुञ्जान्तश्चलदमलकगप्रा नाभिदेशेऽप्यधो वः । स्मितमधुरमुखीनां ह्रीणनेत्रोत्प लानामधग्मधु वधूनां भाग्यवन्तः पिवन्ति ॥ ४८ ॥ वारणार्थपदगद्गदवाजामोर्ष्या मुहुरपत्रपया ख । कुर्वते स्म सुदशामनुकूलं प्रातिकूलिकनयैव युधानः ॥ ४९ ॥ विधूताः प्रियस्य केशाः फण्डे लग्नं भुजे वलितम् । प्रजन्त्या रससिन्धो किं किं न कृतं तया सुदशा ॥ ५० ॥ समादिष्टं शिष्टैः परममिह यन्निर्वृति- पदं पुनर्दग्धोऽप्याशु प्रभवति यतो मन्मथतरुः । ध्रुवे यस्मिन्कामी भवति कृतकृत्यो रतिमुखं स सीम्कारः पायादमृतविजयी सुन्दरदशाम् ॥ ५१ ॥ सिन्दूरं रधि- मिन्दुमाननमसां धम्मिल्लराहुम्वयं यद्वाहं प्रसन्तीय तन्प्रियतमे निर्णीतमाऽप्राप्तकम् । चोले चञ्चलता भविष्यति मुहुः स्यान्कुन्तले कर्पणं मोघो स्थास्यति न स्थिरा समुदयेदङ्गं महान्सङ्करः ॥ ५२ ॥ सीम्कृतानि भण्डितं कुरुणोक्तिः सिग्धमुक्तमलमर्थवर्थाति । हास-

लग्नं वही-वही काम सुन्दर भाँहाँवाली नवेलियोंने एकामें- किए क्योंकि तरुणी नवेलियाँ अनुकूल आचरणके द्वारा ही पुरुषोंका मन अपनी ओर खींच लेती हैं ॥ ४८ ॥ रतिके परिश्रमसे आत्यधिक थकी हुई नवेलीके स्तनोंपर जिनके हाथ फिर रहे हैं और नाभि तथा उसके भाँचे भी जिनके हाथ पहुँच रहे हैं ऐसे कोई-कोई भाग्यशाली हो उस नवेलीका अधरामृत पीनेका अवसर पाते हैं जिसके मुखमें मधुर मुस्कान और आँखोंमें लज्जा भरी हो ॥ ४९ ॥ बसकर किए जाते हुए आतिगमको न सह सकने तथा लाजके कारण नवेली दृष्टी-कृष्टी बोलीसे प्रियतमको रोक रही थी और दिखावटी प्रतिवृत्त आचरण करते हुए भी प्रियतम सचमुच सुनयनी नवेलियोंके साथ वैसे ही आचरण कर रहे थे जो उन्हें भा रहे थे ॥ ५० ॥ रति-काँदाके समय प्रेमके सागरमें डुबका लगाती हुई नवेलीने क्या-क्या नहीं किया । उसने पतिके बाल पकड़े, पतिको गले लगाया और उसकी भुजाओंसे लिपट भाँ गई ॥ ५१ ॥ सुनयनी नवेलियोंकी वह अमृतको भी जीतने- वाली 'सी-सी' ध्वनि रचा करे जिसे सज्जनोंने परम मोघ ही मान लिया है, जिससे लज्जा हुआ कामदेवरूपी वृष भी जड़जड़ा उठता है और जिसे सुनकर कामी निहाल हो जाता है ॥ ५२ ॥ हे प्यारी ! यह जो केशरूपी राहु सिन्दूररूपी सूर्य तथा सुखरूपी चन्द्रमाको प्रसे ले रहा है इससे उत्पात

भूपलम्बाश्च रमण्याः कामसूत्रपदनामुपजग्मुः ॥२३॥
 स्वेदजलपिच्छलाभिस्तनुभिर्युनां च शिथिलमाश्लेपम् ।
 विपुलं पुलकशलाकापटलं भ्रष्टिति प्रतिकरोति ॥२४॥
 स्वामिन्प्रभो प्रिय गृहाण परिष्वजस्व किं किं
 शठोऽस्यकरुणोऽसि सुखोचिनोऽसि । हा दुःखस्य-
 समलं विरमेति वाचः स्त्रीणां भयन्ति सुरते प्रणयानु-
 कूलाः ॥ २५ ॥ स्विश्रं मण्डलमैन्दवं विगलितं कम्भा-
 रयजं तमः प्रागेव प्रथमानकेतकशिलावीरायितं च
 स्थितम् । शान्तं कुण्डलताण्डवं कुचलयद्वन्द्वं तिरो
 मोलितं धीतं चिद्रुमसीन्धुतं नहि तनो जाने किमासी-
 दिति ॥ २६ ॥ स्वैरं पश्यति वल्लभे सरभसं हृत्वा
 दुकूलं यत्तादङ्गानां रतिसङ्करव्यतिकरे सौन्दर्यरेखाक-
 मम् । यत्तन्व्याः परिरभ्यमाणमदनम्रीडाधिलासाल-
 सैरङ्गैरङ्गपिधानमुपलदशः कस्यापि तद्गोचरम् ॥२७॥

हारस्त्रुष्यति कङ्कणं निपतति स्रक्कौमुदी क्लिश्यति
 प्वान्तं धावति सीत्करोति रजनीजानिर्वलो भज्यति ।
 काञ्ची क्षुभ्यति काञ्चनचित्तिधरे किं च क्षतं चञ्चति
 प्रारम्भे मदनादवस्य विजयी देवो मनोभूरभूत् ॥ २८ ॥
 हेमदुग्धमिव तुङ्गमुरोजं वल्लभे स्पृशति चोरवदस्याः ।
 जाग्रति स्म सहसैव तदानीं यामिका इव तनूकह-
 सहाः ॥ २९ ॥

विपरीतरतकिया — अभिमुखपतयालुभिर्ललाटश्रम-
 सलिलैरपनीतपत्रलेखः । कथयति पुरुषायितं वधूनां
 मृदितहिमद्युतिनिर्मलः कपोलः ॥ १ ॥ आश्रम्याधर-
 सिन्धुवारि कथरोसम्भारसम्प्राजिते स्वेदाम्भःक्षपिते
 कपोलविगलत्काशमीरपङ्कोऽज्वले । काञ्चीमन्त्रकृतेन
 निर्भरगलम्मुक्ताकलापञ्जजा धन्यस्वोरसि धूर्णमानन-
 यना पञ्चेधुमभ्यर्चति ॥ २ ॥ आलोलामलकावलीं

होनेका निश्चय हो रहा है कि बाल (चोली, चोख देवा) में
 अराजकता फैल जायगी, कुम्भल (केश, कुन्तल देश) उदर
 न सकेगा और अङ्ग (शरीर, विहार प्राप्त) में भयङ्कर दुःख
 मथ जायगा ॥२३॥ नवेलीका सी-सी करना और गलेके भीतर
 गै-गै शब्द होना, प्रार्थनासे भरी मोक्षी, प्रेमसे भरी हुई बातें,
 रोकनेकी बातें हैंसी तथा गहनेकी अनकार ही कामरसकके स्पष्ट
 सूत्र बन गए ॥२३॥ पसीनेसे अधिक किसलनके कारण नव-
 पुष्पकोंका डीला आलिंगन भी नवेलीके शरीरपरके रंगिटे दबाए
 दे डाल रहा है ॥२४॥ 'हे स्वामी ! हे प्रभो ! हे प्रियतम ! मुझे
 धाम लो, शरीरसे चिपका लो, तुम कैसे धूर्त हो, निर्दय ■, सुख
 ही लेना जानते हो ? हाय ! क्यों दुःख देते हो, बस करो, हट
 जाओ ।' इस प्रकारकी रतिके समयकी नवेलियोंकी बातें सुन-
 सुनकर रसिक प्रियतमका मन सदा प्रसन्न ही होता रहता है
 ॥२५॥ रतिके समय चन्द्र-मण्डलके समान नवेलीके मुखपर
 पसीना आ गया, अन्धकारके समान काले बालोंमें दँधी हुई
 माला गिर गई, कानोंके कुण्डलोंका नाचना बन्द हो गया,
 नीले कमलके समान आँखें क्लिप्त गई और भूँगेके समान
 ओठों-परसे सी-सी शब्द लुप्त हो गए । इसके पचात् मैं नहीं
 जानता क्या - क्या हुआ ॥ २६ ॥ काम-युद्ध (रतिक्रीड़ा)
 हो चुकनेपर जब प्रियतम यत्नपूर्वक वल्ल सींचकर नवेलीके
 बर्गोंकी सुन्दरता देखने लगे, उस समय आलिंगन करनेकी
 धकावट और लज्जासे अलसाए हुए अपने अङ्गोंसे कमलनयनीने
 जो अपने अङ्ग ढक लिए उसे क्या कोई देख पाया ! ॥ २७ ॥

जब काम-युद्ध होने लगा उस समय कामदेवकी विजय
 हुई क्योंकि उस युद्धमें हार टूट गए, कङ्कण गिर पड़े,
 मालारूपी चर्चनी लीकी पड़ गई, केशरूपी अन्धकार तितर-
 बितर हो गए मुखरूपी चन्द्रमा सी-सी करने लगा, पेटकी
 सिकुड़नें टूट गई, करधनी टुकड़े-टुकड़े हो गई और सुमेरु
 पर्वतके समान स्तनोंपर भी क्षत (घाव) हो गए ॥ २८ ॥
 चोरके समान छिपकर जब प्रियतम अपनी प्यारीके सोनेके
 बड़ेके समान ढँके स्तन छू रहा था उसी समय पृकापृक
 पहरेदारोंके समान रंगिटे जागा गए (नवेलीको रोमाञ्च
 आया) ॥ २९ ॥

विपरीत रतिक्रीड़ा : मसके जानेके कारण चन्द्रमाकी
 चमकके समान उठके नवेलियोंके ने गाछ उनके पुरुष-
 जैसे व्यवहार प्रकट किए दे रहे हैं जिनमें बने हुए
 बेल-वृटे सामनेसे गिरते हुए मस्तकके पसीनेसे छूट गए
 हैं ॥ १ ॥ विपरीत रति करती हुई किसी नवेलीको देखकर
 कवि कह रहा है 'वह पुरुष धन्य है जिसकी छातीको अपने
 लुके हुए बालोंसे काढ़-पोंछकर, पसीनेके जलसे धोकर
 तथा अपने कपोलोंपरसे ऋकर गिरे हुए केशरसे उबली करके
 उसपर जमकर अभराभृत-रूपी समुद्र जलका आचमन करके
 नेत्र घुमाती हुई नवेली करधनीके समकुन-रूपी मन्त्रोंसे भगवान्
 कामदेवकी पूजा करती है' ॥ २ ॥ उबटी रतिक्रीड़ाके समय
 जिसमें फूँकके साथ स्वच्छ वायु झिलते रहते हैं, कानके
 कुण्डल खोजते रहते हैं, नाथेपर पसीनेकी बूँदें आ जानेसे

सकुसुमां विभ्रमलकुण्डलं किञ्चिन्मृष्टविशेषकं तनु-
तरैः स्वेवाम्भसः सौकरैः । तन्व्या यत्तुस्तान्ततान्त-
नयनं घनं रतव्यत्यये तस्यां पातु चिराय किं हरिहर-
ब्रह्मादिभिर्देवतैः ॥ ३ ॥ चलहारलताश्रिया चिरं रम-
णोरःस्थलरङ्गनर्तनेन । अणितध्वनिउम्वरेण सा कृत-
वाघेव बभूव कामिनी ॥ ४ ॥ तन्नास्ति कारयति यन्न
मनोभयस्य सा शक्तिरप्रतिहता भुवने तथा हि ।
उद्घाट्य पीवरपयोधरमण्डलाग्रं यत्गन्ति यत्पुरुषय-
न्ममदा श्रीपृष्ठ ॥ ५ ॥ तमःस्तोमं सोमं गिलति वम-
तीवोदुनिकरं रथाङ्गद्वन्द्वेऽस्मिन्नमरतटिनी खेलति
मुहुः । लतायामुत्कम्पो मदनवसनीकाञ्चनगिरिपिप-
र्येति प्रायो रतिपतिमते सर्वमधुना ॥ ६ ॥ निःशेषं
भ्यपनीय नीविघसनं मञ्जुकषण्णमेखलं क्रोडाब्दोलन-
विभ्रमध्यलतिकं किञ्चिन्मृष्टकम्पस्तनम् । उद्यत्कुण्ड-
लताएव च चरितं विक्रम्य कान्तोपरि क्लान्ता

वक्षसि कामिनां मुकुलितप्रान्ताक्षिकं शेरते ॥ ७ ॥
पतनु तयोरसि सततं दयिताधम्मिल्लमल्लिकानिकरः ।
रतरसरभसकचग्रहलुलितालकवल्लीरगलितः ॥ ८ ॥
प्रशान्ते नृपुरारावे श्रयते मेखलाध्वनिः । कान्ते नूनं
रतश्रान्ते कामिनी पुरुषायते ॥ ९ ॥ प्रागदभ्यं पुरुषा-
यिते मम पुरः पश्येति सन्नद्धया तन्व्या ताम्यदुरोज-
यापि सुचिरं विक्रम्य रम्यं तथा । श्रान्ता वक्षसि
मे निपत्य च पुनः सापन्नपं सस्मितं साकृतं च समो-
क्षितं मृगदशा यत्तत्कथं कथयते ॥ १० ॥ प्रारब्धे
रतिकेलिसकुलरणारम्भे तथा साहसप्रायं कामतजयाय
किञ्चिदुपरि प्रारम्भि तन्मसम्भ्रमात् । विभ्रा येन
कटीतटी शिथिलिता दीर्घल्लिकम्पितं वक्षो मीलित-
मैति पादपरसः स्त्रीणां कुतः सिध्यति ॥ ११ ॥ प्रारब्धे
विपरीतनामनि रते सर्वं तदाभ्युत्थान्तामाश्रयां
विपरीतमेव कुटिला मुक्ताः सुवृत्ता अपि । मुक्ता

जिसमें मायेका तिलक मिट जाता है और रत्निकीका समाप्त
होनेपर जिसकी आँखें बलसा जाती हैं ऐसा नयेनीका मुख
सदा मुहारी रका करे । फिर मङ्गा, बिन्दु और शिव आदि
देवताओंकी कृपाकी आवरणकता ही क्या है ? ॥ १ ॥ रतिके
समय प्रियतमकी छातीपर रङ्गमञ्चपर चञ्चल हारकी लक्ष्मि
नचाती हुई नवेली मानो गलेसे निकले शब्दोंसे बाजा
पजा रही थी ॥ २ ॥ किसीसे भी न एक सकनेवाली
कामदेवकी शक्ति इस संसारमें क्या नहीं करा देती ! देखो,
नवेलीपर भी अपने बड़े-बड़े स्तन उधाड़कर पुरुषके सामने
ही उबल रही हैं ॥ ३ ॥ कामदेवकी आज्ञा मानकर इस
समय मानो सभी वस्तुएँ उलट्टे ही काम कर रही हैं
क्योंकि केशरूपी अम्बकार चन्द्रमा (मुख) को निगलकर
पल्लोनेकी ईश्वरूपी तारे उगल रहा है । स्तनरूपी चकवा-
चकीमें हाररूपी आकाश-गङ्गा खेले जा रही है और
नवेलीकी स्नेहरूपी लतामें कामदेवके रहनेका सोनेका
पहाड़ (नितम्ब) हिज रहा है ॥ ४ ॥ गोंठ खोलकर
साक्षी हटा दी गई, करधनी धीरे-धीरे कोलने लगी, अधिक
दिलानेसे कमरमें थकावट आ गई और स्तन भी कुछ-
कुछ दिलने लगे । इस प्रकार प्रियतमके ऊपर चढ़कर
भली-भाँति अपनी पराक्रम दिला देनेके कारण नवेली थक
गई और प्रियतमकी छातीपर ही पड़ी-पड़ी रूपकी लेकर सो
गई ॥ ५ ॥ भगवान् करे, नवेलीके साथ सुरतके समय अनुराग

तथा वेगसे गाल लींचनेके कारण हिली हुई चोटीसे गिरे
हुए बेंछेके फूल सदा मुहारी छातीपर बरसते रहें ॥ ८ ॥
पायलोंकी कनकार शास्त्र हो गई है और करधनीकी मधुर
ध्वनि सुनाई पड़ रही है । इससे जान पड़ता है कि प्रियतम
थक गए हैं और अब नवेली ही प्रियतमके समान आचरण
करने लगी है ॥ ९ ॥ 'देखो, मैं भी पुरुषोंके समान कैला
पराक्रम करती हूँ' यह कहकर नवेली विपरीत रतिमें जुट
गई किन्तु बहुत देरतक भली-भाँति परिभ्रम करती रहनेसे
थक गई और मेरी छातीपर पड़े-पड़े उस मृगतनयनीमे
लज्जा, मुस्कान और कुछ मनके भावके साथ जो मेरी
ओर देखा उस चितवनका मैं वर्णन क्या करूँ ॥ १० ॥
जब रतिकीदासकी प्रवलयुद्ध विद् गया तो प्रियतमको
जीत देनेकी इच्छासे नवेली उसके ऊपर पढ़कर ही आत्यधिक
प्रयत्न करने लगी जिससे उसकी कमर थक गई, भुजाएँ
झीझी पड़ गईं, छाती काँपने लगी और आँखें मुँद गईं ।
भला, बिरोंका पुरुष-जैसा प्रयत्न कहीं सकल हुआ है ? ॥ ११ ॥
जब विपरीत रति प्रारम्भ हुई, उसी समय उस पुरुषसे
जङ्गवाली नवेलीमें सभी वस्तुएँ उलट्टी हो गईं, कुटिल (देदे,
नीच) बालबन्धनसे छूट गए, गोझ-गोझ मोती टूटकर ऐसे गिर
गए मानो सदाचारी मुक्त (मोती, संसारसे छुटकारा पानेवाले
जोग) भी चितकी चञ्चलतासे पतित हो गए हों, स्तनरूपी
पहाड़ दिलने लगे, कानके ऊपर खगे हुए फूल वेद जाननेवाले

निःपतिता भवन्ति तरलास्तौ चाचलौ चेलतुः सीदन्ति
श्रुतिपारगाः सुमनसः कान्ता नु कान्तायते ॥ १२ ॥
मधुपानसमुल्लसत्प्रवालं चलहेमाचलकान्तिभिर्जटा-
लम् । विधुनिःपतदन्धकारजालं शुभकालं क्व पुन-
विलोकयामः ॥ १३ ॥ मुक्ताः पतन्ति भूमौ बालाः
कलयन्ति केयलां मुक्तिम् । सुम्यत्यम्बरमवनि विपरीते
किं न विपरीतम् ॥ १४ ॥ मुग्धे तवास्मि दयिता
पुरुषो भव त्वमित्युक्तया नहि नहीति शिरो विधूय ।
स्वस्मात्कारात्प्रियकरे वलयं क्षिपन्त्या वाचं विनाभ्यु-
पगमः कथितो मृगाख्या ॥ १५ ॥ सीताचामरदम्बरो
रतिपतेर्नीलाम्बुयाहागमो रागोद्गारशिक्षादिनो मुक्त-
विधूद्धूतस्तमोविभ्रमः । तारुण्योन्मदवन्तिद्यानविसरो
रोलभ्यमालाकुलो धम्मिल्लो हरिणीदृशां विजयते
कस्तो रतिव्यत्यये ॥ १६ ॥ यत्कस्यन्विस्थेदविन्दुप्रव-
र्धेर्दृष्ट्वा भिन्नं कुङ्कुमं कापि कण्ठे । पुंस्त्वं तन्मया

व्यञ्जयन्ती वयस्या स्मित्वा पाणौ खड्गरेखां लिलेख
॥ १७ ॥ वल्लङ्कुचं व्याकुलकेशपाशं श्विद्यम्बुलं
स्वीकृतमन्दहासम् । पुण्यातिरेकात्पुरुषा लभन्ते
पुम्भावमम्भोरुहलोचनानाम् ॥ १८ ॥ विपरीतमधिप-
रीतं यद्गतमन्यस्तदेव विपरीतम् । तरुमारोहति
लतिका नारोहति च लतिकां तरुः क्वापि ॥ १९ ॥
वियति विलोलति जलदः स्खलति विधुश्चलति कूजति
कपोतः । निष्पतति तारकाततिराम्दोलति वीरिभ-
रवाहिन्याः ॥ २० ॥ विहार्यसि विहारिणी भवतु नाम
सौवामिनो सुमेरुशिखरादधः पततु नाम मन्दाकिनी ।
परं तद्विदमद्भुतं यदयमेत्य भूमीतलं नमश्नतदी-
धितिः कमलसारमाकर्षति ॥ २१ ॥ वीरायितेषु
मृगशाखविलोचनानां कण्ठोदितान्यचरमं कलकूजि-
तानि । आग्नेय्यद्विरथ सौधगतिः कपोतैः शङ्के गृहीत
इति सम्प्रति शिष्यभाषः ॥ २२ ॥ साक्षाद्भूतस्वयम्भू-

विद्वानोंके समान चञ्चल हो गए और नवेली भी नापके
समान व्याहार करने लगी ॥ १२ ॥ वह सुन्दर दरव देखनेका
फिर कब सौभाग्य प्राप्त होगा जिसमें मदिरा पीनेसे नूँगेके
समान थोड़ा लिल जाले हैं, जब स्तन भी हिलते हुए सुमेरु
पर्वतके समान शोभा देने लगते हैं और चन्द्रमाके समान
मुखपर बालरूपी अन्धकार बिलर जाता है ॥ १३ ॥ मुक्त
(मोती, मोच प्राप्त किए हुए खोम) धरतीपर गिरे आ रहे हैं,
बाला (नवेलियाँ, यक) केवल भोग (रति, भोजन) में लुटे हैं और
घावर (आकाश, वज्र) धरती हुए ले रहा है । उकटी रति-
क्रीड़ा में कहीं उकटफेर नहीं हो जाता । ॥ १४ ॥ प्रियतमने कहा-
'हे सुन्दरी ! हम तुम्हारी प्यारी हैं और तुम हमारे प्रियतम
हो ।' प्रियतमके ऐसा कहते ही उस मृगनयनीने सिर हिलाकर
'नहीं, नहीं' तो कहा किन्तु तत्काश अपने हाथसे कज्जन
निकासकर प्रियतमके हाथमें डाल दिए और बिना कुछ कहे
ही प्रियतमकी बात स्वीकार कर ली ॥ १५ ॥ विपरीत रति
करते समय मृगनयनी नवेलियोंके उन बिलरे हुए बालोंकी
जय हो जो या तो उन्हीं नवेलियोंपर धीरे-धीरे कुड़ाए जाते
हुए चँवर हैं, या कामदेवके काले वादल हैं, या अत्यधिक प्रेममें
भरे हुए मोरोंकी पूँछ हैं, या मुखचन्द्रके प्रकाशसे हटता हुआ
अंधेरा है या यौवनके मन्दसे मतवाले हाथियोंके उछ
मदजलकी धाराएँ हैं जिनपर भीरे आ लुटे हों ॥ १६ ॥
नवेलीके गालोंसे बही हुई केसरसे मिली हुई पसीमेकी रेखा

गलेतक पहुँची देखकर उसके पुरुषके समान व्यवहारोंको खोज
देनेके विचारसे सखीने ईँसर उसके हाथमें तखवारका चित्र
बनाकर उसने बतलाया कि तुमने पुरुषके समान व्यवहार
किया ॥ इसलिये पुरुषोंके हाथमें शोभित होनेवाली यह तखवार
धारण करो ॥ १७ ॥ स्तन हिल रहे हों, बाल बिलर
हों, मुख पसीनेसे भर गया हो और मन्द-मन्द मुँकराइट
छाई हुई हो, ऐसा पुरुषके समान व्यवहार कोई कमलनयनी
किसी पुरुषके साथ करे तो उसे समझना चाहिए ॥ उसने
कहे पुण्य किए हैं ॥ १८ ॥ जिस रतिक्रीड़ाको लोग उकटी
कहते हैं वही वास्तवमें सीधी है और जिसे सीधी कहते हैं
वही उकटी है क्योंकि खता ही पेड़पर चढ़ती है, पेड़ नहीं
खतापर चढ़ता ॥ १९ ॥ आकाशमें बालरूपी बादल चला रहे
हैं, मुखरूपी चन्द्रमा चँवर रहा है, कण्ठरूपी कूजतर गुटरगूँ
कर रहा है, मोतीकी माँझरूपी सारिकाएँ गिरी आ रही हैं और
पेटकी सिक्कदनरूपी गङ्गाकी लहरें हिल रही हैं ॥ २० ॥ नवेली-
रूपी बिजली आकाशरूपी प्रियतमके ऊपर चमके तो डीक है ।
स्तनरूपी सुमेरुकी चोटीसे शरकरूपी गङ्गाका नीचे गिरना भी
डीक समझमें आता है किन्तु चारचर्यकी बात तो यह है कि
वह नवेलीका मुखरूपी चन्द्रमा धरतीपर आकर, कुकज
प्रियतमके मुखरूपी कमलका रस ले रहा है (उसे चूम रहा
है) ! ॥ २१ ॥ मृगनयनी नवेलीने रतिक्रीड़ा में जो पुरुषके समान
व्यवहार किया उसके गलेके गुटरगूँका अन्तिम मनोहर गण्य

रथ मुक्तस्तिमिरनिकरभगाः । प्रलनाम शीतरोचिस्त-
वपातं मेखला विदधे ॥ २३ ॥ स्थगयति तमः शशाङ्कं
वलति गिरिः स्रवति तारकापटलम् । कथयति मन्ये
काञ्चीपुरसीमनि किमपि सङ्क्षोभम् ॥ २४ ॥

सुरतार्थनम्—आकाशे नटनं सरोरुहयुगे मञ्जीर-
मञ्जुध्वनिः शीतांशी कलकूजितं किसलय पोयूयपा-
मोत्सवः । स्वर्गलोणिकरे नखान्परिभयो ध्यान्ते करा-
कर्षणं रम्भायां रसनारवस्तुल्ययोः पुण्यानि मन्यामहे
॥ १ ॥ किञ्चैतैर्गुरुसैनैः किमपरम्योमार्चनैः किं
फलं किं स्वाध्वयनेन मे सुरपदप्राप्त्याथ किं वा
फलम् । एतस्याः कुचकुम्भसम्भ्रमपरीरम्भप्रवाहोद्गम-
स्वेदाम्भोभिरतद्गवहिरधुना निर्वापितो नो यदि ॥ २ ॥
गिरो यत्राधीरा भुजयुगलमाश्लेषचतुरं लुठहाप्पा-
पीडं प्रसरति च चक्षुस्तरभसम् । न तन्मन्ये प्रेम प्रण-
यिनि विराद्धपिपथगे क्षणं मूकोऽन्धो वा भवति न

जडो यमिप्रयजनः ॥ ३ ॥ नरैर्विकलजन्मभिर्गिरिद्वी-
न किं सेव्यते न चेच्छ्रवणमोचरीभवति जातुचिज्ज-
न्मनि । कपोतरवमाधुरीविरचनानुकारादोरनासह-
कृशोदरीवचनकाकुरोतिध्वनिः ॥ ४ ॥ प्रतिल्लण-
समुल्लसद्यकलाकलापान्वितलपाकरविलोकने यदि
तवास्ति कांतुल्लम् । विलोक्य तदा सखे सुरतसङ्ग-
रालोकनप्रहृष्टदयितामुखं निविड इच्छुकोत्तारणे ॥ ५ ॥
प्राङ्मा मेनि ततो नवोदयगुणं मानाभिलाषं ततः
समोडं तदनु श्लथोयममथ प्रहृष्टैर्यं पुनः । प्रेमार्द्र-
स्पृहणोयनिभरतरं क्रीडाप्रगल्भं ततो निःसङ्गाङ्गविम-
र्शनाधिकसुखं रम्यं कुलक्षीरतम् ॥ ६ ॥ यत्र न चन्दन-
विकारः सङ्गावसमपेक्षं न गात्राणाम् । तस्मिन्मुक्त-
भाषेपशुकर्मणि पश्य एव रज्यन्ते ॥ ७ ॥ यत्र स्वेद-
जलैरलं विलुलितैर्ग्यालुप्यतं चन्दनं सङ्गुदैर्भणितैश्च
यत्र रणितं निह्वयते नापुरम् । यत्रायान्त्यचिरेण

घरके ऊपर बैठे हुए कबूतर बार-बार दुहराते हुए ऐसे जान
पड़ते थे मानो वे नवेलियोंके शिष्य बन गए हों ॥ २२ ॥
स्तनकपी प्रकाश दर्शन होनेपर जब केशकपी अन्धकार मुक्त
हो गए उस समय मुखका झुकना ऐसा जान पड़ा मानो
चन्द्रमा प्रणाम कर रहा हो और वज्रती हुई करधनी उनका
स्तुति पढ़ रही हो ॥ २३ ॥ चौखेरेके समान बिलेरे हुए बाज
चन्द्रमाके समान मुखका ठके ले रहे हैं, पर्वतके समान स्तन
हिलते जा रहे हैं और हारकपी तारागण गिर रहे हैं । इन
सब बातोंसे जान पड़ता है कि काञ्ची नगरकी संभापर
(कमरमें) अवश्य कोई उपद्रव होनेवाला है ॥ २४ ॥

रतिका धर्षणः आकारणे (हाथ) मचाना, कमलोंमें
मैजीरे (दोनों पैरोंमें पायल) का मधुर ध्वनि, चन्द्रमा
(मुखके) में मनोहर शब्द, नये पत्ते (छोट) में अमृतपानका
जलस्रव, स्वर्गके पहाड़ (स्तनों) पर नखकी रेखा, अन्धकार
(बालों) का उँगलियोंसे खींचा जाना और केलेके लग्ने
(लोंबों) पर करधनीकी झनझनाहट, यह सब तो हमारी
समझमें युवती और युवकोंके पुरवका फल है ॥ १ ॥ यदि
इस समय इस नवेलीके पकापक स्तनके आलङ्घनसे निकले
हुए पसीनेके प्रवाहसे कामाग्नि न जूम जाती तो गुरुकी
सेवाओंसे, दूसरे देवताओंके व्यर्थ पूजनसे, पढ़ने-पढ़ानेसे तथा
स्वर्ग पानेसे भी क्या लाभ होता ? ॥ २ ॥ बहुत दिनोंके
विधोहके पश्चात् मिठा हुआ प्रियतम मिले देखकर चब भरके

लिवे गूँगा या अम्ब्या न हो जाय या ठक न रह जाय वह तो
मेरी समझमें प्रेम नहीं है । सरसा प्रेम तो वह है जिसमें
प्रियतमके देखते ही बाँझों चञ्चल हो उठे, दोनों भुजाएँ गले
लगानेका स्वाकुल हो जायँ खोंखोंमें खोंख भर जायँ और
वे बेगस घूमने लगें ॥ ३ ॥ कबूतरका गुटरगूँकी मिठासका
अनुकरण करनेवालों और रतिका पारम्य सहनमें असमर्थ
नवेलीके प्राधेनसे भरे हुए वचनोंका ध्वनिका जिसने जावनसे
कभी नहीं सुना उन अनुप्योंका तो जन्म ही व्यर्थ है ।
वे भला पर्वतका चन्द्राग्राम क्या नहीं चले जाते ? ॥ ४ ॥
है मित्र ! प्रतिपद्य उपजता हुई नई-नई कलाओंके युक्त
चन्द्रमा देखनका यदि तुम्हें बड़ा उत्कण्ठता हो तो कसा हुई
बाँझा उतारत समय रात-रुपा सुख देखनसे प्रसन्न मुखवाला
अपना प्रियतमका मुख क्या नहीं देख लेता ? ॥ ५ ॥ कुल-वधुआकी
वह रतिकावा अत्यन्त मनोहर हाता है जिसमें पड़ते तो 'नहीं-
नहीं' शब्द सुनाई पड़ते हैं, फिर कभी राप और कभी उरकट
इच्छा दिखाई पड़ता है, फिर लजा आ जाता है, धीरज छोड़कर
प्रयत्न बीजा पड़ जाता, प्रेमपूर्वक चावसे भरा हुई काढ़ाई
होती है और फिर बिना संकायके ही अङ्ग छूनेमें अत्यधिक
सुख मिलता है ॥ ६ ॥ जिसमें मुखकी आनन्द देनेवाली
(सुम्बन आदि) क्रियाएँ नहीं हुईं तथा प्रेमसे शरीरका आदान-
प्रदान नहीं हुआ वह अङ्गली रतिकावा तो पशुओंकी ही होते
हैं और उससे पशु ही प्रसन्न होते हैं ॥ ७ ॥ हे सखियों !

सर्वविषयाः कामं तदेकाग्रतां सख्यस्तत्सुरतं भणामि
धृतये शेषा तु लोकस्थितिः ॥ ८ ॥ यावद्वैतं बहिर्द-
ष्टिर्याधयेन्द्रियलोचता । यावन्नास्तमिता चित्तवृत्ति-
स्तावन्न सौरतम् ॥ ९ ॥ शङ्काभ्यङ्गलितेन यत्र नयन-
मान्तेन न प्रेक्ष्यते केयूरध्वनिभूरिभीतचकितं नो यत्र
चाश्लिष्यते । नो वा यत्र शनैरलमृदुशनं विम्बाधरः
पीयते नो वा यत्र विधीयते च मणितं रत्निक रतं
कामिनोः ॥ १० ॥ सम्वष्टाधरपल्लवा सचकितं हस्ता-
ग्रमाधुम्यती मा मा मुञ्च शठेति कोपवचनेरानर्तित-
भ्रूलता । सीत्काराञ्जितलोचना सरभसं वैश्वम्बिता
मानिनी प्राप्तं तैरमृतं अमाय मयितो मूढैः सुरैः
सागरः ॥ ११ ॥ सुरते च समाधौ च माया यत्र न
लीयते । ध्यानेनापि हि किं तेन किं तेन सुरतेन
वा ॥ १२ ॥

सुरतनिवृत्तिः—अप्रभूतमतनीयसि लम्बी काञ्चि-

धाञ्चि पिहितैकतरोरु । त्रौममाकुलकरा चित्तकर्ष-
क्रान्तपल्लवमभीष्टमेव ॥ १ ॥ आयाहि रे मलयमा-
कृत मन्दमन्दमान्दौलयम्कनकचम्पकाननानि ।
कन्दर्पदर्पदलने परिपीड्यमाने द्वारे हरे हिमकरे मकरे
करे च ॥ २ ॥ आवृण्वाना भट्टिति जघनं सा दुकूला-
ञ्जलेन प्रेङ्खन्कीडाकुलितकयरीबन्धनव्यग्रपाणिः ।
ऊर्ध्वोच्छ्वासस्फुटनक्षपदैश्चक्रिताभ्यां स्तनाभ्यां दृष्ट्वा
धाष्ट्यस्मृतिनतमुखी मोहनान्ते प्रियेण ॥ ३ ॥ आस्त-
तेऽभिनवपल्लवपुष्परप्यनारतरताभिरताभ्यः । होयते
स्म शयितुं शयनीये न क्षणः क्षणद्वयापि वधूभ्यः
॥ ४ ॥ उपबर्हमम्बुजदशो निजं भुजं विरचम्य वक्र-
मपि गण्डमण्डले । निजसकिय सकिधनि निषाय
सादरं स्वपिति स्तनार्पितकराम्बुजो युवा ॥ ५ ॥
करकिसलयं धूत्वा धूत्वा विमार्गति वाससी क्षिपति
सुमनोमालाशेषं मदीपशिकां मति । स्थगयति मुहुः

बैसे लो संसारमें अनेक प्रकारकी रतिक्रीड़ा होती रहती है
किन्तु यथार्थमें जितानेवाली रतिक्रीड़ा तो वही है जिसमें
पक्षिनेकी धनी बूँदोंसे चन्दनका छेप छूट जाता है, जिसमें नूपुरोंकी
ध्वनि भी नायिकाके अर्द्धरक्त शब्दोंसे दब जाती है और बहुत
देरतक सारी इन्द्रियों उसी सुखमें डूबी रह जाती हैं ॥ ८ ॥
जबतक प्रेमी और प्रेमिकामें मिलगाव रहता है, वे दोनों एक
प्राण दो शरीर नहीं हो जाते, जबतक मन यहाँ-वहाँ खगा
रहता है, जबतक इन्द्रियों चञ्चल रहती हैं और जबतक
चित्तवृत्ति एकाम नहीं होती तबतक सच्ची रतिक्रीड़ा होती
कहाँ है ? ॥ ९ ॥ जब शंकासे भरी हुई आँखोंके जरसे देखा
न जा सकता हो, भुजाओंके मूषणोंकी खनखनाहटके जरसे
जबराबर आलिंगन न किया जा सकता हो, बिना दाँत
लगाए धीरे-धीरे आँखोंका चुम्बन न किया जा सकता हो
और गलेसे एक शब्द न निकल पाता हो वह कामी और
कामिनीकी रतिक्रीड़ा किस कामकी ? ॥ १० ॥ जिसके
ओठ प्रियतमने दाँतसे पकड़ लिए हों, जो सकपकाकर
जँगलियों दिला रही हो, जो 'हे धूर्त ! छोड़ो, यह मत करो,
मत करो' इस प्रकारकी अपूर्ण बातें कहती हुई भीड़ें नचा रही
हो, जिसके नेत्र चञ्चल हों और जो सी-सी कर रही हो ऐसी
रूठी हुई नवेलियोंको जो बेगसे घूम लेते हों उन्हींका वास्तवमें
अमृत मिला है ; मूर्ख देवताओंने लो केवल थकनेके लिये ही
समुद्र मथा है ॥ ११ ॥ जिस सुरतमें माया (कपट) दूर न

हो और जिस समाधिमें अज्ञान न हो वह सुरत और वह
समाधि दोनों ही व्यर्थ हैं ॥ १२ ॥

रतिक्रीड़ाकी समाप्ति : प्रियतम साक्षी खींच रहे
हो इसलिये पीड़ा नितान्त डकनेके लिये बल पूरा नहीं पड़
रहा था, केवल एक ही जीव डकी जा सकती थी इसलिये
नवेलीने अपने चञ्चल हाथसे फट कर खींच लिया ॥ १ ॥
हे मलयचलके पवन ! जब कामदेवका धर्मदूर हो जाय
और डार, स्तन, मुख, कुण्डल और हाथ ये सभी भली भाँति
मससे जा चुकें उस समय तुम सोनेकी चम्पाके वन (नवेली)
के सुन्दर रोंगटे धीरे-धीरे दिखाते-डुलाते चले जाना ॥ २ ॥
सुरतके अन्तमें प्रियतमने अपनी प्यारीको इस रूपमें देखा कि
वह कटपट झपटके छोरसे अपना पैर ठक रही है, रतिक्रीड़ामें
चुका हुआ जूड़ा बाँधनेमें उसके हाथ उसमें हुए हैं, साँस
खींचने और छोड़नेमें उसके स्तनोंपर लगे हुए मसके चिह्न
दिखाई पड़ रहे हैं और रतिकाजकी बिठाईका स्मरण हो जानेसे
वह लजाकर नीचे मुल कर ले रही है ॥ ३ ॥ नवे-नवे पत्ते
तथा फूलोंसे सजे हुए बिड़ौनेपर लगातार रतिक्रीड़ामें खगी हुई
नवेलियोंको रातने भी सोनेका अवसर नहीं दिया ॥ ४ ॥ किसी
युवकने अपनी बाँहसे नवेलीके लिये तक्रिया बनाया, उसके
गात्रपर अपना मुख, जीवपर अपनी जीब और उसके स्तनों-
पर अपना कमलके समान हाथ रक्खा और प्रेमसे लो गवा
॥ ५ ॥ कोई सुन्दरी नवेली रतिक्रीड़ा समाप्त हो जानेपर

पत्युनेत्रे विहस्य समाकुला सुरतविरतां रम्या मन्वी
मुहुर्मुहुरीक्षते ॥ ६ ॥ कामसङ्गरविधौ मुगीदृशः
प्रौढपौरुषधरे पयोधरे । स्वेदराजिरुदियाय सर्वतः
पुष्पवृष्टिरिव पुष्पधन्वनः ॥ ७ ॥ खिन्नालसनयनान्तं
खिन्नालिकलशक्रन्तलस्तवकम् । वदनमवलुप्ततिलकं
मदनं नेदयति दधयति धृति मे ॥ ८ ॥ तन्द्रातुन्दिल-
शोणलोचनयुगं दत्ताङ्कदन्तच्छ्रवं पर्यस्तालकयस्त्रि-
घर्मपटलप्रोद्भिन्नपत्रावलि । जृम्भाजृम्भितसीधुसार-
भमिलकुङ्कीभिरङ्गीकृतस्तोत्रं शंसति वृत्तमेव रजनी-
वृत्तान्तमेणीदृशः ॥ ९ ॥ निलोपं कुचकुड्मलं कचभर-
स्तत्याज यन्धं यया काञ्ची निर्गुणतां निरञ्जनदृशा
हृष्यां समासादिता । नीरागोऽधरपल्लयश्च गुरुणा
केनापि गौराङ्गि ते शङ्के शम्बरशासनोर्पानपदां तत्त्वा-
वबोधः कृतः ॥ १० ॥ निवृत्ते सुरतोत्सवे बहुविधे

जातेऽधिकेऽङ्गक्रेमे तले मन्दजलाद्रन्वनमये
किञ्चिद्गृहीतेऽधरे । सान्द्रमन्दवशाद्विशेषविषयव्या-
सङ्गजिह्वात्मनोर्दम्पन्याः स्मरघमरातुगनया भूयोऽपि
जाता स्पृहा ॥ ११ ॥ नील्यां मयमने कचे नियमने
थोर्णातले चासनं निःश्वासाभ्यसनं मुग्धं समभवन्प्र-
न्याहतिभूषणं । ध्यानं प्रेमालि धारणा म्मननं तन्म्याः
समाधिः प्रिये नियंदादिय किं रतान्तमुलभास्वर्वाङ्ग-
योगोत्सवः ॥ १२ ॥ नेत्रव्यादपि राजते हि नितरां
व्यालुप्तभूया तनुः सम्भोगधर्ममालिनं धिजयते चक्षुः
कटाक्षादपि । गाढालिङ्गनकांतुकादपि नयं दार्चालि-
धिसंसनं प्रीत्यालापरसादपि प्रियतमं मानं कुरङ्गा-
दृशः ॥ १३ ॥ पपात गङ्गाहर्मालिसङ्गादन्धन्तमाभूत-
मपेतवन्धम् । तडिल्लता चञ्चलतामहासीदम्पन्दमासी-
दरविन्दयुग्मम् ॥ १४ ॥ पपात मेराः तुरसिभुधारा

बार-बार हृथर-उधर हाथ फेंक-फेंककर बल डूँद रही है, माया
बिखर जानेसे बचे हुए फूल दिएकां जोपर फेंक रही है,
हँसती हुई बार-बार प्रियतमके नेत्र डक रही है और चकपकाकर
बार-बार हृथर-उधर देख रही है ॥ ६ ॥ काममुक्त (रतिकोड़ा) में
मुगनयनीके स्तनमें अत्यधिक पराक्रम दिखाया था इसलिये
स्तनोंपर छाई हुई पर्सानेकी धूँद देखकर ऐसा जान पड़ता
था मानो उसके पराक्रमपर प्रसन्न होकर कामदेवने उनपर
फूल बरसा दिए हों ॥ ७ ॥ अस्त्रं धककर अलसाई हुई है,
फीके पदे हुए मस्तकपर बाल बिखरे हुए हैं और तिलक छूट
गया है, ऐसा नवेलीका मुख कामदेवकी पास से आ रहा
है और मेरा धीरज तोड़े डाल रहा है ॥ ८ ॥ आलस्यसे भरी
हुई काल-लाज दोनों आँखें, दौतके चिह्नोंसे शुक्ल ओठ, बिखरे
हुए बाँह, पसीनेसे छूटी हुई बेल-बूटेकी रचना, और जैभाई सेते
समय मुखसे निकली हुई मदिराकी सुगन्धपर टूटी पड़ती हुई
मोरियोंके द्वारा की हुई प्रशंसा, ये सभी मिलकर प्रकट
कर रहे हैं कि नवेलीने रात कैसे बिताई ॥ ९ ॥ हे गोरे
अज्ञोवाली ! तुम्हारे स्तन निर्लेप (चन्दन आदिके लेपसे
रहित, संसारमें आसक्तिले रहित) हो गए, बालोंके बन्ध
(बोधना, संसारका बन्धन) कट गए । करधनी भी निर्गुण
(बिना कोरेकी, सत्त्व, रज, तम तीनों गुणोंसे रहित)
हो गई । आँखें निरञ्जन (बिना अँजनकी, दोष-रहित)
हो गई । कोंपलके समान ओठ नीराग (बिना जलाईके,
रागद्वेषसे रहित) हो गए । इससे जान पड़ता है कि

किसी गुरु (पौवन) ने मुझे कामोपनिषद्का पूरा ज्ञान
करा दिया है ॥ १० ॥ रतिकोड़ा-रूपी उत्सव समाप्त हो
जानेपर भी, शरीरकी धकावट बढ़ जानेपर भी, पसीनेसे छूटे हुए
चन्दनसे बिछीना भाग जानेपर, तनिक-सा बल छू जानेपर
अत्यधिक प्रेमके कारण उपभोग करनेके लिये छटपटाते हुए
प्रेम-प्रेमिकामें भूखे कामकी चयराइट होनेपर भी सम्भोगकी
इच्छा जाग ही गई ॥ ११ ॥ रतिकोड़ा समाप्त होनेपर (परायसे)
योगके आठों अङ्ग नवेलीमें था गए । क्योंकि जाड़ेका बोधना
ही वम, पालोंका बोधना ही नियम, नितरवका स्थिर ही
जाना ही आसन, सौंसका आना-जाना ही प्राणायाम, गहनोंका
समेतना ही प्रत्याहार, प्रेमका स्मरण ही ध्यान, स्तनोंका
सँभालना ही धारणा और प्रियतमका चिन्तन ही समाधि
बन गया ॥ १२ ॥ रतिकोड़ा समाप्त होनेपर मृगनयनी नवेलीका
बिना गहनोंकाया शरीर, सजे हुए शरीरसे भी अधिक सुन्दर
जान पड़ता था, रतिके परिभ्रमसे मुँदों हुई आँखें तिरछी
चितवनसे भी अधिक सुन्दर लग रही थीं, हाथोंकी शिथिलता
कसकर आलिङ्गन करनेसे भी अधिक मनोहर जान पड़ रही थी
और प्रेमसे बातचीत करनेकी अपेक्षा सुप रहना ही अत्यधिक
प्रिय ध्यान पड़ रहा था ॥ १३ ॥ रतिकोड़ा समाप्त होनेपर
स्तनसे हार गिर गए, बाल झूलकर बिखर गए, नवेली
शान्त हो गई और उसके नेत्र भी स्थिर हो गए, उस
समय ऐसा जान पड़ रहा था मानो शङ्करजीके मस्तकसे
गङ्गाजी गिर रही हों, अश्वकारका बन्धन छूट गया हो, बिजली

यद्यपि तारागणमन्धकारः । यभूव सृष्टाचलिरप्यकम्पा
शशाम शम्पालतिकाधिलासः ॥ १५ ॥ प्रियकृतपट-
स्तेयव्रीडाविलम्बनविह्वलां किमपि रूपणलापां यालां
विलोक्य ससम्भ्रमः । अपि विचलिते स्कन्धाधारे
गते सुरतादये त्रिभुवनमहाधन्वी स्थाने न्यवर्तत
मन्मथः ॥ १६ ॥ प्रियायाः प्रन्यूये गलितकयरीवन्धन-
विधाबुदञ्जहोर्वल्लीदरदलितचेलाञ्जलमुरः । घनाकृते
पश्यत्यथ मयि समन्दाक्षिवलितं नमन्त्या यद्रूपं महि
लिखितुमीशो मनसिजः ॥ १७ ॥ प्रेक्षणीयकमिव सख-
मासन्हीविभङ्गुरविलोचनपाताः । सम्भ्रमद्रुतगृहीत-
दुकूलच्छाद्यमानवपुपः सुरतान्ताः ॥ १८ ॥ भासु
नाम सुदर्शा दशनाङ्कः पाटलो धवलगण्डतलेषु ।
दन्तघाससि समानगुणश्रीः सम्मुखोऽपि परभागम-
वाप ॥ १९ ॥ मुक्ताभूषणमिन्दुविज्ज्वलजनि व्याकीर्ण-

तारं नमः स्मारं चापमपेतचापलमभूदिन्दोवरे
मुद्रिते । व्यालीनं कलकण्ठकण्ठनिनदैर्मन्दानिलैर्मन्दि-
निष्कम्पस्तवकापि चम्पकलता साभून्न जानेऽथ किम्
॥ २० ॥ मुखं जृम्भारमि प्रसरति मदामोदलहरी
दशोस्तन्द्राभारः स्फुरति विगलत्यङ्गलतिका । त्वमे-
तादकान्तिः कमलमुखि धन्यैव नितरामसौ धन्यो
यस्ते सकलरजनीं जागरयिता ॥ २१ ॥ सृष्टवन्दन-
विशेषकभक्तिर्भ्रष्टभूषणकवर्धितमाख्यः । सापराध
इष्ट मण्डनमासीदात्मनैव सुदर्शामुपभोगः ॥ २२ ॥
योषितः पतितकाञ्चनकाञ्चौ मोहनातिरभसेन
नितम्बे । मेखलेख परितः स्म विचित्रा राजते नवनख-
क्षतलक्ष्मीः ॥ २३ ॥ रतास्ते प्राणेशे वसनमद्वाने
कथमपि स्थिताया यावन्त्या वितर भ्रम खेलं गुण-
निधे । सरोथं पश्यन्त्याः किमपि न हसन्त्याः परि-

शान्त हो गई हो तथा हाँ कमल, बिना दिले-दुले स्थिर बने
हों ॥ १५ ॥ रतिके पश्चात् जब विजलीके समान दमकीली
नवेलीकी चेष्टाएँ शान्त हो गईं, उस समय उसके स्तनसे गिरा
हुआ हार ऐसा जान पड़ रहा था मानो सुमेरु पर्वतसे
गङ्गा गिर रही हो, बालोंसे गिरे हुए कूज ऐसे जान पड़
रहे थे मानों अन्धकारसे तारोंकी वषां हो रही हो और
आँखोंमें आई हुई रिधरता ऐसी जान पड़ती मानों भी भँरे स्थिर
हो गए हों ॥ १६ ॥ प्रियतमने नवेलीके बख्त पुरा किए इसलिये
वह लजित हो गई, बख्त मिलनेमें विलम्ब होनेसे चबरा-सो
गई और प्रार्थना करने लगी । ऐसी दशामें एकाएक अपने
सैनिकोंके चले जानेपर सुरतरुणो युद्ध समाप्त होते । तीनों
जाकोंमें प्रसिद्ध धनुषधारी कामदेव अपने स्थानपर खौटकर
उसने उचित ही किया ॥ १७ ॥ प्रातःकाल सुखे हुए बाज
बोधिते समय नवेलीके हाथ जो ऊपर उठे तब उससे उसकी
छातीपरसे तनिक-सा बख्त हट गया । उस समय धीरेसे
अपनी छाँसे नचाकर जब मैं बड़े चारसे उसे देखने लगा तब
यह देखते ही वह झुक गई । उसकी उस समयकी सुन्दरताका
वर्णन करनेमें कामदेव भी समर्थ नहीं है ॥ १८ ॥ जाजके
कारण आँखें पूरी खुल न पा रही थीं, चबराहट तथा शीघ्रताके
साथ पकड़े हुए बख्तसे शरीर टका जा रहा था, ऐसी सुरतके
अन्तकी क्रियाएँ नाटकके समान दर्शनीय बन गई ॥ १९ ॥
सुनयनी नवेलियोंके गोरे-गोरे गालोंपर लगे हुए दाँतके
जाज-जाज चिह्न सुन्दर जान पड़े तो ठीक ही है क्योंकि

उन दोनोंका रङ्ग एक दूसरेसे भिन्न था पर जाल बाज
छोटपर प्रत्यक्ष जाज चिह्न सबसुख उससे बढ़ गया ॥ १९ ॥
मुक्ताक्षी चन्द्रमाके भूषण गिर गए, बाजक्षी आकाशसे
गुण्यरुणी तारे बिलर गए, भींदरुणी कामके धनुषकी चालकता
जाती रही, नेत्रक्षी नीले कमल में बँध गए, गलेकी ध्वनिरुणी
कक्षतरकी गुदरगई शान्त हो गई, सँसके पवन धीमे पड़ गए और
नवेलीक्षी चम्पाकी खताके स्तनक्षी गुण्डाका हिलना बन्द
हो गया । इसके पश्चात् क्या हुआ, मैं नहीं जानता ॥ २० ॥
हँ कमलमुखी ! तुम्हारे मुखपर जा बार-बार जैभाहुर्या आ रही
हैं, प्रसन्नताका खहर फँका जा रहा है, बालसे बाजस्थ
छाया आ रहा है और सब बख्त डाल पड़ जा रहा है, यह तुम्हारा
कुछ अनासां हा वाभा है । तुम सबसुख धन्य हो और तुम्हें
सारा रात जगानेवाला तुम्हारा यह प्रियतम भाँ धन्य है ॥ २१ ॥
सम्भागके कारण नवेलीक शरीरमें सब धन्यके बख्त-पूठ मिट
गए, गहने तथा माझाएँ शरीरसे अलग हो गईं इसलिये
अपनेका अपराधी समझकर स्वयं सम्भाग ही नवेलीका देहमें
गहनेका काम करने लगा ॥ २२ ॥ रति करनेकी उतावलामें जब
नवेलीके नितम्बसे सोनेकी करधनी सरक गई, उस समय
नितम्बपर लगे हुए नखके चिह्न ही सुन्दर कवचोंके समान
शोभित होने लगे ॥ २३ ॥ रतिक्रीड़ाके पश्चात् यद्यपि वह
अनेक प्रकारकी प्रार्थना करती हुई लड़ी होकर रूपासे देखने
लगी किन्तु प्रियतमने किसी प्रकार बख्त नहीं छोड़ा ।
इसपर वह हँसने लगी और झुककर खड़ी हो गई । उस

खलप्रमत्त्यान्तद्रूपं नहि लिखितुमीशो मनस्विजः
॥ २४ ॥ लुलितकुसुमसम्पन्नकेशपाशस्नग्गया मुकुलि-
तनयनान्तं प्रीडया नम्रमास्यम् । करतलपरिधानं
नाभिमूलं रतान्ते पुनरपि रतस्त्रीणां प्रेयसः सन्तनोति
॥ २५ ॥ विश्वमार्थमुपगृह्यमजस्रं यत्प्रियैः प्रथमरत्यव-
साने । योपितामुदितमन्मथमादां तद्वितीयसुरतस्य
वभूय ॥ २६ ॥ धीतोष्टरागाणि हताङ्गनानि भास्वन्ति
लोलैरलकैर्मुखानि । प्रातः कृतार्थानि यथा विरजुस्तथा
न पूर्वघूरलङ्कृतानि ॥ २७ ॥ व्याधूनहारमणयः परि-
धूतमात्याः मन्दस्मितप्रसरसत्रपट्टिपाताः । तस्या
जयन्ति लुलितभ्रमवारिलेशाः सौन्दर्यमुग्धमणित-
ध्वनयो रतास्ताः ॥ २८ ॥ व्यामिश्रकैकयाहु प्रयलित-
पृथुलैकैकवारुदकाण्डं दृष्ट्वा दृष्ट्वाधरोष्ठं दारशयिलत-
नुश्लेषमालिङ्ग्य कान्ताः । शब्दन्निश्वासवेगस्फुरि-
तगुरुकुचद्वन्द्वसङ्घृष्टयुग्माः भ्रान्तः शेते रतास्ते सुख-

मिह सुकृती लीलया कामिलोकः ॥ २९ ॥ व्यालोलः
केशपाशस्तरलितमलकैः स्वेदलोलां कपोलीं क्लिष्टा
विम्वधरश्रीः कुचकलशरुचा हारिता हारयष्टिः ।
काञ्ची काञ्चिद्वृताशां स्तनजघनपदं पालिना छादयन्ती
भूषादोनापि काचिन्प्रियहृदयमदो प्रीणयन्वेव मुग्धा
॥ ३० ॥ शयानस्योत्तानं हृदि निहितचक्षोरुदभग
तिरस्त्रीने वक्त्रे निविडकलितान्मोयवदना । समाक-
प्योरुभ्यामतिदृढतरं सक्थियुगलं स्वपिन्यम्भोजाङ्गी
शिथिलभुजवन्धेयमधुना ॥ ३१ ॥ शान्ते मन्मथसङ्गं
रणभूतां सत्कारमातन्वती वासोऽद्राजघनस्य पोतकु-
क्षयोर्हारं धृतेः कुण्डलम् । विम्वोष्ठस्य च योटिकां
सुनयना पाणयो रणकङ्कणे पञ्चाङ्गम्यनि केशपाश-
निखये युक्तो हि बन्धकमः ॥ ३२ ॥ संन्यासमकृत काञ्ची
जहौ कलत्रं दुकूलमथलायाः । तन्याज रागमधरां
मुक्तिमुरीचकिरे चिकुराः ॥ ३३ ॥ सङ्गताभिदचित्तंश्च-

समयकी उसकी सुन्दरताको छिन्ननेके लिये विचित्रित हुआ
कामदेव भी सफल नहीं हो सकना ॥ २४ ॥ रतिक्रीड़ा समाप्त
हो चुकनेपर उस नवेलीके से बाल जिनकी फुल-रूपी सगपि
बिखरकर गड़े हो गईं, जिसमें आँखें मुँदी जा रही थी ऐसे
कजासे झुके हुए उसके मुँह, हाथके तकिप और नाभिके
नीचेके भाग लधने मिलकर फिरसे प्रियतममें रति करनेकी
चाह जगा दी ॥ २५ ॥ पतिने विश्रामके लिये प्रथम सुरतके
अन्तर बार-बार नवेलीका आलिङ्गन किया जिससे फिर भीरे-
धीरे ऐसा काम जगने लगा मानो दूसरी बारके सुरतका प्रारम्भ-
सा होने लगा हो ॥ २६ ॥ रति हो चुकनेपर प्रातःकाल नवेलीके
ललाई छूटे हुए छोठ, आँजन छूटे हुए नेत्र और बिखरकर
जहरासे हुए बालोंसे सजा हुआ मुख ये सब जितने अधिक
सुन्दर लग रहे थे उसने अधिक पहले दिनकी सजावटमें भी
नहीं लग रहे थे ॥ २७ ॥ सुन्दरीके उस रतिके अन्तिम समयकी
जय हो जिसमें हरके मणि बिखर गए हों, मालाएँ उलझ-
पुलझ गई हों, मन्द मुस्कानके साथ लम्बीकी बितवनें चल रही
हों, पसीनेकी बूँदें दुलझ रही हों और 'सी-सी'के साथ मधुर
भोली-भाली ध्वनि निकल रही हो ॥ २८ ॥ रतिक्रीड़ा समाप्त
हो चुकनेपर प्रेमी और प्रेमिका दोनोंने एक दूसरेपर हाथ रख
किया हो, एक दूसरेसे जाँघें छिपका ली हों, एक दूसरेके छोठ
धूमने लगे हो, छोठ धूमते समय आलिङ्गनमें विलाई देसकर
नायकने नायिकाका कसकर आलिङ्गन कर लिया हो और

नायिकाकी प्रबल सौंसके कारण स्तन हिलनेसे नायकके
बन्धनपर उनकी रगड़ लग रही हो । इस प्रकार सुरत-क्रीडाने
यकसर कोई भाग्यशाली हो सुखकी नींद सोना है ॥ २९ ॥
जिस सुन्दरीके बाल खूबकर बिखर गए, गालोंपर पसीना पड़ा
गया, छोठकी ललाई फीकी पड़ गई, स्तनोंपरसे हार गिर गया,
करधनी न जाने कहाँ चली गई, वह अपने स्तन तथा पैर
हाथसे ढक रही है और यद्यपि उसके शरीरपर कोई गदना नहीं
रह गया फिर भी वह अपने प्राणनाथकी बड़ी चपखी लग रही
है ॥ ३० ॥ प्रियतम ऊपरको मुँह करके छेदे हुए थे, कि वह
कमलनयनी नवेली उसकी छातीपर अपने दोनों स्तन और
उसके तिरछे मुखपर अपना मुख सटाकर अपनी जाँघोंसे
प्रियतमकी जाँघें बलपूर्वक दबाकर हाथ ढोले करके अब
सो रही है ॥ ३१ ॥ कामयुद्धके समाप्त हो जानेपर सुन्दर
आँखोंवाली नवेलीने युद्धमें भाग लेनेवाले सैनिकोंका सत्कार
करते हुए, पैरुको बल, स्थूल स्तनोंको हार, कानोंको कुण्डल,
कुँदरुके समान छोठको पानका बोड़ा और हाथोंको बजते हुए
कड़ब देसकर पीछे लटकनेवाले बालोंको बाँध लिया यह उचित
किया ॥ ३२ ॥ करधनीने छूटकर मानो संन्यास ले लिया,
नवेलीके वस्त्रने कलत्र (नितम्ब, परनी) को छोड़ दिया, छोठने
राग (ललाई, आसक्ति) छोड़ दिया और बाल ऐसे छूट गए
मानो मुक्ति पा गए हों ॥ ३३ ॥ रतिके समय प्रियसे मिली हुई
नवेलीयोंने पहले जिसे छोड़ दिया था और जो चली गई थी

लितापि प्रागमुच्यत विरेण सखीव । भूय एव सम-
गन्त रतान्ते ह्रीर्धधुभिरसहा विरहस्य ॥ ३४ ॥
सख्यासव्योरुधाहुव्यतिकरमधुरं कूर्परन्यस्तशीर्षं संस-
कास्याध्वयुग्मश्वसितहतचलधारुनासाविभूयम् ।
भूयो निद्रातिरेकात्कमशिथिलभुजाश्लेषदत्तावकाशो-
च्छ्वासोदञ्चकुचाग्रप्रतिहतहृदयं शेरतेऽमी रतान्ते
॥ ३५ ॥ सुतनु श्रुतिसेवनतो मन्ये नयनं निरञ्जनं
जातम् । मुग्धा कोहात्कवरो युक्तां मुक्तिं कथं प्राप
॥ ३६ ॥ सुभ्रुयामधिपयोधरपीठं पीडनैस्तुष्टितथन्यपि
पत्युः । मुक्तमौक्तिकलघुगुणशेषा द्वारयष्टिरभवद्गुरु-
रेव ॥ ३७ ॥ सुरतविरतकीदृशेशभ्रमश्लयहस्तया
रहसि गलितं तस्या प्राप्तुं न पारितमंशुकम् । रति-
रसजडैरङ्गैरेके पिघातुमशक्या प्रियतमतनौ सर्वाङ्गीर्णं
प्रविष्टमधृष्टया ॥ ३८ ॥

प्रियप्रस्थानावस्थाकथनम्—आयासे । श्रुतिगोचरं प्रिय-

तमप्रस्थानकाले चलात्तल्पान्तःस्थितया तथा जनमलं
दृष्ट्वा चिरं मुग्धया । सोच्छ्वासं ददमन्युनिर्भरगतद्वा-
ष्पाभ्युधौतं तथा स्वं चक्रं विनिवेश्य भर्तृहृदये निः-
शब्दकं रुचते ॥ १ ॥ कान्ते कथञ्चिद्भूदितप्रयासे क्षणं
चिन्तया विरहादिताद्री । ततः समालोक्य कदाग-
तोऽसीत्याख्याय कान्ता मुदमाससाह ॥ २ ॥ कान्तो
यास्यति दूरदेशमिति मे चिन्ता परं जायते लोका-
मन्दकरो हि खन्दवदने वैरायते खन्दमाः । किञ्चायं
चितनोति कोकिलकलालापो विलापोऽयं प्राणानेव
हरन्ति हन्त नितरामाराममन्द्रानिलाः ॥ ३ ॥ गच्छा-
मीति मयोक्तया मृगदशा निःश्वासमुद्रेकिणं त्यक्त्वा
तिर्यग्गवेश्य वाष्पकलुपेलैकेन मां खलुषा । अथ प्रेम
मदपितं प्रियसखोऽवृन्ते त्वया दध्यतामिदं कोहविय-
धितो मृगशिशुः स्रोत्रासमाभापितः ॥ ४ ॥ गन्तुं
प्रिये वदति निःश्वासितं न दीर्घमासीत् वा नयनयोज-

वही लज्जा सुरतके परचाह विरह न सह सकी और फिर
नवेलियोंके पास आ गई ॥ ३४ ॥ सुरतके परचाह प्रेमी और
प्रेमिका दोनों सो रहे हैं, एककी दाहिनी तथा दूसरेकी बाईं
जॉईं तथा बाईं परस्पर सटी हैं । बाईंकी कुहनीपर सिर धरा
है, दोनोंके मुख परस्पर मिले हैं, चनती हुई साँससे नाकके
आभूषण हिल रहे हैं और गहरी नींदके कारण आलिङ्गन ठीका
पड़ गया है जिससे स्तनका केवल आगेका भाग प्रियतमकी
झातीपर जगा रह गया है ॥ ३५ ॥ हे सुन्दरी ! कामतक पहुँचे
हुए मेरा मानो श्रुति (वेदाँ) के आभ्याससे मोह पा गए यह
तो ठीक हुआ किन्तु तेरा लगानेसे चिकने (संसारमें आसक्त
रहनेवाले) बाल (मूर्ख) कैसे मुक्ति (मोक्ष) पा गए (लज
गए) ? ॥ ३६ ॥ प्रियतमके घने आलिङ्गनसे सुन्दर भींदवाली
नवेलियोंके स्तनपर लटकी हुई द्वारकी खदियों टूट गई और
मोती बिसर जानेसे केवल डोरा ही रह गया फिर भी वह गुरु
(भारी, आदरणीय) बनी रही ॥ ३७ ॥ रतिकीला समाप्त
हो जानेपर दुबली-पतली नवेलीका हाथ लाज, आवेश और
परिश्रमसे धक गया था अतः एकाभ्रतमें पड़ा हुआ वज्र
वह न पा सकी और रतिकीलाके आनन्दकी मस्तीमें उसके
सब अङ्ग ऐसे शिथिल हो गए कि वह अपने दूसरे अङ्ग न
ठक सकी इसलिये वह सकुचाती हुई अपने प्रियतमसे ही
सिमटकर चिपक गई ॥ ३८ ॥

प्रियतमके प्रस्थान करनेके समयका वर्णन :

प्रियतमकी यात्राका समय और यात्राकी बात उर्षोही कानोंमें
पड़ी क्योंकि नवेलीनेर वैठी हुई सुन्दरी नवेलीने कुछ देरतक
तो प्रियतमकी भली-भाँति देखा तथा लम्बो साँस ली फिर
निरन्तर अश्रुवते हुए शोकाग्निसे निकलते हुए आँसुओंसे
धुना हुआ मुँह प्रियतमकी छातीमें लगाकर सिसक-सिसककर
रोना प्रारम्भ कर दिया ॥ १ ॥ प्रियतमने नवेलीके
सामने किसी-किसी प्रकार (डरते-डरते) अपने जानेकी बात
कही तो यह सुनते बह नवेली कुछ देरतक तो सिर कुचाए
वैठी रही और उसके अङ्ग विरहकी वेदनासे डीले पड़ गए ।
फिर प्रियतमकी ओर देखकर उसने पूछा कि 'प्राप कव प्राप ?'
इससे पतिकी यात्रा ठक गई और वह नवेली प्रसन्न हो
गई ॥ २ ॥ हे चन्द्रमुखी सखी ! प्रियतम बहुत दूर परदेश
आनेवाले हैं इस बातकी मुझे ऐसी चिन्ता है कि सारे विश्वकी
आनन्द देनेवाला अङ्गमा भी वैर कर रहा है, यह कोयलकी
कूक ऐसी जान पड़नी है मानो कोई विलाप कर रहा हो
और वे उपवनके शीतल पवन तो प्रायः ही हरे ले रहे
हैं ॥ ३ ॥ जैसे ही मैंने कहा कि 'मैं जा रहा हूँ' वैसे ही
प्रियतमाने लम्बी साँस ली, आँसुसे भरी हुई एक आँसु
तिरली काके मेरी ओर देखा, फिर बड़े स्नेहसे पाछे हुए
हरिजके लीनेसे कुछ दूसरे ही अभिप्रायसे कहने लगी कि
जो प्रेम आनन्दक पुम मुझसे करते रहे वही प्रेम अब मेरी
दूसरी सखियोंसे किया करो अर्थात् मैं मर जाऊँगी ॥ ४ ॥

लामाधिरासीत् । आयुर्लिपि पठितुमेतदशः परन्तु
भालस्थलीं किमु करः समुपाजगाम ॥ ५ ॥ गन्तुचि-
वदुदये हृदयेश्वरस्य मन्थुषपक्षिनिनदध्रमजातकम्पः ।
निष्ठां जलैराशिशिरैर्नयनाञ्जजातैः कान्ता तदंसशि-
खरे पतितैर्जहार ॥ ६ ॥ चिन्तामोहचिनिश्लेन मनसा
मौनेन पादानतः प्रत्याख्यानपराङ्मुखः प्रियतमो गन्तुं
प्रवृत्तोऽधुना । सप्तोडैरलसैर्निरन्तरसुट्टद्वाप्याकुलैर्लो-
कनैः श्वासात्कम्पकुचं मिरिह्य सुचिरं जीवाशया
धारितः ॥ ७ ॥ दूरं सुन्दरि निगतासि नगरादेव
द्रुमः क्षीरघानस्मादेव निघर्त्यतामिति शनैरुफ्न्याध्व-
गेन प्रियाम् । गाढालिङ्गनचक्रितस्तनतटाभोगस्फुट-
त्कञ्जकं वीक्ष्योरःस्थलमधूपूरितदशः प्रस्थानभङ्गः कृतः
॥ ८ ॥ दृष्टः कातरनेत्रया खिरतरं वज्राञ्जलिं याचितः
पञ्चादंशुकपल्लवेन विभृतो निर्व्याजमालिङ्गितः ।
इत्यादिप्य समस्तमर्थमधूणो गन्तुं प्रवृत्तः शठः पूर्वं

प्राणपरिग्रहो दयितया मुक्तस्ततो वल्लभः ॥ ९ ॥
पितुरधिपुरं त्यक्ताः सख्यः समं निजयान्धवैर्न च
परिचितिर्जाता पत्युर्गृहेऽपि कयाचन । कतिपयदिनो-
दञ्चमेणि प्रिये प्रवसन्त्यसौ कथयतु मनस्तापं कम्पे
नवं नवकामिनी ॥ १० ॥ प्रस्थानं घलयैः कृतं प्रियस-
खैरक्षैरजस्रं गतं धृत्या न क्षणमासितं व्ययसितं
चित्तेन गन्तुं पुरः । यातुं निश्चितचेतसि प्रियतमे सर्वे
समं प्रस्थिता गन्तव्ये सति जीयितप्रियसुहृन्सारथः
किमु त्यज्यते ॥ ११ ॥ प्रहराविरता मध्ये बाह्वस्तताऽपि
परेण वा किमुत सकले यातेऽप्यहि प्रिय स्वामिहृदयसि ।
इति दिनशतप्राप्यं देशं प्रियस्य प्रियासता हरति
गमनं बालालापैः सयाप्यमलभ्रलैः ॥ १२ ॥ प्राणेश्वरे
किमपि जल्पति निर्गमाय लामादरी वदनमानमपाञ्च-
कार । आली पुनर्निभृतमेत्य लतानिकुञ्जमुन्मत्तकोकि-
लकलध्वनिमाततान ॥ १३ ॥ बाष्पाकुलं प्रलपतोऽग्रे-

प्रियतमने जब जानेकी बात देखी तो नवेलीने न तो
लम्बी लॉस हां लॉची और न उसकी आँखोंसे आँसू
ही निकले किन्तु उसके मस्तकमें जिकी हुई आयुकी वर्षामाका
पदनेके लिये ही मानो हाथ मस्तकपर पहुँच गए ॥ २ ॥
सूर्योदय होते ही प्रियतम जानेवाले थे अतः प्रातःकाल पक्षियोंके
रावद सुनकर नवेली कँपने लगी और सोते हुए प्रियतमके
कंधेपर उसके कमलनयनोंसे गरम-गरम आँसू निकलकर
गिर पड़े जिससे उसकी नींद टूट गई ॥ ३ ॥ जानेका विचार
करते ही प्रियतमका मन चिन्ता तथा मोहसे भर गया इसलिये
वे कुछ देर चुप बैठे रहे, पैरों पकते रहे, रोकनेपर भी रुकते न
रहे और भाव चकनेको प्रस्तुत हो गए । मायिकाकी आँखें भी
खजा, निःशक्तता तथा निरन्तर गहनेवाले आँसुआँसे भर गईं,
उसके स्तन घेगसे लॉस चकनेके कारण हिलने लगे । अतः
बहुत देरतक जब नवेलीकी यह दशा देखी तो उसको जांचित
रखनेके लिये प्रियतमको रुक ही जाना पड़ा ॥ ४ ॥ प्रस्थान
करते हुए प्रियतमने अपनी प्रेयसीसे कहा—'हे सुन्दरी ! तुम
मगरसे बहुत दूर निकल आई हो । देखो यह बटका सूँघ आ
गया । अब तुम लौट आओ । इसके पश्चात् जब नायकने उसका
कसकर आलिङ्गन किया तो नवेलीके स्तन चाकके समान चैक
गए जिससे उसकी चोखीके बन्द टूटने लगे । ऐसी दशामें
आँखोंसे आँसू बहानेवाली नवेलीकी छाती देखकर उसने अपनी
बाधा रोक दी ॥ ८ ॥ प्रियतमके जाते समय प्रियतमाने

अपनी चकल आँखोंसे बहुत देरतक उसे देखा, हाथ मोड़-
कर प्रार्थना की, उसका धड़ एकदू लिया और प्रेमसे
उसके गले लगती फिर भी वह निर्दयी धूर्त पति विदेश जाने
लगा किन्तु नवेलीने प्रियतमका बिछाह जानेसे पहले ही
अपने प्राण छोड़ दिए ॥ ६ ॥ अपने भाई-पन्थुआँके साथ-
साथ पतिके गाँवमें सखियों भी सूट गईं, पतिके घरमें भी
अभी किसीसे परिचय नहीं हो पाया और कुछ ही दिनोंसे
जिस प्रियतमसे प्रेम लग रहा है वह भी विदेश चले जा रहे
हैं ऐसी दशामें बेचारी नई बहु अपने मनकी लपन कितने
सुनावे ॥ १० ॥ प्रियतमकी यात्रा निश्चित हो जानेपर
कोई नवेली कह रही है कि 'कठ्ठण पहले ही निकल गए,
प्यारे मित्र आँसू भी डुलक गए, धीरज भी नौ-दो; ग्यारह हुआ
और मन भी आगे चलनेके लिये प्रस्तुत हो गया इस चलाचलीमें
हे जीवन ! जब जाना ही है तो अपने प्यारे मित्रोंका साथ क्यों
छोड़े दे रहे हो अर्थात् उनके साथ अभी क्यों नहीं चक देते ?
॥ ११ ॥ 'एक पहर या दोपहर या दिन बीते आए यहाँ अवरय
लौट आइएगा' यह कहकर वह नवेली अपने गिरते हुए आँसुआँके
साथ पतिकी उस यात्राको रोक रही है जहाँ पहुँचने-पहुँचनेमें सौ
दिन लगते हैं ॥ १२ ॥ प्रियतमने अगोदी जानेकी बात देखी त्योंही
नवेलीने सिर कुका लिया । इस बीच उसकी सखी धीरेसे
छताकी आदीमें जाकर चुपकेसे मतवाली कोयलके समान
मधुर ध्वनि करने लगी । इससे सखीने यह सूचित किया कि

हिणि निवर्तस्य कान्त गच्छेति । यानं दम्पन्योर्दिन-
मनुगमनाच्च सिरस्मारे ॥ १४ ॥ मनांसि निविशते स
कोऽपि तापः प्रणयिनि बाहुलतान्तरम्यतेऽपि ।
सरसिजमकरन्दगन्धयन्धुर्वहनि यदेव शनैः शनैः
समीरः ॥ १५ ॥ मुग्धा कान्तस्य यात्रोक्तिप्रवणदेव
मृच्छिन्ता । बुद्धा वक्ति प्रियं दृष्ट्वा किं चिरेणागतो
भवान् ॥ १६ ॥ यामि न यामोति धवे वरांत पुर-
स्तान्क्षणेन तन्मङ्गलाः । गलितानि पुरोवलयाम्प-
पराणि मधैव वलितानि ॥ १७ ॥ यामि प्रेयसि वारि-
द्रागमदिने जानीहि मामागतं चिन्तां वेतसि मा
विधेहि कथयन्त्येयं सयाभ्ये मयि । निःश्वासैः पथमा-
यितं धरतमोरङ्गैः कदम्बायितं कामया केतकपत्रका-
पितमहो रग्भ्यां पयोदायितम् ॥ १८ ॥ यामीति प्रिय-
पृथायाः कास्तायाः कण्ठवर्त्मनि । वसोजीवितयोरा-
सीद्वह्निःसरणे रणः ॥ १९ ॥ यामोत्यप्रियभादिनि

प्रियतमे मुद्राभवत्कङ्कणं केलीसमयद्विर्गतैकस्वरणे
भ्रमौ शरीरस्थितिः । अन्तर्धानगते पुनर्मृगदृशो
वाच्या किमन्या दशा लाजास्फोट इव स्फुटत्यविरलं
हारोऽपि वामभ्रुवः ॥ २० ॥ यामीत्युक्ते हृदयपतिना
पञ्चशः शङ्खभ्रूषः स्वैरं स्वैरं भटिति गलिताः पाणि-
पङ्कुरुद्राग्रान् । नो वास्यामीत्यनुपदमिमां वाधमाक-
र्णयन्त्यास्तम्ब्याः शेषा अपि खटवटेत्येव भङ्गं समीयुः
॥ २१ ॥ लक्ष्मी नांशुकपल्लवे भुजलता नो द्वारदेशेऽर्पिता
नो वा पादयुगे तथा निपातितं तिष्ठेति नोकं वचः ।
कासे केवलमम्बुदालिमलिने गन्तुं प्रवृत्तः शठस्तम्ब्या
बाष्पजलोष्कलपितनदीपूरेण रुद्धः प्रियः ॥ २२ ॥ लक्ष्मीं
विहाय रुदितं विधुतः पटान्ते मा गास्त्वमित्युदितम-
कुलयो मुखेऽस्ताः । स्थित्वा पुरः पातितमेव निवर्त-
नाय प्राणभरे मज्जति किं न कृतं कृशाङ्गया ॥ २३ ॥
सान्त्वयाम्यैः प्रणयवचनेर्गन्तुमापृच्छमाने काम्ने तिर्य-

वस्तु जगु आ गई है घतः जब परदेश जाना उचित नहीं
है ॥ ११ ॥ जब प्रियतम परदेस चले आ रहे थे तब नवेली
झण्डे पक्षुचानेके लिये तालाबतक उनके पीछे-पीछे गई । फिर
प्रियतमने आँखोंमें आँसू भरकर कहा—'गृन्तवामिनी ! लौट
जाओ' तो नवेलीने कहा कि 'हे प्रियतम आओ !' इसी प्रकार
कहते-कहते उन दोनोंका पूरा दिन वहीं बीत गया ॥ १२ ॥
इस समय जब कमलका रस लेकर पवन धीरे-धीरे बह रहा
है तब बाँहोंमें प्रियतमके रहनेपर भी हृदयमें एक विचित्र-सी
तपन उठी जा रही है ॥ १३ ॥ पतिकी यात्राकी बात सुनते ही
सुन्दरी नवेली मूर्च्छित हो गई । फिर जागकर पतिकी सामने
हैसते ही कह उठी—'क्या आपको आप बड़ी देर हो गई ?' ॥ १४ ॥
जैसे ही प्रियतमने कहा कि 'मैं जा रहा हूँ' वैसे ही नवेलीकी
आँखोंकी चूड़ियाँ खिसककर तुरत गिर गईं और 'न जाऊँगा'
बढ़ कहते ही प्रसन्नताके कारण नवेलीका शरीर वेसा फूल गया
कि जो चूड़ियाँ बर्चा थीं वे भी टूट गईं ॥ १५ ॥ 'हे प्यारी ! मैं
जा रहा हूँ ! क्या जगु आते हैं मैं लौट आऊँगा ! मनमें चिन्ता
न करना ।' इस प्रकार आँखोंमें आँसू भरकर मैंने जैसे ही कहा
वैसे ही उस सुन्दरी नवेलीके रवास आँधी बन गए, अङ्ग
कदम्बके फूलके समान खिल उठे, रङ्ग केवड़ेके पत्तेके समान
पीछा पड़ गया और आँखें बादल बन गईं ॥ १६ ॥ जैसे
प्रियतमने जानेके लिये नवेलीसे पूछा वैसे ही गले-रुपी
रथक्षेत्रमें बायी तथा जीवनका यह सङ्कल्प होने लगा कि पहले

कोन बाहर निकलता है ॥ १७ ॥ 'मैं जाता हूँ', यह अप्रिय बात
उसीही प्रियतमने सुनाई त्योंही नवेलीकी आँखोंकी कड़वा बन
गई, जब उन्होंने लीला-गृहके बाहर एक पैर रक्खा तो नवेली
धरतीपर गिर पड़ी और जब प्रियतम आँखोंसे ओझल हो गए
तो उस सुगमयनीकी और क्या दशा कई ! अरे, उस सुन्दर
भीहवाली नवेलीका द्वार धानकी लीखके समान चट-
चट करके तड़क उठा ॥ १८ ॥ प्रियतमने उसीही जानेकी बात
सुनी त्योंही नवेलीकी शङ्खकी बनी हुई पाँच-छः चूड़ियाँ तत्काज
हावने गिर पड़ीं । फिर जैसे ही प्रियतमने कहा कि 'मैं नहीं
जाऊँगा', वैसे ही वह प्रसन्नतासे इतनी फुल उठी कि उसकी
बची-बची चूड़ियाँ भी चट-चट करके टूट गईं ॥ १९ ॥ जिस
समय बादल आकाशमें भरे पड़े थे उस समय नवेलीने न
तो प्रियतमके बच पकड़े, न अपनी भुजाओंसे द्वार ही रोका, न
उसके पैरों पड़ी, न उनसे रुकनेके लिये ही कहा किन्तु केवल
बहते हुए आँसू-रुपी नदीके प्रवाह-मात्रसे ही उस जाते हुए भूत
नायककी उसने लौटा लिया ॥ २० ॥ पतिकी यात्राके समय
उस दुबले शरीरवाली नवेलीने उसे लौटा लेनेके लिये क्या-
क्या उपाय नहीं किए ? खजा खोदकर रोने लगी, प्रियतमके
बचका छोर पकड़ लिया, कई बार कहा कि 'मत जाइए',
हाँतो तबे उँगली दबाई और सामने खड़ी होकर गिर भी
पड़ी ॥ २१ ॥ वास्तव तथा प्रेमसे भरी हुई बातें चलाकर
जब प्रियतम जानेके विषयमें पूछ रहे थे तो नवेलीने अपना

हृन्मितवदना रुन्धती घाण्णपूरम् । दीर्घोक्तासस्थगन-
चिकलोरकम्पि नासापुटान्ता संख्याशून्यं गणयति
मृगीलोचना कङ्कणानि ॥ २४ ॥

नायिकाविर्गमनम्—एषा का भुक्तमुक्ता विलुलित-
वसना स्वेदलान्तवस्त्रा प्रयूपे याति याला मृग
एष चकिता सर्वतः शङ्कयन्ती । केनेद् वफत्रपत्रं
हृदयमधुरसं खण्डितं केन पीतं स्वर्गः केनाद्य भुक्तो
हरनयनहतो मग्मथः कस्य तुष्टः ॥ १ ॥ गुरुवासा-
दासादितभवदुपालम्भवचसा मुहुः स्मारं स्मारं कथ-
मपि निशीथे समगमम् । इदानीं मुञ्च त्वं दयित
पुनरेष्यामि समभूदुःकालीनोऽयं चटुलचटकालीकल-
कलः ॥ २ ॥ धम्मिजं परियभ्रतो नखमुल्लैः सीमन्त-
मातम्बती पश्यन्ती नखरोत्सवं कुचयुगे सव्यापसव्यं
मुहुः । नाभीसीमनि कुञ्चिताकुल्लिदलं नीधीभरं
रुन्धती शय्यागारविनिर्गतापि हृदयाभायापि

निष्कामति ॥ ३ ॥ निद्रानिद्रतावुदिते चरन्ते सखी-
जने द्वारपदं परास्ते । श्लथोरुतारलेपरसे भुजङ्गे
चचाल नालिङ्गननोऽङ्गना सा ॥ ४ ॥ प्रहृष्टायाः
प्रातर्लसदलसदार्चलिवलयं गलम्भज्जोदासः शिथिल-
कवरोवन्धसमये । प्रियालोके घूर्णयनमखण्डस्मर-
धुरो मुखे जम्भारम्भी जयति भृशमिन्द्रीयरदशः ॥ ५ ॥
प्राणेशेन प्रहितनखरोत्सवकेषु लपन्ते जानातद्वा रच-
यति चिरं चन्दनालेपनानि । धत्ते हात्तामसदृधरे
दन्तदन्नायधाते हामाहोयं चकितमभितञ्जुपी
विशिपन्तो ॥ ६ ॥

शान्तिगोष्ठिपर्यटनम्—अन्ययान्यधनितानतचित्सं चित्त-
नाथमभिश्चिन्तयन्त्या । पीतभूषिस्तुरयापि न मन्दं
निवृत्तिहि मनसो मदहेतुः ॥ १ ॥ अग्रसन्मपराद्धरि-
पत्या कोऽदोस्तमुररोक्तधैर्यम् । क्षालितं तु शमितं
तु वधूनां द्राघितं तु हृदयं मधुपारः ॥ २ ॥ अपितं

मुख तिरछे घुमा लिया, निकलते हुए कॉसुछोंकी चार रोक
ली, सखी सॉस रोकनेके कारण उसकी नाकके आगेका भाग
काँपने लगा। और वह उदासोन होकर अपनी चूड़ियों गिनने
लगी (कि कितनी डीखी होकर निकल गईं ।) ॥ २४ ॥

नखेलीका याहर आना : चकराई हुई मृगीके समान
सर्पसे साका करती हुई यह कौन नखेली प्रातःकाळ चली जा
रही है जिसे किसीने उपभोग करके छोड़ दिया है, जिसके
बख सिक्कड़ गए हैं जिसका पञ्चज पसीनेसे देहमें चिपक गया
है । इसके अधररूपी अङ्गुलसे भरे हुए मुखरूपी कमलका
किसने उपभोग किया है अर्थात् किसने इसने मुखका उपभोग
किया है और ओठमें दाँत जगाए हैं ? किसने भ्राम स्वर्गका
उपभोग पाया है और शिवजीके नेत्रसे जला हुआ कामदेव
किसपर आज प्रसन्न हो गया है । ॥ १ ॥ यद्यपि मैं सगस-ससुरसे
बर रही थी फिर भी आपने मुझे जो उजाहना दिया था उसका
स्मरण करके किसी-किसी प्रकार रातमें मैं यहाँ चली आई ।
हे प्रियतम ! इस समय मुझे छोड़ दो, मैं फिर भा आऊँगी ।
देखो तबका हो गया क्योंकि पञ्चज गौरीयोंकी चहचहाहट
सुनाई पड़ने लगी है ॥ २ ॥ बाज समेटकर बाँधती हुई, नखोंसे
मॉग सँवारती हुई, दोनों स्तनोंपर लगे हुए नखके चिह्नोंकी
बार-बार दाँव-बाँव मुँह घुमाकर देखती हुई और उँगलियाँ
टेढ़ी करके नाभिपर नखोंको रोकती हुई वह भयारी यद्यपि
शयनागारसे तो बाहर निकल गई किन्तु मनसे वहीं निकल

पा रही है ॥ ३ ॥ सूर्य निकल आया, नींद सुल गई, सखियों
द्वारपर आ खड़ी हुईं, प्रियतमने आसिगन शिथिल कर
दिया, फिर भी नखेली आसिगनसे मुँह नहीं मोड़ रही है
॥ ४ ॥ प्रातःकाळ जब नखेली जगा तो उसके बालोंसे धँसेके
फूल झड़ रहे थे, उसकी बाँहें चालखसे डीखी थीं, वह अपने
बिल्लरे हुए बाल बाँध रही थी, उसी समय जो उसने प्रियतमको
देखा तो देखते ही उसकी कॉस नाचने लगी और मन्द
मुन्कराहटके साथ ही बार-बार वह जैभाहूपा लेने लगी ।
उसका यह रूप अत्यन्त सुन्दर जान परता रहा था ॥ ५ ॥
रातमें प्रियतमने जिन अङ्गोंपर खोंचे लगा दिए थे उन्हें
प्रातःकाळ किसीके देख लेनेके भयसे नखेली चन्दनके लेपसे
छिपाने लगी, दाँतसे छिन्न-भिन्न हुए आठपर खाज। चढ़ाने
लगी और यह सब करती हुई वह दुबजे-पठके शरीरवालों
नखेली चकपकाकर चारों ओर देख भा रही है कि कहीं कोई
देख तो नहीं रहा है ॥ ६ ॥

मदिरा पीनेवालोंकी गोष्टी : अपने प्राणनाथको
सौतपर मन लगाए देखकर नखेलीका उसपरसे विरबास
हट गया । इसलिये मदिरा पीकर भी वह मतवाली न हो पाई
क्योंकि मनकी प्रसन्नतासे ही तो मस्ती आती है ॥ १ ॥
प्रियतमके अपराध करनेके कारण जो हृदय दुखी था, कंधसे
जल रहा था और जिसमें कठोरता आ गई थी वही
नखेलीका हृदय बार-बार मदिरा पीनेके परचाव को दिया

रसितयत्पि नामग्राहमन्ययुवतेर्दयितेन । उज्जति
स्म मदमप्यपिचन्ती दौत्य मद्यमितरा तु ममाद
॥ ३ ॥ आगतानगणितप्रतियातान्वल्लभानभिसिसार-
यिपूणाम् । मापि चेतसि स विप्रतिसारे सुभ्रुवाम-
घसरः सरकेण ॥ ४ ॥ आननैधिचकसे हृषिताभिर्वल्लभा-
नभितनू भिरभावि । आद्रेतां हृदयमाप च रोया लालसि
स्म घचनेषु यधुनाम् ॥ ५ ॥ आदिते नु मधुना मधुरत्ये
चेष्टितस्य गमिते नु विकासम् । आवभा नव इयो-
ज्जतरागः कामिनीष्वघसरः कुसुमेयोः ॥ ६ ॥ ओष्ठ-
पल्लवाद्यदेशरुचानां हृद्यतामुपयया रमणानाम् । कुल-
लोचनधिनीलसरोजैरङ्गनास्यचपकैर्मधुवारः ॥ ७ ॥
उज्जतैरथ परस्परसङ्गादोरितान्युभयतः कुचकुम्भैः ।
योपितामतिमदेन शुभ्रपुष्पिभ्रमातिशयपुष्पि वपुषि
॥ ८ ॥ कस्याश्वासमदनं मदनोपमेयसीयदमपानपरस्य ।

स्वादितः सकृदिवाप्तव एव प्रत्युत क्षणविदंशप-
देऽभूत् ॥ ९ ॥ कान्तसङ्गमपराजितमन्यो वाक्णीर-
सनशान्तविवादे । मानिनीजन उपाहितसन्धौ सन्धे
घनुषि मेधुमनङ्गः ॥ १० ॥ कान्तानवाधररसामृत-
तृष्णयेय विम्वं पपात शशिनो मधुभाजने यत् । निःशे-
षिते मद्यनि लज्जितचित्तवृत्ति तसन्मुखापजितकान्ति-
तयेव नष्टम् ॥ ११ ॥ कार्पशायनसुगन्धि विघूर्णंशु-
न्मदाऽधिशयितुं समशत । कुल्लहृष्टि वदनं प्रमदानाम-
भ्रवाह खषकं च पङ्कजिः ॥ १२ ॥ कुप्यताशु भव-
तानतचित्ताः कोपितांश्च वरिचस्यत यूनः । इत्यनेक
उपदेश इव स्म स्वाद्यते युधतिभिर्मधुवारः ॥ १३ ॥
कुर्वता मुकुलिताक्षिदुर्गानामङ्गसादमवसादितवा-
चाम् । ईष्येयैव हरता ह्रियमासां तद्गुणः स्वयम-
कारि भदेन ॥ १४ ॥ कोपवत्यनुनयानशृङ्गीत्या प्रागया

गया या शान्त कर दिया गया या पिबता दिया गया । अर्थात्
अत्यधिक प्रसन्न हो गया ॥ २ ॥ नवेलीकां प्रियतमने सोतके
नामसे पुकारकर जा मदिरा ही उसे पीकर भी वह मतवाली न
हुई किन्तु दूसरा मदिरा न पानेवाली जो नवेली देख रही थी
वह केवल देखकर ही मतवाली हो गई क्योंकि मतवाली-
पनका कारण तो मन होता है ॥ ३ ॥ जब नवेलीने पासमें
आए हुए प्रियतमकी आव-भगत नहीं की तो वह खीट गया ।
इसपर उसने स्वयं ही उसके पास जाना चाहा । उस समय
परवासाप करनेवाले उस नवेलीके भगममें पठनेका मदिराकी
अपवाध घबसर मिल गया ॥ ४ ॥ मदिरा पीनेसे स्त्रियोंके
मुख खिल गए, पतिसे सामने शरीरमें रोमांच हो आया, हृदय
पिघल गया और बात करते समय क्रोधका नामसक नहीं रह
गया ॥ ५ ॥ मदिराने जब नवेलियोंको अधिक सुन्दर बना
दिया और वे खिलकर व्यवहार करने लगीं, उस समय
कामदेवकी नवेलियोंपर प्रभाव डालनेका एक नया क्रमसर मिल
गया क्योंकि उस समय दोनोंमें ही अत्यधिक प्रेम बढ़ गया
था ॥ ६ ॥ खिली हुई आँखोंरूपी कमलवाले नवेलीके मुख-
रूपी मधुपात्रसे ली गई मदिरा बीच-बीचमें नवेलियोंकी आँठ-
रुपाचाट छलनेवाले कामियोंको अत्यन्त मर्दा जान पड़ी
॥ ७ ॥ मदिराका प्रभाव बढ़ जानेपर अनेक प्रकारके हाव-
भाव करता हुई नवेलियोंके उगमगाते हुए शरीर ऐसे जान
पड़ रहे थे मानों एक दूसरेका सहारा पाकर मदमें चूर स्तन
उसे दोनों ओरकी ओंछ रहे हों ॥ ८ ॥ यों तो लोग मदिरा

पीते समय पाट लेते हैं, किन्तु कामके देतमें मतवाला
बना देनेवाले नवेलीके मुखका सुग्गन करते किसी लैलेके
जिये मदिरा ही उलटे पाटका काम करने लगी ॥ ९ ॥ पतिसे
मिलनेपर जब सुन्दरियोंका क्रोध शान्त हो गया, मदिरा पीनेसे
जब उनका कसह पूरा हो गया तथा क्रोध करनेवाली
नवेलियोंका पतिवोंके साथ मेक-मिलाप हो गया तब कामदेवने
स्वयं समझकर धनुषपर बाण ही नहीं रक्खा ॥ १० ॥ कोई
सुन्दरी हाथमें मधुका कटोरा लेकर जो मधु पी रही थी उसमें
चन्द्रमाकी परछाई पड़ रही थी । जब मधु समाप्त हो गया तो
मानो नवेलीके मुखकी कान्तिसे ही उसकी कान्ति समाप्त हो
गई और वह कान्ति भगममें लजाती हुई मानो स्वयं नष्ट हो गई
॥ ११ ॥ लिले हुए मेकवाले तथा मदिराकी गन्धसे भरे हुए
नवेलियोंके मुख और कमलसे सुशोभित मदिराका पात्र इन
दोनोंका एक समान देखकर घूमता हुआ मतवाला भीरा इस
दुविधामें पड़ गया कि मैं कहाँ बैठूँ । अर्थात् वह यही नहीं जान
पाया कि कौन मदिरा-पात्र है और कौन नायिकाका मुँह ॥ १२ ॥
मदिरा पीती हुई नवेलियोंको देखकर ऐसा जान पड़ता था
मानों वे मदिराके रूपमें इस प्रकारके अनेक उपदेश दिए जा
रही हों कि शीघ्र ही क्रोध करो और सरल चित्त बन आओ,
रुठ बनाए हुए प्रियतमको अपने अनुकूल बना लो ॥ १३ ॥
मदिराका मद नवेलीकी जाज भगाकर बाहके कारण मानो
स्वयं ही लजाका काम करने लगी । तभी तो उस समय
नवेलीकी आँखें मुँह गईं, बाकी रुक गई और अङ्ग डीले

मधुमदाहितमोहा । कोपितं विरहोदितचित्ता कान्त-
येष कलयन्त्यनुनिम्बे ॥ १५ ॥ कान्तकान्तवदनप्रति-
विम्बे मग्नवालसहकारसुगन्धौ । स्वादुनि प्रणदिता-
ल्लिनि शीते निर्ववार मधुनीन्द्रियवर्गः ॥ १६ ॥ लोल-
यावकरसोऽप्यतिपानैः कान्तदन्तपदसम्भृतशोभः ।
आययावतितरामिव वध्वाः सान्द्रतामधरपल्लवरागः
॥ १७ ॥ क्षीयतामुपगतास्वनुवेलं तासु रोपपरितोष-
वतीषु । अग्रहीषु सशरं चतुर्जभासा नृजिह्वतनि-
षङ्गमनङ्गः ॥ १८ ॥ गण्डभित्तिषु पुरा सदृशेषु व्याजि-
नाञ्चितदृशां प्रतिमेन्दुः । पानपाटलितकान्तिषु
पञ्चाङ्गोष्णतिलकाकृतिरासीत् ॥ १९ ॥ चावतां
वपुरभूपयदासां तामनननययौवनयोगः । तं पुनमेक-
रकेतनलक्ष्मीस्तां मद्रो दयितसङ्गमभूयः ॥ २० ॥ चित्त-
निर्वृतिनिधायि विधिकं मन्मथो मधुमदः शशिभासः

सङ्गमश्च दयितैः स्म नयन्ति प्रेम कामपि भुवं प्रम-
दानाम् ॥ २१ ॥ छादितः कथमपि त्रपयान्तर्गः प्रियं
प्रति चिराय रमण्याः । वाढगीमदविशङ्कमथाविश्व-
चुरोऽभवदसावित्र गगः ॥ २२ ॥ तुल्यरूपमसितो-
न्मलमङ्गलः कर्णगं निरुपकारि विदिन्वा । योगिनः
सुहृदिव प्रविभेजे लम्बितेक्षणमन्त्रिर्मदगगः ॥ २३ ॥
दत्तमात्तवदनं दयितेन व्यातमानिशयिकेन रमेत ।
सस्यदे मुखसुरां प्रमदाभ्यो नाम रुढमपि च व्युदपादि
॥ २४ ॥ दत्तमिष्टमया मधु पशुर्वाढमाप पियनो
रसवताम् । यत्सुवर्णमुकुटांशुभिरासोद्यतनादिरहितै-
रपि पीतम् ॥ २५ ॥ दृश्यते पानगोष्ठीषु कान्तायप्र-
गतं मधु । स्मरं सहायमासाद्य प्रस्तो राहुर्गियन्तुना
॥ २६ ॥ धातुर्लक्षितयथोचिनभूमौ निर्वयं विलुलि-
तालकमालये । मानिनीरतिविद्यां कुसुमेपुर्भत्तमस

पद् गप ॥ १५ ॥ नवेलीने पहले तो क्रोध किया और
प्रियतमकी प्रार्थनाई दुकरा दी । फिर विरहसे दुखी होकर
तथा मदिराके प्रभावसे जममें पड़कर उसने यह समझा
कि मैंने ही पतिके साथ अपराध करके उन्हें रुठ कर
दिया है अतः वह पतिको मनाने लगी ॥ १६ ॥ जिसमें पतिके
मुखकी परछाई पड़ी हुई थी, जिसमें शामके कीरकी सुगन्ध
बसी हुई थी, जो अचानक स्वादिष्ट भी और जिसमें भीरे
गुन्मार कर रहे थे, ऐसी शीतल मदिरा पी लेनेपर नाक काग
आदि सभी इन्द्रियाँ सुखी हो गईं ॥ १७ ॥ बार-बार मदिरा
पीनेसे ओठमें लगी हुई खाली छूट गई, फिर भी प्रियतमके
दौंसके चिह्नसे उसकी शोभा बढ़ ही रही थी और नवेलीने
ओठपर पहले भी अधिक लगाई दिखाई पड़ रही थी ॥ १८ ॥
मदिराके प्रभावसे जग-जगपर मतवाली तथा प्रसन्नता और
क्रोध करनेवाली नवेलियोंपर मानो कामदेवने पहले बाण-
सहित धनुष उठाया, फिर उसे तृणोर-सहित छ्वाँड़ भी
दिया ॥ १९ ॥ सुन्दर मदनवाली नवेलियोंके गोरे गालपर
पड़ी हुई चन्द्रमाकी परछाई पहले समान रङ्ग होनेके कारण
अलग नहीं दिखाई पड़ रही थी किन्तु मदिरा पीनेसे जब उसके
गाल लाल-लाल हो गए तब वही उनको परछाई लोभके
चूर्णके समान अलग दिखाई देने लगी ॥ २० ॥ सुन्दरताने
नवेलियोंके शरीरको, बड़ी हुई नहीं जवानाने सुन्दरताको,
कामदेवकी शोभाने उस जवानोंको, मरने कामदेवकी शोभाको
तथा पतिके समक्षमने मद्रकी अलङ्कृत कर दिया ॥ २० ॥ मनको

प्रसन्न करनेवाला एकान्त स्थान, कामदेव, मदिराका मद्र,
चन्द्रमाका प्रकाश और प्रियतमका समागम ये सब नवेलीने
प्रेमका बहुत ऊँचे चढ़ा ले गए अर्थात् उसका प्रेम बहुत उच्च
कोटिका हो गया ॥ २१ ॥ कामसे मतवाली नवेलीने पतिके
सामने आँखोंका जो अनुशाग बहुत देरतक लाजके कारण
छिपा रक्खा था वही राग (लज्जाई, प्रेम) मदिरा पी लेनेपर
आँखोंमें स्पष्ट झलक उठा ॥ २२ ॥ कामके पास
कजरारी आँखोंके रहते कामके ऊपर पड़े हुए नाक के कमल
वर्ध हैं मानो यहाँ समझकर मित्रके समान मद्रकी लालीने
नवेलीका आँखें लाल करके उन्हें कमलसे भिन्न हैं गका बना
दिया ॥ २३ ॥ जब प्रियतमने प्रेमिकाका मुख पकड़कर
उसमें अचानक स्वादिष्ट मदिरा डँडेली और वह उसे बहुत ही
स्वादिष्ट जान पड़ा, उसी समय उसका 'प्रमदा' नाम सार्धक
हो गया अर्थात् वह मदिरा पीकर मतवाली बन गई ॥ २४ ॥
प्रेमिकाके हाथों ही हुई मदिरा पीते हुए प्रियतमको वह बहुत
ही स्वादिष्ट जान पड़ा तथा तो सोनेके मुकुटकी निजाँव किरणोंने
भी उसे पी डाला (पीला बना दिया) ॥ २५ ॥ मदिरा
पीनेवालोंको बैठकमें, नवेलीके मुखमें पड़ी हुई मदिरा ऐसी
दिखाई दे रही है मानो कामदेवका सहायता पाकर चन्द्रमाने
शङ्कुको प्रसन्न लिया हो ॥ २६ ॥ नवेलियोंकी जिस रतिक्रीडामें
बिठाईके कारण मचांदाका ध्यान नहीं गया था और कसकर
लीचनेसे बाजोंके फूल बिखर गए थे उसमें पहुँचकर कामदेव
पागलका-सा व्यवहार करने लगा ॥ २७ ॥ मदिरा पीते

इष विभ्रममाप ॥ २७ ॥ नियतमिह पतन्ति दन्तधारा
मदनमदोद्धतयोरितीय भीत्या । अधरकिसलयं
विहाय यूनोर्मधु पिवतोर्नयनान्युपारस्त रागः ॥ २८ ॥
पातुमाहितरतीन्ध्रभिलेपुस्तर्पतन्त्यपुनरुक्ततरसानि ।
सस्मितानि चदनानि वधूनां सोत्पलानि च मधूनि
युवानः ॥ २९ ॥ पानघातनव्यावकरागं सुभ्रुवो
निभृतचुम्बनवक्त्राः । प्रेयसामधररागरसेन स्वं किला-
भरमुपालि ररञ्जुः ॥ ३० ॥ पिपि प्रिय सस स्वयं
मुमु मुखासवं देहि मेतत त्यज दुदु द्रुतं भभभ भाजनं
काञ्चनम् । इति स्खलितजल्पितं मदवशात्कुरङ्गीदृशः
प्रेमे हसितहेतवे सहचरीभिरध्वैयत ॥ ३१ ॥ पीतव-
त्पभिमते मधुतुल्यस्वादमोष्ठकचकं विद्वक्त्रा । लभ्यते
स्म परिरक्तयात्मा यावकेन विद्यतापि युषन्त्याः
॥ ३२ ॥ पीतशोधुमधुरैर्मिथुनानामाननैः परिरुतं
खयकान्तः । शोडया कदविषालिविरादैर्नोलनोरजम-

गच्छदधस्तात् ॥ ३३ ॥ पीतस्तुषारकिरणो मधुनेव
सार्धमन्तः प्रविश्य चयकप्रतिविम्बवर्ती । मानान्धका-
रमपि मानवतीजनस्य नूनं विभेद यदसौ प्रससाद्
सद्यः ॥ ३४ ॥ प्रातिभं त्रिसरकेण गतानां चक्रवाक्य-
रचनारमणीयः । गूढसूचितरहस्यसहासः सुभ्रुवां
प्रवृत्ते परिहासः ॥ ३५ ॥ प्राप्यते गुणवतापि गुणानां
व्यक्तमाश्रयवशेन विशेषः । तस्यथा हि दयिताननदत्तं
व्यानशे मधु रसातिशयेन ॥ ३६ ॥ वदकोपविकृतीरपि
रामश्चाकृताभिमततामुपनिन्ये । वश्यतां मधुमदो
दयितानामात्मवर्गहितमिच्छति सर्वः ॥ ३७ ॥ विस्मितं
भूतपरिभ्रुति जानन्भाजने जलजमित्यलयायाः ।
प्रातुमक्षि पतति भ्रमरः स्म भ्रान्तिभाजि भवति क
विवेकः ॥ ३८ ॥ विभ्रतो मधुरतामतिमात्रं रागिभिर्यु-
गपदेव पपाते । आननैर्मधुरसो विकसद्भिर्नासिकाभि-
रसितोत्पलगन्धः ॥ ३९ ॥ भर्तुभिः प्रखयसम्भ्रमवशां

समय प्रेमी-प्रेमिकाके कोपकोंके समान ओठोंकी लाली मानो
इसी वरसे फाँट छोड़कर नयनोंमें आ बसी कि अब कामके
मदमें धूर होनेपर इन दोनोंके होंठोंकी धारें मिश्रित हो
मुकपर टूट पड़ेंगी ॥ २८ ॥ मित, नये स्वादवाले, सुभा-
सीनेवाले और मनमें प्रेम बढ़ानेवाले नवेजियोंके मुस्कुराते
हुए मुक और कमलसे सर्गों हुई मदिरा दोनोंका ही तदव-
पुरुष स्वाद लेता चाह रहे थे ॥ २९ ॥ चूमनेसे नवेजियोंके
ओठोंकी लाली छूट गई थी इसलिये उन्होंने सखियोंके सामने
ही चुपकेसे प्रियतमोंके मुख चूमकर उनके फाँटोंपर खगी हुई
पानकी लालीसे अपने फाँट रँग लिए ॥ ३० ॥ हे पि...
पि...प्रियतम ! आप स-स...स्वयं अपने मु-मु...मुखसे
म...म...मदिरा पिलाइए और शो-शो...शीघ्र ही सानेका
प-प...पात्र न...न...नीचे रख दीजिए इस प्रकार मृगनयनोंने
रासमें भदके कारण लक्ष्मदातो हुई बाँधीमें आ बातें पतिसे
कही थी वे ही बातें प्रातःकाल सखियाँ हँसी करनेके
लिये बीसे ही दुहराने लगीं ॥ ३१ ॥ फाँट चूमनेकी इच्छावाला
पति जब मदिराके समान स्वादवाले सुन्दर फाँटकी
चूमने लगा तो यद्यपि फाँटकी लाली छूट गई थी फिर भी
चुम्बनसे वह पुनः जलन हो गया ॥ ३२ ॥ प्रेमी और प्रेमिका
दोनोंके मुख मदिरा पीनेसे सुगन्धित हो गए ये अतः सुगन्धिके
लिये डाले हुए जिस नीचे कमलकी उन्होंने मदिरा-पात्रमें ही
छोड़ दिया था उसपर गूँजते हुए भँरोंकी देखकर जान पड़ता

था मानो नवेजियोंके मुखसे बिबुदनेके कारण वह रोवा हुआ
कजासे मुख छिपानेके लिये नीचे चला गया हो ॥ ३३ ॥
मदिरा-पात्रमें चन्द्रमाकी जो परछाई पड़ी थी उसके साथ
ही नवेजियोंने मदिरा पी डाली । अतः इस चन्द्रमाने
भीतर जाकर कड़ी हुई नवेजियोंका क्रोधरूपी अन्धकार
हटा दिया जिससे वे भट प्रसन्न हो गईं ॥ ३४ ॥ तीन बार
मदिरा पीनेसे नवेजियाँ बुद्धि बढ़ गई अतः वे एक दूसरेपर
अत्यधिक कुठोसों बोली बोल-बोलकर और छिपी हुई भेदका
बातें खोज-खोजकर आपसमें हँसी करने लगीं ॥ ३५ ॥
गुणवानोंके भी गुण सुन्दर सदाश पाकर बढ़ जाते हैं इसीलिये
तो नवेजियोंके मुखमें पड़ी हुई मदिरा भी अत्यन्त स्वादिष्ट
हो गई ॥ ३६ ॥ मदिराके मद (पुल्लिङ्ग) ने कोपसे बिगड़ी
हुई नवेजियोंको अत्यन्त सुन्दर बनाते हुए उन्हें प्रेमियोंके
वशमें कर दिया । क्योंकि अपने पचका हित सभी चाहते हैं
(अर्थात् मद पुल्लिङ्ग है और पुरुष पुरुषकी ही भलाई चाहते
हैं) ॥ ३७ ॥ मदिराके भरे हुए पात्रमें नवेजियोंके नेत्रकी
परछाईका कमल समझकर और शोधनेके लिये दीव रहा
था । भला भ्रममें पड़े हुएको कहाँ विचार रह जाता है !
॥ ३८ ॥ अत्यधिक प्रेममें भरे हुए प्रेमीगण एक साथ ही प्रसन्न
मुख और फुलाए हुए नयनोंसे अत्यन्त स्वादिष्ट मदिराका
रस पीने लगे और नीचे कमलकी सुगन्ध सूँघने लगे ॥ ३९ ॥
अत्यधिक प्रेमसे प्रियतमने जो अत्यन्त स्वादिष्ट मदिरा पी, उसे

यारुणीमतिरसां रसयित्वा । द्वीविमोदधिरहादुपलेभे
पाटवं नु हृदयं नु वधूभिः ॥ ४० ॥ भर्तृपुणसखि
नित्तिपतीनामात्मनो मधमदीयमिनानाम् । मोडया
चिकलया यनितानां न स्थितं न विगतं हृदयेषु ॥ ४१ ॥
अचिलाससुभगाननुकर्तुं विश्रमानिय वधूनयनानाम् ।
आवदे मृदुचिलोलपलाशेरुपलेश्वकयीचिपु कम्पः
॥ ४२ ॥ मद्यमन्दविगलप्रमापञ्चलुरुन्मिषितपदम
वधत्वा । योचयते स्म शनकैनेत्रवध्या कामिनो मुख-
मधोमुखयैव ॥ ४३ ॥ मा गमन्मद्विमृदधियो नः
मोक्षमय रन्तुमिति शङ्कितनाथाः । योषितो न मदिरां
भृशमीपुः प्रेम पश्यत भयान्यपदेऽपि ॥ ४४ ॥ मान-
भङ्गपटुना सुरतेच्छां तन्वता प्रथयता दृशि रागम् ।
लेभिरे सपदि भावयतास्तयोषितः प्रणयिनेव मदेन
॥ ४५ ॥ मा पुनस्तमभिर्सीसरमागस्कारिणं मद्यमो-

हितचिन्ता । योषिद्विन्यभिलनाय ॥ हालां दुस्मयजः
खलु सुखादपि मानः ॥ ४६ ॥ मूर्तिमन्तमिव रागर-
सौधं ते परस्परसम्पिनचक्राः । आननासवमिषेण
नदानीमस्तिपन्त हृदयेषु युवानः ॥ ४७ ॥ या कथञ्चन
सखीयचनेन प्रागभिप्रियतमं प्रजगल्भे । मोडयाह्वयम-
भजन्मधुषा सा म्यां मदान्मदकृतिर्मति हि सर्व ॥ ४८ ॥
योषिदुद्धतमनोभवरागा मानचर्यापि यया दयिताङ्गम् ।
कारयत्यनिभुता गुणदोषं चारुणो खलु रहस्यविभे-
दम् ॥ ४९ ॥ रागकान्तनयनेषु नितान्तं विदुमारुण-
कपोलतलेषु । सर्वगापि ददशं यनितानां दर्पणेष्विव
मुखेषु मद्भ्योः ॥ ५० ॥ रुन्धनी नयनवाक्यविकासं
सादितोभयकरा परिरम्भे । मोडितस्य ललितं युव-
तीनां दीयता यहुगुणैरनुजह ॥ ५१ ॥ रूपममनिधि-
घानमनोक्षं प्रेम कार्यमनपदय विकसित । चाटु चारु-

पीकर सुन्दरियोंकी लजा तथा उनका भोलापन दूर हो गया ।
उस समय वह नहीं जान पड़ता था कि नवेलियोंमें यह कोई
नई चतुरता या गह्र है या उन्हें कोई दूसरा सुन्दर-सा हृदय
मिला गया है ॥ ४० ॥ नवेलियोंमें मदिरा पीनेसे उत्साह
आ गया और उन्होंने सखियोंके सामने ही अपने शरीर
प्रियतमोंको लीप दिए । उस समय उनके हृदयमें रहनेवाली
लाज ऐसी ध्वंश हो गई कि न तो बह उठे ॥ सर्क, न आ
ही सकी ॥ ४१ ॥ मदिराके पाश्र्वमें दिसती हुई कामल कलज
पहुँचियाँ ऐसी लगती थीं मानो नवेलियोंकी दिसती हुई भीड़ोंसे
मनोहर आँखोंकी चेष्टाओंका अनुकरण कर रही हों ॥ ४२ ॥
मदिरा पीनेसे जिसकी लजा कम हो गई है और जिसकी
आँखोंकी शरीरिणी कुछ ऊपर उठी हुई है ऐसी नई न्याही
हुई नवेली नौके मुख करके छिपे-छिपे पतिका मुख देख रही
है ॥ ४३ ॥ जिन नवेलियोंको अपने प्रियतमोंपर यह सम्देह
था कि मदिरा पीकर जब हम मदमें चूर हो जायेंगी तो हमें
छोड़कर ये कहीं दूसरी ओरसे संभोग करने न चले जायें उन्होंने
मदिरा ही नहीं पा क्योंकि प्रेम तो बिना कारखके भी चौकन्ना
रहता है ॥ ४४ ॥ प्रियतमके समान ही मदिराके प्रभावने
नवेलीका कंधा बुर कर दिया और उसमें समागमकी इच्छा
उपपन्न कर दी, आँखोंमें राग (खलाह, प्रेम) का दिया तथा
हृदयमें प्रेम भर दिया ॥ ४५ ॥ मदिराके प्रभावसे अचेत
होकर और यह निश्चय करके कि 'फिर उस अपराधीके पास न
आऊँगी' नवेलीने मदिरा नहीं पीनी चाही क्योंकि नवेलियों

सुखको उतना महत्व नहीं देती जितना रुठनेको देती है
॥ ४६ ॥ एक दूसरेके मुखमें मुख मिलाकर अपने-अपने
मुखकी मदिरा एक दूसरेके मुखमें डालते हुए प्रेमी-प्रेमिका
देने जान पड़ रहे हैं मानो उस समय मदिराके रूपमें ये
एक दूसरेके हृदयमें दर्शनाय प्रेमरसका प्रवाह वाज रहे हों
॥ ४७ ॥ जो नवेली पहले सखियोंके समकानेपर किसी-
किसी प्रकार पतिते आँखें मिलाती थीं वही नवेली मदिरा
पी लेनेपर खरीजी तथा सरज हो गई क्योंकि सभी लोग
मदिरा पीकर अपने स्वभावमें आ जाते हैं अर्थात् मनका
सारा भेद-भाव बाहर निकाल देने हैं ॥ ४८ ॥ मदिरा
पीकर रुठी हुई नवेली काम तथा प्रवज प्रेमके वशमें
आकर पतिकी गोदमें आ पड़ी क्योंकि मदिराका यह
स्वभाव होता है कि वह गुण तथा दोषपर विचार न करके
मनके छिपे हुए भावोंको प्रकट करा देती है ॥ ४९ ॥ यद्यपि
सुन्दरोंके सारे शरीरमें मदकी जाँभा थी किन्तु दर्पणके
समान वह उसके उस मुखमें ही अटक रही थी जिसमें लाज-
लाज सुन्दर नेत्र जाँभित थे और लाज भूँगेके समान गाढ़े
लाज रङ्गके हो जानेके कारण रसोले हो गए थे ॥ ५० ॥ अपने
गुणोंके कारण मदकी मस्ती ठीक लजा जैसी चेष्टाएँ करने लगी
क्योंकि उस समय नवेलियोंके नेत्र मुँदने लगे, बाणों रुक गईं
और आलिंगनके समय दोनों हाथ डीले पड़ गए ॥ ५१ ॥
बिना बनावटवाला सुन्दर रून, अकारण बढ़ा हुआ प्रेम,
नवेलियोंकी स्वाभाविक चिकनी-धुपड़ी बातें ये सब उनके

तकसम्भ्रममासां कामण्यन्वमगमन्त्रमणेषु ॥ ५२ ॥
 लब्धसौरभगुणो मदिराशामङ्गनास्यचषकस्य च गन्धः ।
 मोदितालिरितरेतरयोगादन्यतामभजतातिशयं नु
 ॥ ५३ ॥ लीलैवैव सुतनोस्तुल्यित्वा गौरवाक्यमपि
 लाघणिकेन । मानवञ्चनधिदा वदनेन क्रीतमेव हृदयं
 द्युतितस्य ॥ ५४ ॥ लोचनधरकृताहतरागा वासितान-
 ननविशेषितगन्धा । वारुणो परगुणात्मगुणानां व्यत्ययं
 धिनिमग्नं नु वितेने ॥ ५५ ॥ वाससां शिथिलतामुप-
 नाभि ह्रीनिरासमपदे कुपितानि । योषितां विदधतो
 गुणपते निर्ममार्जं मदिरा घञ्चनीयम् ॥ ५६ ॥ वीक्ष्य
 रक्षपकेष्वतिरिक्तां काम्तदन्तपदमण्डनलक्ष्मीम् ।
 जङ्गिरे बहुमताः प्रमदानामोष्ठयावकनुदो मध्वाराः
 ॥ ५७ ॥ शङ्कयान्ययुधतां वनिताभिः प्रत्यभेदि द्युतितः
 स्फुटमेव । न क्षमं भवति तत्त्वविचारे मत्सरेण हत-

पतियोंके लिये करीबकर करी वन गई ॥ ५२ ॥
 नखेलीके मुख - रूपी पात्रसे मदिराका संयोग होनेपर जो
 सुगन्ध अधिक बढ़ गई उससे भी अधिक प्रसन्न थे वतः
 यह नहीं जान पड़ा कि उस गन्धमें ही नवीनता था गई या वह
 गन्ध ही कुछ अधिक बढ़ गई ॥ ५३ ॥ जैसे लीजमें थोड़ा
 देनेवाला कोई नमकका धससायी लीजकर भारी वस्तु
 ले लेता ही उसी प्रकार सुन्दरीका चहंकार दूर करनेवाले
 मुखने प्रियतमके गभीर हृदयको भी सरलतासे हल्का करके
 वरमें कर लिया ॥ ५४ ॥ मदिराने वस्तुओंके गुणोंमें क्या
 उलटफेर या बदला-बदली कर दी क्योंकि जोड़की जलाई
 छाँखोंमें छा गई और मुखमें रहनेसे मदिरामें भी अत्यधिक
 सुगन्ध आ गई ॥ ५५ ॥ नाभिपरका चक्का खीसा होना,
 लज्जाका दूर हो जाना और असमयमें क्रोध करना ये सब पि
 सुन्दरियोंके लिये अत्यन्त निन्दाकी बातें हैं किन्तु मदिराने
 इन सभी दोषोंको उस समय गुण बना दिया ॥ ५६ ॥
 जोड़पर लगी हुई लाञ्छिका रङ्ग बुढ़ा देनेवाली भी मदिरा
 कामिनीयोंका अत्यधिक ध्यारी जान पड़ी क्योंकि खाली सूट
 जानेपर जोड़में प्रियतमके दौतका जो चिह्न स्पष्ट हो गया था
 उसकी परछाई रत्नसे बने मदिरा-पात्रमें झलकने लगी थी
 ॥ ५७ ॥ दूसरी स्त्रीपर पतिका प्रेम होनेके सम्बन्धमें नखेलीने
 पतिको फरकार दिया । जिन लोगोंका हृदय बाहसे भरा होता
 है वे सत्य-असत्यका विचार नहीं कर पाते ॥ ५८ ॥ मदिरा
 पीनेसे मतवाली तथा पतियोंके साथ रहनेवाली नखेलियोंका

संवृति चेतः ॥ ५८ ॥ शीधुपानविधुरासु निगृह्यमान-
 माशु शिथिलीकृतलज्जः । सङ्गतासु द्युतैरुपलेभे
 कामिनीषु मदनो नु मदो नु ॥ ५९ ॥ शीधुपानविधुरेषु
 वधूनां निघ्नतामुपगतेषु वपुःषु । ईहितं रतिरसाहि-
 तभावं द्योतलक्ष्यमपि कामिषु रेजे ॥ ६० ॥ सजितानि
 सुरभौण्यय यूनामुल्लसन्नयनवारिकहाणि । आयशुः
 सुघटितानि सुरायाः पात्रतां प्रियतमावदनानि ॥ ६१ ॥
 सन्तमेव धिरममकृतत्वादप्रकाशितमद्युतदङ्गे ।
 विभ्रमं मधुमदः प्रमदानां धातुलीनमुपसर्गं इवार्थम्
 ॥ ६२ ॥ सागसि प्रियतमे कृतकोपा थाङ्गप्रियुगमपति-
 तेऽपि ॥ तुष्टा । सैव मद्यपरिलुप्तविधेका तं तथैव
 परितोषयति स्म ॥ ६३ ॥ सावशेषपदमुक्तमुपेक्षा
 अस्तमाख्यवसनाभरणेषु । गन्तुमुत्थितमकारणतः
 स्म द्योतयन्ति मद्यविभ्रममासाम् ॥ ६४ ॥ सोपचार-

क्रोध शान्त करनेवाला और लज्जाको शिथिल करनेवाला
 कौन था ? कामदेवका प्रभाव या मदिराका प्रभाव ? ॥ ५९ ॥
 मदिरा पीकर मतवाली नखेलियोंका शरीर जब वरमें आ
 गया तो पुरुषोंको और तो कुछ न सूझा, उनका मन
 भेबल रतिक्रीडामें ही लगकर शोभित होने लगा ॥ ६० ॥
 सुन्दरीका मुख मदिराके लिये एक उचित पात्र बन गया
 क्योंकि मदिरा फूससे सजी थी, सुगन्धित थी और उसमें
 कमल पड़े हुए थे, इधर सुन्दरियोंके मुख भी फूलोंसे सजे थे
 थे, सुगन्धित थे और उनमें भी नेत्ररूपी कमल लिये
 हुए थे ॥ ६१ ॥ अग्न्यास न रहनेके कारण नखेलियोंके जो
 हाव-भाव भीतर ही छिपे पड़े थे उन्हें मदिराके प्रभावने
 जैसे ही बाहर शरीरमें ला रक्खा जैसे धातुके छिपे हुए
 धर्मको उपसर्ग (प्र, परा आदि) प्रकट कर देते हैं ॥ ६२ ॥
 प्रियतमके अपराध करनेपर जो स्त्री क्रोधित हो गई थी
 और प्रियतमके वैशेष पर गिरनेपर भी जो प्रसन्न नहीं हो
 रही थी वही नखेली मदिरासे विचारशक्ति नष्ट हो जानेपर
 स्वयं अपने प्रियतमको मना रही है ॥ ६३ ॥ मुखसे
 अधूरी बातें निकलना, बिलुटी हुई माका, वस्त्र तथा
 गहनोंकी चाह न करना और निरर्थक जानेके लिये उठना
 इन सब बातोंसे नखेलियोंमें मदिराका प्रभाव प्रत्यक्ष ही
 प्रकट हो रहा है ॥ ६४ ॥ वे प्रेमी मना-मनाकर, बेखबरके
 अत्यधिक चाबसे मदिराके रूपमें अपनी प्रियाओंका
 क्रोध दूर कर-करके मानो उन्हें अनोखा प्रेम पिता रहे थे

मुपशान्तविचारं सानुतर्पमनुतर्पपदेन । ते मुहूर्तमथ
मूर्तमपीष्यन्नेम मानमधूय धधूः स्वाः ॥ ६५ ॥
रुस्तः रुग्णामशोभां त्यजति विरचितामाकुलः केश-
पाशः लीवाया न पुरा च द्विगुणनर्गमिवाक्रन्दतः पाद-
लम्बो । व्यस्तः कम्पानुबन्धादनवरतमुरो हन्ति
हारोऽयमस्याः क्रीडन्त्याः पोडयेव स्तनभरविनमन्म-
ध्यभागानपेक्षम् ॥ ६६ ॥ स्वादनेन सुतनोरविचारा-
दोद्यतः समचरिष्ट रसोऽत्र । अन्यमन्यदिव यन्मधु
यूनः स्वादमिष्टमतिष्ट तदेव ॥ ६७ ॥ स्वादितः
स्वयमर्पयितमानं लम्बितः प्रियतमैः सह पीतः ।
आसवः प्रतिपदं प्रमदानां नैकर परस्तामिव भेजे
॥ ६८ ॥ हावहारि हसितं पचनानां कोशलं दशि
विकारविशेषाः । चक्रिरे भ्रूशमृजोरपि घग्वाः कामि-
नेव तद्वलेन मदेन ॥ ६९ ॥ ह्रीविमोहमहरदयिताना-
मन्तिकं रतिसुखाय निनाय । समसादमिव सेवित-

॥ ६५ ॥ जब मन्दिरके मरमें चूर होकर नवेली क्रीडा करने
लगती तो उसका मूढ़। खुल गया और बिलेरे हुए बाजोंने मानो
पीबाके कारण सजी हुई मालाकी शोभा छोड़ दी, पैरोंमें कनौ
हुए नूपुर दुगुने वेगसे चिड़का-चिड़काकर रोने लगे और जैसे-
जैसे उसका हृदय कँपनेके कारण ऊपर-नीचे होता था वैसे-वैसे
स्तनोंके भारसे दबी जाती हुई कमरका ध्यान रखके बिना ही
हार उसकी छातीपर खगाहार चोट करने लगा ॥ ६६ ॥
नवेली जब मन्दिरा पी रही थी तो अचरय उसमें उसके
छोटका स्वाद आ गया होगा क्योंकि वही मन्दिरा उस
पुष्पक प्रेमीको बड़ी अनोखी खग रही है और कुछ विचित्र ही
स्वाद दे रही है ॥ ६७ ॥ बड़े ही सम्मानसे दी हुई मन्दिराका
पतियोंके साथ पीकर कामिनिर्था मतकाजी हो गई और
कण-कणपर उस मन्दिरामें ममकी प्रसन्न करनेवाला नया
स्वाद आने लगा ॥ ६८ ॥ मन्दिराके प्रभाव (मद्) ने किसी
पुष्पक कामीके समान सीधी-सादी नवेलीकी हँसीको हाव-
भावोंसे सजायो, उसकी बातोंमें अनुरता आ भरी और आँखोंमें
चटक-मटक आ दी ॥ ६९ ॥ कामिनियोंने जो मन्दिरा बड़ी
प्रसन्नतासे पी थी उसने उन्हें सीधे ही फल दिया क्योंकि उनकी
आज उसी समय भग गई और वे रतिकीजा करनेके लिये
अपने-अपने प्रियतमोंके पास आ पहुँची ॥ ७० ॥

जुएके खेलका वर्णन : जब प्रेमी-प्रेमिकाने जोड़
पूम्नेका र्वि खगाकर जुआ खेलमा आरम्भ किया उस

मासीत्सद्य एव फलदं मधु तामाम् ॥ ७० ॥
घृतकीडावर्णनम्—अस्तदेवनपणोद्यतेऽधरे कान्त-

योजयपराजये सति । अत्र यक्तु यदि वेत्ति
मन्मथो कस्तयोजयनि जीयतेऽपि वा ॥ १ ॥
अत्र घृतजिताघरग्रहविधायीशोऽसि तन्मखण्डना-
दाधिक्ये वद को भवानिति मृषा कोपाञ्जितभू-
लता । सद्यः स्विन्नकराभकुन्तलपरायतीहनाम्यस्य
मे मुग्धादी प्रतिहत्य तन्मृतवतां घृतेऽपि यन्नाजि-
तम् ॥ २ ॥ आश्लेषचुम्बनरतान्त्वयकांतुकानि प्रीडा-
दुरोदरपणः प्रतिभूरनङ्गः । भोगः स यद्यपि जये च
पराजये च यूनोर्मनस्तदपि वाञ्छति जेतुमेव ॥ ३ ॥
आश्लेषे प्रथमं क्रमेण विजिते हृद्येऽघरस्यापण्ये नर्म-
द्यतविधौ पण्ये प्रियतमे कान्ता पुनः पृच्छति । अन्त-
र्हसिनरोधसम्भूतरसोद्भेदस्फुरद्गण्डया स्वेरं सारि-
विसारणाय विहितः स्वेदाम्युगर्भः करः ॥ ४ ॥

समय औरकी बात तो दूर, स्वयं कामदेव ही भला आकर
बता तो हैं कि उनमें कौन जीतेगा कौन हारेगा ! ॥ १ ॥
'आपने जब केवल चुम्बन-मात्रका र्वि खगाया था तो
अब मेरे हार जानेपर उससे आगे बढ़नेवाले आप होते कौन
हैं?' ऐसा कहकर बनावटी कोचसे भीहँ टेढ़ी करते हुए तत्काज
अपनी पसीजती हुई डँगलियों और बाजोंसे मेरा मुख ठककर
वेकस करते हुए उस चुनपनी नवेलीने मेरे विरोध करते रहते
हुए भी बह-बह कर डाला जो उसने जुएमें नहीं जीता था
॥ २ ॥ प्रेमी और प्रेमिकाने जुएके खेलमें आखिगन, चुम्बन
और रतिकीडाकी ही बाजी रखी थी और कामदेव मध्यस्थ
थे ही । यद्यपि हार-जीतमें दोनोंको उपभोगका लाभ बराबर
ही था फिर भी दोनोंका मन एक दूसरेको जीत लेनेके लिये
स्पाकुल था ॥ ३ ॥ जुएमें पहले आखिगनका र्वि खगा,
फिर सुन्दर जोड़के चुम्बनका र्वि खगा, फिर हार जानेपर
प्रेमीने प्रेमिकासे दूसरा र्वि पूछा । इसपर नवेलीने अपनी
हँसी भीतर ही भीतर किसी प्रकार रोक ली तथा प्रेमके अत्य-
धिक बढावसे उसके छाछ-छाछ गाछ फड़कने लगे और उसने
अपने पसीनेसे भीगे हुए हाथोंसे साड़ी नीचे सरकानेका सङ्केत
किया ॥ ४ ॥ प्रियतमने जुएमें बाजी जीत ली । इसपर
नवेलीने कसकर आखिगन और चुम्बन कर खेने दिया, फिर
प्रियतमके हार जानेपर उसने भी वैसा ही किया, फिर हार
जानेपर पतिने भी वैसा ही किया । इस प्रकार वैसा नहीं,

गाढालिङ्गनपूर्वमेकमनया धृते जिते जुम्बनं तत्कि-
ञ्चित्परिरभ्य दत्तममुता प्रत्यर्पितं खानया । नैतत्ताद-
गिदं न तादृशमिति प्रत्यर्पणप्रक्रमैर्यनोश्चुम्बनमेक-
मेव बहुधा रात्रिर्गता तन्वतोः ॥ ५ ॥ स्मितेनोपायनं
दूरादागतस्य कृतं मम । स्तनोपपीडमाश्लेषः कृतो
धृते पणस्तथा ॥ ६ ॥

मञ्जाविधानम्

अभ्यङ्गारम्भः—अस्याः पीठोपधिष्टाया अभ्यङ्गं
क्षितनोत्यसौ । तल्लङ्घ्योणि खलद्वेणि नटद्वगुरुपयो-
धरम् ॥ १ ॥ आधत्स्यं कण्ठं सिन्धयेन सम्यगावख्य
वक्षोरुहकुम्भयुग्मम् । कासौ कराक्षम्यितैलपात्रा
मन्दं समासीदति सुन्दरीं ताम् ॥ २ ॥ वक्षोजो
मिथिडं निरुध्य सिन्धयेनाकुञ्च्य मध्यं शनैः कृत्या
सम्पकतैलसेकमयला सम्पीड्य मन्दं शिरः । पालिभ्यां
चलकङ्कणोद्यतभ्रण्टकारोत्तराभ्यां करोत्यभ्यङ्गं परि-
पश्यतः सकुतुकं दोरन्तरं प्रेयसः ॥ ३ ॥ सुवर्णकदली-

पेसा नहीं कहते हुए और कम-कमसे चूमते हुए प्रेमी-
प्रेमिकाओंका एक ही सुखन करनेका प्रकारका हो गया और
पेसा ही करते-करते रात बीत गई ॥ २ ॥ कोई प्रेमी अपने
मित्रसे कह रहा है—‘जब मैं दूरसे आया तो उस सुन्दरीने मुझे
सुस्वराहटकी भेंट दी और कसकर स्तन दबाते वक्षपूर्वक
आखिङ्गन करनेको ही जुएमें दौवपर लगा दिया ॥ ३ ॥’

सजावट

तेल मलना : चौकीपर बैठकर जब वह नवेली तेल
लगाने लगती है तब इसकी कमर समझमाने लगती है, थोड़ी
हिलने लगती है और बड़े-बड़े स्तन उखलने लगते हैं ॥ १ ॥
गलेमें साड़ीका पल्ला लपेटकर तथा बड़े-बड़े समान स्तनोंको
भली भाँति बाँधकर हाथमें तेलका पात्र लिए हुए वह कौन
नवेली उस सुन्दरीको तेल मल रही है ? ॥ २ ॥ वह सुन्दरी
आँचलसे अपने स्तन कसकर बाँधे हुए, कमर थोड़ी झुकाकर,
अपने प्रियतमके शिरपर चम्पेका तेल डालकर अब धीरे-धीरे
माथा दबाने लगी, उस समय उसके हाथोंके कङ्कन हिल-
हिलकर झमझमाने लगे और उसका प्रियतम बड़े पानसे
उसकी दोनों भुजाओंके बीचमें आँखें गड़ाकर देखने लगा ॥ ३ ॥
सोनेके केलेके तन्मेके समान जाँघोंवाली यह कमलनयनी
जब स्वयं हतनी सुन्दर है तब इसे तेल मलवानेकी क्या
आवश्यकता है ॥ ४ ॥

स्तम्भचारुः कमलोल्लासः । स्वभावादेव तद्भूयः किं
नदभ्यङ्गमर्दनम् ॥ ४ ॥

सीमन्तरचनम्—अथास्तं दृढयन्त्रणेन कुक्षयोरत्य-
स्तकाठिन्ययोरावद्धस्फुटमण्डलोभतिमिलद्योलं विमु-
क्षयोरस्तः । नीवीविच्छुरितं विधाय तमसुं घामस्तना
लम्बिनो धेर्ली पालिमलाञ्जलैः शिथिलयत्याक्रम्य
पीठं पदा ॥ १ ॥ आभुभाङ्गलिपल्लवौ कक्षभरे व्यापा-
रयन्ती करौ यन्धोत्कर्षनिबद्धमानसतया शूण्यां
वधाना दशम् । यादृत्तौपसमुन्नते कुचतटे पर्यस्तधो-
लांशुका हीसङ्कोचितवाहुमूलसुभगा वधाति जूर्तीं
वधूः ॥ २ ॥ केशान्धामकरावलम्बितशिखान्भूयो
रत्नकङ्कणं व्याधूपाध कमिष्टिकानलमुखेनाकुञ्जिता-
भ्याङ्गलि । सीमन्तं विरचय्य तस्य करमेशोन्मृज्य
पार्श्वद्वयं तान्पद्माद्युगपत्प्रणीय करयोर्युग्मेन वधा-
त्यसौ ॥ ३ ॥ जानुभ्यामुपविश्य पार्श्वनिहितश्रोणो-
भरा मोक्षमहोर्वह्नी नमदुज्जमत्कुचतटो दोष्यभसाङ्गा-

मौंग सँवारना : कोई नवेली कसकर बाँधे जानेसे ऊपर
ठठे हुए अत्यन्त कठोर और ऊपरतक एक दूसरेसे लड़े
हुए स्तनोंकी जोड़ी जोड़कर, नाड़ेको गाँठ छोड़ी करके,
एक पैर चौकीपर रखकर बाएँ स्तनपरसे छटकती हुई
थोड़ी अपनी उँगलियोंसे जोड़ रही है ॥ १ ॥ कोई सुन्दरी
अपने हाथोंकी उँगलियों से देखी करके बाज सँवार रही है,
बाज सँवारनेमें मन लग जानेके कारण उसकी चितवन
सूनी-सी है, भुजाएँ ऊपर ठठानेसे उसके स्तन भी ऊपर
ठठ गए हैं अतः उनपरसे बल हट गए हैं और वह बाजके
कारण अपनी बगलें कुछ सिकोषकर जूझ बाँध रही है
॥ २ ॥ वह नवेली बाएँ हाथपर छटकते हुए खोरवाले
बाज भाँड़कर, कानी उँगली नवाकर, मौंग सँवारकर, मौंगके
दोनों मार्गोंको हथेलियोंसे चिकनानेके पश्चात् अपने दोनों
हाथ पीछे ले जाकर जूझ बाँध रही है ॥ ३ ॥ घुटनोंके बल
बैठकर, नितम्बोंका भार पड़ीपर रखकर, यह हिलते हुए
स्तनों और चमचमाते हुए पल्लोंवाली नवेली अपनी
भुजाएँ उठाकर झमझमाते कङ्कनोंवाले पहुँचोंसे झट-
झटकर न जाने अपने बाज बाँध रही है या मेरा मन ही
बाँधे बाज रहो है ॥ ४ ॥ घुटनोंपर वर्षण रखे हुए, गला
नवाए हुए, भुजाएँ उठाए हुए और हाथ मोड़े यह जो चखख
नेत्रवाली नवेली हाथोंसे बाजोंके दो भाग करके मौंग सँवारने

वलिः । पाणिभ्यामवधूय कङ्कणभण्डकारवतारोत्तरं
वाला नहति किं निजालकभरं किं वा मदीयं मनः
॥ ४ ॥ आनुस्थापितदर्पणं परिणमद्भयं समुद्यद्भुजं
म्यञ्चत्कूर्परमुन्नमद्भुजलसत्कलान्तरोहकृन्म । पाणि
भ्यां प्रविभज्य केशनिचयं सीमन्तकमोचता चेतः
कस्य वशीकरोति न बलादाला विलोलेक्षणा ॥ ५ ॥
यथा यथाऽयं वलते भुजोऽस्या उदक्षितः संयमने
कचानाम् । तथा तथा चलगति काममेकः स एव
वशोदह उत्पलाख्याः ॥ ६ ॥ सम्प्राप्तचक्रुरभावः
कचनिखयो वा युवा करे लग्नः । स्त्रीभिर्दृष्टं निवध्यो
न चेष्वरकलत्रमनुसरति ॥ ७ ॥ लोहसंयधितान्वालाद्
दृष्टं यद्भाति सुन्दरी । कदणा हरिणाहीणां कुतः
कठिनचेतसाम् ॥ ८ ॥

सीमन्तसिन्दूरम् अये मातरं द्रा मुखममृतभानुभ्र-
मयशाकचञ्चुषा राहुर्वसति किमु सृष्टातरलितः ।
किमेयं कम्पान्तकतर्कणि सिन्दूरसरणिञ्चलाद्रोक्तुं
भूयो वहिरिव रसकां कलयति ॥ १ ॥ न सिन्दूरं न

वा केशा वामानां शिरसि स्थिताः । पान्थानां सह
रक्तेन वृजिनं इननोद्भवम् ॥ २ ॥ वहन्ती सिन्दूरं
प्रयत्नकवरीभारतिमिगन्विषां वृन्दैर्यन्दीकृतमिव नशाना-
कभरणम् । ननोतु क्षेमं नस्तव यदनसन्दर्यलहरीपरी-
याहस्योनःसर्गणिरिव सीमन्तसर्गणिः ॥ ३ ॥ विलो-
चनशरैस्तिग्मेनिहंसि प्रमदे जनान् । क्षिप्तमन्यत्र
तल्लक्षं न न्यिदं नागसम्भवम् ॥ ४ ॥

तिलक — अस्याः संयमवान्कचो मधुकैरभ्यर्ध-
मानो मुहुर्भृङ्गीगोपनजाभिशापमचिरादुन्माधुकामो
निजम् । सीमन्तेन करेण कोमलकचा सिन्दूरविन्दु-
च्छलाशततायसपिण्डमण्डलमसावादानुमाकाङ्क्षति
॥ १ ॥ अस्याः सुगन्धिनयकुङ्कुमपदतो मुग्धश्चका-
स्ति तिलको मन्दिरक्षणायाः । आविष्टरागमभिराममु-
च्चारयिन्दनप्यन्दलग्रमिव मे हृदयं द्वितीयम् ॥ २ ॥
अस्या ललाटे रचिता सखाभिर्विभाव्यते चन्दनपत्र-
लेखा । आपादुरलामकपोलभिस्ताचनङ्कयाणमण्डप-
केय ॥ ३ ॥ अस्यास्तनुस्यन्दनसंस्थितो वै स मीनके-

है मानो तुम्हारे मुँहकी सुन्दरनाकी नदीका बहना हुआ करना
हो या घने बालरूपी जँधेरेके हाथों द्वारा बन्दी बनाई हुई
बाल-मृगकी किरण हो ॥ ३ ॥ है मतवाली नवेली ।
अपने विनयनरूपी तीक्ष्ण पायोंसे जो तुम मनुष्योंको
मारा करती हो वही बाणका लक्ष्य, चूककर तुम्हारे
माथेपर आ खगा है; यह नागसे उत्पन्न सिन्दूर नहीं
है ॥ ४ ॥

विन्दी : बालोंने हमारी भौरियाँ छिपा ली हैं वह सम्यह
करके जब भौरिने बालोंसे अपनी भौरियाँ मर्गीं, उस समय
अपना भौरा छिपानेका कलंक मिटानेके लिये वह बालोंका गूढ़
अपना कोमल कास्तिवाला मँगरूपी हाथ बढ़ाकर सिन्दूरकी
विन्दिरूपी गरम जोहेका गोखा लेना चाहता है ॥ १ ॥ इस
मदभरी आँखोंवालीके माथेपर सुगन्धित नये कुङ्कुमके घोंचसे
बनी हुई जो सुन्दर विन्दी रोमिभ हो रही है वह ऐसी जान
पकती है मानो मेरा दूसरा हृदय जान होकर (प्रेमसे
भरकर), उसके सुन्दर मुखारविन्दसे निकलकर माथेपर
चिपक गया हो ॥ २ ॥ सलियोंके द्वारा इसके खसगटपर
चन्दनसे रचे हुए बेज-वृटे ऐसे लग रहे हैं मानो इसके गोरे-
गोरे भरे हुए कपोलरूपी चित्रफलकपर कामदेवके बाणोंके
पावोंकी पड़ी हो ॥ ३ ॥ इस नवेलीके शरीररूपी रथपर अद्वे

जा रही है और हाथ उठानेसे जिसके स्तनोंकी अनोखी शोभा
हो रही है वह किसका किस वलपूर्वक वशमें नहीं कर लेती ?
॥ ५ ॥ बाल धौधनेके लिये जैसे-जैसे इस कमलमयनीका एक
हाथ ऊपर उठता है वैसे-वैसे इसका एक-एक स्तन भी उधल-
कूद करने लगता है ॥ ६ ॥ स्त्रियोंको चाहिए कि वे लम्बे-लम्बे
बाल और मनचले घुँकोंको बाँधकर ही रखें, नहीं तो बाल
कमरकी ओर तथा पुरुष दूसरी स्त्रियोंको ओर बढ़ने लगते हैं
॥ ७ ॥ यह सुन्दरी स्नेहसे (तोख लगाकर, प्रेमपूर्वक) बढ़ाए
हुए बालोंको भी कसकर बांधे डाल रही है । भला कठोर
चित्तवाली मृगमयनी नवेलियोंको कहीं दया होता है ! ॥ ८ ॥

मँगका सिन्दूर : भरी माँ ! मुँहको प्रमत्त चन्द्रमा
समझकर उसका अमृत पीनेके लालचसे ही क्या राहु बालोंका
रूप धरकर आ पहुँचा है ? हे कामदेवको पराजित कर देनेवाले
(शिव जी) की पत्नी ! सिन्दूरकी रेखाके रूपमें क्या वहाँ राहु
अमृत चारनेके लिये बार-बार बाहर जीभ जपलपा रहा है ॥ १ ॥
स्वभावसे ही विपरीत इन नारियोंके सिरपर न तो ये बाल
ही हैं और न यह सिन्दूर ही है वरन् यह तो बटोहियोंकी
हत्याका वह काला पाप है जो उन्हींके रक्तसे सना हुआ इनके
सिरोंपर जमा बैठा है ॥ २ ॥ सिन्दूरसे सजी हुई तुम्हारी वह
मँगकी रेखा हम लोमोंका कल्याण करे जो ऐसी जान पकती

तुर्जगतीं विजेतुम् । सकुङ्कमालेखमिषेण धीरो व्यमो-
चयच्छास्तरां पताकाम् ॥४॥ कस्तूरीतिलकं बाले भाले
मा कुरु मा कुरु। अथ साम्यं भक्षामाति जम्भते शश-
लाञ्छनः ॥ ५ ॥ केयूरं न करे पदे न कटकं मालां न
माला पुनः कस्तूरीतिलकं तथापि तनुते संसारसारधि-
यम् । सर्वाधिक्यमलेखि भालफलके यत्सुभ्रुवो वेधसा
जानीमः किमु तत्र मन्मथमहीपालेन मुद्रा कृता ॥६॥
नासावंशविमिमुक्तमुक्ताफलसनाभिना । भ्राति भालत-
लस्थेन बालर चन्दनचिन्दुना ॥७॥ बाले ललामलेखेयं
भाले भल्लीष राजते । भ्रूलताचापमारुप्य न विभ्रः
कं ह्रिमिष्यति ॥ ८ ॥ लोचनकुलाम्भोजद्वयलोभान्वो-
लितैकमनाः । कस्तूरीतिलकमिषाद्यमलिकेऽलिः
समुल्लसति ॥ ९ ॥ विराजतेऽस्यास्तिलकोऽयमञ्जितो
विकुञ्चितभ्रूलतिकाद्वयान्तरे । विजित्य लोकद्वितयं
विषं प्रति स्मरेण धाणो धनुषीष योजितः ॥ १० ॥

हुए वीर कामदेवने सारे संसारको जीत लेनेकी इच्छासे कुङ्कु-
मकी चित्रकारीके रूपमें मानो अत्यन्त सुन्दर पताका पहारा दी
है ॥ ४ ॥ हे नवेली ! अपने माथेपर कस्तूरीका तिलक न
लगाया, न लगाया, क्योंकि 'बाज सा मैं इसके समान ही
हुआ जा रहा हूँ, यह साचकर करदक चिह्नवाला चन्द्रमा
फूला नहीं समाता ॥५॥ न ता इस सुन्दर भाँहवाला नवेलीके
हाथमें कलम है, न पैरमें नूपुर है और न सिरपर माका है,
किर भी संसार भरकी सारा सुन्दरताका सार यह कस्तूरीका
तिलक ही देखकर हम समझते हैं माना यद्वा ने जो इसके माथेपर
अत्यधिक महत्वकी बात लिख दी है उसपर महाराज कामदेवने
अपनी मुहर मार दी हो ॥ ६ ॥ इस नवेलीके माथेपरकी
चन्दनकी मिथी ऐसी शोभित हो रहा है मानो नाकरूपी बॉस-
पर निकलकर सिद्धा हुआ सुन्दर मोती हो ॥ ७ ॥ हे नवेली !
तुम्हारे सरतकमें यह सुन्दर रत्ना (तिलक) बाजके समान
शोभा पा रही ॥ यह तुम्हारा भाँहरूपी धनुष सींचकर न जाने
किसका वध करेगी ॥ ८ ॥ नेत्ररूपी दो सिले हुए कमजोर
छलचाए हुए भीरे हैं। मानो कस्तूरीके तिलकके रूपमें नाच-
माचकर शोभा बढ़ा रहे हैं ॥ ९ ॥ दोनों बॉकी भाँहाके बीचमें
इसका तिलक ऐसा शोभित हो रहा है माना कामदेवने दोनों
खोक जीतकर अब स्वर्ग जीतनेके लिये अपने धनुषपर
बाण धड़ा रक्ता हो ॥ १० ॥ हे बाले ! जलाटपर काले
रंगवाले चिह्नसे युक्त तुम्हारा मुख उस कमलके समान

रयामलेनाङ्कितं भाले बाले केनापि लचमणा । मुखं
तवान्तरासुसभृङ्गफुल्लाम्युजायते ॥ ११ ॥

कणभूषणम्—ताटङ्कमस्यास्तरलेखणाया मुक्ताफ-
लैश्चाहर्षवि विधत्ते । मुखश्रिया चन्द्रमिवाभिभूय
चन्द्रीकृतं तारकचक्रवालम् ॥ १ ॥ मुक्ताताटङ्कयुगं
प्रतिमुक्तं कर्षपाश्वयोरस्याः । मुखकमलमिष निषे-
षितुमागतममृतांशुविम्बयुगम् ॥ २ ॥ शशी हस्तं
लोभान्मुखकमलशोभां श्रुतिफलं सिषेवे सातङ्कस्तव
तरणि ताटङ्कपटात् । तवन्तःपीयूषं निखिलमथ
निक्षेप्तुमधरे मनोजम्मा मुष्णन्मुदुरदृष्टं तुच्छं तमक-
रोत् ॥ ३ ॥ सौन्दर्यपात्रे वक्त्रेन्दो कुरङ्गासङ्गभोतया ।
सुखितो भोजपाशाम्यां पाशाविष मृगीदृशा ॥ ४ ॥

नासाभूषणम्—अस्याः कामनिवासरम्यभवनं यत्नं
विलोक्यादराभिधित्येव सुधाकरं प्रियतमं भूमोगलं
शोभनम् । नासामाकिककैतवेन ठञ्जिरा तारापि सा

जग रहा है जिसके भीतर भीरा सो रहा हो ॥ ११ ॥

कनफूलः इस रसीली भाँसावाली नवेलीके कानोंमें
मोती गुँथे हुए सुन्दर कनफूल ऐसे कमलजाला रहे हैं मानो
अपने मुखकी शोभासे इसने तारों समेत चन्द्रमाकी बन्दी बना
रक्ता हो ॥ १ ॥ कानोंके नीचे खटकते हुए मोतीसे बने दोनों
कनफूल ऐसे शोभित हो रहे हैं मानो मुखकमलकी सेवा
करनेका चाए हुए दो चन्द्रमा हों ॥ २ ॥ हे नवेली ! तुम्हारे
मुखकमलकी शोभा पुरानेके लोभसे चन्द्रमा ही कनफूलका-रूप
धरकर डरके सारे काँपता हुआ तुम्हारे कानोंके पास रहने लगा
और इधर कामदेवने अबसर पाकर उसके बीचका सारा असुत
अधरमें छाजनेके लिये उसे बार-बार पुराकर हाथ ! उसे
साँझला बना दिया ॥ ३ ॥ उस सुगमपनी नवेलीने जो
कानमें कुचडल खटका रक्ते हैं वे मानो दो फन्दे हैं जो उसने
इस डरसे लगा लिये हैं कि कहीं उसके मुखरूपी चन्द्रमामें
हरिच न आ कूदें ॥ ४ ॥

मक बेसर : कामदेवके रहनेके सुन्दर भवनके समान इस
नवेलीके मुखकी बड़े आदरसे देखकर रोहिणी तारेने यह निश्चय
किया कि वे भरतीपर उतरे हुए मेरे अत्यन्त सुन्दर प्रियतम
चन्द्रमा हैं । इसलिये चन्द्रमाका विरह न सह सकती हुई
यह सुन्दरी बेसरके मोतीके रूपमें उसके पास ही आ बसी
है ॥ १ ॥ हे मृगके झौनेके नेत्रोंके समान नेत्रवाली सखी ! यह
मोती पहले तो आकाशसे गिरा, फिर बहुत दिनोंतक समुद्रमें

रोहिणी मध्ये तद्विरहासहिष्णुहृदया तत्सन्निधि
सेवते ॥ १ ॥ आकाशात्पतितं पुनर्जलनिधौ मध्ये
चिरं संस्थितं पश्चाद्दुःसहदेहरन्ध्रजनितक्लेशान्वितं
मौक्तिकम् । बाले बालकुरङ्गलोचनयुगे घोरं तपः
सञ्चरन्नासाभूषणतामुपैति सखि ते विम्वारधरणेक्षया
॥ २ ॥ नासामौक्तिकमयले किमधरविभवेन विद्रुमं
कुरुषे । इष्टया गुञ्जाद्योजं शिव शिव भूयस्तदेव हासि-
तेन ॥ ३ ॥ मुक्ता अपि यदास्वादं विहातुं इन्त न
क्षमाः । अन्यथा लम्बमानत्वमेतदीयं कथम्भवत् ॥ ४ ॥
ललाटे लोलाक्ष्यास्तिलकमिषधारी विधुरयं स्वमा-
पूर्णं वाञ्छन्धरसुधया देवहितकृत् । अतो नासा-
मेऽसौ तदुपहतये मौक्तिकमिषाः स्फुटं दैत्यामान्याऽध-
रशशभूतोरन्तरयतः ॥ ५ ॥ इत्येवमागारे यसतिजां-
तास्माकं तद्वत् मा यात । आन्दासनकृत्लादह नि-
वारयन्तीव मौक्तिकानि विटान् ॥ ६ ॥ सुधामयोऽपि
क्षयरीगशास्त्र्ये नासाप्रमुक्ताफलकचकुलेन । अमङ्गल-

पदा रहा, फिर इसने केहे जानेकी प्रसन्न पीडा भोगी तब कहीं
यह तुम्हारे विम्वारके बड़े सब नक-बेसर बन पाया है
॥ १ ॥ हे नवेली ! अपना नाकके जिस माताका विभवेके समान
अधरकी कान्तिसे तुमने भूंगा क्या दिया उसे अपनी काँकी
चितवनसे धुँवनी क्यों बनाए डाल रहा है ? राम-राम ! अब
तुम उसे अपनी हँसासे फिर मोती बनाए दे रहा है ॥ २ ॥ जान
पड़ता है मुक्ता (जीवनमुक्त, मोती) भी इसका स्वाद नहीं
छोड़ सकते । यदि यह बात न होती तो वह माता इसकी
नाकमें क्यों छटकता रहता ? ॥ ३ ॥ इस चञ्चल आँखवाकी
नवेलीके माथेपर बिन्दीके रूपमें बँठा हुआ यह देवताभार्क
भलाई करनेवाला चन्द्रमा अधरासुत पीकर पूरा बनना
चाहता है इसलिये नाकके आगेके भागमें ये दैत्योंके मन्त्री
मुक्ताचार्य उसे अमृत न पाने देनेके लिये चन्द्रमा (बिन्दी)
और अधरके बीचमें मोतीके रूपमें प्रत्यक्ष ही बाधा बने बैठे
हैं ॥ ४ ॥ नाकपर लटके हुए मोती हिल-हिलकर मानो
मारोंकी यह जता रहे हैं कि तुम जोग अब यहाँ न आना
क्योंकि यहाँ कफके भयद्वारमें अब हम रहने लगे हैं ॥ ५ ॥
यद्यपि चन्द्रमा स्वयं अमृतमय है फिर भी अपना चरोग
दूर करनेके लिये वह नाकके आगे मोतीका रूप धरकर तुम्हारा
मुलामृत पी रहा है क्योंकि उसने तुम्हारे अधरासुतसे
कामदेवकी जीवित होते देख लिया है ॥ ६ ॥

जीवनदृष्टशक्तिर्मुलामृतं ते पिवनीव चन्द्रः ॥ ७ ॥
कञ्चुकी—उपरि गोनपयोधरपानिता पटकुटीव
मनोभवभूषतेः । विजयिनस्त्रिपुगर्गिजगीपया नव
विजयजनि भामिनि कञ्चुकी ॥ १ ॥

हारः—एकावलोकलितमौक्तिककैतवेन तन्म्याः
समुन्नतपयोधरयुग्मसेवाम् । चक्रमतांसि यमिनाम-
तिनिर्मलानि कन्दर्पमुक्तशरपानकृतान्नराणि ॥ १ ॥
ग्रीवाद्भूतवायवदृशाभितापि प्रसाधिता माणवकेन
सेयम् । आलिङ्गयतामप्यवलम्बमाना सुरुपताभाग-
क्षिताध्वकाया ॥ २ ॥ धर्तायन्त्रायते हारा नाभिकुपे
मृगोदशः । संसेकतुमिष लावण्यपयसा यावनद्रुमम्
॥ ३ ॥ निर्यडानुयक्तकुचकाकदम्पती मुखतारकापरि-
चूडेन शासितुम् । अयनारितेय निजनारकायला
हारणीदशः स्फुरति हारयल्लरी ॥ ४ ॥ प्राणेश्वरपरि-
च्यव्विभ्रमप्रातपत्तिभिः । मुक्ताहारण लसता हस्तोव
स्तनद्वयम् ॥ ५ ॥ मणिहारलता विभाति तन्म्याः

चोली : हे सुन्दरी ! तुम्हारे ऊँचे-ऊँचे स्तनोंपर पड़ी हुई
चाली ऐसी सुन्दर जान पड़ती है मानों त्रिपुरासुरके शत्रु
शिवजीका जाननेकी इच्छा करनेवाले अत्यन्त बार महाराज
कामदेवकी तबू हो ॥ १ ॥

हार : नवेलीकी एक तरकी मालामें गुँधे हुए मोतियोंके
रूपमें अत्यन्त निर्मल तथा कामके बाणोंसे छिड़े हुए महारामाओंके
मन दागती ऊँचे स्तनोंकी सेवा कर रहे हैं ॥ २ ॥ इस नवेलीका
गला ताँ बड़े अधरमें डाले दे रहा है क्योंकि यह बहुत
(गलेका घाटा, बाजक) से शांभु न हानेपर भा माणवक
हार, बाजक) से सजा हुआ है, आलिङ्गन करने योग्य होत हुआ
भा उपरसे अमुरूप (माणरूप) है और सुदृगके समान
होते हुए भा सुन्दर है ॥ ३ ॥ सुगमयनीका हार ऐसी
जान पड़ रहा है मानों नाभिरूप कुपेंके सुन्दरतारुपी
जलसे यौवनरुपी बुझकी सींचनेवाला रहट हो ॥ ४ ॥
सुगमयनी नवेलीके स्तनोंपर मोतीके हारकी छदियाँ ऐसी जान
पड़ रही हैं माना मुखरुपी तारापति (चन्द्रमा) ने आपसमें
अत्यन्त सटे हुए चकवी-चकवेपर शासन करनेके लिये अपनी
तारारुपी पत्नियाँ भेज दी हों ॥ ५ ॥ पतिका आलिङ्गन-
रुपी आदर पाकर इस नवेलीके दोनों स्तन चमकते हुए
मोतीके हारके रूपमें मानो हैंस रहे हैं ॥ ६ ॥ दुबली-पतली
सुन्दरीका भविष्यका हार ऐसी शोभित हो रहा है मानो

स्तनसिंहासनसीमि तस्थिवांसम् । अभिवेक्षुमनक-
देवराजं गलशङ्खाद्गलितेव दुग्धधारा ॥ ६ ॥ मातङ्ग-
कुम्भसंसर्गजातपातकशङ्कया । स्नातीव मुक्ताहा-
रोऽस्याः स्फुरत्कान्तिजले गले ॥ ७ ॥ मुक्तावली
स्मरयिदाहधिपाण्डुमूले नद्धा चकास्ति सितकम्बुनि
कण्ठकाण्डे । निश्चिन्वती मृगदशो वदनं मृगाङ्गं नल-
प्रपङ्क्तिरिय सम्पतिता नभस्तः ॥ ८ ॥ सारङ्गादयाः
कुचकलशयोरन्तराकाशदेशः प्राप्तच्छेदः कश्चिदपि
चलन्प्रस्खलन्निःपपात । नाभीकृपः समजनि ननस्तस्य
देहच्युतासौ नक्षत्राणां तनिरिय समालम्ब्यते हारशो-
भाम् ॥ ९ ॥ स्तनानटे चन्दनपर्णकुलेऽस्या जातस्य
यायद्युद्यमानसानाम् । हारायलोरजमयूखधागकाराः
स्फुरन्ति स्खलनस्य रेखाः ॥ १० ॥ हारः कुरङ्गशावाक्या
राजति स्थूलमोक्तिकः । नाभिलावण्यपानीयघटीयन्त्र-
शुणोपमः ॥ ११ ॥ हारोऽयं हरिणाक्षोणां लुडति स्तन-
मण्डले । मुक्तानामप्यवस्थेयं के वयं स्मरकिङ्कराः ॥ १२ ॥

स्तनरूपी सिंहासनपर विराजमान कामदेवरूपी देवराजका
अभिवेक्ष करनेके लिये गले-रूपी शङ्खसे दूधकी धार गिर रही
हो ॥ ६ ॥ मातङ्ग (हाथी, पाण्डवा) के मस्तकके
सम्पर्कसे कहीं पाप न लग गया हो इसी शङ्खसे मानों उस
नवेलीका मोतीका हार सुन्दरता-रूपी जलसे भरे उसके
गलेमें स्नान कर रहा हो ॥ ७ ॥ नवेलीके गलेरूपी उज्ज्वले
शङ्खमें लटकती हुई मोतीकी माला कामाग्रिके तापसे उज्ज्वली
नक्षत्रोंकी उस पौत-सी जान पड़ रही है जो आकाशसे गिरकर
नवेलीके मुखरूपी चन्द्रमाकी खोज कर रही हो ॥ ८ ॥
मृगमयनी नवेलीके घड़ेके समान स्तनोंके बांधका जो आकाश
टूटकर लक्ष्म्यदाते हुए गिर पड़ा यह तो गहरी नाभि हो गया
और उस आकाशसे ऊर्ध्व हुई तारोंकी पौत ही मानों हारके
रूपमें शोभित हो रही है ॥ ९ ॥ चन्दनके छेपसे सजे हुए
इस नवेलीके स्तनोंपर हारके रत्नोंकी लम्बी किरणें ऐसी जान
पड़ती हैं मानों सभी नवयुवकोंके मन फिसलानेवाली रेखाएँ
हों ॥ १० ॥ मृगके छींके समान नयनोंवाली नवेलीका बड़े-
बड़े मोतियोंवाला हार मानों नाभि-रूपी कूर्पसे सुन्दरता-रूपी
जल कीचनेवाला रहट है ॥ ११ ॥ मृगमयनी नवेलीकी
स्तन-मण्डलपर हार लोट रहे हैं । जब मुक्ता (मोतियाँ,
जीवन्मुक्तोंकी) यह दशा है तब हम लोगोंके विषयमें तो
कहना ही क्या है जो सदा कामके दास बने रहते हैं ॥ १२ ॥

कङ्कणम्—इदं ते केनोक्तं कथय कमलातङ्कवदने
यदेतस्मिन् हेमः कटकमिति धत्से जलु धियम् ।
इदं तद्दुःसाधाक्रमणपरमाख्यं स्मृतिभुवा तव प्रीत्या
चक्रं करकमलमूले विनिहितम् ॥ १ ॥ कुर्याद्गुह्याः
कुचभारेण दूरमुत्सारितौ भुजौ । बहवः कलहायेव
वाचालां वलयावलम् ॥ २ ॥ गौराङ्ग्या भुजलावण्य-
मीलितं हेमकङ्कणम् । कण्ठाश्लेषे वयस्याभिः काठिन्या-
दन्वमीयत ॥ ३ ॥ न्यस्तानि दन्तयलयानि करे कदा-
चित्तानीन्दुखण्डघटितानि ममैव ततः । अस्या निल-
र्तमृदुवाणिसराजमेपामामोषने कटिति यन्मुकुलीव-
भूव ॥ ४ ॥ प्रकोष्ठयन्धे विम्याच्छ्रयास्तस्याः काश्चन-
कङ्कणम् । नालं यलयितं हस्ते हेमाञ्जस्येव राजते
॥ ५ ॥ सहैमकटकं धत्से सा करं पद्मतस्करम् । पथि-
नोवल्लभस्यैव मूलं वेदितमंशुना ॥ ६ ॥ सावयोकङ्क-
णध्वंसा भाति तद्वाङ्कम्वली । तूणचम्पकमौर्ध्वेव

कङ्कन : हे कमलके समान मुखवाली ! यह तुमसे
किसने कह दिया कि यह सोनेका कङ्कन है ? भरी ! यह
तो तुम्हारे कमल जैसे पंखोंमें तुम्हें प्रसन्न करनेके लिये
कामदेवने न जीते जा सकने योग्य पुरुषोंपर भी विजय
पा लेनेवाला बड़ा भारी चक्र दे रखता है ॥ १ ॥ तुम्हारे
शरीरवाली नवेलीके मोटे-मोटे स्तनोंमें भुजाओंकी बूर हटा
दिया अतः वे मानों कङ्कनोंकी भ्रमकलाइतके स्वरामें उनसे
भगवा कर रहो हैं ॥ २ ॥ गोरी-गोरी नवेलीकी बाँहकी
सुन्दरतामें बिप्रे हुए सोनेके कङ्कनों कीखियाँ तब समझ
पाईं, जब आलिंगन करनेपर गलेमें वह कड़ा-कड़ा-सा जान
पड़ा ॥ ३ ॥ इस नवेलीके हाथमें जो हाथी-दोंतके कङ्कन कभी
पड़नाएँ गए थे वे मेरी समझमें धौदनासे बने जान पड़ते
हैं । इसीलिये तो उन्हें उतारते समय इसके स्वभावसे कामल
कमलके समान हाथ तत्काल सिक्कड़ गए ॥ ४ ॥ पके हुए
ऊँदरुके समान आंठोंवाली नवेलीकी भुजामें लगा हुआ
सोनेका कङ्कन ऐसा सुन्दर जान पड़ रहा है मानों हाथमें
सोनेके कमल (पंखे) का नाख लपेटकर बाँध दिया गया
हो ॥ ५ ॥ सोनेके कङ्कनोंसे सजे हुए और कमलोंकी कान्ति
पुरानेवाले उसके हाथ ऐसे जगते हैं मानों कमलजिनेके पति
(सूर्य) की किरणोंने उसकी जड़ लपेट रखी हो ॥ ६ ॥
सोनेके कङ्कनोंसे सजी हुई उखली बाँह ऐसी सुन्दर लग

पुष्पकोपेन वेष्टिता ॥ ७ ॥ हस्ते चकास्ति यालाया-
स्तस्याः कङ्कणमालिका । मनःकुङ्कुमध्याय पाशालीय
मनोभुवः ॥ ८ ॥

मुद्रिका—अङ्गुलीषु कुङ्कुमाभ्याः शोभते मुद्रिका-
यलिः । प्रोक्तेषु वाणैः पुष्पेषुः सुधमलव्यपरम्परा
॥ १ ॥ राज्यान्तःकामदेवस्य प्राणिनो निवसन्ति ये ।
तैर्वन्द्या राजमुद्रेयं न तु घालाङ्गुलीयकम् ॥ २ ॥

काञ्ची - वज्रा मणिमयकाञ्ची तस्याः परिणाह-
शालिनि नितम्बे । पङ्क्तिरिव सारलानां सुरसरिः
पुलिनमण्डलाभागे ॥ १ ॥ स्रस्तां नितम्बादवगोपयन्ती
पुनः पुनः केसरपुष्पकाञ्चीम् । न्यासीकृतां स्थान-
विदा स्मरेण द्वितायमांशौमिव कामुकस्य ॥ २ ॥

कांतिः - अवयवेषु परस्परविमिश्रितेष्वनुलकान्तिषु
राजसि तत्तनोः । अयमयं प्रणिभाग इति स्फुटं जगति
निश्चिनुते चतुरोऽपि कः ॥ १ ॥ आकारस्तुमनाह-
रस्स महिमा तद्वैभवं तद्वयः सा कान्तिस्त च विभ-

रही है मानो कामदेवने अपने तरकससे लगी हुई चमके
झरसे लपेट रखी हो ॥ ७ ॥ नवेलीके हाथोंमें कङ्कणोंकी
पॉत ऐसी सुन्दर दिखाई पड़ रही है मानो लोहोंके मनकरी
हरिण फैलानेके लिये कामदेवके डेरसे पारा हों ॥ ८ ॥

अङ्गुठी : अङ्गुलीयको नवेलीकी उँगलियोंमें अङ्गुठियाँ ऐसी
शोभित हो रही हैं मानो अभ्यासके लिये कामके बाणोंसे बेधी
हुई सँकरी गोल-गोल चन्द्रमारी हो ॥ १ ॥ नवेलीको उँगलीमें
यह अङ्गुठी नहीं है, यह तो वह राजमुद्रा है जिसे महाराज
कामदेवके राजपमें रहनेवालोंको प्रणाम करना चाहिए ॥ २ ॥

करधनी : उसके विशाल नितम्बमें बेधी हुई उज्जले
मणियोंकी करधनी ऐसी जान पड़ती है मानो गङ्गाके चौड़े
तटपर सारस पक्षियोंकी पॉत हो ॥ १ ॥ वीली होकर
नितम्बसे नीचे सरकती हुई मौलसिरके फूलोंकी जो करधनी
बार-बार वह नवेली ऊपर उठा रही है वह ऐसी जान पड़
रही है मानो नितम्बको ही उचित स्थान समझकर कामदेवने
अपने धनुषकी दूसरी प्रत्यक्षा (शरी) वहाँ ही बाँध छोड़ी
हो ॥ २ ॥

कांति (चमक) : अत्यधिक चमकके कारण एक
दूसरेपर चमक डालनेवाले अङ्गोंवाले उसके शरीरमें 'यहाँसे
यहाँतक अमुक चमक है' यह निश्चय करके स्पष्ट बतानेवाला
चतुर मनुष्य संसारमें कौन है ? कोई नहीं ॥ १ ॥ उसका

विषयकम्बलौभाग्यभाग्योदयः । एकैकस्य विशेषवर्ण-
नविधौ तन्मात्रम् एव तमो यस्यास्मिन्नुत्तमभोरिव
भवेत्तत्तमस्योदयम् ॥ २ ॥ सन्दर्भे सा भवत्येवं
विधेयः कस्य ज्ञायते । प्रभामात्रं हि तत्तलं दृश्यते
नात्र संशयः ॥ ३ ॥

महज्जालङ्काराः

भावः—तदेव यच्चनं ते नैव लोचने योचनमपि
तदेव । अस्यानङ्गलक्ष्मोऽन्यदेव किमपि साधयति
॥ १ ॥ स एव सुरुभिः कालः स एव मलयानिलः ।
सैवेयमयला किन्तु मनोऽन्यदिव दृश्यते ॥ २ ॥ हरस्तु
किञ्चिन्परिलुप्तधैर्यश्चन्द्रोदयारम्भ इवाभ्युगतिः ।
उमामुने विम्वकलाधरोष्ठे व्यापारयामास विलोच-
नाभि ॥ ३ ॥

हावः—यन्किमपि प्रेक्षमाणां भणमानां र यथा
तथैव । निध्याय स्नेहमुग्धां यस्यस्य मुग्धां पश्य ॥ १ ॥
विदूषवती शैलसुताऽपि भावमकैः स्फुरद्दालकदम्प-

वह मनोहर रूप ! वह महिमा ! वह ऐश्वर्य ! वह आयु ! वह
चमक-चमक ! वह संसारको अचरतमें डाल देनेवाला सौभाग्य
और वह भावोदय ! इन सब एक-एकका वर्णन वही कर
सकता है जिसे शेषनागकी भाँति दो सहस्र जीभें मिली हों
॥ १ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि उसकी तो केवल रसीली चमक-
मात्र दिखाई पड़ रही है अतः वह जान तो किसीकी हो नहीं
पाता कि वह कोई सुन्दरी है ॥ ३ ॥

स्वाभाधिक अलङ्कार

भाव : वही उसकी बोली है, वे ही उसकी आँखें हैं और
वही उसकी जबानी भी है किन्तु यह कामकी निरासी छटा
उसे कुछ और ही बना डालना चाहती है ॥ १ ॥ वही नसम्भ
जानु है, वही मलय पर्वतका पवन है और वही यह नवेली भी
है किन्तु आज इसका मन कुछ और ही दिखाई पड़ रहा है
॥ २ ॥ शिवजीका धीरज कुछ लुप्त हो गया और उन्होंने
पार्वतीजीके मुखपर चित्रके समान अधरोष्ठमें वैसे ही अपनी
आँखें जमा दीं जैसे चन्द्रमाका उदय होनेपर समुद्र उसपर
आँखें जमा लेता है ॥ ३ ॥

हाव : अरे मित्र ! ध्यानपूर्वक उस प्रेमरसमें डूबी हुई
भोजी-भाजी सुन्दरीको देखो जो कहीं कुछ देखती जा रही है
और कुछ-कुछ बोलती भी जा रही है ॥ १ ॥ इन्द्रकी आज्ञासे
हिमालयपर कामदेवके माया फैलानेपर जब पार्वतीको देखकर

कल्पैः । साचीकृता चारुतरेण तस्थौ मुखेन पर्यस्त-
विलोचनेन ॥ २ ॥

हेला—तथा तस्या भूदिनि प्रवृत्ता घप्ता सर्वाङ्ग-
विभ्रमाः सकलाः । संशयितमुग्धभावा भवति चिरं
यथा सखीनामपि ॥ १ ॥

शोभा—तां प्राङ्मुखीं तत्र निवेश्य वालां सख्यं
व्यलम्बन्त पुरो निषण्णाः । भूताधेशोभाद्विद्यमान-
मेवाः प्रसाधने सन्निहितेऽपि नायः ॥ १ ॥

कान्तिः—घामं सन्निधितमितवल्यं न्यस्य हस्तं
नितम्बे कृत्वा श्यामाविटपसदृशं सस्तमुकं द्वितो-
यम् । पादाङ्गुलालितकुसुमे कुट्टिमे पातितार्शं
वृत्तादस्याः स्थितमतितरां कान्तमृज्यायतार्धम् ॥ १ ॥

माधुर्यम्—शरकाण्डपाण्डुगण्डस्थलेयमाभाति परि-
मिताभरणा । माधवपरिणतपत्रा कतिपयकुसुमेव
कुन्दलता ॥ १ ॥

शिवजीका चित्त चञ्चल होने लगा उस समय अपने लिखते
हुए कदम्बके फूलके समान (रोमांचित) कोमल चक्कीसे मनके
भाद प्रकट करनी हुई, तिरछी चितवनवाले मुलकमलसे सोभित
पार्वती कुछ तिरछी होकर खड़ी रहीं ॥ २ ॥

हेला : मधवपूके सब चक्कीके सब बिलास मट ही ऐसे
प्रवृत्त हुए जिनसे उसकी सखियोंको भी उसके मुग्धापनपर
सन्देश होने लगा ॥ १ ॥

शोभा : वहाँ उन्होंने पार्वतीको पुरवकी ओर मुँह करके
बैठा दिया । सिंगारकी सब सामग्री पासमें रखते हुए भी वे
सब पार्वतीजीकी स्वाभाविक शोभापर ही इतनी जड़ गईं
कुछ देरतक तो वे सुध-बुध भूलकर उनकी ओर पकटक
निहारती हुई बैठी ही रह गईं ॥ १ ॥

कान्ति : अहा ! इसने अपना बाँया हाथ अपने निम्न-
पर रख लिया है इसलिये हाथका कड़ा पट्टेपर रुककर चुप
हो गया है । दूसरा हाथ श्यामाकी ढाँकाके समान सीधा
खटका हुआ है । नीचा आँलें किए हुए यह अपने धरके खँगूटेसे
धरतीपर बिखरे हुए फूल सरका रही है । इस प्रकार लकी होनेसे
इसके ऊपरका शरीर लम्बा और सीधा हो गया है । नाचनेके
समय भी यह ऐसी सुन्दर नहीं लगती थी जैसी अब लग रही
है ॥ १ ॥

मधुरता : इने-गिने आभूषण पहने हुए और सरकरके
समान पाछ गाछावाला यह सुन्दर वैसा ही दिखाई दे रही है

दीप्तिः—ताडयस्य विलासः समधिकलावण्य-
सम्पदो हासः । धरणितलस्याभरणं युवजनमनसो वशी-
करणम् ॥ १ ॥ दैवादृष्टा नितान्तसुमुखशशिज्योत्स्नावि-
लुप्ततमोनिबद्धे । अभिसारिकाणां विघ्नं करोष्यन्यासां
विहृताये ॥ २ ॥

प्रगल्भता—तथा म्रीडाविधेयापि तथा मुग्धापि
सुन्दरी । कलाप्रयोगचातुर्ये सभा स्वाचार्यकं गता
॥ १ ॥ समाश्लेषा समाश्लेषैश्चम्विताश्चम्वनैरपि ।
दृष्टाश्च दर्शनैः कान्तं दासीकुर्वन्ति योषितः ॥ २ ॥

औदार्यम्—दिवसं कलु दुःखितायाः सकलं कृत्वा
शृङ्खलापारम् । गुरुष्वपि मन्दुदुःखे भरिमा पादाम्ने
सुप्तस्य ॥ १ ॥

धैर्यम्—अथ विश्वात्मने गौरी सन्निदेश मिथः
सखीम् । दाता मे भूभुतां नाथः प्रमाणीकृत्यतामिति
॥ १ ॥

जैसे वसन्तसे पके पत्तेवाली किसी कुन्दलतामें इने-गिने
फूल बचे रह गए हों ॥ १ ॥

दीप्ति : यह नखेली तो धीवनका बिलास है, वही हुई
कावय सम्पत्तिका मधुर हास है, पृथ्वीका भूषण है और
नखबुक्कीके मनको आकृष्ट करनेवाला वशीकरण मन्त्र है ॥ १ ॥
हे रमणी ! प्रसन्न हो जाओ ! देखो तो, तुम्हारे मुलकन्दकी
बाँदनीसे खँघेरा भट हो रहा है । सौट चको, हे मूर्ख ! तुम
वसती अभिसारिकाओं (कृप्याभिसारिकाओं) की भी अपने
शिवतमोंसे गुपचुप मिलनेमें क्यों दिग्ग्न डाल रही हो ? ॥ २ ॥

प्रगल्भता : यद्यपि वह सुन्दरी अत्यधिक भोली तथा
जमीली है फिर भी सभामें कला-प्रयोगकी चतुरता दिखाते
समय आचार्य बन गई ॥ १ ॥ आखिगर आदिके बदलेमें
स्वयं भी वैसे ही व्यवहार करके रमणियाँ शिवतमोंको दास बना
लेती हैं ॥ २ ॥

उदारता : जैसे ही शिवतम अपनी प्रेमिकाके पैरों पड़ने
जगे तैसे ही दिनभर धरका कामकाज करके वही हुई नखेलीका
क्रोध शान्त हो गया ॥ १ ॥

धोरज : अब पार्वतीजीने, बट-बटमें रहनेवाले शिवजीको
अपनी सखीके मुँहसे धीरेसे कहलाया कि मेरा विवाह करने
या न करनेवाले मेरे पिता हिमाव्य हैं, इसलिये यदि आप
मुझसे विवाह करना चाहते हों तो पहले उन्हें जाकर मना
लायिए ॥ १ ॥

हाथ

लीला—तथा दृष्टं तथा भणितं तथा नियतं तथा तथा शीर्षम् । अवलोकितं सत्पुणं सविभ्रमं यथा सप-
ज्ञोभिः ॥ १ ॥

विलासः—अत्रान्तरे किमपि वाग्बिभ्रवातिवृत्त-
वैचित्र्यमुल्लसितविभ्रममायताव्याः । तद्भूरिसात्त्विक-
कविकारविशेषरम्यमाचायेकं विजयि मन्मथमविरा-
सीत् ॥ १ ॥

विचित्रिः—कर्णार्पितो रोधकवायकसे गोरोचना-
भेदनिनान्तगौरे । तस्याः कपोले परभागलाभाद्वन्ध-
वत्त्वि यवप्ररोहः ॥ १ ॥ स्वच्छाम्भ स्नपनविधान-
मङ्गमोष्ठस्ताम्बूलघृति विशदो विलासिनीनाम् ।
वातस्तु प्रतनु विषिकमस्त्वितीयानाकल्पो यदि कुसु-
मेयुणा न शन्यः ॥ २ ॥

विभ्रमः—अभ्युद्गते शशिनि पेशलकाम्बदूतीसंला-
पसंक्षलितलोचममानसाभिः । अप्राहि मण्डनविधिर्वि-

हाथ

बुलबुलपन : इस नवेखीकी चितवन, बोल-बाक,
अपनेको सँभाके रखना और बैठना इस इच्छा है कि उसकी
सौते उसे बड़ी चाह और विलासके साथ देखती हैं ॥ १ ॥

चटक-मटक : इस बीच, बड़ी-बड़ी आँखोंवाली
माकलीका काम-सम्बन्धी विमर्षका आचार्यत्व (काम-कौशल)
प्रकट हुआ जिसकी विचित्रता बोलनेके इच्छासे पद गई थी, जो
हाव-भाव तथा पवराइते मुक्त था और जो स्वेद, रोमाञ्च
आदि सार्विक भावोंके कारण विशेष सुन्दर हो गया था ॥ १ ॥

बनाव-सिंगार : शृङ्गार करते समय पार्वतीजीके कानमें
जो जीका अङ्गुर लगा हुआ था वह छोड़के पूर्णके कारण रुके
और गोरोचनके बेलबूटोंसे अधिक गोरे-गोरे कपोलपर विशेष
सुन्दरता प्राप्त करके लोगोंकी दृष्टिओं अपनी ओर खींच रहा था
॥ १ ॥ यदि विलासवती रमणियों कामकलाओंके प्रमाकारसे
शून्य न हों तो उनके बिचे निर्मल जलके स्नानसे विशुद्ध अन्न,
पानकी छाकीसे सजे हुए थोठ और सुन्दर स्वच्छ पतले वस्त्र;
यस इसने ही आभूषण बहुत हैं ॥ २ ॥

हृदयकी : अङ्गमाका उदय होनेपर प्यारे खेलेकी
दृष्टियोंकी सुन्दर बातोंसे विकसित नेत्र और मनवाली नवेखियोंने
इस प्रकार गहनों आदिसे अपनी सजावट की कि उनके
गहनोंकी उज्जटा-पल्लवी सजावट देखकर सर्जियों ईस पड़ी ॥ १ ॥

१८

परीतमुषाविन्यासहासिनसखीजनमङ्गनाभिः ॥ १ ॥

विलोकः—यासां मन्यपि सदगुणानुसरणे दोषानु-
वृत्तिः परा या प्राणान्धर्मपर्यन्ति न पुनः सम्पूर्णदृष्टिं
प्रिये । अन्यन्ताभिमतैः प्रिये यन्तुनि विधिर्यासां निग-
धान्मकस्तास्त्रैलोक्यविलक्षणप्रकृतयो वामाः प्रसीदन्तु
ते ॥ १ ॥

किन्किञ्चितम्—रतिक्रीडाघृते कथमपि समासाद्य
समयं मया लब्धे नम्याः कचगितकलकण्ठार्धमधरे ।
रुतभ्रमङ्गासां प्रकटितविलसार्थकदितस्मितकोधो-
ञ्जान्तं पुनरपि विदध्यान्मयि मुखम् ॥ १ ॥

मोटा/घनम्—चित्रवसिन्यपि नृपे तस्यांघ्रेशेन
चेतसि । प्रीडाचर्चलितं चक्रे मुग्धदुमवशैव सा ॥ १ ॥

कृटमितम्—नान्दीपदानि रतिनाटकविभ्रमाणा-
माहातराणि परमात्यथवा स्मरस्थ । दृष्टेऽधरे प्रण-
यिना विधुताग्रपाणेः सीम्कारशुष्कदितानि जयन्ति
नार्याः ॥ १ ॥ पञ्चवोपमितिसाम्यसपक्षं दृष्टव्यधर-

पैठ : [अत्यधिक गर्वके कारण इच्छित वस्तुओंमें भी
अनादर दिखाना] मनमें सद्गुणोंका ध्यान रहनेपर भी जो
बाणीसे प्रायः सब वस्तुओंमें केवल दोष ही ढूँढताही है, जो
प्राप्त भले ही है वह किन्तु प्रियतमकी ओर पूरी दृष्टि नहीं देती,
अत्यधिक चाही हुई वस्तुमें जो अपनी चाहको परस्मिके द्वारा
प्रकट करती है, वे तीनों लोकोंसे विद्वत्त्व प्रकृतिवाली वामा
सुमर प्रपन्न ॥ १ ॥

नौक-भौक : रतिक्रीडाके उपर्युक्त जहाँ जहाँ उसका गोचरका
थोठ जीव लिया तो वहाँ भीड़ावासी उस नवेखीने अपने
सुन्दर कण्ठसे अस्पष्ट शब्द करते हुए और साज, हलाई,
मुस्कान तथा आँखके अस्फुट मिथराते तराया हुआ मुख
मेरी ओर कर लिया ॥ १ ॥

अँध : राजाका चित्र देखते समय प्रेमके आवेशमें वह
नवेखी भूल गई कि यह चित्र है और उसने अपना मुखचन्द
साजके कारण कुछ टेढ़ा कर लिया ॥ १ ॥

रोना धोना : प्रियतमके थोठ घूमनेपर हाथ फटकारती
हुई नवेखीका सी-सी करके वह कूट-मूट रोना विजयी हो रहा
है जो रतिक्रीडाकी नाटकके हरयोंका मङ्गलाचरण है तथा
कामकी आज्ञाका श्रेष्ठ चक्र-समूह है ॥ १ ॥ हाथको 'करपल्लव,'
और थोठको 'अधर-पल्लव,' कहते हैं इसीलिये प्रियतमने जब
नवेखीके थोठका वक्षपूर्वक सुगमन किया तो उसके मणि जड़े

विश्वमभीष्टे । पर्यङ्गजि सकृज्जैव तत्कस्यास्तारलोखल-
येन करेण ॥ २ ॥

ललितम्—सा राजहंसैरिव सज्जताङ्गी गतेषु
लीलाञ्जितविक्रमेषु । व्यनीयत प्रत्युपदेशलुब्धैरादि-
न्सुभिर्नृपुणसिञ्जितानि ॥ १ ॥

विहृतम्—दूरागतेन कुशलं पृष्टा नोवाच सा मया
किञ्चित् । पर्यङ्गणी तु मयमे तस्याः कथयास्वभूवतुः
सर्वम् ॥ १ ॥

सम्भोगनर्म—सालोके एव सूर्ये गृहिणी गृहस्वा-
मिकस्य गृहीत्वा । अमिच्छतोऽपि पादौ धुनोति
हसन्ती हसतः ॥ १ ॥

भयनर्म—अभिव्यक्तालोकः सकलविफलोपायवि-
भवधिरं ध्यात्वा सद्यः कृतकृतकसंरम्भनिपुणम् । इतः
पृष्ठे पृष्ठे किमिदमिति सन्त्रास्य सहसा कृताश्लेषं
धूर्त्तः स्मितमधुरमालिङ्गति वधूम् ॥ १ ॥

संलापकः—शस्त्रप्रयोगशूरलोकलहे गणानां सैन्ये-

वृत्तो विजित एव मया कुमारः । एतावतापि परिरभ्य
कृतप्रसादः प्रादादमुं मियगुणो भगवान्गुरुर्मे ॥ १ ॥

उत्थापकः—आनन्दाय च विस्मयाय च मया
दृष्टोऽसि दुःखाय वा वैतृष्यं नु कुतोऽयं सम्प्रति
मम त्वद्दर्शने वञ्चयः । त्वन्साहृत्यसुखस्य नास्मि
विषयः किं वा बहुव्याहतैरस्मिन्विश्रुतजामदग्न्यविजये
बाहौ धनुर्जम्भताम् ॥ १ ॥

परिवर्तकः—हेरम्बदन्तमुसलोत्तिष्ठितैकभित्तिं पक्षो
विशालयिशिशवणलाञ्छनं मे । रोमाञ्चकञ्चुकितम-
मुतवीरलाभाद्यस्त्यमद्य परिरञ्जुमिषेच्छति त्वाम्
॥ १ ॥

वस्तुत्थापनम्—जीयन्ते जयिनोऽपि साम्प्रतिमिर-
त्रातैर्वियद्व्यापिभिर्भास्वन्तः सकला रघेरपि रुधः
कस्मादकस्मावमी । एतैश्चोपकवन्धरन्ध्ररुधिरैराभ्या-
यमानोदरा मुञ्चन्त्याकनकन्दरानलमुचस्तीमाऽऽरवाः
फेरवाः ॥ १ ॥

कृष्णबाबू कर-पक्षब मानो अपने मिय मित्र लखर-पक्षबकी
पीबासे हो कराह (कनभना) उठें हों ॥ १ ॥

लटपट खाल : बीवनके भारसे झुकी हुई पार्वतीजी अब
चकती थीं तो ऐसा जाम पक्षता था मानो उनके बिजुओंसे
निकलनेवाली मधुर ध्वनि सीखनेके लिये बड़बाप हुए रामईसोंने
आपनी हाव-भाव भरी चाल उन्हें पहले ही सिखा दी हो ॥ १ ॥

सकपकाहट : दूर देशसे लौटकर अब मैंने कुशल पूछा
तो वह बोली तो कुछ नहीं किन्तु उसकी आँख-भरी आँखोंने
सभी कुछ कह डाला ॥ १ ॥

छेड़-छाड़ : सूर्यके दिखाई देते रहनेपर भी (दिन रहते
ही) गृहिणी ईसती हुई गृहस्वामीकी हप्पा न होते हुए भी
उसके पेर पकड़कर हिला रही है ॥ १ ॥

नटखट-भरी छेड़-छाड़ : प्रेमीका अपराध प्रकट हो
जानेसे प्रेमिका मान किए बैठी है । प्रेमी उसे मनानेके कई
उपाय करता है किन्तु वह नहीं मानती । फिर बड़ी देरतक
सोच-विचार करनेके पश्चात् बड़ी चतुराईसे 'भरे, यह पीछे
क्या है, क्या है !' ऐसा कहकर उसे डरा देता है और ज्योंही
वह डरकर उसकी ओर झुकती है त्योंही वह धूर्त मुस्कराईट
और मधुरताके साथ उसे गले खरा लेता है ॥ १ ॥

आकड़ : परशुराम कहते हैं—'शस्त्र-प्रयोगकी क्रीडाका
शुरू करते समय मैंने देवगणोंकी सेनासे युद्ध कुमार काधिकेनको

जीत लिया था । मेरी इस जीतसे प्रसन्न होकर मुझे गवई
लगाकर सुन्दर गुहोंसे प्रसन्न होनेवाले मेरे गुरु भगवान्
गहरने ओ परशु मुझे दिया था वही यह परशु है' ॥ १ ॥

हुलास : रामचन्द्रसे परशुराम कहते हैं—'वह तो मैं ठीक
नहीं कह सकता कि तुम मुझे आनन्दके लिये दिखाई पड़े हो
या बिस्मयके लिये, या दुःखके लिये, किन्तु आज तुम्हें देखकर
मेरी आँखें न जाने क्यों तृप्त हो रही हैं, क्योंकि तुम्हारे समागमसे
मुझे तो सुख नहीं होना चाहिए और अधिक क्या कहूँ ।
जमदग्नि के पुत्र परशुरामको जीत लेनेसे प्रसिद्ध तुम्हारे हाथमें
वह धनुष सुरोमित हो' ॥ १ ॥

उमंग : परशुराम रामचन्द्रसे—'यह बात बिलकुल सच
है कि गणेशजीके दौतरूपी मुसलोंके चिह्नोंवाला और स्वामी
कातिकेयके अनगिनत बाणोंके धावोंवाला मेरा वधःस्थल तुम
जैसे अमृत वीरसे मिखनेके कारण रोमाञ्जित होकर तुम्हारा
आभिज्ञान करना चाहता है' ॥ १ ॥

बातकी उठाम : यह क्या बात है कि सारे संसारके
अन्धकारको जीतनेवाली प्रकाशमान सूर्यकी किरणोंको भी
आकाशमें समाए हुए खँधेने जीत लिया है और कटे हुए
खँधोंके ऊपरके चिह्नोंसे निकलता हुआ रक्त पीनेसे पेट खूब
भरे हुए, वक्षपूर्वक चिन्ताती हुई वे सिवारिगियों धर अपने
मुँहके चिह्नोंसे आग दगल रही हैं ॥ १ ॥

अवपातः—कण्ठे कृत्यावशेषं कनकमयमधः शृङ्खलावाम फर्पकान्वा द्वाराणि देलावलचरणचलनिक-
क्षिणीचक्रवालः । दत्तातडो गजानामनुसूतसगणिः
सम्भ्रमादध्वपालैः प्रभ्रष्टोऽयं प्लवङ्गः प्रविशति नृपते-
र्मन्दिरं मन्दुरातः ॥ १ ॥

मौग्ध्यम्—के द्रुमास्ते क्व वा ग्रामे सन्ति केन
प्ररोपिताः । नाथ मत्कङ्कणम्यस्तं येषां मुक्ताफलं
फलम् ॥ १ ॥

विशेषः—धम्मिल्लमर्धमुक्तं कलयति तिलकं
तथाऽसकलम् । किञ्चिद्वदति रहस्यं चकितं विष्ण-
विश्लोकते तन्वी ॥ १ ॥

कुतूहलम् — प्रसाधिकालम्विनमग्रपादमातिप्य
काचिद्वयरागमेव । उत्सृष्टलीलागतिरागवाचादलक-
काङ्क्षां पदवीं ततान ॥ १ ॥

अनौनानिष्टप्राप्तिकृतसम्भ्रमः — यत्सदयाभयवार्त्तिः

भगवद्दुः कण्ठकी सोनेकी साँकल तोड़कर, कभी हुई
साँकल घसगिरता हुआ, अपने पिरों की किट्टियाँ को छाँखासे धर
चककर बजाता हुआ यह बन्दर नपलेसे छूटकर कई द्वार
पार करता हुआ महाराजके महलकी छोर पुल रहा
है । इसे देखकर हाथी भदक उठे हैं और भयसे घबराए
हुए घोड़ोंके चरकडे उसी मार्गसे उसके पीछे दौड़े जा रहे
हैं ॥ १ ॥

भोलापनः हे नाथ ! मेरे कङ्कणमें जड़े हुए मोती जिन
पुलकोंसे फले होंगे वे पेड़ केसे होंगे हैं, किस गाँवमें हैं, किसने
जगाए हैं ? ॥ १ ॥

अक्रावकः वह रमणी अपना केशपाश (जूड़ा) आधा ही
सजाती है, तिकक अपूरा ही खगाती है, कुछ रहस्यभरी
अपूरी बात कहती है और चकित होकर ऊपर-ऊपर देखती
है ॥ १ ॥

खावः जब रघुके कुमार अजकी बारात निकली उस समय
उसे देखनेके लिये किसी सुन्दरीने महावर जगानेवालीके हाथसे
अपने गीले ही पैर भटककर अत्यन्त शीघ्रतासे जहाँसे बारात
दिखाई पड़ रही थी उस भरोसेतक पहुँचकर भरोसेतकके मार्गकी
अपने पिरके गीले महावारीसे रँग दिया ॥ १ ॥

अनिष्टकी आशङ्कासे अनिश्चयः निर्मयताके समुद्र
वत्स जलमयोंकी रावससे भय हो यह मैं कैसे मान लूँ । और
यह मुनि डरकर जलमयको बचानेके लिये ओ चिन्ता रहा है,

प्रतिभयं मन्ये कथं शक्तसान्प्रस्तश्चैव मुनिर्विगौति
मनसश्चास्येवमे सम्भ्रमः । मा हासोर्जनकान्मजामिति
मुहुः स्नेहादगुरुयाचते न स्थातुं न च गन्तुमाकुलम्-
तेर्मूढस्य मे निश्चयः ॥ १ ॥

इष्टप्राप्तिवृत्तः—पछोड़ि यत्स रघुनन्दन पूर्णचन्द्र
चुम्बामि मूर्धनि चिरस्य परिप्यजे न्वाम् । आगेष्य
वा हृदि दिवानिशमुद्वहामि वन्देऽथवा चरणपुष्कर-
कद्वयं ते ॥ १ ॥

वहजः—चिरम चिरम घड़े मुझ धूमाकुलवं प्रस-
रयलि किमुघोरचिंतां चक्रवालम् । विरहहुतभुजाई
यो न द्रव्यः प्रियायाः प्रलयदहनभासा तस्य किं त्वं
करोषि ॥ १ ॥

करमः—सद्विष्टअवधदुतयुग्मशून्यं मग्नस्यपर्वस्त-
रथं क्षणेन । रामापरिभ्राणविहस्तयोधं सेनानिवेशं
तुमुलं चकार ॥ १ ॥

वह भी कैसे झूठ मान लिया जाय ! मेरे मनमें भी सम्भ्रम
है ही । गुरुने स्नेहपूर्वक यह उपदेश दिया था कि 'सीताको
कभी चकेंलो न छोड़ना ।' ये सारी बातें सोचकर तब मेरी
बुद्धि ऐसी स्पाकुल हो गई है कि मेरी समझमें नहीं आ
रहा कि मैं क्या करूँ, क्या न करूँ । अतः लक्ष्मणकी सहायता
करनेके लिये जाने या ठहरनेके विषयमें मैं कुछ भी निश्चय
नहीं कर पा रहा हूँ ॥ १ ॥

प्रियके प्राप्त होनेपर हुलासः हे पूर्ण चन्द्रमाके
समान सुन्दर, बेटा राम ! आओ, हथर आओ । मैं तुम्हारा
सिर बहुत देरतक घूमता रहूँ और तुम्हें गले लगाए रहूँ अथवा
तुम्हें अपने हृदयमें दिनरात बैठा रहूँ या तुम्हारे दोनों चरणपु-
ष्कमलोंकी वन्दना करता रहूँ ॥ १ ॥

आगसे निश्चिन्तताः हे आग ! शाप्त हो जाओ, यह
हलना धुआँ न उमड़ाओ, ये ईँची-ईँची लपटें क्यों उठा रही
हो ! चरे जब मुझे प्यारीके बिलोहकी आग नहीं जला पाई तब
प्रलय-कावकी अग्निके समान तेजवाली तुम मेरा क्या बिगाड़
सोगी ! ॥ १ ॥

हाथीसे भगवद्दुः उस हाथीने वेगसे अपने तिकड़
तुड़ाकर एक ही जगहसे सेनाके रथोंकी धुरी तोड़कर ज़िन्न-
भिल कर डाली । हाथोंके करले डरी हुई जिरियोंकी रचाके लिये
सारे योद्धा उड़ गए थे और सारी सेनामें भयङ्कर स्पाकुलता
तथा कोढ़ाहट फैल गया था ॥ १ ॥

आवेगः—प्रारब्धां तरुपुत्रकेषु सहसा सन्त्यज्य
सेकाक्रियामेतास्तापसकन्यकाः किमिदमित्यालोक्य
न्त्याकुलाः । आरोहन्त्युटजमुमौक्ष वटवो वासंयमा
अप्यमो सद्यो मुक्तसमाधयो निजवृत्तीष्वेवोन्मथिताः ॥ १ ॥

सात्विकभावः—वेपते स्वेववदना रोमाञ्चं गात्रे
वर्षति । विलोलस्ततो वलयो लघु बाहुवल्यां रखति
॥ १ ॥ मुखं श्यामलं भवति क्षणं विमूर्च्छति धिद्युधेन ।
मुग्धा मुखवल्ली तव प्रेम्णा सापि न धैर्यं करोति ॥ २ ॥

तरुभ्रान्तनिर्वेदः—प्राप्ताः ध्रियः सकलकामदुष्पा-
स्ततः किं दत्तं पदं शिरसि विद्विषतां ततः किम् ।
सम्प्रीणताः प्रणयिनो विभवेस्ततः किं कल्पं स्थितं
तनुभृतां तनुभिस्ततः किम् ॥ १ ॥

आपदः निर्वेदः—राज्ञा विपदन्धुविद्यांगदुःखं देश-
क्युतिर्दुर्गममार्गखेदः । आस्वाद्यतेऽस्याः कटुनिष्क-

यवराहट : पुत्रोंके समान स्नेहसे पाके गए वृक्षोंको
सींचना छोड़कर ये तपस्विणीकी कन्याएँ 'यह क्या हो गया !'
कड़कर प्रकार व्याकुल होकर देखने लगी हैं, मज्जाधारी शिथिल
वटजके वृक्षोंपर चढ़कर देख रहे हैं और मइपि लोग भी अपनी
समाधि छोड़कर अपने आसनपर ही बिना बाँधे-बन्धे पैर ऊपर
उठा-उठाकर खड़े हो रहे हैं ॥ १ ॥

सात्त्विक भाव : हे युवक ! मेरे प्रेमके कारण वह
नहेली तनिक भी धीरज नहीं धरती, उसके मुँहपर पसीना
आ जाता है, शरीरमें शिथिलता हो जाता है, वह काँपने लगती
है, उसका चञ्चल कदम बाहुकपी जगामे धीमे-धीमे हलक
करता है, उसका मुँह काँका पड़ जाता है, वह चप भरके
झिंझ मूँचछत हो जाता है तथा उसकी मुँहकपी जगाम तनिक
भी धीरज नहीं धरती ॥ १-२ ॥

ज्ञानके कारण मनकी शान्ति : यदि सम्पूर्ण इच्छाएँ
पूर्ण करनेवाली सम्पत्ति मिल जाय तो उससे क्या ! शत्रुओंके
मस्तकपर पर रखकर उन्हें जीत लिया गया हो तो क्या !
मित्रों तथा स्नेहा बन्धुओंका धन आदिसे सन्तुष्ट कर दिया
हो तो भी क्या और शरीरधारी मनुष्य प्रसन्नतक जीते रहें
तो भी क्या ? ॥ १ ॥

विपत्तिमें मनकी शान्ति : यद्यपि विपत्ति, कन्धुओंके
विछाड़का दुःख, देश का चटना और अचानक काठन मार्गोंमें
धूम-धूमकर कड़ सहना ये सब राजाके लिये विपत्ति की बातें हैं

लायाः फलं मयैतच्चिरजीवितायाः ॥ १ ॥

ईर्ष्यातिः—चिन्धिक्शकजितं प्रबोधितवता किं
कुम्भकर्णेन वा स्वर्गप्राप्तिकाविलुण्ठनपरैः पौनैः
किमेभिर्भुजैः । म्यकारो ह्ययमेव मे यद्वयस्तत्राप्यसौ
तापसः सोऽप्यत्रैव निहन्ति राक्षसभट्टाञ्जीवत्यहो
रावणः ॥ १ ॥

वीरभृङ्गारयोर्व्यभिचारी निर्वेदः—ये बाहुवो न युधि
वैरिकठोरकण्ठपीठोच्छ्वलद्गुधिरराजिविराजितांसाः ।
नापि प्रियापृथुपयोधरपद्मभङ्गसंक्रान्तकुङ्कुमरसाः कलु
निष्कलास्ते ॥ १ ॥

रसानजः स्वतन्त्रो निर्वेदः—कस्त्वं भोः कथयामि
हैवदुतकं मां विद्धि शास्त्रोदकं वैराग्यादिव वसि साधु
विदितं कस्माद्यतः ध्यताम् । यामेताव वटस्तमध्वग-
जनः सर्वात्मना सेवते न च्छायापि परोपकारकरणी
मार्गस्थितस्यापि मे ॥ १ ॥

किन्तु फिर भी मैं इस कदवी, निष्कल और सदा रहनेवाली
महत्तिका यह कल चप ही रहा हूँ ॥ १ ॥

बाहुसे मनकी शान्ति : यह मेरा सबसे बड़ा अपमान
है कि मेरे जैसे धीरके भी शत्रु हों, हों भी तो यह तपस्वी
बाबा ! और फिर वह यहीं, मेरे घरमें, छज्जामें ही घुसकर
धीर राजाओंको मारे जा रहा है ! यह तिरस्कार सहकर भी
रावण जीवित है, यह बहुत ही बड़े दुःखकी बात है । हमको
जीतनेवाले मेघनादको और उसकी बीरताको धिक्कार है !
कुम्भकर्णको हूँ नींदसे जगानेसे क्या लाभ हुआ ! और जोड़ेसे
गाँवकी भौंति स्वर्गको लूटनेवाले ये मेरे मोटे-मोटे हाथ भी
व्यर्थ ही हैं ॥ १ ॥

धीर और शृङ्गारके व्यभिचारी भावके रूपमें
शान्ति : जा हाथ, न तो युद्धमें धीरोंको कठोर कदमें
उधलत हुए रखते सुराभिषा हो पाए हैं; और न प्यारीके मोटे-
मोटे स्तनमें बेल-धूँके कुङ्कुमके रखते ही गीले हुए हैं वे हाथ
निःसन्देह निष्कल हो हैं ॥ १ ॥

स्वतन्त्र मनकी शान्ति : 'तुम कौन हो भाई !' 'बताता
हूँ, मैं यमागा शास्त्रोदक हूँ ।' 'तुम तो बड़ी उदासीनताके
साथ बाँध रहे हो ।' 'तुमने ठीक समझा ।' 'देखा क्यों ?'
'सुना, देखा—उधर बाई और ओ एक वटका पृथ है उसे बटोही
कड़े प्रकारसे सेवन करते हैं और इधर मैं यद्यपि सबकुपर खड़ा
हूँ किन्तु मेरी जाय भी किसीके कामकी नहीं है' ॥ १ ॥

केलिः - व्यपोहितुं लोचनतो मुस्मानिलैरपारयन्तं
किल पुष्पजं रजः । पयोधरेणोरसि काचिदुन्मनाः
मित्रं जघानोन्नतपीवरस्तनी ॥ १ ॥

दिल्लमात्रम्—अन्तिकगतमपि मामियमनलोकय-
तीव हस्त दृष्टापि । सरसनक्षतलक्षितमाविष्कुरुते
भुजामूलम् ॥ १ ॥

दैत्यम्—वृद्धोऽप्यधः पतिरेव मञ्जकगतः स्थूणाव-
शेषं गृहं कातोऽभ्यर्णजलागमः कुशलिनी घन्सस्य
वासाऽपि नो । यत्नारसञ्चिततैलविन्दुघटिका भञ्जेति
पर्याकुला दृष्ट्वा गर्भभरालसां निजघ्नुं भवभ्रमिरं
रोषिति ॥ १ ॥

भ्रमः—सद्यः पुरीपरिसरेऽपि शिरीषमृद्धी सीता
जयात्रिचतुराणि पदामि गत्वा । गन्तव्यमस्ति किय-
द्वित्यसकृद्भूषाणां रामाश्रयः कृतवती प्रथमावता-
रम् ॥ १ ॥

खेलः—प्यारीके मयनीपर जगी हुई कुजोंकी धूल फूँककर
हूँ न कर सक पाते हुए प्रियतमको उस ऊँचे-ऊँचे मोटे-मोटे
स्तनवाली उत्कथित नखेलीने स्तनोंसे देक दिया ॥ १ ॥

खेलयादृः—मुझे पास खड़े हुए देखकर भी यह कामिनी
मेरी ओर नहीं लाकती और अनजान बनकर नये नख-कतोंवाले
कपने स्तन दिखलाती है ॥ १ ॥

दीनताः—बूढ़ा और अन्धा पति दृढ़ी लाटपर पड़ा है ।
घरके माले केवल धुनिया-भर बच रहा है ; बरसात सिरपर
पा गई है किन्तु छप्परपर फूसतक नहीं है । बेटेका कुशख-
पत्रकत नहीं आया । जैसे-तैसे जोड़-जाड़कर रखी हुई तेलकी
हैदिया भी फूट गई अतः खोले ही प्रसव करनेवाली
पुत्रवधूको देख-देखकर सास ध्याकुल हो-होकर रोती रहती
है ॥ १ ॥

धकाघटः—सिरसके फूटके समान कामख अज्ञोंवाली
जानकाभा अयोध्यासे कुछ सीन-चार पग चलकर ही आ-
रामचन्द्रजीसे पूछने लगी कि 'अभी कितना और चलना
है ?' वस, यही सर्वप्रथम रामचन्द्रकी छाँसमें आँसू छटक
आए ॥ १ ॥

जवानाका छुटाः—मदिराके तीन और चकते-चकते
तरणियोंका प्रतिभा जाग उठा और उनसे गूढ़ रहस्यका सङ्केत
करनेवाला, अन्ध आँजयासे भरा हास-परिहास आरम्भ
हो गया ॥ १ ॥ अत्यधिक उत्कट मरने ओझी-भाकी नखेलीमें

मदः—पातिभं त्रिसर्केण गतानां चक्रवाक्यरच-
नारमणोयः गृहस्वचिन्तरहस्यसहासः सुभ्रूयां प्रवृत्ते
परिहासः ॥ १ ॥ हावहारि हसिनं वचनानां कीशले
दृशि विकारविशेषाः । चक्रिरे भृशमृजोरपि यध्वाः
कामिनेव तरुणेन मदेन ॥ २ ॥

मरणम्—राममन्मथशरेण ताडिता दुःसंहन
हृदये निशाचरो । गन्धवद्रुधिरचन्दनोक्षिता जीविते-
शवस्ति जगाम सा ॥ १ ॥ हन्मर्ममदिपतदुन्कटकह-
पत्रसंयगनन्तलकतस्फुरदङ्गभङ्गा । नासाकुटीरकुहर-
द्वयतुल्यनिर्यदुदुबुदुध्वनदसूक्ष्मसरा मृनैव ॥ २ ॥

जडता—इएदशात्—एधमालि निगृहीतसाध्वसं
शङ्करो रक्षसि मेधतामिति । सा सखीभिरुपादृमा-
कुला लक्ष्मरत्नप्रमुखवर्तिनि मित्रे ॥ १ ॥

अनष्टश्रवणात्—तावन्तस्ते महाग्रमानो निहताः केन
राक्षसाः । येषां नायकतां यातास्त्रिशिरःखरदूषणाः ॥ १ ॥

हाव-भाव-भरी मनोहर हैसी, बोलनेकी चतुरता और छाँसमें
बाँकी चितवन, येसे ही उत्पन्न कर दी जैसे युवक प्रियतमने
नखेलीमें याँ ही भाव उत्पन्न कर दिए थे । जब मदिराके
मर्ममें भाँकी-भाँकी नई नखेलियोंकी वह दशा थी तो मतवाली
प्रौढ़ा सुन्दरियोंकी हाव-भाव-भरी हैसा, बोलनेकी चतुरता
तथा तिरछी चितवनका तो बात ही क्या है ? ॥ १ ॥

मरणः—राम-रूपी कामदेवके असख बाणके हृदयमें
लगते ही वह राक्षसी (ताडका) मेंहकते हुए कथिर-रूपी
चन्दनसे पुतकर माना आणपति (पम) के स्थानपर
पहुँच गई ॥ १ ॥ यह ताडका तो मर ही गई किन्तु इसके
हृदयके मर्मको छेदनेवाले रामके ताले बाणने उसी चण
इसके अङ्ग भी येसे भङ्ग कर दिए हैं कि गुफाओंके समान
इसकी नाकके नथनोंसे बुलबुलोंवाला रक्त 'बुद-बुद' करके
निकल रहा है ॥ २ ॥

प्रियकी देखनेसे सुध-बुध भूलना : 'हे सखा ।
पुनस्तमे विन स्थिर करके इस प्रकार शिवजीके सःभ
स्थवहार करना ।' इस प्रकार सखियोंने जो उपदेश दिया
उसे शिवजीके सामने पहुँचते ही पार्वतीजी पृथतः भूख
गई ॥ १ ॥

चुरा समाचार सुनकर ठक रह जाना : जिन
राक्षसोंके सेनापति विशिरा, खर तथा वृषख थे, उन असंख्य
महाबली राक्षसोंको किसने मार गिराया ? ॥ १ ॥

अपस्मारः—आश्लिष्टभूमि रसितारमुच्चैर्लोलङ्ग-
जाकारवृहत्तरङ्गम् । फेनायमानं परिमापगानामसाव-
पस्मारिणमाशशङ्के ॥ १ ॥

गर्वः—मुनिरयमथ धीरस्तादृशस्तन्मियं मे धिर-
मतु परिकम्पः कातरे क्षत्रियासि । तपसि विततकीर्त्त-
वर्षकण्डूलदोष्णः परिवरणसमर्थो राघवः क्षत्रि-
योऽहम् ॥ १ ॥

शौर्यगर्वः—धृतायुधो याचदहं नाशदन्यैः किमा-
युधैः । यद्वा न सिद्धमस्त्रेण मम तत्केन साध्यताम् ॥ १ ॥

आलस्यम्—अलति कथञ्चिन्पृष्टा यच्छति यचनं
कथञ्चिदालीनम् । आसितमेव हि मनुते गुरुगर्भभरा-
लसा सुतनुः ॥ १ ॥ न तथा भूययत्यङ्गं न तथा भाषते
सखीम् । जम्भते मुहुरासीता पाला गर्भभरालसा
॥ २ ॥

मिरगी : श्रुतीसे मिले हुए, धीर शब्द करते हुए,
भुजाआके समान पञ्चल लहरोंवाले तथा फेनसे भरे समुद्रको
श्रीकृष्णजीने समझा कि इसे मिरगी रोग हो गया है ॥ १ ॥

तेजः : सांतासे रामजी—‘यं मुनि परशुराम इतने धीर
हैं तो यह अस्त्रों वात है और मुझे धीरों में जान रहा है ।
किन्तु साते ! तुम साधया हा । तुम्हारा घबराहट और कैपकैपा
हानों हा ठीक नही है; तुम इस कैपकैपाका रोंका । तपस्यामें बश
प्राप्त करनेवाले तथा धर्मयज्ञके कारण सुमन्नाते हुए हाधावाले
व्यक्तिका परिचयाके ज्ञेय में साधय राम भला-भौति समर्थहूँ ॥ १ ॥

धौरतरका मयः : अश्वधामासे आश्रित कर्ण—‘जबतक
मैंने शस्त्र ल रखा है तबतक दूसरे शस्त्रधारियोंका आकरवकसा
क्या है ! क्याकि जा कार्य सर शस्त्र न सिद्ध हुआ उसे फिर
सिद्ध करनवाला है हा काम ?’ ॥ १ ॥

आलस्यः : भारा गभक भारसे अलसाहं हुई सुन्दरी
किसी प्रकार चलता अवश्य है और सांख्यिकं पृथुनपर किसी
प्रकार उत्तर भा अवश्य देता है किन्तु सच पृथुप ता वह एक
ही स्थानपर बैठ रहना चाहता है ॥ १ ॥ गभक भारसे अलसाहं
हुई नचला न तो पहलेका भौति शरीरका सजावट हा करता
है न उस प्रकार सांख्यसे बातें हा करता है, वरन् एक ही
स्थानपर बैठ-बैठा बार-बार जेभाई जेता रहती है ॥ २ ॥

क्रोधः : सहदेवके द्वारा युधिष्ठिरसे आश्रितेन यह बात
कहला रहे है—‘आपका आज्ञाका उच्छेधन न करनेके कारण
मैं अबतक आपका आज्ञा-पावनरूपी जकमें दूया रहा और

अमर्षः—युष्मच्छासनलङ्घनाम्भसि मया मग्नेन नाम
स्थितं प्राप्तं नाम विगर्हणा स्थितिमतां मध्येऽनुजा-
नामपि । क्रोधोऽलासितशोणितारुण्यदस्योच्छिन्दतः
कारवानद्यैकं दिवसं ममासि न गुरुर्माहं विधेय-
स्तव ॥ १ ॥

श्रीतुल्यम्—आत्मानमालोक्य च शोभमानमाद-
शंविन्दे स्तिमितायताक्षी । हरोपयाने स्वरिता बभूव
स्त्रीणां प्रियालोकफलो हि धेवः ॥ १ ॥

अवाहत्या—एवंवादिनि देवर्गे पाश्वे पितुरधो-
मुखी । लीलाकमलपद्माणि गणयामास पार्वती ॥ १ ॥

उन्मादः—नवजलधरः सन्नद्योऽयं न हसतिशावरः
सुरधनुर्दिदं दुराकृष्टं न तस्य शरासनम् । अयमपि
पटुर्धारासारो न बाणपरम्परा कनकनिकषस्तिग्धा
विद्युत्प्रिया न ममोर्वशो ॥ १ ॥

आपकी आज्ञा पावन करते हुए दूसरे छोटे भाइयोंके बीच मैंने
(भी) निम्ना और तिरस्कार प्राप्त किया । किन्तु आज मैं
कीरकोंसे सारा बदला चुका लेना चाहता हूँ अतः एकसे रंगी
हुई गदाको जोधते घुमाते हुए तथा कीरकोंका नाश करते हुए
मेरे, केवल एक दिनके लिये—एकमात्र आज-भरके लिये, न तो
आप बड़े भाई ही हैं और न मैं आपका आज्ञाकारी सेवक ही
हूँ ॥ १ ॥

उत्सुकता : शिवजीके पास जानेकी तीव्रता करती हुई
जलज तथा जम्बे-जम्बे मैनोंवाली पार्वती अपना सुन्दर
स्वकप दर्पणमें देखती हैं तथा शिवजीके पास जानेको शीघ्रता
करती हैं । सच है, जियोंकी सुन्दर देव-भूषातभी सफल है जब
कि वह प्रियतमके गयनोंमें उत्तर आय ॥ १ ॥

भौपः : ससर्पियोंने जब व्याहकी बात चलाई उस समय
पितामोंके पास नीचा झुँह किए हुए पार्वतीजी खीझकमलकी
पंखुदियाँ गिगने लगी ॥ १ ॥

पानालपनः : अरे नीच राक्षस ! ठहर-ठहर ! मेरी प्रियाको
लेकर कहाँ चला जा रहा है ? क्या ! यह तो पानीके भारसे
झुका हुआ नया बादल है, वह ठीठ राक्षस नहीं है । यह तो
दूरतक फैला हुआ इन्द्र-धनुष है, उस राक्षसका धनुष नहीं
है । ये भी धीर वर्षाकी बूँदें हैं, बाणोंकी वर्षा नहीं और जिसे
मैं उर्वशी समझ रहा हूँ, वह भी मेरी प्रिया उर्वशी नहीं है,
किन्तु सोनेकी कसौटीकी रेखाके समान चिकनी और सुन्दर
बिमबी है ॥ १ ॥

शङ्का (स्वदुर्न्यात्) - दुराद्वीयो धरणीधराभं
यस्ताटकेयं तृणवद्वयधूनोत् । इन्ता सुवाहोरपि ताड-
कारिः स राजपुत्रो हृदि वाघते माम् ॥ १ ॥

शङ्का (परकौर्यात्) - हिया सर्वस्यासौ हरति
विदितास्मोति वदनं द्वयोर्द्वालापं कलयति कथामा-
त्मविषयाम् । सखीषु स्मेरासु प्रकटयति वैलक्ष्यमधिकं
प्रिया प्रयेणास्ते हृदयनिहतातङ्कविधुरा ॥ १ ॥

स्मृतिः - मैनाकः किमयं दृष्ट्वा गगने मन्मार्गम-
व्याहृतं शक्तिस्तस्य कुतः स वक्ष्यतनाद्रीतो महेन्द्रा-
दपि । तार्क्ष्यः सोऽपि समं निजेन विभुना जानाति
मां रावणमाः हासं स जटायुरेव जरता क्लिष्टो वधं
वाञ्छति ॥ १ ॥

मतिः - असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदायमस्याम-
मिलायि मे मनः । सतां हि सन्देहपथेषु वस्तुषु प्रमा-

शमन्तः करणप्रवृत्तयः ॥ १ ॥ पण्डिताः साहसिका
भयन्ति श्रुत्वापि ते सन्तुल्यन्ति तत्त्वम् । तत्त्वं समा-
दाय समाचरन्ति स्वार्थं प्रकुर्यन्ति परम्य चार्थम्
॥ २ ॥ सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां
पदम् । वृणुते हि विमृश्यकारिणो गुणानुध्याः स्वयमेव
सम्पदः ॥ ३ ॥

अप्या - अथ नञ् पारदतनयेन सदस्मि विहितं मधु-
ह्रियः । मानममहत न नेद्रिपतिः परवृद्धिमन्मग्नि मनो
हि मानिनाम् ॥ १ ॥ अर्थिन्वे प्रकटोक्तेऽपि न फलप्राप्तिः
प्रभोः प्रत्युत द्रुहान्दाशरथिचिन्तितो युक्तमन्या
कथया । उत्कर्षे च परम्य मानयशमोधिद्यन्मनं चागमः
क्षीरत्वं च अगमनिर्देशमुखो हसः कथं मृष्यते ॥ २ ॥

दौर्जन्यादप्या - यदि परगुणा न क्षम्यन्ते
यतस्व गुणाजनि नहि परयशोनिन्दाव्याजैरत्नं परिमा-

अपनी दुष्टताके कारण शङ्का : जिस जोड़े से राम
पुत्रने दूरसे ही पर्वतके समान हील-हीलवाले ताडकाके पुत्र-
मारीच शरसको तिनकेके समान उड़ा दिया वह सुबाहूकी
मारनेवाला ताडकाका शत्रु राजकुमार (राम) मेरे हृदयमें खोट
कर रहा है ॥ १ ॥

दूसरेकी करतारने शङ्का : वह न्यासी (रत्नावली) अपने
हृदयमें शक्ति होनेके कारण सचमुच ही स्पष्टित दिखाई पड़
रही है । लोगोंके आगेसे यह लजाकर अपना मुँह यह समझकर
छिपा लेती है कि उन्होंने इसका गुप्त प्रेम जान लिया है ।
जिन्हीं भी दो मनुष्योंकी बातें करते देखकर वह यही समझती
है कि वे उसीके विषयकी बातें कर रहे हैं । शक्तियोंको अपनी
घोर मुस्कराते देखकर वह अत्यधिक लजा जाती है । ये
पैदाई देखकर यही समझमें आता है कि वह अत्यधिक शक्ति
हो रही है ॥ १ ॥

स्मृतिः : सीताको हरकर ले जाता हुआ रावण सोच रहा
है - 'क्या मेरे ये-रोक-टोक मार्गको आकाशमें वह मैनाक रोक
रहा है ? पर मैनाकमें मेरा मार्ग रोकनेकी शक्ति कहाँसे
आई ? वह तो इन्दके वज्रके डरसे स्वयं समुद्रमें छिपा पड़ा
है ! वह गरुड भी नहीं हो सकता क्योंकि गरुड तो क्या,
उसके स्वामी विष्णु भी मेरा बख जानते हैं । (तब यह कौन
है ?) कहा ! समझ गया, वह तो भूदा जटायु है जो मेरे
हाथों मरनेपर लुजा हुआ है ॥ १ ॥

सूक्तः : यह तपस्वीकी कन्या (शकुन्तला) अचरय ही

द्विजयसे दवाही जाने योग्य है क्योंकि श्रेष्ठ गुणोंपर रीकनेवाला
मेरा मन इसे चाह रहा है । सन्देहकी बातोंमें श्रेष्ठ पुरुषोंका
विषय जो कहे वही प्रमाण होता है ॥ १ ॥ युद्धिमान्
तथा विद्वान् व्यक्ति साहसी (एकाएक कोई काम कर
देनेवाले) नहीं होते । कोई धान सुनकर ये उसका तख
(रहस्य) जानना चाहते हैं और तख पा लेनेपर ही स्वार्थ
या परमार्थवाला काम करना प्रारम्भ करते हैं ॥ २ ॥ विना
सोच-समझे कोई काम एकाएक नहीं करना चाहिए, शानकी
कमी (मूर्खता) सारी आपत्तियोंका घर ही है । सोच-
समझकर काम करनेवाले व्यक्ति के गुणोंपर रीककर सम्पत्ति
स्वयं उसे अपना लेती है (उसके पास आ बिराजती
है) ॥ ३ ॥

जलनः : सभामें युधिष्ठिरने जो भगवान् कृष्णका
सबसे पहले पूजन किया, इसे शिशुपाल न सह सका ।
अभिमानी पुरुषोंका मन दूसरोंकी बढ़ती देख ही नहीं सकता
॥ १ ॥ रावणने भिगमंगा बनकर जयकसे सीता माँगी फिर
भी स्वामी रावणको मिला तो कुछ भी नहीं, उल्टे उनसे
शत्रुता करनेवाले दशरथके पुत्र (रामको) वह कन्या मिल
गई । शत्रुकी उच्छति, अपने मान और यशका नाश तथा
छोरनका इस प्रकार हाथसे निकल जाना भला वह घमण्डी
अगत्यति रावण कैसे सह सकेगा ! ॥ २ ॥

दुष्टतावश जलनः : यदि न दूसरोंके गुण नहीं सह
सकता तो अपनेमें वैसे ही गुण ले आनेके लिये प्रयत्न

जितुम् । चिरमसि ॥ चेदिच्छाह्वेषप्रसक्तमनोरथो
दिनकरकराम्पाणिच्छत्रैर्नृदम्भमेष्यसि ॥ १ ॥

हर्षः—समीक्ष्य पुत्रस्य चिरादपिता मुखं निधान-
कुम्भस्य यथैव दुर्गतः । मुदा शरीरे प्रबभूव नात्मनः
पयोधिरिन्दुदयमूर्धितो यथा ॥ १ ॥

विषादः—एषा कुटिलघनेन चिकुरकलापेन तव
निषज्जा घेणिः । मम सखि दारयति वशत्यायसयष्टि-
रिध कालोरगीव इदयम् ॥ १ ॥ नन्वेव राक्षसपतेः
स्खलितः प्रतापः प्रातोऽद्भुतः परिभयो हि मनुष्यपो-
तात् । दष्टः स्थितेन च मया स्वजनप्रमाथो वैभ्यं जरा
च निरुल्लिखि कथं करोमि ॥ २ ॥

धृतिः—कृत्वा दीननिपीडनं निजजने बद्धा बधो-
विग्रहं मैवालोच्य गरीयसीरपि चिरादामुष्मिकी-
र्यातनाः । द्रव्यीघाः परिसञ्चिताः क्लृप्तमया यस्याः

कर । निन्दा कर-करके इस कहाने दूसरोंके बरा बरा देना —
थो देना सरस नहीं है । यदि हफ्ता और दोपटे भरा
तु निन्दा करना नहीं छोड़ेगा तो वैसे ही स्वर्ण धककर हार
बैठेगा जैसे सूर्यकी किरणोंकी हाथके लज्जेके सहारे रोकनेवाला
स्वर्ण धककर शान्त हो जाता है । इस प्रकार निन्दा कर-
करके तू किसीका कुछ बिगाड़ नहीं पावेगा ॥ १ ॥

हर्षः : जैसे कोई दक्षिण पूर्वजोंकी गद्दी हुई धरोहरके
घड़ेका मुख देखकर प्रसन्न हो उठता है वैसे ही बहुत आधु-
नीत चुकनेपर पुत्रका मुँह देखकर पिता (दिखीप) ऐसे
पूछे न समाए जैसे चन्द्रमाका उदय देखकर समुद्र उमड़
पड़ता है ॥ १ ॥

दुःखः : हे सखी ! तेरी यह धुँधराके बाकोंकी जोड़ी
जोड़ेकी सलाईके समान मेरा हृदय ज़ाड़े डाल रही है तथा
भयङ्कर नागिनके समान इसे जे रही है ॥ १ ॥ हाम ! यह
क्या अचरज है कि समुद्रमें लौकियों (लूँकियों) डूब रही
हैं और पत्थर तैर रहे हैं । ऐसा जान पड़ रहा है कि राक्षसोंके
स्वामी (मुक्त) रावणका प्रताप मन्द पड़ रहा है । तभी तो इस
मनुष्यके बचने मेरी हार हो रही है । मैंने जीते जी अपनी
आँखोंसे भाई-ब-भुओंका विनाश देखा है । दीनता और
बुद्धापा दोनोंने मुझे बेवस कर दिया है । अब मैं क्या
करूँ ? ॥ २ ॥

धैर्यः । दीनोंका गला घोटकर, आपसी झगड़ोंके साथ
झगड़े ठानकर और परलोकमें होनेवाली कड़ीसे कड़ी

कृते साम्प्रतं नीवाराञ्जलिनापि केवलमहो लेयं कृतार्थं
तनुः ॥ १ ॥

धृतिः (ज्ञानात्)—वयमिह परितुष्टा बल्कलैस्त्वं
च लक्ष्म्या सम इह परितोषो निर्विशेषो विशेषः । स
तु भवतु दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला मनसि च परि-
तुष्टे कोऽर्धवान्को दरिद्रः ॥ १ ॥

शपलम्—विनिकषण्णरणाकठोरदंष्ट्राककचविशङ्कः ।
टकन्दरोदराणि । अहमहमिकया पतन्तु कोपात्समम-
धुनैव किमत्र मनुष्यानि ॥ २ ॥

चिन्ता : कमलेन विकसितेन संयोजयन्ती विरो-
धिनां शशिनम् । करतलपर्यस्तमुक्ती किं चिन्तयसि
सुमुखि अन्तराहितहृदया ॥ १ ॥

वितर्कः—किं लोभेन विलाङ्कितः स भरतो येनैतदेवं
कृतं सद्यः क्लोत्तयुतां गता किमयथा मातैव मे

पमयातनाका पयास न करके जिस शरीरके जिधे मैंने ढेर सा
धन इकट्ठा किया वह आज मुझी-भर साँवके आवणोंसे ही
सन्तुष्ट हो रहा है ! ॥ १ ॥

ज्ञानके कारण धैर्यः : हम लोग इन दुष्टोंकी शक्ति
(बलकल) से ही सन्तुष्ट हैं और तुम सग्नचित्ते सन्तुष्ट हो ।
इस प्रकार तुम्हारा और हमारा सन्तोष समान ही है । दरिद्र तो
यह होता है जिसकी तृष्णा बहुत बड़ी-बड़ी होती है । अरे,
ममके सन्तुष्ट रहते कौन धनी और कौन दरिद्र ! ॥ १ ॥

शपलता : रावण कड़ रहा है—'बार-बार पीसनेसे
गन्ध करती हुई कठोर बाढ़ोंकपी आरोंसे भयङ्कर कन्दरावाले
मेरे सब मुँह 'पहले मैं लाऊँ, पहले मैं लाऊँ' इस इष्टवृद्धीमें
एक साथ ही यहाँ (इस घानर-सेनापर) गिर पड़ें तो कितना
जल्दा हो ! अथवा अबसर देखकर ठीक प्रकारसे काट
करँगा' ॥ १ ॥

चिन्ता : हे सुमुखी ! कर-कमलपर मुखचन्द्र रखने
हुए तू मानो सदाके विरोधी चन्द्रबिम्बको खिखे
कमलसे मिलाती हुई मन ही मन क्या सोच रही है ? ॥ १ ॥

वितर्कः : लक्ष्मण तर्क करते हैं—'क्या भरत लोभके
वशीभूत हो गया जिससे उसने ऐसा किया (रामको वन
भेजा है) ? या मेरी सँकली माँ कैकेयी ही दूसरी बियोंके
समान सर्वथा ही छोटे विचारवाली हो गई है ! या मेरी
सोधी हुई ये दोनों बातें झूठ हैं क्योंकि भरत भी रामके
बड़े भाई तथा मेरे बड़े भाई हैं, साथ ही माता कैकेयी पूज्य

मध्यमः। मिथ्यैतन्मयं चिन्तितं द्वितयमप्यार्यानु-
जोऽसौ गुरुमाता तातकलत्रमिन्यनुचितं मन्ये विधात्रा
कृतम् ॥ १ ॥

श्रीप्रशंसा—अकृत्रिमप्रेमरसा विलासालसगा-
मिनी। असारे वधसंसारे सारं सारङ्गलोचना ॥ १ ॥
अधरे नयवीटिकानुरागो नयने कज्जलमुज्ज्वलं दुकू-
लम्। इदमाभरणं नितमिनीनामितरङ्गपणमङ्गदूष-
णाय ॥ २ ॥ अयला इत्यवज्ञेया न कदाऽपि चिन्त-
यति। त्रैलोक्यं यदृशां दासः स्यात्तन्निर्धलता कृतः
॥ ३ ॥ अमृतममृतं कः सन्देहो मधून्यपि नान्यथा
मधुरमधिकं चूतस्यापि प्रसन्नरसं कलम्। सकृदपि
पुनर्मध्यस्थः सन्सास्तरविजज्ञो यदनु यदिहान्यत्स्वादु-
स्यात्प्रियारदनकलदात् ॥ ४ ॥ अमृतस्येव कण्डानि
रक्षाभामिषं राशयः। रतेरिव निधानानि निर्मिताः
केन योषितः ॥ ५ ॥ अलमतिचपलस्यास्त्वप्रमायोपम-
त्वात्परिणतिविरसत्वात्सङ्गमेनाङ्गनायाः। इति यदि

शनकृत्यस्तत्त्वमालोचयामस्तदपि न हरिणात्तौ विस्म-
रन्त्यन्तरात्मा ॥ ६ ॥ अवलोकनमपि मुखयति कुघल-
यदलत्रारुखपलनयनायाः। किं पुनरमृतसमानं सरस-
समालिङ्गनं तस्याः ॥ ७ ॥ अविश्वसन्धृतं पुरन्धरोऽपि
नरः पुरन्ध्रोऽप्युक्तोऽप्य एव। अशेषशिलाकुशलाऽपि
काकः प्रतापेति किञ्च पिकाङ्गनाभिः ॥ ८ ॥ आदान-
पानलैः कदाश्चिद्गलोपतापहाम्निषः। पुरतः स्थितैव
सिद्धापधियज्ञो कापि जोषयति ॥ ९ ॥ आलोलैरुप-
गम्यते मधुकरैः केशेषु मातृग्रहः कान्तिः कापि
कपोलयोः प्रथयते नाभ्वलमन्तर्गतम्। अङ्गानामनुले-
पनं परिमलैर्गलेपनप्रक्रिया वेषः काऽपि सरोजसुन्दर-
दृशः स्तनं सुखं वज्रुपाः ॥ १० ॥ आश्लेषे सुन्दरीणां
स्थितवति सहसा सर्पसन्दृष्टिहेता इत्यर्थः पांयूपमाप्नु-
ज्जलनिधिमधने यज्ञ इत्याकलक्ष्य। तस्मादेते विरक्ता
जगति सुमनसो यत्समस्तास्तदृष्ट्वा स्वर्गस्थानामिवैषां
न कथमितरथा लाघवं स्यात्प्रतातम् ॥ ११ ॥ आस्यं

पिलाकी पत्नी है अतः रामके छोटे भाई तथा दशरथकी पत्नीले
पेसा अनुचित कार्य नहीं हो सकता। पेसा जान पड़ता
है कि यह सारी अनुचित करतूत विधाताकी ही है ॥ १ ॥

श्री-प्रशंसा : इस निगोड़े असार संसारमें स्वाभाविक
प्रेम-कपी रससे भरी हुई और हाव-भावसे अलसाकर चलने-
वाली सुगनयनी ही सार है ॥ १ ॥ ओठमें पानके नये बीदेकी
छायाई, नयनोंमें काजल और गलेमें उजला दुपहा, यही तो
यथार्थमें नवेलियोंकी सजावट है, इसके अतिरिक्त और
सब तो उन्हें भड़ा बना देते हैं ॥ २ ॥ बुद्धिमान् मनुष्योंको
चाहिए कि वे स्त्रियोंको अवज्ञा (निर्धल) समझकर न
दुतकारें। भला चीनों लोक जिनकी चितवनका दास है वे
निर्धल कैसे हो सकती हैं। ॥ ३ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि
अमृत-अमृत ही है, मधुभी अत्यधिक मधुर होता है। यह
भी ठीक ही है कि आमका फल भी बहुत मीठा होता
है किन्तु इनके अतिरिक्त किसी रसको खसनेवाला ही कोई
निर्णायक बनकर बता दे कि इस संसारमें प्रियतमाके
ओठसे बढ़कर क्या कोई दूसरी स्वादिष्ट वस्तु है ! ॥ ४ ॥ ऐसी
सुन्दरियों भला किसने रहीं जो मानो अमृतकी कुच हैं,
रनोंकी ढेर हैं और रतिक्रीडाकी भण्डार हैं ? ॥ ५ ॥
'स्वप्नकी मायाके समान अत्यन्त क्षणिक और नारस
परिग्रामवाले स्त्रियोंके सहवाससे क्या काम ?' ऐसी बातें सचकी

बार भली-भाँति सांच-विचारकर, तब समझकर भी हमारा
अन्तरात्मा उस सुगनयनी नवेलीका भूलता नहीं ॥ ६ ॥ कमलकी
पंजुरीके समान सुन्दर और चञ्चल नयनवाली जिस नवेलीका
एक बार देख लेने-मात्र हो शरीर सुखी हो जाता है वह
यदि आकर गले लग जाय तब तो कहना हो क्या है ? ॥ ७ ॥
सब धूर्तोंका मुखिया और कभी किसीपर विश्वास न करनेवाला
स्वकि भी उनके सामने घम्भा ही है। यदि यह बात न होती
तो सब प्रकारसे चतुर कीटकी क्या कोवखियाँ ढग पाती ?
॥ ८ ॥ कुछ जड़ी-बूटियों तो ऐसी होती हैं जो हाथमें लेनेपर,
पीनेपर और छेप करनेपर विषकी गर्मी इरण कर लेती हैं
किन्तु यह नवेली तो कोई ऐसी सिद्ध जड़ी है जो सामने खड़ी
रहनेपर ही मिलाप दे रही है ॥ ९ ॥ इस कमलके समान
सुन्दर आँखवाली सुन्दरीका वह रूप-रङ्ग नेत्रोंको सुख दे
रहा है जिसके पीछे पीछे चञ्चल भीरे दौड़ रहे हैं, माजापै
सज्जो हैं, गालोंपर ऐसी कान्ति चमक रही है जिसके भीतर
पानकी जाजी छाई हुई है और जिसके छाँड़ोंमें सुगन्धित
द्रव्योंसे उकटन लगाया गया है ॥ १० ॥ 'सब प्रकारकी
समुष्टि देनेवाला सुन्दरियोंका आलिङ्गन जब है ही तब अमृत
पानके लिये समुद्र भणना व्यर्थ है।' ऐसा सोचकर ही मानो
सारे देवता स्वर्ग छोड़कर संसारमें विरक्त होकर घूम रहे हैं।
यदि ऐसी बात न होती तो वे इतने सुख क्यों जान पड़ते ?

सहास्यं नयनं सलास्यं सिन्दूरबिन्दुदयशोभि भासम् ।
नवा च वेशी हरिणोदशश्रेदयैरगलैरपि भूषणैः
किम् ॥ १२ ॥ उडुराजमुखी मृगराजकटिर्गजराजवि-
राजितमन्दगतिः । यदि सा वनिता हृदये निहिता क
जपः क्व तपः क्व समाधिगतिः ॥ १३ ॥ उपनिषदः
परिपीता गीतापि च हन्त मतिपथं नीता । तदपि न
हा विधुयदना मानससदनाद्दहिर्याति ॥ १४ ॥ कमल-
शरधिरम्भासैकतानुकमाकृत्यं कनककलशभाराकान्त-
सौदाभिनीकम् । किसलयितमृणालं हारगर्भप्रवासं
कुचलयितशशाङ्कं कौशलं सा विधातुः ॥ १५ ॥ कार्पा-
सकृतकूर्पासशतैरपि न शाम्यति । शीतं शानोदरीपी-
नवज्जोत्पलिकुलं विना ॥ १६ ॥ किमिह यदुभिरुक्तैर्यु-
क्तिशून्यैः प्रतापैर्द्वयमिह पुरुषाणां सर्वदा सेवनीयम् ।
अभिनवमदलीलालालसं सुन्दरीणां स्तनभरपरिक्लिप्तं
यौवनं वा वनं वा ॥ १७ ॥ गतिर्नागेन्द्राभा वचनरचना

॥ ११ ॥ यदि मृगनयनी नवेलीका मुँह हँसीसे भरा हो,
नयन नाच रहे हों, माथेपर सिन्दूरकी बिन्दी चमक रही हो
और उसने तत्काल छोटी गूँथ ली हो तो दूसरे अनगिनत
गहनोंकी उसे घाबरवकता ही क्या है ? ॥ १२ ॥ यदि ऐसी
नवेली हृदयमें जमकर बैठ जाय जिसका मुख चन्द्रमाके समान
हो, कमर सिंहके समान हो और चाख मतवाले हाथीके
समान मदमाती धोमी हो तो कहाँका जप, कहाँका तप और
कहाँकी समाधि ! ॥ १३ ॥ उपनिषदोंको हम भली भाँति
घोंटकर पी गए और अपनी बुद्धि भी हमने सर्वथा गीताके
अनुसार ही बना ली है किन्तु हाथ ! इतना सब करनेपर
भी हृदयरूपी घरमें बैठी हुई वह चन्द्रमुखी बाहर नहीं
निकल पाती ! ॥ १४ ॥ कमल (पौर), तरकरा (पिङ्गली),
केलेके खम्भे (जर्षि) तथा बालूकी धरती (नितम्ब) बाजी
तथा सोनेके घड़ोंके भारसे लदी हुई (स्तनोंवाली) वह
जो मित्रली (नवेली) चमक रही है, जिसमें कमलनाभ
(मुजा) पर किसलय (उँगलियाँ) उगी हुई हैं, रूँते
(अधर) के भीतर मोतीका हार (दाँतोंकी पाँत) लगी है
और जिसमें चन्द्रमा कमल (मुँह) बना हुआ है, इसे
महाराजाकी कोई निराली ही कला समझनी चाहिए ॥ १५ ॥
रुईसे बनी हुई सैकड़ों सौदें भले ही भरी पड़ी हों किन्तु
पतली कमरवाली नवेलीके मोटे-मोटे स्तनोंका आखिड़न किए
बिना किसी प्रकार भी ठपठक मिट नहीं सकती ॥ १६ ॥

चाऽमृतसमा स्मितं ज्योत्स्नारोचिः सुरुतफलवद्दर्श-
नमपि । परिष्वङ्गस्तापप्रशमनविधौ स्वात्मसुखवत्सदा
यासामद्धा कमलनयनास्ता ननु नुवे ॥ १८ ॥ गति-
वैली च नागेन धपुरुषः च रम्भया । पाणी प्रघातैरोष्ठी
च तस्यास्तुल्यन्वमाययुः ॥ १९ ॥ ज्योत्स्नेष नयनानन्दः
सुरेव मदकारणम् । प्रभुतेष समाकृष्टसर्वलोका
नितम्बिनी ॥ २० ॥ तदवधि केचन वीरा वीरा
वा केचन स्मृताः सन्तु । यदवधि कुरङ्गशव-
कलोलविलोकाधिलोकिता न स्युः ॥ २१ ॥ तदा-
खण्डलाशा महीमण्डलाशां तथा भोगिभोगानुरागं
स्यजामः । मनःशोभदक्षाम्कपातः कटालान्कुरङ्गेशणा-
द्येत्यं पातयन्ति ॥ २२ ॥ तद्वक्तव्यं कलङ्क एव
तुलना पौष्यधात्राऽपि वक्तव्यं घनुर्निदर्शनमिदं
निन्दास्पदं तद्वयोः । सा तज्जोवनयोः कुरङ्ग-
स्साधर्म्यं चिन्ताऽपि या तस्यास्तरमतिविश्वमेव नियतं

अर्थ हो बहुत-सी ऊपटींग बातें बकनेसे क्या लाभ !
पुरुषोंको चाहिए कि वे इन दोनोंका ही सदा सेवन करें—
एक तो नई मस्ती और हाव-भावसे धकसाया हुआ तथा
स्तनोंके भारसे थका हुआ यौवन और दूसरा वन ॥ १० ॥
मैं उन कमलनयनी नवेतियोंको नमस्कार करता हूँ जिनकी
चाख मतवाले हाथीके समान, बोजी चमूतके समान, मुस्कान
चाँदनीके समान और दर्शन पुष्पोंके फलके समान है तथा सन्ताप
मिटानेके लिये जिनका आखिड़न मानो ब्रह्मानन्द जैसा ॥ ११ ॥
॥ १२ ॥ उस नवेलीकी चाख हाथीके समान, छोटी नागके समान,
देह राधा अप्सराके समान, जर्षि केलेके समान तथा हाथ और
घोठ मुँगेके समान हैं ॥ १३ ॥ सुन्दरी जिनको सारे संसारको
आनन्द देनेके लिये मानो चाँदनी है, मस्त करनेके लिये मरिचा
है और वरसे करनेके लिये प्रभुता (राजसत्ता) हैं ॥ १४ ॥
जोग तभीतक धीर-वीर समझे जाते हैं जबतक मृगके
बन्धेके समान पञ्चल नेत्रोंवाली नवेलीकी चितवन उनपर नहीं
पड़ पाती ॥ १५ ॥ यदि मृगनयनी सुन्दरियाँ जवा-भर भी
मनको स्वाकुल कर देनेवाली अपनी चितवन हमपर चला दें
तो हम इन्द्र बननेकी, पृथ्वीपति बननेकी तथा महाराजाओंके
समान ऐश्वर्य भोगनेकी साध भी छोड़ दें ॥ १६ ॥ उसके मुँहका
तिष्ठ चन्द्रमाके ही समान है, उसकी भाँहोंके रहते कामदेवका
धनुष तुच्छ है और उसकी भाँहोंमें जो जान है उसकी समताके
लिये सोचा जाय तो मुँके हुए कमल भी बहुत कम ॥ समाप्त ॥

मात्राधिसंवादिनी ॥ २३ ॥ तरुलिमनि कृतावलोकना
ललितविलासविलम्बविग्रहा । स्मरशगविसगचिन्ता-
न्तरा मृगनयना हरते मुनेर्मनः ॥ २४ ॥ तावदेव
कृतिनां हृदि स्फुरन्त्येव निर्मलधिवेकदोषकः । यावदेव
न कुरङ्गचक्षुषां ताड्यते चपललोचनाञ्जलैः ॥ २५ ॥
तावदेव विदुषां विवेकिनी बुद्धिरस्ति भवबन्धभेदिनी ।
यावद्विन्दुवदना न कामिनी वीक्षिता रङ्गसि हंसगा-
मिनी ॥ २६ ॥ दशा दग्धं मनसिजं जोषयन्ति दशैव
याः । विरूपाक्षस्य जयिनीस्ताः स्तुते वामलोचनाः
॥ २७ ॥ दशा विदधिरे दिशः कमलगजिनोराजिताः
कृता हसितरोषिणा हरति चन्द्रकावृष्टयः । अकारि
हरिणीदृशः प्रबलदण्डकप्रस्फुरद्बुधियुलराचिणा
वियति विपुलां विभ्रमः ॥ २८ ॥ द्रष्टव्येषु किमुत्तमं
मृगदृशः प्रेमप्रसन्नं मुखं घ्रातव्येष्वपि किं तदाभ्यपयनः
आभ्येषु किं तद्वचः । किं स्वाद्येषु तदोष्ठपल्लवरसः स्पृश्येषु

किं तद्वपुर्ध्वेयं किं नवयौवने सहृदयैः सर्वत्र तद्विभ्रमः
॥ २९ ॥ द्रुतं यस्यालोकाद्विग्रहितनशोकापनयनं यद्वे
सानन्दं नयनमग्न्यिन्दं विहरति । न यस्यापति श्रीः
कचनिबन्धराहागपि पुरः स मेखेदं रामाचदनहिमधामा
शमयतु ॥ ३० ॥ न हयैर्न च मानहैर्न रथैर्न च
पत्तिभिः । स्त्रीणामपाङ्गदृष्ट्यैव जीयते जगतां प्रथम्
॥ ३१ ॥ नामृतं विषं किञ्चिदंशं मुक्या नितम्बि-
नाम् । यस्याः सङ्गेन जीव्येन श्रियेत च धियागतः
॥ ३२ ॥ नूनं हि त कवियगा विपरोत्तयोधा ये नित्य-
माहुरवला इति कामिनोस्ताः । याभिधिलासनरतार-
कदृष्टिपातैः शक्रादयोऽपि विजितास्त्ववलाः कथं ताः
॥ ३३ ॥ पादसंवाहने यज्ज्ञां केशसम्भाजने फणां । अहो
भाग्यं पुरन्ध्राणां दधिसम्मन्थनं रविः ॥ ३४ ॥ प्रभवति
मनास विचका विदुषामपि शास्त्रसम्भवस्तावत् ।
निपतन्ति दृष्टिविशिष्टा यावन्नेन्द्राचरादीणाम् ॥ ३५ ॥

कर पाते हैं ॥ २३ ॥ पुष्पावस्थामें यहाँ-वहाँ देखनी हुई, सुन्दर
हाव-भावोंसे भरे हुए शरीरवाली तथा कामदेवके सैकड़ों बाणोंसे
भरी हुई कमलनयनी मुनियोंका भी मन हर लेती है ॥ २४ ॥
कर्म करनेवाले मनुष्योंके मनमें तबतक ही ज्ञानका निर्मल
दोषक जलता है जबतक मृगनयनी नखेलियोंके चञ्चल चितवन-
रूपी झोंपल उसे चुका नहीं देते ॥ २५ ॥ विद्वानोंमें संसारके
बन्धन काटनेवाली और अश्लेष-पुत्रका विचार करनेवाली बुद्धि
तबतक ही रहती है जबतक एकान्तमें इसके समान चालवाली
चन्द्रमुखी नखेली नहीं दिखाई पड़ जाती ॥ २६ ॥ दृष्टिसे
जलाए हुए कामदेवको जो अपनी दृष्टिसे ही जिज्ञा देती है उन
शिवजीको जीतनेवाली और चितवनवाली सुन्दरियोंकी मैं
स्तुति करता हूँ ॥ २७ ॥ मृगनयनी नखेलीकी चितवनोंमें
दिशाओंकी ऐसी शोभा बड़ा दी मानी वे कमलकी पंक्तियोंसे
सखी हों, उसका प्रबल दृष्ट-सा चमकमाता हुआ शरीर
अपनी मुस्कराहटकी कान्तिसे चाँदनीकी वषाओंकी शोभा भी
रहा है और उसका चमकने आकाशमें बिजलियों-जैसी
चमक भर दी है ॥ २८ ॥ सबसे अधिक देखने-योग्य
वस्तुओंमें मृगनयनीका प्रेम-भरा प्रसन्न मुँह, अत्युत्तम सुँघने-
योग्य वस्तुओंमें उसके मुँहकी सोंस, सुनने योग्य उत्तम
वस्तुओंमें उसकी भोठी बोली, चखने-योग्य वस्तुओंमें उसके
किसलय-जैसे ओठका रस और चुने-योग्य वस्तुओंमें उसकी
देह ही सर्वोत्तम है, अतः रसिकोंकी चाहिए कि नई बचानियोंमें

सदा सर्वत्र उसके हाव-भावोंका ही ध्यान करते रहें ॥ २९ ॥
सुन्दरोंका वह चन्द्रमाका-सा कान्तिवाला मुँह मेरा खेर मिटा
दे जिसे देखकर तत्काल बिछादियोंका शाक लुप्त हो जाता है,
जिसका गाँधमें नेत्ररूपा कमल आनन्दसे बाँझत रहत है और
बने बाँझ-रूपा शत्रुक रहते भा जिसका सुन्दरता मखिन नहीं
हो पाती ॥ ३० ॥ स्त्रियोंकी बाँकी चितवन ही जय तीनों
काँकोंकी जीत लेती है तो थोड़ा, हाथी, रथ तथा पैदल सेनाकी
आवरणकता क्या है ! ॥ ३१ ॥ बड़े-पड़े नितम्बवाली नखेलीके
अतिरिक्त न तो दूसरा कोई अमृत है, न विष है क्योंकि उसके
संयोगसे ही मनुष्य जी जाया है और बिछोड़ हाँते ही मर जाता
है ॥ ३२ ॥ ये महाकवि मिश्रव्य हा ठूठी बुद्धिवाले रहे
हैं जिन्होंने स्त्रियोंको अवला (निर्यस) कहा है। भला बताइए,
जिनके चंचल पुतलियाँ फरते हैं इन्द्र आदि देवता भी व्याकुल
होकर वशमें हो जाते हैं वे अवला कैसे हो सकती हैं ! ॥ ३३ ॥
अन्य है उन अष्ट नारिणोंका भाग्य ! जिनके पैर-दुबाने
(पैरोंका मज चुड़ाने) का काम इन्द्र (इंद्रका चूर्ण) करता
है, बाँझ सँवारनेका काम शेषनाग (कर्षी) करता है और
दही मथनेका काम सूर्य (मथनी) करता है ॥ ३४ ॥
विद्वानोंके मनमें भी शास्त्रका ज्ञान तभीतक उहर पाता है जब-
तक कमलनयनी नखेलियोंकी चितवन-रूपी सुरियाँ उन्हें बेध
नहीं देती ॥ ३५ ॥ वे जोंग बड़े मूख हैं जो प्राण और प्यारीको
समान बतलाते हैं क्योंकि प्यारीके गले खग जानेसे तो आनन्द

प्राणानाएव प्रियायाश्च मृदाः सादृश्यकारिणः । प्रिया
कण्ठगता रत्यै प्राणा मरणहेतवः ॥ ३६ ॥ भवन्तो
वेदान्तप्रणिहितधियामत्र गुरवो विदग्धालापानां वय-
मपि कवीनामनुचराः । तथाप्येतद्भूमो न हि परहि-
तात्पुण्यमधिकं न चास्मिन्संसारे कुबलयदशो रम्य-
मपरम् ॥ ३७ ॥ भूचातुर्याकुञ्चितरक्ता कटाक्षाः शिङ्घ्रा
वाचो लज्जिताश्चैव हासाः । लीलामन्दं प्रस्थितं च
स्थितं च स्त्रीणामेतद्भूषणं चायुधं च ॥ ३८ ॥ मन-
सिजशितशरतापितमनसां मोदाय सुस्मिता वनिता ।
तपनजतापं शमायतुमेका लेखा विधांनिपुणा ॥ ३९ ॥
मन्दं स्मितं मृदु वचो नयनकपातं किञ्चाञ्चरोल्लस-
महो भयलाजनस्य । धीराभ्यजेतुमनघानि शिताग्नि
धात्रा शिखाण हन्त विरचस्य समपिताग्नि ॥ ४० ॥
मात्स्यमुत्सायं विचार्य कार्यमायाः समवाह्मिदं
वदन्तु । सत्या नितम्बाः किमु भूधराणामुत स्मरस्म-

रचिलासिनीनाम् ॥ ४१ ॥ जये धरिण्याः पुरमेव सारं
पुरे गृहं सद्यनि चैकदेशः । तत्रापि शय्या शयने वरा
रुो रत्नोज्ज्वला राज्यसुखस्य सारः ॥ ४२ ॥ यत्र
पतत्यवलानां दृष्टिर्निशिताः पतन्ति तत्र शराः ।
तच्छापरोपितशरो धावत्यासां पुरः स्मरो मन्ये ॥ ४३ ॥
यत्रैता लहरीचलाचलदशो व्यापारयन्ति भ्रुवं यत्त-
दैव पतन्ति सन्ततममी मर्मस्पृशो मार्गणः । तच्चक्री-
कृतचापमञ्जितशरमेकस्करः क्रोधनो धावत्यग्रत एव
शासनधरः सत्यं सदासां स्मरः ॥ ४४ ॥ यस्य न
सविधे दयिता दधदहनस्तुहिनधीधितिस्तस्य । यस्य
च सविधे दयिता दधदहनस्तुहिनधीधितिस्तस्य
॥ ४५ ॥ यावद्विष्टमृगाक्षीणां नो नरीनसि भङ्गुरा ।
तावज्ज्ञानवतां धिते विवेकः कुड्यते पदम् ॥ ४६ ॥
यासां नास्त्रापि कामः स्यात्सङ्गमं दर्शनं विना । तासां
दृक्कङ्कमं प्राप्य पक्ष प्रवर्तित कौतुकम् ॥ ४७ ॥ यासा-

जा जाता है किन्तु प्राणोंके गलेतक जा जानेसे तो मनुष्यके
प्राण ही निकल जाते हैं ॥ ३६ ॥ वेदान्तके द्वारा मिश्रोंने
अपनी बुद्धि स्थिर कर ली है ऐसे लोगोंमें भी आप लोग
यद्यपि भन्द हैं किन्तु हम लोग भी पापिहवपूर्ण कविता
करनेवाले कवियोंके सेवक हैं । फिर भी इसना तो हम सबरव
कहेंगे कि इस संसारमें दूसरोंकी भलाई करनेसे बढ़कर न
तो कोई पुण्य है और न कमलनयनोंसे बढ़कर दूसरों कोई
सुन्दर वस्तु है ॥ ३७ ॥ भौं चलायेका चतुरतासे सिकुड़ा
■ ओखें, रसाली चितवनें, लज्जाला हँसी, हाव-भावके साथ
रुकती हुई धामा बाल वहाँ सब स्त्रियोंके गहन है और ये ही
उनके शस्त्र भी हैं ॥ ३८ ॥ जैसे चन्द्रमाकी कक्षा ही एकमात्र
गर्माकी तपन युक्ता सकता है ऐसे ही कामदेवके बाणोंसे सन्तप्त
मनवालोंकी वह सुस्फुरती हुई एकमात्र नखेली ही आनन्द दे
सकती है ॥ ३९ ॥ वाह ! धीरोंका भार गिरानेके लिये मझाने
अवज्ञाओंकी मन्द मुस्कान, मीठी बोली, आँखोंकी जँपना
और बोंकी चितवन रूपा कैसे पवित्र और लोखे शस्त्र सौंप दिए
हैं ! ॥ ४० ॥ सज्जनों ! इन्हीं काँवकर तथा विचार करके आप
लोग बिना मथावा तोड़े यह बतावें कि मनुष्योंकी परतपर
जाकर बसना चाहिए या कामके मदसे हठकाती हुई नखेलियों-
के नितम्बोंपर ? ॥ ४१ ॥ सारी धरतीका लोग इसलिये जीतते
हैं कि उसमें कोई सुन्दर नगर प्राप्त हो, उस नगरमें भी एक
घर, घरमें भी एक कोठा, कोठेमें भी सुन्दर शय्या और शय्यापर

रत्नोंसे अगमगाली हुई अत्यन्त सुन्दरी नखेली, वस, वही तो
राजाओंके सुखका सार है ! ॥ ४२ ॥ मुझे तो ऐसा जान
पड़ता है कि कामदेव अपने धनुषपर बाण चढ़ाए हुए स्त्रियोंके
आगे-आगे दीड़ता रहता है क्योंकि जहाँ इनकी चितवन पड़ी,
वहाँ बाण चले ॥ ४३ ॥ छहरोंके समान चञ्चल नयनोंवाली
ये स्त्रियाँ जहाँ-वहाँ अपनी भी हैं चलाती हैं वहाँ-वहाँ सदा
हृदय बंधनवाले बाण करसने लगते हैं । अतः यह बात
सत्य है कि हाथमें लिखा हुआ धनुष और सजा हुआ
बाण संभाके कामदेव शासन करनेके लिये क्रोधित होकर
सदा इनके आगे-आगे दीड़ता रहता है ॥ ४४ ॥ प्रियतमा
जिसके पास रहता है उसके लिये दावानल भी चन्द्रमा बन
जाता है और जिसके पास प्रियतमा नहीं रहती उसके लिये
चन्द्रमा भी दावानल बन जाता है ॥ ४५ ॥ आनियोंके चितमें
समांतक ज्ञान जमा रहता है जबतक मृगनयनी नखेलियोंकी
बोंकी चितवन भला-भाँति नाचने नहीं लग जाती ॥ ४६ ॥
जिनका नाम सुनते हैं काम जाग उठता है और जिनमें बिना
देखे ही सङ्गम हो जाता है उनका चितवनोंके सामने पड़कर भी
जा नहीं विचलित होता उसपर आश्चर्य होता है ॥ ४७ ॥
जिनके आँचलके पवनसे ही दीपक सुकत हो गया (बुझ गया)
उनका आँचलन करनेसे मनुष्य भला नरकमें कैसे गिरेंगे ।
॥ ४८ ॥ स्त्रियों ही रत्नोंकी शोभा बढ़ा देती हैं; रत्नोंकी चमकसे
स्त्रियोंकी शोभा नहीं बढ़ती क्योंकि बिना रत्नोंके भी स्त्रियाँ

मञ्जलशतेन शीपो निर्वाणनां गतः । तासामालिङ्गने
पुंसां नरके पतनं कुतः ॥ ४३ ॥ रत्नानि विभूषयन्ति
योगा भूषणन्ते वनिता न रत्नकान्त्या । नेनो वनिता
हरन्त्यरत्ना नो रत्नानि विनाङ्गनाङ्गसङ्गाम् ॥ ४६ ॥
ललाटे कस्तूरीनिलकमवलाः कज्जलकचि दशोः कर्ण-
द्वन्द्वे विमलमणिनाटङ्गयुगलम् । गले मुक्तामालां
शुचि वसनमङ्के च सनतं वशीकर्तुं विश्वं ध्याति सन्तु
शास्त्रोपकरणम् ॥ ४० ॥ वक्षसि भवति सङ्गत्यागमु-
द्दिश्य वार्ता भुतिमुखरमुखानां केवलं पण्डितानाम् ।
जघनमरुणरत्नग्रन्थिकाञ्चोक्तापं कुचलयनयनानां को
विहातुं समर्थः ॥ ४५ ॥ विजयमिति यत्नादमुं गृहीत्वा
क्षणमथ घोष्य विपक्षमन्तिकेऽभ्या । अभिपतितुमन्ता
लघुत्वभोतेरभ्यदमुञ्जति यत्नभेऽतिगुर्यो ॥ ४२ ॥
विनयति सुदृशो दृशः परागं प्रणयिनि कोसुममान-
नानिलेन । तद्द्विहतयुक्तेरभोक्षणमन्तिकोर्द्वयमपि रापर-
जोभिरापुपुरे ॥ ४३ ॥ विपुलकमपि यावदोद्धतानां
घनपुलकोदयकोमलं चकाशे । परिमलितमपि प्रियैः

प्रकामं कञ्चयुगमुच्चलमेव कामिनीनाम् ॥ ४४ ॥
विमुञ्जति वृथो जनः सुकृतचिन्तनं दूरतो जहाति च
मुनिस्तपस्यजनि घोरतां शङ्करः । विधिर्भवति नञ्-
लस्त्रिजगतीपतिः क्षुध्यति क्षणं कुटिलदृष्ट्या यदि
पतन्ति वामभ्रुवः ॥ ४५ ॥ विलम्बितमनुकुर्वन्ती पुरस्ता-
द्वर्त्तितमृदाधिमहो बभूर्लतायाः । रमणमृगुनया पुरः
सखीनामकलितत्रापलदोषमालिलिङ्ग ॥ ४६ ॥ विश्वा-
मित्रपराशरप्रभृतयो यानाम्युपगांशनाम्नेऽपि स्वांमु-
क्षपङ्कजं मुललितं दृष्ट्वैव मांहं गताः । शाल्यघ्नं सघृतं
पयोदधियुतं ये भुञ्जन् मानयास्तेषामिन्द्रियनिग्रहो
यदि भवेद्विध्यस्तस्मात्सागरं ॥ ४७ ॥ अनतिविनतिभि-
स्तिरोहितायां प्रतियुक्ता घटनं मिदः प्रियायाः ।
यदध्यदधरावलोकनमृग्यन्करवलयस्वनिनेन तद्विद्यमे
॥ ४८ ॥ श्रीहोत्रेलाहृदं मागमलिलमिष यांयिनां
हृदयम् । रागेन्दुरुदयमाना भूया भूयस्तरङ्गयति
॥ ४९ ॥ भुतं दृष्टं सृष्टं स्मृतमपि नृणां ह्लादजननं न
रत्नं स्त्रीभ्योऽन्यत्पञ्चिदपि कृतं लोकपतिना । तदर्थे

मन हर लेती हैं किन्तु बिना स्थिरांके जहाँमें सजे रत्न मन
नहीं हर सकते ॥ ४३ ॥ माथेपर कस्तूरीका तिलक, नयनोंमें
काजल, दोनों कानोंमें निर्मल मणिके कनकुल, गलेमें मोतीकी
माला और चेहरेपर पवित्र वस्त्र, इस सब पादों सजावटको
स्थिरां सारे संसारको बशमें करनेके लिये ही सदा धारण
किया करती हैं ॥ ४० ॥ चेहरेको रट-रटकर सुँहोंमें बसाए हुए
पण्डित लोग 'आसक्ति लांङ्गे'के विषयमें जो बातें करते हैं
वे उनकी बोलीतक ही रहती हैं; सबमुच काळ-लाळ रमोंले
गुँधी हुई करधनीसे सजा हुआ कमलनयनी सुन्दरियोंका
जघन-भाग कौन छोड़ सकता है ? ॥ ४१ ॥ एकाम्ब देसकर
किसी स्त्रांने किसी पुरुषको पकड़ लिया और कोई बेरो देस
म ले इस डरसे चारों ओर देखकर उसने गिर पड़ना चाहा
किन्तु पुरुष दुबला था और उसे कसकर पकड़े हुए था अतः
उस स्त्रीने अपनी ही देह शिथिल करके भारी कर दी ॥ ४२ ॥
जिस समय कोई प्रेमी किसी सुनयनी प्रेमिकाको प्रसन्न
करनेके लिये उसकी आँखोंमें फूलका पराग फूँककर उड़ा रहा
था उस समय उसकी आँखें तो फूलका पराग पड़नेसे
झाझ हुई किन्तु उसकी ओ बैरिन यह सब देख रहा था
उसकी आँखें ओधके मारे जाज हो उठी ॥ ४३ ॥ मद्माती
नबेलियोंके दोनों स्तन यद्यपि रोमाञ्चित नहीं हुए थे किन्तु

प्रियतमोंने उन्हें भला-भाँति मसलकर पेटे उजले और कोमल
बना दिए थे मानो उनमें पत्ते हाँगे उभड़ थाए हों ॥ ४४ ॥
हाँकी भीहोंवाली सुन्दरीकी तिरछी चिनवनें लण-भर भी पड़
जाती हैं तो बुद्धिमान् मनुष्य पुरुषकी चिन्ता छोड़ देता है,
मुनि तपस्या छोड़ बैठता है, शङ्कर औरम खाँड़ बैठते हैं, यक्षा
चम्रल हो उठते हैं और तीनों लोकोंके स्वामां (भागवान् विष्णु)
व्याकुल हो उठते हैं ॥ ४५ ॥ सामने वृक्षपर झिपटी (चढ़ी) हुई
लताके समान आचरण करता हुई कोई बहू सखियोंके सामने
ही सीधे-सादे भावसे बिना झलझलाके अपने पतिके गले आ
लगा ॥ ४६ ॥ पवन और पानी पीकर तथा पत्ते खाकर रहने-
वाले विश्वामित्र, पराशर आदि तपस्वी भी जब स्त्रीका सुन्दर
कमलमुख देखते ही माँहिट हो गए तो सदा भी, वृष और दूरी
मिले हुए उत्तम धानके खाद्यन खानेवाले मनुष्य यदि अपनी
हृन्दिर्वां वशमें कर सकें तब तो विन्ध्य पर्वत भी समुद्रमें तैरने
लग जाय ॥ ४७ ॥ जलरत्नोंकी आदीमें प्रेमिका और प्रेमी जाकर
झिप तो गए किन्तु जब प्रेमी अपनी प्रेमिकाका मुँह चूमने
लगा तो उसके छोठ सिंकाँने और प्रेमिकाके हाथ हिलानेसे
कज्जन बजनेकी ध्वनिने उसका सारा भेद खोल दिया ॥ ४८ ॥
जाज-रूपी तटकी भूमिसे रुके हुए समुद्रके जल-रूपी स्त्रियोंके
हृद्योंको प्रेम-रूपी चन्द्रमा उदय (उत्पन्न) होकर बार-बार

धर्माधौ विभयधरसौख्यानि च ततो गृहे सदभ्यो
मान्याः सततमवल मानविभवैः ॥ ६० ॥ सम्पन्नर-
मणी शीलसम्पन्नरमणीं विना । इत्युदवाचरमणी रमणीं
रुक्मिणीं हरिः ॥ ६१ ॥ संसारेऽस्मिन्नसारे परिणति
तरले द्वे गती पण्डितानां तत्त्वज्ञानामृताम्भःपुलकित-
मनसां यालु कालः कदाचित् । नो चेन्मुग्धाह्वानानां
स्तनजघनभराभोगसम्भोगिनीनां स्थूलापस्थस्थलीषु
स्थगितकरतलस्पर्शलोभोद्यतानाम् ॥ ६२ ॥ संसा-
रेऽस्मिन्नसारे कुनृपतिभयनद्वारसेवाकलङ्कव्यासङ्ग-
व्यस्तधैर्यं कथममलधियो मानसं संविदभ्युः । यद्यताः
प्रोद्यद्दिन्दुद्यतिनिखयभृतो न स्युरम्भाजनेत्राः प्रेङ्ख-
त्काञ्चीकलापाः स्तनभरघनमन्मथ्यभागास्तकण्यः
॥ ६३ ॥ सद्रक्तस्फारहाराऽभयवरदकरा सस्तधम्मिङ्ग-
भारा मूलाधाराधिका निगमनिधिधरा काव्यकोटि-
प्रचारा । संसारानल्पतरालदनभयहरा विदर्घनका-

वतारा तारा शृङ्गारधारा मनसि वसतु ते सर्वदा
सर्वसारा ॥ ६४ ॥ सन्तु विलोकनभाषणविलासपरि-
हासकेलिपरिरम्भाः । स्मरणमपि कामिनीतामलमिह
मनसो विकाराय ॥ ६५ ॥ समदनमवर्तलितेऽधिकर्ण
मण्यवता वसुमे सुमध्यमायाः । व्रजद्विपि लघुतां
बभूव भारः सपदि हिरण्मयमण्डनं सपत्न्याः ॥ ६६ ॥
समाश्लिष्टाः समाश्लेषेश्चुम्बिताश्चुम्बनैरपि । दृष्टाञ्च
दृष्टनैः कान्तं दासोऽकुर्वन्ति योषितः ॥ ६७ ॥ सुस्मिता
मधुरालापा रुचिरावयवा विधिः । विधाय रमणी-
स्तासां मनोऽपि न व्यधात् कृतः ॥ ६८ ॥ सौमः शोचं
ददा तासां गन्धर्वाश्च शुभां गिरम् । अग्निः सर्वाङ्गका-
न्तिस्त्वं तस्मात्त्रिभक्तसमाः स्त्रियः ॥ ६९ ॥ स्फुटमिद-
मभिचारमन्त्र एव प्रतियुक्तेरभिधानमह्वनात् ।
वरतनुरमुतोपहृत्य पत्न्या मृदुहृत्सुमेन यदाहताप्यम्-
र्द्धत् ॥ ७० ॥ स्वपरप्रतारकोऽसां निन्दति योऽलीक-

कराय वे रहा है ॥ ६१ ॥ सुनने, देखने, कूने, पहाँतक कि
स्मरण करने-मात्रसे भी आनन्द देनेवाला राम खोके अतिरिक्त
मछाने दूसरा और कहीं भी नहीं रहा । उसी खो-रनके लिये
धर्म और अर्थ बने हैं और उसीके लिये बड़े-बड़े डाट-वाट
और सुख हैं इसलिये घरमें हम अबला-रूपी लक्ष्मियोंको
सदा ही मान और ऐश्वर्यसे आदर देते रहना चाहिये ॥ ६० ॥
'अत्यधिक शील (नम्रता) से भरी हुई सुन्दरीके बिना बेरसी
सम्पत्ति भी सुख नहीं दे सकती ।' यही साँचकर कदाहो
कुण्डलीने ऋतु रुक्मिणीसे विवाह कर लिया ॥ ६१ ॥ कञ्च-
णपर बढ़ते रहनेवाले संसारमें पण्डितोंकी दो ही गति
है—एक तो यह कि वे तम-ज्ञान-रूपी अमृतजलसे मन
पुलकित करते हुए अपना समय बिताने और दूसरा
यह कि स्तन और चेहरे भारतसे आनन्ददायी सम्भोगका
रस देनेवाली रसीली नवेलियोंके मोटे-मोटे नितम्बोंपर हाथ
फेरनेके लिये लज्जितसे हुए समय बिताने ॥ ६२ ॥ इस असार
संसारमें यदि उदय हाँते हुए चन्द्रमाकी धनी चाँदनी जैसी
कान्तिवाली, चमकती हुई करवनावाली तथा स्तनोंके भारतसे
झुके हुए पेटवाली ये कमलजयनी नवेलियाँ न हाँती तो
राजाओंके द्वारपर उनकी सेवा करनेके कलङ्कसे कीककर धीरज
खो बैठनेवाले तथा निर्मल बुद्धिवाले मनुष्य अपना मन कैसे
बढ़ावते ? ॥ ६३ ॥ उलझे रत्नोंके चमकीले हारवाली, हाथमें
अभय-दानकी मुद्रावाली, बिसरे हुए बालोंवाली, मूलाधार

चक्रकी स्वामिनी, वेदोंका भाष्यार धारक करनेवाली, करोड़ों
काव्योंका प्रचार करनेवाली, संसारका विस्तार करनेवाली,
भूत-प्रेताँका भय दूर करनेवाली, सम्पूर्ण ज्ञानकी एक मात्र
भण्डार तथा सब प्रकारकी सत्रावटोंकी बहती हुई धारा, सबकी
सार भगवती दुर्गा चापके मनमें सदा निवास करें ॥ ६४ ॥
कामिनीयोंकी देखना, उनसे बातें करना, और उनसे हाथ-आप-
भरी हैंसी मीठा और आलिंगन करना तो दूरकी बात है, उनका
स्मरण-मात्र ही मनमें विकार उत्पन्न कर देनेके लिये बहुत
है ॥ ६५ ॥ प्रेमसे भरे हुए प्रियतमने कामकी मस्तीमें आकर
जैसे ही सुन्दर मध्यभाग (कमर) वाली सुन्दरीके कानमें
फूल लगाया वैसे ही तत्काल सीतके सानेके गहने लघु (हलके)
हाँते हुए भाँ उल्ले भार जान पड़ने लगते ॥ ६६ ॥ आलिंगनके
बन्धनमें कसा हुई, चुम्बनोंसे चूसी जाती हुई और दाँतोंसे
दबाई जाती हुई सुन्दरियों प्रियतमको अपना दास बना लेती
हैं ॥ ६७ ॥ मछाने जब रमणियोंका इतनी सुन्दर मुस्कानवाली,
सुन्दर बोलनेवाली और सुन्दर अङ्गोंवाली बनना तो उनकी
मन भी वैसा ही (सुन्दर) क्यों नहीं बना दिया ? ॥ ६८ ॥
सुन्दरियोंको चन्द्रमाने पवित्रता ही, गन्धर्वोंने सुन्दर बोलों
का और आँखोंने सारे शरीरकी सुन्दरता ही इसलिये वे
सदा सोनेके ही समान हैं ॥ ६९ ॥ स्त्रियोंके सामने उनकी सीतका
नाम लेना उन्हें घायल करनेका सबसे बड़ा मंत्र है क्योंकि
प्रियतमने ज्योंही उस सुन्दरीको फूलसे मारते हुए सीतके

परिहृतो युवतीः । यस्मात्तपसोऽपि फलं स्वर्गः
स्वर्गोऽपि योपितोऽप्सरसः ॥ ७१ ॥ स्वभ्यस्तनूपाऽपि
नवैव नित्यं विनाऽपि हासं हसतीव कान्त्या । मदा-
हतेऽपि स्खलतीव भावैवांचं विना व्याहरतीव दृष्ट्या
॥ ७२ ॥ स्त्रियः पवित्रमतुलं नैता दुष्यन्ति कहिन्निन् ।
मासि मासि रजो यासां दुष्कृतान्यपकर्षति ॥ ७३ ॥
स्मितमधुरं परिलोकनमखिरं मन्दं च भाषणं किमपि ।
मन्थरमयनं सुतनोः कस्य न हृदयं विदारयति
॥ ७४ ॥ स्मितेन भावेन च लज्जया भिया पराङ्मुखै-
र्धकटाक्षघोषैः । यत्कोभिरीर्ष्याकलहेन लीलया सम-
स्तभाधैः खलु मन्थनं स्त्रियः ॥ ७५ ॥ त्रामुद्रां कुसुमा-
युधस्य परमां सर्वार्थसम्पत्करीं ये मूढाः प्रविहाय
यान्ति कुधियो मिथ्याफलान्नेविणः । ते तेनैव निहत्य
निर्दयतरं मन्त्रीकृता मुण्डिताः केचिद्भक्तपटीकृताश्च
जडिजाः कापालिकाभ्रातरे ॥ ७६ ॥ हरिणप्रेक्षणा यत्र

गृहिणी न विलोक्यते । मेवितं सर्वसम्पत्तिरपि तद्ग-
वनं वनम् ॥ ७७ ॥ ह्यादनतापनशर्ती सहजे स्तः
सुभ्रुवां कटाक्षेषु । तत्राद्या प्रवला म्यासदीयस्त्वं परा
दधीयस्त्वे ॥ ७८ ॥

मतीवर्णनम्: — अककल वानरमनसा दशितनीरा
निरन्तरालेयम् । त्थामनुधावति विमुखं गङ्गेय
भगोरथं दृष्टिः ॥ १ ॥ अभ्युन्धानमुपागते गृहपती
तद्गापणे नम्रता तत्पादागिनदृष्टिरासनविधिस्तस्यो-
पचर्या स्वयम् । सुमे तत्र शयोन तन्मधमनो जहाय
शय्यामिति प्राच्यैः पुत्रि निर्देदितः कुलवधूसिद्धान्त-
धर्मागमः ॥ २ ॥ अमृतमयी निरवद्या दद्या गम्भीर-
भायसम्पन्ना । पतिमनुगच्छति तस्यां गङ्गा भागारथं
रथं यद्गन् ॥ ३ ॥ असारभूते संसारं सारभूता
नितम्बिनी । इति सज्जिन्य वै शम्भुरर्धाङ्गे पावतीं
वर्धा ॥ ४ ॥ कार्ये दासी रतो वेश्या भाजने जननी-

नामसे पुकारा योही वह मूर्खिन हो गई ॥ ७७ ॥ ओ कोई मूढ-
मूढ परिहृत बनकर नवेलियोंको निम्न करता है, वह अपनेको
भी धोखा देता है और दूसरोंको भी, क्योंकि तपस्याका फल
तो स्वर्ग है और स्वर्गमें भी अप्सरा-रूपी स्त्रियाँ हैं हैं
॥ ७८ ॥ यद्यपि इसका रूप बड़ी है जिसे नियम देनेकेका अभ्यास है
फिर भी यह सदा ही नई-सी लगती है, विना हँसीके ही
अपनी कान्तिसे मानो हँस रही है, बिना मद्रिराके ही अपने
हाव-भावोंसे जहजहा रही है और बिना बाँधे ही चितवनके
सहारे मानो बोले दे रही है ॥ ७९ ॥ स्त्रियों अत्यधिक पवित्र
होती हैं । ये कभी किसी प्रकार दूषित हो ही नहीं सकतीं
क्योंकि महीने-महीने हमका रज इनके सब पाप नष्ट करता
रहता है ॥ ८० ॥ सुन्दर शरीरवालीका मधुर मुस्कानके साथ
देखना, थोड़ी देरतक धीरे-धीरे कुछ बोलना और मन्द-मन्द
चलना किसका हृदय नहीं काद देता ? ॥ ८१ ॥ पुरुषोंको
बाँधनेके लिये स्त्रियोंके मुस्कानभरे हाव-भाव, जाज, मध,
आधी बाँकी चितवन चलाकर मुँह मोड़ना, बोलनी, डाँके
कारण ऋगदा और ज्ञीला, ये सब बन्धन ही तो हैं ॥ ८२ ॥ जो
नीच बुद्धिवाले लोग कामदेवकी अत्यन्त श्रेष्ठ तथा सब प्रकारकी
अर्थ-सम्पत्ति देनेवाली श्री-रूपी मुद्राको छोड़कर मूढ-मूढका
आध्यात्मिक फल चाहते हैं वे मूर्ख हैं । इसीलिये कामदेवने ही
मानो उन्हें निर्दयतापूर्वक भार पीटकर, सिर मुँहवाकर, गङ्गा
फरके उनमेंसे कुछको गेरुए बह पहवाकर, कुछको सटाएँ

बढ़ा दिया तथा कुछको छोड़ देना दिया है ॥ ८३ ॥ जिस घरमें
मृगनयनी गृहिणी नहीं दिखी पड़ती वह भले ही सब प्रकारकी
सम्पत्तियोंसे भरा हो किन्तु वह घर नहीं, वन है ॥ ८४ ॥
सुन्दर भीलोंवाली नवेलीकी चितवनमें प्रसन्न करने और
सम्भाष देनेकी शक्ति स्वाभाविक ही होती है । पहली शक्ति
तो तब बढ़ती है जब वह अत्यधिक सज्जित रहती है और
दूसरी शक्ति तब अत्यधिक बढ़ जाती है तब वह बहुत दूर
हो जाती है ॥ ८५ ॥

सतीका वर्णन : हे निर्दयी ! यद्यपि तुम उसकी
ओर नहीं देख रहे हो किन्तु कातर मनसे उसका शोच-भरी
चितवन सदा तुम्हारे पीछे ठीक उसी प्रकार दौड़ रहा है जैसे
भगीरथके पाँखे जलसे भरी गङ्गा दौड़ा जा रहा थी ॥ १ ॥
हे पुत्री ! महर्षियोंने कुलवधुओंके ये सच्चे धर्म बताए हैं —
मिथतमके आसे ही उठ जाना, बातचीतमें नम्रता दिखाना,
बैठे रहनेपर उनके चरखोंपर दृष्टि लगाए रहना, स्वयं उनका
सेवा करना, उनके सो जानेपर स्वयं सोना और उनके
आगनेसे पहले ही बिछौना छोड़ देना ॥ २ ॥ अमृत (जल,
अधरामृत) से भरी हुई, परम पवित्र, परम सुन्दरी तथा
गम्भीर भावोंवाली (गहरी) दुबली-पतली नवेली वैसे ही
पतिके पीछे चलती है जैसे गङ्गा भगीरथके रथके पीछे-पीछे
चलती थी ॥ ३ ॥ इस असार संसारमें मोटे-मोटे नितम्बवाली
एक नवेली ही सार है । वही सोचकर सिधजीने पार्वतीजीको

समा । विपत्तौ बुद्धिदात्री च सा भार्या सर्वदुर्लभा ॥ ५ ॥ कार्येषु मन्त्रो करणेषु दासी भोज्येषु माता शयनेषु रम्भा । धर्मेऽनुकूला क्षमया धरित्रा भार्या च पाङ्क्त्ययवनीह दुर्लभा ॥ ६ ॥ गतागतकुतूहलं नयनयोरपाङ्गावधि स्मितं कुलनतभ्रवामधर एव विभ्राम्यति । वचः प्रियतमश्रुतेरतिधरेष कोपक्रमः कदाचिदपि चेत्तदा मनसि केवलं मज्जति ॥ ७ ॥ चतुर्थेऽहं ज्ञातां त्रिदिनविरहात्पाण्डुवदनं रजोमुक्तां तर्ष्णां क्षपलनयनां कामकलिताम् । हिमत्वङ्मार्जारी-मलयभयगन्धमणयिनीमधन्यः को भुङ्क्ते क्युतकुसुम-शेषामिष लताम् ॥ ८ ॥ जोयति जीवति नाथे मृते मृता या मुदा युता मुदिते । सहजलोहरसाला कुल-क्षणिता केन तुल्या स्यात् ॥ ९ ॥ दकामादृत्य मर्दयितन्वते करिण इव खिरं पुरुषाः । लोणां करिणी-

नामिव मदः पुनः स्वकुलनाशाय ॥ १० ॥ तल्पे प्रभु-रिव गुरुरिव मनसिजशास्त्रे धमे भुजिष्येव । गेहे श्रौरिव गुरुजनपुरतो मृतं च सा शोडा ॥ ११ ॥ तावत्कुलस्त्रीमर्यादा शयनलज्जायगुणैरनम् । हृते तस्मिन्कुलस्त्रीभ्यो वरं वेश्याङ्गनाजनः ॥ १२ ॥ क्षीप-दशा कुलयुवतो वैदग्ध्येनैव मलिनतामेति । दोषा अपि भूपायै गणिकायाः शशिकलायाश्च ॥ १३ ॥ न कार्येषु न भोगेषु नैश्वर्ये न सुखे तथा । स्पृहा स्याच्च यथा भर्तुः सा नारी सुखभागिनी ॥ १४ ॥ कल्पो-त्थानपरा नित्यं गुरुशुभ्रपणे रता । सुसम्पृष्टगृहा शैव गोशङ्कुकतलेपना ॥ १५ ॥ न गृहं गृहमित्याहु-र्गृहिणी गृहमुच्यते । गृहं तु गृहिणीहीनं काम्तापाद-तिरिच्यते ॥ १६ ॥ नातः परं कुलमतः परतो न शीलं नातः परं च कल्याणसदनं मृगाशयाः । यद्वाप्यविभुर-

अपने साथे बाँधे पट्टमें बैठा लिया ॥ ७ ॥ ऐसी पत्नी संसारमें सबके लिये दुर्लभ है जो काम या पदनेपर दासीके समान, रतिके समय वेरवाके समान, भोजन कराते समय माताके समान और विपत्तिके समय बुद्धि देनेवाली बन जायें ॥ ८ ॥ कार्यका विचार करते समय मन्त्री, काम करते समय दासी, भोजनके समय माता, सोते समय रम्भाके समान व्यवहार करनेवाली, धर्म-कार्यमें सदा साथ देनेवाली और पृथ्वीके समान जमा करनेवाली, इन छः गुणोंवाली पत्नी इस संसारमें दुर्लभ है ॥ ९ ॥ कुकी हुई भौहोंवाली कुल-पुरुषोंके नेत्रोंकी चञ्चलता उनके नयनके कोरोंतक ही आकर रह जाती है, मुन्कराहट अचरनक आकर समा जाती है, वे इतने धीरे बोलती हैं कि उनके प्रियतम-भर सुन पाते हैं और क्रोध यदि कभी उत्पन्न हुआ भी तो वह मनमें ही समा जाता है ॥ १० ॥ मासिक-धर्मके पश्चात् चौथे दिन स्नान की हुई, पतिके तीन दिनके विद्युद्दमे उससे मुलवाली, दुबली, चञ्चल मधनोंवाली, कामकी भावनावाली, कामके तापसे तपी हुई तथा पाखा, पेड़की गीली छाज, चारपाई और चन्दनका रस चाहनेवाली उस कुल-स्त्रीका उपभोग बिना पुण्यके कौन वा सकता है जो उस जनाके समान जान पड़ रही हो जिससे सब फूल झड़ गए हों ॥ ११ ॥ पतिके जीवनके सहारे जीवित रहनेवाली, उनके मरते ही मर जानेवाली और उनके प्रसन्न रहते समय प्रसन्न रहनेवाली स्वाभाविक स्नेहरूपी-रसते भरी हुई कुलवधूकी समता कौन कर सकता है ? यथार्थ

असकी समता किसीसे नहीं हो सकती ॥ १२ ॥ पुरुष भले नगादा बजा-बजाकर मतवाले हथियारोंके समान मदमें पुर रहें किन्तु जियोका अभिमान तो हथिनियोंके मदके समान अपने बंशका नाश करनेवाला हो जाता है ॥ १३ ॥ वह सुन्दरी पलंगपर स्वामिनी, कामशास्त्रमें गुरु, यकनेपर दासी, घरमें लक्ष्मी और बहोंके आगे तो लज्जाकी मूर्तिके समान ही जान पड़ती है ॥ १४ ॥ जबतक लज्जाका धूपद रहता है तभीतक उत्तम कुलकी स्त्रीकी सर्वादा सुरक्षित रहती है; लज्जा समाप्त हो चुकनेपर उससे शरणाही तो वेरवाएँ ही होती हैं ॥ १५ ॥ अधिक चञ्चलता और चतुरतासे दीपककी बत्ती और कुलवधू दोनों ही दूषित हो जाती हैं । केवल चन्द्रमाकी कक्षा और वेरवाएँ ही ऐसी हैं जिनकी समावद दोषा (रात, दुर्गुणों) से अधिक बढ़ जाती है ॥ १६ ॥ वही स्त्री सुख भोगनेवाली होती है जिसकी कार्यें, भोगों, ऐश्वर्यों तथा सुखमें बैसंग इच्छा नहीं रहती शैली पतिमें रहती है ॥ १७ ॥ [वही स्त्री सुखी रहती है] जो सदा तदके सोकर उठती है, बहोंकी सेवा करती रहती है और अपना घर गोबरसे जीप-पोतकर स्वच्छ रखती है ॥ १८ ॥ केवल घर ही घर नहीं कहलाता; यथार्थमें गृहिणी ही घर कहलाती है, बिना गृहिणीका घर तो भयानक जंगलसे भी बचकर गया-बोता होता है ॥ १९ ॥ मृगनयनो नवेलीकी इससे बढ़कर कुर्जानता, शीघ्र और कल्याणका भयहार और क्या हो सकता है जो कि वह अपराधी पतिके साथ अपनी

पराधयतोऽपि पत्युस्तस्मिन् चरणेन तयापनिन्ये
॥ १७ ॥ नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्यु-
पोषणम् । पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महोयते
॥ १८ ॥ नित्यं स्नाता सुगन्धा च नित्यं च
प्रियवादिनी । अल्पभुङ्गमितयक्री च देवता सा न
मानुषी ॥ १९ ॥ निर्व्याजा दयिते नानाहपु नता
श्वश्रूषु भक्ता भव स्निग्धा यन्धुषु वत्सला परि-
जने स्मेरा सपत्नीष्वपि । भर्तुर्मित्रधने सनम्रव-
क्षणा स्निग्धा च तद्वैरिषु प्रायः संवननं नतभ्रूतदिहं
वीतौषधं भर्तुषु ॥ २० ॥ पतिर्देवः पतिर्वन्धुः पतिः
स्वर्गः पतिः सुखम् । जीवनं च पतिर्नार्या नाभ्यन्
किञ्चिज्जगज्जये ॥ २१ ॥ पतिर्हि देवो नारीणां पतिर्वन्धुः
पतिर्गतिः । पत्युर्गतिसमा नास्ति दैवतं वा यथा
पतिः ॥ २२ ॥ पदम्यासो गेहाद्द्विहिरद्विफणारोपणसमो
निजायासादन्यद्वधनमपरह्यीपतुलितम् । वधो लांका-

लभ्यं कृपलधनतुल्यं मुगदशः पुमानन्यः कान्ता-
द्विधुरिव चतुर्थीसमुद्रितः ॥ २३ ॥ परपतिनिर्दयकु-
लटाशोपित शठ नेर्पथा न कोपेन । दग्धममनोपनसा
रोदिमि तव नानवं घोरम् ॥ २४ ॥ पाणिग्राह्य
साध्वी स्त्री जीवनो वा मृतस्य वा । पतिलोकममीप्स-
न्ती नाचरेत्किञ्चिदप्रियम् ॥ २५ ॥ प्रतिपक्षेणापि
पति मेवन्ते भर्तवत्सलाः साध्वयः । अन्यस्मिन्ना
शतानि हि समुद्रगाः प्रापयन्त्यन्धम् ॥ २६ ॥ प्रति-
रजनि प्रतिदिनं विहर यद्विहिरिड डिहिरिडं दद्या ।
कोणवधूद्व्यलिनैर्विध्वं पुनराकुलोभयति ॥ २७ ॥
यद्दिनं लोला दृगपाङ्गमूलादुपैति कृलादिव सागरोरिमिः ।
न वा सतीनामभिलाषयन्धं व्यनक्ति गन्धं कलिकेय
सेनः ॥ २८ ॥ यालया वा युध्या वा वृद्ध्या वापि
योपिता । न स्यातन्येण कर्तव्यं किञ्चिन्कार्यं गृहेष्वपि
॥ २९ ॥ भक्तिः प्रेयसि संश्रितेषु कल्याण श्वश्रूषु नम्रं

गोदमें एककर उनपर तिरे हुए अपने ही जीव पाँव रही
है ॥ १७ ॥ जियोके जिये न तो अलगसे किसी वक्ता विधान
है न उपवासका । केवल पतिकी सेवाके बख्तर ही वे रवर्गमें
जा भयमकी है ॥ १८ ॥ जो स्त्री सदा स्नान करके सुगन्धित
रहती है, सदा मोठी बोली बोलती है, थोड़ा स्नाती है
और बहुत कम बोलती है वह मनुष्य नहीं, देवता है
॥ १९ ॥ हे मुझी हुई भौहोवाली ! पतिसे निरखल रहना,
मनहोके सामने नम्र रहना, सासोंको प्रसन्न रखना, यन्धुओंपर
प्रेम करना, परिवारपर अनुराग रखना, सौतसे ईसकर
बोलना, पतिके मित्रोंसे ममतापूर्वक बातें करना और पतिके
शत्रुओंसे बिरक्त रहना, प्रायः इन्हीं बातोंका पालन करना
पतिमें बिना सामग्रीके ही भक्ति करना कहा जाता है ॥ २० ॥
पति ही परमीका देवता है, पति ही यन्धु है, पति ही स्वर्ग
है, पति ही सुख है और पति ही जीवन है । पतिके अतिरिक्त
तीनों लोकोंमें स्त्रीका कहीं कुछ नहीं है ॥ २१ ॥ पति ही
जियोका देवता है, पति ही यन्धु है, पति ही गति है, पतिके
अतिरिक्त स्त्रीकी कोई दूसरी गति नहीं है, यद्वाचक कि देवता
भी नहीं ॥ २२ ॥ सती जियोके जिये घरसे बाहर पैर रखना
साँपके फणपर पैर रखनेके समान है, अपने घरके अतिरिक्त
दूसरा घर उनके जिये दूसरे द्वीपके समान है, कृपणके धनके
समान उनकी बोली संसारमें कोई सुन नहीं पाता और
अपने प्रियतमके अतिरिक्त कोई भी दूसरा पुरुष उनके

जिये भादोंकी चौधका चन्द्रमा ही है ॥ २३ ॥ हे मुझ ! दूसरोंके
पतियोंको निर्दयतापूर्वक सोख लेनेवाली धुकराले सुखाप
हुए ! मैं तुम्हें देखकर न तो इन्त्यांके ही कारण रोती हूँ न
क्रोधमे ही । मैं तो इस निगोड़ी ममताके कारण दुखी
होकर तुम्हारी दुर्बलता देख-देखकर रो रही हूँ ॥ २४ ॥ सती स्त्री
यदि पतिका लोक पाना चाहे तो उसे चाहिए कि चाहे
उसका पति मर गया हो या जीवित हो किन्तु वह कभी भी कोई
ऐसा कार्य न करे जो पतिको अप्रिय लगता हो या लज्जा करता
रहा हो ॥ २५ ॥ पतिपर प्रेम करनेवाली साध्वी जियो सौतोंके
साथ रहकर भी पतिकी बैसे ही सेवा करती है जैसे बड़ी
नदियों सैकड़ों छोटी-छोटी नदियोंको समुद्रके पास अपने साथ
ही पहुँचा देती है ॥ २६ ॥ हे अश्वी ! तू भले ही दिन-
रात बराबर हुयी पीटती हुई बाहर घूमा कर किन्तु यह समझ
रख कि घरके कोनेमें छिपकर बैठी हुई बहूकी चितवनसे ही
संसार भ्याकुल होगा, दुःखसे नहीं ॥ २७ ॥ पतिमहाश्रीकी
चञ्चल चितवन नेत्रके कोरोंसे बाहर बैसे ही नहीं जाती
जैसे जहर समुद्रके तटसे आगे नहीं बढ़ती और उनके मनकी
हृत्ता बैसे ही कोई नहीं समझ पाता जैसे कल्लीकी गन्ध
बाहर नहीं फैला करती ॥ २८ ॥ कन्या, युवती तथा वृद्धा
स्त्रीको भी घरमें कोई काम स्वतन्त्रता-पूर्वक नहीं करना
चाहिए ॥ २९ ॥ पतिपर भक्ति, अपने आश्रित रहनेवालोंपर
दया, सासोंके सामने सिर झुका हुआ, देवरानी-जेठानियोंपर

शिरः प्रीतिर्यातुषु गौरवं गुरुजने क्षान्तिः कृताग-
स्यपि । अग्न्यामा कुलयोषितां व्रतविधिः सोऽयं
विधेयः पुनर्मर्द्दुर्दयिता इति प्रियसखीवृद्धिः सपत्नी-
स्यपि ॥ ३० ॥ भास्वानुद्गतवाङ्मशो विगतघान्
वेद्याग्निकार्याहिनः सम्भारो रचितो विशुद्धवसने
कालोन्निने योजिते । स्नानं नाथ विधीयतां सुमन-
सोऽर्च्यन्तां शिखी जेज्यतां भोज्यन्तां गृहमागता
इति सती कर्त्तव्यमाभाषते ॥ ३१ ॥ मनसा वचसा
सततं भवन्ति या भर्तृवत्सलाः साध्व्यः । अपि
पतितं परिशीलं नयन्ति ता अक्षयं त्रिदिवम् ॥ ३२ ॥
मानाग्निवर्धनमहौषधमेतदेव स्त्रीणां सपत्न्यमिताद्व-
कीर्तनं यत् । अघ्याजनिर्भरभयप्रणतोत्तराणां मन्ये
विशेषत इदं कुलकन्यकानाम् ॥ ३३ ॥ यदेवेभ्यो यच्च
पित्रादिकेभ्यः कुर्याद्भर्ताऽभ्यर्चनं सत्क्रियातः ।
तस्यार्थं वै सा फलं नाभ्यर्चिता नारो भुङ्क्ते भर्तृशुभ-
चैव ॥ ३४ ॥ यस्य भार्या शुचिर्दत्ता भर्तारमनुगा-

मिनी । नित्यं मधुरवक्त्री च सा रमा न रमा रमा
॥ ३५ ॥ या नारी सुव्रता दत्ता विमलाऽमृतभा-
षिणी । सदाधारा पतिमाणा सा स्वर्गादतिरिच्यते
॥ ३६ ॥ रूपसम्पन्नमप्राप्यं प्रेमप्राप्यं प्रियंवदम् ।
कुलीनमनुकूलं च कलत्रं कुत्र लभ्यते ॥ ३७ ॥ लज्जा-
वशाघनतमन्धरदृष्टिपातं वैश्वभित्तं कुलवधूवदनार-
विन्दम् । तेषामनेकपुरुषमणिताधरेण सक्तिः कथं
भवति वेशवधूमुखेषु ॥ ३८ ॥ वश्यभावेन तुमनाः
सुव्रता सुसमाहिता । अनन्यचिता सुमुखी भर्तुः सा
धर्मचारिणी ॥ ३९ ॥ वृक्षमूलेऽपि दयिता यत्र तिष्ठति
तद्गृहम् । मासादोऽपि तथा होतो हारण्यसदृशः
स्मृतः ॥ ४० ॥ शुभ्रपृष्ठं गुरुकुलं प्रियसखीवृत्ति
सपत्नीजने भर्तुर्विमहतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं
गमः । भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भोगेष्वनुत्सेकिनी
पान्त्येयं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याध्वयः
॥ ४१ ॥ शुभ्रवामनुदग्धती युवजने वाक्ये ननाम्बुः

प्रेम, वहाँके प्रति आदरकी भावना और अपराधियोंपर क्षमा
ये स्वाभाविक गुण तो कुलीन स्त्रियोंमें होते ही हैं; साथ
ही उनमें विशेष बात यह भी होती ॥ कि ये अपनी
सौतेलोंको भी हसीछिमे प्यार करती हैं कि ये मेरे प्रियतमकी
प्यारी हैं ॥ ३० ॥ 'हे नाथ ! सूर्य निकल आया, चन्द्रमा
अस्त हो गया, देवताओंकी पूजा और हवनकी सामग्री
इकट्ठी हो चुकी है और समयानुकूल वस्त्र भी रख दिए
गए हैं । अब आप ज्ञान करके देवताओंका पूजन कीजिए,
अग्निमें आहुति दीजिए और अतिथियोंको भोजन कराइए ।'
सती स्त्रियाँ सदा इस प्रकार पतिको कर्त्तव्य बतलाती
रहती हैं ॥ ३१ ॥ जो साध्वी स्त्रियाँ मन और वाणीसे
सदा पतिपर प्रेम करती हैं वे अपने साथ अपने पतिल
पतिको भी अक्षय स्वर्ग-शोक ले जाती हैं ॥ ३२ ॥
स्त्रियोंका क्रोध बढ़ा देनेके लिये सौतेला नाम ले लेना
एक बड़ी तीव्र औषधि है किन्तु कुलीन मनेस्त्रियोंमें यह
विशेषता होती है कि ये सौतेला नाम सुनते ही स्वाभाविक
हरके साथ नीचे सिर झुका लेती हैं ॥ ३३ ॥ देवताओं या
पितरोंका जो भी पूजन आदि सखी क्रियासे पति करता है
उसका आधा फल पतिके अतिरिक्त दूसरेपर मन न
अगानेवाली स्त्री केवल पतिकी सेवा करके ही ले लेती
॥ ३४ ॥ जिसकी पत्नी पवित्र, चतुर, पतिके अनुकूल चलनेवाली

और मीठी बोली बोलनेवाली होती ॥ वही सचमुच सखी
है; सखी, सखी नहीं है ॥ ३५ ॥ नियमपर अटक रहनेवाली,
चतुर, स्वच्छ, असृत जैसी मधुर बोली बोलनेवाली, अश्व
आचरणवाली और पतिके सहारे प्राण रक्षनेवाली स्त्रीके
रहते स्वर्ग भी तुम्हारे हैं ॥ ३६ ॥ सुन्दरी, सभ्य, प्रेमसे भरी,
प्रिय बोलनेवाली, उत्तम कुलमें उत्पन्न तथा पतिके मनके
अनुसार चलनेवाली पत्नी मिलती कहाँ है ? ॥ ३७ ॥ जिस
क्रोधले लज्जाके कारण झुका हुआ और मन्द-मन्द चितवनवाला
कुलीन स्त्रीके मुखकमलका सुस्मन किया है उसका प्रेम
वेरवाओंके उन मुँहोंसे फैले हो सकता है जिनपर अनेक
पुरुषोंके दाँतोंके घाव बने रहते हैं ॥ ३८ ॥ वशमें रहनेवाली,
प्रसन्न चित्तवाली, नियमोंपर अटक रहनेवाली, स्थिर बुद्धिवाली
और पतिके अतिरिक्त दूसरेमें मन न अगानेवाली सुन्दर
मुँहवाली स्त्री ही धर्मका आचरण करनेवाली कही जाती
है ॥ ३९ ॥ यदि पंडुके तले भी प्रियतमा साथ हो तो वह
घर ही है किन्तु उसके बिना बड़े-बड़े भवन भी घनके ही
समान हैं ॥ ४० ॥ बेटी ! वहाँकी सेवा करना, सौतेले सखियों
जैसा व्यवहार करना, पतिसे अपमानित होकर भी क्रोध
न करना, कुटुम्बियोंसे अत्यन्त सज्जनताका व्यवहार करना
और सुख पाकर भी न, इतराना यह व्यवहार करनेवाली
स्त्रियाँ घरकी स्वामिनी हो जाती हैं तथा इसके विरुद्ध आचरण

स्थिता दाक्षिण्यैकपरायणा परिजने जिग्घा सपत्नी-
वपि । सन्तद्वातिथिसन्तुतो गृहभरे नैस्तन्यमाश्रि-
भ्रती वत्से किं बहुना भजस्व कुशलं भर्तुः प्रिये
जाग्रती ॥ ४२ ॥ भवश्रुश्रुत्योः पादौ तोययन्तो पति-
व्रता । मातापितृपरा नित्यं या नारी सा पतिव्रता
॥ ४३ ॥ सञ्चारो रतिमन्दिरावधि सखीकर्णावधि
व्याहृतं चेतः कान्तसमीहितावधि महामानोऽपि
मौनावधि । हास्यं चाधरपल्लवावधि पदन्यासावधि
रेक्षितं सर्वं सावधि नायधिः कुलमुखां प्रेम्णः परं
केवलम् ॥ ४४ ॥ सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्ये च
दृश्या । सुसंस्कृतोपस्करया व्यये वामुक्तहस्तया
॥ ४५ ॥ साध्वी शीलवती दयावसुमती दाक्षिण्यल-
ज्जावती तन्मी व्याजपराङ्मुखी स्मितवती मुग्धा
प्रियालापिनी । देवमाहात्म्यं धुसज्जनहिता यस्यास्ति
भार्या गृहे तस्यार्थागममोक्षभोगफलदा सैकैव पुण्या

सता ॥ ४६ ॥ सैव साध्वी सुभक्तश्च सुमेहः सरसो-
ज्ज्वलः । पाकः सञ्चायते यस्याः करादप्युदगादपि
॥ ४७ ॥ ज्ञानाग्नेो वदु साधिता रसवती देवाग्नि-
कार्योचितः सम्भारो रचिनो विशुद्धवसने कालो
चिते योजिते । ज्ञानं नाथ विधीयतामतिथयः
सीदन्ति नान्या त्वरा धन्यं योधयते शनैर्गति पति
मध्याह्नसुप्तं सती ॥ ४८ ॥ हेलामात्रविस्त्रितत्रि-
भुवनाः कर्णाञ्जलोसंसितास्तादृशस्य मदस्य च
प्रतिधयो लज्जार्धसङ्कोचिताः । तीक्ष्णा हीरकस्-
खयो मुनिमनोमार्गिकयवेधोज्ञताः कल्पन्तां प्रमदाय
यः कुलवधूलीलाकटाक्षचक्षुः ॥ ४९ ॥

श्रीश्रीभार्गवम् — अग्राह्यं हृदयं तथैव यद्वज्रं यद्वर्णान्त-
र्गतं भायः पर्यन्तसप्तममार्गविषम स्त्रीणां न विद्यायते ।
चित्तं पुष्करपत्रतोयतरलं विहङ्गिगशंसितं नारी नाम
विपाङ्कुरैरिव लताक्षोपैः समं वर्धिता ॥ १ ॥ अत एव

करनेवाली संगके लिये रोग बन बैठती है ॥ ४१ ॥ बेटी !
बहोंकी सेवा करते हुए, ननदोंका कहना मानते हुए, परिवारके
लोगोंपर अनुव्रजता और सौतीके साथ स्नेहका व्यवहार
करते हुए, अतिथि-साकारके लिये सदा प्रस्तुत रहते हुए,
घरका भार सँभालनेमें आलस्य न करते हुए, अधिक क्या
कहूँ—अपने पतिके मनका काम करनेमें सदा सजग रहते हुए
सुम कस्याणका भोग करनेवाली बनो ॥ ४२ ॥ जो स्त्री माता-
पिताको मानती हुई और सास-ससुराकी सेवा करती हुई
पतिसे प्रेम करती है वही पतिव्रता है ॥ ४३ ॥ कुलीन स्त्रियोंका
चलना रति-भवनतक, बोली सखीके कार्जनेतक, चित्त प्रियतमकी
चाहनेतक, अत्यधिक रुटना चुप रहनेतक, हँसी कोमल घोंठतक
और देखना पग बढ़ानेतक सांमित होता है, केवल उनका
प्रेम ही असंशय होता है ॥ ४४ ॥ पत्नीको चाहिए कि वह
सदा प्रसन्न और घरके कामोंमें सजग रहे, अपने घरकी सब
सामग्री स्वच्छ और सजाकर रखे किन्तु कभी सुने इश्वर्य
न करे ॥ ४५ ॥ जिसके घरमें कुलीन, सुशील, दयालु, पति-
व्रता, शूद्र-सूत्र मुँह फेरनेवाली, मुस्कराती रहनेवाली, भाँकी-
माली, प्रिय बोलनेवाली और देवता, माझण, भाई-बन्धु तथा
सज्जनोंकी भलाई करनेवाली स्त्री होती है उसे धर्म, अर्थ,
काम और मोक्ष-रूपी फल देनेवाली पवित्र ज्ञता समझना
चाहिए ॥ ४६ ॥ वही स्त्री साध्वी है जिसके हाथसे चिकना,
स्वच्छ और मीठा भोजन (आत) बनता है और जिसकी

कोखसे उत्तम, भक्त, सुन्दर, स्नेह करनेवाला, स्वस्थ और
गुणों पुत्र उत्पन्न होता है ॥ ४७ ॥ दोपहरसे सोए हुए किसी
पुण्यवान् पतिको उसकी सती स्त्री यह कहकर धीरेसे जगा
रही ॥ कि—'स्नानके लिये जल तैयार है, रसोई बन गई है,
देव-पूजन और हवनकी सामग्री इकट्ठी रखी है, समयके
अनुकूल मन्त्र वस्त्र रख दिए गए हैं, हे नाथ ! अब आप
स्नान कर लीजिए । नैवे तो कोई शीघ्रताकी बात नहीं है
किन्तु अतिथि का प्य रहे है !' ॥ ४८ ॥ उत्तम कुलकी
बहनोंकी आगते आभी मुँद्री हुई आँखोंकी वे स्वाभाविक
चञ्चल बौकी चित्तवर्जें आपको मस्त किए रखें जो खेल खेलमें
ही तीनों लोकोंमें हृदयही उपजा देती हैं, कर्णाञ्जलसे सजी
रहती हैं, यौवन और मस्तीकी भयङ्कार हैं तथा मुनियोंके मन-
रूपी मार्गिकको वेधनेके लिये हीरा वेधनेवाली तीखी सुई
है ॥ ४९ ॥

स्त्रियोंके स्वभावकी निन्दा : स्त्रियोंका हृदय वैसे ही
नहीं गढ़ा जा सकता जैसे दर्पणमें पड़ी हुई भुँहकी छाया
नहीं पकड़ी जा सकती । इनके मनके भाव वैसे ही
उलझनसे भरे (विषम) होते हैं जैसे पहाड़ोंपरकी
पगड़ियाँ ! इनका चित्त भी कमलके पत्तेपर पड़ी हुई जलकी
बूँदके समान चञ्चल होता है, इसीलिये विद्वानोंका कहना है
कि नारी नामसे यह विषका बाँकुर ही बढ़कर दोषोंसे भरी
छतरके रूपमें बढ़ गया है ॥ १ ॥ [इनकी बोलीमें मधु तथा

निपीयतेऽधरो हृदयं मुष्टिभिरेव ताड्यते । पुरुषैः
सुखलेशवञ्चितैर्मधुलुब्धैः कमलं यथालिपिः ॥ २ ॥
अनङ्कुरितकूर्चकः स तु सितोपलाब्धं पयः स एव
धृतकूर्चकः सलयणाम्भुतकोपमः । स एव सितकूर्चकः
कथितशुग्गुलङ्गेगङ्गवन्ति हरिणीदृशां प्रियतमेषु
भावास्त्रयः ॥ ३ ॥ अनर्धित्वान्मनुष्याणां भवात्परिज-
नस्य च । मर्यादायाममर्यादाः स्त्रियस्तिष्ठन्ति सर्वदा
॥ ४ ॥ अनृतं सत्यमित्याहुः सत्यं चापि तथानृतम् ।
इति यास्ताः कथं धीरैः संरक्ष्याः पुरुषैरिह ॥ ५ ॥
अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमतिलोभता । अशाचं निर्द-
यत्वं च स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः ॥ ६ ॥ अन्यं मनुष्यं
हृदयेन कृत्वा अन्यं ततो दृष्टिभिराह्वयन्ति । अन्यत्र
मुञ्चन्ति मदमत्तेकमन्यं शरीरेण च कामयन्ते ॥ ७ ॥
अन्तःपुराः साम्यमुखा अगाधहृदया स्त्रियः । अन्त-
र्विषा यहिःसौम्या भक्ष्या विषकृता इव ॥ ८ ॥ अन्त-

र्विषमया होता वहिष्यैव मनोरमाः । गुञ्जाफलसमा-
कारा योयितः केन निमिताः ॥ ९ ॥ अपरिहतास्ते
पुरुषा मता मे ये स्त्रीषु च श्रोतु च विभवसन्ति । श्रियो
हि कुर्वन्ति तथैव नार्यो भुञ्जन्कन्यापरिसर्पणानि
॥ १० ॥ अपसरत रे दूरादस्मात्कटाक्षविषानलात्प्रकृ-
तिविषमाद्योषित्सर्पाद्विलासफणाभृतः । इतरफणिना
दष्टः शक्यश्चिकित्सितुमौषधैश्चटुलवनिताभोगिप्रस्तं
त्यजन्ति हि मन्त्रिणः ॥ ११ ॥ अलकको यथा रक्तो
निष्पीड्य पुरुषस्तथा । अवलाभिर्विलासकः पादमूले
निपात्यते ॥ १२ ॥ अलाभात्पुरुषाणां हि भवात्परि-
जनस्य च । वधवन्धभयाच्चैव तथा गुप्ता हि योषिताः
॥ १३ ॥ अविद्वांसमलं लोके विद्वांसमपि वा पुनः ।
प्रमदा ह्युत्पद्यं नेतुं कामकोधवशानुगम् ॥ १४ ॥ अस्-
त्वेत्यर्थं स्त्रीणामस्माकं भवति प्रभो । पापीयसो
नरान्यद्वै लज्जां त्यक्त्वा भजन्ति ताः ॥ १५ ॥ अला-

हृदयमें हाताहल विष रहता है] इसीलिये तनिक-सा सुख
पानेके फेरमें पड़े हुए पुरुष इनके अन्तर तो पीते हैं किन्तु
हृदय (स्त्रियों को मुष्टियोंसे मारते हैं, जैसे और कमलका रस
तो पी लेते हैं किन्तु अपने पैरोंसे उसे कुचल भी डालते हैं ॥ २ ॥
प्रियतमोंके प्रति खगनयनी स्त्रियोंके तीन प्रकारके भाव हुआ
करते हैं—१. जब उनके मुँहपर बाल नहीं उगे रहते तब
बड़े सुख उन्हें चीनी मिले हुएके समान लगता है, २. जब
बाल (मुँह-दाढ़ी) निकल आते हैं तब वही मुँह कारे पानी
और मूँहके समान लगते लगता है और ३. जब बाल पककर
उमरके हो जाते हैं तब उसे देखकर वे ऐसी घबराती हैं मानो
गूगलका कादा सामने आ गया हो ॥ ३ ॥ एक तो रति करनेके
लिये कहनेवाले पुरुष मिलते नहीं और दूसरे कुटुम्बियोंका
भय बना रहता है, इसीलिये मर्यादामें न रहनेवाली भी
स्त्रियाँ सदा मर्यादामें रहती दिखाई देती हैं ॥ ४ ॥ जो
स्त्रियाँ झूठको सत्य तथा सत्यको झूठ कहती हैं उनकी रच
भला धीर पुरुष कर ही कैसे सकते हैं ? ॥ ५ ॥ झूठ बोलना,
बिना विचारे साहस कर बैठना, झूठी चिकनी-पुपड़ी बातें
बनाना, मूर्खता, अत्यधिक लोभ, अपवित्रता और निर्दयता
वे अदगुण स्त्रियोंमें जन्मसे ही उत्पन्न रहते हैं ॥ ६ ॥ स्त्रियाँ
किसी पुरुषको तो हृदयमें बिठाए रहती हैं, किसीको चितवन
पलाकर बुलाती हैं, किसीको देखकर ईसती-खिलखिलाती
हैं और शरीर देकर किसी दूसरेको ही चाहती रहती हैं ॥ ७ ॥

स्त्रियोंका हृदय क्या दुष्ट होता है, सुख क्या सुखावना
होता है और हृदयकी तो धाह नहीं लगती । जान पड़ता
है ऊपरसे सुन्दर दिखाई देनेवाली विषभरी खानेकी वस्तुके
समान ही वे भीतरसे विषभरी तथा ऊपरसे हलकी रसीली
बनाई गई हैं ॥ ८ ॥ इनके भीतर तो विष भरा हुआ है
किन्तु बाहरसे हलकी सुन्दर हैं । मुँहकी फलके समान
रूपवाली इन स्त्रियोंकी बना किसने दिया ? ॥ ९ ॥ वे मनुष्य
जैसी समझमें मूर्ख ही हैं जो लक्ष्मी और स्त्रियोंमें विश्वास
करते हैं । लक्ष्मी तथा स्त्रियोंकी प्रति नागिनके समान ही
देवी होती है ॥ १० ॥ अरे मनुष्यो ! स्वभावसे देवे (कुटिल),
तिरछी दृष्टिकपी विषकी आगवादी तथा बिकासरूपी फलवादी
इस स्त्री-रूपी साँपको दूरसे ही छोड़कर भागो, क्योंकि दूसरे
साँपके बसे हुए प्राणीकी चिकित्सा तो औषधियोंसे हो भी
सकती है किन्तु पञ्चज स्त्रीरूपी साँपके बसे हुए प्राणीको
तो बड़े-बड़े मन्त्र जाननेवाले भी नहीं छेड़ते ॥ ११ ॥
रक्त (आसक्त) पुरुषको स्त्रियाँ महात्वरकी भाँति ही बलपूर्वक
निचोड़कर पैरों तले मसल देती हैं ॥ १२ ॥ पुरुषोंसे मित्र
न पानेसे, परिवारके डरसे तथा मारे जाने और बाँधे जानेके
डरसे ही स्त्रियाँ गुल (सुरचित) हैं, (वे स्वयं सुरचित
नहीं रह सकतीं) ॥ १३ ॥ काम और क्रोधके वशमें आप
हुए विद्वान् या मूर्ख पुरुषको भी कुपन्धमें ले जानेके लिये
एक स्त्री ही बहुत समझी ॥ १४ ॥ अरे मनुष्य ! स्त्रियोंका पद नीच

पैर्मधुरैश्च काश्चिदपराणां लोकिताः सस्मितैरन्यान्वि-
भ्रमतदपनाभिरितरानङ्गैरनङ्गोऽज्यलैः । आचारैश्चतुरैः
परानभिनयैरभ्यान्धुवः कम्पनैरित्थं काश्चन रञ्जयन्ति
सुदृशो मध्ये मनस्तथन्यथा ॥ १६ ॥ आधर्तः संशयाना-
मविनयभवजं पत्तनं साहसामां दोषाणां सन्निधानं कपट-
शतगृहं क्षेत्रमप्रत्ययानाम् । दुर्गोष्ठं यन्महद्भिन्नैरवर-
वृषभैः सर्वमायाकरणं स्त्रीयन्त्रं केन लोके विपममृत-
मयं धर्मेनाशय सृष्टम् ॥ १७ ॥ आस्तां तावत्किमन्येन
दीरात्प्येनात्र योषिताम् । विधूतं स्योदरेणापि भ्रन्ति
पुत्रमपि स्वकम् ॥ १८ ॥ उत्तमानामपि स्त्रीणां
विश्वस्तो नैव विद्यते । राजप्रियाः कैरावण्यो रमन्ते
मधुपैः सह ॥ १९ ॥ उशना घेद यक्ष्णस्त्रं यक्ष घेद
वृहस्पतिः । स्त्रीबुद्ध्या न विशिष्येत तस्माद्रक्ष्याः
कथं हि ताः ॥ २० ॥ एकेन स्मितपाटलाधररुचो
जल्पन्त्यनरुपाक्षरं वीक्षन्तेऽन्यमितिः स्फुटन्कुमुदिनी-
फुल्लोज्जसन्नोचनाः । दूरोदारस्वरिचित्रविभयं

ध्यायन्ति चान्यं धिया केनेन्यं परमार्थनोऽर्थवद्विष-
मेमास्ति वामध्रुवाम् ॥ २१ ॥ पताः स्वार्थपरा नार्यः
केवलं स्वसुखे रताः । न तासां वल्लभः कोऽपि सुतोऽपि
स्वसुखं विना ॥ २२ ॥ कामनाया किरातेन वितता
मूढचेतसाम् । नार्यो नरविहङ्गमानामङ्गवन्धनयामुराः
॥ २३ ॥ कार्कश्यं स्तनयोर्दृशोस्तरलताऽलीकं मुखे दृश्यते
कौटिल्यं कक्षस्थले प्रवचने मान्यं त्रिके स्थूलता ।
भीरुत्वं हृदये सदैव कथितं मायाप्रयोगः प्रिये यासां
दोषमणो गुणा भृगदृशां ताः किं नराणां प्रियाः
॥ २४ ॥ कुर्वन्ति तावत्प्रथमं प्रियाणि यावन्न जानन्ति
नरं प्रसक्तम् । ज्ञान्वाथ तं मन्मथपाशवद्धं प्रस्तामिषं
मीनमिवोद्धरन्ति ॥ २५ ॥ कुलीना रूपवत्यश्च नाथ-
न्यश्च योषितः । मर्यादासु न तिष्ठन्ति स दोषः स्त्रीषु
नारद ॥ २६ ॥ के नाम न धिनश्यन्ति मिथ्याज्ञाना-
क्षितम्विभीम् । रम्यां बुद्धोपसर्पन्ति ये ज्वालां शलभा
इव ॥ २७ ॥ गुणाश्रयं कीर्तियुतं च कामतं पति विधेयं

भयहार ही हमारा सबसे बड़ा पाप है कि वे निर्लज्ज होकर
पापियोंको प्रसन्न करती रहती हैं ॥ १२ ॥ सुन्दर आँखोंवाली
स्त्रियाँ किसीको मधुर बोलतीसे, किसीको मुस्कराहट-भरी
चितवनसे, किसीको कामके मदसे भरे गोरे-गोरे अंगोंके हाव-
भावोंसे, किसीको अनुरागसे भरे व्यवहारोंसे और किसीको भीड़
मचा-नचाकर जब रिक्ताने लगती है तब समझती हैं कि इनके
मनमें कुछ और ही है ॥ १३ ॥ शंकाओंकी भँवर, बिडार्हका
घर, साहसका गाँव, दोषोंका भयदार, सैकड़ों कपटोंसे भरा
हुआ अविद्यासका क्षेत्र, सारी मायाका घर तथा विष और
भस्मसे भरा यह स्त्री-रूपी यन्त्र धर्मका नाश करनेके लिये
रच किसने दिया जिसे बड़े-बड़े तथा अत्यन्त श्रेष्ठ मनुष्य कुले
भी नहीं ॥ १४ ॥ इनकी और दुरता ता जाने दीजिए, वे
(१० महीने) पेटमें रखे हुए अपने पुत्रसकल को मार डालती
हैं ॥ १५ ॥ उत्तम स्त्रियोंका भी विश्वास नहीं रह गया ।
कुमुदिनियों यद्यपि प्यारी हैं चन्द्रमाकी, फिर भी वे रमय
करती हैं मधुपों (मदिरा पीनेवालों, मीरों) के साथ ॥ १६ ॥
शुक्राचार्य और बृहस्पति जैसे मन्त्री जिस शास्त्रको जानते हैं,
वह भी जिनके सामने कुछ नहीं है, उनकी रक्षा हो ही कैसे
सकती है ॥ २० ॥ जाल ओठपर मुस्कराहटकी मल्लक छिप
हुए स्त्रियाँ किसीके साथ तनिक-सो बातें ही कर लेती हैं,
किसीको खिली हुई कुमुदिनीके समान विकसित और उल्लाससे

भरी आँखोंसे देख लेती हैं और अत्यन्त सुन्दर रूपवाली
तथा अत्यधिक धनवाले किसी पुरुषको मनसे सोचती-रहती हैं,
अतः वह नहीं जान पड़ता कि सचमुच इनका प्रेम है किससे !
॥ २१ ॥ वे परम स्वार्थी नारियाँ केवल अपने सुखमें ही लीन
रहती हैं । अपने सुख छोड़कर न तो इनका कोई प्रियतम है न
पुत्र ही है ॥ २२ ॥ कामदेव नामके बहेलियाने मूर्ख बुद्धिवाले
मनुष्य-रूपी पक्षियोंको फँसनेके लिये स्त्रीरूपी जाल फैला
रक्खा है ॥ २३ ॥ स्तनोंमें कठोरता, नेत्रोंमें रस, मुँहमें मूढ,
बाजोंमें बौकल्य, बोलोंमें शिथिलता, मितम्वमें मोटापन, हृदयमें
वरपोकपन और प्रियतमपर सदा कुल-प्रपञ्चका प्रयोग, ये सब
वर्गुण भी जिसके संयोगसे गुण माने जाते हो उन्हें पुरुष इतना
मान क्यों देते हैं ! ॥ २४ ॥ स्त्रियाँ तबतक ही पुरुषके मनका
किया करती हैं जबतक वे उसे अपनेमें आसक्त नहीं जान
लेतीं । फिर उसे कामदेवके फँसमें बैठा देखकर जो वे (वशीमें
लते) मोसके टुकड़ेकी निगली हुई मछलीके समान झटक देती
हैं ॥ २५ ॥ हे नारद ! स्त्रियोंमें यही एक बड़ा भारी दोष
है कि उत्तम कुलमें उत्पन्न, सुन्दर रूपवाली तथा सौभाग्यवती
होकर भी वे मर्यादामें नहीं रहा करतीं ॥ २६ ॥ जो
अपने झूठे ज्ञानसे ज्वालाके समान स्त्रीको सुन्दर समझकर
पतंगके समान उसकी ओर दौड़ पड़ते हैं, उनमेंसे ऐसे कौन
हैं जो नष्ट नहीं हो जाते ! ॥ २७ ॥ गुणोंके भयदार, धरास्वी,

सधनं रतिज्ञम् । विहाय शीघ्रं धनिता व्रजन्ति नरा-
स्तरं शीलगुणादिहीनम् ॥ २८ ॥ चतुरः सृजनः पूर्व-
मुपायास्तेन वेधसा । न सृष्टः पञ्चमः कोऽपि मृह्यस्ते
येन योषितः ॥ २९ ॥ जल्पन्ति सार्धमन्येन पश्यन्त्यन्यं
सविभ्रमम् । हृदये चिन्तयन्त्यन्यं प्रियः को नाम
योषिताम् ॥ ३० ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नामापि परि-
वर्जयेत् । स्त्रीणामिह हि सर्वासां य इच्छेत्सुखमा-
त्मनः ॥ ३१ ॥ नाङ्गिता अपि दृष्टेन शस्त्रैरपि विख-
ण्डिता । न वशं योषितो यान्ति न दानैर्न च संस्तवैः
॥ ३२ ॥ तावन्स्यात्सुप्रसङ्गास्यस्तावद्गुरुजने रतः ।
पुरुषो योषितां यावन्न शृणोति वचो रहः ॥ ३३ ॥
दर्शनादरते चित्तं स्पर्शनाद्ग्रसते यत्नम् । सङ्गमाद्ग्रसते
वीर्यं नारी प्रत्यक्षराजसी ॥ ३४ ॥ न कामभोगान्वहु-
लाम्नालङ्काराधत्तञ्जयान् । तथा हि यदु मन्यन्ते यथा
रत्याः परिग्रहम् ॥ ३५ ॥ न दानेन न मानेन नाज्वेन न

सेवया । न शस्त्रेण न शास्त्रेण सर्वथा विपत्ताः स्त्रियः
॥ ३६ ॥ न भयान्नाप्यनुक्रोशान्नार्थहेनोः कथञ्चन । न
हानिकुलसम्बन्धान्निवृत्तिरिति भर्तृषु ॥ ३७ ॥ नय-
नविकारैरन्यं वचनैरन्यं विवेष्टितैरन्यम् । रमयति
सुरतेनाम्यं स्त्री बहुरूपा निजा कस्य ॥ ३८ ॥ न लज्जा
न विनीतत्वं न दाक्षिण्यं न भीडता । प्रार्थनाभाव
एवैकः सतीत्ये कारणं स्त्रियाः ॥ ३९ ॥ न विवेके न
शस्त्रेण नाग्निना न च मृत्युना । अप्रतोकारपाठव्याः
स्त्रीभिरेव स्त्रियः कृताः ॥ ४० ॥ न स्त्रीणामप्रियः
कश्चिन्प्रियो चापि न विद्यते । भावस्तुष्टमिष्यारण्ये प्रार्थ-
यन्ति नवं नवम् ॥ ४१ ॥ नातिप्रसङ्गः प्रमदासु कार्यो
नेच्छेद्वलं स्त्रीषु विचर्धमानम् । अतिप्रसक्तैः पुरुषैर्य-
तस्नाः क्रीडन्ति काकैरिव लनपक्षैः ॥ ४२ ॥ नासां
कश्चिदगम्योऽस्ति नासां च ययसि स्थितिः । विरूपरूप-
वन्तं वा पुमानित्येव भुञ्जते ॥ ४३ ॥ पशुष्वपि च देवयै वे

सुन्दर, आशाकारी, धनवान् तथा रतिकी कला जाननेवाले
पतिको छोड़कर भी स्त्रियाँ बिना गुण, शील आदिवाले दूसरे
पुरुषके पास चल देती हैं ॥ २८ ॥ पहले मझाने केवल चार
(साम, दाम, भेद, दण्ड) ही उपायोंकी रचना की । किन्तु ऐसा
उसने पाँचवाँ कोई उपाय नहीं रचा जिससे ये स्त्रियाँ वशमें हो
सकें ॥ २९ ॥ किसी स्त्रियोंके साथ तो बातें करती हैं, किसीको
हाव-भावके साथ देखती हैं और मनमें किसी दूसरेको ही
सोचती रहती हैं । तब बताइए इनका प्यारा है कौन ? ॥ ३० ॥
ओ मनुष्य अपभी भलाई चाहे उसे चाहिए कि वह सात
प्रधान करके भी उनका नामसक लेना छोड़ दे ॥ ३१ ॥ न तो
स्त्रियाँ उपदेशे पीठनेसे वशमें आतीं, न शस्त्रोंसे काट काजनेसे,
न दानसे और न स्तुतिसे ही ॥ ३२ ॥ पुरुष अभीतक प्रसन्न
रह सकता है और सर्वाधिक वह बड़ोंपर प्रेम रख सकता है
जबतक एकान्तमें कहीं हुई स्त्रियोंकी बातें उसके कानमें नहीं
पड़ती ॥ ३३ ॥ नारी तो प्रत्यक्ष राजसी ही है क्योंकि वह
देखने-मात्रसे मन हर लेती है, छू जाते ही बख और सम्भोग
करते ही वीर्य हर लेती है ॥ ३४ ॥ मम-चाहा ऐश्वर्य और
हेरसे गहनोंको भी वे उतना अच्छा नहीं समझती जितना
रति-दानको समझती हैं ॥ ३५ ॥ स्त्रियाँ सभी प्रकारसे
कुटिल (विषम) होती हैं क्योंकि न तो वे दानसे वशमें
होतीं, न आदर देनेसे, न पराक्रमसे, न सेवासे, न शस्त्रसे
और न शास्त्रसे ही ॥ ३६ ॥ न तो स्त्रियाँ दूरसे पतिके

भरोसे रहतीं, न दयासे, न धनके आकांक्षसे और न जालि
तथा कुशलके सम्बन्धसे ही ॥ ३७ ॥ ओ किसीको चाँहिं
मटकाकर, किसीको बोलीसे, किसीको हाव-भावोंसे और किसी
दूसरेको रतिक्रीड़ासे प्रसन्न रखती है वह अनेक रूपवाली
स्त्री भला किसी सगी हो सकती है ॥ ३८ ॥ स्त्रियाँ न
तो जावके कारण सती रह जातीं, न मझताके, न चतुरता
(अनुकूलता) के और न दरपोक होनेके कारण ही । सब तो,
वह है कि रति करनेके लिये कोई कहनेवाला पुरुष ॥
उन्हें नहीं मिलता इसीसे वे सती रह जाती हैं ॥ ३९ ॥ न तो
स्त्रियोंकी कठोरता विषसे दूर हो सकती, न शस्त्रसे और न
अग्निसे ही, बहोतक कि मौतके डरसे भी उनकी बुद्धता नहीं
भूझती । अतः, जान पड़ता है कि कठोर स्त्रियोंमें ही इन्हें
कठोर बनाया है ॥ ४० ॥ न तो स्त्रियोंका कोई प्यारा
ही है न शत्रु ही । वे तो वनमें गौशोंकी भाँति सदा भया-
नवा ही पुरुष चाहती रहती हैं ॥ ४१ ॥ न तो स्त्रियोंके
साथ अत्यधिक प्रसङ्ग ही करना चाहिए और न वही सोचना
चाहिए कि स्त्रियोंके सम्पर्कसे बल बढ़ेगा क्योंकि अत्यधिक
आसक्त पुरुषोंके साथ वे परकटे कौशोंके समान लेख करती
हैं ॥ ४२ ॥ इन स्त्रियोंकी आशुका कोई भरोसा नहीं है ।
ऐसा कोई पुरुष भी नहीं है जिसके साथ वे सम्भोग न
कर सकें । वे तो पुरुष-मात्रका उपभोग करना जानती हैं,
चाहे वह सुन्दर हो वा असुन्दर ॥ ४३ ॥ हे देवर्षि (मारद) !

चान्ये कुत्सिता जनाः । स्त्रीणां मग्न्यो लोकेऽस्मिन्नास्ति
कश्चिन्महामुने ॥ ४४ ॥ भर्ता यद्यपि नीतिशास्त्रनिपुणो
विद्वान्कुलीनो युवा दाता कर्णसमः प्रसिद्धविभवः
शृङ्गारवीक्षागुरुः । स्वमाणाधिककल्पिता स्वधनिता
कोहेन संलालिता तं कान्तं प्रविष्टाय सैव युवती जारं
पतिं वाञ्छति ॥ ४५ ॥ भोजनाच्छादने दद्यादनुकाले
व सङ्गमम् । भूषणार्थं च नारीणां न ताभिर्मन्त्रयेत्सुधीः
॥ ४६ ॥ माद्यति प्रमदां दृष्ट्वा सुभां पीत्वा न माद्यति ।
यस्माद्दृष्टिप्रदा नारी तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥ ४७ ॥
मुक्ताहारलता रत्नमणिमया हेमास्तुलाकोटया रागः
कुङ्कुमसम्भ्रमः सुरभयः पौष्प्यो विचित्राः स्रजः । पास
श्चित्रदुकूलमल्पमतिभिर्नार्यामहो कल्पितं वाहान्तः
परिपश्यतां तु निरयो नारीति नास्ति कृतः ॥ ४८ ॥
यत्र स्त्री यत्र कितयो वालो यत्र प्रशासिता । राजन्नि-
मूलतां याति तद्गृहं भार्गवोऽग्रवीत् ॥ ४९ ॥ यदन्त-
स्तत्र जिह्वायां यज्जिह्वायां न तद्वहिः । यद्वहिस्तत्र

कुर्वन्ति विविन्नचरिताः स्त्रियः ॥ ५० ॥ यदि स्था-
व्यनीलो वल्लिश्चन्द्रमा दहनान्मकः । सुप्तादः सागरः
स्त्रीणां तत्सतीत्यं प्रजायते ॥ ५१ ॥ यदि स्थान्मग्न्यकः
शीनः प्रोप्लो वा शशलाञ्छनः । स्त्रीणां नदा सतीत्यं
स्थाद्यदि स्याद्दर्शनो हितः ॥ ५२ ॥ यस्य जिह्वामहकं
स्याज्जीविन्साग्रशतं च यः । श्रान्त्यकर्मा स्त्रीदोषान्-
सोऽप्यनुकन्या लयं व्रजेत् ॥ ५३ ॥ यस्य स्त्री नम्य
भोगेच्छा निःस्त्रीकस्य क भोगभूः । स्त्रियं त्यक्त्वा
जगत्पक्तं जगत्पक्त्वा स्वो भवेत् ॥ ५४ ॥ या भार्या
दुष्टचरिता सततं कलहप्रिया । भार्यारूपेण सा हो या
विदग्धैर्दारुणा जग ॥ ५५ ॥ या हि शब्दद्वहुमना
रह्यन्ते दयिताः स्त्रियः । अयि ताः सम्प्रमज्जन्ते
कुट्टजान्धजडवामनैः ॥ ५६ ॥ या मोहान्मन्यते मूढो
रक्तेयं मम कामिनी । स तस्या यशसो नित्यं भवेन्की-
ञ्चाशकुन्तयन् ॥ ५७ ॥ श्रावने धर्तमानानां मृष्टाभरण-
वाससाम् । नारीणां स्वेरवृत्तानां स्पृहयन्ति कुलस्त्रियः

॥ महामुने ! संसारमें स्त्रिये भी लैंगिक-सुखे या नीच
पुरुष हैं उनमेंसे एक भी ऐसा नहीं है जिसके साथ वे
सम्भोग न कर लें ॥ ४४ ॥ पति भले ही नीतिशास्त्रमें चतुर,
विद्वान्, उत्तम कुलवाला, युवा, कर्णके समान दासी, प्रसिद्ध
देववर्षवाला, शृङ्गारकी कलाओंका गुरु, अपनी पत्नीको
प्रार्थिते बढ़कर माननेवाला, तथा स्नेहपूर्वक उसका पालन-
पोषण करनेवाला हो किन्तु ऐसे प्रियतमका भी छोड़कर
स्त्री जार पतिको चाहती है ॥ ४५ ॥ बुद्धिमान् मनुष्योंको
चाहिए कि वे स्त्रियोंको भोजन, वस्त्र, आगु कालमें समागम
और गहने आदि भले ही दें किन्तु उनसे कभी सम्मति न लें
॥ ४६ ॥ स्त्रीको देखकर ही पुरुष मत्तवाला हो जाता है और
मदिराको पीकर भी मत्तवाला नहीं होता । अतः चितवन-
रूपी मदिरावाली स्त्रीको तो छोड़ ही देना चाहिए ॥ ४७ ॥
मूर्ख मनुष्य भले ही नारियोंके लिये मोतीके हार, सोनेके
मणि-जड़े बजते हुए बिजुए, केसरका अञ्जराग, फूलोंकी
सुन्दर, सुगन्धित माछाई और रत्न-चिह्नके रेशमी वस्त्र
छुटाया करें किन्तु बाहर-भीतर चारों ओर दृष्टि दौड़ानेवाले
भले आदमी तो उन्हें 'नारी' नामका नक्क ही समझते हैं
॥ ४८ ॥ हे राजन् ! शुकाचार्यने कहा है कि जिस घरमें
बाळक (मूर्ख), स्त्री और भूर्त्त (कर्ता-धर्ता) होते हैं वह
निर्युक्त हो जाता है ॥ ४९ ॥ जो मनमें है वह जीभपर

नहीं, जो जीभपर है वह कहती नहीं और जो कहती है वह
करती नहीं । सचमुच स्त्रियाँ यह विविन्न स्वभावकी होती
हैं ॥ ५० ॥ यदि प्राग ठहरा हो जाय, चन्द्रमा जलने लगे
और समुद्र भीड़े जलवाला हो जाय तब स्त्रियाँ भी सती
हो सकती हैं, धर्यान् न कभी यह सब होगा, न कभी
स्त्रियाँ सती होंगी ॥ ५१ ॥ यदि यदि शीतल, चन्द्रमा
गरम और दुर्जन हितकारी हो जाय तो स्त्रियाँ भी सती
हो सकती हैं ॥ ५२ ॥ यदि किसीकी एक लक्ष जोभें हों,
सौ वर्षसे भी अधिक आयु हो और सदा सब काम छोड़कर
वह स्त्रियोंके केवल दोष ही दोष गिनता रहे तो भी वह
बिना सारे दोष गिने ही मर जायगा ॥ ५३ ॥ जिसके पास
स्त्री है, उसे भोगकी इच्छा है, जिसके पास स्त्री नहीं है उसे
भोगकर इच्छा होगी ही कहाँसे ? स्त्रीको छोड़ दिया तो सारा
संसार छूट गया और संसार छूट गया तो मनुष्य सुखी हो
गया ॥ ५४ ॥ परिहर्तोंको चाहिए कि वे दुष्ट चरित्रवाली तथा
सदा भगदा-टपटा चाहनेवाली पत्नीको स्त्री-रूपमें भयङ्कर
बुद्धापा समझें ॥ ५५ ॥ जिन स्त्रियोंका सदा बहुत मान
किया जाता है तथा प्यारी समझकर जिनकी रक्षा की जाती है
वे भी कुबड़े, अन्धे, मूर्ख और पौनसे जा फैसली हैं
॥ ५६ ॥ जो मनुष्य मोहके कारण यह मानता है कि यह स्त्री
मुझसे प्रेम करती है वह परकटे खेदके पत्नीकी भाँति सदाके

॥ ५८ ॥ रक्तोऽभिजायते भोम्यो नारीणां शटको
यथा । घृण्यते यो दशालम्बी नितम्ये विनिवेशितः
॥ ५९ ॥ रुक्षायां स्नेहसम्भारं कठोरायां सुमार्दवम् ।
नीरसायां रसं बालो बालिकायां विकल्पयेत् ॥ ६० ॥
लोकानामपि दातारं कर्तारं मानसान्त्वयोः । रक्षितारं
न मृष्यन्ति भर्तारं परमस्त्रियः ॥ ६१ ॥ विद्यायास्त्री-
कथिश्रम्भमज्ञेयं त्यक्तसौहृदाः । नवं नवममोप्सन्त्यः
पुंश्चल्यः स्वैरवृत्तयः ॥ ६२ ॥ शम्बरस्य च या माया
या माया नमुचेरपि । बलेः कुम्भीमसेधैव सर्वास्ता
योषितो धिदुः ॥ ६३ ॥ शास्त्रज्ञोऽपि प्रकटाघिन-
योऽप्यात्मयोधेऽपि गाढं संसारेऽस्मिन्भवति विरलो
भाजनं सङ्गतीनाम् । येनैतस्मिन्निरयनगरद्वारमुद्घाट-
यन्ती घामाक्षीणां भवति कुटिला भूलता कुञ्चि-
केव ॥ ६४ ॥ शृणु हृदय रहस्यं यत्प्रशस्तं मुनीनां न
कलु न कलु योषित्साक्षिः संधिधेयः । हरति हि
हरिणाक्षी क्षिप्रमसि क्षुरमेः पिहितशमतनुचं क्षिप्तम-

पुत्तमानाम् ॥ ६५ ॥ सङ्गतानि सृगाक्षीणां तडिद्विल-
सितान्यपि । क्षणद्वयं न तिष्ठन्ति घनारब्धान्यपि
स्वयम् ॥ ६६ ॥ सम्मोहयन्ति मदयन्ति विद्वन्मयन्ति
निर्भर्त्सयन्ति रमयन्ति विषादयन्ति । एताः प्रविश्य
सदयं हृदयं नराणां किं नाम वामनयना न समाचर-
न्ति ॥ ६७ ॥ समयज्ञानर्थवतः प्रतिरूपान्वशे स्थिताः ।
पत्नीनां तटमासाद्य नासं नार्यः प्रतीक्षितुम् ॥ ६८ ॥ समुद्र-
धीचीध वलस्वभावाः सन्ध्याभ्रलेखेव मुहूर्तरागाः ।
स्त्रियो ह्युतार्थाः पुरुषं निरर्थं निष्पीडितालककवर-
जन्ति ॥ ६९ ॥ सुमुखेन वदन्ति वदगुना महारम्येव
सितेन चेतसा । मधु तिष्ठति वाचि योषितां हृदये
हालाहलं महद्विषम् ॥ ७० ॥ सुरूपं पुरुषं दृष्ट्वा भ्रातरं
यदि वा सुतम् । योनिः क्लियति नारीणां नामपात्र-
मिषाम्भसा ॥ ७१ ॥ स्त्रीणां द्विगुण आहारो सज्जा
वापि वसुगुणा । साहसं षड्गुणं चैव कामश्चाष्टगुणः
स्मृतः ॥ ७२ ॥ स्त्रोणामशिक्षितपटुत्वममानुषीणां

क्षिये उसके वशमें हो जाता है ॥ ५८ ॥ स्वतन्त्र
नवेलियोंकी चमकीले गहने पहने देखकर कुलीन स्त्रियोंके मनमें
भी वैसी ही चाह जगने लगती है ॥ ५९ ॥ नितम्बोंपर पहने
हुए (बैठाए हुए) दशालम्बी वस्त्रकी भीति आसक्त पुरुषकी
भी से उपभोग करके (फट जानेपर) छोड़ देती हैं ॥ ६० ॥
मूर्ख मनुष्य क्ली, कठोर तथा नीरस नवेलीमें अत्यन्त रस,
कीमत्तता और रसकी कल्पना करते हैं ॥ ६१ ॥ ऊपरके जोकोंमें
गति देनेवाले, रुठने और प्रसन्न होनेवाले तथा अपने रक्त
श्रेष्ठ प्रियतमको भी स्त्रियों कुछ नहीं समझती ॥ ६२ ॥
मूर्खोंको झूठे विश्वासमें डालकर, उनसे सच्चा प्रेम न करनेवाली
स्वतन्त्र व्यवधारिणी स्त्रियाँ सदा नया-नया पुरुष ही चाहती
रहती हैं ॥ ६३ ॥ शम्बर, नमुचि, बलि और कुम्भीमस को
माया जानते थे वे सब मायार्थ से स्त्रियों जानती हैं ॥ ६४ ॥
नरकरूपी नगरका द्वार खोलनेके लिये तिरछी चितवनवाली
नवेलियोंकी बाँकी भीह चाबी बनी हुई है ही इसीलिये नवे-
ल्ये शास्त्रोंको जाननेवाले, मन्त्रज्ञा दिखानेवाले और आत्मज्ञानमें
खीन मनुष्योंमेंसे कोई विरजा ही उत्तम गति पाता
है ॥ ६५ ॥ हे हृदय ! मुनियोंकी भी भलाई करनेवाकी एक
रहस्यवाली बात सुनो—स्त्रियोंका साथ कभी-कभी नहीं करना
चाहिए क्योंकि शान्तिरूपी कवचको अपने चितवनरूपी
बाणोंसे बेधकर महारम्योंका मन भी सुगमवनी शीघ्र ही

बीच छेती है ॥ ६६ ॥ कसकर आसिद्धन करके नवेलियोंसे
किया हुआ सम्भोग और घने उमड़े हुए बादलोंकी बिगड़ीकी
तल्प, ये दोनों दो क्या भी नहीं उड़रती ॥ ६७ ॥ वे बाँके
नयनोंवाली स्त्रियाँ पुरुषोंके दयालु हृदयमें सुसकर उभईं
भोहित कर लेती हैं, मदमें भ्रम कर देती हैं, फटकारती हैं,
उनसे सम्भोग करती हैं और दुखी कर देती हैं । क्या-
क्या वे नहीं कर सकती हैं ? ॥ ६८ ॥ पतियोंका तट पाकर
स्त्रियाँ समय जाननेवाले, वशमें रहनेवाले तथा अनर्थके रूप
जारोंकी प्रतीक्षा नहीं कर सकती ॥ ६९ ॥ समुद्रकी लहरोंके
समान चञ्चल स्वभाववाली तथा सौन्दर्य के आकाशकी लज्जाईके
समान दो चढ़ी प्रसन्न रहनेवाली स्त्रियाँ काम निकालकर
निर्धन पुरुषोंकी निषेधे हुए महावरकी भीति छोड़ बैठती
हैं ॥ ७० ॥ सुन्दर मुखसे तो वे प्यारी बोली बोखती हैं और
स्वच्छ हृदयसे मानो प्रहार ही करती हैं । जान पड़ता है
इनके मुँहमें मधु तथा हृदयमें भयङ्कर हलाहल विष भरा
रहता है ॥ ७१ ॥ अपने भाई या पुत्रको भी सुन्दर पुरुषके
रूपमें देखकर स्त्रियोंकी योनि घेसे ही गीली हो जाती है
जैसे पानीसे भरा कच्चा घड़ा ॥ ७२ ॥ स्त्रियोंमें पुरुषोंसे दुगुना
भोजन, चौगुनी धाज, छहगुना साहस और अठगुना काम
होता है ॥ ७३ ॥ स्त्रियोंकी स्वाभाविक क्षुरता पशु-पक्षियोंमें
भी दिखाई देती है, फिर जो ज्ञानवान् है उनका तो पूजना

संरक्ष्यते किमुत याः परियोधयत्यः॥ प्रागन्तरिखगम-
नात्स्वमपत्यजातमन्यद्विजैः परभृताः किल पोषयन्ति
॥ ७३ ॥ स्त्रियो न रागः कार्यो रक्तं पुरुषं स्त्रियः परि-
भवन्ति । रक्तैश्च हि रस्तव्या घिरकभावा तु हानव्या
॥ ७४ ॥ स्त्रियस्तु यः कामयते सन्निकर्तुं च गच्छति ।
इत्यप्रकृत्यै सेयां तं तमिच्छन्ति योषितः ॥ ७५ ॥ स्त्रियो
हि नाम खल्वेता निसर्गादेव परिहृताः । पुरुषाणां तु
पाण्डित्यं शास्त्रेणोपोपदिश्यते ॥ ७६ ॥ स्त्रियो हि मूलं
निधनस्य पुंसः स्त्रियो हि मूलं व्यसनस्य पुंसः ।
स्त्रियो हि मूलं नरकस्य पुंसः स्त्रियो हि मूलं कलहस्य
पुंसः ॥ ७७ ॥ स्त्रियो ह्यकदशाः कूरा दुर्मर्षाः प्रिय-
साहसाः । प्रत्ययवर्धेऽपि विभ्रध्वं पतिं भ्रातरमप्युत
॥ ७८ ॥ स्थानं नास्ति स्त्रियो नास्ति नास्ति मार्यायिता
नरः । तेन नारद नारीणां सतीत्वमुपजायते ॥ ७९ ॥
स्वातन्त्र्यं पितृमन्दिरे च वसतिर्यात्रोऽसौ सङ्गति-
गीष्ठीपुरुषसन्निधाननियमो यासो विदेशे तथा । संसर्गः

सह पुंश्चलीभिरसकृद्विनेनिजायाः क्षतिः पत्युर्वार्धक-
मोक्षिनं प्रवसने नाशस्य हेतुः स्त्रियः ॥ ८० ॥ हसन्तं
प्रहसन्त्येता रुदन्तं प्रहसन्त्यपि । अप्रियं प्रियवाक्यैश्च
गृह्णन्ति कालयोगतः ॥ ८१ ॥ हासस्तृकलिकाप्रदीप-
नपटुर्हस्ताग्निनेत्राननं तन्वद्भया विपजानमेव भुजगो
वेणो च रोमावलिः । किं च धौकलमुन्नतस्तनमरः
कामं मनस्तामिमां सर्वाकारधिपोमृन्निमयलां प्राप्यापि
यज्जीवति ॥ ८२ ॥ हृदयं हरन्ति नार्यो मुनेरपि भ्रूक-
टाक्षविक्षेपे । दोर्मूलनाभिदेशं प्रदर्शयन्त्यो महावपलाः
॥ ८३ ॥

अमती-चरित्रम् : अनार्थप्रधानामिह जनयधूनां हि
मनसो महाशयं कर्तुं तव नयकजम्बूकिसलयः । अम-
न्निहाहेनोरधिनगरि बुद्धोऽसि न मया त्वयैतावद्वेषः
पथिक न विधेयः पुनरपि ॥ १ ॥ अम्य श्वश्रु यदि
त्वया हतशुकः संवर्धनीयस्तदा लोहं पञ्जरमस्य दुर्नय-
वतो गाढास्तरं कारय । अद्यैनं यदरीतिकुञ्जकुहरे

ही गया है । दूसरे देशोंको उड़ जानेसे पहले ही कांचखिर्पा
चक्रमा देकर दूसरे परिणामों अपने बर्षोंका पावन-पोषण कर
लेती हैं ॥ ७३ ॥ स्त्रियोंके फेरमें कभी नहीं पड़ना चाहिए ।
क्योंकि जो उनपर रीकता है उसे वे बहुत नीचा दिखाती हैं ।
अतः, जो स्त्री स्वयं अपने ऊपर रीको उसीसे प्रेम करना
चाहिए, औरोंसे वासतक नहीं करनी चाहिए ॥ ७४ ॥ स्त्रियोंका कुछ
ऐसा स्वभाव होता है कि जो उन्हें चाहे उनके पास आता-
जाता रहे और उनकी छोटी भी सेवा करता रहे, उसे ही वे
चाहने लगती हैं ॥ ७५ ॥ पुरुष तो कहीं शास्त्र पढ़कर पण्डित
बन पाले हैं पर वे स्त्रियाँ तो पण्डित होकर जग्न हो लेती हैं
॥ ७६ ॥ पुरुषोंकी मृत्यु, दुःख, नरक और कड़ाई-भगवत् सबका
कारण केवल स्त्रियाँ ही हैं ॥ ७७ ॥ स्त्रियाँ इतनी निन्दुर, दुष्ट,
असह्यशील तथा साहसी होती हैं कि वे अपने धाँदले लाभके
लिये भी अपने बिकासी पति या भाईतकके प्राण ले सकती
हैं ॥ ७८ ॥ हे नारद ! स्त्रियाँ जो सती बनी रह जाती हैं उसका
सीधा कारण यही है कि न तो उन्हें स्वभिचारके लिये कोई
सूना स्थान मित्र पाता, न कोई पुरुष ही संभोगके लिये कहने-
वाला मिला पाता है ॥ ७९ ॥ जो स्त्री अपने पिताके घर स्वतंत्र
पूजती हो, बहुतसी यात्राओं और उत्सवोंमें जाती-जाती हो,
सदा पुरुषोंके साथ उठती-बैठती हो, परदेशमें घूमा करती हो,
स्वभिचारिणी स्त्रियोंके साथ जाती-जाती हो, जिसे देखे उसी

पर रीक जाती हो, जिसका पति मृदा हो या परदेशमें रहता
हो, तो समझ लीजिए कि उसने कुछ दुर्बला ॥ ८० ॥ वे स्त्रियाँ
हैंसनेवालोंके सामने हँसकर, रोनेवालोंके सामने तत्काज रोकर
और जैसा अवसर देता उसके अनुसार माँटी या कढ़ाई बात
कहकर पुरुषोंको मुट्टीमें कर ही लेती हैं ॥ ८१ ॥ नवेलीकी हँसीमें
काम जगानेका जादू है, उसके हाथ, पाँव, नेत्र और मुँह सब
एकसे एक बढ़कर बिप्ले हैं, उसकी चाँटी और रोमावलिर्पा
भागिन है और उसके ऊँचे-ऊँचे मोटे स्तन बेलके समान
कठोर हैं पर अचरज तो यह है कि ऐसी भयंकर बिपकी मूर्ति-
वाली स्त्रीको पाकर भी मेश मन भली-भाँति त्रिप जा रहा
है ॥ ८२ ॥ अत्यन्त चञ्चल नारियाँ अपनी भीड़ और चितवन
चलाकर तथा नाभि और कोंख दिखा-दिताकर मुनिका भी
मन हर लेती हैं ॥ ८३ ॥

कुलटाके चरित्रका वर्णन : हे यात्री ! तुम्हारे कानपर
ढेंगे हुए जाग्रुनके पत्ते यहाँकी छोटी बहूनोंके मनमें बड़े
कौटुके समान पुम रहे हैं । इस गर्बमें भीख मँगानेके लिये
घूमते हुए तुमकी मैं तलक भी नहीं पहचान पाई थी । अतः अब
ऐसा वेप कभी न बनाना ॥ १ ॥ हे साक्ष माँ ! यदि इस निगोहे
सुगोको पावना ही है तो इस दुष्टके लिये एक दूसरा छोड़ेका
सँकरा विजवा बनवा लो । आज बेरकी आदियोंमें इसे हँसते-
हँसते जो मेरे जंग छिड़ गए इसकी तो कोई चिन्ता नहीं

संलीनमन्विष्यती दष्टा यन्न भुजङ्गमेन तदतिश्रेयः
किमेभिः क्षतेः ॥२॥ अम्बा शेतेऽत्र वृद्धा परिणतवय-
सामग्रणोरत्र तातो निशेषागारकर्मधमशिथिलतनुः
कुम्भदासी तथाऽत्र । अस्मिन् पापाऽहमेका कतिपय-
दिवसप्रोपितप्राणनाथा पान्थायेत्यं तरुण्या कथितमव-
सरव्याहृतिव्याजपूर्वम् ॥ ३ ॥ अयं रेवाकुञ्जः कुसुम-
शरसेवा समुचितः समीरोऽयं खेलानवविदलदेलापरि-
मलः । इयं प्रावृद्धं घन्या नवजलद्विन्धासचतुरा पराधीनं
चेतः सखि किमपि कर्तुं शृणयते ॥४॥ अये को जानोते
निजपुरुषसङ्गो नहि तथा यथा स्त्रीणां चेतः परपुरुष-
सङ्गो रमयति । अपि स्वैरं भुक्ता दिवसमाखिलं वासर-
कृता करस्पर्शादिन्दोर्मुकुलयति नेत्राणि नलिनी ॥५॥
अये कोऽयं वृद्धो गृहपरिवृद्धः किं तव पिता न मे
भर्ता किन्तु व्यपगतदमन्यश्च यधिरः । इहुं धान्तोऽ-
द्याहं शिशुपुत्रिहैवाप्यरके क यामिन्यां यामि

स्वपिमि ननु निर्देशमशके ॥ ६ ॥ आः पाकं न करोषि
पापिनि कथं पापी त्वदीयः पिता रण्डे जरपसि किं
तवैव जननो रण्डा त्वदीया स्वसा । निर्गच्छ त्वरितं
देहि मरणं जारस्थ भाग्योदयः ॥ ७ ॥ आकारेण शशी
गिरा परभृतः पारावतश्चुम्बने हंसश्चङ्क्रमणे समं
इयितया रत्यां प्रमत्तो गजः । इत्थं भर्तरि मे समस्त-
युचतिरलाप्यैर्गुणैः सेविते क्षुरणं नास्ति विषादितः
पतिरिति स्वाश्रये दोषो यदि ॥ ८ ॥ आयातासि
विमुञ्ज वेपथुभरं दृष्टासि नो केनचिज्जीलं खोलममुं
विमुञ्ज हरतु स्वैर्दं निशीथानिलः । इत्यन्तर्भयसन्नकण्ठ
मसकृषामीति तदपं यता जटपन्ती परिरभ्यते सुक-
तिभिः स्वैरं नवस्वैरिणी ॥ ९ ॥ आरोपिता शिला-
यामश्मेव त्वं भवेति मन्त्रेण । मन्त्रापि परिणयापदि
जारमुक्तं वीक्ष्य हसितैव ॥ १० ॥ आस्तां विभ्वसर्गं

पर यही बहुत समझो कि वहाँ किसी साँपने मुझे बस नहीं
लिया ॥ २ ॥ किसी बटोहीको कोई नवेली मिलनेका स्थान
समझाते हुए कहती है—‘देखो ! वहाँ तो मेरी बुढ़िया माँ पड़ी
है, वहाँ भरपूर सूँघे पिता सो रहे हैं और वहाँ सारे घरका
काम-काज करके थकी हुई दासी सो रही है, मेरे प्राणनाथ भी
कुछ दिन हुए परदेस चले गए हैं । इस घरमें मैं अकेली एक
पापिन बच रही हूँ’ ॥ ३ ॥ हे सखी ! कामदेवकी सेवाके लिये
यह नर्मदाके तटकी भाँड़ी बड़ी आच्छी है । देखो ! तटपर किसी
हुई गई हलायवीकी गन्धसे लड़ा पवन यह रहा है, नये-नये
बादलोंसे बिरी यह सुहावनी सरसाना घा पहुँची है । अतः, मेरा मन
भी अय कुछ कर डालनेके लिये मत्त रह रहा है ॥४॥ अरे ! कौन
जानता है कि भ्रियोंके मनको अपने पतिका समागम उतना
मानन्द नहीं देना जितना परपुरुषका । तभी तो दिनभर सूर्य-
से जाँभर उपभोग करा लेनेपर भी कमलिनी चन्द्रमाकी किरणें
छू जाते ही आँखें बूँदने लगती हैं ॥ ५ ॥ किसी बटोहीने किसी
नवेलीसे पूछा—‘अरे, यह घरका स्वामी बुढ़ा क्या तुम्हारा
पिता है ?’ तो नवेलीने जैसे ही उत्तर दिया—‘नहीं, यह मेरा
पति है, किन्तु इसकी आँखें फूट गई हैं और यह बहुरा भी
है’ जैसे ही वह बटोही बोला—‘हूँss, मैं थक गया हूँ,
सोना चाहता हूँ, यहाँपर मन्दिर-ढाँस भी नहीं है । अतः, अब
रातमें वहाँ जाऊँगा, यहीं सोया जाता हूँ’ ॥६॥ पति-पत्नीमें
दण्डा हो रहा है—पति : आह पापिन ! अभीतक रसोई क्यों

नहीं बना रही है ? पत्नी : पापी तेरा बाप ! पति : रण्डो !
क्या बक रही है ? पत्नी : रण्डों तेरो माँ, तेरा बहन ! पति :
अभी इस घरसे बाहर निकल ! पत्नी : क्या बक ! यह तेरा घर
नहीं है । पति : हाय नाथ ! अब मुझे क्या दे दीजिए । अब जारका
भाग्योदय हो गया है ॥७॥ मेरा पति चम्पूमा के समान सुन्दर
है, कोयलके समान मोठा बोलता है कपूरके समान सुगन्ध
लेता है, हंसके समान चकता है और मतवाले हाथीके समान
समर्थ होकर रति करना है । इस प्रकार नवेलियोंको अपने
लगनेवाले सभी गुण उसमें हैं पर यदि वह विवाहित
पति न होता तो उसकी बच्ची-सुखी कमी भी पूरी हो जाती ॥८॥
‘आ गई ! आम्मा, सुस्ता सो ! किसीने देखा तो नहीं ? ये काँसे
बरत उतार दो जिससे आँखों रातका ठंढा पवन लगे और पसीना
सूख जाय ।’ इस प्रकार प्रियतमके कहनेपर मनकी नवराहके
कदम रँधे हुए कण्ठसे बार-बार ‘जानो हूँ, जानो हूँ’ कहती हुई
पल्लोपर आ छोटनेवाली स्वभिचारिणी नवेलीको पुण्यात्मा लोग
की भरकर गले खगते हैं ॥ ९ ॥ विवाहके समय ‘अरमा
भव’ (तुम पति प्रेममें परधरके समान स्थिर होओ) मंत्र
पढ़कर जब एक स्वभिचारिणी पदपर पर लड़ी की गई तब उस
विवाहरूपी विपत्तिमें पड़ी हुई भी वह अपने पारका मुँह देखकर
मुसकरा उठी ॥ १० ॥ अब इस प्रेमी नायकका अभिप्राय मैंने
जान लिया तब सखियोंपर विश्वास करना तो क्या, मैं तो
उसकी ओर साजके बारे अपनी चितवन भी नहीं चला सकती ।

सखीषु विदिताभिप्रायसारे जने तत्राश्रयितुं दृशं
सुखिरां शक्नोमि न मोडया । लोकोऽप्येष परोपदास-
कुशलः सूक्ष्मेक्षितज्ञोऽप्यलं मानः पं शरणं व्रजामि
हृदये जीर्णोऽनुरागानलः ॥११॥ इन्दुर्यज्ञ न निन्दते न
मधुरं दूतीवयः श्रूयते नाच्छासा दृढं ददन्त्यशिशिरा
मोपेति काश्यं वपुः । स्वाध्यानामनुकूलिकां स्वगृहिणी-
मालिङ्गय वस्तुष्यते तर्हि प्रेम गृहाश्रमव्रतमिदं कष्टं
समाचर्यते ॥१२॥ इह नगरे प्रतिरथं भुजङ्गसम्बाध-
कविरसञ्चारे । सुन्दरि मम मतमेतत्कुलवर्तिपालनं
श्रेयः ॥१३॥ इह घटवृक्षे यस्तः प्रतियसति दिवापि
यत्र भयशङ्का । तस्मिन्भ्रमिन्वयध्या नोता योतोदयाः
क्षणदाः ॥१४॥ एकान्ते यत नो गृहं शशिशुखोऽप्यन्या-
दृशो दृश्यते क्षिप्तं साधय यातु पुत्रि स दिने भुङ्क्वा-
प्यमायासकम् । श्रद्धया सम्भ्रमिता किलेति यदृशः
सम्प्रेत्यमया वधूः पार्श्वे वीक्ष्य यमञ्ज सस्मितमुखी
सीवार्धसिद्धादनम् ॥१५॥ एते वारिकणाः किरन्ति

पुरुषान्त्रपन्ति नाम्नाधराः शैलाः शिखलमुद्रमन्ति न
वृजन्त्येते पुनर्नायकान् । त्रैलोक्ये तत्र च फलानि सुयते
नैवारभन्ते जनान्धानः कान्तमालयामि कुलदाहृतो-
स्त्वया किं कृतम् ॥१६॥ एवैव यापितां धन्या शैलं च
लभते सुखम् । दिवा पतिव्रता भूयो नक्तं च कुलदा-
यनः ॥१७॥ एष्यति सा पुनर्यमिति गमने यदमङ्गलं
मयाकारि । अथुना तदेव कारणमवस्थितां दग्धगह-
वतः ॥१८॥ कार्यणापि विलम्बनं पश्येद्दृष्ट्वा श्रुतं सम्भ-
न्यते शङ्कामाचरन्ति यूनि भयनं प्राप्ते मिथो यातरः ।
कोधीनिर्गमनेऽपि तत्रैर्यति च कुडा ननान्दा पुनः
कष्टं हन्त मृगीदृशां पनिगृहं प्रायेण कारागृहम् ॥१९॥
कार्यं सत्यपि जानु याति न वहिर्नाप्यन्धमालोक्यते
साध्वोरप्यनुकुर्यतीं गुरुजनं श्वश्रूं च शुश्रूषते । विस्मयं
कुरुते च पश्युरधिकं प्राप्ते निशीथे पुननिद्राणं सकले
जने शशिशुखी मिर्याति रन्तुं विष्टेः ॥२०॥
कुलपतनं जनगर्हं बन्धनमतिजीवितस्य सन्देहम् ।

लोग भी दूसरोंकी किसी बच्चेमें बड़े प्यार है और बिना
हुआ संकेत भी समझ लेते हैं । तो माँ ! अब मैं किसी शरण
जाऊँ, मेरे हृदयमें तो प्रेमकी अग्नि धधक रही है ॥ ११ ॥
जहाँ बिछोहके सारे अश्रुमाही जिंदा नहीं की जाती, दूतीकी
सीटी बोलो कहीं नहीं सुनी जाती, गरम साँसें जी नहीं मलातीं,
देह दुबली नहीं होती और अग्नि बरसे रहनेवाली, आशाकारी
स्त्रीको गले लगाकर लोग सो जाते हैं, वह क्या प्रेम है ? वह
तो गृहस्थाश्रमका मत है, जिसका लोग बड़े कष्टसे पाकन करते
हैं ॥१२॥ हे सुन्दरी ! नगरकी गलियोंमें इतने जार हैं कि ठीक-
ठीक चल पाना कठिन है । अतः, मेरी समझमें तो अब कुछ-
सर्पादा पाकनेमें कोई भलाई नहीं है । [इस नगरकी गलियोंमें
हलने सर्व है कि नेवला पाकनेमें ही भलाई दिखाई देती है ।]
॥१३॥ जिस घटवृक्षपर यद रहता है और जिसके पास दिनमें
जी जाते दर छगता है उसीके नीचे उस भबेलीने न जाने
कितनी औंधरी रातें बिता डालीं ॥ १४ ॥ 'येटी ! हमारा घर
निवालेमें है और इस चोंदले मुलदेवाले बटोहीके भी
रंग-रंग कुछ अपले नहीं दिखाई देते, इसलिये ऋतपर रसोई
बना खे जिससे यह खा-पीकर किसी दूसरे घरकी राह ले ।'
सासके बार-बार ऐसा कहनेपर घरवाड़े हुईं बहूने बटोहीकी
ओर देखकर मुस्कराते हुए वही अपपके चावल उतार दिए
॥१५॥ ये मेव पानीकी धूँदें तो बरसाते हैं किन्तु पुरुषोंकी वर्षा

नहीं करते, ये पर्वत भी पास तो उगाते हैं, पुरुष नहीं और
तीनों लोकोंके ये वृक्ष भी फल ही मिलाते हैं, पुरुष नहीं । अतः,
हे मम्मा ! मैं स्निग्ध होकर तुमसे प्यारी हूँ कि कुठाराँके लिये
तुमने क्या किया ? ॥ १६ ॥ जियोंमें यही एक अन्ध स्त्री
शक्ति तथा सुख पाती है, क्योंकि दिनमें यह पतिव्रता रहती है
और रातमें आसन्द लेती है ॥१७॥ इस भुँडजले घरके स्वामी-
के घरमें बाहर जाते समय जो मैंने सपराकुन दिया था (रोई
थी) कि जिससे यह लोटकर न आने पावे उसीके कारण मैं
पड़ती है यह लोटकर घर आ गया है ॥१८॥ कहीं किसी काम-
से दूसरेके घरमें मिले हो गया तो सास उग्र हो पड़े
कोई युवक घरमें आने-जाने जमे तो देवरानी-जैठानीके कान
बड़े हो जायें और नवदू तो ऐसी कि गर्जामें पैर धरा नहीं कि
खाटा नहीं । सचमुच, मृगनयनी नवेलियोंके लिये पतिका घर
बना है कारागार है ॥१९॥ यह चंद्रमुखी ऐसी बट है कि काम
पढ़नेपर भी बाहर पैर नहीं धरती, किसीकी ओर भर घोंल ताकती
नहीं, घरकी सती-साध्वी स्त्रियों-जैसा बहू बनाए रखती है,
घरके बड़े-बूढ़ोंकी और सासकी सेवा करती है और ऐसे उहने
सब काम करती है कि पतिका उसपर पक्का विश्वास जमा रहे,
पर जहाँ आधोरात हुई और सब लोग सोए कि वह ऋत जाँसे
श्मश करनेके लिये सरसे निकल पड़ती है ॥२०॥ जो स्त्री दूसरे
पुरुषमें आसक्त होती है वह स्त्री अपने कुञ्जका नाश, लोक-

अङ्गीकरोति सकलं वनिता परपुरुषसंसका ॥ २१ ॥
 केलिः प्रदहति मज्जां शृङ्गारोऽस्थीनि चाटवः कटवः।
 बन्धक्याः परितोषो न स्यादनभीष्टदम्पत्योः ॥ २२ ॥
 ग्रामतरुणं तरुण्या नवयज्ञमञ्जरीसनाधकरम्।
 पश्यन्त्या भवति मुहुर्नितरां मलिना मुखच्छाया ॥ २३ ॥
 गोष्ठेषु तिष्ठति पतिर्यच्चिरा ननाम्ना नेत्रद्वयस्य च न
 पाटवमस्ति यातुः। इत्थं निश्चय्य तरुणी कुञ्जकुम्भ-
 सीम्नि रोमाञ्चकञ्चुकमुदञ्चितमातताम् ॥ २४ ॥ चेत्पौ-
 रादपि शङ्कसे हिमरुचोरप्यखिणो लज्जसे भोगोन्मदादपि
 चेद्भिषेपि तिमिरस्तोमादपि ग्रस्यसि। चेरकुञ्जादपि
 दूयसे जनघटध्वानादपि लुभ्यसि प्रायः पुत्रि हतास्मि
 हन्त भविता त्वत्तः कलङ्कः कुले ॥ २५ ॥ जन्मैव मास्तु
 यदि वा न नितम्बिनोषु तथापि चेदहह नैव कुलाङ्ग-
 नास्तु। हा धिग्धिगे कुलवधूरय चेद्भवेयं नैवास्तु च
 कचन मे मनसोऽनुयम्यः ॥ २६ ॥ हातं हातिग्रभैः
 प्रमृष्टमयशो दूरं गता धीरता त्यक्ता ह्रीः प्रतिपादि-

तोऽप्यधिनयः साध्वीपदं प्रोज्झितम्। लुप्ता चोभय-
 लोकसाधुपदयो वत्तः कलङ्कः कुले भूयो हूति किमन्य-
 दस्ति यदसावद्यापि नागच्छति ॥ २७ ॥ हाता मैत्री
 सहजमधुरापातिभिलोचिताम्नैः कर्णकलिं प्रथित-
 मयशो बन्धुवर्गैरभाणि। सम्प्रत्येयं तदपि न मनाङ्गा-
 जति प्राणनाथं की जानीते कुवल्यदशः कीदृशः
 प्रेमबन्धः ॥ २८ ॥ ताम्बूलाकं दशनमसकृद्दर्शयन्तीह
 चेटी घोटीहेषा चिकृतचिरतं हेतुहीनं हसन्ती। स्थान-
 स्थानस्सलितपदविन्यासमाभासमाना यूनामप्रे-
 वसति कुटिलं नर्तितोच्चैर्नितम्बम् ॥ २९ ॥ तिमिरेऽपि
 दूरदृश्या कठिनाश्लेषे च रहसि मुखरा च। हन्तमय-
 वलयराजो गृहपतिशिरसा सह स्फुटतु ॥ ३० ॥ द्विसे
 घटिकास्त्रिशद्विघटिकाः परं रजनी। सलं नगर-
 युवानस्तात विधातः किमाचरितम् ॥ ३१ ॥ पुर्व्विसे
 घनतिमिरे दुःसञ्चारास्तु नगरबोधोषु। पशुविदेश-
 गमने परमस्तुलं जघनचपलायाः ॥ ३२ ॥ उभयभक्ति-

जिन्दा, बंधन पर्यंतक कि मृत्युका भी भय नहीं करता ॥ २१ ॥
 सरचरित्र पति-परनीसे व्यभिचारिणीको कोई सन्तोष नहीं होता,
 इनकी झोझासे वस्त्रकी मज्जा और शृङ्गारसे हड्डियों जलने लगती
 हैं तथा इनकी मीठी बोली भी इसे बड़ी कड़वी लगती है
 ॥ २२ ॥ नई बेंतकी मंजरी हाथमें लेकर आये हुए गविके लैलेको
 देखते ही नवेलीके मुखकी काम्ति मलिन हो गई। (क्योंकि
 यह संकेत की हुई बेंतकी आँकीसे होकर खौट आया और
 यह वहाँ नहीं पहुँच पाई) ॥ २३ ॥ जैसे ही नवेलीने यह सुना
 कि 'इसका पनि गोसाजामें डटा रहता है, ननद बहरी है
 और जेठामी दोनों आँखोंसे बंधी है, वैसे ही उसके स्तनोंपर
 प्रसन्नतासे रोमांच हो आया ॥ २४ ॥ हे पुत्री ! यदि नगरके
 छिड़ोंपर शंका करेगी, चन्द्रमाकी किरणोंसे सजावेगी, घने
 और छिंधेरे कुँजसे भी भरती फिरेगी, मनुष्य मात्रके शब्दसे
 घमरावेगी तब तो तू मुझे भी चौपट कर डालेगी और इस कुँजको
 भी कर्णकित कर डालेगी ॥ २५ ॥ एक तो मेरा जन्म हो ही
 नहीं, यदि हो भी तो स्त्रियोंमें न हो, यदि स्त्रियोंमें हो ही
 जाय तो उन्हें कुँजकी स्त्रियोंमें तो कभी न हो ! किन्तु हे
 मछा ! यदि तेरे किसी दोपसे कुलवधुओंमें मेरा जन्म हो ही
 जाय तो ऐसा करना कि किसी एक पुरुषपर मेरा मन न
 टिकने पावे ॥ २६ ॥ हे दुर्ता ! सब जातिवाले जान गए, चारों ओर
 बात फैल गई, औरज जाता रहा, आग भी जूट गई, जिटाई भी

की गई, पतिव्रता कहलाना छोड़ दिया, लोक-परलोकका संग-
 मार्ग भी लुप्त हो गया, कुलमें भी कर्णक लगाया, फिर अब
 रह क्या गया जिससे वह अभोक्त नहीं आ रहा ॥ २७ ॥ रसीली
 चितवनोंसे जोड़ी हुई प्रियतमकी मित्रता जोगोंने जान ली,
 कानोंकान फेला हुआ अपयश भी भाई-बन्धु कह चुके, ऐसी
 दशामें भी अब वह अपने प्रियतमको नहीं छोड़ना चाहती, तो
 कौन जाने उस कमलनयनीका प्रेम-बन्धन कैसा है ! ॥ २८ ॥
 वह चेटी पानसे रचाप अपने दाँत युवकोंको बार-बार
 दिखाती है, बनावटी स्वरमें बिना कारण ऐसे हँस रही है
 जैसे बोकी दिनहिनाती है और उनके सामने पगपगपर लड़-
 खाती हुई अपने नितम्ब आड़े-तिरछे सजाव-उझावकर
 धर्यं हो चमकी जा रही है ॥ २९ ॥ छिंधेरेमें भी दूरसे दिखाई
 पड़नेवाली और एकान्तमें कसकर आसंगन करनेपर बस
 उठनेवाली ये हाथीदाँतकी चूड़ियाँ धरके स्वामी (पति) के सिर-
 के साथ ही फूट जायें ॥ ३० ॥ तीस ही घड़ियाँ दिनमें होती हैं
 और तीस ही रातमें होती हैं पर नगरमें युवक हैं आँखों ! बापदे
 बाप ! हे मछा ! यह तूने क्या कर डाला ! ॥ ३१ ॥ व्यभिचारिणी
 छिड़ोंको तभी परम सुख होता है जब बाइलोंकी पटाई ठमड़ी
 हों, घना छिंधेरा हो, नगरकी गलियाँ ऐसी सँकरी हों जिनमें
 कोई सरलतासे चल न सके और पतिदेव परदेस चले गए हों
 ॥ ३२ ॥ हे बनावटी मिथुन ! अपने नयनोंकी बाँकी चितवनें

मशतैरसतीरहस्यमन्त्रेपयन्कपटभिलुक ललितोऽसि ।
स्वस्य प्रभुर्न च भवामि ततः क्षमस्व भिक्षोपहोक्तन-
मिषादयमञ्जलिस्ते ॥ ३३ ॥ दशा किञ्चित्किञ्चल-
तभुजलीलाविलसितैः कराघातैः किञ्चिन्नखविलसितैः
किञ्चिदधिकम् । स्पृशन्त्यः सम्याधे गुरुभिरनभिमे-
क्षितपथे यथेष्टं चेष्टन्ते स्फुटकुचतटाः पश्य कुलटाः
॥ ३४ ॥ देहे दुर्ललितस्य देवरशिरोः स्फोटवर्णो
हारणो यातस्तेन घनस्पतिवचमुपाहर्तुं मया गम्यते ।
हृष्यन्तु भवसितानि घर्मसलिलैः पद्माणि लुप्यन्तु वा-
चसो वा विलिखन्तु हन्त नखरैः कुञ्जाः कपिश्रेणयः
॥ ३५ ॥ छारि स्तम्भविलसा प्रियसखि दृष्टिं पथि
क्षिपसि । प्रहृणोषि भाग्यभाजि प्रेयसि दूतोमिष
अमरीम् ॥ ३६ ॥ नाम्मुजैर्न कुसुमरुपमेयं स्वैरिणी-
नयनपङ्कजयुग्मम् । नोदये दिनकरस्य न येन्द्रोः केवलं
तमसि यस्य विकासः ॥ ३७ ॥ नारीणां खलु यन्धु-
रन्धतमसं पाथोधरः सोदरः कुञ्जं नाभिगृहं निशा

सहचरी सेदयः स्मरः दयापतिः । इत्थं चारुचकोर-
चञ्चलदशां यासां मतिर्जायते तासामेव यशः सुभांशु-
धवलं तासां च सौख्यं सदा ॥ ३८ ॥ नितम्बिन्यो
नित्यं धिनयपथविन्यस्तमनसः पताकाः स्युः पुत्रि
प्रतिनियतमेताः स्नकुलयाः । गुणोऽस्यादेशं सदसि
सुदशामोदुतवतीं गतातङ्गे राधा दृग्मुखमृगाङ्गे
मृगयते ॥ ३९ ॥ निभृतं निभृतं निमालयन्त्या चरणा-
शाभरणाविनं पनङ्गम् । गुरुयन्त्रितयापि गोपवध्वा
नयनान्तेन निमन्त्रिता सुकुन्दः ॥ ४० ॥ न्यस्तं पद्मग-
मूर्ध्नि पादयुगले भक्तिविमुक्ता गुरोऽस्यक्ता मोतिर-
कारि किं न भयतो हेतार्मया दुःकृतम् । अङ्गानां शत-
धातना नयनयोः कोऽपि क्रमो राखः कुम्भोपाकपरा-
भवश्च मनसो युक्तं न्ययि प्रस्थिते ॥ ४१ ॥ पतिरतोष
घनी सुभगो युवा परचिलासयतोषु पराङ्मुखः ।
शिशुरलङ्कृते भवनं सदा तदपि सा सुदती रुदती
कुतः ॥ ४२ ॥ पर्यङ्कः स्वास्तरणः पतिरनुकूलो मनो-

जला-जलाकर जो तुम मनवाली नबेलियोंके मनकी ठोड़ खगाते
फिरते हो, यह बात मैं ताड़ गई हूँ, किन्तु परवश हूँ इसलिये
तुझे क्षमा करो । भीक डालनेके बहाने मैं तुम्हारे हाथ जोड़ती
हूँ ॥ ३३ ॥ जिस भीड़में घरके बड़े लोगोंकी दृष्टि नहीं पड़ पाती
उसमें वे स्वमिचारिणी स्त्रियाँ अपने स्तन उघाड़-उघाड़कर ऐसी
मनवाही बेठाईं करती हैं कि किसीपर चितवन चलाती
हैं, किसीको भुगाएँ मरका-मरकाकर दिकाती हैं, किसीको
हाथसे धरके देती हैं और किसीको नकोंसे चूँटती चसती
हैं ॥ ३४ ॥ अब चाहे सौंस फूँके, पसीनेसे देहपर बनी हुई
चित्रकारी मिट जाय, चाहे बन्दर कोचिह्न होकर अपने नकोंसे
मेरी छाती कोच ढाके पर जेठानीजी ! देवरके जादूके
बन्धेकी देहमें हुए भयंकर कोड़ेके छिये औपधिकी
झाड़ लेनेके छिये मैं बम झाड़ूंगी ही ॥ ३५ ॥ हे प्यारी
सखी ! द्वारपर खगमेसे सरकर खड़ी हुई तूम् ऐसी चित-
वन चला रही हो । जान पड़ता है किसी भाग्यवान्
मिथतमके पास तूम् अपनी दुसरी रूपी भीरी भेज रही हो ॥ ३६ ॥
स्वमिचारिणी ज्योंके दोनों कमलनयन न तो कमलोंकी बराबरी
करने योग्य हैं न फूलोंकी क्योंकि वे न तो सूर्यके ही उदय होनेपर
खिलते हैं न चन्द्रमाके ही उदय होनेपर । वे तो केवल आँधरेमें
ही खिलते हैं ॥ ३७ ॥ आँधरा तो स्त्रियोंका सगा, वादल सहोदर
भाई, काकी अम्भभूमि, रात प्यारी सखी और स्वामी महा-

राज कामदेव हैं । सुन्दर चकोरके समान चञ्चल नयनोंवाली
जिन स्त्रियोंकी ऐसी बुद्धि हो जाती है उन्हींका चोँदनी-जैसा
उमङ्गा यश फैलता है और उन्हें ही सदा सुख मिलता है ॥ ३८ ॥
'हे पुत्री ! जो स्त्रियाँ सदाचारमें कपना मन लगाए रहती हैं
वे अपने दोनों कुलोंकी पताका हाँती हैं, ऐसी अपने कुलोंकी
मर्यादा है ।' बड़ोंकी यह शिक्षा सुनवती स्त्रियोंके समाग्रमें तो
राधाने मान ली किन्तु फिर वह बेलटके श्रीकृष्णका मुखचन्द्र
देखने लगी ॥ ३९ ॥ गोपीने जब देखा कि सूर्य धीरे-धीरे
पश्चिम दिशाको सजा रहा है तो बड़ोंकी सल्लतसे पड़ककर भी
उसने अपने नयनोंकी लैनसे गोविन्दको मित्रनेका न्यौता दे डाला
॥ ४० ॥ अब आपसे मित्रनेके लिये मैंने सौँवके फणपर पैर रखे,
बड़ोंकी भक्ति छोड़ी, जोगोंसे प्रेम तोड़ा, सारे कुकर्म कर
किए ! तो अब आपके प्रस्थान करते समय आँखोंकी लैकड़-
दुर्गतिर्था, नयनोंकी रीरव नरक जैसी पीड़ा और मनकी कुंभी
पाक नरक जैसा कष्ट उचित ही है ॥ ४१ ॥ यद्यपि पति अत्यन्तों
घनी है, सुन्दर है, युवा है, दूसरी नबेलियोंसे प्रेम भी नहीं
करता और पुत्र भी घरकी शोभा बढ़ा रहा है फिर भी यह
सुन्दर दौनोंवाली रो क्यों रही है ! ॥ ४२ ॥ प्यारी चोरी रति
करनेकी कोभी कामिनिर्था सुन्दर बिलौनेवाले पलंग, घाज़ाकारी
पति और मनोहर भवनको तिनका समझती है ॥ ४३ ॥ जो
स्वमिचारिणी वमलनयनी स्त्रियाँ अपनी भीकी चितवनसे पर-

हरं सदनम् । तृणमिव लघु मन्यन्ते कामिन्यश्चोर्ध्व-
रतिलुब्धाः ॥ ४३ ॥ पश्यन्ति स्निग्धमुग्धं प्रतिकलम-
धुरैर्मोहयन्त्यङ्गद्वारैः साकूनैर्मन्दहासेरपि परपुरुषान्
शब्धदानम्वयन्ति । चेष्टन्ते चेत् एते किमपि परिव्रज्या-
द्धारयिष्यन्ति तेषां प्राणान्को वेद् लोके परजलजट्टां
चित्तमत्यन्तलोलम् ॥ ४४ ॥ पाणो गृहीतापि पुरस्कृ-
तापि स्नेहेन नित्यं परिवर्धितापि । परोपकाराय
भवेद्दृश्यं वृद्धस्य भार्या करदोपिकेव ॥ ४५ ॥ पृथ्वी
तायन्निकोणा विपुलनदनशोभावरुद्धं तदर्थं तत्राप्यर्थं
युवत्यः शिशुगतयसो रोगिणो योगिनश्च । त्याज्या-
स्तत्रापि मान्याः श्वशुरपितृमुखाः सन्ति श्रेयाः
कियन्तो मिथ्यावादो ममायं मुखरमुखायः पुंश्चली
पुंश्चलीति ॥ ४६ ॥ मिथो मयैवावचितैः प्रसन्नैर्दृष्टो
हरस्यातनुते सपर्याम् । अतो मतानेकलतावृत्तानि
यास्यामि सायं । अपिनानि सत्यः ॥ ४७ ॥ प्रसीव
सत्यमखिलं महि किञ्चिदप्यसस्मान्न मे सखि परापर-
भेदबुद्धिः । जारे तथा निम्नवरे सदृशोऽनुरागो व्यर्थ

किमर्थमसतीति कदर्शयन्ति ॥ ४८ ॥ भद्रं तस्य तरोः
स्वयं चिरकृतप्रस्थानकं कथ्यतां दुर्धारस्तमरव्यवहि-
रदहज्जिग्दाक्षं दुर्वचः । मा स्विद्यस्व ततः प्रभृत्यनु-
दिनं तस्याः पतद्भिर्दृशोरम्भोभिः परिणद्धपल्लवचन-
च्छायस्तरुवर्धते ॥ ४९ ॥ अमेदैः कतिचिद्भिरा कुटि-
लया काश्चित्किमर्थः स्मितैः स्वैरित्यः कथयन्ति
मन्मथरसव्यापारवश्यं मनः । कासाञ्जिस्फुरत्केषु
मसृणच्छायेषु मध्यस्थितो भावः काचपुटेषु दुष्कर-
मिव प्रत्यक्तमालोक्ष्यते ॥ ५० ॥ मया कुमार्यापि न
सुप्तमेकया न जारमुत्सृज्य पुमान्विलोकितः । अनेन
गोप्रस्थितिपालनेन मे प्रसन्नतामेतु भवोपकारिणी
॥ ५१ ॥ यः कामारहरः स एव हि वरस्ता एव चैत्र-
रुपास्ते सोमोलितमालतीसुरभयः मौढ्याः कदम्बा-
निलाः । सा चैवास्मि तथापि चौर्यसुरतव्यापारली-
लाधिधौ रेवारोधसि देतलीतरुतले चेतः समुत्फुल्लते
॥ ५२ ॥ यद्वचि विवृद्धमात्रा विकसितकुसुमोत्करा
शुलभेणी । पीतांशुकमियेयं तद्वचि पञ्जापतेः पुत्री

पुरुषोंको देखती हैं, अंगोंकी चटक-मटकसे उन्हें मोह लेती हैं,
भेदभरी मग्द सुसकामसे उन्हें सदा आनन्द देती रहती हैं
और कुछ ऐसे हाव-भाव करती हैं कि परिचय मात्रसे उनके
प्राण निकल लेती हैं उनके आचमन पंचम चित्तको कोन
समझ सकता है ? ॥ ४७ ॥ जैसे आगे-आगे हाथमें रखता हुआ
और सदा तेज डालकर पढ़ाया हुआ दीपक दूसरोंकी भलाई
करता है वैसे ही हाथ पकड़कर आगे-आगे चलती हुई तथा
स्नेहपूर्वक पावन की हुई वृद्धकी स्त्री पचरूप परोपकारके लिये
ही होती है ॥ ४८ ॥ एक तो धरती ही तिकोनी है, उसमें आधी
धरती बहुतसे नदी नाले और पथरांसे भरी है, उस आधीकी
आधीमें शिखरों, पर्वतों, वृद्धों, रोगों और योगी आदि हैं, उसमें
भी बड़े-बूढ़े, पृथ्वी, ससुर, पिता आदि हैं, अब बचे ही कितने
कि बकवादी लोग मुझे 'व्यभिचारिणी-व्यभिचारिणी' कहकर
फूटा दोष लगाते हैं ॥ ४९ ॥ हे सखियो ! प्रतिदेव
प्रसन्न होकर मेरे लुने हुए फूलोंसे शिवजीकी पूजामें
लीन हैं । अतः, मैं फिर संकाको उसी वनमें जाऊँगी
जहाँ बहुत-सी वनकी हुई छताएँ वनी हैं ॥ ५० ॥ हे सखी !
एक दृष्टा ही सत्य है, उसके अतिरिक्त सत्य कुछ है, मुझे तो
अपने-परापमें कोई भेद नहीं जान पड़ता । इसीलिए अपने
प्रियतम और जारसे मेरा समान प्रेम है । फिर भी लोग न जाने

क्यों मुझे ऊँछटा कह-पहकर व्यर्थ सताए जात रहे हैं ॥ ५१ ॥
नायक और दूतीमें बात चीत है—नायकः कहो, वह वृष दुर्गल
से लो है ? तुम बहुत दिनोंपर हुए आहें । एक नदी प्रविष्ट
बहोर बात सुननेमें आई है कि अर्धकर दावानलने उस वृष
को जला डाला है । दूतीः सोच न करो, उसी दिनसे तुम्हारी
प्यारीके नेत्रोंमें निकले हुए आँसुओंसे लगातार सींचे जानेके
कारण उसमें पत्ते निकल आए हैं, उसकी क्षाया घनी होती आ
रही है और वह दिनोंदिन बढ़ रहा है ॥ ५२ ॥ कामके रससे सरी
झीझमें लगे हुए अपने मनकी गतिको कुछ व्यभिचारिणी
स्त्रियों भीहँ नचाकर जाताती हैं, कुछ उसी-सीधी बार्तो-द्वारा
और कुछ अपनी मुस्कान-द्वारा । पर किसीके सुन्दर चिहने
जहाँसे प्रचलान कामके भाव लो ऐसे भ्रमक जाते हैं वैसे
शीशेपर पानी ॥ ५० ॥ छोटेपनसे ही मैं कभी चक्रेकी नहीं
लोई और जारकी छोड़कर वभी दूसरे पुरुषका मुँह नहीं
देखा । मेरे इस गोप्रस्थिति-पावनसे संसारका उपकार करने-
वाली देवी प्रसन्न हों ॥ ५१ ॥ जिसने मेरा कुर्मीरापन दूर
किया वही मेरा पति अब भी है, ये ही चेतकी रातें हैं,
माखतीकी गन्धले भरे हुए वे ही प्रसन्न वायुके झोंके हैं, यही मैं
हूँ फिर भी नर्मदाके तटपर बेंतकी काङ्गियों-तले लुक-छिपकर
रति-कीड़ा करनेकी मन जराजायित हो रहा है ॥ ५२ ॥ यह

॥५३॥ यदि भयति दैवयोगात्पुमान्विरूपोऽपि यन्वकी
रहसि । न तु हृच्छादपि भद्रं निजकान्तं सा भज-
त्येव ॥ ५४ ॥ यस्य भार्या विरूपा च कदमला कलह-
प्रिया । अधिकाधिकभक्ता च सा जरा न जरा जरा
॥ ५५ ॥ धर्यं यात्ये वालौस्तद्विपनि यूनः परिणता-
वपीच्छामो वृद्धान् परिणयविधौ नः स्थितिरियम् ।
स्वयारब्धं जन्म क्षयितुमनेनैकपतिना न मे गोत्रे
पुत्री क्विदपि सतीलाच्छुनमभूत् ॥ ५६ ॥ द्यपेन-
ध्याहारं गतविधिधिशिल्पव्यतिकरं करस्पर्शरम्भेविग-
लितदुकूलान्तयसनम् । मुहुर्बद्धोःकम्पं दिशि दिशि
मुहुः प्रेक्षितदशोरहयासुप्राग्णोः कृणिकमिय तत्स-
क्तमभूत् ॥ ५७ ॥ शिरसि शिरसिजं दशोर्निमेषं चिद-
पिनि पल्लवमालये कृणं वा । गणयितुमपि पारयन्ति
केचिद्विपसलि के कथयन्तु जारसंख्याम् ॥ ५८ ॥
शुभ्रपक्ष गुकृन्निवर्तय सखीषन्दस्य यन्पुत्रियः कावे-

रीनटसन्निविष्टनयने मुग्धे किमुत्ताप्यसि । आस्ते पुत्रि
समीप एव गमनादलालतालिङ्गनम्यञ्च द्वालयनमालद-
न्तुदरा तत्रापि गादायरा ॥ ५९ ॥ सन्दिग्धे परलोके
जनापवादे च जयति यदुच्यते । स्वाधीने परमणे
धन्यास्तादृश्यकनभाजः ॥ ६० ॥ सम्पत्कस्याद्य तारा
भवति तरलिता यन्पुरो नेत्रतारा दृष्टा केनाद्य काञ्ची
यदभिमुखगता वेपते रत्नहाञ्ची । उग्रः कस्याद्य तुष्टः
सखि यदनुमने कश्चिदुग्रोऽनुतापः क्षातं केनाद्य वेणी-
पयसि चिनुलिता यन्कृते कापि वेणी ॥ ६१ ॥ सखि
सुखयन्त्ययकाशे प्राप्तः प्रेयान् यथा तथा न गृहे ।
घाताद्वारितादपि भयति मयाक्षानिलः शीतः ॥ ६२ ॥
समीडाधर्निरीक्ष्यं यदुभयार्थदूतिलसम्पणं ह्यद्य श्वो
भयिना समागम इति प्रीतिमसादश्च यः । प्राप्ते काल-
समागमे सरमसं यच्चुम्बनालिङ्गनं तत्कामस्य फलं
तदेव सुरतं शेवा पशुतां स्थितिः ॥ ६३ ॥ सुखशय्या

काहीरकी पुत्री लवक पीछे पक्ष ही पहनना चाहोगी जयतक
लिखे हुए फूलोंसे भरे सनके छेत हैं ॥ ५३ ॥ यदि दैवयोगसे
मन्त्रिचारिणीको कुरूप पुरुष भी पुरुषनमें मिल जाय तो वह
बससे प्रेमपूर्वक सम्भोग कर लेगी किन्तु अपने सुन्दर पतिले
वह तनिक भी रमण करना नहीं चाहेगी ॥ ५४ ॥ जिसकी
की कुरगा, पारिज, भगदाशू और बहुत भोजन करनेवाजी
होती है वही उसके लिये यथार्थमें मुदावा है, वास्तविक
मुदावा मुदावा नहीं ॥ ५५ ॥ क्याहके विषयमें हमारी तो वह
स्थिति रही है कि यद्यपन में हमने पाठकोंको, युवावस्थामें
युवकोंको और मुदापमें वृद्धोंको ही चाहा है पर एक तुम हो कि
हस्ती एक पतिले साथ जीवन बितानेका मिश्रण किए बैठी हो ?
बेटी ! हमारे कुत्रमें कभी किसीको सनो होनेका कलंक नहीं
लगा ॥ ५६ ॥ यद्यपि शरीरपर भौंनि-भौतिकी चित्रकारीकी
भी बाधा नहीं थी, हाथ लगाते ही भट सादीके नांचेका अन्त-
र्वस्त्र (साया) भी लुज गया, पर हम लोग बार-बार कपिते हुए
चौक-चौककर चारों ओर भाँलें दौड़ाकर देखते जो जाते थे इसलिये
बहलया और हम्रके समागमकी भौति हमारा वह सम्मिलन भी
देखा चमिक हुआ कि आपसमें एक भी बात न हो पाई ॥ ५७ ॥
हे प्यारी सखी ! सिरके बाज, पक्षकोंकी बरीभियाँ, वृषके पले
और वरपर छाप हुए घासके तिनके भले ही कोई गिन ढाके
पर यह बताना कठिन है कि मेरे चाहनेवाले कितने हैं ॥ ५८ ॥
बेटी ! वृद्धोंकी सेवा करना ! अब सखियोंको बिदा करो । आई-

अधुकी मित्रियोंको प्रणाम करो । चरी भोजी ! कावेरीके तटपर
छाँलें छाँप क्यों उदास हो रही है ? वहाँ भी पासमें ही भोजी
चलकर गोदावरीके तटपर उन तमाजके गृहोंमें वहाँ हुई गुफाएँ
हैं जिनपर इलायचीकी छनाएँ जिरटी रहनी हैं ॥ ५९ ॥ मरनेके
पश्चात् क्या होगा, इसके संबंधमें संसारमें जितने मुँह डतकी
वातें हैं चार परपुरुषसे सम्भोग भी अनायास मिल जा जाता है,
तब वे ही लोग धन्य हैं जो बेलकटे कीवनका उपभोग करते
हैं ॥ ६० ॥ यह कौन है जिस पर तारादेवा (कचमी) देखी
प्रसन्न हो गई है । उसके सामने पड़ते ही तारे (नेत्रोंकी
पुतलियों) गँझो हो जाती हैं, किसने काछोपुरीका दर्शन
किया है जिसके सामने पड़ते ही रत्नोंकी कचना (काँची)
कॉरने लगती है, किसपर शिव (उग्र) जी प्रसन्न हो गए
हैं जिसके लिये किसीके हृदयमें प्रवल (उग्र) पड़तावा हो
रहा है और जिसने आत्र मित्रेणों स्नान किया है जिसके लिये
किसीकी चाटा (बेणी) लुज-लुज जा रहा है ॥ ६१ ॥ हे
सखी ! चारी-चारी वरपर आया हुआ प्रिय जैसा सुख देता है
वैसा घरका मिथतम नहीं क्योंकि वे रोक-टोक आनेवालेकी
अपेक्षा करोखेले आनेवाला पवन कहीं अधिक ठण्डा होता
है ॥ ६२ ॥ आपसमें जानसे भरी तिरछी चितवनें चढाना,
एक दूसरेके पास कृता भेजना, 'भाज या कज मिलाप होगा,'
हसी प्रसन्नतामें मस्त रहना और मिलनेका समय आनेपर
वेगसे सुम्बन, आङ्गिकन आदि करना यही तो कामका यथार्थ

ताम्बूलं विश्रद्धान्श्लेषचुम्बनादीनि । तुल्यन्ति न
लक्ष्मांश्च स्वरितलक्षणचौर्यसुरतस्य ॥ ६४ ॥ सुभगं वदति
जनस्तं निजपतिरिति नैव रोचते मह्यम् । पांशूपेऽपि
हि भेषजभाषोपहिते भवत्यरुचिः ॥ ६५ ॥ स्थितिर्गहो-
पान्ते परिजनपरीक्षासकलना मुहुर्यातायाते सकृदपि
गृहे व्याजगमनम् । मुहुस्तद्गोप्येऽपि लक्षपरिचयो
वस्तुनि दशः समुत्पन्नप्रेम्णः सकलमिदमापातसुख-
दम् ॥ ६६ ॥ हंसैः शैवसमञ्जरोति कवरी चञ्चुभिरा-
कपिता वक्त्रे चन्द्रधिया सकोरधनिता वक्त्रे नखैरक-
मम् । भृङ्गैः पङ्कजकोरकप्रतिभया वक्षोरुहो घोषितस्त-
म्भातः करवै पुननं सरसोतोयावगाहोद्यमम् ॥ ६७ ॥

पांशु-संकेतः—अहमिदं दिनकर्मोः प्रोषितमाणनाथा
स्वमिक पर्यधिक पन्था मुक्तपांशुनायुग्मः । अयमपि
परदेशः सोऽपि यत्रासि गता मदनमधुरमूर्ते किं

वृथा सत्त्वरोति ॥ १॥ इयं सुरतरंगिणी न पुनरत्र
नोसंगमो भवेत्तरणिमज्जनं पथिक नैव पांशुनागमः ।
निधाय हृदये सदा विपुलचारुकुम्भद्वयं सखे घनघना-
गमे घनरसस्य पारं यत्र ॥ २॥ एकाकिनी यद्वक्त्रा
तद्वक्त्रो तथाहमस्मिन् गृहे गृहपतिश्च गतो विदेशे ।
कं याचसे तदिह वासमियं वराकी श्वश्रूर्ममाश्व-
वधिरा ननु मूढ पान्थ ॥ ३॥ किमिति कथासि कृशो-
दरि किं तव परकीयवृत्तान्तेः । कथय तथापि मुदे
मम कथयिष्यति पान्थ तव आथा ॥ ४॥ कुश्यासीः
किमिवमकरोः साहसं पान्थ वन्धो यद्येतस्मिन्नि-
वससि पुरे सावधानस्तथा स्याः । अश्रोतालाः सन्ति
यासां विलासैरवच्यन्ते सपदि मदनव्याधयो दुर्नि-
वाराः ॥ ५॥ प्रामेऽस्मिन्मास्तरमाये न किञ्चित्पान्थ
विद्यते । पयोधरोन्मतिं वृष्टा वस्तुमिच्छसि चेद्भस ॥ ६॥

कल है और यही सुन्दर रति-किरा है, जोय तो पशु-मोका-सा
गमनहार है ॥ ६३ ॥ सुग्न देवैवाकी शय्या, पान और वेलाटके
आजिगन-शुभन आदि सब, एक कणमें शीघ्रतापूर्वक चोरी-
चोरी होनेवाली रतिक्रीड़ाके लालचें चंयकी भी बराबरी नहीं
कर सकते ॥ ६४ ॥ यद्यपि लोग उसे सुन्दर कहते हैं किन्तु
मेरा पनि होनेसे वह मुझे वैसे ही नहीं रुचता जैसे अमृतकी
भी औषधिके रूपमें लेनेसे घृणा हो जाती है ॥ ६५ ॥ नवे-
नदे प्रेममें प्रेमिकाके घरके पास रुकें रहना, बार बार
बस गलीसे जाना-जाना, किसी बहाने पृकाथ बार उसके घर
भी पहुँच जाना, उसके उपयोगकी कोई वस्तु चञ्चु भरकी
देखनेको मिला जाना और लोगोंका उसीके विषयमें उपहास
करना ये सब बातें चाहिले अत्यन्त परम सुखदायी होती हैं ॥ ६६ ॥
हे माँ ! अथ मैं तालाबके जलमें स्नान करने न जाऊँगी क्योंकि
वहाँ मेरे जूँको सेवारकी मंजरी समझकर हँसोंने खोंच बाजा,
चकीरीने मेरे नखोंका चन्द्र समझकर चोंचमें दबा लिया और
कमलकी कली समझकर और मेरे स्तनोंकी ओर देखने लगे
॥ ६७ ॥

यटोहीको संकेत : हे कामदेवके समान सुन्दर बटोही !
जैसे मेरे पति परदेशमें हैं वैसे ही दिनकी शोभाके पति सूर्य भी
परदेश चले गए (अस्त हो गए) । जैसे तुमने यात्रियोंका
साथ छोड़ दिया है वैसे ही मार्गने भी यात्रियोंका साथ छोड़
दिया है । यह भी परदेश ही है और जहाँ तुम जानेवाले हो
यह भी परदेश ही है इसलिये तुम क्यों प्यर्थ जानेकी उतावली

कर रहे हो ॥ १ ॥ हे मित्र बटोही ! यह गंगा आ गई, कोई
नाव नहीं दिखाई दे रही, नाव भी डूब जा सकती है, कोई
और व्यक्ति दिखाई नहीं पड़ रहा इसलिये इस बगी बटोहीकी
बेजानमें तुम हो बड़े-बड़े बड़े जालोंसे भरी भर्ति बिपकाकर
यह जगह जलराशि पार कर लो । [अथवा—हे मित्र बटोही !
यह मैं सुरतिमें रस लेनेवाली] फिर हमारा दोनोंका मेघ क्यों नहीं
हो पा रहा । देवी, सूर्य डूबा आ रहा है । किसीके जानेकी संभावना
भी नहीं है । अतः, तुम ये विशाल सुन्दर स्तन जालोंसे खगा-
कर इस बगी बटोहीकी बेजानमें प्रगाढ़ प्रेमका प्रवाह पार कर लो
॥ २ ॥ जरे मूर्ख बटोही ! इस घरमें मैं भकेली नवयुवती खबला हूँ,
मेरे पति परदेश गए हैं और यह मेरी सास बेचारी अन्धी भी
है और बहरी भी ; यहाँ तुम किससे रहनेकी स्थान माँग रहे
हो ? ॥ ३ ॥ किसी बटोही और नवेजोंमें बात हो रही है—
बटोही : हे पत्नी कमरवाली ! तुम इतनी दुबली क्यों हो ?
नवेजी : तुम्हें दूसरोंके समाचारसे क्या खेना-वेना ! बटोही :
फिर भी कुछ वा बताओ, सुनकर मुझे प्रसन्नता ही होगी ।
नवेजी : हे बटोही ! इसका कारण तुम्हारी खी तुम्हें बतावेगी ।
॥ ४ ॥ हे भाई बटोही ! तुम कहाँसे चले आ रहे हो ? यहाँ जाने-
का साहस तुमने कैसे किया ? यदि तुम इस नगरमें रहना ही
चाहते हो तो सावधान होकर रहना क्योंकि यहाँ कुछ ऐसी
मदमाती खलबेजी नवेजियाँ हैं जिनके हाव-भावोंसे लालाच
ऐसी काम-ग्याधि उत्पन्न हो जाती है जिसकी चिकित्सा होनी
भी कठिन है ॥ ५ ॥ हे बटोही ! इस पयरीके गर्बमें और तो

त्वमिव पथिक प्रियो मे विटपिस्तोमेपु गमयति
क्लेशान् । किमितोऽन्यकुशलं मे संप्रति यन्पान्थ
जीवामि ॥७॥ नाथो मे विपश्चि गतो न गणयत्येवा
स्वपत्नी च मां त्यक्त्वा मामिह पुष्पिणोति गुरवः
प्राप्ता गृहाभ्यन्तरम् । शय्यामात्रसहायिनीं परिजनः
भ्रान्तो न मां सेवते श्यामिन्नाममलालनीय रजनीं
क्षयमीपते रक्ष माम् ॥८॥ निविडतम्रतमालमल्लिवल्ली-
विचकिलराजिधिराजितोपकण्ठे । पथिक समुचित-
स्तवाद्य तीव्रे सवितरि तत्र सरिसटे निधासः ॥ ९ ॥
पान्थ मन्दमते किंवा संतापमनुविन्दसि । पयोधरं
समाशास्य येन शान्तिमवाप्नुयात् ॥ १० ॥ भयनमिव
महीयं निर्जनः पान्थ पन्थाः कुसुमशर इवास्मिस्त-
स्करा दुर्निवाराः । गृहप इव पतङ्गोऽप्येव यातो दिग-
न्ताम्यदनसुभग भूयो नैव गन्तुं समीहे ॥११॥ भ्रातः
पान्थ पथि त्वया न पथिकः कश्चिरसमासादितो वालो
नैकशतानि कीदृश इति प्रख्यायतां पल्लभः । यं दृष्ट्वा

प्रमदाजनस्य भवतः स्फारे भुवा लोचने स ज्यो
दयितो ममेति पथिकायावेव मोहं गता ॥ १२ ॥ भो
पान्थ त्वमितोऽसि निष्ठ निमित्तं किञ्चिद्ददामो धर्मं
मार्गोऽयं पुरतो द्विधा चतु भवेद्दामेन नो गम्यनाम् ।
तत्रास्ते सहकारकोमलतरोर्मूले प्रपापालिका तस्या
लोचनवागुरानिपतितो न त्वं पुनर्यास्यसि ॥ १३ ॥
भो पान्थ पुस्तकधर क्षणमत्र निष्ठ घेयोऽसि किं
गणितशास्त्रविशारदोऽसि । केनोपघेन मम पश्यति
भर्तु रम्य किंवाऽगमिष्यति पतिः सुखिरप्रवासी ॥१४॥
यदि गन्तासि दिगन्तं पथिक पतिस्तत्र संशोध्यः ।
नयनधवलविहीना कथमुपचर्या मयैकया जननी ॥१५॥
यामिन्येया पद्मजलदैर्यद्भोमान्धकारा निद्रां यातो
मम पतिरसो क्लेशिनः कर्मदुःखैः । बाला चाहं मन-
सिज्जभयारमासगादप्रकम्पा ग्रामध्वीरेरयमुपहतः पान्थ
निद्रां जहीहि ॥१६॥ रथ्या रजोरुणितधूसरिताङ्गपटेः
कश्चिन्निवतुः स्मरसि पुत्रक निर्घृणस्य । उक्त्यैवमद्गत-

कुछ नहीं है, ये कमकी हुई बादलोंकी घटाएँ (ऊँचे-ऊँचे स्तन)
देखकर रहना चाहो तो अवश्य रहो ॥६॥ हे बटोही ! तुम्हारे ही
समान मेरे प्रियतम भी तुम्हेंके लगे पड़े यकान मिटाते
होंगे फिर भी इससे बढ़कर कुशलता और पया होगी कि मैं
अभीतक जी रही हूँ ॥७॥ मेरे पति व्यापार करने गए हैं, यह
सौत मुझे कुछ समझती ही नहीं, मुझे रजस्वला जानकर सास-
ससुर भी घरके भीतर फले गए हैं, अब यह बिछावन-मात्र ही
मेरा सहारा है, भीकर-चाकर भी सब धके मोंरे सो रहे हैं, मेरी
सेवा नहीं करते; अतः, हे स्वागत करने योग्य (वेदोंके द्वारा
स्तुति किए गए) ! धनवान् प्राणेश्वर (विष्णु) ! इस रात मेरी
रक्षा करो ॥ ८ ॥ हे बटोही ! बड़ी कड़ी धूप है इसलिये अरुड़ा
हो कि तुम नदीके उस तीरपर पलकर दुपहरी बिताओ जहाँ
तमाकके घने घूँघ छाए हुए हैं और मस्जिदकाही जतालोंकी
घनी कुर्छें हैं ॥ ९ ॥ अरे मूर्ख बटोही ! क्यों गर्मी
(कामकी गरमी) से लपे जा रहे हो ! मेघों (स्तनों)की
अभ्यर्थना करो जिससे शान्ति मिले ॥ १० ॥ हे पथिक । मेरे
घरके समान ही मार्ग भी निर्जन हो गया है, कामदेवके समान
और भी मार्गमें बलपूर्वक आक्रमण करते हैं, मेरे पतिके समान
ही यह सूर्य भी दिवाके छोरकी पहुँच गया है, अतः, हे काम-
देवके समान सुन्दर ! अब मैं घरसे नहीं निकलना चाहती
॥ ११ ॥ नवेखी : हे भाई बाबू ! क्या मार्गमें तुम्हें कोई

पथिक मिला या ? बटोही : हाँ-हाँ नवेखी ! एक नहीं, सैकड़ों ।
पर यह तो बताओ कि तुम्हारा पति कैसा था ? नवेखी :
जिते देखकर प्रसन्नताके मारे स्त्रियोंके नेत्र लुल्ले रह जाते हैं
वही मेरा पति है । पथिकसे ऐसा कहते ही वह अचेत हो गई
॥१२॥ हे राही ! इनकी शीघ्रता क्या है ? पलभर रुक जाओ,
तुमसे कुछ कहना है । आगे जाकर इस मार्गमें जो दो शाखाएँ
फूटी हैं, उसमें बाँटते न जाना क्योंकि वहाँ कोमल कामके
तृणके लगे प्याऊपर जो प्याऊवाली पैड़ी है उसकी चितवनके
आलमें पड़कर तुम नहीं निकल पाओगे ॥ १३ ॥ हे पुस्तक-
चारी बटोही ! पलभर उहरो । बताओ तुम वेष हो या उपातिपी ?
यह बताओ कि मेरी अन्धी सासकी कीन-सी औषधि खिजाई
जाय कि वह देखने लगे और बहुत दिनोंसे परदेख गए हुए मेरे पति
कब झौटकर आँगे ॥१४॥ हे राही ! यदि तुम्हें बहुत दूर विदेश
जाना हो तो वहाँ मेरे पतिले यह सन्देश कह देना कि मैं
अकेली इस अन्धी और बहरी सासकी कैले सेवा करूँ ॥१५॥
हे पथिक ! नींद छोड़ो, उठो । देखो बादलों की घटाएँ घिरनेसे
रात भयानक चौधरी हो गई है, घरके काम-काजसे थका हुआ
मेरा पति यह सो रहा है, मैं नवेखी हूँ, मनमें डर समाया हुआ
है, मुझे कैपकपी छूट रही है (कामके भयसे मैं कॉप रही हूँ)
और यह गाँव भी चौरोंसे घिरा हुआ है ॥१६॥ 'हे पुत्र' क्या
तुम्हें गलीकी (रथोंसे ढकी हुई) जाल धूलसे रँगी हुई देहवाले

यायतमायतावया पान्थस्त्रिया प्ररुदितं करुणं दिनान्ते
॥१७॥ वाणिज्येन गतः स मे गृहपतिर्वातापि न भूयते
प्रातस्तज्जननी प्रसूततनया जामातुगेहं गता । बालाहं
नवयौवना निशि कथं स्थातव्यमस्मिन्गृहे सायं संप्रति
वर्तते पथिक हे स्थानान्तरं गम्यताम् ॥ १८ ॥
धीक्षितुं न क्षमा भ्रष्टः स्वामी दूरतरं गतः । अहमे-
काकिनी बाला तवेह वसतिः कुतः ॥१९॥ शुभं वेश्म
विरायितो गृहपतिर्जाताधुना शर्वरी स्थातुं नोचितमथ
गच्छ निभृतं लोकैरनालक्षितः । इत्थं लोलदशा ह्यसा-
वभिहितो दासीमुखेनाप्यगः स्थित्वा किञ्चिद्विष क्व
यामि रजनी मातेत्युदीर्य स्थितः ॥ २० ॥ स्मृतं व्या-
वयमिन्दुसुन्दरमुखि प्रस्तावतोऽपि त्वया स्यादेवं यदि
नाथ दास्यति विधिर्जातिस्मरत्वं मम । एकस्मिन्नपि
जन्मनि म्रियतमे जातिस्मरत्वं कुतः प्राणाः पान्थ समं
त्वयैव वलितः क्वाद्यापि जन्मैकता ॥२१॥

वेश्यानिन्दा—अयं च सुरतज्वाला कामाग्निः

अपने निर्दयी पिताका स्मरण जाता है ?' ऐसा कहकर बिह-
मात्र बची हुई बड़ी-बड़ी धौलौवाली परदेसीकी स्त्री सायंकाळ
कहण स्वरमें जी-भर रोई ॥१७॥ मेरा पति व्यापार करने बाहर
गया है, उसका कोई समाचार नहीं मिलता, उसकी माँ प्रातः-
काळ ही अपने दामादके घर बची गई है, क्योंकि वहाँ बच्चा
हुआ है । मैं गई-नवेकी युवती हूँ फिर तुम इस घरमें रातको
कैसे रह सकोगे ? संझा हो ही रही है । अतः, हे राहो ! तुम
कोई दूसरा स्थान देखो ॥ १८ ॥ सास देख नहीं पाती, पति
बहुत दूर चले गए हैं, मैं अकेली खड़ी हूँ, सब बताओ तुम
यहाँ कैसे रहोगे ॥१९॥ जब दासीके द्वारा बचक नयनवाली
नवेजीने पथिकको यह कहवाया कि घर सूना है, पति आ नहीं
रहे हैं, रात हो गई है, तुम्हारा यहाँ ठहरना उचित नहीं है
अतः चुपकेसे चले जाओ जिससे कोई देख न पावे, तब वह
थोड़ी देर रुका और फिर यह कहकर वहीं ठहर गया कि 'रात हो
गई है, अब कहाँ जाऊँ ?' ॥ २० ॥ परवेश जानेवाले किसी
युवक और नायिकामें बातें हो रही हैं—युवक : हे चन्द्रमाके
समान सुन्दर सुलवाली ! हमें जूब न आना । नायिका :
नाथ ! आपकी कही यह बात तो सही हो सकती है जब भग-
वान् मुझे जाति-स्मरत्व (पूर्व जन्मका स्मरण रखने की शक्ति)
दे दें ! युवक : प्यारी ! एक ही जन्ममें पूर्व जन्मके स्मरणका
क्या प्रश्न ? नायिका : पथिक ! मेरे प्राण तो तुम्हारे साथ ही
चल देंगे, क्या अब भी दुःख ही जन्म कहा जायगा ? ॥ २१ ॥

प्रणयेन्धनः । नराणां यत्र ह्यमृते यौवनानि धनानि च
॥ १ ॥ इह सर्वस्वफलिनः कुलपुत्रमहाकुमाः । निष्क-
लत्वमलं याम्ति वेश्याविहगभक्षिताः ॥ २ ॥ एता
इसमिति च रुदन्ति च विसहेतोर्विश्वासयन्ति पुरुषं
न च विश्वसन्ति । तस्मान्नरेण कुलशीलसमन्वितेन
वेश्याः श्मशानघटिका इव वर्जनीयाः ॥ ३ ॥ कष्टं
जीवति गणिका गणकोऽपि च राजसेवको वैद्यः ।
दिवसे दिवसे मरणं परस्य यच्चित्तरञ्जमं वृत्तिः ॥ ४ ॥
केशः कुन्वमिपादिवोपहसति द्रव्यैर्विहोनाञ्जनाभ्यूनां
प्रमिथधनं विलोकितुमिषोऽहोवस्तनस्तिष्ठति । प्रेमच्छे-
दकपाणवल्लिसुषमां रोमातिरालम्बते यस्याः सा
कथमस्तु चेतसि चमरकराय धाराङ्गना ॥ ५ ॥ जात्य-
भ्याय च दुर्मुखाय च जराजोर्णालिलाङ्गथ च प्राप्ती-
णाय च दुःकुलाय च गलःकुप्राभिभूताय च । पक्ष-
न्तोषु मनोहरं निजयपुर्लभमीलवभ्रजया पश्यन्तीषु
विवेककरपल्लितिकाश्लीषु रज्येत कः ॥ ६ ॥ धनया

वेश्याकी निन्दा : प्रेम-कपी हृदयसे अजनेवाकी पह
(वेश्या) कामाग्निकी रतिकरी उवाका है जिसमें मनुष्योंके जीवन
और धनका इधम होता है ॥१॥ संसारमें चारों ओर कबे हुए,
बचम कुलमें उत्पन्न पुत्रकपी महाकुलोंको जब वेश्याकपी पत्नी
जाने लगते हैं तब वे सर्वथा निष्फल हो जाते हैं ॥ २ ॥
वे वेश्याएँ केवल धनके खाजकमें हैंसती भी हैं, रोती भी हैं,
पुरुषको तो विधास दिखाती रहती हैं किन्तु उसका विश्वास
नहीं करती । इसलिये सदाचारी कुत्रोन मनुष्यको चाहिए
कि वे इन वेश्याओंको श्मशानके घटोंको भँति छोड़ दें ॥३॥
केरवा, उपोत्तिपी, राजाका सेवक और वैद्य, इनका जीवन क्या
कष्टमय होता है क्योंकि दूसरोंका चित्त प्रसन्न करना ही निजका
धन्वा होनेके कारण प्रतिदिन इनकी मृत्यु होती रहती है ॥४॥
वह वेश्या चित्त प्रसन्न करनेवाली कैसे हो सकती है जिसके
बाल अपने सजे कुन्व-कुलोंके बहाने मानो निर्धन लोगोंकी
जिस्ती उड़ाते हैं, जिसके स्तन सिर उड़ाए हुए मानो युवकोंके
धनकी घेजीपर ताक लगाए रहते हैं और जिसकी चमरी रोमावली
प्रेमको काटनेवाली कटार-सी रोमित होती है ॥ ५ ॥ विवेक-
कपी कल्पवृक्षाको काटनेवाली कटारी-कपी इन वेश्याओंपर कीन
रीझे जो जन्मके अन्धे, कुरूप, बुढ़ापेसे शिथिल अंगोंवाले,
मूर्ख, नीच और गणित कीववाले मनुष्योंको भी थोड़ेसे धनके
जाहजमें अपना मनोहर शरीर सौंप बाकती हैं ॥ ६ ॥ धनका
खाजक, कपट-भरा प्रेम और बनावटी बातोंसे चित्त प्रसन्न
करनेका रंग, इनमेंसे एक भी युक्त जब इसमें नहीं है तो इन

कैतवकोटो वितथेक्षिततोषणम् । एकमप्यस्ति नास्मासु
कथं वेश्यासमा वयम् ॥ ७ ॥ न पर्वताग्रे नलिनी प्ररो-
हति न गर्दभा वाजिधुरं वदन्ति । यथाः प्रकीर्णा न
भवन्ति शालयो न वेशजाताः शुनयस्तथाङ्गनाः ॥ ८ ॥
चाप्यां स्नाति विचक्षणो द्विजवरो मूर्खोऽपि वर्णायमः
कुल्लं नाम्यति वायसोऽपि द्वि लतां या नामिता
वर्हिणा । ब्रह्मक्षत्रविशस्तरन्ति च यया नावा तथैवतरे
त्वं यापीय स्तेष्व नारिव जनं वेश्यासि सर्वं भज ॥ ९ ॥ द्वार-
द्वोरकद्विरग्न्यभूयैस्तोषमेति गणिका धनेष्विणी । प्रेम-
कोमलकटाक्षवोक्षितैरेव जीवति कुलाङ्गनाजनः ॥ १० ॥
वीररसः

अद्यारभ्य कठोरकामुकलताविम्वस्तद्वस्तान्मुज-
हताघ्न प्रकटीकरोमि नयने शोणे निमेषोदयात् ।
पावसायककोटिपादितरिपुष्पमापालमोक्षिस्ललन्मल्ली-
माल्यमिलत्पागपटलैरामोदिनो मेदिनी ॥ १ ॥ अत्रा
कृतस्य खरितातिशयेन इष्टैरस्यदुर्गैरपहतस्य

वेश्याओंके समान कैसे हो सकते हैं । ॥ ७ ॥ जैसे पर्वतकी चोटी-
पर कमलिनी नहीं उगती, मोक्षोंका काम गंधे नहीं कर सकते
और बोए हुए बी कभी धान नहीं होते वैसे ही वेश्याजयमें जन्म
लेनेवाकी स्त्रियाँ भी पवित्र नहीं हो सकती ॥ ८ ॥ जैसे बाघकीमें
विश्वान् म.क्षण, मूर्ख, नीच, सभी नहाते हैं, जैसे कुली हुई
जिस खताओ पड़के मोर अपने भारसे नवा चुकता है उसपर
कीमा भी जाकर बैठता है और जैसे माहण, क्षत्रिय, वैश्य भी
जसी नावसे पार जाते हैं जिससे और दूसरे लोग जाते हैं,
वैसे ही वेश्या । ॥ ९ ॥ भी बाघकी, खता और नावके ही
समान है । जता, सबकी सेवा कर ॥ १० ॥ जनकी इच्छा रखने-
वाकी वेश्या भले ही द्वार, हीरे और सोनेके गहनोंसे सज्ज हो
जाय पर कुलीन स्त्रियों तो प्रेममयी रसीली स्त्रियों वितवनकी
जीवित रहनेके लिये पचास समझती हैं ॥ १० ॥

वीर रस

जाजले मैं धनुषपर अपने हाथ-रूपी कमलकी कोर रखकर
तबतक अपनी सुखी हुई आँखें आज न कहेगा जबतक
अपने तीखे बाणोंसे काटे हुए रामाओंके मस्तकसे गिरी हुई
बेलेकी मांजासे मिळी हुई धूलसे पृथ्वीकी सुगन्धित न बना
हुँगा ॥ १ ॥ यह बाजक साधारण नहीं है । इसके अद्भुत और
असौक्यिक काम देखकर मैं इसपर शीक गया हूँ । फिर भी मुझे
विश्वास नहीं हो रहा है कि यह बाजक है । मुझे तो ऐसा

तथापि नास्था । कोऽप्येव वीरशिशुकाकृतिरप्रमे-
यमाहान्यसारसमुदायमयः पदार्थः ॥ २ ॥ अत्राप्त-
प्रथमावकर्तनरुपा व्यातम्रमूर्काभवद्वक्त्रैश्चन्यशिरम्भु
यस्य दृष्टे जिह्वं शिरो जुह्वतः । उच्चार्य स्वयमेव
मन्त्रमकरोन्नास्याहमित्यात्मनस्त्यागं पङ्क्तिमुखः स
चिक्रममुद्ध्वीरः कथं वर्ण्यते ॥ ३ ॥ अर्धासने समधि-
रोप्य सुरद्विपस्य शक्रोऽपि यद्युधि शत्रौ कथञ्ची-
करोति । धोरस्य तस्य सङ्घे दशकन्धरस्य कस्तूह-
सैकरसिकः करवालधाराम् ॥ ४ ॥ अस्त्रज्वालावलोक-
प्रतियलजलधेरन्तरोर्वायमाणे सेनानाथे स्थितेऽस्मि-
न्मम पितरि गुरौ सर्वधन्वोभ्वराणाम् । कर्णालं
सम्भ्रमेण मज्ज रूप समरं मुञ्च दार्ढिक्य शङ्कां ताते
चाण्डालीये वदति रणधुरं को भवस्यावकाशः ॥ ५ ॥
अस्त्राणि प्लवगाधिपेन विहिताः पीलस्यचक्षुःस्थली-
सहृद्वानलदक्षदावधिपदः लीवन्ति भूमीरुहः । उरपाख्य

जान पड़ता है कि इस वीर बाजकके रूपमें कुछ ऐसी प्रतापकी
राशि इकट्ठी दिखाई दे रही है जो समझमें नहीं आती ॥ २ ॥
सबसे पहले शत्रुका सिर न काट पानेके जोभले जब दूसरे
बाणोंके सिर छटककर मौन हो रहे थे उस समय युद्धाग्निसमें कटे
सिरकी आहुति देते हुए जिसने 'मैं इसका नहीं हूँ' इन अपने
स्वागम्य कथनको ही मन्त्र बना दिया उस विक्रमके मित
मन्त्रमुख वीरका वर्णन कैसे किया जा सकता है ॥ ३ ॥ जिससे
गुद करने समय इन्द्र भी देवावतकी पीठपरके आधे आसनपर
शक्रको बैठाकर उसकी ओट (आशु) में अपने माय बजाता है
उस महावीर रावणके सङ्गकी धारकी जानपर खेजकर कीन सह
सकता है ! ॥ ४ ॥ अत्रायामा कहता है—'अर्धोंकी वमहले
भरी हुई शत्रुकी सेनाके रूपमें दिखाई देनेवाले इस समुद्रमें
जब सब धनुषारियोंके गुद मेरे पिता गोणाचार्य सेनापति
जनक बाहवांसिके समान उपस्थित हैं तब हे कर्ण ! बबराने-
की कोई बात नहीं । हे कृपाचार्य ! तुम भी युद्धभूमिमें बह
आओ । हे दार्ढिक्य ! तुम भी मजमें शङ्का न करो । जब मेरे
पिताजी स्वयं धनुष लेकर युद्धका सारा भार सँभावे हुए हैं
तब करनेकी क्या बात है ? ॥ ५ ॥ इधर सुप्रोचने अस्त्र
बनाकर जो वृष फेंके थे वे रावणकी छातीकी टकरसे निकली
हुई दावागिनसे कुजस हो रहे थे कि अंधर उलाहकर फेंके हुए
पर्वतके शिखरकी रावणने अपनी भुजाओंसे ऐसा मस्तक दिया
कि अपने कुछ और अंगोंके जजसे ही सनकर वह कीचड़का

प्रहितश्च शैलशिखरो लङ्घेन्द्रहस्तावलीपिष्टोऽयं निज-
कुञ्जनिर्भरजलैर्जम्बालपिण्डायते ॥६॥ अस्त्रौघप्रसरेण
रावणिरसौ यं दुर्यशोभागिनं चक्रे गौतमशापयन्त्रित-
भुजस्थेमानमाक्षरडलम् । कच्छागर्तकुलीरतां गमयता
घोर त्वया रावणं तत्संमृष्टमहो विशदयकरिणी
जागति सत्पुत्रता ॥ ७ ॥ आकर्णपलितः श्यामो
धयसाऽशीतिपञ्चकः । रणे पर्यवरद्वोणो वृद्धः पोडश-
वर्षवत् ॥ ८ ॥ आजन्मब्रह्मचारी पृथुलभुजशिलास्त-
म्भविभ्राजमानज्याघातश्रेणिसंज्ञान्तरितवसुमतांचक-
जैत्रप्रशस्तिः । वसुःपीठे घनास्त्रमणिकुण्डने संस्पृ-
वानः पृथक्क्रामाप्तो राजन्यगोष्ठीवनगजमृगयाकौतुकी
जामदग्न्यः ॥ ९ ॥ उरः कृत्वाऽधैर्ध्वं मणिफलकगाढ-
स्थितकुक्षं भुजावालम्यैहीत्यमरवनिता व्योमगृहणा ।
अपहारेणैव स्वरितपद्माभाभ्य सहसा हतं हस्तालम्बै-
र्हरति सुरलोकं रणमुक्तात् ॥ १० ॥ एकतश्च सुरसुन्द-

विषय बन गया ॥ ६ ॥ इन्द्रके पुत्र बाकि की मर्यादा करते हुए
कोई कह रहा है—'गौतम ऋषिके शापके कारण जिसका बाहुबल
काम नहीं कर पा रहा था उस इन्द्रको रावणके पुत्र मेघनादने
हराकर चारों ओर उसकी दुष्कीर्ति फैला दी । हे वीर ! तुमने
मेघनादके रिता रावणको जम्बालाशयके तीरपर गढ़में बंधे
केन्द्रके समान डरपोक बनाकर वह कलङ्क दूर कर दिया और
स्पष्ट कर दिया कि अब भी अपने रिताके अपमानका बदला
खेनेवाले पुत्र संसारमें जीवित हैं ॥ ७ ॥ पचासी वर्षकी अवस्थामें
श्यामवर्णके द्वोणार्च्यके बाण कामतक पंक पुके थे किन्तु बूढ़े
होते हुए भी वे युद्ध-क्षेत्रमें सोलह वर्षके बाणकके समान
उज्ज्वल रहे थे ॥ ८ ॥ जन्मसे ब्रह्मचारी वे परशुराम आ रहे हैं
जिनके विशाल बाहुकरी पत्थरके जम्भोंपर धनुषकी कोरकी
रगड़के घटे चमक रहे हैं, भूमलङ्घके विजयकी बाण जिनके
नामके साथ-साथ चलती है, जो अस्त्रोंकी चोटसे घटे लाई हुई
कड़ी छालीपर अपने बाण पैगार रहे हैं और जो राजसमाजकी
जंगली हाथियोंका आलेट करनेके लिये सदा जालावित रहते
हैं ॥ ९ ॥ नायककी सुन्दरता कहीं हृदयमें गड़कर अप्सरा-
धर्मकी लपट न कर दे इस वरसे छालीपर कठोर स्तनरूपी
मणिका पट्टा लगाकर हृदयको न बिध सकने शोष बनाकर,
स्वर्गके भवनकी अप्सरा वृत्से ही बाँई फैलाकर, शीघ्र पाछ
पहुँचकर और अचानक 'आओ' कहकर, अपने हाथका सहारा
देकर, युद्धभूमिमें मरे हुए वीरको युद्धभूमिसे स्वर्ग ले जा रही

रीजनः श्रीः प्रतीकलुति युयुत्सुमन्यतः । पाप्मना सह
पलायतोऽयश्चैकतः कुलकलङ्कारणम् ॥ ११ ॥ एक-
स्मिन्ननु पतितेऽपि शिरसि कोचोपशान्तिः कुतः
स्याद्येत्किन्तु तथा स्वमूर्धपतनं दृष्टं न यथारिणा ।
एतन्मूर्धयद्बहुत्वतः फलमिदं स्वप्नो मया लप्स्यते क्षिप्रं
क्षिप्रमवेदय राक्षसपते यस्मादस्यैस्त्वयसि ॥ १२ ॥
कण्ठध्रेणिविशौर्यमाशुचिरमाभारभग्नद्युतेयैर्न स्मेर-
मुखेन होमशिक्षितः सन्धुषणाकाङ्क्षिणः । भ्रमजः
शितिकण्ठकण्ठफणिने फुत्कारहेतोः कृतः शौण्डीर्य-
मततुष्टधूर्जटिरयं किं वय्यते रावणः ॥ १३ ॥ कपोले
जानक्याः करिकलभदन्तद्युतिमुषि स्मरस्मेरं गण्डो-
द्गमरपुलकं वक्त्रकमलम् । मुहुः पश्यन्पृष्ठध्वजनि-
खरसेनाकलकलं जटाजूटप्रन्धिं प्रदयति रक्षुणां परि-
मृष्टः ॥ १४ ॥ कश्चिद्विपत्सङ्गहतोत्तमाङ्गः सद्यो विमा-
नप्रभुतामुपेत्य । वामाङ्गसंसकसुराङ्गनः स्वं दृत्परक-

है ॥ १० ॥ इधर युद्धके लिये छलकते हुए वीरकी प्रतीक्षा
देवलोककी सुन्दरी कर रही है; उधर जयभी भी उसीकी
प्रतीक्षा कर रही है । एक ओर उसके पापके साप उसका
अपवश भाग निकला है तो दूसरी ओर कुलमें कलङ्क
जगनेका ('विनकार है इसने शत्रुको पीठ दिखाई' यह
वात उत्पन्न होनेका) कारण भाग निकला है ॥ ११ ॥ हे
राक्षसपति रावण ! तेरा एक ही सिर काटकर मेरा क्रोध
तबतक भला कैसे शांत हो पावेगा, जबतक तू अपने सब सिर
कटते न देखे । तेरे बहुतसे सिर होनेका मुझे पही खाम
होगा कि तू अपना एक-एक सिर कटता देख-देखकर अपने
आँख छोड़ेगा ॥ १२ ॥ अहराती हुई जटाओंवाले शिवजीके
सम्मुख सिरोंकी आहुति देते समय गङ्गोसे बहता हुआ
आधधिक रक्त पड़ जानेके कारण जब अग्नि मन्द होने लगी तब
उसे जगानेको कूँक मारनेके लिये जिसने मुहराकर
शिवजीके गलेपर पड़े हुए साँपको भीड़के सङ्केतसे आज्ञा दे
दी और अपने अवक्षेपनसे ही शिवजीको मसल कर ब्रिया
उस रावणका क्या वर्णन किया जा सकता है ? ॥ १३ ॥
इधर हाथीके बन्धेके दाँतकी काग्निकी सुपुङ्ग करनेवाले
और कामके प्रभावसे घने उठे हुए रोमाञ्चले भरा सोताका मुख-
कमल देखकर और उधर राक्षसोंकी सेनाका कोलाहल सुन-
कर काम तथा वीरताके दोनों भावोंमें पड़कर राम-
चन्द्रजी जयभी जटाकी गाँठ कसकर बाँध रहे हैं ॥ १४ ॥

बन्धं समरे ददर्श ॥ १५ ॥ कृष्ण केशेषु भार्या तव तव
पशोस्तस्य राक्षसयोर्वा प्रत्यक्षं भूपतीनां मम भुवन-
पतेराज्ञया द्यूतदात्री । तस्मिन्वैरानुबन्धे यद् किम-
पकृतं तैर्हता ये नरेन्द्रा बाहोर्वीर्यातिभारद्विचित्रगुरुपदं
मामजित्वैव गर्वाः ॥ १६ ॥ कोऽप्येष खण्डितशिरा
विकसन्मुखश्रीः प्रारब्धताण्डवविधिः सुरकामि-
नीभिः । आलोक्यते निजकराभिनयातुरूपस्थापारि-
तेक्षणनिवेदितसत्त्वसारः ॥ १७ ॥ लुब्धाः संव्रासमेते
विजहित-हरयो भिन्नमत्तेभकुम्भा युष्मद्देहेषु लज्जां
बध्ति परममो सायका निष्पतन्तः । सौमित्रे तिष्ठ पात्रं
त्वमसि न हि क्वां नन्वहं मेघनादः किञ्चित्संरम्भलो-
कानियमितजलधि राममन्वेयामि ॥ १८ ॥ खट्वास्ति-
धुम्तु मत्तेभकुम्भकूटादृहासिनः । एकदोर्दण्डशेपेऽपि
कः सहेत पराभवम् ॥ १९ ॥ खत्वारो ययमृत्विजः स

भगवान्कर्मोपदेष्टा हरिः संप्रामाध्वरदीक्षितो नर-
पतिः पक्षो गृह्णातयता । कौरव्याः पशवः प्रियापरि-
भवक्लेशापशान्तिः फलं राज्ञ्यापन्नमन्त्रणाय रसति
स्कांतं यशो दुन्दुभिः ॥ २० ॥ चापाचार्यस्त्रिपुरविजयो
कार्तवीर्यो विजयः शत्रुव्यस्रः सदनमुदधिर्भूरियं
हन्तकारः । अस्त्रवैतन्किमु कृतवतो रेणु का हण्डयाधां
यद्वस्पर्धेनैव परशुना लज्जे चन्द्रहासः ॥ २१ ॥
छिन्नेऽपि शस्त्रमिच्छेऽप्यापत्पतितेऽपि निर्विशेषेऽपि ।
इनुमति कृतप्रतिष्ठां देवमदैव यमोऽप्ययमः ॥ २२ ॥
जन्मेन्दोरमले कुले व्यपदिशस्यद्यापि घटसे गदां मां
दुःशासनकोष्णशोणितसुराक्षीयं रिपुं भावसे । द्वापन्धो
मधुकैटभद्विपि हरावप्युद्धतं चण्डसे मन्नासाभूषणो
विहाय समरं पङ्केऽधुना लीयसे ॥ २३ ॥ जीयताऽपि
निहतस्य घा रणे धर्म एव हि नरस्य बोधिनः ।

राजकी लक्ष्मणसे सिर कटते ही एक वीर तत्काळ विमानपर
बैठकर देवता हो गया, उसके बाँधे भागमें एक अन्तरा आ गई
और उस विमानसे ही वह राक्षसधर्म में जाते हुए अपने धड़कर
नाच देखने लगा ॥ १५ ॥ भीमसे दुर्योधन कहता है—‘संसारका
स्वामी हूँ मैं । मेरी आज्ञासे तुममें जोही दुई इस दासी द्रौपदीको
तुम्हारे जैसे भीरु, अर्जुन जैसे नायक और राजा युधिष्ठिर,
नकुल, सहदेव आदि राजाओंके सामने बाळ पकड़कर
कींचा गया । भारतवर्षमें वेरका कारण तो यह है । तब यह
बताओ कि जिन राजाओंको तुमने मार डाला उन्होंने तुम्हारा
क्या बिगाड़ा था । अपने बाहुके पराक्रमके भारकी सम्पत्तिपर
विशाल अभिमान करनेवाले सुभ दुर्योधनको बिना जीते यह
तुम क्यों धर्म गाळ बजा रहे हो ॥ १६ ॥ जिस वीरका सिर
कट गया था, मुक चमक रहा था, थड़ नाच रहा था, कड़कते
हुए घोड़ोंके साथ-साथ आँखें घूमकर उसके रक्तका परिचय दे
रही थी उसे वरण करनेके लिये स्वर्गकी देविर्षी प्रतीचा कर रही
थी ॥ १७ ॥ मेघनाद कहता है—अरे निर्बल चन्द्रो ! डरो
मत । मतवाले हाथियोंका मस्तक फाड़नेवाले ये हमारे बाण
तुम्हारे शरीरपर पड़नेमें भी जवाते हैं । चपमण ! तुम भी खड़े
रहो । मैं तुमपर क्रोध नहीं करता । मैं मेघनाद उस रामकी
हूँ १८ ॥ जिसने थोड़े ही प्रयत्नसे समुद्रको बाँध जिया
है ॥ १९ ॥ मतवाले हाथियोंके मस्तकपर बरसकर हँसनेवाली
इन लखवारोंकी तो बात दूर रही, केवल एक भुजा बची रहनेपर
ही कौन वीर किसीसे अपमान सह सकता है ॥ १६ ॥ भीम

कहते हैं—‘इस रणयज्ञमें यह ऊँचे स्वरसे बजता हुआ
कानिका मगादा ॥ राजाओंको निमन्त्रण है, इस चार
माई ही ‘होता’ है, कर्मका उपदेश देनेवाले भगवान् कृष्ण
आचार्य हैं, नियम पाळनेवाली द्रौपदीके साथ महाराज युधिष्ठिर
॥ यत्मान हैं, कुरुवंशी दुर्योधन आदि इसमें पशु हैं और
द्रौपदीके मनमें अपमानसे जो दुःख उत्पन्न हुआ है उसे
दूर करना ही इसका फल है ॥ २० ॥ हे परशुराम ! धनु-
विद्याके आचार्य और त्रिपुरासुरके संहारक स्वयं शङ्कर ही
तुम्हारे आचार्य हैं, स्वामिकारिकेपकी तुमने जीत लिया है,
अपने बाणोंसे समुद्र सुखाकर उसमें तुमने अपना निवास
बनाया है और बार-बार तुमने इस पृथ्वीको दानमें दिया है,
वे सब बातें ठीक हैं किन्तु अपने जिस करतेसे तुमने अपनी
माता रेणुकाका गला काटा है उससे होड़ करनेमें हमारे खट्वाको
खज्जा लगाती है ॥ २१ ॥ बाणोंसे बिड़ जानेपर भी, शस्त्रोंसे
कट जानेपर भी, विपत्तिमें पड़ जानेपर भी और अस्त्र-शस्त्र
बाळ देनेपर भी यदि इनुमानजी प्रतिज्ञा करके खड़े हो जायें
तो भाग्य भी दुर्भाग्य हो जाय और यमराज भी यमराज न रह
अर्थ ॥ २२ ॥ जज्ञाशयमें छिपे हुए दुर्योधनसे भीम कहते हैं—
‘तुम अपना जन्म निर्मल चन्द्रवंशमें बतलाते हो । आज भी
गदा तुम्हारे पास है, दुःशासनके गाम दधिर-करी मदिरासे
मतवाले सुभ भीमको तुम अपना शत्रु बतलाते हो, अपने
अभिमानमें चूर होकर तुम मधुकैटभकी मारनेवाले भगवान्-
कृष्णके साथ भी सहचरताका व्यवहार करते हो, फिर भी ये

निश्चयाच्च मरणं रणाजिरे नैव भीकरजरामरः क्वचित्
॥ २४ ॥ जीघन्नेव मृतोऽसौ यस्य जनो धीक्ष्य वदन-
मन्योन्यम् । कृतमुखमङ्को दूरात्करोति निर्देशमङ्कुल्या
॥ २५ ॥ तात त्वं निजरुमणैव गमितः स्वर्गं यदि
स्वस्ति ते ममस्त्वैकमिदं बधूहृदिकथां तानान्तिकं
मा कथाः । रामोऽहं यदि तद्भिनेः कतिपयैर्मां जान-
मत्कम्बरः सार्धं वधुजनैः सुरेन्द्रविजयो यत्का स्वयं
रावणः ॥ २६ ॥ ते क्षत्रियाः कुण्डलिनो युवानः परस्परं
सायकविद्यताङ्गाः । कुम्भेषु लम्बाः सुपुष्पजानां
कुक्षेषु लम्बा इव कामिनीनाम् ॥ २७ ॥ त्वद्यर्धास-
नभाजि किन्नरगणोद्गीर्तयैर्भक्षिकमैरन्तःसम्भृतमत्स-
रोऽपि भगवानाकारगुप्तो कृती । उन्मीलद्भयद्यो-
दक्षिणभुजारोमाञ्चविद्योच्चरद्वाष्पैरेव विलोचनैरभि-
नयस्यानन्दमाखण्डलः ॥ २८ ॥ धीवरो माख्यवानेकः
प्रविष्टो बाहिनोमपि । यस्मिन्निगुणजालान्तः पतम्य-

निमिषाः क्षणात् ॥ २९ ॥ घृतघनुनि शौर्यशालिनि
शैला न नमन्ति यत्तदाश्चर्यम् । रिपुसंज्ञकेषु गणना
कैव घराकेषु काकेषु ॥ ३० ॥ न कालस्य न शक्तस्य
न विष्णोर्वित्तदस्य च । ध्रुयन्ते तानि कर्माणि यानि
युद्धे हनूमतः ॥ ३१ ॥ न पाहि पाहीति यद्वशीरुमुं
ममोष्ठ तेनैवमभूदिति क्रुधा । रणक्षितावस्य विरोधि-
मूर्धनिर्विदश्य दन्तैर्निजमोष्ठमास्पृशते ॥ ३२ ॥ न यत्कै-
लिणावद्भिर्न तपोभिर्न विद्यया । न गच्छति तथा
स्वर्गं यथा मर्त्यो रणे हतः ॥ ३३ ॥ नि पोते कलशो-
द्भवेन जलधौ गोरीपतेर्गङ्गाया होतुं हन्त वपुर्ललाटवहने
यावत्कृतः प्रक्रमः । तावत्तत्र मया विपकुनगरीनाते-
द्वगम्भोरुहद्वन्द्वप्रस्वत्तवक्षवारिपटलैः सुष्टाः पयोरा-
शयः ॥ ३४ ॥ नियन्तव्याः केन स्ववशरत्ननावलि-
सुभगाः स्वगाथा गायन्तो निजलदक्षि के नाम न
मटाः । न तानुद्भवामो य इह करवालद्वयमिलम्भ-

नरपशु ! तुम इस समय मेरे डाले सुखभूमि घोषकर वहाँ
कीचढ़में गया घुले बैठे हो । ॥ २३ ॥ मीचिन तथा मार खाए हुए
वीर पुरुषका सुखमें लज्जा । परम धर्म है क्योंकि सुखमें
हस्तु होना कोई निश्चय नहीं है और कायर भी अमर-अमर
नहीं होते ॥ २४ ॥ जिसका मुँह देखकर आपसमें लोग अचना मुँह
बनाकर उसे दूरसे ही डँगली दिखाते हैं वह मनुष्य जीते जी
भरोके समान है ॥ २५ ॥ प्राण छोड़ते हुए जटायुसे राम कह रहे हैं—
'हे तात ! अपने शुभ कर्मोंके बदलर स्वर्ग जा रहे हों तो आओ,
तुम्हारा संगठ हो । किन्तु एक बात सुनते आओ कि पिताजीसे
सीताके हरे जानेकी खबा न करना । यदि मैं राम
हूँ तो भोड़े ही दिनोंमें वह इन्द्रकी जीतनेवाला रावण
अपने बन्धुओंके साथ स्वयं आकर और लज्जासे सिर झुकाकर
उनसे ये सब बातें कह देगा ॥ २६ ॥ एक दूसरेके बाणसे बिधे हुए
शरीरवाले और कुँडल पहने हुए तरुण क्षत्रिय, क्षत्रियोंके कटे
हुए मस्तकसे सटकर पड़े हुए ऐसे जान पड़ते हैं मानो नवेक्षियों-
के स्तनोंसे सटे पड़े हों ॥ २७ ॥ किसी राजाकी प्रशंसामें कोई
कह रहा है—'अब आप इन्द्रके पाँधे सिंहस्थानपर बैठते हैं उस
समय किन्नर लोग आपके पराक्रमकी जो प्रशंसा करते हैं
उसे सुनकर इन्द्रकी डाह होता है पर इन्द्र तो अपने मनका
भार छिपानेमें बड़े कुशल हैं इसलिये आपकी ठठी हुई दक्षिण
भुजाके रोमाञ्चके सम्पर्कसे बहते हुए आँसूसे भरे हुए नेत्रोंसे
आनन्दका ही प्रदर्शन करते हैं ॥ २८ ॥ श्रेष्ठ बुद्धिवाला

(धीवरूपी) माख्यवान् बन्दर (मातावाला) चढेका सेभामें
(नदीमें) ऐसा पैदा कि उसके नीतिके कोरीवाले (सुत्रवाले)
जाळमें राखत (बड़े मण्ड) लथमें ही गिरने लगे ॥ २९ ॥ वह
वीर पुरुष जब अपने हाथमें धनुष वटा लेता है उस समय
पहाड़ नहीं झुक जाते वही आश्चर्य है, फिर कौनोंके समान
बेचारे शत्रु तो हैं किस गिनतीमें ॥ ३० ॥ सुखमें हनुमानजीने
जो करतब दिखा दिया वह यमराज, इन्द्र, विष्णु तथा कुबेरके
सम्बन्धमें भी कभी नहीं सुनाई पड़ा ॥ ३१ ॥ रणभूमिमें
वीरके विरोधियोंके सिर मानो अपने छोठ इस मोचसे
दलोंसे चबाए ढाख रहे हैं कि वे मेरे छोठ ! इसके
सम्मुख होने 'बचाओ, रक्षा करो,' नहीं कहा इसीसे वह
दशा हुई ॥ ३२ ॥ बहुत दक्षिणावाले यज्ञोंसे, तपस्यासे अथवा
विद्यासे भी मनुष्य वैसा स्वर्ग नहीं पाता जैसा सुखमें मारके
पाता है ॥ ३३ ॥ कोई राजा स्वयं अपनी प्रशंसा करते हुए
कहता है—जब अगस्त्य मुनिने समुद्र सोख लिया तब समुद्रकी
कभी गङ्गाजी भी शङ्करके मस्तककी छागमें अपना शरीर होम
कर देनेके लिये तैयार हो गई किन्तु उसी समय मैंने शत्रुओंके
नगरमें स्त्रियोंके नेत्र-कमलोंसे आँसुओंका प्रवाह बहाकर न
जाने कितने समुद्र भर दिए ॥ ३४ ॥ ऐसे लोगोंकी कौन रोक
सकता है जिनकी स्वतन्त्र जीभरूपी खता मजमाना हिलती ही
रहती है अथवा अपने घरके कितने ऐसे वीर हैं जो अपनी
बढ़ाई अपने मुँह गाते ही रहते हैं, किन्तु ऐसे लोग कहीं देखनेकी

रकारे वल्लुर्भटिति न विलुम्पन्ति मिलिताः ॥ ३५ ॥
नो तावत्कलयामि केलिरूपेण यामभ्रुवो लोचने तावत्
प्रणयावलीढमनसः पश्यामि मातुर्मुकुम् । यावत्तार-
कुठारपातनिपतस्तत्पृथ्वीपतिभ्राम्यत्स्वर्णकिरीट-
वदशिरसो भ्राम्यन्ति नो फेरवः ॥ ३६ ॥ पूर्णं शन-
सहस्रे द्वे पदासीनां नरोत्तमः । प्रजज्वाल रणे भोषो
विभूय इव पावकः ॥ ३७ ॥ प्राशुचैशिरसं शुभ्रमन-
क्षरैः क्रौञ्चाद्रिदन्तावलं भिरथा हंसमयानि मार्किक-
फलाम्याकीर्य पर्यापिताम् । सैर्हो वृत्तिमधिष्ठितेऽपि
हि मयि क्षत्रेण कल्पेन ते दिष्ट्या कौतुकमाभिरामिक-
मसि त्वं कोऽपि चोराङ्गरः ॥ ३८ ॥ प्रायेण सुकरं
दानं प्रायेण सुकरं तपः । प्राणानपेक्षी व्यापारः पुन-
र्धीत्यस्य दुष्करः ॥ ३९ ॥ भर्तृपिण्डानृणकरो यशः
कथमहापणः । सुराङ्गनास्वयंमहो रम्यः कालोऽयमा-
गतः ॥ ४० ॥ भूमात्रं कियदेतद्वर्णवर्णितं तत्साधितं

हार्यते यद्वोरण भवादेशेन वदति त्रिःसप्तकन्धो जयः ।
वीरोऽयं नववाहुरीदृशमिदं घोरं च वीरव्रतं तत्क्रो-
धाद्विरम्य प्रसीद भगवन्नान्यथ पूज्योऽसि नः ॥ ४१ ॥
भूरंगुदिग्धा नवपारिजातस्रजो रजोदासितवाहु-
मध्याः । गार्दं शिवाभिः परिरभ्यमाणाः सुराङ्ग-
नाश्लिष्टभुजान्तरालाः ॥ ४२ ॥ मयासेनो यस्य प्रमद-
यमदप्रासहचरैः शरैर्मुक्तो जीवन्तिरिथ शरजन्मा
समभवत् । इमां च स्रज्जायां भुजयनमहादुर्गधिपमामयं
धीरो घोमानजपदधिविशान्वसुमतीम् ॥ ४३ ॥ मा
अप्रे नैते निस्त्रिंशो नोलात्पलदलान्वयः । एते योराय-
लोकिन्या सहस्रा नयनविभ्रमाः ॥ ४४ ॥ मूले पञ्च
ततश्चतुष्टयमिति स्रक्सत्रिवेशेः शिरःपुष्पैरन्यतमाव-
लोकनमिर्तद्व्योम्निर्निरञ्जितैः । हस्तस्पर्शयशेन मूर्ध्नि
दशमं मूर्धानमारीपयन् शम्भोरद्वुनसाहसैकरत्निकः
केन भ्रुतो राघवः ॥ ४५ ॥ यद्यत्कृत्तं दशमुखशिरस्तस्य

नहीं मिलते जो दो तलवारोंकी टक्करकी भनकनाइट होनेपर
झोंकें न सँदे ॥ ३५ ॥ सुन्दर भोंहोंराजी अपनी नायिकाकी
सुनी झोंकोंपर मैं तबतक भ्रमन न दूँगा और प्रेम-भरे
हृदयवाली अपनी माताका मुँह भी तबतक न देखूँगा जब-
तक मेरे लीखे कुठारके धावले गिरते हुए शत्रु-राजाओंके चक्कर
काते हुए सोनेके मुकुटमें रँसे हुए सिरोंके चारों ओर गोंद
न दौड़ने लगे ॥ ३६ ॥ रथमें दो सहस्र पैदल सैनिकोंके गिर
जानेपर भीर भीम पितामह ऐसे चमकने लगे जैसे विना पुँवकी
आग हो ॥ ३७ ॥ जिसके लीखे भयोंसे जीव पर्वतके समान हार्यके
बड़े भारी मस्तकके फटनेसे गिरे हुए हंसमय मोतीरूपी फत्र
मानो 'बचाओ, बस करो' ऐसा कहकर रोठ रहे हैं उस सिंह-
जैसी बीरतावाले मुँह कीर पुरुषके सामने भी जो गुमने
अपने चित्रिगोचित कार्यसे एक मनोरम कौतुक उपस्थित कर
दिया इससे जान पड़ता है कि अवरण ही तुम किसी वीरके पुत्र
हो ॥ ३८ ॥ प्रायः सब कुल दान दे देना और तपस्यासे शरीर
मुक्ता कालना दोनों बहुत सरल काम हैं पर प्राणोंकी चिन्ता
करके युद्धमें कौशल दिखाना बड़ा कठिन है ॥ ३९ ॥ वह
सुन्दर समय आ गया जब अपनी पोषण करनेवाले स्वामीके
आदेशसे एकदम दुष्ट जा सकता है, वर मोक्ष लिया जा
सकता है और अब स्वयं अप्सराएँ आकर गलेसे लिपट जा सकती
हैं ॥ ४० ॥ परशुरामसे दशरथ कहते हैं—'पृथ्वी भरकी तो बात
ही क्या, बड़े-बड़े वीरोंने समुद्रतक फैले हुए अपने राज्य आप

ऊँले महावीरके चरणोंमें अर्पित कर दिए । इस प्रकार हस्कीस
बार भावकों विजय होती रहा है फिर राम तो अभी जगते हुए
वीर हैं । प्रगल्भ घोरोंका नियम बड़ा कठोर होता है । इसलिये
भगवन् ! आप क्रोध न कोमिए, मान जाइए, क्योंकि आप तो
जगत्पते ही हमारे पूज्य हैं ॥ ४१ ॥ जो वीर रथमें मरकर देवता
हो गए थे, जिनकी दानासे परित्रातकी मायाके दरागकी सुगन्धि-
से पूछें तानियोंवाली देवियों लिपटी हुई धाँवे भूमिमें गिरे हुए
अपने उन शरीरोंका देख रहे थे जिनमें धूँव लिपटी हुई थी और
जिन्हें चारों ओरसे गोंददियाँ घेरें हुए थी ॥ ४२ ॥ सरपटमें जन्म
लेनेवाले कार्तिकेयने भी यमराजके भयानक दाँतोंके समान जिन
परशुरामके आशोंसे किसी-किसी प्रकार जुटकारा पाकर मानो चिरसे
शरसे जन्म पाया उन वीर परशुरामने चित्रियोंके भयानक भुजा-
करी घोर अंगजले भरी हुई पृथ्वीका हस्कीस बार जीता था ॥ ४३ ॥
करो मत ! ये नीले कमलके समान चमकनेवाली तलवारें नहीं
हैं, ये तो घोरोंकी घोर अनुरागमे देखनेवाली लक्ष्मीके नये-
नये डटाए हैं ॥ ४४ ॥ अपने सिरकपी फूलोंसे पञ्चमुखी
शिवकी पूजा करते समय जिसने पहले उनके पैरोंपर पाँच सिर
चढ़ा दिए, फिर शिवजीके चार सिरोंपर रफसे सने हुए
अपने चार सिर माझाकार चढ़ा दिए और अब जो शिवजीका
सर्वश्रेष्ठ पाँचवाँ सिर देखते हुए अपना दसवाँ सिर उस पाँचवें
सिरपर हाथोंसे टटोल-टटोकर चढ़ाना चाह रहा है उस
अद्भुत साहसी राजाका नाम किसने नहीं सुना ॥ ४५ ॥

तस्यैव कान्तो संक्रामन्त्यामतिशयवती शेषवक्ष्येषु
लक्ष्मीः । यो यः कृत्वा दशमुखभुजस्तस्य तस्यैव धीर्यं
लक्ष्म्या हृष्यन्त्यधिकमधिकं वाहवः शिष्यमाणाः
॥ ४६ ॥ ये लङ्काधिपतिप्रतापदहनैः प्लुष्टास्त एव
ग्रहा विकपालाश्च कदम्बकेन हनुमन्निर्दग्धलङ्कार्चि-
षाम् । आलीढाभ्वरदिङ्मुखेन दधिरे सन्तोषमित्यग्निना
दग्धस्योषधमग्निरित्युपवयं स्थाने अनोक्तिर्गता ॥ ४७ ॥
येऽहम्पृथिविकया महारमभजन् सङ्कस्य मां क्षिप्रि मां
क्षिप्र्योत्पुक्तिपराः पुरारिपुरतो लङ्कापतेर्मौलयः ।
ते भूमौ पतिताः पुनर्भवनवानालोक्य मूर्ध्नो वरं
धाक्षिष्यन्त इमे हि नो वयमिति प्रीत्याऽदृष्टासं व्यभुः
॥ ४८ ॥ रथेभ्यो गजवाजिभ्यः संग्रामे वीरसङ्कराः ।
पातिताः पारथमानाश्च दृश्यन्तेऽर्जुनतरङ्गिताः ॥ ४९ ॥
रथिमणिरपि निष्प्रेष्टः पादैस्तिग्मघुतेर्मनाकस्पृष्टः ।
उल्लसितरामिति को वा मय्युं सोढुं क्षमो मानी ॥ ५० ॥
रामः किं कुरुते न किञ्चिदपि च मातः पयोधेस्तद्वौ

रावणका जो-जो सिर कटता जाता था उसकी कागित बचे हुए
मुक्तोंमें समानी जाती थी, मतः, वे बचे मुक्त और भी
अधिक कान्तिवान् होते जाते थे और उसकी जो-जो भुजा कटती
चलती थी उसका बल पाकर शेष भुजाएँ पराक्रमसे और भी
अधिक दौड़ने लगती थीं ॥ ४६ ॥ हनुमान्-द्वारा लंका जलाए जानेपर
सम्पूर्ण दिशाओं और आकाश-तक कैला दुःख चित्तगारियोंका
समूह देखकर उन ग्रहों और दिक्पात्रोंकी बड़ा संतोष हुआ
जो रावणके प्रतापकृपो अग्निसे जल चुके थे । इससे यह कदा-
चित भी चरितार्थ हो गई कि जले की औपधि अग्नि ही है ॥ ४७ ॥
शिवजीके सम्मुख रावणके जिग सिरोंने 'पहले मुझे काटो,
पहले मुझे' ऐसा कह-कहकर सङ्कटके वार भेजे थे उन्होंने
धरतीपर गिरकर जब नये सिर उगे देखे तो प्रेमके मारे यह
कह-कहकर उठाकर हँसने लगे कि 'ये हम नहीं हैं' अर्थात्
हमारे धोखेमें हमें न काटा जाय, हम और ये भिन्न-भिन्न हैं
॥ ४८ ॥ जब अर्जुनके बाण चलने लगे तब वीरोंके समूह
रथ, हाथी तथा घोड़ोंपरसे गिरते और गिराए जाते हुए ही
दिखाई पड़ रहे थे ॥ ४९ ॥ जब बिना प्राणवाका सूर्य-
कान्त मणि जो सूर्यके पाद (किरण, पैर) छू जानेपर जल
उड़ता है तब स्वामिमानो पुरुष अपना हो जानेपर भला अपना
कोष कैसे रोक सकेगा ॥ ५० ॥ रावण : राम क्या कर रहा है ?
उत्तर : कुछ भी तो नहीं । रावण : तब समुद्रके तीरपर क्यों

कस्मात्साम्प्रतमेवमेव हि ततो वज्रः किमभ्योनिधिः ।
क्रीडाभिः किमसौ न वेत्ति यद्यं लङ्कापतिर्वर्तते जाना-
त्येव विभीषणः स्वनिकटे लङ्कापदे स्थापितः ॥ ५१ ॥
लक्ष्मणो लघुसन्धानो दूरपातो च राघवः । कर्षो
वटमहारी च पार्थस्येते द्वयो गुणाः ॥ ५२ ॥ लोकोऽ-
शुभस्तिष्ठतु तावदन्यः पराङ्मुखानां समरेषु पुंसाम् ।
पत्न्योऽपि तेषां न द्विया मुखानि पुरः सखीनामपि
दर्शयन्ति ॥ ५३ ॥ लोहितायति चादित्ये त्वरमाणो
धनञ्जयः । पञ्चविंशतिसाहस्राग्निजवान महारथाम्
॥ ५४ ॥ वयस्याः क्रोष्टारः प्रतिभृणुत वज्रोऽञ्जलिरयं
किमप्याकाङ्क्षामः सरति न तथा वीरवरितम् । मृता-
नामस्माकं भवति परवश्यं सपुरिदं भवद्भिः कर्तव्यं न
हि न हि पराधीनमरणम् ॥ ५५ ॥ वीरोऽसौ किञ्च
वर्त्यते दशमुखश्चक्रैः शिरोभिः स्वयं यः पूजासज-
मुस्तुको घटयितुं देवस्य अट्टाक्षिनः । सूत्रार्थो हर-
कण्डसुत्रभुजगव्याकर्षणायोद्यतः साढीपं प्रमथैः

आया ? उत्तर : जों हो आ गया है । रावण : समुद्रपर पुन
क्यों बाँधा ? उत्तर : खेक-खेकमें बाँध लिया । रावण : क्या वह
नहीं जानता कि यहाँ लङ्काका राजा रावण रहता है ? उत्तर :
अवश्य जानता है किन्तु उसने तो अपने समीप ही विभीषणको
लङ्कापतिके पदपर बैठा दिया है ॥ ५१ ॥ वेगसे बाण चलाने-
में लक्ष्मण प्रसिद्ध थे, रामका बाण दूरतक जाता था और
कर्णके बाणोंका प्रहार प्रबल होता था पर अर्जुनमें वे तीनों
गुण थे ॥ ५२ ॥ युद्धमें पीठ दिशानेवाके लोग असुम लोकमें
जायेंगे यह बात तो दूरकी है, यहाँ तो उनकी क्षिप्रों भी अपनी
सखियोंके सामने खानके मारे मुँह नहीं दिखा पाती ॥ ५३ ॥
अथर्व-बधके अवसरपर संध्या समय खाल होते हुए सूर्यको
देखकर उठावले अर्जुनने पछोस सहस्र महारथियोंको मार डाला
॥ ५४ ॥ हे भाई गीर्दो ! आप जोगोंसे हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि
हमारी हतनी बात भान खींचिए कि मर जानेपर आगमें संस्कार
हो जानेसे वीरोंकी सद्गति नहीं रुकती । इसलिये आप जोग
अपने पुराने नियमोंका अर्थात् मृतकोंको जानेका निवम न
पावें ॥ ५५ ॥ उस रावणका कैसे वर्णन किया जा सकता है
जिसने भगवान् शंकरके लिये अपने हाथसे अपने इस मस्तक
काटकर उनकी मुखमाळा बनानेकी उत्कण्ठामें शंकरजीके गलेमें
छिपेटे हुए वासुकी नागकी डोरा बनानेके लिये बाँचनेको हाथ
बढ़ाया और शंकरजीके गले प्रमथीने भीड़ें देखी करके उसे

कृतभ्रुकुटिभिर्विष्वत्त्वान्तरे धारितः ॥ ५६ ॥ शस्त्रा-
शस्त्रिकपथे काननममाद्वाचोपनिधमाः पन्थानो
दिवि संकुचन्ति वसुधा चन्ध्या न सृते भटान् ।
सहस्रीरप्यरविन्दसौधवलभोनिच्युहपर्याङ्किकाविभ्रान्तै-
रलिभिर्न कुञ्जरघटागण्डान्करैर्मोदते ॥ ५७ ॥ शूराः
धोत्रपथे न नः कति-कति प्राञ्चः पदं चाकिरे तेषामेव
विलङ्घ्य साम्यसर्गणि जायति लङ्काभटः । यदामरडल-
गादपोहनयशाभिप्लव्यतरकच्छटाशङ्कामङ्कुरयन्ति शङ्क-
रगिरेरद्यापि घातुद्रवाः ॥ ५८ ॥ सन्तुष्टे तिसृणां पुरा-
मपि रिपो कण्डून्क्षोभैरङ्गलाकाङ्क्षाकृतपुनःप्रवृद्धशि-
रसो वीरस्य लिप्सोर्धरम् । यावन्नादैव्यपराञ्चि यस्य
कलहायन्ते मिथस्स्यं वृणुत्यं वृत्तिव्यभिक्तो मुखानि
स दशग्रीवाः कथं पश्यते ॥ ५९ ॥ सम्मूर्च्छितं संयुग-
सम्प्रहारैः पश्यन्ति सुप्तप्रतिशुद्धतुल्यम् । आग्मानम-
हेषु सुराङ्गनातां मग्धाकिनोमाकृतवाजिताङ्गम् ॥ ६० ॥

सन्वानतुल्य एव राघवशरैर्यं यादवः खण्डितास्तदा-
णान् परिहृत्य शास्त्रमग्रे कर्षन्त्यमर्षाञ्जनुः । प्राग्ध्यां
तु दशाननस्य विदलद्वयान्पुण्यं गिरं मूर्धानः परिपूर-
यन्ति विशिख्येभ्यश्च जाना अपि ॥ ६१ ॥ सप्तपष्टि-
हताः कोट्या वानराणां तरन्मिनाम् । पश्चिमेनाहः-
शेषेण मेघनादेन सायकैः ॥ ६२ ॥ समरविह्वलदम्भ-
ल्लिःपातभिन्नप्रतिनरपनिभिन्नाद्वायव्या विम्य-
मध्यान् । वयमहह धगायां पानयामः पताकाचसप्तपथ-
नलालं धारि दिव्यापगायाः ॥ ६३ ॥ सलीलपानानि
न भर्तुरभ्रमोर्न शिखमुद्यैःध्रुवसः पदकमम् । अनुद्रुतः
हृदयनि येन केवलं यलस्य शत्रुः प्रशशंस शीघ्रताम्
॥ ६४ ॥ स्वर्गस्य मार्गा बहवः प्रदिष्टास्ते कृच्छ्रसाध्याः
कुटिलाः सविघ्नाः । निमेषमात्रेण महाफलोऽयमृशुश्च
पन्थाः समरं व्यसुण्यम् ॥ ६५ ॥ स्वपूज्यं हुतं पु-
मूर्धसु जवाद्भ्रं स्फुटिरवा बहिर्ध्याकोर्णैर्यत्किंपु

कटकारसे हुए बाहुकी जो खीनकर बीचमें ही रोक दिया ॥ ५६ ॥
राजाकी प्रशंसामें कोई कवि कहता है—'आपके प्रभावसे
संसारमें युद्धकी चर्चा ही जंगलकी चौर भाग गई, आकाश
मार्गमें देवताओंका तात्नी बजाना बन्द हो गया, पृथ्वीने
बाँक होकर वीर उत्पन्न करना ही छोड़ दिया, लक्ष्मी भी
मतवाले हाथियोंके मत् टपकते हुए गाँवोंके बरके
कमलकी अटारियोंके पर्शेपर विभ्राम करनेवाले भीरोंके साथ
सुख पाने लगी' ॥ ५७ ॥ बैठे तो हम खोगोंके छात्रों-
में बहुतसे अच्छे-अच्छे वीरोंकी कहानियाँ भरी पड़ी हैं
किन्तु इन सबसे बढ़कर तो लंकाका यह वार है जिसकी
शुभाश्लेषोंसे निचोड़ी हुई धातुके शीशोंकी धाराएँ आज भी
रक्तके प्रक्षारोंका भ्रम उत्पन्न कर रही हैं ॥ ५८ ॥ शिवजीसे
वरदान चाहनेवाले रावणने अपनी प्रवज भुजाओंसे जो सिर
काटे वे त्रिपुरके शत्रु शंकरजीकी कृपासे फिर निकल आए, पर
वे मुक्त शिवजीसे प्रार्थना करके हीन नहीं बनना चाहते थे इस-
लिये जिस रावणके मुखोंमें परस्पर इसी बातपर झगड़ा होने
लगा कि पहले तुम वरदान माँगो, पहले तुम माँगो, ऐसे
वीरका भजा कौन वर्णन कर सकता है ॥ ५९ ॥ युद्धमें प्रहारोंसे
मूर्च्छित हुए वीर आकाश-गंगासे मिलकर चरुते हुए पवनसे
शीतल हुए अपने आपको अस्त्राश्लेषोंकी गोदमें लेते देखकर
ऐसा समझते हैं माना साँकर जागे हों ॥ ६० ॥ धनुषपर बाण
चढ़ाती हुई रावणकी जिन भुजाओंको रामके बाण काट डालते हैं

उनके बाण काँड़कर रावणकी शंख भुजाएँ काँधमें भरकर दूसरा
धनुष लीव रही हैं और आधी बाँझी मुँहसे निकलते हो पाण
लग जानेसे भीम लटपटा जानेपर भी कटकर दूर जा पड़े हुए
सिर भी रावणकी उस अधूरी बाणोंका पुरो कर ही दे रहे हैं
॥ ६१ ॥ अन्तमें सन्ध्या समय मेघनादने सदसठ करोड़ बलशालु
वानरोंकी बाणोंसे मारकर गिरा ही दिया ॥ ६२ ॥ रणस्थलमें
छोड़े हुए हमारे बाणोंके लगनेसे मरे हुए शत्रुओंने जिस सूर्य-
मयदलकी फाड़ दिया है उस सूर्यमयदलसे हम आकाशगङ्गाका
बह जल भूमिपर गिरा रहे हैं जो हमारी पनाकाके बलोंसे
कड़फड़ाकर निकलते हुए प्रबल वेगसे हिल रहा है ॥ ६३ ॥
हिरण्यकशिपुने जब रणमें इन्द्रका पीछा किया उस समय
इन्द्रने ऐरावत हाथीकी मतवाली आँख तथा उपचेःश्रवा घोड़ेकी
सुन्दर धोमी आँखकी प्रशंसा न करके उनके भाँजनेकी ही
प्रशंसा की ॥ ६४ ॥ स्वर्गके जो बहुत-से मार्ग बताए गए हैं वे
सब कष्टसाध्य, देवे-मेदे और बहुत विघ्नोवाले हैं किन्तु युद्धमें
मर जाना ऐसा सीधा मार्ग है जो एक बारसे बहुत बड़ा
फल देनेवाला होता है ॥ ६५ ॥ अपने सिर काट काटकर आगमें
उनका आहुति दे देनेके पश्चात् भागकी प्रवण्ड गर्मोंसे
जब वे चिटक-चिटककर बाहर आ पड़े तो फूटे हुए कपाळपर
जिसी हुई देवलिपिद्वारा रामायणकी घटना जानकर भी जो
अहंकारमें भरकर महापर और भी अधिक क्रोधित हो हो उठ
रहा था उस मानियोंके शिरोर्मण्य महावीर रावणसे कौन

देवलिपिभिर्द्व्याऽपि रामायणम् । चित्तेनास्त्रलितेन
यस्तदधिर्ब्रह्माण्डमशेषयत् कस्तम्भं प्रथमाय
मानिषु महावीराय वैरायते ॥ ६६ ॥ स्वैरं कुरुत वै
तावत् सुमनःपातमादधे । अन्यथा सुमनःपातं कुम्भ-
कर्णः कश्चिप्यति ॥ ६७ ॥ स्त्रीषु प्रवीरजननी जननी
तथैव देवी स्वयं भगवती गिरिजापि यस्य । त्वहो
वर्षावृत्तविशाखमुखाचलोकश्रीडाधिदीर्घदया स्पृह-
याम्यभूवः ॥ ६८ ॥ हतेऽभिमन्यो कृत्तेन तत्र पार्थिव
संयुगे । अस्त्रीद्विणीः सप्त हन्ता हतो राजा जयद्रथः ॥ ६९ ॥ हतोऽपि लभते स्वयं हन्ताऽपि लभते ययः ।
अभयं यो बहुगुणं नास्ति निष्फलता रणे ॥ ७० ॥ हा
तात तातेति स वेदनातः कण्ठच्छृङ्गभ्रूवक्रफानुलितः ।
यरं मृतः किं भवने किमाजी सन्दृष्टकृद्भीमवक्रः ॥ ७१ ॥

कदरुरतः : अक्षभारिकृताभिमन्युहननप्रोद्धततोम-
क्रुधः पार्थस्याकृतशत्रुधर्मतकृतेरन्तःशुचा मुह्यतः ।

वैर होने ! ॥ ६६ ॥ देवता लोग आपसमें कह रहे हैं—युद्धभूमिमें
जी खोलकर फूट भरसाओ, नहीं तो कुम्भकर्ण देवताओंको
ही गिरा-गिराकर मार डालेगा ॥ ६७ ॥ मुम्हारे बाहुबलसे
कम बनवाने अपने पुत्र कालिकेयका मुख देखकर जिसका हृदय
ज्वाले फटा जाता है वे भगवती पार्वती भी यहां आइती हैं कि
मेरा भी पुत्र ऐसा ही होना चाहिए या । ऐसे मुम्हारे जैसे और
पुत्रको उत्पन्न करनेवाजी माता जिधोमें केवल एक मुम्हारी ही
माता है ॥ ६८ ॥ रथरथलमें अभिमन्युके मारे जानेपर क्रुद्ध
अर्जुनने सात अर्घ्य दूखी देना नष्ट करके जयद्रथको भी मार
गिराया ॥ ६९ ॥ यदि मारें जाओगे तो स्वयं पाओगे, यदि
शत्रुओंको मारोगे तो यय मित्रेगा । दोनों प्रकारसे तुम लोगों-
को लाभ ही लाभ है, बीरके लिये युद्ध कभी निष्फल नहीं जाता
॥ ७० ॥ वताओ भला मज-मूय और कफमें छिपटकर पाँदासे
'हाय बप्पा ! हाय बप्पा' चिल्लाते हुए घरमें मर जाना अच्छा
या भयंकर मुक्त बनाकर छोड़ आनासे हुए युद्धमें मरना
अच्छा ! ॥ ७१ ॥

कदरु-रतः : अर्जुनोंके योग्य काम न करनेवाले शत्रुओंके
हाथमें अभिमन्युका वध हो जानेपर जिस अर्जुनका भयंकर क्रोध
हो आया थी। शत्रुका बदला न चुका सकनेमें जिसका हृदय
शोकसे व्याकुल था उस अर्जुनकी चोंच और ज्वाले भरी
आँखें धनुषपर पड़ती हैं और वह 'हा प्रिय पुत्र !' शब्द कहने-

कीर्ण वाक्पकलैः पनन्ति धनुषि व्रीडाजडा दृष्ट्या हा
वत्सेति गिरः स्फुरन्ति न पुननिर्योन्ति वक्त्राद्बहिः
॥ १ ॥ अत्राकण्ठं विलुड सलिले निर्जला भूः पुरस्ता-
ज्जह्याः शोषं वदन्विहितेनामलकयाः फलेन । स्थाने
स्थाने तदिति पथिकस्त्रीजनः फलास्तगात्रों पश्यन्
सोतां किमु न कृपया वधिनो रोदिनश्च ॥ २ ॥ अथ
वज्रजटे रामे सुमन्त्रे गृहमागते । त्यक्तो राजा सुत-
स्यागाद्विश्वस्तैरिवासुभिः ॥ ३ ॥ अथेदं रक्षोभिः
कनकहरिणञ्छुप्रविचिना तथा वृत्तं पापैर्धृष्यति
यथा क्षालितमपि । जनस्थाने शून्ने कवणकवणैराय-
क्षरितैरपि ग्रावा रोदित्यपि वलति वज्रस्य दृश्यम्
॥ ४ ॥ अथहस्तिनयान्धवे त्वया विहितं साहसमस्य
सुणया । तदिहानपराभिनि प्रिये सखि काऽयं कव-
णोज्झनकमः ॥ ५ ॥ अर्थो हि कस्या परकाय एव
तामद्य सम्प्रेष्य परिग्रहीतुः । जातो ममार्यं विश्वः
प्रकामं प्रत्यपिन्त्यास हवास्तदात्मा ॥ ६ ॥ अविशी-

को उद्यत हो होता है परशुर उसको झुकते बाहर नहीं निकलते
॥ १ ॥ 'वहाँ गले-गलेतक पानामें इत्रकर चढ़ो; आगे सूखी
भूमि है, और अपने मुँहका ककापन भाँवलेके पत्रसे दूर कर
को ।' इस प्रकार स्थान-स्थानपर धका हुई सीतामाँका देखती
हुई मार्गमें चलते हुए यात्रियोंकी खियाँ सहासुभूतिके साथ
फूट-फूटकर रो रही थी ॥ २ ॥ इसके पश्चात् जब रामचन्द्र-
जीवे जटा बाँध ली और सुमन्त्रजों वनसे बर आ गए तो
मानो पुत्रके परिवागसे अविशवासी बने हुए प्रायोंने भी राजा-
का परिवाग कर दिया ॥ ३ ॥ सोनेका हरिण बनकर
पापी-राक्षसोंने अपने जिस कपट-व्यवहारके कुहलसे अपने
सारे कुह-पोंकी पीचा दिया दिया उसीको सोच-सोच
कर रामके मनमें बड़ा दुःख हो रहा है । खूने दंडकवनमें
रामचन्द्रका यह कदवाजनक व्यवहार देखकर पगधर भी रोए दे
रहा था और वज्रका हृदय भी फटा जा रहा था ॥ ४ ॥ हे
सखी ! अपने बन्धु-बान्धवोंको चिन्ता न करके उनके लोभमें
पड़के तुम्हींने साहसका काम किया, अब बिना अरराधके ही
अपने प्रियमें तुम यह कठोर व्यवहार क्यों कर रही हो ॥ ५ ॥
कस्या तो दूसरेकी ही सम्पत्ति होती है । आज उसे पतिके पास
भेजकर मेरा मन वीसा ही हल्का हो गया है जैसे किसीकी
धरोहर औरानेपर हृदय हल्का हो जाता है ॥ ६ ॥ हे
सुमुख ! तुम मेरे वरकी यह दीप-कविका हो जिसकी सुन्दर

एकान्तपत्रे नव्यदशे सुमुखि सम्भृतस्नेहे । मद्गोह-
क्षीपकलिके कथमुपयातासि निर्वाणम् ॥ ९॥ असहायः
सहायार्थी मामनुध्यातवान्ध्रुवम् । पाद्वमानः शरै-
स्तीक्ष्णैर्द्रौणिकपादभिः ॥ १० ॥ अस्नक्तुं शशनि
सैव कुमुदती मे दृष्टिं न नन्दयति संस्मरणोपशोभा ।
इष्टप्रवासजनितान्ययलाजनस्य दुःखानि नूनमात-
माप्रसुदुःसहानि ॥ ११ ॥ आदाय मांसमखिलं स्नन-
वर्जमङ्गान्मां मुञ्च चागुरिक यामि कुरु प्रसादम् ।
सीदन्ति शम्भकवलप्रदणानभिजा मन्मार्गवाक्षणपराः
शिरयो मदायाः ॥ १० ॥ आपूर्णश्च कलाभिरिन्द्र-
मलो यानश्च राहार्मुजे सजातश्च घनाघना जलधरः
शीर्णश्च वायोर्जयात् । उद्भिप्रश्च फलेप्रहिष्टुमयरा
द्वयश्च दावाग्रना त्वं सृष्टामणितां गतश्च जगतः
प्राप्तोऽसि मृत्योर्व्यशम् ॥ ११ ॥ इयमियं मयदानव-
मन्दिनो विदशनाधजितः प्रसवस्थली । किमपरं दश-

कन्धरगेहिना त्वयि करोति कन्दूययोजनम् ॥ १२ ॥
उन्धानदैवतमिवायननं मुरारिस्त्वावलाभनितमूर्त्य-
मिवान्तरितम् । दध्मोन्मृभुजि गते सुखेऽयमिव
पश्यामि हारमिव नायकजगत्पम् ॥ १३ ॥ कनकह-
रिणं हन्या रामो ययौ निजमाश्रमं जनहननयां
प्राग्भयाऽपि प्रियामविलासयन् । दृढमुपगतेर्वापरा-
पूरेर्निमोलितलोचनो न विशुति कुटामाशानन्तुपणा-
शमयादनां ॥ १४ ॥ कृतकहृदिनैर्वापाम्माभिः सदैव-
विलोकिनैर्वनमसि गता यस्य प्रीत्या धृतापि तथा-
मयया । नयजलधरश्यामाः पश्यन्दिशो भयनीं विना
कठिनहृदयो ज्योत्स्नेय प्रिये स तव प्रियः ॥ १५ ॥
कोऽहं ब्रूहि सखे स एव भगवानास्यः सखे राघवः के
यूयं यन नाथ नाथ किमिदं दामोऽस्मि ते नक्षत्रणः ।
कान्तारे किमिहामहे यन सखे देव्या गतिर्मृष्यते का
देवो जनकाधिराजतनया हा जनकि कालि हा ॥ १६ ॥

वकुदिर्वा अभीतक खुकी भी नहीं हैं, तो अभीतक नहीं बनी हुई
हैं और जिसमें स्नेह भरा हुआ है, उस तुम अभीतक क्यों चुकी
जा रही हो ! अबवा-जिसका पतिकयी (सुन्दर) बाध नहीं दृष्टा
है, जिसकी नहीं दृष्टा (युवावस्था तथा बली) अभी बनी हुई है,
जिसमें स्नेह, प्रेम तथा तेज (भी भरा हुआ है) ऐसी हे सुमुखा)
मेरे चरके क्षीपकली उचोति ! तुम क्यों चुक गई ॥ १० ॥ शोका-
चार्य, चरप्रधामा तथा कृपाचार्य आदि चारोंके तांसे बाणोंसे
पीड़ित होकर उसने असहाय अवस्थामें निरचय ही सहायताके
जिसे मेरा स्मरण किया होगा ॥ १० ॥ अङ्गमाके अस्न हो जाने-
पर कुमुदिकी सारी शोभा जाती रही, अब वह पहलेकी
भौति भौलोंको सुख नहीं दे रही है । सचमुच पतिके वियोगमें
खियोंकी जो दुःख होता है वह अव्यक्त असह्य होता है ॥ ११ ॥
एक सुगी बहेखिसे कह रही है-‘हे बहेखि ! स्नन खाँदकर मेरे
शरीरका सारा मांस लेकर मुझे खाँद दो क्योंकि मेरे चले अभी
बासतक लेना नहीं जानते, वे मेरी बात देखते होंगे और मेरे
न जानेसे क्याकुछ हो जायेंगे ॥ १० ॥ कलाबांसे भरा हुआ
स्वच्छ कन्दमा राहुके मुँहमें चला गया, अव्यक्त बना बादल
भी वायुके वेगसे सितर-वितर हो गया, फज्जाले कदा हुआ
सुन्दर वृक्ष जंगलकी आगसे जल गया और तुम जो संसारके
ब्रह्ममणि थे सृष्टिके कराज गात्रमें समा गए ॥ ११ ॥ कोई
रामसे कह रहा है-‘यह मय दानवकी पुत्री, इन्द्रकी जीत लेने-
वाले मेघनादकी माता और अधिक क्या कहें, रामकी पत्नी

मन्दोदरी आरको हाथ में रही है’ ॥ १२ ॥ र जा हम्मीरके
स्नने चले जानेपर वह संसार सेना ही दिखाई दे रहा है जैसे
मूनि उजाड़ लेनेपर विष्णुका मन्दिर, अस्माचलमें खिपे हुए
सूचवाजा आकाश और बाँधके सुमेरु दानेसे रहित हार दिखाई
देना है ॥ १३ ॥ सोनेके हरिण (मारीच) को मारकर रामचन्द्र-
जोने अपने आश्रममें आकर दूरसे ही देखा कि प्राणप्यारी
सीता वहाँ नहीं है । उस समय धर्मूके प्रवाससे उनकी आँखें
भरी जा रही थीं और वे अपने आश्रमके अवलम्बन सीताके न
होनेकी आशंकासे केशमें घुम नहीं पा रहे थे ॥ १४ ॥ वियोगमें
विह्वल रामकी दूरी हुई जानकीके प्रति उक्ति : हे प्रिये !
कोधका कूटा प्रदर्शन करके, अधुनअधुन गिर कर तथा क्षेपपूर्ण
दृष्टिवाली भाता कौशल्यासे बन जानेके जिसे रोकी जानेवाली
आप जिसके स्नेहके कारण बन आईं, वही आपका प्रिय
मनोन कावे बादलांसे काली काळी दिखायीको देखता हुआ
कठिन हृदय आपके विना जी ही रहा है ॥ १५ ॥ सोताके
वियोगमें विह्वल राम और लक्ष्मणका संवाद-राम : बताओ
मित्र मैं कौन हूँ ? लक्ष्मण : आप स्वयं भगवान् हैं । राम :
क्या कहा, राम ? ठीक है, ठीक है । आप कौन हैं ? लक्ष्मण : यह
आप क्या कह रहे हैं नाथ ! मैं आपका दास लक्ष्मण हूँ ।
राम : तो हम लोग जंगलमें क्यों लगे हैं ? लक्ष्मण : देवी
सीताकी खोज कर रहे हैं । राम : कौन देवी ? लक्ष्मण : राजा
जनककी पुत्री । राम : हा जानकी ! हाय ! तुम कहाँ हो ॥ १६ ॥

गण्डूषाशोषितादिप्रकटजलखरोत्फालत्रातस्मितानां
हेलाकृष्टार्कचन्द्राभिनयकृतमहाकुण्डलाभोगभाजाम् ।
पीनांसस्थापिताशास्त्रिदमदमधीमांसलस्थासकानां दूरं
यातस्य वत्स स्मरति दशशिरास्त्वच्छिशुकीडिना-
नाम् ॥ १७ ॥ गृहिणी सचिवः सखी मिथः शिवाशिष्या
ललिते कलाविधौ । करुणाविमुखेन मृग्युना हरता
त्वां यत किं न मे हृतम् ॥ १८ ॥ देशे देशे कलत्राणि
देशे देशे च बान्धवाः । तं देशं नैव पश्यामि यत्र
भ्राता सहोदरः ॥ १९ ॥ देवे पराश्वदनशालिनि हस्त
जाते याते च सम्प्रति दिवं प्रति बन्धुरत्वे । कस्मै मनः
कथयितासि निजामवस्थां कः शीतलैः शमयिता
वसन्नैस्तथाधिम् ॥ २० ॥ धृत्वा पदस्त्रस्तनभीतिवशा-
त्करं मे यारुढवत्यसि शिलाशकलं विधादे । सा मां
विहाय कथमद्य विलासिनि यामारोहतीति हृदयं
शतधा प्रयाति ॥ २१ ॥ भूषं ध्वंसो भावो जलनिधि-
महीशैलसरितामतो मृत्योः शीर्यकणलघुषु का जन्तुषु

कथा । तथाप्युत्तमैर्विभुष्यसनजनितः कोऽपि विषयो
विवेकमोन्माद्यो दहत हृदयं शोकदहनः ॥ २२ ॥
ध्वस्तः काठशोरुमेरुः कविषिपशिमहारजराशिर्वि-
शोर्णः शुष्कः शन्दौषसिन्धुः प्रलयमुपगतो चाक्यमा-
लिक्यकोशः । दिव्याकानां निधानं निघनमुपगतं हा
हता दिव्यवाली वाणे गीर्वाणवाणीप्रणयिनि विधिना
शायिते दीर्घनिद्राम् ॥ २३ ॥ पातु न प्रथमं व्यवस्थति
जलं युष्मास्वपीतेषु या नादत्ते प्रियमरुडनापि भवतां
ओहेन या पल्लवम् । आद्येवः कुसुमप्रसृतिसमये यस्या
भवत्युत्सवः सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुष्ठा-
यनाम् ॥ २४ ॥ प्रियस्य सुहृदो यत्र मम तत्रैव
सम्भवः । भूयात्सुप्य भूयोऽपि भूयात्समनुसञ्चरः
॥ २५ ॥ भयान्मन्दं यस्या क्रमवति कपोले परिलुठम्-
कम्पत्यासजामलकरवतां नादवयति । समाकृष्टा
केशेष्वियमशङ्का राक्षसवधूः सबद्धैर्जम्बूनां दुरधि-
गमधोरा परिणतिः ॥ २६ ॥ भूमौ स्थिता रमण नाथ

बेटा मेघनाद ! इस सिरवाला शायद तुम्हारे बीते हुए बच-
पनकी वे खिलवाड़े स्मरण करता है जिनमें तुम समुद्रका जल
कुल्लेमें भरकर उसे समुद्रमें डगुलते हुए जलधरोंको देख-देखकर
मुस्कराते थे, सहज ही सूर्य-चन्द्रको खींचकर कुचक बना लेते
थे और अपने मोटे मोटे मांसका कंधोंपर जब दिग्गजोंको ला
धरते थे तो हमके मज्जकसे तुम्हारे शरीरपर कंगे हुए चमड़े
पैसे जान पड़ते थे मानो स्पाहीसे लगाए गए छापे ॥ १७ ॥
मेरी हुई हनुमतीको देखकर आज कह रहे हैं—'तुम मेरी
पत्नी, मित्रिणी, सखी तथा सुन्दर कलाओंमें मेरी प्रिय शिष्या
सभी कुछ हो । तब बचपनामें, इस निर्दयी मृत्युमें मुझसे तुम्हें
छीनकर मेरा क्या नहीं हुआ' ॥ १८ ॥ देश-देशमें शिर्षांमाल
हो सकती हैं और देश-देशमें बान्धव भी मिल सकते हैं किन्तु
ऐसा कोई देश नहीं दिखाई देता जहाँपर सगे भाई मिलते हों
॥ १९ ॥ हाय ! जब भाग्यने मुझ मोढ़ लिया और हमारे
बन्धुओंमें रज यह व्यक्ति भी स्वर्गका राही बन गया तो हे
मन ! बताओ, अब तुम किसे अपनी दशा सुनाओगे और
अपनी शीतल धातोंसे कौन तुम्हारा पीका शान्त करेगा ॥ २० ॥
विवाहके समय पैर फिसलनेके भयसे तुमने मेरा जो हाथ
पकड़कर परधरपर पैर रखता था उसी हाथको खींचकर प्रिये !
तुम अकेली स्वर्गकी ओर कैसे चली चली जा रही हो, वहीं
सोच-साचकर मेरा हृदय टूट-टूट हो रहा है ॥ २१ ॥ सहज,

पृथ्वी, पहाड़ तथा नदी सभी एक दिन नष्ट होती ही, तब दूसरी
हुई जलकी हुईके समान सारहीन प्राणियोंके मरनेका महार
ही क्या है ! फिर भी बन्धुके मरनेपर उठी हुई शोकरूपी आग
मेरी विचारशक्तिको जड़से उखाड़ती हुई हृदय जलाए बाज रही
है ॥ २२ ॥ देवभाषा संस्कृतके मेरी भाषा कविको जब हम
जोगोंके जभाषने गहरी नींदमें सुखा दिया तो निश्चित है कि
आज काव्य-रूपी सागर सूख गया, सोमांसा-शाककरी
माशिक्यका कोश उजड़ गया, अलौकिक उक्तिोंकी जान
सुट गई और संस्कृतवादी भी समाप्त हो गए ॥ २३ ॥ शकु-
न्तलाको दिखाई देते समय कव्य पृष्ठोंसे कह रहे हैं—'जो
शकुन्तला तुम जोगोंका पहले जल पिछाए बिना स्वयं मज
नहीं पीना चाहती थी, जो पत्नीके आभूषण बनाना चाहती
हुई भी तुम्हारे मेमके कारण पत्नीको हाथ नहीं लगाती थी, जो
तुम्हारे पहले-पहल फूलनेके समय उत्सव मनावा करती थी वही
शकुन्तला आज अपने पतिके घर जा रही है । अतः, तुम सब
उसे जानेकी अनुमति ता दे दो ॥ २४ ॥ जहाँ प्रिय मित्रका जन्म
हो वहीं मेरा भी जन्म हो, जिससे दूसरे जन्ममें भी मैं फिर
उसके पीछे-पीछे चलूँ ॥ २५ ॥ जिसके घरसे मन्दोदरीके भके
हुए कपोलपर पवन धीरे-धीरे चखता हुआ आँवलेकी रचना
बनाता था वही मन्दोदरी आज ऐसी अशरब हो गई है कि
बन्दर उसके बाज खींच-खींचकर उसे तह किए बाज रहे हैं ।

मनोहरेति सम्बोधनैर्ममधिरोपितवत्यसि याम् । स्वर्गं
गतं कथमिव क्षिपसि स्वमेणुभावात्ति तं धरणिभूलिपु
मामिदानीम् ॥ २७ ॥ भूयिष्ठानि मुखानि चुम्बति
भुजैर्भूयोऽभिरालिङ्ग्यते चारित्र्यवतदेवताऽऽभिभवता
कान्तेन मण्डोदरी । हा सम्बोदरकुम्भमांक्तिकमलि-
स्तोमैर्ममैकावलीशिल्पे वागधमर्णकस्य भवतो लङ्के-
निद्रारसः ॥ २८ ॥ मर्दयसन्दष्टमृणालमन्धरः प्रियः
क्षिपद्वदुर इति स्वयोदिते । विलोकयन्त्या रुद्रतोऽथ
पक्षिणः प्रिये स कीदृग्भविता तव क्षणः ॥ २९ ॥ मर्देक-
पुत्रा जननी जरातुरा नवमस्तुतिर्वरदा तपस्विनी ।
गतिस्तयोरेष जनस्तमर्दयन्नदो विधे र्वां करुणा
दण्डि न ॥ ३० ॥ मध्याह्ने दधयङ्गिनोभ्रमसमये दन्द्य-
भामाग्निरेकच्छ्राग्निगंतमुत्तमं जलमथो बोधैकरसाक्ष-
मम् । प्रेम्णा आसयितुं प्रियः पितृ विद्येभ्युचार्य मिथ्या

पितृभिरमम्यामयीनवारि हरिण्डं विपन्नं चने
॥ ३१ ॥ मया प्रत्यादिष्टा स्वजनमधिगन्तुं व्यवसिता
स्थिता निष्ठेयुचैवदनि गुरुशिष्ये गुरुसमे । पुनर्दिष्टि
याप्यमस्तरकलुषामर्पितयता मयि क्रूरे यत्तन्मविपमिव
शल्यं दहति माम् ॥ ३२ ॥ मानस्तातः कथं यातः
सुसंपत्तिमयनं हा कुतः पुत्रशोकान् कोऽस्मां पुत्रश्र-
तुर्णां त्वमवरजनया यस्य जानः किमस्य । माताऽस्मां
काननान्तं किमिति नृपगिरा किं तथाऽस्मां यभाये
महामयजः कलंते किमिह तव धराधोशता हा हतोऽ-
स्मि ॥ ३३ ॥ मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं
सुतः । अमितस्य हि दातारं भर्तारं का न शोचति
॥ ३४ ॥ यस्य त्वया मणयिरापणमिहृदीनां तैलं न्यवि-
क्ष्यत मुखे कुशसुविधिम् । श्यामाकमुष्टिपरिचिधितको
जहाति सोऽयं न पुत्रकृतकः पदवीं मृगस्ते ॥ ३५ ॥

क्या भयंकर उसकी गति हुई है ॥ २९ ॥ इस पृथ्वीपर रहते
समय ही तुमने मुझे 'हे रामण, हे नाथ, हे मनोहर !' कह-
कर स्वर्गपर क्या दिया था किन्तु हे खूगके बच्चोंके समान
झाँझाकी ! अब स्वर्गमें जाकर तुम मुझे इस धरतीकी धूलमें
क्यों कैसे दे रही हो ॥ ३० ॥ यह मन्दादी तुम्हारे मुँहका
भी चुम्बन कर रही है, तुम्हारी भुजाओंसे आङ्गिकन भी
कर रही है, तुम्हें अपना पति मानकर अपने पत्नी वतकी
भी धारण किए हुए है किन्तु गणेशके मस्तकपरके मोतिगोले
मेरी एक लक्ष्मी माका रहते हुए सहजोनसाके कारण न सोचने
वाले लोके ! आपको यह कैसा विचित्र निद्रा आ गयी है
॥ ३१ ॥ 'मेरे लिये जोजने काटे हुए भसोदक' लेकर धीरे-धीरे
आते हुए मेरे पति कितनी दूर हैं ?' इस प्रकार जब तुम पूजांगी
और उसके उत्तरमें रोते हुए पवित्रोंको देखोगी तब हे
प्रिये ! वह क्षण तुम्हारा कैसा बीतेगा ! ॥ ३२ ॥ वरमें मुझ
इच्छाते पुत्रकी दूरी मैं और अभी क्या देकर निवृत्त हुई
बेवारी हूँसी है और उन दोनोंको सहारा देनेवाला केवल मैं हूँ ।
ऐसी दशामें मुझे दुःख देते हुए हे भगवन् ! क्या आरको
दया रोक नहीं रही है ॥ ३३ ॥ द.पहरके समय जब अंगलमें आग-
की छपटें बढ़ रही थीं तब जबकते हुए पहाड़से हरिणका एक
जोड़ा किसी-किसी प्रकार काहर तो निकल आया किन्तु प्यासके
मारे सूखते हुए उन्होंने इनमा थोड़ा-सा जल देखा कि उससे
एकही ही प्राणारका हो सकती थी। उस समय एक दूसरेको
जिज्ञासेकी अभिलाषासे वे एक दूसरेसे 'तुम पिबो, तुम पिबो'

कहते हुए और कुछ मूढ़ पीनेका नाट्य करते हुए कि इनका
मुँह भी न सूखे, वे दोनों बिना पानी दिए ही अंगलमें
समाप्त हो गए ॥ ३४ ॥ शकुन्तलाके विवाहमें दुष्पन्त
कहता है—'मेरे द्वारा शिरस्कार किए जानेपर जब तुम
अपने स्वजनोंकी आर चकमेको उद्यम हुई और जब तुम्हें मुँहके
शिष्योंके डारकर कहा कि तुम यही रहो, उस समय मुझ
कुरी और तुमने अपना झोलाओंसे भीगी हुई जा दृष्टि बाँकी
बड़ भाज बिपत्ते भातेके समान मुझे जलाए बाँका रही है ॥ ३५ ॥
भरत और कैकेयीमें यातयात हो रही है—भरत : क्यों मैं,
पिताजी कहाँ गए ? कैकेयी : स्वर्गको ? भरत : हाय क्यों ?
कैकेयी : पुत्रके शोकसे । भरत : वह चारों पुत्रोंमें कौन है ?
कैकेयी : जो तुम लोगोंमें सबसे बड़ा है । भरत : उन्हें क्या
हुआ ? कैकेयी : वे चल चले गए । भरत : क्यों ? कैकेयी :
राजाकी आज्ञासे । भरत : राजाने क्यों ऐसी आज्ञा दी ? कैकेयी :
मेरे वचनसे बंधकर । भरत : तुम्हें क्या फल मिला ? कैकेयी :
तुम्हारे लिये वृद्धीका राज्य । भरत : हाय ! तुमने तो मार
खाया । ॥ ३६ ॥ पिता, भाई और पुत्र वे तो बहुत थोड़ा-थोड़ा
देते हैं किन्तु सर्वस्व देनेवाले पतिके लिये भला कौन शोक नहीं
करती ॥ ३७ ॥ सोखी कुशाओंसे बिदे हुए जिस हरिणके लोके मुख-
पर तुमने घाव सुखानेखाया हंगुलीका तेल लगाया था, एक-एक
मुझी सर्विके दाने खिजाकर जिसका तुमने पोषण किया था,
वही तुम्हारा पाया हुआ पुत्र यह हरिणका बच्चा तुम्हारा मार्ग
रोके खड़ा है ॥ ३८ ॥ जिस कीनज अंगवाली हनुमतीको कुँडकी

यस्याः कुसुमशय्यापि कोमलाङ्गुली कञ्जाकरो ।
साचिशेते कथं देवो ज्वलन्तीमधुना चिताम् ॥ ३३ ॥
या केलिचयुनकेशलेशविषमां शय्यां न भेजे पुरा या
जालान्तरनिर्गता कर्कशगुणोन्मत्तापि म्लायते । सेयं
निष्ठुरकाप्रसञ्जितचिन्तां देदोष्यमानानलां सस्मेर
भजते यदि प्रियमुखं स्नेहयति किं दुःखम् ॥ ३४ ॥
यास्यत्यय शकुन्तलेति हृदयं कुरूपमुक्त्यदया कण्ठ-
स्तम्भिनवाप्यवृत्तिकलुपस्थिन्ताजडं दर्शनम् । वैकुण्ठं
मम सावनीदृशमपि स्नेहादरण्याकलः पोड्यस्ते गृह्णितः
कथं न तनयाचिप्लेपदुःखैर्नयैः ॥ ३५ ॥ रामस्य हृद-
याभ्योद्याधिरहागम्यशोषिते । शौर्यवृत्तीऽपि कामा-
ग्निरन्मर्ज्यलति केवलम् ॥ ३६ ॥ रुक्मण्यस्य कृतवान्मा-
ण्यमर्थं मयि जीवति । अहमश्रूणि मुञ्चामि पश्य-
ताम्तरमाश्रयोः ॥ ३७ ॥ परस गच्छ मम याचिक्मेत-
द्रामचन्द्रवरणे कथयेथाः । आचयोरिव भवेदनुरागो

नाचयोरिव विधिः प्रतिकूलः ॥ ३८ ॥ वनो मुनीनाम-
टवो तरुणां दरी गिरीणां तु गवेपितैव । अतः परं
रुक्मण्यपदमलाक्षो प्राणा बहिर्भूय गवेपयन्तु ॥ ३९ ॥
विकृन्तनीव मर्माणि देहं शोषयतीव मे । दहतीषान्त-
रात्मनः क्रूरः शाकाग्निऽग्निनः ॥ ४० ॥ विधिने क
जटानिबन्धनं तव चेदं क मनोहरं वपुः । अनयोर्घटना
विधेः स्फुटं तनु सङ्गेन शिरीषकर्तनम् ॥ ४१ ॥
शोषानि ते चन्दनशोतलानि श्रुतानि भूमीतलविभू-
तानि । तथापि जीर्णं पितरावतस्मिन्विहाय हा वरस
कथं प्रयासि ॥ ४२ ॥ शैशवारप्रभृति यांचितां प्रियैः
सौहृदारपृथगाशयां प्रियाम् । लुप्तना परिव्रामि
मृत्यवे सौनिको गृहशकुन्तिकामिव ॥ ४३ ॥ सदा
पुरोपरि त्रेऽपि शिरीषमृद्धो गत्वा जघाञ्चिचतुराणि
पदानि सीता । गम्यत्यमस्ति कियदित्यलकृदुवाचा
रामाश्रुणः कृतवती प्रथमाचतारम् ॥ ४४ ॥ सम्पाद्यः

राधा भी सुमती भी यह सबकती हुई चितापर भला कैसे
सीतनी ॥ ३६ ॥ जो चितासके समय ऊँचे हुए पाँखोंसे बाकीने
कली वनी हुई शय्यापर भी नहीं सी पाती थी, जो लोकोसे
लनकर जाती हुई मूर्खकी किरणोंकी गरमासे भी झुलसी पड़ती
थी, वही आज मूर्खी कठोर लकड़ीकी जलकती हुई चितापर
हँसनी-हँसनी पतिका मुक्त भूम रही है । सचमुच, प्रेमके लिये
कुछ भी कठिन नहीं है ॥ ३७ ॥ कथन अपि कह रहे हैं—आज
शकुन्तलाकी बिदाई समझकर जो घरवाला आ रहा है,
श्रीगुप्तोंसे गला भर-भर आ रहा है और चिताके कारण श्री
गुप्तकी पत्नी हुई हैं । जब हम जैसे वनवासियोंका प्रेमके कारण
ऐसा बहाराहट हो रही है तब उन गुरुस्थानी क्या दशा हाँसी
होगी जो पहले-पहले अपनी पुत्राका उसकी ससुराल बिदा
करते हैं ॥ ३८ ॥ विश्वरूपी अगस्त्यसे सुज्ञाप हुए रामके हृदय-
रूपी समुद्रमें कोई यत्नानलके समान कामरूपी अग्नि ही
केवल हृदयको जलाए बाख रहा है ॥ ३९ ॥ मेरे जीते भी
लक्ष्मणने मेरे लिये अपने प्राण बाँट दिए और मैं केवल यहाँ
बैठा उसके दिने भौंसे बहा रहा हूँ । हम दोनोंका यह अन्तरता
देख जा ॥ ४० ॥ अपने पुत्रसे सीताजी कहती हैं—‘आपको बेठा,
रामसे हमारा सन्देश कह देना कि हमारे-सुन्दारे प्रेमके समान
सब लोगोंमें प्रेम तो रहे पर हम लोगके दुर्भाग्यके समान
किसीका दुर्भाग्य न हो’ ॥ ४१ ॥ राम कहते हैं—‘हे लक्ष्मण !
मुनियोंके वन, वृक्षोंके जंगल और पहाड़ोंकी कन्दारों तो हमसे

ज्ञान मारीं । जब स्वयं ही प्राण निकलकर उस सुन्दर
नेत्राली सीताको तो हूँद पा लकने हैं’ ॥ ४२ ॥ भयंकर
शोकरूपी अग्नि हमारे मर्मस्थलोंको काटे बाख रही है, शरीर
सुजाए बाख रही है और हृदय जलाए बाख रही है ॥ ४३ ॥
कहाँ तो यह जरा बौद्धिक जंगलोंमें रहना और कहाँ सुन्दरा
यह सुन्दर शरीर ! सबमुक्त मल्लाकी यह जिवा तो ऐसी है जैसे
कोई तजवार खेकर सिरसका फूल कारने चले ॥ ४४ ॥ हे
पुत्र ! सुन्दरा शीतल स्वभाव चन्दनके समान है और संसारमें
सुन्दरा शास्त्रज्ञ न मिलिख है फिर भी तुम अपने बूढ़े-माता-
पिताको छोड़कर क्यों चले जा रहे हो ॥ ४५ ॥ राम कहते
हैं—‘जिसका मैंने बचपनसे ही पाठन किया और प्रेमके कारण
जिस प्यारी सीताकी मैंने अपने हृदयसे कभी दूर नहीं किया,
उसीको छोटा देकर मैं मृत्युके हाथमें उसी प्रकार दे रहा हूँ
जैसे कोई अपनी पाती हुई विधिया किसी बड़े-बड़े के हाथमें
दे दे ॥ ४६ ॥ सिरसके फूलके समान कोमल सीताने अयोध्याके
बाहर तीस-चार पग चलकर ही पृथ्वी प्रारंभ किया
‘अभी कितनी दूर चलना है ?’ यह सुनते ही रामकी आँखोंमें
पहले-पहले आसुओंकी धारा फूट पड़ी ॥ ४७ ॥ जब सीताजी
चलने लगी तब उन्होंने अपनी सखीसे कहा—‘हे सखी । इस
चरणकटा विवाह इस जगत्से कर देना । ओ हो ! अभी तो मैंने
इस लिजवाकी सुगन्ध किसी हरिणीके हाथ देकर गृहस्थ भी नहीं
बनाया ।’ इस प्रकार वन जाती हुई सीताने जो भारप गलेसे

सासि सपकस्य लतया सार्धे विवाहोऽनया नार्यं
केलिमृगः । इषाय हरिणीं हाहा गृहस्थः कुनः ।
पथप्रायमगादि भद्रगिरा निर्गन्ध यस्मिन्तया तेना-
भुद्भिभ्य धैर्यमिह कः पुर्यां न पर्याकुलः ॥ ४८ ॥
सर्वेऽपि विस्मृतिपथं विषयाः प्रयाता विद्यापि खेद-
कलिता विमुक्तीवद्भ्यः सा केवलं हरिणशायकलाञ्चना
मे नैवापयाति हृदयादधिदेशतेव ॥ ४९ ॥ साक्षात्प्र-
धवतः पौत्रः पुत्रो गण्डोवधम्वनः । स्वस्तीया वासु-
देवस्य सं गृध्राः पर्युपासते ॥ ५० ॥ हन्या पति नृप-
मवेक्ष्य भुजङ्गदष्टं देशान्तरे दिधिवशाङ्गिकास्मि
जाता । पुत्रं पतिं समधिगम्य चितां भविष्य शोचामि
गोपधृहिणी कथमद्य तक्रम् ॥ ५१ ॥ हा मातस्वरि-
तासि कुत्र किमिदं हा देवताः काशिपो धिक्प्राणान्प-
तितोऽशनिर्हृतवहस्तेऽङ्गेषु दग्धे दृष्टा । इत्थं घघेर-
मध्यकककक्षाः पीराङ्गनामां गिरिभ्रमस्थानपि रोद-

यन्नि शनधा कुर्यन्नि भिन्नीरपि ॥ ५२ ॥ हा यन्म
ऊ गतोऽमि देहि वचनं केनाभुना मद्विग भङ्ग्यन्ता-
मनिदासनाः फलिपुराङ्गनामलाकोटयः । पीलम्वोऽ-
स्य न लङ्घने वचनमिन्यागन्य पन्या समं पीलोर्मा क-
करोतु रायणरुपः शान्त्यर्थं वध्यधनम् ॥ ५३ ॥ हृद-
याप्रापयातोऽसि दिक्षु सर्वाणु दृश्यसे । यत्स राम
गतोऽसंति सन्तापादनुमीयसे ॥ ५४ ॥ हे मातावरि-
रम्यवारिरसिका पश्ये न दृष्टा त्वया सा सोता कम-
लानि वा हृतयतो नूनं चितोदाय ते । इत्येतप्रति-
पादपं प्रतिनलनं प्रन्यापनं प्रन्यगं प्रन्यणं प्रतिनर्हिणं
ततहनस्तां मैथिलीं पृच्छति । ॥ ५५ ॥

हास्यरसः । कुङ्कुलभङ्गधिकरणविधिविधियाद्भृ-
त्तपादिभ्यः । अपचपलापुः स जने ध्यानपरां नगर-
रथ्यामु ॥ १ ॥ अन्तुं वाञ्छति याहनं गणपतेरायुं
लुधानः फणो तं च काञ्चपतेः शिखा च गिरिजासि-

बातें कही थीं उससे सारा धीरज जाता रहा और उसे सुनकर
कीन इस समयोंमें क्याकुछ नहीं है ॥ ५८ ॥ इस समय सब बातें
भूल गई हैं, यहाँतक कि परिश्रमसे पाई हुई विद्याने भी मुझसे
मुक्त मोड़ लिया है । इस समय तो वह हरिणके पक्षके समान
आँकवाकी नाविका ही मेरे हृदयसे देवताके समान नहीं इट
रही है ॥ ५९ ॥ आह ! ओ साक्षात् हृदका पौत्र, कलु'नका पुत्र
और भगवान् वासुदेवका भानजा है, आज उससे भी चारों ओर
मिद्ध मैंकरा रहे हैं ॥ ६० ॥ किसी दुष्टी बेचनेवाली म्वाजिन-
का दही गिर गया । उस समय अन्य लोगोंके दुःख प्रकट
करनेपर वह प्रसन्नताके साथ कह रही है—'मैंने अपने राजा
पतिकी इया करके एक यतीके साथ निकल भागी । अब उस
यतीको सँपने हँस लिया तो मैं भाग्यवश दूसरे देशमें बेरवा
जा बनी । वहाँ अपने पुत्रको ही मैंने अपना पति बनाया और
उस दोपको दूर करनेके लिये मैं चितापर सजने लगी । वहाँ-
से भी भागकर अब मैं एक अहीरकी रखेजी हो गई हूँ ।
जिसने जीवनमें इतने उतार-चढ़ाव देखे हैं उसे इतनेसे मर्द के
लिये अच्छा क्या दुःख हो सकता है ॥ ६१ ॥ राजाके मरनेपर
छोग विलाप कर रहे हैं—'हाय माता ! तुम कहाँ जानेकी
कलावली कर रही हो ? कबो बात क्या हुई ? आज ये देवताओं
तथा पुरुषोंके आशीर्वाद कहाँ थले गए ? प्राक् सप्तमुच स्वयं हैं
जिनपर इतना बड़ा वज्रपात हुआ । आज तुम्हारे शरीरमें आग
लगो ! आँखें भी जलेंगी !' इस प्रकार फफक-फफककर भार्य

हुए कपटसे रोनी हुई नर-नारियोंके विलापकी ध्वनि विज्रमें बने
हुए व्यक्तियोंकी भी रुनाए बाज रहा है और भाँतीके टुकड़े-टुकड़े
किपटाक रहो है ॥ ६२ ॥ मेवनादके मरनेपर मन्दाद्री । वलाप
कर रहा है—'हे देवा ! तुम कहाँ चले गए ? तुम बाछा तो
सही । अब कीन है जो मेरा यागपर पाताऊके अत्यन्त कठोर
काटकीको अगंजाई भी तोड़ दे । अब अपने पतिके साथ वह
इष्टाणी भी आकर रावणके कंधाका शान्तिके लिये कहाँ
अभ्यर्थना करेगी जो तुम्हारे पास इसलिये दौड़ी आती थी कि
मेवनादकी बान रावण कभी नहीं टाकता ॥ ६३ ॥ कौशदाजी
रामके वियोगमें कह रही हैं—'हे देवा राम ! तुम मेरे हृदयसे
भी नहीं गए हो और जिधर देखतो हूँ उधर दिखाई भी दे
रहे हो, इसलिये केवल सम्भावसे ही यह अनुमान होता है कि
तुम चले गए हो ॥ ६४ ॥ 'हे गोदावरी ! हे पम्पासर ! क्या
तुमने सुन्दर जलसे प्रेम रखनेवाली उस सोताको नहीं देखा
जो तुम्हारे विमोदके लिये तुम्हारे कमज खे आया करतो
थी ?' इस प्रकार प्रत्येक वृक्ष, जला, नदी, पर्वत, हरण और
मोरसे जानकीकी पूषते हुए राम इधर-उधर घूम रहे
थे ॥ ६५ ॥

हास्यरसः । इस समय वह जो बार-बार अँगलियाँ
मचाकर और अनेक प्रकारका बाद-विवाद करके अपनी पविह-
ताई छूँटता हुआ मन्त्र अपनेका रूपक बनाकर जोठ दिखा
रहा है, वह वास्तवमें नगरकी गलियोंमें रहनेवाली किसी

होऽपि नागाननम् । गौरी जङ्घसुनामसूयति कलानाथं
कपालानलो निधिरणः स पयो कुटुम्बकलहादंशोऽपि
हालाहलम् ॥ २ ॥ अधिकाराभियेकेषु मृदङ्गवचनं
शृणु । यदा दण्डहस्ता रिक्ता भविष्यति यथा वयम्
॥ ३ ॥ अभ्यस्तेऽपि हि नाम वस्तुनि विराट्ज्ञान-
सम्भाषनं शौचाशौचविवादिता विशकलस्मृत्यक्षरा-
वर्त्तनम् । वारं वारमृणोपपातकथनं कोऽप्येव डम्भा-
त्मना मायो दग्धदुरोशयश्चनविद्यौ जागर्त्यपूर्यः क्रमः
॥ ४ ॥ अभ्यस्य पवनविजय व्याख्याय च शैवसंहिताः
सकलाः । मरणसमये गुरुणा पर्वद्वयस्यो विनि-
ष्क्रान्ताः ॥ ५ ॥ अयं पटो मे पितुरङ्गभूषणं पितामहा-
द्यैवपभुक्तयौघनः । अलङ्कारिभ्यस्तथ पुत्रपात्रकान्
मयाधुना पुष्पधरेव धार्यते ॥ ६ ॥ अर्थो नाम जनाणां
जीवितमक्षिसक्रियकलापश्च । तं संहर्त्ति धूर्तारक्ष-

गलगला गायना लोके ॥ ७ ॥ अविश्वः अमकठिनो
दुलभयोविधुवा जडो विप्रः । अपमृत्युरुपक्रान्तः
कामिव्याघ्रेण मे रात्रौ ॥ ८ ॥ असारे जलु संसारे
सारं भवशुभमिन्द्रम् । हरे हिमालये शेते हरिः शेते
महोदधौ ॥ ९ ॥ आकुञ्च्य पाणिमशुचि मम भूमिं
वेश्या मन्त्राभिलां प्रतिपदं पृषतैः पवित्रे । तारस्वरं
प्रहितधूत्कमदारमहारं हा हा हतोऽहमिति रोदिति
विष्णुशर्मा ॥ १० ॥ आशयाधिकानुरागो मज्जति सदा
पुस्त्यपुस्तकं श्रोतुम् । दण्ड इव कृष्णलपैः पलायते दान-
घर्मेभ्यः ॥ ११ ॥ आशं वेश्या पुनर्दासो पञ्चाङ्गवति
कुट्टिनी । सर्वोपायपरिहीना वृद्धा नारी पतिमता
॥ १२ ॥ आपाण्डुरा शिरसि जालिबली कपोले वृन्ता-
वली विगलिता न च मे विवादः । पणोदशो युवतयः
पथि मां विलोक्य तातेत भाषणपराः जलु वज्रपातः

मायिकाके फेरमें पड़ा हुआ है ॥ १॥ शहरजीने अपने घरमें जब
यह उपद्रव देखा कि गणेशजीके चूड़ेका भूजा सवि निगल
जानेको उठाक है, सवि को कार्तिकेयका मोर गङ्गानेको तैयार
बैठा है, हाथीके मुलबाके गणेशपर पार्वतीजीका सिंह भी दौल
गड़ा है, पार्वतीजी भी गङ्गाजीसे लिची रहती हैं और
तीसरे नेत्रकी आग भी चन्द्रमासे दिव-रात बुझी रहती है तो
पुत्ती होकर वे हकाहल विष घूट गए ॥ २॥ जा लोग अधिकार-
के मर्दमें सतवाले रहते हैं उन्हें मृदङ्ग कहता है—'सुनो ! तुम
लोग हतना भकड़ा मत, नहीं तो तुम भी वैसे ही बंधे जाकर
कपड़ेसे पीटे जाओगे और लाकड़े कर दिए जाओगे जैसे हम
किए गए हैं ॥ ३ ॥ अभ्यास की हुई बातोंके सम्बन्धमें भी यह
सम्भाषना सदा बनी ही रहती है कि जोके दिनोंमें वे स्मृतिसे
असर जायेंगी । क्या पवित्र है, क्या अपवित्र है, इस सम्बन्धमें
निरन्तर स्मृतिके अच्छीको भोजना पड़ेगा और बार-बार दम्भी
लोगोंके अपवातकी बात कहनी पड़ेगी । इस प्रकार प्रायः इस
लके दुरोशको ठगनेकी विधिमें यह विचित्र क्रम चलता ही रहेगा
॥ ४॥ पवन-विजय (योग) का अभ्यास कर खेनेपर और सारी
शैव संहिताओंकी व्याख्या कर पुष्पधरे भी मृत्युके समय
गुरुके प्राण ऐसे निकल गए जैसे पाद निकल जाता है ॥ ५॥
कोई दरिद्र कह रहा है—'यहो कपड़ा मेरे पिताजीके शराबको
शोभित करता रहा, इसी कपड़ेको हमारे दादा आदि भी काममें
छाते रहे और यहां कपड़ा हमारे पुत्रों और पौत्रोंको भी शोभित
करेगा । इसलिये मैं भी इस वस्त्रको फूँके समान धारक

करता हूँ, इसे फटने नहीं देता ॥ ६ ॥ संसारमें बकरेके समान
'मै-मै' करनेवाले गवैए भी लोगोंका बहाना हर जे जाते हैं जो
लोगोंको जीवन देता है ॥ ७॥ यह कामीके घरमें रातको तेरी
अपमृत्यु बनकर जो पुत्रा जाक्षण यहाँ आया है यह हतना उजड़
है कि न तो कुछ जानता ही है, न सीधे सोचे फँसने ही पाया है
और न आमतक किसी लोके पावे पड़ा है ॥ ८ ॥ इस असार
संसारमें समुद्रके घर रहना ही सबसे बड़ा मुक्त है इसलिये तो
महादेवजी हिमालयमें बसे रहते हैं और विष्णुजी समुद्रमें खेद
जगाए रहते हैं ॥ ९॥ 'जिस सिरपर बार-बार पक्षी हुई मन्त्रोंके
लकड़ी बूँदोंने उसे पवित्र कर रखा था उसी सिरपर इस
वेरवाले अपने अपवित्र हाथसे धण्ड भी बसा दिया और धूँक भी
दिया', यही सोच-सोचकर विष्णु शर्मा 'हाथ हाथ, मैं भरा'
कह-कहकर चिन्ता-चिन्ताकर रो रहे हैं ॥ १०॥ कहानी सुननेके
लोभसे लोग धार्मिक ग्रन्थ सुननेके लिये लगे तो जाते हैं । कन्ध
वहाँ जाकर जब दान और धर्मकी बातें सुनते हैं तो ऐसे भाग
लगे होते हैं जैसे काका माग ठसने का पहुँचा हो ॥ ११॥ अवि-
चारिणी की पहले वेरपाका काम करती है, तरुणाई बीत
जानेपर दासीका काम करने लगती है, फिर कुटुम्भी बन जाती है
और सब बुढ़ापेमें कोई वश नहीं चलता सब पतिमता बन
बैठती है ॥ १२ ॥ मुझे बाजोंके तमजे होने, गाँवोंपर सिङ्गुन
पड़ने और दौल गिनेका कोई खेद नहीं है । मुझे नहीं बात
वज्रपात-सी लगती है कि हरिणीके समान नेत्रोंवाली कियौ
मुझे मार्गमें 'बाधा' कह-कहकर पुकारती हैं ॥ १३ ॥ बाक रवेत

॥१३॥ आपूर्यमाणलितं सुभगन्वकामः सार्धं प्रयाति
दयिता पलिताधिकेन । पुष्पेक्षणन्वमपि शश्वदपोहा
साकं याति प्रियो निकटमेव विलोचनेन ॥ १४ ॥
आमन्त्रणजयशब्दैः प्रतिपन्नदुःखारघ्यंगारावैः । स्वय-
मुक्तसाधुयादैरन्तरयति गायन्तां गीतम् ॥ १५ ॥ उत्तिष्ठति
नमसि वणिक्पृच्छति कुशलं ददाति च स्थानम् ।
निक्षेपणणिमासं दृष्ट्वा घर्ष्याः कथाः कुरुते ॥ १६ ॥
उदरद्वयभरणभयादर्घाङ्गाहितदारः । यदि नैवं तस्य
सुतः कथमद्यापि कुमारः ॥ १७ ॥ उपभुक्तखदिरवीट-
कजनिताधररागभङ्गभयात् । पितरि मृतेऽपि हि वेश्या
रोदिति हा तात तातेति ॥ १८ ॥ श्रुज्यो दृष्टिरनुल्यणं
बिहसितं मग्दं परिहर्षितं द्वेयो नर्मणि दूरीर्थाग-
मने यत्नो रतिलिङ्गिषु । यस्यास्त्यक्तसुखमृष्टं किल
वपुः पीनादपलम्बस्तनी सत्तारा विटचेतकं कमहिषी
रगडा शिष्यायास्तु चः ॥ १९ ॥ एका भार्या प्रकृतिमु-

खरा चञ्जला च द्वितीया पुत्रस्त्वेको भुवनविजया
मन्मथो दुर्निवारः । शेषः शय्या शयनमुदयी वाहनं
पन्नगारः स्मारं स्मारं स्वगृहचरितं दासभूतां
मुगारिः ॥ २० ॥ कठो मुष्टिग्राह्या द्विपुरुषभुजग्राह-
मुदरं स्तनी घण्टालोलौ जघनमधिगन्तुं व्यवसितौ ।
स्मितं भेरीनादो मुखमपि च यत्तद्व्यकरं तथाप्येषा
गडा परिभवति सन्तापयति च ॥ २१ ॥ कन्यां
बहसि दुर्युद्धे गर्दभैरपि दुर्वहाम् । शिष्यायज्ञापयो-
ताभ्यां भारः कस्ते भविष्यति ॥ २२ ॥ कमले कमला
शेते हरः शेते हिमालये । क्षीराब्धौ च हरिः शेते मन्थे
मरकुणशङ्कया ॥ २३ ॥ करकजलपूनभूतलनिहितपद्मे
विहितविह्वलदुःखारः । अपि धितधमन्त्रगणनाद्यग्रस्त-
मद्याहुतापर्वी ॥ २४ ॥ कलमाप्रनिर्गन्मयापिन्दुदया-
जेन साञ्जनाश्रुक्लेशः । कायस्थलुण्ठयमाना रोदिति
किम्नेव रात्र्यधीः ॥ २५ ॥ काञ्चिच्छादुवचःशतैर्निजसु-

हीनेसे तो तांभा बड़ ही गई थी, पर साथ ही वक्रे बाळोबाळी
बुझिया पानी भी चली जा रही है और अँगुलमें कुला भी बड़ता
जा रहा है ॥ १४ ॥ सम्बोधन तथा जयकारोंसे पद-पदपर दुःखार
तथा धरधराते हुए शब्दोंसे स्वयं बाळी हुई बाह-बाहकी ध्वनिले
गवैए लोग गीतकी एकदम दबा कर लेते हैं ॥ १५ ॥ ठगकी देखकर
कमिया बठना है, झुकता है, कुशल पूछता है, स्थान देता है
और बड़ी धर्मकी बातें करता है ॥ १६ ॥ शङ्करजीने जब देखा कि
वो घेठ पाखना दुभर है तो अचभी खोकी अपने बाधे अङ्गमें
समेत लिया, यदि ऐसा न होता तो इनके पुत्र आजतक कबि-
र्यों बँधे रहते ॥ १७ ॥ अपने पिताके मरनेपर वह घेरपा अपने आठ-
पर लगी हुई लेश और पानकी खाकी छूटनेके भयसे 'हा पिता'
कहनेके बदले 'हा तात, हा तात' कह-कहकर रा रही है कि
कहीं 'पिता' कहनेसे ओठ न सट जायें और आँखोंकी खाजो न
छूट जाय ॥ १८ ॥ वह रथहा आप खोगोका कल्याण करे
जिखकी अँगुलें साँ गि हैं, हँसना कला है, चलना-फिरना दुभर
है, बात-बातमें झुँकजाई जातो है, दूर तार्थमें जानेके लिये
प्रवरनयोग्य रहती है, साधुओंसे प्रेम रखती है, सुकका सब
हृष्टार्थ मिठा चुकी है, शरीर मोटा है, स्तन लटक गए हैं
और विट और घेठ भी जिसे दिन-रात घेरे रहते हैं ॥ १९ ॥
घरमें दो पानियाँ हैं जिनमेंसे एक तो बकदाही है और दूसरी
अजब है । एक जो भुवनविजयी पुत्र है भी वह कहनेमें
मही है । सोनेके लिये शय्या भी है तो वह समुद्रमें

सर्पपर है । बदनेके लिये सवारी भी है तो गरुड पक्षी-
की है । इस प्रकार अपने घरकी अटपट दशा देखकर भगवान्
बिष्णु काठ बनकर रह गए ॥ २० ॥ देखो तो सड़ो—इस
शब्दका कमर इनकी पनजा कि मुहामें समा जाय, घेठ इनका
मोटा कि दो पुरुषोंकी भुजाओंमें कहीं समा पावे । घघटेके
समान फुलते हुए स्तन इनके लम्बे कि वेदतक लटक आते हैं ।
हँसी भी ऐसी कमफोड़ कि नगाहके समान गूँते और मुख भी
देखनेमें बड़ा भयङ्कर है, फिर भी यह हमारा धरमान करतो और
हमें दुःख देतो हो चली जा रही है ॥ २१ ॥ घरे सूँघें । गुरकी
तो इनकी भाती लिरपर को रहा है कि गधेघे भी न सँभाकी
जाय, फिर छोटी और बनेऊ तेरे लिये कैते बोक बन गए
॥ २२ ॥ अब हमारी समझमें आया कि बस अटमलके दरके
मारो ही कमजमें जचमो, हिमालयमें शङ्कर और चोरसागरमें
बिष्णु जा-जाकर सोते हैं ॥ २३ ॥ एक कुटनी किसो घेरपाको
आए हुए कामीका परिचय दे रही है—चरी ! यह वही तो है
जो करवेके जकवे छोकर धरतीपर पिर रखता है, पाठ-पूजामें
बिज्जाकर हूँ हूँ करता है और मूडे हो अपनी वैगजियोंकी
पोरपर मन्त्र जपनेका ढोंग किया करता है ॥ २४ ॥ कमजकी
जोधसे निकलती हुई स्वाहीकी रूँदै ऐसी जान पड़ती हैं मानो
रात्रि जचमी अपने कामज-मिजे अँगु बहाती हुई दुखी-सी
होकर रोती हुई कट रही है कि हाय ! मुझे कायस्थोंने लूट
लिया ॥ २५ ॥ कुटनियों इन सूँघें खोगोंमेंसे किन्हींकी अपनी

ताप्रेमातिरेकैः परानन्यान्वक्रवाकमैर्धनवतः प्रापय्य
गेहं निजम् । मादत्तग्रहणप्रगल्भकितवशजादवष्टभ्य
तान् कुट्टिन्यः स्फुटप्रमगल्भचरितानेतान्निहन्तुं क्षमाः
॥ २६ ॥ कार्पासकोशोज्ज्वलकेशसञ्जया पयोचरालि-
ङ्कितमन्मथालया । गल्लौ जरद्गलकसञ्जिभाभुभौ
तथापि रण्डा सुरतं न मुञ्चति ॥ २७ ॥ कृषीवक्षानां
भुवि कालवर्षादकालवर्षाद्विषजां प्रमोदः । सस्य-
प्रवृद्धिं कुरुते हि पूर्वः प्रजासु रोगप्रसथं द्वितीयः
॥ २८ ॥ केशलुञ्जनसाम्येऽपि हन्त पश्यैतदन्तरम् ।
उपस्थाः कीटमश्नन्ति घृतभक्तं दिगम्बराः ॥ २९ ॥
कोशं कुशेशय धिकासय संश्रितालो प्रीतिं कुरुष्व
यदसौ दिवसस्तथास्ते । दोषागमे निविडराज-
करप्रपातदुःस्थे समेभ्यति पुनस्तव कः समोपम्
॥ ३० ॥ क्रयविक्रयफूटतुलालाघवनिक्षेपरक्षणाप्याजैः ।
एते हि दिवसचोरा मुष्णन्ति महाजनं धणिजः ॥ ३१ ॥
कद्व्या निताग्नलपुका शिथिलप्रसाना द्वेष्यः पतिः स

पुत्री वेश्याके प्रेमकी बातें सुना-सुनाकर और कुछ धनवानोंको
पुकार-पुकारकर अपने घरमें ले जाती हैं और अनेक प्रकारके
झूठ-कपारसे उनका सब कुछ लूटकर उन्हें बेकाश कर देती
हैं ॥ २६ ॥ कपासकी डोंड़ोंके समान जिसके बाख रवेत हो
गए हैं, पैड़नक जिसके शतन झटक आए हैं, और गाऊ पके
हुए सुहारें जैसे हो गए हैं वह रण्डा फिर भी सुरत करना
नहीं छोड़ती ॥ २७ ॥ किसानोंको समयपर वर्षा होनेसे और
वैद्योंको अकाश-वर्षासे प्रसन्नता होती है क्योंकि समयपर वर्षा
होनेसे तो धान बढ़ता है और अकाश-वर्षा होनेसे जनतामें रोग
बढ़ने हैं ॥ २८ ॥ यद्यपि उपस्थ (खिग, योनि) और मंगेजैन साधु
दोनोंके बाल उखाड़े जाते हैं पर भेद इतना ही है कि
उपस्थ तो गंदी वस्तुका उपभोग करते हैं और दिगंबर साधु
जी-भातपर हाथ मारते हैं ॥ २९ ॥ अरे कमल ! इस
समय जब कि भैंरें मँडरा रहे हैं, तू अपना कोश विकसित
करके उनसे प्रेम कर ले क्योंकि यह तेरा समय है, नहीं तो
रातके आने और अश्वकारके धिरे आनेपर कौन तेरे पास
आवेगा ॥ ३० ॥ मोड़ लेने, बेचने, चतुर्गुह्यसे डबडो मारने
और धरोहर रखने आदि अनेक रूपोंसे वे बनिए प्रत्येक
सज्जनको दिन-दहाड़े लूटते रहते हैं ॥ ३१ ॥ बड़ी नन्ही-सी
तो खाट है, बिनाघट भी बड़ी डीकी हो गई है, प्रेम न
होनेपर भी पति निरन्तर खड़कों-फणों करता ही रहता

ख निरन्तरचाटुकारी । तथापि दैवदतिकाः खलु माव-
राज्यो हा सहातां कथमयं व्यसनप्रपञ्चः ॥ ३२ ॥ गण-
यति गगने गणकञ्चद्रेण समागमं विशाखायाः ।
विविधभुजंगक्रीडासकां गृहिणीं न जानाति ॥ ३३ ॥
गताः केचित्प्रबोधाय स्वयं तं कुम्भकर्णकम् । तद्व्या-
पवनोत्सर्गादुद्धोय पतिताः क्वचित् ॥ ३४ ॥ गत्वा
द्वारवर्तीं नयामि दिवसानाराधयन्तो ह्रिं त्यक्त्वा
बानशुनेन जीघितमिदं मुञ्चामि भागीरथीम् । प्रातः
प्रातरिति प्रवर्तितकथा निर्वेदमातम्बती रण्डा नक्तम-
नन्तजारसुरतप्रोता सुखायास्तु वः ॥ ३५ ॥ गौरी
तनुनयनमायतमुन्नता ख नासा कृशा कदितटीव पटी
विचित्रा । अङ्गानि रोमरहितानि सुखाय भर्तुः पुच्छं
न तुच्छमिति कुत्र समस्तवस्तु ॥ ३६ ॥ कन्याः कदाचन
कदाचन पण्यनार्यः कन्याः कदाचन कदाचन चण्ड-
रण्डाः । इत्थं चिरं विहरतोऽपि सखे परस्त्रीवा-
ङ्म्वारसे न परितुष्यति खान्तरात्मा ॥ ३७ ॥ अङ्गवा

है, इसपर भी वे मावकी रातें और भी जी खाए लेती हैं ।
बताइए इतनी विपत्तियाँ कैसे सही जायें ॥ ३२ ॥ वह
ज्योतिषी आकाशमें विशाखा और चन्द्रमाके समागमपर ही
बैठा विचार किया करता है पर अनेक कामियोंके साथ रसरंग
करनेवाली अपनी स्त्रीकी ओर नहीं देखता ॥ ३३ ॥ कुछ लोग
स्वयं कुम्भकर्णको जगानेके लिये गए तो सही किन्तु उसके
अपानवायुके झोकेसे वेमे डरे ॥ इधर-उधर जा गिरे ॥ ३४ ॥
वह रण्डा आप लोगोंको सुख दे जो प्रतिदिन प्रातःकाल वह
वेश्याव दिखातो है कि मैं द्राविकापुरीमें जाकर भगवान् कृष्णकी
सेवा करती हुई दिन काटूंगी या उपवास करके और गंगातीर्में
कुदकर अपना जीवन समाप्त कर दूंगी, तथा रातके समय अनेक
आतोंके साथ रसका आनन्द भी लेती है ॥ ३५ ॥ गोरा रङ्ग, बड़ी-
बड़ी शॉलें, ऊँची नाक, पतली कमर, लचीली साड़ी, चिकना
शरीर ये सब बातें तो पतिको सुख देती हैं किन्तु वह नहीं
कहा जा सकता ॥ जोटी-सी पूँवके बिना इन बातोंका होना
किसी कामका है या नहीं ॥ ३६ ॥ हे मित्र ! बहुत-सी झीक-
रियोंसे, वेश्याओंसे और प्रचंड रोंडोंसे बहुत दिनों तक बिहार
कर चुकनेपर भी हमारा खन्तरात्मा परस्त्री-भोगके रसमें
तृप्त नहीं हो पाता ॥ ३७ ॥ किसी सज्जारी साधुने उदरके
बड़े खाकर पेट फूल जानेसे ऐसा फट-फट अपानवायु जोड़ा
कि चिड़ियाँ उड़ गईं, बड़े फूट गए, भीतें टूट गईं, ये

मायमयानपूपवटकानाध्मायमानोदरे फटफटकाडिति
पायवीयपवनं योगेश्वरे मुञ्जति । उड्डानं विहगर्घटैर्वि-
चदितं दोलायितं भित्तिभिः शिष्यैर्वीचिनमभकैर्नप-
तितं कोलाहलोऽभ्युन्नते ॥३८॥ जिह्वायाश्चेदने नास्ति
न तालुपतनाद्भयम् । निर्विशेषेण वक्तव्यं निहजः को-
न परिष्ठतः ॥ ३९ ॥ समस्ति घराकश्चोरो हाहाकारेण
याति संवस्तः । गायनचौरः कपटो हा हा कृत्या न
याति लक्ष्यं च ॥ ४० ॥ तल्पे निनम्यनलमात्रनिरस्त-
घटां सङ्गम्य ध्रुवनितां हनकामवेगः । निवृत्त्यमन्ध-
हृद्य मग्मधर्जं समग्रं लज्जानतो भवनतः सपदि व्यपेति
॥ ४१ ॥ तस्मान्महोपतीनामसम्भवे दृश्युचौराणाम् ।
एकः सुवर्णकारो निग्राह्यः सर्वथा निरयम् ॥ ४२ ॥
दत्त्वा दिशि दिशि दृष्टिं यात्रकचक्रितोऽघगुण्डनं
कृषा । चौर इव कुटिलकारी पलायते कुटिलर-
प्याभिः ॥ ४३ ॥ दुर्दृष्टः रुपलैः पणो यदि भवेद्दयाला-
बलाद्गुप्यते कम्प्यप्रतिमोऽपि हन्त लक्ष्मो निष्का-

स्यते निर्धनः । आस्ते लोहमयार्गलेव भवनद्वारे चिरं
जाग्रतायु नोर्भान्यविषययेण जरती नाद्यापि मृत्युं मत्ता
॥ ४४ ॥ द्विजगजशेखरं यद्विध्यामहः सदा सदार-
स्यम् । चक्रे हर नाद्रिभिना पुनरुपनयनं ललाटवटितं
ते ॥ ४५ ॥ घत्तं वदसि कोम्पुमोपलमयं मया श्रियः
सोदरं तन्नाभोगृहमाकलय्य मकरावासं ननाडनो-
त्कृति । नन्नामप्रणयात्र लुम्पति हरिः श्रियस्तमङ्गे
स्थितं किं केन कियतां स पय यदभूदना-
दृशः श्रियशः ॥ ४६ ॥ धान्याकतागरनिशा-
र्द्रकदाडिमवक्कुम्पुम्परी नवणैर्नलसुमंस्कृतान्नः ।
मन्स्यान्नुशान्तलितभक्तनले ददामि स प्रल्लोका-
मघिमकटुति पुण्यकर्मा ॥ ४७ ॥ न विद्या न च
वक्तव्यं नैवा कापि विद्वद्यता । तथापि घत्तं पात्र-
स्यमपनिग्रहभायता ॥ ४८ ॥ नाहं स्वर्गफलोपभोग-
तृपिनो नाभ्यर्थितस्त्वं मया सन्नुष्टमृगभक्षणं सनतं
साधो न युक्तं तव । स्वर्गं यान्ति यदि यथा विनि-

भाग चले, वपुषे भहरा पड़े और मठमें हसी प्रकारका इदकप
मच गया ॥ ३८ ॥ कुछ भी कह देनेसे न जीभ कटेगी, न
तालु गिरेगा इसलिये बिना सोचे-समझे जो मनमें चाहे वह
कह सकना चाहिये क्योंकि निर्लज्ज बनकर ही लोग परिष्ठन
बल पाते हैं ॥ ३९ ॥ कौन्सेमें लोगोंके हा-हा करनेपर देवारा
चौर हरकर भाग खाता होता है पर ये भूत गरीब चौर जो स्वयं
हा-हा करते रहते हैं इनकी चोरी कोई पकड़ नहीं पाता
॥ ४० ॥ चित्तरपर केवल नितरपतक ही छोटी सरकानेवाली
हीठ खीसे रमण करके कामका सारा वेग भट्ट हो चुकनेपर
थक कामी अन्धेकी भौंति तत्काळ जागते सिर झुकाए अपने
घर चला जा रहा है ॥ ४१ ॥ राज्यमें हाकू और चौर न भा-
रें तो सब प्रकारके दूध केवल सुनारोंको ही राजा लोग दे
सकते हैं ॥ ४२ ॥ भिक्षारीकी प्रार्थनासे दरा हुआ वह मनुष्य
चारों ओरसे भौंलें बचाता और अपना मुँह बकता हुआ चोरके
समान चक्करदार गलियोंमें होता हुआ बेगसे चला जा रहा
है ॥ ४३ ॥ जिसके पास पैसा हो वह यदि कुरुप भी हो तो
गलेलीको पैसेके बज्जर मोग सकता है और यदि कोई काम-
देवके समान सुन्दर लक्षण भी हो पर निर्धन हो तो वह घरसे
निष्काज दिया जाता है । एक दूसरेसे भिन्ननेके लिये देरतक
जागते हुए चाहभरे दोनों जवानोंके आगपके फेरसे घरके
द्वारपर जोड़ेकी सिकक बनकर जमी हुई यह बुढ़िया मरती

भी नहीं ॥ ४४ ॥ हे शंकरजी ! मानापर चन्द्रमा, सदा
बैलकी सवारी और खीके साथ रहना ये तीन गुण देखकर
ही मछाने आपके मन्धमें तीसरा नेत्र भी बना हाहा है
॥ ४५ ॥ कीदृश अधिकारी पथरकी कचमीका भाई समझ-
कर ही भगवान् विष्णु घरनी छानोने लगार रहते हैं, सचमी-
का मग्मस्थान समझकर समुद्रको एक लणके लिये भी छोवना
नहीं चाहते, सचमीके नामसे प्रेम होनेके कारण उनके नामवाले
श्रीकाल चिह्नकी भी कभी छातीसे नहीं हटाते ! बनाइए, जब
स्वयं विष्णु भगवान् ही सदा खीके फेरमें पड़े रहते हैं तब
औरोंका तो कहना हो क्या ॥ ४६ ॥ धनिर्पाँ, साँठ, हल्दी,
अदरक, अनारका बिजका, कुम्पुम्परी, नमक और तेजमें
पकाई हुई मक्खिर्पाँ जो मुझे ठपटे उज्जमे भातके साथ
देता है वह पुत्रवामा मछलोकको जाता है ॥ ४७ ॥ न
विद्या है, न बोलनेकी कला आती है, न और ही कोई गुण है
फिर भी वह किसीसे कुछ लेता नहीं है इसीसे उसका आदर
हो रहा है ॥ ४८ ॥ एक बकरा किसी यज्ञ करनेवालेसे कह रहा
है—‘हे साधु ! तुम मुझे क्यों मारे दाज रहे हो ? न तो मुझे
यज्ञपशु बनकर स्वर्ग आनेकी इच्छा है, न मैंने इसके लिये तुमसे
प्रार्थना ही की है । मैं तो केवल घास-पात खाकर ही सन्नुष्ट
हुआ पड़ा रहता हूँ । यदि सचमुच तुम्हारे हाथसे मारे जानेपर
माथी स्वर्ग पहुँच जाते हों तो तुम अपने माता, पिता, पुत्र

हता यज्ञे यदि प्राणिनो यज्ञं किं न करोषि मातृ-
पितृभिः पुत्रैः सदा बान्धवैः ॥ ४६ ॥ पराजं प्राप्य
दुर्बुद्धे मा प्राणेषु वयां कुरु । दुर्लभानि पराजानि
प्राणा जन्मनि जन्मनि ॥ ४७ ॥ पाणौ ताम्रघटो कुशः
करतले धोते सिते वाससी भाले मृत्तिलकः सचन्द्र-
रत्नो न्यस्तैकपुष्पं शिरः । दुराश्लिषपद्मा गतिर्दृढतर-
व्याश्लिषश्च न गिरः सोऽयं वञ्चयितुं जगद्भगवतो
वम्भस्य देहकमः ॥ ४८ ॥ पीठीमञ्जालनेन क्षितिपति-
कथया सज्जनानां प्रवादैनीत्वा यामाघमेवं कुशकुसुम-
समारम्भणव्यग्रहस्ताः । पश्चादेते निमज्जत्पुरयुवति-
कुशाभोगवत्तेजसार्थाः प्राणायामापदेशादिह सरिति
सदा वासराणि क्षिपन्ति ॥ ४९ ॥ पूर्वं वेटी ततो वेटी
पश्चाद्भवति कुट्टिनी । सर्वोपायपरितोषा वृक्षा देव्या
तपस्विनी ॥ ५० ॥ प्रथमं स्वयत्तमस्मिन् कनकार्यं
भस्मसात् स्वयं कुरुते । पश्चात्स्वयमादधिकं विनाश-

यति वञ्चनानिपुणः ॥ ५१ ॥ मेमहुमोदलनतीक्ष्ण-
कुठारधारा कक्षाक्षिवांश्च वक्रक्षेत्रचित्रवृत्तिः ।
नादीभवनमरुधरेव महाप्रबन्धैर्वेजं पिमष्टि कठिनं जलु
कुट्टनी सा ॥ ५२ ॥ विलाद्वर्षद्विषलस्यान्तःस्थितमाज्ञा-
रसर्पयोः । मध्ये चाखुरिवाभाति पत्नोद्वययुतो नरः
॥ ५३ ॥ भस्मे ह्येषो जडे प्रातिः प्रवृत्तिर्गुदलङ्घने । मुखे
कटुकता नित्यं घनिनां ज्वरिणामिव ॥ ५४ ॥ भगवत्-
प्रभावाद्या कर्णश्ल्यात्कटुस्वभा । सेनेव कुठाराजस्य
कुट्टनी किन्तु निष्कृपा ॥ ५५ ॥ भस्माकुलवर्षकोड्यायी
वाल्मशो तथा द्विहिः । धारावती चक्रवती पश्येते
पुरुषाद्यमाः ॥ ५६ ॥ भार्यायै पतिदेवतापरगतिं संस-
रपस्यै पुमान् कश्चित्तां नियमैर्नियन्तुमपटुः कोपेन
संन्यस्यति । अस्या गच्छति जाह्नवांमथ परो राजान-
मप्यावयोर्वशं वृष्य नेति भोः कथय मे कस्तेषु मानो-
जतः ॥ ५७ ॥ भुक्रुडोकुटिलललाटः कण्टकितान्नः

और बान्धवोंकी ही पक्षमें वक्ति नहीं दे सकते । ॥ ४६ ॥
अरे मूर्ख ! दूसरेका जन्म मिले तो अपने प्राणोंपर दया नहीं
करनी चाहिए क्योंकि प्राण तो प्रत्येक जन्ममें मिल जाते हैं
किन्तु पराया जन्म कहाँ मिल पाता है ॥ ४७ ॥ जिस
मनुष्यके एक हाथमें ताँबेका घड़ा, दूसरेमें कुशा, शरीरपर
रत्नले पुष्पे हुए वस्त्र, माथेपर चन्दन सिखी हुई मिट्टीका
लियक और सिरपर एक कुश रत्नका हो और वह बद्धवस्त्रोंसे घूसे
पैर ठठा-ठठाकर चला आ रहा हो तथा दाँत सड़ाकर बालें
करता हो तो समझ लेना चाहिए कि संसारको चक्रमा देनेके
लिये साक्षात् भगवान् ही कपट-शरीर धारण किए चले आ रहे
हैं ॥ ४८ ॥ ये महात्मा आधा दिन तो देवासन भोगे, राजाकी
चापलूसी करने और सज्जनोंकी निन्दामें बिताते हैं, फिर कुछ
समयतक ये कुशा तथा कुल सजाते हैं और इसके पश्चात्
प्राणायाम करनेके बहाने पर्वत स्नान करनेवाली स्त्रियोंके स्तनों-
पर आँख गड़ाए मन्त्रीके तीरपर अपना दिन बिता देते हैं
॥ ४९ ॥ बेरया अपने बन्धनमें बासीका, फिर सबकी झोका
और बुढ़ापेमें कुट्टनीका काम करनी है । अन्तमें जब कोई उपाय
नहीं बच रहता तब तपस्विनी बन बैठती है ॥ ५० ॥ पहले तो
स्वयंकी चाह करनेवाला व्यक्ति अपना सारा धन स्वयं फूँक देता
है और फिर भूर्त्ततामें निपुण होकर अपने धनसे अधिक की
छाजता है ॥ ५१ ॥ मेमरूपी वृषको काटनेमें पैने कुट्टादेकी धारके
समान, जिसकी कृत्ती आँखोंसे देखनेमें विषद्वार कृत्ती जान

पड़ती है वह कभी न पसीज सकनेवाली मनुष्यमित्रके समान
कुट्टनी अपनी बड़ी-बड़ी बातोंसे वज्रकी भी पीस चाहती
है ॥ ५२ ॥ दो खियोंवाला मनुष्य बिकले मुँहपर हुए वस्त्र
पूछेके समान होता है जिसके लिये बाहर बिल्की और भीतर
सॉप बैठे ॥ ५३ ॥ भस्म (भात) से ह्रैप, मूर्ख (जह) से
मेम, बड़ोंकी बात न मानने (कश्चित् कंषण करने) की भाव और
मुँहमें सदा कढ़वापन से बालें घनिकोंमें बैसी हो पाई जाती
हैं जैसी ज्वरसे पीड़ित व्यक्तियों में पाई जाती है ॥ ५४ ॥
योगिके शोभका प्रभाव देनेवाली (पश्येते भगवत्के प्रभाव-
वाली) कानोंमें भाँकेके समान कठार कपसे चिरकाकर मोड़ने-
वाली (कर्ष और शब्दके समान भयंकर शब्द करने-
वाली) यह कुट्टनी भी कौरवोंकी सेनाके समान निर्दयी
(कृपावांशे इति) है ॥ ५५ ॥ ये वह व्यक्ति अधम
होते हैं—उँगलीमें मल रमानेवाला, बगुले सड़ानेवाला,
बाकशीकी, हो-हो करके हँसनेवाला, धारावती और चक्रवती
॥ ५६ ॥ कोई तो अपने दुष्ट छोटा पातिमत्यका उपदेश देता
है, कोई व्यक्ति जो अपनी पत्नीको नियमसे नहीं चला सकता
वह उसे कोचसे ठीक रखता है, तीसरा गंगाजीमें जा डूबता
है, चौथा राजाके पास निपटारेके लिये पहुँचता है और कहता
है कि इमारा वंश न बिगाड़ो । बताओ, इनमें किसकी नाक रह
गई ॥ ५७ ॥ देहे मस्तकपर टेढ़ी भौंहें, शरीरपर रोंगटे और घूँसती
हुई बड़ी-बड़ी आँखें लिये वह कोची माझण के-वड़े कबल उठा

कटाक्षकटाक्षः । कवलयति पृथुनकवलैस्तदुल-
मचलं द्विजः कुट्टः ॥ ६१ ॥ आनन्दकं कदम्बिनोऽसि
कविते याताऽसि कीनां दशां मीमांसे सखि वञ्चनासि
सुहृदो वेदाः कुतः शर्म वः । धूर्त्तैर्निस्पृहतामिषेण
भवतामाधाय मोलां पदं हत्वा विजयतां घनानि
सुधिरं साम्राज्यमाप्तव्यते ॥ ६२ ॥ मर्कटमुक्ति मरिच-
स्तनि मुरजोदरि मुष्टिमेयकटिदेशे । मार्जोऽशायनयने
स्मरामि कान्ते तवाङ्गानि ॥ ६३ ॥ मानस्वान्तस्य
मौक्तौ निवसति किमिदं पुत्र शान्तांशुलेखा काले हि
नेत्रमेतज्ज्वलितशिखिशिख्यं किं गले कालकूटः । नाभे-
र्मूले किमेतत्तद्विस्तृतनयजां भारती भावयित्वा तिर्य-
ग्यामीलितान्त्रो करपिहितमुखी पार्वती यः पुनातु
॥ ६४ ॥ मुण्डो जटिलो नटसखी वरुणी कपायचोरी
वा । भस्मस्मेरशरीरो दिशि दिशि भोगो विजृम्भते
वृम्भः ॥ ६५ ॥ मेरुः स्थिगोऽतिदूरे मनुष्यभूमि परां
परित्यज्य । भीतो भयेन जीर्णाद्योराणां हेमकाराणाम्

॥ ६६ ॥ यन्नोत्थापनमाचनिःसहजरघर्माविशेषरत्नध-
र्यच्छेकमिदृशं नाङ्गनलनस्यार्थमात्मिहते । लज्जाधा-
यिनि शिष्यमानयुवनी वृद्धस्य कृच्छ्रं गे यस्यान्तम-
तिभाव्य किं तु हनितुं युक्तं हिमरोदितम् ॥ ६७ ॥
यदक्षिभ्रूलनापाकेः श्रियः कुर्वन्ति चापलम् । जघने-
श्वेव तन्मर्त्यं पतन्पनपराधिपु ॥ ६८ ॥ यास्मिन्नास्ति
कचप्रह्वयनिकरो यस्मिन् पोतस्वनद्धाश्लेषरसो न
यत्र करजैरुच्चायनाः केनयः । मयङ्गं न च यत्र
सुष्यनधिधिनो यत्र कण्ठध्वनिः तत्पुंसः कुलगेहिना-
तमिति स्पष्टं हि विष्टिक्रमः ॥ ६९ ॥ रण्डा पोतपयो-
धराकृत मया खण्डानुरागाद्भुजं दोर्दण्डद्वयपीवरस्त-
नभरं नो गाढमालिङ्गिता । युक्तेभ्यः शनयः शपे यद्वि-
पुनः कुत्रापि कापालिनीपीनां सुकृचायपीडनभरः
प्रातः प्रयोद्योदयः ॥ ७० ॥ रे रे लोकाः कुरुध्वं श्रवण-
पुटविधानं द्रुनं हस्तयुग्मः शैलाः सर्वेऽपि यूयं भवत
गुह्यतराः सावधाना धरिड्याम् । शीघ्रं रे रावण त्वं

कर सामने पहाड़के सामने परोसा हुआ भात भंडोसे चला जा
रहा है ॥ ६१ ॥ हे भाई तर्क ! तुम स्वयं को । हे कविते ! तुम्हारी
भी बड़ी पुर्नति हो चली है । हे सखि मीमांसा ! तुम्हें भी
भोका हो गया है । हे मित्र वेदो ! जब तुम्हारा भी कोई गुण नहीं
रहा क्योंकि धूर्त्तोंने निःस्पृहताका रोग रचकर तुम्हारे सिरपर
अपने पैर रखकर घनमानोंका घन लूट-लूटकर अपना साम्राज्य
बना लिया है ॥ ६२ ॥ बन्दर जैसे मुकबाजी, मिर्चके समान
स्तनबाजी, मुसजके समान पेटबाजी, मुट्ठी भर कमरबाजी, बिस्की
के बन्ने जैसी आँखोंबाजी हे सुहृदो ! मैं सदा तुम्हारे भोगोंका
स्मरण करता रहता हूँ ॥ ६३ ॥ गयोशजी पार्वतीसे पूछते हैं—“क्यों
मैं ! यह पिताजीके सिरपर क्या है ! पार्वतीजी : यह चन्द्रमा-
की छेका है । गयोश : मस्तकपर क्या है ! पार्वती : बखली
हुई चागकी छपटोंसे भरा नेत्र है । गयोश : गलेमें क्या है !
पार्वती : कालकूट । गयोश : और नाभिमें भी क्या है वह क्या
खटक रहा है ! पुत्रकी यह बात सुनकर और तिरछी आँखें
करके लुई ठकती हुई पार्वतीजी आपको पबित्र करें ॥ ६४ ॥
केवल पाखण्डी लोग ही अनेक प्रकारका भोग पानेकी इच्छासे
सिर मुड़ाकर या जटा रखकर, नंगे होकर, छाता या बखला
लेकर, गेरुआ मस्त्र पहनकर और शरीरपर भस्म रमाकर इधर-
उधर घूमते-फिरते हैं ॥ ६५ ॥ इन भयंकर सुनारोंकी घोरीके
करसे डरकर ही सुमेरु पर्वतकी पृथ्वीतल काँदकर बहुत दूर

जाकर बसना पड़ा है ॥ ६६ ॥ प्रयत्नसे उठनेपर भी जो
दुर्बल, पुरानो तथा मूत्रसे हुए कमदेवाली इन्द्रिय डोली पड़-
कर गिर जाती है, जिसके दुर्बल भोगोंसे आलिंगन करना भी
कठिन होता है, जिसे देखके भी छात्रा आता है और जिसे
देख-देखकर तर्कवादी दुखी हुई जाती है उस मरकट दूरेसे सुरत
करनेको बातका स्मरण करके बताएँ हैंतना पाहिँए या रोना
॥ ६७ ॥ ठिठाई तो करता है खिशांकी आँखें, भीहें तथा
नेत्रके कोर, पर इनके अपराधका सारा फल भोगना पड़ता है
वेचारी निरपराध योनिको ॥ ६८ ॥ परकी परनीके साथकी जिस
रनिकीझामें न केरा ही एकदू जा सकते हैं, न मांटे स्तन ही
छातीसे जगानेका रस मित्रता है, न रँगलियों (नल्लों) के ही
हाव-भाव (क्रोधा) होते हैं, न भोग-प्रयत्नका सुन्दन हो पाता,
न सुजे गलेसे ध्वनि ही निकल पाती है, वह रति-कीड़ा है कि
पुरुषके लिये साधक भद्रा है ॥ ६९ ॥ मैंने किसी मोटे स्तन-
बाओ रवहाकी अपनी भुजाओंमें कभी नहीं जगया, बड़े-बड़े
स्तनोंके बीचसे बीचोबीच भुजाओंसे प्रबल प्रेसमें भरकर कभी
आलिंगन नहीं किया । मैं सुहृदोंकी सौगन्ध खाता हूँ जो कहीं
भी मुझे किसी कापालिनीके मांटे रेंगे स्तनोंको कसकर दवाने-
के आनन्दका ज्ञान प्राप्त हुआ हो ॥ ७० ॥ भरे जाँगो ! दोनों
हाथोंसे कटपट अपने कान मूँद जाँ । हे पहाड़ा ! तुम भी
भारी बनकर घसींघर सावधान होकर बट जाओ । हे रावण !

विरचय वसनैर्नास्तिकानां पिधानं सुतोऽयं कुम्भकर्णः
कटुरवविकृतं शर्धते दीर्घमुच्चैः ॥ ७१ ॥ लभ्यन्तः कवि-
लेपनानि सुलभास्ताम्बूलसम्पत्तयः कल्पन्ते च मृदुमि-
चीनवसनान्यभ्येति काऽपि द्युतिः । किञ्चोच्चैर्घटते
विभर्दसुलभः सम्भोगलीलारस्तो रण्डा वित्तवतीति
हन्त महतः पुण्यस्य पाककमः ॥ ७२ ॥ घर्षेन दयितः
कश्चिद्धनदयितो दानकर्मदयितोऽप्यः रक्षादयितश्चान्यो
वेश्यानां नर्मदयितोऽप्यः ॥ ७३ ॥ वाचयति नान्यलि-
खितं लिखितमनेनापि वाचयति नान्यः । अयमप-
रोऽस्य पिशेपः स्वयमपि लिखितं स्वयं न वाचयति
॥ ७४ ॥ विनापि तातेन विना जनम्या गजाननः शंभु-
सुताभिधानः । घिनैश्च शास्त्राणि विनैश्च देवैर्माध्यन्दि-
नानामिष पाठकोऽभूत् ॥ ७५ ॥ विना मघं विना
मांसं परस्वहरणं विना । विना परापकारेण विचिरो
दिवि रोदिति ॥ ७६ ॥ वैराग्यभङ्गिरचनावचनैः प्रतार्य
रण्वां चिराय विकटस्तनसंनतः स्त्रीम् । प्रहोपदेशमिप-

सङ्गतगण्डभिस्तिनिःशङ्कुभुम्भनरसैः कितवा द्रवम्बि
॥ ७७ ॥ शतवेदी मे सिद्धः सहस्रवेदी रस्तोऽपि निर्वीतः ।
इति वदति धातुवादी नमो मलिनः कशो रुक्ताः ॥ ७८ ॥
शिक्षितापि सन्निभिर्ननु सीता रामचन्द्रधरणी न
ननाम । किं भविष्यति मुनीश्वधूवद्भालरत्नमिह तद्ग-
जसेति ॥ ७९ ॥ शृणु सखि कोतुकमेकं प्राभ्येण कुका-
मिना यद्य कृतम् । सुरतसुखमीलिताक्षी मृतेति
भीतेन मुक्तास्मि ॥ ८० ॥ अमणः धावकवधशः सुरत-
विधौ दशति नाघरं वृत्तम् । मदिराणि मांसभक्षणम-
स्मात्समये निषिद्धमिति ॥ ८१ ॥ सफवाणं लोकेनेनं
कुलयुधतिमुखं दृश्यते सानुकम्पे रण्डानामर्षलज्जाञ्चि-
तमधिपुलकं स्पृश्यते पोतमङ्गम् । क्लीबानां कायसे-
ऽन्तश्चिरविद्वितघनं काष्ठमूलाग्नितापैः पूर्वं विधाक-
लाभां सल्लसुत्रनिधिर्वैद्यविद्याभिवन्धा ॥ ८२ ॥ सदा
वक्रः सदा क्रूरः सदा पूजामपेक्षते । कन्याराशिस्थितो
नित्यं जामाता दशमी मद्रः ॥ ८३ ॥ सामगा-

हम भी कपड़े से नाक बन्द कर लो, क्योंकि वह सोचा हुआ
कुम्भकर्ण आघस्त दुर्गन्ध-भरा भयंकर तथा दहादसे भरा
अपानवायु बड़े वेगसे छोड़ रहा है ॥ ७१ ॥ जिसके यहाँ अनेक
प्रकारके कामोत्तेजक चित्रेपन मिश्र जाते हैं, पानका सामान
मिश्र जाता है, कं.मल रेशमी वस्त्र जहाँ पहने जाते हैं, मधे-नये रङ्ग-
वस्त्र बनाए जाते हैं और जिसके यहाँ रमणका सारा आनन्द भी
सरसतासे मिश्र जाता है ऐसी घनी रण्डा बड़े पुण्यसे मिलती
है ॥ ७२ ॥ कोई तो चेरयात्रोंके वर्ण्यतमें, कोई उसके घनमें, कोई
उसके दानमें, कोई उसकी रक्षामें और कोई उससे साथ का दुई
फाड़ामें ही रस लेता है ॥ ७३ ॥ वह कायस्थ न तो दूसरोंका
ही लिखा पढ़ पाता है, न उसका ही लिखा कोई पढ़ पाता है
किन्तु सबसे बड़ी बात इसमें एक यह है कि वह स्वयं अपना
लिखा भी नहीं पढ़ पाता ॥ ७४ ॥ हाथीके मुँहवाले गयोराजी-
की न माता पावेली हैं, न रिता शिव, फिर भी वे बैसे ही
शिवके पुत्र कहे जाते हैं जैसे विना वेद-शास्त्र जाने हो मध्याह्नमें
पड़नेवाले माध्यन्दिन शास्त्रवाले बन बैठे ॥ ७५ ॥
मदिरा, मांस, दूसरोंका घन हरनेका अवसर और दूसरोंकी
सुराई करनेका अवसर न पानेसे यह कायस्थ स्वर्गमें भी पड़ा
रो रहा है ॥ ७६ ॥ झुके हुए विद्याल स्तनोंवाली रण्डाको
वैराग्यकी बातोंमें रुझाकर अज्ञाका कपड़ेय कानेके बहाने
उसके गाँवसे मुख खगाकर निर्भय होकर पुम्बन करते हुए पूर्व

वसे कुसजा रहे हैं ॥ ७७ ॥ शयं जगा, जेजा-कुवैजा, दुर्वच और
कले रसीलाजा यह धातुवादी (रसायनी) वैदा गाव बना
रहा ॥ कि मुझे शतवेदी भी सिद्ध है और सहस्रवेदी रस भी
मैंने निष्काश किया है ॥ ७८ ॥ सखियोंके सिलानेपर भी सीता-
जीने रामके चरणोंमें सिर नहीं झुकाया क्योंकि उन्हें डर था कि
उनके पैरकी धूँव करी मलकपर जगे हुए रससे लाग गई तो
वह अहन्त्याके समान स्त्री न बन जाही हो ॥ ७९ ॥ चेरया अपनी
सखीसे कह रही है : हे सखी ! आज एक देहाती मूर्ख
कामीकी अचरजपरी बात तो सुन कि मैं तो सुरतके आनन्दमें
जालें में पड़ी थी और वह मुझे मरीसमझकर वरके सारे भाग
खड़ा हुआ ॥ ८० ॥ कोई बौद्ध भिक्षु अपने भिक्षुकी स्त्रीके
साथ रमण तो कर रहा है पर उसका ओठ न चूमनेका कारण देते
हुए कहता है कि—'हे चंचल भिक्षुवादी ! हमारे धर्ममें
मांस खाना वर्जित है' ॥ ८१ ॥ वैद्यकी विद्या ही दूसरी और
विद्याओंमें सबसे अच्छी है क्योंकि वेद्य तो रुढ़की ओट कुल-
वपुषोंके मुख और उनकी चंचल भालोंकी ओर दृष्टपूर्वक
देखता है, रण्डाओंके प्राथे जाग्रसे भरे मोटे पुत्रकिंवा अंग धूँवा
है और कादा पिजा-पिजाकर नपुंसकोंका बहुत दिनोंका लुटा-
लुटाया जन भी हरता है ॥ ८२ ॥ कन्याराशिमें पड़े हुए
महके समान कन्याके साथ क्याहा हुआ दामाश् भी दसवीं
मह ही होता है क्योंकि दोनों ही सदा कुद्विज और कले

यत्नपूर्वमे नोच्छिष्टमधरं कुरु । उत्कण्ठितासि चेद्भद्रे
कामं कर्णं दशश्व मे ॥८४॥ स्नानं सिन्धुजले विधाय
जनतासथे निषण्णस्तटे कापायेण घनावकुण्ठि-
ततनुः प्रासः परिव्राजकः । स्यात्पुण्यनोत्तरा मधु-
मती भिक्षा यतो लभ्यते यस्मिन्वा गतभर्तृका युवतय-
स्तत्तद्वृद्धं ध्यायति ॥८५॥ स्नायं स्नायमनारतं
जनयतामग्ने निरीहयताः प्रायो मृत्तिलदर्भसंग्रहधनाः
सम्नोदयन्तो जगत् । अम्भःकेलिकृतावतारतदुणीनी-
रन्ध्रचक्षोरहद्वन्द्वालोकनकृणितेक्षणयुगं ध्यायन्त्यमी
शाम्भिकाः ॥८६॥ स्वयं पञ्चमुखः पुत्री गजाननवडा-
ननी । दिगम्बरः कथं जीवेदभपूर्णा न चेद्गृहे ॥८७॥
अधुना तस्य : अधुजमधुमि जातं न हि दृष्टं जात-
सम्भुजादभ्यु । अधुना तद्विपरीतं चरणसरोजाह्वनि-
गता गङ्गा ॥ १ ॥ इदं तार्थमिदं यद्व्यनितले पार्यण-
शरी कलङ्काडुन्मुक्तः किमपि च तदन्तधिलसति ।

प्रवालं मालिकयं कुचलयदलं मन्मथचतुर्मनोवीणावा-
द्यनिरिति महेश्वरमधरम् ॥ २ ॥ एके कुटीरको-
लेऽपि न लग्नन्ते स्थिताः क्वचिन् । अन्येषां त्रिभव-
स्येतद् ब्रह्माण्डमपि सङ्कटम् ॥ ३ ॥ यय वन्द्यासुतो
यानि क्षुण्णकृतशेखरः । मृगतृणाभसि स्नातः शश-
शृङ्गधनुर्धरः ॥ ४ ॥ कथमुपरि कलापिनः कलापो
धिलसति तस्य तलेऽप्यमीन्दुस्त्रगडम् । कुचलययुगलं
ततो धिलोलं तिलकुसुमं तदधः प्रवालमस्मान् ॥ ५ ॥
कमलमनम्भसि कमले कुचलयमेतानि कनकलतिका-
याम् । सा च सुकुमारसुभगेन्युत्पातपरम्परा केयम्
॥ ६ ॥ कस्मिं किं कथनायं कस्य मनःप्रत्ययो
भयति । रमयति गोपवधूटी कुञ्जकुटीरे परं ब्रह्म ॥ ७ ॥
काकुत्स्थेन शिरांसि यानि शनशश्चिह्नानि मायानिधेः
पीलस्त्यस्य विमानसीमनि तथा भ्रान्तानि नाकोक-
साम् । तान्येषास्य धनुःश्रमपशमनं कुर्यान्ति सीता-

बने रहते हैं और सदा अपनी पूजा चाहते रहते हैं ॥ ८६ ॥
हे सुन्दरी ! सामवेदके पाठसे पवित्र मेरा आठ न जुड़ा करो ।
यदि तुम्हें इतना साधक ही हो तो दूर्वासे मेरा कार्वाँ कान
काट दो ॥ ८७ ॥ समुद्रके जलमें स्नान करके गेहूँ वस्त्रोंसे
भली-भाँति अपनी शरीर ढके हुए वह जो सन्वासी जनताकी
बीहसे भरे समुद्र तटपर बैठा है वह इन धर्मोंके ध्यानमें मग्न
है जिनमें पूँच और पीले भरे मीठे-मीठे पदार्थ भिन्नमें भिन्न
करते हैं या जिन धर्मोंमें ऐसी नवेन्द्रियों हैं जिनके प्रति परदेश
चले गए हैं ॥ ८८ ॥ बार-बार स्नान करके तथा मिट्टी, तिल
और कुश मात्र जुड़ाए रखकर धनवानोंपर अपने स्वामिकी
धाक जमानेवाले और संसारकी उगनेवाले ये दम्भी लोग कीड़ा-
के बिये जलमें उतरी हुई नवेन्द्रियोंके दोनों मोटे स्तनोपर
अपनी दोनों भौलें गड़ाए वहाँके ध्यानमें मग्न हैं ॥ ८९ ॥
जिन शंकरजीके पाँच तो अपने मुख हैं, पुत्र गणेशका मुख
हाथीका है, दूसरे पुत्र कार्तिकेयके छह मुख हैं, वे नंगे शिवजी
कैसे की पाते यदि घरमें अभ्यर्चना न होती ॥ ९० ॥

अधुना तस्य : जलमें कमल उत्पन्न होता देखा गया है
पर कमलसे जल उत्पन्न होते नहीं देखा गया किन्तु इस समय
सबमुख उछली बात हो रही है कि भगवान्‌के चरण-कमलसे
अक्षयणी गंगा निकल रही है ॥ १ ॥ किसी नाविकाके मुख, मोठ,
हँस, भौल तथा शायिकी वर्णन करते हुए कहा गया है—‘एक
विचित्र बात की यह है कि यह भूजलमें कलंक-रहित पूर्णमासा

चन्द्रमा दिखाई देता है उससे अधिक विचित्र बात यह है कि
उसमें माणिक, मोला कमल, कामका धनुष और वसन्तकी
बीणाकी ध्वनि सब शोभा पा रही है ॥ २ ॥ इस विषयमें
कुछ लोग तो ऐसे हैं जो कहीं किस कानेमें छिपते पड़े हैं जान
नहीं पड़ता और दूसरे वे लोग हैं जिनके ऐश्वर्यके विस्तारके
लिये यह सारा ब्रह्माण्ड छाँटा पड़ता है ॥ ३ ॥ आकाशके फूल-
की माकासे अपना सिर सजाकर, मरुस्थलकी मृग-मरोधिकी
जलमें स्नान करके, जगहकी सोंगसे बना हुआ धनुष लेकर,
वह दम्भका पुत्र चला जा रहा है ॥ ४ ॥ क्या ऊपर मोरकी
दँड (केशवलि) चमक रही है जिसके नीचे सप्टमीका
चन्द्रमा (माया) है, नीचे चंवल शं. नाके कमल (भौलें)
हैं, उसके नीचे तिलका फूल (नाक) है और उसके नीचे
मूँगे (आँठ) हैं ॥ ५ ॥ बिना जलका एक कमल (मुख) है
जिसमें नीचे कमल (भौलें) छिपे हैं और ये सब निश्च
छोनेकी जना (नाविका) में वे हैं वह भी अत्यन्त सुकुमार और
सुन्दर है । यह आश्चर्यकी श्रेणी तो देखो ॥ ६ ॥ किससे
क्या कहा जाय, सुनकर भी किसको विश्वास होगा कि जताकी
काहीरूपी कुटीमें यह गोपी परब्रह्मके साथ कीड़ा करती है
॥ ७ ॥ मायाकी शक्तिके जो सिर रामचन्द्रजीने काट डाले वे
देवताओंके विमानोंसे टकरा-टकराकर ऐसे चकरा रहे थे मानो
उनके उड़ते हुए बाज चँवरके समान हिल-हिलकर रामकी
धनुष चबानेकी चकवट मिटा रहे हों ॥ ८ ॥ ‘वह धामन

पतेः क्रीडाचामरहस्वरानुकृतिभिर्दोलायमानैः कवैः ॥८॥ किं कमिष्यति किलैष वामनो यावद्विषमदसन्त दानवाः । तावदस्य न ममो नभस्तले लङ्घनाकेशशि-
मण्डलः क्रमः ॥ ९ ॥ किं ब्रूमो हरिमस्य विभवमुदरे किंवा कणाभोगिनः शेते यत्र हरिः स्वयं जलनिधेः
सोऽप्येकदेशे स्थितः । आश्चर्यं कलशोद्भवो मुनिरसो
यस्यैकहस्तेऽम्बुधिर्गच्छोपति पङ्कजोयति फणी
भुक्तोयति श्रीपतिः ॥१०॥ चतुर्वर्षि समुद्रेषु सम्भ्या-
मम्बास्य तत्तथात् । कक्षाक्षितं निशान्ते स्वे वाली
पौलस्त्यमस्थजन् ॥ ११ ॥ चित्रं कनकलतायां पञ्च-
पवामृतं सूते । कुसुमसमुद्गमसमये नो जाने किं परं
भावि ॥ १२ ॥ चित्रं कनकलतायां शरदिन्दुस्तत्र
अञ्जनद्वितयम् । तत्र च मनोजघनुषो तदुपरि गाढा-
न्धकाराणि ॥ १३ ॥ चित्रं महानेप वताधतारः क्व
कान्तिरेषाभिनवैष भक्तिः । लोकोत्तरं धैर्यमहो मभावः
कथाप्याकृतिनूतन पप सर्गः ॥ १४ ॥ जाता लता हि

शेले जातु लतायां न जायते शैलः । अचुना तद्विपरीतं
कनकलतायां गिरिद्वयं जातम् ॥ १५ ॥ तस्मिन्पुष्पे
क्षणेनैव स्वरितो धानरञ्जितः । सरयं सध्वजं साध्वं
भोष्ममन्तर्दधे शरैः ॥ १६ ॥ दोर्दण्डाञ्जितवन्द्यशेखर-
चतुर्दण्डाचमण्डोद्यनद्वारद्वयनिरार्यवाज्ज्वरितमस्ता-
वनादिरिदमः । माकपर्यस्तकपालसंपुटमितव्यङ्गा-
रुडभाण्डाद्वरध्माभ्यरिपण्डितविरिडमा कथमहो
नाद्यापि विधायत्यति ॥ १७ ॥ न केनापि भुतं दृढं
वारिणा वारि शुष्यति । अहो गोदावरीवारा भव-
सिन्धुर्विशुष्यति ॥ १८ ॥ पलाशेषमसर्पतमवलमकद-
व्यस्तवाराकराभ्याः परातादृशोपदर्शोकरमयवक्ति-
मेषणोपावतारः । उद्वज्ज्वलमुकोटोविदलितजलवा-
लो कवलमो कनिर्द्विपुन्मिथ्याभुजङ्गाकवलमवपलस्तु-
र्यामायात् सुपणः ॥ १९ ॥ पश्यन्तु कीदृशमिदं सकलाः
कवान्द्राः क्षिप्रं हिमाद्रिशिखरं रजनीश्वरशः । वामे
करे रजतकुम्भवदेष धृष्टा घण्टे करण हिमनिर्भरपा-

(विष्णु) कितनी भरती लायेगा यह कह-कहकर दानव हैं ही
रहे थे कि इनमें सूर्य और चन्द्रमण्डलों जायता हुआ भगवान्
वामनका रूप इतना केंब गया कि आकाशमें भी नहीं समा-
याया ॥ १॥ वन भगवान् विष्णुका क्या कहा जाय जिसके उदर-
में सारा संसार है वे भा जिस शेषनागके कर्णोंपर साते हैं, वह
समुद्रके एक कानमें पड़ा रहता है और वह समुद्र भी अगस्त्य
मुनिके एक हाथके चिह्नमें कुशके अङ्ग सा जाग पड़ता है,
जिसमें शेषनाग कमरसे जान पड़ते हैं और भगवान् विष्णु
भौरिके समान दिखाई पड़ते हैं । क्या आश्चर्य है ॥ १०॥ अपनी
कौलमें दबे हुए रावणका लेकर बाखिने भारी समुद्रापर जाकर
संभ्या वन्दन किया और फिर वरमें आकर उसे अपने भवनमें
छोड़ दिया ॥ ११ ॥ आश्चर्यकी बात है कि सांनेकी लता
(नायिका) में अभी ही जब पत्ते (चांडकी) बहुत बरसा
रहे हैं तब कुछ उगनेके समय (जलकाळ जानेपर) तो न
जाने क्या होगा ॥ १२ ॥ आश्चर्यका बात है कि सांनेकी लता
(नायिका) में एक शरदका चन्द्रमा (मुख) है, उसमें दो
संजन (चोंछें) हैं, उसपर कामके दो धनुष (भीड़) हैं और
और उसके ऊपर घना अंधकार (केश) है ॥ १३ ॥ यह कुछ
निराला ही अवतार है, कुछ निराला हो इसकी शाखा और
चाख-डाख है, कुछ अलौकिक ही इसकी बीरता तथा इसका
अद्भुत प्रभाव है और कुछ अद्भुत ही आकार है, यह कुछ

सुन्दर ही नवीन है ॥ १४ ॥ पहाड़में लता होती है, लतामें
पहाड़ नहीं रहता पर यहाँ तो उछटे सांनेकी लता (नायिका)
को पहाड़ (रत्न) निकले लड़े हैं ॥ १५ ॥ उस पुत्रमें भर्तृ-
नने आपस्त शांतिसे क्या भरते हैं रथ, पताका तथा चार्को-
के साथ भीष्मापितामहको भी बाबाँले उड़ दिया ॥ १६ ॥
धनुषके टंकारकी वह ध्वनि क्या आज भी शान्त नहीं हो पा
रही है जो बेशाख हायाले पकड़े हुए शकाका धनुष टूटनेकी
सूचना दे रही है, जो औरामण्डके लड़करनमें धनुष चलाये-
की चाखकी घोषणा कर रही है और जिसकी ओर भयंकरता
लाकाख टूटे हुए गोलेके बीच पड़े हुए मलाहमें बहार का रही
है ॥ १७ ॥ आजतक किसीने जलसे जलका सूखना न देखा है
न सुना, पर आश्चर्यकी बात यह है कि गांदावरीके जलसे
भवसागर सूखा जा रहा है ॥ १८ ॥ लड़े-लड़े पंखोंकी वेगनरो
चाखसे समुद्रका जल हटाते-बहाते और पाताखवासी सर्पों
द्वारा भय और अचरजसे सिर उठाकर देखे जाते थे गरुड अपनी
चोंचकी नोकसे फटे हुए बाइज रुगी वस्त्रीकमें निकलकर खप-
लपाती हुई चिजवाकों नागिन समककर उसे खानेकी कपटे चले जा
रहे हैं ॥ १९ ॥ सब श्रेष्ठ कविगण यह अचरज सा देखें कि अत्यन्त
शांतिसे हिमाचलका एक शिखर बाएँ हाथमें बाँदीके लड़ेकी
भीति धारक किन्तु यह राख्य ऐसा जग रहा है मानो पाखेका
भरवा पीने जा रहा हो ॥ २० ॥ इस पर्वतके शिखरपर बैठे

नलीलाम् ॥ २० ॥ पाश्चात्यभागमित्र सानुषु सन्नि-
पद्यन्तः पश्यन्ति शान्तमनसान्द्रनगंशुजालम् । सम्पूर्ण-
लव्वललनालपनोपमानमुत्सृज्यमहिहरिणस्य दिमांशु-
मूर्तेः ॥ २१ ॥ मृकारब्धं कमपि यद्विराः श्लोकमाक-
र्णयन्ति श्रद्धालुस्तं घिलिस्त्रि कुणिः श्लाघया वीक्ष-
तेऽन्धः । अभ्यारोह्यहह सहसा पङ्कुरपद्रिभृङ्गं
साम्बालस्याः शिशुभरणतो मन्दमायान्ति वन्धय-
॥ २२ ॥ युगान्तकालप्रतिसंहतारमनो जगन्ति यस्यां
सविकासमासत । ततो ममुस्तस्य न कंटमद्विपस्नो-
धनाभ्यागमसम्भवा मुदः ॥ २३ ॥ रत्नभित्तिषु संक्रान्तैः
प्रतिघिम्पशतेर्जुतः । शतो लङ्घेभरः कृच्छ्रादा जनेयेन
तत्त्वतः ॥ २४ ॥ लोलामीलननो विलोचनयुगे गडग-
न्ति मूढर्जामनो वक्त्रे केचन मुद्रणादधरयाः सादन्ति
शास्त्रामृताः । ये नात्तापुटचारिणः श्रवणयर्थं न
स्थिताः कौटरे युद्धव्यग्रकरस्य ते यदि परं स्वस्थाः

क्षलं रत्नसः ॥ २५ ॥ विपुलेन सागरशयस्य कुक्षिणा
भुवनानि यस्य शशिं युमन्त्रये । मदविभ्रमारसकलया
पपे पुनः स पुरस्त्रियैकनयैकया दृशा ॥ २६ ॥ सद्यः
पोम्वा दरोभिर्जलधिप्रथ निरं दृष्टमनाकयन्धुपीति-
मोन्वाभूपूर्तिद्विगुणमहिमभिर्भिर्भरैः पूर्यन्तः । ये विन्ध्य-
स्ताः पुरस्ताद्विशि निशि निवर्हेनपधीनां उवलद्विस्ते
दृश्यन्ते तदात्वापिनकपिशिविरस्मारिणः संतुशैलाः
॥ २७ ॥ स्थाणुः स्वयं मूलविहीन एव पुत्रो विशाखो
रमणी स्वपत्नी । परोपनीतैः कुसुमैरजसं फलन्पभोष्टं
किमिदं विनिव्रम् ॥ २८ ॥

रौद्रसः—अन्योन्यास्फालभिन्नद्विपदधिरवसामां-
समस्तिष्कपङ्के मग्नानां म्यन्दनानामुपरि कृतपदभ्यास-
विकान्तपत्ता । स्फांतासृक्पानगाघोरसदृशियशिया-
तूर्यनृपसकवन्द्ये संग्रामैकार्णवान्तः प्रविचरितुमलं
पण्डिताः पाण्डुपुत्राः ॥ १ ॥ कृतमनुभूतं दृष्टं वा

हुए लोग मोहमें इतना छिपे हुए चन्द्रमाके पोंदेका भाग ही
देखते हैं जिसमें कलककी काखिमा न रहनेसे किरणें घने रूपमें
दिखाई देती हैं और जो भोजी भीति छिपोंके मुलका समानता
कर पाता है ॥ २१ ॥ गूँगीके पदे हुए रत्नांक बहरे सुन रहे हैं,
कुछे अन्धके साथ खिल रहे हैं, प्रशंसा करता हुआ अन्ध
जिते देख रहा है, पगु एकएक पहाड़की खाँटीपर चढ़ रहा है
और बन्धवार्ये गर्भके भारसे झकझाई हुई धीरे-धीरे चक्की जा
रही हैं ॥ २२ ॥ प्रलयके समय सब जीवोंको अपने भीतर
समेत लेनेवाले जिन भगवान्के शरीरमें यह सारा जगत्
विस्तारके साथ समा गया, उसी शरीरमें वे कैऽमके शत्रु
मारयाय भीनारदमीके आगमनसे उत्पन्न होनेवाला हर्ष
नहीं समा सके ॥ २३ ॥ शत्रुकी भीतीपर पड़ी हुई सैकड़ों
परसाहवाँसे घिरे हुए शत्रुको हनुमानजीने कड़ी कठिनाईसे
पहचाना कि यह शत्रु है ॥ २४ ॥ युद्धमें कैसे हुए शत्रु-
वाले कुम्भकर्णकी आँखोंमें जो बन्दर समा गए थे वे उसके
सहज भावसे पलक मारनेपर मूर्च्छित होजाते थे और जो लुँह-
में समा गए थे वे आँठाका चपेटमें पड़े जा रहे थे । किन्तु
जो उसके कान और नाकके खोखलेमें समा गए थे वे ही कुछ
कास स्वस्थ रह सके ॥ २५ ॥ प्रलयके समय समुद्रमें सागे
वाले जिस भगवान्के विशाल उदरे सारे भुवन-मंडलको पी
लिया था उसी भगवान्की नगरकी एक छाने मदसे मधसुखी
एक आँखसे पी खाता ॥ २६ ॥ लंका पहुँचनेके लिये बन्दरीने

जो पर्वतका पुत्र बाँधा था उसमें जमे हुए पर्वतोंने पहले तो
समुद्रपर पड़ने ही अपनी कन्दराओं द्वारा उसका सारा
जल सोल लिया किन्तु जब अपने बन्धु मीनाके वेगसे बढ़ते
हुए प्रेमके आँवू देखे तो उससे भी हुगुने वेगसे निकलते हुए
अपने करनेकपी प्रेमाश्रुसोंसे बहोंने समुद्रकी भर दिया ।
उस समय रातके चौथेमें अपनी चमचमाती हुई तड़ी-
बुटियोंके प्रकाशमें गये गए वे पर्वत आज भी उन बन्दरीका
स्मरण दिखाते हैं जिन्होंने उनपर विधाम किया था ॥ २७ ॥
यह क्या कम विचित्र जान है कि जो स्वयं स्थाणु (ठूँठ) हैं,
जिसके मूत्र (माता-पिताका) कोई ठिकाना नहीं, जिसके पुत्र
विशाल (कार्तिकेय, शाला रहित) हैं, और जो अर्पणा
(पार्वती, बिना पत्नेवाली) हैं कहीं स्थाणु कुछ जाकर चढ़ाने-
वाले लोगोंकी सदा मनचाहा फज्र दिए जा रहे हैं ॥ २८ ॥

रौद्र रस : परस्पर टकराकर फटे हुए हाथियोंके रुधिर,
मज्जा, मांस और मस्तकके कीचड़में डूबे हुए शरीरपर पैर रख-
रखकर जिसमें जोर पैदल सैनिक चल रहे हैं, बढ़ता हुआ
रुधिर पीनेके लिये हकहो होकर असंगठ भ्रमि करनेवाली
सिवारिणियोंके गानेके साथ-साथ जिसमें भड़ नाच रहे हैं,
देवे संग्राम-रूपी समुद्रमें केवल पाँइव ही बड़े सुलसे दहल
सकनेमें समर्थ हैं ॥ १ ॥ स्वयं मरे हुए द्रोणाचार्यका सिर
काट देनेपर अरवधामा कह रहा है—‘अच्छ ठाँकर पिताके
साथ आत्माचार या आत्माचारका अनुमोदन करके तुम लोग

दैरिदं गुरुपातकं मनुजपशुभिर्निर्मयादैर्भवद्भिरुदायुधैः।
नरकरिपुणा सार्धं तेषां सभोमकिरीटिनामहमयम-
सृङ्मेदोमांसैः करोमि दिशां वलिम् ॥ २ ॥ चञ्चद्भुज-
भ्रमितवयडगदाभिघातसंचर्णिनोरुयुगलस्य सुयोध-
नस्य । स्त्यानावनडधनशोणितशोणपाणिरुत्तंसयि-
प्यत्रि कचांसनध देवि भीमः ॥ ३ ॥ त्रैलोक्यप्राण-
शोण्डः रुरसिजवसतेः सप्रस्तो भुजाभ्यां सुस्रजं
माम वर्णः कुलिशकठिनयोर्यस्य दोष्णोयिलोनः ।
ज्वालाहाकालकालानलकवलभयभ्रान्तदेवासुराणि व्या-
तन्धानो जगन्ति ज्वलति मुनिरयं पार्वतीधर्मपुत्रः
॥ ४ ॥ देशः सोऽयमरातिशोणितजलेर्यस्मिन्नुदाः
पूरिताः स्रवादेय तथाविधः परिभवस्तातस्य केश-
ग्रहः । तान्येवाहितशस्त्रघस्मरगुरुयपत्त्राणि भास्वन्ति
मे यद्रामेण कृतं तदेव कुरुते द्राणाभ्रजः प्रोचनः
॥ ५ ॥ नाहं रक्षां न भूतो रिपुरांधरजलाह्लादिताङ्गः
प्रकाशं विस्तीर्णोऽप्रतिज्ञाजलनिधिगहनः प्रोचनः

चत्रियोऽस्मि । भो भो राजन्ववीराः समरशिखिशि-
खाभुक्तशेषाः कृतं वस्त्रासेनानेन लीनैर्हतकरितुरगा-
न्तहितैरास्यते यत् ॥ ६ ॥ पातालतः किमु सुचारस-
मानयामि निष्पीड्य चन्द्रममृतं किमु वाहरामि ।
उद्यन्तमद्य तपनं किमु धारयामि कीनाशपाशमथवा
किमु खर्णयामि ॥ ७ ॥ यस्तस्यजतभङ्गभोरुमनसा
यत्नेन मन्दोक्तं यद्विस्मर्तुमपोहितं शमवता शान्ति
कुलस्येककृता । तद्व्यतारणिसंभृतं नृपसुताकेशाम्ब-
राकर्षणैः क्रोधउयोतिरिदं महत्कुदघने यौधिष्ठिरं
जृम्भते ॥ ८ ॥ येन स्वां विनिह्य मातरमपि क्षत्राका-
पूरासवास्त्रादोन्मत्तपरश्वधेन विद्धे निःक्षत्रिया
मेदिनी । यद्वाणमणवर्त्मनः शिखरिणः कौञ्चस्य हंस-
कक्षलाद्याप्यस्थिकणाः पतन्ति स पुनः कुक्षो मुनि-
र्भागवः ॥ ९ ॥ दैः प्राणापहृतिः कृता मम पितुः कुक्षे-
युधि क्षत्रियै रामोहं रमणोधिहाय बलवातिः शेषमेवा
हठात् । भास्वरमौक्तकुठारकोटिघनकाकाएडमुदरकंध-

मर्थादा तोपनेवाले नये पशु बन गए हो । इसलिये कृष्ण,
भीम तथा अर्जुनके साथ-साथ मैं तुम लोगोंका रुधिर, मजा
तथा मांस लेकर सभी दिशाओंकी ओरि चढ़ाए बाख रहा
हूँ ॥ २ ॥ द्रौपदीसे भीम कहते हैं—चञ्चल भुजाओंसे घुमाई
हुई भयंकर मर्दाके महारसे दुर्योधनकी जाँघें चूर चूर करके
जमी रुधिर धारासे हाथ धानकर यह भीम तुम्हारी चोरी
बाँधेगा ॥ ३ ॥ देखो, यही पार्वतीके धर्मपुत्र परशुराम मुनि अपनी
तेजसे चमक रहे हैं जो त्रिभुवनकी रक्षा करनेमें समर्थ हैं,
महाका भुजासे उगपल हुए हैं और जिनके वज्रके समान कठोर
बाहुओंके प्रतापसे क्षत्रिय नासि गए गई और जिनके प्रतापके
आगे पड़कर देवता और असुर भी ज्वाला-रूपी जाम्बवाको
प्रलयकालकी अग्निमें पड़नेके भयसे चारों ओर भागते फिरते
हैं ॥ ४ ॥ जिस स्थानपर शत्रुओंके रुधिर से परशुरामने ताँज
भर दिए थे वही आज बाल पड़कर एक क्षत्रियने ही मेरे
पिता (द्रौण) का अवमान किया है । मेरे पास शत्रुओंकी
चबा जानेवाले वे सभी चमकते हुए प्रखर हैं इसलिये जो काम
परशुरामने कर दिखाया वही काम अब द्रौणका पुत्र अश्व-
त्थामा करने जा रहा है ॥ ५ ॥ सम्राजिनका ज्वालामें जलनेसे
बचे हुए वीर राजाओ ! मैं कोई राजस या भूत-प्रेत नहीं हूँ,
शरीरमें शत्रुओंका रुधिर जगनेसे प्रसन्न तथा सबके सामने
प्रतिज्ञारूपी गंभीर सागर पार करनेवाला मैं क्रोधी क्षत्रिय

हूँ । ऐसा करना भी किस कामका कि तुम लोग मारे हुए हाथी-
घोड़ोंके पीछे छिपे पड़े हो ॥ ६ ॥ कोई वीर कहता है—‘कहीं
तो मैं पातालसे अमृत ले आऊँ या चन्द्रमाको निचोड़कर
उसका अमृत ले आऊँ अथवा उगते हुए सूर्यका रोक दूँ वा
यमराजके आँखकी डी टूट-टूट कर दूँ ॥ ७ ॥ अज्ञातशत्रु
युधिष्ठिरने अपना सख्यमत पालन करनेमें बाधा पड़नेके भयसे
जो क्रोधरूपी अग्निकी भयंकर ज्वाला दबा रखी थी और मिले
वे सहनशील, अपने कुक्षमें शान्ति स्थापन करनेके विचारसे भूख
भी जाना चाहते थे, जो पहले हुए रूपी अरथीमें डाली गई
थी तथा द्रौपदीकी साड़ी और बाँध लीचकर अगाई गई थी
वही युधिष्ठिरकी क्रोध-रूपी अग्निकी ज्वाला अब कौरव-रूपी
बनमें फैलती जा रही है ॥ ८ ॥ जिसने पहले अपनी माताका
सिर काटा, फिर क्षत्रियोंके रुधिरकी प्रवाहरूपी मदिरासे मत्त-
वाले फरसेसे पृथ्वीको बिना क्षत्रियकी कर दी, जिसके बाणसे
केचे हुए क्रीच पर्वतके दरारोंसे निकलने समय हंस ऐसे दिखाई
देते हैं जैसे टूट-टूटकर गिरती हुई इड्डियाँ हों, वही परशु-
रामने आज क्रोध किया है ॥ ९ ॥ परशुराम कह रहे हैं कि
जिन क्षत्रियोंने युद्धमें क्रोध करके हमारे पिताके प्राण छिपे हैं
उनमेंसे छियोंका खोंदकर मैं परशुराम किसीकी जीवा न छोड़ूँगा
और चमकते हुए प्रखर फरसेका धारके चबानेपर एकएक
कटे हुए गलेके बिजले निकलती हुई रुधिरकी धारासे मैं अपनी

राक्षोतोऽन्तःस्त्रुणशोणशोणितभरैः कुर्यां कृपां निर्वृ-
तिम् ॥ १० ॥ यो यः शूलं विभर्ति स्वभुजगुरुमदः पाण्ड-
वीनां चमूनां यो यः पाञ्चालमोत्रे शिशुरधिष्ठयया
गर्भशय्यां गतो वा । यो यस्तत्कर्मसाक्षी चरति मयि
रणे यश्च यश्च प्रतीपः क्रोधान्धस्तस्य तस्य स्वयमिदं
जगतामन्तकस्यान्तकोऽहम् ॥ ११ ॥ रक्तोऽकुलविशा-
ललोत्तनयनः कम्पोत्तराक्षो मुहुर्मुक्त्वा कर्णमपेनघार्ध-
तघ्नुर्याशो हरेः पश्यतः । आध्मातः कटुकोक्तिभिः
स्वमसकृद्दोषिकर्म कीर्तयन् सास्कोटपट्टयुधिष्ठिरमसौ
हन्तुं प्रविष्टोऽर्जुनः ॥ १२ ॥ राक्षो मानधनस्य कामुक-
भूतो दुर्योधनस्याग्रतः प्रत्यक्षं कुरु बान्धवस्य च तथा
कर्णस्य शय्यस्य च । पीतं तस्य ममाद्य पाण्डवयधूके-
शाश्वराकपिणः कोष्णं जीवत एव तीक्ष्णकरजनुष्णा-
द्वसृज्जलः ॥ १३ ॥ रे धृष्टा धार्तराष्ट्राः प्रबलभुजवृह-
त्पाण्डवाः पाण्डवा रे रे वाष्पेयाः सकृन्णाः शृणुत
मम वचो यद्ब्रवीम्युर्ध्वबाहुः । एतस्योन्मातवाहोर्मु-

क्रोध-कवी आग बुकाईगा ॥ १० ॥ सरवधामा कह रहा है—
'पाण्डवोंकी सेनामें अपनी भुजाओंपर गर्व करनेवाले जो-जो
एक शस्त्र धारण करते हैं, दुःश्लोक के वंशमें जो बच्चे-बूढ़े तथा
गर्भमें हैं और जिन्होंने हमारे पिताका सपमान होते देखा है
अथवा मेरे घमते समय जो भी मेरे विरोधी मिलेंगे वे संसार-
का नाश करनेकी शक्ति भले ही रखते हों पर मैं क्रोध करनेपर
उन सबके लिये दमराज बन जाऊँगा' ॥ ११ ॥ जिसके विशाल
चञ्चल भ्रूज काख कमलके समान खिले हुए हैं, जिसका शरीर
बार-बार काँप रहा है, जो कठोर शत्रुओंका प्रयोग किए आ रहा
है, जो बार-बार अपने बाहुके पराक्रमका वर्णन कर रहा है और
अभिमानसे ताज डोक रहा है वह अर्जुन अभी कृष्णके देखते-
देखते कर्णको छोड़कर धनुष-बाण लेकर निर्भय होकर युधिष्ठिर-
पर प्रहार करनेके लिये चला आ रहा है ॥ १२ ॥ अहटारो
धनुर्वर राजा दुर्योधनके देखते-देखते कौरवोंके हितेपी कर्ण तथा
शक्यके सामने आज मैंने द्रोपदीके बाज तथा साढ़ी खींचनेवाले
श्रीते-जी दुःशासनके वचःस्थलको सींसे नखोंसे फाड़कर उसका
गरम-गरम रुधिर पिया है ॥ १३ ॥ अरे डीठ धृतराष्ट्रके पुत्रो !
अरे प्रबल बाहुको वेगसे धुमानेवाले पाण्डवो ! अरे कृष्णके
सहित पाण्डवो ! मैं भुजा उठाकर कह रहा हूँ, सुनो ! द्रोपदी-
को अपमानित करनेवाले इस पापी दुःशासनकी भुजाएँ
उखाड़कर मैं इसके वचस्थलका रुधिर पी रहा हूँ । तुममेंसे

पदचपसुनानापितः पापिनोहं पाता हृद्योणितानां
गभवति यदि यस्तत्किमेतं न पाथ ॥ १४ ॥ स्व रोषद-
ष्टाधरलोदिनाक्षेप्यक्ताध्वरेण धृकुटोर्वहट्टिः । तस्तार
गां भल्लनिकुनक्यद्वैहृङ्गागर्भेडिपतां शिरोभिः ॥ १५ ॥
स्पृष्टा येन शिरोरुहे नृपशुना पाञ्चालराजात्मजा येना-
स्थाः परिधानमप्यपहतं राज्ञां कुरुणां पुरः । यस्मैरा-
स्थलशोणितासचमहं पातुं प्रतिज्ञानवान् सोऽयं मङ्ग-
जपञ्जर निपतितः संरक्षतां कारवाः ॥ १६ ॥

भयानकरसः—अद्याप्युन्मदयानुधाननदणोच श्रुतक-
रास्कालनध्यावलग्नकपालनालरणिनेनृन्यतिपिशात्रा-
कृताः । उद्गायन्ति यशांसि यस्य घिततैर्नाद्वैः प्र-
हृष्टानिलप्रजुग्धफकिक्कमकूटकहुरव्यक्तं रणसौख्यं
॥ १ ॥ अन्वाकलपनलगायाधरभरव्याश्रितमेधचक्रुडा-
सृक्वस्थामिपगृध्नुगृध्मकरास्कासोचलन्मूर्धजा ।
व्यादायाननमृहासविकटं दूरेण तारापथान्नस्यम्लि-
जपुरंभिभृन्दरभसोन्मुक्तादुपकामति ॥ २ ॥ अशक्य-

काई समर्थ हों तो इसकी रक्षा क्यों नहीं करते ? ॥ १४ ॥
उसने अपने उन शत्रुओंके मस्तकोंसे भूमि पाट दी जो कांधसे
अपने छोड काटे हाथ रहे थे, जिनकी भौंलें लाज-लाज थीं,
जिनकी देदी भौंहोंकी नखें तनी हुई थीं, जिनका गज्रा बांधोंसे
कट गया था और उनमेंसे हुंकारका शब्द निकल रहा था
॥ १५ ॥ जिस नरपशुने द्रोपदीके बाज काँचे, जिसने कौरवोंके
देखते-देखते उसकी साढ़ी भी खींची और जिसके वचःस्थलका
रुधिर पीनेके लिये मैंने प्रतिज्ञा की थी वही दुःशासन आज
मेरी भुजाओंके चक्करमें आ गया है । कौरवो ! अब करो तो
उसकी रक्षा ॥ १६ ॥

भयानक रस : मतवाली राजसिन्धियोंके चञ्चल हाथोंसे
जगाई हुई मानवो खोपड़ियाँ जहाँ कड़-कड़ काते हुए ताज दे
रही थीं और विशाचिनिर्भी नाच रही थीं, उसी रणभूमेमें आज
भी हाथियोंके कटे हुए मस्तकमेंसे घुसकर निकलते हुए प्रबल
बाहुकी सरसराहट उसके यशका गान कर रही है ॥ १ ॥
जैतद्वियोंकी माखासे खमी जो बादलोंकी टकेजे दे रही है और
घोड़ोंके पास जगे हुए मांसके जोभी गिद्धोंका पैल जगनेसे
जिसके बाज उड़ रहे हैं वही रावली अहटारके लिये अपना
भयंकर मुँह फैलाकर उस आकाश मार्गसे उतर रही है जहाँसे
वही हुई सिद्धोंकी स्त्रियाँ ऊपट मार्ग छाँड़-छोड़कर भाग गई
हैं ॥ २ ॥ सूर्यके समान जो इन्द्र तेजस्वी रावणकी ओर देखने

वन्सोऽहुमधीरलोचनः सहस्ररश्मेरिव यस्य दर्शनम् ।
प्रविश्य हेमाद्रिगुहादगुहान्तरं निनाय विभ्यद्वि-
सानि कौशिकः ॥ ३ ॥ इदं मधोमः कुलिशं धारय-
निहितानलम् । स्मरणं यस्य दैत्यस्त्रीगर्भपाताय केव-
लम् ॥ ४ ॥ किञ्चित्कोपकलाकलापकलाहुद्धारविभ्र-
ज्जुघोर्ध्वोपादकरोदसौ रघुपतिर्लङ्कापतेः पत्नम् ।
क्रान्त्येव रटत्करेडु विषट्कारु स्फुटद्गुग्गुलु प्रोत्की-
र्त्तयि निःश्वसत्फणि रणजिह्विभ्रमद्द्वीपि च ॥ ५ ॥
गीर्वाणः प्रतियन्ति नैव पिदधे कर्णौ सुघर्माधिपः
कर्णाफणिकयन्ति हन्त निभृतं शंभुस्वयंभृगणाः ।
दूरादेस्य कृतान्तद्वतनिवहाः स्वाकारसङ्कापनैरदृशोर्ध्व
कलयन्तिकोणपथमूनाये श्यामे रणे ॥ ६ ॥ ततः परामर्श-
विबुद्धमयोर्ध्वभङ्गदुःप्रेक्ष्यमुखस्य तस्य । स्फुरद्भिर्जिह्वैः
सहसा तृतीयादृशः कृशानुः किल निःपपात ॥ ७ ॥
निर्मज्ज्यचुरन्तर्भ्रमदतिकपिलकूरतारा नरास्थिप्रमिथ
दन्तान्तरालप्रधितमधिरतं जिह्वया घट्टयन्ती । ज्वा-

न्तेऽपि व्यासवक्त्रे ज्वलद्वनलशिखाज्जरे व्यक्तकर्मा
निर्मान्ती शृङ्गरोद्री दिवमुपरि परिक्रान्ते ताडकेयम्
॥ ८ ॥ प्रचण्डं चामुण्डागृहमिदमुद्राभिरभितः
पताकाभिर्वोरं यममहिषजिह्वानुकृतिभिः ।
किमेकाकिन्यत्र प्रविशसि न किं पश्यसि पुरः
शिरोभिः पान्थानां पथि विरक्षितां तोरणशक्तिम्
॥ ९ ॥ मौढ्यच्छेदानुक्रपोच्छलनस्यशस्त्रसंहिकेपोप-
मेयत्रासाकृष्टाभ्रतियंवलितरश्मिरयेनादणेनेवमाणम् ।
कुर्वन्काकुत्स्थवीर्यस्तुतिमिव मदतां कम्धरारम्भभाजां
झाङ्कारैर्भीममेतन्निपतति वियतः कुम्भकर्णोत्तमाक्रमम्
॥ १० ॥ मग्नाम्भुजुजितो जपद्भिरसकृद्वायान्निरि-
ष्टान् सुरान् शृण्वन्नालुभिराकुलाकुलपदैर्निर्वाग्भिर-
त्कम्पिभिः । अश्विनैरिह जीवितेशमहिवयधूध्रधूमा-
विला लङ्घयन्ते करिमांसघस्मररणाकालेयकाः पल्लय ।
॥ ११ ॥ मग्नायस्ताण्वाभः प्रतिकुहुरवलम्बन्मन्दरध्व-
जधीरः कोणाघातेषु गर्जन्प्रलयघनघटाभ्योम्यसंघट्ट-

में असमर्थ था और जिसके आगे उसकी जालें चींचिया जाती थीं, वह ईद सुमेरु पर्वतकी कन्दराके भीतर डरकर घुसा हुआ उल्लूके समान अपना दिन बिता रहा था ॥ ३ ॥ इन्द्रके जिस यज्ञकी धारमें आग रहती है उसका स्मरण करनेसे ॥ दैत्योंकी रिश्वोंका गर्भपात हो जाता है ॥ ४ ॥ तनिक-सा क्रोध था जानेपर रामने हुद्धारके साथ भीहें देदी करके शत्रुकी गारांको ऐसी निर्जन कर दी कि उसमें गीदड़ बोलने लगे, चीक-कीए चिल्लाने लगे, लकड़ियाँ फटने लगीं, गुगलके पेड़ टूटने लगे, कन्दर भागने लगे, सारे जग्गी-जग्गी सारि भीचने लगे, भीगुर जनकारने लगे और बाघ घूमने लगे ॥ ५ ॥ कोणदेशके राजाका सेनापति जब रणभूमिमें गिरा पड़ा था उस समय देवता सामनेतक न आते थे, इन्द्रने अपने काम तक खिच थे, एंकर, जहा और बिष्ट आदि देवता क्षिप-क्षिपकर काना-फूसों करने लगे थे और यमराजके दूत अपना रूप छिपाकर दूरसे ही सिर उधका-उधकाकर देख रहे थे ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर कामके छेदनेपर जिनका क्रोध उबल गया और जिनकी देदी भीहोंकी ओर देखना कठिन हो गया, उन्हीं शंकरांके तीसरे नेत्रसे चमकनी तथा धधकनी हुई आग सहसा भभक उठी ॥ ७ ॥ भीतर भँसी हुई आँखोंके भीतर जिसकी घायल भूरी और भयंकर पुतली चक्कर खा रही है, दाँतोंके बीच सटी हुई मनुष्यकी हड्डीकी जो निरन्तर जीमसे चक्का दे रही है, जँघरेमें

जी जकती हुई आगकी उवाकासे सुखा हुआ ईद भरकर केक-के काम कर रही है और जो गिद्धोंकी भयंकरता फैला रही है वह ताड़का आकाशमें चक्कर लगा रही है ॥ ८ ॥ यमराजके भीसेकी जीमके समान भयंकर कण्डियोंसे चामुण्डाका यह भयंकर मन्दिर घिरा हुआ है । जरे, जकेरी ही इसमें क्यों चुली जा रही है क्या देखती नहीं कि आगे मार्गमें बटाहियोंके सिरोसे बनी बन्दनवार खटक रही है ॥ ९ ॥ विशाल सङ्गसे कटकर जो उल्लूक रहा था, जिसे देखकर राजाके भाक-मक्की शंकासे सूर्यके रथको प्रत्यक्ष घोड़ोंकी रास कीच-कीच-कर तिरछे भगा रहे थे और जो गलेके घेरेमें घुसे हुए बाघकी जनकारसे मानो रामके पराक्रमकी स्तुति कर रहा था, उस भयंकर कुम्भकर्णका मस्तक आकाशसे नीचे गिरता था रहा है ॥ १० ॥ मारे डरके जिनकी बोझो बन्द हो गई है, जिनके तालु खुल गए हैं और पैर खटपटाए जा रहे हैं वे बड़ीही बार-बार मृगुज्व मन्त्र जपते हुए, इष्ट देवताओंका स्मरण करते और कपते हुए उन पक्षियोंको जाँचे चले जा रहे हैं जो यमराजके भीसेके रंगके समान रङ्गवाले धुँपे भरी हैं और जिनमें हाथीके मांसपर जुटे हुए कुत्ते भीक रहे हैं ॥ ११ ॥ मये जाते हुए समुद्रके जलसे मन्दराचलकी कन्दराओंमें भूजती हुई घरघराहटके समान गम्भीर, दबड़ेकी बोहसे गरजते हुए, परस्पर टकराते हुए प्रलयकावले बादलोंके समान भयंकर, दीपशीके कांभकी

वण्डः । कृष्णाकोधाग्रदूतः पुरुक्लनिधनोत्पाननिर्घा-
तवातः केनास्मत्सिंहनादप्रतिरसिनमखां दृन्दुभिस्ता-
दितोऽयम् ॥ १२ ॥ महाप्रलयमाकृतचुम्बितपुष्करावर्त-
कप्रचण्डघनगर्जितप्रतिरवानुकारी मुहुः । रवः ध्रुव-
श्रैरवः स्थगितरोदलोकादरः कुतोऽथ समरोदधेरय-
मभूतपूर्वः पुरः ॥ १३ ॥ माद्यन्मातङ्गकुम्भस्थल्यदलप्र-
सावासनाधिगन्धव्यासक्तव्यक्तमुत्तफलशकललस-
त्केसरालोकरालः । पर्णवैधव्यवेधाः स्वभुजवलमद-
प्रस्ततेजस्विधामा गुञ्जकुञ्ज मिरीणां हरिर्हि शयरी-
गर्भपातं विधत्ते ॥ १४ ॥ विनिर्गतं मानदमागममन्दि-
राङ्गव्यापुधुस्य यदृच्छयापि यम् । ससम्भ्रमंन्द्रुत-
पातितामेला निमीलितान्नीय भियामरावती ॥ १५ ॥

बीभर्त्सरसः—अःप्रोतवृहत्कपालमलककूरकवण्टक-
कुण्मायप्रेक्षितभूरिभूपणरघैराघोषयन्त्यथरम् । पीत-
वर्णद्वितरककर्मघनमागभारघोरोल्लसद्द्व्यालोलस्तन-
भारभैरवबुधैर्पोद्धतं धावति ॥ १ ॥ अम्भैः कल्पित-

मङ्गलप्रतिसराः श्रीदम्बरकोम्पलव्यक्तोत्तंसभृतः
पिनहा शिरसा दृष्टिः शरीकभ्रजः । पताः शोणितपङ्क-
वृक्षमनुयः सम्भ्रम कान्तेः पिवन्त्यस्थितोदपुराः कपा-
लचपकैः प्रीनाः पिशाचाङ्गनाः ॥ २ ॥ उन्मत्त ज्वलितं
शयास्वधमपि प्रेताशनः पेशिनी पेशांमश्रिमयीं निर्गौर्यं
सदमा दन्दहासनादरः । धावन्मुत्पलवने मुदृन्निपतति
प्रोत्तिष्ठति प्रेक्षते विप्वक्राशति सस्मितां जटारं
मुष्ट्या चलन्मस्तकः ॥ ३ ॥ उन्मत्तान्मत्तं कृत्ति प्रध-
ममप पृथ्व्याकभ्यांति मांसान्यसस्तिफृष्टपिण्डा-
द्यवयवसुलभाभ्युपपूतानि जग्त्वा । आत्तस्माद्वन्ध-
नेत्रः प्रकाटनदयनः प्रतरङ्गः कग्दादङ्गस्थावेस्थिसंस्थं
इयपुटगतमपि प्रव्यमद्यप्रमत्ति ॥ ४ ॥ प्रस्वेदमलक्षि-
ग्धेन वहता मृदशाणनम् । द्रणेन यदृत्तेनहं सयम-
न्धाकृतं जगन् ॥ ५ ॥ रक्तं नक्तंचराघः पिपात यमति
च प्रसन्नकुन्तः शकुन्तः कट्यं नट्यं गृहीत्वा प्रणुदति
मुदितो मत्तचैतालयालः । क्रोड्यमाङ्गमस्मिन्धधिरम-

सृजना देनेवाले दूतके समान, बीरवोंके नाशके लिये प्रलयकाल-
की आधी तथा हमारे सिंहनादकी प्रतिध्वनिके समान वह
जगाया किसने बताया ॥ १२ ॥ महाप्रलयके समय प्रलय
बाधुसे उदाए पुष्कर तथा आवर्तक नामक मेघोंके भयंकर
गर्जनकी प्रतिध्वनिके समान कान काँधनेवाला, भूमि तथा
आकाशके बीचका भाग भर देनेवाला और पहले कभी न सुना
जानेवाला यह समर-सागरका कोलाहल बार-बार आज कहाँसे
सुनाई दे रहा है ॥ १३ ॥ मतवाले हाथीके मस्तकी मन्त्रकी
हुगंधसे मिले हुए मोतियोंके टुकड़ोंसे जिसका भयानक आवाज
सुना हुआ था, जिसने अपने बाहुबलके सहकारसे बड़े-बड़े
रोतस्वियोंका तेज भी दबा दिया था वह हरिणियोंकी विषया
बनायेवाला सिंह पहाड़की कन्दरामें गरजता हुआ शवशका
गर्भ गिरा रहा है ॥ १४ ॥ लोगोंका अभिमान पूर करनेवाले
हथग्रीवकी उड़नेके लिये घरसे निकला हुआ सुनकर इन्द्र
अपनी नगरी अमरावतीके काटक हस प्रकार बन्द कर लेता था
मानो उसके भयसे अमरावतीने जालें भूँद जी हों ॥ १५ ॥

बीभर्त्सरसः—भैरवोंमें गुथी हुई बड़ी-बड़ी खोपड़ियाँ
तथा आँवोंकी हड्डियाँ ही जिसमें बजते हुए भयानक कंकड़
थी, जो बहुतसे दिजते हुए हड्डियोंके आभूषणोंके शब्दसे
आकाश गुँगाए ढाक रही थी, पीकर उगले हुए रुधिरसे जिसके
शरीरका ऊपरी भाग रँग गया था, जिसके उधुलते हुए भवा-

नक रतनासे शरीर अत्यन्त डरावना लग रहा था, वह पिशा-
चिनो अभिमानसे कुत्ता हुई हथाले उधर दीव रहा है ॥ १ ॥
भैरवियोंसे जिन्होंने हाथके मङ्गलमूत्र बनाए हैं, रत्नयोंके हाथ-
कपां लाक कमलके जिन्होंने मस्तकके भूषण बनाए हैं, कलेज-
की कमलकी माहाएँ सिरपर पहना है, रक्तकी केसरका टीका
बनाकर लगाया है, वे पिशाचिनियाँ प्रसन्न हाँ-हाँकर अपने
पतिवोंके साथ खोपड़ियोंके कठोरोंसे मन्त्राकी मदिरा पी रही हैं
॥ २ ॥ मुदां बानेवाला प्रेत जखते हुए मुर्देका जखता हुई
मांसकी गाँठ खींचकर खा तो गया पर एकाएक पेठ जखनेसे
बढ़ दीवता है, उधुलता है, बार-बार गिरता है, उठता है चारों
ओर देखता है, चिन्ताता है, और सिर हिलाकर मुर्देसे पेठ
मरावता है ॥ ३ ॥ इन्द्र प्रेतने पहले मुर्देका जमदा वधेदा,
फिर कन्धे, जितम्ब, पीठ तथा रिक्खियोंमें सरजतासे मिजने-
वाला अत्यन्त दुर्गन्धसे भरा फूला मांस खाया, फिर नस,
कैतड़ी तथा जीर्ण निकाली और फिर जब दौत खोलकर मुर्दे-
को अपनी गोदमें रखकर हड्डियोंके जोड़में सटा हुआ मांस
नोच-नोचकर प्रसन्नतासे खा रहा है ॥ ४ ॥ पक्षीने, मख मूत्र
तथा रक्तसे भरे हुए और देखनेमें भदे घाव (योनि) ने सारे
संसारकी सन्धा बना डाला है ॥ ५ ॥ पिशाच रुधिर पा रहा
है और उगल रहा है, पक्षी भालेकी निगल रहा है, मतवाला
बैतालका बाजक मांस ले-लेकर प्रसन्नतासे चिह्ला-चिह्लाकर

दशशतपूतना नूतनाङ्गी योगिन्यो मांसभेदः प्रमुदित-
मनसः शरशक्तिं स्तुवन्ति ॥ ६ ॥ विकीर्णहरिचन्दन-
द्रविणि यत्र लीलालसा निपेतुरतिवञ्चलाश्चतुर्कामि-
नीरष्टयः । तदेतदुपरिभ्रमन्निविडशृङ्गजालं जनेर्लुठ-
स्कृमि कलेवरं पिहितनालिकैर्वीर्यते ॥ ७ ॥

शांतिरसः—अकल्पः स्वाङ्गचेष्टायां शकुन्त इव
पञ्जरे । अनुच्छसस्मरन्पूर्वं गर्भे किं नाम विन्दते
॥ १ ॥ अग्रे कस्यचिदस्ति कश्चिदभितः केनापि पृष्ठे
कृतः संसारः शिशुभाषयौवनजराभारावतारादयम् ।
बालस्तं बहु मम्यतामसुलभं मांसं युवा सेवतां वृद्ध-
स्त्वं विषयाद्वह्निष्कृत इव व्याधृत्य किं पश्यसि ॥ २ ॥
अग्रे गीतं सरसकवयः पार्श्वतो दाक्षिणात्याः पृष्ठे
लीलावलयरणितं चामरप्राहिणोनाम् । यद्यस्त्येवं कुरु
भवरसास्यादने लम्पटत्वं नो चेद्येतः मविश सहसा
निर्धिकल्पे समाधी ॥ ३ ॥ अङ्गमङ्गेन सम्पीड्य मांसं
मांसेन तु स्थिरः । पुराहममर्थं प्रीतो यत्तन्मोहविजृ

म्मितम् ॥ ४ ॥ अज्ञानन्दादाति पतति शलभस्तीवद्-
हने न मोनोऽपि ज्ञान्वा बहिःशयुतमश्नाति पिशितम् ।
विज्ञानन्तोऽप्येते वयमिह विषज्जालजटिलाश्च मुञ्चामः
कामानहह महनो मोहमहिमा ॥ ५ ॥ अज्ञानं कारयं
न स्थाद्वियोगो यदि कारणम् । शोको दिनेषु गच्छत्यस्य
वर्द्धतामथ याति किम् ॥ ६ ॥ अतिक्रान्तः कालो
ललितललनाभोगसुखदो भ्रमन्तः शान्ताः स्वः सुखि-
रमिह संसारसरणौ । इदानीं स्वःसिन्धोस्तदभुवि
समाक्रन्दनगिरः सुतारैः फुत्कारैः शिव शिव शिवेति
प्रतनुमः ॥ ७ ॥ अद्येदं भव इदं तथा परवि कृत्यं
परारि स्वदृष्टेनश्चिन्तयसीत्यमेव सततं निर्व्याकुलं रे-
कुतः । तत्कालं यिलसम्पन्नोरथलताकान्तारदाघानलं
यस्मिन्दण्डधरं स्मरिष्यसि सखे सोऽप्यस्ति कश्चि-
त्क्षणः ॥ ८ ॥ अद्यैव हसितं गीतं पठितं वैः शरी-
रिभिः । अद्यैव ते न दृश्यन्ते कष्टं कालस्य चेष्टितम्
॥ ९ ॥ अद्यैतोकिपटून्बहून्पि वयं यासाकमस्कुर्महे ये

नाच रहा है, बिना हुए बिनाके मदमें चूर होकर पूतना जगजा
छोड़कर नाच रही है और मांस तथा मशूआ जाकर योगिनी
प्रसन्नचित्तसे बीरोंके पराक्रमकी प्रशंसा कर रही है ॥ ६ ॥
जिस शरीरपर काज चन्दन पोता जाता था, जिसपर आयुक्त
चंचक और मनवाली सुन्दरियोंकी आँखें पड़ती थीं, उसी
शरीरपर बहुतसे गीध बैठे रहे हैं, काँड़े बज-बजा रहे हैं और
छोग उसे नाक मूँद-मूँदकर देखा रहे हैं ॥ ७ ॥

शान्त रस : गर्भमें प्राणी न तो अपने अंग दिखा सकता
है, न साँस ही ले सकता है । वह विमर्देमें बन्द पक्षीके समान
अपने पूर्व जन्मके कर्मोंका स्मरण तो करता है पर गर्भमें कैसा
हुआ होनेसे उसका किया कुछ होता नहीं ॥ १ ॥ यह संसार
खड्गपनमें तो आगे रहता है, जवानोंमें चारों ओर दिखाई
देता है और युवापेमें पीछे चला जाता है । इसप्रकार बचपनमें
जब आगे आगेवाले संसारको दुर्लभ समझकर उसका आदर
करना भी ठीक ही है । जवानोंमें भी उसका उपभोग करना
ही ठीक है पर तुम तो बूढ़ हो गए और संसारके भोगोंसे
बाहर निकाल दिए गए हो, फिर क्या उसको आर खीट-खीट-
कर देखे जा रहे हो ॥ २ ॥ यदि सामने माना हो रहा हो, पासमें
दक्षिणके रस्तिक कवि बैठे हों, पीछे धँवर बुलानेवाली छिन्नोके
कंगनोंकी कनकार हो रही हो तब तो संसारके सुलोक स्वाद
खेते पड़े रही पर यदि ऐसा न हो तो हे मन ! तत्काल सब

छोड़-छाड़कर निर्विकर समाधिमें लीन हो चलो ॥ ३ ॥
खीके शरीरको अपने शरीरसे और बलके मांसको अपने मांस-
से दबाकर जो मैं अपनेको सुखी समझ रहा था वह सब कीरे
अज्ञानकी विह्वलना थी ॥ ४ ॥ जिस प्रकार जलनेकी पीड़ाका
कुछ भी ध्यान न करके फनिगा जलती आगमें कुछ जाता है
और मलकी बिना समझे-पूछे कैटियामें खगे हुए मांसपर लूँह
मार देता है उसी प्रकार हम लोग जानबूझकर भी अनेक
विपत्तियोंसे भरे हुए अपने मनोरथ नहीं छोड़ने । ओह ! अज्ञान
कितना प्रबल होता है ॥ ५ ॥ शोकका मूल कारण यदि
अज्ञान नहीं, यशस्विभोग है तो क्यों-क्यों दिन बीतते जाते हैं
क्यों-क्यों उसे (शोकको) भी बढ़ते माना चाहिये, किन्तु वह मिट
क्यों जाता है ॥ ६ ॥ सुन्दरी छिन्नोका भोग-सुख लेनेका समय
निकल गया । मैं तो संसारके मार्गमें दूतने दिनों तक चकर
लाते-लाते थक हुआ गया हूँ कि यत अब तो गंगाजीके तीर-
पर बैठा कहना भरे जैसे स्वरसे 'शिव-शिव' पुकारा करता
हूँ ॥ ७ ॥ अरे चित ! मुझे आज यह करना है, कल यह,
परसी यह, चौथे दिन यह; सरा देता क्या सोचता रहता
है ! अरे मित्र ! वह भी एक समय आयेगा जब मनो-
रथ-करी खताओंके बने जंगलके शावानज उस परमात्मका
स्मरण करना पड़ेगा ॥ ८ ॥ कालका यह आवाचार तो
देखो कि जिन देहधारी प्राणियोंके साथ आज ही हम

तु द्वन्द्ववशास्तदीयशिरसि न्यस्याम वामं पदम् ।
 सिंहः स्वोयशिशून्निवेश्य हृदये सान्द्रादरादामृशत्या-
 वेशेन भिनत्ति सम्भ्रमपदं मत्तेभकुम्भस्थलम् ॥ १० ॥
 अधीत्य क्षतुरो देवान्गृह्यत्वाष्टादश स्मृतोः ।
 भ्रमस्य वैफल्यमात्मापि कलितो न चेन् ॥ ११ ॥
 अन्तकः पर्यवस्थाता जन्मिनः संततापदः ।
 त्याज्ये भवे भव्यो मुक्तावृत्तिष्ठते जनः ॥ १२ ॥ अन्यत्र
 भीष्माद् गाङ्गेयादन्यत्र च द्रुममतः ।
 हरिणीश्वरमात्रेण धर्मणा मोहितं जगत् ॥ १३ ॥ अप्सु प्लवन्ते पाषाणा
 मानुषा प्रप्ति राक्षसान् । कपयः कर्म कुर्यन्ति कालस्य
 कुटिला गतिः ॥ १४ ॥ अमीषां जन्तूनां कतिपर्यान्मे-
 वस्थितिषुषां वियोगे धीराणां क इह परितापस्य
 विषयः । क्षणादुत्पद्यन्ते घिलयमपि यास्ति क्षणममी न
 केऽपि स्थातारः सुरगिरिपयोधिप्रभृतयः ॥ १५ ॥ अये
 स्वर्गः स्वर्गः कतिदिनसमार्गः प्रवसतां पुरस्तुक्ता

हैं ; गाढ़ और पढ़े, वे आज ही देखनेको नहीं मिल रहे
 हैं ॥ १० ॥ इस आत्माकी चर्चा करनेवाले क्षुद्र बाककोंको
 प्रणाम करते हैं और हैतका सिद्धांत माननेवाले लोगोंके
 सिरपर बाँवा पैर रखते हैं क्योंकि सिंह भी अपने बच्चोंको तो
 जातीसे खाकर बड़े प्रेमसे थपथपाता है किन्तु मतवाले
 हाथीको देखते ही क्रोधसे उसका मस्तक काढ़ हावता है ॥ १० ॥
 यदि आत्माका स्वरूप न समझ पाए तो आर्य वेद पढ़ने और
 अक्षरार्थों रसितियोंका व्याख्यान करनेका परिश्रम करनेसे क्या
 हुआ ! ॥ ११ ॥ मृग्यु सदा दुखी रहनेवाले प्राणियोंके सिर
 चढ़ी रहती है इसलिये बुद्धिमान् लोग इस छोड़ने योग्य
 संसारमें मुक्तिके लिये ही प्रयत्न करते हैं ॥ १२ ॥ भीष्म और
 द्रुपदको छोड़कर यह सारा संसार हरिणीके सुर जितने
 (धोनि) के मोहमें पड़ा है । ॥ १३ ॥ कालकी ऐसी उछटो
 गति होती है कि उसके प्रभावसे पानीपर पराधर तैरने लगता है,
 मनुष्य भी राजसोंको मारने लगते हैं और बन्दर भी ऐसे काम
 कर दिखाते हैं जो कोई कर न पावे ॥ १४ ॥ जो प्राणी इस
 संसारमें कुछ ही चण रहनेवाले हैं, उनके वियोगमें बुद्धिमान्
 लोग दुखी क्यों हों क्योंकि वे प्राणी चण भरमें उत्पन्न होते हैं
 और चण भरमें मर जाते हैं, यहाँ तक कि इतना ऊँचा
 सुमेरु पर्वत और इतना गहरा समुद्र वे भी वहाँ टिकनेवाले
 नहीं हैं ॥ १५ ॥ स्वर्गके लिये चले हुए मनुष्यके सामने यदि
 जगन्मयीके ऊँचे-ऊँचे स्तनकडरा न आ पड़े तो भला उसके

स्थातां यदि न कुञ्जकुम्भी मृगदृशः ।
 सुलभमुभयं मूलफलयाः पयः स्थाने स्थाने पथि पथि
 च विभ्रामनरयः ॥ १६ ॥ अर्थमाशुविनाशसंशयकरी
 प्राण्यापदं दुस्तरां मन्यासन्नभयं ॥ वेत्ति विभवं एवं
 जीवितं काङ्क्षति । उत्तीर्णस्तु ततो धनार्थमपरां भूयो
 विशत्यापदं प्राणानां च घनस्य बाधमधियामन्यान्-
 भावः पणः ॥ १७ ॥ अधिभ्यः कनकस्य दीपकपिशा
 विश्राणिता राशयो वादे धादिविपाणिनां प्रतिदत्ताः
 शास्त्राङ्किगर्वा गिरः । उत्थानप्रतिरापितैर्नृपतिभिः
 शारैरिव क्रीडितं कर्त्तव्यं कुतमथिता यदि विधेस्त-
 त्रापि सज्जा वयम् ॥ १८ ॥ अथयं यातारश्चिरतर-
 मुपित्वापि विषया विषागे का भद्रस्यजति न जनो
 यत्स्वयममृन् । अजन्तः स्वातन्त्र्यादनुत्पत्तिरितापाय
 मनसः स्वयं स्वकास्त्वेत शमसुखमनन्तं विदधति
 ॥ १९ ॥ अथयत्नादीनि भूतानि व्यक्रमध्यामि भारत ।

लिये स्वर्ग मिलने दिनका मार्ग है ! क्योंकि उसे मार्गमें कच्चा-
 मूल-फलका भोजन, स्थान-स्थानपर जल और प्रतिमाती
 पर विभ्राम करनेके लिये दूर तो सरसनासे मिल जाते
 हैं ॥ १६ ॥ मनुष्य जब ऐसे संकटमें पड़ जाता है कि उसे भन
 और जीवन दोनोंके न रहनेकी शंका होने लगती है तब वह
 अपने जीवनके आगे भनको कुछ नहीं समझता पर शरीरकी
 रक्षा होते ही वह पुनः भन जादनेके फेरमें पड़ जाता है । इस
 प्रकार मृत्यु और जीवनको रक्षाके लिये भन और भनकी रक्षाके
 लिये जीवनका दाव निरन्तर लगाने ही रहते हैं ॥ १७ ॥ हमने
 बाचकोंको दीपककी लौके समान रंगवाले सानेके डेरके डेर दान
 किए, तब कोटिके शास्त्रार्थियोंकी शास्त्रोक्तिके गर्वसे भरी वाणी
 कबिदत्त की, सिंहासनसे हटाए और फिर सिंहासनपर बैठाए
 हुए राजाओंसे तोतेकी भाँति खेल भी किया । इस प्रकार भी
 करना था, सब कर चुके । अब यदि भाग्यमें दरिद्रता (याच-
 कता) हो बड़ी है तो हम उसके लिये भी तैयार हैं ॥ १८ ॥
 कुछ दिनोंमें संसारके सारे भोग नष्ट हो जायेंगे, तब प्राणीका
 इनसे वियोग हो ही जायगा और यदि प्राणी स्वयं इन्हें छोड़
 दें तब भी वियोग हो जायगा । तब इन दोनोंमें अन्तर ही
 क्या रहा ? अन्तर वही है कि यदि भोग स्वयं छोड़ देते हैं तो
 प्राणीके मनमें दुःख होता है पर यदि प्राणी ही भोगोंको छोड़
 दे तो वे अनन्त शान्तिसे पूर्ण सुख देते हैं ॥ १९ ॥ सब प्राणी
 पहले अकारणरूपमें रहकर कार्यरूपमें आते हैं और अन्तमें फिर

अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥ २० ॥ अशो-
महि वयं भिक्षामाशावाप्तो वसोमहि । शयोमहि मही-
पृष्ठे कुर्वीमहि किमीश्वरैः ॥ २१ ॥ अष्टकुनाचलसप्त-
समुद्रा ब्रह्मपुरंदरदिनकरुद्राः । न त्वं नाहं नायं
लोकस्तदपि किमर्थं क्रियते शोकः ॥ २२ ॥ अशनं मे
वसनं मे जाया मे धन्धुवर्गा मे । इति मे मे कुर्वाणं
कालवृको हस्ति पुरुवाजम् ॥ २३ ॥ अस्यैकस्यापि
कायस्य सहजा अस्थिस्त्रयङ्काः । पृथक्पृथग्भागि-
ष्यन्ति किमुनाभ्यः प्रियोजनः ॥ २४ ॥ अहंकार
कवापि व्रज वृजिन हे मा त्वमिह भूरभूमिर्दोषाणामह-
मपसर त्वं पिशुन हे । अरे क्रोध स्थानास्तरमनुसरा-
मभ्यमनसां त्रिलोकीनाथो नो हृदि वसतु देशो हरिरसी
॥ २५ ॥ अहमिह कृतविद्यां वेदिता सत्कलानां धन-
धत्तिरहमेको रूपलाघरयुक्तः । इति कृतगुणगर्भः
क्षिद्यते किं जनोयं कतिपयादनमध्ये सर्वमेतन्न किंचित्
॥ २६ ॥ अहमेको न मे कश्चिन्नाहमभ्यस्य कस्यचित् ।

न तं पश्यामि यस्याहं न हि सोऽस्ति न यो मम ॥ २७ ॥
अहह गृही क्व नु कुशलां वज्रा संसारसागरे क्षिप्तः ।
कथमपि लभते पातं तेनापि निमज्जति नितान्तम्
॥ २८ ॥ अहो वा हारे वा यलवति रिपो वा सुहृदि
वा मणौ वा लोष्ट्रे वा कुसुमशयने वा दण्डि वा ।
तुणे वा त्र्येणे वा मम समदृशो यान्तु दिवसाः क्वचि-
त्पुण्येऽरण्ये शिव शिव शिवेति प्रलपतः ॥ २९ ॥
आक्रान्तं मरणेन जन्म जरया यात्युद्वेगं यौवनं
संतोषो धनलिप्सया शमसुखं मीढाङ्गनाचिभ्रमैः ।
लोकैर्मरसरिभिर्गुणा धनधुषो व्यालैर्नृपा दुर्जनैरस्यै-
र्वेण विपक्षयोऽप्युपहता प्रसन्नं न किं केन वा ॥ ३० ॥
आत्मविच्छिन्नो हन्त शम्भतपुरीमार्गे विहर्तुं यदि
भ्रातः संयमवर्मणा कुरु तदा रक्षाविधिं सर्वतः । नो
येदिन्द्रियतस्करैस्तथ हठात्तोषणाप्रभूरिस्फुरच्छिन्नाभ-
ङ्गशतैर्विभिद्य मनसो प्राज्ञां विवेको भाणः ॥ ३१ ॥
आदरेण यथा स्तौति धनवत्तं धनेच्छया । तथा

कारणमें चले जाते हैं इसांकरे अर्जुन ! इनकी चिन्ता हो क्या
की जाय ॥ २० ॥ हम भिक्षा माँगकर काते हैं, मगे रहते हैं और
भूमिपर साँसे हैं, फिर हमे भनिकोंसे भला क्या लेना-देना
॥ २१ ॥ भाई ! आठों कुल पर्वत, सातों समुद्र, ब्रह्मा, इन्द्र,
सूर्य, शंकर, तुम, हम और यह लोक कुछ भी जह नहीं भवा
रह जायगा तब शोक किसके लिये किया जाय ? ॥ २२ ॥
मेरा भोजन, मेरा वस्त्र, मेरी रत्नो, मेरे भाई-बन्धु कह-कहकर
'मैं मैं' करतेवाले पुरुषकर्ता चकरेको कात्तरुपां भेदिया छल-
भरमें आ दुवाँचता है ॥ २३ ॥ इस एक शरीरकी साथ वत्पन्न
हुई हड्डियोंके एक-एक टुकड़े भी अलग-अलग हो जायेंगे, (हर
भला प्रियजनोका क्या कहना ! ॥ २४ ॥ हे अभिमान ! तुम
मुझसे दूर हो जाओ, हे पापकर्म ! तुम यहाँ मत ठहरो, हे
दुष्ट ! तू भी भाग लड़ी हो क्योंकि अब मुझमें अहंकार नहीं
गया । हे क्रोध ! तू भी कोई दूसरी ठौर देख क्योंकि मेरा
मन अब सभी वस्तुओंसे हट गया है । अब तो बस यहाँ इच्छा
है कि त्रिभुवनके स्वामी भगवान् विष्णु मेरे हृदयमें आकर
निवास करने लें ॥ २५ ॥ इस संसारमें मैं ही विद्वान्,
कलाओंका जानकार, धनवान् और सुन्दर स्वरूपवाला हूँ; यह
कह-कहकर अपने गुणोंका अभिमान करनेवाला प्राणा भला
क्यों दुखी होता है जब कि इन वस्तुओंसे कोई भी वस्तु
योदे दिनोंमें कहीं रह नहीं जायगी ॥ २६ ॥ मैं एक अकेलाही हूँ,

न मेरा कोई है, न मैं किसीका हूँ । ऐसा कोई नहीं दिखाई देता
जिसका मैं होंऊँ या जो मेरा हो ॥ २७ ॥ आह ! बँधकर
संसारसागरमें कौन हुआ गूँथ भला क्या कुशलसे रह सकता
है ! किसी प्रकार पात (नाव, पीछ) पाता भी है तो डलसे
और भी डूबने लगता है ॥ २८ ॥ सॉप हो या हार, पक्षवान्
शत्रु हो या मित्र, मणि हों या मिट्टीका देखा, फूलका बिंदीवा
हो या पत्थर, लूट हो या स्थियोंका समूह, मैं तो यही चाहता
हूँ कि इन सबमें समान रहि रहते हुए किसी पवित्र जगहमें
'शिव-शिव' जपते हुए अपने दिन बितार्क ॥ २९ ॥ मृत्युसे
जन्म, सुधापेसे सुन्दर भवानी, धनके लोभसे संतोष, तक्षणी
नबेलियोंकी चटक भटकसे शान्ति-सुख-डाढ़ करनेवाले जोगोंसे
गुब्ब, जिसका जीवोंसे जंगल, दुष्टोंसे राजा और चंचलतासे
विपत्ति भी दबी रहती है । तब बताइए, कौन किसपर ज्ञाया नहीं
मारता ॥ ३० ॥ भाई आरता ! यदि वैकुण्ठपुरीकी गलियोंमें
विचरना चाहो तो संभ्रमरूपी कवचसे सब ओरसे अपनी रक्षा
कर लो नहीं तो इन्द्रियरूपी चोर बज्रपूर्वक चोले, चमचमाते
हुए चिन्तारूपी सैकड़ों भाजोंसे काटकर तुम्हारे मनका विवेक-
मणि चुरा लेंगे ॥ ३१ ॥ जैसे जोग धन पानेकी इच्छासे धन-
वानकी लख्खो चप्पा करते हैं वैसे ही आदरसे यदि जोग
संसारके बनानेवाले ईश्वरकी स्तुति किया करें तो कौन बन्धन-
में पड़ा रह जाय ॥ ३२ ॥ प्रतिदिन सूर्यके उदय और अस्तके

वेद्विभक्त्यारं को न मुच्येत यन्धनात् ॥३२॥ आदि-
त्यस्य गतागतैरहरहः संजीयते मोघितं व्यापारैर्वहु-
कार्यभारगृहभिः कालोऽपि न ह्रायते । दृष्ट्वा जन्मज-
राधिपक्षिमरणं आसन्नं नोपपद्यते पोत्या मोहमयीं
प्रमादमदिरामुन्मत्तभृतं जगत् ॥ ३३ ॥ आधिपत्याधि-
शुलैर्जनस्य विविधैरारोग्यमुन्मूल्यते लक्ष्मोर्यत्र पतन्ति
तत्र विवृतद्वारा इव व्यापदः । जातं जातमवश्यमाशु
विषशं मृत्युः करोत्यात्मसात्तत्किं तेन निरङ्कुशेन
विधिना यत्किमितं सुस्थिरम् ॥ ३४ ॥ आनीयते शरी-
रेण लीणोऽपि विभयो पुनः । विभयः पुनरानतुं शरीरं
लीणमस्मत् ॥ ३५ ॥ आपदः क्षणमायान्तं सम्पदः
क्षणमेव च । क्षणं जन्माथ मरणं मुने किमिव न क्षणम्
॥ ३६ ॥ आयुः कलाललोल कतिपयदिवसस्थापिनो
यौवनधीरर्थाः संकल्पकक्षा धनसमयतद्विद्विभ्रमा
भोगपूर्णाः । कण्ठाश्लेषोपगूढं तदपि च न चिरं यस्मि-
न्नाभिः प्रणतं प्रक्षयपासकासत्ता भवत भवभयाभा-

धिवारं तरोतुम् ॥ ३७ ॥ आयुनीरतगङ्गाभङ्गमिति
ज्ञात्वा सुखेनासितं लक्ष्माः स्वप्नविनश्वरति सततं
भागेषु यदा रतिः । अश्रुस्तम्भविडम्बि योचनमिति
प्रेमाऽवगूढाः स्त्रियो वैरवाच विमुच्यते भवगसात्तेरव
वद्धो जनः ॥ ३८ ॥ आयुवपंशतं नृणां परिमितं रात्रौ
तद्वद् गतं तद्वार्धस्य परस्य चार्धमपरं चान्तरवृद्ध-
त्वयोः । श्रेयं व्याधिधिपागदुःखसहितं सेवादिभिर्नी-
यते जीवे धारितरङ्गबुद्धसमे सांख्यं कुतः प्राणिनाम्
॥ ३९ ॥ आयुर्वायुव्याधिनल्लिनापञ्चमित्रं किमन्यत्स-
पञ्चपाद्यतिसहचरी स्वैरचारः कृतान्तः । क्रमाद्-
स्मिन्ध्रमसि तमसि त्वं प्रयाद् प्रयागं पानः पुन्यं भुवि
भगवती स्वधुनी ते धुनीते ॥ ४० ॥ आराध्य भूपति-
मवाप्य तनो घनानि भुजामहं ययमिह प्रसभं सुखानि ।
इत्याशया यत विनाहिनमानसानां काला जगाम मर-
णावधिरेव पुंसाम् ॥ ४१ ॥ आलाघनं च घनं च
निगूढं च यासां स्मरजमृतवत्सरसं कृशस्त्वम् ।

साथ जीवन कीया होता जा रहा है, बहुत प्रकारके कामोंके
भारसे खड़े हुए कर्तव्योंके कारण समय बीतता नहीं जान
पड़ता और जन्म, बुढ़ापा, विपत्ति और मृत्यु देखकर भी भय नहीं
होता क्योंकि अज्ञानसे भी हुई असावधानी-रूपां मदिरा पो-
कर सारा संसार आज मनवाया है । यैसा है ॥ ३३ ॥ अनेक
प्रकारके लैक्यों मानसिक तथा शारीरिक रोगोंसे लोगोंका
स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है, सम्पत्तिके साथ-साथ विपत्तियोंका
ह्वार सुख जाता है और बार-बार उत्पन्न होनेवाले प्राणीको
मृत्यु का दशोकती है । तब बनाइए, मनमाना करनेवाले ईश्वरने
संसारमें किस वस्तुका विपत्ति-नहिन बनाया है ॥ ३४ ॥
मरने हुए वैभवको शरीर फिर ले जा सकता है किन्तु मरने हुए
शरीरको वैभव पुनः नहीं जा सकता ॥ ३५ ॥ पक्ष-भरके
जिधे विपत्ति आती है, क्षण-भरका सम्पत्ति आता है, च में
मरण होता है और पक्षमे जन्म, हे मुनि ! इस संसारमें क्या
चणिक नहीं है । ॥ ३६ ॥ यह आयु पानीकी जहजके समान
पंचक है, तकराईकी शोभा भी कुछ ही दिनों-तक उहर पाती
है, धन भी मनोरथके समान आते-जाते रहते हैं, भोग भी
वर्षाकावकी बिजलीके समान दिखाई पड़ते ही मरने हो जाते
हैं, स्त्रियोंका आखिगन भी देरतक नहीं उहरता इसजिधे इस
संसारके भवरूपी सागरको पार करनेके जिधे परमेश्वरमें तो चित
लगा को ॥ ३७ ॥ आयु पानीकी जहजोंके समान नाशवात् है

यह जानकर लोग सुखसे बैठे रहते हैं, जबकी स्वयंकी संपत्तिकी
भीति है यह जानकर निरन्तर भागोंमें छिपे रहते हैं और मेंनोंकी
पटापोंकी भीति जवानों मिट जानेवाली है यह जानकर भी प्रेमसे
स्त्रियोंका आखिगन करते रहते हैं । इस प्रकार जिन बातोंको
जानकर मनुष्यको संसारके कष्टसे छूट जाना चाहिए उन्होंने यह
उल्टे संसारमें वैभवना जाना है ॥ ३८ ॥ मनुष्यको ली वर्ष
आयुमेंसे आधी तो रातमें बीत जाती है, आधेके आधे भागमें
अदकपन और बुढ़ापा बाल जाता है, शेष भाग रोग, विषोग
और दुःखमें बीतता है और कुछ दूषणोंका नेत्रामें निकल जाना
है । अतः इस जीवनमें जहर और बुजबुजके समान चणिक
जीवनवाले प्राणियोंको सुख कहाँ मिल पाता है ॥ ३९ ॥ यह
आयु पवनमे दिकते हुए कमजोर पत्तेके समान पंचक है, यह
सम्पत्ति भी बिजलीकी चमकके समान चणिक है और यमराजवर
भी किसीका बच नहीं है, ऐसी दशामें हे जीव ! इस अन्ध-
कारमें तू क्यों चक्कर लगाए जा रहा है । जा, प्रयाग चला जा ।
वहाँ गंगाजी तेरे इस बार-बार संसारमें जन्म लेने और
मरनेकी सारी मंजूर ही मिटा देंगी ॥ ४० ॥ अज्ञानी पुरुषों-
का समय मरनेतक इसी आशामें बीतता है कि राजाको सेवा
काके और उनसे धन पाकर मैं इस संसारके सुख भोगूँ
॥ ४१ ॥ हे महाशयधी ! जिन स्त्रियोंके नेत्र, वचन तथा वस्त्र-
को अमृतके समान मधुर समझकर तुम उनकी चिन्तामें दुबले

तासां किमङ्ग पिशिताकापुरीषपात्रं गार्त्रं स्मरन्मृग-
दृशां न निराकुलोऽसि ॥ ४२ ॥ आशा नाम नदी मनो-
रथजला तृष्णातरङ्गाकुला रागग्राहवती वितर्कविहगा
धैर्यद्रुमध्वंसिनी । मोहावर्तसु दुस्तरातिगहना मोक्षुह-
विन्तातटी तस्याः पारगता विशुद्धमनसो नन्दन्ति
योगीश्वराः ॥ ४३ ॥ आशा निष्ठा प्रतिष्ठा मम किल
महिलास्तासु सौख्यं कदा स्वाद्या भ्रान्त्या सा विद-
व्यादिह किमपि तथा मध्यमा सा परत्र । आद्या सा
भोभयप्राप्यहह तदपि किं सक्ततां यामि तस्यां या
मौढ्यादप्रगल्भे प्रतिद्विषसमुभे ते कर्द्वीकरोति ॥ ४४ ॥
आसंसारतिष्ठभुवनमिदं विन्वतां तात तादृक्नो
वास्माकं मयमपदवीं श्रोत्रवरमागतो वा । योऽयं घत्ते
विषयकरिणीगाढगूढाभिमानक्षोयस्यान्तःकरणकरिणः
संयमालानलीलाम् ॥ ४५ ॥ आसन्नतामेति मृत्युरा-
युर्याति दिने दिने । आघातं नायमानस्य वध्यस्येव
पदे पदे ॥ ४६ ॥ आस्तामकवटकमिदं वसुधाधिपत्यं

त्रैलोक्यराज्यमपि नैव तृणाय मन्ये । निःशङ्कसुप्तहरि-
लीकुलसंकुलासु चेतः परं चलति शैलवनस्थलीषु
॥ ४७ ॥ आस्यं यस्याः सुधांशुं कलयति नयनाभ्यां
जितः पुंसमूढः कान्त्या विद्युत्कुचाभ्यां तक्षजलको
मिजितेऽस्याः सुधांशुम् । कुष्ठं दुर्गन्धियुक्तं लघुकृमि-
विकृतं पूयमज्जास्त्रवाहिव्याप्तं तन्मलिकाभिर्गतिरिति
वपुषः कुत्सिता नास्ति लोके ॥ ४८ ॥ आहारः फलमू-
लमात्मरचितं शय्या महो वल्कलं संधीताय परिच्छुदः
कुशसमितपुष्पाणि पुत्रा मृगाः । वस्त्राभ्रपदान-
भोगविभवा निर्यन्त्राः शास्त्रिनो मित्राणोत्पथिकं
गृहेषु गृहिणां किं नाम दुःखादते ॥ ४९ ॥ इतः कोषो
गृध्रः प्रकटयति पक्षं मिजमितः सृगाली तृष्णैर्ध्वजित-
वदना घावति पुरः । इतः क्रूरः कामो विचरति पिशा-
चश्चिरमहो रमशानं संसारः क इह पतितः स्थास्यति
सुखम् ॥ ५० ॥ इतो न किञ्चित्परतो न किञ्चिद्यतो यतो
यामि ततो न किञ्चित् । विचार्य पश्यामि जगत्

पदे जाते हो उन्हींके शरीरको मांस, रुधिर और मज्जासे भरा
हुआ समझकर सुप्त शांत क्यों नहीं हो जाते ॥ ४२ ॥ आशा
नामकी जिस नदीमें मनोरथ ही जल है, तृष्णार्थ ही लहरें हैं,
अनुराग ही ग्राह है, अनेक तर्क ही पची हैं, वह धैर्यरूपी पेड़-
को तोड़े डाल रही है । उसकी मोहकपी भँवरके कारण उसे
पार करना कठिन है । वह बहुत गहरी है और उसमें विन्ता-
रूपी बड़े ऊँचे-ऊँचे कमार हैं । जो शुद्ध चित्तवाले योगीश्वर
महात्मा उसे पार कर गए हैं वे ही प्रसन्न रहते हैं ॥ ४३ ॥
आशा, ईश्वरकी विन्ता और प्रतिष्ठा, इन तीनों स्त्रियोंसे मुझे
सुख नहीं मिल पाता क्योंकि अश्रितम स्त्री (प्रतिष्ठा) तो इस
लोकमें सुख देती है, बीचवाकी स्त्री (ईश्वरकी विन्ता) परलोकमें
सुख देती है और पहली (आशा) न यहाँ सुख देती है न वहाँ,
फिर भी ॥ जाने क्यों मैं उसीके फेरमें पड़ा रहता हूँ और वह
ठिठाई करके प्रतिदिन उन दोनों स्त्रीधो-सादी स्त्रियोंको कष्ट
दिया करती है ॥ ४४ ॥ हे भाई ! जबसे संसार चला है तबसे
अमृतकके इस त्रिभुवनपर दृष्टि डालनेसे ऐसा एक भी व्यक्ति न
देखा न सुना जिसने विषय-रूपी हथिनोके आसिगनकी
कदपनामें पागल होनेवाले अपने मन-रूपी हाथीको बाँधनेके
लिये इन्द्रिय-निग्रह रूपी खूँटा बना रखा हो ॥ ४५ ॥
जिस प्रकार फौसी पानेवाले व्यक्तिकी शूल्य पास आती जाती
है और उसकी आयु दिन-दिन खींच होती जाती है वैसी ही

यथा संसारमें सबकी होती है ॥ ४६ ॥ निर्वाण और निर्विषय
पृथ्वीके प्रभुत्वकी बात तो दूर रही, मैं तो त्रिभुवनके राज्यकी
ओ तृणके समान कुछ नहीं समझता, मेरा मन तो निर्भय हुई
हरियियोंसे भरी पहाड़की वन-भूमिमें ही जगता है ॥ ४७ ॥
जिसके सुखने चन्द्रमाको जीत लिया था, जिसकी आँखोंने सब
पुरुषोंको बधमें कर लिया था, जिसके स्तनोंमें कमलकी कक्षि-
योंकी जीत रक्खा था, वसी सुखचन्द्रमें दुर्गन्ध, कीड़े, पीप,
मज्जा और रुधिरसे भरा हुआ कोढ़ फैल रहा है और मधिसर्प
भिनभिना रही हैं । इससे बचकर शरीरकी और कौन-सी दुर्गति
संसारमें हो सकती है ॥ ४८ ॥ जब वनमें बिना परिधमके
ही भोजनके लिये फल और मूख, विघ्नोनेके लिये भूमि,
पहननेके लिये पेड़ोंकी छाल, सन्ध्याके लिये कुशा, लकड़ी और
कूड़, हरिण-जैसे पुत्र, अन्न-वस्त्र, निवास और भोजन वेने-
वाले स्वतंत्र मित्रोंके समान वृष मिल जाते हैं तब गृहस्थोंको
अपने घरोंमें दुःखके अतिरिक्त इनसे अधिक और भिन्न क्या
पता है ! ॥ ४९ ॥ इस संसाररूपी रमशानमें पढ़कर भला
कौन सुख पा सकता है जिसमें एक ओर मोहकपी गीध
अपने पैर फेका रहा है, सामनेले तृष्णा सिंघारिन मुँह बांध
दौड़ी आ रही ॥ और इधर वह क्रूर पिशाच कामदेव
सदा विचरता कर रहा है ॥ ५० ॥ न तो इस लोकमें ही कुछ
है, न परलोकमें ही, यहाँतक कि मैं जहाँ-जहाँ जाता हूँ वहाँ भी

किञ्चित्स्वात्मावधोधाधिकं न किञ्चित् ॥ ५१ ॥ इतो
मृत्युरितो व्याधिरितो विपदितो जरा । चतुरङ्गा
मुदययत्ना हन्ति लोकमनित्यता ॥ ५२ ॥ इदं युगसह-
स्रस्य भविष्यदभवद्दिनम् । तदप्यद्यस्वमापन्नं का कथा
मरणावधेः ॥ ५३ ॥ इन्द्रस्याशुविशूकरस्य च सुखे
दुःखे च नास्त्यन्तरं स्वेच्छाकल्पतया तथाः खलु सुधा
विष्टा च काम्याशनम् । रम्भा चाशुविशूकरा च परम-
प्रेमास्पदं मृत्युतः सन्नासोऽपि समः स्वकर्मगति-
मिश्राभ्योन्यभावः समः ॥ ५४ ॥ इह श्रुत्यागतेनापि
बभ्रुमभ्यस्थितेन वा । मयैवैकेन सोढव्या मर्मच्छेदा-
दिवेदना ॥ ५५ ॥ उच्छ्वासावधयः प्राणाः स चोच्छ्वासः
समीरणः । समीरणाघर्षं नास्ति यत्प्राणिति तदद्भुतम्
॥ ५६ ॥ उत्तानोच्छ्वनमण्डकपाटितोदरसन्निभे ।
कलौदिनि स्त्रीवये सकिरकृमेः कस्य जायते ॥ ५७ ॥
अनुहृष्टातायनगोपुराणि गृहाणि विस्तानि दुरर्जितानि ।
क्षणादधःपातकराणि हन्त चितातिथेरस्य निरर्थकानि

॥ ५८ ॥ उद्घाटितनवद्वारे पञ्चरे विद्यमोऽनिलः ।
यत्तिष्ठति तदाश्चर्यं प्रयाणं विस्मयः कुतः ॥ ५९ ॥
उत्प्रेत संवृतस्त्वस्मिन्नाद्रिंश्च बहिराश्रुतः । आस्ते कृत्वा
शिरः कुक्षां भुग्नृशृशिरोधरः ॥ ६० ॥ एकद्वैः किम-
भावि सुगमिन्थ द्वित्राणि मित्राणि किं व्यापत्तानि
गताश्च किं त्रिचतुरा घोरा महाव्याधयः । सप्ताष्टर-
लमिष्टमेतदपि नञ्चनः क्षणान्पञ्चपान्स्वात्मन्पञ्च रमस्व
तेजसि गते कालेऽथ वा सर्वतः ॥ ६१ ॥ एकसार्धप्रया-
तानां सर्वेषां तत्र गामिनाम् । यद्यंस्त्यारतं यानस्तत्र
का परिदेवना ॥ ६२ ॥ एकेऽथ प्रातरपरे पश्चादन्ये
पुनः परे । सर्वे निःसंज्ञि संसारे यान्ति कः केन
शोच्यते ॥ ६३ ॥ एणात्तोमृदयानुता न कथमप्यास्ते
विचेकोदयाश्रित्यं प्रच्युतिशङ्कया क्षणमपि स्वर्गं न
मोक्षमहे । अप्यन्येषु चिनाशिवस्तुविषयामोघेषु
दृष्ट्वा न मे स्वर्नधाः पुलिने परं हरिपदध्यानं मनो
वाञ्छति ॥ ६४ ॥ एता याः प्रेक्षसे सत्त्वमोक्षप्रवामर-

मुझे कुछ सत्य नहीं दिखाई देता । विचार-पूर्वक देखनेसे यही
जान पड़ता है कि संसार कूटा है और आत्मज्ञानके अतिरिक्त
दूसरी कोई वस्तु सत्य नहीं है ॥ ५१ ॥ एक ओरसे मृत्यु, एक ओर-
से रोग, एक ओरसे विपत्ति, एक ओरसे बुढ़ीती, इन चार समान
बलवाली सेनाओंके द्वारा अनित्यता संसारको नष्ट करती
रहती है ॥ ५२ ॥ जो मानेवाले सहस्रों युगोंका दिन था वह
अब आज आ गया तब मरनेकी अवधिकी बात ही क्या
है ॥ ५३ ॥ इन्द्र और गन्धे सुअरके सुख-दुःखमें अन्तर ही
क्या है ! उन दोनोंको अपनी-अपनी हथिके अनुसार अमृत
और विष ही प्रिय भोजन है । इन्द्रको रम्भा अप्सरासे प्रेम है
तो सुअरको सुअरीसे है । मृत्युका भय दोनोंको है और दोनोंमें
अपने कर्मके अनुसार भेद है ॥ ५४ ॥ मैं चाहे शरणावर पड़ा
होऊँ, चाहे भाई-बन्धुओंके बीचमें बैठा होऊँ किन्तु शरीरके
मर्मस्थान कटनेकी पीड़ा तो मुझ अकेलेकी ही सहनी पड़ेगी
॥ ५५ ॥ उच्छ्वास तक ही प्राण है, और वह उच्छ्वास है
क्या—पवन ! जिससे बढ़कर पंचम कोई दूसरी वस्तु होती
नहीं, अतः प्राणी जो जी रहा है यही आश्चर्य है ॥ ५६ ॥
बढ़कर फूले हुए मैदकके फटे हुए पेटके समान खड़ी योनिमें
कीड़ेकी छोड़कर और कौन अनुराग करेगा ॥ ५७ ॥ ऊँची-ऊँची
किड़कियों और फाटकोंवाले घर, कपड़ेसे संग्रह किया हुआ धन,
मे सव जय भरमें मनुष्यकी गिरा-देते हैं और चितापर पहुँचे हुए

प्राणीके लिये तो वे सब स्वर्ग हैं ही ॥ ५८ ॥ जिस शरीरकी
पिठमें इन्द्रिय-करी नी हार लुके हैं उनमें प्राणीकी पत्नी-
का ठहरना ही आश्चर्य है, निकल जाना नहीं ॥ ५९ ॥ गर्भमें
प्राणों जरायुसे तो बैधा रहता है, बाहर मोल और हविर
आदि धातुओंसे घिरा रहता है, उसका सिर पेटमें मिला
रहता है और पीठ तथा गला मुका रहता है ॥ ६० ॥ संसारमें
स्वास-जसे जो एक-दो पंडित हुए वे भी नहीं रहे, जो गिने-
गिनाए दो तीन मित्र थे वे भी जाते रहे । तीन-चार भयंकर
महाभ्याधियों यदि चली भी गईं तो क्या हुआ ! ऐसी दुर्गति
है मन ! हम सात-आठ जगती बात भी नहीं कहते । इस समय
शरीरकी शाक भी जाती रहा है और समय भी बीत चला
है । इसलिये हम इतना ही चाहते हैं कि तुम केवल कुछ पंच-
कूट पण अपनेमें ही विभ्राम कर लो ॥ ६१ ॥ जहाँ एक साथ
बहुतसे जाली चले जा रहे हैं वहाँ यदि कोई पड़के चला गया तो
दुःखका क्या बात है ॥ ६२ ॥ इस अपार संसारमें कोई पड़के
कोई पाँछे, कोई उसके भाँ पाँछे, इस प्रकार सभी जाते ही रहते हैं
फिर कोई किसीका क्यों चिन्ता करे ॥ ६३ ॥ अब विचार आ
जानेपर मुझे किसी प्रकारकी सुगनचनीकी चाह नहीं रही । जिस
स्वर्गसे सदा गिरनेका भय हो उसे वा छेनेमें भी मुझे प्रसन्नता
नहीं होती । दूसरी नरवर वस्तुओं तथा विषयोंका भी अब मुझे
कोश नहीं रहा । अब तो मेरा मन यही चाहता है कि गंगाजीके

नञ्जलाः । स्थग्न पत्रं प्रतनुर्मे दिनादि ज्ञानि पत्रं वा ॥ ६४ ॥ कद्वन्तं वनोष्णमवगन्ता गन्धादिविह्वलैः
मातृभुक्तैरुपस्पृष्टं सर्वाङ्गाश्चिन्तयेद न ॥ ६५ ॥ कदा
भिक्षाभक्तैः करकलितगङ्गाभूतगलेः शनैरं मे म्यास्य-
त्युपरनसमस्तेन्द्रियसुखम् । कदा ब्रह्माभ्यासस्थिर-
तनुनयारण्यविहगाः पतित्यन्ति स्याद्युभ्रमहताघवः
स्कन्धशिखरि ॥ ६६ ॥ कदा वाराणस्याममरतटिनो-
रोधसि वसन्वसानः कौपीनं शिरसि निदधानोऽञ्जलि-
पुटम् । अये गौरोनाथ त्रिपुरहर शम्भो भिनयन
प्रसीदेत्याक्रोशन्निमिषमिव नेष्यामि दिवसान् ॥ ६७ ॥
कदा वा साकेते विमलसरयूतोरपुलिनं वरन्तं
श्रीरामं जनकतनयालवमणयुनम् । अये राम स्वामि
अनकतनयावल्लभ विभो प्रसीदेत्याक्रोशन्निमिषमिव
नेष्यामि दिवसान् ॥ ६८ ॥ कदा वृन्दारण्ये नवयवन-
निभं मन्दतनयं परेतं गोपीभिः लण्डविमनोह्यभिर-
भितः । गर्मिष्यामस्तोषं नयनविषयीकृत्य कृतिनो वयं

प्रेयोद्वेन्द्वलिनगन्धो वेपथुभुज ॥ ७० ॥ कदा वृन्दा-
रण्ये विमलयवनानारपल्लिने वरन्तं गोविन्दं हलधर-
सुशमादिमहितम् । अये कृष्ण स्वामिन् मधुरमुरली-
वादन विभो प्रसीदेत्याक्रोशन्निमिषमिव नेष्यामि
दिवसान् ॥ ७१ ॥ कस्मात्कोऽहं किमपि न भवान्कोऽ-
यमत्र प्रपञ्चः स्वं स्वं वेद्यं गगनसदृशं पूर्णतत्त्वप्रका-
शम् । आनन्दार्क्यं समरसघने बाह्यमन्निर्विहीने
निखिलगुण्ये पथि विखरतः को विधिः को निषेधः ॥ ७२ ॥
कस्यानियेष्वनिरस्य स्नेहो भविष्यमहति । येन ज्ञान-
सहस्राणि द्रष्टव्यो न पुनः प्रियः ॥ ७३ ॥ कश्चित्कल्प-
यतं कृतस्थितिचयाः कश्चिद्युगानां शतं कश्चिद्वर्षशतं
तथा कतिपयाञ्जन्तुन्दिनामां शतम् । तांस्तान्कर्मभि-
रात्मनः प्रतिदिनं संक्षीयमाणायुषः कालोऽयं कवली-
करोति सकलान्घातः कुतः कीदृशम् ॥ ७४ ॥ कार्या-
कार्यं किमपि सततं नैव कर्तुंत्वमस्ति जायन्मुकस्थिति-
रवगतो दग्धवस्त्रावमासः । एवं वेदे प्रविलयगते

तटपर बैठकर केवल भगवान् के चरखों का ध्यान किया
करें ॥ ६४ ॥ हे विराज कुटुम्बाले ! यह जो कुछ और चरखे
सभी हुई कर्मों को और तुम उकड़की जगाए देल रहे हो वह
हृदय के समान तीन-चार दिनों में अधिक उदरनेवाली नहीं है
॥ ६५ ॥ माता जो कुछ कड़वी, तीली, गरम, ममकीन, खारी
तथा खट्टी वस्तुएँ खाती हैं उससे गर्भ में बैठे हुए प्राणी के सब
अंगों में पीड़ा होती है ॥ ६६ ॥ वह दिन कब होगा जब सब
इन्द्रियों के मुख से उदासीन इस शरीर का पोषण भिषाके अन्न से
और अंगुलि से छिपे हुए गंगाजल से होगा और मल के वर्तन के
अभ्यास में शरीर न हिजले के कारण कम्बे तथा सिर पर
जंगली पत्ती मूले काढ़ के अन्धे के अन्ध में छा-आकर बैठेंगे ॥ ६७ ॥
वह दिन कब आवेगा जब काशी में गंगा के तीर पर लँगोटी जगाए
और हाथ जोड़े मैं हम 'हे गौरीनाथ ! हे त्रिपुरासुर के नाशक !
हे शम्भो ! हे तीन नेत्रवाले ! मुख पर प्रसन्न हो जाओ' यह कहते
हुए एक-एक दिन एक-एक चण्ड के समान बिता देंगे ॥ ६८ ॥
कब मैं अयोध्या में सरथ के निर्मल तट पर सीता और कपमण्डप के
साथ रहूँगे हुए राम के सामने हे राम ! हे स्वामी ! हे सीता-
पते ! हे व्यापक भगवान् ! कहते हुए एक-एक दिन एक-एक
चण्ड के समान बिता देंगे ॥ ६९ ॥ वृन्दावन में आनन्दमग्न
सुन्दरी गोपियों से घिरे हुए तथा नवीन बादल के समान रघुम
वर्णवाले मन्द-मन्दन को अपनी आँखों से देखकर मैं कब सम्पुष्ट

हूँगा तथा अवश्य प्रेम में लड़कवाले कीर कपते हुए अपनी
मनोरथ सफल करूँगा ॥ ७० ॥ मैं कब वृन्दावन में यमुना-
ती के निर्मल तीर पर बकराम तथा सुशमा आदि गोपों के साथ
रहूँगे भगवान् कृष्ण के सामने 'हे कृष्ण ! हे स्वामी ! हे
मधुर मुरली बजानेवाले ! हे व्यापक भगवान् !' कहते हुए
चण्ड के समान दिन बिता देंगे ॥ ७१ ॥ हम कीन हैं, कहाँ से
आए हैं, जाएँ कीन हैं, वह संसार क्या है, ये सब जानने-योग्य
वार्तें आकाश के समान शून्य हैं । बाहर तथा भीतर आनन्द
नाम का प्रकाशकपी, एक और पूर्ण तट 'मल' समान रूप से
व्याप्त है, ऐसा समझकर माया से दूर हटकर खजनेवाले व्यक्ति-
के लिये कैसा कर्तव्य और कैसा अकर्तव्य ॥ ७२ ॥ अनिर-
व्यक्तिका अविश्व वस्तुओं में स्नेह जोड़ना कहाँ तक उचित है
जब कि सदस्यों अन्मोक्त भी फिर अपना प्यारा देखने को न
मिल पावेगा ॥ ७३ ॥ इस संसार में कुछ लोग सौ करपतक, कुछ
सौ वर्षतक और कुछ सौ दिनतक रहते हैं । जिनकी आयु
पूर्वजन्म के कर्म के अनुसार प्रतिदिन चोख होती रहती है उन
सब जीवों को काश अपना कदम बनाता चलता है । इसमें
किसी को कोई चतुराई नहीं चलती ॥ ७४ ॥ कर्तव्य और अकर्तव्य
किसी बात का कर्ता भी आत्मा नहीं है । जीते जी मुक होनेवाले की
स्थिति जले हुए वस्त्र के समान होती है । इस प्रकार जीते-जी
संसार के कंधन से कूटा हुआ जो व्यक्ति मरता जोड़कर अपने

तिष्ठमामो विमुक्तो निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतः को
विधिः को निषेधः ॥ ७५ ॥ कालेन क्षितियादिवर्हि-
षघनव्योमादियुक्तं जगद्भ्रष्टाद्याश्च सुगः प्रयान्ति
विलयं विप्रो विचारान्वितः । पश्यामोऽपि विनश्यतो-
ऽनघरतं लोकाननेकान्मुधा मायामोहमयीं भवप्रण-
यिनीं नास्थां जहोमो घयम् ॥ ७६ ॥ किं कन्दर्पं करं
कदर्थयसि रे कोदण्डटङ्कारितं रे रे कोकिल कोमलैः
कलरवैः किं त्वं मुधा घटयसि । मुखे स्निग्धविदग्ध-
मुग्धमधुरैर्लोलैः कटाक्षैरलं केतश्चञ्चितचन्द्रचूडवर-
णध्यानामृतं वर्तते ॥ ७७ ॥ किं ते धनैर्यन्धुभिरेव वा
किं धारैश्च किं ब्राह्मण यो मरिष्यति । आत्मानम-
म्बिकञ्च शुद्धां प्रविष्टं पितामहास्ते क यताः पिता च
॥ ७८ ॥ कुसौ तु परिचर्चितो परिचितं क्षिरं चन्दनं
कृताः परमुरोजयोः परिसरेऽरविन्दश्रियः । स्तुतिर्न-
स्तिरपि स्मृतिर्यरतनोः कृतैवादरादिर्दं तु निखिलं मया
विरचितं पुनर्नन्दरे ॥ ७९ ॥ कुटुम्बविन्ताकुलितस्य

पुंसः कुलं च शलं च गुणाश्च मये । अथककुम्भे
निहिता इवापः प्रयान्ति वेदेन ममं विनाशम् ॥ ८० ॥
कुम्भा. कल्याणं प्रतिविष्टपमाराग्यमटवि स्रवन्ति
क्षेमं ते पलिनकुशलं भद्रमुपलाः । निशान्नादस्यन्तात्क-
थमपि विनिष्क्रान्तमधुना मनाऽस्माकं दोषामभिलपति
युष्मत्पण्डितिम् ॥ ८१ ॥ कृतस्ते कालकाकेन कुलायः
शिरसि ध्रुवम् । यद्भाति पलिनव्याजात्तत्पुरापस्य
शुक्लमा ॥ ८२ ॥ कृन्वा दोननिपाडनां निजजने यद्वा
यत्वाचिग्रहं नैवालाच्य मरोयत्वारपि चिरादमुष्मिका-
यातनाः । द्रव्योवाः पण्डितश्चिताः क्षतु मया यस्याः
कृते साध्मत्तं नाचाराञ्जलिनापि केवलमहा सेयं कृतार्था
तनुः ॥ ८३ ॥ कृन्वा शलविभाषिकां कतिपयग्रामेषु
धीनाः प्रजा मयन्तां विटत्रदिपतेष्वपहताः सांणभु-
जस्ते किल । विद्वांसाऽपि ययं किल विजयतां सग-
स्थिताव्यापशमाशस्तन्परिचर्यया न गाणतां यैरप
नारायणः ॥ ८४ ॥ कृमया भस्म विष्टा वा निष्टा यस्या-

शरीरमें रहता है उस मायासे दूर विचरनेवाले व्यक्ति के लिये
कैसा कर्तव्य और कैसा अकर्तव्य ॥ ७५ ॥ विचार करनेपर यह
समझमें आता है कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश के
सहित इस सारे संसारको तथा मछली आदि देवताओंको काज
मिगल जाता है । हम बहुतसे लोगोंको निरंतर मरते हुए
भी देखते हैं पर संसारके जालमें कैसानेवाली और मोहमें
बाधनेवाली व्यर्थकी माया-बुद्धिको नहीं छोड़ पाते ॥ ७६ ॥
हे काम ! तुम अपने धनुषकी टंकारसे अपने हाथको क्यों व्यर्थ
कष्ट दे रहे हो । अरे कोयल ! तू इतनी कोयल मीठी कूँसे
क्यों चिल्लाए जा रहा है । हे सुन्दरी ! तुम्हारी मीठी सरस
सुन्दर और रसीली बिलबन सब बेकार है क्योंकि जब मेरा
चित्त शंकरके चरणोंका ध्यान-रूपी समुद्र पीनेमें लग गया
है ॥ ७७ ॥ हे माझण ! जिस धन, बन्धु और स्त्री के लिये
तुम प्राण दिए जाच रहे हो उनसे क्या लाभ है ? इस शरीरमें
व्यास होनेवाले आत्माको ढूँढो और सोचो कि तुम्हारे
पिता और पितामह सब कहाँ चले गए ॥ ७८ ॥
मैंने बहुत दिनोंतक सुन्दरी नवेलीके स्तनपर चन्दनका लेप
किया, उसपर कमलकी माजार्ण पहनाई और आदरसे उसको
स्तुति की, उसके हाथ आँसे और उसे स्मरण किया । वह
सब कुछ करते हुए भी ईश्वरके लिये कुछ नहीं किया ॥ ७९ ॥
परिवारके पावन-पोषणकी चिन्तामें दूबे हुए मनुष्यके कुछ,

स्वभाव तथा सभी गुण करने देनेमें रहते हुए जलके समान
संसारके साथ ही समाप्त हो जाते ॥ ८० ॥ हे मृगा !
तुम्हारा कल्याण ॥ हे जंगल ! तुम्हारा प्रत्येक पक्ष पौरांग रहे ।
हे नदी ! तुम्हारा संगम हो । हे नदीके तट ! तुम्हारा कुशल हो ।
हे पथरी ! तुम सुखी रहो, क्योंकि घुरे कल देनेवाले रजिवासेले
किसी-किसी प्रकार छुटकारा पाकर हमारा मन इस समय आप
लोगोंसे मिचनेके उतावला हो रहा है ॥ ८१ ॥ काजकरी
कौएने निरपय हो तुम्हारे सिरपर अपना घासला बना रखता
है, उसीकी बीट वह तुम्हारे बालोंके उजलेपनके रूपमें दिखाई
पड़ रही है ॥ ८२ ॥ मैंने जिस शरीरके लिये दानोंको दुःख
दिया, अपने सम्बन्धियोंसे जगद्वा किया, परलोकमें जानेवाली
भयानक दुर्गतिपर भी विचार नहीं किया और धनकी राशिका
संग्रह करता रहा, वही शरीर इस समय केवल आलसीभर
तिन्नीके आवलसे ही सन्तुष्ट हो रहा है ॥ ८३ ॥ भोगी लोगोंकी
ठगड़ी-सांवा बातोंमें आकर जो राजा अपनी दान प्रजाको
शुद्धका भय दिखाकर दुःख देते हैं, उनकी सेवामें जगकर हमने
सब समझते हुए भी इस विज्ञाककी रचना, पालन और संहार
करनेवाले भगवान् नारायणकी सेवाकी चिन्ता नहीं की ॥ ८४ ॥
जो शरीर भूमिमें गाढ़ देनेपर कीड़ा, जला देनेपर भस्म और
खिमार तथा गिद्ध आदिसे खा लिये जानेपर मज हो जाता है
उस शरीरको दूसरोंको कष्ट देनेमें लगाना कहाँकी अच्छी

यमोदशी । स कायः परतापाय युज्यतामिति को नयः ॥ ८५ ॥ कृमिभिः सनसर्वाङ्गः सोकुमार्यात्प्रतिक्षणम् । मूर्च्छामाप्नोत्युत्क्रुशो गर्भस्थैः जुघितैर्भृशम् ॥ ८६ ॥ कृशः काणः खञ्जः श्वशुरहितः पुच्छविकलो मलो पूयङ्गलः कृमिकुलशतैराचिततनुः । जुघात्तामां जीर्णः पिठरककपालावृतगलः शुनीमन्वेति श्वा इतमपि निहन्त्येव मदनः ॥ ८७ ॥ केचिद्वदन्ति घनहीनजनो जघन्यः केचिद्वदन्ति गुणहीनजनो जघन्यः । व्यासो ध्वस्त्यस्त्रिलोके विशेषविज्ञा मारायणस्मरणहीनजनो जघन्यः ॥ ८८ ॥ केनाप्यनर्थकचिना कपटं प्रयुक्तमेतत्सुहृत्तनयवन्धुमयं विशिष्यम् । कस्यात्र कः परिजनः स्थज्जमो जना वा स्वप्नेन्द्रजारुसदृशः सलु जीवलोकः ॥ ८९ ॥ केशः काशस्त्यक्विलासः कायः प्रकटित-करभविलासः । चतुर्दशवराटककहपं त्यजति न चेतः काममनल्पम् ॥ ९० ॥ को देशः कानि मित्राणि कः कालः की व्ययागमौ । कश्चाहं का वा मे शक्तिरिति

चिन्त्यं मुहुर्मुहुः ॥ ९१ ॥ कौपीनं शतखण्डजर्जरतरं कन्या पुमस्तादृशी निश्चिन्तं सुखसाध्यभैक्षमशनं शय्या श्मशाने वने । मित्रामित्रसमानता पशुपतेस्त्रि-स्ताथ शून्यालये स्वात्मानन्दमदमोदमुदितो योगी सुखं निवृत्ति ॥ ९२ ॥ क्लेशत्यागकृतेऽपि तेन करणव्यूहेन देहेन च स्थानर्थं वनं जन्तुरर्जयति घेष्मन्तुमियन्तुः कुतः । शस्त्रे शत्रुजयाय नैजगुरुणादत्तैऽथ तेनैव चेत्पुत्रो हन्ति मित्रं वपुः कथय रे तत्रापराधी तु कः ॥ ९३ ॥ कविरकन्याधारी कचिदपि च दिव्याम्बरधरः कचिद्भूमौ शय्या कचिदपि च पर्यङ्कशयनः । कचिद्विद्विज्ञावृत्तिः कचिदपि च मृष्टाशनकविर्म-हार्मा योगही न गणयति दुःखं न च सुखम् ॥ ९४ ॥ कश्चैतद्वक्त्रारविन्दं क्व तदधरमधु कवायतास्ते कटाक्षाः कवालापाः कोमलास्ते क्व च मदनधनुर्भङ्गुरो भूविलासः । इत्थं सद्वाक्कोटौ प्रकटितदशनं मञ्जु-गुह्यसमीरं रागाग्धानामिवोच्चैरपहसति महामोह-

वात है ॥ ८५ ॥ गर्भमें निवास करनेवाले सुकुमार प्राणीको जब गर्भमें रहनेवाले भूले कीड़े दिनरात काटते रहते हैं तब वह बबराकर मूर्च्छित हो जाता है ॥ ८६ ॥ दुबड़ा, काना, खँगाड़ा, बहरा, बिना पैरुका, पात्र, पोष और कीड़ासे भरा हुआ, भूखा, सूखा, गलेमें घड़ेकी सूँहकी कटकाए हुए कुत्ता भी कुत्तियोंके पीछे दौड़ता रहता है । कामकी महिमा तो देखिए कि वह मरे-को भी मारता रहता है ॥ ८७ ॥ कोई कहते हैं बिना घनका मनुष्य व्यर्थ है, कोई कहते हैं बिना गुणके मनुष्य व्यर्थ हैं, पर सब शास्त्रोंका सिद्धांत जाननेवाले व्यासजी कहते हैं कि वास्तवमें व्यर्थ वा नहीं मनुष्य है ओ भगवान्को स्मरण नहीं करता ॥ ८८ ॥ यह सब मित्र, पुत्र और बन्धु आदिका धोका व जाने किसने फोड़ा रक्का है ! भ्रमा यहाँ कौन किसका परि-वार है, कौन सम्बन्धों है और कौन अपना है ! यह संसार तो नटके खेलके समान है ॥ ८९ ॥ जुवापेमें बाक तो कौंसके फूलेके समान उजले हो जाते हैं, शरीरमें कौंसके कोहान-के समान कूबड़ निकल जाता है और भौंलें जली हुई कीड़ीके समान हो जाती हैं फिर भी मनके मनोरथ नहीं छूटते ॥ ९० ॥ मनुष्यकी सदा यह साँचेते रहना चाहिए कि यह कौन देश है, कौन हमारे मित्र हैं, कैसा समय है, हमारी कितनी आय और व्यय है, मैं क्या हूँ और मेरी शक्ति कितनी है ॥ ९१ ॥ जिसकी खँगीटी और गुदकी सैकड़ों छेदोंवाली और आपत्त डुरानी हो,

जिसे बिना परिजमसे मित्र मित्र जाती हो, बिना चिन्ताके भोजन चख जाता हो, वनके श्मशानमें जाकर जो नींद लेता हो, जो शत्रु और मित्र सबको समान समझता हो, जो एकान्तमें भगवान् शंकरका स्मरण करता हो और जो ध्यान-रूपी जालमाका साक्षात्कार करके प्रसन्नचित रहता हो वही योगी सदा सुखी रहता है ॥ ९२ ॥ संसारकी विपत्तियोंसे छुटकारा पानेके लिये ईश्वरने हमें इन्द्रिय तथा शरीर दिया है । यदि प्राणी उनसे पाप झूट्टा करे तो इसमें परमेश्वरका क्या अपराध ! यदि कोई अपने शत्रुपर विषवम्रास करनेके लिये अपने पितासे शस्त्र पाकर उसीसे अपनां हारवा कर ले तो इसमें किसका अपराध है ॥ ९३ ॥ जो योगी महारमा कभी गुदकी और कभी सुन्दर देखनी वस्त्र पहनते हैं, कभी धरतीपर और कभी पर्वतपर सो रहते हैं, कभी भिक्षाके बजसे और कभी स्वादिष्ट भोजनसे पेट भर लेते हैं वे सुख-दुःखकी चिन्ता नहीं करते ॥ ९४ ॥ मरी हुई स्त्रीके जिस टिकड़ीके एक कोनेमें पड़े हुए लुके मुसके दाँतोंमेंसे होकर सरसराता हुआ वायु प्रेसमें अन्धे मनुष्योंके विशाल मोह-रूपी जालकी मानो वह कहकर हँसी उड़ा रहा है कि देखो ! चात्र न वह मुक्त-रूपी कमज है, न अवराष्ट्र है, न तिरकी वितवन है, न कोमल आजाप हैं, न कामके धनुषके समान टेढ़ी भौंलें ही हैं ॥ ९५ ॥ यह प्राणी नटके समान कुछ समय-तक बाकक, कुछ समय-तक कामी वरुण, कुछ समय-तक हरि,

जालं कपालम् ॥ ६५ ॥ क्षणं वालो भूत्वा सखमपि
शुभा कामरसिकः क्षणं वित्तेर्हीनः क्षणमपि च सम्पू-
र्णविभवः जराजीर्णैरङ्गैर्नट इव बलीमण्डिततनुर्नरः
संसारालोके विशति यमघानीजघनिकाम् ॥ ६६ ॥ क्षान्तं
न क्षमया गृहोचितसुखं त्यक्तं न सन्तोषनः सोढा
दुःसहशीतघाततपनक्रोशा न तप्तं तपः ध्यानं विचमह-
र्षिंशं नियमितप्राणैर्न शम्भोः पदं तत्तत्कर्म कृतं यदेव
मुनिभिस्तेस्तैः फलेर्धञ्चितम् ॥ ६७ ॥ क्षिपसि शुक्रं
वृषदंशकरदने मृगमर्पयसि मृगादनवदने । घितरसि
तुरगं महिषघियाणे विदधस्तेतो भोगविताने ॥ ६८ ॥
क्षोणीपर्यटनं धमाय विदुषां वादाय विद्याजिंता मान-
स्वसन्नेहतेवे परिचित्तास्ते ते धराधीश्वराः । यिस्ले-
षाय सरोजसुन्दरदशमाक्ष्ये कृता दृष्टयः कुक्षानेन
मया प्रयागनगरे नाराधि नारायणः ॥ ६९ ॥ गङ्गातीरे
हिमगिरिशिलायक्षपद्यासनस्य ब्रह्महानाभ्यसनविधिना
योगनिद्रां गतस्य । किं तैर्भाष्यं मम सुदिवसैरेव ते

कुछ समयतक धनी, कुछ समयतक कुदायेसे शिथिल चट्टवाला,
कुछ समयतक सिकुड़े हुए चमड़ेसे पुका शरीरवाला बनकर इस
संसाररूपी रंगमंचपर खेल खेलता हुआ यमपुरी-रूपी परदेके
भीतर बसा जाता है ॥ ६५ ॥ मैंने चमा तो किया किन्तु सहन-
शीलतापूर्वक नहीं, सरके सुख तो छोड़े, किन्तु सन्तोषपूर्वक
नहीं, असह्य शीत वायु और धूपका दुःख तो सहा किन्तु तप
नहीं किया, रसदिन जी-जानसे धनकी चिन्ता तो करता रहा
किन्तु संकरके चरणोंका ध्यान नहीं किया । इस प्रकार मैंने
वे ही कर्म किए जो मुनि लोग करते हैं किन्तु उनके फलसे
सदा दूर रहा ॥ ६७ ॥ भोगोंमें मन लगाना वैसा
ही है जैसा चिल्लीके दोंनोंमें सुगन्ध डाल देना, सिंदूरके मुँहमें
हरिय पट्टीका देना और जैलेकी सींगमें घोड़ेको कैसा देना
॥ ६८ ॥ मैंने केवल धकनेके लिये सारी धरतीका चक्कर
लगाया, विद्वानोंसे विवाद करनेके लिये ही विद्या पढ़ी, दुश्मनों-
का सम्मान लष्ट करनेके लिये राजाओंका साथ किया, केवल
वियोगके दुःखका अनुभव करनेके लिये कमल-नयनी
नवेखियोंपर दृष्टि डाली पर अज्ञापमें पड़कर प्रयागमें नारा-
यणकी सेवा न की ॥ ६९ ॥ क्या मुझे वेसे सुन्दर दिन
मिल पायेंगे जब गंगाके तटपर हिमालयकी किसी चट्टानपर
पद्मासन लगाकर ब्रह्मज्ञानके अभ्यासमें योगनिद्रा लेनेवाले
मेरे शरीरको धूँदे हरिय निर्भय होकर अपने सींगोंसे सुन्नकार्यमें

निर्विशङ्काः कण्डूयन्ते जरटहरिणाः शृङ्गमरुं मदीये ॥ १०० ॥
गङ्गोत्तुङ्गनरङ्गरिङ्गलघून्सर्पन्मरुच्छानलान्गुञ्जपट्प-
दमञ्जुवञ्जुलसन्कुञ्जापकटाङ्गमुद्रा । अध्यास्य प्रणि-
धाय मानसमहो शम्भोः पदाम्भोरुहे धन्याः प्राप्य परं
पदं प्रतिदिनं नन्दन्ति यागं विना ॥ १०१ ॥ गतः
कामकथोन्मादो गलितो याचनञ्जरः । गतो मोहव्युता
तृष्णा कृतं पुण्याश्रमे मनः ॥ १०२ ॥ गतः कालो
यत्र द्विवरणपशुनां क्षितिभुजां पुरः स्थसतीत्युपस्था
विषयसुखमास्वादितमभूत् । इदानीमस्माकं तृणमिव
समस्तं कलयतामपेक्षा भिक्षायामपि किमपि चेतस्त्र-
पयति ॥ १०३ ॥ गतः कालो यत्र प्रणयिनि मयि
प्रेमकुटिलः कटाक्षः कालिन्दोलघुलहरिवृत्तिः प्रभ-
वति । इदानीमस्माकं जरटकमटोपृष्टकठिना मनोवृत्ति-
स्तर्किक व्यसनिनि मुधैव ग्लपयसि ॥ १०४ ॥ गतसा-
रेऽत्र संसारे सुखभ्रान्तिः शरीरिणाम् । लालापानमि-
याकृष्टे यालानां स्तम्भविभ्रमः ॥ १०५ ॥ गतास्तात-

॥ १०० ॥ वे लोग धन्य हैं जो गंगाकी ऊँची चट्टानोंसे मिल-
कर उठे हुए वायुसे शीतल पानी हुई, गुंजार करनेवाले भीरोंसे
सुन्दर लगनेवाली और घेनसे घिरी हुई आदियोंके पासवाजी
भूमिमें प्रसन्नतासे बैठकर भगवान् संकरके चरणकमलमें मन
लगाकर यागकी क्रियाके विना ही प्रतिदिन परम-पदका आनन्द
लेते हैं ॥ १०१ ॥ संवासमें मन लगा लेनेसे कामका चर्चाका
पागलपन दूर हो जाता है, यौवनका ज्वर शान्त हो जाता है
और अज्ञान तथा लोभ जाता रहता है ॥ १०२ ॥ वह समय
बोन मया जब मैं दो पिरवाले पशु राजाओंके सामने 'आपका
कल्याण हो' कहकर विषयोंके सुखका स्वाद लिया करता था ।
अब तो मैं सब वस्तुओंको हतना तृणके समान समझना हूँ कि
भिक्षाकी आवश्यकता देखकर भी अब मुझे जान लगती है ॥ १०३ ॥
वे दिन जाते रहे जब सुक प्रेमोपर यमुनाकी नन्हीं-नन्हीं चट्टानों-
के समान चंचल तथा प्रेमपूर्ण कटाक्षका मभाव पड़ा करता था ।
अब तो मेरे मनकी वृत्ति पुराने कतुएकी पोडके समान बची
कधी पड़ गई है । इसलिये हे चंचल मनोवृत्ति ! अब
तु मुझे क्यों सताए जाऊ रहो है ॥ १०४ ॥ जैसे बरचेकी
अपने आंगूठेके साथ अपनी ही छार पीते हुए दूधका भ्रम हो
जाता है वैसे ही इस संसारके प्राणियोंकी भोगमें सुखका भ्रम
होने लगता है ॥ १०५ ॥ पित्त, भाई आदिके सुखसे निकली
हुई मीठी-मीठी बातें सुननेका समय बीत गया और धनके भोगके

ध्यातृपमुखसुखपीयूषमधुराः पुरा लक्ष्मीसौख्यदयसनस-
रसारस्तेऽपि दिवसाः । अद्ः शान्तं स्वान्तं सपदि
यदि निर्वेदपदवीं भजन्त्यभ्यासोऽयं जनयति सुखं
भावविमुखम् ॥ १०६ ॥ गतेनापि न सम्यग्यो न सुखेन
भविष्यता । वर्तमानं गुणातीतं सकृतिः कस्य केन वा
॥ १०७ ॥ गन्धर्वनगराकारः संसारः सुखभङ्गुरः ।
मनसो वासनैवेयमुभयोर्भेदसाधनम् ॥ १०८ ॥ गलि-
तानीन्द्रलक्षाणि युद्ध्युदानीय चारिणि । मां जीवितनि-
बद्धाशं विहसिन्धन्ति साधयः ॥ १०९ ॥ चमेखण्डं
द्विधाभिन्नमपानाद्धारधूपितम् । ये रमन्ते भरास्तत्र
कमितुल्याः कथं न ते ॥ ११० ॥ खलति गलितधैर्यः
को न मोक्षान्तरालात्कुपलयदलनीला यत्पुरा वाक्क्र-
ताहो । इममुपशमरूपं मार्गमाश्रयन्ती खलति
कुपलयाद्या भूलता सपिण्ठाव ॥ १११ ॥ चित्त-
भूषितभूमस्तभूपालकापासनायासनायासनाभाभ्रमैः ।
साधुता सा धुता साधिता साधिता किं तथा

आहंकारसे भरे हुए दिन भी जाते रहे । इस समय यदि यह
शान्तिपूर्ण चित्त वैराग्य धारण कर लेता तो संसारके विषयोंको
छोड़कर यहाँ अभ्यास सुख देना ॥ १०६ ॥ जब न ता बीते हुए और
जानेवाले सुखमें ही कोई सगन्ध है और न वर्तमान सुख
ही देरतक ठहरनेवाला है तब किसके साथ सगन्ध ही किसका है
॥ १०७ ॥ यह संसार गन्धर्वनगरके समान खणभङ्गुर है । इसमें
मनका वासनाके कारण ही ईश्वर तथा जगत्में भेद जान पड़ता
है ॥ १०८ ॥ जब जबके बुलबुलेके समान हृत्त जगत्में जाकी
हृद्द गल गप मुझे जानेका आवासे दैवे देलकर शमी
खोग भवश्य मेरी हँसी उड़ायेगे ॥ १०९ ॥ अपान वायुने
मिले हुए फटे हुए चमेखेके दुखड़े (यानि) में जा खोग सुख
मानते हैं उन्हें काढ़ाक समान ही क्या न मान लिया जाय
॥ ११० ॥ माछ पाया हुआ भा ऐसा कीन पुष्ट है जो अपने
सामने कमलनयनाका गालकमरका पंखुइयाके समान बाँकी
भीड़ोंका नागिनका भीति शान्तिके मानको बसता हुई सी मटकते
हुए देखकर धारज न खा दे आर चञ्चल न हो जाय ॥ १११ ॥
काम तथा धनके अभिमानसे मतवाले राजाओंके सेनाकी
हृत्त, परिश्रम तथा धनक प्रकारके भ्रमांस में न सञ्जनताका
दूर भगाकर मानसिक रागोंका संग्रह किया पर अब उनकी
चिन्तासे क्या लाभ ? अब तो निश्चित होकर भगवान्का
चिन्तन करें ॥ ११२ ॥ मैंने बहुत दिनोंतक कीका तो ध्यान

चिन्तया चिन्तयामः शिवम् ॥ ११२ ॥ चिरं ध्याता
रामा क्षणमपि न रामप्रतिकृतिः परं पीतं रागाधर-
मधु न रामङ्घ्रिसलिलम् । नना कृष्टा रामा यदरवि
न रामाय विनतिगतं मे जन्माऽयं न वशरयजन्मा
परिगतः ॥ ११३ ॥ चेतोहरा युवतयः स्वजनोऽनुकूलः
सद्वान्धवाः प्रणतिगर्भगिरिश्च भृत्याः । गर्जन्ति
दन्तिनिबद्धास्तरलास्तुरङ्गाः संमासने नयनयीर्नहि
किञ्चिदस्ति ॥ ११४ ॥ जडास्तपोभिः शमयन्ति देहं
पुष्पा मनश्चापि विकारहेतुम् । आ मुकमखं दशतीति
कोपात्तेसारमुद्दिश्य दिनस्ति सिंहः ॥ ११५ ॥ जननो-
जनकावस्यमियरमणोऽभूतिभृङ्गलाजालम् । विहलवद
सोऽपि सुकृती विहरति गजधम्महामत्तः ॥ ११६ ॥
अनेषु मध्ये जनवद्विच्छेदते वने मृगैश्चापि समं मृगा-
यते । न भोगमप्यर्थयते न वर्जयत्यवाप्ततत्त्वस्य न
दुर्गदः क्वचित् ॥ ११७ ॥ जन्मपल्लवलमत्स्यानां चित्त-
कर्मचारिणाम् । पुंसां दुर्वासना रज्जुर्नारी बडिश्चपि-

किंवा पर क्षण भर भी रामकी मूर्तिका ध्यान नहीं किया; कीके
सबराहतका पान तो किया पर रामके बरखोदकका पान नहीं
किया; कड़ी हुई नायिकाके सामने तो सिर कुकाया पर रामके
सामने कभी सिर नहीं कुकाया । इस प्रकार मेरा यह सुन्दर जन्म
बकारध होकर बीत गया पर इतरयके पुत्र रामसे भेंट न
हो पाई ॥ ११३ ॥ मनको मोहनेवाली गलेखिर्पी, हिलैपी
सगन्धी, प्रेममरी बालें करनेवाले सेवक, इतरपर कियाकुने-
वाले हाथी और चंचल पादे, वे सब चोख मुँद जानेपर कोई
साम नहीं देने ॥ ११४ ॥ मूर्ख लोग तपस्यासे देहको
देते ही गलाने हैं जैसे कुत्ता अपने ऊपर फेंके हुए भोजको ही
कोउसे खबने लगता है और बुद्धिमान् लोग विकारके
कारण मनको बैसे ही सुलाते हैं । जैसे सिंह शोध करके
बरख छोड़नेवालेपर ही आक्रमण कर बैठता है ॥ ११५ ॥
माता-पिता-सन्तान, प्यारी स्त्री आदि साँकियोंको तोष-
कर वह पुत्रपाया अनुत्प हाथोंकी भीति मस्त होकर विचरक
कर रहा है ॥ ११६ ॥ कोई व्यक्ति मनुष्योंके समीप मनुष्यों
जैसा आचरण करना है और पशुओंके साथ पशुओं जैसा ।
न वह भोग चाहता है, न खोजता है । यथायं सत्त्व प्राप्त
किं ह्यैव्यक्तिका कही दुरामह नहीं रह जाता ॥ ११७ ॥ जन्मरूपी
गट्टेके चित्तरूपी कीचड़में पड़े पुरुषरूपी मलखियोंकी फैसलेके
जियो दुर्वासनारूपी रस्तीमें स्त्रीरूपी मोस-पियड़ जगा हुआ

लिङ्गा ॥ ११८ ॥ जन्मान्तरसहस्राणि विषोगः सङ्गमः
क्षणम् । तथापि निर्घृणं चेतः प्रियसङ्गममिच्छति ॥ ११९ ॥
जन्मैश्च व्यर्थतां नीतं भवभोगप्रलोभिना । काचमूलेन
विक्रीतो हन्त चिन्तामणिर्मया ॥ १२० ॥ जरासुखाले-
पसिते शरीरान्तःपुरान्तरे ! अशक्तिरतिरापद्य निष्ठ-
न्ति सुखमङ्गनाः ॥ १२१ ॥ जातोऽहं जनको ममैव
जननी क्षेत्रं कलत्रं कलं पुत्रा मित्रमरातयो यस्तु यत्नं
विद्या सुहृद्वाग्धवाः । चित्तस्पन्दितरूपनामनुभव-
स्विद्वानविद्यामयीं मित्रामेत्य विधूर्णितां यदुविद्या-
स्त्वप्नानिमान्पश्यति ॥ १२२ ॥ जानन्त्येके प्रगुणित-
धियो घर्मकर्मविशाखं जानन्त्येके निपुणमतया देव-
सिद्धान्तरजम् । जानन्त्येतत्सकलमपरे तत्र जानन्ति
केचित् लीलारघ्वभिभूयनजयो जीयते येन मृत्युः
॥ १२३ ॥ जिह्मे लोचननासिके श्रवणहे स्वक्वापि
नो धार्यते सर्वेभ्योऽस्तु नमः कृताञ्जलिर्हं सप्रक्षयं
प्रार्थये । युष्माकं यदि सम्मतं तदधुना नात्मानमि-

च्छाम्यदं हरेतुं भूमिभुजां निकारदहनज्वालाकराले
गृहे ॥ १२४ ॥ तडिन्मालालोलं प्रतिदिवसदत्तान्धत-
मसं भवे सांख्यं ह्रिन्वा शमसुखमुपादेयमनघम् । इति
व्यकोद्धारं चतुलचक्रसः शून्यमनसो वयं ध्यानबोद्धा ।
शुक इव पट्टामः परममी ॥ १२५ ॥ तत्तरलतृणैर्न
किमिद्यास्मिन्धरानले । मया न कृतमनेन पश्चात्तापा-
मिवृद्धये ॥ १२६ ॥ तावदेष कृतिनामपि स्फुरत्येष
निर्मलधिवेकदीपकः । यावदेष न कुरङ्गचक्षुषां ताड्यते
चतुललोचनाञ्जलैः ॥ १२७ ॥ तृषा शुष्यस्यास्ये पियति
सखिलं स्वादु सुरभि जुधात्तः सञ्जालीः कयलयति
मांसाज्यकलितान् । प्रसीसे कामाग्नां सुदृढतरमाश्लि-
ष्यति यधुं प्रतीकारं व्याधेः सुखमिति विपर्यस्यति
जनः ॥ १२८ ॥ ते तीक्ष्णदुर्जननिकारशरैर्न भिन्ना
धीरास्त एव शमसीक्यभुजस्त एव । सीमन्तिनीभुज-
लतागहनं व्युदस्य येऽवस्थिताः शमफलेषु तपोवनेषु
॥ १२९ ॥ तैस्तैः कस्तूरिकाद्यैः स्तयकितमपि यद्याति

है ॥ ११८ ॥ यद्यपि विषोग सहस्रों जन्मोंका है और मित्रन
कण भरका, तथापि यह दुष्ट चित्त प्रियका मित्रन हो चाहता
है ॥ ११९ ॥ संसारके भोगोंके जोभमें पड़कर मैंने अपना जन्म
इस प्रकार व्यर्थ कर डाला मानो कौनके मोक्षपर चिन्तामणि
रत्न ही पैस डाला हो ॥ १२० ॥ बुढाये-रूपी धूनेसे पुते हुए
शरीररूपी अन्तःपुरमें निर्धकता, पीडा और विपत्ति ये मित्रों
सुखपूर्वक निवास करती हैं ॥ १२१ ॥ मैं उत्पन्न हुआ हूँ,
वे मेरे पिता हैं, यह मेरी माँ है, यह मेरा खेत है, यह मेरी
स्त्री है, ये मेरे पुत्र हैं, यह मेरा मित्र है, ये मेरे शत्रु हैं, यह
मेरा धन है, यह मेरा बल है, यह मेरी विद्या है और ये मेरे
बन्धु-वाग्धव हैं, इस प्रकारकी कल्पनाओंमें डूबा हुआ ज्ञानवान्
पुरुष भी अज्ञानरूपी निद्रामें पड़ा हुआ बराबर अनेक प्रकार-
के सपने देखता रहता है ॥ १२२ ॥ कुछ अत्यधिक सुदिमान्
ऐसे हैं जो धर्म-कर्म आदिके शास्त्रकी भली प्रकार जानते हैं,
कुछ ऐसे हैं जो दैवी सिद्धान्तों (ज्योतिष) की भलीभाँति
जानते हैं और कुछ ऐसे लोग हैं जो सब कुछ एक साथ
जानते हैं किन्तु ने यह सब जानकर भी कुछ नहीं जानते
क्योंकि खेज-खेजमें ही सोनें लोक जीत लेनेवाली स्यु क्लिप्त
रुपायसे जीती जा सकता है यह सो वे जानते ही नहीं ॥ १२३ ॥
हे जीम ! हे कौंस ! हे नाक ! हे कान ! हे स्वाख ! हम तुम्हें
रोक नहीं रहे हैं । तुम्हें हमारा नमस्कार है । हम हाथ जोड़कर

तुमसे दिनपर्वक प्रार्थना कर रहे हैं कि यदि तुम्हारी भी सम्मति
हो तो अब हम तिरस्कारकी आगिनी पवाडासे भरे हुए
राजाओंके चरोंमें अपनी आहुति नहीं देना चाहते ॥ १२४ ॥
बितर्कोंके समान चक्रवर्ती प्रतिदिन अंधकारमें डालनेवाले
इस संसारका सुख छोड़कर निर्दोष शान्ति-रूपी सुखकी खोज
करनी चाहिए, यह हम लोग उँचे स्तरसे निर्जगत होकर तुमसे
समान कहते तो रहते हैं पर सब ओरसे अपना मन नहीं
छीकते ॥ १२५ ॥ भयंकर नृप्यामें पड़कर मैंने मूर्खतावश
इस पृथ्वीपर अपना पड़तावा बड़ानेके छिये क्या-क्या नहीं
किया ॥ १२६ ॥ बड़े-बड़े पुण्यारमाओंका निर्मल ज्ञान-दीपक
तभीतक टिमटिमाता है जबतक उसे मृगानयनी मधेजियोंके
चञ्चल मयनी-रूपी आँवककी भड़ोर नहीं लगती ॥ १२७ ॥
प्याससे मुँह सूखनेपर लोग स्वादिष्ट और सुगन्धित जल पीते
हैं, भूख लगनेपर मांस और घीसे मिखा भत खाते हैं,
कामाग्नि भड़कनेपर कसकर स्त्रीको छातीसे लगाते हैं, इस
प्रकार रोग बुर करमेकी औपधिही ही प्राणी सुख समझे बैठे
हैं, पर सदा सुख तो तब समझना चाहिए जब रोग हो न
उत्पन्न हो ॥ १२८ ॥ चिरोंकी भुजा-रूपी लताका वन छोड़-
कर जो लोग शान्ति देनेवाले तपोवनमें जा पहुँचते हैं वे ही
दुर्जनोंके तिरस्कार-रूपी पाणोंसे नहीं बिंध पाते, वे ही धीरे हैं
और वे ही शान्तिके सुखका अनुभव करते हैं ॥ १२९ ॥ अरे

दोर्गन्ध्यमारात् दृष्ट्वा यस्येह निष्ठा कमिकुलमथवा
भूरि भस्माथवापि । कृत्वा धर्मस्य वाधामनुद्विजसमरे
वञ्चनात्किम्परेयामात्मन् कोऽयं विमोहस्तव तदपि
वपुः पालयते यत्त्वयेत्यम् ॥ १३० ॥ त्यक्त्वा सङ्गमपार-
पर्वतगुहागर्भं रहः स्वीयतां रे रे वित्त कुटुम्बपालन-
विधां को वाऽधिकारस्तव । यस्यैते पुरतः प्रसारित-
दशः प्राणप्रियाः पश्यतो नीयन्ते यमकिङ्करेः करतला-
दाक्षिण्य पुत्रादयः ॥ १३१ ॥ अथ्यन्तसिद्धाञ्जननिर्म-
लाहस्तपोधनैरप्यनवेष्टितं यत् । अवेष्टते धाम तदेव
काश्यामात्यग्निकेनास्तिनिमीलनेन ॥ १३२ ॥ त्वङ्मां-
सरुधिरस्त्रायुमेक्षोमज्जास्थिसंहती । घिरमूषपूये रमतां
हृषीणां कियदध्नरम् ॥ १३३ ॥ दधति तावदमी
विषयाः सुखं स्फुरति यावदियं हृदि मूढता । मनसि
तत्त्वविदां तु विवेकके क्व विषयाः क्व सुखं क्व
परिग्रहाः ॥ १३४ ॥ वृन्तेः प्रस्थितमग्रतस्तदनु भोः

शौक्यं धृतं मूर्धजैः कर्णाभ्यामपि वाञ्छितासरचना
कष्टात्समाकर्ष्यते । नेत्राभ्यामपि चापलं युवतिषु
त्यक्तं गतं यौवमं सार्धंऽस्मिन्मलिते कथं पुनरहं
यातास्मि तच्छिन्तये ॥ १३५ ॥ दाराः परिभवकारा
बन्धुजनो बन्धनं विषं विषयाः । कोऽयं जनस्य मोक्षो
ये रिपवस्तेषु सुहृदशशा ॥ १३६ ॥ दिनमेकं शशो पूर्णः
क्षीणस्तु बहुवासरान् । सुखाद्दुःखं सुराणामप्यधिकं
का कथा नृणाम् ॥ १३७ ॥ दिवसरजनीकूलच्छेदैः
पतद्भिरनारतं वहति निकटे कालक्षीतः समस्तभया-
वहम् । इह हि पततां नास्त्यालम्बो न चापि निवर्तनं
तद्दिह महतां कोऽयं मोक्षो यदेव मदायितः ॥ १३८ ॥
दीनोद्धरणसमुचितैरनुपचितैर्षाञ्जितोऽसि यदि विभवैः
खलितं वनाय तपसे स रिपुर्वस्त्वां निवारयति ॥ १३९ ॥
दीप्तोभयाग्रवातारिदाहदहनकोटवत् । जम्भमृत्पुल-
माश्लिष्टे शरीरे वत सीदति ॥ १४० ॥ दृष्ट्वा चेद्यं पर-

आत्मा ! कान्ग्री आदि न जाने कितनी सुगन्धित वस्तुओंसे
भली-भाँति सुपड़े जानेपर भी शरीरसे दुर्गन्ध आते देखकर
और अन्तमें हममें कोई पड़ना वा राख होना मानकर
भी भला धर्मको कुछ न समझकर दूसरोंको ठगनेसे तुम्हें क्या
लाभ है ? अरे ! यह तेरा कैसा मोह है कि तू अभी तक अपने
शरीरको पुष्ट करनेमें लगा है ! ॥ १३० ॥ अरे किस ! संसार-
से बाह्य हटाकर पर्वतकी गुफाके भीतर एकान्तमें जा बस
क्योंकि तब तबके दून सामने आलें पीछाकर देखती हुई
प्राण-पारियों तथा पुत्र आदिको तेरे हाथमें छीन ले जाते
हैं तब भला कुटुम्बके पालन-पोषण करनेका तुम्हें अधिकार ही
क्या है ? ॥ १३१ ॥ वेदाध्ययमें बताने हुए सिद्धान्तका
अज्ञान लगा लेनेसे जिनके ज्ञानके नेत्र खुल गए हैं वे
तपस्वी भी जिन मनुष्यों को नहीं देख पाते उस मनुष्य-सेतक
प्राणी केवल काशीमें प्राण देने भरसे देख लेता
है ॥ १३२ ॥ खाज, मांस, रुधिर, मर्से, मज्जा, हड्डी,
मज्ज, मूत्र, और पोषण भरे हुए शरीरमें सुत्र मानने-
वालोंमें और कोहोंमें अन्तर ही क्या है ॥ १३३ ॥ तब तक
अन्यकरणमें समीपवर्ती प्रभाव रहता है तभीतक प्राणियोंकी
विषयोंमें मुख्यका भाव होना है पर जिनके मनमें सत्य और
मित्रताका ज्ञान हो जाता है उन ज्ञानियोंकी विषयोंका सुख
और संग्रह सब व्यर्थ जान पड़ते हैं ॥ १३४ ॥ दाँत तो पड़ने
ही गिर गए, याज्ञोंमें उजड़ापन आ गया, कान भी ऐसे हो

गए कि आमोद-प्रमोदकी बात नहीं सुन पाते, आँखोंमें भी
अपनी चंचलता झेद हो, पौषण भी जाता रहा । अब सब
शक्तियोंके चले जानेपर तुम्हें केवल पड़ी चिन्ता रह गई है
कि मैं किस प्रकार जाऊँ ॥ १३५ ॥ स्त्री तिरस्कारका कारण है,
भाई-बन्धु बन्धन हैं, संसारके सब भोग विपके समान हैं फिर
भी लोगोंका अज्ञान तो देखो कि वे शत्रुओंसे ही मित्रपनेकी
आशा रखते हैं ॥ १३६ ॥ अग्रमा केवल पूर्णिमाको ही
पूज्य रहता है, शेष चौदह दिन लोप्य रहता है । इस प्रकार जब
देवताओंतकको सुखको अपेक्षा दुःख ही अधिक भोगना
पड़ना है तब मनुष्योंकी तो गिनती ही क्या है ॥ १३७ ॥ इस
जीवनमें पास ही भयंकर काखरूपी प्रवाह बह रहा है, पास-
पास दिन और रात कपी करारें दूध-दूधकर गिर रहे हैं, इसमें
पड़नेवालोंको न कोई सहारा मित्र पाता न कोई छोट ही
पाता है, फिर भी बुद्धिमान लोगोंमें यह अहंकार भरा हुआ
अज्ञान आ कैसे पहुँचा ॥ १३८ ॥ दरिद्रता दूर करनेमें समर्थ
श्रोत्रे बहुत बनने यदि तुम्हें ठग लिया हो तो तपस्या करनेके
जिसे वन चले जाओ । जो तुम्हें रोके वही तुम्हारा शत्रु है ॥ १३९ ॥
जन्म और मृत्युसे मुक्त इस शरीरमें प्राणी कैसे ही कष्ट पा रहा
है प्रिये दोनों सिरोंसे जजती हुई अरंडका खकड़ीकी पालमें
पड़ा हुआ कीड़ा कष्ट पाता है ॥ १४० ॥ जानने-योग्य आत्म-
ज्ञान-रूपी परम पदको देखकर और सबके भीतर और बाहर
केवल अपने एक आत्माकी सत्ता मानकर, निज स्वयं-प्रकाश-

मथ पदं स्वात्मबोधस्वरूपं बुद्ध्यात्मानं सकलव्यग्रामो-
कमन्तर्बहिःस्थम् । भूत्वा नित्यं सदुदिततया स्वप्रका-
शस्वरूपं निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतः को विधिः को
निषेधः ॥ १४१ ॥ दृष्ट्वैव विकृतं कार्यं वायुस्पर्शविचित्र-
तम् । ये तु निर्व्याजभासक्तास्तेभ्योऽपि विधिमो वयम्
॥ १४२ ॥ देशे देशे दुराशाकवलितहृदयो निष्कृपाणां
नृपाणां धावं धावं पुरस्तादतिक्रमतिरहं जन्म सम्पा-
दयामि । आघायाघाय राधाधय तथ चरणाभोज-
मस्तः समाघावन्येऽरयेतिपुण्ये पुलकितवपुषो वास-
राप्ताहयन्ति ॥ १४३ ॥ दैन्यं कश्चित्कवचन मन्मथजा
विकाराः कुप्राप्यनेकविधयन्धुजनमपञ्चः । क्वापि
प्रभुत्वघनकल्पितमोक्षरस्यमित्येकवैकृतमिदं जगदा-
विभ्रमति ॥ १४४ ॥ धनं तावज्ज्ञेयं कथमपि तथाप्यस्य
मित्यतं विनाशोऽस्माभे वा तत्र सति विनाशोऽप्युभयथा ।
अनुत्पादः श्रेयान्किमु कथय तस्याद्य विलयो विनाशो
लभ्यस्य व्ययपतितरां न स्मनुद्यः ॥ १४५ ॥ धनवा-

निनि हि मदो मे किं गतविभवो विषादमुपुयाति ।
करनिहतकन्दुकममाः यानोत्पाना मनुप्याणाम्
॥ १४६ ॥ धन्यानां गिरिकन्दरे निवसनां उगोनिः परं
ध्यायनामानन्दाश्रुजलं पिबन्ति शकुना निःशङ्कमक्रे-
शयाः । अस्माकं तु मनोरथोपरचित्तमासादयापात-
कांडाकाननकेलिकीतु ह्युपामायुः परं ज्ञायते ॥ १४७ ॥
धर्मं प्रसङ्गादपि नाचरन्ति पापं प्रयत्नेन समाचरन्ति ।
आधर्म्यमेतद्धि मनुष्यलोकेऽमृतं परित्यज्य विपं
पिबन्ति ॥ १४८ ॥ धर्मात्मजेन चरणाधिह वन्दितो मे
भोमेन सार्धमिह सकृद्विधाः कथाश्च । अत्रार्जुनश्च
यमलो व सहानुयाताः स्थानानि तानि खलु सन्ति
न ते मनुष्याः ॥ १४९ ॥ धावन्तः प्रतिघासरं दिशि
दिशि प्रप्याशया सम्यग् दृष्ट्वा कालवशेन हन्त पतितं
कस्यापि दैवद्रुमम् । आर्धश्रावमवश्यापदसितं सर्वत्र
भग्नोद्यमा जीवामः परमार्थशून्यहृदयास्तृप्ता मनोमा-
दकैः ॥ १५० ॥ धावित्वा सुसमाहितेन मनसा दूरा-

कर होकर और मागसे दूर दूरकर खजनेवाले व्यक्ति के लिये
कैसा कर्तव्य और कैसा अकर्तव्य ॥ १४१ ॥ शरीर के जिस विकृत
भाग को पवन भी नहीं छू जाता उसे देखकर भी जो उसपर
लहू हुआ रहते हैं उन्हें देखकर ही हमें भय लगने लगता है
॥ १४२ ॥ हे राधापते ! मैं तो अपने हृदय को दुराशामें बाज-
कर देश-विदेश दौड़ता हुआ निर्दयी राजाओं के सामने हाथ
फैला-फैलाकर अपना अन्म बिताता हूँ और उधर वे लोग दिसने
भाग्यवान् हैं कि अपने मनमें तुम्हारे चरण कमल का ध्याम
करते हुए प्रसन्नतासे रोमांचित होकर अत्यन्त पवित्र वनमें
अपने दिन बिताते हैं ॥ १४३ ॥ इस नरवर संसारमें कहीं दीनता,
कहीं कामचेंदा, कहीं अनेक प्रकारसे बन्धु-बान्धवों का कमेला,
कहीं प्रभुता और कहीं धनका मय, यही सब दिखाई देता
है ॥ १४४ ॥ अनेक प्रकारके कष्टसे धन मिलता भी है
पर उसके भी नाश होनेपर या मिलनेपर उसका वियोग
निश्चित है ही, ऐसी दशामें बत्ताहू धनका संग्रह न
करना अच्छा या उसका नाश अच्छा है ? मेरी समझमें
तो संग्रह किए हुए धनका नाश हो जानेपर जितना दुःख होता
है उसका धन न पानेपर दुःख नहीं होता ॥ १४५ ॥ पहले
मुझे धनी होनेका अभिमान था तो इस समय निर्धन होनेका
दुःख क्यों हो । हाथमें उखाड़ी हुई गेंद के समान मनुष्यों की
दशा ऊपर-नीचे होती ही रहती है ॥ १४६ ॥ पहाड़ की गुफाओंमें

रहनेवाले और परम उद्योतिष्ठा प्यान करनेवाले वे लोग
अप्य हैं जिनकी गोदमें बैठकर पक्षी बेल्ट के घोंसू का जल पीते
हैं । मन के बनाए हुए भवन के पास बावड़ा के तटपर बने
हुए उपवनमें खेतका आनन्द खेनेवाले हम-जैसे लोगों की
तो केवल आयु भर बीत रही है ॥ १४७ ॥ इस मर्त्यलोकमें
आश्चर्य को बात यह है कि लोग अक्सर पाकर भी धर्मका
आचरण नहीं करते, जान-बूझकर पापमें लगे रहते हैं और
इस प्रकार, अमृत छोड़कर विष ही पीते हैं ॥ १४८ ॥ यहाँ
बुद्धिष्टिरने मेरे दोनों पैरों को प्रणाम किया था, यहाँ भीम के
साथ अनेक कथाएँ कही गई थीं, यहाँ तक अर्जुन, नकुल
और सहदेव भी साथ आए थे । वे स्थान तो सब ने ही हैं
किन्तु वे मनुष्य एक भी नहीं हैं ॥ १४९ ॥ मैंने प्रतिदिन
चारों ओर धन की आशासे दौड़ते हुए समय के अनुसार इन
अभाग्य के वृक्ष-रूपी पके बाजों की देखा, तिरस्कारसे लोगों को
खिन्नी उड़ाते भी सुना, चारों ओर किया हुआ प्रयत्न भी
विफल रहा, मन के लट्ठुकोंसे घबराता भी रहा, फिर भी
हृदयमें सत्यका विचार कभी नहीं आ पाया ॥ १५० ॥ मैंने
दौड़-दौड़कर वहाँ सावधानीसे दूरसे सबके आगे सिर मुकाया,
प्रतिध्वनिके समान राजाओं को प्रिय लगनेवाली बातें कहीं,
राजा के द्वारपर पहुँचकर द्वारपालसे रोके जानेपर अपमान
समझकर भी मज्जिन मुख होकर वहीं खड़ा-तक रहा, फिर भी

चिह्नो नामितं भूपानां प्रतिशब्दैरेव चिरं प्रोद्घु-
ष्टमिष्टं वचः । द्वाराध्यक्षनियन्त्रणावरिभवप्रस्तान-
वक्त्रैः स्थितं भ्रातः किं करवाम मुञ्चति मनो नाद्या-
व्यविद्याग्रहम् ॥ १५१ ॥ धिग्धक्ताङ्कमिति विंशेय-
पुषः स्फूर्जन्नाहासिद्धयो निष्पन्दोक्तशान्तयोऽपि च
तमः कारागृहेऽवासते । तं विद्वांसमिह स्तुमः करपटो-
भिस्तान्नाशाकेऽपि वा वालावक्त्रसरोजिनीमधुनि वा
यस्याधिशेषं रसः ॥ १५२ ॥ धैर्यं यस्य पिता सुमा च
जननी शान्तिश्चिरं गेहिनी सत्यं सनुरयं दया च
भगिनी भ्राता मनःसंयमः । शय्या भूमितलं दिशोऽपि
वसनं ज्ञानामृतं भोजनमेते यस्य कुटुम्बिनो वद् सत्ते
कम्पाद्भयं योगिनः ॥ १५३ ॥ न चाकारि कामारि-
कस्तारिसेवा न वा स्वेष्टमावेष्टितं हस्त किञ्चित् । मनः
प्रेयसोरूपपङ्के निमग्नं किमन्ते कृतान्ते मयावेदनीयम्
॥ १५४ ॥ न चाराधि राधाद्यो माधवो वा न वाऽ
पूजि पुष्पादिमिदमद्रुचूडः । परेषां धने चन्दने नीत-

कालो न्यालो यमालोकने कः प्रकारः ॥ १५५ ॥ न
ध्यातं पद्मोष्मरस्य विधिवत्संसारविच्छिन्नये स्वर्ग-
द्वारकपाटपाटनपटुर्धर्माऽपि नोपाजितः । नारीपीन-
पयोधरोऽयुगलं स्वप्नोऽपि नालिङ्गितं मातुः केवलमेव
यौवनवनच्छेदे कुठारा ययम् ॥ १५६ ॥ नन्दन्ति मन्दाः
धियमाप्य नित्यं परं विषीदन्ति विपद्गृहीताः ।
विधेकदृष्ट्या चरतां नराणां धियो न किञ्चिद्विपदो न
किञ्चित् ॥ १५७ ॥ नलिनीदलगतजलमतितरलं तद्व-
ज्जीवितमतिशयवपलम् । विद्धि व्याधिव्यालग्रस्तं
लोकं शाकद्वतं च समस्तम् ॥ १५८ ॥ नवनीलमेघक-
श्चिरः परः पुमानवनीमवाप्य धृतगोपधिग्रहः । नवनी-
यकीर्तिरमरैरपि स्वयं नवनोतभिभूरधुना स चिन्त्यते
॥ १५९ ॥ न विषयभोगां भाग्यं याग्यं खलु यत्र जग्मु-
मात्रमपि । ब्रह्मेन्द्रकद्रुम्यं भाग्यं विषयेषु वैराग्यम्
॥ १६० ॥ ॥ संसारोत्पन्नं चरितमनुपश्यामि कुशलं
विपाकः पुण्यानां जनयति भयं मे विमृशतः । महज्जिः

हे भाई । मैं क्या करूँ ? मेरा मन प्राज्ञ की मोहका दह नहीं
छोड़ पा रहा है ॥ १५१ ॥ ऐसे स्पर्धकोंको धिक्कार है जो
बड़ी-बड़ी सिद्धियाँ प्राप्त करके भी शान्तिको वशमें करके भी
अज्ञान-रूपी कारागारमें कीड़ेके समान बँधे हैं । इस संसारमें
मैं उसी विद्वान्की स्तुति करता हूँ जो हाथमें रखे हुए भिक्षाके
अन्न और शोकमें अथवा नायिकाके मुख तथा कमलिनीके
मकरन्दमें समान स्वाद समझता है ॥ १५२ ॥ जिसका धैर्य
ही पिता, सहनशीलता ही माता, शान्ति ही पत्नी, सत्य ही
पुत्र, दया ही महान, मनको वशमें करना ही माई, भूतको ही
बिड़ोना, दिशार्थ ही बख और ज्ञान-रूपी अमृत ही भोजन है,
उस कुटुम्बवाले लोगोंका किससे भय हो सकता है ॥ १५३ ॥
मैंने न तो कामके शत्रु शंकरकी सेवा की न कसके शत्रु कृष्णकी
ही, न अरमी ही भलाईका कोई काम किया । मेरा मन
सदा स्त्री-रूपी कीचड़में डूबा रहा है । अब मरनेपर मैं
यमरातको वश सुँढ़ दिलाऊँगा और क्या करूँगा ॥ १५४ ॥ हे
सगवन् ! मैंने न तो राघवानि भगवान् कृष्णकी सेवा की, न
कल-कूच आदि सामग्रियोंसे शंकरकी हो पूजा की । हे दयामय
प्रभो ! यमराजके पास पहुँचकर मैं क्या उत्तर दूँगा ॥ १५५ ॥
मैंने संसार-रूपी घृणको काटनेके लिये नियमसे भगवान्के
चरणोंका ध्यान नहीं किया, स्वर्गके द्वारके किबाद खोज
सकनेवाले धर्मका संग्रह नहीं किया । नायिकाके मोटे स्तन तथा

गर्जोंका भी आखिजन नहीं किया । इस प्रकार मैं तो अपनी
माताके पीवन-रूपो वनको काटनेवाले कुठारके ही रूपमें तपस
हुआ हूँ ॥ १५६ ॥ मूर्ख ही सम्पत्ति पाकर प्रसन्न और विपत्तिमें
पड़कर दुःखी होते रहते हैं पर विचारशील पुरुषोंके लिये
न सम्पत्ति ही कुछ होती है न विपत्ति ही ॥ १५७ ॥
कमलके पत्तेपर पड़े हुए अत्यधिक हिलते-डुलते पानीके
समान जीवन भी अत्यन्त चंचल है । इस शोकसे भरे
हुए संसारको व्याधि-रूपी सर्पिले डसा हुआ समझना
चाहिए ॥ १५८ ॥ नवीन काले मेघके समान सुन्दर और
गोबके वेशमें अवनार लेकर घर-घर भ्रमण करनेवाले
उस प्रशंसनीय कीर्तिवाले परमहन्ता ध्यान इस समय देवता
की करते हैं ॥ १५९ ॥ जिन विषयोंमें प्राणी लगे हुए हैं
उनके भोगको भाग्य न कहकर उस वैराग्यको ही भाग्य कहना
चाहिए जिसके लिये मर्याद, इन्द्र और शंकर भी तरसते रहते
हैं ॥ १६० ॥ संसारके किसी व्यवहारमें मंगल नहीं दिखाई
पड़ता । सोचनेपर साधर्मिक फलका भी अन्त दुःख ही दिखाई
देता है और जिन बड़े-बड़े भागोंसे लोग बड़े पुण्यसे इकट्ठा
करते हैं उनमें कौनसे हुए लोगोंकी भी अन्तमें दुःख ही हाथ
लगता है ॥ १६१ ॥ गिबुवनके स्वामी, देवताओंके सिरमौर
और मन लगाकर ध्यान किए जाने योग्य पुरपोत्तम माराधक
होते हुए यदि हम कुछ गर्वोंके स्वामी और धोड़ी-

पुण्योद्यैश्चिरपरिचृहीताश्च विषया महान्तो जायन्ते
व्यसनमिव वातुं विषयिणाम् ॥ १६१ ॥ नाथे श्रोतु-
बोत्तमे भ्रजमतामेकाधिपे चेतसा सेव्ये स्वस्य पदस्य
दातरि सुरे नारायणे तिष्ठति । यं कञ्चिन्पुरुषाचमं
कतिपयग्रामेशमल्पार्थदं सेवायै मृगयामहे नरमहो
मूढा वराका वयम् ॥ १६२ ॥ नाभ्यस्ता भुवि चादि-
बृम्हदमनी विद्या विनोताचिता सङ्गात्रैः करिकुम्भ-
पीठदलनैर्नाकं न नीतं यशः । कान्ताकोमलपल्लवाधर-
रसः पीतो न चन्द्रोदये साक्ष्यं गतमेव निष्फलमहो
शून्यालये दीपवत् ॥ १६३ ॥ निखनोऽहं करिष्यामि
सुकृतानीति चिन्तयन् । मेदोस्तृग्धसर्वाङ्गो जरा-
युपुडसंघृतः ॥ १६४ ॥ निःस्नेहो याति निर्वानं मेदोऽ-
नर्थस्य कारणम् । निःस्नेहेन प्रदीपेन यदेतत्प्रकटीक-
तम् ॥ १६५ ॥ निखिलं जगदेव नभरं पुनरस्मिन्नितरां
कलेष्वरम् । अथ तस्य कृते कियानयं कियते हस्त जनैः

परिश्रमः ॥ १६६ ॥ निजा सुद्वयं तरुमूलमेतदेवा
सरित्सारशिवान्नानि । चरन्निधनस्याप्यनुबन्ध एव
सम्यन्धयुद्धया भवबन्धहेतुः ॥ १६७ ॥ तिन्यमाचरतः
शाचं कुर्वतः पिबन्तर्षभम् । यस्य नोद्विजने चेतः
शास्त्रं तस्य करोति हिम् ॥ १६८ ॥ तिन्यातिन्यविचा-
रणा प्रणयिनो वैराग्यमेकं सुहृन्मित्राण्येव यमादयः
शमदमनायाः सन्नायो मताः । मेधयायाः परिवारिका
सहचरी तिन्यं मुमुक्षा बलादुच्छ्रेया रिपवश्च मोह-
ममतासदुल्लापवैरादयः ॥ १६९ ॥ निचद्धा रथीयांशा
जलशशिति कल्लोलचटुले क्षणवन्तिस्त्रयः सुचिर-
मविनाशोति कलितः । यदेतस्मिन् वातप्रतिहतपता-
काग्रतरले कृता काये प्रातिः परमपुरुषार्थक्षयकरी
॥ १७० ॥ निर्वोदितप्रतिगहनं विना कल्लवेन यावन्
येन । होषनिधामे जन्मनि किं न प्राप्तं फलं तेन
॥ १७१ ॥ निविद्येकतया बाल्यं कामोन्मादेन यौवनम् ।

ही संपत्ति देनेवाले किसी नीच पुरुषकी सेवामें इधर-
उधर घूमते फिरें तो हमसे बढ़कर मूल्य और दयाका
पात्र कौन हो सकता है ॥ १६१ ॥ मैंने अपने निरोपियोंको
हरानेवाली और तिनय देनेवाली विद्याका अभ्यास नहीं किया,
सज्जदारसे हाथियोंके मस्तक काटकर अपना यश भी स्वर्गनक
नहीं पहुँचाया, चन्द्रोदयके समय नायिकाके कामक पत्तेके
समान अधरके रसका स्वाद भी नहीं जिया, इस प्रकार
सूने घरमें बजते हुए दीपकके समान मेरा साधा जीवन
निष्फल ही गया ॥ १६२ ॥ सर्वा तथा क्षणसे छिपटा हुआ
और जरायुमें रंधा हुआ यह जीव सोचा करता है कि मैं गर्भसे
निकलनेपर अपने कर्म कर्हेगा ॥ १६३ ॥ संसारय अमुराग
न करनेवाला व्यक्ति संसारके बन्धनोंसे जुट जाता है क्योंकि
अमुराग ही सारे अभर्भ को जड़ है । देखा । स्नेह (लैज) के
बिना बुझते हुए दीपकमें यह बात स्पष्ट हो जाती है ॥ १६४ ॥
यों तो सारा संसार ही नश्वर है पर उसमें भी यह शरीर तो
अस्थिर ही नरवर है । फिर भी देखो, उसी शरीरके जिये जोग
कितना परिश्रम करते हैं ॥ १६५ ॥ 'यह मेरी गुफा है, यह मेरे
बुचके तलेकी छाया है, नदीके तीरकी ये चट्टानें भी मेरी हैं'
इस प्रकार वनमें रहनेवालेकी भी कल्पन है ही । यथार्थमें नाता
जो देनेवाली बुद्धि ही संसारमें कलनेवाला होता है ॥ १६६ ॥
प्रतिदिन शरीरकी शुद्धताके जिये प्रयत्न करनेमें और वितर्कोंका
तर्पण करनेमें जिसका मन नहीं कबता, उसका उदार शास्त्र

कहाँतक कर सकता है ॥ १६७ ॥ मनुष्यको प्रतिक्षण मोलकी
इच्छा रखनी चाहिए और उसीके बलपर मोह, ममता, अनेक
प्रकारके संकल्प तथा वैर आदि मानसिक शयुषोंका नाश
करना चाहिए । साथ तथा मित्रता बहुतोंपर विचार करना ही
मोचके अभिजातो मनुष्यकी खी है, संसारसे वैराग्य ही
उनका एकमात्र मित्र है, यम, निषम, आसन, प्राणायाम,
प्रत्याहार, ध्यान, धारणा तथा समाधि ही इसके हथियार हैं,
शास्त्र तथा इन्द्रियोंका दमन ही उसके सार्थी हैं, सज्जनोंसे
मित्रता, शीनोंपर कठुणा, सर्वकर्ममें प्रसन्नता तथा दुष्कर्मसे
उपेक्षा ही उसके सेवक हैं तथा मोलकी इच्छा ही उसकी
साधिन है ॥ १६८ ॥ एवमसे हिलती हुई पताकाकी नोकके
समान चंचल इस देहपर जो हमने परम पुरुषार्थ-नाशक प्रेम
किया वह वैसा ही हुआ जैसे चंचल जहरोंमें हिलती हुई जख-
म पर पड़ती हुई चन्द्रमाकी परछाईपर स्थिर रहनेकी आशा
बाँधना और क्षणभरमें मिट जानेवाले सपनेको अनन्तकाल-तक
मग्न न होनेवाला समझना ॥ १७० ॥ होपोंसे भरे इस जीवनमें
जिसने लगनत गहन जगती दिना कलंकके बिना जो उसने
कथा फल नहीं पा लिया ॥ १७१ ॥ विचार-शक्ति न रहनेसे
मनुष्योंका लड़कपन, कामके पागलपनसे यौवन तथा शरीरकी
स्थितिजलासे बुढ़ापा सदा उपद्रवसे ही भरा रहता है ॥ १७२ ॥
गर्भसे निकलते समय भयंकर दुःखसे पीड़ित होकर नीचे मुक्त
करके चिह्नवाला हुआ जीव ऐसा डलान होकर भूमिपर गिरता

चृद्धत्वं विकलत्वेन सदा सोपद्रवं नृणाम् ॥ १७२ ॥
 निष्कामभृशदुःखार्ता रुदन्मुचोर्धोमुखः । यन्त्रादिव
 धिनिर्मुक्तः पतन्मुत्तानशाक्यथ ॥ १७३ ॥ नीलोत्पला-
 भनयनाः परमप्रेमभूषणम् । हास्यैव विलासिन्धुः
 क्षणभङ्गिनया स्थिताः ॥ १७४ ॥ नो घमांय ततो न तत्र
 निरता नार्थाय येनदशाः कामोऽप्यर्थवतां तदर्थमपि
 नो मोक्षः कश्चित्कस्यचित् । तत्के नाम वयं वृथैव
 घटिता ज्ञातं पुनः कारणं जोषन्तोऽपि मृता इति
 मघदतां शब्दार्थसंसिद्धये ॥ १७५ ॥ स्यस्तं यथा मूर्ध्नि
 मुदासि मेवो यथाक्षरायं यत्किमल्पतः सन् । मृत्युं
 समीपस्थितमप्यजानन्भुजक्ति मर्यो विषयांस्तथैव
 ॥ १७६ ॥ परिच्छेदातोतः सकलवचनानामविषयः
 पुनर्जन्मवस्मिन्ननुभवपर्ययो न गनवान् । विवेक-
 प्रभ्यंसादुपचितमहामोहमहनो विकारः कोऽप्यन्तर्ज-
 ङ्यति च सापे च कुरुते ॥ १७७ ॥ परिपक्वं समा-
 लोफ्य जराक्षारावधूसरम् । शिरःकूष्माण्डकं भुङ्क्ते

पुंसां कालः किलेश्वरः ॥ १७८ ॥ परेषां चेतांसि
 प्रतिदिवसमाराध्य बहुधा प्रसादं किं नेतुं विशसि
 हृदय-क्लेशकलिलम् । प्रसन्ने त्वय्यन्तः स्वयमुदित-
 चिन्तामणिगुणे त्रिविकः सकल्पः किमिव हि फलं
 पुष्पनि न ते ॥ १७९ ॥ पाणिः पात्रं पवित्रं भ्रमण-
 परिगतं भैक्षमन्त्रमभ्रं वस्त्रं विस्तीर्णमाशादशकमम-
 लिनं तत्पमस्वलपमुर्वी । येषां निःसङ्गताङ्गीकरणपति-
 वितिः स्वान्नसन्तोषिणस्ते घन्याः संन्यस्तदैव्यव्यति-
 करनिकराः कर्म निर्मूलयन्ति ॥ १८० ॥ पाषाणखण्डे-
 प्यपि रत्नबुद्धिः काम्तेति धीः शोणितमांसपिण्डे ।
 पञ्चात्मके वर्त्मणि चात्मभावो जयरपसो काञ्चन मोह-
 लोला ॥ १८१ ॥ पुरैर्मूलफलैः प्रियप्रणयिनीं वृत्तिं
 कुरुष्वधुना भूशय्यां नयाम्यहैः कुरु तृणैश्चित्त-
 यामो घने । क्षुद्राणामविवेकमूढमनसां यन्नेश्वराणां
 सदा विशस्याध्यविवेकसङ्कुलगिरां नामापि न भ्रूयते
 ॥ १८२ ॥ पुत्रः स्यादिति दुःखितः सति क्षुते तस्या-

हे मानो चक्रीके पादसे लुरकारा पाकर गिरा हो ॥ १७२ ॥ नीके
 कमलके समान मेरोंवाला तथा परम स्नेहसे भरी हुई जिर्वा
 चय भरमें ही नष्ट हो आनेवाली है । जनः, जो लोग इनसे
 अनुराग करते हैं वे केवल हैंसके पात्र होते हैं ॥ १७३ ॥ हम
 लोग धर्मके लिये नहीं बनाए गए हैं, इसलिये हम लोग मन
 नहीं लगाते । धर्मके लिये भी नहीं बनाए गए क्योंकि हम दुरिद्र
 हैं । काम भी धनवानोंका ही भिन्नता है इसलिये कामके लिये
 भी हमारा जन्म नहीं हुआ । और मोक्ष तो किसी-किसीको ही
 मिल पाता है । तो क्या हम लोग स्वर्ग ही बनाए गए हैं ? नहीं ।
 अब हम समझे कि हमारा जन्म उन लोगोंके शब्दको सार्थक
 करनेके लिये हुआ है जो हमें देखकर कहते हैं कि वे जीवित मरे
 हुए हैं ॥ १७४ ॥ जैसे यज्ञिके लिये जाया हुआ भेड़ा अपने सिर-
 पर रखते हुए जी-वचत आदिको बड़ी प्रसन्नतासे खाता है
 वैसे ही पास आई हुई मृ-पुत्रों न समझना हुआ प्राणो भी
 सांसारिक भोगमें जिएटा रहता है ॥ १७५ ॥ देश और काज-
 का जहाँ सम्बन्ध नहीं, वाणिकी जहाँ पहुँच नहीं, किसी जन्म-
 में भा जा अन्तुभवमें नहीं आया, विचार न होनेके कारण जो
 अप्रयत्न अज्ञानसे भरा हुआ है ऐसा कोई अद्भुत विकार
 हमारे मनका जड़ बना रहा है और सन्ताप दे रहा है ॥ १७६ ॥
 जैसे-जैसे मनुष्योंके सिरकी कुम्हड़े (पंछा), मुखापेके उज्ज्वे-
 पनकी राख (सार) से भरे होते चक्करे हैं वैसे-वैसे कमलः

उन्हें पका जानकर इसी काज उन्हें तोड़ता और खाता चक्करा
 है ॥ १७८ ॥ हे हृदय ! प्रतिदिन दूसरोंकी सेवा करके उतक
 चित्त प्रसन्न करनेके लिये तुम विपत्ति-रूपी दलदलमें क्यों
 घैसे जा रहे हो ? यदि तुम स्वयं प्रसन्न हो जाओ तो तुममें
 जितनामणिका गुण आ जाय । फिर तुम्हारे पवित्र संकल्प-रूपी
 वृद्धमें फल आते देर क्या लगेगी ॥ १७९ ॥ जिसका हाथ ही पवित्र
 पात्र है, घूम-घूमकर मिली हुई मिठा ही अन्न है, वसों विद्याएँ
 ही जिसके लम्बे-चोड़े वस्त्र हैं, पुत्रों ही स्वच्छ और विलुप्त
 पर्ण हैं, जिसने अकेले रहनेका अभ्यास कर लिया है, जिसने
 दीनता डुकरा दी है और जो अपने ही मनमें लम्बुट रहता है
 वही धन्य पुरुष कर्मको निर्मूल कर डालता है ॥ १८० ॥
 अज्ञानका कितना विविध प्रभाव है कि लोग पापघरको भी रत्न
 समझे बैठे हैं, रुधिर और मांसके जोयदेकी मिया समझते हैं
 और पंचभूतसे बने शरीरको ही आत्मा माने बैठे हैं ॥ १८१ ॥
 अरे मन ! पवित्र कन्द-मूख फलसे अपनी जीविका चलाओ,
 भरतापर नये-नये पत्ते और घास फेंकाकर बिड़ौना बनाओ,
 उठा, बन वलें जहाँ विचार-शून्य तथा सूर्यताप्यं हृदयवाले,
 सदा धनके लोभसे बेढंगी बातें करनेवाले नीच धनवानोंका
 नाम तक नहीं सुनाई पड़ता ॥ १८२ ॥ पहले तो मनुष्य पुत्र
 होनेके लिये दुखी रहता है, पुत्र ही जानेपर उसके रोगसे दुखी
 रहता है । यदि पुत्र शुम्भवान् हुआ तो उसके मरनेके भयसे

मये दुःखितस्तद्दुःखादिकमार्जने तदनये तन्मूर्च्छता-
दुःखितः । जातश्चेत्सगुणोऽथ तन्मूर्च्छितभयं तस्मिन्मृते
दुःखितः पुत्रव्याजमुपागतो रिपुरयं मा कस्यचिज्जा-
यताम् ॥ १८६ ॥ पुत्रदारादिसंसारः पुंसां सम्मृद्भवेत-
साम् । विदुषां शास्त्रसंसारः सद्योगाभ्यासविघ्नकृत्
॥ १८७ ॥ पुत्रमित्रकलत्रेषु सक्ताः सोदन्ति जन्तवः ।
सरःपङ्कान्धे मग्ना जीर्णा वनगजा इव ॥ १८८ ॥ पुनः
प्रभातं पुनरेव शर्धरी पुनः शशाङ्कः पुनरुद्यतो रविः ।
कालस्य किं गच्छति याति यायनं तथापि लोकः
कथितं न बुध्यते ॥ १८९ ॥ पुरश्चरसद्व्याणि चक्र-
वर्त्तिशतानि च । निर्वापितानि कालेन प्रदीपा
इव वायुमा ॥ १९० ॥ पूरयित्वाधिनामाशां म्रियं
कृत्वा द्विषामपि । पारं भत्वा धुनौघस्य घन्या वन-
मुपासते ॥ १९१ ॥ पूर्वं साधकबलवदशां लोललोले-
पाङ्गैराकर्षणैः किमपि हृदयं पूजिता योयनभ्रौः ।
सम्प्रत्यस्तनिहितसद्व्याधिलब्धप्रयोधमत्याहारैर्विंश-

दहृदये वर्तने कोऽपि भावः ॥ १९२ ॥ पृथिवी दहते
यत्र मेढ्राणि विशीर्यते । सुशोभं सागरजलं शरीरे
तत्र का कथा ॥ १९३ ॥ प्रचण्डवासनावानैरुद्धृता
नार्मनोमयी । वैराग्यकर्णधारेण विना रोद्धुं न शक्यते
॥ १९४ ॥ प्रानमूर्त्रपुरापाश्यां मथ्याहं क्षुत्पिपासया ।
तृप्ताः कामेन बाध्यन्ते प्राणिनो निशि निद्रया ॥ १९५ ॥
प्रादुर्भवन्ति वपुयः कनि नाम कोटा यान्प्रलतः खलु
तनोरपसारयन्ति । मोहः क एव जगतां यदपत्यसंज्ञं
तेषां विधाय परिशोषयति स्वदेहम् ॥ १९६ ॥
प्राप्ता जरा योचनमप्यतीतं बुधा यनध्यं परमार्थ-
सिद्धयै । आयुर्मेनप्रायमिदं यतोऽसौ विश्रम्य विश्रम्य
न याति कालः ॥ १९७ ॥ यद्वा लासिनीऽभूवन् यद्वा
यशस्विनः । सह लाभयशःमिक्ते न ज्ञानाः क्व गता
इति ॥ १९८ ॥ यासां मामियमिच्छन्तोऽनुयदना सानन्दमु-
द्धीसते नीलेन्दोशरलाचना पृथुकुक्षोन्पादं परीरुसते ।
का त्वामिच्छति का च पश्यति पशो मांसास्थिभिर्नि-

हुली रहता है और फिर मर जानेपर तो वह और भी दुखी हो
जाता है । इसलिये पुत्र जो शत्रु होकर आता है । भगवान् करे
किसीको पुत्र न हो ॥ १८६ ॥ मोहमें पड़े हुए पुरुषोंके लिये पुत्र,
और आदिका संसार सापुरुषोंके संगके अभ्यासमें बाधा डालता
है और ज्ञानियोंके लिये शस्त्रका व्यवसन सुन्दर योगाभ्यासमें
बाधा डालता है ॥ १८७ ॥ साधारणके कीचड़में कैसे हुए दुखी
जंगली हथोके समान यह जीव भी पुत्र, मित्र तथा स्त्रियोंमें
आसक्त होकर दुःखे भोगता है ॥ १८८ ॥ फिर सूर्य, फिर रात,
फिर चन्द्रमाका उदय, फिर सूर्यका उदय, इसमें समपका क्या
विघटता है, किन्तु यौवन बीतता जाता है, फिर भी न जाने
कौन कौनका कहना क्यों नहीं मानते ॥ १८९ ॥ सदृश इन्द्र
तथा सैन्धवों चक्रवर्त्ता राजाओंको काखने उसी प्रकार समास कर
हाला जैसे वायुका कौका दीपकी युष्मा डालता है ॥ १९० ॥
पापकोंकी आशा पूरी करके, शत्रुओंका दित करके तथा शास्त्रोंके
पार पहुँचकर भी जो वनवासी हो जाते हैं वे धन्य हैं ॥ १९१ ॥
पहले तो कमलके समान नेत्रोंवाली स्त्रियोंकी अपत्यत पंचज
तथा मन लुभानेवाली चित्तवर्त्ते मेरी तरुछाईको सुन्दरताको
हृदय-देशमें पूजती थी पर अब तो मेरे निर्मल मनमें कौन
वस्तु सत्य है और कौन मिथ्या यह ज्ञानकी धारा बहते ही
किसी नये भावका उदय हो गया है ॥ १९२ ॥ जहाँ पृथ्वी
भी दब जाती है, मेरु भी बिखर जाता है तथा समुद्रका जल
भी सूख जाता है वहाँ इस शरीरकी गिनती ही क्या है

॥ १९३ ॥ जब मन-कषी नीका प्रवक्तृ वासनाकी आँधीले
जगमगाने लगती है उस समय वैराग्य-करी मर्त्तिके बिना इसे
कौन संभाल सकता है ॥ १९४ ॥ संसारके भोगोंमें सुख
माननेवाले लोग प्रायःकाल शीघ्र तथा कष्टशकासे होपहरमें,
भूख और प्यास मृत होनेपर काममें तथा रातको नींदसे बिकल
रहते हैं ॥ १९५ ॥ शरीरमें उपज जानेवाले जाने कितने
कीड़ोंको लोग साधारणीयें निकालकर फेंक देते हैं पर संसारके
इस मोहको तो ऐसा कि उसी शरीरसे निकले हुए कीड़ेको
अपनी सन्तान समझकर उसको चिन्तामें अपना शरीर छुड़ाए
बांध रहे हैं ॥ १९६ ॥ हे बुद्धिमानो ! तुझपा आ गया, तरुछाई
बीत गई, अब तो आत्माके बोधके लिये प्रयत्न करो । आयु
भी प्रायः समाप्त ही है और काख भी धीरे-धीरे नहीं आता,
सहसा सिरवर आ पड़ता है ॥ १९७ ॥ संसारमें बहुत घड़े-बड़े
कमानेवाले और यशस्वी हुए किन्तु अपनी कमाई और कौलिके
साथ ही वे सब न जाने कहाँ गए ॥ १९८ ॥ एक स्थिति
कह रहा है कि चन्द्रमाके समान सुनवाली यह नवेली सुभे
चाहती है, नीले कमलके समान आँखोंवाली यह नवेली पड़े
चाहते मेरी और निहारती है और अपने विशाल स्तनोंसे
दबाकर मेरा आलिंगन करना चाहती है । उससे कोई कह
रहा है कि 'हे पशु ! कौन तुम्हें चाहती है ? कौन तुम्हें देखती
है ? तु नहीं जानता कि वह मांस और हड्डीको पुतली तो
एक ही मात्र है । वास्तवमें तो व्यापक परमात्मा ही तुम्हारा

गिता तानी चेद् न किञ्चिदत्र स पुनः पश्यत्यमूर्तः
पुमान् ॥ १६६ ॥ बालिकारवितवस्त्वपुत्रिकाक्रीडनेन
सदृशं सुरार्चनम् । यत्र शाम्यति मनो न निश्चलं
स्फोटवज्जलधिमज्जनामलम् ॥ १६७ ॥ बाल्ये नार्जन-
सामर्थ्ये येनासौ यौवने सुखो । याम्यजनेन तारुण्यं
वृद्धः कर्मैः करोति विभू ॥ १६८ ॥ विहालमहिते
दुःखं यादृशं गृहकुम्फकुटे । न तादृक्ष्यमताश्रये कल-
विक्लेशध मृपके ॥ १६९ ॥ योभस्तां विषया जुगुप्सित-
तमः काया घयो माघरं प्रायो वधुभिरध्वनोव पथिकै-
र्योगो वियांगावहः । हातव्योऽयमसार एव विरसः
संसार इत्यादिकं सर्वस्यैव हि वाचि चेतसि पुनः
कस्यापि पुनरात्मनः ॥ २०० ॥ योभस्ताः प्रतिभान्ति
किं न विषयाः किं तु स्पृहायुष्मतो देहस्यापचयो मृतौ
निविशते गात्रो गृहेषु प्रहः । प्रहोपास्यमिति स्फुर-
त्यपि हृदि व्यावर्तिका वासना का भागेयमतर्फयेतु-
गहना दैवो सतां यानना ॥ २०१ ॥ युद्धेरगोचरतया

न गिरां प्रचारो दूरे गुरुप्रचितवस्तुकथावतारः तत्त्वं
कमेण विदुषां करुणावदाते श्रद्धावतां हृदि पदं स्वय-
मावधानि ॥ २०२ ॥ ब्रह्महानयिवेकिनोऽमलधियः
कुर्वन्त्यहो दुष्करं यन्मुञ्चन्त्युपभोगवन्त्यपि धनाभ्ये-
कान्ततो निःस्पृहाः । न प्राप्तानि पुरा न सस्पृति न च
प्राप्तौ दृढप्रत्ययो घाङ्क्षामात्रपरिग्रहाद्यपि परित्यक्तुं
न शक्ता वयम् ॥ २०३ ॥ ब्रह्मा विष्णुदिने याति विष्णु
रुद्रस्य वासरे । ईश्वरस्य तथा सोऽपि कः कालं
लङ्घितुं क्षमः ॥ २०४ ॥ भगोरथाद्याः सगरः ककुत्स्थो
दशाननो राघवलक्ष्मणौ च । युधिष्ठिराद्याश्च बभ्रुरेते
सत्यं यव याता यत ते नरेन्द्राः ॥ २०५ ॥ भस्मोद्धू-
लन भद्रमस्तु भवते रुद्राक्षमाले शुभं हा सोपानपर-
म्परे गिरिसुताकान्तालयालङ्कृते । अद्याराधनतोषितेन
विभुना युष्मत्सपर्यासुष्वातोकोरुहेदिनि मोक्षनामनि
महामोहे निधीयामहे ॥ २०६ ॥ भिलाशुभं भवनमाय-
तनैकदेशः श्रुत्या भुषः परिजनो निजदेहभारः ।

सारा करतव देवता है ॥ १६६ ॥ देवताओंकी पूजा तो कड़-
कियोंकी गुदियाके खेलके समान है जिससे मनकी शान्ति नहीं
मिलती । मन तो आत्म वितन-रूपी समुद्रमें लुबकी जगाकर
ही निर्मल, प्रसन्न तथा निश्चल हो पाता है ॥ १६७ ॥ यदि
जन्मपलमें धन कमानेकी शक्ति रहती तो उस समय धन कमा-
कर मनुष्य जवानोंमें निश्चल होकर सुख भोगता, किन्तु धनो-
पाजन करते-करते ही जवानी बीत जाती है, तब भला बुढ़ापेमें
वह काम-सुखोंके लिये क्या करे ? ॥ १६८ ॥ पाले हुए मुर्गेकी
यदि बिच्छी खा भाप तो उससे जितना दुःख होता है उतना
गौरैया और चूहके खाए जानेपर दुःख नहीं होता क्योंकि
उनपर ममता नहीं होती ॥ १६९ ॥ संसारके सभी भोग धूँसा
करने योग्य हैं । यह शरीर तो और भी क्षुब्ध है । अकस्मात्
भी नष्ट है । मार्गमें मिले हुए यात्रियोंके समान भाई-बन्धुओं-
का मिलना भी वियोगके लिये होता है । यह असार तथा
बीरस संसार छोड़ देनेके योग्य है । ये बातें सुमार्ग तो सभी-
के सुँहने देनी हैं पर मनमें तो किसी पुण्यमाके ही रहती हैं
॥ २०० ॥ संसारके विषयोंकी धूँसाके योग्य समझकर भी
अभिलाषाकी आयु बढ़ती ही जाती है । शरीर छोड़ होते-होते
मृत्युनक पहुँच जाता है फिर भी घरमें खोगोंका प्रवल अनुगाय
बना रहता है । मनमें भी यह बात आती है कि प्रसन्न
चिन्तन करना चाहिए किन्तु मनके दूरे संस्कार उन्हें रोक देते

हैं । भाग्यने जो संजनोंको भयंकर भोग दिए हैं उनके कारवों-
का भी आजतक कोई ठिकाना नहीं लग पाया ॥ २०१ ॥
मनकी पहुँच न होनेके कारण जहाँ न तो बाणीकी पहुँच हो
पाती न गुरुका उपदेश ही काम देता है वह आत्मबोध वन
अज्ञानान् शानियोंके निर्विकार शब्द हरपमें स्वयं प्रकाशित हो
जाता है जो अवश्य, मनन और निदिध्यासनमें खगे रहने हैं
॥ २०२ ॥ साथ तथा मिथ्या वस्तुके विचारसे विनई ब्रह्मज्ञान
हो गया है वे शब्द चित्तमात्रे खोग देता दुष्कर काम करते हैं
कि धनका उपभोग छोड़कर सब प्रकारकी इच्छासे रहित हो
जाते हैं । हमने तो न पहले ही धन पाया, न इस समय ही
पाया, न आगे ही उसे पानेका निश्चय है । केवल मनोरथमें
पड़े हुए धनको नहीं छोड़ पा रहे हैं ॥ २०३ ॥ जब विष्णुके
एक दिनमें ब्रह्मा, शंकरके एक दिनमें विष्णु और ईश्वरके एक
दिनमें शंकर भी चल बसते हैं तब भला कालको कौन खींच
सकता है ॥ २०४ ॥ यदि सचमुच मगीरथ, सगर, ककुत्स्थ,
रावण, राम, जन्ममय तथा युधिष्ठिर आदि सभी राजा हुए
थे ? तो ये सब खले कहाँ गए ? ॥ २०५ ॥ हे भस्मलेप !
तुम्हारा संग्रह ही । हे रुद्राक्षकी माला ! तुम्हारा कुल ही ।
हे शिवजीके सुन्दर मन्दिरकी सीढ़ियों ! हमें इस बातका दुःख
है कि आज सेवासे प्रसन्न होकर शंकरजी भाव खोगोंकी पूजासे
मिलनेवाले सुखरूपी प्रकाशको निर्मूल करनेवाले मोक्ष नाश-

वासश्च जीर्णपटवहडनियद्वकन्था हा हा तथापि
विषयाद्य जहाति चेतः ॥ २०७ ॥ भिक्षाहास्यमदैव्यम-
प्रतिहतं भोतिच्छिदं सर्वदा दुर्मोक्षयमदाभिमानम-
थनं दुःखाद्यविध्वंसनम् । सर्वत्रान्यदमप्रयत्नमुत्तमं
साधुप्रियं पावनं शम्भाः सन्नमयार्थमनुयतिधिं शंसन्त
योगोध्वराः ॥ २०८ ॥ भूः पर्यङ्को निमज्जलतागेन्दुकः
खं वितानं दीपश्चन्द्रो चिरतिथ्यनितालव्ययोगप्रमोदः ।
विकल्पानां व्यजनपद्यैर्धीज्यमानोऽनुकूलैर्भिक्षुः शैते
मृप इय सदा धीतरागो जितात्मा ॥ २०९ ॥ भूया
कल्पशतायुषोऽहजमुषः सेन्द्राश्च देवासुरा मन्वाद्या
मुनयो महाजलधयो नद्याः पराः काटयः । मोहः कोऽ-
यमहो महानुश्यते लोकस्य शोकायहो यन्धोः फेनसमे
गते वपुषि यत्पञ्चात्मके पञ्चताम् ॥ २१० ॥ भद्राभेदी
सपदि गलितो पुण्यपापे विशोर्ण मायरमोहा क्षयमुप-

गती नष्टमन्देद्वृत्तेः । शब्दानोर्न त्रिगुणगृहितं प्राप्य
तत्त्वावधारं निम्बेगुण्ये पथि विचरन्तः को विधिः को
निपथः ॥ २११ ॥ भोगा मेघवितानमध्ययिलसम्सोदा-
मिनोचञ्जला आयुर्वायुविघट्टिताभ्रपटलीनीताम्बु-
चङ्कङ्कम् । लोला ययनलालसाम्बन्धुनामिन्ध्याक-
लस्य द्रुतं योगे धैर्यसमाधिसिद्धिसुलभे बुद्धिं विवध्वं
धुधाः ॥ २१२ ॥ भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्तास्तपो
न तप्तं वयमेव तप्ताः । कालो न यातो वयमेव याता-
स्तृणा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः ॥ २१३ ॥ भोगास्तुक्क-
तरकूभङ्गवपलाः प्राणाः क्षणध्वंसिनः स्तोकाभ्येध
दिनानि यायनसुखं स्फूर्तिः क्रियास्वस्थिरा । तत्सं-
सारमसारमेव निखिलं दुष्ठा युधा बाधका लोकानु-
ग्रहपशनेन मनसा यज्ञः समाधीयताम् ॥ २१४ ॥
भोगे रागभयं कुले क्युतिभयं वित्ते नृपात्ताद्वयं माने

के और आन्धकारमें मुझे डके डे रहे हैं ॥ २०६ ॥ अब
भिक्षा ही भोजन है, घरका कोना ही निवास स्थान है, भूमि
ही गडवा है, अपना शरीर ही परिवार है और पुराने वस्त्रोंके
टुकड़ोंसे सिखी हुई गुदबो ही बख है, फिर भी न जाने हमारा
मन विषय-वासनाओंसे क्यों नहीं डट पा रहा है ॥ २०७ ॥
भिक्षाके भोजनके लिये योगीश्वर महात्मा कहते हैं कि इसमें
न तो दीनता दिखलानी पड़ती न कोई शोक-टोक या भय है ।
इससे राह, मद और अभिमान दूर हो जाता है, दुःख शक्ति-
का विनाश हो जाता है, यह सब स्थानोंपर प्रतिदिन सुलभ है,
साधुओंका स्वारा है और शंकरका ऐसा पवित्र सत्र है जिसमें
न कोई बाधा है और जो न कभी समाप्त होनेवाली है ॥ २०८ ॥
जिसने भूतलको पलंग, अपनी भुजाको ही तकिया, आकाशको
बैठका और आग्निमाको दीपक समझ लिया है, जो वैराग्य-
रूपी स्त्रीके सम्पर्कसे प्रसन्न रहता है और दिशा-रूपी कन्यार्य
जिसे सुलभकर वायुका पंखा ककती हैं ऐसा भिचा करनेवाला,
संसारमें अनुराग न रखनेवाला तथा इन्द्रियोंको जशमें रखने-
वाला महात्मा राजाके समान सुखकी भीद लेता है ॥ २०९ ॥
कागभुशुपडीजी गहइसे कह रहे हैं—हे गुरु ! सैकड़ों कहर पुरानी
यह भूमि, इन्द्र, देवता, असुर, मनु आदि मुनि, दीप तथा पहाड़
ये सब करोड़ों वर्षोंसे भी अधिकके हो-होकर नष्ट हो जाते
हैं फिर भी पंचभूतसे बने हुए फेनके समान अपने सम्बन्धीका
शरीर पञ्चभूतमें मिला जानेपर जोगोंको शोकसे भरा हुआ
विशाल मोह क्यों उत्पन्न होता है ॥ २१० ॥ जिसे किसी

कर्ममें भेद और अभेदका विचार नहीं रह गया, जिसके पुण्य
और पाप दोनों निकल गए, साधा-मोह दोनों नष्ट हो गए,
मनका सम्बेद जाना रहा और जिसने सत्त्व, रज और तमोगुण-
में परे लग्न शररकी पहुँचने बाहर रहनेवाले आत्मबोधको
पाकर मायाके उस पापके मार्गमें भ्रमण किया है, ऐसे स्थिति
लिये क्या कर्मण्य और क्या अकर्मण्य ॥ २११ ॥ हे बुद्धिमानो !
मेवोंके बीच समदन्ती हुई वज्रोंके समान हो ये सब भोग
भी चञ्चल हैं । वायुमें धरका काकर बारिशोंमें गिरते हुए जल-
के समान हो ये प्राण और तरुणार्थके मनारय सब चञ्चल हैं ।
प्राणियोंकी इन दशाश्वोंपर विचार करते हुए तत्काल उस योग-
मार्गमें मन लगा देना चाहिये जिसमें धैर्य, चित्तकी एकाग्रता
और सिद्धि मिल जाती है ॥ २१२ ॥ हमने भोग नहीं मांगे
भोगोंमें ही हमें भोग लिया । हमने तपस्या नहीं तपी, तपस्या-
ने ही हमें तप दिया । समय नहीं बीता, हमें बीत गए, इसी
प्रकार मृत्पा नहीं पुरानी हुई, हम ही पुराने हो गए ॥ २१३ ॥
संसारके सब भोग ऊँचो कहरोंके समान चञ्चल हैं, प्राण भी
चणभंगुर हैं, तरुणार्थके सुख भी थोड़े दिनोंके पाहुने हैं, काम
करनेकी शक्ति भी स्थिर नहीं रहती । इसलिये हे बुद्धिमान् !
सारे संसारकी उत्सार समझकर जोगोंपर कठणा-बुद्धि रखते
हुए अपना मन कोमल बनाकर कोई ऐसा उचित उपाय क्यों
नहीं करता जिससे शान्ति मिले ॥ २१४ ॥ भोगोंमें रोगका भय,
कुलमें कलंकका भय, धनमें राजाका भय, सम्मानमें दीनता-
का भय, बलमें शत्रुका भय, सुन्दरतामें दुर्दापेका भय, शास्त्रमें

दैन्यभयं वले रिभयं रूपे जराया भयम् । शास्त्रे
षादभयं गुणे क्लृप्तभयं काये कृतान्ताद्भयं सर्वं वस्तु
भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम् ॥ २१५ ॥
भ्रातः कष्टमहो महान्स नृपतिः सामन्तवक्त्रं च
तत्पार्श्वे तस्य च सा विदग्धपरिषत्ताश्चन्द्रयिभ्यश्चाननाः ।
उद्विक्तः स च राजपुत्रनिवहस्ते चन्दिनस्ताः कथाः
सर्वं यस्य यथादगान्स्मृतिपथं कालाय तस्मै नमः
॥ २१६ ॥ मन्त्रोद्गायितदैवतैर्न विधियहासीकृताः
लिङ्गयो योगाभ्याससमाहितैर्गुह्येन तोषां न मोहा-
र्थः । क्षुब्धक्षुद्रनरेन्द्रदत्तयिगलसम्पन्नयोज्ज्वलितै-
र्विष्णुदैरिव परिडतेरपि यत्कालः कथं नोयते ॥ २१७ ॥
मन्ये मायेयमज्ञानं यत्सुखं स्वजनादपि । निदाघवार-
णायालं निजकृत्वाया न कस्यचित् ॥ २१८ ॥ मरणं
मकृतिः शरीरिणां विकृतिर्जायनमुच्यते बुधैः । क्षण-
मप्यवतिष्ठते भवस्यदि जन्तुर्ननु लाभवानसौ ॥ २१९ ॥
मलयाभिलकालकूटयो रमणीकुन्तलभोगिभोगयोः ।
भ्रष्टकात्मभुधोः किमन्तरं मम भूयात्परमात्मनि

विवादका भव, गुह्योमे गुह्योका भव, शरीरमें परमात्मका भव,
इस प्रकार इस भूतलपर केवल वैराग्यको छोड़कर सभी शेष
वस्तुएँ भयले सरी हैं ॥ २१५ ॥ हे भाई ! प्रभावशाली राजा,
उल्लेख के अधीन राजा, पासमें चतुर राजाओंकी सभा, चन्द्रमाके
समान सुखवादी खिर्वा, काहले राजपुत्र, स्तुति करनेवाले भाट
और उनकी सब कथाएँ जिसके प्रभावसे स्मरणीय हैं। गण-
उल्लेख कालको नमस्कार है ॥ २१६ ॥ जिन्होंने शास्त्रोंके नियमों-
से मंत्रोंके द्वारा देवताओंको प्रसन्न करके। सन्निध्य नहीं प्राप्त
कीं, प्रतिदिनके अभ्याससे मनको पुकाई करके अज्ञान-कपी
सागर भी पार नहीं किया और जो उन्साहमें आप हृदय मूर्ख
राजाओंसे पाई हुई नरवर सत्पत्ति लेकर फूले नहीं समाएँ ऐसे
पंडित भी मूर्खोंके समान कैसे समय बिताते हैं ॥ २१७ ॥
हम समझते हैं कि यही समझ बैठनेके अज्ञानको माया कहते
हैं कि हमारे सगे-संबंधियोंसे हमें सुख मिलेगा क्योंकि अपनी
ही छाया भूपसे बचानेमें समर्थ नहीं होती ॥ २१८ ॥ मरना
ही प्राणियोंका स्वभाव है, बुद्धिमान् अनुपम जीवनका विकार
ही समझते हैं । जो प्राणी जिनकी देरतक सोस लेता हुआ
संसारमें रह जाय, उसके लिये उल्लेख ही लाभ समझना
चाहिए ॥ २१९ ॥ जब मैं सारे संसारको सब समझता हूँ तब
मेरे लिये सल्लय पर्वतके पवन और कालकूट विषमें, रिश्रियोंके
सुन्दर केश तथा सौँवके शरीरमें, चाँदना तथा मल्लामें अन्तर

स्थितिः ॥ २२० ॥ महाशय्या भूमिर्मस्तुमुपधानं
भुजलता वितानं चाकाशं व्यजनमनुकूलोऽयमनिलः ।
स्फुरद्दीपश्चन्द्रः स्वधृतिवनितासकृमुदितः सुखं
शान्तः शेते विगतभवभातिर्नृप इष ॥ २२१ ॥ मातर्माये
मगिति कुमते हे पितर्मोहजाल व्यावर्तध्वं भवतु
भवतामेष दोषो विद्यायः । सद्यो लघुमोरमणव्रणभ्रष्ट-
गङ्गाप्रवाहव्यामिधायां दृषदि परमप्रज्ञदृष्टिर्भवामि
॥ २२२ ॥ मातर्मेदिनि तात मादत सखे ज्योतिः
सुवन्धो जल भ्रातर्व्योम निपञ्च एव भवतामन्या
प्रणामाञ्जलिः । युष्मत्सङ्गवशांपजातसुकृताद्रेकः स्फुर-
न्निर्मलज्ञानापास्तसमस्तमोहमहिमा लाये परे प्रसन्न
॥ २२३ ॥ मातलंघिम भञ्जस्व कश्चिदपरं मरणाङ्घ्रिणो
मा स्म भूर्भोगेभ्यः स्पृहयालवो नहि वयं का निःस्पृ-
हाणामसि । सद्यःस्पृतपलाशपत्रपुटके पात्रे पवित्री-
कृते भिक्षासकृन्नुभिरेव सम्प्रति वयं वृत्ति समीहामहे
॥ २२४ ॥ मातापितृसहस्राणि पुत्रदारयतानि च ।

ही क्या रहा ॥ २२० ॥ जिसने भूमिको ही पर्वत, वायुको ही
कोमल तकिया, आकाशको ही चँदवा, वायुको ही सुख दे-
वाका पंका, चन्द्रमाको ही मल्लता हुआ दीपक मान लिया है
और जो अपनी धृति कपी स्त्रीके प्रसंगसे ही प्रसन्न रहता है
वही शान्तिपूर्ण व्यक्ति निर्भय होकर राजाके समान सुखकी
मीढ़ लेता है ॥ २२१ ॥ हे माता माया ! हे बहन बुद्धि !
हे पिता अज्ञान ! आप लोग मुझे छोड़कर चले जायें । आप
लोगोंका मुझसे भ्रष्टाके लिये वियोग हो जाय । अब तो
मैं भगवान् विष्णुके चरकोंसे निकली हुई गंगाके प्रवाहसे सरी
हुई चट्टानपर बैठकर परमज्ञाके साक्षात्कारके लिये तत्पर बैठा
हूँ ॥ २२२ ॥ हे माता भूमि ! हे पिता वायु ! हे मित्र अग्नि !
हे सुन्दर बन्धु जल ! हे भाई आकाश ! आप लोगोंसे यह
हाथ जोड़कर अंतिम प्रणाम है कि आप लोगोंके सम्पर्कसे
जो विशाल पुच्छ मिला है उससे मुझमें ऐसा निर्मल ज्ञानका
प्रकाश हो गया है कि समस्त अज्ञान दूर हो गया और मैं अब
परमज्ञामें जीव हो रहा हूँ ॥ २२३ ॥ हे माता लघुमी ! किसी
दूसरेके पास चली जाओ, अब मेरी चाह मत करो क्योंकि
मुझे भोगकी तनिक भी इच्छा नहीं । और विरकोंसे तुम्हारा
सम्बन्ध क्या है ! इस समय तो हम मुरन्त बनाकर जोए
हुए पलासके पत्तेके दोनोंमें सच्चा साकर ही अपना जीवन
बिता देना चाहते हैं ॥ २२४ ॥ जो सहस्रों माता-पिता,

तवान्मानि यातानि कस्य ते कस्य वा भवान्
॥२२५॥ मातुलो यस्य गोविन्दः पिता यस्य धनञ्जयः ।
सोऽपि कालवशं प्राप्तः कालो हि दुरतिक्रमः ॥२२६॥
मायन्मित्रकलत्रपुत्रकुतुपश्रेणोरखच्छृङ्खलावन्धव्यस्त-
गतेनिरुद्धमनसः क्रोधादि विद्वंशभिः । आस्तां ज्ञान-
सुधारसः किमपरं संसारकारागृहे क्रूरकोडनिवासिनो
न सुलभा वार्त्ताऽपि मोक्षं प्रति ॥२२७॥ माने
म्लायिनि खण्डिते च वसुनि व्यर्थं प्रयातेऽर्थिनि क्षीणे
बन्धुजने गते परिजने नष्टे शनैर्यौवने । युक्तं केवलमेत-
देव सुधियां यजजह्नुकन्यापयः पूतप्रायगिरौन्द्रकन्दर-
दरीकुले निवासः क्वचित् ॥ २२८ ॥ मान्धाता स
महीपतिः क्लितितलेऽलङ्कारभूतो गतः सेतुर्यन महो-
दधौ विरचितः फघासो दशास्यास्तकः । अन्ये चापि
युधिष्ठिरप्रभृतयो यावन्त एवाभवन्नेकेनापि समं गता
वसुमतो मुञ्ज स्वया यास्यति ॥ २२९ ॥ मितमायुर्ध-
योऽमित्यं नैति यातं कदाचन । परामृशन्ति तदपि

लैक्यों पुत्र-पुत्रियों और अनन्त संसारको चले गए वनमेंसे कौन
आपका था और आप किसके थे ॥ २२२ ॥ जिसके मामा
साक्षात् भगवान् कृष्ण और पिता अर्जुन थे वह अभिमन्यु
भी जब कालके गालमें समा गया तब वन-हुए कालके पक्षोंसे
कौन छुट सकता है ॥ २२३ ॥ मतवाले मित्र, स्त्री, पुत्र,
कुतुब आदिकी भनकनाती हुई सिकड़ीसे बंधे हुए और क्रोध
आदि शयुषोंमें फँसे हुए मनवाले, संसारकपी कारागारकी
निन्दुर गोदमें पड़े हुए प्राणीके लिये शानाभूत पानेकी तो बात
ही दूर है, वह मोक्षकी चर्चा भी नहीं करता सकता ॥ २२४ ॥
सम्मानकी कमी होनेपर, धन न रहनेपर, मैंगतोंके निराश चले
जानेपर, भाई-बन्धु न रहनेपर, परिवार समाप्त हो जानेपर
और धीरे-धीरे जवानी ढल जानेपर बुद्धिमानोंके लिये यही
एक सचित्त मार्ग रह जाता है कि गंगाजलसे पवित्र चट्टानों-
वाली गुफाओंकी झाड़ीमें जाकर बैठ रहें ॥ २२८ ॥ भोजने
अपने चाचा मुञ्जको सम्प्रेष मित्रवाया—‘इस पृथ्वीके भूपण
रत्ना मान्धाता चले गए, सागरपर पुल बंधनेवाले और
रावणको मारनेवाले राम भी चले गए, युधिष्ठिर आदि भी। जतने
रामा हुए वे भी जाते रहे पर यह पृथ्वी किसीके साथ नहीं
गई । किन्तु हे मुञ्ज । जान पड़ता है यह तुम्हारे साथ अवश्य
आयगी ॥ २२९ ॥ आयु थाढ़ा है, अवस्था भी कुछ टिकने-
वाली नहीं और बीती अवस्था भी फिरसे खौटकर आनेवाली
नहीं । ऐसी बाजें लोग सोचते तो हैं पर भोगके खोभसे संसार-

न भयं भोगलोनुषाः ॥२३०॥ मित्रं कलत्रमित्ररः परि-
वारलोको यागे हसाधनमिमाः किल सम्पदो नः । एकः
क्षणः स तु भविष्यति यत्र भूया नार्थं न श्रूयमन्तरं न
चयं न चेत ॥ २३१ ॥ मुग्धो जटी घटकलयांस्त्रिदण्डो
कपायवाला वनकशिनाङ्गः । व्यक्तेष्टिको वा यदि
नाप्तनत्त्वस्तदा ॥ तस्योभयमेव नष्टम् ॥ २३२ ॥ मृत्यो-
र्विभेपि किं मृड भोतं मुञ्जति किं यमः । अज्ञानं नैव
गृह्णति कुरु यत्तमजन्मनि ॥ २३३ ॥ श्रियमाणं मृतं
यन्धुं शीवन्ति परिदेवितः । आत्मानं मानुशोचन्ति
कालेन कवलीकृतम् ॥ २३४ ॥ यन्त्रान्तिः समयं श्रुतिः
शिव शिवेश्रुक्ती मनातिवृत्तिर्भक्तं चाभिरुचिधनेषु
विरतिः शब्दसमार्थो रतिः । एकान्ते वसतिर्गुणी
प्रति नतिः सद्भिः समं सङ्गतिः सर्वे प्रीतिरनङ्गनि-
मिर्तिरसी सन्मुक्तिमार्गं स्थितिः ॥ २३५ ॥ यत्रानेके
कषावदपि गृहे तत्र तिष्ठत्यधिका यत्राप्येकस्मिन्नु
यह्यस्तत्र नैकोऽपि चाप्ते । इत्थं चेन्नो रजनिदिवर्ता

की नश्वरतापर विचार नहीं करते ॥ २३० ॥ मित्र, स्त्री, परि-
वारके लोग और संसारका व्यवहार चलानेवाली सम्पत्ति
हमारे पास भले हाँ हाँ पर एक समय ऐसा आयेगा ही जब
यह, तुम, अन्य लोग तथा हममेंसे कोई न रह जायँगे ॥ २३१ ॥
हम भले हाँ सिर मुड़ा लें, जटा रखा लें, पेड़की छाँव पहन
लें, शिष्यवाँ बन जायँ गेरुआ वस्त्र पहनकर नियम-धर
रसकर शरीर सुला दें और इस संसारकी सभी वस्तुओंसे
क्षिप्त हो जायँ पर यदि आत्माका बोध न हुआ तो समझता
चाहिए कि यह लोक और परलोक दोनों ही हाथसे निकल
गए ॥ २३२ ॥ चरे मूर्ख ! तू शत्रुसे क्यों डरा फिरता है ? क्या
हरनेवालेको यमराज छेड़ देता है ? वह केवल उसी व्यक्तिको
नहीं छेड़ता जो संसारमें उत्पन्न न हुआ हो । इसलिये तू भी
कुछ ऐसा ही उपाय कर कि फिर जन्म न लेना पड़े ॥ २३३ ॥
लोग मरते हुए तथा मरे हुए बन्धुके लिये ही विज्ञाप करके
शोक प्रकट करते हैं पर कालके सुखमें पड़े हुए अपने आपके
लिये शोक नहीं करते ॥ २३४ ॥ सहनशीलता, समय-समय-
पर शास्त्रका अभ्यास, ‘शिव-शिव’ कहकर मनकी शान्ति,
भिक्षामें सुख, धनसे विरक्ति, सदा समाधिमें अनुराग, एकान्तमें
निवास, सज्जनोंका संग, आत्मवित्तनमें प्रेम और कामपर
विजय ही मोक्ष मार्गपर पहुँचनेके लक्षण हैं ॥ २३५ ॥ जिस
घरमें बहुतसे लोग थे उसमें एक ॥ रह गया । जिस घरमें
एक ही था उसमें कुछ ही समयमें बहुतसे हो गए और अन्तमें

दोलयन्द्वाविवाक्षी कालः कादया भुवनफलके कोडति
प्राणिसारेः ॥ २३६ ॥ यत्रैकं भूतमक्षरं पशुपतेर्हनुः
श्रुतीनां कृतौ सद्यो रोहति चाष्टधा तनुभूनां यत्रैकमु-
द्यद्गुः । यत्रैकाभ्यनदोक्तोऽपि विभूने सर्वेषु सा धार्यते
सा दृष्टाद्भुतवैभवा कथिगिरां पारे हि धाराणसी ॥ २३७ ॥ यदस्माभिर्दृष्टं क्षणिकमभवत्स्वप्नमिव तरिक-
यन्तो भावाः स्युः स्मरणविषयादप्यवगताः । अहो
पश्यन्पश्यन्त्यन्नमखिलं यास्तमनिशं हतमोडं चेत-
स्तदपि न भवेत्सङ्गरहितम् ॥ २३८ ॥ यदा पूर्वं
भासीदुपरि च तथा नैव भविता तदा मध्यावस्थाक्ष-
णपरिचयो भूतनिधयः । अतः संयोगेऽस्मिन्परिणति-
वियोगे च सहजे किमाधारः प्रेमा किमधिकरणाः
सन्तु च शुचः ॥ २३९ ॥ यदासौदृक्कान् स्मरतिमिर-
संस्कारजनितं तदा दृष्टं मारीमयमखिलमेतज्जग-
दिति । इषानीमस्माकं पटुतरविषेकाञ्जनजुषां समी-

भूता दृष्टिस्त्रिभुवनमपि ग्रह्य मनुते । २४० ॥ यदासौ
दुर्वारः प्रसरति मदश्चित्करिणस्तदा तस्योद्दामप्र-
सररसरुद्वेर्व्यवसितेः । क्व तद्वैर्यात्तानं क्व च निज-
कुलाचारनिमज्जः क्व सा लज्जारज्जुः क्व यिनयक-
डोगकुशमपि ॥ २४१ ॥ यदेतत्स्वच्छन्दं विहरणमका-
र्षण्यमशनं सहायैः संलापः भूतमुपशमैकमतफलम् ।
मनो मन्त्रस्पर्शं वहिरपि चिरस्यापि विमृशज जाने
कस्यैषा परिणतिरुदारस्य तपसः ॥ २४२ ॥ यद्ब्रह्मो-
दधिसमरसो सागरान्यं ज्ञातो तद्ब्रह्मोयालयपरिगतौ
सामरस्यैकभूतौ । भेदातीतं परिलयगतं सखिद्वानन्द-
रूपं निखैगुण्ये पथि विवरतः को विधिः को निषेधः
॥ २४३ ॥ यद्वात्मानं सकलवपुषामेकमन्तर्बहिःस्थं दृष्ट्वा
पूर्णं जमिध सततं सर्वभाण्डस्थमेकम् । नाम्यत्कार्यं
किमपि च ततः कारणाद्भिन्नरूपं निखैगुण्ये पथि
विवरतः को विधिः को निषेधः ॥ २४४ ॥ यन्मध्ये

किर एक भी न रह गया । इस प्रकार काख ही रात और दिनके
दो पासे लेकर संसारकपी गुप्ते कीपदपर चलाता हुआ
जीवोंकी हार्दिक ललाटकांक्षोंके साथ खेल खेलता रहता है
॥ २३६ ॥ काशीमें ऐसी जो बड़ी-बड़ी आश्चर्यजनक घटनाएँ
होती हैं उनका क्या कोई कवि वर्णन कर सकता है ? वहाँ
सरसे समय शिवजीसे तारक मन्त्रका एक अक्षर सुनकर प्राणी
तत्काल शंकर बनकर वेदोंका निर्माता बन जाता है । उसके
एक ही शरीरके आठ शरीर (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु,
आकाश, सूर्य, चन्द्रमा तथा यज्ञका यजमान) हो जाते हैं
और एक ही गङ्गाजल शरीरपर पड़ते ही सारी गङ्गाजी सिरपर
का धौलती हैं ॥ २३७ ॥ मैंने जिनकी वस्तुएँ देखीं वे सब
स्वप्नके समान नष्ट हो गईं । कितनी ही वस्तुएँ तो ऐसी हैं
कि उनका स्मरणक नहीं रह गया । क्या वह कम आश्चर्यकी
बात है कि लोगोंकी निरन्तर संसारसे चले जाते देखते हुए भी
वह निर्लज्ज मन संसारका सङ्ग नहीं छोड़ पा रहा है ॥ २३८ ॥
वे प्राणी न तो पहले थे और न आगे रहेंगे । वे सब तो बीच-
में लयमरके साथी हो गए हैं । इसलिये जब संयोगसे मिलना
हुआ है और अन्तमें वियोग निश्चिन ही है तब किस भरोसे
उनसे प्रेम किया जाय और किसके लिये शोक मनाया जाय
॥ २३९ ॥ जिस समय काम-रूपी भयंकर अन्धकाशमें अज्ञान
बसा हुआ था उस समय वह सारा संसार शत्रुके रूपमें
दिखाई देता था । किन्तु इस समय वह विचार-करी आँख

जोड़में जगा खेनेपर हमारी दृष्टि सबको समान समझने लगी
और सारा त्रिभुवन ब्रह्ममय दिखाई देने लगा ॥ २४० ॥
अब मनकपी हाथीसे धारा-प्रवाह मद निकलने लगता है, इस
समय उसके मक्कल आईकारपूर्ण व्यवहारके सामने धीरताकपी
लज्जा, कुलके सुन्दर आचारकरी अज्ञान, लज्जारूपी रस्सी और
यिनयकपी कठोर श्रृङ्खला सब व्यर्थ हो जाते हैं ॥ २४१ ॥
स्वतंत्र भूमना, बिना मर्गे भोजन करना, सारुप्यसे बातचीत
करना, शान्ति देनेवाले शास्त्रका चितन करना और बाहरी
वस्तुओंमें बहुत समता न रखना किसी बड़ी तपस्याके ही फल-
से होता है ॥ २४२ ॥ जैसे नदी और समुद्रका जल मिलकर
दोनों पवित्र हो जाते हैं, उसी प्रकार जीव भी ब्रह्म रूप बन
जाता है । इस समय भेद-रहित, एक रूप, साथ ज्ञान तथा
आनन्दस्वरूप आत्माकी जानकारी मायासे शून्य मार्गमें भ्रमण
कानेवाले व्यक्ति के लिये कर्तव्य और अकर्तव्यका विचार
कैसा ॥ २४३ ॥ जो व्यक्ति सभी प्राणियोंके भीतर तथा बाहर
स्थित, एक, पूर्ण, आकाशके समान सब स्थानोंमें व्यापक,
सभी वस्तुओंका कारण और जिसके अतिरिक्त कोई कार्य नहीं
है उस आत्माका साक्षात्कार करके मायासे दूरकर भ्रमण करने
लगता है उसके लिये कर्तव्य और अकर्तव्य सब समान हैं
॥ २४४ ॥ जो पशु पहले, बीचमें और अन्तमें सुंदर दिखाई
देता वही अपवित्र, नाशवान् तथा पुष्टा करने योग्य प्रतीत
हुँ ॥ २४५ ॥ जिन-जिन वस्तुओंमें मेरी समता है, उन्हीं-

यद्यपि पर्वन्ते यथापाते मनोरमम् । सर्वमेवापवित्रं
तद्विनाशमेध्यवृणितम् ॥२४५॥ यस्मिन्वस्तुनि ममता
मम तापस्तत्र तत्रेव । यत्रैवाद्रमुदासे तत्र मुराने
स्वभावसन्तुष्टः ॥ २४६ ॥ यस्मिन्विषये सकलभुवनं
सामरस्यैकभूतमूर्त्तिं ह्यापोऽनलमनिलयं जीवमेव
क्रमेण । यत्काराच्चौ समरसनया सैन्धवैकत्वभूतं
निखैगुण्ये पथि विचरतः को विधिः का निषेधः
॥ २४७ ॥ याश्चाश्रम्यमयत्नलभ्यमशनं वायुः कुतो
वेधसा व्यालानां पशवस्तृणाङ्कुरभुजः सुस्थाः स्थली-
शायिनः । संसारार्णवतद्वनतमधिषां घृत्सः कुना सा
नृणां यामन्येपयतां प्रयान्ति सततं सर्वे समाप्तिं गुणाः
॥ २४८ ॥ यार्त्तं यौवनमधुना वनमधुना शरणमेकम-
स्माकम् । स्फुरदुदहारमणीनां हारमणीनां गतः कालः
॥ २४९ ॥ यायस्तः कुर्वते जन्तुः सम्बन्धाम्मनसः
प्रियाम् । तावन्तोऽस्य निखन्यन्ते हृदये शोकशङ्खवः
॥ २५० ॥ येषां निमेषोन्मेषाभ्यां जगतां प्रलयोदया ।
तादृशाः पुरुषा याता मादृशां गणैश्च का ॥ २५१ ॥

येषां बलभया मद्र सगमपि क्षिमे क्षपा क्षीयन्ते तेषां
शानकरः शशा विरद्विनाशुरमेव सन्नापकम् । अस्माकं
मुनयलभान विरदस्तेतोभयभ्रंशनामिन्दू राजति
दर्पणाकृतिरसा नाणो न वा शानलः ॥ २५२ ॥ येषां
श्रीमद्यशोदामुनपदकमले नास्ति भाक्तनगाणां येषामा-
भीरकन्याप्रियगुणकथने नानुरक्ता रम्या । येषां
श्रीकृष्णलीलालंकितगुणरसे मादरा तेव कर्षा धिक्ता-
न्धितान्धिगेनान् कथयन्ति सततं कान्तनस्यां मृदङ्गः
॥ २५३ ॥ येषु येषु दृढं बद्धा भायना दृष्टवस्तुषु ।
तानि तानि विनष्टानि दृष्टानि किमिहात्मनम् ॥ २५४ ॥
रक्तमांसमयः कायः स्त्रीणां स्पर्शमुखाय नः । तमेवा-
श्रन्ति सिंहाद्या रम्यं नास्तीह वस्तुनः ॥ २५५ ॥
रथ्यान्तश्चरतस्तथा धूमजराकस्थालयस्याध्वगैः
सत्रासं च सकातुकं च सद्यं दृष्टस्य तेनांगरेः ।
निष्पार्जाकृतचित्सुधारसमुदा निद्रायमाणस्य मे
निःशङ्कं करटः कदा करपुटीभिर्नां विव्वाण्डप्यति
॥ २५६ ॥ रम्यं हृम्येतलं न किं वसतये धर्म्यं न मेया-

इन्हीं वस्तुओंमें दुःख है और जिनकी मैं अपेक्षा करता
हूँ वहीं मुझे सम्पत्ति हो जाता है और मैं प्रसन्न रहता
हूँ ॥ २४६ ॥ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, आँव, जगत्
और सारा प्रकार इस प्रकार है इस प्रकार मिला हुआ है जैसे
सारे सन्तुष्टोंमें मिलकर नभक एक रूप हो जाता है । यह सम-
क जो व्यक्ति मायासे दूर दूरकर भ्रमण करता है उसके लिये
कर्तव्य और अकर्तव्यका विचार कैसा ॥ २४७ ॥ ईश्वरने
सर्वोंके लिये वायु भोजन बनाया जो बिना भाँगे और बिना
परिश्रम ही उन्हें मिल जाता है, इसी प्रकार भाल खाकर वनमें
लुल्लसे सोनेवाले पशु भी सुखी रहते हैं पर जिनकी बुद्धिने
संसार-सागर पार नहीं कर पाया, ऐसे मनुष्योंके लिये ईश्वरने
ऐसी नीयिका बनाई कि उसके हुँवते रहनेमें ही मनुष्यके सारे
गुण समस्त हो जाते हैं ॥ २४८ ॥ इस समय मेरा यौवन भी
नहीं रहा और अब केवल वनकी शरण लेना भर रह गया है ।
अहो ! वनकीछे द्वार और मणियोंसे सजी हुई स्त्रियोंके
सम्पर्कका समय भी जाता रहा ॥ २४९ ॥ प्राणी जितना ही अपने
सौसारिक नातेको प्रिय समझता है उतना ही उसके मनमें
शोक-रूपी कीलें गढ़नी जाती हैं ॥ २५० ॥ जब संसारसे ऐसे
योग ही बँट गए जिनकी पलक गिरते ही संसारका नाश और
पलक उठते ही संसारकी रचना हो जाती थी, तब हम जैसीकी

जिनकी ही क्या है ॥ २५१ ॥ अपनी प्रिय पत्नीके साथ
जिनकी रातें चणके समान लम्बे हो पस जाती हैं वहींके
क्रिये विरहमें अन्धरा लूकने समान कष्ट देनेवाला हो जाता है ।
पर हमारे पास तो न प्रिय पत्नी ही है न विरह ही, इसलिये
हमारे लिये तो अन्धरा दर्पणके समान है, न गरम न ठंढा
॥ २५२ ॥ यशोदानन्दन श्रीकृष्णके चरण-कमलमें जिसका
प्रेम नहीं है, राधारनिके गुणोंका वर्णन करनेमें जिनकी जीभको
अनुराग नहीं है, श्रीकृष्णके चरित्रकी सुन्दर कथा सुननेमें जिनके
कान जगते नहीं वहींका कष्ट करके कान्तनमें बजता हुआ
मृदंग बजा करता है वहाँ धिक्कार है वहाँ धिक्कार है ॥ २५३ ॥
अपनी आँखोंसे देखी हुई जिन-जिन वस्तुओंमें मुझे स्थिरताका
विश्वास था वहाँ मैंने जब नष्ट होते देखा तो कताओ फिर उत्तम
वस्तु है कहाँ ॥ २५४ ॥ हमारे रुधिर और मांससे बना हुआ
जो शरीर स्त्रियोंके स्पर्शका सुख पाता है उसीको सिंह आदि
मोक्ष-मचक जीव जब खा जाते हैं तब यही विश्वास होता
है कि यह शरीर सचमुच सुन्दर नहीं है ॥ २५५ ॥ वह
समय कब आवेगा जब मैं गजियोंमें पुरानी गुदकीके टुकड़े
जैसे घूमता हूँ, मार्गमें चरनेवाले नगरवासी मेरी ओर
भय, चारवर्ष और दयासे देखते होंगे, मैं आत्माके बोध-रूपी
अमृत रसको पीकर सबी प्रसन्नतामें डूबा हूँगा और कौ-

दिकं किंवा प्राणनमासमागममुखं नैवाधिकं प्रीतये ।
किं तृङ्गान्तपतत्पतङ्गपवनव्यालोलदीपाङ्कुरच्छायाच-
ञ्चलमाकलय्य सकलं सन्तो वनान्तं गताः ॥ २५७ ॥
रागित्यपि विरागित्यः स्त्रियस्तासु रमेत कः । अहं
च कलये मुक्तिं या विरागिणि रागिणी ॥ २५८ ॥
रात्रिः सैष पुनः ॥ एष दिवसो मत्स्या मुधा जन्तवो
धावन्त्युद्यमिनस्तथैव निभृन्पारब्धनक्षत्रिकाः ।
व्यापारैः पुनरुक्तभुक्तविषयैरेवंविधेनामुना संसारेण
कथ्यिताः कथमहो मोहान्न लज्जामहे ॥ २५९ ॥ रेतः
शोणितयोरियं परिणतिर्यद्दुर्मं तन्नामवन्मृत्योरुत्पद-
माश्रयो गुरुशुचां रोगस्य विभ्रामभूः । जानन्नप्यवशी
विवेकधिरहान्मज्जन्नविद्याभ्युधा शृङ्गारोयति पुत्रका-
म्यति यत स्त्रेयायति स्त्रोयति ॥ २६० ॥ लब्धास्य-
काश्च संसारे यावन्तो बान्धवास्तथा । न सन्ति ललु
तावन्त्यो गङ्गायामपि बालुकाः ॥ २६१ ॥ लाटीनेत्र-
पुटीपयोधरवटोकीडाकुटादोस्तटीपाटीरदुमवर्णनेन
कविभिर्मूढैर्दिनं नीयते । गोविन्देति जनार्दनेति जगतां

बैलठके हमारे हाथमें पड़ी हुई भिन्ना लुटते होती ॥ २५७ ॥
क्या सन्तोंको रहनेके लिये सुन्दर भवन नहीं मिलते थे या
सुननेको शब्दोंसे नहीं मिलते थे या प्राण-प्रियाके सुप्तसे
प्रसन्नता नहीं होती थी किन्तु वे मुद्दिमान् लोग उद्वेग गिरते
हुए पतंगोंके झोंकेमें हिलते हुए द्वापकके कीके समान जगत्को
चञ्चल समझकर ही वनमें जा गये ॥ २५८ ॥ ऐसी स्त्रियोंपर
कौन समझदार आसक्त होगा जो अनुराग करनेवालोंपर वैराग्य
करती हैं । मैं तो उस मुक्तिको चाहता हूँ जो वैराग्य करने-
वालोंपर अनुराग करती है ॥ २५९ ॥ फिर वही रात, फिर
वही दिन, यह सब समझते हुए भी लोग जगनसे अपने-
अपने कामोंमें लगे हुए पहलेकी भाँति दीप्त रहे हैं । उन्हीं
काम-धंधोंमें, उन्हीं बार-बार आँगी हुई वस्तुओंमें, तथा उन्हीं
संसारके झमेलों पड़े हुए हम लोग फिर भी अपने मोक्षपर
लजित नहीं हो रहे हैं ॥ २६० ॥ यह शरार माताके रज तथा
पिताके धीर्यसे बना है, मृग्युका निवास-स्थान है, विशाल
शोकका अड्डा है, रोगका विभ्रामस्थान है, यह जानते हुए भी
अज्ञान-सागरमें डूबा हुआ विचारहीन प्राणी शृंगार चाहता
है, भूमि चाहता है और स्त्रीकी अभिलाषा करता है ॥ २६० ॥
संसारमें जतने संबंधों मिले और जोड़कर चले गए उतने तो
भंगामें बालुके कण भी नहीं हैं ॥ २६१ ॥ सुन्दरी नवेलियोंके

नाथेति कृष्णेति च व्याहारैः समयस्तदेकमनसा पुंसा-
मतिक्रामति ॥ २६२ ॥ सालां वक्त्रासधं वेत्ति मांस-
पिण्डो पयोधरो । मांसास्थिकुटं जघनं जनः कामप्र-
हस्तुरः ॥ २६३ ॥ लावण्यं तदसौ कान्तिस्तद्रूपं स
वधःक्रमः । तदा सुधास्तदमभूदधुना तु ज्वरो महान्
॥ २६४ ॥ वनान्यमूनि न गृहाण्येता नद्या न योषिताः ।
द्रुमा इमे न दायादास्तन्मे नन्दति मानसम् ॥ २६५ ॥
वयं येषो जाताश्चित्तदगता एव जनु ते समं वैः
संवृद्धाः स्मरणपदार्थो तेऽपि गमिताः । इदानीमेते
स्मः प्रतिदिवसमासव्रतगता गतास्तुल्यायस्यां सिक-
तिलनदीतीरतरुभिः ॥ २६६ ॥ वर्तमानक्षणादूर्ध्वं
स्थितौ कायस्यकाप्रमा । तथाति जीवनायाहो चिन्ता
कल्पास्तवतिमो ॥ २६७ ॥ विद्या नाधिगता कलङ्क-
रहिता चित्तं च नोपार्जितं शुभ्रूपापि समाहितेन मनसा
पित्रोर्न सम्पादिता । आलोलायतलोचना युवतयः
स्वप्नेऽपि नालिङ्गिताः कालोऽयं परपिण्डलोलुपतया
काकैरिव मेरितः ॥ २६८ ॥ विषमप्रशङ्गयै सेव्यन्ते यदि

मेघ, कलतके समान स्तन, कीड़ा-टूट, सुमार्द और चन्दनके
बूझ आदिके वर्णनमें मूर्ख कवि दिन बिताते हैं किन्तु भगवान्में
मन लगानेवाले पुण्य है गोविन्द ! हे जनार्दन ! हे जगन्नाथ !
हे कृष्ण ! कइते हुए दिन बिताते हैं ॥ २६२ ॥ कामके फेरमें
पड़ा मनुष्य तारकी सुलका आसव, मांसके जोषकोंकी स्तन
तथा मांस और हड्डियोंके समूहकी शरीर समझता है ॥ २६३ ॥
वही सुन्दरता, वही शोभा, वही आकार और वही बोझनेका
रंग जो उस समय अमृतसे भरा जान पड़ता था वही
अब ज्वरके समान ताप दे रहा है ॥ २६४ ॥ वे घर नहीं बन
हैं, वे स्त्रियाँ नहीं नदियाँ हैं और वे भार्द-बंध नहीं
बूझ हैं इसीलिये मेरा विल प्रसन्न है ॥ २६५ ॥ जिनसे
हम व्यवहृत्त हुए वे बहुत पहले ही चञ्चल हुए, जिनके
साथ हमारा पावन-पीपक हुआ वे भी स्मरणा नहीं आते,
हमारा भी जाना अब पास ही है, इसलिये इस समय हमारी
दशा नदीके बलुए तटपर खड़े वृक्षके समान है ॥ २६६ ॥ वर्त-
मान चणके परचाय इस शरीरके रहनेका भजा क्या भरोसा !
फिर भी इस जीवनके लिये चिन्ता ऐसी है मानो कल्पान्त-तक
जिना हो ॥ २६७ ॥ मैंने न तो अच्छी विद्या पढ़ी, न धन
कमाया, न मन लगाकर माता-पिताको सेवा की, न बड़ी-बड़ी
चञ्चल आँखोंवाली स्त्रियोंको गलेसे लगाया, परन्तु कोपके समान

कष्टेन भूयतः । तत्करिष्यति कष्टापि विपत्तिक्रमधिकं
ततः ॥ २६६ ॥ विवेकः किं सोऽपि स्वरसज्जनितः यत्र
न कृपा स किं योगी यस्मिन्न भवति परानुग्रहरसः ।
स किं धर्मो यत्र स्फुरति न परद्रोहविरतिः कृतं किं
तद्वा स्यादुपशमफलं यत्र भवति ॥ २६७ ॥ विवेक एव
व्यसनं पुंसां क्षपयितुं क्षमः । अपहर्तुं समर्थोऽसौ
रक्षिरेव निशातमः ॥ २६८ ॥ विशोर्लः प्रारम्भो यपुरपि
जराव्याधिधिधुरं गतं दूरे विप्रस्वजनभरणं वाञ्छित-
मपि । इदानीं व्यामोहादहह विपरिते हतविधो विधेयं
यत्तत्त्वं स्फुरति मम नायापि हृदये ॥ २६९ ॥ विपं
विषयवैषम्यं न विषं विषमुच्यते । जन्मान्तर्गताः
विषया एकदेहहरं विषम् ॥ २७० ॥ घेदस्याध्ययनं
कृतं परिचितं शास्त्रं पुराणं स्मृतं सर्वं व्यर्थमिदं पदं
न कमलाकान्तस्य चेत्कोर्तितम् । उरध्वतं सदृशोक्तं
विरचितः सेकोऽभ्रसा भूयसा सर्वं निष्फलमालवा-
लधस्ये क्लृप्तं न बीजं यदि ॥ २७१ ॥ व्याघ्राव निष्ठति

जग पश्चिर्जगन्ती गंगाश्च शत्रव इव प्रहरन्ति देहम् ।
आयुः परित्यज्यति भिन्नवटादिवाम्भो लोकतथाप्य-
हितमाचरन्तानि चित्रम् ॥ २७२ ॥ व्यामोहान्तर्विहा-
रितोऽपि विहगाः सम्प्राप्तवन्त्यापदं यद्यन्ते निपुणै-
राधर्मलिलान्मन्याः समुद्रादपि । दुर्नोतं किमिहास्ति
किं सुचरितं कः स्थानलाभे ह्यः कालो हि व्यसन-
प्रसारितकरो गृह्णाति दूरादपि ॥ २७३ ॥ शय्या शास्त्र-
लमासनं शुचि शिला सद्य द्रमाणामघः शीतं निर्भर-
वारि पानमशनं कन्दाः सहाया मृगाः । इत्यप्रार्थित-
लभ्यसर्वविभवे दायाऽयमेको यन् दुष्प्रापार्थिनि यत्प-
नार्थघटनायन्धैर्वृथा स्वीयते ॥ २७४ ॥ शरदम्बुधर-
हृद्यागदरवर्गो यावनश्रियः । आपातरम्या विषयाः
पर्यन्तपरितापिनः ॥ २७५ ॥ शान्तिफलसलसरकण्डो
मनःस्थालीमिलस्करः । त्रिपुरारिपुरद्वारि कदाहं
भोक्तुमिच्छुः ॥ २७६ ॥ शुचां पात्रं धात्री परिणतिर-
मेध्यप्रचयभूरयं भूतावाप्तो विमृश कियती याति न

दूसरोंके लिए दुकड़ोंके खोममें जीवन बिताता रहा ॥ २६८ ॥
यदि अपनी विपत्ति दूर करनेके लिये अधिक कष्ट भोगकर
राजाओंकी सेवा करनी पड़े तो विपत्ति ही इससे बढ़कर क्या
कष्ट दे सकती है ॥ २६९ ॥ वह विचार कैसा जिसमें
स्वाभाविक कृपा नहीं । वह योग कैसा जिसमें दूसरोंकी
भलाईकी इच्छा नहीं, वर धर्म कैसा जहाँ दूसरोंसे विरोधकी
शान्ति नहीं, वह शास्त्रका ज्ञान कैसा जिससे शान्ति न मिले
॥ २७० ॥ जैसे रातके सँधेको केवल सूर्य ही दूर कर सकता
है वैसे ही केवल विचारसे ही प्राणोंकी विपत्ति दूर हो सकती है
॥ २७१ ॥ पहले तो हमारे जीवनका प्रारम्भ ही बिगड़ गया,
बुढ़ापे और रोगने शरीर नष्ट कर डाला, प्रार्थना और सम्ब-
न्धियोंके पोषणकी बात तो दूर रही, इस समय नीच भाग्यके
खलट जानेपर तो काम करना चाहिए वह भी अज्ञानके कारण
मेरे मनमें नहीं सूक रहा है ॥ २७२ ॥ विषयों (रूप, रस,
गन्ध, स्पर्श, शब्द) की डलकन ही विष है, विष विष नहीं है,
क्योंकि विष तो एक ही देहको नष्ट करता है किन्तु विषय तो
आगे आनेवाले जन्मको भी नष्ट कर डालते हैं ॥ २७३ ॥ यदि
क्षेमोपति भगवान्के चरणका कीर्तन नहीं किया तो वेदका
दिया हुआ सम्पन्न, पढ़े हुए शास्त्र-पुराणका स्मरण सब
वैसे ही व्यर्थ है जैसे खोदकर बरामर किया हुआ और सींचा
हुआ वह भविष्य जिसमें बीज न बोया गया हो ॥ २७४ ॥ बुढ़ाई

हमारे निम्न वाचिकके समान चढ़कर बराबर फटकारती रहती
है, रोग भी शत्रुके समान शरीरपर कोड़ा फटकारते रहते हैं,
आयु भी फूटे चढ़ेके पानीके समान निकलती जाती है, फिर
भी आश्चर्यकी बात तो देखो कि लोग पुरे काम करते ही
चलते हैं ॥ २७५ ॥ आकाशमें उड़नेवाली पक्षीनक विपत्तिमें
पड़ जाते हैं, बुद्धिमत् लोग अथाह समुद्रमें भी मछलियों
पकड़ लेते हैं, इस संसारमें किसीके भले-पुरे कामपर विचार
नहीं होता और चरखे स्थानपर रहनेमें भी क्या लाभ है ?
क्योंकि काल तो सदा विपत्ति देनेवाले अपने लक्ष्य हाथसे दूरसे
ही पकड़ लेता है ॥ २७६ ॥ मनमें पहुँचकर धर्मात्मा जोमू-
न-बादन करता है—'यहाँ वास हो चिड़ीना है, सुन्दर चट्टानें ही
आसन हैं, पेड़ोंकी छाया हो घर है, पानेके लिये शीतल झरने-
का जल है, खानेके लिये कन्दमूल हैं, हरिणोंका साथ है । इस
प्रकार मनमें और सब सुखकी सामग्रियों तो बिना परिश्रमके
मिल जाती हैं किन्तु एक दोष यही है कि यहाँ याचक नहीं
मिलते हैं । इसलिये परोपकारका अवसर न पानेके कारण यहाँ
ठिकना व्यर्थ है ॥ २७७ ॥ तरुणार्द्ध शरदके बादलकी परछाईंके
समान ही मुरन्त समाप्त हो जानेवाली होती है । भोग पहले
तो अच्छे लगते हैं किन्तु अन्तमें दुःख देते हैं ॥ २७८ ॥
गलेमें शान्तिरूपी गुदड़ी डालकर और हाथमें मनरूपी धात्री
लेकर मैं मोक्षको भिन्न मार्गनेके लिये शंकरजीके द्वारपर

दशाम् । तदस्मिन्धीराणां लक्ष्मपि किमास्थातुमुचितं
 खलीकारः कोऽयं यदहमहमेवेति रमसः ॥ २८० ॥
 श्वशाने च दिगन्ते च स एव ललनास्तनः । श्वभिरा-
 स्वाद्यते काले लघुपिएड इवाभ्यसः ॥ २८१ ॥ श्रियो
 होलालोला विषयजरसाः प्रान्तधिरसा विषदग्दं देहं
 महदपि घनं भूरि निधनम् । वृद्धल्लोको लोकः सतत-
 मयला दुःखयहलास्तथाप्यस्मिन्धोरे पथि वत रता
 हन्त कुधियः ॥ २८२ ॥ संसारगात्रिदुःस्वप्ने शून्ये देह-
 भये भ्रमे । आस्थां चेदनुग्रहामि तन्मूर्खो नास्ति
 मरपरः ॥ २८३ ॥ संसारे पतितानां कुशलं किं पृच्छयते
 शरीरभृताम् । पतितस्य दहनराशो ध्वधोऽसि न वेति
 कः प्रश्नः ॥ २८४ ॥ सत्यं मनोरमा रामाः सत्यं रम्या
 विभूतयः । किन्तु मत्ताङ्गनापाङ्गभङ्गलालं हि जीवि-
 तम् ॥ २८५ ॥ सत्यं वक्तुमशेषमस्ति सुलभा घाणो
 मनोहारिणी दातुं दानपरं शरयमभयं स्वच्छं
 पितृभ्यो जलम् । पूजार्थं परमेश्वरस्य विमलः

स्वाध्याययज्ञः परं सुध्यायेः फलमूलमस्ति शमनं
 फलेशात्मकैः किं धनैः ॥ २८६ ॥ सन्त्येके धनलाभमा-
 जगहनव्यामोहसम्पृच्छिताः केचिद्देवतसुन्दरीस्तनप-
 रीरम्भमव्याकुलाः । अन्तर्भूतसमस्ततत्त्वमिवहं
 चिन्मात्रशेषं शिवं दृष्ट्वा हृष्टनूकडाङ्कुरभराः कथं
 न शिष्टाः फवचित् ॥ २८७ ॥ सन्ध्यावन्दनं भद्रमस्तु
 भवते भो ज्ञानं शुभं नमो भो देवाः पितरश्च तर्पण-
 विधौ नाहं क्षमः क्षम्यताम् । यत्र क्वापि निषद्य
 यादयकुलोत्तंसस्य बंसद्विषः स्मारं स्मारमघं हरामि
 तदलं मन्ये किमन्येन मे ॥ २८८ ॥ समाश्लिष्यत्युच्चै-
 र्धनपिशितपिशडं स्तनघ्रिया मुखं लालाफिलभं पिबति
 लयकं सासघमिव । अमेध्यक्लेदाद्रं पथि च रमते
 स्पर्शरसिका महामोहान्धानां किमिह रमणीयं न
 भवति ॥ २८९ ॥ सम्भोगाद्विषयामिषस्य परितः सौहि-
 र्यमस्तापि ज्ञानमोमेपतया कथं तद्य भवेद्व्यास्पृशं
 देहिनः । साध्यं तद्धि तदेव साधनमितो व्यावृत्तिरे-

कथं पटुर्बुद्धिः ॥ २९० ॥ इस पृथ्वीमें शोक ही शोक है, यहाँ
 रहनेका परिणाम भी समझना होता है, प्राणियोंकी स्थितिमें
 भी न जाने कितने परिवर्तन होते रहते हैं, फिर कताहुए तो
 साही कि ऐसे जगत्में बुद्धिमानोंका क्या एकभर भी उदरना
 उचित है जिसमें सब लोग मैं-मैं कहते हुए अपनी दुर्गति करा
 रहे हैं ॥ २९० ॥ रमणानमें या विभिन्न दिशाओंमें उसी स्त्रीके
 स्तनको कुत्ते ऐसे खाने हैं जैसे बबका छोटा-मोटा मांस हो
 ॥ २९१ ॥ लक्ष्मी कुत्तेका पैंगोंके समान हथर दधर बाया-
 खाया करती है, भोगोंका स्वाद अन्नमें नीरस हो जाता है,
 शरीर भी रोगका निवास-स्थान है, विशाल धनकी राशि भी
 मृत्यु है, संसार शोकसे भरा पड़ा है, शिखरों सर्वदा दुःख देने-
 वाली होती है, फिर भी दुर्बुद्धिवाले लोग इसी भयंकर मार्गपर
 चलनेके लिये उत्सुक रहते हैं ॥ २९२ ॥ आ शरीर वस्तुतः
 नहीं है उसका यदि मैं संसाररूपी रातमें स्वप्न देखता हूँ तथा
 उसकी सत्यतापर विश्वास करता हूँ तो मुझसे बढ़कर दूसरा
 कोई मूर्ख नहीं ॥ २९३ ॥ लोग संसारमें पड़े हुए प्राणियोंकी
 भला क्या कुशलता पूछते हैं, आगके डेरमें गिरे हुए व्यक्तिसे
 भला यह पूछना कहाँतक ठीक है कि तुम जले वा नहीं
 ॥ २९४ ॥ शिखरों भले ही सुन्दर हों, संपत्ति भी अच्छी हो
 किन्तु यह जीवन भी मत्तवाली स्त्रीकी आँसुकी कौरसे कम
 अच्छा नहीं है ॥ २९५ ॥ सत्य बोलनेके लिये सुबोहर बाकी

भी मिथी हुई है, पितरोंको सुन्दर दान देनेके लिये रचा करने-
 बाबा तथा भय दूर करनेबाबा स्वप्न जल भी है, परमेश्वरकी
 पूजा करनेके लिये निर्मल वेष्टपाठरूपी मत्त भी है, मूलरूपी
 रोगका शांत करनेके लिये फल-सूत्र भी हैं सब दुःख देनेवाले
 धनके संग्रहसे क्या लाभ ? ॥ २९६ ॥ बहुतसे लोग धनके
 पाने मात्रके लिये अज्ञानमें पड़े हुए हैं । बहुतसे लोगोंको अस्व-
 राशोंके स्तनके आसक्तिगर्भी आसक्तिपा है परन्तु जिसके भीतर
 सभी वस्तुएँ समा जाती हैं, जो ज्ञानस्वरूप है उस शिव
 (कल्याणकारी आत्मा) को देखकर प्रसन्नतासे रोमांचित
 होनेवाले सज्जन कहीं नहीं दिखाई पड़े, यही कठकी बात है
 ॥ २९७ ॥ हे सन्ध्यावन्दन ! तुम्हारा मङ्गल हो । हे स्नान !
 तुम्हें प्रणाम है । हे दनतामो तथा पितरो ! तुम्हारा तर्पण
 करनेकी मेरी शक्ति नहीं है, क्षमा करना । अब मैं कहीं भी
 बैठकर यात्राकुलके भूषण तथा कंसके मासक भगवान्का स्नान
 काके अपने पाप दूर करूँगा । अतः, अब मुझे दूसरी वस्तुकी
 आवश्यकता ही क्या ? ॥ २९८ ॥ दर्श-सुखका आनन्द लेने-
 वाले लोग ऊँचे कड़े मोंसके धियरकी स्तन समझकर आसि-
 ज्ञन करते हैं, जारसे लिपटे हुए मुखको मदिरासे भरे हुए प्याले
 के समान पालते हैं तथा अणुविग्रह ज्ञान-भरे गीले मार्गमें आन-
 न्दका अनुभव करते हैं । सचमुच भयंकर अज्ञानसे अन्धे
 लोगोंको सभी वस्तुएँ भली ही जान पड़ती हैं ॥ २९९ ॥

वामिषासस्यां ज्योतिरुपैत्य निम्बधनमिदं दोषत्रयं
घट्यति ॥ २९० ॥ सर्वाशुनिनिधानस्य कृतधनस्य
विनाशिनः । शरीरकस्यापि कृते मृदा पापानि कुर्वते
॥ २९१ ॥ सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समु-
च्छ्रयाः । सत्पुत्राः विप्रयोगान्ता मरणान्तं हि जीवितम्
॥ २९२ ॥ साक्षात्प्रेमावतारः कमलरलदृशो दिव्य
लक्ष्मीरनन्ताः सत्पुत्राः सन्ति मित्राण्यपि विषमविप-
त्संविभागी कुटुम्बः । एतत्सर्वं हि तावत्सुकुनचित्त-
सितं दृश्यमानं मनोज्ञं यच्चैतत्प्रिप्रनाशयति यत्न
मनाङ्गुलायते तेन चेतः ॥ २९३ ॥ सा बुद्धिर्विलयं
प्रयातु कुल्लिषं तत्रापि सम्पादयतां वदन्तः प्रविशन्तु
ते हृतभुजि ज्वालाकराले गुणाः । ये सर्वैः शरदिन्दु-
कुम्बविशदैः प्राप्तेरपि प्राप्यते भूयोऽप्यत्र पुरभिधगभ-
नरकप्रीडाधिवासव्यथा ॥ २९४ ॥ सार्वभौमभवनं
वनवासी निस्वभावभवभावनया ते । बालिशो हि

विषयेन्द्रियचोरैर्मुप्यते स्वभवने च वने च ॥ २९५ ॥
सुरमन्दिरतरुमूलनिवासः शय्या भूतलमजिनं वासः
सर्वपरिग्रहभोगव्यामः कस्य सुखं न कराति विगमः
॥ २९६ ॥ सृक्तिं कर्णसुखां व्यनक्तु सुजनस्तस्मिन्
मोदामहे ग्रन्थो यावमस्यको विषमुचं तस्मिन् विद्या-
महे । या यस्य प्रकृतिः स तां चित्तनुतां किं नस्तया
चिन्तया कुर्मस्तत्फलं कर्म जन्मानगडच्छेदय यज्जा-
यते ॥ २९७ ॥ सौजन्याभ्युपगमस्थली सुचरितालेखयु-
भिलिगुणज्योत्स्नाकृष्णवतुर्दशी सरलतायागम्बपुच्छ-
च्छटा । यैरप्यपि दुराशया कलियुगे राजावला
सेविता तेषां शूलानि भक्तिमात्रतुलभे संस्था कियत्का-
शलम् ॥ २९८ ॥ स्तनो मांसग्रन्थी कनककलशाघित्यु-
पमितां मुखं श्लेष्मागारं तदपि च शशाङ्केन तुलितम् ।
क्षयमृत्रफिलसं करिष्यरकरस्पधि जघनं परं निम्नं
रूपं कविजनविशेषैर्गुरु कृतम् ॥ २९९ ॥ स्थिरापायः

सुन्दर-सुन्दर भोगकी सामग्रियाँ पाकर उनके भोगसे समुद्र
होनेवाले मनुष्यका सारा ज्ञानका प्रकाश जाता रहता है, उससे
मनुष्य ऊँचा पद नहीं पा सकता । भोगके विषयोंसे मन हटा
लेना ही सुख तथा सुखका उपाय है । उसमेंसे बिना ईर्ष्यनके
ही ऐसा प्रकाश जग उठता है जो आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा
आधिभौतिक तीनों दोषोंको जला डालता है ॥ २९० ॥ सब
प्रकारकी अविवेकताकी ज्ञान और सेवा-करी उपकारको न
माननेवाले इस नाशवान् शरीरके जिये मूल्य भोग पाप-कर्म
किया करते हैं ॥ २९१ ॥ सभी वस्तुएँ अन्तमें नष्ट हो जाती हैं,
अव्यक्तिके परचात् पतन होता है, संभोगके परचात् विविग होता
तथा जीवनके परचात् मरण निरिबल है ॥ २९२ ॥ स्वयं
साक्षात् प्रेमके अवतार, कमलकी पंखुहीके समान चौड़ी प्रस-
वाली छियाँ, चारों ओर अनन्त लक्ष्मी, अच्छे पुत्र, मित्र,
अर्थकर विपत्तिमें साथ देनेवाले परिवार, ये जो सुन्दर
पूर्वजन्मके पुण्यके फल दिखाई देते हैं, ये सभी लक्ष्मण
हैं, फिर भी लोदकी बात है कि इन्हींके जिये भोग
ज्याकुल हुए रहते हैं ॥ २९३ ॥ उस बुद्धिका नाश हो और
उसपर वज्र गिरे तथा शरद् ऋतुके चन्द्रमा और कुन्दके
फूलके समानके स्वच्छ वे अच्छे-अच्छे गुण भी अग्निकी
अर्थकर ज्वालामें जा कुलसें जिनमें पाकर भी फिर नारीके गर्भ-
रूपी नरकके भीतर सड़नेका कष्ट भोगना पड़े ॥ २९४ ॥ संसारको
गुण समझकर आपका ध्यान करनेवालेकी वनवास भी चकवर्ती

राजाके भवनमें निवास-सा जग पड़ता है या अज्ञानों मनुष्य
पर तथा वनमें भा भोगकी वस्तुओं तथा इन्द्रिय-रुचि चोरोंके
हाथ लूट जाता है ॥ २९५ ॥ जिस वैराग्यमें देवमन्दिरों और पर्वों
के तले निवास है, भूमि ही शय्या और मृगचर्म ही पत्र रहता
है और जिसमें सभी वस्तुओंका संग्रह और भाग होंक दिया
जाता है, उस वैराग्यसे किये सुख नहीं मिलेगा ॥ २९६ ॥
कानोंमें चमकनेके समान प्रचण्डी जगनेवाली सज्जनोकी सुन्दर-
सुन्दर बातोंसे हमें प्रसन्नता नहीं और विष उगजनेवाले मोच
झोंगोंकी विष भरी बातोंका हमें दुःख नहीं क्योंकि जिसका
जैसा स्वभाव होगा वह तो वैसा ही जान पड़ेगा । हम तो वही
काम करते हैं जिससे जन्म-मरणकी चेंदी टूट जाय ॥ २९७ ॥
जो सज्जनतारूपी जन्मके जिये महर्षि हैं, सदाचारकरी
चित्रके जिये प्राकाशकी भीत हैं, अच्छे गुणरूपी चोदनाके
जिये कृष्णपत्रकी चतुर्दशी हैं, साधेवतके जिये कुत्तेकी
दूँध हैं ऐसे घुरे विचारवाले राजाओं-तककी जिसने कलियुगमें
सेवा कर ली है उसके जिये भक्तिमात्रसे वरमें होनेवाले
शंकरजीकी सेवा करना कौन-सी बड़ी बात है ॥ २९८ ॥
मांसके रिहोंकी उरमा सोनेके वड़ेसे दी जाती है,
कफसे भरे हुए मुखकी चन्द्रमाके समान बताया जाता है,
मूत्रसे भीगी हुई आँखें हाथीकी सूँढ़के समान बढाई जाती
हैं । इस प्रकार इस घणित शरीरको कवियोंने अपने
वर्णनसे महर्षि बना दिया है ॥ २९९ ॥ कावाका नाश

कायः प्रणयिषु सुखं स्थैर्यविमुखं महाभोगा रोगाः
कुचलयदशः सर्पसदृशः । महावेशः कलेशः प्रकृति-
चपला श्रीरपि कला यमः स्वैरी वैरी तदपि न हितं
कर्म विहितम् ॥ ३०० ॥ स्मारस्मेरमदोज्ज्वलकुचतटी-
कान्ताकरान्दोलितैः पुष्पाम्भोजिखितैश्शरीरचितैः किं
तालवृत्तैर्मम । अन्वानम्बुवनं मुखं शिशुयिधोरर्चप्रमी-
लदृश्यो यातायातपरिधमं शमयिता गङ्गातरङ्गानिलः
॥ ३०१ ॥ स्वमस्तकसमारुढं मृत्युं पश्येज्जनो यदि ।
आहारोऽपि न रोचेत किमुतान्या विभूतयः ॥ ३०२ ॥
स्वार्थारम्भप्रणतशिरसां पक्षपातास्तुराणां दृष्टात्मानं
करजकुलितशैर्वाभवेन्द्रं निहन्तुम् । सिद्धीभूतस्त्रिभुवन-

शुक्रः सोऽपि नारायणोऽस्मिन् रागद्वेषमतिहतमतेः
कस्य न स्थात्पशुत्वम् ॥ ३०३ ॥ हरिष्यमाणो बहुधा
परस्वं करिष्यमाणः सुखसम्पदादि । हरिष्यमाणोऽरि-
शिरःसु पादं न स्वं मरिष्यन्तमवेति कोऽपि ॥ ३०४ ॥
हेमः कार्यं हुतवहगतं हेममेवेति यद्वत्क्षीरे क्षीरं
समरसतया तोयमेवाभ्युमध्मे । एवं सर्वं समरसतया
तत्पदं तत्पदार्थं निस्त्रैगुण्ये पथि विधरतः को विधिः
को निषेधः ॥ ३०५ ॥ हेयं हर्म्यमिव निकुञ्जभवनं श्रेयं
प्रदेयं घनं देयं तीर्थपथो हरेर्भगवतो नेयं पदाम्भो-
हम् । नेयं जन्म स्त्रियाय वर्भक्षयने घर्मे निधेयं मनः स्थैर्यं
तत्र सितासितस्य सविधे भ्येयं पुराणं महः ॥ ३०६ ॥

॥ इति श्रीमन्नारायणस्वामिभिः सङ्कलिते सूक्तिसागरे रससूक्त्य

इत्यभिधानकं सानुवादं द्वितीयप्रकरणं सम्पूर्णम् ॥

निश्चित है, प्रेमियोंका सुख भी स्थिर नहीं है, विशाल भोग
भी सब रोग हैं, कमलके समान फलोंवाली छियाँ भी सर्पके
समान हैं, किसी वस्तुमें बहुत कगन भी दुःख है, वह खपती
भी स्वभावसे चञ्चल है और निरंकुश सम्राज भी शत्रु हैं, फिर
भी प्रेमे अपने कल्याणके लिये आज तक कुछ नहीं किया
॥ ३०० ॥ कामके प्रवक्तृ मद्मे जिन छियोंके स्तन उठे हुए हैं
उनके हाथसे भले हुए तथा कुछ और कसके जलसे सुगंधित
पंखोंकी हमें क्या आवश्यकता है ? हम तो आनन्दवन (काशी)
में काफी फलों मूँदकर सुखसे प्राण दे दें तो गङ्गाजीकी लहरों-
में मिखा हुआ पवन ही संसारमें आने-जानेकी सब चकावट
दूर कर देगा ॥ ३०१ ॥ अपने माथेपर बैठे हुई मृत्युकी यदि
छोग देख पायें तो दूसरे सुख तो क्या, भोजन भी उन्हें अच्छा
न लगे ॥ ३०२ ॥ स्वार्थ सिद्ध करनेके लिये सिर गवाए हुए
देवताओंका पक्षपात करके अरुण समयकी हिरण्यकशिपुकी
अपने वज्र-जैसे नखोंसे फाड़ डालनेके लिये त्रैलोक्यके स्वामी
नारायण भी सिंह बन गए । ठीक ही है, बुद्धिमें राग-द्वेष समा

जानेपर कीम पशु नहीं हो जाता ॥ ३०३ ॥ खीर प्रायः दूसरेका
चन हरना चाहते हैं, पुत्र और सम्पत्ति संग्रह करना चाहते हैं,
शत्रुओंको पददक्षित करना चाहते हैं पर कोई यह नहीं कहता
कि मैं मर्हंगा भी ॥ ३०४ ॥ जैसे सोनेकी बनी हुई सभी
विभिन्न वस्तुएँ आगमें गलकर सोना हो जाती हैं, जैसे एकरस
होनेके कारण दूधमें मिखा हुआ दूध और पानीमें मिखा हुआ
पानी एकरूप हो जाता है, उसी प्रकार भेदन होनेके कारण
सभी जीव भी एकरूप हैं, यह समझकर जो मायासे हटकर
चलता है उसके लिये कर्तव्य और अकर्तव्यका विचार कैसा
॥ ३०५ ॥ उँची छोटारपी छोड़कर साक्षीरूपी घरका सहारा
केना चाहिए, चमका दान देना चाहिए, तीर्थका जल पीना
चाहिए, भगवान् विष्णुके चरण-कमलका प्रसृत पान करना
चाहिए, कुशके बिलौनेपर सोकर जीवन बिताना चाहिए, धर्ममें
मन लगाना चाहिए, शिवेयीके लटपर जाकर रहना चाहिए
और सबसे प्राचीन ज्योति (आत्मा) का ध्यान करना चाहिए
॥ ३०६ ॥

॥ श्री १०८ नारायण स्वामी-द्वारा सङ्कलित सूक्तिसागरका रससूक्ति नामक

द्वितीय प्रकरण नामरी अनुवाद-सहित पूर्ण हुआ ॥



